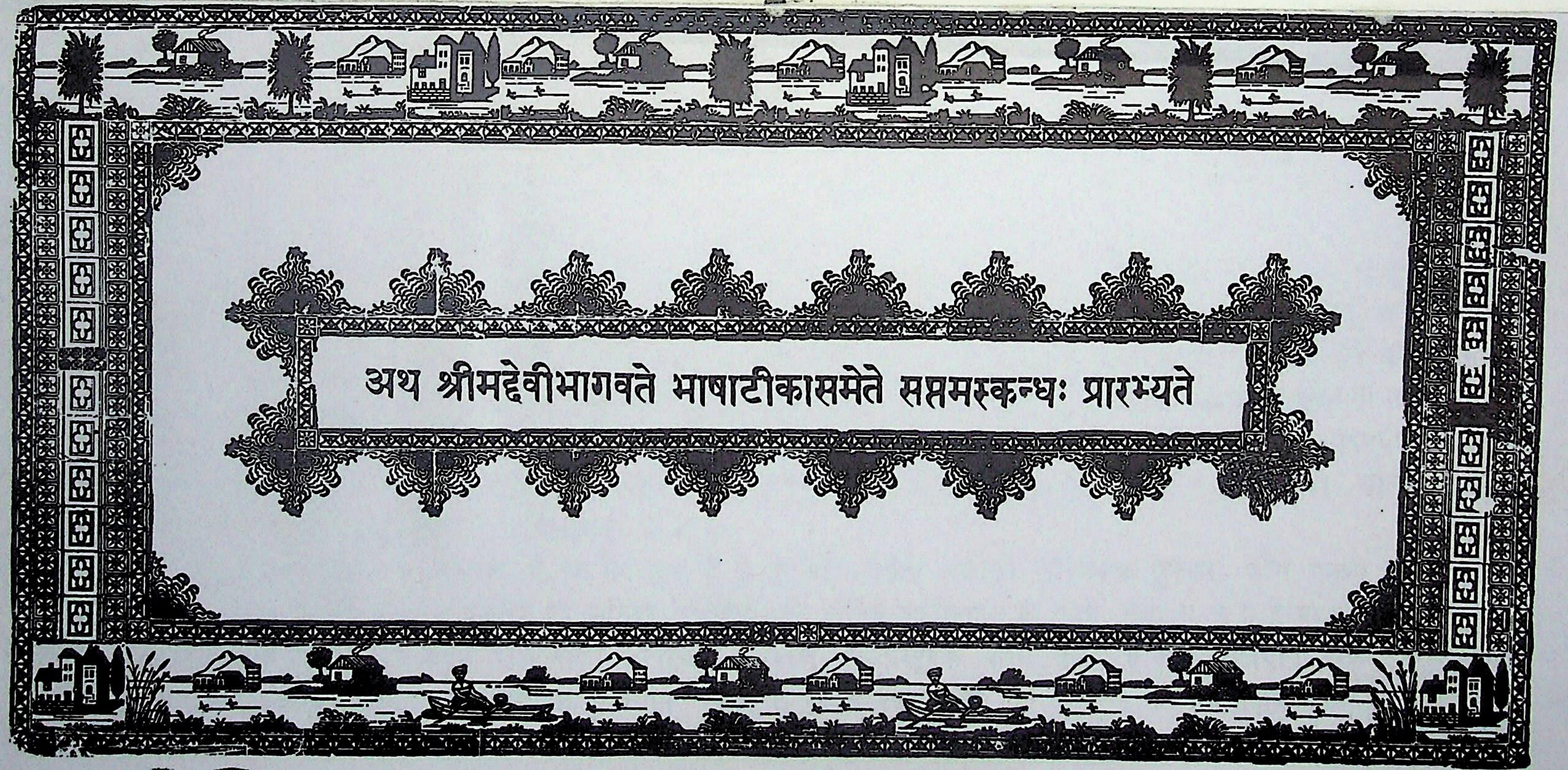
श्रीमद्देवीभागवत

(हिन्दी टीका सहित)

भाग : २


अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते सप्तमस्कन्धः प्रारभ्यते

दोहा--श्रीजगदम्बापदकमल, प्रेमसहित मनलाय । भाषा सप्तमस्कन्धकी, बहुविधि लिखित बनाय ॥ १ ॥
भुवनेशी गौरी शिवा, सकल सुमंगल मूल । श्रोता वक्ता पर रहही, जगन्मात अनुकूल ॥ २ ॥

सूतजीने कहा हे तापसगण ! परीक्षित्‌के पुत्र धर्मात्मा राजा जनमेजयने चन्द्र और सूर्यवंशका दिव्य उपाख्यान सुन आनंदित हो व्यासदेवजीसे फिर पूँछा ॥ १ ॥ जनमेजय बोले हे प्रभु ! चंद्रवंशीय और सूर्यवंशीय राजाओंके वंशका विस्तार सुननेकी मुझको अत्यंत इच्छा हुई है ॥ २ ॥ हे अनघ ! आप सब विषय जानते हैं अतएव चंद्र और सूर्यवंशका पापनाशन पवित्र आख्यान और राजाओंका चरित्रविस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ वह चंद्र और

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीभगवत्यै नमः ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वैतां तापसा दिव्यां कथां राजा मुदाऽन्वितः ॥ व्यासं पप्रच्छ धर्मात्मा परीक्षितसुतः पुनः ॥ १ ॥ जनमेजय उवाच ॥ स्वामिन्सूर्यान्वयानां च राज्ञां वंशस्य विस्तरम् ॥ तथा सोमान्वयानां च श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा ॥ २ ॥ कथयानघ सर्वज्ञ कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ चरितं भूपतीनां च विस्तराद्वंशयोर्द्वयोः ॥३ ॥ तेहि सर्वे पराशक्तिभक्ता इति मया श्रुतम् ॥ देवीभक्तस्य चरितं शृण्वन्कोऽस्ति विरक्तिभाक् ॥ ४ ॥ इति राजर्षिणा पृष्टोव्यासः सत्यवतीसुतः ॥ तमुवाच मुनिश्रेष्ठः प्रसन्नवदनो मुनिः ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महाराज विस्तराद्वदतो मम ॥ सोम सूर्यान्वयानां च तथाऽन्येषां समुद्भवम् ॥ ६ ॥ विष्णोर्नाभिसरोजाद्वै ब्रह्माऽभूच्चतुराननः ॥ तपस्तप्त्वा समाराध्य महादेवीं सुदुर्गमाम् ॥ ७ ॥ तया दत्तवरो धाता जगत्कर्तुं समुद्यतः ॥ नाशकन्मानुषीं सृष्टिं कर्तुं लोकपितामहः ॥ ८ ॥

सूर्यवंशीय राजा पराशक्ति भगवतीके अत्यंतभक्त थे यह मैंने सुना है. हे मुनिवर ! देवीके भक्तोंकी चरित्रकथा सुनकर कौन मनुष्य विरक्त होता है? ॥ ४ ॥ राजर्षिके यह कथा पूँछनेपर फिर सत्यवतीके पुत्र मुनिवर कृष्णद्वैपायनने प्रीतिसे प्रफुल्लितमन हो उनसे कहा ॥ ५ ॥ हे महाराज ! मैं चंद्र और सूर्यवंशीय राजा और इनके प्रसंगसे अन्यान्य राजाओंकी उत्पत्तिका विवरण विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं आप सावधान होकर सुनिये ॥ ६ ॥ विष्णुकी नाभिकमलसे चतुरानन ब्रह्मा उत्पन्न हुए वह तपस्यामें निरत हो एकांत क्या दुर्ज्ञेया जो जाननेमें न आवे महादेवी उन दुर्गाकी आराधना करने लगे ॥ ७ ॥ महादेवीने आराधनासे संतुष्ट होकर ब्रह्माजीको वरदिया यद्यपि वह सर्वलोक पितामह ब्रह्मा वर पाय जगत्‌को उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए

किंतु वह सहसा मनुष्योंको उत्पन्न करनेमें समर्थ न हुए ॥ ८ ॥ तात्पर्य यह है कि यह सृष्टि परमात्मारूपिणी भगवती कर्तृक नित्यरूपसे रचित होनेपर चतुरानन ब्रह्मा मनमें अनेक प्रकारकी चिंता करके भी शीघ्र उसका विस्तार न करसके ॥ ९ ॥ अतएव प्रजापति ब्रह्माने प्रथम सात मानस पुत्र उत्पन्न किये. उनके नाम मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ यह सात मानस पुत्र कहकर विख्यात हैं ॥ १० ॥ इसके उपरांत उन प्रजापतिके रोषसे रुद्र उत्संगसे नारद और दक्षिण अंगुष्ठसे दक्ष उत्पन्न हुए. इस प्रकार सनकादिऋषिलोग भी उनके मानस पुत्र थे ॥११॥ हे महीपते ! प्रजापतिके वाम अंगुष्ठसे दक्षकी स्त्री उत्पन्न हुई. वह सर्वाङ्ग सुन्दरी कन्या वीरिणी और असिक्नीनामसे सम्पूर्ण पुराणोंमें विख्यात है ॥ १२ ॥

विचिंत्य बहुधा चित्ते सृष्ट्यर्थं चतुराननः ॥ न विस्तारं जगामाशु रचि ताऽपि महात्मना ॥ ९ ॥ "ससर्ज मानसान्पुत्रान्सप्तसंख्यान्प्रजापतिः" ॥ मरीचिरंगिराऽत्रिश्च वसिष्ठः पुलहःक्रतुः ॥ पुलस्त्यश्चेति विख्याताः सप्तैते मानसाः सुताः ॥ १० ॥ रुद्रो रोषात्समुत्पन्नोऽप्युत्संगान्नारदोऽभवत् ॥ दक्षोंऽगुष्ठात्तथाऽन्येऽपि मानसाः सनकादयः ॥ ११ ॥ वामांगुष्ठाद्दक्षपत्नी जातासर्वांगसुंदरी ॥ वीरिणी नामविख्याता पुराणेषु महीपते ॥ १२ ॥ असिक्नीति च नाम्ना स यस्यां जातोऽथ नारदः ॥ देवर्षिप्रवरः कामं ब्राह्मणो मानसः सुतः ॥ ॥ १३ ॥ जनमेजय उवाच ॥ अत्र मे संशयो ब्रह्मन्यदुक्तं भवता वचः ॥ वीरिण्यां नारदो जातो दक्षादिति महातपाः ॥ १४ ॥ कथं दक्षस्य पत्न्यां तु वीरिण्यां नारदो मुनिः ॥जातो हि ब्रह्मणः पुत्रो धर्मज्ञस्त पसोत्तमः ॥ १५ ॥ विचित्रमिदमाख्यातं भवता नारदस्य च ॥ दक्षाज्जन्मस्य भार्यायां तद्वदस्व सविस्तरम् ॥ १६ ॥ पूर्वदेहः कथं मुक्तः शापात्कस्य महात्मना ॥ नारदेन बहुज्ञेन कस्माज्जन्म कृतं मुने ॥ १७ ॥ व्यास उवाच ॥ ब्रह्मणाऽसौ समादिष्टो दक्षः सृष्ट्यर्थमादितः ॥ प्रजाः सृजेति सुभृशं वृद्धिहेतो स्वयंभुवा ॥ १८ ॥

देवर्षिप्रवर नारदने समयांतरमें उसके गर्भसे जन्म ग्रहण किया वह असिक्नी नामसे विख्यात थी ॥ १३ ॥ जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन् ! आपने कहा है कि तपस्वी नारदने दक्षके औरससे और वीरिणीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया था इसमें मुझको संशय उत्पन्न हुआ है ॥ १४ ॥ नारदमुनि एक तो ब्रह्माके पुत्र हैं विशेषकर धर्मज्ञानयुक्त और तपस्वी लोगोंमें अग्रगण्य हैं. अतएव उन्होंने दक्षकी पत्नी वीरिणीके गर्भसे किस प्रकार जन्म ग्रहण किया ? ॥ १५ ॥ अच्छा, यदि यही होतो दक्षसे उनकी भार्याके गर्भमें नारदजीने जो जन्म ग्रहण किया था आप वही विचित्र कथा विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १६ ॥ हे मुने ! महात्मा नारदजीने अनेक प्रकार ज्ञानयुक्त होकर भी किसके शापसे पूर्वदेह त्यागकर फिर कैसे जन्मग्रहण किया ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा

" जगत्को बढ़ानेके लिये असंख्य प्रजा उत्पन्न करो " स्वयंभू ब्रह्माने सृष्टिकी इच्छासे यह कहकर प्रथम दक्षको आज्ञा दी ॥ १८ ॥ दक्षप्रजापतिने पिताकी आज्ञा ले वीरिणीके गर्भसे बड़े बली वीर्यवान् पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥ १९ ॥ उन सम्पूर्ण दक्षके पुत्रोंको प्रजाके बढ़ानेमें अभिलाषी देखकर देवर्षि नारदने कालसे प्रेरित होकर हँसते हँसते कहा ॥ २० ॥ तुमने पृथ्वीका परिमाण न जानकर किस प्रकार प्रजाको उत्पन्न करनेकी इच्छा की है ? अतएव तुम साधारणलोकोंमें हास्यके पात्र होंगे इसमें संदेह नहीं ॥ २१ ॥ परंतु पृथ्वीका परिमाण जानकर सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त होनेसे वह सिद्ध होगा. किंतु इसके अन्यथा करनेसे कभी कार्य सिद्धि नहीं होगी, यही स्थित निश्चय जानना चाहिये ॥ २२ ॥ हाय ! तुम अत्यन्त अज्ञानी हो ! ! पृथ्वीका वृत्तांत जानकर

ततः पञ्चसहस्रांश्च जनयामास वीर्यवान् ॥ दक्षः प्रजापतिः पुत्रान्वीरिण्यां बलवत्तरान् ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा तान्नारदः पुत्रान्सर्वान्वर्धयिषून्प्रजाः ॥ उवाच प्रहसन्वाचं देवर्षिः कालनोदितः ॥ २० ॥ भुवः प्रमाणमज्ञात्वा स्रष्टुकामाः प्रजाः कथम् ॥ लोकानां हास्यतां यूयं गमिष्यथ न संशयः ॥ २१ ॥ पृथिव्या वै प्रमाणं तु ज्ञात्वा कार्यः समुद्यमः ॥ कृतोऽसौ सिद्धिमायाति नान्यथेति विनिश्चयः ॥ २२ ॥ बालिशा बत यूयं वै यदज्ञात्वा भुवस्तलम् ॥ समुद्यताः प्रजाः कर्तुं कथं सिद्धिर्भविष्यति ॥ २३ ॥ व्यास उवाच ॥ नारदेनैवमुक्तास्ते हर्यश्वा दैवयोगतः ॥ अन्योन्यमूचुः सहसा सम्यगाह मुनिः किल ॥ २४ ॥ ज्ञात्वा प्रमाणमूर्व्यास्तु सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः ॥ इति संचिंत्य ते सर्वे प्रयाताः प्रेक्षितुं भुवः ॥ २५ ॥ तलं सर्वं परिज्ञातुं वचनान्नारदस्य च ॥ प्राच्यां केचिद्गताः कामं दक्षिणस्यां तथाऽपरे ॥ २६ ॥ प्रतीच्यामुत्तरस्यां तु कृतोत्साहाः समंततः ॥ दक्षः पुत्रान्गतान्दृष्ट्वा पीडितस्तु शुचा भृशम् ॥ २७ ॥ अन्यानुत्पादयामास प्रजार्थं कृतनिश्चयः ॥ तेऽपि तत्रोद्यताः कर्तुं प्रजार्थमुद्यमं सुताः ॥ २८ ॥

प्रजाको उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए हो अतएव तुम्हारा कार्य किस प्रकार सिद्ध होगा ? ॥ २३ ॥ व्यास जीने कहा हे महाराज ! दैवयोगसे सहसा नारद जीका यह बचन सुनकर वह हर्यश्व इत्यादि पुत्र परस्पर कहने लगे कि यह मुनिवर जो बात कहते हैं सो सत्य है ॥ २४ ॥ पृथ्वीका परिमाण जानकर हम सुखपूर्वक प्रजाको उत्पन्न करेंगे वह सब इस प्रकार विचारकर पृथ्वीको देखनेके लिये चले गये ॥ २५ ॥ वह नारदजीके वचनसे उत्साहित हो सब पृथ्वी देखते देखते कोई पूर्वकी और और कोई दक्षिण की ओर ॥ २६ ॥ कोई उत्तरकी ओर कोई पश्चिमकी ओर इच्छानुसार चले गये. पुत्रोंके चले जानेपर दक्ष उनको न देखकर अत्यंत शोकातुर हुए ॥ २७ ॥ परंतु उन्होंने प्रजाकी इच्छासे कृतसंकल्प हो फिर अन्यान्य पुत्र उत्पन्न किये उनके वह सब

पुत्र भी फिर प्रजाको उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए ॥ २८ ॥ नारद मुनिने उनको देखकर भी पहलेके समान कहा कि तुम अत्यंत अज्ञानी हो ! पृथ्वीका परिमाण न जानकर ॥ २९ ॥ किस कारणसे प्रजाको उत्पन्न करनेमें उद्यत हुए हो ? नारदजीका वचन सत्य विचार मोहित हो ॥ ३० ॥ पहले भ्राता जिस प्रकार चले गये थे वह भी इसी प्रकार चले गये दक्षप्रजापतिने उन पुत्रोंको न देखकर कुपित हो ॥ ३१ ॥ पुत्रशोकसे प्रकट हुए क्रोध द्वारा नारद जीको शाप दिया. दक्षने कहा हे दुर्बुद्धे ! तुमने मेरे पुत्रोंको नष्ट किया है अतएव नाशको प्राप्त हो ॥ ३२ ॥ फलतः मेरे पुत्र नष्ट होनेके पापसे तुमको गर्भमें वास करना होगा और अधिक क्या कहूं तुमने मेरे पुत्रोंको स्थानभ्रष्ट किया है अतएव तुम अवश्य मेरे पुत्र होगे ॥ ३३ ॥ नारदजी इस प्रकार

नारदः प्राह तान्दृष्ट्वा पूर्वं यद्वचनं मुनिः ॥ बालिशा बत यूयं वै यदज्ञात्वा भुवः किल ॥ २९ ॥ प्रमाणं तु प्रजाः कर्तुं प्रवृत्ताः केन हेतुना ॥ श्रुत्वा वाक्यं मुनेस्तेऽपि मत्वा सत्यं विमोहिताः ॥ ३० ॥ जग्मुः सर्वे यथापूर्वं भ्रातरश्चलितास्तथा ॥ तान्सुतान्प्रस्थितान्दृष्ट्वा दक्षः कोपसमन्वितः ॥ ३१ ॥ शशाप नारदं रोषात्पुत्रशोकसमुद्भवात् ॥ दक्ष उवाच ॥ नाशिता मे सुता यस्मात्तस्मान्नाशमवाप्नुहि ॥ ३२ ॥ पापेनानेन दुर्बुद्धे गर्भवासं व्रजेति च ॥ पुत्रो मे भव कामं त्वं यतो मे भ्रंशिताः सुताः ॥ ३३ ॥ इति शप्तस्ततो जातो वीरिण्यां नारदो मुनिः ॥ षष्टिर्भूयोऽसृजत्कन्या वीरिण्यामिति नः श्रुतम् ॥ ३४ ॥ शोकं विहाय पुत्राणां दक्षः परमधर्मवित् ॥ तासां त्रयोदशमदात्कश्यपाय महात्मने ॥ ३५ ॥ दश धर्माय सोमाय सप्तविंशति भूपते ॥ द्वे चैवं भृगवे प्रादाच्चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥ ३६ ॥ द्वे चैवांगिरसे कन्ये तथैवांगिरसे पुनः तासां पुत्राश्च पौत्राश्च देवाश्च दानवास्तथा ॥ ३७ ॥ जाता बलसमायुक्ताः परस्परविरोधकाः ॥ रागद्वेषान्विताः सर्वे परस्परविरोधिनः ॥ सर्वे मोहावृताः शूरा ह्यभवन्नातिमायिनः ॥ ३८ ॥

शापित हो वीरणीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया. इस प्रकार सुना है कि, इसके उपरांत प्रजापति दक्षने वीरणीके गर्भसे साठ कन्या उत्पन्नकी ॥ ३४ ॥ हे भूपते ! तब परमधर्मके जाननेवाले दक्षने पुत्रशोक त्यागकर उनमेंसे तेरह महात्मा कश्यपको ॥ ३५ ॥ दश धर्मको, चन्द्रमाको सत्ताइस, भृगुको दो, अरिष्ट नेमिको चार, कृशाश्वको दो और शेष दो कन्या अङ्गिराको दीं. उनके पुत्र और पौत्र देवता तथा दानव ॥ ३६ ॥ बलयुक्त हो परस्पर विरोधी हुए. वह सभी शूर और अत्यंत मायावी थे. अतएव राग और द्वेषसे मोहित होकर परस्पर विरोध करने लगे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ जनमेजयने कहा हे महाभाग ! भलीभांति ज्ञानयुक्त जिन सब राजाओंने सूर्य वंशमें जन्म ग्रहण किया था आप उनका वंश विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ व्यासजीने कहा हे भारत ! पहले ऋषिसत्तम नारदके मुखसे सूर्यवंशका विस्तार सहित वृत्तांत जिस प्रकार सुना है, अब मैं वही अविकल वर्णन करता हूं सुनो ॥ २ ॥ एक समय श्रीमान् नारदमुनि इच्छानुसार भ्रमण करते करते शोभायमान सरस्वतीके तटपर मेरे पवित्र आश्रममें आये ॥ ३ ॥ उनको देख मैं उनके दोनों चरणोंमें मस्तक झुकाय प्रणामकर सन्मुख खड़ा हुआ फिर उनको आसनपर बैठाय आदरसहित उनकी पूजा की ॥ ४ ॥ इस प्रकार यथाविधानसे पूजाकर उनसे कहा हे मुनिवर ! आप विश्वके पूजनीय हैं

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ जनमेजय उवाच ॥ समाख्याहि महाभाग राज्ञां वंशं सुविस्तरम् ॥ सूर्यान्वयसूप्रतानां धर्मज्ञानां विशेषतः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु भारत वक्ष्यामि रविवंशस्य विस्तरम् ॥ यथा श्रुतं मया पूर्वं नारदादृषिसत्तमात् ॥ २ ॥ एकदा नारदः श्रीमान्सरस्वत्यास्तटे शुभे ॥ आजगामाऽऽश्रमे पुण्ये विचरन्स्वेच्छया मुनिः ॥ ३ ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ तस्याग्रे संस्थितस्तदा ॥ ततस्तस्यासनं दत्त्वा कृत्वाऽर्हणमथादरात् ॥ ४ ॥ विधिवत्पूजयित्वा तमुक्तवान्वचनं त्विदम् ॥ पावितोऽहं मुनिश्रेष्ठ पूज्यस्यागमनेन वै ॥ ५ ॥ कथां कथय सर्वज्ञ राज्ञां चरितसंयुताम् ॥ राजानो ये समाख्याताः सप्तमेऽस्मिन्मनोः कुले ॥६॥ तेषामुत्पत्तिरतुला चरितं परमाद्भुतम् ॥ श्रोतुकामोऽस्म्यहं ब्रह्मन्सूर्यवंशस्य विस्तरम् ॥ ७ ॥ समाख्याहि मुनिश्रेष्ठ समासव्यासपूर्वकम् ॥ इति पृष्टो मया राजन्नारदः परमार्थवित् ॥ ८ ॥ उवाच प्रहसन्प्रीतः समाभाष्य मुदाऽन्वयम् ॥ नारद ॥ उवाच श्रुणु सत्यवतीसूनो राज्ञां वंशमनुत्तमम् ॥ ९ ॥ पावनं कर्णसुखदं धर्मज्ञा नादिभिर्युतम् ॥ ब्रह्मा पूर्वं जगत्कर्ता नाभिपंकजसंभवः ॥ १० ॥

अतएव आपके आनेसे मेरा आश्रम पवित्र हुआ ॥ ५ ॥ हे सर्वज्ञ ! आप राजाओंके चरित्रयुक्त उपाख्यान कहिये सातवें मनुके वंशमें जो सब राजा विख्यात हैं ॥ ६ ॥ उनकी उत्पत्तिके विषयमें तुलना नहीं है और उनके चरित्रभी अत्यंत अद्भुत हैं ॥ ७ ॥ हे मुनिवर ! आप स्थलविशेष से कभी संक्षेप और कभी विस्तार सहित उनका वर्णन कीजिये हे राजन् ! मेरे इस प्रकार पूँछनेपर परमार्थवित नारदजी ॥ ८ ॥ प्रीति सहित हँसते हँसते मुझसे प्रसन्नमन हो सूर्यवंशका वृत्तांत वर्णन करने लगे नारदजी बोले हे सत्यवतीतनय ! राजाओंके वंश अत्यन्त पवित्र ॥ ९ ॥ और कानोंको सुखदायक हैं विशेषकर इस अत्युत्तम वृत्तांत कर्णमें प्रविष्ट होनेसे धर्म और ज्ञान प्राप्त होता है अतएव आप उसको सुनिये. पूर्वकालमें ब्रह्माने विष्णुकी नाभिकमल से उत्पन्न होकर ॥ १० ॥

जगत्को उत्पन्न किया. यह कथा पुराणमात्रमें प्रसिद्ध वर्णित है उन विश्वसंसारके आत्मस्वरूप सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ॥ ११ ॥ सृष्टिकर्ता स्वयंभूने सृष्टिके आरम्भ समयमें दश हजार वर्ष तपस्या की उस तपस्याके प्रभावसे यह सृष्टि करनेकी विशेष शक्ति प्राप्तकर संपूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेमें प्रवृत्त हुए. उन्होंने सृष्टिकी इच्छासे देवीकी आराधना करके जिस प्रकार अत्यु त्तम शक्ति प्राप्त की ॥ १२ ॥ वैसे ही प्रथम शुभ लक्षणयुक्त मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया उनमें मरीचि सृष्टिकार्यमें प्रसिद्ध हुए थे ॥ १३ ॥ उनके पुत्र कश्यप भी सबके सन्मानित और विख्यात थे. उनकी तेरह भार्या और वह सभी दक्ष प्रजापतिकी कन्या थी ॥ १४ ॥ देवता, दैत्य, यक्ष पन्नग, पशु और पक्षी सभी उनसे उत्पन्न हुए इसीलिये उसको काश्यपी सृष्टि कहते हैं ॥ १५ ॥ देवताओंमें सूर्य

विष्णोरिति पुराणेषु प्रसिद्धः परिकीर्तितः ॥ सर्वज्ञः सर्वकर्ताऽसौ स्वयंभूः सर्वशक्तिमान् ॥ ११ ॥ तपस्तप्त्वा स विश्वात्मा वर्षाणामयुतं पुरा ॥ सृष्टिकामः शिवां ध्यात्वा प्राप्य शक्तिमनुत्तमाम् ॥ १२ ॥ पुत्रानुत्पादयामास मानसाञ्छुभलक्षणान् ॥ मरीचिः प्रथितस्तेषामभवत्सृष्टिकर्मणि ॥१३॥ तस्य पुत्रोऽतिविख्यातः कश्यपः सर्वसंमतः ॥ त्रयोदशैव तस्याऽऽसन्भार्या दक्षसुताः किल ॥१४॥ देवाः सर्वे समुत्पन्ना दैत्या यक्षाश्चा पन्नगाः ॥ पशवः पक्षिणश्चैव तस्मात्सृष्टिस्तु काश्यपी ॥ १५ ॥ देवानां प्रथितः सूर्यो विवस्वन्नाम तस्य तु ॥ तस्य पुत्रः स विख्यातो वैवस्वतमनुर्नृपः ॥ १६ ॥ तस्य पुत्रस्तथेक्ष्वाकुः सूर्यवंशनिबंधनः ॥ नवाभवन्सुतास्तस्य मनोरिक्ष्वाकुपूर्वजाः ॥ १७ ॥ तेषां नामानि राजेंद्र शृणुष्वैकमनाः पुनः ॥ इक्ष्वाकुरथ नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च ॥ १८ ॥ नरिष्यंतस्तथा प्रांशुर्नृगो दिष्टश्च सप्तमः ॥ करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मानवाः स्मृताः ॥ १९ ॥ इक्ष्वाकुस्तु मनोः पुत्रः प्रथमः समजायत ॥ तस्य पुत्रशतं चासीज्ज्येष्ठो विकुक्षिरात्मवान् ॥ २० ॥ नवानां वंशविस्तारं संक्षेपेण निशामय ॥ शूराणां मनुपुत्राणां मनोरंतरजन्मनाम् ॥ २१ ॥

विशेष विख्यात है. उनका दूसरा एक नाम विवस्वान् है विवस्वतके पुत्र वैवस्वतमनु हैं ॥ १६ ॥ उन्होंने राजा होकर अत्यन्त सुख्याति प्राप्त की इनके सिवाय मनुके नौ पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १७ ॥ हे राजेन्द्र! उनके नाम एकाग्र होकर सुनिये. नाभाग, धृष्ट, शर्याति ॥ १८ ॥ नरिष्यन्त, प्रांशु, नृग, दिष्ट, करुष, पृषध्र, यह नौ मनुके पुत्र हैं ॥ १९ ॥ मनुके दूसरे पुत्र इक्षाकुने प्रथम जन्मग्रहण किया उनके सौ पुत्र हुए उनमें आत्म वान् भिकुक्षि ही बडे पुत्र थे ॥ २० ॥ मनुके अनन्तर उत्पन्न हुए नौ पुत्रोंमेंसे कितनोंही का वंशविस्तार संक्षेपसे वर्णन करता हूं सो सुनो ॥ २१ ॥

नाभागके पुत्र अम्बरीष वह अत्यन्त सत्यसन्ध पराक्रमी और धर्मज्ञानी हुए थे अतएव वह सर्वदा न्यायके अनुसार प्रजाका पालन करते ॥२२॥ धृष्टसे धार्ष्ट उत्पन्न हुए उन्होंने क्षत्रिय होकरभी ब्रह्म स्वरूपता प्राप्त की. वह स्वभावसे ही संग्राममें कातर थे और सदा ब्रह्म कार्यका अनुष्ठान करते रहते ॥ २३ । शर्यातिसे आनर्त्तनामसे विख्यात पुत्र और रूप लावण्यवती सुकन्या नामसे एक कन्याने जन्म ग्रहण किया ॥ २४ ॥ राजाशर्यातिने वह सुन्दरी कन्या अन्धे च्यवन ऋषिको दी किंतु मुनिने अन्धे होकर भी कन्याके चरित्र गुणसे सुंदरनेत्र प्राप्त किये थे ॥ २५ ॥ मैंने सुना है कि सूर्यके दोनों पुत्र अश्विनी कुमारोंने फिर दृष्टिशक्ति दी थी जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन्! उस कथामें मुझको बड़ा संदेह है ॥ २६ ॥ राजा शर्यातिने सुलोचना कन्या सुकन्या

नाभागस्य तु पुत्रोऽभूदंबरीषः प्रतापवान् ॥ धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजापालनतत्परः ॥२२॥ धृष्टात्तु धार्ष्टकं क्षत्रं ब्रह्मभूतमजायत ॥ संग्राम कातरं सम्यग्ब्रह्मकर्मरतं तथा ॥२३॥ शर्यातेस्तनयश्चाभूदानर्तो नाम विश्रुतः ॥ सुकन्या च तथा पुत्री रूपलावण्यसंयुता ॥२४॥च्यव नाय सुता दत्ता राज्ञाऽप्यंधाय सुंदरी ॥ मुनिः सुलोचनो जातस्तस्याः शील गुणेन ह ॥ २५ ॥ विहितो रविपुत्राभ्यामश्विभ्यामिति नः श्रुतम् ॥ जनमेजय उवाच ॥ संदेहोऽयं महान्ब्रह्मन्कथायां कथितस्त्वया ॥२६॥ यद्राज्ञा मुनयेंऽधाय दत्ता पुत्री सुलोचना ॥ कुरूपा गुण हीना वा नारी लक्षण वर्जिता ॥२७॥ पुत्री यदा भवेद्राजा तदांऽधाय प्रयच्छती ॥ ज्ञात्वांऽधं सुमुखीं कस्माद्दत्तवान्नृपसत्तमः ॥ २८ ॥ कारणं ब्रूहि मे ब्रह्मन्ननुग्राह्योऽस्मि सर्वदा ॥ सूत उवाच ॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा परीक्षितसुतस्य वै ॥ २९ ॥ द्वैपायनः प्रसन्नात्मातमु वाच हसन्निव॥व्यास उवाच ॥ वैवस्वतसुतः श्रीमाञ्छर्यातिर्नाम पार्थिवः ॥३०॥ तस्य स्त्रीणां सहस्राणि चत्वार्यासन्परिग्रहाः॥ राजपुत्र्यः सरूपाश्च सर्वलक्षणसंयुताः ॥३१॥ पत्न्यः प्रेमयुताः सर्वा प्रिया राज्ञः सुसंमता ॥ एका पुत्री तु तासां वै सुकन्यां नाम सुन्दरी ॥३२॥

दृष्टिशक्ति विहीन च्यवन ऋषिको दी थी कन्या यदि कुरूप गुणहीन अथवा स्त्रियोंके लक्षणसे रहित हो ॥ २७ ॥ तो राजाको वह कन्या अंधेको देनी संगत हो सकती है? किंतु राजा शर्यातिने ऐसी सुमुखी कन्या उस ऋषिको अन्धा जानकर भी क्यों दी ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन्! मैं आपका दास कृपा पात्र हूं अतएव आप इसका कारण कहिये सूतजीने कहा परीक्षित्के पुत्र राजश्रेष्ठ जनमेजयका इस प्रकार वचन सुन ॥ २९ ॥ प्रसन्न हो द्वैपायन मुनिने हँसते हँसते कहा. व्यासजीने कहा वैवस्वतके पुत्र शर्यातिके ॥३०॥ चार हजार विवाहिता स्त्रियें वह सब सुलक्षणोंसे भूषित सुन्दरी और सभी राजकन्या थीं ॥ ३१ ॥ विशेषकर वह सब राजपत्नियें पतिके प्रति प्रीति दिखाकर उनके मनोमत और प्रियपात्र हुई थीं परंतु उन सब राजसीमन्तिनियोंमें सुकन्या

नामक एक सुन्दरी कन्या थी ॥ ३२ ॥ चारुहासिनी पुत्रीको पिता और माता सभी प्यार करते थे. नगरके कुछेक दूर निर्मल जलसे पूर्ण मानसके समान एक मनोहर सरोवर था ॥ ३३ ॥ उसके उतरनेका मार्ग सोपान श्रेणियोंसे आबद्ध था. हंस, कारण्डव, चक्रवाक ॥ ३४ ॥ दात्यूह, सारस, और अन्यान्य पक्षी उसके जलमें क्रीडा करते, पांच प्रकारके कमल उसमें खिले हुए थे और भौंरे उसमें विराजमान थे ॥ ३५ ॥ पार्श्वमें जाल, तमाल, सरल, पुन्नाग, अशोक ॥ ३६ ॥ वट, अश्वत्थ, कदम्ब, कदली, श्रेणी, जम्बीरी, खर्जूर, पनस ॥ ३७ ॥ गुवाक, पूगवृक्ष नारियल, केतक, कांचन इत्यादि अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त और उनके बीचबीचमें शुभ्र वर्ण यूथिका और शल्लिका इत्यादि लता तथा सम्पूर्ण गुल्म शोभायमान थे ॥ ३८ ॥ विशेषकर उस बीचमें जम्बु,

पितुः प्रिया च मातृणां सर्वासां चारुहासिनी ॥ नगरान्नातिदूरेऽभूत्सरो मानससन्निभम् ॥ ३३ ॥ बद्धसोपानमार्गं च स्वच्छपानीयपूरितम् ॥ हंसकारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ३४ ॥ दात्यूहसारसाकीर्णं सर्वं पतिगणावृतम् ॥ पंचधा कमलोपेतं चंचरीकसुसेवितम् ॥ ३५ ॥ पार्श्वतश्च द्रुमाकीर्णं वेष्टितं पादपैः शुभैः ॥ सालैस्तमालैः सरलैः पुन्नागाशोकमंडितम् ॥ ३६ ॥ वटाश्वत्थ कदंबैश्च कदलीखंडराजितम्॥जंबीरैर्बीपूजरैश्चखर्जूरैः पनसैस्तथ॥३७॥ क्रमुकैर्नारिकेलैश्च केतकैः कांचनद्रुमैः॥ यूथिकाजालकैः शुभ्रैः संवृतं मल्लिका गणैः ॥ ॥ ३८ ॥ जंब्वाम्रतिंतिणीभिश्च करंजकुटकावृतम् ॥ पलाशनिंबखदिरबिल्वामलकमंडितम् ॥ ३९ ॥ बभूव कोकिलारावकेकास्वनविराजितम् ॥ तत्समीपे शुभे देशे पादपानां गणावृते ॥ ४० ॥ भार्गवश्च्यवनः शांतस्तापसः संस्थितो मुनिः ॥ ज्ञात्वाऽसौ विजनं स्थानं तपस्तेपे समाहितः ॥ ४१ ॥ कृत्वा दृढासनं मौनमाधाय जितमारुतः ॥ इंद्रियाणि च संयम्य त्यक्ताहारस्तपोनिधिः ॥ ४२ ॥ जलपानादिरहितो ध्यायन्नास्ते परांबिकाम् ॥ स वल्मीकोऽभवद्राजल्लँताभिः परिवेष्टितः ॥ ४३ ॥

आम्र, तिन्तिडी, इमली, करञ्ज, कुटक, पलास, निम्ब, खदिर, बिल्व और आमलेके वृक्ष शोभायमान थे ॥ ३९ ॥ उस स्थानमें मोर केकारव और कोकिलायें मनोहर कण्ठ ध्वनि करती थीं उसके समीप वृक्षोंसे युक्त पवित्र स्थानमें ॥ ४० ॥ शांतचित्त तपस्वी प्रधान भृगुके पुत्र च्यवन मुनि वास करते थे. वह स्थान निर्जन था इस स्थानमें तपस्या करनेसे कोई विघ्न नहीं होता था ॥ ४१ ॥ मुनिवर इस प्रकार मनमें विचार दृढ आसनपर बैठ और समाहित हो मौनावलम्बन तथा वायु निरोधपूर्वक तपानुष्ठानमें निरत थे ॥ ४२ ॥ फलतः तपोनिधि भार्गव इन्द्रियमें संयत और आहार तथा जलपानादि त्यागकर निरंतर उन सच्चिदानंदरूपिणी भगवतीके ध्यानमें निमग्न थे। हे राजन् इस प्रकार ध्यान करते करते उनके शरीर पर वल्मीक हो गयी

यह वल्मीक सर्वत्र लतासे ढक गई ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! बहुत काल व्यतीत होनेपर पिपीलिकाओंसे ढक गई और अधिक क्या कहूं उसकाल वह बुद्धिमान् मुनिवर भलीभांति आवृत हो मट्टीके पिण्डके समान स्थित रहे ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! एक समय महिपाल शर्याति उपवनमें विहार करनेकी इच्छासे कामिनियोंके सहित इस अत्युत्तम सरोवरमें आये अवनिपति शर्याति सुन्दर स्त्रियोंसे युक्त हो कमलों करके अति विमल जलके मध्य क्रीडा करनेमें एकांत आसक्त हुए ॥ ४५ ॥ ॥ ४६ ॥ इधर चपलाके समान रूप यौवन सम्पन्न चञ्चला राजकन्या सुकन्या वनमें आय अपनी सखियोंके सहित इधर पुष्प बीनते बीनते विहार करने लगी ॥ ४७ ॥ सुकन्यासम्पूर्ण अलंकारोंसे सज्जित होकर चरण स्थित नूपुरके मनोहर रुनझुन शब्द सहित भ्रमण करती हुई

कालेन महता राजन्समाकीर्णः पिपीलिकैः ॥ तथा स संवृतो धीमान्मृत्पिंड इव सर्वतः ॥ ४४ ॥ कदाचित्स महीपालः कामिनीगण संवृतः ॥ आजगाम सरो राजन्विहर्तुमिदमुत्तमम् ॥ ४५ ॥ शर्यातिः सुन्दरीवृंदसंयुतः सलिलेऽमले ॥ क्रीडासक्तो महीपालो बभूव कम लाकरे ॥४६॥ सुकन्या वनमासाद्य विजहार सखीवृता ॥ सुमनांसि विचिन्वंती चञ्चला चञ्चलोपमा ॥४७॥ सर्वाभरणसंयुक्ता रणच्चरण नूपुरा ॥ चंक्र ममाणा वल्मीकं च्यवनस्य समादद‌त् ॥४८॥ क्रीडासक्तोपविष्टा सा वल्मीकस्य समीपतः॥ ददर्श चास्य रंध्रे वै खद्योत इव ज्योतिषी ॥ ४९ ॥ किमेतदिति संचिंत्य समुद्धर्तु मनोदधे ॥ गृहीत्वा कंटकं तीक्ष्णं त्वरमाणा कृशोदरी ॥ ५० ॥ सा दृष्टा मुनिना बाला समीपस्था कृतोद्यमा ॥ विचरंती सुकेशांता मन्मथस्येव कामिनी ॥ ५१ ॥ तां वीक्ष्य सुदतीं तत्र क्षामकंठस्तपोनिधिः ॥ ताम भाषत कल्याणींकिमेतदिति भार्गवः ॥५२॥ दूरं गच्छ विशालाक्षि तापसोऽहं वरानने ॥ मा भिंदस्वाद्य वल्मीकं कंटकेन कृशोदरि॥५३॥

क्रमानुसार च्यवन ऋषिकी वल्मीकके समीप उपस्थित हुई ॥ ४८ ॥ वह क्रीडामें आसक्त उस वल्मीकके समीप बैठगई. बैठतेही वल्मीकमेंसे खद्योतके समान ज्योतिःपदार्थ देखा॥ ४९ ॥ यह क्या है? इस प्रकार मनमें विचार कर कृशोदरीने इसको उखाड़नेकी इच्छासे कॉंटा ग्रहण किया और तत्काल उसको उखाड़नेके लिये अत्यन्त व्यग्र हुई ॥ ५० ॥ क्रमानुसार उसके निकट जाय जैसेही कॉंटा छेदनेमें उद्यत हुई वैसेही मुनिवरने कामदेवकी स्त्रीके समान उस रूपवती सुकेशी बालाको देखा॥ ५१ ॥ तपोनिधि भार्गवने उस कल्याणी सुदतीको देखकर क्षीणकण्ठसे कहा तुम क्या करती हो ॥ ५२ ॥ हे वरानने ! मैं तपस्वी हूं अतएव तुम इस स्थानसे दूर चली जाओ हे कृशोदरि ! तुम्हारे ऐसे विशाललोचन हैं तो भी मुझको नहीं देख सकती ? अतएव मैं

निषेध करता हूं कि काँटेसे वल्मीकको भेदन मत करो ॥ ५३ ॥ उस मुनिवरके इस प्रकार कहनेपर भी उस कन्याने उसका वचन न सुनकर "यह क्या है?" इस प्रकार कहकर उनके दोनों नेत्र बींध डाले ॥ ५४ ॥ दैवके वशीभूत होकर राजकन्याने क्रीड़ा करते करते उनके चक्षु छेदन किये किंतु मैंने क्या किया इस प्रकार शंका युक्त होकर वहांसे लौटी ॥ ५५ ॥ किंतु नेत्रोंके छिदजानेसे मुनिवर अत्यंत यंत्रणाके कारण कुपित हुए विशेषकर वेदनासे नितांत कातर हो निरंतर परिताप करने लगे ॥ ५६ ॥ तब राजा, मंत्री, सैनिक लोग, हाथी, घोड़े, ऊंट और यही क्या वहांके समस्त प्राणियोंका क्षणमात्रमें मलमूत्र रुकगया दैवात् इस प्रकार मलमूत्र रुका हुआ देखकर नरपति शर्याति अत्यंत दुःखित और चिंतातुर हुए ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ विशेषकर

तेनेदं प्रोच्यमानाऽपि सा चास्य न शृणोति वै ॥ किमु खल्विदमित्युक्त्वा निर्बिभेदास्य लोचने ॥ ५४ ॥ दैवेन नोदिता भित्त्वा जगाम नृपकन्यका ॥ क्रीडंती शंकमाना सा किं कृतं तु मयेति च ॥ ५५ ॥ चुक्रोध स तथा विद्ध नेत्रः परमम न्युमान् ॥ वेदनाभ्यर्दितः कामं परितापं जगाम ह ॥ ५६ ॥ शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत्सैनिकानां तु तत्क्षणात् ॥ विशेषेण तु भूपस्य सामा त्यस्य समंततः ॥ ५७ ॥ गजोष्ट्र तुरगाणां च सर्वेषां प्राणिनां तदा ॥ ततो रुद्धे शकृन्मूत्रे शर्यातिर्दुःखितोऽभवत् ॥ ५८ ॥ सैनिकैः कथितं तस्मै शकृन्मूत्रनिरोधनम् ॥ चिंतयामासः भूपालः कारणं दुःखसंभवे ॥ ५९ ॥ विचिंत्याह ततो राजा सैनिकान्स्वजनांस्तथा ॥ गृहमागत्य चिंतार्तः केनेदं दुष्कृतंकृतम् ॥ ६० ॥ सरसः पश्चिमे भागे वनमध्ये महातपाः ॥ च्यवनस्तापसस्तत्र तपश्चरति दुश्चरम् ॥ ६१ ॥ केनाप्यपकृतं तत्रतापसेऽग्निसमप्रभे ॥ तस्मात्पीडा समुत्पन्ना सर्वेषामिति निश्चयः ॥ ६२ ॥ तपोवृद्धस्य वृद्धस्य वरिष्ठस्य विशेषतः ॥ केनाप्यकृतं मन्ये भार्गवस्य महात्मनः ॥ ६३ ॥

इस समय सैनिकोंके मलमूत्र रुकनेका विषय राजासे निवेदन करनेपर भूपाल दुःख होनेके कारणकी चिंता करने लगे ॥ ५९ ॥ इस प्रकार चिंता करते करते राजा गृहमें आये अन्तमें चिंतासे कातर हो सैनिकों और स्वजनोंसे पूंछा कि, तुममेंसे किसी मनुष्यने कोई दुष्कार्य्य किया है? ॥ ६० ॥ सरोवरके पश्चिम भागस्थित वनमें महर्षि महात्मा च्यवन कठिन तपस्या करते हैं ॥ ६१ ॥ मुझको अनुमान होता है किसी मनुष्यने उन अनलप्रभ तापसराजका अवश्य अपकार किया होगा इससेही हमको यह पीड़ा उपस्थित हुई है यही मेरा स्थिर निश्चय है ॥ ६२ ॥ महात्मा भृगुनन्दन वृद्ध हैं और विशेषकर तपस्यामें प्रवीण हो सबसे श्रेष्ठ हुए हैं अतएव मैं विचार करताहूं कि, अवश्यही उन महात्माका कोई अपकार किया होगा ॥ ६३ ॥

किसी दुष्ट मनुष्यने उनकी अवज्ञा की है यदि जानूं अथवा न जानूं किन्तु उसकाही यह समुचित फल है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६४ ॥ यह वचन सुन सैनिकलोग वेदनासे कातर हो कहने लगे हममेंसे किसीने मन, वचन अथवा शरीरसे उनका कोई अपकार नहीं किया है यह हम भलीभाँतिसे जानते हैं ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! राजा शर्यातिने चिंताकुल हृदयसे क्रोधितहो सैनिक लोगोंसे इस प्रकार पूँछकर फिर सुहृद्वर्गोंसे मधुरवचन द्वारा पूँछा ॥ १ ॥ तब राजकन्याने पिताको दुःखित और सैनिक लोगोंको कातर देखकर स्वयं जिस काँटेसे महर्षिके दोनों नेत्र वींधे थे यह बात मनमें विचार अपने पितासे कहा ॥ २ ॥ हे पिता! मैंने इस वनमें क्रीड़ा करते करते लता

ज्ञातं वा यदि वाऽज्ञातं तस्येदं फलमुत्तमम् ॥ कैश्च दुष्टैः कृतं तस्य हेलनं तापसस्य ह ॥ ६४ ॥ इति पृष्टास्तमूचुस्ते सैनिका वेदनार्दिता ॥ मनोवाक्कयजनित न विद्मोऽपकृतं वयम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ इति पप्रच्छ तान्सर्वान्राजा चिंताकुलस्तथा ॥ पर्यपृच्छत्सुहृद्वर्गं साम्ना चोग्रतयापि च ॥ १ ॥ पीडयमानं जनं वीक्ष्य पितरं दुखितं तथा ॥ विचिंत्य शूलभेदं सा सुकन्या चेदमब्रवीत् ॥ २ ॥ वने मया पितस्तत्र वल्मीको वीरुधावृतः ॥ क्रीडंत्या सुदृढो दृष्टश्छिद्रद्वय समन्वितः ॥ ३ ॥ तत्र खद्योतवद्दीप्तज्योतिषी वीक्षिते मया॥सूच्या विद्धे महाराज पुनः खद्योतशंकया ॥ ४ ॥ जलक्लिन्ना तदा सूची म या दृष्टा पितः किल ॥ हा हेति च श्रुतः शब्दो मंदो वल्मीकमध्यतः ॥ ५ ॥ तदाऽहं विस्मिता राजन्किमेतदिति शंकया ॥ न जाने किं मया विद्धं तस्मिन्वल्मीकमंडले ॥ ६ ॥ राजा श्रुत्वा तु शर्यातिः सुकन्यावचनं मृदु ॥ मुनेस्तद्धेलनं ज्ञात्वा वल्मीकं क्षिप्रमभ्यगात् ॥ ७ ॥ तत्रापश्यत्तपो वृद्धं च्यवनं दुखितं भृशम् ॥ स्फोटयामास वल्मीकं मुनिदेहावृतं भृशम् ॥ ८ ॥

गुल्मसे ढकी हुई एक बँबई देखी वह बँबई दृढ थी और उसमें दो छिद्र दिखाई दिये ॥ ३ ॥ हे महाराज! उनदोनों छिद्रोंमेंसे खद्योत (पटवीजना) के समान एक दिप्तिमान् ज्योतिःपदार्थ देख खद्योत विचार मैंने उसको काँटेसे छेदा ॥ ४ ॥ हे पितः! इसी समय "हाय! मैं मरगया" बँबईमेंसे इसप्रकार मृदु मन्द शब्द सुनाई आने लगा. उसकाल मैंने उस काँटेको निकाल कर देखा कि वह जलसे भीगा हुआ है ॥ ५ ॥ यह क्या है "तब मैं इस संशयसे आश्चर्यमें हुई परन्तु मैंने उस बँबईको क्यों वींधा" यह मैं नहीं जान सकती ॥ ६ ॥ राजा शर्यातिने अपनी कन्याका इस प्रकार कोमलवचन सुनकर विचार किया कि इससे मुनिवरका अपमान हुआ है इसमें संदेह नहीं. यह विचार तत्काल बँबईके समीप गये ॥ ७ ॥ वहीं जाकर मुनिवरकी देहरोधक,

बंबईको तोडकर वेदनासे अत्यंत कातर तपोवृद्धच्यवन मुनिको देखा ॥ ८ ॥ तब राजा शर्यातिने पृथ्वीमें दण्डवत प्रणामकर हाथ जोड भृगुनंदन च्यवनकी विनीतभावसे स्तुति करके कहा ॥ ९ ॥ हे महाराज ! मेरी कन्याने क्रीडा करते करते यह दुष्कार्य किया है अतएव हे महात्मन् ! उस बालिकाने अज्ञानसे यह कार्य्य किया है आप उसको अपने उदारगुणसे क्षमा कीजिये ॥ १० ॥ मैंने सुना है कि तपस्वीलोग सदाही कोपरहित हैं इस कारण आपको भी उस अबोध बालिकाका अपराध क्षमा करना होगा ॥ ११ ॥ व्यासजीने कहा महर्षिच्यवनने राजाके इस प्रकार वचन सुन विशेषकर उनको विनीत और कातरभाव युक्त देखकर कहा ॥१२॥ हे राजन् ! मैंने कभीभी अणुमात्र क्रोध नहीं किया है तुम्हारी कन्याने मुझको पीडित किया है तो कुपित

प्रणम्य दण्डवद्भूमौ राजा तं भार्गवं प्रति ॥ तुष्टाव विनयोपेतस्तमुवाच कृतांजलिः ॥ ९ ॥ पुत्र्या मम महाभाग क्रीडंत्या दुष्कृतं कृतम् ॥ अज्ञानाद्बालया ब्रह्मन्कृतं तत्क्षंतुमर्हसि ॥ १० ॥ अक्रोधना हि मुनयो भवंतीत मया श्रुतम् ॥ तस्मात्त्वमपि बालायाः क्षंतुमर्हसि सांप्रतम् ॥ ११ ॥ व्यास उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य च्यवनो वाक्यमब्रवीत् ॥ विनयोपनत दृष्ट्वा राजानं दुखितं भृशम् ॥ १२ ॥ च्यवन उवाच ॥ राजन्नाहं कदाचिद्वै करोमि क्रोधमण्वपि ॥ न मयाऽद्यैव शप्तस्त्वं दुहित्रा पीडने कृते ॥ १३ ॥ नेत्रे पीडासमुत्पन्ना मम चाद्य निरागसः ॥ तेन पापेन जानामि दुःखितस्त्वं महीपते ॥ १४ ॥ अपराधं परं कृत्वा देवी भक्तस्य को जनः ॥ सुखं लभेत यदपि भवेत्त्राता शिवः स्वयम् ॥ १५ ॥ किं करोमि महीपाल नेत्रहीनो जरावृतः ॥ अंधस्य परिचर्यां च कः करिष्यति पार्थिव ॥ १६ ॥ राजोवाच ॥ सेवका बहवः सेवां करिष्यंति तवानिशम् ॥ क्षमस्व मुनिशार्दूल स्वल्पक्रोधा हि तापसाः ॥ १७ ॥

होकर इस समय तुमको शाप नहीं दिया ॥ १३ ॥ किंतु देखो मैं निरपराधी हूं और नेत्रोंकी पीड़ासे अत्यंत दुःख उपस्थित हुआ है हे महीपते ! बोध होता है कि तुम उसी पापसे दुःखित और संतप्त हुए हो ॥ १४ ॥ यदि शिव भी स्वयं रक्षक हों तथापि देवीके भक्तका थोड़ा अपराध करके भी कोई पुरुष सुखप्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकता ! ॥ १५ ॥ हे महीपाल ! एक तो मैं बुढापेसे जीर्ण हूं इसपर भी मैं नेत्र विहीन हुआ, अब क्या उपाय करूं हे पार्थिव ! कौन पुरुष इस अन्धेकी सेवा करेगा ? सो आप मुझसे कहिये ॥ १६ ॥ राजाने कहा हे मुनिवर ! तपस्वी लोगोंका क्रोध क्षणस्थाई है आप भी तपस्यामें निरत हैं इसलिये आपका क्रोध असंभव है अतएव आप दया करके उस बालिकाका अपराध क्षमा कीजिये. मेरे अनेक सेवक हैं वे आपकी

निरंतर सेवा करेंगे ॥ १७ ॥ च्यवनने कहा हे राजन् ! एक तो मेरा आत्मीय कोइ निकट नहीं है इसपर भी अन्धा हुआ हूं इस समय मैं किस प्रकार तपस्या करनेमें समर्थ हूंगा ? आपके सेवक मेरा प्रिय अनुष्ठान करेंगे यह मुझको बोध नहीं होता ॥ १८ ॥ हे नरपते ! यदि मुझको प्रसन्न करना आप अपना इष्ट समझते हैं तो आप वचन प्रतिपालन कीजिये. मेरी सेवा करनेके लिये अपनी उसी कमलनयना कन्या रत्नको दो ॥ १९ ॥ हे महाराज ! आपकी उस कन्याको पानेसे परम संतुष्ट हूंगा मेरी तपस्यामें प्रवृत्त होनेपर वह मेरी सदा सेवा करेगी ॥ २० ॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार करनेसे मुझको सुख होगा. कारण की उससे मैं सन्तुष्ट हूंगा और तभी आपका सैनिक लोगोंके सहित क्लेश दूर होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ २१ ॥ हे भूपते ! आप मनमें यह विचारकर मुझको वह कन्या दीजिये मैं यतव्रत तपस्वीहूं इस कारण मुझको कन्यादेनेसे आपको किञ्चिमात्र भी दोष नहीं होगा ॥ २२ ॥

च्यवन उवाच ॥ अंधोऽहं निर्जनो राजंस्तपस्तप्तुं कथं क्षमः ॥ त्वदीयाः सेवकाः किं ते करिष्यंति मम प्रियम् ॥ १८ ॥ क्षमापयसि चेन्मां त्वं कुरु मे वचनं नृप ॥ देहि मे परिचर्यार्थं कन्यां कमललोचनाम् ॥ १९ ॥ तुष्येऽनया महाराज पुत्र्या तव महामते ॥ करिष्यामि तपश्चाहं सा मे सेवां करिष्यति ॥ २०॥ एवं कृतेसुखं मे स्यात्तव चैव भविष्यति ॥ संतुष्टे मयि राजेंद्र सैनिकानां न संशयः ॥ २१ ॥ विचिंत्य मनसा भूप कन्यादानं समाचर ॥ नचात्र दूषणं किंचित्तापसोऽहं यतव्रतः ॥ २२ ॥ व्यास उवाच ॥ शर्यातिर्वचनं श्रुत्वा मुनेश्चितातुरोऽभवत ॥ न दास्येऽप्यथ वा दास्ये किंचिन्नोवाच भारत ॥ २३ ॥ कथमंधाय वृद्धाय कुरूपाय सुतामिमाम् ॥ देवकन्योपमां दत्त्वा सुखी स्यामात्मसंभवाम् ॥ २४ ॥ को वाऽऽत्मनः सुखार्थाय पुत्र्याःसंसारजं सुखम् ॥ हरतेऽल्पमतिः पापो जानन्नपि शुभाशुभम् ॥ ॥ २५ ॥ प्राप्य सा च्यवनं सुभ्रूः पञ्चबाणशरार्दिता ॥ अंधं वृद्धं पतिं प्राप्य कथं कालं नयिष्यति ॥ २६ ॥

व्यासजीने कहा हे भारत ! राजा शर्यातिने मुनिवर च्यवनके वचन सुनकर चिंतासे आकुल हुए, किंतु कन्या देंगे अथवा नहीं यह कुछ न कहा ॥ २३ ॥ राजने विचारा कि यह मेरी कन्या देवताओंकी कन्याके समान परमरूपवती है और यह मुनि वृद्ध कुरूप और विशेषकर अन्धे है अतएव यह कन्यारत्न इनको देकर किस प्रकार सुखी हूंगा ॥ २४ ॥ कौन अल्पबुद्धि पापपरायण मनुष्य प्रकृत मंगल और अमंगल जानकर अपने सुखकी इच्छासे कन्याका संसारजनित सुख हरण कर सकता है ॥ २५ ॥ वह सुभ्रु कन्या वृद्धच्यवनके समीप जाकर जब कामबाणसे पीडित होगी तब किस प्रकार इस अन्धे पतिको ले काल व्यतीत करके सुखी होगी ? ॥ २६ ॥

विशेषकर जब सुन्दरी स्त्रियें अपने अनुरूप पतिको प्राप्तकर कभी यौवनकालके समय कामशत्रुको जीतनेमें समर्थ नहीं होतीं ॥ २७ ॥ परमरूपवती अहल्याने तपस्वी गौतमसे विवाह किया किंतु यौवनकालके समय उस वरवर्णिनीका रूपलावण्य देख इंद्रने छलकर उसका धर्म नष्ट किया था ॥ २८ ॥ अंतमें उसके पति गौतमने धर्मका विपरीत कार्य देखकर उनको शाप दिया. इस कारण उन ऋषियोंके शापसे मुझको दुःख उपस्थित हो तो भी मैं अपनी कन्याको नहीं दे सकता ॥ २९ ॥ राजा शर्याति इस प्रकार चिंतासे विमन हो अपने डेरेको गये और घरको जाकर अत्यंत कातर हृदयसे मंत्रियोंको बुलाय परामर्श करने लगे ॥ ३० ॥ हे मंत्रिगण ! इस समय मुझको क्या करना उचित है ? सो तुम कहो अब विप्रवर को कन्या देना उचित है अथवा

यौवने दुर्जयः कामो विशेषेण सुरूपया ॥ आत्मतुल्यं पतिं प्राप्य किमु वृद्धं विलोचनम् ॥ २७ ॥ गौतमं तापसं प्राप्य रूपयौवनसंयुता ॥ अहल्या वासवेनाशु वंचिता वरवर्णिनी ॥ २८ ॥ शप्ता च पतिना पश्चाज्ज्ञात्वा धमविपर्ययम् ॥ तस्माद्भवतु मे दुःखं न ददामि सुकन्यकाम् ॥ २९ ॥ इति संचिन्त्य शर्यातिर्विमनाः स्वगृहययौ ॥ सचिवांश्च समादाय मंत्रं चक्रेऽतिदुःखितः ॥ ३० ॥ भो मंत्रिणोब्रुवंत्वद्य किं कर्तव्यं मयाऽधुना ॥ पुत्री देयाऽथ विप्राय भोक्तव्यं दुःखमेव वा ॥ ३१ ॥ विचारयध्वं मिलिता हितं स्यान्मम वै कथम् ॥ मंत्रिण ऊचुः ॥ किं ब्रूमोऽस्मिन्महाराज संकटेऽतिदुरासदे ॥ ३२ ॥ दुर्भगाय सुकन्यैषा कथं देयाऽतिसुंदरी ॥ व्यास उवाच ॥ तदा चिंताकुलं वीक्ष्य पितरं मंत्रिणस्तदा ॥ ३३ ॥ सुकन्या त्विंगितं ज्ञात्वा प्रहस्येदमुवाच ह ॥ पितः कस्माद्भवानद्य चिंताव्याकुलितेंद्रियः ॥ ३४ ॥ मत्कृते दुःखसंविग्नो विषण्णवदनोऽसि वै ॥ अहं गत्वा मुनिं तत्र समाश्वास्य भयार्दितम् ॥ ३५ ॥

दुःख भोगना उचित है ॥ ३१ ॥ क्या कार्य करनेसे मेरा हित होगा. तुम सब लोग मिलकर उसका विचार करो. मंत्रियोंने कहा हे महाराज ! इस दुस्तर संकटमें हम क्या कहें ॥ ३२ ॥ आप किस प्रकार उस दुर्भाग्य तपस्वीको यह परम सुन्दरी कन्या देंगे ? द्वैपायनने कहा तब सुकन्या पिता और मंत्रियोंको चिंतामें नितांत व्याकुल देखकर ॥ ३३ ॥ बुद्धिसे सब जान गई अनंनर हँसते २ उसने अपने पितासे कहा हे पितः ! आज आपका अन्तः-करण चिंतासे आकुल क्यों देखती हूं ॥ ३४ ॥ बोध होता है कि आप मेरे निमित्त ही दुःखसे अत्यंत उद्विग्न होते हैं. हे पितः ! उन मुनिवरोंको मैंने ही पीडित किया है अतएव मैं ही वहां जाकर उनको समझाऊंगी ॥ ३५ ॥ अधिक क्या मैं उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण करके उनको प्रसन्न करूंगी. राजा सुकन्याके इस

प्रकार वचन सुन ॥ ३६ ॥ अत्यंत संतुष्ट चित्तसे मंत्रियोंके सामने उससे कहने लगे हे पुत्रि ! तुम अबला होकर वनमें मुनिवर च्यवन अंधे ॥ ३७ ॥ जराजीर्ण देह और विशेषकर कोपनस्वभाव मुनिवरकी किस प्रकार सेवा करोगी ? रूपलावण्यसे तुम रतिके समान हो ॥ ३८ ॥ मैं अपने सुखकी इच्छासे उन जराजीर्णदेह अंधे मुनिको किस प्रकार कन्यादान करूं ? जिसके ज्ञाति, वयस्, बल, अतुल धान्य और धन रत्नादि विद्यमान हैं पिता उसको ही कन्या देते हैं ॥ ३९ ॥ धनहीन मनुष्यको कभी कोई कन्या नहीं देते हे विशाललोचने ! तुम अतिरूप लावण्यवती हो और तपस्वी अत्यंत बूढे हैं ॥ ४० ॥ इससे तुम दोनोंमें परस्पर भेद है और उन मुनिवरके विवहकी अवस्था व्यतीत होगई है अतएव किस प्रकार मैं उनको कन्या दूं ? हे कमलनयने ! तुम

करिष्यामि प्रसन्नं तमात्मदानेन वै पितः ॥ इति राजा वच श्रुत्वा भाषितं यत्सुकन्यया ॥ ३६ ॥ मामुवाच प्रसन्नात्मा सचिवानां च शृण्वताम् ॥ कथं पुत्रि त्वमंधस्य परिचर्यां वनेऽबला ॥ ३७ ॥ करिष्यसि जरार्तस्य क्रोधनस्य विशेषतः ॥ कथमंधाय चानेन रूपेण रतिसन्निभाम् ॥ ३८ ॥ ददामि जरया ग्रस्तदेहाय सुखवांछया ॥ पित्रा पुत्री प्रदातव्या वयोज्ञातिबलाय च ॥ ३९ ॥ धनधान्यसमृद्धाय नाधनाय कदाचन ॥ क्व ते रूपं विशालाक्षि क्वासौ वृद्धो वनेचरः ॥ ॥ ४० ॥ कथं देया मया पुत्री तस्मै चातिवराय च ॥ उटजे नियतं वासो यस्यो नित्यं मनोहरे ॥ ४१ ॥ कथमंबुजपत्राक्षि कल्पनीयो मया तव ॥ मरणं मे वरं प्राप्तं सैनिकानां तथैव च ॥ ४२ ॥ न ते प्रदानमंधाय रोचते पिक भाषिणि ॥ भवितव्यं भवत्येव धैर्यनैव त्यजाम्यहम् ॥ ४३ ॥ सुस्थिरा भव सुश्रोणि न दास्येंऽधाय कर्हिचित ॥ राज्यं तिष्ठतु वा यातु देहोऽयं च तथैव मे ॥ ४४ ॥ न त्वां दास्याम्यहं तस्मै नेत्रहीनाय बालिके ॥ सुकन्या तं तदा प्राह श्रुत्वा तद्वचनं पितुः ॥ ४५ ॥ प्रसन्नवदनाऽतीव स्नेहयुक्तमिदं वचः ॥ सुकन्योवाच ॥ न मे चिंता पितः कार्या देहि मां मुनयेऽधुना ॥ ४६ ॥

सदा मनोहर अटारीमें वास करती हो ॥ ४१ ॥ इस समय मैं तुमको किस प्रकार सदाके लिये पर्णशालामें वास दूं ॥ ४२ ॥ हे कोकिलभाषिणि ! और सैनिक लोग मृत्युके मुखमें पतित हों यह भी उचित है किंतु तो भी तुम्हें उस अन्धे वरको कभी समर्पण नहीं करूंगा. जो होनहार है वह हो किंतु मैं कभी धैर्य्य न छोडूंगा ॥ ४३ अतएव हे सुश्रोणि ! तुम सावधान होओ मैं अन्धेको कभी कन्या नहीं दूंगा. हे बालिके ! मेरा राज्य और देह रहे अथवा जाय इससे कुछ हानि नहीं है ॥ ४४ ॥ तथापि मैं किसी प्रकार तुम्हें उस नयनविहीन तपस्वीको नहीं दूंगा. पिताके इस प्रकार वचन सुन ॥ ४५ ॥ सुकन्या प्रसन्नमन हो उनसे अत्यन्त स्नेहमय वचन कहने लगी. हे पितः ! आप मेरे लिये निरर्थक चिंता न कीजिये. इस समय उन मुनिवरको मुझे

दे. भा. ॥ १ ॥

दीजिये ॥ ४६ ॥ तो सब मनुष्य सुखी होंगे इसमें संदेह नहीं. मैं संतुष्ट होकर अत्यंत भक्तिसहित ॥ ४७ ॥ परमपवित्र वृद्धपतिकी निर्जनवनमें सेवा करके परम प्रीतिलाभ करूंगी. मैं सती धर्मपरायण हो व्रत करूंगी ॥ ४८ ॥ अनर्थक भोगवासनामें मेरी कुछ भी इच्छा नहीं है. चित्त प्रकृतिस्थ हुआ है व्यासजीने कहा हे महाराज ! मंत्रिवर्ग उसके यह वचन सुनकर अत्यंत आश्चर्यमें हुए ॥ ४९ ॥ और राजाभी परम प्रसन्न होकर कन्याके सहित मुनिवरके समीप गये, उनके निकट उपस्थित हो मस्तक झुकाय प्रणाम करके उन तपोधनसे कहा ॥ ५० ॥ हे प्रभो ! अपनी सेवा करनेके लिये मेरी इस कन्याको ग्रहण कीजिये. यह कहकर राजाने विवाहकी विधिके अनुसार उनको कन्या दी ॥ ५१ ॥ च्यवनमुनि भी उसको प्रतिग्रहणकर परमप्रसन्न हुए किंतु

सुखं भवतु सर्वेषां लोका नां मत्कृतेन हि॥ सेवयिष्यामि संतुष्टा पतिं परमपावनम् ॥४७॥ भक्त्या परमया चापि वृद्धं च विजने वने ॥ सतीधर्मपरा चाहं चरिष्यामि सुसंमतम् ॥ ४८ ॥ न भोगेच्छाऽस्ति मे तात स्वस्थं चित्तं ममानघ ॥ व्यास उवाच॥ तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या मंत्रिणो विस्मयं गताः ॥ ४९ ॥ राजा च परमप्रीतो जगाम मुनिसंनिधौ ॥ गत्वा प्रणम्य शिरसा तमुवाच तपोधनम् ॥ ५० ॥ स्वामिन्गृहाण पुत्रीं मे सेवार्थं विधिवद्विभो ॥ इत्युक्त्वाऽस्मै ददौ पुत्रीं विवाहविधिना नृप ॥ ५१ ॥ प्रतिगृह्य मुनिः कन्यां प्रसन्नो भार्गवोऽभवत् ॥ पारिबर्हं न जग्राह दीयमानं नृपेण ह ॥ ५२ ॥ कन्यामेवाग्रहीत्कामं परिचर्यार्थमात्मनः ॥ प्रसन्नेऽस्मिन्मुनौ जातं सैनिकानां सुखं तदा ॥ ५३ ॥ राज्ञश्च परमाह्लादः संजातस्तत्क्षणादपि ॥ दत्त्वा पुत्रीं यदा राजा गमनाय गृहं प्रति ॥ ५४ ॥ मतिं चकार तन्वंगी तदोवाच नृपसुता ॥ सुकन्योवाच ॥ गृहाण मम वासांसि भूषणानि च मे पितः ॥५५॥ वल्कलं परिधानाय प्रयच्छाजिनमुत्तमम् ॥ वेषं तु मुनिपत्नीनां कृत्वा तपसि सेवनम् ॥ ५६ ॥

राजाने व्यवहारोपयोगी ज़ो सब यौतुकमें सामग्री दी थी वह कुछ भी न ली ॥ ५२ ॥ केवल अपनी सेवाके निमित्त कन्याको ग्रहण किया इस प्रकार उन मुनिवरके प्रसन्न होनेपर सैनिक लोग तत्काल मलमूत्र त्यागकर सुखी हुए ॥ ५३ ॥ यह देखकर राजाका हृदय भी आनंदरसमें भरगया राजाने कन्या देकर जब घर जानेकी इच्छा की ॥ ५४ ॥ तब उस कृशाङ्गी राजनंदिनीने भूपतिसे कहा कन्याने कहा हे पितः ! आप मेरे अलंकार और वस्त्रादि लेकर ॥ ५५ ॥ पहरनेके निमित्त एक उत्तम उचित (मृगचर्म) और वल्कल दीजिये. हे पितः ! मैं मुनियोंकी स्त्रियोंके समान वेष धारण करके इस प्रकार पतिकी सेवा करूंगी ॥ ५६ ॥

जिससे आपकी अतुल कीर्ति स्वर्ग पृथ्वी और पातालमें सर्वत्र ही अक्षय होकर रहे ॥ ५७ ॥ और इसी प्रकार मैं भी जिससे परलोकमें परमसुख प्राप्त कर सकूं ऐसेही पतिके चरणोंकी सेवा करूंगी मैं युवती और सुन्दरी हूं आप मेरे वृद्ध तपस्वीको देनेसे ॥ ५८ ॥ दूषित चरित्र होनेकी संभावना कर अणुमात्रभी चिंता न कीजिये. वसिष्ठकी धर्मपत्नी अरुन्धती जिस प्रकार पृथ्वीमें विख्यात हुई है ॥ ५९ ॥ मैं भी उसीके अनुसार सिद्धि प्राप्त करूंगी इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं. महर्षि अत्रिकी भार्या पतिव्रता अनुसूयाने जिस प्रकार पृथ्वीमें ख्याति प्राप्त की है ॥ ६० ॥ उसीके अनुसार मैं भी आपकी पुत्री होकर कीर्ति स्थापन करूंगी. उस परमधर्मवित् राजाने सुकन्याके यह वचन सुनकर ॥ ६१ ॥ उसको अजिनादि दिये, उस चारुहासिनी कन्याने

करिष्यामि तथा तात यथा ते कीर्तिरच्युता ॥ भविष्यति भुवः पृष्ठे तथा स्वर्गे रसातले ॥ ५७ ॥ परलोक सुखायाहं चरिष्यामि दिवानिशम् ॥ दत्त्वांऽधाय च वृद्धाय सुंदरीं युवतीं तु माम् ॥ ५८ ॥ चिंता त्वया न कर्तव्या शीलनाशसमुद्भ वा ॥ अरुंधती वषिष्ठस्य धर्मपत्नी यथाभुवि ॥ ५९ ॥ तथैवाहं भविष्यामि नात्र कार्या विचारणा ॥ अनसूया यथा साध्वी भार्याऽत्रेः प्रथिता भुवि ॥ ६० ॥ तथैवाहंभविष्यामि पुत्री कीर्तिकरी तव ॥ सुकन्यावचनं श्रुत्वा राजा परम धर्मवित् ॥ ६१ ॥ दत्त्वाऽजिनं रुरोदाशु वीक्ष्य तां चारुहा सिनीम् ॥ त्यक्त्वा भूषणवासांसि मुनिवेषधरां सुताम् ॥ ६२ ॥ विवर्णवदनो भूत्वा स्थितस्तत्रैव पार्थिवः ॥ राज्ञ्यः सर्वाः सुतां दृष्ट्वा वल्कलाजिनधारिणीम् ॥ ६३ ॥ रुरुदुर्भृशशोकार्ता वेपमाना इवाभवन् ॥ तामापृच्छ्य महीपालो मंत्रिभिः परिवारितः ॥ ययौ स्वनगरं राजा मुक्त्वा पुत्रीं शुचाऽर्पिताम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ गते राजनि सा बाला पतिसेवापरायणा ॥ बभूव च तथाऽग्नीनां सेवने धर्मतत्परा ॥ १ ॥

जब वसन भूषण त्यागकर मुनिकन्याओंका वेष धारण किया ॥ ६२ ॥ तब राजा रोदनको न रोक सके और दुःखितमनसे उसी स्थानमें खड़े रहे कन्याको वल्कल और अजिन पहरे हुए देखकर वह राजमहिषिय ॥ ६३ ॥ अत्यंत शोकसंतप्त हृदयसे कम्पायमान होकर रोने लगीं. हे राजन् ! तब महीपति शर्याति मुनिवर च्यवनको कन्या देकर उनसे बिदा ले मंत्रियोंके संग शोकसंतप्त हृदयसे अपने घरको चले गये ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा शर्य्यातिके घर चले जानेपर फिर वह बाला सुकन्या अपने धर्ममें निरत रहकर अग्नि और अपने पतिको सेवा करनेलगी ॥ १ ॥

वह षोडशवर्षीय सुकन्या पतिकी सेवामें तत्पर होकर अनेक प्रकारके स्वादिष्ठ फलमूलको संग्रहकर मुनिवरके लिये भक्षणको देती ॥ २ ॥ वह स्नानके समय उष्णजलसे पतिको स्नान और मृगचर्म पहराकर पवित्र कुशासनपर बैठाती ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त कुश तिल और कमण्डलु सन्मुख स्थापित करके कहती. हे मुनिवर ! आप नित्य कर्म कीजिये ॥ ४ ॥ नित्यकर्म समाप्त होनेपर वह बाला उनकाहाथ ग्रहणपूर्वक उठाय कुशासन अथवा अन्य बिछौनेपर बैठाती ॥ ५ ॥ इसके उपरांत वह राजकन्या पके हुए फल और सुसंस्कृत नीवार अन्न लाकर च्यवन मुनिको भोजन कराती ॥ ६ ॥ पतिके भोजन करके तृप्त होनेपर फिर परम भक्ति सहित आचमनीय जलसे उनके मुख पांव धुलाकर आदरपूर्वक ताम्बूल और पूगादि देती ॥७॥ उनके मुखशुद्धि

फलान्यादाय स्वादूनि मूलानि विविधानि च ॥ ददौ सा मुनये बाला पतिसेवापरायणा ॥ २ ॥ पतिं तप्तोदकेनाशु स्नाप यित्वा मृग त्वचा ॥ परिवेष्टय शुभायां तु बृस्यां स्थापितवत्यपि ॥ ३ ॥ तिलान्यवकुशानग्रे परिकल्प्य कमंडलुम् ॥ तमुवाच नित्य कर्म कुरुष्व मुनिसत्तम ॥ ४ ॥ तमुत्थाप्य करे कृत्वा समाप्ते नित्यकर्मणि ॥ बृस्यां वा संस्तरे बाला भर्तारं संन्यवेशयत् ॥ ५ ॥ पश्चादानीय पक्वानि फलानि च नृपात्मजा ॥ भोजयामास च्यवनं नीवारान्नं सुसंस्कृतम् ॥ ६ ॥ भुक्तवन्तं पतिं तृप्तं दत्त्वाऽऽचमनमा दरात् ॥ पश्चाच्च पूगं पत्राणि ददौ चादरसंयुता ॥ ७ ॥ गृहीतमुखवासं तं संवेश्य च शुभासने ॥ गृहीत्वाऽऽज्ञां शरीरस्य चकार साधनं ततः ॥ ८ ॥ फलाहारं स्वयं कृत्वा पुनर्गत्वा च सन्निधौ ॥ प्रोवाच प्रणयो पेता किमाज्ञापयसे प्रभो ॥ ९ ॥ पादसंवाहनं तेऽद्य करोमि यदि मन्यसे ॥ एवं सेवापरा नित्यं बभूव पतितत्परा ॥ १० ॥ सायं होमावसाने सा फलान्याहृत्य सुन्दरी ॥ अर्पयामास मुनये स्वा दूनि च मृदूनि च ॥ ११ ॥ ततः शेषाणि बुभुजे प्रेमयुक्ता तदाज्ञया ॥ सुस्पर्शास्तरणं कृत्वा शाययामास तं मुदा ॥ १२ ॥

ग्रहण करनेपर फिर उनको उत्तम आसनपर बैठाल उनकी आज्ञा ग्रहणपूर्वक अपने शरीरका संस्कार करती ॥ ८ ॥ अनंतर मुनिवरके भक्षणसे बचे हुए मूलादि स्वयं आहार कर फिर पतिके समीप जाय विनय सहित कहती हे प्रभो ! अब क्या करूं ? आज्ञा कीजिये ॥ ९ ॥ आप यदि अनुमति दो तो आपके चरण दबाऊं इसप्रकार पतिके प्रति अनुरागिणी होकर राजबाला सदा पतिकी सेवामें काल व्यतीत करने लगी ॥ १० ॥ सायंकालके समय होमकार्य समाप्त होनेपर सुन्दरी स्वादिष्ट और कोमल फल लाकर उनको भक्षणार्थ देती ॥११॥ तदनंतर उनकी आज्ञा लेकर भोजनसे बचे हुए फल स्वयं भक्षण करती इसके उपरांत सुखस्पर्श आस्तरण बनाकर प्रीति सहित उसको शयन कराती ॥ १२ ॥

प्रियतम मतिके सुखपूर्वक शयन करनेपर फिर वह कृशोदरी राजकुमारी उनके पाँव दबाते दबाते संपूर्ण कुलस्त्रियोंके धर्मविषयक प्रश्न पूँछती ॥ १३ ॥ रात्रि कालके समय पद सेवा करते करते जब मुनिवर सो जाते तब वह भक्तिपरायण होकर उनके पदतलमें शयन करती ॥ १४ ॥ ग्रीष्म कालके समय पति जब पसीनेमें भीगते तब वह भामिनी तालके पंखसे व्यजन करके शीतल वायुद्वारा अपने पतिकी सेवामें नियुक्त रहती ॥ १५ ॥ हेमन्तकालके समय काष्ठ इकट्ठाकर पतिके सन्मुख अग्नि जलाय बारंबार पूछती हे मुनिवर ! इससे आपको सुख तो अनुभव होता है ? ॥ १६ ॥ वह पतिपरायण राजकन्या सूर्योदयसे पहले शय्यासे उठती फिर पतिको उठाकर शौचके लिये आश्रमसे कुछेक दूर बैठाती ॥ १७ ॥ और हाथ पाँव आदि प्रक्षालनके

सुप्ते सुखं प्रिये कांता पादसंवाहनं तदा ॥ चकार पृच्छती धर्मं कुलस्त्रीणां कृशोदरी ॥ १३ ॥ पादसंवाहनं कृत्वा निशि भक्तिपरायणा ॥ निद्रितं च मुनिं ज्ञात्वा सुष्वाप चरणांतिके ॥ १४ ॥ शुचौ प्रतिष्ठितं वीक्ष्य तालवृंतेन भामिनी ॥ कुर्वाणा शीतलं वायुं सिषवे स्वपतिं तदा ॥ १५ ॥ हेमंते काष्ठसंभारं कृत्वाऽग्निज्वलनं पुरः ॥ स्थापयित्वा तथाऽपृच्छत्सुख तेऽस्तीति चासकृत् ॥ १६ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय जलं पात्रं च मृत्तिकाम् ॥ समर्पयित्वा शौचार्थं समुत्थाप्य पतिं प्रिया ॥ १७ ॥ स्थानाद् दूरे च संस्थाप्य दूरं गत्वा स्थिराऽभवत् ॥ कृतशौचंपतिं कृत्वा ज्ञात्वा जग्राह तं पुनः ॥१८॥ आनीयाश्रममव्यग्रा चोपवेश्यासने शुभे ॥ मृज्जालाभ्यां च प्रक्षाल्य पादावस्य यथाविधि ॥ १९ ॥ दत्त्वाऽऽचमनमात्रं तु दंतधावनमाहरत् ॥ समर्प्य दंतकाष्ठं च यथोक्तं नृपनंदिनी ॥ २० ॥ चकारोष्णं जलं शुद्धं समानीतं सुपावनम् ॥ स्नानार्थं जलमाहृत्य पप्रच्छ प्रणयान्विता ॥२१॥ किमाज्ञापयसे ब्रह्मन्कृतं वै दंतधावनम् ॥ उष्णोदकं सुसंपन्नं कुरु स्नानं समंत्रकम् ॥ २२ ॥

लिये मृत्तिका और जल उनके निकट रख आप दूर बैठकर प्रतीक्षा करती उनका शौचकार्य समाप्त हुआ जान समीप जाय पतिका हाथ पकड़ ॥ १८ ॥ धीरे धीरे आश्रमें लाती, इसके उपरांत मुनिवरको पवित्र आसनपर बैठाकर फिर मृत्तिका और जलसे उनके दोनों चरण यथाविधि धोती ॥ १९ ॥ राजनंदिनी पतिको आचमनपात्र देकर शास्त्रविहित दंतधावनकाष्ठ लाकर समर्पण करती ॥ २० ॥ पवित्र जल लाकर उसको उष्ण करती वह जल स्नानके लिये लाकर प्रीति सहित पूँछती ॥ २१ ॥ हे स्वामिन् ! आपका दंतधावन कार्य तो हो गया, जल उष्ण किया है आपकी आज्ञा पानेपर लाऊंगी आप उस तप्तजलसे समन्त्रक स्नान कीजिये ॥ २२ ॥

प्रातःसंध्या उपस्थित है, अतएव अब आपके होमका समय होगया है यथाविधि होम कर देवताओंकी पूजा कीजिये ॥ २३ ॥ निर्मलस्वभाव राजदुहिता तपस्वी च्यवनको पति प्राप्त करके इस प्रकार तपस्या नियम और प्रीति सहित उनकी सेवामें प्रवृत रहती ॥ २४ ॥ वह सुमुखी राजबाला अग्नि और अतिथियोंकी सदा सेवा और शुश्रूषा करके आनंदमनसे महर्षि च्यवनकी आराधन करने लगी ॥ २५ ॥ किसी एक समय सूर्यपुत्र दोनों अश्विनकुमार क्रीड़ा करते करते इच्छानुसार महर्षिच्यवनके आश्रममें आकर उपस्थित हुए ॥ २६ ॥ तब सर्वाङ्ग सुंदरी राज्यकन्या पवित्रजलसे स्नानकर आश्रममें आती थी, उसी समय उन दोनों अश्विनीकुमारोंने उसको देखा ॥ २७ ॥ वह देवकन्याके समान उसका रूप लावण्य देखकर मोहित हो शीघ्र समीप आय

वर्तंते होमकालोऽयं संध्या पूर्वा प्रवर्तते ॥ विधिवद्धवनं कृत्वा देवतापूजनं कुरु ॥ २३ ॥ एवं कन्या पतिं लब्ध्वा तपस्विनमनिंदिता ॥ नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या तपसा नियमेन च ॥ २४ ॥ अग्नीनामतिथीनां च शुश्रूषां कुर्वती सदा ॥ आराधयामास मुदा च्यवनं सा शुभानना ॥ २५ ॥ कस्मिंश्चिदथ काले तु रविजावश्विनावुभौ ॥ च्यवनस्याश्रमाभ्याशे क्रीडमानौ समागतौ ॥ २६ ॥ जले स्नात्वा तु तां कन्यां निवृत्तां स्वाश्रमं प्रति ॥ गच्छंतीं चारु सर्वांगीं रविपुत्रावपश्यताम् ॥ २७॥ तां दृष्ट्वा देवकन्याभां गत्वा चांतिकमादरात् ॥ ऊचतुः समुभिद्रुत्य नासत्यावतिमोहितौ ॥ २८ ॥ क्षणं तिष्ठ वरारोहे प्रष्टु त्वां गजगामिनि ॥ आवां देवसुतौ प्राप्तौ ब्रूहि सत्यं शुचिस्मि ते ॥ २९ ॥ पुत्री कस्य पतिः कस्ते कथमुद्यानमागता ॥ एकाकिनी तडागेऽस्मिन्स्नानार्थं चारुलोचने ॥ ३० ॥ द्वितीयाश्रीरिवाभासि कांत्या कमललोचने ॥ इच्छामस्तु वयं ज्ञातुं तत्त्वमाख्याहि शोभने ॥ ३१ ॥ कोमलौ चरणौ कांते स्थितौ भूमावनावृतौ ॥ हृदयः कुरुतः पीडां चलंतौ चललोचने ॥ ३२ ॥

आदर सहित उससे पूँछने लगे ॥ २८ ॥ हे गजगामिनि ! देखो हम देवताओंके पुत्र हैं आपसे कोई विषय पूँछनेके लिये आये हैं अतएव वरारोहे ! हमारे अनुरोधसे आप क्षणकाल प्रतीक्षा कीजिये. हे शुचिस्मते ! हे चारुलोचने ! आप किसकी कन्या हैं ? और किस महात्माने आपका पाणिग्रहण किया है ? आप उद्यान मध्यस्थित इस तडागमें अकेली स्नान करनेके लिये क्यों आई हैं ? ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे कमलाक्षि ! तुम्हारा जिस प्रकार सौंदर्य है इससे हमको दूसरी हरिवल्लभा बोध होती हो, हे शोभने ! हम आपसे कुछ जाननेकी इच्छा करते हैं आप यथार्थरूपसे वह विषय कहिये ॥ ३१ ॥ हे कांते ! तुम्हारे दोनों चरण अत्यंत कोमल हैं. अतएव पदत्राण न पहरकर अनावृत्त भावसे उनको पृथ्वीमें रखती है. हे चंचलनयने ! तुम्हारे चरण जब

पृथ्वीमें पडते हैं तब हमारे हृदयमें क्लेश उपस्थित होता है ॥ ३२ ॥ हे कृशोदरि ! तुम्हारा देह जिस प्रकार कोमल है, इससे तुमको विमानपर चढकर गमनागमन करना उचित है किंतु ऐसा न करके क्यों पैरोंसे इस कठिन पृथ्वीमें गमन करती हो ॥ ३३ ॥ तुम्हारे संग शतशत दासी क्यों नहीं निकलतीं. हे वरानने ! तुम राजकन्या अथवा अप्सरा हो यह हमसे सत्य कहो ॥ ३४ ॥ हे अनघे ! जिन पिता मातासे तुम्हारा जन्म हुआ है वहभी धन्य हैं विशेषकर जिस मनुष्यके संग तुम्हारा विवाह हुआ है उसका सौंदर्य वर्णन करनेमें हमारी सामर्थ्य नहीं है ॥ ३५ ॥ हे सुलोचने ! तुम्हारे दोनों चरण इधर उधर चलकर इस पृथ्वीको पवित्र करते हैं अतएव यह उद्यान आज देवलोककी अपेक्षा भी पवित्र बोध होता है ॥ ३६ ॥ जो संपूर्ण मृग और पक्षिकुल इच्छानुसार तुमेंको देखते हैं उनके सौभाग्यकी सीम नाहीं है अधिक क्या तुम्हारे स्पर्शसे यह वन भूमि अत्यंत पवित्र बोध होती है ॥ ३७ ॥ हे सुलोचने !

विमानार्हाऽसि तन्वंगी कथं पद्भ्यां व्रजस्यदः ॥ अनावृताऽत्र विपने किमर्थं गमनं तव ॥ ३३ ॥ दासीशतसमायुक्ता कथं न त्वं विनिर्गता ॥ राजपुत्र्यप्सरा वाऽसि वद सत्यं वरानने ॥ ३४ ॥ धन्या माता यतो जाता धन्योऽसौ जनकस्तव ॥ वक्तुं त्वां नैव शक्तौ च भर्तुर्भाग्यं तवानघे ॥ ३५ ॥ देवलोकाधिका भूमिरियं चैव सुलोचने ॥ प्रचलंश्चरणस्तेऽद्य संपावयति भूतलम् ॥ ३६ ॥ सौभाग्याश्च मृगाः कामं ये त्वां पश्यंति वै वने ॥ ये चान्ये पक्षिणः सर्वे भूरियं चातिपावना ॥३७॥ स्तुत्याऽलं तव चात्यर्थं सत्यं ब्रूहि सुलोचने ॥ पिता कस्ते पतिः क्वासौ द्रष्टुमिच्छाऽस्ति सादरम् ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ तयोरिति वचः श्रुत्वा राजकन्याऽतिसुंदरी ॥ तामुवाच त्रपाक्रान्ता देवपुत्रौ नृपात्मजा ॥३९॥ शर्यातितनयां मां वां वित्त भार्यां मुनेरिह ॥ च्यवनस्य सतीं कांतां पित्रा दत्तां यदृच्छया ॥ ४० ॥ पतिरंधोऽस्ति मे देवो वृद्धश्चातीव तापसः ॥ तस्य सेवामहोरात्रं करोमि प्रीतिमानसा ॥ ४१ ॥

तुम्हारे रूपकी अधिक प्रशंसा करना निष्प्रयोजन है तुम्हारे पिता अथवा माता कौन हैं ? यह हमसे सत्य कहो हम आदर सहित उनको देखनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वह सर्वाङ्गसुन्दरी राजकुमारी उनके यह वचन सुन लज्जित भावसे उन दोनों देवकुमारोंसे कहने लगी ॥ ३९ ॥ मैं शर्याति राजाकी कन्या हूं पिताने मुझे दैवकी इच्छासे महर्षि च्यवनको दिया है, मैं उनकी प्रियतमा साध्वी भार्या हूं वह महर्षि इसी स्थानमें वास करते हैं ॥ ४० ॥ हे दोनों देवताओ ! मेरे पति नयनविहीन तापस और अत्यन्त वृद्ध हुए हैं, अतएव मैं सती धर्मानुसार प्रसन्नमनसे रात दिन उनकी सेवा करती हूं ॥ ४१ ॥

आप कौन हैं ? और किस लिये इस स्थानमें आये हैं ? हमारे पति आश्रममें स्थिति करते हैं अतएव कृपा करके उस स्थानमें चलकर अब आश्रमको पवित्र कीजिये ॥ ४२ ॥ हे नरनाथ ! दोनों अश्विनी कुमारोंने इस प्रकार वचन सुनकर उससे कहा हे कल्याणि ! किस कारणसे तुम्हारे पिताने वृद्ध तपस्वीको ऐसा कन्यारत्न दिया ॥ ४३ ॥ तुम इस विजन वनमें स्थिर सौदामिनीके समान शोभा पाती हो और अधिक क्या कहें तुम्हारे समान रूपवती कामिनी हमारे देवलोकमेंभी दिखाई नहीं देती ॥ ४४ ॥ अहो ! दिव्य वसन सर्वविधि आभरण और नीलवर्ण अलकावलीही तुम्हारे पक्षमें शोभा पाती है इस प्रकार मृगचर्म और वल्कलादि तुम्हारे योग्य नहीं है ॥ ४५ ॥ हे रम्भोरु ! तुम विशाल नेत्रोंवाली हो तथापि विधाताने तुमको अन्धे विशेषकर अत्यन्त जरातुर पति दिया है तुम उन्हीं अन्धे पतिको प्राप्त करके निरन्तर इस वनमें दुःखी होती हो इसकी अपेक्षा विधाताका अन्याय कार्य और क्या हो सकता

कौ युवां किमिहायातौ पतिस्तिष्ठति चाश्रमे ॥ तत्रागत्य प्रकुरुतमाश्रमं चाद्य पावनम् ॥४२॥ तदाकर्ण्य वचो दस्रावूचतुस्तां नराधिप ॥ कथं त्वमपि कल्याणि पित्रा दत्ता तपस्विने ॥ ४३ ॥ भ्राजसेऽस्मिन्वनोद्देशे विद्युत्सौदामिनी यथा ॥ न देवेष्वपि तुल्या हि तव दृष्टाऽस्ति भामिनि ॥ ४४ ॥ त्वं दिव्यांबरयोग्याऽसि शोभसे नाजिनैर्वृ ता ॥ सर्वाभरणसंयुक्तानीलालकवरूथिनी ॥ ४५ ॥ अहो विधेर्दुष्कलितं विचेष्टितं यदत्र रंभोरु वने विषीदसि ॥ विशाल नेत्रेंऽधमिमं पतिं प्रिये मुनिं समासाद्य जरातुरं भृशम् ॥ ४६ ॥ वृथा वृतस्तेन भृशं न शोभसे नवं वयः प्राप्य सुनृत्यपंडिते ॥ मनोभवेनाशु शराः सुसंहिताः पतंति कस्मिन्पतिरीदृशस्तव ॥ ४७ ॥ त्वमंधभार्या नवयौवनान्विता कृताऽसि धात्रा ननु मन्दबुद्धिना ॥ न चैनमर्हस्यसितायतेक्षणे पतिं त्वमन्यं कुरु चारुलोचने ॥ ४८ ॥ वृथैव ते जीवितमंबुजेक्षणे पतिं च संप्राप्य मुनिं गतेक्षणम् ॥ वने निवासं च तथाऽजिनांबरप्रधारणं योग्यतरं न मन्महे ॥ ४९ ॥

है ? ॥ ४६ ॥ हे मृगाक्षि ! उस मुनिवरको तुमने निरर्थक पतित्वमें वरण किया है तुम्हारा यह नवयौवन समयमें उन अन्धे पतिके संग कभी शोभा नहीं पावेगा तुम नृत्यविद्यामें चतुर हो किंतु पति अन्धे और जरातुर हैं तुम्हारे नृत्य करनेपर जब कामदेव शर सन्धान करेगा तब वह शर किसके ऊपर पतित होंगे ? ॥ ४७ ॥ हे आयतलोचने ! वह विधाता अत्यन्त अल्पबुद्धि है ? नहीं तो तुमको इस प्रकार नवयौवनसे भूषितकर अन्धेकी भार्या क्यों करता ? हे चारुलोचने ! तुम कभी उसके उपयुक्त नहीं हो इस कारण दूसरा पति करो ! ॥ ४८ ॥ हे कमलनयने ! तुम्हारा पति एक तो नयनविहीन और उसपर भी तपस्वी है अतएव तुम्हारा जीवनधारण करना वृथा है ? विशेषकर वनमें वास और अजिन अम्बर परिधान तुम्हारे योग्य नहीं है ॥ ४९ ॥

हे असितनयने ! तुम्हारे संपूर्ण अंग प्रत्यंग मनोहर हैं अतएव भलीभांति विचार कर हम दोनोंमेंसे एकको पति करो हे भामिनि ! इस प्रकार रूपवती होकर मुनि की सेवा करके वृथा यौवन क्यों क्षय करती हो ? ॥ ५० ॥ उन मुनिवरका कोई सौभाग्य नहीं दिखाई देता. विशेषकर तुम्हारे भरणपोषण अथवा रक्षण दर्शन करनेकीभी उनमें सामर्थ्य नहीं है. तब वृथा क्यों उनकी सेवा करती हो ? हे अनिन्दिते ! सर्व सुखरहित मुनिवरको त्यागकर हम दोनोंमेंसे एकके संग विवाह करो ॥५१॥ " हे कान्ते" ! तो नन्दनकानन अथवा चैत्ररथ वनमें विहार कर सकोगी. हे मानिनि! अन्धे अथवा वृद्ध पतिके सहित गौरवविहीन होकर तुम किस प्रकार काल व्यतीत करोगी ? ॥ ५२ ॥ एक तो तुम शुभलक्षणोंसे विभूषित उसपर भी फिर राजकन्या हो अतएव

अतो ऽनवद्यांग्युभयोस्त्वमेककं वरं कुरुष्वावहिता सुलोचने ॥ किं यौवनं मानिनि संकरोषि वृथा मुनिं सुन्दरि सेवमाना ॥ ५० ॥ किं सेवसे भाग्यविवर्जितं तं समुज्झितं पोषणरक्षणाभ्याम् ॥ त्यक्त्वा मुनिं सर्वसुखापवर्जितं भजानवद्यांग्युभयोस्त्वमेकम् ॥५१॥ त्वं नंदने चैत्ररथे वने च कुरुष्व कांते प्रथितं विहारम् ॥ अंधेन वृद्धेन कथं हि कालं विनेष्यसे मानिनि मानहीनम् ॥ ५२ ॥ भूपात्मजा त्वं शुभ लक्षणा च जानासि संसारविहारभावम् ॥ भाग्येन हीना विजने वनेऽत्र कालं कथं वाहयसे वृथा च ॥ ५३ ॥ तस्माद्भजस्व पिकभाषिणि चारुवक्रे एकं द्वयोस्तव सुखाय विशालनेत्रे ॥ देवालयेषु च कृशोदरि भुंक्ष्व भोगांस्त्यक्त्वा मुनिं जरठमाशु नृपेंद्रपुत्रि ॥ ५४ ॥ किं ते सुखं यत्र वने सुकेशि वृद्धेन सार्धं विजने मृगाक्षि ॥ सेवा तथांऽधस्य नवं वयश्च किं ते मतं भूपतिपुत्रि दुःखम् ॥ ५५ ॥

संसारके यावतीय विहारभाव तुमको अवि, दित नहीं है. इस कारण भाग्यविहीन होकर इस गहनकाननमें वृथा क्यों काल व्यतीत करती हो ॥ ५३ ॥ हे राजपुत्रि ! तुम्हारा वदन अत्यन्त मनोहर नेत्र विशाल कटि क्षीण और तुम्हारे वचन कोकिलके समान मीठे हैं अतएव तुम्हारी अपेक्षा सुन्दरी कौन है ? तुम वृद्धतपस्वीको इस समय त्यागकर सुखके लिये तुम हममेंसे एककी भजना करो तो त्रिदशालयमें अनुपम भोग्यवस्तु भोग सकोगी ॥ ५४ ॥ हे सुकेशि ! अन्धेके सहित इस वनमें वास करके तुमको क्या सुख होगा ? हेमृगाक्षि ! तुम्हारा इस नवयौवन और इस अवस्थाके समय वनमें रहकर वृद्धको सेवा करना अत्यन्त क्लेशकर है हे राजपुत्रि ! क्या तुमको दुःखही वाञ्छित है ॥ ५५ ॥

१ यह वचन पराक्षार्थ कहे हैं।

दे. भा.
॥१३॥

हे शशिमुखि! तुम अत्यन्त कोमलाङ्गी दिखाई देती हो अतएव जल और फल लाना तुम्हारा उचित कार्य नहीं है ॥५६॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! यह वचन सुन राजकन्या सुकन्या पहले भयसे काँपने लगी फिर वह मितभाषिणी बाला धैर्य्य अवलम्बनकर दोनों अश्विनीकुमारोंसे कहने लगी ॥ १ ॥ आप सूर्यके पुत्र और सुरगणोंके सुसम्मत देवता हैं विशेषकर आप सम्पूर्ण विषय जानते हैं मैं धर्मपरायण सती हूं मुझसे ऐसा वचन कहना आपको उचित नहीं है ॥ २ ॥ हे सुरद्वय! पिताने मुझे योग्य धर्मावलम्बित मुनिको दिया है इसपर भी मैं सती होकर किस प्रकार वेश्याओंके अवलंबित मार्गमें जाऊं? ॥ ३ ॥ वह सूर्य सबके कार्य अकार्यके साक्षिस्वरूप हैं अतएव वह मेरे सम्पूर्ण कार्य देखते हैं और आप दोनोंने महात्मा कश्यपके वंशमें जन्म ग्रहण किया है, इस प्रकार पवित्र देवताके उरसे पवित्रवंशमें उत्पन्न हो ऐसा अधर्म्मकर और

शशिमुखि त्वमतीव सुकोमला फलजलाहरणं तव नोचितम् ॥५६॥ इति श्रीदेवी० भा० महा० सप्तमस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ व्यास उवाच ॥ तयोस्तद्भाषितं श्रुत्वा वेपमाना नृपात्मजा ॥ धैर्यमालंब्य तौ तत्र बभाषे मितभाषिणी ॥ १ ॥ देवौ वां रविपुत्रौ च सर्वज्ञौ सुरसंमतौ ॥ सतीं मां धर्मशीलां च नैवं वदितुमर्हथः ॥ २ ॥ पित्रा दत्ता सुरश्रेष्ठौ मुनये योगधर्मिणे ॥ कथं गच्छामि तं मार्गं पुंश्चलीगणसेवितम् ॥ ३ ॥ द्रष्टाऽयं सर्वलोकस्य कर्मसाक्षी दिवाकरः ॥ कश्यपाच्चैव संभूतौ नैवं भाषितुमर्हथः ॥ ४ ॥ कुलकन्यां पतिं त्यक्त्वा कथमन्यं भजेन्नरम् ॥ असारेऽस्मिन्हि संसारे जानंतौ धर्मनिर्णयम् ॥ ५ ॥ यथेच्छं गच्छतं देवौ शापं दास्यामि वाऽनघौ ॥ सुकन्याऽहं च शर्यातेः पतिभक्तिपरायणा ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्या नासत्यौ विस्मितौ भृशम् ॥ ताव ब्रूतां पुनस्त्वेनां शंकमानौ भयं मुनेः ॥ ७ ॥ राजपुत्रि प्रसन्नौ ते धर्मेण वरवर्णिनि ॥ वरं वरय सुश्रोणि दास्यावः श्रेयसे तव ॥ ८ ॥

अकीर्ति कर वचन कहना आपको अत्यन्त अनुचित है ॥ ४ ॥ इस असार संसारमें धर्म क्या अथवा अधर्म क्या है आप भली भांति जानते हैं हे रविपुत्रो! कुलकन्या हो पतित्याग कर किसप्रकार अन्यपुरुषकी भजना करूं ॥ ५ ॥ आप विमलस्वभाव देवता हैं मैं महाराज शर्यातिकी कुलकन्या विशेषकर पतिके प्रति अत्यन्त अनुरक्त और धर्मपरायण हूं अतएव आप इच्छानुसार अपने स्थानमें जाइये ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे भारत! दोनों अश्विनीकुमार उसके यह वचन सुनकर अत्यन्त आश्चर्ययुक्त हुए और मुनिवरके भयसे शंकित होकर फिर उससे कहने लगे ॥ ७ ॥ हे राजकुमारी! तुम्हारा पतिव्रत धर्म्म देखकर हम प्रसन्न हुए हैं अत एव हे वरवर्णिनि! तुम अभिलाषित वर मागो. हे सुश्रोणि! तुम्हारे मंगलके लिये हम तुमको वर देंगे ॥ ८ ॥

हे भामिनि ! हम देवताओंके वैद्य हैं तुम निश्चय जानो कि हम तुम्हारे पतिको परमरूपवान् सुन्दर युवा करदेंगे ॥ ९ ॥ हे सुचतुरे ! जब हम तीनोंका समानरूप समान अवस्था और समान देहकी कांति होगी तब तुम तीनोंमेंसे जिसकी रुचि हो एकको पतित्वमें वरण करो ॥ १० ॥ सुकन्या उनके यह वचन सुनकर आश्चर्ययुक्त हो अपने पतिके समीप गई अनन्तर दोनों देवताओंके वैद्योंने जो बात कही थी वह सम्पूर्ण मुनिवरसे निवेदन की ॥ ११ ॥ सुकन्याने कहा हे स्वामिन् ! सूर्यके पुत्र दोनों अश्विनीकुमार मेरे आश्रमके समीप तपोवनमें उपस्थित हुए हैं उन दोनों दिव्यदेह देवताओंका मैंने दर्शन किया है ॥ १२ ॥ वह मेरा सर्वाङ्ग सुन्दर देह देखकर कामातुर हो मुझसे कहनेलगे कि तुम्हारे उन अन्धे पति मुनिवरको दिव्य देह नवयौवन ॥ १३ ॥

जानीहि प्रमदे नूनमावां देवभिषग्वरौ ॥ युवानं रूपसंपन्नं प्रकुर्याव पतिं तव ॥ ९ ॥ ततस्त्रयाणामस्माकं पतिमेकतमं वृणु ॥ समानरूपदेहानां मध्ये चातुर्यपंडिते ॥ १० ॥ सा तयोर्वचनं श्रुत्वा विस्मिता स्वपतिं तदा ॥ गत्वोवाच तयोर्वाक्यं ताभ्यामुक्तं यदद्भुतम् ॥ ११ ॥ सुकन्योवाच ॥ स्वामिन् सूर्यसुतौ देवौ संप्राप्तौ च्यवनाश्रमे ॥ दृष्टौ मया दिव्यदेहौ नासत्यौ भृगुनंदन ॥ १२ ॥ वीक्ष्य मां चारुसर्वाङ्गीं जातौ कामातुरावुभौ ॥ कथितं वचनं स्वामिन्पतिं ते नवयौवनम् ॥ १३ ॥ दिव्यदेहं करिष्यावश्चक्षुष्मंतं मुनिं किल ॥ एतेन समयेनाद्य तं शृणु त्वं मयोदितम् ॥ १४ ॥ समावयवरूपं च करिष्यावः पतिं तव ॥ तत्र त्रयाणामस्माकं पतिमेकतमं वृणु ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वाऽहमिहायाता प्रष्टुं त्वां कार्यमद्भुतम् ॥ किं कर्तव्यमतः साधो ब्रूह्यस्मिन्कार्यसंकटे ॥ १६ ॥ देवमायाऽपि दुर्ज्ञेया न जाने कपटं तयोः ॥ यदाज्ञापय सर्वज्ञ तत्करोमि तवेप्सितम् ॥ १७ ॥

और दोनों नेत्र फिर उत्तम करदेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं किंतु तुमको एक नियम करना होगा वह कहते हैं सुनो ॥ १४ ॥ तुम्हारे उन वृद्धपतिका अंगभी अपने समान करदेंगे किंतु फिर हम तीनोंमेंसे एकको पतित्वमें वरणकरना होगा ॥ १५ ॥ हे साधो ! यह सुनकर इस अद्भुत कार्यका विषय आपको विदित करती हूं अतएव इस संकटके कार्यमें क्या करना चाहिये ? आप यह भलीभांति विचारकर कहिये ॥ १६ ॥ देवताओंकी माया जाननी अत्यन्त कठिन है विशेषकर वह किस अभिप्रायसे ऐसा कहते हैं यह मैं नहीं जानती हे सर्वज्ञ ! आपजो अनुमति करें तो मैं आपका वह अभिलाषित कार्य करूं ॥ १७ ॥

च्यवनने कहा कांते ! तुम मेरी आज्ञासे अभी उन दोनों अश्विनीकुमारोंके निकट जाओ हे सुभद्रे ! तुम अभी उनको मेरे समीप लाओ ॥ १८ ॥ अधिक क्या कहूं तुम शीघ्र उनका वचन प्रतिपादन करो इस विषयमें कुछ विचार करनेका प्रयोजन नहीं, व्यासजीने कहा हे महाराज ! सुकन्याने पतिकी इस प्रकार आज्ञा पाय तत्काल उनके समीप जाकर कहा ॥ १९ ॥ हे दोनों अश्विनीकुमारो ! आप देवताओंमें अग्रगण्य हैं अतएव आपके यह नियमित वचन स्वीकार हुए अब आप अपना कर्तव्य कार्य कीजिये तब वह दोनों देवता उसके इसप्रकार वचन सुन आश्रममें जाय ॥ २० ॥ राजकुमारीसे कहने लगे तुम्हारे पति जलमें प्रवेशकरें तब वृद्ध च्यवन सुन्दररूप पानेकी इच्छासे उसी समय अगाधजलमें घुसे ॥ २१ ॥ इसके उपरांत दोनों अश्विनीकुमारोंने भी उस उत्तम सरोवरके जलमें प्रवेश किया कुछ कालोपरांत उस सरोवरसे वह तीनों निकले ॥ २२ ॥ सबकाही दिव्यदेह समान सौन्दर्य समान नवयौवन और सम्पूर्ण

च्यवन उवाच गच्छकांतेऽद्य नासत्यौ वचनान्मम सुव्रते ॥ आनयस्व समीपं मे शीघ्रं देवभिषग्वरौ ॥ १८ ॥ क्रियतामाशु तद्वाक्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ व्यास उवाच॥एवं सा समनुज्ञाता तत्र गत्वा वचोऽब्रवीत् ॥ १९ ॥ क्रियतामाशु नासत्यौ सम येन सुरोत्तमौ ॥ तच्छ्रुत्वा चाश्विनौ वाक्यं तस्यास्तौ तत्र चागतौ ॥ २० ॥ ऊचतू राजपुत्रीं तां पतिस्तव विशत्वपः ॥ रूपार्थं च्यवनस्तूर्णं ततोंऽभः प्रविवेश ह ॥२१॥ अश्विनावपि पश्चात्तत्प्रविष्टौ सर उत्तमम् ॥ ततस्ते निःसृतास्तस्मात्सरसस्तत्क्षणात्त्रयः ॥ २२ ॥ तुल्यरूपा दिव्यदेहा युवानः सदृशाः किल ॥ दिव्यकुण्डलभूषाढ्याः समानावयवास्तथा ॥ २३ ॥ तेऽब्रुवन् सहिताः सर्वे वृणीष्व वरवर्णिनि ॥ अस्माकमीप्सितं भद्रे पतिं त्वममलानने ॥२४॥ यस्मिन्वाऽप्यधिका प्रीतिस्तं वृणुष्व वरानने ॥ व्यास उवाच॥ सा दृष्ट्वा तुल्यरूपांस्तान्समानवयसस्तथा ॥ २५ ॥ एकस्वरांस्तुल्यवेषां स्त्रीन्वै देवसुतोपमान् ॥ सा दृष्ट्वा तु संशयमापन्ना वीक्ष्य तान्सदृशाकृतीन् ॥ २६ ॥

अंग प्रत्यंग कुण्डल इत्यादि अनेक प्रकार अलंकारोंसे सुशोभित थे अत एव अवयवोंकी कोई विलक्षणता नहीं दीखाई दी ॥ २३ ॥ तब एकवार उन सबोंने कहा हे भद्रे ! तुम्हारे समान सुन्दरी रमणी और दूसरी नहीं है विशेषकर तुम्हारा वदनमण्डल विमल है अतएव तीनोंमेंसे जिसको तुम्हारी इच्छा हो उसकोही पतित्वमें वरण करो ॥ २४ ॥ हे वरानने ! अथवा जिसके प्रति तुम्हारी अधिक प्रीति हो उसको ही वरणकरो व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! तब सुकन्याने देखाकी कि इन तीनोंका ही देवताओंके समान अनुरूप रूपलावण्य है ॥ २५ ॥ विशेषकर सौंदर्य अवस्था स्वर और वेष समान है कुछ भी भिन्नता दिखाई नहीं देती वह उन सबका समान अवयव देखकर संशययुक्त हुई ॥ २६ ॥

वह राजकन्या अपने पतिको न पहचानकर अत्यन्य व्याकुल हो चिंता करने लगी इस समय मैं क्या करूं तीनोंका अवयव एक प्रकार है अतएव अब किसको वरण करूं ॥२७॥ इनमें कौन पति है यह मैं नहीं जानती बोध होता है कि यह सब देवताओंके पुत्र हैं अथवा उन दोनों देवकुमारोंने इस स्थानमें निश्चय इंद्रजाल फैलाया है जो हो मैं इस समय विषय संशयमें पडी हूं॥ २८ ॥ मैं पतिको त्यागकर अन्य किसीको कभी वरण न करूंगी अतएव मेरा मरण उपस्थित है अब मुझको क्या करना चाहिये ॥ २९ ॥ अब जो तीसरी मूर्ति देखती हूं बोध होता है कि यह भी कोई देवपुत्र हैं ! इस प्रकार मनमें चिंताकर निश्चय किया कि अब मैं उन्हीं पराप्रकृति विश्वेश्वरी शिवाकी आराधना करूं ॥ ३० ॥ तब कृशोदरी राज कुमारी देवी भगवतीका स्तव करने

अजानती पति सम्यग्व्याकुला समचिंतयत् ॥ किं करोमि त्रयस्तुल्याः कं वृणोमि न वेद्म्यहम् ॥ २७ ॥ पतिं देवसुता ह्येते संशये पतिताऽस्म्यहम् ॥ इंद्रजालमिदं सम्यग्देवाभ्यामिहि कल्पितम् ॥ २८ ॥ कर्तव्यं किं मया चात्र मरणं समुपागतम् ॥ न मया पतिमुत्सृज्य वरणीयः कथंचना ॥ २९ ॥ देवस्त्वाधुनिकः कश्चिदित्येषा मम धारणा ॥ इति संचित्यमनसा परां विश्वेश्वरीं शिवाम् ॥ ३० ॥ दध्यौ भगवतीं देवीं तुष्टाव च कृशोदरी ॥ सुकन्योवाच ॥ शरणं त्वां जगन्मातः प्राप्ताऽस्मिभृशदुःखिता ॥ ३१ ॥ रक्ष मेऽद्य सतीधर्म नमामि चरणौ तव ॥ नमः पद्मोद्भवे देवि नमः शंकरवल्लभे ॥ ३२ ॥ विष्णुप्रिये नमो लक्ष्मि वेदमातः सरस्वति ॥ इदं जगत्त्वया सृष्टं सर्वं स्थावरजंगमम् ॥ ३३ ॥ पासि त्वमिदमव्यग्रा तथाऽत्सि लोकशांतये ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां जननी त्वं सुसंम ता ॥ ३४ ॥ बुद्धिदाऽसि त्वमज्ञानां ज्ञानिनां मोक्षदा सदा ॥ आद्या त्वं प्रकृतिः पूर्णा पुरुषप्रियदर्शना ॥ ३५ ॥

लगी सुकन्याने कहा हे जगन्मातः ! मैंने अत्यन्त दुःखमें गिरकर आपकी शरण ली है ॥ ३१ ॥ आपके दोनों चरणोंमें प्रणाम करती हूं आप अब मेरे सतीत्व धर्मकी रक्षा कीजिये हे देवि ! आप कमलसे उत्पन्न हुई हैं आपको नमस्कार करती हूं आप शंकरकी प्रियतमा ॥ ३२ ॥ एवं विष्णुप्रिया लक्ष्मी और आप ही वेदमाता सरस्वती हैं अतएव आपको नमस्कार करती हूं स्थावर जंगमात्मक यह जगन्मंडल आपने ही उत्पन्न किया है ॥ ३३ ॥ और अव्यग्र चित्तसे उसका प्रतिपालन करती हैं और सम्पूर्ण लोकोंके शान्तिकी इच्छासे उसको ग्रास करती हैं अधिक क्या आप ही ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरकी परम पूजनीय हैं ॥ ३४ ॥ आप ही ज्ञान हीन मूर्खोंको बुद्धि और ज्ञानियोंको सदा भक्ति देती हैं आप ही पुरुषोंको प्रियदर्शन पूर्ण आद्या प्रकृति हैं ॥३५॥

दे. भा.
॥ १५ ॥

जिन प्राणियोंकी आत्मा पवित्र हुई है आप ही उनको भोग और मुक्तिप्रदान करती हैं, जो अत्यन्त ज्ञानहीन हैं उनको दुःख और जो सत्वगुणाश्रित जीव हैं उनको सुख देती हैं ॥ ३६ ॥ हे मातः ! आप ही योगियोंको सिद्धि कीर्ति और जय प्रदान करती हैं. इस समय मैंने विस्मय सागरमें पतित होकर आपकी शरण ग्रहण की है ॥ ३७ ॥ हे मातः ! इन दोनों देवताओंने कपटाचरण किया हैं, मैं इससे मोहित होकर किसको वरण वरूं ? यह स्थिर नहीं कर सकती अतएव मैं शोक सागरमें निमग्न हुई हूं आप ही मुझे मेरे पतिको दिखाकर उद्धार कीजिये ॥ ३८ ॥ हे सर्वज्ञे ! मेरे सतीव्रतको जानकर जिससे पतिका दर्शन प्राप्त करूं आप वही कीजिये व्यासजीने कहा हे महाराज ! सुकन्याके इस प्रकार स्तवसे परितुष्ट होकर देवी त्रिपुर

भुक्तिमुक्तिप्रदाऽसि त्वं प्राणिनां विशदात्मनाम् ॥ अज्ञानां दुःखदा कामं सत्त्वानां सुखसाधना ॥ ३६ ॥ सिद्धिदा योगिनामंब जयदा कीर्तिदा पुनः ॥ शरणं त्वां प्रपन्नाऽस्मि विस्मयं परमं गता ॥ ३७ ॥ पतिं दर्शय मे मातर्मग्नाऽस्मिञ्छोकसागरे ॥ देवाभ्यां चरितं कूटं कं वृणोमि विमोहिता ॥ ३८ ॥ पतिं दर्शय सर्वज्ञे विदित्वा मे सतीव्रतम् ॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी तथा त्रिपुरसुन्दरी ॥ ३९ ॥ हृदयेऽस्यास्तदाज्ञानं ददावाशु सुखोदयम् ॥ निश्चित्य मनसा तुल्यवयोरूपधरान्सती ॥ ४० ॥ प्रसमीक्ष्य तु तान्सर्वान्वव्रे बाला स्वकं पतिम् ॥ वृतेऽथ च्यवने देवौ संतुष्टौ तौ बभूवतुः ॥ ४१ ॥ सतीधर्मं समालोक्य संप्रीतौ ददतुर्वरम् ॥ भगवत्याः प्रसादेन प्रसन्नौ तौ सुरोत्तमौ ॥ ४२ ॥ मनिमामंत्र्य तरसा गमनायोद्यतावुभौ ॥ लब्ध्वा तु च्यवनो रूपं नेत्रे भार्यां च यौवनम् ॥ ४३ ॥ हृष्टोऽब्रवीन्महातेजास्तौ नासत्याविदं वचः ॥ उपकारः कृतोऽयं मे युवाभ्यां सुरसत्तमौ ॥ ४४ ॥

सुन्दरीने ॥ ३९ ॥ तब उसके हृदयमें सुखकर सत्वज्ञान प्रदान किया तब तीनोंका अवयव और सौन्दर्य समान होनेपर भी ॥ ४० ॥ उस पति व्रता बालाने उनको देखते ही मनमें निर्णयकर अपने पतिको ही वरण किया सुकन्याने जब च्यवनको ही वरण किया तब उसको देखकर वह दोनों देवता परम संतुष्ट हुए ॥ ४१ ॥ दोनों देवता भगवतीके प्रसादसे प्रसन्न हुए थे इसके पीछे फिर सतीधर्म देखनेसे परम प्रसन्न हो उसको वर दिया ॥ ४२ ॥ वह दोनों, मुनिवरकी स्तुति करके शीघ्र अपने स्थानको जानेके लिए उद्यत हुए किन्तु च्यवन उनके अनुग्रहसे रूप यौवन और भार्या प्राप्तकर सन्तुष्ट हुए थे ॥ ४३ ॥ अतएव उन महातेजा मुनिने दोनों अश्विनीकुमारोंसे कहा हे महानुभाव सुरयुगल ! आपने मेरा विशेष उपकार किया है ॥ ४४ ॥

इस प्रकार सुकेशी भार्या पाकर भी मुझको प्रतिदिन दुःख ही होता था ! किन्तु आपकी कृपासे इस असुखमय संसारमें जो कुछ सुख पाया है वह नहीं कह सकता ॥ ४५ ॥ मैं अत्यन्त वृद्ध और नेत्र विहीन होकर भोग रहित हुआ था परन्तु आपने ही वनमें आय मुझको नेत्र यौवन और अद्भुत सौन्दर्य प्रदान किया ॥ ४६ ॥ अतएव हे दोनों देवताओ ! मैं आपका किंचित् प्रत्युपकार करनेकी इच्छा करता हूं जो पुरुष उपकारी मित्रका कुछ भी उपकार नहीं करते ॥ ४७ ॥ उनको धिक्कार है विशेषकर वह पुरुष पृथ्वीमें सदा ऋणी होते हैं अतएव आप इस समय जो इच्छा करें यह यदि देनेकी इच्छा है ॥ ४८ ॥ हे दोनों देवताओ ! आप जिसकी इच्छा कर मेरी वही देवता अथवा असुरोंको भी दुर्लभ हो तो भी नवीन देहका ऋण छुड़ानेके लिए मैं वही

किं ब्रवीमि सुखं प्राप्तं संसारेऽस्मिन्ननुत्तमे ॥ प्राप्य भार्यां सुकेशांतां दुःखं मेऽभवदन्वहम् ॥ ४५ ॥ अंधस्य चातिवृद्धस्य भोगहीनस्य कानने ॥ युवाभ्यां नयने दत्ते यौवनंरूपमद्भुतम् ॥ ४६ ॥ संपादितं ततः किंचिदुपकर्तुमहं ब्रुवे ॥ उपकारिणि मित्रे यो नोपकुर्यात्क थंचन ॥ ४७ ॥ तं धिगस्तु नरं देवौभवेच्च ऋणवान्भुवि ॥ तस्माद्वां वांछितं किंचिद्दातुमिच्छामि सांप्रतम् ॥ ४८ ॥ आत्मनो ऋणमो क्षाय देवेशौ नूतनस्य च ॥ प्रार्थितं वां प्रदास्यामि यदलभ्यं सुरासुरैः ॥ ४९ ॥ ब्रूवाथां वां मनोद्दिष्टं प्रीतोऽस्मि सुकृतेन वाम् ॥ श्रुत्वा तौ तु मुनेर्वाक्यमभिमंत्र्य परस्परम् ॥ ५० ॥ तमूचतुर्मुनिश्रेष्ठं सुकन्यासहितं स्थितम् ॥ मुने पितुः प्रसादेन सर्वं नो मनसे प्सितम् ॥ ५१ ॥ उत्कंठा सोमपानस्य वर्तते नौ सुरैः सह ॥ भिषजाविति देवेन निषिद्धौ चमसंग्रहे ॥ ५२ ॥ शक्रेण वितते यज्ञे ब्रह्मणः कनकाचले ॥ तस्मात्त्वमपि धर्मज्ञ यदि शक्तोऽसि तापस ॥ ५३ ॥

आपको दूंगा ॥ ४९ ॥ मैं आपके सत्कार्यसे परम परितुष्ट हुआ हूं अतएव तुम मनका अभिलाष कहो उन्होंने मुनिवर च्यवनके इस प्रकार वचन सुन परस्पर परामर्श की ॥ ५० ॥ फिर सुकन्याके सहित एकत्र बैठे हुए मुनिवर च्यवनसे कहा हे महर्षे ! पिताके अनुग्रहसे हमने अभिलाषित सम्पूर्ण वस्तु प्राप्त की है तथापि देवताओंके सहित एकत्र सोमपान अतिदुर्लभ जानकर उसमें ही बलवती हमारी इच्छा रहती है ॥ ५१ ॥ कनकाचलमें ब्रह्माके विस्तीर्ण यज्ञकालके समय सुरराज इन्द्रने भिषक् कहकर हमको सोमपान करनेसे निषेध किया है ॥ ५२ ॥ अतएव हे धर्मज्ञ तापसवर ! आप यदि अनुग्रहपूर्वक यह कार्य करनेमें समर्थ हो तो हमारा अत्यन्त प्रिय और अभिलाषित कार्य साधन कीजिये ॥ ५३ ॥

हे ब्रह्मन् ! आप वांछित सब विषय जान सकते हैं इस समय हमको देवताओंके सहित सोमपायी कीजिये हमको यह पिपासा अत्यन्त बलवती रहती है आप वह देकर तृप्त कर सकते हैं इसी कारण आपसे निवेदन किया॥ ५४ ॥ दोनों अश्विनीकुमारोंका यह वचन सुनकर महर्षि च्यवन प्रीतिसहित उनसे अति कोमल वचन कहने लगे ॥ ५५ ॥ हे सुरद्वय ! मैं अन्धा जरातुर वृद्ध था किंतु आपके अनुग्रहसे रूपवान् पुरुष हुआ हूँ विशेषकर आपकी ही कृपासे फिर भार्या प्राप्त हुई है ॥ ५६ ॥ अतएव देवराज इन्द्रके सामने प्रीति सहित आपको सोमपायी करूंगा यह मैं सत्य कहता हूं ॥ ५७ ॥ अमितिद्युति महाराज शर्यातिके यज्ञमें तुम्हारा अभिलाष पूरा होगा. वह दोनों अश्विनी कुमार मुनिवरके वचन सुन परम संतुष्ट हो ॥ ५८ ॥ सुरलोकको चले गये और मुनिवर

कार्यमेतद्धि कर्तव्यं वांछितं नौ सुसंमतम् ॥ एतद्विज्ञाय वा ब्रह्मन्कुरु वां सोमपायिनौ ॥ ५४ ॥ पिपासाऽस्ति सुदुष्प्रापा त्वत्तः समुपयास्यति ॥ च्यवनस्तु तयोः प्राह तच्छ्रुत्वा वचनं मृदु ॥ ५५ ॥ यदहं रूपसंपन्नो वयसा च समन्वितः ॥ कृतो भवद्भ्यां वृद्धः न्सभार्या च प्राप्तवानिति ॥ ५६ ॥ तस्माद्युवां करिष्यामि प्रीत्याऽहं सोमपायिनौ ॥ मिषतो देवराजस्य सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ५७ ॥ राज्ञस्तु वितते यज्ञे शर्यातेरमितद्युतेः ॥ इत्याकर्ण्य वचो हृष्टौ तौ दिवं प्रति जग्मतुः ॥ ५८ ॥ च्यवनस्तां गृहीत्वा तु जगामाश्रममं डलम् ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ जनमेजय उवाच ॥ च्यवनेन कथं वैद्यौ तौ कृतौ सोमपायिनौ ॥ वचनं च कथं सत्यं जातं तस्य महात्मनः ॥ १ ॥ मानुषस्य बलं कीदृग्देवराजबलं प्रति ॥ निषिद्धौ भिषजौ तेन कृतौ तौ सोमपायिनौ ॥ २ ॥ धर्मनिष्ठ तदाश्चर्यं विस्तरेण वद प्रभो ॥ चरितं च्यवनस्याद्य श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महाराज चरितं परमाद्भुतम् ॥ च्यवनस्य मखे तस्मिञ्छर्यातेर्भुवि भारत ॥ ४ ॥

च्यवन भी उस कन्याको ले अपने आश्रममें आये ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! महर्षि च्यवनने उन दोनों देवताओंको किस प्रकार सोमपानमें अधिकारी किया था ? अथवा उन महात्मा मुनिवरका वचन किस प्रकार सत्य हुआ था ? ॥ १ ॥ देवराज इन्द्रके बलके निकट मनुष्यका बल अति सामान्य है इसपर भी इन्द्रकेनिषेधकरनेपर उन्होंने उन दोनों देववैद्योंको सोमपानमें अधिकार प्रदान किया था ॥ २ ॥ यह अत्यन्त आश्चर्यका विषय है ! अतएव हे धर्मनिरत ! हे प्रभो ! इस समय आप च्यवन महर्षिका चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये इसको श्रवण करनेके लिये मेरी अत्यंत इच्छा है ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! पृथ्वीपर राजा शर्यातिके उस विस्तीर्ण यज्ञमें च्यवन

ऋषिने अत्यंत अद्भुत कार्य किया था हे भारत ! मैं उसका वही परम अद्भुत चरित्र वर्णन करता हूं सावधान होकर उसको सुनिये ॥ ४ ॥ देवताके समान तेजयुक्त महर्षि च्यवन देव कन्याओंके समान उस सुन्दरी कन्याको पाकर परम प्रीति एवं प्रसन्न चित्तसे उसके संग विहार करने लगे ॥ ५ ॥ अनंतर एक समय राजा शर्यातिकी प्रियतम भार्या कन्याकी चिंता कर अत्यंत कातर हो कम्पायमान शरीरसे रोदन करते करते अपने पतिसे कहने लगी ॥ ६ ॥ हे राजन् ! आपने अंधे मुनि च्यवनको कन्या दान की किंतु वह वनवासिनी कन्या जीवित है अथवा मर गयी विशेषकर उसे एकबार आपको खोजना उचित है ॥ ७ ॥ हे नाथ ! वह सुंदरी कन्या ऐसे अंधे पतिको पाकर क्या करती है ? उसको देखनेके लिये आप उन मुनिवरके आश्रममें अभी जाइये ॥ ८ ॥ हे राजर्षे ! कन्याका दुःख विचारकर मेरा हृदय सर्वदा दुःखानलमें दग्ध होता है वह विशाल लोचन तपस्याके क्लेशसे अवश्य ही क्षीणाङ्गी हो गयी होगी

सुकन्यां सुंदरीं प्राप्य च्यवनः सुरसन्निभः ॥ विजहार प्रसन्नात्मा देवकन्यामिवामरः ॥ ५ ॥ कदाचिदथ शर्यातिभार्या चिंतातुरा भृशम् ॥ पतिं प्राह वेपमाना वचनं रुदती प्रिया ॥ ६ ॥ राजन्पुत्री त्वया दत्ता मुनयेंऽधाय कानने ॥ मृता जीवति वा सा तु द्रष्टव्या सर्वथा त्वया ॥ ७ ॥ गच्छ नाथ मुनेस्तावदाश्रमं द्रष्टुमादरात् ॥ किं करोति सुकन्यासा प्राप्य नाथं तथाविधम् ॥ ८ ॥ पुत्रीदुःखेत राजर्षे दग्धाऽस्मि सर्वथा हृदि ॥ तामानय विशालाक्षीं तपःक्षामां मदंतिके ॥ ९ ॥ पश्यामि सर्वथा पुत्रीं कृशांगीं वल्कलावृताम् ॥ अंधं पतिं समासाद्य दुःखभाजं कृशोदरीम् ॥ १० ॥ शर्यातिरुवाच ॥ गच्छामोऽद्य विशालाक्षिसुकन्यां द्रष्टुमादरात् ॥ प्रियपुत्रीं वरारोहे मुनिं तं संशितव्रतम् ॥ ११ ॥ व्यास उवाच ॥ एवमुक्त्वा तु शर्यातिः कामिनीं शोकसंकुलाम् ॥ जगाम रथमारुह्य त्वरितश्चाऽऽश्रमं मुनेः ॥ १२ ॥ गत्वाऽऽश्रम समीपे तु तमपश्यन्महीपतिः ॥ नवयौवनसंपन्नं देवपुत्रोपमं मुनिम् ॥ १३ ॥

अंतएव सुकन्याको शीघ्र मेरे निकट लाओ ॥ ९ ॥ जरातुर अंधे पतिको पाय वह सदा ही दुःख भोगती है अतएव क्लेशसे कृश और क्षीण होनेकी संभावना है सुतरां वल्कल पहरनेवाली कृशोदरी कुमारीको एकबार मेरी देखनेकी इच्छा है ॥ १० ॥ शर्यातिने कहा हे विशालाक्षि ! प्रियतनया सुकन्या और शंसितव्रत उन मुनिवरको देखनेके लिये अभी आदरपूर्वक मैं वहां जाता हूं ॥ ११ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेंद्र ! महाराज शर्याति शोकाकुल भार्यासे यह कह रथपर चढ़ शीघ्र मुनिवर च्यवनके आश्रमकी ओर चले ॥ १२ ॥ महीपति शर्यातिने आश्रमके समीप पहुंचकर नवयौवन संपन्न देव पुत्रके समान च्यवनको देखा ॥ १३ ॥

दे. भा.
॥१७॥

तब नरपति देवताओंके समान उनका अंग देखकर अत्यंत आश्चर्ययुक्त हो मनमें चिंता करने लगे मेरी इस कन्याने क्या जनसमाज में निंदनीय कुत्सित कार्य किया है ॥ १४ ॥ वह मुनिवर अत्यंत शांतस्वभाव निर्धन और वृद्ध थे अतएव कन्याने कामशरसे कातर हो उनको मार इच्छानुसार दूसरा पति किया इसमें संदेह नहीं ॥ १५ ॥ पुष्पधन्वा कामदेव स्वभावसे ही दुःसह है विशेषकर फिर यौवन कालके समय अत्यंत दुःसह हो जाता है अइएव इस कन्याने कामबाणके वशीभूत हो सुमहान् मनुके विमल कुलमें घोर कलंक लगाया है ॥ १६ ॥ इस लोकमें जिसकी कन्या खोटे चरित्रोंवाली है उसके जीवनको धिक्कार है बोध होता है कि संपूर्ण पापोंका दुःख भोगनेके लिये देहिगणोंके कन्या उत्पन्न होती है ॥ १७ ॥ परंतु मैंने स्वार्थ सिद्धिके लिये क्या अनुचित कार्य किया है यत्न सहित उपयुक्त पात्रको ही कन्या दान करना पिताको अवश्य कर्तव्य है किंतु मैंने जान सुनकर भी जरातुर अंधे तापसको

तं विलोक्यामराकारं विस्मयं नृपतिर्गतः ॥ किं कृतं कुत्सितं कर्म पुत्र्या लोकविगर्हितम् ॥ १४ ॥ निहतोऽसौ मुनिर्वृद्धस्त्वनयाऽन्यः पतिः कृतः ॥ काम पीडितया कामं प्रशांतोऽप्यतिनिर्धनः ॥ १५ ॥ दुःसहोऽयं पुष्पधन्वा विशेषेण च यौवने ॥ कुले कलंकः सुमहा ननया मानवे कृतः ॥ १६ ॥ धिक्तस्य जीवितं लोके यस्य पुत्री हि कुत्सिता ॥ सर्वपापैस्तु दुःखाय पुत्री भवति देहिनाम् ॥ १७ ॥ मया त्वनुचितं कर्म कृतं स्वार्थस्य सिद्धये ॥ वृद्धायांधाय या दत्ता पुत्री सर्वात्मना किल ॥ १८ ॥ कन्या योग्याय दातव्या पित्रा सर्वात्मना किल ॥ तादृशं हि फलं प्राप्तं यादृशं वै कृतं मया ॥ १९ ॥ हन्मि चेदद्य तनयां दुःशीलां पापकारिणीम् ॥ स्त्रीहत्या दुस्तरा स्यान्मे तथा पुत्र्या विशेषतः ॥ २० ॥ मनुवंशस्तु विख्यातः सकलंकः कृतो मया ॥ लोकापवादो बलवान्दुस्त्याज्य स्नेह शृंखला ॥ २१ ॥ किं करोमीति चिंताब्धौ यदा मग्नः स पार्थिवः ॥ सुकन्यया तदा दैवाद्दृष्टश्चिन्ताकुलः पिता ॥ २२ ॥

कन्या दान की है ॥ १८ ॥ अतएव मैंने जिस प्रकार कार्य किया उसके अनुसार फल अवश्य ही होगा इसमें फिर क्या संदेह है ॥ १९ ॥ मेरी कन्याने कुचरित्र हो पाप कार्यका अनुष्ठान किया है अतएव अब यदि इस निमित्त कन्याको मारूं तो अवध्य स्त्री हत्याजनित पाप मुझको स्पर्श करेगा विशेषकर इससे मुझको कन्याकी हत्याका भी पाप होगा ॥ २० ॥ इधर जिस प्रकार लोकापवाद अत्यंत बलवान् है इसी प्रकार स्नेहशृंखला भी दुश्छेद्य है तो इस प्रकार संकट स्थलमें कार्य निर्णय करना मेरे समान मनुष्यकी बुद्धिके अगोचर है तात्पर्य यह है कि मुझसे ही विख्यात मानव वंश कलंकित हुआ ॥ २१ ॥ राजा शर्याति जब किंकर्तव्यमूढ हो चिंता कर रहे थे तब सुकन्याने दैवयोगसे उस चिंतासागरमें डूबे हुए पिताको देखा ॥ २२ ॥

उनको देखकर सुकन्या तत्काल पिताके समीप गई और उनके समीप जाय प्रीतिपूर्ण हृदय हो भूपतिसे पूँछा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! यह जो मुनिवर विराजमान हैं इनका रूप यौवन और कमलके समान सुंदर नेत्र देखकर आपका मुखमण्डल चिंतासे मलिन क्यों हुआ ? हे पितः ! आप मनमें क्या चिंता करते हैं ॥ २४ ॥ हे पितः ! तुमने विख्यात मनुके वंशमें जन्म ग्रहण किया है विशेषकर आप पुरुषोंमें प्रधान अतएव आपके समान महात्माओंको सहसा दुःखित होना उचित नहीं है. हे राजेन्द्र ! आप शीघ्र आकर मेरे पतिको प्रणाम कीजिये ॥ २५ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज कन्याके यह वचन सुन राज शर्यातिने क्रोधसे अत्यंत अधीर हो संमुख स्थित कन्यासे कहा ॥ २६ ॥ राजा बोले हे पुत्रि ! तापस प्रधान वह जरातुर अन्धे च्यवन मुनि कहां

सा दृष्ट्वा तं जगामाशु सुकन्या पितुरंतिके ॥ गत्वा पप्रच्छ भूपालं प्रेमपूरितमानसा ॥२३॥ किं विचारयसे राजंश्चिताव्याकुलितानन ॥ उपविष्टं मुनिं वीक्ष्य युवानमंबुजेक्षणम् ॥ २४ ॥ एह्येहि पुरुषव्याघ्र प्रणमस्व पतिं मम ॥ मा विषादं नृपश्रेष्ठ सांप्रतं कुरु मानव ॥२५॥ व्यास उवाच ॥ इति पुत्र्या वचः श्रुत्वा शर्यातिः क्रोधपीडितः ॥ प्रोवाच वचनं राजा पुरःस्थां तनयां ततः ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ क्व मुनिश्च्यवनः पुत्रि वृद्धोऽधस्तापसोत्तमः ॥ कोऽयं युवा मदोन्मत्तः संदेहोऽत्र महान्मम ॥ २७ ॥ मुनिः किं निहतः पापे त्वया दुष्कृतकारिणि ॥ नूतनोऽसो पतिः कामात्कृतः कुलविनाशिनि ॥ २८ ॥ सोऽहं चिंतातुरस्ते न पश्याम्याश्रमसंस्थितम् ॥ किं कृतं दुष्कृतं कर्म कुलटाचरितं किल ॥ २९ ॥ निमग्नोऽहं दुराचारे शोकाब्धौ त्वत्कृतेऽधुना ॥ दृष्ट्वैनं पुरुषं दिव्यं मदृष्ट्वा च्यवनं मुनिम् ॥ ३० ॥ विहस्य तमुवाचाशु सा श्रुत्वा वचनं पितुः ॥ गृहीत्वाऽनीय पितरं भर्तुरंतिकमादरात् ॥ ३१ ॥ च्यवनोऽसौ मुनिस्तात जामाता ते न संशयः ॥ अश्विभ्यामीदृशः कांतः कृतः कमललोचनः ॥ ३२ ॥

और यह मदोन्मत्त युवा कहां इसविषयका मेरे मनमें महान् संदेह उपस्थित हुआ है ॥ २७ ॥ हे पापीयसि ! तैने कुकार्यमें निरत हो क्या मुनिवर च्यवनको मार डाला है ? रे कुल कलंकिनि तैने कामके वशीभूत हो क्या नूतन पति ग्रहण किया है उन मुनि वरको आश्रममें न देखकर मैं इस प्रकार चिंतासे व्याकुल हुआ हूं ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ हे दुराचारे ! अब महर्षि च्यवनको नहीं देखता किंतु इस दिव्य पुरुषको देखता हूं अवश्य तेरे कुव्यवहारसेही मैं इस प्रकार चिंतारूपी समुद्रमें निमग्न हुआ हूं ॥ ३० ॥ तब सुकन्या पिताके वनच सुनकर हँसी और आदरपूर्वक उनको शीघ्र स्वामीके निकट लेजाकर कहा ॥ ३१ ॥ हे तात ! यह आपके जामाता च्यवन मुनि हैं इसमें संदेह नहीं दोनों अश्विनी कुमारोंने दयाके वश होकर इनकी ऐसी कमनीय

कांति और कमलके समान मनोहर नेत्र प्रदान किये हैं ॥ ३२ ॥ अश्विनी कुमार इच्छानुसार मेरे इस स्थानमें आये थे; उन्होंने करुणाके वश हो च्यवनको ऐसा रूपवान् कर दिया है इसमें संदेह नहीं ॥ ३३ ॥ हे राजन ! आप च्यवनका रूप देखकर संशययुक्त और निमोहित हो "मैंने कुकार्य किया है" इस प्रकार जानते हो. हे तात ! आप जानिये कि मैं आपकी पापकारिणी कन्या नहीं हूं ॥ ३४ ॥ हे पितः ! आप भृगुनंदन च्यवन मुनिको प्रणाम कीजिये हे राजन् आपके उनसे इसका कारण पूँछनेपर वह आपसे आनुपूर्वीसे संपूर्ण वृत्तांत विस्तार सहित वर्णन् करेंगे ॥ ३५ ॥ राजा शर्याति कन्याके इस प्रकार वचन सुन तत्काल मुनिवरके समीप जाय उनको प्रणामकर आदरपूर्वक पूँछने लगे ॥ ३६ ॥ राजा शर्याति बोले हे भृगुनंदन ! आपको किस प्रकार दोनों नेत्र प्राप्त हुए अथवा आपका बुढापा कहां चला गया आप शीघ्र अपना आनुपूर्विक वृत्तांत वर्णन कीजिये ॥ ३७ ॥ हे

यदृच्छयाऽत्रसंप्राप्तौ नासत्यावाश्रमे मम ॥ ताभ्यां करुणया नूनं च्यवनस्तादृशः कृतः ॥ ३३ ॥ नाहं तव सुता तात यथा स्यां पापकारिणी ॥ तथा त्वं मन्यसे राजन्विमूढो रूपसंशये ॥ ३४ ॥ प्रणम त्वं मुनिं राजन्भार्गवं च्यवनं पितः ॥ आपृच्छ कारणं सर्वं कथयिष्यति विस्तरम् ॥ ३५ ॥ इति श्रुत्वा वचः पुत्र्याः शर्यातिस्त्वरितस्तदा ॥ प्रणनाम मुनिं तत्र गत्वा पप्रच्छ सादरम् ॥ ३६ ॥ राजोवाच ॥ कथयस्व स्ववृत्तांतं भार्गवाशु यथोचितम् ॥ नयने च कथं प्राप्ते क्व गता ते जरा पुनः ॥ ३७ ॥ संशयोऽयं महान्मेऽस्ति रूपं दृष्ट्वाऽतिसुन्दरम् ॥ वद विस्तरतो ब्रह्मञ्छ्रुत्वाऽहं सुखमाप्नुयाम् ॥ ३८ ॥ च्यवन उवाच ॥ नासत्यावत्र संप्राप्तौ देवानां भिषजावुभौ ॥ उपकारः कृतस्ताभ्यां कृपया नृपसत्तम ॥३९॥ मया ताभ्यां वरो दत्त उपकारस्य हेतवे ॥ करिष्यामि मखे राज्ञो भवंतौ सोमपायिनौ ॥ ४० ॥ एवं मया वयः प्राप्तं लोचने विमले तथा ॥ स्वस्थो भव महाराज संविशस्वासने शुभे ॥ ४१ ॥

ब्रह्मन्! आपका अत्यन्त सुन्दर रूप देखकर मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है अतएव आप अपना विवरण विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये मैं उसको सुनकर अत्यंत सुखी हूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ३८ ॥ च्यवन मुनि बोले हे नृपसत्तम ! देव वैद्य दोनों अश्विनीकुमार कार्यवश इस स्थानमें आये थे उन्होंने कृपाके वशीभूत होकर मेरा यही उपकार किया है ॥ ३९ ॥ उसी उपकारके कारण मैंने उनको वर दिया है कि राजा शर्यातिके अग्निष्टोम यज्ञमें आपको सोमपायी करूंगा ॥ ४० ॥इस प्रकार मुझको विमल नेत्र और अभिनव यौवन प्राप्त हुआ है अतएव हे महाराज ! आप सावधान होकर पवित्र यज्ञीय आसनपर विराजमान हूजिये ॥ ४१ ॥

प्रियवर च्यवन मुनिके इस प्रकार कहने पर फिर पृथ्वीपति शर्याति और उनकी प्रियतमा महिषी परमसुखसे विराजमान हुए और उन महानुभाव मुनि वरके संग कल्याण कर कथोपकथन करने लगे ॥ ४२ ॥ अनन्तर भार्गव श्रेष्ठ च्यवन राजाको भली प्रकार समझाकर कहने लगे हे राजन् ! मैं आपका यज्ञ कार्य संपादन करूंगा अतएव आप यज्ञीय सामग्री सम्भार आयोजन कीजिये ॥ ४३ ॥ मैं दोनों अश्विनी कुमारोंके निकट प्रतिज्ञा कर चुका हूं कि तुमको अवश्य सोमपायी करूंगा अतएव हे नृपवर ! आपके विस्तीर्ण यज्ञमें मुझको यह कार्य सम्पन्न करना होगा ॥ ४४ ॥ हे राजेन्द्र इंद्रके कुपित होनेपर भी मैं तपोबलके प्रभावसे उनको निवारण कर आपके अग्निष्टोम यज्ञमें उनको सोमपान कराऊंगा ॥ ४५ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज !

इत्युक्तः स तु विप्रेण सभार्यः पृथ्वीपतिः ॥ सुखोपविष्टः कल्याणीः कथाश्चक्रे महात्मना ॥ ४२ ॥ अथैनं भार्गवः प्राह राजानं परिसां त्वायन् ॥ याजयिष्यामि राजंस्त्वां संभारानुपकल्पय ॥ ४३ ॥ मया प्रतिश्रुतं ताभ्यां कर्तव्यौ सोमपौ युवाम् ॥ तत्कर्तव्यं नृपश्रेष्ठ तव यज्ञेऽतिविस्तरे ॥ ४४ ॥ इंद्रं निवारयिष्यामि क्रुद्धं तेजोबलेन वै ॥ पाययिष्यामि राजेंद्र सोमं सोममखे तव ॥ ४५ ॥ ततः परमसंतुष्टश्शर्यातिः पृथ्वीपतिः ॥ च्यवनस्य महाराज तद्वाक्यं प्रत्यपूजयत् ॥ ४६ ॥ संमान्य च्यवनं राजा जगाम नगरं प्रति ॥ सभार्यश्चातिसंतुष्टः कुर्वन्वार्ता मुनेः किल ॥ ४७ ॥ प्रशस्तेऽहनि यज्ञीये सर्वकामसमृद्धिमान् ॥ कारयामास शर्यातिर्यज्ञायतनमुत्तमम् ॥ ४८ ॥ समानीय मुनीन्पूज्यान्वसिष्ठप्रमुखानसौ ॥ भार्गवो याजयामास च्यवनः पृथिवीपतिम् ॥ ४९ ॥ वितते तु यथा यज्ञे देवाः सर्वे सवासवाः ॥ आजग्मुश्चाश्विनौ तत्र सोमार्थमुपजग्मतुः ॥ ५० ॥

तदनंतर पृथ्वीपति शर्याति परम संतुष्ट हो च्यवन मुनिके उन वचनोंका अनुमोदन करने लगे ॥ ४६ ॥ राजा च्यवनका सन्मान देखकर अत्यन्त प्रसन्नमनसे भार्य्याके सहित मुनिवरकी बात कहते कहते नगरकी ओर चले ॥ ४७ ॥ उन राजाके किसी अभिलषित धनरत्नादिकी कमी नहीं थी अतएव मुनि वरको आज्ञानुसार उन्होंने यज्ञ करनेके श्रेष्ठ दिनमें अत्युत्तम यज्ञभूमि प्रस्तुत कराई ॥ ४८ ॥ अन्तमें भृगुनंदन च्यवनके वसिष्ठ इत्यादि पूज्यपाद मुनि योंको बुलाकर पृथ्वीपति शर्यातिको उस यज्ञमें दीक्षित किया ॥ ४९ ॥ वह विस्तृत यज्ञ आरम्भ होनेपर इंद्रादि देवता लोग और दोनों अश्विनी कुमार सोमपान करनेके लिये उस स्थलमें आये ॥ ॥ ५० ॥

किंतु इंद्र उस यज्ञमण्डपमें दोनों अश्विनीकुमारोंको देखकर शंकित हो सम्पूर्ण देवताओंसे पूंछने लगे यह किस कारणसे इस स्थानमें उपस्थित हुए हैं ? ॥ ५१ ॥ यह चिकित्सक हैं अतएव कभी सोमपानके योग्य पात्र नही हैं तब कौन पुरुष इस विस्तृत अग्निष्टोम यज्ञमें इनको लाया ? देवताओंने तिस काल राजाके सुविस्तृत यज्ञस्थलमें देवराज इन्द्रको उस वचनका कुछ उत्तर न दिया ॥ ५२ ॥ तब च्यवनमुनिने दोनों अश्वनीकुमारोंको देनेके लिये जिस समय सोम ग्रहण किया उसी समय इन्द्रने उनको निवारण करके कहा पहलेसे ही इनका यज्ञभागमें अधिकार निषिद्ध है अतएव इनके लिये सोमग्रह ग्रहण न कीजिये ॥ ५३ ॥ च्यवन बोले हे शचीपते ! यह सूर्यके पुत्र हैं तो यह अश्विनी कुमार किस लिये सोमग्रहण करनेके उपयुक्त नहीं हैं आप यह सत्य कहिये ॥ ५४ ॥ यह संकरजातीय नहीं हैं सूर्य देवकी धर्म पत्नीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया है हे देवेन्द्र ! तो यह भिषग्वर किस दोससे

इंद्रस्तु शंकितस्तत्र वीक्ष्य तानश्विनावुभौ ॥ पप्रच्छ च सुरान्सर्वान्किमेतौ समुपागतौ ॥ ५१ ॥ चिकित्सकौ न सोमार्हौ केनानीताविहेति च ॥ नाब्रुवन्नमरास्तत्र राज्ञस्तु वितते मखे ॥५२॥ अगृह्णाच्च्यवनः सोममश्विनोर्देवयोस्तदा ॥ शक्रस्तं वारयामास मा गृहाणतयोर्ग्रहम् ॥ ५३ ॥ तमाह च्यवनस्तत्र कथमेतौ रवेः सुतौ ॥ न ग्रहार्हौ च नासत्यौ ब्रूहि सत्यं शचीपते ॥ ५४ ॥ न संकरौ समुत्पन्नौ धर्मपत्नीसुतौ रवेः ॥ केन दोषेण देवेंद्रनार्हौ सोमं भिषग्वरौ ॥५५॥ निर्णयोऽत्र मखे शक्र कर्तव्यो दैवतैः सह ॥ ग्राहयिष्याम्यहं सोमं कृतौ तौ सोमपौ मया ॥५६॥ प्रेरितोऽसौ मया राजा मखाय मघवन्किल ॥ एतदर्थं करिष्यामि सत्यं मेवचनं विभो ॥५७॥ आभ्यामुपकृतं शक्र तथा दत्तं नवं वयः ॥ तस्मात्प्रत्युपकारस्तु कर्तव्यः सर्वथा मया ॥ ५८ ॥ इंद्र उवाच ॥ चिकित्सकौ कृता वेतौ नासत्यौ निंदितौ सुरैः ॥ उभावेतौ न सोमार्हौ मा ग्रहाणैतयोर्ग्रहम् ॥ ५९ ॥

सोमपान नहीं कर सकेंगे ? यह आप कहिये ॥ ५५ ॥ हे शक्र ! सम्पूर्ण देवता लोग मिलकर इस यज्ञमें इस विषय का निर्णय कीजिये हे भगवन् ! मैंने इनको सोमपायी करनेकी प्रतिज्ञा की है ॥ ५६ ॥ अतएव अपना वचन पालन करनेके लिये राजाको यज्ञमें दीक्षित किया है सुतरां इस यज्ञमें मैं इसको सोमग्रहण कराकर अपने सत्यको पालन करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ हे शक्र ! इन्होंने मुझको नवीन अवस्था और नेत्र प्रदान करके विशेष उपकार किया है अतएव मैं यथाशक्ति इनका प्रत्युपकार करूंगा ॥ ५८ ॥ इन्द्रने कहा देवताओंने इन दोनों अश्विनीकुमारोंको चिकित्सक कार्यमें नियुक्त किया है इसी कारणसे यह देवसमाजमें निन्दनीय हैं सुतरां यह सोमपान करनेके उपयुक्त नहीं हैं अतएव आप इनके लिये सोमपानग्रहण न कीजिये ॥५९॥

च्यवनमुनि बोले हे इन्द्र ! तुम अहल्याके जार होकर क्यों इतना निरर्थक कोप प्रकाश करते हो तुमने विश्वास घातकतापूर्वक वृत्रासुरको मारा है तुम्हारे समान पापात्माके वचनसे सूर्यात्मज अश्विनी कुमार सोमपान न करें यह कभी सम्भव नहीं हो सकता ॥ ६० ॥ हे भूप ! इस प्रकार विवाद उपस्थित होने पर उनसे कोई भी कुछ नहीं कहेगा उस समय तिग्मतेजा भार्गवने अपने तपोबलसे उनको सोमग्रहण कराई ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! जब दोनों अश्विनीकुमारोंको सोमपूर्णपात्र दिया गया तब इन्द्रने अत्यन्त क्रोधित हो अपना बलप्रदर्शनपूर्वक मुनिवर च्यवनसे कहा ॥ १ ॥ हे ब्रह्मबन्धो ! कभी तुम इनको ऐसा सन्मान स्थापन करनेमें समर्थ नहीं होगे तुम जबमेरे प्रति विद्वेष प्रकाश करते हो तब निश्चय ही विश्वरूपके समान तुम्हारा वध करूंगा ॥ २ ॥ च्यवनमुनि बोले हे मघवन् ! जिन्होंने रूपलावण्य और तेजप्रदान

च्यवनउवाच ॥ अहल्याजार संयच्छ कोपं चाद्य निरर्थकम् ॥ वृत्रघ्न किं हि नासत्यौ न सोमार्हौसुरात्मजौ ॥ ६० ॥ एवं विवादे समुपस्थिते च न कोऽपि वाचं तमुवाच भूप ॥ ग्रहं तयोर्भार्गवतिग्मतेजाः संग्राहयामास तपोबलेन ॥ ६१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ दत्ते ग्रहे तु राजेंद्र वासवः कुपितो भृशम् ॥ प्रोवाच च्यवनं तत्र दर्शयन्बलमात्मनः ॥ १ ॥ मा ब्रह्मबंधो मर्यादामिमां त्वं कर्तुमर्हसि ॥ वधिष्यामि द्विषंतं त्वां विश्वरूपमिवापरम् ॥ २ ॥ च्यवन उवाच ॥ माऽवमंस्था महात्मानौ रूपद्रविणवर्चसा ॥ यौ चक्रतुर्मां मघवन्वृंदारकमिवापरम् ॥ ३ ॥ ऋते त्वां विबुधाश्चान्ये कथं वाऽऽददते ग्रहम् ॥ अश्विनावपि देवेंद्र देवौ विद्धि परंतपौ ॥ ४ ॥ इंद्र उवाच ॥ भिषजौ नार्हतः कामं ग्रहं यज्ञे कथंचन ॥ यदि दित्ससि मंदात्मन् शिरश्छेत्स्यामि सांप्रतम् ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ अनादृत्य तु तद्वाक्यं वासवस्य च भार्गवः ॥ ग्रहं तु ग्राहयामासभर्त्संयन्निव तं भृशम् ॥६॥

करके मुझे साक्षात् देवमूर्तिके समान मनोहर किया है तुम उन दोनों महात्माओंका अपमान मत करो ॥ ३ ॥ हे देवेन्द्र ! जब अन्य समस्तदेवता तुमको छोड़कर सोमपान ग्रहण करते हैं तब ऐसे महाप्रभावयुक्त देव दोनों अश्विनीकुमार भी अवश्य इसको ग्रहण कर सकते हैं ॥ ४ ॥ इन्द्रने कहा यह भिषग हैं इस कारण यज्ञमें सोमपात्र ग्रहण करनेके किसी प्रकार अधिकारी नहीं होंगे हेदुर्मते ! यदि तुम इनको सोमपात्र प्रदान करनेकी इच्छा करते हो तो मैं अभी तुम्हारा शिर काट डालूंगा ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले हे भारतभूषण ! भार्गवने इन्द्रके इन वचनोंका निरादर करके तथा उनको अत्यन्त तिरस्कार पूर्वक दोनों अश्विनीकुमारों को सोम ग्रहण कराया ॥ ६ ॥

सोमपानकी इच्छासे जब उन्होंने सोमपात्र ग्रहण किया तब बलभित् इंद्रने उनको देखकर यह वचन कहा ॥ ७ ॥ अपने प्रयोजनसे तुम यदि इनको स्वयं सोमग्रहण कराओगे तो विश्वरूपके समान तुम्हारे मस्तकपर आयुध वज्र प्रहार करूंगा ॥ ८ ॥ अत्यंत गर्वितभार्गवमुनि इंद्रको यह वचन सुन महा क्रोधित हुए और विधिपूर्वक दोनों अश्विनी कुमरोंको सोमग्रहण कराया ॥ ९ ॥ इंद्रने भी क्रोधसे संपूर्ण देवताओंके सामने उनके ऊपर अपना प्रधान वज्र चलाया तब उस आयुधकी करोड सूर्य के समान प्रभा प्रकाशित होने लगी ॥ १० ॥ तब महर्षि च्यवनने वज्रको चलाता हुआ देखकर तपके प्रभावसे अमिततेजा इंद्रके वज्रको स्तम्भित कर दिया ॥ ११ ॥ तब महाबाहु मुनिवर अभिचार क्रिया द्वारा इंद्रको संहार करनेकी इच्छासे पकहव्य मंत्रपूत करके अग्निमें

सोमपात्रं यदा ताभ्यां गृहीतं तु पिपासया ॥ समीक्ष्य बलभिद्देव इदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ आभ्यामर्थाय सोमं त्वं ग्राहयिष्यसि चेत्स्वयम् ॥ वज्रं तु प्रहरिष्यामि विश्वरूपमिवापरम् ॥ ८ ॥ वासवेनैवमुक्तस्तु भार्गवश्चातिगर्वितः ॥ जग्राह विधिवत्सोममश्विभ्यामति मन्युमान् ॥ ९ ॥ इंद्रोऽपि प्राक्षिपत्कोपाद्वज्रमस्मै स्वमायुधम् ॥ पश्यतां सर्वदेवानां सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ १० ॥ प्रेरितं चाशनिं प्रेक्ष्य च्यवन स्तपसा ततः ॥ स्तंभयामास वज्रं स शक्रस्यामिततेजसः ॥ ११ ॥ कृत्यया स महाबाहुरिंद्रं हंतु मिहोद्यतः ॥ जुहावाग्नौ शृतं हव्यं मंत्रेण मुनिसत्तमः ॥ १२ ॥ तत्र कृत्या समुत्पन्ना च्यवनस्य तपोबलात् ॥ प्रबलः पुरुषः क्रूरो बृह त्कायो महासुरः ॥ १३ ॥ मदो नाम महाघोरो भयदः प्राणिनामिह ॥ शरीरे पर्वताकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयानकः ॥ १४ ॥ चतस्रश्चाऽऽयता दंष्ट्रा योजनानां शतं शतम् ॥ इतरे त्वस्य दशना बभूवुर्दशयोजनाः ॥ १५ ॥ बाहू पर्वतसंकशावायतौ क्रूरदर्शनौ ॥ जिह्वा तु भीषणा क्रूरा लेलिहाना नभस्तलम् ॥ १६ ॥ ग्रीवा तु गिरिशृंगाभा कठिना भीषणा भृशम् ॥ नखा व्याघ्र नखप्रख्याः केशाश्चातीव भीषणा ॥ १७ ॥

आहुति प्रदान करने लगे ॥ १२ ॥ अमिततेजा मुनिवर च्यवनके तपोबलद्वारा उस अग्निकुण्डसे कृत्या उत्पन्न हुई उस कृत्यासे प्रबल पराक्रमी पुरुषाकार क्रूरस्वभाव विशाल शरीरवाला एक महान् असुर उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ वह महाघोर मदनामक असुर इस लोकमें प्राणियोंको भयदायक था उसका शरीर पर्वतके समान बड़ा सम्पूर्ण दाँत तीक्ष्ण और भयानक थे उनमें चार दांत शत योजन चौडे और अन्य दांत दश योजन विस्तीर्ण थे ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ और उसके दोनों बाहु पर्वतके समान दीर्घ और घोरदर्शन थे जिह्वा भीषण कर्कश और इतनी बडी थी कि नभोमण्डलको स्पर्श करने लगी ॥१६॥ उसकी ग्रीवा पर्वतके शिखरके समान कठिन और अत्यन्त भीषणाकार थी, नख सब व्याघ्रके नखके समान और केशसमूह अत्यन्त भीषण थे ॥१७॥

उसका शरीर कज्जलके समान कृष्णवर्ण तथा मुखमण्डल विकटाकार और भयानक था दोनों नेत्र अग्निके समान उज्ज्वल और अत्यंत भयानक थे ॥१८॥ उसकी एक हनु (ठोडी) पृथ्वीमें और दूसरीस्वर्गको स्पर्शकर रही थी इस प्रकार बृहत्काय मदनामक असुर उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ सम्पूर्ण देवतालोग उसको देखकर सहसा भीत हो गये इन्द्रने भी उसको देखकर भीत हो फिर युद्ध करनेकी इच्छा न की ॥ २० ॥ दैत्यभी इच्छानुसार इंद्रके उस वज्रको मुखमें डालकर नभोमण्डल देखता हुआ जगत्को एकवारही ग्रास करनेके लिये खड़ा हुआ ॥ २१ ॥ वह अत्यन्त क्रोधित होकर इंद्रको भक्षण करनेके लिये दौड़ा यह देखकर वहां स्थित देवता " हम मरे " यह कहकर चीत्कार करने लगे ॥ २२ ॥ दोनों बाहुओंके स्तम्भित हो जानेसे पाकशासन इंद्र वज्र चलानेको

शरीरं कज्जलाभं च तस्य चास्यं भयानकम् ॥ नेत्रे दावानलप्रख्ये भीषणे च भयानके ॥ १८ ॥ हनुरेका स्थिता तस्य भूमावेका दिवं गता ॥ एवंविधः समुत्पन्नो मदो नाम बृहत्तनुः ॥१९॥ तं विलोक्य सुराः सर्वे भयमाजग्मुरंहसा ॥ इंद्रोऽपि भयसंत्रस्तो युद्धाय न मनो दधे ॥ २० ॥ दैत्योऽपि वदने कामं वज्रमादाय संस्थितः ॥ व्याप्तं नभो घोरदृष्टिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम् ॥ २१ ॥ स भक्षयिष्यन्संक्रुद्धः शतक्रतुमुपाद्रवत् ॥ चुक्रुशुश्च सुरा सर्वे हा हताः स्मेति संस्थिताः ॥ २२ ॥ इंद्रः स्तंभितबाहुस्तु मुमुक्षुर्वज्रमंतिकात् ॥ न शशाक पविं तस्मिन्प्रहर्तुं पाकशासनः ॥ २३ ॥ वज्रहस्तः सुरेशानस्तं वीक्ष्य कालसन्निभम् ॥ सस्मार मनसा तत्र गुरुं समयकोविदम् ॥ २४ ॥ स्मरणादाजगामाशु बृहस्पतिरुदारधीः ॥ गुरुस्तत्समयं दृष्ट्वा विपत्तिसदृशं महत् ॥ २५ ॥ विचार्य मनसा कृत्यं तमुवाच शचीपतिम् ॥ दुःसाध्योऽयं महामंत्रैस्त्वयं वज्रेण वासव ॥ २६ ॥ असुरो मद संज्ञस्तु यज्ञकुंडात्समुत्थितः ॥ तपोबल मृषेः सम्यक् च्यवनस्य महाबल ॥ २७ ॥ अनिवार्यो ह्ययं शत्रुस्त्वयादेवैस्तथा मया ॥ शरणं याहि देवेश च्यवनस्य महात्मनः ॥ २८ ॥

इच्छा करकेभी किसी प्रकार उसको प्रहार न कर सके ॥२३॥ तब वज्रहस्त सुरपतिने कालके समान असुरको देखकर समयके जाननेवाले गुरुको मनमें स्मरण किया ॥२४॥ उदारबुद्धि बृहस्पतिजी महत्‌विपत्तिका समय जानकर तत्कालस्मरण करतेही आये ॥२५॥ तब कर्तव्य कार्य्य मनमें विचारकर उन्होंने शचीपति इंद्रसे कहा हे वासव ! इसका वज्रसे निवारित होना तो दूर रहे वरन् इसको महामंत्रके बलसे भी निवारण करना कठिन है ॥२६॥ यह महाबलवान् मदनामक असुर च्यवन ऋषिके तपोबलप्रभावद्वारा यज्ञकुण्डसे निकला है इसमें महर्षि प्रभूत तपोवीर्य्य प्रकाशित हुआ है ॥ २७ ॥ हे देवेश ! इस शत्रुको तुम मैं अथवा देवता कोई भी निवारण करनमें समर्थ नहीं होगा अतएव तुम महात्मा च्यवनकी शरणागत होओ ॥ २८ ॥

जो पुरुष परशक्तिका भक्त है उसके कोपको दूसरेकी तो बात क्या है ब्रह्माजीभी निवारण नहीं कर सकते च्यवनमुनि पराशक्तिके भक्त हैं इस कारण दूसरा कोई उनको निवारण करनेमें कभी समर्थ नहीं होगा वेही निजकृत कृत्याको निवारण करेंगे इसमें संदेह नहीं ॥ २९ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! इन्द्र गुरुका यह उपदेश सुनकर फिर मुनिके समीप गये और डरसहित मस्तक झुकाय उनको प्रणामकर कहनेलगे ॥३०॥ हे मुनिवर ! मुझको क्षमा करके देवताओंके विनाशमें उद्यत उस असुरको निवारण कीजिये हे सर्वज्ञ! आप प्रसन्न हूजिये मैं आपका वचन प्रतिपालन करता हूं ॥ ३१ ॥ हे भार्गव! अबसे यह अश्विनीकुमार सोमपानके अधिकारी हुए यह आपसे सत्य कहता हूं हे विप्र ! आप मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये ॥ ३२ ॥ हे तपोधन ! आपका यह उद्यम कभी

स निवारयिता नूनं कृत्यामात्मकृतां किल॥न निवारयितुं शक्ताः शक्तिभक्तरुषं क्वचित्॥२९॥व्यास उवाच॥ इत्युक्तो गुरुणा शक्रस्तदाऽऽगच्छन्मुनिं प्रति ॥ प्रणम्य शिरसा नम्रस्तमुवाच भयान्वितः ॥ ३० ॥ क्षमस्व मुनिशार्दूल शमयासुरमुद्यतम् ॥ प्रसन्नो भव सर्वज्ञ वचनं ते करोम्यहम् ॥ ३१ ॥ सोमार्हावश्विनावेतावद्यप्रभृति भार्गव ॥ भविष्यतः सत्यमेतद्वचो विप्र प्रसीद मे ॥ ३२ ॥ मिथ्या ते नोद्यमो ह्येष भवत्वेव तपोधन ॥ जाने त्वमपि धर्मज्ञ मिथ्या नैव करिष्यसि ॥ ३३ ॥ सोमपावश्विनावेतौ त्वत्कृतौ च सदैव हि ॥ भविष्यतश्च शर्यातेः कीर्तिस्तु विपुला भवेत् ॥ ३४ ॥ मया यद्धि कृतं कर्म सर्वथा तु मुनिसत्तम ॥ परीक्षार्थं तु विज्ञेयं तव वीर्यप्रकाशनम् ॥ ३५ ॥ प्रसादं कुरु मे ब्रह्मन्मदं संहर चोत्थितम् ॥ कल्याणं सर्वदेवानां तथा भूयो विधीयताम् ॥ ३६ ॥ एवमुक्तस्तु शक्रेण च्यवनः परमार्थवित् ॥ संजहार ततः कोपं समुत्पन्नं विरोधजम् ॥ ३७ ॥

निष्फल नहीं होगा विशेष कर मैं आपको धर्मज्ञ जानता हूं अतएव आप अपने वचन कभी मिथ्या नहीं करेंगे ॥ ३३ ॥ यह अश्विनीकुमार आपकी कृपासे सदाही सोमपायी होंगे और राजा शर्यातिकी कीर्तिकी भी सीमा नहीं रहेगी ॥ ३४ ॥ हे मुनिसत्तम ! आप यह निश्चय जानिये कि मैंने जो कर्म किया है वह केवल आपके तपोवीर्यकी परीक्षा करनेके लिये किया है ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन् ! यज्ञकुण्डसे निकले हुए इस मदनामक असुरको संहार कर मेरे प्रति कृपा कीजिये इससे सम्पूर्ण देवताओंका कल्याण होगा इसमें संदेह नहीं ॥३६॥ परमार्थके जाननेवाले मुनिवर च्यवनने इंद्रके इस प्रकार कातरतापूर्ण वचन सुनकर उनके सहित विरोध होनेसे जो क्रोध उत्पन्न हुआ था उसको दूर किया ॥ ३७ ॥

फिर महर्षि च्यवनने मदनामक असुरके भयसे उद्विग्न देवताओंको समझाया उस मदको स्त्रीजाति सुरापान द्यूतक्रीडा और मृगया इन चार भागोंमें विभक्त किया ॥ ३८ ॥ इन सम्पूर्ण विषयोंमें मद सदा वास करेगा मदके इस प्रकार विभक्त होनेपर भयचकित देवेन्द्र रक्षा पाय सावधान हुए तब च्यवनने सम्पूर्ण देवताओंको यथाविधि स्थापितकर उस यज्ञको समाप्त किया ॥ ३९ ॥ फिर धर्मात्मा भार्गवने महात्मा इंद्र और दोनों अश्विनीकुमारोंको सम्यक् प्रकासे संस्कृत सोमपान कराई ॥ ४० ॥ हे राजन्! च्यवन मुनिने उन आर्य सूर्यपुत्र दोनों अश्विनीकुमारोंको तपोबलके प्रभावसे इस प्रकार सोमपायी किया था ॥ ४१ ॥ तबसे वह सरोवर यूपमंडित हो विख्यात हुआ और मुनिका आश्रम भी भूमंडलमें सम्यक् प्रकार विख्यात और सन्मानित हुआ ॥ ४२ ॥ शर्याति

देवमाश्वास्य संविग्नं भार्गवस्तु मदं ततः ॥ व्यभजत्स्त्रीषु पानेषु द्यूतेषु मृग यासु च ॥ ३८ ॥ मदं विभज्य देवेंद्रमाश्वास्य चकितं भिया ॥ संस्थाप्य च सुरान्सर्वान्मखं तस्य न्यवर्तयत् ॥ ३९ ॥ ततस्तु संस्कृतं सोमं वासवाय महात्मने ॥ अश्विभ्यां सर्वधर्मात्मा पाययामास भार्गवः ॥ ४० ॥ एवं तौ च्यवनेनार्यावश्विनौ रविपुत्रकौ ॥ विहितौ सोमपौ राजन्सर्वथा तपसो बलात् ॥ ४१ ॥ सरस्तदपि विख्यातं जातं यूपविमंडितम् ॥ आश्रमस्तु मुनेः सम्यक्पृथिव्यां विश्रुतोऽभवत् ॥ ४२ ॥ शर्यातिरपि संतुष्टो ह्यभवत्तेन कर्मणा ॥ यज्ञं समाप्य नगरे जगाम सचिवैर्वृतः ॥ ४३ ॥ राज्यं चकार धर्मज्ञो मनुपुत्रः प्रतापवान् ॥ आनर्तस्तस्य पुत्रोऽभूदानर्ताद्रेवतोऽभवत् ॥ ४४ ॥ सोऽतःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ॥ आस्थितोऽभुंक्तविषयानानर्तादी नरिंदमः ॥ ४५ ॥ तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् ॥ पुत्री च रेवती नाम्ना सुंदरी शुभलक्षणा ॥ ४६ ॥ वरयोग्या यदा जाता तदा राजा च रेवतः ॥ चिंतयामास राजेंद्रो राजपुत्रान्कुलोद्भवान् ॥ ४७ ॥

राजा भी उस कार्यसे परम संतुष्ट हुए और यज्ञ समाप्त करके मंत्रियोंके सहित नगरको चले गये ॥ ४३ ॥ अनंतर वह मनुपुत्र प्रतापवान् धर्मज्ञ नरपाल शर्याति निर्विघ्न राज्य शासन करने लगे उनका पुत्र आनर्त्त और आनर्त्तके रेवतनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ४४ ॥ वह रेवत समुद्रमें कुशस्थली नगरी स्थापनपूर्वक वहां वास कर आनर्त्तादि प्रदेशस्थ समस्त विषय भोग करने लगा ॥ ४५ ॥ रेवतके सौ पुत्र उत्पन्न हुए शुभ ककुद्मी बडे और पवित्र स्वभावके थे और उन परम सुन्दरी रेवती नामक एक शुभलक्षणयुक्त कन्या उत्पन्न हुई ॥ ४६ ॥ यह कन्या विवाहके योग्य हुई तब राजेन्द्र रेवत सत्कुलोत्पन्न राजपुत्रके निमित्त चिन्ता करने लगे ॥ ४७ ॥

वह राजराजेश्वर पृथ्वीपति रेवत गिरिमें वासकर आनर्तोंमें राज्य शासन करने लगे ॥ ४८ ॥ यह कन्या किसको दें ? राजाने मनमें इसप्रकार चिंतायुक्त हो स्थिर किया कि, मैं ब्रह्माके निकट जाय उन सुरपूजित सर्वज्ञ प्रजापतिसे यह विषय पूछूँगा ॥ ४९ ॥ इस प्रकार विचार वह भूपाल ब्रह्माजीसे पूँछनेकी इच्छा कर अपनी कन्या रेवतीको संग ले शीघ्रतासहित ब्रह्मलोकको गया ॥ ५० ॥ उस स्थानमे देव यज्ञ वेद पर्वत और सरित संपूर्ण दिव्यदेह धारण कर विराजमान हैं ॥ ५१ ॥ वहां सनातनऋषि, सिद्ध, गंधर्व, पन्नग और चराचरगण हाथ जोडे खडे हुए ब्रह्माजीका स्तव कर रहे हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ जनमेजयने कहा हे ब्रह्मन् नरपति रेवत क्षत्रिय होकर अपनी कन्याको संग ले स्वयं किस प्रकार

रैवतं नाम च गिरिमाश्रितः पृथिवीपतिः ॥ चकार राज्यं बलवानानर्तेषु नराधिपः ॥ ४८ ॥ विचिन्त्य मनसा राजा कस्मै देया मया सुता ॥ गत्वा पृच्छामि ब्रह्माणं सर्वज्ञं सुरपूजितम् ॥ ४९ ॥ इति संचित्य भूपाल सुतामादाय रेवतीम् ॥ ब्रह्मलोकं जगामाशु प्रष्टुकामः पितामहम् ॥ ५० ॥ यत्र देवाश्च यज्ञाश्च छंदांसि पर्वतास्तथा ॥ अब्धयः सरितश्चापि दिव्यरूपधराः स्थिताः ॥ ५१ ॥ ऋषयः सिद्धगंधर्वाः पन्नगाश्चारणास्तथा ॥ तस्थुः प्रांजलयः सर्वे स्तुवंतश्च पुरातनाः ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ जनमेजय उवाच ॥ संशयोऽयं महान्ब्रह्मन्वर्तसे मम मानसे ॥ ब्रह्मलोकं गतो राजा रेवतीसंयुतः स्वयम् ॥ १ ॥ मया पूर्वं श्रुतं कृत्स्नं ब्राह्मणेभ्यः कथांतरे ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मविच्छांतो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ २ ॥ राजा कथं गतस्तत्र रेवतीसंयुतः स्वयम् ॥ सत्यलोकेऽतिदुष्प्रापे भूर्लोकादिति संशयः ॥ ३ ॥ मृतः स्वर्गमवाप्नोति सर्वशास्त्रेषु निर्णयः "मानुषेण तु देहन ब्रह्मलोके गतिः कथम् ॥" स्वर्गात्पुनः कथं लोके मानुषे जायते गतिः ॥ ४ ॥ एतन्मे संशयं विद्वंश्छेत्तुमर्हसि सांप्रतम् ॥ यथा राजा गतस्तत्र प्रष्टुकामः प्रजापतिम् ॥ ५ ॥

ब्रह्मलोकमें गये ? इस विषयका मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है ॥ १ ॥ पहले मैंने यह विषय ब्राह्मणोंके कथा प्रसंगमें भली भाँति सुना है कि जो ब्राह्मण शांत और ब्रह्मके जाननेवाले हैं वही ब्रह्मलोकको प्राप्त हो सकते हैं ॥ २ ॥ सत्यलोक मनुष्य जातिके पक्षमें अत्यंत कठिन है तो राजा स्वयं रेवतीको संग ले भूर्लोकसे किस प्रकार उस सत्यमेंलोक गये ? यही मेरा संशय है ॥ ३ ॥ मनुष्य पना देह त्याग कर स्वर्गसे प्राप्त करते हैं यह सब शास्त्रोंमें निणर्य किया है तब मनुष्य देहीसेही ब्रह्मलोकमें किस प्रकार गये ? और स्वर्गसे फिर मनुष्यलोकमें किस प्रकार आये ? ॥ ४ ॥ तात्पर्य यह है कि, राजरेवत प्रजापतिसे पूँछनेकी इच्छा करके किस प्रहार ब्रह्मलोकमें गये आप मेरा यह संशय दूर कीजिये ॥ ५ ॥

व्यासजीने कहा हे राजन् ! मेरुके शिखरमें इंद्रकी अमरावतीपुरी यमकी संशयमनी पुरी ॥ ६ ॥ सत्यलोक वह्निलोक कैलास वैष्णवधाम और वैकुण्ठ इत्यादि संपूणलोकही प्रतिष्ठित हैं ॥ ७ ॥ देखो महाधनुर्द्धर पृथानंदन अर्ज्जुनने इंद्रलोकमें आयकर पांचवर्ष व्यतीत किये ॥ ८ ॥ पूर्वकालमें ककुत्स्थ इत्यादि अन्यान्य राजा भी मनुष्य देहसेही इन्द्रके समीप गये थे और महाबलवान् दैत्योंने इंद्रलोक अथवा अमरावतीको जीतकर वहाँ जाय इच्छानुसार वास किया ॥ ९ ॥ १० ॥ पूर्वकालके समय सार्वभौम नरपति राजा महाभिषके ब्रह्मलोक जानेपर परमसुन्दरी गंगाभी उसी समय ब्रह्मलोकमें आरही थीं इसी अवसरमें राजाने उनको देखा ॥ ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इसी समय दैववशसे आयुने पहरनेका वस्त्र उड़ा दिया राजाके उस सुंदरीकी कुछेक नग्न अवस्था

व्यास उवाच ॥ मेरोस्तु शिखरे राजन्सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ इंद्रलोको वह्निलोको या च संयमिनी पुरी ॥ ६ ॥ तथैव सत्यलोकश्च कैलासश्च तथा पुनः ॥ वैकुंठश्च पुनस्तत्र वैष्णवं पदमुच्यते॥७॥यथाऽर्जुनः शक्रलोके गतः पार्थो धनुर्धरः ॥ पञ्च वर्षाणि कौंतेय स्थित स्तत्र सुरालये ॥ ८ ॥ मानुषेणैव देहेन वासवस्य च सन्निधौ ॥ तथैवान्येऽपि भूपाला ककुत्स्थ प्रमुखाः किल ॥ ९ ॥ स्वर्लोकगतयः पश्चाद्दैत्याश्चापि महाबलाः ॥ जित्वेंद्रसदनं प्राप्य संस्थितास्तत्र कामतः ॥ १० ॥ महाभिषः पुरा राजा ब्रह्मलोकं गतः स्वराट् ॥ आगच्छंतीं नृपो गंगामपश्यच्चातिसुंदरीम् ॥११॥ वायुनांबरमस्यास्तु दैवादपहृतं नृप॥ किंचिन्नग्ना नृपेणाथ दृष्ट्वा सा सुंदरी तथा ॥१२॥ स्मितं चकार कामार्तः सा च किंचिज्जहास वै ॥ ब्रह्मणा तौ तदा दृष्टौ शप्तौ यातौ वसुंधराम् ॥ १३ ॥ वैकुंठेऽपि सुराः सर्वे पीडिता दैत्यदानवैः ॥ गत्वा हरिं जगन्नाथमस्तुवन्कमलापतिम् ॥ १४ ॥ सन्देहो नाऽत्र कर्तव्यः सर्वथा नृपसत्तम ॥ गम्याः सर्वेऽपि लोकाः स्युर्मानवानां नराधिप ॥ १५ ॥ अवश्यं कृतपुण्यानां तापसानां नराधिप ॥ पुण्यसद्भाव एवात्र गमने कारणं नृप ॥ १६ ॥

देख कामार्त्तचित्त हो ॥ १२ ॥ अप्रगटभावसे हँसनेपर फिर वह गंगाभी हसी उस समय ब्रह्माजीने उन दोनोंकी इस प्रकार अवस्था देखकर तत्ककाल शाप दिया उसीके अनुसार उन्होंने भूर्लोकमें आकर जन्म ग्रहण किया ॥ १३ ॥ संपूर्ण देवता दानवोंके हाथसे दुःखित हो वैकुण्ठमें जाय जगन्नाथ कमलापति हरिका स्तव करते थे ॥ १४ ॥ हे नरनाथ ! मनुष्य संपूर्ण लोकमें भी जा सकते हैं इसमें संदेह नहीं ॥१५॥ जो अनेकानेकपुण्या पुण्यसञ्चय करते हैं ऐसे महात्मा यजमान और तपस्वियोंकी तो निश्चय ही स्वर्गमें गति होती है हे. राजन् ! पुण्यकी बहुतायतही स्वर्गमें जानेका एकमात्र कारण है अतएव इस विषयमें कोई संदेह करना आपको उचित नहीं है ॥ १६ ॥

इस प्रकार जो यजन यज्ञ अथवा तपस्या करते हैं वह उत्तम लोकमें जाते हैं जनमेजयने कहा हे मुनिवर रेवतराजा शोभायमान नेत्रोंवाली कन्या रेवतीको संग ले ॥ १७ ॥ ब्रह्मलोकमें गये किंतु उन्होंने वहां जाकर अंतमें क्या किया ! ब्रह्माजीने उनको क्या आज्ञा दी ? और उन्होंने उनकी आज्ञानुसार किसको कन्या दी ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप यह संपूर्ण वृत्तांत मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये व्यासजीने कहा हे महीपाल ! वह वृत्तांत सुनो रेवतराजा ॥ १९ ॥ कन्याके वरका विषय पूंछनेको जिस समय ब्रह्मलोकमें गये उस समय ब्रह्मलोकमें गाना बजाना हो रहा था राजाने कन्याके सहित सभाके अवसरकी अपेक्षासे क्षणकाल प्रतीक्षा की ॥ २० ॥ किंतु गाना सुनकर कन्यासहित ऐसे संतुष्ट हुए कि, तृप्त न वरन् सुनतेही रहे उस गानेबजानेके समाप्त होनेपर

तथैव यजमानानां यज्ञेन भावितात्मनाम् ॥ जनमेजय उवाच ॥ रेवतो रेवतीं कन्यां गृहीत्वा चारुलोचनाम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मलोकं गतः पश्चात्किं कृतं तेन भूभुजा ॥ ब्रह्मणा किं समादिष्टं कस्मै दत्तासुता पुनः ॥ १८ ॥ तत्सर्वं विस्तराद्ब्रह्मन्कथय त्वं ममाधुना ॥ व्यास उवाच ॥ निशामय महीपाल राजा रेवतकः किल ॥ १९ ॥ पुत्र्या वरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकं गतो यदा ॥ आवर्तमाने गांधर्वे स्थितो लब्धक्षणः क्षणम् ॥२०॥ शृण्वन्नतृप्यद्धृष्टात्मा सभायां तु सकन्यकः ॥ समाप्ते तत्र गांधर्वे प्रणम्य परमेश्वरम् ॥ २१ ॥ दर्शयित्वा सुतां तस्मै स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ॥ राजोवाच ॥ वरं कथय देवेश कन्येयं मम पुत्रिका ॥ २२ ॥ देया कस्मैमया ब्रह्मन्प्रष्टुं त्वां समुपागतः ॥ बहवो राजपुत्रा मे वीक्षिताः कुलसंभवाः ॥ २३ ॥ कस्मिंश्चिन्मे मनः कामं नोपतिष्ठति चंचलम् ॥ तस्मात्त्वां देवदेवेश प्रष्टुमत्रागतोऽस्म्यहम् ॥ २४ ॥ तदाज्ञापय सर्वज्ञ योग्यं राजसुतं वरम् ॥ कुलीनं बलवंतं च सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ २५ ॥ दातारं धर्मशीलं च राजपुत्रं समादिश ॥ व्यास उवाच ॥ तदाकर्ण्य जगत्कर्ता वचनं नृपतेस्तदा ॥ २६ ॥

राजाने परमेष्ठ ब्रह्माको प्रणाम कर ॥ २१ ॥ उनको कन्या दिखाय अपना अभिप्राय कहा, राजा बोले हे देव ! यह वारोहा मेरी कन्या दिखाय कौन है यह आप बता दीजिये ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह कन्या किसको प्रदान करूं यह बात पूँछनेकोही आपके समीप आया हूं सत्कुलोत्पन्न अनेक राजपुत्र ढूंढकर देखे हैं ॥ २३ ॥ किंतु उनमेंसे कोई पुरुष भी मेरे मनमें स्थिर नहीं हुआ हे देवदेवेश ! इसी कारण पूँछनेके लिये इस स्थानमें आया हूं ॥ २४ ॥ अतएव आप इसके उपयुक्त एक वर नियतकर दीजिये वह वर कुलीन बलवान् धर्मात्मा सर्व सुलक्षणयुक्त ॥ २५ ॥ और दाता धर्मशील राजाका पुत्र हो आपसे यही मेरी प्रार्थना है ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! जब जगत्कर्ता पद्मयोनि नरपतिका यह वचन सुन ॥ २६ ॥

कालका अतिक्रम देख हँसते हँसते उनसे कहने लगे हे राजन् ! तुमने जिन सब राजपुत्रोंको वर जाना था ॥ २७ ॥ वह सभी कालके ग्रास हुए यही क्या उनके पुत्र पौत्र और बान्धव पर्यन्त भी अब जीवित नहीं हैं इस समय सत्ताइसवें मन्वन्तरका द्वापरयुग वर्तमान है ॥ २८ ॥ अतएव तुम्हारे वंशोत्पन्न राजपुत्रोंमेंसे भी अब कोई वर्तमान नहीं है तुम्हारी नगरीको भी दैत्योंने लूट लिया था अब चंद्रवंशीय राजा उसको शासन करते हैं ॥ २९ ॥ पुण्यात्मा ययातिकुल तिलक माथुर जनपदेश्वर महाराज उग्रसेन उस स्थलमें राज्यशासन करते हैं ॥ ३० ॥ उनका पुत्र महाबलवान् कंस दानवोंके औरससे जन्म ग्रहणकर सर्वदा ही देवताओंका अनिष्टसाधन करने लगा और उसने अपने पिताको कारागारमें बंद करके रक्खा है ॥ ३१ ॥ वह मदसे गर्वित हो संपूर्ण राजा ओंका राज्य स्वयं शासनकर प्रजाका महत् अनिष्ट साधन करने लगा हे महाराज ! इसी समयमें उस दुष्ट दैत्यराजाकी सेनाके भारसे पृथ्वी इतनी

तमुवाच हसन्वाक्यं दृष्ट्वा कालस्य पर्ययम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ राजपुत्रास्त्वया राजन्वरा ये हृदये कृताः ॥ २७ ॥ ग्रस्ताः कालेन ते सर्वे सपितृपौत्रबांधवाः ॥ सप्त विंशतिमोऽद्यैव द्वापरस्तु प्रवर्वते ॥ २८ ॥ वंशजास्ते मृताः सर्वे पुरी दैत्यैर्विलुंठिता ॥ सोमवंशोद्भवस्तत्र राजा राज्यं प्रशास्ति हि ॥२९॥ उग्रसेन इति ख्यातो मथुराधिपतिः किल ॥ ययातिवंशसंभूतो राजा माथुरमंडले ॥३०॥ उग्रसेनात्मजः कंसः सुरद्वेषी महाबलः ॥ दैत्यांशः पितरं सोऽपि कारागारं न्यवेशयत ॥ ३१ ॥ स्वयं राज्यं चकारासौ नृपाणां मदगर्वितः ॥ मेदिनी चातिभारार्ता ब्रह्माणं शरणं गता ॥ ३२ ॥ दुष्टराजन्यसैन्यानां भारेणातिसमाकुला ॥ अंशावतरणं तत्र गदितं सुरसत्तमैः ॥ ३३ ॥ वासुदेवः समुत्पन्नः कृष्णः कमललोचनः ॥ देवक्यां देवरूपिण्यां योऽसौ नारायणो मुनिः ॥ ३४ ॥ तपश्चचार दुःसाध्यं धर्मपुत्रः सनातनः ॥ गंगातीरे नरसखः पुण्ये बदरिकाश्रमे ॥ ३५ ॥

व्याकुल होगई कि फिर किसी प्रकार भार न सह सकी अतएव ब्रह्माजीके निकट जाय उनकी शरणागत हुई ॥ ३२ ॥ वह दुष्ट राजाओंका भारभूत सेनाके भारसे व्याकुल होगई तदनंतर ब्रह्मादि देवताओंने कहा हे वसुन्धरे ! तुम्हारा भार हलका करनेके लिये देवताओंने अंशावतारको लिया है ॥ ३३ ॥ कमललोचन नारायणने अपने अंशसे अवतीर्ण होकर जन्म ग्रहण किया वह स्वयं सनातन नारायण कमललोचन कृष्ण हैं वही यदुकुलमें देहरूपिणी देवकीके गर्भ और वसुदेवके औरससे अवतीर्ण हो वासुदेव नामसे विख्यात हुए ॥ ३४ ॥ पहले नरसखा धर्मपुत्र नारायणने गंगा किनारे परम पवित्र बद्रिकाश्रममें भ्राताके सहित घोर तप किया था ॥ ३५ ॥

वह यदुकुलमें अवतीर्ण होकर वासुदेव नामसे विख्यात हुए हे नृपसत्तम ! उस पापाचार दुष्टमति खलप्रकृति कंसको मारकर ॥ ३६ ॥ उस साम्राज्यमें उग्रसेनको प्रतिष्ठित किया और दुष्ट कंसको मारा महा विक्रमशाली पापिष्ठ मगधपति जरासंध कंसका श्वशुर था ॥ ३७ ॥ उसने जामाताकी निधनवार्ता सुन क्रोधके वशीभूत हो मथुरामें आय घोर संग्राम किया महात्मा कृष्णने महाबली जरासंधको जीता ॥ ३८ ॥ वासुदेवके उस महातेजोगर्वितजरासंधको पराजय करनेपर भी उसनेसेनासहित कालयवनको फिर युद्ध करनेके लिये भेजा अनंतर भगवान् वासुदेव सेना सहित यवनराजके आनेका वृत्तांतजाना ॥ ३९ ॥ परिवार सहित संपूर्ण यादवोंको द्वारकामें भेज स्वयं बलदेवके सहित यवन राजाके आनेकी प्रतीक्षासे स्थिर रहे फिर अकेलेही यवनके शिविरमें जाय

सोऽवतीर्णो यदुकुले वासुदेवोऽपि विश्रुतः ॥ तेनासौ निहतः पापः कंसः कृष्णेन सत्तमः ॥ ३६ ॥ उग्रसेनाय राज्यं वै दत्तं हत्वा खलं सुतम् ॥ कंसस्य श्वशुरः पापो जरासंधो महाबलः ॥ ३७ ॥ आगत्य मथुरां क्रोधाच्चकार संगरं मुदा ॥ कृष्णेनासौ जितः संख्ये जरासंधो महाबलः ॥ ३८ ॥ प्रेषयामास युद्धाय सबलं यवनं ततः ॥ श्रुत्वाऽऽयांतं महाशूरं ससैन्यं यवनाधिपम् ॥ ३९ ॥ "कृष्णस्तु मथुरां त्यक्त्वा पुरीं द्वारवतीमगात् ॥ प्रभग्नां तां पुरीं कृष्णः शिल्पिभिः सह संगतैः ॥ कारयामास दुर्गाढ्यां हट्टशालाविमंडिताम् ॥ जीर्णोद्धारं पुरः कृत्वा वासुदेवः प्रतापवान् ॥ उग्रसेनं च राजानं चकार वशवर्तिनम् ॥ "यादवान्स्थापयामास द्वारवत्यां यदूत्तमः ॥ वासुदेवस्तु तत्राद्य वर्तते बांधवैः सह ॥ ४० ॥ तस्याग्रजः स विख्यातो बल देवो हलायुधः ॥ शेषांशो मुसली वीरो वरोऽस्तु तव संमतः ॥ ४१ ॥ संकर्षणाय देह्याशु कन्यां कमललोचनाम् ॥ रेवतीं बलभद्राय विवाहविधिना ततः ॥ ४२ ॥

कालयवनको आकर्षणपूर्वक गिरिगुहामें ले जाय सुप्तोत्थित महाराज मुचुकुन्दसेउस दुरात्मा यवनको मरवाय मथुराको छोड़ द्वारकाको चले गये उस समय उसद्वारकापुरीकी भग्नावस्था थी अतएव कृष्णने शिल्कारोंको बुलाय दिव्यमहल दुर्ग और अटारी इत्यादि बनवाकर उसका सौंदर्य संपादन किया वह प्रतापवान् वासुदेव जीर्ण नगरीका संस्कार कराय उग्रसेनको राज्यपदमें नियुक्तकर वहयदूत्तम वहां यादवोंको स्थापितकर अन्यान्य बांधवोंके सहित अब भी वहां विराजमान हैं ॥ ४० ॥ उनके अग्रज हलायुध बलदेव नामसे विख्यात हैं वही मूसली अनंतदेवके अंशावतार और महावीर हैं वही तुम्हारी कन्याके उपयुक्त वर है ॥४१॥ अतएव इस कमलके समान नेत्रोंवाली रेवतीको विवाहकी विधि अनुसार संकर्षण बलभद्रके हाथमें शीघ्र प्रदान करो ॥ ४२ ॥

और तुम कन्यादान करकेतपस्याका अनुष्ठान करनेके निमित्त बद्रिकाश्रममें जाओ वह पुण्याश्रम देवताओंका विहार स्थान और पवित्र तथा मनुष्योंको कामनादायक है ॥४३॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! कमलयोनि ब्रह्माजीके आज्ञा देनेपर राजा अपनी कन्याको संग ले द्वारकामें आये ॥ ४४ ॥ वहां पहुँचकर वह सर्वसुलक्षणयुक्त कन्या विधिके अनुसार बलदेवजीको दी अंतमें ब्रह्माजीके उपदेशसे बदरिकाश्रमें जाय कठोर तपस्यामें निरत हुए ॥ ४५ ॥ फिर मृत्युकाल उपस्थित होनेपर नदीके तटपर देह त्यागकर सुरलोकको चले गये जनमेजयने कहा हे भगवन् ! आपने अत्यंत आश्चर्यकी कथा कही ॥४६॥ रेवतराजा कन्याके सहित ब्रह्मलोकमें रहकर संगीत सुननेमें आसक्त हुए अष्टोत्तरशत (१०८) युग बीतनेपर भी ॥ ४७ ॥ राजा और उन की कन्या

दत्त्वा पुत्रीं नृपश्रेष्ठ गच्छ त्वं बदरिकाश्रमम् ॥ तपस्तप्तुं सुरारामं पावनं कामदं नृणाम् ॥ ४३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति राजा समादिष्टो ब्रह्मणा पद्मयोनिना ॥ जगाम तरसा राजन्द्वारकां कन्ययाऽन्वितः ॥ ४४ ॥ ददौ तां बलदेवाय कन्यां वै शुभलक्षणाम् ॥ ततस्तप्त्वा तपस्तीव्रं नृपतिः कालपर्यये ॥ ४५ ॥ जगाम त्रिदशा वासं त्यक्त्वा देहं सरित्तटे ॥ राजोवाच ॥ भगवन्महदाश्चर्यं भवता समुदाहृतम् ॥ ४६ ॥ रेवतस्तु स्थितस्तत्र ब्रह्मलोके सुतार्थतः ॥ युगानां तु गतं तत्र शतमष्टोत्तरं किल ॥ ४७ ॥ कन्यावृद्धा न संजाता राजा वा ऽतितरां नु किम् ॥ एतावंतं तथा कालमायुः पूर्णं तयोः कथम् ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्न भयं पुनः ॥ न तु ग्लानिः प्रभवति ब्रह्मलोके सदाऽनघ ॥ ४९ ॥ मेरुं गतस्य शर्यातेः संततौ राक्षसैर्हता ॥ गता कुशस्थलीं त्यक्त्वा भयभीता इतस्ततः ॥ ५० ॥ मनोश्च क्षुवतः पुत्र उत्पन्नो वीर्यवत्तरः ॥ इक्ष्वाकुरिति विख्यातः सूर्यवंशकरस्तु सः ॥ ५१ ॥

अतिवृद्धि क्यों न हुए ? और उनकी इतनी आयु किस प्रकार हुई थी वह आप मुझसे कहिये ॥४८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! ब्रह्मलोक पापस्पर्शरहित है वहां जरा,क्षुधा,पिपासा अथवा मृत्यु आदि कुछ भी नहीं है उस स्थानमें अन्य कोई ग्लानि भी नहीं हो सकती.अतएव तहांके वास करने वाले पुरुष सर्वदा जरामरणरहित और दीर्घजीवी होते हैं इसमें संदेह क्या है ॥ ४९ ॥ शर्याति राजाके स्वर्ग जानेपर उनकी सन्तानको राक्षसोंने मार डाला और जो शेष रहे वह भयसे भीत होकर कुश स्थली त्यागकर इधर उधर भाग गये ॥ ५० ॥ वैवस्वतमनुके छींकनेपर उनके घ्राणद्वारसे एक वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम इक्ष्वाकु था वही सूर्यवंश विस्तार करनेके लिये जगत्में विख्यात हुए ॥ ५१ ॥

महर्षि नारदके उपदेशानुसार अति उत्तम दीक्षाको प्राप्त हो वंश बढ़ानेके इच्छासे निरंतर देवीका ध्यान करते हुए तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ५२ ॥ हे राजन् इक्ष्वाकुके सौ पुत्र उत्पन्न हुए उनमें विकुक्षिही प्रथम थे वही वीर्यवान् और बलसम्पन्न हुए ॥ ५३ ॥ इक्ष्वाकुने राजा होकर अयोध्यामें वास किया और उन्होंने शकुनि इत्यादि अत्यन्त बलवान् पचास पुत्रोंको ॥ ५४ ॥ उत्तरापथ प्रदेशकी रक्षा कार्यमें नियुक्त किया. उन महात्माने और भी अडतालीस पुत्रोंको दक्षिण देशकी रक्षा करनेके लिये भेजा था. हे भूपते ! शेष दो पुत्रोंको सेवाके लिये अपने पासही रक्खा था ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! किसी समय अष्टकाश्राद्ध उपस्थित होनेपर पृथ्वी पति इक्ष्वाकुने

वंशार्थं तप आतिष्ठद्देवीं ध्यात्वा निरंतरम् ॥ नारदस्योपदेशेन प्राप्य दीक्षामनुत्तमाम् ॥ ५२ ॥ तस्य पुत्रशतं राजन्निक्ष्वाकोरिति विश्रुतम् ॥ विकुक्षिः प्रथमस्तेषां बलवीर्यसमन्वितः ॥ ५३ ॥ अयोध्यायां स्थितो राजा इक्ष्वाकुरिति विश्रुतः ॥ शकुनिप्रमुखाः पुत्राः पंचाशद्बलवत्तराः ॥५४॥ उत्तरापथदेशस्यरक्षितारः कृताः किल ॥ दक्षिणस्यां तथा राजन्नादिष्टास्तेन ते सुताः ॥ ५५ ॥ चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च रक्षणार्थं महात्मना ॥ अन्यौ द्वौ संस्थितौ पार्श्वे सेवार्थं तस्य भूपतेः ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ व्यास उवाच ॥ कदाचिदष्टका श्राद्धे विकुक्षिं पृथिवीपतिः ॥ आज्ञापयदसंमूढो मांसमानय सत्वरम् ॥ १ ॥ मेध्यं श्राद्धार्थमधुना वने गत्वा सुतादरात् ॥ इत्युक्तोऽसौ तथेत्याशु जगाम वनमस्त्रभृत् ॥ २ ॥ गत्वा जघान बाणैः स वराहान्सूकरान्मृगान् ॥ शशांश्चापि परिश्रांतो बभूवाऽथ बुभुक्षितः ॥३॥ विस्मृता चाष्टका तस्य शशंचाऽददसौ वने ॥ शेषं निवेदयामास पित्रे मांसमनुत्तमम् ॥ ४ ॥ प्रोक्षणाय समानीतं मांसं दृष्ट्वा गुरुस्तदा ॥ अनर्हमिति तज्ज्ञात्वा चुकोप मुनिसत्तमः ॥ ५ ॥

अपने पुत्र विकुक्षिको आज्ञा दी कि हे वत्स तुम शीघ्र बनमें जाय श्राद्धके लिये पवित्र मांस संग्रह कर लाओ ॥ १ ॥ सावधान होकर देखो इसमें किसी प्रकारकी त्रुटि न हो. विकुक्षि पिताकी इस प्रकार आज्ञा पाय अस्त्रशस्त्र ग्रहण कर तत्काल वनको चले गये ॥ २ ॥ उन्होंने वनमें जाय निशित बाणोंसे असंख्य शूकर वराह मृग खरगोश इत्यादि सभी संहार किये परंतु वह वनमें भ्रमण करते करते थककर क्षुधासे इतने कातर हो गये कि ॥ ३ ॥ पिताके अष्टकाकी बात भूल वनमेंही एक खरगोशको भक्षण किया. शेष अत्युत्तम सम्पूर्ण मांस लाय पिताको समर्पण किया ॥ ४ ॥ जब मांस प्रोक्षणके लिये लाया गया तब कुलगुरु मुनिसत्तम वसिष्ठ उसको देखतेही भुक्तावशिष्ट (भोजनसे बचा हुआ) जान अत्यंत क्रोधित हुए ॥ ५ ॥

भुक्तावशिष्ट द्रव्य श्राद्धमें प्रोक्षणके योग्य नहीं होता यही शास्त्रीय विधि है. वसिष्ठजीने राजाको इस पाक दूषणका विषय विदित किया ॥ ६ ॥ गुरु देवके वाक्यानुसार पुत्रका यह कार्य जान राजाने विधिलोपवशतः पुत्रके प्रति अत्यंत क्रोधित हो उसको अपने देशसे निकाल दिया ॥ ७ ॥ तबहीसे राजपुत्र (खरगोश भक्षण करनेके कारण) शशाद नामसे विख्यात हुए. परंतु यह शशाद पिताके क्रोधसे कुछ भी क्षुभित न हो वनमें जाय वास करने लगे ॥ ८ ॥ वह धर्ममें निरत हो वनके फलमूल भक्षण कर सुखसे काल व्यतीत करने लगे. कुछेक कालोपरांत पिताके परलोक प्राप्त होनेपर वह महात्मा पिताके राज्यको प्राप्त हुए ॥ ९ ॥ शशादने अयोध्याका राजा होकर राज्यशासन करनेके समय सरयूनदीके तटपर अनेक महत् यज्ञ किये थे.

भुक्तशेषं तु न श्राद्धे प्रोक्षणीयमिति स्थितिः ॥ राज्ञे निवेदयामास वशिष्ठः पाकदूषणम् ॥ ६ ॥ पुत्रस्य कर्म तज्ज्ञात्वा भूपतिर्गुरुणोदितम् ॥ चुकोप विधिलोपात्तं देशान्निः सारयत्ततः ॥ ७ ॥ शशाद इति विख्यातो नाम्ना जातो नृपात्मजः ॥ गतो वने शशादस्तु पितृकोपादसंभ्रमः ॥ ८ ॥ वन्येन वर्तयन्कालं नीतवान्धर्मतत्परः ॥ पितर्युपरते राज्यं प्राप्तं तेन महात्मना ॥ ९ ॥ शशादस्त्वकरोद्राज्यमयोध्यायाः पतिः स्वयम् ॥ यज्ञाननेकशः पूर्णांश्चकार सरयूतटे ॥ १० ॥ शशादस्याभवत्पुत्रः ककुत्स्थ इति विश्रुतः ॥ तस्यैव नामभेदाद्वै इंद्रवाहः पुरंजयः ॥११॥ जनमेजय उवाच ॥ नामभेदः कथं जातो राजपुत्रस्य चानघ ॥ कारणं ब्रूहि मे सर्वं कर्मणा येन चाभवत् ॥१२॥ व्यास उवाच ॥ शशादे स्वर्गते राजा ककुत्स्थ इति चाभवत ॥ "राज्यं चकार धर्मज्ञः पितृपैतामहं बलात् ॥" एतस्मिन्नन्तरे देवा दैत्यैः सर्वै पराजिताः ॥१३॥ जग्मुस्त्रिलोकाधिपतिं विष्णुं शरणमव्ययम् ॥ तान्प्रोवाच महाविष्णुस्तदा देवान्सनातनः ॥ १४ ॥

॥ १० ॥ शशादको एक पुत्र था वह तीनों लोकमें ककुत्स्थ नामसे विख्यात हुआ था. उसके इंद्रबाहु एवं पर पुरञ्जय यह दो अन्य नाम थे ॥ ११ ॥ जनमेजयने कहा हे पवित्रात्मन् ! राजपुत्रका ककुत्स्थ नामांतर किस कारणसे और किस प्रकार हुआ था ? किस कार्यसे उनके अन्य दो नाम हुए यह संपूर्ण विवरण मुझसे कहिये ॥ १२ ॥ व्यासजीने कहा हे नृपसत्तम ! महाराज शशादके स्वर्ग जानेपर ककुत्स्थ राजा हुए वह धर्मात्मा पिता और पितामहका राज्य अतिदोर्दण्ड प्रतापसे शासन करने लगे. उसीसमय सम्पूर्ण देवता दानवोंसे पराजित हो ॥ १३ ॥ त्रिलोकाधिपति अच्युत विष्णुकी शरणागत हुए. तब सच्चिदानंदमय सनातन महाविष्णुने उन देवताओंसे कहा ॥ १४ ॥

विष्णु बोले हे देवताओ ! तुम शशाद तनय सर्वजनरक्षक महिपाल ककुत्स्थके निकट प्रार्थना करो वह महात्मा तुम्हारे पार्ष्णि ग्रह (पार्श्वरक्षक) होकर सम्पूर्ण दानवोंको समरमें निहत करेंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ वह ककुत्स्थ धार्मिक विशेषकर पराशक्तिके उपासक हैं. अतएव उनके प्रसादसे उन नरपतिके बलकी सीमा नहीं है इस कारण प्रार्थना करनेपर वह धनुर्द्धारी हो तुम्हारी सहायता करनेको अवश्यही आवेंगे. इसमें संदेह नहीं ॥ १६ ॥ हे महा राज ! इन्द्रादि देववृन्द हरिके यह सुधामय वचन सुनतेही अयोध्यानगरमें शशादतनय ककुत्स्थके निकट गये ॥ १७ ॥ देवताओंके उपस्थित होनेपर राजाने सावधान हो उनकी यथाविधि पूजाकर उनसे आनेका कारण पूँछा ॥ १८ ॥ राजाने कहा हे देवताओ ! आपने अनुग्रहपूर्वक जब मेरे घर आय

विष्णुरुवाच ॥ पार्ष्णिग्राहं महीपालं प्रार्थयंतु शशादजम् ॥ स हनिष्यति वै दैत्यान्संग्रामे सुरसत्तमाः ॥ १५ ॥ आगमिष्यति धर्मात्मा साहाय्यार्थं धनुर्धरः ॥ पराशक्तेः प्रसादेन सामर्थ्यं तस्य चाऽतुलम् ॥ १६ ॥ हरेः सुवचनाद्देवा ययुः सर्वे सवासवाः ॥ अयोध्यायां महाराज शशादतनयं प्रति ॥ १७ ॥ तानागतान्सुरान्राजा पूजयामास धर्मतः ॥ पप्रच्छागमने राजा प्रयोजनमतंद्रितः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ धन्योऽहं पावितश्चाऽस्मि जीवतं सफलं मम ॥ यदागत्य गृहे देवा ददुश्च दर्शनं महत् ॥१९॥ ब्रुवंतु कृत्यं देवेशा दुःसाध्यमपि मानवैः ॥ करिष्यामि महत्कार्यं सर्वथा भवतां महत् ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ साहाय्यं कुरु राजेंद्र सखा भव शचीपतेः ॥ संग्रामे जय दैत्येंद्रान्दुर्जयांस्त्रिदशैरपि ॥ २१ ॥ पराशक्तिप्रसादेन दुर्लभं नास्ति ते क्वचित् ॥ विष्णुना प्रेरिताश्चैवमागतास्तव सन्निधौ ॥ २२ ॥ राजोवाच ॥ पार्ष्णिग्राहो भवाम्यद्य देवानां सुरसत्तमाः ॥ इंद्रो मे वाहनं तत्र भवेद्यदि सुराधिपः ॥ २३ ॥ संग्रामं तु करिष्यामि दैत्यैर्देवकृतेऽधुना ॥ आरुह्येंद्रं गमिष्यामि सत्य मेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २४ ॥

प्रत्यक्ष दर्शन दिया है तब मैं पवित्र और धन्य हुआ और मेरा जन्मभी सफल हुआ ॥ १९ ॥ हे देववृन्द ! आपका क्या कार्य साधन करना होगा वह आप कहिये वह मनुष्योंको कठिन होनेपरभी मैं आपके उस महत कार्यको अवश्यही करूंगा ॥ २० ॥ देवता बोले हे राजपुत्र ! तुम हमारी सहायताकर देवताओंसे भी अजय दत्यपतियोंको समरमें जीतकर शचीपति इन्द्रके सहित मित्रता स्थापन करो ॥ २१ ॥ हे महाराज ! पराशक्तिके प्रतापसे तुमको कहीं भी कुछ दुर्लभ नहीं है अतएव विष्णुकी आज्ञासे हम तुम्हारे पास आये हैं ॥ २२ ॥ राजाने कहा हे सुर सत्तमगण ! सुराधिपति इंद्र यदि उस युद्धके समय मेरे वाहनहों तो मैं देवताओंका पार्ष्णिरक्षक (दोनों ओर रक्षक)हो सकता हूं ॥ २३ ॥ देवताओंके कारण अब मैं दानवोंके संग संग्राम करूंगा

किन्तु इंद्रकी पीठपर चढकर संग्राम स्थलमें जाऊंगा, यह मैंने आपसे सत्य ही कहा है ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले हे राजेंद्र ! तब देवताओंने इंद्रसे कहा हे शचीपते ! यह अद्भुत कार्य सम्पादन करना आपको अत्यंत कर्तव्य है। अतएव आप लज्जा परित्याग कर इस नरेंद्रके वाहन हूजिये ॥ २५ ॥ सुरपति इंद्र इस कार्यके करनेसे लज्जित हुए किंतु हरिने उनको वारंवार उसमें नियुक्त किया. अतएव देवराज इंद्रने रुद्रके महावृषभके समान वृषभ मूर्ति धारण की ॥ २६ ॥ राजा संग्राममें जानेके लिये उस वृषभपर चढ़े उन्होंने वृषभकी पीठपर बैठकर युद्ध किया था इसी कारण उनका ककुत्स्थ नाम हुआ ॥२७॥ राजाने इंद्रको वाहन किया इस कारण उनका नाम इंद्रवाह और उन्होंने युद्धमें दानवोंके पुर जीते इससे उनका नाम पुरञ्जय हुआ था ॥ २८ ॥ उन महाबाहु राजाने दानवोंको समरमें पराजय करके उनकी धन सम्पत्ति देवताओंको प्रदान की अनंतर वह देवताओंसे बिदा ले अपने नगरको चले गये

तदोचुर्वासवं देवाः कर्तव्यं कार्यमद्भुतम् ॥ पत्रं भव नरेंद्रस्य त्यक्त्वा लज्जां शचीपते ॥२५॥ लज्जमानस्तदा शक्रः प्रेरितो हरिणा भृशम् ॥ बभूव वृषभस्तूर्णं रुद्रस्येवापरो महान् ॥ २६ ॥ तमारुरोह राजाऽसौ संग्रामगमनाय वै ॥ स्थितः ककुदि येनाऽस्य ककुत्स्थस्तेन चाभवत् ॥ २७ ॥ इंद्रो वाहः कृतो येन तेन नाम्नेंद्रवाहकः ॥ पुरं जितं तु दैत्यानां तेनाऽभूच्च पुरंजयः ॥ २८ ॥ जित्वा दैत्यान्महा बाहुर्धनं तेषां प्रदत्तवान् ॥ पप्रच्छ चैवं राजर्षेरिति सख्यं बभूव ह ॥ २९ ॥ ककुत्स्थश्चाऽतिविख्यातो नृपतिस्तस्य वंशजा ॥ काकुत्स्था भुवि राजानो बभूवुर्बहुविश्रुताः ॥ ३० ॥ ककुत्स्थस्याऽभवत्पुत्रो धर्मपत्न्यां महाबल ॥ अनेनाविश्रुतस्तस्य पृथुः पुत्रश्च वीर्यवान् ॥ ३१ ॥ विष्णोरंशः स्मृतः साक्षात्पराशक्तिपदार्चकः ॥ विश्वरं धिस्तु विज्ञेयः पृथोः पुत्रो नराधिपः ॥ ३२ ॥ चंद्रस्तस्य सुतः श्रीमा न्राजा वंशकरः स्मृतः ॥ तत्सुतो युवनाश्वस्तु तेजस्वी बलवत्तरः ॥ ३३ ॥

हे महाराज ! इस प्रकार उन राजर्षिके संग इन्द्रका सख्यभाव उत्पन्न हुआ था ॥ २९ ॥ हे राजन् ! ककुत्स्थ पृथ्वीतलमें अत्यंत विख्यात हुए थे उनके वंशोत्पन्न राजा भी काकुत्स्थ कहकर पृथ्वीमें विशेष परिचित हैं ॥ ३० ॥ धर्मपत्नीके गर्भसे ककुत्स्थ एक महाबलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम ककुत्स्थ था. उनका पुत्र पृथु अत्यंत वीर्यवान् हुआ ॥ ३१ ॥ वह पृथु साक्षात् विष्णुके अंश थे. वह सदा ही पराशक्तिके चरणकमलोंकी अर्चना करते थे. उनके पुत्र विश्वरंधि हुए उन्होंने राजा होकर राजत्व किया था ॥ ३२ ॥ उनके पुत्र श्रीमान् चन्द्र हुए उन्होंने राजा होकर राज्यशासन और अपने वंशको भलीभांति बढ़ाया था युवनाश्व नामक उनके एक पुत्र हुए वह अत्यन्त बलवान् और महातेजस्वी थे ॥ ३३ ॥

युवनाश्वके शावस्त नामक परम धार्मिक एक पुत्र उत्पन्न हुए उन्होंने अमरावतीके समान शावस्ती नामक एक अति उत्तम पुरी बनाई ॥ ३४ ॥ महात्मा शावस्तके पुत्र बृहदश्व और बृहदश्वके पुत्र कुवलयाश्व हुए वह अपने बाहुबलसे सम्पूर्ण पृथिवीके अधिपति हुए थे ॥ ३५ ॥ उन्होंने धुन्धुनामक दानवका संहार किया इसीसे भूमण्डलमें धुन्धुमार नामसे अत्यन्त विख्यात हुए ॥ ३६ ॥ उनके पुत्र दृढ़ाश्व हुए उन्होंने पृथिवीका पालन किया उनके पुत्र श्रीमान् हर्यश्व ॥३७॥ और हर्यश्वके पुत्र निकुम्भ हुए वह पृथिवीके अधिपति हुए निकुम्भके पुत्र बर्हणाश्व थे कृशाश्व नामक उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३८॥ उनका पुत्र महाबलवान् प्रसेनजित्था उसके विक्रमकी सीमा नहीं थी प्रसेनजित्के पुत्र महाभाग यौवनाश्व हुए ॥ ३९ ॥ हे महाभाग ! यौवनाश्वके पुत्र

शावंतो युवनाश्वस्य यज्ञे परमधार्मिकः ॥ शावंतीं निर्मिता तेन पुरी शक्रपुरीसमा ॥ ३४ ॥ बृहदश्वस्तु पुत्रोऽभूच्छावंतस्य महात्मनः ॥ कुवलयाश्वः सुतस्तस्य बभूव पृथिवीपतिः ॥ ३५ ॥ धुन्धुर्नामा हतो दैत्यस्तेनासौ पृथिवीतले ॥ धुन्धुमारेति विख्यातं नाम प्रापाति विश्रुतम् ॥ ३६ ॥ पुत्रस्तस्यदृढाश्वस्तु पालयामास मेदिनीम् ॥ दृढाश्वस्य सुतः श्रीमान्हर्यश्व इति कीर्तितः ॥ ३७ ॥ निकुंभस्तत्सुतः प्रोक्तो बभूव पृथिवी पतिः ॥ बर्हणाश्वो निकुंभस्य कृशाश्वस्तस्य वै सुतः ॥ ३८ ॥ प्रसेनजित्कृशाश्वस्य बलवान्सत्यविक्रमः ॥ तस्य पुत्रो महाभागो यौवनाश्वेति विश्रुतः ॥ ३९ ॥ यौवनाश्वसुतः श्रीमान्मांधातेति महीपतिः ॥ अष्टोत्तरसहस्रं तु प्रासादा येन निर्मिताः ॥ ४० ॥ भागवत्यास्तु तुष्ट्यर्थं महातीर्थेषु मानद ॥ मातृगर्भे न जातोऽसावुत्पन्नो जनकोदरे ॥ ४१ ॥ निःसारितस्ततः पुत्रः कुक्षिं भित्त्वा पितुः पुनः ॥ राजोवाच ॥ न श्रुतं न च दृष्टं वा भवता यदुदाहृतम् ॥ ४२ ॥ असंभाव्य महाभाग तस्य जन्म यथोदितम् ॥ विस्तरेण वदस्वाद्य मांधातुर्जन्मकारणम् ॥ ४३ ॥

श्रीमान् मांधाता हुए उन्होंने पृथ्वी मण्डलके अधीश्वर हो भगवतीको प्रसन्न करनेकी इच्छासे काशी इत्यादि महातीर्थ स्थानोंमें उनके अष्टोत्तर सहस्र (एक सौ आठ हजार) मन्दिर बनाये ॥ ४० ॥ हे मानद ! महातीर्थोंमें यह कार्य भगवतीको संतुष्ट करनेके लिये ही किया था मांधाता माताके गर्भसे उत्पन्न न हो पिताके उदरसे उत्पन्न हुए थे ॥ ४१ ॥ उस समय अमात्योंने पिताकी कुक्षिभेदकर पुत्रको निकाला था जनमेजयने कहा हे महाभाग ! आपने जो कहा वह न कभी देखा और न कभी सुना ॥ ४२ ॥ इस प्रकार जन्म ग्रहण करना अत्यंत असम्भव है आप उन महात्माके जन्मका कारण विस्तार सहित वर्णन करके मेरा संदेह दूर कीजिये ॥ ४३ ॥

वह सर्वाङ्ग सुन्दर राजाके उदरसे किस प्रकार प्रकट हुए ? व्यासजीने कहा हे मुनिसत्तम गण ! नरपति यौवनाश्व परम धार्मिक राजाके संतान संतति कुछ न हुई ॥ ४४ ॥ और उनके सौ रानी थीं राजा प्रायः सदाही पुत्रके लिये चिन्तासागरमें निमग्न रहते ॥ ४५ ॥ एक समय वह पृथ्वीपति यौवनाश्व दुःखित हो पुत्रकी इच्छासे वनमें ऋषियोंके पवित्र आश्रममें गये ॥ ४६ ॥ वह तपोवनमें पहुँचकर तपस्वियोंके सामने अत्यंत लम्बे लम्बे श्वास छोडने लगे उनको दुःखित देखकर ब्राह्मण कृपाके वशीभूत हुए ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! तब ब्राह्मणोंने उनसे कहा हे पार्थिव ! आप किस कारण शोक प्रकाश करते हैं ? हे महाराज ! आपके मनमें क्या दुःख है ! वह सत्य कहो ॥ ४८ ॥ हम अवश्य आपके दुःखका प्रतिकार करेंगे. यौवनाश्वने कहा हे मुनिसत्तमगण !

राजोदरे यथोत्पन्नः पुत्रः सर्वांगसुंदरः ॥ व्यास उवाच ॥ यौवनाश्वोऽनपत्योऽभूद्राजा परमधार्मिकः ॥ ४४ ॥ भार्याणां च शतं तस्य बभूव नृपतेर्नृप ॥ राजा चिंतापरः प्रायः चिंतयामास नित्यशः ॥ ४५ ॥ अपत्यार्थे यौवनाश्वो दुःखितस्तु वनं गतः ॥ ऋषीणामाश्रमे पुण्ये निर्विण्णः स च पार्थिवः ॥ ४६ ॥ मुमोचः दुःखितः श्वासांस्तापसानां च पश्यताम् ॥ दृष्ट्वा तु दुःखितं विप्रा बभूवुश्च कृपालवः ॥ ४७ ॥ तमूचुर्ब्राह्मणा राजन्कस्माच्छोचसि पार्थिव ॥ किं ते दुःखं महाराज ब्रूहि सत्यं मनोगतम् ॥ ४८ ॥ प्रतीकारं करिष्यामो दुःखस्य तव सर्वथा ॥ यौवनाश्व उवाच ॥ राज्यं धनं सदश्वाश्च वर्तते मुनयो मम ॥४९॥ भार्याणां च शतं शुद्धं वर्तते विशदप्रभम् ॥ नारातिस्त्रिषु लोकेषु कोऽप्यस्ति बलवान्मम ॥ ५० ॥ आज्ञाकरास्तु सामंता वर्तते मंत्रिणस्तथा ॥ एकं संतानज दुःखं नान्यत्पश्यामि तापसाः ॥ ५१ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ॥ तस्माच्छोचामि विप्रेंद्राः संतानार्थं भृशं ततः ॥ ५२ ॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञास्तापसाश्च कृतश्रमाः ॥ इष्टिं संतानकामस्य युक्तां ज्ञात्वा दिशंतु मे ॥ ५३ ॥

मेरे राज्य, धन और उत्तम २ अश्व सम्पूर्ण ही विद्यमान हैं ॥ ४९ ॥ मेरे विमल शुद्ध स्वभाववाली सौ रानियें विद्यमान हैं त्रिलोकमें मेरा कोई शत्रु भी नहीं है मेरी अपेक्षा बलवान् भी कोई नहीं हैं ॥ ५० ॥ संपूर्ण राजा और अमात्य मेरे आज्ञाकारी हैं किंतु हे तपस्वियों एक मात्र अपुत्रता दुःखनेही मेरा संपूर्ण सुख नष्ट किया है ॥ ५१ ॥ देखो पुत्रहीन मनुष्यको कभी स्वर्ग प्राप्त नहीं होता. अतएव हे विप्रेंद्रगण ! केवल संतानके लिये ही मैं निरंतर शोक करता हूं ॥ ५२ ॥ आप तपस्वी हैं विशेषकर बहुत परिश्रम करके वेदशास्त्रका सार मर्म जाना है अतएव संतानकी इच्छा करनेवाले पुरुषको कौन यज्ञ करना युक्तिसंगत है आप लोग इसकी मुझको आज्ञा दीजिये ॥ ५३ ॥

हे तपस्वियो यदि आपकी मेरे प्रति कृपा हो तो आप इस सत्कार्यका अनुष्ठान कीजिये व्यासजी बोले हे महाराज! राजाके यह वचन सुन उन्होंने दयासे पूर्ण हो ॥ ५४ ॥ स्थिरभावसे उनको इंद्र जिस यज्ञके अधिष्ठात्री देवता थे ऐसा यज्ञ कराया भूपतिको पुत्र प्राप्तिके लिये प्रथम उन्होंने जलपूर्ण कलश स्थापन कराय ॥ ५५ ॥ वैदिक मंत्रद्वारा उसको अभिमंत्रित किया. राजा रात्रिके समय प्यासे हो उस यज्ञमें प्रविष्ट हुए ॥ ५६ ॥ और उसी समय ब्राह्मणोंको सोता हुआ देख वह मंत्रपूत जल स्वयं पिया ब्राह्मणोंने विधिके अनुसार जल उद्धृत और अभिमंत्रित कर राजाकी भार्याके लिये संस्कार किया था ॥ ५७ ॥ किंतु राजाने प्यासे होकर अज्ञानसे स्वयं वह जल पी लिया दूसरे दिन प्रातःकालके समय ब्राह्मण जल रहित कलश देख

कुर्वंतु मम कार्यं वै कृपा चेदस्ति तापसाः ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञः कृपया पूर्णमानसाः ॥ ५४ ॥ कारयामासुरव्यग्रास्त स्येष्टिमिंद्रदेवताम् ॥ कलशः स्थापितस्तत्र जलपूर्णस्तु वाडवैः ॥ ५५ ॥ मंत्रितो वेदमंत्रैश्च पुत्रार्थं तस्य भूपतेः ॥ राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टस्तृषितो निशि ॥ ५६ ॥ विप्रान्दृष्ट्वा शयानान्स पपौ मंत्रजलं स्वयम् ॥ भार्यार्थं संस्कृतं विप्रैर्मंत्रितं विधि नोद्धृतम् ॥ ५७ ॥ पीतं राज्ञं तृषार्तेन तदज्ञानान्नृपोत्तम ॥ व्युदकं कलशं दृष्ट्वा तदा प्रिया विशंकिताः ॥ ५८ ॥ पप्रच्छुस्ते नृपं केन पीतं जलमिति द्विजाः ॥ राज्ञा पीतं विदित्वा ते ज्ञात्वा दैवबलं महत् ॥ ५९ ॥ इष्टिं समापयामासुर्गतास्ते मुनयो गृहान् ॥ गर्भं दधारनृपतिस्ततो मंत्रबलादथ ॥ ६० ॥ ततः काले स उत्पन्नः कुक्षिं छित्त्वाऽस्य दक्षिणम् ॥ पुत्रं निष्कासयामासुर्मन्त्रिणस्तस्य भूपतेः ॥ ६१ ॥ देवानां कृपया तत्र न ममार महीपतिः ॥ कं धास्यति कुमारोऽयं मंत्रिणश्चुक्रुशुर्भृशम् ॥ ६२ ॥ तदेन्द्रो देशिनीं प्रादान्मांधातेत्यवदद्वचः ॥ सोऽभवद्बलवान्राजा मांधाता पृथिवीपतिः ॥ ६३ ॥

अत्यन्त शंकित हुए ॥ ५८ ॥ तब ब्राह्मणोंने राजासे पूछा यह जल किसने पाया है. तब उन्होंने जाना कि, राजाने यह जल पाया है यह दैवयोगसेही हुआ है ॥ ५९ ॥ मुनि यह जान यज्ञ समाप्त कर अपने अपने घरको चले गये इसके उपरांत राजाने उस यज्ञीय मंत्रबलसे गर्भ धारण किया ॥ ६० ॥ कुछ दिन व्यतीत होने पर संतान पुष्ट हुई तब राजाके मंत्रियोंने उनकी दक्षिण कुक्षि भेदकर पुत्रोंको निकाला ॥ ६१ ॥ केवल देवताओंकी कृपासे उस समय राजाकी मृत्यु न हुई यह कुमार किसका स्तन पान करेगा यह बात कह मंत्रिलोग अत्यन्त आक्षेप करने लगे ॥ ६२ ॥ तब इंद्रने 'मांधाता' अर्थात् मुझको (मेरी यह अमृतमय तर्जनी अंगुली) पियेगा यह कह उसके मुखमें तर्जनी अंगुली दी इसी कारणसे उन महाबलीका नाम मांधाता

हुआ ॥ ६३ ॥ हे भूपाल ! यह मैंने आपसे उन मांधाताके उत्पन्न होनेका वृत्तांत विस्तार पूर्वक कहा ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज ! उन सत्यप्रतिज्ञ नरपति मांधाताने क्रमानुसार सम्पूर्ण भूमण्डलको जीतकर राजाओंके अधीश्वर हो सार्वभौम उपाधि प्राप्त की ॥ १ ॥ हे महाराज राजराजेश्वर मांधाताके प्रभावका वृत्तांत और अधिक क्या कहें उस समय तस्कर उनके भयसे त्रस्त होकर पर्वतकी गुहामें भाग गये थे इस कारण इंद्रने इनका नाम त्रसदस्यु रक्खा ॥ २ ॥ उन्होंने नंदपाल शशबिन्दुकी कन्या बिंदुमतिका पाणिग्रहण किया उस पतिव्रता ललनाके अंग प्रत्यंगमें सम्पूर्ण सुलक्षण विद्यमान होनेसे उसके सौन्दर्यकी सीमा नहीं थी ॥ ३ ॥ हे महाराज ! मांधाताने उसके गर्भसे

तदुत्पत्तिस्तु भूपाल कथिता तव विस्तरात् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महा पुराणे सप्तमस्कंधे नवमोध्यायः ॥ ९ ॥ व्यास उवाच ॥ बभूव चक्रवर्ती स नृपतिः सत्यसंगरः ॥ मांधाता पृथिवीं :सर्वामजयन्नृपतीश्वरः ॥१॥ दस्यवोऽस्य भयत्रस्ता ययुर्गिरिगुहासु च ॥ इंद्रेणास्य कृतं नाम त्रसदस्युरिति स्फुटम् ॥ २ ॥ तस्य बिंदुमती भार्या शश बिंदोः सुताऽभवत् ॥ पतिव्रता सुरूपा च सर्वलक्षणसंयुता ॥ ३ ॥ तस्यामुत्पादयामास मांधाता द्वौ सुतौ नृप ॥ पुरुकुत्सं सुविख्यातं मुचुकुंदं तथाऽपरम् ॥४॥ पुरुकुत्सात्ततोऽरण्यः पुत्रः परमधार्मिकः ॥ पितृभक्तिरतश्चाभूद् बृहदश्वस्तदात्मजः ॥ ५ ॥ हर्यश्वस्तस्य पुत्रोऽ भूद्धार्मिकः परमार्थवित् ॥ तस्याऽऽत्मजस्त्रिधन्वा भूदरुणस्तस्य चात्मजः ॥ ६ ॥ अरुणस्य सुतः श्रीमान्सत्यव्रत इति श्रुतः ॥ सोऽभूदिच्छाचरः कामी मंदात्मा ह्यतिलोलुपः ॥ ७ ॥ स पापात्मा विप्रभार्यां हृतवान्काममोहितः ॥ विवाहे तस्य विघ्नं स चकारनृपतेः सुतः ॥ ८ ॥ मिलिता ब्राह्मणास्तत्र राजानमरुणं नृप ॥ ऊचुर्भृशं सुदुःखार्ता हा हताः स्मेति चासकृत् ॥ ९ ॥

सुविख्यात पुरुकुत्स और मुचुकुंद दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४ ॥ पुरुकुत्सके पुत्र अनरण्य हुए. यह राजकुमार बृहदश्व नामसे प्रसिद्ध हुए परंतु यह अत्यंत धार्मिक और पितृभक्ति परायण थे ॥ ५ ॥ उनके पुत्र हर्यश्व हुए वह धार्मिक और परमार्थ सत्वके जानने वाले थे उनके पुत्र त्रिधन्वा और त्रिधन्वाके पुत्र अरुण हुए ॥ ६ ॥ अरुणके पुत्र श्रीमान् सत्यव्रत हुए वह अत्यंत लोभके वशीभूत कामुक मंदस्वभाव और इच्छाकारी थे ॥ ७ ॥ एक समय उस पापात्मा राजकुमारने कामसे मोहित हो किसी ब्राह्मणकी भार्या हरणकर उसके विवाहमें विघ्न किया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! सम्पूर्ण ब्राह्मणलोग मिल अत्यंत परिताप करते करते राजा अरुणके समीप जाय बारंबार कहने लगे हा ! हम मर गये ॥ ९ ॥

राजाने इन दुःखित स्त्री पुरवासी ब्राह्मणोंसे कहा हे विप्रवृन्द ! मेरे पुत्रने आपका क्या अनिष्ट कार्य किया है ॥१०॥ राजाके यह विनययुक्त वचन सुन उनके वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंने बारंबार आशीर्वाद देकर उनसे कहा हे राजन् ! आप बलवानोंमें अग्रगण्य हैं अतएव आपके पुत्र भी ऐसे ही हैं अब उन्होंने विवाहस्थलमें एक विवाहित ब्राह्मणकी कन्याको बलपूर्वक हरण किया है ॥११॥१२॥ व्यासजी बोले हे महाराज! तब परधार्मिक राजाने ब्राह्मणका यह वचन सत्य जान पुत्रसे कहा हे दुर्बुद्धे ! आज तैंने यह दुष्कार्य करके अपने सत्यव्रतनामका अर्थ निष्फल किया ॥ १३ ॥ हे दुराचार ! तू मेरे घरसे निकल जा रे पापी ! मेरे अधिकारमें अब तू कभी नहीं रह सकता ॥१४॥ तब सत्यव्रतने पिताको कुपित देखकर वारम्वार कहा हे पितः! मैं कहां जाऊं? उन्होंने कहा

पप्रच्छ राजा तान्विप्रान्दुःखितान्पुरवासिनः ॥ किं कृतं मम पुत्रेण भवतामशुभं द्विजाः ॥ १० ॥ तन्निशम्य द्विजा वाक्यं राज्ञो विनयपूर्वकम् ॥ तदोचुस्त्वरुणं विप्राः कृताशीर्वचना भृशम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ राजंस्तव सुतेनाद्य विवाहे प्रहृता किल ॥ विवाहिता विप्रकन्या बलेन बलिनां वर ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा तेषां वचस्तथ्यं राजा परमधार्मिकः ॥ पुत्रमहा वृथा नाम कृतं ते दुष्टकर्मणा ॥ १३ ॥ गच्छ दूरं सुमंदात्मन्दुराचार गृहान्मम ॥ न स्थातव्यं त्वया पाप विषये मम सर्वथा ॥ १४ ॥ कुपितं पितरं प्राह क्व गच्छामिति वै मुहुः ॥ अरुणास्तमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय ॥ १५ ॥ श्वपचस्य कृतं कर्म द्विजदारापहारणम्॥ तस्मात्तैः सह संसर्गं कृत्वा तिष्ठ यथसुखम् ॥ १६ ॥ नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वया च कुलपांसना ॥ यथेष्टं व्रज दुष्टात्मन्कीर्तनाशः कृतस्त्वया ॥ १७ ॥ स निशम्य पितुर्वाक्यं कुपितस्य महात्मनः ॥ निश्चक्राम पुरात्तस्मात्तरसाश्वपचान्ययौ ॥ १८ ॥ सत्यव्रतस्तदा तत्र श्वपाकैः सह वर्तते ॥ धनुर्बाणधरः श्रीमान्कवची करुणालयः ॥ १९ ॥

तू श्वपचो (चडालों) के सहित काल व्यतीत कर ॥ १५ ॥ तैंने ब्राह्मणकी स्त्री हरण करके श्वपचका कार्य किया है अतएव उनके संग रहकर सुखपूर्वक काल व्यतीत कर ॥ १६ ॥ रे कुलपाँसन ! मैं तेरे समान दुराचार पुत्रसे पुत्रवान् होनेकीइच्छा नहीं करता विशेषकर तैंने वंशकी कीर्तिको नाश किया है अतएवरे दुष्टात्मन् ! तेरी जहां इच्छा हो वहां जा ॥ १७ ॥ सत्यव्रत कुपित पिताके वचन सुन तत्काल उस पुरीसे बाहर निकल श्वपचोंके समीप गये ॥ १८ ॥ वह राजकुमार बख्तर पहर धनुर्बाण धारणकर उस समय श्वपचोंके संग काल व्यतीत करनेलगे किंतु उस स्थानमें रहकर भी उनके हृदयमें रहकर भी उनके हृदयमें करुणाकाअभाव न हुआ ॥ १९ ॥

जब महात्मा पिताने कुपित हो उनको घरसे निकाला उस समय गुरुदेव वसिष्ठजीने महीपतिको इस विषयमें नियुक्त किया था ॥२०॥ विशेषकर धर्मशास्त्रके जाननेवाले वशिष्ठजीने पुत्रके निकालनेमें उद्यत राजाको निवारण नहीं किया यह जानकर सत्यव्रत उनके प्रति कुपित हुए थे ॥२१॥ उनके पिता किसी अनिर्वच नीय कारणसे नगरको त्यागकर पुत्रके लिये तपस्या करनेको वनमें गये ॥ २२ ॥ हे राजेंद्र ! इस अधर्मसे पाकशासन महेंद्रने उस राज्यमें बारह वर्षतका एकबार ही वर्षा न की ॥२३॥ हे राजन् ! उसी समय विश्वामित्र उस राज्यमें अपने स्त्री पुत्रोंको छोडकर कौशिकी नदीके तटपर उग्र तपस्यामें प्रवृत्त हुए थे ॥ ॥ २४ ॥ तब कौशिककी वह परम सुन्दरी भार्या कुटुम्बका पालन करनेके लिये दुःखसे अत्यन्त कातर हुई ॥ २५ ॥ बालक क्षुधासे व्याकुल हो नीवार

यदा निष्कासितः पित्रा कुपितेन महात्मना ॥ गुरुणाऽथ वसिष्ठेन प्रेरितोऽसौ महीपतिः ॥ २० ॥ तस्मात्सत्यव्रतस्तस्मिन्बभूव क्रोधसंयुतः ॥ वसिष्ठे धर्मशास्त्रज्ञे निवारणपराङ्मुखे ॥ २१ ॥ केनचित्कारणेनाथ पिता तस्य महीपतिः ॥ पुत्रार्थेऽसौ तपस्तप्तुं पुरं त्यक्त्वा वनं गत ॥ २२ ॥ न ववर्ष तदा तस्मिन्विषये पाकशासनः ॥ समा द्वादश राजेंद्र तेनाऽधर्मेण सर्वथा ॥ २३ ॥ विश्वामित्रस्तदा दारांस्तस्मिंस्तु विषये नृप ॥ संन्यस्य कौशिकीतीरे चचार विपुलं तपः ॥ २४ ॥ कातरा तत्र संजाता भार्या कौशिकस्य ह ॥ कुटुंबभरणार्थाय दुःखिता वरवर्णिनी ॥ २५ ॥ बालकान्क्षुधयाऽऽक्रांतान्रुदतः पश्यती भृशम् ॥ याचामानांश्च नीवारान्कष्टमाप पतिव्रता ॥ २६ ॥ चिंतयामास दुःखार्ता तोकान्वीक्ष्य क्षुधाऽऽतुरान् ॥ नृपो नास्ति पुरे ह्यद्य कं याचे वा करोमि किम् ॥ २७ ॥ न मे त्राताऽस्ति पुत्राणां पतिर्मे नास्ति सन्निधौ ॥ रुदंति बालकाः कामं धिङ्मे जीवनमद्य वै ॥ २८ ॥ धनहीनां च मां त्यक्त्वा तपस्तप्तं गतः पतिः ॥ न जानाति समर्थोऽपि दुःखितां धनवर्जिताम् ॥ २९ ॥

अन्न (समा) मांगते हुए अत्यंत रोते हैं. पतिव्रता कौशिककी भार्या यह देखकर अत्यन्त दुःखित हुई ॥ २६ ॥ वह पुत्रोंको क्षुधातुर देखकर दुःखित हो चिंता करने लगी कि, राजेश्वर राजा भी राजधानीमें नहीं हैं तो अब किससे मांगूं अथवा क्या उपाय करूं ? ॥ २७ ॥ पति भी समीप नहीं हैं. अतएव मेरे पुत्रोंकी कौन रक्षा करेगा ? बालक रात दिन रोते हैं इस कारण मेरे इस वृथा जीवन धारण करनेको धिक्कार है ॥ २८ ॥ धनहीन अवस्थामें मुझको छोड कर पति तपस्या करनेको गये हैं, मैं धनके अभावसे कष्ट भोगती हूं वह समर्थ होकर भी यह नहीं जान सकते ॥ २९ ॥

पतिके अतिरिक्त मैं किससे बालकोंका भरण पोषण करूं ? क्षुधासे पीडित होनेपर सम्पूर्ण अच्छे पुत्रही कालके ग्रासमें पतित होंगे ॥ ३० ॥ जो हो एक पुत्रको बेंचकर जो कुछ द्रव्य मिलेगा उससे बचे हुए पुत्रोंका पालन कर सकूंगी इस उपायका अवलम्बन करना ही मुझको उचित है ॥ ३१ ॥ इसके अन्यथा करके संपूर्ण पुत्रोंको सहसा मृत्युके मुखमें डालना मुझको किसी प्रकार उचित नहीं है अतएव जीवन यात्रा निर्वाह करनेके लिये मैं एक पुत्रको बेंचूगीं ॥ ३२ ॥ वह सती मनमें इस प्रकार विचार पूर्वक अपने हृदयको कठिन कर कुशकी रस्सीमें पुत्रका गला बांध बाहर निकली ॥ ३३ ॥ वह मुनिपत्नी अवशिष्ट पुत्रोंका भरण करनेके लिये गर्भजात मध्यम पुत्रका गला बांध उसको लेकर घरसे निकली ॥ ३४ ॥ राजा सत्यव्रतने शोक संतापसे कातर हुई उस तापसीको देखकर

बालानां भरणं केन करोमि पतिनां विना ॥ मरिष्यंति सुताः सर्वे क्षुधया पीडिता भृशम् ॥ ३० ॥ एकं सुतं तु विक्रीय द्रव्येणकियता पुनः॥पालयामि सुतानन्या नेष मे विहितो विधिः ॥ ३१ ॥ सर्वेषां मारणं नाद्धा युक्तं मम विपर्यये ॥ कालस्य कलनायाहं विक्रीणामि तथाऽऽत्मजम् ॥ ३२ ॥ हृदयंकठिनंकृत्वा संचित्य मनसा सती ॥ सा दर्भरज्ज्वा बद्धाथ गले पुत्रं विनिर्गता ॥ ३३ ॥ मुनिपत्नी गले बद्धा मध्यमं पुत्रमौरसम् ॥ शेषस्य भरणार्थाय गृहीत्वा चलिता गृहात् ॥ ३४ ॥ दृष्टा सत्यव्रतेनाऽऽर्ता तापसी शोकसंयुता ॥ पप्रच्छ नृपतिस्तां तु किं चिकीर्षसि शोभने ॥ ३५ ॥ रुदंतं बालकं कंठे बद्धा नयसि काऽधुना ॥ किमर्थं चारुसर्वांगि सत्यं ब्रूहि ममाऽग्रतः ॥ ॥ ३६ ॥ ऋषिपत्न्युवाच ॥ विश्वामित्रस्य भार्याऽहं पुत्रोऽयं मे नृपात्मज ॥ विक्रेतुमौरसं कामं गमिष्ये विषमेऽ सुतम् ॥ ३७ ॥ अन्नं नास्ति पतिर्मुक्त्वा गतस्तप्तुं नृप क्वचित् ॥ विक्रीणामि क्षुधार्तैनं शेषस्य भरणाय वै ॥ ३८ ॥ राजोवाच ॥ पतिव्रते रक्ष पुत्रं दास्यामि भरणं तव ॥ तावदेव पतिस्तेऽत्र वनाच्चैवाऽऽगमिष्यति ॥ ३९ ॥

पूँछा हे शोभने ! तुम इस किस कार्यमें प्रवृत्त हुई हो ॥ ३५ ॥ तुम कौन हो ? यह बालक क्यों रोता है तुम किस लिये इसका कंठ बांधकर लिये जाती हो हे चारुवदने ! इसका क्या कारण है यह तुम मुझसे सत्य कहो ॥ ३६ ॥ ऋषिपत्नीने कहा हे नृपनंदन ! मैं विश्वामित्रकी भार्या हूं यह मेरा औरस पुत्र है अन्नके अभावसे गर्भजात पुत्रको इच्छानुसार बेंचने लिये जाती हूं ॥ ३७ ॥ हे नृप ! मुझको मेरे स्वामी छोडकर कहीं तपस्या करने गये हैं और घरमें भी कुछ अन्न नहीं है अतएव क्षुधासे कातर हुई अवशिष्ट संतानका भरण करनेके लिये मैं इसको बेंचूगीं ॥ ३८ ॥ सत्यव्रतने कहा हे पतिव्रते ! तुम पुत्रकी रक्षा करो वनसे तुम्हारे पति जबतक इस स्थानमें नहीं आते हैं तबतक मैं तुम्हारे भरण पोषणके उपयुक्त आहारकी सामग्री दूंगा ॥ ३९ ॥

तुम्हारे आश्रम समीप किसी वृक्षमें कुछेक भक्ष्य द्रव्य नित्यबांध आया करूंगा. यह मैं तुमसे सत्यही कहता हूं ॥ ४० ॥ विश्वामित्रकी पत्नी राजाके यह वचन सुन पुत्रका बंधन छोड अपने आश्रममें चली गई ॥४१॥ गला बंधनके कारण वह बालक गालव नामसे प्रसिद्ध होकर अन्तमें महातपा ऋषि हुआ तब विश्ववामित्रकी भार्या अपने आश्रममें जाय पुत्रोंसे परिवृत हो आनन्द अनुभव करने लगी ॥ ४२ ॥ परंतु सत्यव्रत भक्ति और कृपासे पूर्ण हो विश्वामित्र मुनिकी भार्याका भार वहन करने लगे ॥ ४३ ॥ वह वनके वराह, मृग और महिषको मारकर उनका मांस विश्वामित्रकी पत्नी और पुत्रोंके लिये लेजाकर जिस स्थानमें वास करे उसी तपोवनके समीप वृक्षमें बांध आते ॥ ४४ ॥ ऋषिपत्नी वह मांस लेकर पुत्रोंको भक्षण करनेके लिये देती इसी प्रकार उसने अत्यु

वृक्षे तवाऽऽश्रमाभ्याशे भक्ष्यं किंचिन्निरंतरम् ॥ वंधयित्वा गमिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४० ॥ इत्युक्ता सा तदा तेन राज्ञा कौशिककामिनी ॥ विबंधं तयर्य कृत्वा जगामाऽऽश्रममंडलम् ॥४१॥ सोऽभवद्गालवो नाम गलबं धान्महातपाः ॥ सा तु स्वस्याऽऽश्रमे गत्वा मुमोद बालकैर्वृता ॥ ४२ ॥ सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च परिप्लुतः ॥ विश्वामित्रस्य च मुनेः कलत्रं तद्बभार ह ॥ ४३ ॥ वने स्थितान्मृगान्हत्वा वराहान्महिषांस्तथा ॥ विश्वामित्रवनाभ्याशे मांसं वृक्षे बबंध ह ॥ ४४ ॥ ऋषिपत्नी गृहीत्वा तन्मांसं पुत्रानदा ततः ॥ निर्वृतिं परमां प्राप प्राप्य भक्ष्यमनुत्तमम् ॥ ४५ ॥ अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवांतः पुरं मुनिः ॥ गते तप्तुं नृपे तस्मिन्व सिष्ठः पर्यरक्षत ॥ ४६ ॥ सत्यव्रतोऽपि धर्मात्मा ह्यतिष्ठन्नगराद्बहिः ॥ पितुराज्ञां समास्थाय पशुघ्नव्रतवान्वने ॥ ४७ ॥ सत्यव्रतो ह्यकस्माच्च कस्यचित्कारणान्नृपः ॥ वसिष्ठे चाऽधिकं मन्युं धारयामास नित्यदा ॥ ४८ ॥ त्याज्यमानं वने पित्रा धर्मिष्ठं च प्रियं सुतम् ॥ न वारयामास ॥ मुनिर्विसिष्ठः कारणेन ह ॥ ४९ ॥

त्तम भक्ष प्राप्तकर अत्यंत सुख अनुभव किया ॥ ४५ ॥ इधर नरपति अरुणके वनमें तपस्या करनेको चले जानेपर वसिष्ठ मुनि अयोध्यानगरीके राज्य और अन्तःपुर समस्तहीकी सावधानतासे रक्षा करने लगे ॥ ४६ ॥ सत्यव्रत भी पिताकी आज्ञानुसार नित्य पशुमारकर जीविका निर्वाह करते और धर्ममें निरत रहकर नगरके बाहर वनमें वास करते थे ॥ ४७ ॥ सत्यव्रतने किसी कारणसे वसिष्ठके ऊपर सदाही मनमें कोप धारणकर रक्खा था. क्योंकि पिताने जब धार्मिक प्रिय पुत्रको परित्याग किया तब उन्होंने उन राजाको निवारण नहीं किया. हे महाराज ! यही उनके कोपका कारण जानना चाहिये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

सात पग न चलनेसे पाणिग्रहण कर्म समाप्त नहीं होता अतएव उसके हुए विना कन्याहरण करनेसे ब्राह्मणकी पत्नी हरण करना नहीं होता "कन्या हरण है" धर्मात्मा वसिष्ठने यह कारण जानकरभी उनको निषेध नहीं किया ॥ ५० ॥ एक दिन राजपुत्र सत्यव्रत मृगयामें किसी पशुको न पाकर वनमें वसिष्ठकी दुग्धवती धेनुको देखा तब ॥ ५१ ॥ राजाने क्षुधासे कातर हो क्रोध और मोहसे दस्युके समान धेनुकी हत्या की और उसका कुछेक मांस विश्वामित्रकी स्त्रीको भक्षण करनेके लिये वृक्षमें बांधकर अवशिष्ट मांस स्वयं भक्षण किया ॥ ५२ ॥ हे सुव्रत! उस समय विश्वामित्रकी पत्नीने इस मांसको गोमांस न जानकर यह मृगका मांस है इस प्रकार जान वह सम्पूर्ण मांस पुत्रोंको भक्षण कराया ॥ ५३ ॥ इधर वसिष्ठजीने अपनी कामधेनुके विनाशका वृत्तांत जान क्रोधके वशी

पाणिग्रहणमंत्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे ॥ जानन्नपि स धर्मात्मा विप्रदारपरिग्रहे ॥ ५० ॥ कस्मिंश्चिद्दिवसेऽरण्ये मृगाभावं महीपतिः ॥ वसिष्ठस्य च गां दोग्ध्रीमपश्यद्वनमध्यगाम् ॥ ५१ ॥ तां जघान क्षुधार्तस्तु क्रोधान्मोहाच्च दस्युवत् ॥ वृक्षे बबंध तन्मांसं नीत्वा स्वयम भक्षयत् ॥ ५२ ॥ ऋषिपत्नी सुतान्सर्वान्भोजयामास तत्तदा ॥ शंकमाना मृगस्येति न गोरिति च सुव्रता ॥ ५३ ॥ वसिष्ठस्तु हतां दोग्ध्रीं ज्ञात्वा क्रुद्धस्तमब्रवीत् ॥ दुरात्मन्किं कृतं पापं धेनुघातात्पिशाचवत् ॥ ५४ ॥ एवं ते शंकवः क्रूरा पतंतु त्वरितास्त्रयः ॥ गोव धाहारहरणात्पितुः क्रोधात्तथा भृशम् ॥ ५५ ॥ त्रिशंकुरिति नाम्ना वै भुवि ख्यातो भविष्यसि ॥ पिशाचरूपमात्मानं दर्शयन्सर्व देहिनाम् ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच एवं शप्तो वसिष्ठेन तदा सत्य व्रतो नृपः चचार च तपस्तीव्रं तस्मिन्नेवाऽऽश्रमे थितः ॥ ५७ ॥ कस्मा च्चिन्मुनिपुत्रात्तु प्राप्यमंत्रमनुत्तमम् ॥ ध्यायन्भगवतीं देवीं प्रकृतिं परमां शिवाम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

भूत हो सत्यव्रतसे कहा रे दुरात्मन्! धेनु मारकर पिशाचके समान तूने क्या पापकार्य किया है ॥ ५४ ॥ गोवध द्विजपत्नी हरण और पिताके अत्यन्त क्रोध इन तीन अपराधोंसे मेरे मस्तकपर तीन शंकु अर्थात् कुष्ठवात् तीन पाप चिन्ह शीघ्र पतित हों ॥५५॥ अबसे तू संपूर्ण प्राणियोंको पिशाचके समान अपना रूप दिखाकर पृथ्वीमें त्रिशंकुनामसे विख्यात होगा ॥ ५६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! राजा सत्यव्रत वसिष्ठसे इस प्रकार शापको प्राप्त हो उस आश्रममें रहकर कठोर तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ५७ ॥ परंतु वह किसी मुनि पुत्रसे अनुत्तम मंत्र प्राप्त कर परमाप्रकृति शिवा भगवती देवीके ध्यानमें निमग्न हुए ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

जनमेजय बोले हे महामते! जब वसिष्ठने नृपनंदन त्रिशंकुको शाप दिया तब वह किस प्रकार उस शापसे छूटे थे? यह आप मुझको कहिये ॥ १ ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! सत्यव्रत वसिष्ठके शापसे पिशाचत्वको प्राप्त होनेपर देवीके प्रति भक्तिपरायण हो उसी आश्रममें समय व्यतीत करने लगे ॥ २ ॥ एक दिन उन्होंने नवाक्षर मंत्र जपकर उस भगवतीमंत्रका पुरश्चरण करानेके लिये ब्राह्मणोंके समीप जाय भक्तिपूर्वक प्रणाम करके कहा ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो! आप मेरा वचन सुनिये मैं विनयसहित आपके निकट प्रार्थना करता हूं कि, आप सब मेरे ऋत्विक् हों ॥ ४ ॥ आप वेदके जाननेवाले हैं इस कारण मेरे प्रति कृपा कर यथाविधि कार्य सिद्धिके लिये जपका दशांश होम कीजिये ॥ ५ ॥ हे विप्रगण! मेरा नाम सत्यव्रत है विशेषकर मैं राजपुत्र हूं. मेरा मंगल करनेके

जनमेजय उवाच वसिष्ठेन च शप्तोऽसौ त्रिशंकुर्नृपतेः सुतः कथं शापादद्विनिर्मुक्तस्तन्मे ब्रूहि महामते ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ सत्यव्रतस्तथा शप्तः पिशाचत्वमवाप्तवान् ॥ तस्मिन्नेवाऽऽश्रमे तस्थौ देवीभक्तिपरायणः ॥ २ ॥ कदाचिन्नृपतिस्तत्र जप्त्वा मंत्रं नवाक्षरम् ॥ होमार्थं ब्राह्मणान्गत्वा प्रणम्यो वाच भक्तितः ॥ ३ ॥ भूमिदेवाः शृणुध्वं वै वचनं प्रणतस्य मे ऋत्विजो मम सर्वेऽत्र भवंतः प्रभवंतु ह ॥ ४ ॥ जपस्य च दशांशेन होमः कार्यो विधानतः ॥ भवद्भिः कार्यसिद्ध्यर्थं वेदविद्भिः कृपापरैः ॥ ५ ॥ सत्यव्रतोऽहं नृपतेः पुत्रो ब्रह्मविदां वराः ॥ कार्यं मम विधातव्यं सर्वथा सुखहेतवे ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणास्तत्र तमूचुर्नृपतेः सुतम् ॥ शप्तस्त्वं गुरुणा प्राप्तं पिशाचत्वं त्वयाऽधुना ॥ ७ ॥ न यागार्होऽसि तस्मात्त्वं वेदेष्वनधिकारतः ॥ पिशाचत्वमनुप्राप्तं सर्वलोकेषु गर्हितम् ॥ ८ ॥ व्यास उवाच तन्निशम्य वचस्तेषां राजा दुःखमवाप ह धिग्जीवितमिदं मेऽद्य किं करोमि वने स्थितः ॥ ९ ॥ पित्रा चाऽहं हरित्यक्तः शप्तश्चगुरुणा भृशम् ॥ राज्याद्भ्रष्टः पिशाचत्व मनुप्राप्तः करोमि किम् ॥ १० ॥

लिये यह कार्य सम्पादन करना आपको अवश्य कर्तव्य है ॥ ६ ॥ ब्राह्मणोंने इस प्रकार राजपुत्रके वचन सुनकर उनसे कहा हे राजपुत्र! तुम गुरुसे शापित होकर पिशाचपनेको प्राप्त हुए हो ॥ ७ ॥ अब तुम्हारा वेदमें अधिकार नहीं है विशेषकर तुमको जो पिशाचता प्राप्त हुई है वह सम्पूर्ण लोकमें निन्दनीय है इस कारण अब तुम यागार्ह नहीं हो सकते ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले हे महाराज! राजपुत्रने उनके यह वचन सुन दुःखित होकर विचारा कि, मेरे जीवनको धिक्कार है अब मैं वनमें रहकर क्या करूंगा ॥ ९ ॥ पिताने मुझको त्यागन किया है इससे राज्यभ्रष्ट हुआ इसपर भी गुरुके शापसे पिशाचपनेको प्राप्त हुआ हूँ अतएव अब मैं क्या करूं? कुछ स्थिर नहीं कर सकता ॥ १० ॥

तब राजनंदनने काष्ठ लाय बड़ी चिता बनाय चंडिकादेवीको स्मरण किया और उनका मंत्र जपते जपते चितामें प्रवेश करनेको कृतसंकल्प हुए ॥ ११ ॥ फिर राजकुमारने सन्मुख चिता प्रज्वलितकर स्थान किया और उसमे प्रवेश करनेके लिये हाथ जोडकर खडे हो देवी महामायाका स्तव करनेलगे ॥ १२ ॥ उसी समय भगवती उन मही पतिकी मृत्युकामना जान तत्काल सिंहके पीठपर चढ़ उनके ऊपर स्थित आकाश मार्गसे आई ॥ १३ ॥ और फिर प्रत्यक्ष दर्शन दे मेघके समान गम्भीर वचनोंके द्वारा उन नृपनन्दनसे कहने लगीं ॥ १४ ॥ हे साधो तुमने मनमें यह क्या निश्चय किया है ? तुम अग्निमें कदापि शरीरका त्याग मत करो स्थिर होओ. हे महाभाग ! तुम्हारे पिताको इस समय बुढापा आगया है ॥ ॥ १५ ॥ वह तुमको राज्य देकर तप करनेके लिये

तदा पृथुतरां कृत्वा चितां काष्ठैर्नृपात्मजः ॥ सस्मार चंडिकां देवीं प्रवेशमनुचिंतयन् ॥ ११ ॥ स्मृत्वा देवीं महामायां चितां प्रज्वलितां पुरः ॥ कृत्वा स्नात्वा प्रवेशार्थं स्थितः प्रांजलिरग्रतः ॥ १२ ॥ ज्ञात्वा भगवती तं तु मर्तुकामं महीपतिम् ॥ आजगाम तदाकाशं प्रत्यक्षं तस्य चाग्रतः ॥ १३ ॥ दत्त्वाऽथ दर्शनं देवी तमुवाच नृपात्मजम् ॥ सिंहारूढा महाराज मेघ गंभीरया गिरा ॥ १४ ॥ देव्युवाच ॥ किं ते व्यवसितं साधो हुताशे मा तनुं त्यज ॥ स्थिरो भव महाभाग पिता ते जरसाऽन्वितः ॥ १५ ॥ राज्यं दत्त्वा वने तुभ्यं गंताऽस्ति तपसे किल ॥ निषादं त्यज हे वीर परश्वोऽहनि भूपते ॥ १६ ॥ नेतुं त्वामागमिष्यंति सचिवाश्च पितुस्तव ॥ मत्प्रसादात्पिता च त्वामभिषिच्य नृपासने ॥ १७ ॥ जित्वा कामं ब्रह्मलोकं गमिष्यत्येष निश्चयः ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं तदा देवी तत्रैवांतरधीयत ॥ १८ ॥ राजपुत्रो विरमितो मरणात्पावकात्ततः अयोध्यायां तदाऽऽगत्य नारदेन माहात्मना ॥ १९ ॥ वृत्तांतः कथितः सर्वो राज्ञे सत्त्वरमादितः ॥ श्रुत्वा राजाऽथ पुत्रस्य तं तथा मरणोद्यमम् ॥ २० ॥

वनमें जायँगे अतएव हे वीरवर विषाद छोड़ दो हे भूपते ! परसोंके दिन ॥ १६ ॥ तुम्हारे पिताके मंत्री तुम्हारे लेनेको आवेंगे मेरे प्रसादसे तुम्हारे पिता तुमको राज्यमें अभिषिक्त करेंगे ॥ १७ ॥ और यथासमयमें कामना जीतकर ब्रह्मलोकको जायँगे इसमें संदेह नहीं व्यासजीने कहा हे महाभाग ! देवी उसकाल उनसे यह बात कहकर उसी स्थानमें अंतर्धान होगई ॥ १८ ॥ और राजपुत्र भी अनल मृत्युसे विरत हुए इसी समय महात्मा नारदजीने अयोध्यामें आकर ॥ १९ ॥ तत्काल सब आनुपूर्विक वृत्तांत राजासे कहा तब राजा पुत्रके मरनेका उद्यम सुनकर ॥ २० ॥

दुःखितचित्तसे अनेक प्रकार पछतावा करनेलगे धर्मात्मा राजाने शोकसंतप्त होकर मंत्रियोंसे कहा ॥ २१ ॥ तुम सबने मेरे पुत्रके कठोर कार्यका विषय जाना मैंने अपने बुद्धिमान् पुत्र सत्यव्रतको वनमें त्याग किया है ॥२२॥ परंतु वह परमार्थवित् राज्यार्ह होनेपरभी मेरी आज्ञासे तत्काल वनमें चलागया यह धनहीन अवस्थामें क्षमाशील हो भलीभाँति ज्ञानकी आलोचना करता हुआ उसी स्थानमें वास करता है ॥ २३ ॥ किंतु वसिष्ठदेवने शाप देकर उसको पिशाचके समान किया है वह इस समय दुःखाग्निसे संतप्त होकर हुताशनमें प्रवेश करनेको उद्यत हुआ था ॥ २४ ॥ किंतु महादेवीके निषेध करनेपर वह उस कार्यसे विरत हुआ इस कारण तुम शीघ्र उस स्थानमें जाय उस महाबली ज्येष्ठपुत्रको ॥ २५ ॥ सांत्वन वचनोंसे समझाय अभी मेरे निकट लेआओ मैं प्रजापाल

खेदमाधाय मनसि शुशोच बहुधा नृपः ॥ सचिवा नाह धर्मात्मा पुत्रशोकपरिप्लुतः ॥ २१ ॥ ज्ञातं भवद्भिरत्युग्रं पुत्रस्य मम चेष्टितम् ॥ त्यक्तो मया वने धीमान्पुत्रः सत्यव्रतो मम ॥ २२ ॥ आज्ञयासौ गतः सद्यो राज्यार्हः परमार्थवित् ॥ स्थितस्तत्रैव विज्ञाने धन हीन क्षमान्वितः ॥ २३ ॥ वसिष्ठेन तथा शप्तः पिशाचसदृशः कृतः ॥ सोऽद्य दुःखेन संतप्तः प्रवेष्टुं च हुताशनम् ॥ २४ ॥ उद्यतः श्रीमहादेव्या निषिद्धः संस्थितः पुनः ॥ तस्माद्गच्छतु तं शीघ्रं ज्येष्ठपुत्रं महाबलम् ॥२५॥ आश्वास्य वचनैरत्र तरसै वानयंत्विह ॥ अभिषिच्य सुतं राज्ये औरसं पालनक्षमम् ॥ २६ ॥ वनं यास्यामि शांतोऽहं तपसे कृतनिश्चयः॥ इत्युक्त्वामंत्रिणः सर्वान्प्रेषयामास पार्थिवः॥२७॥ तस्यैवाऽऽनयनार्थं हि प्रीतिप्रवणमानसः ॥ ते गत्वा तं समाश्वास्य मंत्रिणः पार्थिवात्मजम् ॥ २८ ॥ अयोध्यायां महात्मानं मानपूर्वं समानयन् ॥ दृष्ट्वा सत्य व्रतं राजा दुर्बलं मलिनांबरम् ॥ २९ ॥ जटाजूटधरं क्रूरं चिंतातुरमचिंतयत् ॥ किं कृतं निष्ठुरंकर्म मया पुत्रो विवासितः ॥ ३० ॥ राज्यार्हतश्चातिमेधावी जानता धर्मनिश्चयम् ॥ इति संचिंत्य मनमा तमालिंग्य महीपतिः ॥ ३१ ॥

नमें समर्थ उस औरस पुत्रका राज्याभिषेक करूंगा ॥ २६ ॥ मेरा चित्त अब शान्तभावको प्राप्त हुआ है अतएव मैं तपस्या करनेके लिये कृतसंकल्प हुआ हूं यह कहकर राजाने सब मंत्रियोंको भेजा ॥ २७ ॥ तब पुत्रके प्रति प्रसन्न होकर बुलानेको भेजा तब मंत्रीभी प्रीतिपूर्णमनसे उस स्थानमें जाय महात्मा राजपुत्रको समझाय ॥२८॥ सन्मानसहित अयोध्यामें लेआये राजा सत्यव्रतको दुर्बल मलीनवस्त्र ॥ २९ ॥ जटाजूटधारी कृशकाय दुर्बल कर्कशाकृति चिन्तातुर देख चिंता करने लगेकि मैंने पुत्रको निकालकर क्या निष्ठुर कार्य किया है ! ॥ ३० ॥ महीपतिने मनमें इस प्रकार चिंता करके उसको आलिंगन किया ॥ ॥ ३१ ॥

॥३३॥

और समझाबुझाकर अपने समीप स्थित आसनपर बैठाया बैठे हुए पुत्रसे वह राजा प्रेमपूर्वक बोले ॥ ३२ ॥ अर्थात् नीतिशास्त्रविशारद राजा प्रेमगद्गद वचनसे प्रीतिपूर्वक कहने लगे राजा बोले हे पुत्र ! सर्वदा धर्ममें मति रखना और ब्राह्मणोंका सन्मान करना तुम्हारा कर्तव्य है ॥ ३३ ॥ तुम न्यायके अनुसार धन ग्रहण करके सर्वदाप्रजाकी रक्षा करो कहीं भी मिथ्या बात नहीं कहना चाहिये अथवा किसी प्रकार कुमार्गमें नहीं जाना चाहिये ॥ ३४ ॥ किंतु साधुलोगोंका वचन सम्यक् प्रकार प्रतिपालन करने उचित हैं तपस्वियोंकी पूजा करनी चाहिये इंद्रियजय करना क्रूरस्वभाव तस्करोंको वध करना उचित है ॥ ३५ ॥ हे पुत्र ! कार्य सिद्धिके लिये मंत्रियोंसे मंत्रणा करके उसको गुप्त रखना चाहिये ॥३६॥ शत्रु आदि अतिसामान्यभी हो तथापि कार्यकुशल राजा

आसने स्वसमीपस्थे समाश्वास्योपवे शयत् ॥ उपविष्टं सुतं राजा प्रेमपूर्वकमुवाच ह ॥ ३२ ॥ प्रेमगद्गदया वाचा नीतिशास्त्रविशारदः राजोवाच ॥ पुत्र धर्मे मतिः कार्या माननीया सुखोद्भवाः ॥ ३३ ॥ न्यायागतं धनं ग्राह्यं रक्षणीयाः सदा प्रजाः ॥ नासत्यं क्वापि वक्तव्यं नामार्गे गमनं क्वचित् ॥ ३४ ॥ शिष्टप्रोक्तं प्रकर्तव्यं पूजनीया स्तपस्विनः ॥ हंतव्या दस्यवः क्रूरा इंद्रियाणां तथा जयः ॥ ३५ ॥ कर्तव्यः कार्यसिद्ध्यर्थं राज्ञा पुत्र सदैव हि ॥ मंत्रस्तु सर्वथा गोप्यःकर्तव्यः सचिवैःसह ॥ ३६ ॥ नोपेक्ष्योऽल्पोऽपि कृतिना रिपुः सर्वात्मना सुत ॥ न विश्वसेत्परासक्तं सचिवं च तथा नतम् ॥ ३७ ॥ चाराः सर्वत्र योक्तव्याः शत्रुमित्रेषु सर्वथा ॥ धर्मे मतिः सदा कार्या दानं दद्याच्च नित्यशः ॥ ३८ ॥ शुष्कवादो न कर्तव्यो दुष्टसंगंच वर्जयेत् ॥ यष्टव्या विविधा यज्ञाः पूजनीया महर्षयः ॥ ३९ ॥ न विश्वसेत्स्त्रियं क्वाऽपि स्त्रैणं द्यूतरतं नरम् ॥ अत्यादरो न कर्तव्योमृगयायां कदाचन ॥ ४० ॥ द्यूते मद्ये तथा गेये नूनं वारवधूषु च ॥ स्वयं तद्विमुखो भूयात्प्रजास्तेभ्यश्च रक्षयेत् ॥ ४१ ॥

उसकी कभी अपेक्षा न करें शत्रु पराये प्रति अनुरक्त होकर यदि अवनतभी हो तो भी उसका विश्वास न करें ॥३७॥ क्या शत्रु क्या मित्र सबके निकट दूतोंको नियुक्त करना चाहिये सदा धर्ममें अनुराग दर्श और सदा दान करना ॥ ३८ ॥ वृथा वितंडावाद करना अनुचित है दुष्टोंका संग नहीं करना चाहिये हे पुत्र ! तुम महार्षियों की पूजा और अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करो ॥ ३९ ॥ स्त्री,स्त्रैण पुरुष और द्यूतनिरत पुरुषोंका कभी विश्वास न करना मृगयामें अत्यंत आसक्त होना कभी उचित नहीं है ॥ ४० ॥ द्यूतक्रीड़ा मद्य गीत और वारवनिता इन सब विषयोंसे विरत रहना और प्रजाओंकी भी इस कार्यसे रक्षा करना ॥ ४१ ॥

नित्य ब्रह्ममुहूर्त्तमें उठकर फिर स्नानादि समस्त कर्त्तव्य कार्यका अनुष्ठान करना ॥ ४२ ॥ हे पुत्र ! गुरुके निकट देवी मंत्रमें दीक्षित होकर भक्तिपूर्वक परमा शक्ति भगवतीकी महती पूजा करनी परा शक्तिके चरणकमलोंकी पूजा करनेसे जन्म सफल होता है ॥ ४३ ॥ हे पुत्र ! जो पुरुष महादेवीकी केवल एकबार मात्रभी महती पूजा करके उनका चरणामृत जल पान करते हैं उन पुरुषोंको फिर कभी जननीके गर्भमें जन्मग्रहण नहीं करना पडता यह स्थिर निश्चय है ॥ ४४ ॥ वह महादेवी ही इस सम्पूर्ण देखनेवाली वस्तुके स्वरूप है वही द्रष्टा और साक्षि चैतन्यस्वरूप है इस प्रकार भावमें रत पूर्णात्मा होकर निर्भय चित्तसे वास करे ॥४५॥ प्रतिदिन नैमित्तिक कार्य समापन करके ब्राह्मणोंकी सभामें जाना चाहिये और उन को बुलाकर धर्मशास्त्रका सिद्धान्त पूँछना चाहिये

ब्राह्मेमुहूर्ते कर्तव्यमुत्थानं सर्वथा सदा ॥ स्नानादिकं सर्वविधिं विधाय विधिवद्यथा ॥ ४२ ॥ पराशक्तेः परां पूजां भक्त्या कुर्यात्सु दीक्षितः ॥ पुत्रैतज्जन्मसाफल्यं पराशक्तेः पदार्चनम् ॥ ४३ ॥ सकृत्कृत्वा महापूजां देवीपादजलं पिबान् ॥ न जातु जननीगर्भे गच्छेदिति विनिश्चयः ॥ ४४ ॥ सवदृश्य महादेवी द्रष्टा साक्षी च सैव हि ॥ इति तद्भावभरितस्तिष्ठेन्निर्भयचेतसा ॥ ४५ ॥ कृत्वा नित्यविधिं सम्यग्गंतव्यं सदसि द्विजान् ॥ समाहूय च प्रष्टव्यो धर्मशास्त्रविनिर्णयः ॥ ४६ ॥ संपूज्य ब्राह्मणान्पूज्यान्वेदवेदांगपारगान् ॥ गोभूहिरण्यादिकं च देयं पात्रेषु सर्वदा ॥ ४७ ॥ अविद्वान्ब्राह्मणः कोऽपि नैव पूज्यः कदाचन ॥ आहारादधिकं नैव देयं मूर्खाय कर्हिचित् ॥ ४८ ॥ न वा लोभात्त्वया पुत्र कर्तव्यं धर्मलंघनम् ॥ अतः परं न कर्तव्यं क्वचिद्विप्रावमाननम् ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणा भूमिदेवाश्च माननीयाः प्रयत्नतः ॥ कारणं क्षत्रियाणां च द्विजा एह न संशयः ॥ ५० ॥ अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मणः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥ तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥ ५१ ॥

॥ ४६ ॥ वेद और वेदान्त पारग ब्राह्मण अवश्यपूजनीय हैं अतएव उनकी पूजा कर पात्र विचार सदा गौ भूमि और सुवर्ण इत्यादि दान करना ॥ ४७ ॥ किसी अविद्वान् ब्राह्मणकी कभी पूजा न करना मूर्ख पुरुषको आहारसे अधिक और कुछ दान न करे ॥ ४८ ॥ हे वत्स ! लोभके वशीभूत होकर कभी धर्म उल्लंघन न करना और यह सदा मनमें विचार रक्खो कि अबसे ब्राह्मणोंका कभी अपमान नहीं करूंगा ॥ ४९ ॥ ब्राह्मण क्षत्रियोंके कारण और विशेष कर उनके भूलोकके देवता हैं अतएव यत्नसहित ब्राह्मणोंके संमानकी रक्षा करनी चाहिये इसमें त्रुटि न करनी ॥५०॥ जलसे अग्नि ब्राह्मणसे क्षत्र और पत्थरसे लोह उत्थित होता है इनका तेज सर्वत्रगामी होनेपर भी स्वस्वयोनिके संग विरोध उपस्थित होनेपर उसमेंही प्रशमित होता है यह निश्चय जानो ॥५१॥

जो राजा अपनी उन्नतिकी कामना करें वह दान और निश्चयसे ब्रह्माके मुखसे प्रगट ब्राह्मणोंका भलीभांति सन्मान करें ॥ ५२ ॥ धर्मशास्त्रके अनुसार सदा नीतिका अनुशरण करें और न्यायानुसार धन संग्रह करके राजकोष पूर्ण- करना ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! जब पिताने पुत्रको इस प्रकार उपदेश दिया तब नर पति त्रिशंकुने प्रणत होकर प्रेमसे रुद्धकण्ठ हो पितासे कहा आप जो आज्ञा देंगे मैं वही करूंगा ॥१॥ तब नरपतिने वेद शास्त्रके जाननेवाले मंत्रज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर शीघ्र अभिषेककी सामग्री मँगाई ॥ २ ॥ सम्पूर्ण तीर्थोंका जल मँगाय सब राजाओंको आदर सहित बुलाय पिताने पुत्र त्रिशंकुको पवित्र दिन देख राज्यमें अभिषिक्त कर उसको विधिके अनु

तस्माद्ब्राह्मा विशेषेण माननीया मुखोद्भवाः ॥ दानेन विनयेनैव सर्वथा भूतिमिच्छता ॥ ५२ ॥ दंडनीतिः सदा कार्या धर्म शास्त्रानुसा रतः ॥ कोशस्य संग्रहः कार्यो नूनं न्यायागतस्य ह ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं प्रबोधितः पित्रा त्रिशंकुः प्रणतो नृपः ॥ तथेति पितरं प्राहप्रेमगद्गदया गिरा ॥ १ ॥ विप्रानाहूय मंत्रज्ञान्वेदशास्त्र विशारदान् ॥ अभिषेकाय संभारान्कारयामास सत्वरम् ॥ २ ॥ सलिलं सर्वतीर्थानां समानाय्य विशांपतिः ॥ प्रकृतीश्च समाहूय सामंतान्भूपतीं स्तथा ॥ ३ ॥ पुण्येऽह्नि विधिवत्तस्मै ददावासनमुत्तमम् ॥ अभिषिच्य सुतं राज्ये त्रिशंकुं विधिवत्पिता ॥ ४ ॥ तृतीय माश्रमं पुण्यं जग्राह भार्यया युतः ॥ वने त्रिपथगाकूले चचार दुश्चरं तपः ॥ ५ ॥ काले प्राप्ते ययौ स्वर्गं पूजितस्त्रिदशैरपि ॥ इंद्रासनस मीपस्थो रराज रविवत्सदा ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ पूर्वं भगवता प्रोक्तं कथा योगेन सांप्रतम् ॥ सत्यव्रतो वसिष्ठेन शप्तो दोग्ध्रीव धात्किल ॥ ७ ॥ कुपितेन पिशाचत्वं प्रापितो गुरुणा ततः ॥ कथं मुक्तः पिशाचत्वादि त्येतत्संशयः प्रभो ॥ ८ ॥

सार राजासन दान किया ॥ ३ ॥ ४ ॥ तदनन्तर भूपति भार्याके सहित पवित्र वानप्रस्थाश्रम ग्रहण कर वनमें जाय गंगाके तटपर कठोर तपस्याका अनुष्ठान करने लगे ॥ ५ ॥ फिर कालधर्मके वशीभूत हो राजा स्वर्गको गये वहां देवताओंसे सम्मानित हो इंद्रासनके समीपमें सर्वदा सूर्यके समान दीप्ति पाने लगे ॥ ६ ॥ जनमेजयने कहा हे भगवन् ! आपने कथा प्रशंगमें पहले कहा है कि जब सत्यव्रतने धेनुवध किया था. तब महर्षि वसिष्ठने कुपित होकर उनको ॥ ७ ॥ पिशाच होओ यह कर शाप दिया था, सम्प्रति किस प्रकार वह पिशाचत्वसे छूटे ? इसका मुझको अत्यन्त सन्देह होता है ॥ ८ ॥

सत्यव्रत शापग्रस्त होनेसे सिंहासनके अयोग्य हुए किंतु मुनिवरने किस कार्यके द्वारा उनको शापसे छुड़ाया ॥ ९ ॥ इस शापसे पिशाचाकृति पुत्रको पिताने किस प्रकार गृहमें बुलाया. हे विप्रर्षे ! अब उनकी मुक्तिका कारण मुझसे भलीभांति वर्णन कीजिये ॥ १० ॥ व्यासजीने कहा वसिष्ठके शापसे सत्यव्रत शीघ्र पिशाचत्वको प्राप्त हो अत्यंत कुत्सित दुर्द्धर्ष (सहनके अयोग्य) और स्वर्गलोकको भयदायक होगये थे ॥ ११ ॥ किंतु जब उन्होंने भक्ति भावसे देवीकी उपासना की तब देवीने प्रसन्न होकर उनको दिव्यदेह दान की ॥१२॥ देवीके कृपामृत सींचनेसे उनका पापक्षय और पिशाचा कृति दूर होगई. तब सत्यव्रत पापरहित होकर अत्यंत तेजस्वी हुए ॥ १३ ॥ परमशक्तिके प्रसादसे वसिष्ठ उनके प्रति प्रसन्न हुए उनके अनुग्रहसे पिताभी सत्य व्रतके ऊपर प्रसन्न हुए

न सिंहासनयोग्यो हि भवेच्छापस मन्वितः ॥ मुनिना मोचितः शापात्केनाऽन्येन च कर्मणा ॥ ९ ॥ एतन्मे ब्रूहि विप्रर्षे शापमोक्षण कारणम् ॥ आनीतस्तु कथंपित्रा स्वगृहे तादृशाकृतिः ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ वसिष्ठेन च शप्तोऽसौ सद्यः पैशाचतां गतः ॥ दुर्वेषश्चातिदुर्धर्षः सर्वलोकभयंकर ॥ ११ ॥ यदैवोपासिता देवी भक्त्या सत्य व्रतेन ह ॥ तयाप्रसन्नया राजन्दिव्यदेहः कृतः क्षणात् ॥ १२ ॥ पिशाचत्वं गतं तस्य पापं चैव क्षयं गतम् ॥ विपाप्मा चाति तेजस्वी संभूतस्तत्कृपामृतात् ॥ १३ ॥ वसिष्ठोऽपि प्रसन्नात्मा जातः शक्तिप्रसादतः ॥ पिताऽपि च बभूवास्य प्रेममुक्तस्त्वनुग्रहात् ॥ १४ ॥ राज्यं शशास धर्मात्मा मृते पितरि पार्थिवः ॥ ईजे च विविधैर्यज्ञैर्देवदेवीं सनातनीम् ॥ १५ ॥ तस्य पुत्रो बभूवाथ हरिश्चंद्रः सुशोभनः ॥ लक्षणैः शास्त्रनिर्दिष्टैःसयुतश्चाति सुन्दरः ॥ १६ ॥ युवराजं सुतं कृत्वा त्रिशंकुः पृथिवीपतिः ॥ मानुषेण शरीरेण स्वर्ग भोक्तु मनो दधे ॥ १७ ॥ वसिष्ठस्याऽऽश्रमं गत्वा प्रणम्य विधिवन्नृपः ॥ उवाच वचनं प्रीतः कृतांजलिपुटस्तदा ॥ १८ ॥

॥ १४ ॥ पिताके मर जानेपर धर्मात्मा सत्यव्रतने राजा हो राज्य शासन और बीच बीचमें अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान कर देवदेवी सनातनीकी अर्चना करने लगे ॥ १५ ॥ हे महाराज ! इन त्रिशंकुके हरिश्चन्द्र नामक एक परम सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ उस शोभायमान राजपुत्रके अङ्गमें सम्पूर्ण शास्त्र विहित सुलक्षण विराजमान थे ॥ १६ ॥ पृथ्वीपति त्रिशंकुने पुत्रको युवराज करके मनुष्य देहसेही स्वर्ग भोग करनेकी इच्छा की ॥१७॥ तब राजाने प्रसन्न चित्तसे वसिष्ठके आश्रममें जाय विधिपूर्वक प्रणाम कर हाथ जोड़ उनसे कहा ॥ १८ ॥

हे तपोधन ! आप ब्रह्माके पुत्र और संपूर्ण वैदिक मंत्रोंके पारदर्शी हैं इस कारण आपके सौभाग्यकी सीमा नहीं है. अतएव आपसे एक विषय निवेदन करता हूं आप प्रसन्न चित्तसे वह सुनिये ॥ १९ ॥ इस समय इस मनुष्य शरीरसेही स्वर्गलोकके सुख और संपूर्ण देवताओंकी भोग्यवस्तुभोग करनेकी इच्छा उपस्थित हुई है ॥ २० ॥ नंदनवनमें विहार अप्सराओंके संग सहसवास और देवगन्धर्वोंके मधुर संगीत सुननेकी इच्छा उत्पन्न हुई है ॥ २१ ॥ अतएव हे महामुने ! मैं जिससे इसी शरीरके द्वारा स्वर्गमें वास कर सकूं आप मुझको ऐसे यज्ञमें नियोजित कीजिये ॥ ३२ ॥ हे मुनिवर आप यह कार्य सम्पादन करनेमें भली भांति समर्थ हैं. अतएप आप मेरे कार्यमें इस समय प्रवृति हूजिये. आप यज्ञ करके मुझको शीघ्रही दुर्लभ देवलोक प्रदान कीजिये ॥ २३ ॥ वसिष्ठने कहा हे

राजोवाच ॥ ब्रह्मपुत्र महाभाग सर्वमंत्रविशारद ॥ विज्ञप्तिं मे सुमनसा श्रोतुमर्हसि तापस ॥ १९ ॥ इच्छा मेऽद्य समुत्पन्ना स्वर्गलोक सुखाय च ॥ अनेनैव शरीरेण भोगान्भोक्तुममानुषान् ॥ २० ॥ अप्सरोभिश्च संवासः क्रीडितुं नंदने वने ॥ देवगंधर्वगानं च श्रोतव्यं मधुरं किल ॥ २१ ॥ याजय त्वं मखेनाऽऽशु तादृशेन महामुने ॥ यथाऽनेन शरीरेण वसे लोकं त्रिविष्टपम् ॥ २२ ॥ समर्थोऽसि मुनि श्रेष्ठ कुरु कार्यं ममाधुना ॥ प्रापयाऽऽशु मखं कृत्वा देवलोके दुरासदम् ॥ २३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ राजन्मानुषदेहेन स्वर्गे वासः सुदुर्लभः ॥ मृतस्य हि ध्रुवः स्वर्गः कथितः पुण्यकर्मणा ॥ २४ ॥ तस्माद्बिभेमि सर्वज्ञ दुर्लभाच्च मनोरथात् ॥ अप्सरोभिश्च संवासो जीवमानस्य दुर्लभः ॥ २५ ॥ कुरु यज्ञान्महाभाग मृतः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य राजा परमदुर्मनाः ॥ २६ ॥ उवाच वचनं भूयो वसिष्ठं पूर्वरोषितम् ॥ न त्वं याजयसे ब्रह्मन्गर्वा वेशाच्च मां यदि ॥ २७ ॥

राजन् ! मनुष्य देहसे स्वर्गमें वास करना अत्यंत दुर्लभ है. मृतक पुरुष पुण्य बलसे स्वर्गमें वास करते हैं यही वीर प्रसिद्ध है ॥ २४ ॥ अतएव हे सर्वज्ञ ! तुम्हारा मनोरथ दुर्लभ है इस कारण मैं इससे डरता हूं. हे महाराज ! जीवित पुरुषको अप्सराओंके सहित सहवास अत्यन्त दुर्लभ है ॥ २५ ॥ अतएव हे महाभाग ! पहले यज्ञका अनुष्ठान कीजिये फिर यह देह त्यागकर स्वर्ग प्राप्त कीजिये. व्यासजीने कहा हे महाराज ! महर्षि वसिष्ठ धेनुवधके कारण पहलेसेही राजाके प्रति रोषयुक्त थे इस कारण उन्होंने राजासे ऐसे वचन कहे फिर राजा यह सुनकर अत्यंत विमन हो ॥ २६ ॥ महर्षिसे फिर कहने लगे हे ब्रह्मन् ! गर्वके अत्यंत वशीभूत हो यदि आप मुझको यज्ञ न करावगे ॥ २७ ॥

तो मैं इस समय दूसरे पुरोहितको कर यज्ञका अनुष्ठान करूंगा. वसिष्ठने राजाके इस प्रकार वचन सुन कुपित होकर ॥ २८ ॥ उनको शाप दिया रे दुर्मते ! तू चाण्डाल हो अधिक क्या तू शीघ्रही इस शरीरसे श्वपच पिशाच हो ॥ २९ ॥ जिससे स्वर्ग मार्ग रोकता है. तैंने उसी प्रकार पापकार्य किया है. तैंने ब्राह्मणकी पत्नी हरणकर धर्ममार्ग नष्ट किया है तू गो वध करके दूषित हुआ है और तू धर्म विदूषक है ॥३०॥ अतएव हे पापिष्ठ ! तेरे मरनेपर भी कभी स्वर्ग प्राप्त न होगा. व्यासजीने कहा हे राजन् ! त्रिशंकु गुरुके ऐसे निष्ठुर वचन सुनते ही तात्काल ॥ ३१ ॥ उसी शरीरसे वहां श्वपचाकृति हुए उसी समय उनके सुवर्णकुण्डल लोहमय हो गये ॥ ३२ ॥ उनके शरीरमें जो सुगन्धित चन्दन था वह चिष्ठाके समान गन्धयुक्त हो गया उनके जो मनोहर

अन्यं पुरोहितं कृत्वा यक्ष्येऽहं किल सांप्रतम् ॥ तच्छुत्वा वचनं तस्य वसिष्ठः कोपसंयुतः ॥ २८ ॥ शशाप भूपतिं चेति चांडालो भव दुर्मते ॥ अनेन त्वं शरीरेण श्वपचो भवसत्वरम् ॥ २९ ॥ स्वर्गकृंतनपापिष्ठ सुरभी वधदूषित ॥ ब्रह्मपत्नीहरो च्छिन्नधर्ममार्गविदूषक ॥ ३० ॥ न ते स्वर्गगतिः पाप मृतस्यापि कथंचन ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तो गुरुणा राजंस्त्रिशंकुस्तत्क्षणादपि ॥ ३१ ॥ तत्र तेन शरीरेण बभूव श्वपचाकृतिः ॥ कुंडलेऽश्ममये वाऽपि जाते तस्य च तत्क्षणात् ॥ ३२ ॥ देहे चंदनगंधश्च विगंधो ह्यभवत्तदा ॥ नीलवर्णे च संजाते दिव्ये पीतांबरे तनौ ॥ ३३ ॥ गजवर्णोऽभवद्देहः शापात्तस्य महात्मनः ॥ शक्त्युपासकरोषेण फलमेतदभून्नृप ॥ ३४ ॥ तस्माच्छ्रीशक्ति भक्तो हि नावमान्यः कदाचन ॥ गायत्रीजपनिष्ठो हि वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वा निंद्यं निजं देहं राजा दुःखमवाप्तवान् ॥ न जगाम गृहे दीनो वनमेवाऽभितो ययौ ॥ ३६ ॥ चिंतयामास दुःखार्तस्त्रिशंकुः शोकविह्वलः ॥ किं करोमि क्व गच्छामि देहो मेऽतीव निंदितः ॥ ३७ ॥

पीताम्बरयुगल परिधान थे वह नीलवर्ण हो गये ॥ ३३ ॥ उन महात्माके शापसे उनका शरीर हाथीके समान वर्णयुक्त होगया. हे राजन् ! जो परमा शक्तिके उपासक हैं उनके कोपसे इसी प्रकार फल होता है इसमें संदेह नहीं ॥ ३४ ॥ अतएव शक्तिके भक्त मनुष्य का अपमान करना कभी उचित नहीं है. हे मुनिसत्तम ! वसिष्ठ देवीके गायत्रीजपमें सदा तत्पर थे इसी कारण उनके कोपसे राजाकी दुर्दशा हुई इसमें क्या विचित्रता है ॥ ३५ ॥ तब राजा त्रिशंकु अपना निन्दनीय देह देखकर दुःखित हुए और घर नहीं गये वरन् दीनवेशसे वनको चले गये ॥ ३६ ॥ राजा त्रिशंकु दुःखसे कातर और शोकसे अभिभूत हो चिन्ता करने लगे मेरा शरीर ऐसा हुआ है अतएव इस अवस्थामें कहां जाऊं अथवा क्या उपाय करूं ॥ ३७ ॥

जिससे मेरा दुःख दूर हो ऐसा कोई उपाय नहीं दीखता यदि घर जाऊं तो पुत्र मेरी यह अवस्था देखकर अत्यन्त कातर होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥ भार्या मुझको श्वपचाकृति देखकर फिर ग्रहण न करेगी मंत्री भी मेरा इस प्रकार अंग देखकर पहलेके समान आदर न करेंगे ॥ ३९ ॥ विशेषकर ज्ञाति और बान्धव वर्ग मेरे निकट आय पहलेके समान सेवा नहीं करेंगे. अतएव सबसे परित्यक्त होकर जीवित रहनेकी अपेक्षा मरना ही श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ मैं विषपान कर अथवा जलाशयमें डूब वा गलेमें रस्सी बांध जीवनत्याग करूंगा ॥ ४१ ॥ अथवा बलपूर्वक यह देह प्रज्वलित अग्निमें विधिके अनुसार जलाऊंगा किंवा निराहार रहकर इस अत्यंत दूषित जीवनको विसर्जन करूंगा ॥ ४२ ॥ किंतु हा ! इससे आत्महत्याका पाप होगा इस कारण

कर्तव्यं नैव पश्यामि येन मे दुःखसंक्षयः ॥ गृहे गच्छामि चेत्पुत्रः पीडितोऽद्य भविष्यति ॥ ३८ ॥ भार्याऽपि श्वपचं दृष्ट्वा नांगीकारं करिष्यति ॥ सचिवा नादरिष्यंति वीक्ष्य मामीदृशं पुनः ॥ ३९ ॥ ज्ञातयो बंधुवर्गश्च संगतो न भजिष्यति ॥ सर्वैस्त्यक्तस्य मे नूनं जीवितान्मरणं वरम् ॥ ४० ॥ विषं वा भक्षयित्वाऽद्य पतित्वा वा जलाशये ॥ कृत्वा वा कंठपाशं च देहत्यागं करोम्यहम् ॥ ४१ ॥ अग्नौ वा ज्वलिते देहं जुहोमि विधिवद्बलात् ॥ कृत्वा वाऽनशनं प्राणांस्त्यजामि दूषितान्भृशम् ॥ ४२ ॥ आत्महत्या भवेन्नूनं पुनर्जन्मनि जन्मनि ॥ श्वपचत्वं च शापश्च हत्यादोषाद्भवेदपि ॥ ४३ ॥ पुनर्विचार्य भूपालश्चेतसा समचिंतयत् ॥ आत्महत्या न कर्तव्या सर्वथैव मयाऽधुना ॥ ४४ ॥ भोक्तव्यं स्वकृतं कर्म देहे नानेन कानने ॥ भोगेनास्य विपाकस्य भविता सर्वथा क्षयः ॥ ४५ ॥ प्रारब्धकर्मणां भोगादन्यथा न क्षयो भवेत् ॥ तस्मान्मयाऽत्र भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ४६ ॥ कुर्वन्पुण्या श्रमाभ्याशे तीर्थानां सेवनं तथा ॥ स्मरणं चांबिकायास्तु साधूनां सेवनं तथा ॥ ४७ ॥

हत्यादोषके वशीभूत हो प्रतिजन्ममें फिर श्वपचत्व और शाप प्राप्त होगा ॥ ४३ ॥ मनमें इस प्रकार विचार भूपतिने फिर चिंता करके स्थिर किया कि; अब आत्महत्या करना मुझको कभी उचित नहीं है ॥ ४४ ॥ इस कर्मपिपाकका भोग होनेसे वह अवश्य दूर होगा. अतएव इस देहसे वनमें अपने किए हुए कर्मोंको भोगूं ॥ ४५ ॥ विशेषकर भोगनेके अतिरिक्त प्रारब्धकार्य कभी दूर नहीं होता. अतएव जो जो शुभ अथवा अशुभ कार्य किये हैं इस स्थानमें वह सम्पूर्ण भोगूंगा ॥ ४६ ॥ मैं सदा ही पवित्र आश्रमके समीप स्थानमें वास तीर्थस्थानमें पर्यटन अम्बिकाका स्मरण और साधुओंकी सेवा करूंगा ॥ ४७ ॥

वनमें वास करके इस प्रकार निश्चय ही कर्मक्षय करूंगा अनंतर भाग्यवश यदि कभी साधुसमागम संघटित हो तबही मेरा कार्य सिद्ध होगा ॥ ४८ ॥ नरपति मनमें इस प्रकार चिन्ता कर अपने नगरको छोड गंगाके तटपर गये और अनेक अनुताप करके उस सुरनदीके पुलिनमें स्थिति करने लगे ॥ ४९ ॥ इधर पृथ्वीपति हरिश्चन्द्रने पिताके शापका कारण जान दुःखित हृदयसे मंत्रियोंको उनके निकट भेजा ॥ ५० ॥ जिस समय राजा चाण्डालके समान हो वारम्वार श्वास छोड रहे थे उसी समय मंत्रियोंने उनके निकट उपस्थित हो अति विनीत भावसे प्रणाम करके कहा ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! आपके पुत्रने हमको भेजा है उनकी अनुमतिके अनुसार हम आपके पास आये हैं हम राजा हरिश्चन्द्रके आज्ञानुवर्त्ती मंत्री हैं यह आप सत्य जानिये ॥ ५२ ॥ हे

एवं कर्मक्षयं नूनं करिष्यामि वने वसन् ॥ भाग्ययोगात्कदाचित्तु भवेत्साधुसमागमः ॥ ४८ ॥ इति संचिंत्य मनसा त्यक्त्वा स्वनगरं नृपः ॥ गंगातीरे गतः कामं शोचंस्तत्रैव संस्थितः ॥ ४९ ॥ हरिश्चंद्रस्तदा ज्ञात्वा पितुः शापस्य कारणम् ॥ दुःखितः सचिवांस्तत्र प्रेषयामास पार्थिवः ॥ ५० ॥ सचिवास्तत्र गत्वाऽऽशु तमूचुः प्रश्रयान्विताः ॥ प्रणम्य श्वपचाकारं निःश्वसंतं मुहुर्मुहुः ॥५१ ॥ राजन्पुत्रेण ते नूनं प्रेषितान्समुपागतान् ॥ अवेहि सचिवांस्त्वं नो हरिश्चंद्राज्ञया स्थितान् ॥ ५२ ॥ युवराज सुतः प्राह यत्तच्छृणु नराधिप आनयध्वं नृपं यूयं संमान्य पितरं मम ॥ ५३ ॥ तस्माद्राजन्समागच्छ राज्यं प्रति गतव्यथः ॥ सेवां सर्वे करिष्यंति सचिवाश्च प्रजास्तथा ॥ ५४ ॥ गुरुं प्रसादयिष्यामः स यथा तु दयेत वै ॥ प्रसन्नोऽसौ महातेजा दुःखस्यांतं करिष्यति ॥ ५५ ॥ इतिपुत्रेण ते राजन्कथितं बहुधा किल ॥ तस्माद्गमन मेवाऽऽशु रोचतां निजसद्मनि ॥ ५६ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां नृपः श्रुत्वा भाषितं श्वपचाकृतिः ॥ स्वगृहं गमनयासौ न मतिं कृतवानदः ॥ ५७ ॥

नरनाथ ! आपके पुत्र युवराजने जो कहा है सो सुनिये. उन्होंने कहा है कि, हमारे पिताको तुम शीघ्र इस स्थानमें ले आओ ॥ ५३ ॥ अतएव हे राजन् ! मनकी वेदना छोडकर राजधानीमें चलिये क्या मंत्री लोग क्या प्रजालोग सम्पूर्णही आपकी सदा सेवा करेंगे ॥ ५४ ॥ गुरुदेव वसिष्ठ जिससे आपके प्रति दयायुक्त हो हम सम्पूर्ण उसी प्रकार उनको प्रसन्न करेंगे तो अवश्यही वह महातेजा प्रसन्न होकर शीघ्र आपका दुःख दूर करेंगे ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! आपके पुत्रने इस प्रकार अनेक बातें कही हैं अतएव आप इस समय अपने घरको चलिये ॥ ५६ ॥ व्यासजीने कहा हे नरनाथ ! उन श्वपचाकृति नरपतिने उनके यह वचन सुनकर भी अपने घर जानेकी इच्छा न की ॥ ५७ ॥

वरन् उनसे कहा कि हे मंत्रियो ! तुम घरको लौट जाओ और तुम घर जायकर मेरे वचनानुसार पुत्रसे कहो कि ॥ ५८ ॥ अब मैं घरको नहीं जाऊंगा तुम आलस्य छोड सावधान होकर राज्यशासन करो विशेषकर ब्राह्मणोंका सन्मान और अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान तथा देवताओंकी अर्चना करो ॥ ५९ ॥ मैं इस निंदनीय चाण्डाल वेशसे महानुभाव गणोंके सहित अयोध्यामें जानेकी इच्छा नहीं करता अतएव तुम शीघ्र ही अयोध्याको जाओ ॥ ६० ॥ मेरी आज्ञानुसार मेरे पुत्र महाबल हरिश्चन्द्रको सिंहासनपर स्थापितकर तुम राज्य कार्य सम्पादन करो ॥ ६१ ॥ अनंतर मंत्रियोंने राजाकी इस प्रकार आज्ञा सुन कातर हृदयसे अत्यंत रोदन किया और उनको प्रणामकर शीघ्र ही वनाश्रमसे निकले ॥६२॥ उसकाल उन्होंने अयोध्यामें आय पवित्र दिन देख हरिश्चंद्रके

तानुवाच तदा वाक्यं व्रजंतु सचिवाः पुरम् ॥ गत्वा पुरं महा भागा ब्रुवंतु वचनाच्च मे ॥५८॥ नागमिष्याम्यहं पुत्र कुरु राज्यमतंद्रितः ॥ मानयन्ब्राह्मणान्देवान्यजन्यज्ञैरनेकशः ॥ ५९ ॥ नाहं श्वपचवेषेण गर्हितेन महात्मभिः ॥ आगमिष्याम्ययोध्यायां सर्वे गच्छंतु मा चिरम् ॥ ६० ॥ पुत्रं सिंहासने स्थाप्य हरिश्चंद्रं महाबलम् ॥ कुर्वंतुराज्यकर्माणि यूयं तत्र ममाज्ञया ॥ ६१ ॥ इत्यादिष्टा स्ततस्ते तु रुरुदुश्चातुरा भृशम् ॥ सचिवा निर्ययूस्तूर्णं नत्वा तं च वनाश्रमात् ॥ ६२ ॥ अयोध्यायामुपागत्य पुण्येऽह्नि विधि पूर्वकम् ॥ अभिषेकं तदा चक्रुर्हरिश्चंद्रस्य मूर्ध्नि ते ॥ ६३ ॥ अभिषिक्तस्तु तेजस्वी सचिवैश्च नृपाज्ञया ॥ राज्यं चकार धर्मिष्ठः पितरं चिंतयन्भृशम् ॥६४॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ राजोवाच ॥ हरिश्चंद्रः कृतो राजा सचिवैर्नृपशासनात् ॥ त्रिशंकुस्तु कथं मुक्तस्तस्माच्चांडालदेहतः ॥ १ ॥ मृतो वा वनमध्ये तु गंगा तीरे परिप्लुतः ॥ गुरुणा वा कृपां कृत्वा शापात्तस्माद्वि मोचितः ॥ २ ॥ एतद्वृत्तांतमखिलं कथयस्व ममाग्रतः ॥ चरितं तस्य नृपतेः श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा ॥ ३ ॥

मस्तकमें विधिपूर्वक मंत्रपूत अभिषेक जल प्रदान किया ॥६३॥ वह तेजस्वी धर्मनिष्ठ हरिश्चंद्र राजाकी आज्ञानुसार राज्यमें अभिषिक्त हो निरंतर पिताको स्मरण कर मंत्रियोंके सहित धर्मानुसार राज्यशासन करने लगे ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां द्वादशोऽध्यायः॥१२॥जनमेजयने कहा हे मुनिसत्तम ! नरपतिकी आज्ञानुसार मंत्रियोंने हरिश्चन्द्रको राज्यपदमें अभिषिक्त किया किंतु त्रिशंकु उस चांडाल देहसे किस प्रकार छूटे ? वह आप मुझसे कहिये॥१॥यह गंगाके तटपर पवित्र जलमें स्नानकर वनमें प्राण परित्याग पूर्वक शापसे छूटे थे अथवा गुरु वसिष्ठ देवने कृपा करके उनकी शापसे रक्षा की थी? ॥२॥हे ऋषिवर ! मैं उन नरपतिका चरित्र सुननेकी अत्यन्त इच्छा करता हूं इस कारण आप उनके सब अद्भुत चरित्र मुझसे विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये॥३॥

व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा पुत्रको राज्यपदमें अभिषिक्त कर सन्तुष्ट चित्त हुए और भगवतीका भवानीका ध्यान करते हुए उस वनमें काल व्यतीत करने लगे ॥ ४ ॥ इस प्रकार कुछ काल व्यतीत होनेपर कुशिक पुत्र विश्वामित्र एकाग्रचित्तसे तपस्याका अनुष्ठान समाप्तकर स्त्री और पुत्रोंको देखनेके लिये अपने घर आये ॥ ५ ॥ वह बुद्धिमान् घर आय पुत्रोंको स्वच्छन्दतासे रहता देख अत्यंत आनंदित हुए और जब उनकी भार्या उनकी सेवा करनेके लिये संमुख आई तब उन्होंने उससे पूँछा ॥६॥ हे सुलोचने ! दुर्भिक्षके समयमें तुमने किस प्रकार काल व्यतीत किया ? घरमें कुछ भी अन्न नहीं था. तो इन बालकोंका किस उपायसे प्रतिपालन किया यह तुम मुझसे कहो ॥ ७ ॥ हे सुन्दरि ! मैं तपश्चर्य्यामें सम्यक् प्रकार बँधा हुआ था इस कारण

व्यास उवाच ॥ अभिषिक्तं सुतं कृत्वा राजा संतुष्टमानसः ॥ कालातिक्रमणं तत्र चकार चिंतयञ्छिवाम् ॥ ४ ॥ एवं गच्छति काले तु तपस्तप्त्वा समाहितः ॥ द्रष्टुं दारान्सुतादींश्च तदाऽगात्कौशिको मुनिः ॥ ५ ॥ आगत्य स्वजनं दृष्ट्वा सुस्थितं मुदमाप्तवान् ॥ भार्यां प्रपच्छ मेधावी स्थितामग्रे सपर्यया ॥ ६ ॥ दुर्भिक्षेतु कथं कालस्त्वया नीतः सुलोचने ॥ अन्नं विना त्विमेबालाःपालिताः केन तद्वद ॥ ७ ॥ अहं तपसि संबद्धो नागतः शृणु सुन्दरि ॥ किं कृतं त्वया कान्ते विना द्रव्येण शोभने ॥ ८ ॥ मया चिंता कृता श्रुत्वा दुर्भिक्षमद्भुतम् ॥ नागतोऽहं विचार्यैवं किं करिष्यामि निर्धनः ॥ ९ ॥ अहमप्यतिवामोरु पीडितः क्षुधया वने ॥ प्रविष्टश्चौरभावेन कुत्रचिच्छ्वपचालये ॥ १० ॥ श्वपचं निद्रितं दृष्ट्वा क्षुधया पीडितो भृशम् ॥ महानसं परिज्ञाय भक्ष्यार्थं समुपस्थितः ॥ ११ ॥ यदा भांडं समुद्घाटच पक्वं श्वतनुजामिषम् ॥ गृह्णामि भक्षणार्थाय तदा दृष्टस्तु तेन वै ॥ १२ ॥

तुम्हारा पालन करनेके लिये यहाँ नहीं आसका किंतु हे कांते ! तुमने खाद्य द्रव्यके अभावसे क्या उपाय अवलम्बन किया था ॥ ८ ॥ हे शोभने ! मैंने अद्भुत दुर्भिक्षका वृत्तांत सुन कर उस काल विचार किया कि, मैं धनहीन हूं इस कारण इस समय वहां जाकर क्या करूंगा ? इस प्रकार विचार कर ही मैं यहाँ नहीं आया ॥ ९ ॥ हे वामोरु ! तब मैं एक दिन भूखसे अत्यंत कातर हो कोई उपाय न देखकर एक चाण्डालके घर में चोर भावसे घुसा ॥१०॥ घरमें घुसकर श्वपचको सोता हुआ देखा तब मैं भूखसे अत्यंत कातर हो उसकी पाकशालाको ढूंढता हुआ उसमें उपस्थित हुअ ! ॥ ११ ॥ भोजनकी हांडी उघाडकर भोजनके लिये जिस समय पक्व कुत्तेका मांस ग्रहण किया उसी समय उस श्वपचने मुझको देखा ॥ १२ ॥

उसने मुझसे आदर पूर्वक पूँछा कि तुम कौन हो किस कारण रात्रिके समय मेरे घरमें घुसे हो ? अथवा किस लिये पाककी हाँडी उघाडते हो ? तुम्हारा क्या प्रयोजन है सो मुझसे कहो ॥ १३ ॥ हे सुन्दरि ! जब चाण्डालने मुझसे यह बात पूंछी तब मैं भूंखसे अत्यन्त कातर था इस कारण मैंने अपनी इच्छा गद्गद स्वरसे कही ॥ १४ ॥ मैं तपस्वी ब्राह्मण हूं क्षुधासे अत्यंत क्लेश पाय चौर भावसे तुम्हारे घरमें आय इस हाँडीमें भक्ष्यद्रव्य ढूंढता हूं ॥१५॥ हे महामते ! मैं इस समय तुम्हारे घरमें चोरभावसे अतिथि हूं, विशेषकर मैं इस समय क्षुधासे अत्यंत पीडित हूं इस कारण सुसंस्कृत मांस भोजन करूंगा तुम इस विषयमें मुझको अनुमति दो ॥ १६ ॥ श्वपचने मेरे यह वचन सुनकर मुझसे शास्त्र विहित वचन कहे, हे वर्णश्रेष्ठ ! इसको चांडालका घर जानना चाहिये, अतएव

पृष्टः कस्त्वं कथं प्राप्तो गृहे मे निशि सादरम् ॥ ब्रूहि कार्यं किमर्थं त्वमुद्घाटयसि भांडकम् ॥ १३ ॥ इत्युक्तः श्वपचेनाऽहं क्षुधया पीडितो भृशम् ॥ तमवोचं सुकेशान्ते कामं गद्गदया गिरा ॥ १४ ॥ ब्राह्मणोऽहं महाभाग तापसः क्षुधयाऽर्दितः ॥ चौरभावमनुप्राप्तो भक्ष्यं पश्यामि भांडके ॥ १५ ॥ चौरभावेन संप्राप्तोऽस्म्यतिथिस्ते महामते ॥ क्षुधितोऽस्मि ददस्वाज्ञां मांसमद्मि सुसंस्कृतम् ॥ १६ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ श्वपचस्तु वचः श्रुत्वा मामुवाच सुनिश्चितम् ॥ भक्षं मा कुरु वर्णाग्र्य जानीहि श्वपचालयम् ॥ १७ ॥ दुर्लभंख लुमानुष्यंतत्राऽपि च द्विजन्मता ॥ द्विजत्वे ब्राह्मणत्वं च दुर्लभं वेत्सि किं न हि ॥१८॥ दुष्टाहारो न कर्तव्यः सर्वथा लोकमिच्छता ॥ अग्राह्या मनुना प्रोक्ताः कर्मणा सप्त चांत्यजाः ॥ १९ ॥ त्याज्योऽहं कर्मणा विप्र श्वपचो नाऽत्र संशयः ॥ निवारयामि भक्ष्यात्त्वां न लोभेनांजसा द्विज ॥ २० ॥

आप इसको कभी भक्षण न कीजिये ॥ १७ ॥ देखो इस लोकमें मनुष्यका जन्म अत्यंत दुर्लभ है और यद्यपि मनुष्यका जन्म प्राप्त हो तथापि ब्राह्मणका जन्म उसकी अपेक्षा अत्यंत दुर्लभ है और ब्राह्मणसे भी ब्राह्मणत्व प्राप्त करना अति कठिन है यह क्या आप नहीं जानते हैं ? ॥ १८ ॥ जो स्वर्गादि प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं उनको दूषित अन्न कभी आहार करना नहीं चाहिये महर्षि मनुने कर्मके अनुसार सब जातिको अन्त्यज कहकर अग्राह्य किया है ॥ १९ ॥ इस कारण हे विप्र ! मैं भी कर्मके वशीभूत होनेसे श्वपचजातिमें उत्पन्न होकर सबके त्यागने योग्य हुआ हूं इसमें संमय नहीं हे द्विजवर ! लोभवशसे नहीं किंतु इस अभिप्रायसे मैं आपको भक्षण करनेसे निवारण करता हूं ॥२०॥

वर्णसंकरदोष आपको न लगे विश्वामित्रने कहा हे धर्मज्ञ ! तुम सत्य कहते हो तुम्हारे चाण्डाल होनेपर भी तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त निर्मल है ॥ २१ ॥ इस समय मैं तुमसे आपद् धर्मका सूक्ष्ममार्ग कहता हूं सुनो हे मानद ! सम्पूर्ण समयमें देहकी रक्षा करना सम्यक् प्रकार श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ किन्तु यदि उसमें पाप हो तो आपदाके अन्तमें शुद्धिकेलिये उस पापका प्रायश्चित्त करना चाहिये और आपद कालके बिना पापकार्य करनेसे मनुष्योंकी दुर्गति होती है किंतु आपदकालके समय नहीं होती ॥ २३ ॥ जो मनुष्य भूंखा मरता है अन्तमें उसको नरक होता है इसमें संसय नहीं इस कारण शुभाकांक्षी मनुष्योंके क्षुधाका निवारण अवश्य कर्त्तव्य है ॥ २४ ॥ हे अन्त्यज ! मैंने इसी कारण चौर्यवृत्ति अवलम्बन कर देहके रक्षा करनेकी इच्छा की है. देखो, दुर्भिक्षके समय अवर्षणमें चोरी

वर्णसंकरदोषोऽयं माऽऽयातु त्वां द्विजोत्तम ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ सत्यं वदसिधर्मज्ञमतिस्ते विशदांत्यज ॥ २१ ॥ तथाऽप्यापदि धर्मस्य सूक्ष्ममार्गंब्रवीम्यहम् ॥ देस्यह रक्षणं कार्यं सर्वथा यदि मानद ॥ २२ ॥ पापस्यान्ते पुनः कार्यं प्रायश्चित्तं विशुद्ध ये ॥ दुर्गतिस्तु भवेत्पापदनापादि न चाऽऽपदि ॥ २३ ॥ मरणात्क्षुधितस्याथ नरको नात्र संशयः ॥ तस्मात्क्षुधापहरणं कर्तव्यंशुभमिच्छता ॥ २४ ॥ तेनाऽहं चौर्यधर्मण देहं रक्षेऽप्यथां त्यज॥ अवर्षणे च चौर्येण यत्पापं कथितं बुधैः ॥ २५ ॥ यो न वर्षति पर्जन्यं तत्तु तस्मै भविष्यति ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ इत्युक्ते वचने कान्ते पर्जन्यः सहसाऽपतत् ॥ २६ ॥ गगनाद्धस्तिहस्ताभिर्धाराभिरभिकांक्षितः॥ मुदितोऽहं घनं वीक्ष्य वर्षंतं विद्युता सह ॥ २७॥ तदाऽहं तद्गृहं त्यक्त्वा निःसृतःपरया मुदा ॥ कथय त्वं वरारोहे कालो नीतस्त्वया कथम् ॥ २८ ॥ कान्तारे परमक्रूर क्षयकृत्प्राणिनामिह ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा पतिमाह प्रियंवदा ॥ २९ ॥

करनेपर पंडितोंने जो पापका विधान किया है ॥ २५ ॥ यदि मेघ वर्षा न करे तो वह पाप उसकोही अवश्य स्पर्श करता है । विश्वामित्र बोले हे कान्ते ! यह बात कहतेही सबके आकांक्षित पर्जन्य देव ॥ २६ ॥ सहसा हरितशुण्डाकार धारासे वर्षा करने लगे मेघोंको विजलीसहित वर्षा करने पर मैं उनको देखकर आनन्दित हुआ ॥ २७ ॥ तब अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उस चाण्डालके घरको छोड बाहर निकला हे वरारोहे ! इस घने वनमें सम्पूर्ण प्रणियोंका क्षयकर अत्यन्त भयंकर वह दुर्भिक्षका समय तुमने किस प्रकार व्यतीत किया यह मुझसे कहो व्यासजीने कहा हे महाराज ! पतिके इस प्रकार वचन सुन वह प्रियभाषिणी प्रियतमा उनसे कहने लगी कि ॥ २८ ॥ २९ ॥

परमदारुण दुर्भिक्षके उपस्थित होनेपर मैंने जिस प्रकार काल व्यतीत किया है वह आप सुनिये. हे मुनिवर ! जब आपके तपस्या करनेको चलेजानेपर घोर दुर्भिक्षउ पस्थित हुआ ॥ ३० ॥ तब पुत्र क्षुधासे अत्यन्त कातर हीं अन्नके लिये अतिदुःखित हुए जब मैं बालकोंको क्षुधार्त देखकर चिंता करने लगी तब नीवारणके लिये वनमें भ्रमण करते हुए॥३१॥ मुझको कितनेही फल प्राप्त हुए इस प्रकार नीवारान्नसे कितनेही महीने व्यतीत होगये ॥३२॥ फिर क्रमानुसार उसकाभी अभाव होगया तब मनमें चिन्ता करने लगी इस दारुणदुर्भिक्षके समय वनमें नीवार अन्नका भी अत्यन्त अभाव हुआ ॥ ३३ ॥ इस समय भिक्षाभी सुलभ नहीं है वृक्षोंपर भी फल नहीं है और पृथ्वीमें भी मूल नहीं पाये जाते बालक तो क्षुधाकी ज्वालासे कातर होकर अत्यन्त रोदन करते हुए ॥ ३४ ॥

यथा शृणु मया नीतिः कालः परमदारुणः ॥ गते त्वयिमुनिश्रेष्ठ दुर्भिक्षं समुपागतम् ॥३०॥ अन्नार्थं पुत्रकाः सर्वे बभूवुश्चातिदुःखिताः ॥ क्षुधितान्बालकान्वीक्ष्य नीवारार्थं वने वने ॥ ३१ ॥ भ्रान्ताऽहं चिंतयाऽऽविष्टा किंचित्प्राप्तं फलं तदा ॥ एवं च कतिचिन्मासा नीवारेणातिवाहिताः ॥ ३२ ॥ तदभावे मया कांत चिंतितं मनसा पुनः ॥ न भिक्षा किल दुर्भिक्षे नीवारा नापि कानने ॥ ३३ ॥ न वृक्षेषु फलान्यासुर्न मूलानिधरातले ॥ क्षुधया पीडिता बाला रुदंति भृशमातुराः ॥ ३४ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि किं ब्रवीमि क्षुधार्दितान् ॥ एवं विचिंत्य मनसा निश्चयस्तु मया कृतः ॥ ३५ ॥ पुत्रमेकं ददाम्यद्य कस्मैचिद्धनिने किल ॥ गृहीत्वा तस्य मौल्यं तु तेन द्रव्येण बालकान् ॥ ३६ ॥ पालयेऽहं क्षुधार्तांस्तुनान्योपायोऽस्मि पालने ॥ एवं संचिंत्य मनसा पुत्रोऽयं प्रहितो मया ॥ ३७ ॥ विक्रयार्थं महाभाग क्रन्दमानो भृशातुरः ॥ क्रन्दमानं गृहीत्वैनं निर्गताऽहं गतत्रपा ॥ ३८ ॥ तदा सत्यव्रतो मार्गे मामुद्वीक्ष्य भृशातुरम् ॥ प्रपच्छ स च राजर्षिः कस्माद्रोदिति बालकः ॥ ३९ ॥

इस समय क्या उपाय है ? कहां जाऊं ? अथवा क्षुधित बालकोंसे क्या कहूं इस भाँति अनेक प्रकारके विषयकी चिन्ता करके स्थिर किया कि ॥ ३५ ॥ एक पुत्रको किसी धनीके निकट बेचूंगी और उसका मूल्य लेकर उस अर्थसे ॥३६॥ क्षुधार्त बालकोंका प्रतिपालन करूंगी इसके सिवाय पालन करनेका दूसरा उपाय नहीं है हे कान्त ! इस प्रकार मनमें विचार इस बालककोही बेचनेके लिये नियोजन किया ॥३७॥ हे महाभाग ! तब यह बालक अत्यन्तकातर होने लगा तथापि मैं लज्जा रहित हो रोते हुए बालकको संगले आश्रमसे बाहर निकली ॥३८॥ इसी समय सत्यव्रतनामक राजर्षिने मार्गमें मुझको अत्यन्त कातर देखकर पूँछा हे सुव्रते ! यह बालक किस कारण रोता है ॥ ३९ ॥

हे मुनिसत्तम ! तब मैंने उनसे कहा हे राजन् मैं इस बालकको बेचनेके लिये जाती हूं ॥४०॥ मेरे इस प्रकार वचन सुन राजाका हृदय करुणारससे अभिषिक्त हुआ, तब उन्होंने मुझसे कहा कि तुम इस कुमारको लेकर अपने आश्रममें जाओ ॥ ४१ ॥ जबतक मुनिवर आश्रममें न आवेंगे तबतक मैं इन कुमारोंके भोजनार्थ नित्य भोजनका उपयोगी मांस संग्रहकर तुम्हारे पास लाऊंगा ॥ ४२ ॥ हे मुनिवर ! तबसे ही भूपाल दयाके वसीभूत हो प्रतिदिन मृग और शूकरोंको मारकर उनका मास इस वृक्षमें बांध जाते ॥ ४३ ॥ हे कान्त ! उससे ही मैंने इन बलकोंकी उस दारुण संकटसागरसे रक्षा की किन्तु यह भूपति मेरेही कारण वशिष्ठसे शापको प्राप्त हुए हैं ॥ ४४ ॥ किसी दिन उस राजाको वनमें मांस प्राप्त न हुआ अतएव वशिष्ठकी कामधेनुका वध किया इस

तदाऽहं तमुवाचेदं वचनं मुनिसत्तम ॥ विक्रयार्थं नीयतेऽसौ बालकोऽद्य मया नृप ॥ ४० ॥ श्रुत्वा मे वचन राजा दयार्द्रहृदयस्ततः ॥ मामुवाच गृहं याहि गृहीत्वैनं कुमारकम् ॥ ४१ ॥ भोजनार्थं कुमाराणामामिषं विहितं तव ॥ प्रापयिष्याम्यहं नित्यंयावन्मुनि समागमः ॥ ४२ ॥अहन्यहनि भूपालो वृक्षेऽस्मिन्मृगसूकरान् ॥ विन्यस्य याति हत्वाऽसौ प्रत्यहं दययाऽऽन्वितः ॥ ४३ ॥ तेनैव बालकाः कांत पालिता वृजिनार्णवात् ॥ वसिष्ठेनाथ शप्तोऽसौ भूपतिमम कारणात् ॥ ४४ ॥ कस्मिंश्चिद्दिवसे मांसं न प्राप्तं तेन कानने ॥ हतादोग्ध्री वसिष्ठस्य तेनासौ कुपितो मुनिः ॥ ४५ ॥ त्रिशंकुरिति भूपस्य कृतं नाम महात्मना ॥ कुपितेन वधाद्धेतो श्चांडालश्च कृतो नृपः ॥ ४६ ॥ तेनाहं दुःखिता जाता तस्य दुःखेन कौशिक ॥ श्वपचत्वमसौ प्राप्तो मत्कृते नृपनन्दनः ॥ ४७ ॥ येनकेनाप्युपायेन भवता नृपतेः किल ॥ तस्माद्रक्षा प्रकर्तव्या तपसा प्रबलेन ह ॥४८॥ व्यास उवाच ॥ इति भार्यावचः श्रुत्वा कौशिको मुनिसत्तमः ॥ तामाह कामिनीं दीनां सांत्वपूर्वमरिंदम ॥ ४९ ॥

कारणसे मुनि उनपर क्रोधित हुए ॥४५॥ महात्मा मुनिने गोवधसे कुपित होकर उन भूपतिका त्रिशंकु नाम रख उनको चाण्डाल किया ॥ ४६ ॥ हे कौशिक ! राजकुमार हमारा उपकार करनेके कारण चाण्डालपनको प्राप्त हुए इस कारण उनके इस दुःखसे मैं अत्यन्त दुःखित हुई हूं ॥ ४७ ॥ अथवा जिस किसी उपायसे हो अवतार प्रबलतपस्याके बलसेही हो नृपतिकी उस विपद्से रक्षा करना आपका अवश्य कर्तव्य है ॥४८॥ व्यासजी ने कहाहे महाराज ! भार्याके इसप्रकार वचन सुन मुनिसत्तम कौशिक उस दुःखिता कामिनीको समझाकर कहने लगे ॥ ४९ ॥

विश्वामित्र बोले हे कमललोचने ! जिस नरपतिने तुम्हारी उस दारुण संकटमें रक्षा करके उपकार किया है मैं उसको शापसे छुड़ा दूंगा ॥ ५० ॥ अधिक क्या विद्याबल अथवा तपोबलसे ही हो मैं उसका दुःख निवारण करूंगा उसकाल प्रियतमाको इस प्रकार समझाकर परार्थविद् कौशिक ॥ ५१ ॥ किस प्रकारसे नरपतिका दुःख नाश करैं यही चिन्ता करने लगे तब मुनिवर मनमें भलीभांति विचारकर पृथ्वीपति त्रिशंकुके निकट गये ॥ ५२ ॥ उस समय राजा त्रिशंकु श्वपचवेशसे चाण्डालके ग्राममें दीन भावसे वास कर रहे थे, नरपति मुनिवरको आता हुआ देख अत्यन्त विस्मित हो ॥ ५३ ॥ शीघ्र ही उनके चरणोंमें दण्डके समान गिर पड़े तब द्विजवर कौशिकने उन गिरे हुए राजाको हाथ पकड़कर ॥ ५४ ॥ उठाय प्रबोध वचनोंसे कहा हे महीपाल !

विश्वामित्र उवाच ॥ मोचयिष्यामि तं शापान्नृपं कमललोचने ॥ उपकारः कृतो येन कांताराद्रक्षिताऽसि वै ॥ ५० ॥ विद्यातपोबले नाहं करिष्ये दुःखसंक्षयम् ॥ इत्याश्वास्य प्रियां तत्र कौशिकः परमार्थवित् ॥ ५१ ॥ चिंतयामास नृपतेः कथं स्याद्दुःखनाशनम् ॥ संविमृश्य मुनिस्तत्र जगाम यत्र पार्थिवः ॥ ५२ ॥ त्रिशंकुः पक्वणे दीनः संस्थितः श्वपचाकृतिः ॥ आगच्छंतं मुनिं दृष्ट्वा विस्मतोऽसौ नराधिपः ॥ ५३ ॥ दंडवन्निपपातोर्व्यां पादयोस्तरसा मुनेः ॥ गृहीत्वा तं करे भूपं पतितं कौशिकस्तदा ॥ ५४ ॥ उत्थाप्योवाच वचनं सांत्वपूर्वं द्विजोत्तमः ॥ मत्कृते त्वं महीपाल शप्तोऽसि मुनिना यतः ॥ ५५ ॥ वांछितं ते करिष्यामि ब्रूहि किं करवाण्यहम् ॥ राजोवाच ॥ मया संप्रार्थितः पूर्वं वसिष्ठो मखहेतवे ॥ ५६ ॥ मां याजय मुनि श्रेष्ठ करोमि मखमुत्तमम् ॥ यथेष्टं कुरु विप्रेंद्र यथा स्वर्गं व्रजाम्यहम् ॥ ५७ ॥ अनेनैव शरीरेण शक्रलोकं सुखालयम् ॥ कोपं कृत्वा वसिष्ठोऽसौ मामाहेति सुदुर्मते ॥ ५८ ॥ मानुषेणहि देहेन स्वर्गवासः कुतस्तव ॥ पुनर्मे योक्तो भगवान्स्वर्गलुब्धेन चानघ ॥ ५९ ॥

तुम हमारे लिये ही वसिष्ठ मुनिसे शापको प्राप्त हुए हो ॥ ५५ ॥ अतएव मैं तुम्हारा अभिलाषित सम्पादन करूंगा इस समय क्या करैं ? सो कहो राजाने कहा मैंने यज्ञ करनेके लिये पहले वसिष्ठसे प्रार्थना करके कहा ॥ ५६ ॥ हे मुनिवर ! मैं एक श्रेष्ठ यज्ञ करूंगा आप मेरा वह कार्य सम्पादन कीजिये जिससे मैं स्वर्ग जासकूं ॥ ५७ ॥ हे विप्रवर ! जिससे इसी शरीर द्वारा मैं सुरपुरमें सुखसे शक्रभवनमें जासकूं आप ऐसे यज्ञका अनुष्ठान कीजिये तब वासिष्ठ देवने कुपित होकर मुझसे कहा ॥ ५८ ॥ हे दुर्मते ! तेरा मनुष्य देहसे किस प्रकार स्वर्गमें वास होगा ? मैं स्वर्गका लालची था इस कारण फिर भगवान् वसिष्ठसे कहा हे अनघ ! ॥ ५९ ॥

तो मैं दूसरा पुरोहित कर सर्वोत्तम यज्ञका अनुष्ठान करूंगा तब वशिष्ठ देवने यह बात सुन क्रोधित हो तत्काल "रे पामर! तू चाण्डाल हो" यह कहकर मुझको शाप दिया ॥ ६० ॥ हे मुनिवर! यह मैंने आपसे शापका सम्पूर्ण कारण निवेदन किया, इस समय आप मेरा दुःखनाश करनेमें समर्थ हैं ॥ ६१ ॥ राजादुःखकी वेदनासे कातर हो यह कहकर मौन हो रहे, विश्वामित्र मुनि भी किस उपायसे इनका शाप निवारण करें यही विचारने लगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! महातप विश्वामित्रने मनमें कर्तव्य निश्चयकर यज्ञकी सम्पूर्ण सामग्री संग्रहपूर्वक मुनियोंको निमंत्रण भेजा ॥ १ ॥ यद्यपि मुनियोंने विश्वामित्रसे निमन्त्रित हो यज्ञका वृत्तांत जान लिया, किंतु ऋषिवर वशि

अन्यं पुरोहितं कृत्वा यक्ष्येऽहं यज्ञमुत्तमम् ॥ तदा तेनैव शप्तोऽहं चांडालो भव पामर ॥ ६० ॥ इत्येतत्कथितं सर्वं कारणं शापसंभवम् ॥ मम दुःखविनाशाय समर्थोऽसि मुनीश्वर ॥ ६१ ॥ इत्युक्त्वा विररामासौ राजा दुःख रुजार्दितः ॥ कौशिकोऽपि निराकर्तुं शापं तस्य व्यचिंतयत् ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ विचिंत्य मनसा कृत्यं गाधिसूनुर्महातपाः ॥ प्रकल्प्य यज्ञसंभारान्मुनीनामंत्रयत्तदा ॥ १ ॥ मुनयस्तं मखं ज्ञात्वा विश्वामित्रनिमंत्रिताः ॥ नागताः सर्व एवैते वसिष्ठेन निवारिताः ॥ २ ॥ गाधिसूनुस्तदाज्ञाय विमनाश्चातिदुःखितः ॥ आजगामाश्रमं तत्र यत्राऽसौ नृपतिः स्थितः ॥ ३ ॥ तमाह कौशिकः क्रुद्धो वसिष्ठेन निवारिताः ॥ नागताः ब्राह्मणाः सर्वे यज्ञार्थं नृपसत्तम ॥ ४ ॥ पश्य मे तपसः सिद्धिं यथा त्वां सुरसद्मनि ॥ प्रापयामि महाराज वांछितं ते करोम्यहम् ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा जलमादाय हस्तेन मुनिसत्तमः ॥ ददौ पुण्यं तदा तस्मै गायत्रीजपसंभवम् ॥ ६ ॥ दत्त्वाऽथ सुकृतं राज्ञे तमुवाच महीपतिम् ॥ यथेष्टं गच्छ राजर्षे त्रिविष्टपमतंद्रितः ॥ ७ ॥

ष्ठके निवारण करनेसे वह कोई भी उस यज्ञमें न आये ॥ २ ॥ गाधिनंदन यह वृत्तान्त जान अत्यन्न चिंतित हुए और अतिदुःखित हो त्रिशंकु नरपतिके आश्रममें आकर उपस्थित हुए ॥३॥ तब महर्षि क्रोधित हो उनसे कहने लगे हे नृपसत्तम! वशिष्ठके निवारण करनेसे सम्पूर्ण ब्राह्मण इस यज्ञमें नहीं आये ॥ ४ ॥ किन्तु हे महाराज! तुम मेरी तपस्याका बल देखो मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा तुमको शीघ्र ही सुरालयमें भेजूंगा ॥५॥ उन मुनिने यह बात कहकर हाथमें जल ले लिया और गायत्री जपकर जो पुण्यसञ्चय किया था वह सम्पूर्ण राजाको प्रदान किया ॥ ६ ॥ अनन्तर पुण्य देकर उन महीपतिसे कहा हे राजर्षे! तुम आलस्यरहित होकर अपनी इच्छानुसार सुरलोकमें जाओ ॥ ७ ॥

हे राजेंद्र ! तुम प्रसन्न होकर बहुकाल सञ्चित मेरे पुण्यके प्रभावसे स्वर्गलोक जाओ और उस सुरलोकमें तुम्हारा मंगल हो ॥ ८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेंद्र ! ब्राह्मण श्रेष्ठ विश्वामित्रके यह बात कहनेपर राजा त्रिशंकु उनके तपोबलसे वेगवान् पक्षीके समान अत्यन्त शीघ्र आकाशमार्गमें उडे ॥ ९ ॥ राजा त्रिशंकु आकाशमें उठते हुए जब इन्द्रके पुरके समीप पहुँचे तब देवताओंने चाण्डालाकृति भीषणवेश त्रिशंकुको देखकर ॥ १० ॥ देवराज इन्द्रसे कहा आकाशमार्गमें देवताके समान अत्यंत वेगसे आता है यह कौन मनुष्य है ? इसकी आकृति श्वपचसदृश और लोहेके समान घोर दर्शन है ॥ ११ ॥ यह सुन इन्द्रने सहसा उठकर उस पुरुषाधमको देखा और उसको त्रिशंकु जानकर तिरस्कार पूर्वक तत्काल उससे कहा ॥ १२ ॥ तुम स्वपच और देवलोकके

पुण्येन मम राजेंद्र बहुकालार्जितेन च ॥ याहि शक्र पुरीं प्रीतः स्वस्ति तेऽस्तु सुरालये ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तवति विप्रेंद्रे त्रिशंकुस्तरसा ततः ॥ उत्पपात यथा पक्षी वेगवांस्तपसो बलात् ॥ ९ ॥ उत्पत्य गगने राजा गतःशक्रपुरीं यदा ॥ दृष्टो देवगणैस्तत्र क्रूरश्चांडालवेषभाक् ॥ १० ॥ कथितोऽसौ सुरेंद्राय कोऽयमायाति सत्वरः ॥ गगने देववद्धायोर्दुर्दर्शः श्वपचाकृतिः ॥ ११ ॥ सहसोत्थाय शक्रस्तमपश्यत्पुरुषाधमम् ॥ ज्ञात्वा त्रिशंकुमपि स निर्भर्त्स्य तरसाऽब्रवीत् ॥ १२ ॥ श्वपच क्व समायासि देव लोके जुगुप्सितः ॥ याहि शीघ्रं ततो भूमौ नात्र स्थातुं त्वयोचितम् ॥ १३ ॥ इत्युक्तः स्खलितः स्वर्गाच्छक्रेणामित्रकर्शन ॥ निपपात तदा राजा क्षीण पुण्यो यथाऽमरः ॥ १४ ॥ पुनश्चुक्रोश भूपालो विश्वामित्रेति चासकृत् ॥ पतामि रक्ष दुःखार्तं स्वर्गाच्चलितमाशुगम् ॥ १५ ॥ तस्य तत्क्रंदितं राजन्पततः कौशिको मुनिः ॥ श्रुत्वा तिष्ठेति होवाच पतंतं वीक्ष्य भूपतिम् ॥ १६ ॥ वचनात्तस्य तत्रैव स्थितोऽसौ गगने नृपः ॥ मुनेस्तपः प्रभावेण चलितोऽपि सुरालयात् ॥ १७ ॥

अत्यंत अनुपयुक्त हो अतएव कहाँ जाते हो ? यहाँ ठहरना तुमको उचित नहीं है, इस कारण तुम अभी पृथ्वीपर जाओ ॥ १३ ॥ हे अरिनाशन ! इंद्रके यह वचन कहतेही राजा स्वर्गसे स्खलित हो पुण्यक्षीण देवताओंके समान तत्काल गिरने लगे ॥ १४ ॥ तब त्रिशंकुने विश्वामित्र विश्वामित्र कहकर चित्कार करते करते वारंवार कहा मैं स्वर्गसे स्खलित होकर अत्यन्त वेगसे गिरता हूं अतएव आप मेरी दुःखसे रक्षा कीजिये ॥ १५ ॥ हे राजन् ! महर्षि कौशिकने उनके रोनेकी ध्वनि सुनकर गिरता हुआ देख ''ठहर ठहर'' यह वचन कहा ॥ १६ ॥ नृपति सुरालयसे विचलित होकरभी मुनिके तपप्रभाववशतः उनके वाक्यानुसार आकाशमार्गमें उसी स्थानपर स्थित रहे ॥ १७ ॥

वे विश्वामित्रने भी नूतन सृष्टि और दूसरा स्वर्गलोक बनानेके लिये आचमनकर सुविस्तीर्ण यज्ञ आरम्भ किया ॥ १८ ॥ उनका इस प्रकार उद्यम देखकर शचीपतिने व्यग्र हो शीघ्रही गाधितनय विश्वामित्र मुनिके निकट आकर कहा ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप क्या करते हैं हे साधो ! आप किस कारणसे इतने कोपयुक्त हुए हैं हे मुनिवर ! नूतन सृष्टि करनेका अब प्रयोजन नहीं है इस समय आपका क्या कार्य करूं आज्ञा दीजिये ॥ २० ॥ विश्वामित्रने कहा हे देवराज ! महीपति त्रिशंकु सुरलोकसे पतित होकर अत्यंत दुःखित हुए हैं अतएव आप प्रसन्नतापूर्वक उनको अपने सुरालयमें ले जाइये यह मेरा अभिप्राय है ॥ २१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवराज इंद्र उनका स्थिर संकल्प अत्युग्र तपोबल जानते थे इस कारण अत्यंत शंकित चित्तसे उनके वचन स्वीकार किये

विश्वामित्रोऽप्यपः स्पृष्ट्वा चकारेष्टिं सुविस्तराम् ॥ विधातुं नूतनां सृष्टिं स्वर्गलोकं द्वितीयकम् ॥ १८ ॥ तस्योद्यमं तथा ज्ञात्वा त्वरितस्तु शचीपतिः ॥ तत्राजगाम सहसा मुनिं प्रति तु गाधिजम् ॥ १९ ॥ किं ब्रह्मन्क्रियते साधो कस्मात्कोपसमाकुलः ॥ अलं सृष्ट्या मुनिश्रेष्ठ ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ २० ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ स्वं निवासं महीपालं च्युतं तद्भुवनाद्विभो ॥ नयस्व प्रीतियोगेन त्रिशंकुं चातिदुःखितम् ॥ २१ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा तुराषाडतिशंकितः ॥ ततो बलविदित्वोग्रमोमित्योवाच वासवः ॥ ॥ २२ ॥ दिव्यदेहं नृपं कृत्वा विमानवरसं स्थितम् । आपृच्छ्य कौशिकं शक्रोऽगमन्निजपुरीं तदा ॥ २३ ॥ गते शक्रे तु वै स्वर्गं त्रिशंकुसहिते ततः ॥ विश्वामित्रः सुखं प्राप्य स्वाश्रमे सुस्थिरोऽभवत् ॥ २४ ॥ हरिश्चंद्रोऽथतच्छ्रुत्वा विश्वामित्रोपकारकम ॥ पितुः स्वर्गमनं कामं मुदितो राज्यमन्वशात् ॥ २५ ॥ अयोध्याधिपतिः क्रीडां चकार सह भार्यया ॥ रूपयौवनचातुर्ययुक्तया प्रीतिसंयुतः ॥२६ ॥ अतीतकाले युवती नसा गर्भवतीह्यभूत् ॥ तदा चिंतातुरो राजा बभूवातीव दुःखितः ॥ २७ ॥

॥ २२ ॥ तब सुरपति इंद्रने नरपतिको दिव्य देहप्रदान कर उत्तम विमानपर बैठाया और मुनिवर कौशिकसे सम्भाषणकर राजाके सहित अपने स्थानको चले गये ॥ २२ ॥ इंद्रके त्रिशंकुसहित स्वर्गमें चले जानेपर विश्वामित्र सुखी हो अपने आश्रमें स्थिर होकर वास करने लगे ॥ २४ ॥ इधर महाराज हरिश्चन्द्र विश्वामित्रके तपोबलसे पिताको स्वर्ग प्राप्त हुआ सुन अत्यन्त आनंदित चित्तसे राज्य शासन करने लगे ॥ २५ ॥ तब अयोध्याधिपति वह नरपति प्रीतिके वशीभूत हो रूपयौवन सम्पन्न सुचतुर भार्याके संग काम क्रीडामें निरत हुए ॥ २६ ॥ इस प्रकार बहुत समय व्यतीत होगया तभी वह युवती गर्भवती न हुई राजा यह देखकर अत्यन्त दुःखी और अतिचिंतातुर हुए ॥ २७ ॥

तब उन्होंने वसिष्ठके पुण्याश्रममें जाय मुनिवरको मस्तक झुकाय प्रणाम कर पुत्र न होनेके कारण उनके मनमें जो चिंता उत्पन्न हुई वह गुरुजीसे कही ॥२८॥ हे धर्मज्ञ ! आप मंत्रविद्यामें विशारद विशेषकर सब दैव विषयोंको जानते हैं अतएव हे मानद ! आप मुझको सन्तान प्राप्त होनेका उपाय कीजिये ॥ २९ ॥ हे द्विजसत्तम ! अपुत्रकी गति नहीं होती यह आप भलीभांति जानते हैं इस कारण मेरा दुःख जानकर और उस दुःखके निवारण करनेमें समर्थ होकर भी आप क्या उपेक्षा करते हैं ? ॥ ३० ॥ यह पक्षी भी धन्य हैं जो अपने पुत्रोंको पालते हैं किंतु मैं ऐसा मन्दभाग्य हूं कि पुत्रके न होनेसे दिनरात चिन्ता सागरमें डूबा रहता हूं ॥ ३१ ॥ वसिष्ठजीने कहा हे महाराज ! विधिपुत्र वसिष्ठ राजाके खेदपूर्ण वचन सुनकर मनमें चिंता कर उनसे विशेष वृत्तांत कहने

वसिष्ठस्याश्रमं गत्वा प्रणम्य शिरसा मुनिम् ॥ अनपत्यत्वजां चिंतां गुरुवे समवेदयत् ॥ २८ ॥ दैवज्ञोऽसि भवान्कामं मंत्रविद्याविशारदः ॥ उपायं कुरु धर्मज्ञ संततेर्मम मानद ॥ २९ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति जानासि द्विज सत्तम ॥ कस्मादुपेक्षसे जानन्दुःखं मम च शक्तिमान् ॥ ३० ॥ कलविंकास्त्विमे धन्या ये शिशुं लालयंति हि ॥ मंदभाग्योऽहमनिशं चिन्तयामि दिवानिशम् ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्य मुनिस्तस्य निर्वेदमिश्रितं वचः ॥ संचिंत्य मनसा सम्यक्तमुवाच विधेः सुतः ॥ ३२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ सत्यं ब्रूषे महाराज संसारेऽस्मिन्न विद्यते ॥ अनपत्यत्वजं दुखं यत्तथा दुःखमद्भुतम् ॥३३॥ तस्मात्त्वमपि राजेंद्र वरुणं यादसां पतिम् ॥ सपाराधय यत्नेन स ते कार्यं करिष्यति ॥ ३४ ॥ वरुणादधिको नास्ति देवः संतानदायकः ॥ तमाराधय धर्मिष्ठ कार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥ ३५ ॥ दैवं पुरुषकारश्च माननीयाविमौ नृभिः ॥ उद्यमेन विना कार्यं सिद्धिः संजायते कथम् ॥ ३६ ॥ न्यायतस्तु नरैः कार्यं उद्यमस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ कृते तस्मिन्भवेत्सिद्धिर्नाऽन्यथा नृपसत्तम ॥ ३७ ॥

लगे ॥ ३२ ॥ वसिष्ठने कहा हे महाराज तुम सत्य कहते हो कि अपुत्रताजनित दुःखकी अपेक्षा दूसरा कोई भी अति अद्भुत दुःख इस संसारमें विद्यमान नही है ॥३३॥ अतएव हे राजेन्द्र ! तुम यत्नसहित जलाधिपति वरुण देवकी आराधना करो वही तुम्हारे कार्यकी सिद्धि करेंगे ॥ ३४ ॥ वरुणकी अपेक्षा संतान दायक देवता दूसरा कोई नहीं है अतएव हे धर्मिष्ठ ! तुम उनकी आराधना करो अवश्यही कार्यसिद्धि होगी ॥ ३५ ॥ दैव और पुरुष यह दोनों ही मनुष्यको माननीय हैं अतएव उद्यम न करनेसे किस प्रकार कार्यसिद्धि हो सकती है ॥ ३६ ॥ हे नृपसत्तम ! तत्वदर्शी मनुष्यको न्यायके अनुसार उद्यम करना अवश्य कर्तव्य है उद्यम करनेसे ही कार्य सिद्धि होती है इसके अतिरिक्त कभी कार्यकी सिद्धि नहीं हो सकती ॥ ३७ ॥

अत्यंत तेजयुक्त गुरुके इस प्रकार वचन सुन राजा स्थिर संकल्प हुए और उनको प्रणाम पूर्वक तपस्या करनेको चले गये ॥ ३८ ॥ नरपति गंगाके तटपर पवित्र स्थानमें पद्मासन ग्रहण कर पाशधर वरुणदेवके ध्यानमें निमग्न हो कठोर तपस्या करने लगे ॥ ३९ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार तपस्या करते करते वरुणदेव कृपाके वशीभूत हो प्रफुल्लमनसे उनके दृष्टिगोचर हुए ॥ ४० ॥ तब वरुणने नरपति हरिश्चन्द्रसे कहा हे धर्म्मज्ञ ! मैं तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हुआ हूं अतएव इस समय मुझसे वर मांगो ॥४१॥ राजाने कहा हे देवेश ! मैं अपुत्र हूं इस लिये मुझको सुखदायक पुत्र दीजिये मैं देवऋण ऋषिऋण और पितृऋणमें बँधा हुआ हूं इन तीनों ऋणोंसे छूटनेके लिये मैंने यह उद्यम किया है ॥ ४२ ॥ तब वरुणदेवने दुःखित राजाके विनययुक्ति वचन सुन कुछेक

इति तस्य वचः श्रुत्वा गुरोरमिततेजसः ॥ प्रणम्य निर्ययौ राजा तपसे कृतनिश्चयः ॥ ३८ ॥ गंगातीरे शुभे स्थाने कृतपद्मासनो नृपः ॥ ध्यायन्पाशधरं चित्ते चचार दुश्चरं तपः ॥ ३९ ॥ एवं तपस्यतस्तस्य प्रचेता दृष्टिगोचरः ॥ कृपयाऽभून्महाराज प्रसन्नमुखपंकजः ॥ ४० ॥ हरिश्चंद्रमुवाचेदं वचनं यादसां पतिः ॥ वरं वरय धर्मज्ञ तुष्टोऽस्मि तपसा तव ॥ ४१ ॥ राजोवाच ॥ अनपत्योऽस्मि देवेश पुत्रं देहि सुखप्रदम् ॥ ऋणत्रय पहारार्थमुद्यमोऽयं मया कृतः ॥ ४२ ॥ नृपस्य वचनं श्रुत्वा प्रगल्भं दुःखितस्य च ॥ स्मितपूर्वं ततः पाशी तमाह पुरतः स्थितम् ॥ ४३ ॥ वरुण उवाच ॥ पुत्रो यदि भवेद्राजन्गुणी मनसि वांछितः ॥ सिद्धे कार्ये ततः पश्चात्किं करिष्यसि मे प्रियम् ॥ ४४ ॥ यदि त्वं तेन पुत्रेण मां यजेथा विशंकितः ॥ पशुबंधेन तेनैव ददामि नृपते वरम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ देव मे माऽस्तु वंध्यत्वं यजिष्येऽहं जलाधिपम् ॥ पशुं कृत्वा सुतं पुत्रं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४६ ॥ वंध्यत्वे परमं दुःखमसह्यं भुवि मानद ॥ शोकाग्निशमनं नृणां तस्माद्देहि सुतं शुभम् ॥ ४७ ॥

हास्यकर संमुख स्थित राजासे कहा ॥४३॥ हे राजन् ! यदि तुम्हारी इच्छानुसार गुणवान् पुत्र हो तब कार्यसिद्धिके उपरांत मेरा क्या प्रियकार्य करोगे ? ॥ ४४ ॥ हे नृपते ! यदि तुम उस पुत्रको पशुस्थानीय करके निःशंकित चित्तसे मेरा यज्ञ करो तो मैं तुमको दूं ॥ ४५ ॥ राजाने कहा हे देव ! मुझको वन्ध्यता दोषसे छुड़ाइये हे जलाधिपति ! मैं पुत्र होनेपर उसको पशु बनाय तुम्हारा यज्ञ करूंगा यह आपसे सत्य कहता हूं ॥ ४६ ॥ हे मानद ! अपुत्रता जनित दुःखकी अपेक्षा अत्यन्त असह्य दुःख पृथ्वीमें दूसरा नहीं है अतएव जिससे मनुष्योंका दुःख दूर हो ऐसी सुसंतान मुझको दीजिये ॥ ४७ ॥

वरुणने कहा हे राजन् ! तुम्हारे इच्छानुसार पुत्र होगा अतएव घरको जाओ किंतु मेरे निकट जो कहा वह सत्य करना ॥ ४८ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वरुणके इस प्रकार वचन सुनकर राजाहरिश्चन्द्र घरको चले गये और वरदानविषयका सपूर्ण वृत्तांत भार्यासे कहा ॥ ४९ ॥ उनके सौ परमसुन्दरीम नोहारिणी स्त्रियें थी उनमें पतिव्रता शैब्याही धर्मपत्नी और पटराणी थी ॥५०॥ कुछ कालव्यतीत होनेपर वह वरवर्णिनी गर्भवती हुई, राजा उसके दोहद (गर्भ) की बात सुन आनंदित हुए ॥ ५१ ॥ उस समय राजाने उसका विधिपूर्वक संस्कार कराया क्रमानुसार दशमास पूर्ण होने पर शैब्याने शुभनक्षत्र ॥ ५२ ॥ और ग्रहबलयुक्त शुभदिनमें देवताओंके पुत्रके समान संतान उत्पन्न की पुत्रके जन्म लेनेपर राजाने ब्राह्मणोंके सहित स्नानपूर्वक ॥ ५३ ॥

वरुण उवाच ॥ भविष्यति सुतः कामं राजन्गच्छ गृहाय वै ॥ सत्यं तद्वचनं कार्यं यद्ब्रवीषि ममाग्रतः ॥ ४८ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तो वरुणेनाऽसौ हरिश्चंद्रो गृहं ययौ ॥ भार्यायै कथयामास वृत्तांतंवरदानजम् ॥ ४९ ॥ तस्य भार्याशतं पूर्णं बभूवाति मनोहरम् ॥ पट्टराज्ञी शुभा शैव्या धर्मपत्नी पतिव्रता ॥ ५० ॥ काले गतेऽथ सा गर्भं दधार वरवर्णिनी ॥ बभूव मुदितो राजा श्रुत्वादोहदचेष्टितम् ॥ ५१ ॥ कारयामास विधिवत्संस्कारान्नृपतिस्तदा ॥ मासेऽथ दशमे पूर्णे सुषुवे स शुभेदिने ॥ ५२ ॥ ताराग्रहबलोपेते पुत्रं देवसुतोपमम् ॥ पुत्रे जाते नृपः स्नात्वा ब्राह्मणैः परिवेष्टितः ॥ ५३ ॥ चकार जातकर्माऽऽदौ ददौ दानानि भूरिशः ॥ राज्ञश्चाऽतिप्रमोदोऽभूत्पुत्रजन्मसमुद्भवः ॥ ५४ ॥ बभूव परमोदारो धनधान्यसमन्वितः ॥ विशेषदानसंयुक्तो गीतवादित्रसंकुलः ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ व्यास उवाच ॥ प्रवृत्ते सदने तस्य राज्ञः पुत्रमहोत्सवे ॥ आजगाम तदा पाशी विप्रवेषधरः शुभः ॥ १ ॥ स्वस्तीत्युक्त्वा नृपं प्राह वरुणोऽहं निशामय ॥ पुत्रो जातस्तवाधीश यजानेन नृपाशु माम् ॥ २ ॥

प्रथम जातकर्म संस्कार कर असंख्य धनरत्नादि दान किये उस समय पुत्रजन्मसे राजाको अत्यंत हर्ष हुआ ॥ ५४ ॥ उन चतुर राजाने धन धान्य और अनेक प्रकारके रत्न तथा भूमि इत्यादि विशेष विशेष दान और अनेक प्रकारके गीतवाद्योंका अनुष्ठान कराया ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! जब नरपतिके भवनमें पुत्र जन्म होनेके कारण महोत्सव हुआ तब वरुण देवने पवित्र विप्रवेश धारण पूर्वक वहाँ आकर कहा ॥ १ ॥ तब वरुणदेवने " तुम्हारा मंगल हो " यह वचन राजासे कहा हे नरपति ! मुझको वरुण जानो इस समय मैं तुमसे जो कहता हूं सो सुनो हे नराधिप ! इस समय तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ है अतएव तुम उससे मेरा यज्ञ करो ॥ २ ॥

हे राजन् ! मेरे वरदानसे तुम्हारा वन्ध्यता दोष दूर होगया है तब तुमने पहले जो कहा था अब वह वचन सत्य करो ॥ ३ ॥ राजा हरिश्चंद्र वरुणके यह वचन सुनकर चिंता करने लगे कि अहो ! मेरे केवल एक पुत्र कमलके समान मुखवाला उत्पन्न हुआ है इसको किस प्रकार मारूं ॥ ४ ॥ परंतु वीर्यवान लोकपाल वरुणदेव विप्रवेशसे आये हैं जो कल्याणकी कामना करता है ऐसे मनुष्यको देवताओंका तिरस्कार करना कभी उचित नहीं है ॥ ५ ॥ और प्राणियोंको पुत्र स्नेह छेदन करना भी अत्यंत कठिन है अतएव मैं अब क्या उपाय करूं ? किस प्रकार मुझको सन्तानजनित सुख होगा ॥ ६ ॥ तब भूपालने धैर्यावलम्बनपूर्वक प्रणत हो उनकी यथोचित पूजा की और विनयसहित युक्तियुक्त मनोहर वचन उनसे कहे ॥७॥ राजा बोले हे देवदेव ! मैं आपकी

सत्यं कुरु वचो राजन्यत्प्रोक्तं भवता पुरा ॥ वंध्यत्वं तु गतं तेऽद्य वरदानेन मे किल ॥३॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा चिंतां चकार ह कथं हन्मि सुतं जातं जलजेन समाननम् ॥४॥ लोकपालः समायातो विप्रवेषेण वीर्यवान् ॥ न देवहेलनं कार्यं सर्वथा शुभमिच्छता॥५॥ पुत्रस्नेहः सुदुश्छेद्यः सर्वथा प्राणिभिः सदा ॥ किं करोमि कथं मे स्यात्सुखं संततिसंभवम् ॥६॥ धैर्यमालंब्य भूपालस्तं नत्वा प्रतिपूज्य च ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं युक्तं विनयपूर्वकम् ॥७॥ राजोवाच ॥ देवदेव तवाज्ञां करोमि करुणानिधे ॥ वेदोक्तेन विधानेन मखं च बहुदक्षिणम् ॥ ८ ॥ पुत्रे जाते दशाहेन कर्मयोग्यो भवेत्पिता ॥ मासेन शुद्ध्येज्जननी दंपती तत्र कारणम् ॥ ९ ॥ सर्वज्ञोऽसि प्रचेतस्त्वं धर्मं जानासि शाश्वतम् ॥ कृपां कुरु त्वं वारीश क्षमस्व परमेश्वर ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तस्तु प्रचेतास्तं प्रत्युवाच जनाधिपम् ॥ ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कुरु कार्याणि पार्थिव ॥ ११ ॥

आज्ञा पालन करूं ! इसमें संदेह नहीं मैं वेदोक्तविधानसे अनेक दक्षिणायुक्त आपका यज्ञ करूंगा ॥ ८ ॥ किंतु नरमेधयज्ञ करना हो तो स्त्री पुरुष दोनों उसके अधिकारी हैं इस कारण पुत्र जन्म होनेसे पिता दश दिनके उपरांत और जननी एकमासके उपरांत शुद्ध होकर कार्यके योग्य होती है अतएव एक मास न बीतनेपर किस प्रकार यज्ञ करूं ॥९॥ आप सर्वज्ञ और लोकोंके परमप्रभु हैं, नित्यकर्म क्या है सो आप सभी जानते हैं अतएव हे वारीश ! आप मुझपर कृपा करके इस एकमहीने तक शांत रहिये ॥ १० ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा हरिश्चंद्रके यह वचन सुन फिर वरुणदेवने उन नरपतिसे कहा हे राजन् ! तुम्हारा मंगल हो तुम कर्तव्य कार्य करो मैं इस समय अपने स्थानको जाता हूं ॥ ११ ॥

हे नृपसत्तम ! मैं एक महीनेके उपरांत फिर आऊंगा, तुम पुत्रका जातकर्म और नामकरण इत्यादि नियमित संस्कार करके तदनंतर मेरे यज्ञका अनुष्ठान करना ॥१२॥ हे महाराज ! जलाधिपति वरुणदेवके राजाने इस प्रकार मधुर वचन कहकर चले जानेपर राजा हरिश्चंद्र भी आनन्द अनुभव करने लगे ॥१३॥ फिर उन पृथ्वीपतिने करोड़ करोड़ हेमभूषित घटोघ्नी (घटाकारस्तनवाली) धेनु और तिलपर्वत संपूर्ण वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको दान किये ॥ १४ ॥ राजा पुत्रका मुख देखकर अत्यंत सुखी हुए और विधिपूर्वक उसका रोहिताश्व नाम रक्खा ॥ १५ ॥ फिर एक मास पूर्ण होनेपर वरुणदेव विप्र वेश धारण पूर्वक राजासे आकर वारंवार कहने लगे हे महाराज ! इस समय यज्ञ आरम्भ कीजिये ॥१६॥ नरपति उन वरुणदेवको देखकर शोकसागरमें डूब गये फिर प्रणाम

आगमिष्यामि मासांते यष्टव्यं सर्वथा त्वया ॥ कृत्वौत्थानिकमाचारं पुत्रस्य नृपसत्तम ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा श्लक्ष्णया वाचा राजानं यादसां पतिः ॥ हरिश्चंद्रो मुदं प्राप गते पाशिनि पार्थिवः ॥ १३ ॥ कोटिशः प्रददौ गास्ता घटोघ्नीर्हेमपूरिताः ॥ विप्रेभ्यो वेदविद्भ्यश्च तथैव तिलपर्वतान् ॥ १४ ॥ राजा पुत्रमुखं दृष्ट्वा सुखमाप महत्तरम् ॥ नामास्य रोहितश्चेति चकार विधिपूर्वकम् ॥ १५ ॥ पूर्णे मासे ततः पाशी विप्रवेषेण भूपतेः ॥ आजगाम गृहे सद्यो यजस्वेति ब्रुवन्मुहुः ॥ १६ ॥ वीक्ष्य तं नृपतिर्देवं निमग्नः शोकसागरे ॥ प्रणिपत्य कृतातिथ्यं तमुवाच कृतांजलिः ॥ १७ ॥ दिष्टचा देव त्वमा यातो गृहं मे पावितं प्रभो ॥ मुखं करोमि वारीश विधिवद्वांछितं तव ॥ १८ ॥ अदंतो न पशुः श्लाघ्य इत्याहुर्वेदवादिनः ॥ तस्माद्दंतोद्भवे तेऽहं करिष्यामि महामखम् ॥ १९ ॥ व्यास उवाच इत्युक्तस्तेन वरुणस्तथेत्युक्त्वा ययावथ ॥ हरिश्चंद्रो मुदं प्राप्य विजहार गृहाश्रमे ॥ २० ॥ नपुर्दंतोद्भवं ज्ञात्वा प्रचेता द्विजरूपवान् ॥ आजगाम गृहे तस्य कुरु कार्यमिति ब्रुवन् ॥ २१ ॥

और आतिथ्यसत्कारपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे ॥ १७ ॥ हे देव ! सौभाग्यके अनुसारही आपने मेरे घरमें पदार्पण किया है हे प्रभो ! आपके आनेसे अब मेरा घर पवित्र हुआ हे देव ! मैं आपका वांछित यज्ञ विधिपूर्वक संपादन करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ किंतु देखो ! दन्तविहीन पशु यज्ञमें श्रेष्ठ नहीं है यह वेदके जाननेवाले पंडित लोग कहते हैं अतएव पुत्रके दाँत निकलनेपर आपका वांछित महा यज्ञ करूंगा यही स्थिर किया है ॥१९॥ व्यासजीने कहा हे नरनाथ ! वरुणदेव राजा हरिश्चन्द्रके यह वचन सुन यही हो इस प्रकार कहकर अपने स्थानको चले गये इधर राजा हरिश्चन्द्र आनंदित हो संसाराश्रममें विहार करने लगे ॥ २० ॥ फिर कुमारके दाँत उत्पन्न हुए जानकर वरुणदेव विप्रवेशसे राजाके घर आय कहने लगे हे राजन् ! आप इस

समय मेरा यज्ञ कीजिये ॥ २१ ॥ भूपतिने भी विप्ररूपी जलाधिपतिको आता हुआ देखते ही प्रणाम कर आसन प्रदान किया और यथायोग्य सन्मान करके उनकी पूजा की ॥ २२ ॥ उन्होंने अत्यंत विनीत भावसे मस्तक झुकाय स्तव करके उनसे कहा हे देव ! मैं आपका विधिपूर्वक वांछित अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञ करूंगा ॥ २३ ॥ इस बालकका अभी चूडाकरण नहीं हुआ है अतएव गर्भ कालीन केशकलाप विद्यमान् है, इस कारण इन केशोंके रहते यह बालक यज्ञीय पशु नहीं हो सकता यह मैंने वृद्धोंके मुखसे सुना है ॥ २४ ॥ हे वारीश ! आप शास्त्रकी विधि जानते हैं, इस कारण चूडाकरण तक अपेक्षा कीजिये, बालक के मुण्डन कार्य होनेपर फिर मैं आपका यज्ञ करूंगा इसमें संदेह नहीं है ॥ २५ ॥ वरुणके उनके यह वचन सुन फिर उसने कहा हे राजन् !

भूपालोऽपि जला धीशं वीक्ष्य प्राप्तं द्विजाकृतिम् ॥ प्रणम्यासनसन्मानैः पूजयामास सादरम् ॥ २२ ॥ स्तुत्वा प्रोवाच वचनं विनया नतकंधरः ॥ करोमि विधिवत्कामं मखं प्रबलदक्षिणम् ॥ २३ ॥ बालोप्यकृतचौलोऽयं गर्भकेशो न संमतः ॥ यज्ञार्थे पशुकरणे मया वृद्धमुखाच्छ्रुतम् ॥ २४ ॥ तावत्क्षमस्व वारीश विधिं जानासि शाश्वतम् ॥ कर्तव्यः सर्वथा यज्ञो मुंडनांते शिशोः किल ॥ २५ ॥ तस्येति वचनं श्रुत्वा प्रचेताः प्राह तं पुनः ॥ प्रतारयसि मां राजन्पुनः पुनरिदं ब्रुवन् ॥२६॥ अपि ते सर्वसामग्री वर्तते नृपतेऽधुना ॥ पुत्रस्नेहनिबद्धस्त्वं वंचयस्येव सांप्रतम् ॥ २७ ॥ क्षौरकर्मविधिं कृत्वा न कर्तासि मखं यदि ॥ तदाऽहं दारुणं शापं दास्ये कोपसम न्वितः ॥ २८ ॥ अद्य गच्छामि राजेंद्र वचनात्तव मानद ॥ न मृषा वचनं कार्यं त्वयेक्ष्वाकुकुलोद्भव ॥ २९ ॥ इत्याभाष्य ययावाशु प्रचेता नृपतेर्गृहात् ॥ राजा परमसंतुष्टो ननंद भवने तदा ॥ ३० ॥ चूडाकरणकाले तु प्रवृत्ते परमोत्सवे ॥ संप्राप्तस्तरसा पाशी भवनं नृपतेः पुनः ॥ ३१ ॥

तुम वारंवार इस प्रकार कहकर मुझको क्यों छलते हो ॥ २६ ॥ हे नरपते ! इस समय तुम्हारे सम्पूर्ण सामग्री विद्यमान है केवल पुत्रके स्नेहमें बँधकर ही अब मुझको छलते हो ॥ २७ ॥ जो हो क्षौर कार्य करके भी यदि यज्ञ न करोगे तो मैं कुपित होकर तुमको दारुण शाप दूंगा ॥ २८ ॥ हे राजेंद्र ! इस समय मैं तुम्हारे वचनानुसार जाता हूं किंतु तुम इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न होकर अपना वचन मिथ्या न करना ॥ २९ ॥ वरुण यह वचन कहकर नरपतिके घरसे तत्काल चले गये राजा भी तब अत्यंत सन्तुष्ट हो अपने भवनमें आनंद अनुभव करने लगे ॥ ३० ॥ फिर जब अत्यंत उत्सवके सहित चूड़ा कार्य आरम्भ हुआ तब पाशधर शीघ्रही पुनर्वार नरपतिके भवनमें आये ॥ ३१ ॥

जिस समय रानी पुत्रको गोदीमें लिये राजाके सामने बैठी थी उसी समय वरुणदेवने वहां आकर उपस्थित हुए ॥ ३२ ॥ उन विप्र रूपधारी प्रत्यक्ष अग्निके समान तेजःपुञ्जकलेकर वरुण देवने नरपतिसे स्पष्ट वचन द्वारा कहा हे राजन् ! यज्ञ आरम्भ करो ॥ ३३ ॥ नरपतिने उनको देखकर भयसे अत्यंत विह्वल हो हाथ जोड़ शीघ्र उनको प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ फिर यथाविधि उनकी पूजाकर अत्यंत विनय सहित कहा हे स्वामिन् ! अब मैं विधि पूर्वक आपका यज्ञ करूंगा ॥ ३५ ॥ किंतु इस विषयमें मुझको कुछ कहना है आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये और तदनन्तर जो कर्तव्य हो वही कीजिये हे स्वामिन् ! आप यदि युक्ति संगत कहकर अनुमोदन करें तो मैं वह आपसे कहूं ॥ ३६ ॥ देखो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य यह तीनों वर्ण यथाविधि संस्कृत

यदांके सुतमादाय राज्ञी नृपतिसन्निधौ ॥ उपविष्टा क्रियाकाले तदैव वरुणोऽभ्यगात् ॥ ३२ ॥ कुरु कर्मेति विस्पष्टं वचनं कथयन्नृपम् ॥
विप्ररूपधरः श्रीमान्प्रत्यक्ष इव पावकः ॥ ३३ ॥ नृपतिस्तं समालोक्य बभूवातीव विह्वलः ॥ नमश्चकार तं भीत्या कृतांजलिपुटः पुरः
॥ ३४ ॥ विधिवत्पूजयित्वा तं राजोवाच विनीतवान् ॥ स्वामिन्कार्यं करोम्यद्य मखस्य विधिपूर्वकम् ॥ ३५ ॥ वक्तव्यमस्ति तत्राऽपि
शृणुष्वैकमना विभो ॥ युक्तं चेन्मन्यसे स्वामिस्तद्ब्रवीमि तवाग्रतः ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ संस्कृता
श्चान्यथा शूद्रा एवं वेदविदो विदुः ॥ ३७ ॥ तस्मादयं सुतो मेऽद्य शूद्रवद्वर्तते शिशुः ॥ उपनीतः क्रियार्हः स्यादिति वेदेषु निर्णयः
॥ ३८ ॥ राज्ञामेकादशे वर्षे सदोपनयनं स्मृतम् ॥ अष्टमे ब्राह्मणानां च वैश्यानां द्वादशे किल ॥ ३९ ॥ दयसे यदि देवेश दीनं मां
सेवकं तव ॥ तदोपनीय कर्ताऽस्मि पशुना यज्ञमुत्तमम् ॥ ४० ॥ लोकपालोऽसि धर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ मन्यसे यद्वचः सत्यं
तद्गच्छ भवनं विभो ॥ ४१ ॥

होनेसे द्विजाति होते हैं किंतु संस्कार विहीन होनेसे यह अवश्यही शूद्र हैं यह वेदके जाननेवाले पंडित लोग ही जानते हैं ॥ ३७ ॥ इस कारण मेरी यह शिशु संतान इस समय भी शूद्रके समान है यज्ञोपवीत होनेपर फिर यह यज्ञ क्रियाके उपयुक्त होगी वेदशास्त्रमें निर्णय है ॥ ३८ ॥ क्षत्रियोंकी ग्यारहवें वर्षमें ब्राह्मणोंकी आठवें वर्षमें और शूद्रोंकी बारहवें वर्षमें वयःक्रमसे उपनयन विधि निर्दिष्ट हुई है ॥ ३९ ॥ अतएव हे देवेश ! यदि आप दीन सेवकके ऊपर दया करें तो बालकके उपनयन पर्यन्त अपेक्षा कीजिये फिर इसका उपनयन कर पशुरूप बालकसे आपका वह उत्तमयज्ञ करूंगा ॥ ४० ॥ हे विभो ! आप लोकपाल हैं विशेषकर सम्पूर्ण शास्त्रोंका सारधर्म जानकर धर्मतत्त्व प्राप्त किया है इस कारण यदि आप मेरा वचन सत्य जाने तो इस समय आप अपने

घरको जाइये ॥ ४१ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! उसके यह वचन सुनकर जलाधिपति वरुणदेव दयार्द्रचित्त हुए और "यही हो" ऐसा कहकर तत्काल उस स्थानसे चले गये ॥ ४२ ॥ वरुणके अन्तर्धान होनेपर फिर राजा अत्यंत आनंदित हुए और रानी भी पुत्रका मंगल जान संतुष्ट हुई ॥ ४३ ॥ अनंतर राजा हरिश्चन्द्र प्रसन्न चित्तसे राजकार्यकी पर्यालोचना करने लगे इस प्रकार कुछ काल व्यतीत होनेपर उनके पुत्रने दसवें वर्षमें पदार्पण किया ॥४४॥ तब राजाने शान्त ब्राह्मण मंत्रियोंकी सम्मतिसे अपने ऐश्वर्यके समान उसकी उपनयन द्रव्य सामग्री मँगाई ॥ ४५ ॥ पुत्रका ग्यारहवें वर्षमें वयःक्रम होनेसे राजाने यथाविधि उपनयन कार्य किया किंतु वरुण देवके यज्ञका वृत्तांत स्मरण कर वारंवार चिंतातुर होने लगे ॥ ४६ ॥ इधर कुमारका उपनयन

व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा दयावान्यादसां पतिः ॥ ओमित्युक्त्वा ययावाशु प्रसन्नवदनो नृपः ॥ ४२ ॥ गतेऽथ वरुणे राजा बभूवाऽतिमुदाऽन्वितः ॥ सुखं प्राप्य सुतस्यैवं राजा मुदमवाप ह ॥ ४३ ॥ चकार राजकार्याणि हरिचंद्रस्तदा नृप ॥ कालेन व्रजता पुत्रो बभूव दशवार्षिकः ॥ ४४ ॥ तस्योपवीत सामग्रीं विभूतिसदृशीं नृपः ॥ चकार ब्राह्मणैः शिष्टैरन्वितः सचिवैस्तथा ॥४५॥ एकादशे सुतस्याब्दे व्रतबंधविधौ नृपः ॥ विदधे विधिवत्कार्यं चित्ते चिंतातुरः पुनः ॥ ४६ ॥ वर्तमाने तथा कार्ये उपनीते कुमारके आजगामाथ वरुणो विप्रवेषधरस्तदा ॥ ४७ ॥ तं वीक्ष्य नृपतिस्तूर्णं प्रणम्य पुरतः स्थितः ॥ कृतांजलिपुटः प्रीतः प्रत्युवाच सुरोत्तमम् ॥ ४८ ॥ देवदत्तोपवीतोऽयं पशुयोग्योऽस्ति मे सुतः ॥ प्रसादात्तव मे शोको गतो वंध्यापवादजः ॥४९॥ कर्तुमिच्छाम्यहं यज्ञं प्रभूतवर दक्षिणम् ॥ समये शृणु धर्मज्ञ सत्यमद्य ब्रवीम्यहम् ॥ ५० ॥ समावर्तनकर्मांते करिष्यामि तवेप्सितम् ॥ ममोपरि दयां कृत्वा तावत्त्वं क्षंतुमर्हसि ॥५१॥ वरुण उवाच ॥ प्रतारयसि मां राजन्पुत्रप्रेमाकुलो भृशम् ॥ मुहुर्मुहुर्मतिं कृत्वा युक्तियुक्तां महामते ॥ ५२ ॥

कार्य आरम्भ होनेपर वरुणदेव विप्रवेश धारण कर उसी स्थानमें उपस्थित हुए ॥ ४७ ॥ राजा उनको देखते ही शीघ्र प्रणाम किया और हाथ जोड सन्मुख खडे हो प्रीति सहित सुरवरसे कहने लगे ॥ ४८ ॥ हे देव ! यज्ञोपवीत हो जानेसे इस समय मेरा यह पुत्र पशुके उपयुक्त हुआ है आपके अनुग्रह से मेरा भी वन्ध्यत्वशोक जाता रहा ॥४९॥ अतएव हे धर्मज्ञ ! मैं जो कहता हूँ सो सुनिये कुछ कालके विलम्ब से आपका अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञकरनेकी इच्छा की है यह आपसे सत्य कहता हूं ॥ ५० ॥ फलतः समावर्तन कार्यके अन्तमें आपका वाञ्छित यज्ञ करूंगा अब मुझपर दया करके तब तक क्षमा कीजिये ॥ ५१ ॥ वरुणने कहा हे महामते ! तुम पुत्र स्नेहसे अत्यंत व्याकुल होकर युक्तियुक्त बुद्धि कौशलसे वारंवार मुझको छलते हो ॥ ५२ ॥

जो हो हे महाराज ! मैं तुम्हारे वचनानुसार आज जाता हूं किंतु समावर्तन कार्यके समय फिर मैं आऊंगा यही निश्चय जानिये ॥ ५३ ॥ हे नरपते ! वरुणदेवके यह वचन कह उनसे सम्भाषण कर चले जानेपर राजाभी आनंदित हो यथाक्रमसे विहित कार्य करने लगे ॥५४॥ राजकुमार अत्यंत बुद्धिमान् थे इस कारण वरुणदेवको आता हुआ देख यज्ञका समय जान चिंतासे कातर हुए ॥ ५५ ॥ अनंतर राजाके शोकका कारण इधर उधर पूँछकर अपने विनाशका विषय जाना और तत्काल राजाके घरमें निकल जानेकी इच्छा की ॥ ५६ ॥ फिर सचिव पुत्रोंके सहित परामर्शकर कर्तव्य स्थिरता पूर्वक उस नगरसे बाहर हो वनको चला गया ॥ ५७ ॥ पुत्रके चले जानेपर नरपतिने अत्यंत दुःखित हो उसको ढूँढ़नेके लिये अपने सम्पूर्ण दूतोंको भेजा ॥ ५८ ॥

गच्छाम्यद्य महाराज वचसा तव नोदितः ॥ आगमिष्यामि समये समावर्तनकर्मणि ॥ ५३ ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ पाशी तमा पृच्छच्य विशांपते ॥ राजा प्रमुदितां कार्यं चकार च यथोत्तरम् ॥ ५४ ॥ आगतं वरुणं दृष्ट्वा कुमारोऽतिविचक्षणः ॥ यज्ञस्य समयं ज्ञात्वा तदा चिंतातुरोऽभवत् ॥५५॥ शोकस्य कारणं राज्ञः पर्यपृच्छदितस्ततः ॥ ज्ञात्वाऽऽत्मवधमायुष्मन्गमनाय मतिं दधौ ॥५६॥ निश्चयं परमं कृत्वा समंत्र्य सचिवात्मजैः ॥ प्रययौ नगरात्तस्मान्निर्गत्य वनमप्यसौ ॥५७॥ गते पुत्र नृपः कामं दुःखितोऽभूद् भृशं तदा ॥ प्रेरयामास दूतान्स्वांस्तस्यान्वेषणकाम्यया ॥ ५८ ॥ एवं गतेऽथ कालेऽसौ वरुणस्तद्गृहं गतः ॥ राजानं शोकसंतप्तं कुरु यज्ञमिति ब्रुवन् ॥ ५९ ॥ राजा प्रणम्य तं प्राह देवदेव करोमि किम् ॥ न जाने क्वाऽपि पुत्रो मे गतस्त्वद्य भयाकुलः ॥ ६० ॥ सर्वत्र गिरिदुर्गेषु मुनीनामाश्रमेषु च ॥ अन्वेषितो मे दूतैस्तु न प्राप्तो यादसांपते ॥ ६१ ॥ आज्ञापय महाराज किं करोमि गते सुते ॥ न मे दोषोऽत्र सर्वज्ञ भाग्यदोषस्तु सर्वथा ॥ ६२ ॥

इस प्रकार कुछ काल व्यतीत होनेपर वरुणदेवने उनके घर आय उन शोक सन्तप्त राजासे कहा हे राजन् ! इस समय पहले कहा हुआ यज्ञ कीजिये ॥५९॥ राजाने उनको प्रणाम करके कहा हे देव ! मैं क्या करूं ? मेरा पुत्र भयसे व्याकुल होकर कहीं चला गया है उसको मैं नहीं जानता ॥ ६० ॥ हे देव ! मेरे सब दूतोंने पर्वतोंके दुर्गम प्रदेश मुनियोंके आश्रम अधिक क्या सम्पूर्ण स्थानोंमें ढूंढा है तथापि किसी स्थान में भी उसको नहीं पाया ॥ ६१ ॥ मेरा पुत्र घरसे चला गया है इस समय मैं क्या करूं ? आप आज्ञा दीजिये हे देव ! आप तो सभी जानते हैं अतएव आप तो विचार देखिये मेरा कुछ भी दोष नहीं है केवल भाग्य के दोषसे ही ऐसा हुआ है इसमें संदेह नहीं ॥ ६२ ॥

व्यासजीने कहा हे राजन् ! राजाके ऐसे वचन सुनकर वरुणदेव अत्यन्त कुपित हुए और जब उन्होंने देखा कि हरिश्चन्द्रसे वारंवार छला जाकर भी मैं अपने वांच्छितको प्राप्त न हुआ तब क्रोधसे अधीर होकर उनको शाप दिया ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! तुमने छलयुक्त वचनोंसे मुझको छला है इसलिये दारुण जलोदर व्याधि तुमको अत्यन्त पीडित करे ॥ ६४ ॥ वरुणके कुपित होकर इस प्रकार शाप देनेपर फिर राजा इस क्लेशदायक व्याधिसे पीडित हो अत्यंत कष्ट भोगने लगे ॥ ६५ ॥ तब पाशधारी जलाधिपति राजाको इस प्रकार शाप देकर अपने स्थानको चले गये और राजा भी इस दारुण व्याधिसे ग्रस्त हो अत्यंत कातर हुए ॥ ६६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज !

व्यास उवाच ॥ इति भूपवचः श्रुत्वा प्रचेताः कुपितो भृशम् ॥ शशाप च नृपं क्रोधाद्वंचितस्तु पुनः पुनः ॥ ६३ ॥ नृपतेऽहं त्वया यस्माद्वचसा च प्रवंचितः ॥ तस्माज्जलोदरो व्याधिस्त्वां तुदत्वतिदारुणः ॥ ६४ ॥ व्यास उवाच इति शप्तो महीपालः कुपितेन प्रचेतसा ॥ पीडितोऽभूत्तदा राजा व्याधिना दुःखदेन तु ॥६५॥ एवं शप्त्वा नृपं पाशी जगाम निजमास्पदम् ॥ राजा प्राप्य महाव्याधिं बभूवतीव दुःखितः ॥ ६६ ॥ इति श्रीदे० म० सप्तमस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ व्यास उवाच ॥ गतेऽथ वरुणे राजा रोगेणाऽतीव पीडितः ॥ दुःखाद्दुखं परं प्राप्य व्यथितोऽभूद भृशं तदा ॥ १ ॥ कुमारोऽसौ वने श्रुत्वा पितरं रोग पीडितम् ॥ गमनाय मतिं राजंश्चकार स्नेहयंत्रितः ॥ २ ॥ संवत्सरे व्यतीते तु पितरं द्रष्टुमादरात् ॥ गंतुकामं तु तं ज्ञात्वा शक्रस्तत्राजगाम ह ॥ ३ ॥ वासयस्तु तदा रूपं कृत्वा विप्रस्य सत्वरः ॥ वारयामास युक्त्या वै कुमारं गंतुमुद्यतम् ॥४॥ इंद्र उवाच ॥ राजपुत्र न जानासि राजनीतिं सदुर्लभाम् ॥ अतः करोषि मूढस्त्वं गमनाय मतिं वृथा ॥ ५ ॥

वरुणके अपने स्थानमें चले जानेपर राजा उस जलोदर रोगसे अत्यंत पीडित हुए और दिन दिन दुःख भोग एवं घोरयंत्रणा अनुभव कर अत्यंत क्लेश पाने लगे ॥ १ ॥ हे राजन् ! इधर राजकुमारने वनमेंही पिताके उस रोगजनित संतापका विषय सुना इस कारण स्नेहके वशीभूत होकर पिताके समीप जानेकी इच्छा की ॥ २ ॥ संवत्सरके बीतनेपर राजकुमारने आदर सहित पिताको देखने और उनके समीप जानेके लिये इच्छा की है यह जानकर देवराज इंद्र वहां आकर उपस्थित हुए ॥ ३ ॥ उन्होंने दयाके वशीभूत हो शीघ्र विप्ररूप धारण कर अनुकूल युक्तिसे उन जाते हुए कुमारको निवारण किया ॥ ४ ॥ इन्द्रने कहा हे राजपुत्र ! तुम अत्यंत अज्ञानी हो विशेषकर अब भी कठिनतासे जानने योग्य राजनितिको नहीं जान सके इसलिये अज्ञानके वशीभूत होकर

अब पिताके समीप वृथा जानेको उद्यत हो ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारे वहां जानेपर तुम्हारे पिता वेदपरायण ब्राह्मणोंसे नरमेधयज्ञ करेंगे उसमें तुमको पशु बनाय तुम्हारे मांसकी प्रज्वलित अग्निमें आहुति प्रदान करावेंगे ॥ ६ ॥ हे वत्स ! सम्पूर्ण प्राणियोंको आत्मा अत्यन्त प्रिय है इसी कारण आत्माके लिये स्त्री पुरुष और धन रत्नादि प्रिय होते हैं ॥ ७ ॥ अतएव तुम्हारे प्राणोंके समान पुत्र होनेपर भी वह रोगसे छूटनेके लिये अपनी रक्षार्थ तुमको मारकर होम करावेंगे इसमें संदेह नहीं ॥ ८ ॥ हे राजपुत्र ! तुमको इस समय पिताके घर जाना उचित नहीं है परंतु जब तुम्हारे पिता मरे तब तुम राजप्राप्तिके लिये अवश्यही फिर वहां जाओ ॥ ९ ॥ हे नृपवर ! इंद्रके इस प्रकार निषेध करनेपर फिर राजपुत्रने एक वर्ष पर्यंत उस वनमें वास किया ॥ १० ॥ किंतु जब

पिता तव महाभाग ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ कारयिष्यति होमं ते ज्वलितेऽथ विभायसौ ॥ ६ ॥ आत्मा हि वल्लभस्तात सर्वेषां प्रणिनां खलु ॥ तदर्थं वल्लभाः संति पुत्रदारधनादयः ॥ ७ ॥ आत्मनो देहरक्षार्थं हत्वा त्वां वल्लभं सुतम् ॥ हवनं कारयित्वाऽसौ रोगमुक्तो भविष्यति ॥ ८ ॥ तस्मात्त्वया न गंतव्यं राजपुत्रो पितुर्गृहे ॥ मृते पितरि गंतव्यं राज्यार्थे सर्वथा पुनः ॥९॥ एवं निषेधितस्तत्र वासवेन नृपात्मजः ॥ वन मध्ये स्थितः कामं पुनः संवत्सरं नृप ॥१०॥ अत्यंतं दुःखितं श्रुत्वा हरिश्चंद्रं तमात्मजः ॥ गमनाय मतिं चक्रे मरणे कृतनिश्चयः ॥ ११ ॥ तुराषाड् द्विजरूपेण तत्रागत्य च रोहितम् ॥ निवारयामास सुतं युक्तिवाक्यैः पुनः पुनः ॥ १२ ॥ हरिश्चंद्रोऽतिदुखार्तो वसिष्ठं स्वपुरोहितम् ॥ पप्रच्छ रोगनाशाय तत्रोपायं सुनिश्चितम् ॥ १३ ॥ तमाह ब्रह्मणः पुत्रो यज्ञं कुरु नृपोत्तम ॥ क्रयक्रीतेन पुत्रेण शापमोक्षो भविष्यति ॥१४॥ पुत्रा दशविधाः प्रोक्ताब्राह्मणैर्वेदपारगैः द्रव्येणानीय तस्मात्त्वं पुत्रं कुरु नृपोत्तम ॥१५॥

राजपुत्र राजा हरिश्चन्द्रके अत्यंत दुःखका विषय जानता तब अपना मरण निश्चयकर पिताके घर जानेकी इच्छा करता ॥ ११ ॥ अनन्तर सुरपति इंद्रभी उसी समय द्विजरूप धारण कर राजपुत्र रोहितके समीप उपस्थित होते और युक्तियुक्त वचनोंसे उसको वारम्वार निषेध करते ॥१२॥ इधर हरिश्चन्द्रने पीड़ासे अत्यंत कातर हो अपने कुलपुरोहित वसिष्ठ देवसे पूंछा हे ब्रह्मन् ! इस ! रोगकी शांतिका निश्चय उपाय क्या है ! ॥ १३ ॥ ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठदेवने उनसे कहा हे महाराज ! द्रव्यसे एक पुत्र क्रय कीजिये फिर उस खरीदे हुए पुत्रसे यज्ञ करनेपरही आप शापसे छूटेंगे ॥ १४ ॥ हे नृपसत्तम ! वेदपरायण ब्राह्मणोंने कहा है कि पुत्र तेरह प्रकारके हैं उनमें क्रीत (खरीदा हुआ भी पुत्र होता है अतएव मूल्य से एक बालकको लाय उसको पुत्र कीजिये ॥१५॥

तुम्हारे राज्यकाही कोई ब्राह्मण लोभके वशीभूत हो अपने पुत्रको दे देगा इससे वरुणदेव प्रसन्न हो अवश्यही सुखसम्पादन करेंगे इसमें संदेह नहीं ॥ १६ ॥ राजा हरिश्चन्द्र महात्मा वशिष्ठके इस प्रकार वचन सुनकर सन्तुष्ट हुए और उसी प्रकार पुत्र ढूँढने के लिये अपने प्रधान मंत्री को आज्ञा दी ॥ १७ ॥ उन भूपतिके राज्यमें अजीगर्तनामक एक अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण वास करता था उसके तीन पुत्र थे ॥ १८ ॥ मंत्रीने क्रय करने की इच्छा कर उस निर्धन ब्राह्मणसे कहा मैं आपको एकशत गौ देता हूं आप यज्ञके लिये एक पुत्रको दीजिये ॥ १९ ॥ शुनःपुच्छ शुनःशेप और शुनोलांगूल नामक आप के जो तीन पुत्र हैं उनमेंसे एक पुत्र मुझको दीजिये मैं भी उसके बदलेमें तुमको एकाशत गौ देवता हूं ॥ २० ॥ अजीगर्त्त अन्नके अभावसे अत्यंन्त कातर हुए

वरुणोऽपि प्रसन्नः सन्सुखकारी भविष्यति ॥ लोभात्कोऽपि द्विजः पुत्रं प्रदास्यति स्वराष्ट्रजः ॥ १६ ॥ एवं प्रमोदितो राजा वसिष्ठेन महात्मना ॥ प्रधानं प्रेरयामास तदन्वेषणकाम्यया ॥ १७ ॥ अजीगर्तो द्विजः कश्चिद्विषये तस्य भूपतेः ॥ तस्यासंश्च त्रयः पुत्रा निर्धनस्य विशेषतः ॥ १८ ॥ प्रधानेनाप्यसौ पृष्टः पुत्रार्थं दुर्बलद्विजः ॥ गवां शतं ददामीति देहि पुत्रं मखाय वै ॥१९॥ शुनः पुच्छः शुनः शेपः शुनोलांगूल इत्यमी ॥ तेषामकतमं देहि ददामि तु गवां शतम् ॥ २० ॥ अजीगर्तस्तु तच्छ्रुत्वा क्षुधया पीडितो भृशम् ॥ पुत्रं च कतमं तेभ्यो विक्रेतुं वै मनो दधे ॥ २१ ॥ कार्याधिकारिणं ज्येष्ठे मत्वा नासावदादमुम् ॥ कनिष्ठं नाप्यदान्माता ममैष इति वादिनी ॥ २२ ॥ मध्यमं च शुनः शेपं ददौ गवां शतेन च ॥ आनिनाय पशुं चक्रे नरमेधे नराधिपः ॥ २३ ॥ रुदंतं दुःखितं दीनं वेपमानं भृशातुरम् ॥ यूपे बद्धं निरीक्ष्यामुं चुक्रुशुर्मुनयस्तदा ॥ २४ ॥ शामित्राय पशुं चक्रे नरमेधे नराधिपः ॥ शमिता नाददे शस्त्रं तमालं भयितुं शिशुम् ॥ २५ ॥

थे इस कारण यह वचन सुनकर उनमेंसे एक पुत्रको बेचने की इच्छा की ॥२१॥ किंतु ज्येष्ठ पुत्र और्द्धदेहिक क्रिया का अधिकारी है यह जानकर उसको न दिया और कनिष्ठ पुत्रको माताने न दिया और कहा कि यह मेरा है ॥ २२ ॥ विशेषकर मध्यम पुत्र शुनःशेपको सौ गायोंके मूल्यमें बेच डाला नरपतिने उसको लाय नरमेध यज्ञके लिये उसको पशु किया ॥ २३ ॥ वह बालक यूपकाष्ठमें बंधकर काँपने लगा और दुःखसे कातर हो अत्यन्त दीनभावसे रोदन करने लगा यह देखकर मुनि लोग अत्यन्त कातर स्वरसे चीतकार कर उठे ॥ २४ ॥ नरपतिने नरमेधयज्ञमें वध करनेके लिये उसको पशुरूपसे प्रदान किया शमिता पुरुषने उस पशुको छेदन करनेके लिये शस्त्र ग्रहण न किया ॥ २५ ॥

उसने कहा यह ब्राह्मणका पुत्र कातर होकर अत्यन्त करुणा स्वरसे रोदन करता है अतएव मैं लोभके वशीभूत होकर इसको कभी नहीं मारूंगा ॥ २६ ॥ यह कहकर उस दुष्कर कार्यसे विरत हुआ तब राजाने सभासदोंसे कहा हे द्विजगण ! इस समय क्या करना चाहिये ॥ २७ ॥ तब शुनःशेप अत्यन्त अद्भुत करुणास्वरसे रोदन करने लगा और साधारण जन उस विषयको लेकर तुमुल आन्दोलन करने लगे इससे तत्काल उस सभामें अत्यन्त कोलाहल उठा ॥ २८ ॥ अनन्तर अजीगर्त्तने सभास्थलमें खडे होकर नरपति हरिश्चन्द्रसे कहा हे राजन् ! आप धैर्यका अवलम्बन कीजिये मैं आपका कार्य सम्पादन करूंगा ॥ २९ ॥ मैं धनका अभिलाषी हूं इस कारण आप मुझको दूना धन दीजिये मैं अभी इस पशुका वध करता हूं आप शीघ्रही यज्ञ कार्य

नाहं द्विजसुतं दीनं रुदंतं करुणं भृशम् ॥ हनिष्यामि स्वलोभार्थमित्युवाचाप्यसौ तदा ॥२६॥ इत्युक्त्वा विरराचासौ कर्मणो दुष्करादथ ॥ राजा सभासदः प्राह किं कर्तव्यमिति द्विजाः ॥ २७ ॥ जातः किलकिलाशब्दो जनानां क्रोशतां तदा ॥ क्रंदमाने शुनःशेपे सभायां भृशमद्भुतम् ॥ २८ ॥ अजीगर्तस्तदोत्थाय तमुवाच नृपोत्तमम् ॥ राजन्कार्यं करिष्यामि तवाहं सुस्थिरो भव ॥ २९ ॥ वेतनं द्विगुणं देहि हनिष्यामि पशुं किल ॥ कर्तव्यं मखकार्यं वै मया तेऽद्य धनार्थिना ॥ ३० ॥ दुःखितस्य धनार्थस्य सदाऽसूया प्रसूयते ॥ व्यास उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरिश्चंद्रो मुदाऽन्वितः ॥ ३१ ॥ तमुवाच ददाम्यद्य गवां शतमनुत्तमम् ॥ तदाकर्ण्य पिता तस्य पुत्रं हंतुं समुद्यतः ॥ ३२ ॥ लोभेनाकुल चित्तोऽसौ शामित्रे कृतनिश्चयः ॥ समुद्यतं च तं दृष्ट्वा जनाः सर्वे सभासदः ॥ ३३ ॥ चुक्रुशु र्भृशदुःखार्ता हाहेति जगदुर्वचः ॥ पिशाचोऽयं महापापी क्रूरकर्मा द्विजाकृतिः ॥ ३४ ॥ यत्स्वयं स्वसुतं हंतुमुद्यतः कुलपांसनः ॥ धिक्चांडाल किमेतत्ते पापकर्म चिकीर्षितम् ॥ ३५ ॥

सम्पूर्ण कीजिये ॥ ३० ॥ हे राजन् ! जो पुरुष धनका लालची होता है उसकी सर्वदा पुत्रके प्रति भी द्वेषबुद्धि हो जाती है इसमें फिर क्या सन्देह है व्यासजीने कहा हे महाराज ! अजीगर्तके इस प्रकार वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र परम आह्लादके सहित ॥३१॥ उससे कहने लगे मैं इस समय आपको एक शत उत्तम गौ देता हूं तब बालकका पिता राजाकी यह बात सुनतेही ॥ ३२ ॥ लोभके वशीभूत और वधकार्य साधन करनेको कृतनिश्चय हो पुत्रके मारनेमें उद्यत हुआ सभासदगण उसको पुत्रके मारनेमें उद्यत देखकर ॥ ३३ ॥ अत्यन्त दुःखसे कातर हुए और हाय ! हाय ! कहकर विलाप करने लगे उन्होंने कहा यह कुलपांसन अपने पुत्रको मारनेमें उद्यत हुआ है हाय ! हमने पूर्वमें और कभी भी ऐसा क्रूरकर्मा महापापी नहीं देखा यह निश्चयही

द्विजाकृति पिशाच होगा इसमें सन्देह नहीं रे चाण्डाल ! तुमको धिक्कार है तुमने यह क्या पापकार्य करनेकी इच्छा की है ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ सामान्य धनकी इच्छासे पुत्र रूपी रत्नकी हत्या करके तुमको क्या सुख प्राप्त होता ? रे पापिष्ठ ! वेदमें कहा गया है कि आत्माही अङ्गसे पुत्र रूपमें जन्म ग्रहण करता है ॥ ३६ ॥ इस कारण तैंने किस प्रकार उस आत्माके हनन करनेकी इच्छा की है सभास्थलमें इसप्रकार कोलाहल आरम्भ होनेपर कुशिक नन्दन ॥ ३७ ॥ विश्वामित्र दयाके वशीभूत हो नरपतिके समीप आकर उनसे कहने लगे. विश्वामित्र बोले हे राजेन्द्र ! शुनःशेप अत्यन्त कातर होकर रोदन करता है अतएव इसको छोड़ दो ॥ ३८ ॥ तो तुम्हारा यज्ञ सम्पूर्ण और अवश्यही व्याधि नष्ट होगी दयाके समान पुण्य और हिंसाके समान पाप नहीं है ॥ ३९ ॥ तुम विचार करके देखो कि यज्ञादिपशुहिंसाकी जो विधि कही गई वह केवल विषयानुरागी मनुष्योंको प्रवृत्तिके लिये है किन्तु उससे निवृत्त

हत्वा सुतं धनं प्राप्य किं सुखं ते भविष्यति ॥ आत्मा वै जायते पुत्र अंगाद्वै वेदभाषितम् ॥ ३६ ॥ तत्कथं पापबुद्धे त्वमात्मानं हंतु मिच्छसि ॥ एवं कोलाहले तत्र जाते कौशिकनंदनः ॥ ३७ ॥ समीपं नृपतेर्गत्वा तमुवाच दयापरः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ राजन्नमुं शुनःशेपं रुदंतं भृशदुःखितम् ॥ ३८ ॥ क्रतुस्ते भविता पूर्णो रोगनाशश्च सर्वथा ॥ दयासमं नास्ति पुण्यं पाप हिंसासमं न हि ॥ ३९ ॥ रागिणां रोचनार्थाय नोदनेयं विचारय ॥ आत्मदेहस्य रक्षार्थं परदेहनिकृंतनम् ॥ ४० ॥ न कर्तव्यं महाराज सर्वतः शुभमिच्छता ॥ दयया सर्वभूतेषु संतुष्टो येन केन च ॥ ४१ ॥ सर्वेन्द्रियोपशांत्या च तुष्यत्याशु जगत्पतिः ॥ आत्मवत्सर्वभूतेषु चिंतनीयं नृपोत्तम ॥ ४२ ॥ जीवितव्यं प्रियं नूनं सर्वेषां सर्वदा किल ॥ त्वमिच्छसि सुखं कर्तुं देहे हत्वा त्वमुं द्विजम् ॥ ४३ ॥ कथं नेच्छेदसौ देहं रक्षितुं स्वसुखास्पदम् ॥ पूर्वजन्मकृतं वैरं नानेन सहते नृप ॥ ४४ ॥

होनाही उचित है हे महाराज ! जो मनुष्य सम्यक्प्रकार अपने मंगलकी कामना करता है उसको अपने देहकी रक्षा करनेके लिये पराये देहको छेदन करना कभी कर्त्तव्य नहीं, जो मनुष्य सब जीवोंमें समान दया प्रकाश करता है और सामान्यवस्तु प्राप्त होनेपर प्रसन्न होता है ॥ ४० ॥ ॥ ४१ ॥ तथा सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें रखता है जगदीश्वर उससे शीघ्र सन्तुष्ट होते हैं हे नृपवर ! सम्पूर्ण जीवोंको अपने ही समान देखे ॥ ४२ ॥ और सबका प्रिय होकर जीवनयात्रा व्यतीत करे इस ब्राह्मणके पुत्रका देह नष्ट करके तुमने अपने देहके रक्षा करनेकी इच्छा की है ॥ ४३ ॥ अतएव ब्राह्मणका पुत्र भी अपने सुखके आस्पद देहके रक्षाकरनेकी कोई इच्छा नहीं करेगा ? हे राजन्न ! तुमने निरपराध ब्राह्मणके पुत्रको मारनेकी इच्छा की है किंतु यह ब्राह्मणका पुत्र

पूर्वजन्मकृत वैर कभी नहीं सहेगा यदि कोई मनुष्य शत्रुता न होनेपरभी अपनी इच्छानुसार किसीको मारे ॥४४॥ ॥ ॥४५॥ तो वह मनुष्य दूसरे जन्ममें उस हंताका अवश्यही पुनर्वार संहार करता है इसमें सन्देह नहीं इसके पिताकी धनके लोभसे मति भ्रष्ट हुई है इस कारण अपने पुत्रको अर्पण किया है ॥ ४६ ॥ अतएव वह ब्राह्मण अत्यन्त क्रूर स्वभाव लोभी और पापाचारी है इसमें फिर क्या सन्देह है बहुत पुत्रोंकी इच्छा करते हैं कि यदि कोई गयामें जाय ॥ ४७ ॥ अथवा यदि कोई अश्वमेध यज्ञ करें किंवा यदि कोई नीलवृषभ उत्सर्ग करें इस प्रकार विचारकर मनुष्योंको अनेक पुत्रोंकी इच्छा करनी चाहिये और देखो देशमें जो कोई भी पाप कर्म क्यों न करे ॥ ४८ ॥ राजा उस पापका छठाअंश भोगता है इसमें सन्देह नहीं अतएव मनुष्यके पापकर्म

येनामुं हंतुकामस्त्वं द्विजपुत्रं निरागसम् ॥ योऽयं हंति विना वैरं स्वकामः सततं पुनः ॥४५॥ हंतारं हंति तं प्राप्य जननं जननांतरे ॥ जनकोऽस्य सुदुष्टात्मा येनासौ ते समर्पितः ॥ ४६ ॥ स्वात्मजो धनलोभेन पापाचारः स दुर्मतिः ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ ४७ ॥ यजेत चाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ देश मध्ये च यः कश्चित्पापकर्म समाचरेत् ॥ ४८ ॥ षष्ठांशस्तस्य पापस्य राजा भुंक्ते न संशयः ॥ निषेधनीयो राज्ञाऽसौ पापं कर्तुं समुद्यतः ॥ ४९ ॥ न निषिद्धस्त्वया कस्मात्पुत्रं विक्रेतुमुद्यतः ॥ सूर्यवंशे समुत्पन्नस्त्रिशंकुतनयः शुभः ॥ ५० ॥ आर्यस्त्वनार्यवत्कर्म कर्तुमिच्छसि पार्थिव ॥ मोचनान्मुनिपुत्रस्य करणाद्वचनस्य मे ॥ ५१ ॥ तव देहे सुखं राजन्भविष्यत्यविचारणात् ॥ पिता ते शापयोगेन चांडाल त्वमुपागतः ॥ ५२ ॥ मयाऽसौ तेन देहेन स्वर्लोकं प्रापितः किल ॥ तेनैव प्रीतियोगेन कुरु मे वचनं नृप ॥ ५३ ॥

करनेमें प्रवृत्त होनेपर उसको निषेध करना राजाका अवश्य कर्तव्य है ॥ ॥ ४९ ॥ किंतु इस ब्राह्मणके पुत्र बेंचनेमें उद्यत होनेपर तुमने किस लिये इसको निषेध नहीं किया ? हे राजन् ! तुम त्रिशंकुकी संतान हो विशेषकर सूर्यवंशमें जन्म ग्रहण किया है ॥५०॥ इस कारण तुम आर्य होकर भी अनार्यके समान कार्य करनेकी किस प्रकार इच्छा करते हो ? तुम मेरे वचन ग्रहणकर अत्यंत शीघ्र यदि इस ब्राह्मणके पुत्रको छोड़ दोगे ॥५१॥ तो तुम्हारे देहमें अवश्यही सुख होगा तुम्हारे पिता शापवश चाण्डालत्वको प्राप्त हुए थे ॥ ५२ ॥ किंतु उसी देहसे मैंने उनको स्वर्गमें भेज दिया यह तुम अवश्यही जानते हो अतएव हे राजन् ! तुम उसी प्रीतिके अनुसार मेरा वचन प्रतिपालन करो ॥ ५३ ॥

यह बालक अत्यन्त कातर हो दीनभावसे रोदन करता है अतएव इसको छोड दो तुम्हारे इस राजसूय यज्ञमें मैं यही प्रार्थना करता हूं ॥ ५४ ॥ किंतु इसे पूर्ण न करनेसे तुमको प्रार्थनाभङ्गजनित पाप होगा अतएव तुम इसको हृदयमें क्यों नहीं धारण करते ? हे नृपसत्तम ! इस यज्ञमें जो जिसको प्रार्थना करे वह अवश्यही उसको देनी चाहिये ॥५५॥ किंतु इसके अन्यथा करनेसे तुमको पाप होगा इसमें संदेह नहीं व्यासजीने कहा हे महाराज ! कौशिकके इस प्रकार वचन सुनकर नरपति हरिश्चन्द्र ॥ ५६ ॥ मुनिवरविश्वामित्रसे कहने लगे हे गाधेय ! जलोदरकी पीडासे मैं महाक्लेश भोगता हूं ॥ ५७ ॥ अतएव मैं इसको नहीं छोड़ सकता इस कारण आप अन्य कुछ प्रार्थना कीजिये।हे कुशिकनन्दन ! मेरे इस कार्यमें विघ्न करना आपको उचित नहीं है ॥५८॥ तब राजाकी यह बात

मुञ्चैनं बालकं दीनं रुदंतं भृशमातुरम् ॥ याचितोऽसि मया नूनं यज्ञेऽस्मिन्राजसूयके ॥ ५४ ॥ प्रार्थनाभंगजं दोषं कथा त्वं नाऽवबुध्यसे ॥ प्रार्थितं सर्वदा देयं यज्ञेस्मिन्नृपसत्तम ॥ ५५ ॥ अन्यथा पापमेव स्यात्तव राजन्न संशयः ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा कौशिकस्य नृपोत्तमः ॥ ५६ ॥ प्रत्युवाच महाराज कौशिकं मुनिसत्तमम् ॥ जलोदरेण गाधेय दुःखितोऽहं भृशं मुने ॥ ५७ ॥ तस्मान्न मोचयाम्येनमन्यत्प्रार्थय कौशिक ॥ न त्वया विग्रहः कार्यः कार्येऽस्मिन्मम सर्वथा ॥ ५८ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो विश्वामित्रोऽतिकोपतः ॥ बभूव दुःखसंतप्तो वीक्ष्य दीनं द्विजात्मजम् ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ रुदंतं बालकं वीक्ष्य विश्वामित्रो दयातुरः ॥ शुनःशेपमुवाचेदं गत्वा पार्श्वेऽतिदुःखितम् ॥ १ ॥ मंत्रं प्रचेतसः पुत्र मयोक्तं मनसा स्मरन् ॥ जपतस्तव कल्याणं भविष्यति ममाज्ञया ॥ २ ॥ विश्वामित्रवचः श्रुत्वा शुनः शेपः शुचाकुलः ॥ मंत्रं जजाप मनसा कौशिकोक्तं स्फुटाक्षरम् ॥ ३ ॥ जपतस्तत्र तस्याशु प्रचेतास्तु कृपाकरः ॥ प्रादुर्बभूव सहसा प्रसन्नो नृपबालके ॥ ४ ॥

सुनकर विश्वामित्र अत्यन्त कुपित हुए और ब्राह्मणके पुत्रको अत्यंत कातर देखकर दुःखसहित संताप करने लगे ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां षोडसोऽध्यायः ॥ १६ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! विश्वामित्र उस बालक शुनःशेपको अत्यन्य कातर भावसे रोदन करता हुआ देख अतिदयार्द्रचित्त हो उसके समीप जायकर उससे कहने लगे ॥१॥ हे वत्स मैं तुझको वरुणमंत्र प्रदान करता हूं इस मंत्रको मनही मनमें स्मरण कर और मेरे वचनानुसार इस मंत्रका जप करनेसे तेरा अवश्यही मंगल होगा ॥२॥ शोकाकुल शुनःशेप विश्वामित्रका यह वचन सुन उनका कहा मंत्र मनही मनमें स्पष्टाक्षरसे जप करने लगा ॥ ३ ॥ हे राजन् ! शुनःशेपके उस मंत्रको जपतेही कृपालुहृदय वरुणदेव उसके प्रति प्रसन्न हो सहसा उसके सन्मुख आकर प्रगट हुए ॥४॥

वरुणदेवको आया हुआ देखकर संपूर्ण सभामें बैठे हुए विस्मित हुए और उनको देखकर आनंदित होकर सभी उनका स्तव करने लगे ॥ ५ ॥ तब रोगातुर हरिश्चन्द्र नरपति भी अत्यंत विस्मित हो उनके दोनों चरणोंमें गिरे और हाथ जोड़ उनके पुरोवर्ती वरुणदेवका स्तव करने लगे ॥ ६ ॥ हरिश्चंद्रने कहा हे देवदेव ! मैं अत्यंत पापत्मा हूं और मेरी बुद्धि नितांत कलुषित है इस कारण मैं आपके निकट अत्यंत अपराधी हुआ हे दयामय ! इस समय आप कृपा करके इस दीनको पवित्र कीजिये ॥ ७ ॥ पुत्रके अभावसे मैं अत्यंत दुःखित था इस कारण पुत्रकामुक होकर आपके वचनमें अवहेला (तिरस्कार) किया है आप प्रभु हैं अतएव आपको निग्रह और अनुग्रहकी सामर्थ्य है इस कारण मेरा यह अपराध क्षमा कीजिये विशेषतः आप विचार करके देखिये कि,

दृष्ट्वा तमागतं सर्वे विस्मयं परमं गताः ॥ तष्टुवुर्वरुणं देवं मुदिता दर्शनेन ते ॥ ५ ॥ राजाऽतिविस्मितः पादौ प्राणनाम रुजातुरः ॥ बद्धांजलिपुटो देवं तुष्टाव पुरतः स्थितम् ॥ ६ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ देवदेव कृपासिंधो पापात्माऽहं सुमंदधीः ॥ कृता पराधः कृपणः पवित्रः परमेष्ठिना ॥ ७ ॥ मया ते पुत्रकामेन दुःखसंस्थेन हेलनम् ॥ कृतं क्षमाप्यं प्रभुणा कोऽपराधः सुदुर्मते ॥ ८ ॥ अर्थी दोषं न जानाति तस्मात्पुत्रार्थिना मया ॥ वञ्चितस्त्वं देवदेव भीतेन नरकाद्विभो ॥ ९ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ॥ भीतोऽहं तेन वाक्येन तस्मात्ते हेलनं कृतम् ॥ १० ॥ नाज्ञस्य दूषणं चिंत्यं नूनं ज्ञानवता विभो ॥ दुःखितोऽहं रुजाऽऽक्रांतो वंचितः स्वसुतेन ह ॥ ११ ॥ न जानेऽहं महाराज पुत्रो क्व गतः प्रभो ॥ वंचयित्वा वने भीतो मरणान्मां कृपानिधे ॥ १२ ॥

जिसकी मति छिन्न हुई है उसका फिर अपराध क्या है ? अतएव दुर्मति पुरषका अपराध आपको गिनना उचित नहीं है ॥ ८ ॥ हे देवदेव ! जो मनुष्य याचक है वह दोष नहीं देखता मैं भी पुत्रका प्रार्थी हूं इस कारण कोई दोष नहीं विचार सका हे विभो ! नरकके भयसे डरकर ही मैंने आपको छला है ॥९॥ अपुत्रकी गति नहीं है विशेष कर उसकी कभी स्वर्ग गति नहीं होती, मैंने इस शास्त्रके वचनसे डरकर ही आपके वचनका अपमान किया है ॥१०॥ हे प्रभो ! आप ज्ञानवान् और मैं अज्ञानी हूं, विशेषकर दुर्द्धर्ष रोगकी यन्त्रणासे अत्यंत कातर और अपने पुत्र धनसे भी वञ्चित हूं इस कारण मेरा कुछ भी दोष विचारना आपको उचित नहीं ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! मेरा पुत्र कहां चला गया है, यह मैं नहीं जानता हे दयामय ! बोध होता है कि, वह मृत्युके भयसे डरकर और मुझे छलकर वनको चला गया है ॥ १२ ॥

जो हो मैं धनसे इस ब्राह्मणके बालकको मोल लाया हूं और आपको सन्तुष्ट करनेके लिये क्रीतपुत्र द्वारा यह यज्ञ आरम्भ किया है ॥ १३ ॥ हे देव देव ! आपको देखतेही मेरा अत्यंत क्लेश दूर हुआ है इस समय आपके प्रसन्न होनेसे मेरा जलोदरजनित सम्पूर्ण दुःख दूर हो जायगा ॥ १४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! उन रोगातुर राजाके यह वचन सुनकर देवदेव वरुण कृपाके वशीभूत हो नरपतिसे कहने लगे ॥ १५ ॥ हे राजन् ! शुनःशेप अत्यंत कातर होकर मेरा स्तव करता है, इस कारण तुम इसको छोड़ दो और तुम्हारा यज्ञ भी संपूर्ण हुआ, अब तुम रोगसे भी मुक्त होओ ॥ १६ ॥ वरुणने यह बात कहकर सभासदोंके सामने ही राजाको रोगसे मुक्त किया, राजा भी तब सुन्दर देह और स्वस्थता प्राप्तकर उनके सन्मुख स्थिति करने लगे ॥ १७ ॥ वरुण

प्रययौ द्रविणं दत्त्वा गृहीतो द्विजबालकः ॥ यज्ञोऽयं क्रीतपुत्रेण प्रारब्धस्तव तुष्टये ॥ ॥ १३ ॥ दर्शनं तव संप्राप्य गतं दुःखं ममाद्भुतम् ॥ जलोदरकृतं सर्वं प्रसन्ने त्वयि सांप्रतम् ॥ १४ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राज्ञो रोगातुरस्य च ॥ दयावान्देवदेवेशः प्रत्युवाच नृपोत्तमम् ॥ १५ ॥ वरुण उवाच ॥ मुंच राजञ्छुनःशेपं स्तुवंतं मां भृशातुरम् ॥ यज्ञोऽयं परिपूर्णस्ते रोगमुक्तो भवात्मना ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वा वरुणस्तूर्णं राजानं विरुजं तथा ॥ चकार पश्यतां तत्र सदस्यानां सुसंस्थितम् ॥ १७ ॥ विमुक्तोऽसौ द्विजः पाशाद्वरुणेन महात्मना ॥ जयशब्दस्ततस्तत्र संजातो मख मंडपे ॥ १८ ॥ राजा प्रमुदितः सद्यो रोगान्मुक्तः सुदारुणात् ॥ यूपान्मुक्तः शुनःशेपो बभूवातीव संस्थितः ॥ १९ ॥ राजा त्विमं मखं पूर्णं चकार विनयान्वितः ॥ शुनःशेपस्तदा सभ्यानित्युवाच कृतांजलिः ॥ २० ॥ भोभोः सभ्याः सधर्मज्ञा ब्रुवंतु धर्मनिर्णयम् ॥ वेदशास्त्रानुसारेण यथार्थवादिनः किल ॥ २१ ॥ पुत्रोऽहं कस्य सर्वज्ञाः पिता मे कोऽग्रतः परम् ॥ महतां वचनात्तस्य शरणं प्रव्रजाम्यहम् ॥ २२ ॥

देवकी कृपासे जब द्विजपुत्र पाशबंधनसे मुक्त हुआ तब उस यज्ञ सभास्थलमें जयशब्द उच्चारित होने लगा ॥ १८ ॥ राजा दारुण रोगसे तत्काल मुक्ति प्राप्त कर संतुष्ट हुए और शुनःशेप भी यूपसे मुक्तहो निरुद्वेग और स्वस्थ हुआ ॥ १९ ॥ तदनंतर राजा हरिश्चन्द्रके विनय सहित वह यज्ञ सम्पूर्ण होनेपर फिर शुनःशेप हाथ जोड़कर सभासदोंसे कहा ॥ २० ॥ हे सभ्यगण ! आप सम्पूर्ण ही सत्यवादी विशेषकर धर्मका यथार्थ मर्म जानते हैं इस कारण वेदशास्त्रानुसार धर्मका निश्चय वर्णन कीजिये ॥ २१ ॥ हे सर्वज्ञगण ! इस समय मैं किसका पुत्र हूं ? मेरे पूज्यतम अग्रगण्य पिता कौन हैं, सो आप बता दीजिये. आपके वचनानुसारही उनका आश्रम ग्रहण करूंगा ॥ २२ ॥

दे. भा. ॥५१॥ शुनःशेपके यह वचन कहनेपर फिर सभासद्लोग परस्पर कहने लगे कि, यह बालक अजीगर्तका पुत्र हैं अब अन्य किसका पुत्र होगा ॥ २३ ॥ उस अजीगर्त्तके ही अङ्गप्रत्यङ्गसे यह बालक उत्पन्न हुआ है ब्राह्मणने इसको अपनी शक्तिके अनुसार उसका प्रतिपालन किया है. अतएव यह बालक उसका ही पुत्र होगा. यही स्थिर सिद्धांत है ॥ २४ ॥ यह बात सुनकर वामदेवने उन सभासदोंसे कहा इसके पिताने धनके लोभसे इसको बेंच डाला है ॥२५॥ राजाने द्रव्य देकर इसको मोल लिया है अतएव यह बालक इस समय राजाका ही पुत्र होगा. अथवा यह बालक वरुण देवका पुत्र है क्योंकि उन्होंने इसको बंधनसे छुड़ाया है ॥२६॥ कारण कि, जो मनुष्य अन्न देकर प्रति पालन करता वा जो भयसे रक्षा करता है अथवा जो धन देकर रक्षा करता है जो विद्या

इत्युक्ते वचने तत्र सभ्याः प्रोचुः परस्परम् ॥ सभ्या ऊचुः ॥ अजीगर्तस्य पुत्रोऽयं कस्यान्यस्य भवेदसौ ॥ २३ ॥ अंगादंगात्स मुद्भूतः पालितस्तेन भक्तितः ॥ अन्यस्य कस्य पुत्रोऽसौ प्रभवेदिति निश्चयः ॥ २४ ॥ तच्छ्रुत्वा वामदेवस्तु तानुवाच सभासदः ॥ विक्रीतस्तेन तातेन द्रव्यलोभात्सुतः किलः ॥ २५ ॥ पुत्रोऽयं धनदातुश्च राज्ञस्तत्र न संशयः ॥ अथवा वरुणस्यैष पाशान्मुक्तोऽस्त्य नेन वै ॥ २६ ॥ अन्नदाता भयत्राता तथा विद्याप्रदश्च यः ॥ तथा वित्तप्रदश्चैव पंचैते पितरः स्मृताः ॥ २७ ॥ तदा केचित्पितु प्राहुः केचिद्राज्ञस्तथापरे ॥ वरुणस्येते संवादे निर्णयं न ययुश्च ते ॥ २८ ॥ इत्थं संदेहमापन्ने वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ सभ्यान्वि वदतस्तत्र सर्वज्ञः सर्वपूजितः ॥ २९ ॥ शृणुध्वं भो महाभागा निर्णयं श्रुतिसंमतम् ॥ निःस्नेहेन यदा पित्रा विक्रीतोऽयं सुतः शिशुः ॥ ३० ॥ संबंधस्तु गतस्तस्य सदैव धनसंग्रहात् ॥ हरिश्चंद्रस्य संजातः पुत्रोऽसौ क्रीत एव च ॥ ३१ ॥ यूपे बद्धो यदा राज्ञा तदा तस्य न वै सुतः ॥ वरणस्तु स्तुतोऽनेन तेन तुष्टेन मोचितः ॥ ३२ ॥

देता है और जो जन्म देता है यह पांच मनुष्य ही पितृपदवाच्य हैं ॥ २७ ॥ हे महाराज ! उस समय कोई अजीगर्तका कोई राजाका अथवा कोई वरुण देवका पुत्र कहकर वादानुवाद करने लगे किंतु कोई इसका निर्णय न कर सके ॥ २८ ॥ इस प्रकार सन्देह उपस्थित होनेपर फिर सर्वजनोंके समादृत सर्वज्ञ
भा.टी.स. युक्त वसिष्ठदेव उन विवाद करते हुए सभासदोंसे कहने ॥ २९ ॥ हे महाभागगणो ! इस विषयमें श्रुति सम्मत निर्णय करता हूं श्रवण करो पिताने पुत्रस्नेह
अ० १७ त्यागकर जब बालक पुत्रको बेंच दिया ॥३०॥ तब उसका संबध भी दूर हो गया अनंतर यह बालक राजा हरिश्चंद्रका क्रीत पुत्र हुआ था इसमें संदेह नहीं ॥ ३१ ॥ किंतु जब राजाने इसको यूपमें बांधा तब यह राजाका पुत्र नहीं हो सकता परंतु जब इस बालकने वरुण देवकी स्तुति की तब उन्होंने उससे

संतुष्ट होकर इसको छुड़ा दिया ॥ ३२ ॥ इस कारण यह बालक वरुण देवका भी पुत्र नहीं हो सकता क्योंकि जो मनुष्य महामंत्रसे जिस देवताकी स्तुति करता है वह देव उसके प्रति संतुष्ट होकर ही उसको ॥३३॥ धन प्राण पशु राज्य और मुक्ति प्रदान करता है परंतु अत्यंत संकटके समय वरुण देवका महा वीर्य मंत्र देकर कुशिकनंदन विश्वामित्रने इस बालककी रक्षा की है इसलिये यह बालक उनका ही पुत्र होगा इसमें संदेह नहीं है. व्यासजीने कहा हे राजन् ! वसिष्ठके यह वचन सुनकर सभासदोंने उनके वचनमें अनुमोदन किया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ और विश्वामित्रने प्रेम पूर्वक हो हे पुत्र ! मेरे घरको चलो यह कहकर उसका दक्षिण हाथ पकड़ लिया ॥ ३६ ॥ तब शुनःशेप भी शीघ्र उनके साथ चला गया इसी समय वरुण देव भी प्रीतिपरायण

तस्मान्नाय महाभागा ह्यसौ पुत्र प्रचेतसः ॥ योऽयं स्तौति महामंत्रै सोऽपि तुष्टो ददाति च ॥ ३३ ॥ धनं प्राणान्पशून्राज्यं तथामोक्षं किलेप्सितम् ॥ कौशिकस्य सुतश्चायमरिष्टे येन रक्षितः ॥ ३४ ॥ मंत्रं दत्वा महावीर्यं वरुणस्यातिसंकटे ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा वाक्यं वसिष्ठस्य बाढमुचुः सभासदः ॥ ३५ ॥ विश्वामित्रस्तु जग्राह तं करे दक्षिणे तदा ॥ एहि पुत्र गृहं मे त्वमित्युक्त्वा प्रेम पूरितः ॥ ३६ ॥ शुनःशेपो जगामाशु तेनैव सह सत्वरः ॥ वरुणस्तु प्रसन्नात्मा जगाम च स्वमालयम् ॥ ३७ ॥ ऋत्विजश्च तथा सभ्याः स्वगृहान्निर्ययुस्तदा ॥ राजाऽपि रोगनिर्मुक्तो बभूवाति मुदाऽन्वितः ॥ ३८ ॥ प्रजास्तु पालयामास सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ रोहिताख्यस्तु तच्छुत्वा वृत्तांतं वरुणस्य ह ॥ ३९ ॥ आजगाम गृहं प्रीतो दुर्गमाद्गिनपर्वतात् ॥ दूता राजानमभ्येत्य प्रोचुः पुत्रं समागतम् ॥ ४० ॥ मुदितोऽसौ जगामासु संमुखः कोसलाधिपः ॥ दृष्ट्वा पितरमायांतं प्रेमोद्रिक्तः सुसंभ्रमः ॥४१॥ दंडवत्पतितो भूमावश्रुपूर्णमुखः शुचा ॥ राजाऽपि तंसमुत्थाप्य परिरभ्य मुदाऽन्वितः ॥ ४२ ॥

हो अपने घरको चले गये ॥ ३७ ॥ और ऋत्विक् तथा सभासद् भी अपने अपने घरको चले गये राजा भी रोगसे मुक्ति प्राप्त कर अति आनंदित हो ॥ ३८ ॥ अत्यंत प्रसन्न चित्तसे राज्य पालन करने लगे. इसी समय राजाका पुत्र रोहित भी वरुण देवका संपूर्ण वृत्तांत सुन ॥३९॥ प्रसन्न हो दुर्गम वन और पर्वतादि छोड घरको आया तब दूतोंने राजाके समीप जाय राजपुत्रके आनेका वृत्तांत कहा ॥ ४० ॥ वह कोशलाधिपति पुत्रका आगमन सुन प्रेमसे परिपूर्ण और आनंदित हो शीघ्र उनके संमुख आकर उपस्थित हुए, रोहिताश्व भी पिताको आता हुआ देख ॥४१॥ प्रेमसे परिपूर्ण हो गया और चिरविरहजात शोकके आंसुओंसे मुख प्लावित कर दण्डके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब राजाने इसको उठाय प्रसन्न हृदयसे आलिङ्गन किया ॥ ४२ ॥

और आनन्दसहित उसका मस्तक सूंघ कुशल वार्त्ता पूँछी । इस प्रकार राजा जब पुत्रको गोदीमें लेकर पूँछते थे ॥ ४३ ॥ तब उसके दोनों नेत्रोंसे गरम आँसुओंकी धारा गिरने लगी उससे कुमारका मस्तक भीग गया अनंतर राजा उस प्रियतम पुत्रके सहित राज्यशासन करने लगे ॥ ४४ ॥ उस समय नृप सत्तमने नरमेधयज्ञका आनुपूर्विक वृत्तान्त विस्तारसहित पुत्रसे कहा इसके उपरांत उन्होंने श्रेष्ठ राजसूययज्ञका अनुष्ठान कर ॥ ४५ ॥ वसिष्ठ मुनिकी यथा विहित पूजा करके उनको उस यज्ञके होतृकार्यमें वरण किया. फिर उस श्रेष्ठ यज्ञके समान होनेपर राजाने बहुत धनसे वसिष्ठका अत्यंत सन्मान किया॥४६॥ अनन्तर एक समय वसिष्ठमुनि आदरसहित रमणीय इन्द्रभवनमें गये, इसी समय विश्वामित्र भी उस स्थानमें जाय वसिष्ठसे मिले ॥ ४७ ॥ तब वह दोनों

समाघ्राय सुतं मूर्ध्नि पप्रच्छ कुशलं पुनः ॥ उत्संगे तं समारोप्य मुदितो मेदिनीपतिः ॥ ४३ ॥ उष्णनेत्रजलैः शीर्षण्यभिषेकमथाऽ करोत् ॥ राज्यं शशास तेनासौ पुत्रेणातिप्रियेण च ॥ ४४ ॥ वृत्तांतं नरमेधस्य कथयामास विस्तरात् ॥ न राज सूयं क्रतुवरं चकार नृपसत्तमः ॥ ४५ ॥ वसिष्ठं पूजयित्वाऽथ होतारमकरोद्विभुः ॥ समाप्ते त्वथ यज्ञेशे वसिष्ठोऽतीव पूजितः ॥ ४६ ॥ शक्रस्य सदनं रम्यं जगाम मुनिरादरात् ॥ विश्वामित्रोऽपि तत्रैव वसिष्ठेन च सगतः ॥ ४७ ॥ मिलित्वा तौ स्थितौ देवसदन मुनिसत्तम ॥ विश्वामित्रोऽपि पप्रच्छ वसिष्ठं प्रति पूजितम् ॥ ४८ ॥ वीक्ष्य विस्मयचित्तस्तं सभायां तु शचीपतेः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ क्वेयं पूजा त्वया प्राप्ता महती मुनिसत्तम ॥ ४९ ॥ कृता केन महाभाग सत्यं ब्रूहि ममांतिके ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ यजमानोऽस्ति मे राजा हरिश्चंद्रः प्रतापवान् ॥ ५० ॥ राजसूयः कृतस्तेन राज्ञा प्रवरदक्षिणः ॥ नेदृशोऽस्ति नृपश्चान्यः सत्यवादी धृतव्रतः ॥ ५१ ॥ दाता च धर्मशीलश्च प्रजारंजनतत्परः ॥ तस्य यज्ञे मया पूजा प्राप्ता कौशिकनंदन ॥ ५२ ॥

महर्षि मिलित होकर सुरसदनमें विराजमान हुए परंतु विश्वामित्र शचीपति इंद्रकी सभामें वसिष्ठको सम्मानित देखकर आश्चर्ययुक्त चित्तद्वारा उनसे पूँछने लगे विश्वामित्र बोले हे ऋषिसत्तम ! आपने यह महती पूजा कहाँ पाई ॥ ४८ ॥ ॥ ४९ ॥ हे महाभाग ! आपकी यह पूजा किसने की है ? सो आप मुझसे सत्य कहिये. वसिष्ठने कहा हे मुनिवर ! हरिश्चन्द्र नामक एक प्रतापवान् नृपति मेरा यजमान है ॥ ५० ॥ उसी राजाने बहुत दक्षिणायुक्त राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया इसके समान धृतव्रत सत्यवादी राजा अन्य नहीं है ॥ ५१ ॥ वह धर्मशील दाता और प्रजाका पालन करनेमें तत्पर है हे कौशिकनन्दन ! उसी राजाके यज्ञमें मुझको यह पूजा प्राप्त हुई है ॥ ५२ ॥

हे द्विजवर ! आप मुझको सत्य कहनेका क्या अनुरोध करते हैं मैं पुनर्वार आपसे यथार्थ ही कहता हूं कि, राजा हरिश्चन्द्रके समान सत्यवादी वीर चतुर और परमधार्मिक राजा अन्य कोई नहीं हुआ और न कभी होगा ॥ ५३ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! अत्यन्त कोपनस्वभाव विश्वामित्र उनके इस प्रकार वचन सुन लाल लाल नेत्र कर उनसे कहने लगे ॥५४॥ विश्वामित्र बोले हे वसिष्ठ ! हरिश्चन्द्रने प्रतिज्ञा करके वरुणदेवसे वर प्राप्त किया इसके उपरांत उसने वरुणको ही कपटरूपी वचनोंसे छला था अतएव वह मिथ्यावादी और कपटप्रिय है तुम उसी राजाकी प्रशंसा करते हो ॥ ५५ ॥ हे महामते ! मैं जन्मावधि तपस्या और अध्ययन और तपस्या करके जो पुण्य सञ्चय किया है और तुमने भी आजन्म अध्ययन और तपस्या करके जो पुण्य उपार्जन किया

"किं पृच्छसि पुनः सत्यं ब्रवीम्यकृत्रियमं द्विज ॥ " हरिश्चंद्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति ॥ सत्यवादी तथा दाता शूरः परम धार्मिकः ॥ ५३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा विश्वामित्रोऽतिकोपनः ॥ बभूव क्रोधसंरक्तलोचनोऽप्यब्रवीच्च तम् ॥ ५४ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ एवं स्तौषि नृपं मिथ्यावादिनं कपटप्रियम् ॥ वञ्चितो वरुणो येन प्रतिश्रुत्य वरं पुनः ॥ ५५ ॥ मम जन्मार्जितं पुण्यं तपसः पठितस्य च ॥ त्वदीयं वाऽतितपसो ग्लहंकुरु महामते ॥ ५६ ॥ अहं चेत्तं नृपं सद्यो न करोम्यति संस्तुतम् ॥ असत्य वादिनं काममदातारं महाखलम् ॥ ५७ ॥ आजन्मसंचितं सर्वं पुण्यं मम विनश्यतु ॥ अन्यथा त्वत्कृतं सर्वं पुण्यं त्विति पणावहे ॥ ५८ ॥ ग्लहं कृत्वा ततस्तौ तु विवदंतौ मुनी तदा ॥ स्वाश्रमं स्वर्गलोकाच्च गतौ परमकोपनौ ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महा पुराणे सप्तमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ व्यास उवाच ॥ कदाचित्तु हरिश्चंद्रो मृगयार्थं वनं ययौ ॥ अपश्यद्रुदतीं बालां सुंदरीं चारु लोचनाम् ॥ १ ॥

है इस समय उसका ही प्रण करो ॥ ५६ ॥ तुमने उस अदाता महाबल राजा हरिश्चन्द्रकी अत्यंत स्तुति की है किंतु यदि मैं उसको शीघ्र ही मिथ्यावादी न करूं तो मेरा आजन्म सञ्चित सम्पूर्ण पुण्य नष्ट हो किंतु इसके अन्यथा होनेसे तुम्हारा समस्त पुण्य नष्ट होगा मैंने आज यही प्रण किया है ॥ ५७ ॥ ॥ ५८ ॥ तब वह परमक्रोध युक्त दोनों मुनि परस्पर विवाद करते हुए इस प्रकार प्रणकर स्वर्गलोकसे अपने अपने घरको चले गये ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! एक समय राजा हरिश्चन्द्रने मृगयाके लिये वनमें जाय इधर उधर भ्रमण करते करते देखा कि, एक चारुलोचन परम सुन्दरी रमणी रोदन करती है ॥ १ ॥

राजाने इसको देखकर करुणाके वशीभूत हो पूँछा हे वरानने ! तुम अकेली इस वनमें क्यों रोदन करती हो ? ॥ २ ॥ हे विशालाक्षी ! तुमको क्या किसीने क्लेश दिया है ? तुम्हारे दुःखका क्या कारण है सो तुम मुझसे शीघ्र कहो तुम इस जनशून्य भयंकर वनमें क्यों आई हो तुम्हारे स्वामी और पिताका क्या नाम है ? ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी ! मेरे राज्यमें कभी कोई राक्षस स्त्रीको क्लेश देनेमें समर्थ नहीं होता अतएव हे वरारोहे ! तुमको कौन कष्ट देता है मैं उसको अभी मारूंगा ॥४॥ हे कृशोदरि ! तुम सावधान हो अब रोदन मत करो, तुम्हारे दुःखका क्या विषय है सो मुझसे कहो. हे सुमध्यमे!तुम निश्चय जानो कि, मेरे राज्यमें कोई पापिष्ट मनुष्य नहीं रहता ॥५॥ नरपतिश्रेष्ठ हरिश्चन्द्रके इस प्रकार वचन सुन वह सर्वाङ्ग सुन्दरी स्त्री दोनों हाथोंसे आँसू पोंछती हुई उनसे कहने

तामपृच्छन्महाराजः कामिनीं करुणापर ॥ पद्मपत्रविशालाक्षि किं रोदिषि वरानने ॥ २ ॥ केनाऽसि पीडिताऽत्यर्थं किं ते दुःखं वदाशु मे ॥ का च त्वं विजने घोरे कस्ते भर्ता पिताऽथ वा ॥ ३ ॥ न बाधते च राज्ये मे राक्षसोऽपि परांगनाम् ॥ तं हन्मि तरसा कान्ते यस्त्वां सुंदरिबाधते ॥ ४ ॥ ब्रूहि दुःखं वरारोहे स्वस्था भव कृशोदरि ॥ विषये मम पापात्मा न तिष्ठति सुमध्यमे ॥५॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा नारी तमब्रवीन्नृपम् ॥ प्रमृज्याऽश्रूणि वदनाद्धरिश्चंद्रं नृपोत्तमम् ॥ ६ ॥ नार्युवाच ॥ राजन्मां बाधतेऽत्यर्थं विश्वामित्रो महामुनिः ॥ तपः करोति यद्घोरं मदर्थं कौशिको वने ॥ ७ ॥ तेनाऽहं दुःखिता राजन्विषये तव सुव्रत ॥ विद्धि मां कामनां कांतां पीडितां मुनिना भृशम् ॥ ८ ॥ राजोवाच ॥ स्वस्था भव विशालाक्षि न ते दुःखं भविष्यति ॥ तमहं वारयिष्यामि मुनिं तापपरायणम् ॥ ९ ॥ इत्याश्वास्य स्त्रियं राजा तरसा मुनिसन्निधौ ॥ नत्वा प्रणम्य शिरसा तमुवाच महीपतिः ॥ १० ॥

लगी ॥६॥ नारी बोली हे राजेन्द्र ! मैं सिद्धिरूपिणी हूं मुझको प्राप्त करने के लिये महर्षि विश्वामित्र घोर तपस्या करते हैं अतएव उन्हीं कौशिकसे मुझको यह क्लेश उपस्थित हुआ है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! इसी कारण मैं आपके राज्यमें दुःखित रहती हूं हे सुव्रत ! मैं कोमलस्वभाव मनोहर स्त्री हूं तो भी वह मुनिवर मुझको अत्यन्त क्लेश देते हैं ॥ ८ ॥ राजाने कहा हे विशाललोचने ! अब तुमको दुःख भोगना नहीं होगा तुम धैर्यावलंबन करो मैं तपश्चर्यामें निरत उन मुनिवरको निवारण करता हूं ॥ ९ ॥ राजा हरिश्चन्द्र उस रमणीको इस प्रकार समझाकर शीघ्र मुनिवर विश्वामित्रके समीप गये और उनको प्रणामपूर्वक हाथ जोड़ उनसे कहने लगे ॥ १० ॥

हे महर्षे ! कठोर तपस्या में निरत होकर किसलिये शरीरको पीड़ा देते हो ? हे महामते ! आप कौन महत्कार्य साधनके लिये इस प्रकार कठोर तपस्या करते हैं सो आप मुझसे सत्य कहिये ॥ ११ ॥ हे गाधिनन्दन ! आपकी जो इच्छा हो मैं उसको पूर्ण करूंगा, अब इस प्रकार कठोर तपस्या करनेका प्रयोजन नहीं है आप शीघ्र उठिये ॥ १२ ॥ हे महर्षे ? आप तो सभी जानते हैं अतएव आपसे अधिक क्या कहूं देखो मेरे अधिकारमें रहकर मनुष्योंको पीडादायक दारुण घोर तपस्या करना कभी किसीको उचित नहीं है ॥ १३ ॥ राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्रको इस प्रकार निषेधकर अपने घरको चले गये और मुनिवर कौशिक भी मनमें क्रोधित हो अपने आश्रमकी ओर चले गये ॥ १४ ॥ अनन्तर विश्वामित्र आश्रममें जाय पहले इन्द्रभवनमें वसिष्ठके सहित राजा हरिश्चन्द्रके धार्मिकता विषयमें जो वादानुवाद हुआ था और राजा हरिश्चन्द्रने इस समय जो उनको अन्यायरूपसे तपस्या करनेमें निषेध किया उसीकी मनमें चिंता

स्वामिन्किं क्रियतेऽत्यर्थं तपसा देहपीडनम् ॥ किमर्थं ते समारंभो ब्रूहि सत्यं महामते ॥ ११ ॥ वांछितं तव गाधेय करोमि सफलं किल ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ तरसा तपसाऽलमतः परम् ॥ १२ ॥ विषये मम सर्वज्ञ न कर्तव्यं सुदारुणम् ॥ लोकपीडाकरं घोरं तपः केनापि कर्हिचित् ॥ १३ ॥ इत्थं निषिध्य तं राजा विश्वामित्रं गृहं ययौ ॥ मनसा क्रोधमाधायागतोऽसौ कौशिको मुनिः ॥ १४ ॥ स गत्वा चिंतयामास नृप कृत्यमसांप्रतम् ॥ वसिष्ठस्य च संवादं तपसः प्रतिषेधनम् ॥ १५ ॥ कोपाविष्टेन मनसा प्रतीकारमथाकरोत् ॥ विचिंत्य बहुधा चित्ते दानवं घोरविग्रहम् ॥ १६ ॥ प्रेषयामास तद्देशं विधाय सूकराकृतिम् ॥ सोऽतिकायो महाकालः कुर्वन्नादं सुदारुणम् ॥ १७॥ राज्ञश्चोपवने प्राप्तस्त्रासयन्रक्षकांस्तदा ॥ मालतीनां च खंडानि कदंबानां तथैव च ॥ १८ ॥

करने लगे. फलतः उन्होंने विचारा कि, राजा हरिश्चन्द्र परमधार्मिक हैं तो उसने किस लिये मुझको तपस्या करनेमें निषेध किया और वसिष्ठने किस प्रकार इसके लिये प्रण किया ॥ १५ ॥ जो हो विश्वामित्र मनमें क्रोधित हो उनसे बदला लेनेको उद्यत हुए तब उन्होंने मनमें अनेक प्रकारकी चिंताकर भयंकर देह एक दानवको ॥ १६ ॥ शूकराकार कर राजा हरिश्चन्द्रकी राजधानीमें भेजा उस विशाल शरीरधारी महाबलवान् शूकरने भयंकर चीत्कार करते करते ॥ १७ ॥ राजाके उपवनमें प्रवेश किया तब रक्षक लोग उसके घोर शब्दसे भीत होगये वह शूकर वनमें प्रवेश कर कहीं मालतीवन कहीं कदंबवन ॥ १८ ॥

कहीं यूथिका लताके वन इन संपूर्णको वारंवार तोडने लगा कहीं दाँतसे भूमि खोदकर वृक्ष तोडता ॥ १९ ॥ कभी चम्पक केतकी और मल्लिका चमेली इत्यादि पादपोंको जड़से उखाड़ने लगा कहीं सुन्दर कोमल उशीर (खस) करवीर ॥ २० ॥ मुचुकुंद अशोक बकुल और तिलक इत्यादि संपूर्ण वृक्षोंकी जड़ोंको खोदकर उस उपवनको छिन्न भिन्न करने लगा ॥ २१ ॥ तब वनकी रक्षा करनेवाले लोग अस्त्रशस्त्र ग्रहणकर उसके ऊपर दौडे और माली लोग अत्यंत कातर हो हाहाकार शब्दसे चीत्कार करने लगे ॥ २२ ॥ यह कालके समान शूकर बाणोंसे ताडित होकर भी जब नहीं डरा बरन् रक्षकलोगोंको पीडित करने लगा ॥ २३ ॥ तब वह अत्यंत भीत और कातर हो राजाकी शरणागत हुए और कंपायमान कलेवरसे हे महाराज ! रक्षा करो

यूथिकानां च वृंदानि कंपयंश्च मुहुर्मुहुः ॥ दन्तेन विलखन्भूमिं समुन्मूलयते द्रुमान् ॥ १९ ॥ चंपकान्केतकीखंडान्मल्लिकानां च पादपान् ॥ करवीरानुशीरांश्च निचखान शुभान्मृदून् ॥ २० मुचुकुंदानशोकांश्च बकुलांस्तिलकांस्तथा ॥ उन्मूल्य कदनं तत्र चकार सूकरो वने ॥ २१ ॥ वाटिकारक्षकाः सर्वे दुद्रुवुः शस्त्रपाणयः ॥ हाहेति चुक्रुशुस्तत्र मालाकारा भृशातुराः ॥ २२ ॥ बाणैः संताडचमानोऽपि यदा त्रस्तो न वै मृगः ॥ रक्षकान्पीडयामास कौलः कालसमद्युतिः ॥ २३ ॥ ते तदाऽतिभयाक्रांता राजानं शरणं ययुः ॥ तमूचुस्त्राहि त्राहीति वेपमाना भयाकुलाः ॥ २४ ॥तानागतान्समालोक्य भयार्तान्भूपतिस्तदा ॥ पप्रच्छ किं भयं कस्मान्मां ब्रुवंतु समागताः॥ २५॥ नाहं बिभेमि देवेभ्यो राक्षसेभ्यश्च रक्षकाः ॥ कस्माद्भयं समुत्पन्नं तद् ब्रुवंतु ममाग्रतः ॥२६॥ हन्मि चैकेन बाणेन तं शत्रुं दुर्भगं किल यो मेऽरातिः समुत्पन्नो लोके पापमतिः खलः ॥ २७ ॥ देवो वा दानवो वाऽपि तन्निहन्मि शरैः शितैः ॥ क्व तिष्ठति कियद्रूपः कियद्बलसमन्वितः ॥ २८ ॥

रक्षा करो यह कहकर आर्त नाद करने लगे ॥२४॥ तब भूपति उन भयार्त रक्षकोंको देखकर पूछने लगे तुम किसके भयसे इतने कातर होते हो सो तुम मुझसे सत्य कहो ॥ २५ ॥ हे रक्षकवृन्द ! मैं देवता अथवा राक्षसोंकाभी भय नहीं करता, अतएव किस मनुष्यसे तुमको भय उत्पन्न हुआ है वह मुझसे कहो ॥ २६ ॥ जो पापमति खल इस लोकमें मेरा शत्रु होकर आया है मैं उस दुर्भाग्य शत्रुको एक बाणसेही यमसदनमें भेजूँगा इसमें संदेह नहीं है ॥ २७ ॥ उस शत्रुका रूप किस प्रकार है अथवा उसके बलका कितना परिमाण है, और इस समय वह किस स्थानमें स्थिति करता है? यह शीघ्र कहो. यह शत्रु देव हो अथवा दानव हो इस समय बाणोंसे उसका संहार करूंगा ॥ २८ ॥

मालियोंने कहा हे महाराज ! वह शंकर देव दानव अथवा यक्ष अथवा किन्नर नहीं है एक महाकायशूकरने वनमें आकर प्रवेश किया है ॥ २९ ॥ अत्यंत वेगवान् वह शूकर दाँतोंसे सम्पूर्ण शोभायमान पुष्प वृक्षोंको जडसहित उखाडता है अधिक क्या कहें वह सब वनको छिन्नभिन्न करे डालता है ॥ ३० ॥ हे महाराज ! हमने उसके बाण लाठी और पत्थरोंसे बहुत प्रहार किया तथापि वह किसीसे न डरा बरन् वह हमको विनाश करनेके लिये दौडा ॥ ३१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! उनके इस प्रकार वचन सुन राजा अत्यंत क्रोधित हुए और शीघ्र घोडेपर चढ उपवनकी ओर गये ॥ ३२ ॥ वह जिस समय उपवनको चले उस समय सादी सवार निषादी हाथीपर चढनेवाले रथी और पैदल संपूर्ण सेना उनके पीछे पीछे चली ॥ ३३ ॥ राजाने वहाँ जायकर

मालाकारा ऊचुः ॥ न देवो न च दैत्योऽस्ति न यक्षो न च किन्नरः ॥ कश्चित्कोलो महाकायो राजंस्तिष्ठति कानने ॥ २९ ॥ पुष्पवृक्षा
नतिमृदून्दंतेनोन्मूलयत्यसौ ॥ विदीर्णं तद्वनं सर्वं सूकरेणातिरंहसा ॥ ३० ॥ विशिखैस्ताडितोऽस्माभिर्दृषद्भिर्लकुटैस्तथा ॥ न बिभेति
महाराज हंतुमस्मानुपाद्रवत् ॥ ३१ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तेषां राजा कोपसमाकुलः ॥ अश्वमारुह्य तरसा जगामोपवनं प्रति
॥३२॥ सैन्येन महता युक्तो गजाश्वरथसंयुतः ॥ पदातिवृंदसहितः प्रययो वनमुत्तमम् ॥३३॥ तत्रा पश्यन्महाकोलं घुर्घुरंतं भयानकम् ॥
वनं भग्नं च संवीक्ष्य राजा क्रोधयुतोऽभवत ॥३४॥ चापे बाणं समारोप्यविकृष्य च शरासनम् ॥ तं हंतुं सूकरं पापं तरसा समुपाक्रमत्
॥ ३५ ॥ समालोक्य च राजानं चापहस्तं रुषाऽऽकुलम् ॥ संमुखोऽभ्यद्रवत्तूर्णं कुर्वञ्छब्दं सुदारुणम् ॥३६॥ तमायांतं समालोक्य वराहं
विकृताननम् ॥ मुमोच विशिखं तस्मिन्हंतुकामो महीपतिः ॥३७॥ वंचयित्वाऽथ तद्बाणं सूकरस्तरसा बलात् ॥ निर्जगाम महावेगात्तमु
ल्लंघ्य नृपं तदा ॥ ३८ ॥ गच्छंतं तं समालोक्य राजा कोपसमन्वितः ॥ मुमोच विशिखांस्तीक्ष्णां श्चापमाकृष्य यत्नतः ॥ ३९ ॥

घुर्घुराते हुए भयंकर विशालकाय उस शूकरको देखा और वनकी भग्नावस्था देखकर अत्यंत क्रोधयुक्त हुए ॥ ३४ ॥ तब उन्होंने शरासन खैंच बाण चढाय उस शूकरको मारनेके लिये आक्रमण किया ॥ ३५ ॥ वह शूकर राजाको धनुषबाण धारणपूर्वक अत्यंत क्रोधसे भरे हुए आता देखकर घोर शब्द करते करते शीघ्र राजाकी ओर चला ॥ ३६ ॥ उस भीमकाय शूकरको मुँह फैलाये आता हुआ देखकर राजा उसके मारनेकी इच्छासे उसके ऊपर शर वर्षण करने लगे ॥ ३७ ॥ तब वह शूकर शीघ्र उन संपूर्ण बाणोंको विफलकर तत्काल अत्यंत वेगसहित बलपूर्वक राजाको उलांघता हुआ निकला ॥ ३८ ॥ उसके चले जानेपर राजा क्रोधके वशीभूत हो अत्यंत यत्नसहित धनुष खैंचकर बाण छोडने लगे ॥ ३९ ॥

उस काल वह शूकर राजाको कभी दिखाई देता और कभी छिप जाता था और अनेक प्रकारका शब्द करता हुआ भागा ॥ ४० ॥ राजा हरिश्चन्द्रने भी अत्यंत क्रोधित हो शरासन खैंच वायुके समान वेगशाली घोडेपर चढ़ उसके पीछे दौडे ॥ ४१ ॥ तब संपूर्ण सैन्यने इधर उधर वनमें प्रवेश किया राजा अकेले ही उस भागते हुए शूकरके पीछे पीछे दौडे ॥ ४२ ॥ मध्याह्न काल उपस्थित होनेपर राजा एक विजनवनमें पहुँचे उस समय उनका वाहन थक गया था और वह भी भूँख प्याससे कातर हो गये थे ॥ ४३ ॥ शूकरके छिप जानेपर राजा घोर निबिड वनमें मार्ग भूल दीन भावसे चिंता करने लगे ॥ ४४ ॥ उन्होंने मनमें विचारा कि, मैं क्या करूं और कहां जाऊं ? इस घोर वनमें मेरा कोई सहायक नहीं है विशेषकर जानेका मार्ग नहीं जानता

क्षणं दृष्टिपथं राज्ञः क्षणं चादर्शनं गतः ॥ कुर्वन्बहुविधारावं सूकरः समुपाद्रवत् ॥ ४० ॥ हरिश्चंद्रोऽतिकुपितो मृगस्यानुजगाम ह ॥ अश्वेन वायुवेगेन विकृष्य च शरासनम् ॥ ४१ ॥ इतस्ततस्ततः सैन्यमगमच्च वनांतरम्॥एकाकी नृपतिः कोलं व्रजंतं समुपाद्रवत् ॥४२॥ मध्याह्नसमये राजा संप्राप्तो विजने वने ॥ तृषितः क्षुधितोऽत्यर्थं बभूव श्रांतवाहनः ॥ ४३ ॥ सूकरोऽदर्शनं प्राप्तो राजा चिंतातुरोऽभवत् ॥ मार्गभ्रष्टोऽतिविपिने दारुणे दीनवत्स्थितः ॥ ४४ ॥ किं करोमि क्वगच्छामि न सहायोऽस्ति मे वने ॥ अज्ञातस्वपथः कुत्र व्रजामीति व्यचिंतयत् ॥ ४५ ॥ एवं चिंतयतस्तत्र विपिने जनवर्जिते ॥ राजा चिंतातुरोऽपश्यन्नदीं सुविमलोदकाम् ॥ ४६ ॥ ॥ वीक्ष्य तां मुदितोराजा पाययित्वा तुरंगमम् ॥ अश्वादुत्तीर्य विमलं पपौ पानीयमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ जलं पीत्वा नृपस्तत्र सुखमाप महीपतिः ॥ इयेष नगरं गंतुं दिग्भ्रमेणातिमोहितः ॥ ४८ ॥ विश्वामित्रस्तु संप्रातो वृद्धब्राह्मणरूपधृक् ॥ ननाम वीक्ष्य राजा तं प्रीतिपूर्वं द्विजोत्तमम् ॥ ४९ ॥ तमुवाच गाधिराजः प्रणमंतं नृपोत्तमम् ॥ स्वस्ति तेऽस्तु महाराज किमर्थमिह चागतः ॥ ५० ॥

इस समय कहां जाऊं ॥ ४५ ॥ इस प्रकार चिंता करते करते राजाने उस जनशून्य वनमें सहसा एक स्वच्छ जलवाली नदी देखी ॥ ४६ ॥ उस नदीको देखकर राजा प्रसन्न हुए और फिर घोड़ेसे उतर स्वयं निर्मल जलपानकर घोडेको भी जल पिलाया ॥ ४७ ॥ वह नरपालक जलपान कर स्वस्थ हुए और तिसकाल दिग्भ्रमसे अत्यंत मोहित होनेपर भी नगरके जानेकी इच्छा की ॥ ४८ ॥ इसी समय विश्वामित्र वृद्धब्राह्मण का रूप धारणपूर्वक वहां आकर उपस्थित हुए राजाने उन द्विजवरको देखकर भक्तिसहित प्रणाम किया ॥ ४९ ॥ विप्रवेषधारी विश्वामित्रने उन प्रणाम करते हुए राजा हरिश्चन्द्रसे कहा हे महाराज ! आपका मंगल हो आप किस लिये इस स्थानमें आये हैं ॥ ५० ॥

हे महाराज ! इस विजनवनमें आपका क्या प्रयोजन है ? आप सावधान होकर मुझसे सम्पूर्ण वृत्तांत कहिये ॥ ५१ ॥ राजाने कहा हे द्विजवर ! एक विशालकाय महाबलवान् शूकरने मेरे पुष्पवनमें प्रवेशकर कोमल सम्पूर्ण पुष्पपादपोंको एकवार ही तोड डाला है ॥ ५२ ॥ मैं उसी दुष्ट शूकरको निवारण करनेके लिये धनुष धारणकर सेनासहित नगरसे निकला था ॥ ५३ ॥ वह वेगवान् पापिष्ठ मायावी शूकर मेरी दृष्टिसे छिपकर कहीं चला गया है मैं उसके पीछे पीछे दौड़ता हुआ इस स्थानमें आया हूं इस समय मेरी सेना कहाँ चली गई है यह मैं नहीं जानता ॥ ५४ ॥ हे मुनिवर ! मैं सैन्यहीन क्षुधित और तृषित होकर इस स्थानमें आया हूं मैं नगरका मार्ग नहीं जानता और सैनिक लोग किस मार्गको गये हैं यह भी मैं नहीं जानता ॥ ५५ ॥ हे विभो !

एकाकी विजने राजन्किं चिकीर्षितमत्र ते ॥ ब्रूहि सर्वं स्थिरो भूत्वा कारणं नृपसत्तम ॥ ५१ ॥ राजोवाच ॥ सूकरोऽतिमहाकायो बलवान्पुष्पकाननम् ॥ समुपेत्य ममर्दाशु कोमलान्पुष्पपादपान् ॥ ५२ ॥ तं निवारयितुं दुष्टं करे कृत्वा च कार्मुकम् ॥ ससैन्योऽहं स्वनगरान्निर्गतो मुनिसत्तम ॥ ५३ ॥ गतोऽसौ दृक्पथात्पापो मायावी क्वापि वेगवान् ॥ पृष्ठतोऽहमपि प्राप्तः सैन्यं क्वापि गतं मम ॥ ५४ ॥ क्षुधितस्तृषितश्चाहं सैन्यभ्रष्ट स्त्विहागतः ॥ नजाने पुरमार्गं च तथा सैन्यगतिं मुने ॥ ५५ ॥ पंथानं दर्शय विभो व्रजामि नगरं प्रति ॥ ममात्र भाग्ययोगेन प्राप्तस्त्वं विजने वने ॥ ५६ ॥ अयोध्याधिपतिश्चाहं हरिश्चंद्रोऽतिविश्रुतः ॥ राजसूयस्य कर्ता च वांछितार्थप्रदः सदा ॥ ५७ ॥ धनेच्छा यदि ते ब्रह्मन्यज्ञार्थं द्विजसत्तम ॥ आगंतव्यमयोध्यायां दास्यामि विपुलं धनम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा भूपतेः कौशिको मुनिः ॥ प्रहस्य प्रत्युवाचेदं हरिश्चंद्रं तदा नृपः ॥ १ ॥ राजंस्तीर्थमिदं पुण्यं पावनं पापनाशनम् ॥ स्नानं कुरु महाभाग पितृणां तर्पणं तथा ॥ २ ॥

मेरे भाग्यसे ही आप इस विजन वनमें उपस्थित हुए हैं इस समय मैं नगरको जाऊंगा आप मार्ग बताइये ॥ ५६ ॥ मैं अयोध्याका अधिपति हरिश्चन्द्र हूं मैंने राजसूय यज्ञ किया है अतएव मुझसे जो जिसकी प्रार्थना करता है मैं उसको वही देता हूं यह सब जानते हैं ॥ ५७ ॥ हे द्विजवर ! आपकी यज्ञके लिये यदि धनकी इच्छा हो तो मेरे संग अयोध्याको चलिये फिर मैं आपको बहुत धन दूंगा ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ व्यासजीने कहा हे नरनाथ ! महर्षि कौशिकने नरपति हरिश्चन्द्रके इस प्रकार वचन सुन फिर हँसकर उनसे कहा ॥ १ ॥ हे राजन् ! यह तीर्थ अत्यंत पवित्र है इसमें स्नान करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होकर पुण्य उदय होता है अतएव हे महाभाग ! आप इसमें स्नानकर पितृगणोंका तर्पण कीजिये ॥ २ ॥

हे नरनाथ ! इस समय अत्यंत पुण्यकाल उपस्थित है अतएव आप इस पवित्र पुण्यतीर्थमें स्नानकर अपनी शक्तिके अनुसार दान कीजिये ॥३॥ स्वायम्भुवमनुने कहा है जो पुरुष महापुण्यदायक तीर्थमें उपस्थित होकर स्नानदानादि विना किये जाता है वह मनुष्य आत्माकी वञ्चना करता है सुतरां वह आत्मघाती होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४ ॥ अतएव हे राजन् ! आप अपनी शक्तिके अनुसार इस अत्युत्तमतीर्थमें पुण्यकार्य सम्पादन कीजिये इसके उपरान्त मैं आपको मार्ग बताऊंगा तभी आप अयोध्याको जायंगे ॥ ५ ॥ हे काकुत्स्थ ! फिर आपके दानसे परितुष्ट होकर मैं आपको मार्ग बतानेके लिये आपके संग चलूंगा यह स्थिर किया है ॥ ६ ॥ राजाने महर्षिके यह छलयुक्त वचन सुनकर अपने देहसे सम्पूर्ण वस्त्र उतारे और वृक्षमें घोडेको बांध विधिपूर्वक स्नान करनेके लिये

कालः शुभतमोऽस्तीह तीर्थे स्नात्वा विशांपते ॥ दानं ददस्व शक्त्याऽत्र पुण्यतीर्थेऽतिपावने ॥ ३ ॥ प्राप्य तीर्थं महापुण्यमस्नात्वा यस्तु गच्छति ॥ स भवेदात्महा भूय इति स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥ तस्मात्तीर्थवरे राजन्कुरु पुण्यं स्वशक्तितः ॥ दर्शयिष्यामि मार्गं ते गंतासि नगरं ततः ॥ ५ ॥ आगमिष्याम्यहं मार्गदर्शनार्थं तवानघ ॥ त्वया सहाऽद्य काकुत्स्थ तव दानेन तोषितः ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा मुनेः कपटमंडितम् ॥ वासांस्युत्तार्य विधिवत्स्नातुमभ्याययौ नदीम् ॥ ७ ॥ बंधयित्वा हयं वृक्षे मुनिवाक्येन मोहितः ॥ अवश्यंभावियोगेन तद्वशस्तु तदाऽभवत् ॥ ८ ॥ राजा स्नानविधिं कृत्वा संतर्प्य पतृदेवताः ॥ विश्वामित्रमुवाचेदं स्वामिन्दानं ददामि ते ॥ ९ ॥ यदिच्छसि महाभाग तत्ते दास्यामि सांप्रतम् ॥ गावो भूमिं हिरण्यं च गजाश्वरथवाहनम् ॥ १० ॥ नादेयं मे किमप्यस्ति कृतमेतद्व्रतं पुरा ॥ राजसूये मखश्रेष्ठे मुनीनां सन्निधा वपि ॥ ११ ॥ तस्मात्त्वमिह संप्राप्तस्तीर्थेऽस्मिन्प्रवरे मुने ॥ यत्तेऽस्ति वांछितं ब्रूहिददामि तव वांछितम् ॥ १२ ॥

नदीके ओर चले ॥७॥ हे राजन् ! अवश्यम्भावि दैवयोगसे मुनिके वचनोंसे इतने मोहित हो गयेथे कि उस समय उनके एकबार ही वशीभूत होगये ॥ ८ ॥ फलतः उन्होंने यथाविधि स्नान कार्य समापनपूर्वक देव और पितरोंका तर्पणकर विश्वामित्रसे कहा हे स्वामिन् ! आपको दान करता हूं ॥९॥ हे महाभाग ! गो भूमि स्वर्ण हाथी घोड़े रथ अथवा वाहन इत्यादि आप जिस किसीकी इच्छा करें मैं इस समय वही आपको दूंगा ॥ १० ॥ जिसको मैं न देसकूं ऐसी कोई वस्तु नहीं है पहले जब मैंने श्रेष्ठ राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया था उस समय मुनियोंके सामने यह व्रत अवलम्बन किया है ॥ ११ ॥ अतएव हे मुनिवर ! आपभी इस प्रधान तीर्थमें उपस्थित हुए हैं इस समय जो आपका अभिलषित है वह कहिये मैं आपको वांछित वस्तु प्रदान करता हूं ॥ १२ ॥

विश्वामित्रने कहा हे राजन् ! आपकी कीर्ति पृथ्वीतलमें अत्यंत फैली हुई है, विशेषकर आपके समान दाता पृथ्वीमें दूसरा कोई नहीं है मैंने पूर्वमें सुना है वसिष्ठमुनिने कहा है कि ॥ १३ ॥ त्रिशंकुके पुत्र सूर्यवंशीय महीपति हरिश्चन्द्र ही इस पृथ्वीतलमें राजाओंके अग्रगण्य अद्वितीय और उदारस्वभाव हैं उनके समान दाता नरपति पृथ्वीमें दूसरा कोई नहीं हुआ और होगा भी नहीं. अतएव हे पार्थिव ! मेरे पुत्रका विवाह उपस्थित है इसलिये अब आपसे प्रार्थना करता हूं ॥ १४ ॥ १५ ॥ आप उस पुत्र विवाहके लिये धन दीजिये राजाने कहा हे विप्रवर ! आप विवाहकार्य कीजिये मैं आपका प्रार्थित दान दूंगा ॥ १६ ॥ अधिक क्या आप जिस धनकी इच्छा करें मैं वही आपको यथेष्ट प्रदान करूंगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है । व्यासजीने कहा हे महाराज !

विश्वामित्र उवाच ॥ मया पूर्वं स्मृता राजन्कीर्तिस्ते विपुला भुवि ॥ वसिष्ठेन च संप्रोक्ता दाता नास्ति महीतले ॥ १३ ॥ हरिश्चन्द्रो नृपश्रेष्ठः सूर्यवंशे महीपतिः ॥ तादृशो नृपतिर्दाता न भूतो न भविष्यति ॥ १४ ॥ पृथिव्यां परमोदारस्त्रिशंकुतनयो यथा ॥ अतस्त्वां पार्थयाम्यद्य विवाहो मेऽस्ति पार्थिव ॥ १५ ॥ पुत्रस्य च महाभाग तदर्थं देहि मे धनम् ॥ राजोवाच ॥ विवाहं कुरु विप्रेन्द्र ददामि प्रार्थितं तव ॥ १६ ॥ यदिच्छसि धनं कामं दाता तस्यास्मि निश्चितम् ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्तः कौशिकस्तेन वंचनातत्परो मुनिः ॥ १७ ॥ उद्भाव्य मायां गाधर्वीं पार्थिवायाप्यदर्शयत् ॥ कुमारः सुकुमारश्च कन्या च दशवार्षिकी ॥ १८॥ एतयोः कार्यमप्यद्य कर्तव्यं नृपसत्तम ॥ राजसूयाधिकं पुण्यं गृहस्थस्य विवाहतः ॥ १९ ॥ भविष्यति तवाद्यैव विप्रपुत्र विवाहितः ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा मायया तस्य मोहितः ॥ २० ॥ तथेचि च प्रतिज्ञाय नोवाचाल्पं वचस्तथा ॥ तेन दर्शितमार्गोऽसौ नगरं प्रतिजग्मिवान् ॥ २१ ॥

कौशिकमुनि उनके इस प्रकार वचन सुनतेही उनको छलनेके लिये तत्पर हुए ॥१७॥ और गान्धर्वी माया प्रगटकर एक सुन्दराकृति कुमार और दशवर्षीय एक कन्या उत्पन्न की ॥ १८ ॥ और भूपालको उन्हें दिखाकर कहा हे नृपसत्तम ! अब इनका विवाहकार्य सम्पादन करना होगा हे महाराज ! गृहस्थका विवाह करनेपर राजसूययज्ञसे अधिक फल प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ अतएव ब्राह्मणके पुत्रका विवाह करनेसे कभी आपको वह फल होगा राजा उनकी मायासे मोहित हुए थे इस कारण यह वचन सुनते ही ॥ २० ॥ यही होगा ऐसा कहकर प्रतिज्ञा की परन्तु उसके विरुद्धमें सामान्यमात्र भी वचन न कहे अनंतर विश्वामित्रके मार्ग दिखलानेपर राजा नगरीकी ओर चले ॥ २१ ॥

विश्वामित्रने भी राजाको छलकर अपने आश्रमको प्रस्थान किया इसके उपरांत नरपति अग्निशालामें उपस्थित हुए इसी समय विश्वामित्र उनके समीप उपस्थित हो कहने लगे हे राजन् विवाह विधि निष्पन्न हुई है ॥२२॥ अतएव आप अब इस वेदीमें मेरा जो अभिलषित है वह दीजिये. राजाने कहा हे द्विजवर ! आपका वांछित क्या है सो कहिये ॥ २३ ॥ अब मैं यशका अभिलाषी हूं इस कारण संसारमें मुझे जो अदेय है आप यदि उसकी भी प्रार्थना करें तो भी मैं वह आपको दूंगा. इसमें सन्देह नहीं. जो मनुष्य विभवका अधिकारी होकर भी ॥ २४ ॥ परलोकका सुखकर पवित्र यश उपार्जन नहीं करता उसका जीवन निष्फल है इसमें सन्देह नहीं विश्वामित्रने कहा हे महाराज ! आप इस पवित्र वेदीमें छत्र चामरादियुक्त और हाथी घोड़े रथ एवं पदातिसहित

विश्वामित्रोऽपि राजानं वंचयित्वाऽऽश्रमं ययौ ॥ कृतोद्वाहविधिस्तावद्विश्वामित्रोऽब्रवीन्नृपम् ॥ २२ ॥ वेदीमध्ये नृपाद्य त्वं देहि दानं यथेप्सितम् ॥ राजोवाच ॥ किं तेऽभीष्टं द्विज ब्रूहि ददामि वांछितं किल ॥ २३ ॥ अदेयमपि संसारे यशः कामोऽस्मि सांप्रतम् ॥ व्यर्थं हि जीवितं तस्य विभवं प्राप्य येन वै ॥ २४ ॥ नोपार्जितं यशः शुद्धं परलोकसुखप्रदम् ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ राज्यं देहि महाराज वराय सपरिच्छदम् ॥ २५ ॥ गजाश्वरथरत्नाढ्यं वेदीमध्येऽतिपावने ॥ व्यास उवाच ॥ मोहितो मायया तस्य श्रुत्वा वाक्यं मुनेर्नृपः ॥ २६ ॥ दत्तमित्युक्तवान्राज्यमविचार्य यदृच्छया ॥ गृहीतमितितं प्राह विश्वामित्रोऽतिनिष्ठुरः ॥ २७ ॥ दक्षिणां देहि राजेंद्र दानयोग्यां महामते ॥ दक्षिणारहितं दानं निष्फलं मनुरब्रवीत् ॥ २८ ॥ तस्माद्दानफलाय त्वं यथोक्तां देहि दक्षिणाम् ॥ इत्युक्तस्तु तदा राजा तमुवाचातिविस्मितः ॥ २९ ॥

रत्नपरिपूर्ण राज्य इस वरको दीजिये व्यासजीने कहा हे राजन् ! महाराज हरिश्चन्द्र उनकी मायासे मोहित हो गये थे इस कारण मुनिके वचन सुनते ही ॥ २५ ॥ २६ ॥ विना विचारे अपनी इच्छानुसार कहा हे मुनिवर ! आपकी प्रार्थनासे यह विशाल राज्य प्रदान करता हूं. तब अत्यंत निष्ठुर विश्वामित्रने उनसे कहा हे राजेन्द्र मैंने भी ग्रहण किया ॥ २७ ॥ किंतु हे महामते ! आप इस समय दानके उपयुक्त दक्षिणा प्रदान कीजिये मनुने कहा है कि विना दक्षिणाके दान निष्फल होता है ॥ २८ ॥ अतएव आप दानका फल प्राप्त करनेके लिये यथाविहित दक्षिणा दीजिये. राजा उनके इसप्रकार वचन सुनते ही अत्यंत विस्मित हो कहने लगे ॥ २९ ॥

हे प्रभो! अब आपको कितना धन देना होगा सो आप कहिये हे साधो! जितना दक्षिणाका मूल देना होगा सो आप कहिये ॥ ३० ॥ हे तपोधन! आप व्याकुल न हूजिये मैं दान पूर्ण करनेके लिये वह आपको दूंगा इसमें सन्देह नहीं विश्वामित्र यह सुनकर महीपतिसे कहने लगे ॥ ३१ ॥ सम्प्रति ढाईभार सुवर्णदक्षिणास्वरूप प्रदान कीजिये. हे महाराज! तब राजा हरिश्चंद्रने अत्यंत विस्मित हो यही दूंगा ऐसा कहकर अंगीकार किया ॥ ३२ ॥ और चिंतित चित्तसे घोडेपर चढ़ शीघ्र जानेकेलिये प्रस्थित हुए इसीसमय मार्ग भूलेहुये सैनिक लोग उन्हें ढूंढते ढूंढते उनके समीप आकर उपस्थित हुए तब वह महीपतिको देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए और उनको चिंतातुर देखकर व्यग्रभावसे उनका स्तव करने लगे ॥ ३३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! उनके

ब्रूहि किं यद्धनं तुभ्यंदेयं स्वामिन्मयाऽधुना ॥ दक्षिणानिष्क्रयं साधो वद यावत्प्रमाणकम् ॥ ३० ॥ दानपूर्त्यैं प्रदास्यामि स्वस्थो भव तपोधन ॥ विश्वामित्रस्तु तच्छ्रुत्वा तमाह मेदिनीपतिम् ॥ ३१ ॥ हेमभारद्वयं सार्धं दक्षिणां देहि सांप्रतम् ॥ दास्यामीति प्रतिश्रुत्य तस्मै राजाऽतिविस्मितः ॥ ३२ ॥ तदैव सैनिकास्तस्य वीक्षमाणाः समानताः ॥ दृष्ट्वा महीपतिं व्यग्रं तुष्टुवुस्ते मुदाऽन्विताः ॥ ३३ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रुत्वा तेषां वचो राजा नोक्त्वा किंचिच्छुभा शुभम् ॥ चिंतयन्स्वकृतं कर्म ययावंतः पुरे ततः ॥ ३४ ॥ किं मया स्वीकृतं दानं सर्वस्वं यत्समर्पितम् ॥ वंचितोऽहं द्विजेनात्र वने पाटच्चरैरिव ॥ ३५ ॥ राज्यं सोपस्करं तस्मै मया सर्वं प्रतिश्रुतम् ॥ भारद्वयं सुवर्णस्य सार्धं च दक्षिणा पुनः ॥ ३६ ॥ किं करोमि मतिभ्रंष्टा न ज्ञानं कपटं मुनेः ॥ प्रतारितोऽहं सहसा ब्राह्मणेन तपस्विना ॥ ३७ ॥ न जाने दैवकार्यं वै हा दैवकिंभविष्यति ॥ इति चिंता परो राजा गृहं प्राप्तोऽतिविह्वलः ॥ ३८ ॥

वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने अच्छा वा बुरा कुछ भी न कहा परंतु अपने किये हुए कार्यके विषयकी चिंता करते करते अंतःपुरमें प्रवेश किया ॥ ३४ ॥ हाय! मैंने किस दानके करनेको स्वीकार किया इस समय जो कि, सर्वस्वही समर्पण किया वनमें चोरके समान इन द्विजवरसे मैं इस विषयमें छला गया! ॥ ३५ ॥ वस्त्र सहित सम्पूर्ण राज्य इनको दूंगा ऐसा कहकर प्रतिज्ञा की है, अब उनको दक्षिणा स्वरूप ढाईभार सुर्वणभी देना होगा ॥ ३६ ॥ क्या करूं मेरी बुद्धि नष्ट हो गई थी इसलिये मैं मुनिकी कपटता नहीं जान सका इससे ही इस तपस्वी ब्राह्मणसे धोखा खाया ॥ ३७ ॥ दैवका कार्य जानना साध्य नहीं है हा दैव! इस समय मैं क्या करूं? अत्यंत विह्वल हो इस प्रकार चिंता करते करते राजाने अन्तःपुरके गृहमें प्रवेश किया ॥ ३८ ॥

---

१ एकभार

तब रानी स्वामीको चिंतामें निमग्न देखकर उनसे चिंताका कारण पूँछने लगी. हे प्रभो ! आप क्यों विमन हुए हैं ? सम्प्रति आपकी चिंताका क्या विषय है, सो आप कहिये ॥ ३९ ॥ हे राजेंद्र ! पुत्र वनसे गृहमें आ गया है पूर्वमें राजसूय यज्ञ भी किया है अतएव किस कारणसे शोक करते हो ? आप उस शोकका कारण कहिये ॥ ४० ॥ आपका बलवान् वा दुर्बल कोई शत्रु कहीं भी वियमान् नहीं है केवल वरुण ही आपसे कुपित थे वह भी इस समय भलीभांति सन्तुष्ट हुए हैं अतएव पृथ्वीतलमें आपका शेषकार्य कुछ नहीं है ॥४१॥ हे नृपवर ! चिंतामें दिन दिन देह क्षीण होती है अतएव चिंताके समान मृत्युका कारण दूसरा कुछ नहीं है आप बुद्धिमान् हो इस कारण चिंताको त्यागकर सावधान हूजिये ॥ ४२ ॥ प्रियतमाके प्रीति सहित इस प्रकार वचन कहनेपर राजाने

चिन्तापरं पतिं दृष्ट्वा राज्ञी पप्रच्छ कारणम् ॥ किं प्रभो विमना भासि का चिंता ब्रूहि सांप्रतम् ॥ ३९ ॥ वनात्पुत्रः समायातो राजसूयः कृतः पुरा ॥ कस्माच्छोचसि राजेंद्र शोकस्य कारणं वद ॥ ४० ॥ नारातिर्विद्यते क्वापि बलवान्दुर्बलोऽपि वा ॥ वरुणोऽपि सुसंतुष्टः कृतकृत्योऽसि भूतले ॥ ४१ ॥ चिंतया क्षीयते देहो नास्ति चिंतासमा मृतिः ॥ त्यज्यतां नृपशार्दूल स्वस्थो भव विचक्षण ॥ ४२ ॥ तन्निशम्य प्रिया वाक्यं प्रीतिपूर्वं नराधिपः ॥ प्रोवाच किंचिच्चिंतायाः कारणं च शुभाशुभम् ॥ ४३ ॥ भोजनं न चकारासौ चिंताविष्टस्तथा नृपः ॥ सुप्त्वाऽपि शयने शुभ्रे लेभे निद्रां न भूमिपः ॥ ४४ ॥ प्रातरुत्थाय चिंतार्तो यावत्संध्यादिका क्रियाः ॥ करोतिनृपति स्तावद्विश्वामित्रः समागतः ॥ ४५ ॥ क्षत्त्रा निवेदितो राज्ञे मुनिः सर्वस्वहारकः ॥ आगत्योवाच राजानं प्रणमंतं पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ राजंस्त्यजस्व राज्यं मे देहि वाचा प्रतिश्रुतम् ॥ सुवर्णं स्पृश राजेंद्र सत्यवाग्भव सांप्रतम् ॥४७॥

उसे सुन शुभाशुभ चिंताका कारण उससे यथाकथञ्चित् कठिनतासे कहा ॥ ४३ ॥ किंतु उन महाराजने चिन्तामें निमग्न होकर भोजन न किया और शुभ्र शय्यापर शयन करकेभी निद्रा प्राप्त न कर सके ॥ ४४ ॥ फिर प्रातःकालके समय उठकर चिंतित चित्तसे जब संध्यादि कार्य सम्पादन कर रहे थे उसी समय उस स्थानमें विश्वामित्र आकर उपस्थित हुए ॥४५॥ द्वारपालके मुनिकी आगमवार्त्ता निवेदन करनेपर राजाने उनको आनेकी अनुमति प्रदान की. अनन्तर वह सर्वस्वहारक विश्वामित्र उनके समीप उपस्थित हो वारंवार प्रणाम करते हुए राजासे कहने लगे ॥ ४६ ॥ मुनि बोले हे राजन् ! आप अपना राज्य परित्याग कीजिये और मुझको जो सुवर्ण दक्षिणा देनेकी प्रतिज्ञा की है वह देकर इस समय यथार्थही सत्यवादी हूजिये ॥ ४७ ॥

हरिश्चन्द्रने कहा हे प्रभो ! मैंने आपको अपना विशाल राज्य प्रदान किया है अतएव मेरा राज्य आपका ही हुआ है इस कारण मैं इस राज्यको परित्यागकर अन्य किसी स्थानमें जाता हूं हे कौशिक ! आप इस विषयमें कुछ भी चिन्ता न कीजिये ॥ ४८ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपने विधिके अनुसार ही मेरा सर्वस्व ग्रहण किया है अतएव मैं इस समय दक्षिणा देनेमें अत्यंत असमर्थ हूं ॥ ४९ ॥ यदि कालवश फिर मुझको धन प्राप्त हो तो तत्काल आपकी दक्षिणा दूंगा ॥ ५० ॥ नरपति हरिश्चन्द्र उनसे यह बात कह शैव्यानाम्नी भार्या और पुत्र रोहितसे कहने लगे मैंने अग्निहोत्र शालामें यह विस्तीर्ण राज्य इनको दान किया है ॥ ५१ ॥ हाथी घोडे रथ स्वर्ण और रत्न राजीके सहित सम्पूर्ण राज्य प्रदान किया है अधिक क्या हमारे तीन शरीरोंके अतिरिक्त समस्तही इनको समर्पण किया है

हरिश्चंद्र उवाच ॥ स्वामिन्राज्यं तवेदं मे मया दत्तं किलाधुना ॥ त्यक्त्वाऽन्यत्र गमिष्यामि मा चिंतां कुरु कौशिक ॥ ४८ ॥ सर्वस्वं मम ते ब्रह्मन्गृहीतं विधिवद्विभो ॥ सुवर्णदक्षिणां दातुमशक्तो ह्यधुना द्विज ॥ ४९ ॥ दानं ददामि ते तावद्यावन्मे स्याद्धनागमः ॥ पुनश्चे त्काल योगेन तदा दास्यामि दक्षिणाम् ॥ ५० ॥ इत्युक्त्वा नृपतिः प्राह पुत्रं भार्यां च माधवीम् ॥ राज्यमस्मै प्रदत्तं वै मया वेद्यां सुविस्तरे ॥ ५१ ॥ हस्त्यश्वरसंयुक्तं रत्नहेमसमन्वितम् ॥ त्यक्त्वा त्रीणि शरीराणि सर्वं चास्मै समर्पितम् ॥ ५२ ॥ त्यक्त्वाऽयोध्यां गमिष्यामि कुत्रचिद्वनगह्वरे ॥ गृह्णात्विदं मुनिः सम्यग्राज्यं सर्वसमृद्धिमत् ॥ ५३ ॥ इत्याभाष्य सुतं भार्यां हरिश्चंद्रः स्वमंदिरात् ॥ विनिर्गतः सुधर्मात्मा मानयंस्तं द्विजोत्तमम् ॥ ५४ ॥ व्रजंतं भूपतिं वीक्ष्य भार्यापुत्रावुभावपि ॥ चिंतातुरौ सुदीनास्यौ जग्मतुः पृष्ठतस्तदा ॥ ५५ ॥ हाहाकारो महानासीन्नगरे वीक्ष्य तांस्तथा ॥ चुक्रुशुः प्राणिनः सर्वे साकेतपुरवासिनः ॥ ५६ ॥ हा राजन्किं कृतं कर्म कुतः क्लेशः समागतः ॥ वंचितोऽसि महाराज विधिनाऽपंडितेन ह ॥ ५७ ॥

॥ ५२ ॥ यह महर्षिवर सर्वसमृद्धि सम्पन्न इस राज्यको भलीभांति ग्रहण करें हम अयोध्याको छोड किसी वन अथवा पर्वतकी गुफामें जायँगे ॥ ५३ ॥ अत्यंत धर्मिष्ठ राजा हरिश्चन्द्र भार्या और पुत्रसे यह बात कह और उन द्विजवरका संमान कर अपने घरसे निकले ॥ ५४ ॥ तब भूपतिको जाता हुआ देखकर उनकी भार्या और पुत्र चिन्तासे कातर हो अत्यंत मलिन मुखसे उनके पीछे पीछे चले ॥ ५५ ॥ अयोध्यावासी सम्पूर्ण प्राणी उनको देखकर रोने लगे उसकाल नगरमें केवल घोर हाहाकार ध्वनि होने लगी ॥ ५६ ॥ हा राजन् ! आपने क्या कार्य किया ? कहांसे आपको यह क्लेश उपस्थित हुआ हे महाराज ! गुणदोष न जाननेवाले विधिने आपको छला है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५७ ॥

दे. भा. ॥५९॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारों वर्णही उन महीपतिको भार्या और महानुभाव पुत्रके सहित जाता हुआ देखकर दुःखप्रकाश करने लगे ॥ ५८ ॥ ब्राह्मण इत्यादि सम्पूर्ण पुरवासी लोग दुःखार्त्त हो उस व्यक्तिको धूर्त्त इत्यादि कटुवाक्य कह उस दुराचारी ब्राह्मणकी निन्दा करने लगे ॥ ५९ ॥ पृथ्वीपति उस नगरसे निकलकर जाते थे इसी समय विश्वामित्र उनके निकट उपस्थित हो उनसे निष्ठुर वचन कहने लगे ॥ ६० ॥ हे नरनाथ ! दक्षिणाका स्वर्ण देकर जाओ अथवा नहीं दूंगा यह बात कहो तो मैं दक्षिणाका स्वर्ण छोड़ दूं ॥ ६१ ॥ यदि आपके अन्तःकरणमें लोभ विद्यमान् हो तो सम्पूर्ण राज्यग्रहण करो हे राजन् ! आपने यदि यथार्थ ही दान किया है यह जानते हो तो आपने जो प्रतिज्ञा की है वह दीजिये ॥ ६२ ॥ गाधिनन्दन विश्वामित्र इस प्रकार कह

सर्वे वर्णास्तदा दुःखमाप्नुयुस्तं महीपतिम् ॥ विलोक्य भार्यया सार्धं पुत्रेण च महात्मना ॥ ५८ ॥ निनिंदुर्ब्राह्मणं तं तु दुराचारं पुरो
कसः ॥ धूर्तोऽयमिति भाषंतो दुःखार्ता ब्राह्मणादयः ॥ ५९ ॥ निर्गत्य नगरात्तस्माद्विश्वामित्रः क्षितीश्वरम् ॥ गच्छंतं तमुवाचेदं
समेत्य निष्ठुरं वचः ॥ ६० ॥ दक्षिणायाः सुवर्णं मे दत्त्वा गच्छ नराधिप ॥ नाहं दास्यामि वा ब्रूहि मया त्यक्तं सुवर्णकम् ॥ ६१ ॥
राज्यं गृहाण वा सर्वं लोभश्चेद्धृदि वर्तते ॥ दत्तं चेन्मन्यसे राज न्देहि यत्तत्प्रतिश्रुतम् ॥ ६२ ॥ एवं ब्रूवंतं गाधेयं हरिश्चंद्रो मही
पतिः ॥ प्रणिपत्य सुदीनात्मा कृतांजलिपुटोऽब्रवीत् ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥
हरिश्चंद्र उवाच ॥ अदत्त्वा ते हिरण्यं वै न करिष्यामि भोजनम् ॥ प्रतिज्ञा मे मुनिश्रेष्ठ विषादं त्यज सुव्रत ॥ १ ॥ सूर्यवंशसमुद्भूतः
क्षत्रियोऽहं महीपतिः ॥ राजसूयस्य यज्ञस्य कर्ता वाञ्छितदो नृषु ॥ २ ॥ कथं करोमि नाकारं स्वामिन्दत्त्वा यदृच्छया ॥ अवश्य
मेव दातव्यमृणं मे द्विजसत्तम ॥ ३ ॥

रहे थे इसी समय महीपति हरिश्चन्द्र अत्यंत दीन भावसे प्रणाम कर हाथ जोड उनसे कहने लगे ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे मुनिवर ! आपको दक्षिणाका स्वर्ग बिना दिये मैं भोजन नहीं करूंगा यही मेरी प्रतिज्ञा जानिये अतएव हे सुव्रते ! आप दक्षिणाके लिये विषाद त्याग कीजिये ॥१॥ मैं सूर्यवंशीय क्षत्रिय महीपति हरिश्चन्द्र हूं विशेषकर जबसे मैंने राजसूय यज्ञसम्पादन किया है तबसे जो मनुष्य मेरे निकट जिसकी प्रार्थना करता है मैं उसको वही देताहूं ॥ २ ॥ अतएव हे प्रभो ! मैं अपनी इच्छानुसार दान करके उसकी दक्षिणा न दूं यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? हे द्विजसत्तम मैं अवश्यही ऋण चुका दूंगा ॥ ३ ॥

आपकी इच्छानुसार स्वर्ण आवश्यही दूंगा अतएव आप सावधान हूजिये किंतु आप एक महीनेतक प्रतीक्षा कीजिये तो मैं धन प्राप्त करके आपको दे सकूंगा ॥ ४ ॥ विश्वामित्रने कहा हे राजन् ! राज्य कोष और बल इनसे ही धनका आगमन होता है आपसे वह सम्पूर्ण गया इस कारण फिर आपको धन कहांसे प्राप्त होगा ? ॥ ५ ॥ हे महीपाल ! धनकी आशा करना आपको वृथा है इस समय मैं क्या करूं ? आप निर्धन हैं अतएव मैं लोभके वशीभूत हो आपको किस प्रकार पीडित करूं ? ॥ ६ ॥ हे भूपाल ! आप "धन नहीं दे सकता' यह बात कहें तो मैं इस महती आशाको छोडकर इच्छानुसार जाऊँ ॥ ७ ॥ और आप भी " मेरे पास कुछ स्वर्ण नहीं है मैं आपको इस समय क्या दूं ,, यह बात कहकर भार्या और पुत्रके सहित इच्छानुसार जाइये ॥ ८ ॥

स्वस्थो भव प्रदास्यामि सुवर्णं मनसेप्सितम् ॥ कंचित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्प्राप्स्याम्यहं धनम् ॥ ४ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ कुतस्ते भविता राजन्धनप्राप्तिरतः परम् ॥ गतं राज्यं तथा कोशो बलं चैवाथ साधनम् ॥ ५ ॥ वृथाऽऽशा ते महीपाल धनार्थे किं करोम्यहम् ॥ निर्धनं त्वां च लोभेन पीडयामि कथं नृप ॥ ६ ॥ तस्मात्कथय भूपाल न दास्यामीति सांप्रतम् ॥ त्यक्त्वाऽऽशां महतीं कामं गच्छाम्यहमतः परम् ॥ ७ ॥ यथेष्टं व्रज राजेन्द्र भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ सुवर्णं नास्ति किं तुभ्यं ददामीति वदाधुना ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ गच्छन्वाक्यमिदं श्रुत्वा ब्राह्मणस्य च भूपतिः ॥ प्रत्युवाच मुनिं ब्रह्मन्धैर्यं कुरु ददाम्यहम् ॥ ९ ॥ मम देहोऽस्ति भार्यायाः पुत्रस्य च ह्यनामयः ॥ क्रीत्वा देहं तु तं नूनमृणं दास्यामि ते द्विज ॥ १० ॥ ग्राहकं पश्य विप्रेंद्र वाराणस्यां पुरि प्रभो ॥ दासभावं गमिष्यामि सदारोऽहं सपुत्रकः ॥ ११ ॥ गृहाण कांचनं पूर्णं सार्धभारद्वयं मुने ॥ मौल्येन दत्त्वा सर्वान्नः संतुष्टो भव भूधर ॥ १२ ॥

व्यासजीने कहा हे महाराज ! भूपतिने गमन कालके समय मुनिवर विश्वामित्रके इस प्रकार वचन सुनकर कहा हे ब्रह्मन् ! आप धैर्य अवलम्बन कीजिये मैं आपको दक्षिणा स्वर्ण दूंगा इसमें संदेह नहीं ॥ ९ ॥ हे द्विजवर ! भार्या पुत्र और मैं इन तीन जनोंकाही निरोग देह विद्यमान है सुतरां इनको बेंच कर अवश्यही आपका ऋण चुकाऊंगा ॥ १० ॥ हे विभो ! इस वाराणसी पुरीमें कोई ग्राहक विद्यमान है अथवा नहीं उसको ढूंढवाइये मैं इसी स्थानमें भार्या और पुत्रके सहित दासत्व स्वीकार करूंगा ॥ ११ ॥ हे मुने ! आप हम सबको बेंच उस मूल्यसे ढाई भार सुवर्ण ग्रहण कर हमारे प्रति प्रसन्न हूजिये ॥ १२ ॥

राजाने यह बात कह जिस स्थानमें शंकर प्रियतमा उमाके सहित स्वयं स्थिति करते हैं उसी वाराणसी पुरीको भार्या और पुत्रके सहित प्रस्थान किया ॥ १३ ॥
जिस पुरीके दर्शन करनेसे चित्तको आनन्द बढता है उस शोभायमान वाराणसी नगरीको देखकर राजाने कहा आज मैं कृतार्थ हुआ ॥ १४ ॥ अनन्तर
भागीरथीके तटपर जाय उसी स्थानमें स्नान किया फिर देवता और पितरोंका तर्पण एवं अभीष्ट देवताकी पूजा सम्पादन कर जानेका मार्ग देखनेकी
इच्छासे चारों ओर देखने लगे ॥ १५ ॥ भूपाल शोभायमान वाराणसी पुरीमें पहुँचकर मनमें विचार करने लगे कि यह पुरी मनुष्यसे पालित नहीं
है स्वयं शूलपाणि इसका पालन करते हैं अतएव इसमें वास करनेसे मेरा प्रदत्त राज्यमें वास करना नहीं होगा ॥ १६ ॥ तब नरपति दुःखसे अत्यन्त

इति ब्रुवञ्जगामाथ सह पत्न्या सुतान्विः ॥ उमया कांतया सार्धं यत्रास्ते शंकरः स्वयम् ॥ १३ ॥ तां दृष्ट्वा च पुरीं रम्यां मनसोह्ला
दकारिणीम् ॥ उवाच स कृतार्थोऽस्मि पुरीं पश्यन्सुवर्चसम् ॥ १४ ॥ ततो भागीरथीं प्राप्य स्नात्वा देवादितर्पणम् ॥ देवार्चनं च
निर्वर्त्य कृतवान्दिग्विलोकनम् ॥ १५ ॥ प्रविश्य वसुधापालो दिव्यां वाराणसीं पुरीम् ॥ नैषा मनुष्यभुक्तेति शूलपाणेः परिग्रहः
॥ १६ ॥ जगाम पद्भ्यां दुःखार्त सह पत्न्या समाकुलः ॥ पुरीं प्रविश्य स नृपो विश्वासमकरोत्तदा ॥ १७ ॥ ददृशेऽथ मुनि श्रेष्ठं
ब्राह्मणं दक्षिणार्थिनम् ॥ तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं विनया वनतोऽभवत् ॥ १८ ॥ प्राह चैवांजलिं कृत्वा हरिश्चंद्रो महामुनिम् ॥ इमे प्राणाः
सुतश्चायं प्रिया पत्नी मुने मम ॥ १९ ॥ येन ते कृत्य मस्त्याशु गृहाणाद्य द्विजोत्तम ॥ यच्चान्यत्कार्यमस्माभिस्तन्ममाऽऽख्यातुमर्हसि
॥ २० ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ पूर्णः स मासो भद्रं ते दीयतां मम दक्षिणा ॥ पूर्वं तस्य निमित्तं हि स्मर्यंते स्ववचो यदि ॥ २१ ॥

कातर और अति व्याकुल हो भार्या और पुत्रके सहित पैदलही वाराणसी पुरीमें गये और नगरीमें प्रवेशकर उसमें विश्वास स्थापन किया ॥ १७ ॥ इसी
समय उन्होंने उन दक्षिणार्थी मुनिवरको देखा और उनको आता देखा विनीत भावसे प्रणामकर ॥१८॥ हाथ जोड उनसे कहा हे मुनिवर ! यह मेरी प्रिय
तमा भार्या और यह मेरा पुत्र एवं यह मेरा जीवन विद्यमान है ॥१९॥ हे द्विजवर ! इनमेंसे जिनके द्वारा आपका कार्य सम्पन्न हो उसको ही ग्रहण कीजिये
अथवा अन्य जो कोई कार्य हमको करना होगा वह आप हमसे कहिये ॥ २० ॥ विश्वामित्रने कहा हे राजन् ! आपने "मासके अन्तमें दक्षिणा दूंगा"
यह कहकर प्रतिज्ञा की है किंतु वह एक मास अब पूर्ण हुआ यदि आपको अपना वचन स्मरण हो तो मुझको दक्षिणा दीजिये ॥ २१ ॥

राजाने कहा हे ब्रह्मन् ! आप ज्ञानवान् और तपोबलयुक्त हैं अतएव आपके वचनमें मुझको द्विरुक्ति करना कभी उचित नहीं है किंतु अभी महीना पूर्ण नहीं हुआ आधा दिन अभी बाकी है आप उसीकी प्रतीक्षा कोजिये अब कल बिलम्ब न करूंगा ॥२२॥ विश्वामित्रने कहा हे महाराज ! यही हो मैं फिर आऊंगा यदि तब भी दक्षिणाका सुवर्ण न दिया तो मैं तुमको शाप दूंगा ॥ २३ ॥ विश्वामित्रके यह कहकर चले जानेपर राजाभी मनमें चिंता करने लगे कि दक्षिणाके विषयमें जो प्रतिज्ञा की है वह इनको किस प्रकार दूंगा॥२४॥इस काशीमें मेरे मित्रभी नहीं हैं जो उनसे धन लूं तो इस समय धन कहां पाऊं मैं क्षत्रिय हूं मुझको दान लेनाभी निषिद्ध है अतएव वह किस प्रकार कर सकता हूं॥२५॥धर्मशास्त्रके अनुसार यजन अध्यन और दान यह तीन वृत्तिही राजाओंको विहित हैं और

राजोवाच ब्रह्मन्नाद्यापि संपूर्णो मासो ज्ञानतपोबल ॥ तिष्ठत्येकदीनार्धं यत्तत्प्रतीक्षस्व नापरम् ॥ २२ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ एवमस्तु महाराज आगमिष्याम्यहं पुनः शापं तव प्रदास्यामि न चेदद्य प्रयच्छसि ॥ २३ ॥ इत्युक्त्वाऽथ ययौ विप्रो राजा चाचिंतयत्तदा कथमस्मै प्रयच्छामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता ॥ २४ ॥ कुतः पुष्टानि मित्राणि कुत्रार्थः सांप्रतं मम ॥ प्रतिग्रहः प्रदुष्टो मे तत्र याञ्चा कथं भवेत् ॥ २५ ॥ राज्ञां वृत्तित्रयं प्रोक्तं धर्मशास्त्रेषु निश्चितम् ॥ यदि प्राणान्विमुंचामि ह्यप्रदाय च दक्षिणाम् ॥ २६ ॥ ब्रह्मस्वहा कृमिः पापो भविष्याम्यधमाधमः ॥ अथवा प्रेततां यास्ये वरएवात्मविक्रयः ॥ २७ ॥ सूत उवाच ॥ राजानं व्याकुलं दीनं चिंतयानमधोमुखम् ॥ प्रत्युवाच तदा पत्नी बाष्पगद्गदया गिरा ॥ २८ ॥ त्यज चिंतां महाराज स्वधर्ममनुपालय ॥ प्रेतवद्वर्जनीयो हि नरः सत्यबहिष्कृतः ॥ २९ ॥ नातः परतरं धर्मं वदंति पुरुषस्य च ॥ यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यस्यानुपालनम् ॥ ३० ॥ अग्निहोत्र मधीतं च दानाद्याः सकलाः क्रियाः ॥ भवंति तस्य वैफल्यं वाक्यं यस्यानृतं भवेत् ॥ ३१ ॥

यदि ब्राह्मणको दक्षिणा न देकर प्राणत्याग करूं ॥२६॥ तो ब्राह्मणत्वहरण निबन्धनके कारण पापी होकर कृमि हूंगा अथवा नीच होकर प्रेतयोनिको प्राप्त हूंगा अतएव इसकी अपेक्षा आत्म विक्रय करना ही मेरे पक्षमें श्रेष्ठ है इसमें संदेह नहीं ॥२७॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! राजाको व्याकुल दीनभावसे नीचेको मुख किये चिंता करता हुआ देखकर उस स्त्रीने बाष्पगद्गद स्वरसे कहा ॥२८॥ हे महाराज ! आप चिंता त्यागकर सत्यरूप अपना धर्मपालन करो क्योंकि जो मनुष्य सत्य धर्मसे च्युत होते हैं वह प्रेतके समान वर्ज्जनीय हैं ॥२९॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! अपने सत्यका पालन करना ही पुरुषका धर्म है,इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ धर्म दूसरा नहीं है बुद्धिमानोंने यही कीर्त्तन किया है ॥३०॥ जिसका वचन असत्य होता है उसकी अग्निहोत्र अध्ययन और दानादि सम्पूर्ण क्रिया विफल हो जाती हैं ॥ ३१ ॥

दे. भा. धर्मशास्त्रमें सत्य अत्यंत प्रशंसनीय है और वह सत्य ही पुण्यात्मा मनुष्योंको उद्धार करता है, और असत्य पापिष्ठ मनुष्योंको नरकमें डालता है इसमें संदेह नहीं
॥६१॥ ॥ ३२ ॥ महीपति ययाति अश्वमेध यज्ञ और राजसूय यज्ञका अनुष्ठान करके ही स्वर्गको गये थे, किंतु केवल एकवार मिथ्या बात कहनेसे स्वर्गसे च्युत हुए थे
॥३३॥ राजाने कहा हे गजगामिनि! तुम दक्षिणा देनेके लिये मुझको समझाती हो किंतु मेरे पास कुछ नहीं है केवल भार्या और पुत्र शेष हैं उनमें पुत्र वंशको
बढ़ाने वाला है इस कारण उसका प्रदान करना शास्त्रमें निषिद्ध है और भार्याको भी नहीं बेचना चाहिये किंतु इस समय तुम जो कहनेकी इच्छा करती हो वह
कहो ॥ ३४ ॥ महिषीने कहा हे राजन्! पुत्रके लिये ही पुरुष स्त्रीपरिग्रह करते हैं मेरे पुत्र हो जानेसे आपका वह प्रयोजन सिद्ध हो गया अतएव धनग्रहण

सत्यमत्यंतमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम् ॥ तारणायानृतं तद्वत्पातनायाकृतात्मनाम् ॥ ३२ ॥ शताश्वमेधानाहृत्य राजसूयं च पार्थिवः
कृत्वा राजा सकृत्स्वर्गादसत्यवचनाच्च्युतः ॥३३॥ राजोवाच ॥ वंशवृद्धिकरश्चायं पुत्रस्तिष्ठति बालकः ॥ उच्यतां वक्तुकामाऽसि यदा
त्वयंगजगामिनि ॥ ३ ४ ॥ पत्न्युवाच ॥ राजन्मा भूदसत्यं ते पुंसां पुत्रफलाः स्त्रियः ॥ तन्मां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम् ॥
॥ ३५ ॥ व्यास उवाच ॥ एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ययौ मोहं महीपतिः ॥ प्रतिलभ्य च संज्ञां वै विललापातिदुःखितः ॥ ३६ ॥ महद्दुःख
मिदं भद्रे यत्त्वमेवं ब्रवीषि मे ॥ किं तव स्मितसंलापा मम पापस्य विस्मृताः ॥ ३७ ॥ हा हा त्वया कथं योग्यं वक्तुमेतच्छुचि
स्मिते ॥ दुर्वाच्यमेतद्वचनं कथं वदसि भामिनि ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वा नृपतिः श्रेष्ठो न धीरो दारविक्रये ॥ निपपात मही पृष्ठे मूर्छया
ऽतिपरिप्लुतः ॥ ३९ ॥ शयानं भुवि तं दृष्ट्वा मूर्छयाऽपि महीपतिम् ॥ उवाचेदं सुकरुणं राजपुत्री सुदुःखिता ॥ ४० ॥

पूर्वक मुझको बेचकर ब्राह्मणको दक्षिणा दीजिये आपका वचन मिथ्या नहीं होगा ॥३५॥ व्यासजीने कहा हे महाराज! महीपति यह वचन सुनकर मोहको प्राप्त
हुए फिर चैतन्य हो अत्यन्तदुःखित अन्तःकरणसे विलाप करने लगे ॥३६॥ हे भद्रे! तुमने जो मुझे ऐसे वचन कहे इनसे मुझको अत्यंत दुःख उपस्थित हुआ है मैं
भा.टी.स. क्या ऐसा पापिष्ठ हूं कि तुम्हारे वह हास्ययुक्त संपूर्ण वचन एकवार ही भूल गया? ॥ ३७ ॥ हे शुचिस्मिते! ऐसे वचन कहना तुमको उचित नहीं है हे
अ० २० सुन्दरी! यह न कहने योग्य वचन तुमको मुझसे किस प्रकार कहे ॥३८॥ यह कहकर वह नृपश्रेष्ठ स्त्रीके बेचनेकी बातसे अधीर और मूर्च्छासे अत्यंत अभिभूत
हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥३९॥ जब महीपति मूर्च्छासे पृथ्वीपर गिर पड़े तब राजपत्नीने उनको देख अत्यंतदुःखित हो अतिकरुणा वचनद्वारा उसने कहा ॥४०॥

हे महाराज! किसका बुरा विचारनेकी इच्छासे आपको यह दुर्घटना उपस्थित हुई हाय! आस्तरणमण्डित गृहमें शयन करना जिनको उचित है वह आज नीचके समान भूशय्यापर शयन कर रहे हैं ॥ ४१ ॥ पूर्वमें जो पृथ्वीनाथ ब्राह्मणोंको करोड़ करोड़ मुद्रा दान करते थे आज मेरे पति वह भूपति पृथ्वीमें गिरपड़े हैं ॥ ४२ ॥ हाय ! क्या कष्ट है ! हा दैव ! इन महीपालने तुम्हारा क्या किया है जो इंद्र और उपेन्द्रके समान राजाको इस दुरवस्थामें डाला है ॥ ४३ ॥ वह सुश्रोणी राजपत्नी यह बात कहकर अत्यंन्त असह्य स्वामीके दुःखभारसे अति संतप्त और मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरपड़ी ॥ ४४ ॥ तब शिशु राजपुत्र पिता और माताको मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर अत्यंत दुःखित और क्षुधातुर हो हे पितः ! हे पितः ! मुझको अत्यंत भूंख

हा महाराज कस्येदमपध्यानादुपागतम् ॥ यस्त्वं निपातितो भूमौ रंकवच्छरणोचितः ॥ ४१ ॥ ये नैव कोटिशो वित्तं विप्राणामप वर्जितम् ॥ स एव पृथिवीनाथो भुवि स्वपिति मे पतिः ॥ ४२ ॥ हा कष्टं किं तवानेन कृतं दैव महीक्षिता ॥ यदिंद्रोपेंद्रतुल्योऽयं नीतःपापामिमां दशाम् ॥ ४३ ॥ इत्युक्त्वा साऽपि सुश्रोणी मूर्च्छिता निपतात ह ॥ भर्तुर्दुःखमोहभारेणासह्येनातिपीडिता ॥ ४४ ॥ शिशुर्दृष्ट्वा क्षुधाऽऽविष्टः प्राह वाक्यं सुदुःखितः ॥ तात तात प्रदेह्यन्नं मातर्मेदेहि भोजनम् ॥ ४५ ॥ क्षुन्मे बलवती जाता जिह्वाऽग्रे मेऽतिशुष्यति ॥ इति श्रीदे० भा० म० स० हरिश्चंद्रोपाख्याने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ एतस्मिन्नंतरे प्राप्तो विश्वामित्रो महातपाः ॥ अंतकेन समः क्रुद्धो धनं स्वं याचितु हृदा ॥ १ ॥ तमालोक्य हरिश्चंद्रः पपात भुवि मूर्छितः ॥ स वारिणा तमभ्युक्ष्य राजानमिदम ब्रवीत् ॥ २ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेंद्र स्वां ददस्वेष्टदक्षिणाम् ॥ ऋणं धारयतां दुःख महन्यहनि वर्द्धते ॥ ३ ॥ आप्यायमानःस तदा हिमशीतेन वारिणा ॥ अवाप्य चेतनां राजा विश्वामित्रमवेक्ष्य च ॥ ४ ॥

लगी है मुझको अन्न दीजिये ॥ ४५ ॥ हे मातः! मेरी जिह्वा अत्यंत सूखी जाती है मुझको भोजनकी सामग्री प्रदान करो यह कहकर वारंवार रोदन करने लगा ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां विंशोऽध्यायः ॥२०॥ व्यासजीने कहा हेमहाराज ! इसी अवसरमें अत्यंत तपःप्रभाव युक्त विश्वामित्र अपना धन मांगनेके लिये अन्तकके समान कुपित हो वहां आकर उपस्थित हुए ॥१॥ राजा हरिश्चन्द्र उनको देखकर मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिरपड़े तब विश्वामित्रने उनके अंगमें जल सेचन करते करते कहा ॥ २ ॥ हे राजेन्द्र! जो मनुष्य ऋणजालमें बँधा है उसको दिन दिन कष्ट बढ़ता है अतएव आप उठकर अपनी अंगीकार की हुई दक्षिणा दीजिये ॥३॥ यद्यपि राजा तुषार शीतलजलसे चैतन्यताको प्राप्त हुए किंतु विश्वामित्रको देखते ही ॥४॥

फिर मोहको प्राप्त हुए द्विजवर विश्वामित्र यह देखकर राजाको समझाय कोपके वशीभूत हो कहने लगे ॥ ५ ॥ मुनिवर बोले हे महाराज! यदि आप धैर्यके रक्षा करनेकी इच्छा करते हैं तो मुझको दक्षिणा दीजिये देखो सत्यके बलसे सूर्यप्रकाशप्रदान करते हैं सत्यसेही पृथ्वी स्थित है ॥ ६ ॥ अधिक क्या स्वर्ग भी सत्यमें ही प्रतिष्ठित रहता है अतएव सत्यकोही परमधर्ममें विराजमान जानना चाहिये सहस्र अश्वमेध यज्ञका फल और सत्य यदि तराजूमें रक्खा जाय ॥ ७ ॥ तो सहस्र अश्वमेध यज्ञकी अपेक्षा केवल सत्यकाही गुरुत्व अधिक होता है अथवा ऐसा कहनेका मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ८ ॥ हे राजन् यदि आप दक्षिणा न देंगे तो सूर्यास्त होनेपर ही मैं तुमको शाप दूंगा इसमें संदेह! नहीं ॥ ९ ॥ विश्वामित्र यह बात कहकर चले गये और राजा भी अत्यंत

पुनर्मोहं समापेदे ह्यथ क्रोधं ययौ मुनिः ॥ समाश्वास्य च राजानं वाक्यमाह द्विजोत्तमः ॥ ५ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ दीयतां दक्षिणा सा मे यदि धैर्यमवेक्षसे ॥ सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी ॥ ६ ॥ सत्ये प्रोक्तः परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ॥ अश्वमेधसहस्रं तु सत्यं च तुलया धृतम् ॥ ७ ॥ अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेकं विशिष्यते ॥ अथवा किं ममैतेन प्रोक्तेनास्ति प्रयोजनम् ॥ ८ ॥ मदीयां दक्षिणां राजन्न दास्यति भवान्यदि॥ अस्ताचलगते ह्यर्के शप्स्यामी त्वामतो ध्रुवम् ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो राजा चासीद्भयातुरः ॥ दुःखीभूतोऽवने निःस्वो नृशंसमुनिनाऽर्दितः ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ ब्राह्मणैर्बहुभिः सार्धं निर्ययौ स्वगृहाद्बहिः ॥ ११ ॥ ततो राज्ञी तु तं दृष्ट्वा आयातं तापसं स्थितम् ॥ उवाच वाक्यं राजानं धर्मार्थसहितं तदा ॥ १२ ॥ त्रयाणामपि वर्णानां पिता ब्राह्मण उच्यते ॥ पितृद्रव्यं हि पुत्रेण ग्रहीतव्यं न संशयः ॥ १३ ॥ तस्मादयं प्रार्थनायो धनार्थमिति मे मतिः ॥ राजोवाच ॥ नाहं प्रतिग्रहं कांक्षे क्षत्रियोऽहं सुमध्यमे ॥ १४ ॥

भयातुर हुए यद्यपि वह धनहीन नरपति विश्वामित्रके नृशंस वचनोंसे पीडित हुए किंतु दक्षिणा देकर किस प्रकार सत्यकी रक्षा करें उसकी चिंतासे कातर हुए ॥ १० ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण! इसी समय कोई वेदपारग ब्राह्मणोंके सहित अपने गृहसे उस स्थानमें आया ॥ ११ ॥ तब रानी उस सभागत तपस्वीको समीप देखकर राजासे धर्म और अर्थ संगत वचन कहने लगी ॥ १२ ॥ हे स्वामिन्! ब्राह्मण अपर तीन वर्णोंके पिता कहेगये हैं, अतएव पिताका द्रव्य पुत्र अवश्य ग्रहणकर सकता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ इसलिये मेरा अभिप्राय यह है कि आप इस ब्राह्मणसे धन मांगिये राजाने कहा हे सुमध्यमे मैं क्षत्रिय हूं इससे प्रतिग्रह न करूंगा ॥ १४ ॥

हे कृशोदरि ! मांगना ब्राह्मणोंके पक्षमें विहित है क्षत्रियोंके पक्षमें वह निषिद्ध है ब्राह्मण सम्पूर्ण वर्णोंके गुरु हैं सुतरां सर्वदाही पूजनीय हैं ॥ १५ ॥ अतएव गुरुसे मांगना नहीं चाहिये विशेषकर क्षत्रियोंके पक्षमें वह अत्यंत निषिद्ध है यद्यपि यजन, अध्ययन, दान, ॥ १६ ॥ प्रजापालन और शरणागतकी रक्षा करनाही क्षत्रियोंका परम धर्म है किंतु "दो दो" यह दीनवचन क्षत्रियोंके पक्षमें कभी उचित नहीं है ॥ १७ ॥ हे देवि ! मेरे हृदयमें "देताहूं" यह वचन सदा विद्यमान रहता है अतएव मैं अन्य किसी स्थानसे धन उपार्जन करके ब्राह्मणको दूंगा ॥ १८ ॥ रानीने कहा हे महाराज ! काल किसीको समान अवस्थामें रखता है अथवा किसीको विषम अवस्थामें पतित करता है कालही मान और अपमान देता है यह कालही फिर मनुष्योंको दाता और कभी

याचनं खलु विप्राणां क्षत्रियाणां न विद्यते ॥ गुरुर्हि विप्रो वर्णानां पूजनीयोऽस्ति सर्वदा ॥ १५ ॥ तस्माद्गुरुर्न याच्यः स्यात्क्षत्रियाणां विशेषतः ॥ यजनाध्ययनं दानं क्षत्रियस्य विधीयते ॥ १६ ॥ शरणागतानामभयं प्रजानां प्रतिपालनम् ॥ न चाऽप्येवं तु वक्तव्यं देहीति कृपणं वचः ॥ १७ ॥ ददामीत्येव मे देवि हृदये निहितं वचः ॥ अर्जितं कुत्रचिद्द्रव्यं ब्राह्मणाय ददाम्यहम् ॥ १८ ॥ पत्न्युवाच ॥ कालः समविषमकरः परिभवसम्मानमानदः कालः ॥ कालः करोति पुरुषं दातारं याचितारं च ॥ १९ ॥ विप्रेण विदुषा राजा क्रुद्धेनातिबलीयसा ॥ राज्यान्निरस्तः सौख्याच्च पश्य कालस्य चेष्टितम् ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ असिना तीक्ष्णधारेण वरं जिह्वा द्विधा कृता ॥ न तु मानं परित्यज्य देहि देहीति भाषितम् ॥ २१ ॥ क्षत्रियोऽहं महाभागे न याचे किंचिदप्यहम् ॥ ददामि वाऽहं नित्यं हि भुजवीर्यार्जितं धनम् ॥ २२ ॥

याचक कर देता है ॥ १९ ॥ देखो अत्यंत तपोबलयुक्त विश्वामित्र मुनिने सुपंडित होकर भी कुपितहो आपको राज्यच्युत और सुखभ्रष्ट कर परपीडाका रणस्वरूप धर्मबहिर्भूत कार्य किया है, इससेही आप कालका कार्य अवलोकन कीजिये ॥ २० ॥ राजाने कहा चाहे तीक्ष्णधारवाली असिसे जिह्वाके दो खण्ड कर डालूं तथापि क्षत्रियाभिमान त्यागकर "दो दो" यह बात कभी नहीं कह सकता ॥ २१ ॥ हे महाभागे ! मैं क्षत्रिय हूं सुतरां किञ्चिन्मात्रभी याचना नहीं करूंगा वरन् अपने बाहुबलसे धनउपार्जन करके दूंगा यही बात मैं सदा करूंगा ॥ २२ ॥ रानीने कहा हे महाराज ! इंद्रादि देवताओंके न्यायके अनुसार मुझको आपके हाथमें समर्पण किया है सुतरां मैं आपकी धर्मपत्नी हूं विशेषकर शिक्षणीय और रक्षणीय हूं अतएव हे महामते ! यदि मांगनेमें

दे. भा. ॥६३॥

आपकी इच्छा न हो तो मुझको बेचकर गुरुका धन दीजिये ॥ २३ ॥ २४ ॥ महीपति हरिश्चन्द्र इन वचनोंके सुननेसे अत्यन्त दुःखित हो हा कष्ट ! हा कष्ट ! ऐसा कह कर विलाप करने लगे ॥ २५ ॥ उनकी भार्याने कहा हे राजन् ! इसके उपरान्त विप्रकी शापरूपी अग्निमें दग्ध होकर नीचत्वको प्राप्त होगे अतएव इस समय मेरा वचन प्रतिपालन करो ॥ २६ ॥ आप द्यूतक्रीडामें मुग्ध अथवा मदसे मत्त वा भोगोंकी इच्छासे ज्ञानशून्य होकर अथवा राज्यकी विपदके कारण मुझको नहीं बेचते हो मुझको बेचकर गुरुको धन देते इसमें कुछ दोष वा पाप नहीं हो सकता अतएव आप मुझको बेचकर अपने सत्यव्रतकी सफलता सम्पादन कीजिये ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजपत्नी

पत्न्युवाच ॥ यदि ते हि महाराज याचितुं न क्षमं मनः ॥ अहं तु न्यायतो दत्ता देवैरपि सवासवैः ॥ २३ ॥ अहं शास्या च पत्या च रक्ष्या चैव महाद्युते ॥ मन्मौल्यं संगृहीत्वाऽथ गुर्वर्थं संप्रदीयताम् ॥ २४ ॥ एतद्वाक्यमुपश्रुत्य हरिश्चंद्रो महीपतिः ॥ कष्टं कष्टमिति प्रोच्य विललापातिदुःखितः ॥ २५ ॥ भार्या च भूयः प्राहेदं क्रियतां वचनं मम ॥ विप्रशापाग्निदग्धत्वान्नीचत्वमुपयास्यसि ॥ २६ ॥ न द्यूतहेतोर्न च मद्यहेतोर्न राज्यहेतोर्न च भोगहेतोः ॥ ददस्व गुर्वर्थमतो मया त्वं सत्यव्रतत्वं सफलं कुरुष्व ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तम स्कंधे हरिश्चंद्रोपाख्याने एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ व्यास उवाच ॥ स तया नोद्यमानस्तु राजा पत्न्या पुनः पुनः ॥ प्राह भद्रे करोम्येष विक्रयं ते सुनिर्घृणः ॥ १ ॥ नृशंसैरपि यत्कर्तुं न शक्यं तत्करोम्यहम् ॥ यदि ते भ्राजते वाणी वक्तुमीदृक्सुनिष्ठुरम् ॥ २ ॥ एवमुक्त्वा ततो राजा गत्वा नगर मातुरः ॥ अवतार्य तदा रंगे तां भार्यां नृपसत्तमः ॥ ३ ॥ वाष्पगद्गदकंठस्तु ततो वचनमब्रवीत् ॥ भो भो नागरिकाः सर्वे शृणुध्वं वचनं मम ॥ ४ ॥

माधवीके राजा हरिश्चन्द्रको वारंवार अनुरोध करनेपर उन्होंने कहा हे भद्रे ! इस अवस्थामें निर्दय होकर तुमको बेचूंगा ॥ १ ॥ तुम्हीं ऐसे अति निष्ठुर वचन मुक्तकंठसे उच्चारण करनेमें कुण्ठित नहीं होती तो नृशंसभी जिसके करनेमें समर्थ नहीं हो सकते वही कर्म करूंगा ॥ २ ॥ यह बात कहते ही राजा अत्यंत कातरहो पत्नीके सहित नगरमें गये इसके उपरांत राजा हरिश्चन्द्र उस भार्याको राजमार्गमें खडाकर ॥ ३ ॥ बाष्पगद्गद कंण्ठसे कहने लगे हे नगरनिवासियो ! तुम सम्पूर्ण हमारा वचन सुनो ॥ ४ ॥

किसीको क्या दासीका प्रयोजन है ? यह रमणी मेरे प्राणोंके अपेक्षा भी प्रिय है इसका मूल्य मैं जो कहता हूं इसके देनेको जिसकी सामर्थ्य हो तो वह उसको शीघ्र कहे ॥ ५ ॥ तब पंडितोंने ने कहा तुम कौन हो किस कारण अपनी स्त्रीको बेचनेके लिये इस स्थानमें आये हो ? राजाने कहा आप क्या हमारा परिचय पूंछते हो तो सुनिये मैं ? नृशंस और मनुष्य कहने योग्य नहीं हूं ॥ ६ ॥ अथवा मैं राक्षस हूं अधिक क्या इसकी अपेक्षा भी कठिन हूं क्योंकि मैं ऐसे पाप कार्यके करनेमें प्रवृत्त हूं, व्यास जीने कहा हे महाराज ! विप्ररूपधारी कौशिक यह शब्द सुनते ही सहसा ॥ ७ ॥ वृद्धरूप धारणकर हरिश्चन्द्र से कहने लगे मैं अतुल ऐश्वर्यका अधिपति हूं सुतरां तुम्हारी इच्छानुसार धनदेनेमें समर्थ हूं अतएव मैं धनसे दासीको मोल लेनेके लिये प्रस्तुत हूं तुम मुझको दासी

कस्यचिद्यदि कार्यं स्याद्दास्या प्राणेष्टया मम ॥ स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्स्वं धारयाम्यहम् ॥ ५ ॥ तेऽब्रुवन्पंडिताः कस्त्वं पत्नीं विक्रेतुमागतः ॥ राजोवाच ॥ किं मां पृच्छथ कस्त्वं भो नृशंसोऽहममानुषः ॥ ६ ॥ राक्षसो वाऽस्मि कठिनस्ततःपापं करोम्यहम् ॥ व्यास उवाच ॥ तं शब्दं सहसा श्रुत्वा कौशिको विप्ररूपधृक् ॥ ७ ॥ वृद्धरूपं समास्थाय हरिश्चंद्रमभाषत ॥ समर्पयस्व मे दासीमहं क्रेता धनप्रदः ॥ ८ ॥ अस्ति मे वित्तमतुलं सुकुमारी च मे प्रिया ॥ गृहकर्म न शक्नोति कर्तुमस्मात्प्रयच्छ मे ॥ ९ ॥ अहंगृह्णामि दासीं तु कति दास्यामि ते धनम् ॥ एवमुक्ते तु विप्रेण हरिश्चंद्रस्य भूपतेः ॥ १० ॥ विदीर्णं तु मनो दुःखान्न चैनं किंचिदब्रवीत् ॥ विप्र उवाच ॥ कर्मणश्च वयोरूपशीलानां तव योषितः ॥ ११ ॥ अनुरूपमिदं वित्तं गृहाणार्पय मेऽबलाम् धर्मशास्त्रेषु यद् दृष्टं स्त्रियो मौल्यं नरस्य च ॥ १२ ॥ द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता ॥ कोटिमौल्यं सुवर्णस्य स्त्रियः पुंसस्तथाऽर्बुदम् ॥ १३ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य हरिश्चंद्रो महीपतिः ॥ दुःखेन महताऽऽविष्टो न चैनं किंचिदब्रवीत् ॥ १४ ॥

दो मेरी भार्या अत्यंत सुकुमारी है वह घरका कार्य नहीं कर सकती अतएव मुझको यह दासी दो ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ किंतु तुमको कितना मूल्य देना होगा सो कहो विप्रके यह बात कहने पर राजा हरिश्चन्द्रका ॥ १० ॥ हृदय दुःखसे विदीर्ण होगया इससे वह उससे कुछ न कह सके विप्रने कहा तुम अपनी भार्याकी वयस् रूप गुण और कर्मके ॥ ११ ॥ अनुसार धन ग्रहणकर इस अबलाको मेरे करमें समर्पण करो, स्त्री और पुरुषके मूल्यका विषय शास्त्रमें जिस प्रकार देखा है ॥१२॥ वह सुनो जो स्त्री कार्यमें निपुण सत्यस्वभाव गुणयुक्त और बत्तीस शुभलक्षणोंसे भूषित है उसका मूल्य करोड़ स्वर्णमुद्रा है और पुरुष ऐसा गुणयुक्त होनेसे उसका मूल्य अर्बुद(अरब)स्वर्णमुद्रा है ॥१३॥ उस ब्राह्मणके ऐसे वचन सुनकर महीपति हरिश्चन्द्र अत्यंत दुःखित हुए और उससे कुछ न कह सके॥१४॥

इसके उपरांत वह ब्राह्मण नरपति हरिश्चन्द्रके सन्मुख वल्कलके ऊपर धन रखकर रानीके केश पाश ग्रहण पूर्वक खेंचने लगा ॥१५॥ रानीने कहा हे आर्य ! मैं एक वार पुत्रका मुखकमल देख लूं इससे मुझको एकबार छोड दीजिये हे विप्र! आप विचारकर देखिये कि फिर इसका दर्शन मुझको दुर्लभ होगा ॥ १६ ॥ हे पुत्र ! देखो तुम्हारी माता इस समय दासी भावको प्राप्त हुई हूं अतएव हे राजपुत्र ! तुम अब मुझको स्पर्श मत करो अब मैं तुम्हारे स्पर्शके योग्य नहीं हूं ॥ १७ ॥ तब माताको बालक सहसा आकर्षण करता हुआ देखकर मा ! मा ! ऐसा कहकर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उसके पीछे पीछे दौडा ॥ १८ ॥ वह काक पक्षधारी बालक पद पदपर गिरने लगा तो भी दोनों हाथोंसे माताके वस्त्र खेंचकर उसके संग संग जाने लगा तब वह ब्राह्मण बालकका

ततः स विप्रो नृपते पुरतो वल्कलोपरि ॥ धनं निधाय केशेषु धृत्वा राज्ञीमकर्षयत् ॥ १५ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ मुंच मुञ्चार्य मां सद्यो यावत्पश्याम्यहं सुतम् ॥ दुर्लभं दर्शनं विप्र पुनरस्य भविष्यति ॥ १६ ॥ पश्यैहं पुत्र मामेवं मातरं दास्यतां गताम् ॥ मां मा स्प्राक्षी राजपुत्र न स्पृश्याऽहं त्वयाधुना ॥ १७ ॥ ततः स बालः सहसा दृष्ट्वाऽऽकृष्टां तु मातरम् ॥ समभ्यधावदंबेति वदन्साश्रुविलोचनः ॥ ॥ १८ ॥ हस्ते वस्त्रं समाकर्षन्काकपक्षधरः स्खलन् ॥ तमागतं द्विजः क्रोधाद्बालमप्याहनत्तदा ॥ १९ ॥ वदंस्तथापि सोंऽबेति नैव मुंचति मातरम् ॥ राज्ञ्युवाच ॥ प्रसादं कुरु मे नाथ क्रीणीष्वेमं हि बालकम् ॥ २० ॥ क्रीताऽपि नाहं भविता विनैनं कार्यसाधिका ॥ इत्थं ममाल्पभाग्यायाः प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥ २१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ गृह्यतां वित्तयेतत्ते दीयतां मम बालकः ॥ स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैः कृतमेव हि वेतनम् ॥ २२ ॥

इस प्रकार कार्य देखकर क्रोधसे अधीर हो उसको प्रहार करने लगा ॥ १९ ॥ तथापि बालक मा ! मा ! कहकर रोदन करने लगा किसी प्रकार माताको न छोडा रानीने कहा हे प्रभो ! आप मेरे प्रति कृपा प्रकाश करके इस बालकको क्रय कीजिये ॥ २० ॥ यद्यपि आपने मुझको क्रय किया है किंतु इस बालकके विना मैं आपका कार्य करनेमें समर्थ नहीं हूंगी मेरा भाग्य अत्यन्त मंद है इससेही यह दुर्दशा उपस्थित हुई अतएव हे प्रभो ! आप मेरे प्रति इस प्रकार अनुग्रहप्रकाश कीजिये ॥ २१ ॥ ब्राह्मणने कहा यह मुद्रा लेकर मुझको बालक प्रदान करो क्योंकि धर्मशास्त्र कुशल पंडितोंने स्त्री और पुरुषका जिस प्रकार मूल्य स्थिर किया है ॥ २२ ॥

अन्यान्य पंडितोंने भी गुणोंके तारतम्य अनुसार शत सहस्र लक्ष और करोड इत्यादि मूल्यका भी प्रभेद किया है किंतु जो स्त्री कार्यमें निपुण सुशील और गुणयुक्त एवं जिसके सम्पूर्ण शरीरमें बत्तीस[1] शुभ लक्षण विराजमान हों ॥ २३ ॥ उस ललनाका मूल्य करोड़ स्वर्णमुद्रा है और जिस पुरुषके यह सम्पूर्ण शुभ लक्षण और गुण विद्यमान हैं उसका मूल्य अर्बुद (अरब) स्वर्ण मुद्रा है सूतजीने कहा हे राजन्! बालकका जो मूल्य स्थिर हुआ ब्राह्मणने वह स्वर्ण मुद्रा पहलेके समान राजाके सन्मुख स्थित वल्कलपर पुनर्वार रख दी ॥ २४ ॥ और बालकको ले उसके सहित एकत्र बांध लिया तब वह ब्राह्मण आनंदित हो उनको संग ले शीघ्र घरको गया ॥ २५ ॥ जानेके समय रानीने प्रदक्षिणाकर जानु टेककर राजाको प्रणाम किया और उसी अवस्थामें उठकर

शतं सहस्रं लक्षं कोटिमौल्यं तथापरैः ॥ द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता ॥ २३ ॥ कोटिमौल्यं स्त्रियः प्रोक्तं पुरुषस्य तथाऽर्बुदम् ॥ सूत उवाच ॥ तथैव तस्य तद्वित्तं पुरः क्षिप्तं पटे पुनः ॥ २४ ॥ प्रगृह्य बालकं मात्रा सहैकस्थमबंधयत् ॥ प्रतस्थे स गृहं क्षिप्रं तया सह मुदान्वितः ॥ २५ ॥ प्रदक्षिणां तु सा कृत्वा जानुभ्यां प्रणता स्थिता ॥ वाष्पपर्याकुला दीना त्विदं वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ यदि दत्तं यदि हुतं ब्राह्मणास्तर्पिता यदि ॥ तेन पुण्येन मे भर्ता हरिश्चन्द्रोऽस्तु वै पुनः ॥ २७ ॥ पादयोः पतितां दृष्ट्वा प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ॥ हा हेति च वदन्राजा विललापाकुलेंद्रियः ॥२८॥ वियुक्तेयं कथं जाता सत्यशीलगुणान्विता ॥ वृक्षच्छायाऽपि वृक्षं तं न जहाति कदाचन ॥ २९ ॥ एवं भार्या वदित्वाऽथ सुसंबद्धं परस्परम् ॥ पुत्रं च तमुवाचेदं मां त्वं हित्वा क्व यास्यसि ॥३०॥

नेत्रोंके आंसुओंमें डूब दीन भाव होकर राजासे बोली ॥ २६ ॥ यदि जो मैंने कभी दान किया है. यदि कभी अग्निमें आहुति प्रदान की है. यदि कभी ब्राह्मणको सन्तुष्ट किया है तो उसी पुण्यके बलसे राजा हरिश्चन्द्र पुनरर्वार मेरे भर्ता हों ॥ २७ ॥ अपने प्राणोंकी अपेक्षा प्यारी भार्याको पैरोंमें पड़ा हुआ देखकर राजा व्याकुल हो हाय! हाय! इस प्रकार कहकर विलाप करने लगे ॥ २८ ॥ वृक्षकी छाया कभी उस वृक्षको नहीं छोड़ती परन्तु तुम यथार्थ ही सुशील और गुणयुक्त होकर भी क्यों मुझसे अलग हुई ॥ २९ ॥ भार्याके साथ इस प्रकारसे परस्पर सुसम्बन्ध बातचीत कर पुत्रसे कहा हे वत्स! तुम मुझको छोडकर कहाँ जाओगे ? ॥ ३० ॥

---

१ स्त्रियोंके ३२लक्षण विराट्पर्वमें और पुरुषके ३२लक्षण काशीखण्डमें लिखे हैं.

मैं इस समय कहां जाऊं अथवा कौन मेरा दुःख दूर करेगा फिर राजाने उस ब्राह्मणसे कहा कि द्विजवर! पुत्रके वियोगसे मुझे जिस प्रकार का दुःख उपस्थित हुआ है राज्य त्याग अथवा वनवासमें मुझे ऐसा दुःख उपस्थित नहीं हुआ इस लोकमें स्वामि साधु स्वभाव होनेसे ही भार्याका सर्वदा सुखसे भरण पोषण करता है ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ किंतु हे कल्याणि! मैं तुम्हारे प्रति ऐसा कुपित हूं कि तुमको छोड़कर दुःख सागरमें डाल दिया मैं इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न होकर समस्त राज्य सुखका आस्पद हुआ था ॥ ३३ ॥ परंतु हाय! तुम ऐसे पतिको प्राप्त करके भी इस समय दासी भावको प्राप्त हुई! हे देवि! मैं ऐसे विशाल शोकसागरमें निमग्न हुआ हूं कि ॥ ३४ ॥ अनेक प्रकारसे पुराणोंके आख्यान कहकर कौन मुझको छुड़ावेगा सूतजीने कहा हे राजन् वह ब्राह्मण उन राजाके सन्मुख ही

कां दिशं प्रतियास्यामि को मे दुःखं निवारयेत् ॥ राज्यत्यागे न मे दुःखं वनवासे न मे द्विज ॥ ३१ ॥ यत्पुत्रेण वियोगो मे एवमाह स भूपतिः ॥ सद्भर्तुभोग्यादि सदा लोके भार्या भवंति हि ॥ ३२ ॥ मया त्यक्ताऽसि कल्याणि दुःखेन विनियोजिता ॥ इक्ष्वाकुवंश संभूतं सर्वराज्यसुखोचितम् ॥ ३३ ॥ मामीदृशं पतिं प्राप्य दासीभावं गता ह्यसि ॥ ईदृशे मज्जमानं मां सुमहच्छोकसागरे ॥ ३४ ॥ को मामुद्धरते देवि पौराणाख्यान विस्तरैः ॥ सूत उवाच ॥ पश्यतस्तस्य राजर्षेः कशाघातैः सुदारुणैः ॥ ३५ ॥ घातयित्वा तु विप्रेशो नेतुं समुपचक्रमे ॥ नीयमानौ तु तौ दृष्ट्वा भार्यापुत्रौ स पार्थिवः ॥ ३६ ॥ विललापातिदुःखार्तो निश्वस्योष्णं पुनः पुनः ॥ यां न वायुर्न वाऽऽदित्यो न चन्द्रो न पृथग्जनाः ॥ ३७ ॥ दृष्टवंतः पुरा पत्नीं सेयं दासीत्वमागता ॥ सूर्यवंशप्रसूतोऽयं सुकुमारकरांगुलिः ॥ ॥ ३८ ॥ संप्राप्तो विक्रयं बालो धिङ्‌ मामस्तु सुदुर्मतिम् ॥ हा प्रिये हा शिशो वत्स ममानार्यस्य दुर्नयः ॥ ३९ ॥ दैवाधीनदशां प्राप्तो न मृतोऽस्ति तथाऽपि धिक् ॥ व्यास उवाच ॥ एवं विलपतो राज्ञोऽग्रे विप्रोंऽतरधीयत ॥ ४० ॥

देवीको दारुण कशाघात ॥ ३५ ॥ करते २ ले जाने लगा वह भूपाल भार्या और पुत्रको ऐसी अवस्थामें ले जाता हुआ देखकर ॥ ३६ ॥ दुःखसे अत्यन्त कातर हुए और बारंबार लम्बे श्वास लेते हुए विलाप करते २ कहने लगे हाय! पहले जिसको चन्द्र, सूर्य, वायु अथवा अन्य किसीने नहीं देखा ॥ ३७ ॥ मेरी वही प्रियतमा आज दीनभावको प्राप्त हुई हाय! बालकके हाथकी उँगली सभी कैसी सुकुमार हैं हाय! वह कुमार सूर्यवंशमें जन्म ग्रहणकर ॥ ३८ ॥ बेचा गया! अहो मेरी दुर्मतिको धिक्कार है हा प्रिये! हा बालक रोहिताश्व! इस अनार्यकी दुर्नीतसे तुम्हारी यह दुर्गति हुई॥ ३९ ॥ मैं दैवकी विडम्बनासे इस दुर्दशाको प्राप्त हुआ परन्तु तो भी मेरी मृत्यु नहीं हुई? मुझको धिक्कार है व्यासजीने कहा हे महाराज! राजा इस प्रकार विलाप करने लगे इसी समय वह ब्राह्मण॥ ४० ॥

उनको लेकर अत्यन्त ऊंचे वृक्ष और अट्टालिका (अटारी) के द्वारा राजाकी दृष्टिसे अन्तर्धान हो गया, इसी समय मुनिवर महातपा कौशिक श्रेष्ठ आये ॥ ४१ ॥ अपने शिष्योंको साथ ले अत्यन्त शीघ्र निष्ठुर क्रूर दर्शन ऋषि वहां आये विश्वामित्रने कहा हे महाबाहो ! जो आपने पहले राजसूयकी दक्षिणा कही है ॥ ४२ ॥ यदि सत्यका सन्मान करना आपका कर्त्तव्य है तो हे राजन् ! आप इस समय वह मुझको दीजिये, हरिश्चन्द्रने कहा कि हे राजर्षे ! मैं आपको प्रणाम करता हूं हे अनघ ! ॥ ४३ ॥ पहले राजसूय यज्ञकी जो दक्षिणा देनेको स्वीकार किया था आप वही दक्षिणा लीजिये विश्वामित्रने कहा हे राजेन्द्र ! आप दक्षिणाके लिये जो स्वर्णमुद्रा देते हैं वह कहांसे संग्रह की ? ॥ ४४ ॥ यह अर्थ जिस प्रकार उपार्जन किया है वह मुझसे कहो ? राजाने

वृक्ष गेहादिभिस्तुंगैस्तावादाय त्वरान्वितः ॥ अत्रांतरे मुनिश्रेष्ठस्त्वाजगाम महातपाः ॥ ४१ ॥ सशिष्य कौशिकेंद्रोऽसौ निष्ठुरः क्रूरदर्शनः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ या त्वयोक्ता पुरा राजन्राजसूयस्य दक्षिणा ॥ ४२ ॥ तां ददस्व महाबाहो यदि सत्यंपुरस्कृतम् ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ नमस्करोमि राजर्षे गृहाणेमां स्वदक्षिणाम् ॥ ४३ ॥ राजसूयस्य यागस्य या मयोक्ता पुराऽनघ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ कुतो लब्धमिदं द्रव्यं दक्षिणार्थे प्रदीयते ॥ ४४ ॥ एतदाचक्ष्व राजेंद्र यथा द्रव्यं त्वयाऽर्जितम् ॥ राजोवाच ॥ किमनेन महाभाग कथितेनतवानघ ॥ ४५ ॥ शोकस्तु वर्धते विप्र श्रुतेनानेन सुव्रत ॥ ऋषिरुवाच ॥ अशस्तं नैव गृह्णामि शस्तमेव प्रयच्छ मे ॥ ४६ ॥ द्रव्यस्यागमनं राजन्कथयस्व यथातथम् ॥ राजोवाच ॥ मया देवी तु सा भार्या विक्रीता कोटिसम्मितैः ॥ ४७ ॥ निष्कैः पुत्रो रोहिताख्यो विक्रीतोऽर्बुदसंख्यया ॥ विप्रैकादश कोटयस्त्वं सुवर्णस्य गृहाण मे ॥ ४८ ॥ सूत उवाच ॥ तद्वित्तं स्वल्पमालक्ष्य दारविक्रय संभवम् ॥ शोकाभिभूतं राजानं कुपितः कौशिकोऽब्रवीत् ॥ ४९ ॥

कहा हे महाभाग ! हे अनघ ! इसके कहनेसे क्या है ॥ ४५ ॥ इसके कथनसे मेरा शोक बढ़ता है विश्वामित्रने कहा हे राजन् अन्याय पूर्वक उपार्जित धन मैं ग्रहण नहीं करूंगा यदि यह धन न्यायके अनुसार उपार्जित हुआ है तो वह मुझको प्रदान कीजिये ॥ ४६ ॥ किंतु पहले धनके आनेका विषय मुझसे भलीभांति कहिये इसके उपरांत वह मुझको दो हरिश्चन्द्रने कहा हे विप्र ! अपनी भार्या देवी माधवीको करोड स्वर्ण मुद्रामें बेचा है ॥ ४७ ॥ और पुत्र रोहितको दसकरोड स्वर्णमुद्रामें बेचा है अतएव यह ग्यारह करोड सुवर्णमुद्रा आप मुझसे लीजिये ॥ ४८ ॥ सूतजीने कहा भार्या और पुत्रको बेचकर जो धन संचित किया था वह धन अत्यन्त सामान्य था और राजाको भी शोकसे अत्यंत अभिभूत देखकर कौशिक रोषयुक्त हो कहने लगे ॥ ४९ ॥

हे राजन् ! राजसूययज्ञकी दक्षिणा इतनी सामान्य नहीं हो सकती अतएव जिससे वह दक्षिणा पूर्ण हो उसके उपयोगी अन्य धन संग्रह कीजिये ॥ ५० ॥ हे क्षत्रियाधम ! यदि इस दक्षिणाको ही मेरे समान जानते हो तो पहले मेरी भलीभाँति अनुष्ठित तपस्या अमल ब्रह्मण्य उग्रप्रभाव और शुद्ध अध्ययनका विपुल बल शीघ्र अवलोकन कीजिये उसके उपरांत दक्षिणा देना ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे भगवन् ! केवल इस पत्नी और बालकको बेचा है इस कारण आप कुछ कालतक प्रतीक्षा कीजिये मैं और भी धनसंग्रह करके आपको देता हूं ॥ ५३ ॥ विश्वामित्रने कहा हे नराधिप ! दिनका जो चौथाभाग शेष है मैं केवल इसकीही प्रतीक्षा करूंगा इसके उपरांत फिर मुझको कुछ उत्तर न दे सकोगे ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे

ऋषिरुवाच ॥ राजसूयस्य यज्ञस्य नैषा भवतिदक्षिणा ॥ अन्यदुत्पादय क्षिप्रं संपूर्णा येन सा भवेत् ॥ ५० ॥ क्षत्रबंधो ममेमां त्वं सदृशीं यदि दक्षिणाम् ॥ मन्यसे तर्हि तत्क्षिप्रं पश्य त्वं मे परं बलम् ॥ ५१ ॥ तपसोऽस्य सुतप्तस्य ब्राह्मणस्यामलस्य च॥ मत्प्रभावस्य चोग्रस्य शुद्धस्याध्ययनस्य च ॥ ५२ ॥ राजोवाच ॥ अन्यद्दास्यामि भगवन्कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ॥ अधुनैवास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालकः ॥ ५३ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ चतुर्भागः स्थितो योऽयं दिवसस्य नराधिप ॥ एष एव प्रतीक्ष्यो मे वक्तव्यं नोत्तरं त्वया ॥ ५४ ॥ इति श्रीदे० महा० स० द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यास उवाच ॥ तमेवमुक्त्वा राजानं निर्घृणं निष्ठुरं वचः ॥ तदादाय धनं पूर्णं कुपितः कौशिको ययौ ॥ १ ॥ विश्वामित्रे गते राजा ततः शोकमुपागतः ॥ श्वाशोच्छ्वासं मुहुः कृत्वा प्रोवाचोच्चैरधोमुखः ॥ २ ॥ वित्तक्रीतेन यस्यार्तिर्मया प्रेतेन गच्छति ॥ स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यामे तिष्ठति भाष्करः ॥ ३ ॥ अथाजगाम त्वरितो धर्मश्चांडालरूपधृक् ॥ दुर्गंधो विकृतोरस्कः श्मश्रुलो दंतुरोऽघृणी ॥ ४ ॥

भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! इसके उपरांत महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त कुपित हो उस दीन धर्मनिष्ठ राजाका इस प्रकार निर्दय और निष्ठुर वचनोंसे तिरस्कारकर वह एकादश कोटि परिमित सुवर्ण लेकर चले गये ॥१॥उन ऋषियोंके चले जानेपर फिर राजा हरिश्चन्द्र शोकाकुल हो बारंवार लम्बे और उष्ण श्वास छोड़ते २ अधोमुख होकर ऊंचे स्वरसे कहने लगे ॥ २ ॥ मैं अत्यन्त दुःख और क्लेश भोगनेसे प्रेतरूप हुआ हूं तथापि धनसे मुद्राको मोल लेनेपर जो उपकार करे वह शीघ्र सूर्यास्तसे पहले मेरा उचित मूल्य स्थिर करे ॥ ३ ॥ इसके उपरांत धर्म निर्दय चांडालका रूप धारणकर हरिश्चन्द्रकी परीक्षा करनेके लिये शीघ्र उस स्थानमें आये उस अधम पुरुषका शरीर कृष्णवर्ण देखनेमें अत्यंत भयानक उदर लम्बा दांत विशाल और

मुखमण्डल श्मश्रुपूर्ण हाथमें जर्जर बांसका दंड गलेमें शवास्थिमाला विराजमान और वक्षस्थल अत्यन्त विकृत भावयुक्त था ॥ ४ ॥ ५ ॥ चाण्डालने कहा मुझको भृत्यका अत्यंत प्रयोजन है अतएव मैं तुमको दासत्वमें ग्रहण करूंगा तुम्हारा क्या मूल्य देना होगा वह अति शीघ्र प्रकाश करके कहो ॥ ६ ॥ व्यास जीने कहा हे महाराज ! अत्यंत दयाहीन क्रूरलोचन अतिदुष्ट स्वभाव उस चांडालके ऐसे वचन कहनेपर फिर राजा हरिश्चन्द्र उसकी ऐसी आकृती देखकर विस्मित हो कहने लगे कि, तुम कौन हो ॥ ७ ॥ चांडालने कहा कि हे नृपवर ! मैं प्रवीर नामक विख्यात चांडाल हूं तुमको सर्वदा मेरी आज्ञामें रहकर मृतक मनुष्यका वस्त्र ग्रहण करना होगा ॥ ८ ॥ तब राजाने उसके ऐसे वचन सुनकर कहा ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय मुझको ग्रहण करें, यही मेरी इच्छा है ॥ ९ ॥ देखो

कृष्णो लंबोदर स्निग्धः करालः पुरुषाधमः ॥ हस्तजर्जरयष्टिश्च शवमाल्यैरलंकृतः ॥ ५ ॥ चांडाल उवाच ॥ अहं गृह्णामि दासत्वे भृत्यार्थः सुमहान्मम ॥ क्षिप्रमाचक्ष्व मौल्यं किमेतत्ते संप्रदीयते ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ तं तादृशमथालक्ष्य क्रूरदृष्टिं सुनिर्घृणम् ॥ वदंतमतिदुःशीलं कस्त्वमित्याह पार्थिवः ॥ ७ ॥ चांडाल उवाच ॥ चांडालोऽहमिह ख्यातः प्रवीरेति नृपोत्तम ॥ शासने सर्वदा तिष्ठ मृतचैलापहारकः ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तदा राजा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि गृह्णात्विति मतिर्मम ॥ ९ ॥ उत्तमस्यो त्तमो धर्मो मध्यमस्य च मध्यमः अधमस्याधमश्चैव इति प्राहुर्मनीषिणः ॥ १० ॥ चांडाल उवाच ॥ एवमेव त्वया धर्मः कथितोनृपस त्तम ॥ अविचार्य त्वया राजन्नधुनोक्तं ममाग्रतः ॥ ११ ॥ विचारयित्वा यो ब्रूते सोऽभीष्टं लभते नरः सामान्यमेव तत्प्रोक्तमविचार्य त्वयाऽनघ ॥ १२ ॥

पंडितोंने कहा है कि उत्तमका धर्म उत्तम, मध्यमका धर्म मध्यम और अधमका धर्म अधम है इस कारण तुम अधम हो और मैं उत्तम हूं तुम्हारे घरमें मेरा धर्म कर्म नहीं चल सकता ॥ १० ॥ चांडालने कहा हे नृपसत्तम ! यदि यही आपका आन्तरिक अभिप्राय था तो जो कोई "ब्राह्मण मुझको ग्रहणकरे" यही बात तुमको कहनी उचित थी, परन्तु प्रकारांतरमें मिथ्या कहकर तुमने अधर्म किया तो किस लिये आपने विचार न करके केवल मेरे सामने इस बातका उल्लेख किया था ? ॥ ११ ॥ जो हो जो मनुष्य प्रथम विचारकर अपना अभिप्राय प्रकाश करता है, वही पुरुष अभीष्ट प्राप्त करता है, परन्तु हे अनघ ! आपने विचार न करके सामान्य वार्त्ता कही ॥ १२ ॥

यदि आपकी बात सत्य है तो आप मेरे ही गृहीत हुए इसमें संदेह नहीं,हरिश्चद्रने कहा जो नराधम असत्य व्यवहार करता है वह शीघ्र भयंकर नरकमें जाता है ॥ १३ ॥ इस कारण असत्य व्यवहारकी अपेक्षा मुझे चांडालपना श्रेष्ठ है। व्यासजीने कहा कि, हे महाराज राजा यह बात कह ही रहे थे कि, इसी समयमें तपोधन विश्वामित्रजी उस स्थानमें आये ॥ १४ ॥ वह क्रोध और आमर्शके वश हो घूर्णित नेत्र कर राजासे बोले कि यह चांडाल तुम्हारी इच्छानुसार धन देनेको उपस्थित है ॥ १५.॥ तब किस लिये अब मुझको यज्ञकी शेष दक्षिणा नहीं देते ? हरिश्चन्द्र बोले कि, हे कौशिक ! कोई विषय आपसे छिपा नहीं मेरा यह देह सूर्यवंशसे उत्पन्न हुआ है ॥ १६ ॥ इस कारण धनकी इच्छासे किस प्रकार चांडालका दास होना स्वीकार करूं ?

यदि सत्यं प्रमाणं ते गृहीतोऽसि न संशयः ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ असत्यान्नरके गच्छेत्सद्यः क्रूरे नराधमः ॥ १३ ॥ ततश्चांडालता साध्वी न वरा मे ह्यसत्यता ॥ व्यास उवाच ॥ तस्यैवं वदतः प्राप्तो विश्वामित्रस्तपोनिधिः ॥ १४ ॥ क्रोधामर्ष विवृत्ताक्षः प्राह चेदं नराधिपम् ॥ चांडालोऽयं मनस्थं ते दातुं वित्तमुपस्थितः ॥ १५ ॥ कस्मान्न दीयते मह्यमशेषा यज्ञदक्षिणा ॥ राजोवाच ॥ भगवन्सूर्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिक ॥ १६ ॥ कथं चांडालदासत्वं गमिष्ये वित्तकामतः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ यदि चांडाल वित्तं त्वमात्मविक्रयजं मम ॥ १७ ॥ न प्रदास्यसि चेत्तर्हि शप्स्यामि त्वामसंशयम् ॥ चांडालादथवा विप्राद्देहि मे दक्षिणा धनम् ॥ १८ ॥ विना चांडालमधुना नान्यः कश्चिद्धनप्रदः ॥ धनेनाहं विना राजन्न यास्यामि न संशयः ॥ १९ ॥ इदानीमेव मे वित्तं न प्रदास्यसि चेन्नृप ॥ दिनेऽर्धघटिकाशेषे तत्त्वां शापाग्निना दहे ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ हरिश्चन्द्रस्ततो राजा मृतवच्छ्रितजीवितः ॥ प्रसीदेति वदन्पादौ ऋषेर्जग्राह विह्वलः ॥ २१ ॥

विश्वामित्रने कहा कि यदि चांडालको अपनेको बेंचकर मुझको ॥ १७ ॥ धन न दोगे तो निश्चय जानो कि मैं तुमको अभी शाप देदूंगा चांडालसे हो अथवा ब्राह्मणसे हो मेरी दक्षिणाका धन अभी दो क्योंकि चांडालसे अतिरिक्त और कोई धन देनेवाला यहां नहीं है, परन्तु हे राजन् ! विना धन लिये नहीं जाऊंगा ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ हे नरपते ! यदि इस समय पहले कहा हुआ धन नहीं दोगे तो दिनकी आधी घड़ी शेष रहतेमें तुमको कोपानलमें भस्म करूंगा ॥ २० ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्रके ऐसे वचन सुन कर मृतकके समान हो गये, फिर भयसे व्याकुल हो प्रसन्न हूजिये, इस प्रकार कह कर ऋषिके दोनों चरणोंको पकड लिया ॥ २१ ॥

हरिश्चन्द्रने कहा हे विप्रर्षे ! मैं दीन और अत्यन्त कातर हुआ हूं और विशेष करके आपका भक्त दास हूं इस कारण आप प्रसन्न होकर मुझको क्लेशकर चांडालके सहवाससे छुड़ाइये ॥ २२ ॥ हे मुनिवर ! शेष धनके बदलेमें मैं आपका कार्य करूंगा अधिक क्या मैं आपका आज्ञानुवर्ती सेवक होकर आपके चित्तका अनुगामी हूंगा ॥ २३ ॥ विश्वामित्रने कहा हे महाराज ! तो तुम मेरे किंकर हुए हे नराधिप! इस समय सर्वदाही तुमको मेरे वचन प्रतिपालन करने होंगे ॥ २४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! विश्वामित्रके यह वचन कहनेपर राजा अत्यंत हर्षसे अपना पुनर्जन्म जान कौशिकसे कहने लगे ॥ २५ ॥ मैं सदा आपकी आज्ञा पालन करूंगा इस समय आपका क्या कार्य साधन करूं सो कहिये ॥ २६ ॥ तब विश्वामित्र चांडालको बुलाकर बोले कि हे चांडाल मेरे

हरिश्चन्द्र उवाच ॥ दासोऽस्म्यार्तोऽस्मि दीनोऽस्मि त्वद्भक्तश्च विशेषतः ॥ प्रसादं कुरु विप्रर्षे कष्टश्चांडालसंकरः ॥ २२ ॥ भवेयं वित्त शेषेण तव कर्मकरो वशः ॥ तवैव मुनिशार्दूल प्रेष्यश्चित्तानुवर्तकः ॥ २३ ॥ विश्ववामित्र उवाच ॥ एवमस्तु महाराज ममैव भव किंकरः ॥ किंतु मद्वचनं कार्यं सर्वदैव नराधिप ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ एवमुक्तेऽथ वचने राजा हर्षसमन्वितः ॥ अमन्यत पुनर्जातमात्मानं प्राह कौशिकम् ॥ २५ ॥ तवादेशं करिष्यामि सदैवाहं न संशयः ॥ आदेशय द्विजश्रेष्ठ किं करोमि तवानघ ॥ २६ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ चांडालागच्छ मद्दास मौल्यं किं मे प्रयच्छसि ॥ गृहाण दासं मौल्येन मया दत्तं तवाधुना ॥ २७ ॥ नास्ति दासेन मे कार्यं वित्ताशा वर्तते मम ॥ व्यास उवाच ॥ एवमुक्ते तदा तेन श्वपचो हृष्टमानसः ॥ २८ ॥ आगत्य सन्निधौ तूर्णं विश्वामित्रमभाषत ॥ चांडाल उवाच ॥ दशयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य च मंडले ॥ २९ ॥ भूमिं रत्नमयीं कृत्वा दास्ये तेऽहं द्विजोत्तम ॥ अस्य विक्रयणेनेयमार्तिश्च प्रहता त्वया ॥ ३० ॥

निकट आ और इस दासका जो मूल्य है वह मुझको दे मैं इस समय इस दासको तेरे हाथमें समर्पण करता हूं तू मूल्य देकर इसको ले ॥ २७ ॥ मुझको केवल धनकाही प्रयोजन है सेवककी कुछ आवश्यकता नहीं । व्यासजीने कहा हे महाराज ! विश्वामित्रकी यह बात कहनेसे श्वपचका हृदय आनंदरससे पूर्ण हो गया ॥ २८ ॥ तब वह शीघ्र विश्वामित्रके निकट आकर कहने लगा. चांडाल बोला कि हे द्विजसत्तम ! आपने इसको बेचा इससे आपको प्रयाग मंडलकी दशयोजन विस्तारवाली भूमि ॥ २९ ॥ रत्नमयी आपको दूंगा, इसको देकर आपने मेरा क्लेश निवारण किया है ॥ ३० ॥

व्यासजीने कहा हे महाराज ! जब चांडालने एक हजार मणि, एक हजार मोती और एक हजार सुवर्ण मुद्रा देदी तब विश्वामित्रने भी उनको ग्रहण किया ॥ ३१ ॥ उस समय महात्माहरिश्चंद्रके मुखमंडलपर कुछ भी विकार दिखाई नहीं दिया बरन् उन्होंने धैर्य धारणकर स्थित किया कि इस समय विश्वामित्र ही मेरे प्रभु हैं ॥ ३२ ॥ अतएव उन्होंने मुझको जिस कार्यमें नियुक्त किया है मुझको वही करना चाहिये, इसी समयमें सहसा अशरीरिणी वाणी आकाशसे सुनाई दी ॥ ३३ ॥ हे महाभाग ! तुम इस अंगीकार की हुई दक्षिणाको देकर ऋणसे छूट गये, फिर स्वर्गसे राजाके मस्तकके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ३४ ॥ इसी समय महातेजस्वी इन्द्रादि देवता "साधु साधु" कहकर राजाकी प्रशंसा करने लगे तब राजाने अत्यन्त हर्षित हो विश्वामित्रसे कहा ॥ ३५ ॥

व्यास उवाच ॥ ततो रत्नसहस्राणि सुवर्णमणिमौक्तिकैः ॥ चांडालेन प्रद त्तानि जग्राह द्विजसत्तमः ॥ ३१ ॥ हरिश्चंद्रस्तथा राजा निर्विकारमुखोऽभवत् ॥ अमन्यत तथा धैर्याद्विश्वामित्रो हि मे पतिः ॥ ३२ ॥ तत्तदेव मया कार्यं यदयं कारयिष्यति ॥ अथांतरिक्षे सहसा वाग्गुवाचाशरीरिणी ॥ ३३ ॥ अनृणोऽसि महाभाग दत्ता सा दक्षिणा त्वया ॥ ततो दिवः पुष्पवृष्टिःपपात नृपमूर्धनि ॥ ३४ ॥ साधु साध्विति तं देवाः प्रोचुः सेंद्रा महौजसः ॥ हर्षेण महताऽविष्टो राजा कौशिकमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ राजोवाच ॥ त्वं हि माता पिता चैव त्वं हि बंधुर्महामते ॥ यदर्थं मोहितोऽहं ते क्षणाच्चैवानृणीकृतः ॥ ३६ ॥ किं करोमि महाबाहो श्रेयो मे वचनं तव ॥ एवमुक्ते तु वचने नृपं मुनिरभाषत ॥ ३७ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ चांडालवचनं कार्यमप्रभृथ्यति ते नृप ॥ स्वस्ति तेऽस्त्विति तं प्रोच्य तदादाय धनं ययौ ॥ ३८ ॥ इतिश्रीदेवी भागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे हरिश्चंद्रोपाख्याने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ शौनक उवाच ॥ ततः किमकरोद्राजा चांडालस्य गृहे गतः ॥ तद् ब्रूहि सूतवर्य त्वं पृच्छतः सत्वरं हि मे ॥ १ ॥

राजा बोले हे महामते ! आपने जो अर्थदायसे छुडा कर क्षणमात्रमेंही मुझको ऋणविहीन किया है,इस कारण आप हमारे पिता माता और बंधुओंकी अपेक्षा भी हितकारी हैं ॥ ३६ ॥ हे महाबाहो ! आपके वचन ही श्रेष्ठ हैं इस कारण अब क्या करूं सो आज्ञा दीजिये, राजाकी यह वार्ता करने पर फिर विश्वामित्रने उनसे कहा ॥ ३७ ॥ मुनि बोले अबसेही तुम चांडालके वचन प्रतिपालन करो; तुम्हारा मंगल हो यह बात कहकर महर्षि विश्वामित्र उस चांडालके दिये धनको ग्रहणकर अपने आश्रममें चले गये ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ शौनकजी बोले कि हे सूतश्रेष्ठ ! राजा हरिश्चन्द्रने चांडालके घर जाकर फिर क्या कार्य किया वह आप शीघ्र मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सूतजी बोले हे विप्रवर ! विश्वामित्रके चले जाने पर चांडाल का मन प्रसन्न होगया उसने विश्वामित्रको इतने रत्न दिये थे, इस कारण वह नरपतिको बांधकर ॥ २ ॥ तैंने असत्य मार्गमें पैर रक्खा है, यह कहकर दंडसे प्रहार करने लगा, राजा एक तो इष्टजनोंके वियोगसे कातर हुए थे फिर उसपर भी चाण्डालका दंडाघात इस कारण इन प्रहारोंसे वह अत्यंत कातर हुए और इनकी इंद्रियें अत्यंत शिथिल हो गई ॥ ३ ॥ बांधववियोगका दुःख हुआ चांडालने ऐसी अवस्थासे राजाको अपने घर लाय शृंखलामें बांधकर रक्खा इसके उपरांत स्वयं क्लेश दूरकर निद्राका सुख अनुभव करने लगा ॥ ४ ॥ राजा चांडालके घर बेडियोंसे बंधे वास करने लगे परन्तु उसका अन्नजल ग्रहण न किया, वारंवार केवल स्त्री पुत्रादिके निमित्त अनुताप करने लगे ॥ ५ ॥ वह कृशाङ्गी

सूत उवाच ॥ विश्वामित्रे गते विप्रे श्वपचो हृष्टमानसः ॥ विश्वामित्राय तद्द्रव्यं दत्त्वा बद्ध्वा नरेश्वरम् ॥ २ ॥ असत्यो यास्यसीत्युक्त्वा दंडेनाताडयत्तदा ॥ दंडप्रहारसंभ्रांतमतीव व्याकुलेंद्रियम् ॥ ३ ॥ इष्टबंधुवियोगार्तमानीय निजपक्कणे ॥ निगडे स्थापयित्वा तं स्वयं सुष्वाप विज्वरः ॥ ४ ॥ निगडस्थस्ततो राजा वसंश्चांडालपक्कणे ॥ अन्नपाने परित्यज्य सदा वै तदशोचयत् ॥ ५ ॥ तन्वी दीनमुखी दृष्ट्वा बालं दीनमुखं पुरः ॥ मां स्मरत्यसुखाविष्टा मोक्षयिष्यति नौ नृपः ॥ ६ ॥ उपात्तवित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तं प्रतिश्रुतम् ॥ रोदमानं सुतं वीक्ष्य मां च संबोधयिष्यति ॥ ७ ॥ तातपार्श्वं व्रजामीति रुदंतं बालकं पुनः ॥ तात तातेति भाषंतं तथा संबोधयिष्यति ॥ ८ ॥ न सा मां मृगशावाक्षी वेत्ति चांडालतां गतम् ॥ राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः ॥ ९ ॥ ततश्चांडालता चेयमहो दुःखपरंपरा ॥ एवं स निवसन्नित्यं स्मरंश्च दयितां सुतम् ॥ १० ॥

सन्मुख पुत्रका मलीन वदन देखकर दुःखसे मुझको स्मरण करती होगी, वह अत्यंत दुःखित होकर जानती होगी कि राजा धन प्राप्त होनेपर मुझे दासत्वसे छुड़ावेंगे ॥ ६ ॥ जब वह धन उपार्जन कर ब्राह्मण को दे चुकेंगे तब रोते हुए पुत्रको देख मुझे समझावेंगे ॥ ७ ॥ मैं पिताके समीप जाता हूं इस प्रकारसे रोते हुए बालकको और तात तात करते हुएको समझावेगी ॥ ८ ॥ वह मृगशावक लोचनी यह नहीं जानती कि मैं चांडाल होगया, मेरा राज्यनाश सुहृद्वियोग भार्यापुत्रका विक्रय हुआ ॥ ९ ॥ और इस समय चांडालके दासत्व शृंखलामें बँधना पडा. हाय ! एकवारही क्लेशपर क्लेश मुझको सता रहे हैं राजाने इस प्रकारसे वारंवार भार्या और पुत्रको स्मरण कर ॥ १० ॥ चांडालके घरमें वास कर क्रमानुसार चार दिन व्यतीत किये, पांचवें दिन चांडालने वहां आय

बन्धनसे राजाको छोड ॥११॥ क्रोधित हो निष्ठुर वचनोंसे राजाको वारंवार भर्त्सना कर कहा कि तुम श्मशानमें जाकर मरे हुए मनुष्योंका वस्त्र ग्रहण करो ॥ १२ ॥ काशीके दक्षिण स्थानमें एक बडा भारी श्मशान है तुम वहां जाकर उस श्मशानकी रक्षा करो और न्यायके अनुसार जो मुझको मिलता है वह किसीपर मत छोडो ॥ १३ ॥ तुम यह जर्जर दंड लेकर शीघ्र वहां जाओ मैं वीरबाहुका दूत हूं और उनकाही यह दंड है यह बात कहकर संपूर्ण स्थानोंमें घोषण करो ॥ १४ ॥ सूतजीने कहा हे ऋषिगण ! इस प्रकारसे एक समय राजा हरिश्चन्द्र चांडालके वशवर्ती हो श्मशानमें मृतक मनुष्योंके वस्त्र लेनेके कार्यमें नियुक्त हुए ॥ १५ ॥ जब उस मृतक मनुष्योंका वस्त्र लेनेवाले चांडालने राजाको इस प्रकार कार्यमें नियुक्त किया तब वह उसकी आज्ञानुसार श्मशानमें गये

निनाय दिवसान्राजा चतुरो विधि पीडितः ॥ अथाऽह्नि पंचमे तेन निगडान्मोचितो नृपः ॥ ११ ॥ चांडालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारणे क्रुद्धेन परुषैर्वाक्यैर्निर्भर्त्स्य च पुनः पुनः ॥ १२ ॥ काश्याश्च दक्षिणे भागे श्मशानं विद्यते महत् ॥ तद्रक्षस्व यथान्यायं न त्याज्यं ॥ तत्त्वया क्वचित् ॥ १३ ॥ इमं च जर्जरं दंडं गृहीत्वा याहि मा चिरम् ॥ वीरबाहोरयं दंड इति घोषस्व सर्वतः ॥ १४ ॥ सूत उवाच ॥ कस्मिंश्चिदथ काले तु मृतचैलापहारकः ॥ हरिश्चंद्रोऽभवद्राजा श्मशाने तद्वशानुगः ॥ १५ ॥ चांडालेनानुशिष्टस्तु मृत चैलापहारिणा ॥ राजा तेन समादिष्टो जगाम शवमंदिरम् ॥ १६ ॥ पुर्यास्तु दक्षिणेदेशे विद्यमानं भयानकम् ॥ शवमाल्यसमाकीर्णं दुर्गंधबहुधूम कम् ॥ १७ ॥ श्मशानं घोरसन्नादं शिवाशतसमाकुलम् ॥ गृध्रगोमायु संकीर्णं श्ववृंदपरिवारितम् ॥ १८ ॥ अस्थिसंघात संकीर्णं महा दुर्गंधसंकुलम् ॥ अर्धदग्धशवास्यानि विकसद्दंतपंक्तिभिः ॥ १९ ॥ हसंतीवाग्निमध्यस्थकायस्यैवं व्यवस्थितिः ॥ नानामृत सुहृन्नादं महाकोलाहलाकुलम् ॥ २० ॥

॥ १६ ॥ यह श्मशान काशीपुरीके दक्षिणभागमें स्थित है उसके स्थान स्थनमें शवमाल्य बिखरी हुई हैं उसके चारों ओर दुर्गन्ध और धूम परिपूर्ण है ॥ १७ ॥ उस स्थानमें कितनीही शिवा भ्रमण करती हैं उनके घोर शब्दसे वह प्रेतभूमि प्रतिध्वनित होती है कहीं गृध्र कहीं गोमायु कहीं कुकुरगण शवदेह लेकर खैंचते हैं ॥ १८ ॥ स्थान स्थानमें ढेरके ढेर अस्थियोंके लगे हुए हैं शवसमूहोंकी दुर्गन्धसे श्मशानभूमि परिपूर्ण है, कहीं अग्निमध्यस्थित अर्द्धदग्ध शव मुखके दांत निकाल कर ॥ १९ ॥ मानों विकट हास्य करते हैं कि संपूर्ण देहोंकी अग्निमें दग्ध होकर यही दुर्दशा होती है वहां अनेक मनुष्योंके मृतक देह लाये जाते हैं और उनके सुहृद्वर्ग आर्त्तनादसे भयानक कोलाहल करते हैं ॥ २० ॥

कोई हा वत्स ! हा पुत्र तुम हमको छोडकर कहां चले गये ? कोई हा मित्र ! तुमने हमको छोडकर कहां प्रस्थान किया ? कोई हा बन्धो ! तुमने हमको छोड दिया ? कोई हा भ्रातः ! तुमने आज हमको त्याग दिया ? कोई हा भागिनेय ! तुमभी क्या आज हमको छोड गये ? कोई हा माननीय मातामह ! कोई हा मातुल ! ॥ २१ ॥ कोई हा पितामह ! कोई हा पितः ! कोई हा पौत्र ! कोई हा बांधव ! तुम आज कहां चलेगये एकवार आकर हमको दर्शन दो इसप्रकार प्राणियोंके भयंकर शब्दसे श्मशानभूमि परिपूर्ण होती थी ॥२२॥ मांस चर्बी और वसादि अग्निमें दग्ध हो शोः शो शब्द फैलाती हुई उस स्थानमें व्याकुलता करती हैं उस स्थानमें अग्निका भयंकर चट्चट् शब्द हो रहा है ॥ २३ ॥ इस प्रकार उस श्मशानका दृश्य कल्पांत कालके समान अत्यन्त भीषण था, राजा हरिश्चंद्र

हा पुत्र मित्र हा बंधो भ्रातर्वत्स प्रियाद्य मे ॥ हाप्यते भागिनेयार्ह हा मातुल पितामह ॥ २१ ॥ मातामह पितः पौत्र क्व गतोऽस्येहि बांधव ॥ इति शब्दैः समाकीर्णं भैरवैः सर्वदेहिनाम् ॥ २२ ॥ ज्वलन्मांसवसामेदच्छू मितिध्वनिसंकुलम् ॥ अग्नेश्चटचटाशब्दो भैरवो यत्र जायते ॥ २३ ॥ कल्पांतसदृशाकारं श्मशानं तत्सुदारुणम् ॥ स राजा तत्र संप्राप्तो दुःखादेवमशोचत ॥ २४ ॥ हा भृत्या मंत्रिणो यूयं क्व तद्राज्यं कुलोचितम् ॥ हा प्रिये पुत्र मे बाल मां त्यक्त्वा मन्द भाग्यकम् ॥ २५ ॥ ब्राह्मणस्य च कोपेन गता यूयं क्व दूरतः ॥ विना धर्मं मनुष्याणां जायते न शुभं क्वचित् ॥ २६ ॥ यत्नतो धारयेत्तस्मात्पुरुषो धर्ममेव हि ॥ इत्येवं चिंतयंस्तत्र चांडालोक्तं पुनः पुनः ॥ २७ ॥ मलेन दिग्धसर्वांगः शवानां दर्शने व्रजन् ॥ लकुटाकारकल्पश्च धावंश्चापि ततस्ततः ॥ २८ ॥ अस्मिञ्छव इदं मौल्यं शतं प्राप्स्यामि चाग्रतः ॥ इदं मम इदं राज्ञ इदं चांडालकस्य च ॥ २९ ॥

वहां जाकर अत्यंत दुःखके कारण इस प्रकारसे शोक करने लगे ॥ २४ ॥ हा मन्त्रीगण ! हा भृत्यगण ! तुम इस समय कहां हो ! हाय हमारा वंश परम्पराका राज्य कहां है ? हा प्रेयसी ! तुम इस हत भाग्यको छोड़कर ॥ २५ ॥ ब्राह्मणके कोपसे किस दूर स्थानमें चली गई हो धर्मके विना मनुष्य कभी सुख प्राप्त नहीं कर सकते ॥ २६ ॥ इस कारण पुरुष यत्न सहित केवल धर्मका ही उपार्जन करे राजा वारंवार इस प्रकारके चिंता करके अन्तमें चांडालका वचन स्मरण कर ॥ २७ ॥ मलीन अंग किये शवके ढूंढनेको गये दुश्चिंताके कारण उनकी अंगयष्टि यष्टिके समान क्षीण होगई थी परन्तु तो भी राजा हरिश्चन्द्र इधर उधर घूमकर ॥ २८ ॥ इस शवका शत मुद्रा मूल्य प्रथम मेरे हस्तगत होगा इस मूल्यमें यह राजाका यह मेरा और यह चांडालका ॥ २९ ॥

सदा इस प्रकारकी चिंता करते अत्यन्त दुरवस्थाको प्राप्त हुए सौ ग्रंथीकी एक पुराने वस्त्रकी कंथा पहरे थे ॥ ३० ॥ मुख बाहु उदर चरण सब अंग भस्म और धूलिसे व्याप्त थे अनेकविध वसा मेद मज्जासे पैरकी अंगुलीमें लिप्त होनेसे श्वास लेते ॥ ३१ ॥ अनेक जातिवाले मृतकोंको निमित्त जो अन्न पक्व होता है उसीसे क्षुधा निवृत करते उनकी माला शिरमें धरते ॥ ३२ ॥ रात्रि अथवा दिनमें नहीं सोते केवल हाय ! हाय ! शब्द करके सदा लम्बे स्वांस छोडते इस प्रकार उन्होंने सौ वर्षके समान बारह महीने बिताये ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥ सूतजीने कहा इधर कुमार रोहिताश्व एक दिन काशीके कुछेक दूर खेलनेके लिये बालकोंके सहित बाहर निकला ॥ १ ॥ प्रथम बालकोंके संग खेला इसके

इत्येवं चिंतयन्राजा व्यवस्थां दुस्तरां गतं ॥ जीर्णैकपटसुग्रंथिकृतकंथापरिग्रहः ॥ ३० ॥ चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदरांघ्रिकः ॥ नाना मेदोवसामज्जालिप्तपाण्यंगुलिःश्वसन् ॥ ३१ ॥ नानाशवौदनकृतक्षुन्निवृत्तिपरायणः ॥ तदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमंडलः ॥ ३२॥ न रात्रौ न दिवा शेते हाहेति प्रवदन्मुहुः ॥ एवं द्वादश मासास्तु नीता वर्षशतोपमाः ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते माहापुराणे सप्तमस्कंधे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥ सूत उवाच ॥ एकदा तु गतो रंतुं बालकैः सहितो बहिः ॥ वाराणस्या नातिदूरे रोहिताख्यः कुमारकः ॥ १ ॥ क्रीडां कृत्वा ततो दर्भान्ग्रहीतुमुप चक्रमे ॥ कोमलानलपमूलांश्च साग्रान्छत्त्यनुसारतः ॥ २ ॥ आर्यप्रीत्यर्थमित्युक्त्वा हस्तयुग्मेन यत्नतः ॥ सलक्षणाश्च समिधो बर्हिरिध्मं सलक्षणम् ॥ ३ ॥ पलाशकाष्ठान्यादाय त्वग्निहोमार्थमादरात् ॥ मस्तके भारकं कृत्वा खिद्य मानः पदेपदे ॥ ४ ॥ उदकस्थानमासाद्य तदा बालस्तृषाऽन्वितः ॥ भुवि भारं विनिक्षिप्य जलस्थाने तदा शिशुः ॥ ५ ॥

उपरांत अग्रभागयुक्त सहमूल कोमल कुशाओं और समिधोंको अपनी शक्तिके अनुसार ग्रहण करने लगा ॥२॥ बालकोंके यह कारण पूछनेपर रोहिताश्वने समान अवस्था वाले मित्रोंसे कहा मेरे प्रभु ब्राह्मण हैं उनकी ही प्रसन्नताके लिये यह ग्रहण किये हैं, उनसे यह बात कह यज्ञीयलक्षणवाली समिध अनलसंदीपक काष्ठ दोनों हाथोंसे मन्त्रसहित संग्रह करने लगा ॥ ३ ॥ फिर अग्निमें होम करनेके लिये लाया हुआ पलाशकाष्ठ और पूर्वोक्त द्रव्य सम्पूर्ण एकत्रकर उस भारको यत्नसहित मस्तकपर उठा लिया परन्तु प्रत्येक पदमें पीडित होने लगा ॥ ४ ॥ तब वह बालक प्याससे दुःखित हो जलके निकट स्थानमें जाय पृथ्वीपर भार डाल जल पान करनेके लिये जलाशयमें उतरा ॥ ५ ॥

वहां इच्छानुसार जलपान कर मुहूर्त्तभर विश्रामके उपरान्त ज्योंही बँबईके ऊपर उस भारको रखकर फिर मस्तकपर उठनेके लिये उसका उद्योग किया ॥ ६ ॥ कि उसी समय विश्वामित्रकी आज्ञासे प्राणियोंको भयावह अत्यंत घोर दर्शन महाविष महाकाय एक कृष्णवर्ण सर्प उस बँबईसे अकस्मात् बाहर निकला ॥ ७ ॥ इस सर्पने निकलते ही बालकको डसलिया उस बालकने पृथ्वीपर गिरकर तत्काल प्राण त्याग किया. उसके मित्र भी रोहिताश्वको मरा हुआ देखकर ब्राह्मणके घर गये ॥ ८ ॥ फिर बालक भयसे उद्विग्न हो शीघ्र उसकी माताके निकट उपस्थित हो कहने लगे हे विप्रदासी ! तेरा पुत्र हमारे साथ खेलनेको बाहर गया था ॥ ९ ॥ परन्तु अकस्मात् उस स्थानमें कालासर्पके काटनेसे मरगया. रोहिताश्वकी माता गिरे हुए वज्रके समान ॥ १० ॥ कठोर वचन

कामतः सलिलं पीत्वा विश्रम्य च मुहूर्तकम् ॥ वल्मीकोपरि विन्यस्तभारो हर्तुं प्रचक्रमे ॥ ६ ॥ विश्वामित्राज्ञया तावत्कृष्णसर्पो भयावहः ॥ महाविषो महाघोरो वल्मीकान्निर्गतस्तदा ॥ ७ ॥ तेनासौ बालको दष्टस्तदैव च पपात ह ॥ रोहिताख्यं मृतं दृष्ट्वा ययुर्बाला द्विजालयम् ॥ ८ ॥ त्वरिता भयविघ्नाः प्रोचुस्तन्मातुरग्रतः ॥ हे विप्रदासि ते पुत्रः क्रीडां कर्तुं बहिर्गतः ॥ ९ ॥ अस्माभिः सहितस्तत्र सर्पदष्टो मृतस्ततः ॥ इति सा तद्वचःश्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा ॥ १० ॥ पपात मूर्च्छिता भूमौ छिन्नेव कदली यथा ॥ अथ तां ब्राह्मणो रुष्टः पानीयेनाभ्यषिंचत ॥ ११ ॥ मुहूर्तांच्चेतनां प्राप्ता ब्राह्मणस्तामथाब्रवीत् ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अलक्ष्मीकारकं निंद्यं जानती त्वं निशामुखे ॥ १२ ॥ रोदनं कुरुषे दुष्टे लज्जा ते हृदये न किम् ॥ ब्राह्मणेनैवमुक्तासा न किंचिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥ रुरोदकरुणं दीना पुत्रशोकेन पीडिता ॥ अश्रुपूर्णमुखी दीना धूसरा मुक्तमूर्द्धजा ॥ १४ ॥

सुनते ही जडकटे हुए केलेके समान पृथ्वीपर गिर पडी, उसी समय ब्राह्मणने अतिरुष्ट हो उसके मुखपर जलसेचन किया ॥ ११ ॥ फिर उसके क्षणकालमें चेतना प्राप्त करनेपर ब्राह्मणने क्रोधित होकर उससे कहा ब्राह्मण बोला हे दुष्टे! रात्रिमें रोना अत्यन्त निन्दनीय है क्योंकि इससे अलक्ष्मीका आविर्भाव होता है ॥ १२ ॥ यह जानकर भी तू क्यों रोदन करती है तेरे हृदयमें क्या कुछ भी लज्जा नहीं है ? ब्राह्मणके इस प्रकार कहने पर भी उसने कुछ उत्तर न दिया ॥ १३ ॥ वरन् पुत्र शोकसे अत्यन्त कातर हो करुणास्वरसे रोदन करने लगी उस काल उसका शरीर धूलमें घुसा हुआ बाल बिखर गये और मुख नेत्रोंके जलसे भीग गया वह शोकसे वारंवार कातर हो करुणास्वरसे रोदन करने लगी ॥ १४ ॥

तब उस ब्राह्मणने क्रोधित होकर उस राजपत्नीसे कहा रे दुष्टे ! तुझको धिक्कार है मैं तुझे मूल्य देकर मोल लाया हूं तोभी तू मेरे कार्यमें हानि करती है ॥१५॥ यदि तू मेरा कार्य न कर सकती तो क्यों व्यर्थ मेरा धन ग्रहण किया उस ब्राह्मणके वारंवार इस प्रकार निष्ठुर वचनोंसे तिरस्कार करने पर ॥ १६ ॥ उसने करुणा स्वरसे रोदन करते गद्गद हो ब्राह्मणसे कहा हे स्वामिन् ! मेरा बालक पुत्र सर्पके काटनेसे मरगया है ॥ १७ ॥ हे सुव्रत ! मैं उसको फिर न देखसकूंगी अतएव मैं उस बालक पुत्रको देखनेके लिये जाऊंगी आप कृपाकरके शीघ्र मुझको आज्ञा दीजिये ॥१८॥ यह बात कहकर वह बाला फिर करुणास्वरसे रोदन करने लगी ब्राह्मणभी महाक्रोधितहो फिर राजपत्नीसे कहने लगा ॥ १९ ॥ ब्राह्मण बोले हे शठे ! तेरा आचरण अत्यन्त दूषणीय है किससे पातक होता है उसको

अथ तां कुपितो विप्रो राजपत्नीमभाषत ॥ धिक्त्वां दुष्टे क्रयं गृह्य मम कार्यं विलुंपसि ॥ १५ ॥ अशक्ता चेत्कथं तर्हि गृहीतं मम तद्धनम् ॥ एवं निर्भर्त्सिता तेन क्रूरवाक्यैः पुनः पुनः ॥ १६ ॥ रुदिता कारणं प्राह विप्रं गद्गदया गिरा ॥ स्वामिन्मम सुतो बालः सर्पदष्टो मृतो बहिः ॥ १७ ॥ अनुज्ञां मे प्रयच्छस्व द्रष्टुं यास्यामि बालकम् ॥ दुर्लभं दर्शनं तेन संजातं मम सुव्रत ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा करुणं बाला पुनरेव रुरोद ह ॥ पुनस्तां कुपिता विप्रो राजपत्नीमभाषत ॥ १९ ॥ ब्राह्मण उवाच शठे दुष्टसमाचारे किं न जानासि पातकम् ॥ यः स्वामिवेतनं गृह्य तस्य कार्यं विलुम्पति ॥ २० ॥ नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपूर्वके ॥ उषित्वा नरके कल्पं ततोऽसौ कुक्कुटो भवेत् ॥ २१ किमनेनाथवा कार्यधर्मसंकीर्तनेन मे ॥ यस्तु पापरतो मूर्खः क्रूरो नीचोऽनृतः शठः ॥ २२ ॥ तद्वाक्यं निष्फलं तस्मिन्भवेद्वीजमिवोषरे ॥ एहि ते विद्यते किंचित्परलोकभयं यदि ॥ २३ ॥ एवमुक्ताऽथ सा विप्रं वेपमानाऽब्रवीद्वचः ॥ कारुण्यं कुरु मे नाथ प्रसीद सुमुखो भव ॥ २४ ॥

नहीं जानती जो मनुष्य प्रभुका धनग्रहण कर उसका कार्य नहीं करता है ॥ २० ॥ वह घोर रौरव नरकमें पड़ता है वह अल्पकाल नरकमें वासकर फिर मुर्गेकी योनिको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ अथवा इस धर्मशास्त्रके उपदेश देनेका मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है क्योंकि जो मनुष्य मूर्ख क्रूर, नीच, शठ और मिथ्यावादी तथा पापकार्यमें रत है ॥ २२ ॥ उससे इस प्रकारके वचन कहने ऊषरभूमिमें बीज बोनेके समान निष्फल है अतएव यदि तुमको परलोकका भय हो तो इस समय आकर घरका कार्य करो ॥ २३ ॥ वह यह सुनकर कंपित हो ब्राह्मणसे बोली कि हे प्रभो ! आप प्रसन्न हूजिये और दासीके ऊपर प्रसन्न होकर कृपा प्रकाश कीजिये ॥ २४ ॥

मैं एकबार उस मृतक बालकको देखने जाऊंगी अतएव आप मुहूर्तकालके लिये मुझको भेज दीजिये वह बाला पुत्रशोकसे ऐसी कातर हो गई थी कि यह बात कह ब्राह्मणके पैरोंमें मस्तक रख ॥ २५ ॥ करुणास्वरसे रोदन करने लगी तब वह कुपित विप्र क्रोधसे लाल २ नेत्रकर उससे कहने लगा ॥ २६ ॥ ब्राह्मण बोले तेरे पुत्रसे मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? मेरे क्रोधको क्या तू नहीं जानती ? मेरा कशाघात क्या तू भूलगई अतएव शीघ्र मेरे गृहकार्यमें तत्पर हो ॥ २७ ॥ उसके इस प्रकारके वचन सुनकर राजमहिषी धैर्य अवलम्बनकर गृहकार्य करने लगी उस ब्राह्मणके पैर दबाते २ राजपत्नीको आधी रात बीत गई ॥ २८ ॥ उस कार्यके समाप्त होनेपर ब्राह्मणने उससे कहा अब तू पुत्रके निकट जा परंतु उसका दाहादिकार्य सम्पादनकर शीघ्र इस

प्रस्थापय मुहूर्तं मां यावद्द्रक्षामि बालकम् ॥ एवमुक्ताऽथ सामूर्ध्ना निपत्य द्विजपादयोः ॥ २५ ॥ रुरोद करुणं बाला पुत्रशोकेन पीडिता ॥ अथाह कुपितो विप्रः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २६ ॥ विप्र उवाच ॥ किं ते पुत्रेण मे कार्यं गृहकर्म कुरुष्व मे ॥ किं न जानासि मे क्रोधं कशाघातफलप्रदम् ॥ २७ ॥ एवमुक्ता स्थिता धैर्याद् गृहकर्म चकार ह ॥ अर्धरात्रो गतस्तस्याः पादाभ्यंगादिकर्मणा ॥२८॥ ब्राह्मणेनाथ सा प्रोक्ता पुत्रपार्श्वं व्रजाधुना ॥ तस्य दाहादिकं कृत्वा पुनरागच्छ सत्वरम् ॥ २९ ॥ न लुप्येत यथा प्रातर्गृहकर्म मतिमे च ॥ ततस्त्वेकाकिनी रात्रौ विलपंती जगाम ह ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा मृतं निजं पुत्रं भृशं शोकेन पीडिता ॥ यूथभ्रष्टा कुरंगीव विवत्सा सौरभी यथा ॥ ३१ ॥ वाराणस्या वहिर्गत्वा क्षणाद्दृष्ट्वा निजं सुतम् ॥ शयानं रंकवद्भूमौ काष्ठदर्भतृणोपरि ॥ ३२ ॥ विललापातिदुःखार्ता शब्दं कृत्वा सुनिष्ठुरम् ॥ एहि मे संमुखं कस्माद्रोषितोऽसि वदाधुना ॥ ३३ ॥

स्थानमें आ ॥ २९ ॥ देखो मेरे प्रातःकालके गृहकार्यमें कुछ हानि न हो परंतु राजपत्नी उसकी आज्ञा पाय अकेली विलाप करते २ रात्रिकालके समय पुत्रके समीप गई ॥ ३० ॥ क्रमानुसार काशीके बहिर्भागमें उपस्थित होकर देखा कि उसका पुत्र दरिद्रके समान पृथ्वीमें काष्ठ और तृणके ऊपर पडा है अपने पुत्रको मृतक अवस्थामें देखकर वह दीन राजमहिषी यूथभ्रष्ट मृगी और वत्सहीन गायके समान शोकातुर हुई ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तब राजपत्नी माधवी अत्यंत दुःखित हो अति कातरस्वभावसे इस प्रकार रुदन करनेलगी हा पुत्र ! तुम एक वार मेरे सन्मुख आओ किस कारणसे तुमको क्रोध हुआ सो मुझको कहो ॥ ३३ ॥

हा वत्स ! तुम जो वारंवार मा मा कहकर सदा मेरे पास आते तो इस समय क्यों नहीं आते यह बात कहते २ डगमगाते पैरोंसे जाय मूर्च्छित हो उसके ऊपर गिरपडी ॥ ३४ ॥ फिर वह चैतन्यताको प्राप्त होकर दोनों हाथोंसे पुत्रको आलिंगनकर उसका मुख चूम कातरस्वरसे रोने लगी ॥ ३५ ॥ हा पुत्र ! हा वत्स ! हा कुमार ! हा सुन्दर ! इस प्रकार कहकर रुदन और मस्तक तथा वक्षःस्थलमें कराघात करनेलगी ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! तुम कहां हो ? तुम जिस अपने पुत्रको प्राणोंकी अपेक्षा भी अधिक जानते थे तुम्हारा वही पुत्र आज मृतक अवस्थामें पृथ्वीपर पडा है एकवार आकर देखो ॥ ३७॥ ज्ञात होता है कि पुत्र अभी जीवित है यह विचारकर उसका मुख देखन लगी परंतु जब उसका वदन निर्जीव जाना तब तत्काल फिर मूर्च्छित हो गई ॥ ३८॥

आयास्यभिमुखो नित्यमंबेत्युक्त्वा पुनः पुनः ॥ गत्वास्खलत्पदा तस्य पपातोपरिमूर्च्छिता ॥ ३४ ॥ पुनः सा चेतनां प्राप्य दोर्भ्यां मालिंग्य बालकम् ॥ तन्मुखे वदनं न्यस्य रुरोदार्तस्वनैस्तदा ॥ ३५ ॥ कराभ्यां ताडनं चक्रे मस्तकस्योदरस्य च ॥ हा बाल हा शिशो वत्स हा कुमारक सुन्दर ॥ ३६ ॥ हा राजन्क गतोऽसि त्वं पश्येमं बालकं निजम् ॥ प्राणेभ्योऽपि गरीयांसं भूतले पतितं मृतम् ॥ ३७ ॥ तथाऽपश्यन्मुखं तस्य भूयो जीवितशंकया ॥ निर्जीववदनं ज्ञात्वा मूर्च्छिता निपपात ह ॥ ३८ ॥हस्तेन वदनं गृह्य पुनरेवमभाषत ॥ शयनं त्यज हे बाल शीघ्रं जागृहि भीषणम् ॥ ३९ ॥ निशार्धं वर्धते चेदं शिवाशतनिनादितम् ॥ भूतप्रेतपिशाचादिडाकिनीयूथनादितम् ॥ ४० ॥ मित्राणि ते गतान्यस्तात्त्वमेकस्तु कुतः स्थितः ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा पुनस्तन्वी करुणं प्ररुरोद ह ॥ ४१ ॥ हा शिशो बाल हा वत्स रोहिताश्व कुमारक ॥ रे पुत्र प्रतिशब्दं मे कस्मात्त्वं न प्रयच्छसि ॥ ४२ ॥

फिर शीघ्रही संज्ञाको प्राप्तकर दोनों हाथोंसे उसका वदन ग्रहणकर उससे कहने लगी हे वत्स ! निद्रा त्यागकर शीघ्रही जागरित हो जाओ अब भीषण ॥ ३९ ॥ रात्रि उपस्थित है इस समय शतशत शिवाका घोर शब्द सुनाई आता है. इस समय क्या भूत क्या प्रेत पिशाच और डाकिनियोंके यूथके यूथ हूँहूँकार शब्द करते हुए भ्रमण करते हैं ॥४०॥ तुम्हारे मित्र सूर्य अस्त होतेही चले गये तुम क्यों इससमय अकेले इस स्थानमें रहगये हो, सूतजीने कहा यह कह वह कृशांगी राजमहिषी फिर करुणा स्वरसे रोदन करने लगी ॥ ४१ ॥ हा शिशो ! हा बाल ! हा रोहिताश्व ! हा वत्स ! हा कुमार ! हा पुत्र ! तुम क्यों मुझको उत्तर नहीं देते ॥ ४२ ॥

हे वत्स ! मैं तुम्हारी जननी हूं यह तुम क्या नहीं जानते, एकवार मेरी ओर देखो हे पुत्र ! मैं राज्यसे च्युत और अपने देशसे निकल आई हूँ मेरे स्वामीने भी अपना देह पर्यंत बेंच डाला है ॥ ४३ ॥ मैं स्वयं दासी हो गई हूं ऐसी अवस्थामें कौन प्राणीजीवनधारण करनेमें समर्थ होगा केवल तुम्हारा मुख देखकरही जीवित रहती थी तुम्हारे जन्म कालके समय ब्राह्मणोंने जो भविष्यत् वचन कहे थे अब तो वह कुछभी दिखाई नहीं देते ॥ ४४ ॥ उन्होंने कहा था कि यह बालक शूरवीर दीर्घायु दाता और देव ब्राह्मण तथा गुरुजनोंकी पूजामें तत्पर होगा अधिक क्या भूमण्डलका एकमात्र अधीश्वर होकर पुत्र और पौत्रोंके सहित राज्यसुख अनुभव करेगा ॥ ४५ ॥ यह पुत्र जितेन्द्रिय होकर माता पिताका प्रिय कार्य साधन करेगा, हा पुत्र ! अब संपूर्ण बातेंही मिथ्या हुईं ॥ ४६ ॥

तवाऽहं जननी वत्स किं न जानासि पश्य माम् ॥ देशत्यागाद्राज्यनाशात्पुत्र भर्त्रा स्वविक्रयात् ॥ ४३ ॥ यद्दासीत्वाच्च जीवामि त्वां दृष्ट्वा पुत्र केवलम् ॥ ते जन्मसमये विप्रैरादिष्टं यत्त्वनागतम् ॥४४॥ दीर्घायुः पृथिवीराजः पुत्रपौत्र समन्वितः ॥ शौर्यदानरतिः सत्त्वो गुरुदेवद्विजार्चकः ॥ ४५ ॥ मातापित्रोस्तु प्रियकृत्सत्यवादी जितेंद्रियः ॥ इत्यादि सकलं जातमसत्यमधुना सुत ॥ ४६ ॥ चक्रमत्स्या वातपत्रश्रीवत्सस्वस्तिकध्वजाः ॥ तव पाणितले पुत्र कलशश्चामरं तथा ॥४७॥ लक्षणानि तथाऽन्यानि त्वद्धस्ते यानि संति च ॥ तानि सर्वाणि मोघानि संजातान्यधुना सुत ॥ ४८ ॥ हा राजन्पृथिवीनाथ क्व ते राज्यं क्व मंत्रिणः ॥ क्व ते सिंहासनं छत्रं क्व ते खड्गः क्व तद्धनम् ॥ ४९ ॥ क्व साऽयोध्या क्व हर्म्याणि क्व गजाश्वरथप्रजाः ॥ सर्वमेतत्तथा पुत्र मां त्यक्त्वा क्व गतोऽसि रे ॥५०॥ हा कांत हा नृपागच्छ पश्येमं स्वसुतं प्रियम् ॥ येन ते रिंगता वक्षः कुंकुमेनावलेपितम् ॥ ५१ ॥

हा पुत्र ! चक्र, मत्स्य, आतपत्र, श्रीवत्स, स्वस्तिक, ध्वज, कलश और चमर इत्यादि संपूर्ण चिन्हही तुम्हारी हथेलीमें विद्यमान हैं हे सुत ! इनके सिवाय अन्यान्य सम्पूर्ण ॥ ४७ ॥ शुभ लक्षण भी तुम्हारे पैरोंके नीचे तलुओंमें विराजमान हैं, परंतु वह सभी क्या व्यर्थ हो गये ? ॥ ४८ ॥ हा वत्स ! तुम पृथ्वीके अधीश्वर हो परन्तु तुम्हारा वह राज्य, वह मंत्रीलोग, वह सिंहासन; वह क्षत्र, वह खड्ग, वह विपुलधन ॥४९॥ वह अयोध्यानगरी, वह शोभायमान अटारियें ! वह गज, अश्व, रथ और प्रजावर्ग आज कहां है ? हा पुत्र ! इस समय इन सब और माताको छोड़कर तुम कहां चले गये ॥ ५० ॥ हा कांत ! हा नाथ ! आकर इस समय अपने पुत्रको देखो जो पुत्र अतिबाल्यावस्थामें विचरण करते २ कुंकुमविलेपित तुम्हारा विशाल वक्षःस्थल ॥ ५१ ॥

अपने शरीरको रजःपंकसे मलीन किया करता था हा नरनाथ! हे भूपते! जो पुत्र तुम्हारी गोदीमें जाकर बाल्यस्वभावके अज्ञान वशसे मृगनाभि रचित तुम्हारे ॥ ५२ ॥ माथेपर तिलक मल देता आज उस पुत्रकी अवस्था देखो आहा! पहले मैं धूलिलिप्त जिसके मुखको चूमती थी ॥ ५३ ॥ आज उसी मुखपर मक्खियें बैठती हैं कीट दंशन करते हैं हाय! यह भी मैं आंखोंसे देखती हूं हे राजन्! तुम्हारा वह पुत्र दरिद्रके समान मृतक अवस्थामें भूशय्यापर शयन कर रहा है तुम एक बार आकर देखो ॥ ५४ ॥ हा देव मैंने जन्मान्तरमें क्या कार्य किया है कि इस लोकमें उस कर्मके फलके पार पानेका उपाय नहीं देखती ॥ ५५ ॥ हा पुत्र! हा शिशो! हा वत्स हा कुमार! हा सुन्दर! अब कहीं भी क्या तुमको नहीं देखूंगी? राजमहिषी माधवी इस प्रकार

स्वशरीररजःपंकैर्विशालं मलिनीकृतम् ॥ येन ते बालभावेन मृगनाभिविलेपितः ॥ ५२ ॥ भ्रंशितो भालतिलकस्तवांकस्थेन भूपते ॥ यस्य वक्त्रं मृदालिप्तं स्नेहार्द्रे चुंबितं मया ॥ ५३ ॥ तन्मुखं मक्षिकालिंग्यं पश्ये कीटैर्विदूषितम् ॥ हा राजन्पश्य तं पुत्रं भुवि स्थं रंकवन्मृतम् ॥ ५४ ॥ हा देव किं मयाऽकृत्यं कृतं पूर्वभवांतरे ॥ तस्य कर्मफलस्येह न पारमुपलक्षये ॥ ५५ ॥ हा पुत्र हा शिशो वत्स हा कुमारक सुंदर ॥ एवं तस्या विलापं ते श्रुत्वा नगरपालकाः ॥ ५६ ॥ जागृतास्त्वरितास्तस्या पार्श्वमीयुः सुविस्मिताः ॥ जना ऊचुः ॥ का त्वं बालश्च कस्यायं पतिस्ते कुत्र तिष्ठति ॥ ५७ ॥ एकैव निर्भया रात्रौ यस्मात्त्वमिह रोदिषि ॥ एवमुक्ताऽथ सा तन्वी न किंचिद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५८ ॥ भूयोऽपि पृष्टा सा तूष्णीं स्तब्धीभूता बभूव ह ॥ विललापाऽतिदुःखार्ता शोकाश्रुप्लुतलोचना ॥ ५९ ॥ अथ ते शंकितास्तस्यां रोमांचिततनूरुहाः ॥ संत्रस्ताः प्राहुरन्योन्यमुद्धृतायुधपाणयः ॥ ६० ॥

अनेक प्रकारके विलाप करने लगी नगरपाल उसके इस प्रकार विलापकी ध्वनिको सुनकर ॥५६॥ जाग गये और अत्यन्त विस्मित हो शीघ्र उसके निकट जाय पूछने लगे नगरनिवासी बोलेकि तू कौन है यह किसका पुत्र है तेरापति कहां है? ॥ ५७ ॥ तू अकेली निर्भय रात्रि कालके समय क्यों इस स्थानमें रोदन करती है? उनके इस प्रकार पूछनेपर भी इस कृशांगी राजमहिषीने कुछ उत्तर न दिया ॥ ५८ ॥ फिर पूछनेपर भी वह कुछ न बोली, परंतु कुछ कालोपरांत ही अत्यंत दुःखसे कातर हो विलाप करने लगी, शोकसे उसके दोनों नेत्रोंसे प्रबल अश्रुधारा बहने लगी ॥ ५९ ॥ अनंतर मनुष्य उसके ऊपर सन्देहकर शंकित हुए, यही क्या बरन् त्राससे उनके सब अंग रोमांचित हो गये, तब वह संपूर्ण शस्त्र निकालकर परस्पर कहने लगे ॥ ६० ॥

यह स्त्री जब कि कुछ उत्तर नहीं देती तो यह कभी स्त्री नहीं है ऐसा बोध होता है कि कोई मायावी बालघातिनी राक्षसी होगी, इस कारण यत्नसहित इसको मारना उचित है ॥ ६१ ॥ यदि राक्षसी न होती तो क्यों रात्रिके समय इस नगरके बाहरी भागमें स्थित करती? यह राक्षसी किसी बालकको भक्षण करनेके निमित्त इस स्थानमें लाई है इसमें संदेह नहीं ॥ ६२ ॥ यह बात कह उन्होंने शीघ्रही उसके केशोंको दृढ़रूपसे पकड़कर हे राक्षसि ! कहां जाती है? इस प्रकार कह किसीने उसका हाथ और किसीने उसकी गर्दन पकड ली ॥ ६३ ॥ तब उन असंख्य अस्त्रधारी पुरुषोंने बलपूर्वक उसे चांडालके घर ले जाकर चांडालके हाथमें समर्पण किया ॥ ६४ ॥ सबने मिलकर कहा कि हे चांडाल ! आज नगरके प्रांतभागमें इस बालकघातिनी राक्षसीको पकडा है अतएव तुम बाहर वध भूमिमें लेजाकर इसको शीघ्र मारो ॥६५॥ चांडालने उसके शरीरको देखकर कहा कि यह राक्षसी इस लोकमें

नूनं स्त्री न भवत्येषा यतः किंचिन्न भाषते ॥ मायान्तस्थ्या भवेदेषा यत्नतो बालघातिनी ॥ ६१ ॥ शुभा चेत्तर्हि किं ह्यत्र निशार्धे तिष्ठते बहिः ॥ भक्षार्थमनया नूनमानीतः कस्यचिच्छिशुः ॥ ६२ ॥ इत्युक्त्वा तैर्गृहीता सा गाढं केशेषु सत्वरम् ॥ भुजयोरपरैश्चैव कैश्चापि गलके तथा ॥ ६३ ॥ खेचरी यास्यतीत्युक्तं बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ॥ आकृष्य पक्कणे नीता चांडालाय समर्पिता ॥ ६४ ॥ हे चांडाल बहिर्दृष्टा ह्यस्माभिर्बालघातिनी ॥ वध्यतां वध्यतामेषा शीघ्रं नीत्वा बहिःस्थले ॥ ६५ ॥ चांडालः प्राह तां दृष्ट्वा ज्ञातेयं लोकविश्रुता ॥ न दृष्टपूर्वा केनापि लोकडिंभान्यनेकधा ॥ ६६ ॥ भक्षितान्यनया भूरि भवद्भिः पुण्यमर्जितम् ॥ ख्यातिर्वः शाश्वती लोके गच्छध्वं च यथासुखम् ॥६७॥ द्विजस्त्री बालगोघाती स्वर्णस्तेयी च यो नरः ॥ अग्निदो वर्त्मघाती च मद्यपो गुरुतल्पगः ॥ ६८ ॥ महाजनविरोधी च तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥ द्विजस्यापि स्त्रियो वाऽपि न दोषो विद्यते वधे ॥ ६९ ॥

विख्यात है मैं इसको पहलेसेही जानता हूं परंतु इसको कभी कोई नहीं देखता इस मायावीने साधारण मनुष्योंके अनेक बालक ॥ ६६ ॥ भक्षण किये हैं इसके मारनेसे तुमको बहुत पुण्य होगा और इस लोकमें तुम्हारी सुकीर्ति सर्वदा विख्यात रहेगी इस समय तुम अपने२घरोंको जाओ ॥ ६७ ॥ जो मनुष्य स्त्री, बालक, गौ और ब्राह्मणकी हत्या करता है जो सोना चुराता है और आग लगाता है जो मनुष्योंका गमनमार्ग विलुप्त करता है जो गुरुपत्नी हरण ॥ ६८ ॥ साधुजनोंके सहित विरोध और सुरापान करता है उसके मारनेसे पुण्य होता है स्त्रीलोक अथवा ब्राह्मणभी यदि इस प्रकार पापकार्यमें लिप्त हों तो भी उसके मारनेमें कुछ दोष नहीं होता ॥ ६९ ॥

अतएव इसको मारना मेरा अवश्य कर्त्तव्य है चांडालने यह बात कहकर उसको मजबूत बांध लिया और उसके बालोंको खेंचकर रस्सीसे मारने लगा ॥ ७० ॥
इसके पीछे उसने निष्ठुर वचनोंसे हरिश्चन्द्रसे कहा रे दास! इसका वधकर दुष्टस्वभाव यह स्त्रीअत्यन्त दुष्ट है अतएव इसके वध करनेमें कुछ विचार न करना
॥ ७१ ॥ तब नरपति उसके इस प्रकार गिरे हुए वज्रके समान कठोर वचन सुनकर कम्पित हो गये फिर चित्तको स्थिरकर स्त्रीवधकी शंकासे चांडालसे
बोले ॥ ७२ ॥ मैं इस कार्यके करनेमें असमर्थ हूं इस कारण आप यह भार अन्य सेवकके ऊपर डालिये, वही इसको मारेगा आप इसके अतिरिक्त जिस
किसी कार्यकी आज्ञा देंगे यदि असाध्य हो तो भी मैं उसे करूंगा ॥ ७३ ॥ राजाके यह वचन सुनकर श्वपचने कहा तू भय त्यागकर असि ग्रहणकर इसका

अस्या वधश्च मे योग्य इत्युक्त्वा गाढबंधनै ॥ बद्ध्वा केशेष्वथाकृष्य रज्जुभिस्तामताडयत् ॥ ७० ॥ हरिश्चन्द्रमथोवाच वाचा परुषया
तदा ॥ रे दास वध्यतामेषा दुष्टात्मा मा विचारय ॥ ७१ ॥ तद्वाक्यं भूपतिः श्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा ॥ वेपमानोऽथ चांडालं प्राह
स्त्रीवधशंकितः ॥ ७२ ॥ न शक्तोहमिदं कर्तुं प्रेष्यं देहि ममापरम् ॥ असाध्यमपि यत्कर्म तत्करिष्ये त्वयोदितम् ॥ ७३ ॥ श्रुत्वा
तदुक्तवचनं श्वपचो वाक्यमब्रवीत् ॥ मा भैषीस्त्वं गृहाणाऽसिं वधोऽस्याः पुण्यदो मतः ॥ ७४ ॥ बालानामेव भयदा नेयं रक्ष्या
कदाचन ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ ७५ ॥ स्त्रियो रक्ष्याः प्रयत्नेन न हंतव्याः कदाचन ॥ स्त्रीवधे कीर्तितं पापं
मुनिभिर्धर्मतत्परैः ॥ ७६ ॥ पुरुषो यः स्त्रियं हन्याज्ज्ञान तोऽज्ञानतोऽपि वा ॥ नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपूर्वके ॥ ७७ ॥ चांडाल
उवाच ॥ मा वदाऽसिं गृहाणैनं तीक्ष्णा विद्युत्समप्रभम् ॥ यत्रैकस्मिन्वधं नीते बहूनां तु सुखं भवेत् ॥ ७८ ॥ तस्य हिंसा कृता नूनं
बहुपुण्यप्रदा भवेत् ॥ भक्षितान्यनया भूरि लोके डिंभाति दुष्टया ॥ ७९ ॥

मारना पुण्यदायक है ॥ ७४ ॥ यह मायाविनी बालकोंको सर्वदा नष्ट करती है, इसकी रक्षा करना कभी उचित नहीं राजा उसके इस प्रकारके वचन सुन महादुः
खित हो कहने लगे कि ॥ ७५ ॥ स्त्रियोंकी रक्षा करना सर्वदा उचित है कभी संहार करना ठीक नहीं है विशेषकरके धर्मपरायण मुनियोंने स्त्रीके मारनेमें
अधिक पाप निर्देश किया है ॥७६॥ जो पुरुष ज्ञान अथवा अज्ञानसे स्त्री हत्या करता है वह मनुष्य महारौरव नरकमें पडता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ७७ ॥
चांडालने कहा तुम यह बात मत कहो बिजलीके समान प्रभावयुक्त यह असि ग्रहण करो जिस स्थानमें एकका वध होनेसे अनेकोंको सुख हो ॥ ७८ ॥ उसकी
हिंसा करनेसे बहुत पुण्य प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं इस दुष्टाने यहां अनेक बालोंको भक्षण किया है ॥ ७९ ॥

इस कारण शीघ्र इसको मारकर काशीवासियोंको सावधान करो. राजाने कहा हे चांडालाधिपते ! मैंने जन्मसे "कभी स्त्रीवध न करूंगा" यह कठिनव्रत अवलम्बन किया है ॥ ८० ॥ इसी कारण आपकी आज्ञासे स्त्रीवधके विषयमें यत्न नहीं कर सकता ॥ चांडालने कहा हे दुष्ट! प्रभुकार्य अतिरिक्त और कोई कार्य श्रेष्ठ नहीं हो सकता ॥ ८१ ॥ इस कारण चैतन्य होकर आज किस कारणसे मेरा कार्य नहीं करता जो सेवक प्रभुका वेतन लेकर उसके कार्यमें हानि करता है ॥ ८२ ॥ वह अयुत कल्पमें भी नरकसे छुटकारा नहीं पासकता. राजाने कहा हे चांडालनाथ ! मुझको अत्यन्त दारुण अन्य किसी कार्यमें नियुक्त कीजिये. मैं सहजमें उसको कर दूंगा ॥ ८३ ॥ अथवा यदि आपका कोई शत्रु हो तो उसको बता दीजिये मैं अभी उसका संहार करूंगा इसमें सन्देह नहीं मैं

तत्क्षिप्रं वध्यतामेषा लोकः स्वस्थो भविष्यति ॥ राजोवाच ॥ चांडालाधिपते तीव्रं व्रतं स्त्रीवधवर्जनम् ॥ ८० ॥ आजन्मतस्ततो यत्नं न कुर्यां स्त्रीवधे तव ॥ चाडांल उवाच ॥ स्वामिकार्यं विना दुष्ट किं कार्यं विद्यते परम् ॥ ८१ ॥ गृहीत्वा वेतनं प्रेऽद्य कस्मात्कार्यं विलुम्पसि ॥ यः स्वामिवेतनं गृह्य स्वामिकार्यं विलुम्पति ॥ ८२ ॥ नरकान्निष्कृतिस्तस्य नास्ति कल्पायुतैरपि ॥ राजोवाच ॥ चांडालनाथ मे देहि प्राप्यमन्यत्सुदारुणम् ॥८३॥ स्वशत्रुं ब्रूहि तं क्षिप्रं घातयिष्याम्यसंशयम् ॥ घातयित्वा तु तं शत्रुं तव दास्यामि मेदिनीम् ॥ ८४ ॥ देवदेवोरगैः सिद्धैर्गंधर्वैरपि संयुतम् ॥ देवेंद्रमपि जेष्यामि निहत्य निशितैः शरैः ॥ ८५ ॥ एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं हरिश्चंद्रस्य भूपतेः ॥ चांडालः कुपितः प्राह वेपमानं महीपतिम् ॥ ८६ ॥ चांडाल उवाच ॥ "नैतद्वाक्यं सुघटितं यद्वाक्यं दासकीर्तितम् ॥" चांडालदासतां कृत्वा सुराणां भाषसे वचः ॥ दास किं बहुना नूनं शृणु मे गदतो वचः ॥ ८७ ॥ निर्लज्ज तव चेदस्ति किंचित्पापभयं हृदि ॥ किमर्थं दासतां यातश्चांडालस्य तु वेश्मनि ॥ ८८ ॥

उस शत्रुको संहार कर आपको,यह पृथ्वी प्रदान करूंगा ॥ ८४ ॥ अधिक क्या देव, दानव, उरग, किन्नर, सिद्ध और गंधर्वोंके साथ यदि इन्द्रभी स्वयं सन्मुख हो तथापि शाणित बाणोंसे उनको मारकर पराजय कर सकता हूं परंतु स्त्रीहत्या किसी प्रकारसे भी नहीं कर सकता ॥ ८५ ॥ राजा हरिश्चन्द्रके यह वचन सुनकर चांडाल क्रोधसे कम्पित कलेवर हो महीपतिसे कहने लगा चांडाल बोला तुमने दास होकर जो किया वह दासके उपयुक्त नहीं है, तू चांडालका दासत्व स्वीकार कर देवताओंके समान वचन कहता है अतएव रे दास ! अब अधिक कहनेका प्रयोजन नहीं है, अब जो कहता हूं सो सुनो ॥ ८६ ॥८७॥ रे निर्लज्ज ? तेरे हृदयमें यदि कुछ पापका भय हो तो चांडालके घर किस कारण दासत्व करनेको आता ॥ ८८ ॥

यह असि लेकर उसका मस्तक छेदन कर यह बात कहकर चांडालको राजाने खड्ग प्रदान किया ॥ ८९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥ सूतजीने कहा इसके उपरांत राजा हरिश्चन्द्र नीचेको मुख करके रानीसे कहने लगे कि, हे बाले ! मैं अत्यन्त पापिष्ठ हूं, नहीं तो क्यों ऐसी हीन कार्यके करनेमें प्रवृत्त होता ? जो हो इस समय तू मेरे सन्मुख बैठ ॥ १ ॥ मेरे हाथ यदि तेरा संहार करनेमें समर्थ हों तो तेरा शिर छेदन करूंगा, राजा यह बात कहकर असि उठाय उसको मारनेके लिये अग्रेसर हुए ॥ २ ॥ राजा जिस प्रकार उस अपनी स्त्री नहीं जानसके रानीभी उसी प्रकार उसको हरिश्चन्द्र नरपति नहीं जान सकी इस कारण रानी शोकसे कातर हो अपनी मृत्युकी इच्छासे कहने लगी ॥ ३ ॥ स्त्री बोली हे चांडाल!

गृहाणैनं ततः खड्गमस्याश्छिन्धि शिरोंऽबुजम्॥ एवमुक्त्वाऽथ चांडालो राज्ञे खड्गं न्यवेदयत् ॥ ८९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे हरिश्चंद्रोपाख्याने पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ सूत उवाच ॥ ततोऽथ भूपतिः प्राह राज्ञीं स्थित्वा ह्यधोमुखः ॥ अत्रोपविश्यतां बाले पापस्य पुरतो मम ॥ १ ॥ शिरस्ते च्छेदयिष्यामि हंतुं शक्नोति चेत्करः ॥ एवमुक्त्वा समुद्यम्य खड्गं हंतुं गतो नृपः ॥ २ ॥ न जानाति नृपः पत्नीं सा न जानाति भूपतिम् ॥ अब्रवीद् भृशदुःखार्ता स्वमृत्युमभिकांक्षती ॥ ३ ॥ स्त्र्युवाच ॥ चांडाल शृणु मे वाक्यं किंचित्त्वं यदि मन्यसे ॥ मृतस्तिष्ठति मे पुत्रो नातिदूरे बहिः पुरात् ॥ ४ ॥ तं दहामि हतं यावदानयित्वा तवांतिकम् ॥ तावत्प्रतीक्ष्यतां पश्चादसिना घातयस्व माम् ॥ ५ ॥ तेनाथ बाढमित्युक्ता प्रेषिता बालकं प्रति ॥ सा जगमातिदुखार्ता विलपंती सुदारुणम् ॥ ६ ॥ भार्या तस्य नरेंद्रस्य सर्पदष्टं हि बालकम् ॥ हा पुत्र हा वत्स शिशो इत्येवं वदती मुहुः ॥ ७ ॥ कृशा विवर्णा मलिना पांसुध्वस्त शिरोरुहा ॥ श्मशानभूमिमागत्य बालं स्थाप्याविशद्भुवि ॥ ८ ॥

यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मैं कुछ कहती हूं सो सुनो मेरा पुत्र मरा हुआ यहांसे कुछेक दूर नगर प्रांतमें पड़ा है ॥ ४ ॥ उसको तुम्हारे निकट लाकर जबतक उसका दाहादिकार्य न करूँ तब तक तुम ठहरो, पश्चात् मुझको असिद्वारा निहत करना ॥ ५ ॥ राजाने कहा अच्छा यही हो यह बात कहकर उसको उस मृतक बालकके निकट जानेकी आज्ञा दी, तब वह दुखसे दारुण विलाप करती चली ॥ ६ ॥ नरेंद्रकी भार्या सर्पके काटे बालकके समीप जा हा पुत्र! हा वत्स! हा शिशो! इस प्रकार बारम्बार कहती ॥ ७ ॥ कृश विवर्ण मलीन वेष धूरि धूसरित केशवाली स्मशानभूमिमें आ बालकको स्थापितकर वहां बैठी और बोली "हे राजन्! अपने बालकको देखो ! जो अपने मित्रोंके साथ खेलता हुआ उपवनमें सर्पके काटनेसे मृत्युको प्राप्त हुआ है" ॥ ८ ॥

तब नरपति हरिश्चन्द्रने उस बालाकी इस प्रकार करुणायुक्त विलापध्वनिको सुनकर शवके समीप जा उसके मुखपरका ढका हुआ वस्त्र हटा दिया ॥ ९ ॥ दीर्घकाल प्रवासकष्टसे रानीकी मूर्ति बदलगई थी, इस कारण राजा हरिश्चन्द्र उस रोती हुई अपनी भार्याको नहीं पँहचान सके ॥ १० ॥ इधर राजाभी पहिलेके समान वह कुचिताग्रकेशकलाप नहीं थे इस समय वह जटामें परिणत हुए थे इस कारण रानी भी राजाको नहीं पहचान सकी ॥११॥ तब राजा पृथ्वीपर पडे हुए विषजर्जरित उस बालकके अंग प्रत्यंगमें सम्पूर्ण राजलक्षण देखकर चिंता करने लगे ॥ १२ ॥ उसका वदन मण्डल पूर्ण चन्द्रमाके समान अत्यंत सुन्दर है कहीं भी बिन्दुमात्र व्रण नहीं है नासिका ऊची दोनों कपोल दर्पणके समान विमल और प्रशान्त हैं ॥ १३ ॥ केशकलाप नीलवर्ण टेढ़े दीर्घ और

" राजन्नद्य स्वबालं तं पश्यसीह महीतले ॥ रममाणं स्वसखिभिर्दष्टं दुष्टाहिना मृतम् ॥ " तस्या विलापशब्दं तमाकर्ण्य स नराधिपः॥ शवसन्निधि मागत्य वस्त्रमस्याक्षिपत्तदा ॥ ९ ॥ तां तथा रुदतीं भार्यां नाभिजानाति भूमिपः ॥ चिरप्रवाससंतप्तां पुनर्जातामि वाबलाम् ॥ १० ॥ साऽपि तं चारुकेशांतं पुरो दृष्ट्वा जटाकलम् ॥ नाभ्यजानान्नृपवरं शुष्कवृक्षत्व चोपमम् ॥ ११ ॥ भूमौ निपतितं बालं दृष्ट्वाऽऽशीविषपीडितम् ॥ नरेंद्रलक्षणो पेतमचिंतयदसौ नृपः ॥ १२ ॥ अस्य पूर्णेन्दुवद्वक्त्रं शुभमुन्नसमव्रणम् ॥ दर्पणप्रति मोत्तुंगकपोलयुगशोभितम् ॥ १३ ॥ नीलान्केशान्कुंचिताग्रान्सान्द्रान्दीर्घांस्तरंगिणः ॥ राजीवसदृशे नेत्रे ओष्ठौ बिंबफलोपमौ ॥ १४ ॥ विशालवक्षा दीर्घाक्षो दीर्घबाहून्न तांसकः ॥ विशालपादो गंभीरः सूक्ष्मांगुल्य वनीधरः ॥ १५ ॥ मृणालपादो गंभीरनाभिरुद्धतकंधरः ॥ अहो कष्टं नरेंद्रस्य कस्याऽप्येष कुले शिशुः ॥ १६ ॥ जातो नीतः कृतांतेन कालपाशाद्दुरात्मना ॥ सूत उवाच ॥ एवं दृष्ट्वाऽथ तं बालं मातुरंके प्रसारितम् ॥ १७ ॥ स्मृतिमभ्यागतो राजा हाहेत्य श्रूण्यपातयत् ॥ सोऽप्युवाच च वत्सो मे दशामेतामुपागतः ॥ १८ ॥

तरंगित हैं दोनों नेत्र कमल दलके समान खिले हुए दोनों ओष्ठ बिम्बाफलके समान लोहित वर्ण॥ १४॥ चौडी छाती कानों पर्यन्त दीर्घ नेत्र जानुतक लम्बी भुजा दोनों कन्धे ऊंचे सुन्दर विशाल दोनों चरण सूक्ष्म अंगुली भूमण्डल धारण करनेमें समर्थ ॥१५॥ मृणालके समान कोमल चरण गम्भीर नाभी उन्नत कन्धे हैं अहो कष्ट निश्चय ही इसने किसी राजकुलमें जन्म ग्रहण किया है ॥१६॥ अहो क्या कष्ट है दुरात्मा कालने इसको इस दशामें प्राप्त किया. सूतजीने कहा फिर माताकी गोदीमें शयन करते हुए उस मृतक बालकको पैरोंसे मस्तक पर्यन्त देखके हरिश्चन्द्रके मनमें पूर्व स्मृतिका आविर्भाव हुआ तब वह अपना पुत्र जानकर हाय ! हाय ! शब्दसे रोदन करने लगे नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी और वह कहने लगे कि हमारे ही पुत्रकी यह अवस्था हुई है ॥१७॥१८॥

दे. भा.
॥७६॥

यद्यपि पुत्र घोर कालके वशीभूत हुआ है तथापि राजा हरिश्चन्द्र क्षणकाल मनमें चिंताकर स्तब्ध रहे ॥ १९ ॥ अनन्तर रानीने घोर दुःखके वेगसे कहा रानी बोली हा वत्स ! किस पापकी चिंतासे मुझको यह भयानक दुःख हुआ है ॥ २० ॥ उसके स्वरूपकी उपलब्धि नहीं कर सकती । हा नाथ ! हा राजन् ! मैं अत्यंत दुःखसे कातर हुई इस अवस्थामें मुझको छोड़कर ॥ २१ ॥ किस कारणसे किस स्थानमें गुप्त भावसे काल व्यतीत करते हो ? हा विधातः ! तैने राजर्षि राजा हरिश्चन्द्रका राज्य नष्टकर सुहृद त्याग और भार्या तथा पुत्र पर्यन्त भी बिकवा दिया ॥ २२ ॥ उन्होंने तेरा ऐसा क्या अपकार किया था ? तब राजा उसकी इस प्रकार विलाप ध्वनिको सुनकर धैर्यच्युत हो गये ॥ २३ ॥ और उस देवी तथा मृतक पुत्रको पहचान

नीतो यदि च घोरेण कृतांतेनाऽत्मनो वशम् ॥ विचारयित्वा राजाऽसौ हरिश्चन्द्रस्तथा स्थितः ॥ १९ ॥ ततो राज्ञी महादुःखवेशादिदम भाषत ॥ राज्युवाच ॥ हा वत्स कस्य पापस्य त्वपध्यानादिदं महत् ॥ २० ॥ दुःखमापतितं घोरं तद्रूपं नोपलभ्यते ॥ हा नाथ राज न्भवता मामपास्य सुदुःखिताम् ॥२१॥ कस्मिन्संस्थीयते स्थाने विश्रब्धं केन हेतुना ॥ राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः ॥ २२ ॥ हरिश्चंद्रस्य राजर्षेः किं विधातः कृतं त्वया ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्थानच्युतस्तदा ॥ २३ ॥ प्रत्यभिज्ञाय देवीं तां पुत्रं च निधनं गतम् ॥ कष्टं ममैव पत्नीयं बालकश्चाऽपि मे सुतः ॥ २४ ॥ ज्ञात्वा पपात संतप्तो मूर्च्छामतिजगाम ह ॥ सा च तं प्रत्य भिज्ञाय तामवस्थामुपागतम् ॥२५॥ मूर्च्छिता निपपातार्ता निश्चेष्टा धरणीतले ॥ चेतनां प्राप्य राजेंद्रो राजपत्नी च तौ समम् ॥ २६ ॥ विलेपतुः सुसंतप्तौ शोकभारेण पीडितौ ॥ राजोवाच ॥ हा वत्स सुकुमारं ते वदनं कुञ्चितालकम् ॥ २७ ॥ पश्यतो मे मुखम् दीनं हृदयं किं न दीर्यते ॥ तात तातेति मधुरं ब्रुवाणं स्वयमागतम् ॥ २८ ॥

कर कहने लगे कि यह मेरी स्त्री और यह मृतक बालक मेरा पुत्र है अहो ! क्या कष्ट है ॥ २४ ॥ इस प्रकार अत्यंत शोकसे आक्रांत और मूर्च्छित हो राजा पृथ्वीपर गिर पडे रानीने भी राजाकी ऐसी अवस्था देख ज्योंही राजा हरिश्चन्द्रको पहिचाना ॥ २५ ॥ कि त्योंही मूर्च्छित और निश्चेष्ट हो धरणीपर गिर पडी कुछ कालोपरान्त फिर राजेन्द्र और रानी दोनोंने एक साथ चेतना प्राप्तकी ॥ २६ ॥ फिर शोकसे अत्यंत संतप्त और कातर हो विलाप करने लगे राजाने कहा हा वत्स ! तुम्हारा वह कुंचित अलग सुशोभित सुकोमल मुखमण्डल ॥ २७ ॥ आज मलीन देखकर भी क्यों मेरा हृदय शतखंड होकर विदीर्ण नहीं होता ? हा रोहित ! तुम मधुर स्वरसे तात ! तात ! कहकर कब मेरे समीप आओगे ॥ २८ ॥

मैं स्नेहवश हो गोदीमें लेकर हे वत्स ! हे वत्स ! कहकर कब पुकारूंगा, किसकी जानुलिप्त पिंगल वर्ण पृथ्वीकी रजसे मेरा डुपट्टा उत्सङ्ग (गोदी) और अंग मलीन होगा, हे हृदयानन्द वर्धन ! मैंने कुछ भी पुत्र सुख नहीं देखा ॥ २९ ॥ ३० ॥ मैंने पिता होकर भी सामान्य वस्तुके समान तुमको बेचा है हीन दैवकी विडम्बनासे मेरा असीम राज्य बांधव और प्रभूत धन यह सभी जाता रहा अन्तमें मेरा एकमात्र पुत्र था वह भी नृशंस कालके मुखमें पतित हुआ ॥ ३१ ॥ हाय ! विषम सर्प काटनेसे मृतक पुत्रका वदनमण्डल देखकर आज मैं घोर सन्ताप विषसे दग्ध हुआ. राजाने गद्गद स्वरसे यह बात कह ज्योंही उस बालकको गोदीमें लिया ॥ ३२ ॥ कि त्योंही मूर्छित हो पृथ्वीपर गिरपड़े अनन्तर राजाको पड़ा हुआ देखकर शैब्या इस प्रकारसे चिंता करने लगी ॥ ३३ ॥

उपगुह्यकदा वक्ष्ये वत्स वत्सेति सौहृदात् ॥ कस्यजानु प्रणीतेन पिंगेन क्षितिरेणुना ॥ २९ ॥ ममोत्तरीयमुत्संगं तथांगं मलमेष्यति ॥ न वाऽलं मम संभूतं मनो हृदयनंदन ॥ ३० ॥ “ मयाऽसि पितृमान्पित्रा विक्रीतो येन वस्तुवत् ॥” गतं राज्यमशेषं मे सबांधवधनं महत् ॥ “ हीनदैवानृशंसेन दृष्टो मे तनयस्ततः ॥ ” अहं महाहिदष्टस्य पुत्रस्याऽऽननपंकजम् ॥ ३१ ॥ निरीक्षन्नद्य घोरेण विषेणाऽधिकृतोऽधुना ॥ एवमुक्त्वा तमादाय बालकं बाष्पगद्गदः ॥ ३२ ॥ परिष्वज्य च निश्चेष्टो मूर्च्छया निपपात ह ॥ ततस्तं पतितं दृष्ट्वा शैब्या चैवमचिंतयत् ॥ ३३ ॥ अयं स पुरुषव्याघ्रः स्वरेणैवोपलक्ष्यते ॥ विद्वज्जनमनश्चन्द्रो हरिश्चन्द्रो न संशयः ॥ ३४ ॥ तथाऽस्य नासिका तुंगा तिलपुष्पोपमा शुभा ॥ दंताश्च मुकुल प्रख्याः ख्यातकीर्तेर्महात्मनः ॥ ३५ ॥ श्मशानमागतः कस्माद्यद्येवं स नरेश्वरः ॥ विहाय पुत्रशोकं सा पश्यंती पतितं पतिम् ॥ ३६ ॥ प्रहृष्टा विस्मिता दीना भर्तृपुत्रार्तिपीडिता ॥ वीक्षती सा तदाऽपतन्मूर्च्छया धरणीतले ॥ ३७ ॥

इनके कण्ठस्वरसे बोध होता है कि यही पुरुष प्रवर विज्ञजनोंका चित्त प्रसन्न करनेवाला राजा हरिश्चन्द्र हैं ॥ ३४ ॥ उन विख्यातकीर्ति राजा हरिश्चन्द्रकी जैसी अनारके समान दशन पंक्ति और नासिका ऊंची तथा तिलके फूलके समान सुकुमार थी इनकी भी वैसी ही दिखाई देती है ॥ ३५ ॥ परन्तु यदि वही वह नरेश्वर राजा हरिश्चन्द्र हैं तो किस कारणसे श्मशानमें आये हैं इस प्रकार विचार पुत्रशोक त्यागकर ज्योंही पृथ्वीपर पडे हुए पतिको देखने लगी ॥ ३६ ॥ त्योंही हर्ष विषाद और विस्मयने उसके हृदयको आक्रमण किया तब वह राजाको देखते देखते मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पडी ॥ ३७ ॥

फिर क्रमानुसार चैतन्यता प्राप्तकर कातर स्वरसे कहने लगी हा दैव ! जो राजा एक समय अमरके समान थे आज तैंने उन नरपतिको राज्य नष्ट सुहृदत्याग भार्या और पुत्र पर्यन्त बिकवाकर चांडालरूपमें परिणत किया है अतएव तुमको दया नहीं धर्म नहीं न्याय अन्यायका विचार नहीं और लज्जा भी नहीं है इस कारण तुझको धिक्कार है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! आज कालने तुमको चांडाल बनाया है अब तुम्हारा वह छत्र वह सिंहासन ॥ ४० ॥ वह चामर और वह दोनों विजय कहां गये ? आजविधाता का यह क्या विपरीत कोप है, पहले इन महात्माके गमन कालमें राजा लोग भृत्यस्वरूप होकर ॥ ४१ ॥ अपने दुपट्टोंसे पृथ्वीकी धूल झाड़ते थे, आज वही राजा कपालोंसे व्याप्त शवसंस्कारको लाये हुए क्षुद्रकलशोंसे पूर्ण ॥ ४२ ॥ मृतकोंके गलेकी पुष्पमालाओंके डोरेमें बाल

प्राप्य चेतश्च शनकैः सा गद्गदमभाषत ॥ धिक्त्वां दैव ह्यकरुण निर्मर्याद जुगुप्सित ॥ ३८ ॥ येनायममरप्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम् ॥ राज्यनाशं सुहृत्त्यागं भार्यातनयविक्रयम् ॥ ३९ ॥ प्रापयित्वाऽपि येनाऽद्य चांडालोऽयं कृतो नृपः ॥ नाद्य पश्यामि ते छत्रं सिंहासनमथाऽपि वा ॥ ४० ॥ चामरव्यजने वाऽपि कोऽयं विधिविपर्ययः ॥ यस्याऽस्य व्रजतः पूर्वं राजानो भृत्यतां गताः ॥ ४१ ॥ स्वोत्तरीयैः प्रकुर्वंति विरजस्कं महीतलम् ॥ सोऽयं कपाल संलग्ने घटीपटनिरंतरे ॥ ४२ ॥ मृतनिर्माल्य सूत्रांतर्लग्नकेशसुदारुणे ॥ वसानिष्पंदसंशुष्कमहापटलमंडिते ॥ ४३ ॥ भस्मांगाराधंदग्धास्थिमज्जासंघट्टभीषणे ॥ गृध्रगोमायुनादार्ते पुष्टक्षुद्रविहंगमे ॥ ४४ ॥ चिताधूमायतपटनीलीकृतदिगंतरे ॥ कुणपास्वादनमुदा संप्रकृष्ट निशाचरे ॥ ४५ ॥ चरत्यमेध्ये राजेंद्रः श्मशाने दुःखपीडितः ॥ एवमुक्त्वाऽथ संश्लिष्य कंठे राज्ञो नृपात्मजा ॥ ४६ ॥ कष्टं शोकसमाविष्टा विललापार्तया गिरा ॥ राजन्स्वप्नोऽथ तथ्यं वा यदेतन्मन्यते भवान् ॥ ४७ ॥ तत्कथ्यतां महाभाग मनो वै मुह्यते मम ॥ यद्येतदेवं धर्मज्ञ नास्ति धर्मे सहायता ॥ ४८ ॥

उलझनेसे भीषणवसाके निकलनेसे सूखे महापटलसे मंडित ॥ ४३ ॥ भस्मके अंगारोंसे आधे जले मुर्दोंकी अस्थि और मज्जाके संघट्टसे भयंकर गृध्र गोमायुओंके नादसे क्षुद्र पक्षियोंके पोषक ॥ ४४ ॥ चिताके धूमरूप पटसे आकाशको नीलवर्ण करनेवाले मांसके आस्वादमें प्रसन्न विचरण शील राक्षसोंसे व्याप्त ॥ ४५ ॥ इस अपवित्र स्थानमें विचरण करते दुःखसे पीडित हैं इस प्रकार कह रानी राजाके कंठमें लिपट गई ॥ ४६ ॥ और कष्ट शोकसे व्याकुल हो घोर विलाप करने लगी, हे राजन् ! आप जो अपनेको चांडाल कहते हो यह स्वप्न है अथवा सत्य है ॥ ४७ ॥ हे महाभाग ! सो कहो मेरा मन मोहित होता है, हे धर्मज्ञ ! जो ऐसा है तो धर्मने कुछ सहायता नहीं दी ॥ ४८ ॥

तथा ब्राह्मण देवता आदिके पूजनमें, सत्यपालनमें यदि ऐसी ही सहायता प्राप्त हो तो सत्यकी रक्षा नहीं हो सकती धर्मकी रक्षा न होनेसे सत्य आर्जव और अनृशंसताकी रक्षा नहीं हो सकती ॥ ४९ ॥ आप परम धर्मात्मा होकर भी राज्यच्युत हुए । सूतजीने कहा शीर्णदेह शैब्याके ऐसे वचन सुनकर राजा दीर्घ और उष्ण श्वास छोडते हुए ॥ ५० ॥ जिस प्रकार श्वपचत्वको प्राप्त हुए थे , बाष्पकंठद्वारा स्त्रीसे विस्तारसहित वह वर्णन किया उस राजपत्नीने भी यह सुनकर अत्यन्त दुःखित मनसे उष्ण श्वास त्यागकर ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार पुत्रकी मृत्यु हुई थी वह आद्योपान्त राजासे निवेदन किया यह सुनते ही राजा मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ५२ ॥ फिर क्रमानुसार चेतना प्राप्त कर जिह्वासे चाट वारंवार मृतक पुत्रका मुख चूमने लगे तब शैब्याने गद्गदस्वर

तथैव विप्रदेवादिपूजने सत्यपालने ॥ नास्ति धर्मः कुतः सत्यं नार्जवं नानृशंसता ॥ ४९ ॥ यत्र त्वं धर्मपरमः स्वराज्यादवरोपितः ॥ सूत उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा निःश्वस्योष्णं सगद्गदः ॥ ५० ॥ कथयामास तन्वंग्यै यथा प्राप्तः श्वपाकताम् ॥ रुदित्वा सा तु सुचिरं निःश्वस्योष्णं सुदुःखिता ॥ ५१ ॥ स्वपुत्रमरणं भीरुर्यथावत्तं न्यवेदयत् ॥ श्रुत्वा राजा तथा वाक्यं निपपात महीतले ॥ ५२ ॥ मृतपुत्रं समानीय जिह्वया विलिहन्मुहुः ॥ हरिश्चन्द्रमथो प्राह शैब्या गद्गदया गिरा ॥ ५३ ॥ कुरुष्व स्वामिनः प्रेष्यं छेदयित्वा शिरो मम ॥ स्वामिद्रोहो न तेऽस्त्वद्य माऽसत्यो भव भूपते ॥ ५४ ॥ माऽसत्यं तव राजेंद्र परद्रोहस्तु पातकम् ॥ एतदाकर्ण्य राजा तु पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ ५५ ॥ क्षणेन चेतनां प्राप्य विललापाति दुःखितः ॥ राजोवाच ॥ कथं प्रिये त्वया प्रोक्तं वचनं त्वतिनिष्ठुरम् ॥ ५६ ॥ यदशक्यं भवेद्वक्तुं तत्कर्म क्रियते कथम् ॥ पत्न्युवाच ॥ मया च पूजिता गौरी देवा विप्रास्तथैव च ॥५७॥

हो राजा हरिश्चन्द्रसे कहा ॥ ५३ ॥ इस समय मेरा मस्तक छेदन कर प्रभुकी आज्ञापालन करो, हे भूपते ! तो आप सत्यसे रक्षा पावेंगे और प्रभुकी आज्ञा भी उल्लंघन न होगी ॥ ५४ ॥ हे राजेन्द्र ! विशेषकर यह परद्रोहजनित अथवा असत्यव्यवहारजनित पाप आपको स्पर्श नहीं करेगा, यह सुन राजा मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ५५ ॥ किन्तु क्षणमात्रमें ही चेतना प्राप्त कर अत्यन्त दुःखसे विलाप करने लगे राजाने कहा हे प्रिये ! तुम किस प्रकार ऐसे निष्ठुर वचन मुखसे निकालती हो ? ॥ ५६ ॥ जो मुखसे भी उच्चारण नहीं किया जा सकता वह कार्य किस प्रकार करूंगा ? शैब्याने कहा हे विभो ! मैंने गौरी देवीकी पूजा की है और अन्यान्य देवता तथा ब्राह्मणोंकी भी पूजाकी है ॥ ५७ ॥

अतएव उनकी कृपासे आप जन्मान्तरमें भी मेरे पति होंगे, राजा यह बात सुनकर तत्काल पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ५८ ॥ और शीघ्र उठकर तथा दुःखित हो मृतक पुत्रका मुख चूमने लगे राजाने कहा हे प्रिये ! मैं अब दीर्घ कालतक क्लेश नहीं सह सकूंगा ॥ ५९ ॥ परन्तु हे कृशाङ्गी ! देखो मैं ऐसा हतभाग्य हूं कि अपने अंतःकरणके ऊपर भी मेरा कुछ आधिपत्य नहीं है, चांडालकी विना आज्ञा यदि अग्निमें प्रवेश करूं ॥ ६० ॥ जो जन्मान्तरमें भी फिर मुझको चांडालका दासत्व प्राप्त होगा, फिर नरकमें जाकर दारुण क्लेश भोगना होगा ॥ ६१ ॥ किंतु वह मेरे पक्षमें श्रेष्ठ है, महा रौरवनरकमें जाकर बहुत कालतक असह्य नरकयंत्रणा सहूं वह भी मुझको श्रेष्ठ है, दुःख सागरमें मग्न हो प्राण त्यागन करना श्रेष्ठ है ॥ ६२ ॥ परन्तु मेरा यह बालक पुत्र ही वंशकी रक्षा करनेवाला है

भविष्यसि पतिस्त्वं मे ह्यन्यस्मिञ्जन्मनि प्रभो ॥ श्रुत्वा राजा तदा वाक्यं निपपात महीतले ॥ ५८ ॥ मृतस्य पुत्रस्य तदा चुचुंब दुःखितो मुखम् ॥ राजोवाच ॥ प्रिये न रोचते दीर्घं कालं क्लेशं मयाऽशितुम् ॥ ५९ ॥ नात्मायत्तोऽहं तन्वंगि पश्य मे मंदभाग्यताम् ॥ चांडालेनाननुज्ञातः प्रवेक्ष्ये ज्वलनं यदि ॥ ६० ॥ चांडालदासतां यास्ये पुनरप्यन्यजन्मनि ॥ नरकं च वरं प्राप्य खेदं प्राप्स्यामि दारुणम् ॥ ६१ ॥ तापं प्राप्स्यामि संप्राप्य महारौरवरौरवे ॥ मग्नस्य दुःखजलधौ वरं प्राणैर्वियोजनम् ॥ ६२ ॥ एकोऽपि बालको योऽयमासीद्वंशकरः सुतः ॥ मम दैवानुयोगेन मृतः सोऽपि बलीयसा ॥ ६३ ॥ कथं प्राणान्विमुंचामि परायत्तोऽस्मि दुर्गतः ॥ तथाऽपि दुःखबाहुल्यात्त्यक्ष्यामि तु निजां तनुम् ॥ ६४ ॥ त्रैलोक्ये नास्ति तद्दुःखं नासिपत्रवने तथा ॥ वैतरिण्यां कुतस्तद्वै यादृशं पुत्रविप्लवे ॥ ६५ ॥ सोऽहं सुतशरीरेण दीप्यमाने हुताशने ॥ निपतिष्यामि तन्वंगि क्षंतव्यं तन्ममाधुना ॥ ६६ ॥ न वक्तव्यं त्वया किंचिदतः कमललोचने ॥ मम वाक्यं च तन्वंगि निबोधाऽऽहतमानसा ॥ ६७ ॥

मेरे इस बलवान् पुत्रने दैवके पिपाकवशसे प्राणत्याग किया है, अतएव क्लेश सागरमें निमग्न हो जीवन धारणकी अपेक्षा प्राण त्यागना ही श्रेष्ठ है ॥ ६३ ॥ मेरा देह इस समय चांडालके आधीन है, इस कारण इसदुर्गतिकी अवस्थामें किस प्रकार जीवन त्याग करूं, कारण कि उसकी विना आज्ञा प्राणत्याग करनेसे उसके ऋणसे नरक भोगना होगा, तोभी अत्यन्त दुःखके कारण अपना देह त्याग करूंगा ॥ ६४ ॥ पुत्रके वियोगसे जैसा दुःख उपस्थित हुआ है वैतरणी नदीके पार होनेसे अथवा असिपत्र वनमें भी ऐसा दुःख नहीं भोगना होगा अधिक क्या त्रिलोकीमें भी ऐसा कोई दुःख नहीं है ॥६५॥ मैं इस समय पुत्रकी मृत देहके साथ प्रज्वलित अग्निमें गिरूंगा ॥६६॥ अतएव हे कृशाङ्गि ! तुम इसमें कुछ भी न कहना. हे शुचिस्मिते ! सावधान हो तुम मेरे वचन मानो ॥६७॥

इस समय आज्ञा देता हूं कि तुम ब्राह्मणके घर जाओ यदि मैंने कभी धनदान अग्निमें आहुति प्रदान और गुरुजनोंको संतुष्ट किया हो ॥६८॥ तो परलोकमें पुत्र और तुम्हारे साथ समागम होगा परन्तु इस लोकमें इस अभीष्टके प्राप्त होनेकी संभावना नहीं है ॥ ६९ ॥ हे शुचिस्मिते ! मैंने हास्यके मिष गुप्तभावसे यदि कोई अप्रमाणिक बात कही हो तो मेरे प्राणकालके समय वह सम्पूर्ण क्षमा करना ॥ ७० ॥ हे शुभे ! तुम अपनेको राजपत्नी जानकर ब्राह्मणका कभी तिरस्कार मत करना प्रभुको देवताके समान जानकर यत्नसहित उनको संतुष्ट करना ॥ ७१ ॥ रानीने कहा हे हे राजर्षे ! मैं भी इस प्रज्वलित अग्निमें पतित हूंगी हे देव ! मैं इस दुःखका भार नहीं सह सकती अतएव आपके संग चलूंगी ॥ ७२ ॥ आपके संग गमन करना मुझको श्रेष्ठ है अतएव इसके

अनुज्ञाताऽथ गच्छ त्वं विप्रवेश्म शुचिस्मिते ॥ यदि दत्तं यदि हुतं गुरवो यदि तोषिताः ॥ ६८ ॥ संगमः परलोके मे निजपुत्रेण चेत्त्वया ॥ इह लोके कुतस्त्वेतद्भविष्यति समीप्सितम् ॥ ६९ ॥ यन्मया हसता किंचिद्रहसि त्वां शुचिस्मिते ॥ अशोभमुक्तं तत्सर्वं क्षंतव्यं मम यास्यतः ॥ ७० ॥ राजपत्नीति गर्वेण नावज्ञेयः स मे द्विजः ॥ सर्वयत्नेन तोष्यः स्यात्स्वामी दैवतवच्छुभे ॥ ७१ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ अहमप्यत्र राजर्षे निपतिष्ये हुताशने ॥ दुःखभारासहा देव सह यास्यामि वै त्वया ॥ ७२ ॥ त्वया सह मम श्रेयो गमनं नान्यथाभवेत् ॥ सह स्वर्गं च नरकं त्वया भोक्ष्यामि मानद ॥ ७३ ॥ श्रुत्वा राजा तदोवाच एवमस्तु पतिव्रते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे हरिश्चन्द्रोपाख्याने षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ सूत उवाच ॥ ततः कृत्वा चितां राजा आरोप्य तनयं स्वकम् ॥ भार्यया सहितो राजा बद्धांजलिपुटस्तदा ॥ १ ॥ चिंतयन्परमेशानीं शताक्षीं जगदीश्वरीम् ॥ पंचकोशांतरगतां पुच्छब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥ २ ॥ रक्तांबरपरीधानां करुणारससागराम् ॥ नाना युधधरामंबां जगत्पालनतत्पराम् ॥ ३ ॥

अन्यथा नहीं होगा हे मानद ! आपके संग ही स्वर्ग अथवा नरक भोगूंगी ॥ ७३ ॥ तब यह बात सुनकर राजाने कहा हे पतिव्रते ! जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ सूतजीने कहा फिर राजा हरिश्चन्द्रने चिता बनाय अपने पुत्रको उसके ऊपर रक्खा, उसके उपरांत स्वयं हाथ जोड भार्याके सहित ॥ १ ॥ जगदीश्वरी परमेशानीका ध्यान करने लगे, वह शताक्षी जीवोंके अन्नमयादि पंचकोशके अन्तरमें विराजमान रहती है, वह अन्नरसमय पुरुषोंके पुच्छ स्थित (आधारचक्रस्थित) ब्रह्मस्वरूपिणी ॥ २ ॥ और करुणारसकी सागरस्वरूप हैं, वह लाल वस्त्र पहरकर अनेक प्रकारके आयुध धारणकर जगत्की रक्षा करनेमें तत्पर रहती है ॥ ३ ॥

जब राजा इस प्रकार ध्यानमें निमग्न हुए तब इंद्रादि सम्पूर्ण देवता धर्मको आगेकर शीघ्र हरिश्चन्द्रके निकट आये ॥ ४ ॥ उन सबने आकर कहा हे राजन् ! तुम सुनो ! मैं पितामह, स्वयं धर्म, भगवान् विष्णु ॥ ५ ॥ साध्यगण, विश्वेदेवगण मरुद्गण लोकपालगण, चारणगण गंधर्वगण, रुद्रगण, दोनों अश्विनीकुमार अन्यान्य सम्पूर्ण देवतागण और विश्वामित्र स्वयं आये हैं, जो विश्वामित्र तीनों जगत् प्रदान करके भी धर्मानुसार मित्रता करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ इस समय वही विश्वामित्र तुम्हें अभीष्ट देनेको अत्यन्त अभिलाषित हुए हैं. धर्मने कहा हे राजन् ! ऐसे साहसिक कार्यमें उद्यत न होना मैं धर्म हूं ॥ ८ ॥ मैं तुम्हारी तितिक्षा (सहनशीलता) दम और सत्वादिगुणोंसे संतुष्ट हो तुम्हारे निकट आयाहूं इन्द्रने कहा हे हरिश्चन्द्र ! मैं भी तुम्हारे निकट

तस्य चिंतयमानस्य सर्वे देवाः सवासवाः ॥ धर्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ ४ ॥ आगत्य सर्वे प्रोचुस्ते राजञ्छृणु महाप्रभो ॥ अहं पितामहः साक्षाद्धर्मश्च भगवान्स्वयम् ॥ ५ ॥ साध्याः सविश्वे मरुतो लोकपालाः सचारणाः ॥ नागाः सिद्धाः सगंधर्वा रुद्राश्चैव तथाऽश्विनौ ॥ ६ ॥ एते चान्येऽथ बहवो विश्वामित्रस्तथैव च ॥ विश्वत्रयेण यो मैत्रीं कर्तुमिच्छति धर्मतः ॥ ७ ॥ विश्वामित्रः स तेऽभीष्टमाहर्तुं सम्यगिच्छति ॥ धर्म उवाच ॥ माराजन्साहसं कार्षीर्धर्मोऽहं त्वमुपागतः ॥ ८ ॥ तितिक्षादमसत्त्वाद्यैस्त्व द्गुणैः परितोषितः ॥ इंद्र उवाच ॥ हरिश्चन्द्र महाभाग प्राप्तः शक्रोऽस्मि तेंऽतिकम् ॥ ९ ॥ त्वयाऽद्य भार्यापुत्रेण जिता लोकास्सना तनाः ॥ आरोह त्रिदिवं राजन्भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ १० ॥ सुदुष्प्रापं नरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः ॥ सूत उवाच ॥ ततोऽमृतमयं वर्षमपमृत्युविनाशनम् ॥ ११ ॥ इंद्रः प्रासृजदाकाशाच्चितामध्यगतेशिशौ ॥ पुष्पवृष्टिश्च महती दुंदुभिस्वन एव च ॥ १२ ॥ समु त्तस्थौ मृतः पुत्रो राज्ञास्तस्य महात्मनः ॥ सुकुमारतनुः स्वस्थः प्रसन्नः प्रीतिमानसः ॥ १३ ॥

उपस्थित हुआ हूं ॥ ९ ॥ अतएव तुम्हारे सौभाग्यकी सीमा नहीं तुमने भार्या और पुत्रके साथ इस समय सनातन लोकोंको जय किया है अब भार्या और पुत्रके साथ स्वर्गमें चलो ॥ १० ॥ हे राजन् ! जो मनुष्योंको दुर्लभ है तुमने अपने कर्मफलसे उसको जीत लिया सूतजीने कहा इसके उपरांत अपमृत्यु विनाशन अमृतकी वर्षा ॥ ११ ॥ इन्द्रने चितामें स्थित बालकके ऊपर की इसी समय आकाशमण्डलसे पुष्पवृष्टि और दुन्दुभिध्वनि होने लगी ॥ १२ ॥ इसी अवसरमें वह महानुभाव राजाका पुत्र चितासे उठ बैठा वह पहलेके समान सुकुमार देह स्वस्थचित्त प्रसन्न और प्रीतमनवाला था ॥ १३ ॥

हरिश्चंद्रने तत्काल पुत्रको आलिंगन किया और इसी समय राजा तथा रानी दोनोंही पूर्वकेसमान सौंदर्य प्राप्त कर मनोहर वस्त्र और मालासे भूषित हुए ॥ १४ ॥ तब स्वास्थ और अभिष्ट प्राप्त होनेके कारण आनंदसे उनका हृदय पूर्ण होगया तब इंद्रने नरपतिसे कहा ॥ १५ ॥ हे महाभाग ! तुम पुत्र और कलत्रके सहित अपने कर्मकें फलसे स्वर्गमें चल परम पवित्र सद्गति प्राप्त करो ॥ १६ ॥ हरिश्चंद्रने कहा देवराज ! श्वपच मेरा प्रभु है इनसे छुटकारा न पाकरऔरउनकी आज्ञा न लेकर मैं स्वर्गको नहीं जाऊंगा ॥ १७ ॥ धर्मने कहा तुम्हारा इस प्रकार भावी क्लेश जानकर मैंने अपनी मायासे स्वयं श्वपचरूप धारणकर तुमको यह चांडालपुरी दिखाई अधिक क्या मैंही यह चांडाल मैंही वह ब्राह्मण हूं, और मैंनेही काला सर्प होकर तुम्हारे पुत्रको डसा है ॥ १८ ॥

ततो राजा हरिश्चंद्रः परिष्वज्य सुतं तदा ॥ साभार्यः स्वश्रिया युक्तो दिव्यमाल्यांबरावृतः ॥ १४ ॥ स्वस्थः संपूर्णहृदयो मुदा परमया वृतः बभूव ॥ तत्क्षणादिंद्रो भूपं चैवमभाषत ॥ १५ ॥ सभार्यस्त्वं सपुत्रश्च स्वर्लोकं सद्गतिं पराम् ॥ समारोह महाभाग निजानां कर्मणां फलम् ॥ १६ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ देवराजाननुज्ञातः स्वामिना श्वपचेन हि ॥ अकृत्वा निष्कृतिं तस्य नारोक्ष्ये वै सुरालयम् ॥ १७ ॥ धर्म उवाच ॥ तवै वं भाविनं क्लेशमवगम्याऽऽत्ममायया ॥ आत्मा श्वपाचतां नीतो दर्शितं तच्च पक्वणम् ॥ १८ ॥ इंद्र उवाच ॥ प्रार्थ्यते यत्परं स्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि ॥ तदारोह हरिश्चंद्र स्थानं पुण्यकृतां नृणाम् ॥ १९ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ देवराज नमस्तुभ्यं वाक्यं चेदं निबोध मे ॥ मच्छोकमग्नमनसः कोसले नगरे नराः ॥ २० ॥ तिष्ठंति तानपास्यैवं कथं यास्याम्यहं दिवम् ॥ ब्रह्महत्या सुरापानं गोवधः स्त्रीवधस्तथा ॥ २१ ॥ तुल्यमेभिर्महत्पापं भक्तत्यागादुदाहृतम् ॥ भजंतं भक्तमत्याज्यं त्यजतः स्यात्कथं सुखम् ॥ २२ ॥

इन्द्रने कहा हे हरिश्चन्द्र ! भूमण्डलके सम्पूर्ण मनुष्य जिस स्थानका अधिकार करनेकी प्रार्थना करते हैं तुम स्वयं पुण्यके बलसे उस स्थानको चलो ॥ १९ ॥ हरिश्चंद्रने कहा हे देवराज ! मैं आपको प्रणाम करता हूं आप मेरा वचन श्रवण करके विचार कीजिये, कोशल नगर निवासी सम्पूर्ण मनुष्य मेरे विरहरूपी शोक सागरमें निमग्न हो रहे हैं ॥ २० ॥ इस समय उन शोकसंतप्त प्रजाको छोडकर किस प्रकार स्वर्गको चल सकता हूँ, भक्तोंके त्यागनेसे नरक होता है ब्रह्महत्या सुरापान और गोवधके ॥ २१ ॥ समान महापातक है हे शक्र ! जो भक्त सर्वदा सेवामें रत हैं उनको त्यागना अत्यन्त अनुचित है अतएव त्यागनेसे किस प्रकार सुख भोग सकता हूं ॥ २२ ॥

इस कारण उनको विनालिये मैं स्वर्गको नहीं जाऊंगा, आप स्वर्गको लौट जाइये, हे सुरेश्वर ! यदि वह मेरे संग जासके ॥ २३ ॥ तो मैं भी उनके संग स्वर्ग अथवा नरकमें जा सकता हूं इंद्रने कहा हे नृपवर ! उनमेंसे किसीका अधिक पाप अथवा किसीका अधिक पुण्य भिन्न भिन्न है ॥ २४ ॥ अतएव हे भूप ! वह सम्पूर्ण एकही समय स्वर्गके भोगनेका किस प्रकार अधिकार रखते हैं । हरिश्चंद्रने कहा हे वासव ! पौरवर्गोंके प्रभावसे ही राजा लोग राज्यभोग करते हैं ॥ २५ ॥ महायज्ञका अनुष्ठान और पूर्त्तकार्य (वापीकूपादि) सम्पादन करते हैं इसमें संदेह नहीं है मैंने भी इसी प्रकार प्रजाके प्रभावसे सम्पूर्ण धर्मकार्यका अनुष्ठान किया है ॥ २६ ॥ इसकारण जिन्होंने राजप्रयोजनीय सम्पूर्ण द्रव्य दान किया है मैं स्वर्ग प्राप्त होनेकी इच्छासे उनको नहीं छोडूंगा हे देवेश ! यदि उनका स्वर्गमें चलनेके अनुरूप पुण्य न हो तो कुछ मेरा पुण्य है ॥ २७ ॥ अर्थात् मैंने दान यज्ञ याग इत्यादि जो कुछ सत्कार्यका

तैर्विना न प्रयास्यामि तस्मच्छक्र दिवं व्रज ॥ यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यांति सुरेश्वर ॥ २३ ॥ ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वाऽपितैः सह ॥ इंद्र उवाच ॥ बहूनि पुण्यपापानि तेषां भिन्नानि वै नृप ॥ २४ ॥ कथं संघातभोज्यं त्वं भूप स्वर्गमभीप्ससि ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ भुंक्ते शक्र नृपो राज्यं प्रभावात्प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥ २५ ॥ यजते च महायज्ञैः कर्मपूर्तं करोति च ॥ तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम् ॥ २६ ॥ उपदादान्न संत्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया ॥ तस्माद्यन्मम देवेश किंचिदस्ति सुचेष्टितम् ॥ २७ ॥ दत्त मिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः ॥ बहुकालोपभोज्यं च फलं यन्मम कर्मगम् ॥ २८ ॥ तदस्तु दिनमप्येकं तैः समं त्वत्प्रसादतः ॥ सूत उवाच ॥ एवं भविष्यतीत्युक्त्वा शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ २९ ॥ प्रसन्न चेता धर्मश्च विश्वा मित्रश्च गाधिजः ॥ गत्वा तु नगरं सर्वे चातुर्वर्ण्यसमाकुलम् ॥ ३० ॥ हरिश्चंद्रस्य निकटे प्रोवाच विबुधाधिपः ॥ आगच्छंतु जनाः शीघ्रं स्वर्गलोकं सुदुर्लभम् ॥ ३१ ॥

अनुष्ठान किया है वह उनका सब पुण्य स्वर्गभोगको प्राप्त हो यदि मैं अकेला कर्मका फल गोगूं तो बहुत समयतक भोगसकता हूं ॥ २८ ॥ परंतु आपके प्रसादसे उनके संग उस कर्मका फल एकही दिनमें भोगलूं तो भी मुझको परम श्रेय है सूतजीने कहा " यही होगा " ऐसा कहकर त्रिभुवनेश्वर इन्द्र ॥ २९ ॥ गाधिनन्दन विश्वामित्र और धर्म प्रसन्न हो योगबलसे उसी समय काशीसे अयोध्याको चले गये वह मुहूर्त्तमात्रमें ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रयुक्त अयोध्या नगरीमें पहुंचे ॥ ३० ॥ और उनमेंसे देवराज इंद्रने कहा कि नगरनिवासी सम्पूर्ण मनुष्य शीघ्र राजा हरिश्चन्द्रके समीप आवें आज वह हरिश्चन्द्रके धर्मबलसे दुर्लभ स्वर्गलोकको प्राप्त हुए ॥ ३१ ॥

यह बात कहकर नागरिक मनुष्योंको हरिश्चन्द्रके समीप ले आये, तब उन धार्मिकप्रवर राजा हरिश्चन्द्रने भी नगरवासी मनुष्योंसे ॥ ३२ ॥ कहा तुम सम्पूर्णही मेरे साथ स्वर्गको चलो ! सूतजीने कहा वह सुरपति और भूपतिके इस प्रकार वचन सुनकर अत्यन्त आनंदित हुए और उनमें जो संसारकी वासनासे विरत हुए थे वह अपने २ पुत्रोंके ऊपर सांसारिक भार डाल आनंदहृदयसे स्वर्गमें चलनेको उद्यत हुए ॥ ३३॥ ३४ ॥ तब प्रजा ज्योतिर्मय देहधारणकर श्रेष्ठविमान पर चढ अत्यन्त आनंदित हुई तब महानुभाव महीपाल हरिश्चन्द्रने ॥ ३५॥ अपने पुत्र रोहिताश्वको राज्यपर अभिषिक्तकर हृष्टपुष्ट मनुष्योंसे पूर्ण रमणीय अयोध्या नगरी कर ॥ ३६ ॥ सुहृद्मंत्री और पुत्रका सत्कार और अभिनंदन कर पुण्यसे प्राप्त हुई देवादिकोंको दुर्लभ ॥ ३७ ॥ अपने पुण्यप्रभावसे प्राप्त विपुल

धर्मप्रसादात्संप्राप्तं सर्वैर्युष्माभिरेव तु ॥ हरिश्चन्द्रोऽपि तान्सर्वाञ्जनान्नगरवा सिनः ॥ ३२ ॥ प्राह राजा धर्मपरो दिवमारुह्यतामिति ॥ सूत उवाच ॥ तद्विद्रस्य वचः श्रुत्वा प्रीतास्तस्य च भूपतेः ॥ ३३ ॥ ये संसारेषु निर्विण्णास्ते धुरं स्वसुतेषु वै ॥ कृत्वा प्रहृष्टमनसो दिवमारुरुहुर्जनाः ॥ ३४ ॥ विमानवरमारूढाः सर्वे भास्वरविग्रहाः ॥ तदा संभूतहर्षास्ते हरिश्चन्द्रश्च पार्थिवः ॥ ३५ ॥ राज्येभिषिच्य तनयं रोहिताख्यं महामनाः ॥ अयोध्याख्ये पुरे रम्ये हृष्टपुष्टजनान्विते ॥ ३६ ॥ तनयं सुहृदश्चापि प्रतिपूज्याभिनंद्य च ॥ पुण्येन लभ्यां विपुलां देवादीनां सुदुर्लभाम् ॥ ३७ ॥ संप्राप्य कीर्तिमतुलां विमाने स महीपतिः ॥ आसांचक्रे कामगमे क्षुद्रघंटाविराजिते ॥ ३८ ॥ ततस्तर्हि समालोक्य श्लोकमत्रं तदा जगौ ॥ दैत्याचार्यो महाभागः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ ३९ ॥ शुक्र उवाच ॥ अहो तितिक्षामाहात्म्यमहोदानफलं महत् ॥ यदागतो हरिश्चन्द्रो महेंद्रस्य सलोकताम् ॥ ४० ॥ सूत उवाच ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं हरिश्चन्द्रस्य चेष्टितम् ॥ यः शृणोति च दुःखार्तः स सुखं लभतेऽन्वहम् ॥ ४१ ॥

कीर्ति लाभकर किंकिणीजालमंडित अतुल कामगामी सुशोभित देवदुर्लभ विमानपर विराजमान हुए ॥ ३८ ॥ फिर सर्व शास्त्रके जाननेवाले दैत्यगुरु महाभाग शुक्राचार्यने राजा हरिश्चन्द्रको विमानमें देखकर उस समय यह गाथा गाई ॥ ३९ ॥ शुक्र बोले अहो तितिक्षाका क्या आश्चर्य माहात्म्य है ? दानका क्या महत्त्वफल है ? आज जिसके प्रभावसे राजा हरिश्चन्द्रने महेन्द्रका सालोक्य प्राप्त किया ॥ ४० ॥ सूतजीने कहा यह हरिश्चन्द्रके सम्पूर्ण चरित्र आपसे वर्णन किये, यदि दुःखी मनुष्य इसको सुने तो सर्वदा सुख प्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं ॥ ४१ ॥

अधिक क्या इसके प्रभावसे स्वर्गाभिलाषी स्वर्ग पुत्राभिलाषी पुत्र भार्याकी इच्छा करनेवाला भार्या राज्यप्रार्थी मनुष्य राज्यपर्यंत प्राप्त कर सकता है ॥४२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ जनमेजयने कहा हे ऋषिवर ! शताक्षी देवीके चरणकमलोंके भक्त परमधार्मिक राजर्षि हरिश्चन्द्रका जो उपाख्यान कहा यह अत्यंत विचित्र है ॥ १ ॥ वह शिवा रमणीय देवी भगवती किस कारणमे शताक्षी हुई हे मुने ! आप उनका कारण कहकर मेरा जन्म सफल कीजिये ॥ २ ॥ अकृतज्ञ मनुष्यही देवीके गुण सुनकर तृप्त हो सकते हैं परन्तु विपलबुद्धि मनुष्य उनके गुण सुनकर तृप्त नहीं हो सकते अधिक क्या देवीके गुण वर्णित एक २ शब्द सुननेसे अश्वमेध यज्ञका श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं है ॥ ३ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! शताक्षी देवीका पवित्र उत्पत्ति विषय कहता हूं तुम देवीके परम भक्त हो इस कारण तुमसे मेरा न कहने योग्य कुछ नहीं है ॥ ४ ॥ पूर्वकालके

स्वर्गार्थी प्राप्नुयात्स्वर्गं सुतार्थी सुतमाप्नुयात् ॥ भार्यार्थी प्राप्नुयाद्भार्यां राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ॥४२॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे सप्तम स्कंधे हरिश्चन्द्रोपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ जनमेजय उवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यानं हरिश्चन्द्रस्य कीर्तितम् ॥ शताक्षीपाद भक्तस्य राजर्षेर्धार्मिकस्य च ॥ १ ॥ शताक्षी सा कुतो जाता देवी भगवती शिवा ॥ तत्कारणं वद मुने सार्थकं जन्म मे कुरु ॥ २ ॥ को हि देव्या गुणाञ्छृण्वंस्तृप्तिं यास्यति शुद्धधीः ॥ पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमक्षय्यमश्नुते ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि शताक्षीसंभवं शुभम् ॥ तवाऽवाच्यं न मे किंचिद्देवीभक्तस्य विद्यते ॥ ४ ॥ दुर्गमाख्यो महादैत्यः पूर्वं परमदारुणः ॥ हिरण्याक्षान्वये जातो रुरुपुत्रो महाखलः ॥ ५ ॥ देवानां तु बलं वेदो नाशे तस्य सुरा अपि ॥नंक्ष्यंत्येव न संदेहो विधेयं तावदेव तत् ॥ ६ ॥ विमृश्यैतत्तपश्चर्या गतः कर्तुं हिमालये ॥ ब्रह्माणं मनसा ध्यात्वा वायुभक्षो व्यतिष्ठतः ॥ ७ ॥

समय दुर्गमनामक अत्यंत निष्ठुर एक महादानव था उस रुरुपुत्र महाबलवान् दानवने हिरण्याक्षके वंशमें जन्म ग्रहण किया ॥ ५ ॥ उसने एक समय मनमें विचार किया कि मुनिगण वेदविहित मंत्रसे होम करते हैं वह होमीय हव्य भक्षण कर देवतागण संतुष्ट होते हैं इससे वह बलगर्वित होकर वेदोक्त अस्त्र शस्त्र द्वारा हमको नष्ट करते हैं अतएव वेदही देवताओंका बल है इस कारण वेदके नष्ट होनेपर भी देवता नष्ट होंगे इसमें संदेह नहीं अतएव देवताओंका विनाश करनेके लिये वेदको नष्ट करना श्रेष्ठ है इसके सिवाय अन्य उपाय कोई नहीं है ॥६॥ वेदकर्ताकी आराधनासे ही यह कार्य सिद्ध होगा अतएव उनकीही आराधना करूंगा इस प्रकार मनमें निश्चयकर तपस्या करनेको हिमालयमें चला गया वह हृदयमें ब्रह्माजीका ध्यान करता हुआ काल व्यतीत करने लगा ॥ ७ ॥

वह हजार वर्षपर्यंत कठोर तपस्याके अनुष्ठानमें रत रहा अतएव उसके तेजप्रभावसे सुरासुर इत्यादि सम्पूर्ण लोक संतप्त होगये ॥ ८ ॥ इसी समय भगवान् चतुरानन ब्रह्मा इनसे प्रसन्न हुए और हंसपर चढ़ उसको वर देनेके निमित्त आये ॥ ९ ॥ उस समाधि स्थित निमीलितनेत्र (मुँदेनेत्र) दानवसे चतुराननसे स्वरूपसे कहा, तुम्हारा मंगल हो इस समय तुम अभिलषित वरकी प्रार्थना करो ॥ १० ॥ अब मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होकर वर देनेको आया हूं वह ब्रह्माजीके इस प्रकार वचन सुन समाधि छोडकर उठा ॥ ११ ॥ और उनकी यथाविधि पूजा करके कहा हे सुरेश्वर ! मुझको सम्पूर्ण वेद दान कीजिये; हे महेश्वर ! त्रिलोकीमें ब्राह्मण और देवताओंके पास जो संपूर्ण वेदमंत्र विद्यमान हैं ॥ १२ ॥ वह संपूर्ण वेदमंत्र मेरे पास विद्यमान रहैं और जिससे

सहस्रवर्षपर्यंतं चकार परमं तपः ॥ तेजसा तस्य लोकास्तु संतप्ताःससुरासुराः ॥ ८ ॥ ततः प्रसन्नो भगवान्हंसारूढश्चतुर्मुखः ॥ ययौ तस्मै वरं दातुं प्रसन्नमुखपंकजः ॥ ९ ॥ समाधिस्थं मीलिताक्षं स्फुटमाह चतुर्मुखः ॥ वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते ॥ १० ॥ तवाऽद्य तपसा तुष्टो वरदेशोऽहमागतः ॥ श्रुत्वा ब्रह्ममुखाद्वाणीं व्युत्थितः स समाहितः ॥ ११ ॥ पूजयित्वा वरं वव्रेवेदान्देहि सुरेश्वर ॥ त्रिषु लोकेषु ये मंत्रा ब्राह्मणेषु सुरेष्वपि ॥ १२ ॥ विद्यते तु सान्निध्ये मम संतु महेश्वर ॥ बलं च देहि येन स्याद्देवानां च पराजयः ॥ १३ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा तथाऽस्त्विति वचो वदन् ॥ जगाम सत्यलोकं तु चतुर्वेदेश्वरः परः ॥ १४ ॥ ततःप्रभृति विप्रैस्तु विस्मृता वेदराशयः ॥ स्नानसंध्यानित्यहोमश्रद्धायज्ञजपादयः ॥ १५ ॥ विलुप्त धरणी पृष्ठहाहाकारो महानभूत् ॥ किमिदं किमिदं चेति विप्रा ऊचुः परस्परम् ॥ १६ ॥ वेदाभावात्तदस्माभिः कर्तव्यं किमतः परम् ॥ इति भूमौ महानर्थे जाते परमदारुणे ॥ १७ ॥ निर्जराः सजरा जाता हविर्भागाद्यभावतः ॥ रुरोध स तदा दैत्यो नगरीममरावतीम् ॥ १८ ॥

देवतागण पराजित हों मुझको ऐसा बलप्रदान कीजिये ॥ १३ ॥ चतुर्वेद कर्ता परमेश्वर ब्रह्मा उसके इस प्रकार वचन सुन तथास्तु कहकर सत्यलोकको चले गये ॥ १४ ॥ तबसे ही ब्राह्मणलोग संपूर्ण वेदोंको भूलगये अतएव स्नान, संध्या, नित्यहोम, श्राद्ध, यज्ञ और जप इत्यादि क्रिया सब लुप्त होगई ॥ १५ ॥ उसकाल भूमंडलमें महा हाहाकार शब्द होने लगा, ब्राह्मणलोग परस्पर कहने लगे कि यह कैसे हुआ यह कैसे हुआ ॥ १६ ॥ इस समय वेदोंका अभाव होनेसे अब हमको क्या करना चाहिये इस प्रकार भूलोकमें परम दारुण घोर अनर्थ उपस्थित होनेपर ॥ १७ ॥ देवतागण होमीय हविका भाग न पाकर क्रमशः दुर्बल हुए इसी समय उस दानवने अमरावती नगरीको घेर लिया ॥ १८ ॥

अतएव देवतागण वज्रके समान कठिनदेह उस असुरके साथ संग्राम करनेमें असमर्थ हो दूसरे स्थानमें चले गये ॥ १९ ॥ वह सुमेरु पर्वतकी गुहा और पर्वतके दुर्गमप्रदेशका आश्रय लेकर परमशक्ति पराम्बिकाका ध्यान करने लगी ॥ २० ॥ हे राजन् ! अग्निमें आहुति देनेसे वह सूर्यलोकमें आस्थित होकर वृष्टिमें परिणत होती है इस कारण होमकार्यके न होनेसे वृष्टिका भी अत्यन्त अभाव होगया, वृष्टिके अभावसे भूमंडल शुष्क होकर किसी स्थानमें जलका लेशमात्र नहीं रहा ॥ २१ ॥ अधिक क्या कूप, वापी, तडाग और सरिता सबही शुष्क होगये यह अनावृष्टि एक शत वर्ष कालपर्यन्त स्थिर रही थी ॥ २२ ॥ असंख्य प्रजा और अनेक गौ तथा महिष इत्यादि संपूर्ण मरगये, उस संपूर्ण मनुष्योंके मृतदेह प्रत्येक घरमें ढेरके ढेर पडे रहे उनका दाहादि कार्य करनेके लिये कोई मनुष्य नहीं मिला ॥ २३ ॥ इस प्रकार अनर्थ उपस्थित होनेपर शांतचित्त ब्राह्मणलोग शिवाकी आराधना करनेके लिये अभिलाषी

अशक्तास्तेन ते योद्धुं वज्रदेहासुरेण च ॥ पलायनं तदा कृत्वा निर्गता निर्जराः क्वचित् ॥ १९ ॥ निलीय गिरिदुर्गेषु रत्नसानु गुहासु च ॥ संस्थिताः परमां शक्तिं ध्यायंतस्ते परांबिकाम् ॥ २० ॥ अग्नौ होमाद्यभावत्तु वृष्ट्यभावोऽप्यभून्नृप ॥ वृष्टेरभावे संशुष्कं निर्जलं चापि भूतलम् ॥ २१ ॥ कूपवापीतडागाश्च सरितः शुष्यतां गताः ॥ अनावृष्टिरियं राजन्नभूच्च शतवार्षिकी ॥ २२ ॥ मृताः प्रजाश्च बहुधा गोमाहिष्यादयस्तथा ॥ गृहे गृहे मनुष्याणामभवच्छवसंग्रहः ॥ २३ ॥ अनर्थे त्वेवमुद्भूते ब्राह्मणाः शांतचेतसः ॥ गत्वा हिमवतः पार्श्वे रिराधयिषव शिवाम् ॥ २४ ॥ समाधिध्यानपूजाभिर्देवीं तुष्टुवुरन्वहम् । निराहारास्तदासक्तास्तामेव शरणं ययुः ॥ २५ ॥ दयां कुरु महेशानि पामरेषु जनेषु हि ॥ सर्वापराधयुक्तेषु नैतच्छ्लाघ्यं तवांबिके ॥ २६ ॥ कोपं संहर देवेशि सर्वांतर्यामि रूपिणि ॥ त्वया तथा प्रेर्यतेऽयं करोति स तथा जनः ॥ २७ ॥

होकर हिमालयके पार्श्वदेशमें चलेगये ॥ २४ ॥ वह तद्गतचित्त हो निराहार रहकर समाधि ध्यान और पूजाद्वारा प्रतिदिन देवीका स्तव करने लगे अधिक क्या उनकीही शरणागत होकर उनका स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २५ ॥ हे महेशानि ! आप हमारे प्रति दया कीजिये. हे अंबिके ! सम्पूर्ण अपराधसे अपराधी पामरजनोंके ऊपर ऐसा कोप करना आपको श्लाघनीय नहीं है ॥ ॥ २६ ॥ अतएव हे देवेशि ! आप क्षमा कीजिये यदि हमारे पातकसे आपको क्रोध हुआ है तो उस विषयमें भी हमारा कुछ अपराध नहीं है कारण कि, आपही अन्तर्यामिरूपसे सबके हृदमें वास करती हैं अतएव आपही जिसको जिसकार्यमें नियुक्त करतीं हैं वह उसको करता है ॥ २७ ॥

जप पूजा और होमादिका अनुष्ठान करनेसे अन्यान्य देवता गण सन्तुष्ट होकर फलप्रदान करते हैं, वेदमंत्रके अभावसे उसकीभी सम्भावना नहीं किन्तु आप बालकके प्रति माताके समान स्मरण करते ही दयायुक्त होती हो अतएव आपके सिवाय इस प्रजाकी अन्यगति नहीं है हे महेश्वरि ! आप जो इच्छा करैं वही कर सकती हैं इस कारण आपसे वारंवार कहते हैं॥ २८॥ हे अम्बिके ! जलके अतिरिक्त हमारा जीवन किस प्रकार रक्षित हो सकता है ? अतएव हे महेशानि ! इस उपस्थित विषय संकटसे शीघ्र उद्धार कीजिये॥ २९॥ हे महेश्वरि! आप ही जगत्की जननी हैं इस कारण जगतवासी मनुष्योंके प्रति प्रसन्न हूजिये आपही अनन्तकोटि ब्रह्माण्डकी एकमात्र अधीश्वरी हैं अतएव आपको वारंवार नमस्कार करते हैं, ॥ ३०॥ आपही कूटस्थ चैतन्यस्वरूप हैं सुतरा आपको नमस्कार करते हैं, आपही चिद्घनस्व रूपिणी आद्यशक्ति हैं आपको वारंवार नमस्कार करते हैं आपही वेदप्रतिपाद्य हैं आपको प्रणाम करते हैं आपही भुवनेश्वरी हैं आपको वारंवार प्रणाम करते हैं

नान्या गतिर्जनस्यास्य किं पश्य पुनः पुनः ॥ यथेच्छसि यथा कर्तुं समर्थाऽसि महेश्वरि ॥ २८ ॥ समुद्धर महेशानि संकटात्पर मोत्थितात् ॥ जीवनेन विनास्माकं कथं स्यात्स्थितिरंबिके ॥ २९ ॥ प्रसीद त्वं महे शानि प्रसीद जगदंबिके ॥ अनंतकोटिब्रह्मांडना यिके ते नमो नमः ॥ ३० ॥ नमः कूटस्वरूपायै चिद्रूपायै नमो नमः ॥ नमो वेदांतवेद्यायै भुवनेश्यै नमो नमः ॥ ३१ ॥ नेति नेतीति वाक्यैर्या बोध्यते सकलागमैः ॥ तां सर्वकारणां देवीं सर्वभावेन सन्नताः ॥ ३२ ॥ इति संप्रार्थिता देवी भुवनेशी महेश्वरी ॥ अनंताक्षिमयं रूपं दर्शयामास पार्वती ॥ ३३ ॥ नीलांजनसमप्रख्यं नीलपद्मायतेक्षणम् ॥ सुकर्कश समोत्तुंगवृत्तपीनघनस्तनम् ॥ ३४ ॥ बाणमुष्टिं च कमलं पुष्पपल्लवमूलकान् ॥ शाकादीन्फलसंयुक्काननंतरससंयुतान् ॥ ३५ ॥ क्षुत्तृड्जरपहान्हस्तैर्बिभ्रती च महाधनुः ॥ सर्वसौंदर्यसारं तद्रूपं लावण्यशोभितम् ॥ ३६ ॥

॥ ३१॥ संपूर्ण वेदवाक्य "यह नहीं यह नहीं" इस प्रकार नश्वर वस्तुके निषेधद्वारा जिनको प्रतिपादित करते हैं जो सम्पूर्ण जगत्की कारण स्वरूप हैं उन्हीं देवीको हम सर्वान्तःकरणसे प्रणाम करते हैं॥ ३२॥ जब उन ब्राह्मणोंने महेश्वरी पार्वतीका इस प्रकार स्तव किया तब देवी भुवनेश्वरीने अपने शरीरमें असंख्यनेत्र प्रगट कर अपनी मूर्ति दिखाई ॥ ३३॥ उनका वर्ण अञ्जनके ढेरके समान नीला नेत्र नील कमलके समान और चौडे दोनों स्तन कठिन समान भावसे ऊंचे और गोलाकार स्तन स्थल परस्पर संलग्न परस्पर मिले हुए ॥ ३४॥ और चार उनकी भुजा दक्षिण हाथके ऊपर हाथमें कमल वाम हाथके ऊपर हाथमें महाधनु नीचेके हाथमें क्षुधा तृष्णा और ज्वरनाशक सीमारहित रसयुक्त शाक फल पुष्प और मूल सन्निविष्ट संपूर्ण सौभाग्य की सार स्वरूप लावण्यमय ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥

दे. भा. ॥८३॥

करोड़ सूर्यके समान ज्योतिर्मय और करुणारसकी सागर उन जगद्धात्रीने इस प्रकार रूप दिखाकर नेत्रोंसे असंख्य ॥ ३७ ॥ जलधारा छोड़ीं उस लोचन समुद्भूत जलसे सम्पूर्ण लोकोंमें नवरात्रिपर्यन्त महावृष्टि हुई ॥ ३८ ॥ वह सम्पूर्ण लोकोंका दुःख देखकर करुणावश नेत्रोंसे बराबर अश्रुवर्षण करने लगीं सुतरां उस जलसे सम्पूर्ण लोक और समस्त औषधितृप्त हुई ॥ ३९ ॥ अधिक क्या उस जल समूह द्वारा सम्पूर्ण नद और नदियें बहने लगीं हे राजन् ! जो देवतालोग गुहामें छिप रहे थे वह सभी निकले ॥ ४० ॥ फिर ब्राह्मण लोग देवताओंके सहित मिलित होकर देवीका स्तव करने लगे । आप वेदान्त द्वारा जानी जाती हैं ब्रह्मस्वरूपिणी हो अतएव आपको बारंबार नमस्कार करते हैं ॥ ४१ ॥ आप ही अपनी माया द्वारा समस्त जगत्का विधान करती

कोटिसूर्यप्रतीकाशं करुणारससागरम् ॥ दर्शयित्वा जगद्धात्री साऽनंतनयनोद्भवा ॥ ३७ ॥ मोचयामास लोकेषु वारिधाराः सहस्रशः ॥ नवरात्रं महावृष्टिरभून्नेत्रोद्भवैर्जलैः ॥ ३८ ॥ दुःखितान्वीक्ष्य सकलान्नेत्राश्रूणि विमुञ्चती ॥ तर्पितास्तेन ते लोका ओषध्यः सकला अपि ॥ ३९ ॥ नदीनदप्रवाहा स्तैर्जलैः समभवन्नृप ॥ निलीय संस्थिताः पूर्वं सुरास्ते निर्गता बहिः ॥ ४० ॥ मिलित्वा ससुरा विप्रा देवीं समभितुष्टुवुः ॥ नमो वेदांतवेद्ये ते नमो ब्रह्मस्वरूपिणि ॥ ४१ ॥ स्वमायया सर्वजगद्विधात्र्यै ते नमो नमः ॥ भक्तकल्पद्रुमे देवि भक्तार्थं देहधारिणि ॥ ४२ ॥ नित्यतृप्ते निरुपमे भुवनेश्वरि ते नमः ॥ अस्मच्छांत्यर्थमतुलं लोचनानां सहस्रकम् ॥ ४३ ॥ त्वया यतो धृतं देवि शताक्षी त्वं ततो भव ॥ क्षुधया पीडिता मातः स्तोतुं शक्तिर्न चाऽस्ति नः ॥ ४४ ॥ कृपां कुरु महेशानि वेदानप्याहरांबिके ॥ व्यास उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा शाकान्स्वकरसंस्थितान् ॥ ४५ ॥

हैं अतएव आपको बारंबार नमस्कार करते हैं हे देवि ! आप कल्पद्रुमके समान भक्तोंको अभीष्ट प्रदान करती हैं इसी कारण आपने भक्तोंकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेके लिये देह धारण किया है ॥ ४२ ॥ हे भुवनेश्वरि ! आप सदातृप्त रहती हैं सुतरां आपकी तुलना नहीं है अतएव आपको हम प्रणाम करते हैं हे देवि ! हमारी शक्तिके लिये ही आपने अतुल असंख्य नेत्र धारण किये हैं ॥ ४३ ॥ अतएव आप अबसे ही शताक्षी नामसे अभिहित होंगी हे मातः ! अम्बिक ! हम क्षुधासे अत्यन्त कातर हैं सुतरां हमारी स्तव करनेकी सामर्थ्य नहीं है ॥ ४४ ॥ अतएव महेशानि ! आप हमारे प्रति दया प्रकाश करके सम्पूर्ण वेदोंका उद्धार कीजिये व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवता और ब्राह्मणोंके इस प्रकार वचन सुनकर शिवाने अपने करस्थित शाक ॥ ४५ ॥

स्वादिष्ट फल और मूलादि भक्षण करनेके लिये उनको अर्पण किये ॥ ४६ ॥ उन्होंने प्रार्थित होकर जबतक नवीन अन्न उत्पन्न न हुआ तबतक मनुष्य भोज्य असीम रसयुक्त अनेक प्रकारका अन्न मनुष्योंको और पशुभोज्य तृणादि पशुओंको प्रदान किया हे राजन् ! उसी दिनसे देवीका शाकम्भरी नाम हुआ ॥ ४७ ॥ जब इससे घोर कोलाहल हुआ तब दुर्गम नामक असुरने दूतके मुखसे यह सम्पूर्ण वृत्तान्त जान शस्त्र धारण पूर्वक सैन्यके सहित युद्धयात्रा की ॥४८॥ उसने एक सहस्र अक्षौहिणी सेना ले शर छोड़ते छोड़ते शीघ्र जाय देवीके आगे स्थित उस देव सैन्य ॥४९॥ और ब्राह्मणोंको चारों ओरसे घेर लिया यह देखकर देवताओंके मण्डलमें कोलाहलध्वनि होने लगी॥ ५० ॥ तब देवता और ब्राह्मण सभीने मिलकर कहा हे देवी । रक्षा करो रक्षा करो ! तब

स्वादूनि फलमूलानि भक्षणार्थं ददौ शिवा ॥ नानाविधानि चान्नानि पशुभोज्यानि यानि च ॥ ४६ ॥ काम्यानंतरसैर्युक्तान्यानवीनोद्भवं ददौ ॥ शाकंभरीति नामाऽपि तद्दिनात्समभून्नृप ॥ ४७ ॥ ततः कोलाहले जाते दूतवाक्येन बोधितः ॥ ससैन्यः सायुधो योद्धुं दुर्गमाख्योऽसुरो ययौ ॥ ४८ ॥ सहस्राक्षौहिणीयुक्तः शरान्मुंच स्त्वरान्वितः ॥ रुरोध देवसैन्यं तद्यद्देव्यग्रे स्थितं पुरा ॥ ४९ ॥ तथा विप्रगणं चैव रोधयामास सर्वतः ॥ ततः किलकिलाशब्दः समभूद्देवमंडले ॥ ५० ॥ त्राहि त्राहीति वाक्यानि प्रोचुः सर्वे द्विजामराः ॥ ततस्तेजोमयं चक्रं देवानां परितः शिवः ॥ ५१ ॥ चकार रक्षणार्थाय स्वयं तस्माद्बहिः स्थिता ॥ ततः समभवद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः ॥ ५२ ॥ शरवर्षसमाच्छन्नसूर्यमंडलमद्भुतम् ॥ परस्परशरोद्घर्षसमुद्भूताग्निसुप्रभम् ॥ ५३ ॥ कठोरज्याटणत्कारबधिरीकृतदिक्तटम् ॥ ततो देवीशरीरात्तु निर्गतास्तीव्र शक्तयः ॥ ५४ ॥ कालिका तारिणी बाला त्रिपुरा भैरवी रमा ॥ बगला चैव मातंगी तथा त्रिपुरसुंदरी ॥ ५५ ॥ कामाक्षी तुलजा देवी जंभिनी मोहिनी तथा ॥ छिन्नमस्ता गुह्यकाली दशसाहस्रबाहुका ॥ ५६ ॥

शिवाने देव और ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये उनके चारों ओर तेजोमय चक्र उत्पन्न किया॥५१॥ और स्वयं उसके बाहर रहीं इसके उपरान्त देवी और दानव दोनोंका घोर अद्भुत युद्ध आरम्भ हुआ ॥ ५२ ॥ निरन्तर शरवर्षणकी छटाओंसे सूर्यमण्डल ढक गया इस लिये अन्धकारके कारण योधालोग लक्ष्य स्थिर न कर सके इसी समय शरोंके परस्पर घिसनेसे अग्नि उत्पन्न होनेके कारण युद्धस्थल और भी प्रभामय होगया ॥ ५३ ॥ कठोर ज्या शब्दसे दिशायें मानों बहरी होगगईं इसी समयमें देवीके शरीरसे शक्तियें निकलीं ॥ ५४ ॥ कालिका तारिणी षोडशी त्रिपुरा भैरवी कमला बगला मातङ्गी त्रिपुरा सुन्दरी ॥ ५५ ॥ कामाक्षी तुलजादेवी जम्भिनी मोहिनी छिन्न मस्ता और अयुतबाहु गुह्यकाली इत्यादि समस्त प्रधान शक्तियें देवीके शरीरसे निकली ॥ ५६ ॥

फिर बत्तीस शक्ति इसके उपरान्त चौसठ शक्ति इसके पीछे असंख्य शक्ति शस्त्रसहित देवीके शरीरसे निकली ॥ ५७ ॥ परंतु शक्तियोंके एक शत अक्षौहिणी सेना नष्ट करनेपर समरस्थलमें मृदङ्ग शंख वीणा इत्यादि वाद्यध्वनि होने लगी ॥ ५८ ॥ इसी अवसरमें वह सेनापति सुरशत्रु दुर्गम असुर सन्मुख उपस्थित होकर प्रथम शक्तियोंके सहित संग्राम करने लगा ॥ ५९ ॥ क्रमानुसार वह युद्ध ऐसा घोर होगया कि दश दिनमें ही वह सम्पूर्ण अक्षौहिणी नष्ट हो गई यही क्या मृतक योधाओंकी रुधिर धारासे रक्तकी नदियें बहने लगीं ॥ ६० ॥ फिर दारुण ग्यारहवां दिन उपस्थित होनेपर वह दानव कटिमें लालवस्त्र पहरे गलेमें रक्तमाल्य धारण और सर्वाङ्गमें लालचन्दन लेपन पूर्वक ॥ ६१ ॥ महामहोत्सव कर युद्धके लिये रथपर

द्वात्रिंशच्छक्तयश्चान्याश्चतुष्षष्टिमिताः परा ॥ असंख्यातास्ततो देव्यः समुद्भूतास्तु सायुधाः ॥ ५७ ॥ मृदंगशंखवीणादिनादितं संगरस्थलम् ॥ शक्तिभिर्दैत्यसैन्ये तु नाशितेऽक्षौहिणीशते ॥ ५८ ॥ अग्रेसरः समभवद्दुर्गमो वाहिनीपतिः ॥ शक्तिभिः सह युद्धं च चकार प्रथमं रिपुः ॥ ५९ ॥ महद्युद्धं समभवद्यत्राभूद्रक्तवाहिनी ॥ अक्षौहिण्यस्तु ताः सर्वा विनष्टा दशभिर्दिनैः ॥ ६० ॥ तत एकादशे प्राप्ते दिने परमदारुणे ॥ रक्तमाल्यांबरधरो रक्तगंधानुलेपनः ॥ ६१ ॥ कृत्वोत्सवं महांतं तु युद्धाय रथसंस्थितः ॥ संरंभेणैव महता शक्तीः सर्वाविजित्य च ॥ ६२ ॥ महादेवीरथाग्रे तु स्वरथं संन्यवेशयत् ॥ ततोऽभवन्महद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः ॥ ६३ ॥ प्रहरद्वयपर्यंतं हृदयत्रासकारकम् ॥ ततः पंचदशात्युग्रबाणान्देवी मुमोच ह ॥ ६४ ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहान्बाणेनैकेन सारथिम् ॥ द्वाभ्यां नेत्रे भुजौ द्वाभ्यां ध्वजमेकेन पत्रिणा ॥ ६५ ॥ पंचभिर्हृदयं तस्य विव्याध जगदंबिका ॥ ततो वमन्स रुधिरं ममार पुर ईशितुः ॥ ६६ ॥

चढा तब उसने अतीव (परिश्रमसे) समस्त शक्तियोंको जीतकर ॥ ६२ ॥ महादेवीके सन्मुख अपना रथ स्थापन किया इसके उपरान्त देवी और दानव दोनोंका दो पहरतक घोर युद्ध हुआ ॥ ६३ ॥ त्राससे लोकोंका हृदय कम्पित होने लगा इसी समय देवी जगदम्बिकाने अत्यन्त उग्र पंद्रह बाण छोडे ॥ ६४ ॥ चार शरसे उसके चारों वाहन एक शरसे उसका सारथि दो शरसे उसके दोनों नेत्र और दो शरसे उसकी दोनों भुजा एक शरसे उसकी ध्वजा ॥ ६५ ॥ और पाँच शरसे उसका हृदय बीन्धडाला तब उसने रुधिरको वमन करते करते परमेश्वरीके सन्मुख ही प्राणत्याग किया ॥ ६६ ॥

इसी समय उसके शरीरसे निकला हुआ तेज देवीके शरीरमें लीन होगया उस महाबलवान् दानवके मारे जानेपर तीनों जगतने शांति भाव धारण किया ॥ ६७ ॥ फिर हरि हर ब्रह्मा और अन्यान्य देवता भक्तिपूर्वक गद्गदवचनोंसे जगदम्बिकाका स्तव करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ६८ ॥ देवताओंने कहा हे शिवे ! भ्रमरूप जगत्के परिवर्त्तनका आपही एक मात्र कारण हैं सुतरां आपही प्राणीमात्रकी अधीश्वरी हैं ऐसा न होनेसे आप शाकादि द्वारा प्राणियोंका पालन क्यों करतीं ? अतएव हे शतलोचने! हम आपको वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ ६९ ॥ हे शिवे ! समस्त उपनिषद्र आपकी महिमा (कथन) करते हैं अतएव आपही मायाकी अधीश्वरी होकर जीवोंके अन्नमयकोषमें विराजमान रहती हैं अतएव हे दुर्गमासुरनाशिनी ! आपको नमस्कार करते हैं ॥ ७० ॥ आपही प्रणवार्थ प्रतिपादित भुवनेश्वरी हैं सुतरां मुनीश्वरलोग निर्विकल्पचित्तसे आपकाही ध्यान करते हैं अतएव हमभी आपकी भावना करते हैं ॥ ७१ ॥ आपही

तस्य तेजस्तु निर्गत्य देवीरूपे विवेश ह ॥ हते तस्मिन्महावीर्ये शांतमासीज्जगत्रयम् ॥ ६७ ॥ ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुर्जगदंबिकाम् ॥ पुरस्कृत्य हरीशानौ भक्त्या गद्गदया गिरा ॥ ६८ ॥ देवा ऊचुः ॥ जगद्भ्रमविवर्तैककारणे परमेश्वरि ॥ नमः शाकंभरि शिवे नमस्ते शतलोचने ॥ ६९ ॥ सर्वोपनिषदुद्घुष्टे दुर्गमासुरनाशिनि ॥ नमो मायेश्वरि शिवे पंचकोशांतरस्थिते ॥ ७० ॥ चेतसा निर्विकल्पेन यां ध्यायंति मुनीश्वराः ॥ प्रणवार्थस्वरूपां तां भजामो भुवनेश्वरीम् ॥ ७१ ॥ अनंतकोटिब्रह्मांडजननीं दिव्यविग्रहाम् ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिजननीं सर्व भावैर्नता वयम् ॥ ७२ ॥ कः कुर्यात्पामरान्दृष्ट्वा रोदनं सकलेश्वरः ॥ सदयां परमेशानीं शताक्षीं मातरं विना ॥७३॥ व्यास उवाच ॥ इति स्तुता सुरैर्देवी ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्वरैः ॥ पूजिता विविधैर्द्रव्यैः संतुष्टाभूच्च तत्क्षणे ॥ ७४ ॥ प्रसन्ना सा तदा देवी वेदानाहृत्य सा ददौ ॥ ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण प्रोवाच पिकभाषिणी ॥ ७५ ॥

हमारे लिये समय समयमें दिव्यदेह धारण करती हैं वस्तुतः आपही अनंत ब्रह्माण्डकी जननी हैं अधिक क्या ब्रह्मा हरि और हरकीभी उत्पन्न करनेवाली हैं अतएव हम सर्वान्तःकरणसे आपको प्रणाम करते हैं ॥७२॥ आपही सबकी माता हैं इस कारण दयाके वशहो इन पामरजनोंको दुःख देकर आपही शतनेत्रोंसे रोदन करती हैं किंतु हे परमेशानि ! यदि कोई संपूर्णका ईश्वर हो तथापि आपके अतिरिक्त और कोई रोदन नहीं करेगा ॥ ७३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! ब्रह्मा विष्णु और हर इत्यादि देवताओं के इसप्रकार देवीका स्तव और अनेक प्रकार उत्तम द्रव्यद्वारा उनकी पूजा करनेपर वह तत्काल सन्तुष्ट हुई ॥७४॥ तब देवीने प्रसन्न होकर सम्पूर्ण वेदोंको लाकर ब्राह्मणोंको समर्पण किये अन्तमें उन कोकिलके समान मधुर बोलनेवालीने उनसे विशेष करके कहा ॥७५॥

दे. भा. कि वेदही मेरा उत्तमतनु है अतएव तुम विशेष यत्न सहित इनकी रक्षा करो इनकी अपेक्षा श्रेष्ठतम अन्य कुछ नहीं है क्योंकि कल्याणके लियेही मैंने तुमको यह
॥८५॥ उपदेश दिया है ॥७६॥७७॥ मेरे उत्तम माहात्म्यको सदा पाठ करना मैं इससे सन्तुष्ट होकर तुम्हारी संपूर्ण आपदायें नष्ट करूंगी ॥ ७८ ॥ दुर्गम असुरका संहार करनेसे मेरा दुर्गमा नाम हुआ है अतएव जो पुरुष मेरा दुर्गमानाम और शताक्षीनाम ग्रहण करेंगे वही मायाको दूरकर परमपद जासकेंगे ॥ ७९ ॥ अब अधिक कहनेका प्रयोजन नहीं है इस समय जो सार है वही कहती हूं हे देवताओ ! सुर अथवा असुर सम्पूर्णही सदा मेरी सेवा करो ॥ ८० ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! वह सच्चिदानन्दस्वरूपिणी देवी ऐसे वचनोंसे देवताओंका सन्तोष सम्पादन करके उनके सामनेही अन्तर्धान होगई ॥८१॥ हे राजन् ! यह तो मैंने

ममेयं तनुरुत्कृष्टा पालनीया विशेषतः ॥ यया विनाऽनर्थ एष जातो दृष्टोऽधुनैव हि ॥ ७६ ॥ पूज्याऽहं सर्वदा सेव्या युष्माभिः सर्वदैव हि ॥ नातः परतरं किंचित्कल्याणायोपदिश्यते ॥ ७७ ॥ पठनीयं ममैतद्धि माहात्म्यं सर्वदोत्तमम् ॥ तेन तुष्टा भविष्यामि हरिष्यामि तथाऽऽपदः ॥ ७८ ॥ दुर्गमासुरहंत्रीत्वाद्दुर्गेति मम नाम यः ॥ गृह्णाति च शताक्षीति मायां भित्त्वा व्रजत्यसौ ॥ ७९ ॥ किमुक्तेनात्र बहुना सारं वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ संसेव्याऽहं सदा देवाः सर्वै रपि सुरासुरैः ॥८०॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वांऽतर्हिता देवी देवानां चैव पश्यताम् ॥ संतोषं जनयंत्येवं सच्चिदानं रूपिणी ॥ ८१ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं रहस्यं परमं महत् ॥ गोपनीयं प्रयत्नेन सर्वकल्याण कारकम् ॥ ८२ ॥ य इमं शृणुयान्नित्यमध्यायं भक्तितत्परः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति देवीलोके महीयते ॥ ८३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते म० सप्तमस्कंधेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥ व्यास उवाच ॥ इत्येवंसूर्यवंश्यानां राज्ञां चरितमुत्तमम् ॥ सोमवंशोद्भवानां च वर्णनीयं मया कियत् ॥ १ ॥ पराशक्तिप्रसादेन महत्त्वं प्रतिपेदिरे ॥ राजन्सु निश्चितं विद्धि पराशक्तिप्रसादतः ॥ २ ॥

तुमसे अत्यंत विस्तीर्ण परम रहस्य समस्तही वर्णन किया किंतु यह संपूर्णही कल्याणका आस्पद है अतएव इसको यत्न सहित गुप्त रक्खो ॥८२॥ जो मनुष्य भक्तिमें तत्पर होकर यह अध्याय नित्य श्रवण करता है वह संपूर्ण काम्यवस्तुओंको प्राप्त करके अन्तमें देवीके लोकमें पूजाको प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ इति
भा.टी.स. श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! यह तो देवीका माहात्म्य वर्णन किया इस समय सूर्यवंशीय और
अ० २९ चन्द्रवंशीय धार्मिक राजाओंके पवित्र चरित्रका विषय यथाशक्ति वर्णन करता हूं ॥१॥ इन संपूर्ण राजाओंमें ऐसा पाराक्रम होनेका कारण यह है वह कि सभी परादेवीके परमभक्त थे अतएव शक्तिके प्रसादसेही उन्होंने ऐसा महत्व प्राप्त किया था आप निश्चय जानिये कि पराशक्तिही उनके महत्वमूल कारण है॥ २॥

उनका विक्रम वीर्य और ऐश्वर्य समस्त ही पराशक्तिके अंशसे उत्पन्न हुआ है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ हे नरपाल ! यह संपूर्ण राजा और अन्यान्य राजा लोगोंने पराशक्तिके उपासक होकर ज्ञानरूप कुठारसे संसाररूपी वृक्षकी जड़ काटी है ॥ ४ ॥ अतएव अत्यन्त यत्नसहित भलीभांति देवी भुवनेश्वरीकी सेवा करनी चाहिये धनकी इच्छा करनेवाले मनुष्य जिस प्रकार पलाल परालभूसी त्याग करते हैं इसी प्रकार भक्तोंके संपूर्ण वासना त्यागनी उचित है ॥५॥ हे नरनाथ ! मैंने वेदरूप सागर मथकर पराशक्तिके चरण सरोजरूप रत्न प्राप्त किये हैं इससे अत्यंत कृतकृत्य हुआ हूं ॥ ६ ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र और ईश्वर जिनके चारों कोणमें स्थित चार पादपस्वरूप हैं सदाशिव ब्रह्मादिक जिनके मस्तक स्थित फलक स्वरूप हैं उन श्रीदेवीके अतिरिक्त श्रेष्ठ देवता दूसरा कोई नहीं है इन अज्ञानी मनुष्योंको प्रतिपन्न (ज्ञानप्रगट) करनेके लियेही महादेवीने ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर और शिवात्मक आसनकी कल्पना की है ॥७॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्र

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ॥ तत्तदेवावगच्छ त्वं परा शक्त्यंशसंभवम् ॥ ३ ॥ एते चाऽन्येच राजानः पराशक्तेरुपासकाः ॥ संसारतरुमूलस्य कुठारा अभवन्नृप ॥ ४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संसेव्याभुवनेश्वरी ॥ पलाल मिव धान्यार्थी त्यजेदन्यमशेषतः ॥ ५ ॥ आमथ्य वेददुग्धाब्धिं प्राप्तं रत्नं मया नृप ॥ पराशक्तिपदांभोजं कृतकृत्योऽस्म्यहं ततः ॥ ६ ॥ पंचब्रह्मासनारूढा नास्त्यन्या काऽपि देवता ॥ तत एव महादेव्या पंचब्रह्मासनं कृतम् ॥ ७ ॥ पंचभ्यस्त्वधिकं वस्तु वेदेऽव्यद्युमितीर्यते ॥ यस्मिन्नोतं च प्रोतं च सैव श्रीभुवनेश्वरी ॥ ८ ॥ तामविज्ञाय राजेंद्र नैवमुक्तो भवेन्नरः ॥ यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः ॥ ९ ॥ तदा शिवामविज्ञाय दुःखस्यांतो भविष्यति ॥ अत एव श्रुतौ प्राहुः श्वेताश्वतरशाखिनः ॥ १० ॥ ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ॥ ११ ॥

ईश्वर और सदाशिव यह पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश इस पञ्चभूतोंके अधिपति हैं इन पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति जिनसे हुई है वेदमें उन वस्तुओंको व्यक्त अथवा अव्याकृत (का प्रगट) कहकर निर्देश किया है और उनमें ही सम्पूर्ण जगत् सूत्र ग्रथित मणियोंके समान ओत और प्रोत भावसे अधिष्ठित रहता है वही भुवनेश्वरी हैं ॥ ८ ॥ हे राजेन्द्र ! जब भुवनेश्वरीके स्वरूपको न जाननेसे मनुष्य कभी मुक्त नहीं हो सकता ॥ ९ ॥ जिस समय मनुष्य आकाश कृष्णसारचर्मके समान वेष्टन कर सकें तो भुवनेश्वरीके स्वरूपको न जाननेसे भी उनके संसार क्लेश नाश हो जायँगे आकाश को वेष्टन करना जिस प्रकार असम्भव है भुवनेश्वरीके ज्ञानके अतिरिक्त मुक्तिलाभ भी इसी प्रकार असम्भव है अतएव भुवनेश्वरीके स्वरूपको जाननेमें यत्न करना एकान्त उचित है ॥१०॥ भुवनेश्वरीका ध्यान ही मोक्षका मूल है श्वेताश्वतर उपनिषद्में तत् शाखाध्यायी स्पष्ट कहते हैं कि "जो ध्यानयोगमें निरत हैं वह उन देवीको

सत्त्व रजतम इन तीनों गुणोंसे आवृत और देवताओंकी स्व स्वशक्तिरूप कहकर देखते हैं ॥ ११ ॥ अतएव जन्म सुफल करनेके लिये लज्जासे हो भयसे हो अथवा प्रेमपूर्ण भक्तियोगसे हो यत्नसहित प्रथम सर्व संग त्याग करे इसके उपरान्त हृदयमें मन निरोध कर ॥१२॥ देवीनिष्ठ हो सत्परायण होवे वेदान्तरूप डिण्डिम यह घोषण करती है जो व्यक्ति शयन गमन अथवा अवस्थान कालके समय ॥ १३ ॥ वा जिस किसी स्थलमें ही देवीका नाम कीर्तन करता है वह भव बन्धनसे मुक्त होता है इसमें सन्देह नहीं हे राजन् ! आप सर्व प्रकार यत्नसहित महेश्वरीकी अर्चना कीजिये ॥ १४ ॥ जिस प्रकार मनुष्य क्रमानुसार ऊंची सीढीपर चढ़ते हैं आप उन्हींके अनुसार महादेवीके विराट्रूप सूक्ष्मरूप और अन्तर्यामि रूपका ध्यान करके चित्त शुद्धि प्राप्त कीजिये फिर चित्त शुद्धि प्राप्त होनेपर ॥ १५ ॥ जो मायाके अतीत सच्चित् और आनन्दकी आधार स्वरूप हैं उन्हीं ब्रह्मरूपिणी पराशक्तिकी आराधना करो ॥ १६ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जन्मसाफल्यहेतवे ॥ लज्जया वा भयेनाऽपि भक्त्या वा प्रेमयुक्तया ॥ सर्वसंगं परित्यज्य मनो हृदि निरुध्य च ॥ १२ ॥ तन्निष्ठस्तत्परो भूयादिति वेदान्तडिंडिमः ॥ येनकेन मिषेणापि स्वपंस्तिष्ठन्व्रजन्नपि ॥ १३ ॥ कीर्तयेत्सततं देवीं वै मुच्येत बंधनात् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भज राजन्महेश्वरीम् ॥ १४ ॥ विराड्रूपां सूत्ररूपां तथांऽतर्यामिरूपिणीम् ॥ सोपान क्रमतः पूर्वं ततः शुद्धे तु चेतसि ॥ १५ ॥ सच्चिदानंदलक्ष्यार्थरूपां तां ब्रह्मरूपिणीम् ॥ आराधय परां शक्तिं प्रपंचोल्लासवर्जिताम् ॥ १६ ॥ तस्यां चित्त लयो यः स तस्या आराधनं स्मृतम् ॥ राजन्राज्ञां पराशक्तिभक्तानां चरितं मया ॥ १७ ॥ धार्मिकाणां सूर्यसोमवंशजानां मनस्विनाम् ॥ पावनं कीर्तिदं धर्मबुद्धिदं सद्गतिप्रदम् ॥१८॥ कथितं पुण्यदं पश्चात्किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ जनमेजय उवाच ॥ गौरीलक्ष्मीसरस्वत्यो दत्ताः पूर्वं परांबया ॥ १९ ॥हराय हरये तद्वन्नाभिपद्मोद्भवाय च ॥ तुषाराद्रेश्च दक्षस्य गौरी कन्येति विश्रुतम् ॥ २० ॥

पराशक्तिमे चित्तके लय करनेका ही नाम आराधना है इस कारण आप उन्हींमें चित्त लय कीजिये हे राजेंद्र ! मैंने पराशक्तिके भक्तोंके चरित्र तथा ॥ १७ ॥ सूर्य और चन्द्रवंशीय मनस्वी धार्मिक पराशक्तिके परम भक्त राजाओंके पवित्र चरित्र कीर्तन किये इनको श्रवण करनेसे मनुष्योंको अतुलकीर्ति धर्म बुद्धि सद्गति और पुण्य प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त आप अन्य किस विषयके सुननेकी इच्छा करते हैं ? जनमेजयने कहा हे भगवन् ! पूर्वकालके समय जगज्जननी पराशक्तिने हरको गौरी हरिको लक्ष्मी और हरिकी नाभि कमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माको सरस्वती प्रदान की इस समय सुनता हूं कि गौरी हिमालय और दक्षकी भी कन्या है ॥ १९ ॥ २० ॥

और महालक्ष्मी क्षीरोदसागरकी कन्या हैं यह सम्पूर्ण ही मूल देवीसे उत्पन्न हुई हैं तो गौरी और लक्ष्मी किस प्रकार अन्यकी कन्या हो सकती हैं ? ॥ २१ ॥ हे महामुने ! यह अत्यंत असम्भव होनेसे मुझको संशय उपस्थित हुआ है हे भगवन् ! आप संशय छेदन करनेमें भलीभांति समर्थ हैं अतएव ज्ञान रूप असिद्वारा मेरा यह उपस्थित संसय छेदन कीजिये ॥ २२ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! आपसे इस अद्भुत रहस्यका विषय कहता हूं श्रवण करो क्योंकि आप देवीके परमभक्त हैं सुतरां आपसे कुछ अवक्तव्य नहीं है ॥२३॥ पराम्बिकाने जिस समय हर हरि और ब्रह्माको क्रमानुसार गौरी लक्ष्मी और सरस्वती प्रदान की है तबसे ही हरादि तीनों देवता सृष्टिकार्य निर्वाह करते हैं ॥२४॥ हे राजन् ! किसी समय हला हल नामक कितने ही दानवोंने जन्म ग्रहण किया कालक्रमसे उन्होंने अत्यंतपराक्रान्त होकर क्षणमात्रमें ही त्रैलोक्यको पराजय किया ॥ २५ ॥ अधिक क्या उन्होंने ब्रह्माके वरदानसे दर्पित होकर

क्षीरोदधेश्च कन्येति महालक्ष्मीरितिस्मृतम् ॥ मूलदेव्युद्भवानां च कथं कन्यात्वमन्ययोः ॥ २१ ॥ असंभाव्यमिदं भाति संशयोऽत्र महान्मुने ॥ छिंधि ज्ञानासिना तं त्वं संशयच्छेदतत्पर ॥ २२ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि रहस्य परमाद्भुतम् देवीभक्तस्य ते किंचिदवाच्यं न हि विद्यते ॥ २३ ॥ देवीत्रयं यदा देवत्रयायादात्परांबिका ॥ तदाप्रभृति ते देवाः सृष्टिकार्याणि चक्रिरे ॥ २४ ॥ कस्मिंश्चित्ससमये राजन्दैत्या हालाहलाभिधाः ॥ महा पराक्रमा जातास्त्रैलोक्यं तैर्जितं क्षणात् ॥ २५ ॥ ब्रह्मणो वरदानेन दर्पिता रजताचलम् ॥ रुरुधुर्निजसेनाभिस्तथा वैकुण्ठमेव च ॥ २६ ॥ कामारिः कैटभारिश्च युद्धोद्योगं च चक्रतुः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणामभूद्युद्धं महोत्कटम् ॥ २७ ॥ हाहाकारो महानासीद्देव दानवसेनयोः ॥ महताऽथ प्रयत्नेन ताभ्यां ते दानवा हताः ॥ २८ ॥ स्वस्वस्थानेषु गत्वा तावभिमानं च चक्रतुः॥स्वशक्त्योर्निकटे राजन्यद्वशादेव ते हताः ॥ २९ ॥

अपनी सेना ले कैलासपर्वत और वैकुण्ठधामपर्यन्त घेर लिया ॥ २६ ॥ यह देखकर महादेव और विष्णु दोनों ही युद्धका उद्योग करने लगे क्रमानुसार दोनों दलोंमें घोर संग्राम आरम्भ हुआ यही क्या साठ हजार वर्ष पर्यन्त अविश्रान्त युद्ध हुआ ॥ २७ ॥ किंतु किसी दलकी जय पराजय नहीं हुई क्रमानुसार देव और दानव सैन्यमें घोर हाहाकार ध्वनि होने लगी इसी समय शिव और विष्णु यत्नसहित दानवोंको निपातित करने लगे ॥ २८ ॥ हे राजन् ! फिर शिव और विष्णु अपने अपने स्थानको चले गये वास्तविक दानव उनकी निजशक्तिके प्रभावसे निहत हुए थे किंतु शिव और विष्णु उन अपनी शक्ति गौरी और लक्ष्मीके निकट जाय गर्वित होकर कहने लगे कि वह दानव लोग हमारे पराक्रमसे ही नियत हुए हैं ॥ २९ ॥

उनको अभिमान युक्त जानकर गौरी और लक्ष्मीने बिचारा कि हमारे प्रभावसे ही यह दानव विनष्ट हुए हैं किंतु हमारे सन्मुख ही अब अभिमान प्रकाश करते हैं यह जानकर कपट हास्य किया उनका इस प्रकार हास्य देखकर वे दोनों देवता ॥ ३० ॥ अत्यन्त कुपित हुए किंतु उनकी अनादि मायासे मोहित होकर दोनों ही परस्परको अभिमान पूर्वक कुत्सित वचन कहने लगे ॥ ३१ ॥ उसी समय गौरी और लक्ष्मी शिव और विष्णुको त्यागकर अन्तर्धान होगई उनके अन्तर्धान हो जानेपर सम्पूर्ण मनुष्य हाहाकार करने लगे ॥ ३२ ॥ दोनों शक्तियोंके अपमानसे हरि और हर दोनोंही तेजहीन शक्तिहीन और चेतना रहित होकर विक्षिप्त होगये॥३३॥ यह देखकर ब्रह्माजीने चिन्तासे व्याकुल हो बिचार किया कि, हरि और हर दोनोंही देवताओंमें

अभिमानं तयोर्ज्ञात्वा च्छलहास्यं च चक्रतुः ॥ माहालक्ष्मीश्च गौरी च हास्यं दृष्ट्वा तयोस्तु तौ ॥ ३० ॥ देवावतीव संक्रुद्धौ मोहिता वादिमायया ॥ दुरुत्तरं च ददतुरवमानपुरःसरम् ॥ ३१ ॥ ततस्ते देवते तस्मिन्क्षणे त्यक्त्वा तु तौ पुनः ॥ अंतर्हिते चाभवतां हाहा कारस्तदा ह्यभूत् ॥ ३२ ॥ निस्तेजस्कौ च निःशक्ती विक्षिप्तौ च विचेतनौ ॥ अवमानात्तयोः शक्त्योर्जातौ हरिहरौ तदा ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा चिंतातुरो जातः किमेतत्समुपस्थितम् ॥ प्रधानौ देवतामध्ये कथं कार्याक्षमावमू ॥ ३४ ॥ अकाण्डे किंनिमित्तेन संकटं समुप स्थितम् ॥ प्रलयो भविता किं वा जगतोऽस्य निरागसः ॥ ३५ ॥ निमित्तं नैव जानेऽहं कथं कार्या प्रतिक्रिया ॥ इति चिन्तातुरोऽत्यर्थं दध्यौ मीलितलोचनः ॥ ३६ ॥ पराशक्ति प्रकोपात्तु जातमेतदिति स्म ह ॥ जानंस्तदा सावधानः पद्मजोऽभून्नृपोत्तम ॥ ३७ ॥ ततस्त योश्च यत्कार्यं स्वयमेवाकरोत्तदा ॥ स्वशक्तेश्च प्रभावेण कियत्कालं तपोनिधिः ॥ ३८ ॥ ततस्तयोस्तु स्वस्त्यर्थं मन्वादीन्स्वसुता नथ ॥ आह्वयामास धर्मात्मा सनकादींश्च सत्वरः ॥ ३९ ॥

प्रधान हैं किंतु यह जगत कार्यमें असमर्थ क्यों हुए? इस उपस्थित व्यापारका क्या कारण है? ॥ ३४ ॥ किस लिये आकालमें यह संकट उपस्थित हुआ है? कार्यके अभावसे निरपराध इस जगत्में क्या प्रलय उपस्थित होगी ॥३५॥ इसका कारण कुछ नहीं जाना जाता अतएव किस प्रकार प्रतिकार करूंगा, इस प्रकार चिंतासे अत्यंत कातर हो उसका कारण जाननेकी इच्छा से नेत्र मूंदकर ध्यानमें निमग्न हुए ॥ ३६ ॥ हे नृपोत्तम ! अनन्तर पद्मयोनि ब्रह्माजीने ध्यानसे जाना कि पराशक्तिके अत्यन्त कोपके प्रभावसे यह दुर्घटना उपस्थित हुई है ॥३७॥ तब वह उनके प्रतिकारमें यत्न करने लगे जबतक हरि और हर स्वस्थ न हुए तपोधन ब्रह्मा स्वीय शक्तिके प्रभावसे तबतक उनका पालन और संहार कार्य स्वयं निर्बाह करने लगे ॥ ३८ ॥ अनन्तर धर्मात्मा प्रजापतिने उनको

सुस्थिर करनेकी इच्छासे अपनी संतान मनु और सनकादि ऋषियोंको बुलाया ॥ ३९ ॥ जब उन्होंने आकर प्रणाम किया तब तपोनिधि चतुरानन ब्रह्माजीने कहा मैं इस समय अधिक कार्यमें आसक्त हूं अतएव तपस्याका अनुष्ठान नहीं कर सकता ॥ ४० ॥ पराशक्तिके कोपसे हरि और हर विक्षिप्त हुए हैं सुतरां उन्हीं महाशक्तिके सन्तोषनार्थ जगतकी सृष्टि संहार और पालन इन तीनों कार्योंका भार मैंनेही लिया है ॥ ४१ ॥ अतएव तुम अत्यंत भक्तिसहित कठोर तपस्या करके उन पराशक्तिको सन्तुष्ट करो ॥ ४२ ॥ हे पुत्रगण ! जिससे हरि और हर पहलेके समान अवस्थाको प्राप्त होकर शक्तिके सहित मिलित हो तुम उसीके अनुसार कार्य करो इससे तुम्हारे यशकी वृद्धि होगई इसमें संदेह नहीं ॥ ४३ ॥ परंतु जिस कुलमें वह दोनों शक्तियें जन्में

उवाच वचनं तेभ्यः सन्नतेभ्यस्तपोनिधिः ॥ कार्यासक्तोऽहमधुना तपः कर्तुं न च क्षमः ॥ ४० ॥ पराशक्तेस्तु तोषार्थं जगद्धारयुतोऽस्म्यहम् ॥ शिवविष्णू च विक्षिप्तौ पराशक्तिप्रकोपतः ॥ ४१ ॥ तस्मात्तां परमां शक्तिं यूयं संतोषयंत्वथ ॥ अत्यद्भुतं तपः कृत्वा भक्त्या परमया युताः ॥ ४२ ॥ यथा तौ पूर्ववृत्तौ च स्यातां शक्तियुतावपि ॥ तथा कुरुत मत्पुत्रा यशोवृद्धिर्भवेद्धि वः ॥ ४३ ॥ कुले यस्य भवेज्जन्म तयोः शक्त्योस्तु तत्कुलम् ॥ पावयेज्जगतीं सर्वां कृतकृत्यं स्वयं भवेत् ॥ ४४ ॥ व्यास उवाच ॥ पितामहवचः श्रुत्वा गताः सर्वे वनांतरे ॥ रिराधयिषवः सर्वे दक्षाद्या विमलांतराः ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते० म० स० एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ व्यास उवाच ॥ ततस्ते तु वनोद्देशे हिमाचलतटाश्रयाः ॥ मायाबीजजपासक्तास्तपश्चेरुः समाहिताः ॥ १ ॥ ध्यायतां परमां शक्तिं लक्षवर्षाण्यभून्नृप ॥ ततः प्रसन्ना देवी स प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ २ ॥

गी वह कुल सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करेगा अधिक क्या वह व्यक्तिभी स्वयं कृतार्थ होगा ॥ ४४ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! विमलांतःकरण दक्षादि मानसपुत्र पितामहके इस प्रकार वचन सुनकर उन पराशक्तिकी आराधना करनेकी इच्छासे वनको चलेगये ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषाटीकायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! हिमालय पर्वतकी तटभूमि अत्यंत निर्जन स्थान है सुतरां उन्होंने वनमें जाकर तपस्याके लिये उसी स्थानमें मन लगाया, वह समाहित चित्तसे मायाबीज भुवनेश्वरीका मंत्र जपते जपते उसी स्थानमें तपस्या करने लगे ॥ ॥ १ ॥ हे राजन् ! परमशक्तिका ध्यान करते करते एक लक्ष वर्ष व्यतीत होनेपर देवीने प्रसन्न होकर उसको दर्शन दिया ॥ २ ॥

उनकी मूर्ति त्रिनयना और सच्चिदानन्दरूपिणी है इस कारण वह करुणारससे परिपूर्ण दो एक हाथमें पाश और एक हाथमें अंकुश धारणकर भक्तोंको एक हाथसे अभय और एक हाथसे वर देती है ॥ ३ ॥ वह विमलस्वभाव मुनिगण जगज्जननीकी इस प्रकार मूर्ति देखकर उनका स्तव करने लगे हे देवि ! आप पृथक्‌रूपसे समस्त थूलदेहोंमें विराजमान रहती हो अतएव आपको नमस्कार करते हैं हे परमेश्वरि ! आपही पृथक्‌रूपसे संपूर्ण लिंगदेहोंमें वर्त्तमान रहती हैं अतएव आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥ आपही समष्टिरूप समस्त लिंगदेहोंमें वास करती हैं तेजसरूप हैं अतएव आपको नमस्कार करते हैं जिसमें संपूर्ण लिंग देह ओतप्रोतभावसे अवस्थित रहते हैं ॥ ५ ॥ आपही पृथक् रूपसे उन संपूर्ण कारण देहोंमें विराजमान रहती हैं अतएव आपको नमस्कार करते हैं आपही समस्त जीवोंके अधिष्ठान भूत कूटस्थ ब्राह्मस्वरूप होकर सम्पूर्ण देहोंमें विराजमान रहती हैं अतएव आपको नमस्कार करते हैं ॥ ६ ॥ आपही समस्त

पाशांकुशवराभीतिचतुर्बाहुस्त्रिलोचना ॥ करुणारससंपूर्णा सच्चिदानंदरूपिणी ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा तां सर्वजननीं तुष्टुवुर्मुनयोऽमलाः ॥ नमस्ते विश्वरूपायै वैश्वानरसुमूर्तये ॥ ४ ॥ नमस्ते जलरूपायै सूत्रात्मवपुषे नमः ॥ यस्मिन्सर्वे लिंगदेहा ओतप्रोता व्यवस्थिताः ॥ ५ ॥ नमः प्राज्ञस्वरूपायै नमोऽव्याकृतमूर्तये ॥ नमः प्रत्यक्स्वरूपायै नमस्ते ब्रह्ममूर्तये ॥ ६ ॥ नमस्ते सर्वरूपायै सर्वलक्ष्यात्ममूर्तये ॥ इति स्तुत्वा जगद्धात्रीं भक्तिगद्गदया गिरा ॥ ७ ॥ प्रणेमुश्चरणांभोजं दक्षाद्या मुनयोऽमलः ॥ ततः प्रसन्ना सा देवी प्रोवाच पिकभाषिणी ॥ ८ ॥ वरं ब्रूत महाभागा वरदाऽहं सदा मता ॥ तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा हरिविष्णवोस्तनोः शमम् ॥ ९ ॥ तयोस्तच्छक्तिलाभं च वव्रिरे नृपसत्तम ॥ दक्षोऽथ पुनरप्याह जन्म देवि कुले मम ॥ १० ॥ भवेत्तवांब येनाऽहं कृतकृत्यो भवे इति ॥ जपं ध्यानं तथा पूजां स्थानानि विधिधानि च ॥ ११ ॥

भूतोंकी लक्ष्यभूत आत्मस्वरूप हैं अतएव आपको वारंवार नमस्कार करते हैं अमल स्वभाव दक्षादि मुनियोंने भक्तिपूर्वक गद्गदस्वरसे जगद्धात्रीका इस प्रकार स्तव कर ॥७॥ उनके चरण कमलोंमें प्रणाम किया अनन्तर देवीने प्रसन्न होकर कोकिलके समान मधुर स्वरसे कहा ॥ ८ ॥ हे महाभागगण ! मैं सर्वदाही वर देनेको प्रस्तुत हूं अतएव तुम वरकी प्रार्थना करो हे नृपसत्तम ! उन्होंने देवीके इस प्रकार वचन सुनकर प्रार्थना की कि, हरि और हर दोनोंही स्वास्थ्य लाभकर ॥ ९ ॥ अपनी अपनी शक्ति लक्ष्मी और गौरीको प्राप्त करें फिर दक्षने पुनर्वार कहा कि हे देवि ! आपका जन्म मेरेही कुलमें हो ॥ १० ॥ हे अम्बे ! इससे मैं कृतार्थ हूंगा इसमें सन्देह नहीं अतएव हे परमेशानि ! अपनी पूजा जय ध्यान और उनके उपयुक्त अनेक स्थानोंके ॥ ११ ॥

विषय आपही अपने मुखसे वर्णन कीजिये देवीने कहा मेरीही शक्तिके अपमानसे उन हरि और हर दोनोंकी यह दशा हुई है ॥ १२ ॥ अतएव अब ऐसा अपराध कभी न करें इस समय मेरी कृपाके लेशसे उन शरीरको स्वास्थ्य प्राप्त होगा ॥१३॥ और दोनों शक्तियोंमेंसे एक शक्ति तुम्हारे घर और अन्य शक्ति क्षीरोदसागरमें जन्मग्रहण करेगी परंतु मेरे उनको प्रेरण करनेपर हरि और हर अपनी अपनी शक्तिको प्राप्त होंगे ॥१४॥ माया बीजही मेरा मुख्य मंत्र है यह सदा मुझको प्रिय है सुतरां इस मंत्रसे ही मेरा जप और पूजा करो तुम सन्मुख जिस मूर्तिको देखते हो मेरी यही भुवनेश्वरी मूर्ति है अथवा मेरे विराट्रूप ॥१५॥ किंवा मेरे सच्चिदानंद रूपका ध्यान करो और सम्पूर्ण जगत्‌ही मेरा स्थान है अतएव समस्त स्थानोंमें मेरी पूजा और ध्यान सर्वदा करो ॥१६॥ व्यासजीने

वद मे परमेशानि स्वमुखेनैव केवलम् ॥ देव्युवाच ॥ मच्छक्त्योरवमानाच्च जाताऽवस्था तयोर्द्वयोः ॥ १२ ॥ न तादृशः प्रकर्तव्यो मेऽपराधः कदाचन ॥ अधुना मत्कृपालेशा च्छरीरे स्वस्थता तयोः ॥ १३ ॥ भविष्यति च ते शक्ती त्वद्‌गृहे क्षीरसागरे ॥ जनिष्य तस्तत्र ताभ्यां प्राप्स्यतः प्रेरिते मया ॥ १४ ॥ मायाबीजं हि मन्त्रो मे मुख्यः प्रियकरः सदा ॥ ध्यानं विराट्स्वरूपं मेऽथवा त्वत्पु रतः स्थितम् ॥ १५ ॥ सच्चिदानंदरूपंवा स्थानं सर्वजगन्मम ॥ युष्माभिः सर्वदा चाऽहं पूज्य ध्येया च सर्वदा ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वांतर्दधे देवी मणिद्वीपाधिवासिनी ॥ दक्षाद्या मुनयः सर्वे ब्रह्माणं पुनराययुः ॥ १७ ॥ ब्रह्मणे सर्ववृत्तांतं कथयामासु रादरात् ॥ हरो हरिश्च स्वस्थौ तौ स्वस्वकार्यक्षमौ नृप ॥ १८ ॥ जातौ परांबाकृपया गर्वेण रहितौ तदा ॥ कदाचिदथ काले तु महः शाक्तमवातरत् ॥ १९ ॥ दक्षगेहे महाराज त्रैलोक्येऽप्युत्सवोऽभवत् ॥ देवाः प्रमुदिताः सर्वे पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे ॥ २० ॥

कहा मणिद्वीपवासिनी भुवनेश्वरी देवी इस प्रकार उनके प्रश्नका उत्तर देकर अन्तर्धान होगई दक्ष इत्यादि सम्पूर्ण मुनियोंने फिर ब्रह्माके निकट जाकर ॥१७॥ वह समस्त वृत्तांत भ्रमयुक्त हो उनसे निवेदन किया हे नृपवर ! उस प्रकार हरि और हर दोनों गर्वरहित हो परमा देवी अम्बिकाके कृपासे स्वस्थ होकर अपने अपने कार्य करनेमें समर्थ हुए थे ॥ १८ ॥ यह गर्वरहित हो महाशक्तिकी कृपासे स्वस्थ हुए अनन्तर किसी समय पराशक्तिकी परमतेजःस्वरूपिणी देवी भगवती ॥१९॥ दक्ष प्रजापतिके घर उत्पन्न हुई हे महाराज ! उस समय त्रैलोक्यमें सर्वत्र महोत्सव होने लगा सम्पूर्ण देवता लोग प्रमुदित हो प्रफुल्लित चित्तसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २० ॥

स्वर्गमें सुरदुन्दुभि सम्पूर्ण करांगुलियोंसे आहत होकर गम्भीर ध्वनि करने लगी तब विमलात्मा साधुओंके मन प्रसन्न हुए ॥ २१ ॥ और सूर्यकी प्रभा निर्मल होगई सम्पूर्ण सरित् आनंदमें भर कर उछलते हुए अपने मार्गमें वहने लगे जीवोंकी जन्ममृत्यु निवारण कारिणी देवी जगन्मङ्गलाके जन्म ग्रहण करनेपर सर्वत्र मंगलका सञ्चार हुआ ॥ २२ ॥ वह परब्रह्मस्वरूपिणी देवी सत्य स्वरूपिणी होनेके कारण तत्त्वज्ञानी मुनियोंने उनका " सती " नाम रक्खा अनंतर प्रजापति दक्षने जो पूर्वमें महेश्वरकी शक्ति थी उन्होंने उनको फिर देवादिदेव महादेवको प्रदान की ॥ २३ ॥ वही दाक्षायणी देवी दक्षके अपराधसे प्रज्वलित अग्निमें दग्ध हुई थी जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! आपने मुझको विषम अनर्थकर यह वचन सुनाया ॥ २४ ॥ ऐसी परम सद्रूप महत् वस्तु किस प्रकार अग्निमें दग्ध हुई जिनका नाम स्मरण करनेसे मनुष्योंका संसाररूप घोर अग्निभय नष्ट होता है ॥ २५ ॥ प्रजापतिके कौन कर्म विपाकसे वह वस्तु दग्ध

नेदुर्दुंदुभयः स्वर्गे करकोणाहता नृप ॥ मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनाममलात्मनाम् ॥ २१ ॥ सरितो मार्गवाहिन्यः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ मंगलायां तु जातायां जातं सर्वत्र मंगलम् ॥ २२ ॥ तस्या नाम सतीं चक्रे सत्यत्वात्परसंविदः ॥ ददौ पुनः शिवायाथ तस्य शक्तिस्तु याऽभवत् ॥ २३ ॥ सा पुनर्ज्वलने दग्धा दैवयोगान्मनोर्नृप ॥ जनमेजय उवाच ॥ अनर्थकरमेतत्ते श्रावितं वचनं मुने ॥ २४ ॥ एतादृशं महद्वस्तु कथं दग्धं हुताशने ॥ यन्नामस्मरणान्नृणां संसाराग्निभयं न हि ॥ २५ ॥ केन कर्मविपाकेन मनोर्दग्धं तदेव हि ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्पुरावृत्तं सतीदाहस्य कारणम् ॥ २६ ॥ कदाचिदथ दुर्वासा गतो जम्बूनदेश्वरीम् ॥ ददर्श देवीं तत्रासौ मायाबीजं जजाप सः ॥ २७ ॥ ततः प्रसन्नाः देवेशी निजकंठगतां स्रजम् ॥ भ्रमद्भ्रमर संसक्तां मकरंदमदाकुलाम् ॥ २८ ॥ ददौ प्रसादभूतां तां जग्राह शिरसा मुनिः ॥ ततो निर्गत्य तरसा व्योममार्गेण तापसः ॥ २९ ॥

हुई थी उसको सुननेके लिये मेरी इच्छा अत्यंत बलवती हुई है आप कृपा करके मुझसे विस्तार सहित वर्णन कीजिये व्यासजीने कहा हे राजेंद्र ! सतीके दाहका कारण स्वरूप पुरातन इतिहास वर्णन करता हूं श्रवण करो ॥ २६ ॥ किसी समय ऋषिवर दुर्वासाने जाम्बूनदवाहिनी नदीके तटपर जाकर वहाँ स्थित देवीका दर्शन किया अनंतर वह उस स्थानमें अवस्थित होकर शांत चित्तसे माया बीजका जप करने लगे ॥ २७ ॥ तदनंतर सुरेश्वरी भगवतीने उनके प्रति प्रसन्न होकर मकरन्द गंधसे प्रमोदित प्रमत्त भौंरोंसे युक्त कण्ठस्थित मनोहर माला ॥ २८ ॥ प्रसाद स्वरूप उनको प्रदान की महर्षिने भी शीघ्र उसको ग्रहणकर मस्तकमें धारण किया इसके उपरांत उन तपस्वी प्रवर महर्षिने शीघ्रता सहित आकाश मार्गसे चलकर ॥ २९ ॥

अम्बिकाके दर्शनार्थ जहाँ सतीके पिता प्रजापति दक्ष स्थिति करते थे उस स्थानमें आकर सतीके चरण कमलोंमें प्रणाम किया ॥ ३० ॥ अनंतर प्रजापतिने उनसे पूछा हे महर्षे! यह अलौकिक माला किसकी है हे प्रभो ! पृथ्वीमें दुर्लभ यह मोहिनी माला आपने किस प्रकार प्राप्त की ? ॥३१॥तब वह वाग्मिप्रवर महर्षि दुर्वासा उनके इस प्रकार वचन सुनकर प्रेम विगलित चित्तसे नेत्रोंमें आंसू भर कहने लगे हे प्रजापते! मैंने देवीका प्रसाद स्वरूप यह अनुपम मनोहारिणी माला प्राप्त की है ॥ ३२ ॥ यह सुनकर प्रजापतिने महर्षि दुर्वासासे वह माला मांगी उनको भी त्रैलोक्यमें शक्तिके भक्तको अदेय कुछ भी नहीं था ॥३३। इस प्रकार विचारकर प्रजापति दक्षको वह माला देदी उन्होंने उस मालाको मस्तकमें धारणकर फिर जिस घरमें ॥ ३४ ॥ दम्पतिकी अति मनोहर शय्या

आजगाम स यत्राऽऽस्ते दक्षः साक्षात्सतीपिता ॥ संदर्शनार्थमंबाया ननाम च सतीपदे ॥ ३० ॥ पृष्टो दक्षेण स मुनिर्माला कस्या स्त्यलौकिकी ॥ कथं लब्धा त्वया नाथ दुर्लभा भुवि मानवैः ॥ ३१ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य प्रोवाचाश्रुयुतेक्षणः ॥ देव्याः प्रसादमतुलं प्रेमगद्गदितांतरः ॥ ३२ ॥ प्रार्थयामास तां मालां तं मुनिं स सतीपिता ॥ अदेयं शक्तिभक्ताय नास्ति त्रैलोक्यमंडले ॥ ३३ ॥ इति बुद्ध्या तु तां मालां मनवे स समर्पयत् ॥ गृहीता शिरसा माला मनुना निजमंदिरे ॥ ३४ ॥ स्थापिता शयनं तत्र दंपत्योरतिसुंदरम् ॥ पशुकर्मरतो रात्रौ मालागंधेन मोदितः ॥ ३५ ॥ अभवत्स महीपालस्तेन पापेन शंकरे ॥ शिवे द्वेषमतिर्जातो देव्यां सत्यां तथा नृप ॥ ३६ ॥ राजंस्तेनापराधेन तज्जन्यो देह एव च ॥ सत्या योगाग्निना दग्धः सतीधर्मदिदृक्षया ॥ ३७॥ पुनश्च हिमवत्पृष्ठे प्रादुरासीत्तु तन्महः ॥ जनमेजय उवाच ॥ दग्धेनेमा सतीदेहे जाते किमकरोच्छिवः ॥ ३८ ॥ प्राणाधिका सती तस्य तद्वियोगेन कातरः ॥ व्यास उवाच ॥ ततः परं तु यज्जातं मया वक्तुं न शक्यते ॥ ३९ ॥

सज्जित थी उसी शय्याके ऊपर रख रात्रिकालके समय उस मालाकी सुगन्धसे आमोदित होकर वह महीपति सुरत कार्यमें आसक्त हुए ॥ ३५ ॥ हे नृपवर ! उस पशुकर्म निबन्धके कारण उनको सती देवी और शंकरके प्रति विद्वेष उत्पन्न हुआ इससे वह शिवकी निंदा करने लगे॥३६॥ हे महाराज उसी अपराधसे सतीने सनातन पतिव्रत धर्मके मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये उस दक्षजनित देहको त्याग करनेका संकल्प कर योगाग्नि द्वारा अपना देह दग्ध किया ॥३७॥ वह शक्ति समुद्भूत तेज फिर हिमाचलमें प्रादुर्भूत हुआ था जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! सतीका देह दग्ध हो जानेपर ॥३८॥ प्राणाधिका सतीके वियोगमें कातर होकर महादेवने क्या किया था ? व्यासजीने कहा हे महाराज ! इसके उपरांत जिस प्रकार घटना हुई थी मैं उसको वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूं ॥ ३९ ॥

हे नृपवर ! उससमय शिवकी क्रोधाग्निद्वारा त्रिलोकमण्डलमें प्रलय उपस्थित हुई थी भद्रकालीगण द्वारा परिवृत हो वीरभद्र उत्पन्न होकर ॥ ४० ॥ तीनों लोकके नाशमें उद्यत हुए तब ब्रह्मादि देवताओंने शंकरकी शरण ग्रहण की ॥ ४१ ॥ सतीके विनाशसे सर्वनाश होनेपरभी करुणानिधान ईशानने दक्षका यज्ञ विनष्टकर उनका मस्तक छेदन किया और उसी स्थानमें बकरेका शिर संयोजन पूर्वक ॥ ४२ ॥ उनको जीवित कर देवताओंको अभयप्रदान की तब देवादिदेव महादेव अतिखिन्न हो यज्ञस्थानके समीप जाकर अत्यंत दुःखसे रोदन करने लगे ॥ ४३ ॥ अनंतर जब उन्होंने देखा कि उस चैतन्यरूपिणी सतीका देह चिताग्निमें दग्ध होता है तब वह हा सती हा सती इस प्रकार कहकर रोदन करते करते सतीका देह स्वयं कंधेपर रख ॥ ४४ ॥ भ्रांतचित्तसे

त्रैलोक्यप्रलयो जातः शिवकोपाग्निना नृप ॥ वीरभद्रः समुत्पन्नो भद्रकालीगणान्वितः ॥ ४० ॥ त्रैलोक्यनाशनोद्युक्तो वीरभद्रो यदाऽभवत् ॥ ब्रह्मादयस्तदा देवाः शंकरं शरणं ययुः ॥ ४१ ॥ जाते सर्वस्वनाशेऽपि करुणानिधिरीश्वरः ॥ अभयं दत्तवांस्तेभ्यो बस्तक्रेण तं मनुम् ॥ ४२ ॥ अजीवयन्महात्माऽसौ ततः खिन्नं महेश्वरः ॥ यक्षवाटमुपागम्य रुरोद भृशदुःखितः ॥ ४३ ॥ अपश्यतां सतीं वह्नौ दह्यमानां तु चित्कलाम् ॥ स्कंधेऽप्यारोपयामास हा सतीति वदन्मुहुः ॥ ४४ ॥ बभ्राम भ्रांतचित्तः सन्नानादेशेषु शंकरः ॥ तदा ब्रह्मादयो देवाश्चितामापुरनुत्तमाम् ॥ ४५ ॥ विष्णुस्तु त्वरया तत्र धनुरुद्यम्य मार्गणैः ॥ चिच्छेदावयवान्सत्या स्तत्तत्स्थानेषु तेऽपतन् ॥ ४६ ॥ तत्तत्स्थानेषु तत्रासीन्नानामूर्तिधरो हरः ॥ उवाच च ततो देवान्स्थानेष्वेतेषु ये शिवाम् ॥ ४७ ॥ भजंति परया भक्त्या तेषां किंचिन्न दुर्लभम् ॥ नित्यं सन्निहिता यत्र निजांगेषु परांबिके ॥ ४८ ॥ स्थानेष्वेतेषु ये मर्त्याः पुरश्चरण कर्मिणः ॥ तेषां मंत्राः प्रसिध्यंति मायाबीजं विशेषतः ॥ ४९ ॥

अनेक देशोंमें भ्रमण करने लगे यह देखकर ब्रह्मादि देवतागण अत्यंत चिंतित हुए ॥ ४५ ॥ और भगवान् विष्णुने धनुर्धारणपूर्वक बाणोंसे सतीके सम्पूर्ण अङ्ग छेदन किये वह संपूर्ण अवयव जिन जिन स्थानोंमें पतित हुए ॥ ४६ ॥ शंकरने अनेकमूर्ति धारणकर उन स्थानोंमें स्थिति की, तब उन्होंने देवताओंसे कहा कि इन सम्पूर्ण स्थानोंमें जो जो पुरुष भक्ति सहित भगवतीकी ॥ ४७ ॥ आराधना करेंगे उनको कुछ दुर्लभ नहीं रहेगा इन संपूर्ण स्थानोंमें परमादेवी अम्बिका सदा स्थित रहती हैं ॥ ४८ ॥ जो जो मनुष्य इन संपूर्ण स्थानोंमें समस्त मन्त्रोंका विशेषकर मायाबीजका पुरश्चरण करेंगे उनको संपूर्ण मन्त्रोंकी सिद्धि होगी इसमें सन्देह नहीं ॥ ४९ ॥

हे नृपवर ! यह कहकर महेश्वर सतीके विरहसे अत्यंत कातर हो जप, ध्यान और समाधि अवलम्बन पूर्वक उन उन स्थानोंमें काल व्यतीत करने लगे ॥ ५० ॥ जनमेजयने कहा किस किस स्थानमें सतिके संपूर्ण अंग पतित हुए थे ? उन सब सिद्धपीठका क्या नाम है ? और उन संपूर्ण पीठोंकी कितनी संख्या है ? आप आनुपूर्विक समस्त कीर्तन कीजिये ॥ ५१ ॥ हे महामुने ! मैं आपके मुखकमलसे निकली हुई सम्पूर्ण कथा सुनकर इस संसारमें कृतार्थता प्राप्त करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥ व्यासजीने कहा हे राजेन्द्र ! जिन सबका नाम सुननेसेही मनुष्य पाप रहित होता है मैं इस समय वह समस्त पीठस्थान कीर्तन करूंगा श्रवण करो ॥ ५३ ॥ जिन जिन पीठस्थानमें ऐश्वर्यकांक्षी सिद्धि काम मनुष्योंको इन देवीकी उपासना और ध्यान करना

इत्युक्त्वा शंकरस्तेषु स्थानेषु विरहातुरः ॥ कालं निन्ये नृपश्रेष्ठ जपध्यानसमाधिभिः ॥ ५० ॥ जनमेजय उवाच ॥ कानि स्थानानि तानि स्युः सिद्धपीठानि चानघ ॥ कतिसंख्यानि नामानि कानि तेषां च मे वद ॥ ५१ ॥ तत्र स्थितानां देवीनां नामानि च कृपाकर ॥ कृतार्थोऽहं भवे येन तद्वदाशु महामुने ॥ ५२ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देवीपीठानि सांप्रतम् ॥ येषां श्रवणमात्रेण पापहीनो भवेन्नरः ॥ ५३ ॥ येषु येषु च पीठेषूपास्येयं सिद्धिकांक्षिभिः ॥ भूतिकामैरभिध्येया तानि वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ ५४ ॥ वाराणस्यां विशालाक्षी गौरीमुखनिवासिनी ॥ क्षेत्रे वै नैमिषारण्ये प्रोक्ता सा लिंगधारिणी ॥ ५५ ॥ प्रयागे ललिता प्रोक्ता कामुकी गंधमादने ॥ मानसे कुमुदा प्रोक्ता दक्षिणे चोत्तरे तथा ॥ ५६ ॥ विश्वकामा भगवती विश्वकामप्रपूरिणी ॥ गोमंते गोमती देवी मन्दरे कामचारिणी ॥ ५७ ॥ मदोत्कटा चैत्ररथे जयंती हस्तिनापुरे ॥ गौरी प्रोक्ता कान्यकुब्जे रंभा तु मलयाचले ॥ ५८ ॥

कर्तव्य है मैं वह समस्त स्थान भलीभांति कीर्तन करता हूं ॥ ५४ ॥ हे महाराज ! वाराणसीमें गौरीका मुख निपतित हुआ है उसी मुखरूप पीठमें भगवतीकी जो मूर्ति विराजमान है वह विशालाक्षी नामसे विख्यात है नैमिषारण्यमें निपतित देवीकी मूर्तिका नाम लिङ्गधारिणी है ॥५५॥ यह महामाया प्रयागमें ललिता गन्धमादनमें कामुकी दक्षिण मानसमें कुमुदा और उत्तर मानसमें ॥ ५६ ॥ विश्वकी वाञ्छापूरिणी विश्वकामा है गोमंतमें गोमती और मंदर पर्वतमें कामचारिणी नामसे विख्यात होकर विराजमान रहती हैं ॥ ५७ ॥ यह देवी चैत्ररथमें मदोत्कटा हस्तिनापुरमें जयन्ती कान्यकुब्जमें गौरी मलयपर्वतमें रम्भा ॥ ५८ ॥

एकाम्रपीठमें कीर्तिमती विश्वमें विश्वेश्वरी और पुष्करमें पुरुहूता नामसे कीर्तित हैं ॥ ५९ ॥ यह केदारपीठमें सन्मार्गदायिनी हिमाचल पृष्ठमें मन्दा गोकर्णमें भद्रकर्णिका ॥ ६० ॥ स्थानेश्वरमें भवानी बिल्वकमें बिल्वपत्रिका श्रीशैलमें माधवी भद्रेश्वरमें भद्रा ॥ ६१ ॥ वराहशैलमें जया कमलालयमें कमला रुद्रकोटिमें रुद्राणी कालञ्जरमें काली ॥ ६२ ॥ शालग्राममें महादेवी शिवलिंगमें जलप्रिया महालिंगमें कपिला माकोटमें मुकुटेश्वरी ॥ ६३ ॥ मायापुरीमें कुमारी संतानमें ललिताम्बिका गयाक्षेत्रमें मङ्गला पुरुषोत्तममें विमला ॥ ६४ ॥ सहस्राक्षमें उत्पलाक्षी हिरण्याक्षमें महोत्पला विपाशा नदीमें अमोघाक्षी पुंड्रवर्धनमें

एकाम्रपीठे संप्रोक्ता देवी सा कीर्तिमत्यपि ॥ विश्वे विश्वेश्वरीं प्राहुः पुरुहूतां च पुष्करे ॥ ५९ ॥ केदारपीठे संप्रोक्ता देवी सन्मार्गदा
यिनी ॥ मंदा हिमवतः पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका ॥ ६० ॥ स्थानेश्वरी भवानी तु बिल्वके बिल्वपत्रिका ॥ श्रीशैले माधवी प्रोक्ता भद्रा
भद्रेश्वरे तथा ॥६१॥ वराहशैले तु जया कमला कमलालये ॥ रुद्राणी रुद्रकोटचा तु काली कालंजरे तथा ॥ ६२ ॥ शालग्रामे महा
देवी शिवलिंगे जल प्रिया ॥ महालिंगे कपिला माकोटे मुकुटेश्वरी ॥ ६३ ॥ मायापुर्यां कुमारी स्यात्संताने ललितांबिका ॥ गया
यां मंगला प्रोक्ता विमला पुरुषोत्तमे ॥ ६४ ॥ उत्पलाक्षी सहस्राक्षे हिरण्याक्षे महोत्पला ॥ विपाशायाममोघाक्षी पाडला पुंड्रवर्धने
॥ ६५ ॥ नारायणी सुपार्श्वे तु त्रिकूटे रुद्रसुन्दरी ॥ विपुले विपुला देवी कल्यणी मलयाचले ॥ ६६ ॥ सह्याद्रावेकवीरा तु हरिश्चन्द्रे
तु चंद्रिका रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती ॥ ६७ ॥ कोटवी कोटतीर्थे तु सुगंधा माधवे वने ॥ गोदावर्यां त्रिसंध्यां तु
गंगातीरे रतिप्रिया ॥ ६८ ॥ शिवकुंडे शुभा नंदा नंदिनी देविकातटे ॥ रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधावृंदावने वने ॥ ६९ ॥ देवकी
मथुरायां तु पाताले परमेश्वरी ॥ चित्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विंध्याधिवासिनी ॥ ७० ॥

पाटला ॥ ६५ ॥ सुपार्श्वमें नारायणी त्रिकूटमें रुद्रसुन्दरी विपुलमें विपुलादेवी मलयाचलमें कल्याणी ॥६६॥ सह्याद्रिमें एकवीरा हरिश्चन्द्रमें चंद्रिका रामतीर्थमें रमणा यमुनामें मृगावती ॥ ६७ ॥ कोटतीर्थमें कोटिवी माधववनमें सुगंधा गोदावरीमें त्रिसन्ध्या गंगाद्वारमें रतिप्रिया ॥ ६८ ॥ शिवकुंडमें शुभानंदा देवि कांतरमें नंदिनी द्वारावतीमें रुक्मिणी वृन्दावनमें राधा ॥ ६९ ॥ मथुरामें देवकी पातालमें परमेश्वरी चित्रकूटमें सीता और विंध्यमें विंध्याधिवासिनी नामसे विख्यात होकर विराजमान रहती हैं ॥ ७० ॥

हे महाराज ! यही महादेवी भगवती करवीरपीठमें महालक्ष्मी विनायकमें उमादेवी वैद्य नाथमें आरोग्या महाकालमें महेश्वरी ॥ ७१ ॥ उष्णतीर्थमें अभया विंध्यपर्वतमें नितम्बा माण्डव्यमें माण्डवी महेश्वरीपुरीमें स्वाहा ॥ ७२ ॥ छगलण्डमें प्रचण्डा अमरकण्टकमें चण्डिका सोमेश्वरीमें वहारोहा प्रभासमें पुष्क रावती ॥ ७३ ॥ सरस्वतीमें देवमाता समुद्रतटमें पारावारा महालयमें महाभाग पयोष्णीमें पिंगलेश्वरी ॥ ७४ ॥ कृतशौचमें सिंहिका कार्तिकमें अतिशांकरी उत्पलावर्तकमें लोला शोणसंगममें सुभद्रा ॥ ७५ ॥ सिद्धवनमें मातालक्ष्मी भारताश्रम अनङ्गा जालन्धरमें विश्वमुखी किष्किन्धापर्वतमें तारा ॥७६॥ देवदा

करवीरे महालक्ष्मीरुमा देवी विनायके ॥ आरोग्या वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी ॥७१॥ अभयेत्युष्ण तीर्थेषु नितंबा विंध्य पर्वते ॥ मांडव्ये मांडवी नाम स्वाहा माहेश्वरीपुरे ॥ ७२ ॥ छगलण्डे प्रचंडा तु चंडिकाऽमरकंटके ॥ सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती ॥ ७३ ॥ देवमाता सरस्वत्यां पारावारा तटे स्मृता ॥ महालये महाभागा पयोष्ण्यां पिंगलेश्वरी ॥ ७४ ॥ सिंहिका कृत शौचे तु कार्तिके त्वतिशांकरी ॥ उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा शोणसंगमे ॥ ७५ ॥ माता सिद्धवने लक्ष्मीरनंगा भरताश्रमे ॥ जालंधरे विश्वमुखी तारा किष्किंधपर्वते ॥ ७६ ॥ देवदारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमंडले ॥ भीमादेवी हिमाद्रौ तु तुष्टिर्विश्वेश्वरी तथा ॥ ७७ ॥ कपाल मोचने शुद्धिर्माता कायावरोहणे ॥ शंखोद्धारे धरा नाम धृतिः पिंडारके तथा ॥ ७८ ॥ कला तु चंद्रभागायामच्छोदे शिवधारिणी ॥ वेणायाममृता नाम बदर्यामुर्वशी तथा ॥ ७९ ॥ औषधिश्चोत्तर कुरौकुशद्वीपे कुशोदका ॥ मन्मथा हेमकूटे तु कुमुदे सत्यवादनी ॥ ८० ॥ अश्वत्थे वंदनीया तु निधिर्वैश्रवणालये ॥ गायत्री वेदवदने पार्वती शिव सन्निधौ ॥ ८१ ॥ देवलोके तथेंद्राणीं ब्रह्मास्येषु सर स्वती ॥ सूर्यबिंबे प्रभानाम मातृणां वैष्णवी मता ॥ ८२ ॥

रुवनमें पुष्टि काश्मीरमंडलमें मेधा हिमाद्रिमें भीमा विश्वेश्वरक्षेत्रमें तुष्टि ॥ ७७ ॥ कपालमोचनमें शुद्धि कायावरोहणमें माता शंखोद्धारमें धरा पिण्डारकमें धृति ॥ ७८ ॥ चन्द्रभागा नदीमें कला अच्छोदमें शिवधारिणी वेणामें अमृता बदरिकाश्रममें उर्वशी ॥ ७९ ॥ उत्तर कुरूमें औषधि कुशद्वीपमें कुशोदका हेमकूटमें मन्मथा कुमुदमें सत्यवादिनी ॥ ८० ॥ अश्वत्थमें वन्दनीया वैश्रवणालयमें निधि वेदवदनमें गायत्री शिवसन्निधानमें पार्वती ॥ ८१ ॥ देवलोकमें इंद्राणी ब्रह्माके आस्यमें सरस्वती सूर्यबिम्बमें प्रभा और मातृगणोंके सन्निधानमें वैष्णवीनामसे विख्यात होकर विराजमान रहती हैं ॥ ८२ ॥

यही सतियोंमें अरुन्धती और रामागणोंमें तिलोत्तमा नामसे विख्यात हैं तथा यही संविद्रूपा महादेवी हैं, संपूर्ण शरीरियोंके चित्रक्षत्रमें ब्रह्मकल नामक शक्ति रूपसे सदा अधिष्ठित रहती हैं ॥ ८३ ॥ हे जनमेजय ! यह मन एकशत अष्ट पीठ और तत्संख्यक ईशानीदेवीका विषय तुमसे वर्णन किया ॥ ८४ ॥ देवीके अंगभूत संपूर्ण पीठ और प्रसंगके क्रमसे पृथ्वीतलके अन्यान्य मुख्यास्थान भी कीर्तन हुए ॥ ८५ ॥ जो मनुष्य यह अत्युत्तम एकसौ आठ देवीके नाम और पीठोंके नाम श्रवण करता है वह सर्वविध पापसे मुक्त होकर देवीके लोकको जाता है ॥८६॥ हे जनमेजय ! जो बुद्धिमान् पुरुष इन संपूर्ण पीठस्थानोंमें यथा विधानसे यात्राकर श्राद्धादिद्वारा पितरोंका तर्पण ॥ ८७ ॥ और यथाविधि भगवतीकी महती पूजा करके उस जगद्धात्री जगदम्बिकाके निकट वारंवार

अरुंधती सतीनां तु रामासु च तिलोत्तमा ॥ चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम् ॥ ८३ ॥ इमान्यष्टशतानि स्युः पीठानि जनमेजयः ॥ तत्संख्याकास्तदीशान्यो देव्यश्च परकीर्तिताः ॥ ८४ ॥ सतीदेव्यंगभूतानि पीठानि कथितानि च ॥ अन्यान्यपि प्रसंगेन यानि मुख्यानि भूतले ॥ ८५ ॥ यः स्मरेच्छृणुयाद्वाऽपि नामाष्टशतमुत्तमम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीलोकं परं व्रजेत् ॥ ८६ ॥ एतेषु सर्वपीठेषु गच्छेद्यात्राविधानतः ॥ संतर्पयेच्च पित्रादीञ्छ्राद्धादीनि विधाय च ॥ ८७ ॥ कुर्याच्च महतीं पूजां भगवत्या विधानतः ॥ क्षमापयेज्जगद्धात्रीं जगदंबां मुहुर्मुहुः ॥ ८८ ॥ कृतकृत्यं स्वमात्मानं जानायाज्जनमेजय ॥ भक्ष्यभोज्यादिभिः सर्वान्ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥ ८९ ॥ सुवासिनीः कुमारिश्च बटुकादींस्तथा नृप ॥ तस्मिन्क्षेत्रेस्थिता ये तु चांडालाद्या अपि प्रभो ॥ ९० ॥ देवीरूपाः स्मृताः सर्वे पूजनीयास्ततो हि ते ॥ प्रतिग्रहादिकं सर्वं तेषुक्षेत्रेषु येवर्ज ॥ ९१ ॥ यथाशक्ति पुरश्चर्यां कुर्यान्मंत्रस्य सत्तमः ॥ मायाबीजेन देवेशीं तत्तत्पीठाधिवासिनीम् ॥ ९२ ॥

क्षमा प्रार्थना करता है ॥ ८८ ॥ उस मनुष्यका अन्तरात्मा कृतकृत्य और पवित्र होता है इसमें सन्देह नहीं. हे राजेन्द्र ! देवीकी पूजाके अनन्तर भक्ष्य भोज्यादि द्वारा ब्राह्मण ॥ ८९ ॥ सुवासिनी कुमारी और बटुकगणोंको भोजन करावे और उस क्षेत्रमें चाण्डालादि जो कोई जाति वास करती हो ॥ ९० ॥ उसको देवीका स्वरूप जाने अतएव उसको पूजा करना कर्तव्य है इन संपूर्ण क्षेत्रोंमें कभी दान न ले ॥ ९१ ॥ साधुगण इन संपूर्ण स्थानोंमें अपने अपने मंत्रका यथाशक्ति पुरश्चरण करते हैं और मायाबीजसे अपने स्थानकी अधिवासिनी देवीको ॥ ९२ ॥

हे राजन् ! रातदिन पूजनेसे पुरश्चरण होता है देवीके प्रति भक्तिमान् मनुष्य संपूर्ण विषयोंमें वित्तशाठ्य वा कृपणता प्रकाश न करें ॥ ९३ ॥ जो पुरुष देवीके प्रति प्रसन्न होकर इस प्रकार पीठस्थानमें यात्रा करता है उसके पितृगण सहस्रकल्प पर्यन्त महत्तर ब्रह्मलोकमें ॥ ९४ ॥ वास करते हैं वह मनुष्य परमज्ञान प्राप्त करके भव समुद्रसे मुक्त होता है तथा देवीलोकका वास करता है ॥९५॥ देवीके इन अष्टोत्तर नामोंका पाठ करके वह मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है जिस किसी स्थानमें उक्त नामावली पुस्तकमें लिखित हो ॥ ९६ ॥ उस स्थानमें ग्रहभय और महामारीका भय इत्यादि कुछ भी नहीं होता वरन् पर्वकालमें समुद्रके समान उस स्थानमें सौभाग्यकी वृद्धि होती है ॥ ९७ ॥ अष्टोत्तरशतनामके जपनेवाले मनुष्यको कुछ दुर्लभ नहीं रहता वह देवीका भक्त निश्चयही कृतकृत्यता प्राप्त

पूजयेदनिशं राजन्पुरश्चरणकृद्भवेत् ॥ वित्तशाठ्यं न कुर्वीत देवभक्तिपरो नरः ॥ ९३ ॥ य एवं कुरुते यात्रां श्रीदेव्याः प्रीतमानसः ॥ सहस्रकल्पपर्यंतं ब्रह्मलोके महत्तरे ॥ ९४ ॥ वसंति पितरस्तस्य सोऽपि देवीपुरे तथा ॥ अंते लब्ध्वा परं ज्ञानं भवेन्मुक्तो भवांबुधेः ॥ ९५ ॥ नामाष्टशतजापेन बहवः सिद्धतां गताः ॥ यत्रै तल्लिखितं साक्षात्पुस्तके वाऽपि तिष्ठति ॥ ९६ ॥ ग्रहमारीभयादीनि तत्र नैव भवंति हि ॥ सौभाग्यं वर्धते नित्यं यथा पर्वणि वारिधिः ॥ ९७ ॥ न तस्य दुर्लभं किंचिन्नामाष्टशतजापिनः ॥ कृतकृत्यो भवेन्नूनं देवीभक्तिपरायणः ॥ ९८ ॥ नमंतिदेवतास्तं वै देवीरूपो हि स स्मृतः ॥ सर्वथा पूज्यते देवैः किं पुनर्मनुजोत्तमैः ॥ ९९ ॥ श्राद्धकाले पठेदेतन्नमाष्टशतमुत्तमम् ॥ तृप्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयांति परमां गतिम् ॥ १०० ॥ इमानि मुक्तिक्षेत्राणि साक्षात्संविन्मयानि च ॥ सिद्धपीठानि राजेंद्र संश्रयेन्मतिमान्नरः ॥ १०१ ॥ पृष्टं यत्तत्त्वया राजन्नुक्तं सर्वं महेशितुः ॥ रहस्यातिरहस्यं च किं भूयः श्रोतु मिच्छसि ॥ १०२ ॥ इति श्रीदेवी भागवते सप्तमस्कंधे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

करता है ॥ ९८ ॥ वह साधु व्यक्ति देवीका स्वरूप होता है देवतागण उसको देखकर प्रणाम और उसकी पूजा करते हैं सज्जन मनुष्य जो उनकी पूजा करते हैं उसमें फिर कहना क्या है ? ॥ ९९ ॥ इस अत्युत्तम अष्टोत्तरशतनामके श्रद्धासहित पाठ करनेपर पितृगण तृप्त होकर सद्गति प्राप्त करते हैं ॥ १०० ॥ यह सम्पूर्ण स्थान साक्षात् संविन्मय मुक्तिक्षेत्र हैं अतएव हे राजेन्द्र ! बुद्धिमान् मनुष्य इन सम्पूर्ण सिद्धिपीठोंका आश्रय करते हैं ॥ १०१ ॥ हे महाराज ! आपने महेश्वरीका जो जो रहस्य और अतिरहस्यका विषय पूंछा था वह संपूर्ण मैंने वर्णन किया इस समय आप अब क्या सुननेकी इच्छा करते हैं ? सो कहिये ॥ १०२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

जनमेजयने कहा हे मुनिवर ! आपने पहले कहा है कि, अनन्तर यह परमज्योति हिमालयके पृष्ठमें आविर्भूत हुई थी इस समय उस परमज्योतिका विषय विस्तार सहित मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ कौन बुद्धिमान् मनुष्य इस शक्तिका कथामृत पान करनेसे विरत होगा यद्यपि सुधापायी देवताओंको किसी प्रकार मृत्युकी सम्भावना हो तथापि देवीकथामृतपान करनेवालोंके पक्षमें उसकी कुछ सम्भावना नहीं होती ॥ २ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! देवीके प्रति जिस प्रकार आपकी एकांत भक्ति देखता हूं इससे मुझको बोध होता है कि आप महात्माओंसे शिक्षित कृतकृत्य भाग्यवान् और धन्य हुए हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! अब मैं परमंपुरातत्व वर्णन करता हूं श्रवण करो देवादिदेव महेश्वरने उस अग्निदग्ध सतीके देहको धारण कर भ्रांत चित्तसे भूमण्डल पर

जनमेजय उवाच ॥ धराधराधीशमौलावाविरासीत्परं महः ॥ यदुक्तं भवता पूर्वं विस्तरात्तद्वदस्व मे ॥ १ ॥ को विरज्येत मतिमानपि बन्छक्तिकथामृतम् ॥ सुधां तु पिबतां मृत्युः स नैवच्छृण्वतो भवेत् ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि शिक्षितोऽसि महात्मभिः ॥ भाग्यवानसि यद्देव्यां निर्व्याजा भक्तिरस्ति ते ॥ ३ ॥ शृणु राजन्पुरा वृत्तं सतीदेहेऽग्निभर्जिते ॥ भ्रांतः शिवस्तु बभ्राम क्वचिद्देशे स्थिरोऽभवत् ॥ ४ ॥ प्रपंचभानरहितः समाधिगतमानसः ॥ ध्यायन्देवी स्वरूपं तु कालं निन्ये स आत्मवान् ॥ ५ ॥ सौभाग्यरहितं जातं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ शक्तिहीनं जगत्सर्वं साब्धिद्वीपं सपर्वतम् ॥ ६ ॥ आनंदः शुष्कतां यातः सर्वेषां हृदयांतरे ॥ उदासीनाः सर्वलोकाश्चिंता जर्जरचेतसः ॥ ७ ॥ सदा दुःखोदधौ मग्ना रोगग्रस्तास्तदाऽभवन् ॥ ग्रहाणां देवतानां च वैपरीत्येन वर्तनम् ॥८॥ अधिभूताधिदेवानां सत्यभावान्नृपाभवन् ॥ अथाऽस्मिन्नेव काले तु तारकाख्यो महासुरः ॥ ९ ॥

भ्रमण करते करते जिस स्थानमें स्थिर होकर अवस्थिति की ॥ ४ ॥ उस स्थानमें वह नियतेन्द्रिय संसार ज्ञानरहित और समाधियुक्त होकर देवीके स्वरूपका ध्यान करते करते काल व्यतीत करने लगे ॥ ५ ॥ इस समय देवीके विना चराचर युक्त यह त्रैलोक्यमण्डल ऐश्वर्य रहित और पर्वत, समुद्र तथा द्वीप सहित यह सम्पूर्ण भूमण्डल शक्ति विहीन हो गया ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण जीवोंके हृदयका आनन्द शुष्क होगया सम्पूर्ण मनुष्य चिन्ताके कारण जर्जरचित्त हो दीन भावसे अवस्थिति करने लगे ॥ ७ ॥ सब दुःखसागरमें निमग्न होकर रोगग्रस्त होने लगे ग्रहोंकी विपरीत गति और देवताओंकी विपरीत अवस्था होने लगी ॥ ८ ॥ राजालोग सतीके अभावसे आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख परम्पराके आधीन होकर स्थिति करने लगे ॥ ९ ॥

इसी समय तारक नामक महासुर ब्रह्माजीसे वर प्राप्त कर अत्यन्त दुर्जय हो उठा वह वीर मदसे मत्त हो त्रिभुवनको जीत त्रैलोक्यका एकमात्र अधीश्वर हो गया ॥ १० ॥ प्रजापति ब्रह्माके "शिवका औरस पुत्र तुम्हारा हन्ता होगा" इस प्रकार वरदान करनेपर और उस समय शिवका औरस पुत्रका अभाव होनेके कारण वह महासुर सदा आनन्दसे उन्मत्त होकर जयका अभिमान करने लगा ॥११॥ सम्पूर्ण देवता उसके उपद्रवसे स्थान भ्रष्ट होकर शिवका औरस पुत्र न होनेके कारण दुस्तर चिंतासागरमें निमग्न हुए ॥१२॥ सती देवीके इस समय प्राण त्यागनेपर महादेव भार्यारहित हुए हैं अतएव इस समय किस प्रकार उनके सुतोत्पत्ति सम्भव हो सकती है ? हम अत्यंत भाग्यहीन हैं कारण कि शंकरकी पुत्रोत्पत्तिके अभावसे हमारा कार्य सिद्ध होना अत्यंत कठिन होगया ॥ १३ ॥ इस प्रकार चिंतासे कातर होकर सम्पूर्ण देवता वैकुण्ठमण्डलमें गये और निर्ज्जनमें भगवान् विष्णुसे समस्त वृत्तान्त निवेदन करनेपर वह उस विषयका

ब्रह्मदत्तवरो दैत्योऽभवत्त्रैलोक्यनायकः ॥ शिवौ रसस्तु यः पुत्रः स ते हंता भविष्यति ॥ १० ॥ इति कल्पितमृत्युः स देवदेवैर्महासुरः ॥ शिवौरससुताभावाज्जगर्ज च ननंद च ॥ ११ ॥ तेन चोपद्रुताः सर्वे स्वस्थानात्प्रच्युताः सुराः ॥ शिवौरससुताभावाच्चिंतामापुर्दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥ नांगना शंकरस्यास्ति कथं तत्सुतसंभवः ॥ अस्माकं भाग्यहीनानां कथं कार्यं भविष्यति ॥ १३ ॥ इति चिंतातुराः सर्वे जग्मुर्वैकुंठमंडले ॥ शशंसुर्हरिमेकांते सचोपायं जगाद ह ॥ १४ ॥ कुतश्चिंतातुराः सर्वे कामकल्पद्रुमा शिवा ॥ जागर्ति भुवनेशानी मणिद्वीपाधिवासिनी ॥ १५ ॥ अस्माकमनयादेव तदुपेक्षाऽस्ति नान्यथा ॥ शिक्षैवेयं जगन्मात्रा कृताऽस्मच्छिक्षणाय च ॥ १६ ॥ लालने ताडने मातुर्ना कारुण्यं यथाऽर्भके ॥ तद्वदेव जगन्मातुर्नियंत्रा गुणदोषयोः ॥ १७ ॥ अपराधो भवत्येव तनयस्य पदेपदे ॥ कोऽपरः सहते लोके केवलं मातरं विना ॥ १८ ॥

उपाय कहने लगे ॥१४॥ हे सुरगण ! जब मणिद्वीप निवासिनी वाञ्छाकल्पद्रुमरूपिणी कल्याणदायिनी करुणामयी देवी भुवनेश्वरी हमारे लिए सदा जागरित रहतीं हैं तब तुम चिंतासे व्याकुल क्यों होते हो ॥ १५ ॥ वह जगज्जननी केवल हमारे अपराधसे हमको शिक्षा देनेके लिये उपेक्षा दिखाती हैं हे देवताओ ! तुम निश्चय जानो कि, वह शिक्षा हमारे विनाशके निमित्त नहीं है हमारे प्रति करुणा दिखानेके लिये ही वह करती हैं ॥ १६ ॥ जिस प्रकार अपनी संतानके लालन पालन और ताडन विषयमें माताकी दया हीनता नहीं दिखाई देती इसी प्रकार तुम्हारे गुणदोष विषयमें वह जगन्नियंत्रीजगज्जननी कभी निर्दय नहीं होगी ॥ १७ ॥ संतानसे अपराध पद पदपर होता है त्रैलोक्यमें एकमात्र जननीके विना और कौन उसको सह सकता है ? ॥ १८ ॥

अतएव तुम शीघ्र ही एकांत भक्ति सहित उन्हीं परमजननी परमेश्वरीकी शरणागत होओ अवश्य ही वह तुम्हारे कार्य साधनमें यत्न करेंगी ॥१९॥ देवाधिपति महाविष्णु देवताओंसे इस प्रकार आदेश कर निजजाया लक्ष्मीके सहित देवीके आराधनाके लिये देवताओंको संग ले शीघ्र निकले ॥ २० ॥ फिर शीघ्र शैलाधिपति हिमालयमें जाय समस्त ही पुरश्चरण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २१ ॥ हे नृपवर ! अम्बायज्ञके जाननेवाले देवताओंने अम्बायज्ञ आरम्भ किया और संपूर्ण ही तृतीयादि व्रतका अनुष्ठान करने लगे ॥२२॥ कोई कोई देवीकी समाधि अर्थात् उनके धारावाहिक ध्यानमें परायण हुए और कोई कोई निरंतर उनका नाम जपने लगे कोई कोई देवीसूक्त जप करनेमें प्रवृत्त हुए कोई कोई नाम परायण ॥ २३ ॥ अथवा कोई कोई मंत्रपरायण हुए और कोई कोई कृच्छ चान्द्रायणादि

तस्माद्यूयं परांबां तां शरणं यात मा चिरम् ॥ निर्व्याजया चित्तवृत्त्या सा वः कार्यं विधास्यति ॥ १९ ॥ इत्यादिश्य सुरान्सर्वान्महाविष्णुः स्वजायया ॥ संयुतो निर्जगामाशु देवैः सह सुराधिपः ॥ २० ॥ आजगाम महाशैलं हिमवंतं नगाधिपम् ॥ अभवंश्च सुराः सर्वे पुरश्चरणकर्मिणः ॥ २१ ॥ अंबायज्ञविधानज्ञा अंबायज्ञं च चक्रिरे ॥ तृतीयादि व्रतान्याशु चक्रुः सर्वे सुरा नृप ॥ २२ ॥ केचित्समाधिनिष्णाताः केचिन्नामपरायणाः ॥ केचित्सूक्तपराः केचिन्नामपारायणोत्सुकाः ॥ २३ ॥ मंत्रपारायणपराः केचिच्छ्राद्धादिकारिणः ॥ अंतर्यागपराः केचित्केचिन्न्यासपरायणाः ॥ २४ ॥ हृल्लेखया पराशक्तेः पूजां चक्रुरतंद्रिताः ॥ इत्येवं बहुवर्षाणि कालोऽगाज्जनमेजय ॥ २५ ॥ अकस्माच्चैत्रमासीयनवम्यां च भृगोर्दिने ॥ प्रादुर्बभूव पुरतस्तन्महः श्रुतिबोधितम् ॥ २६ ॥ चतुर्दिक्षु चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुतम् ॥ कोटिसूर्यप्रतिकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥ २७ ॥ विद्युत्कोटि समानाभमरुणं तत्परं महः ॥ नैव चोर्ध्वं न तिर्यक्च न मध्ये परिजग्रभत् ॥ २८ ॥

व्रतपरायण हुए कोई कोई अन्तर्योगमें कोई कोई प्राणाग्नि होत्र योगमें अथवा कोई कोई न्यासादिमें नियुक्त हुए ॥ २४ ॥ और कोई २ अतन्द्रित होकर मायाबीज मंत्रद्वारा परमा शक्ति भुवनेश्वरीकी पूजा करने लगे । हे महाराज ! इस प्रकार देवताओंको बहुत वर्ष व्यतीत होगये ॥ २५ ॥ फिर एक दिन चैत्रमासकी नवमी तिथि और भृगुवारमें वह श्रुतिबोधित शक्ति सम्बन्धीय परमज्योतिः अकस्मात् उनके सामने प्रगट हुई ॥ २६ ॥ यह तेज करोड करोड विद्युतके समान अरुणवर्ण और करोड करोड चन्द्रमाके समान शीतल था उस परम ज्योतिकी प्रभा करोड करोड सूर्य्यके समान थी चारों ओर अवस्थित होकर मूर्तिमान् चारों वेद उनका स्तव करते थे वह तेजोराशि क्या ऊर्द्धमें क्या पार्श्वमें क्या मध्यमें किसी दिशामें परिच्छिन्न नहीं हुई ॥ २७ ॥ २८ ॥

उसका आदि भी नहीं और अन्त भी नहीं वह हस्तपादादि अंग संयुक्त स्त्रीरूप पुरुषरूप अथवा नपुंसक रूप भी नहीं थी ॥ २९ ॥ देवताओंने प्रथम उस तेजकी प्रभासे हत होकर नेत्र मूंद लिये किन्तु क्षणकालमें ही धैर्य अवलम्बन कर ज्योंही नेत्र खोले ॥ ३० ॥ त्योंही वह परमज्योति अतिमनोहर दिव्य रमणी रूपसे प्रकाशित हुई उस मनोरमाङ्गी नवयौवना कुमारीके ॥३१॥ कमलकलिकानिन्दित दोनों कुच ऊंचे परम शोभायमान हो रहे थे कमरमें किंकिणी मेखलाके शब्द और चरणोंसे मनोहर मंजीरकी ध्वनि आती थी ॥३२॥ उसके चारों हाथोंमें कनकवलय चारों बाहुओंमें केयूर ग्रीवादेशमें ग्रैवेयक गलदेशमें अमूल्य मणि हार गलबन्ध और परमोज्वल प्रभाजाल विस्तारित होकर शोभा पारहा था ॥ ३३ ॥ उनके कर्ण और कपोलके मध्यवर्ती केशवाली नवकेतकी पुष्पपत्रोपरि विराजित दीप्तप्रभ नीलवर्ण भ्रमरावलीके समान समुज्ज्वल शोभा पाती है नितम्बबिंब सुघटित और अत्यंत मनोहर रोमराजि नाभिमें विराजित

आद्यंतरहितं तत्तु न हस्ताद्यंगसंयुतम् ॥ न च स्त्रीरूपमथवा न पुंरूपमथोभयम् ॥ २९ ॥ दीप्त्या पिधानं नेत्राणां तेषामासीन्महीपते ॥ पुनश्च धैर्यमालंब्य यावत्ते ददृशुः सुराः ॥ ३० ॥ तावत्तदेवस्त्रीरूपेणाभाद्दिव्यं मनोहरम् ॥ अतीव रमणीयांगीं कुमारीं नवयौवनाम् ॥ ३१ ॥ उद्यत्पीनकुचद्वंद्वनिंदितांभोजकुड्मलाम् ॥ रणत्किंकिणिकाजालसिंजन्मंजीरमेखलाम् ॥ ३२ ॥ कनकांगदकेयूरग्रैवेयकविभूषिताम् ॥ अनर्घ्यमणिसंभिन्नगलबंधविराजिताम् ॥३३॥ तनुकेतकसंराजन्नीलभ्रमरकुंतलाम् ॥ नितंबबिंबसुभगां रोमराजिविराजिताम् ॥३४॥ कर्पूरशकलोन्मिश्रतांबूलपूरिताननाम् ॥ कनत्कनकताटंकविटंकवदनांबुजाम् ॥ ३५ ॥ अष्टमी चंद्रबिंबाभललाटामायत भ्रुवम् ॥ रक्तारविंदनयनामुन्नसां मधुराधराम् ॥ ३६ ॥ कुंदकुड्मलदंताग्रां मुक्ताहारविराजिताम् रत्नसंभिन्नमुकुटां इंद्ररेखावतंसिनीम् ॥ ३७ ॥ मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम् ॥ काश्मीरबिंदुनिटिलांनेत्रयविलासिनीम् ॥ ३८ ॥

होकर अपूर्व शोभा संपादन करती है ॥ ३४ ॥ दीप्यमान कनकताटंकमें उज्ज्वल परम सुन्दर मुख कमल कर्पूरखण्डमिश्रित तांबूलसे पूर्ण ॥३५॥ ललाटमें अर्द्धचन्द्र शोभायमान दोनों भौंए चौड़ी नेत्रोंने उपांत भागमें कोकनदके समान अर्थात् लालकमलके समान शोभा धारण की है नासिका ऊची अधर बिंबा फलके समान अति मनोहर ॥ ३६ ॥ संपूर्ण दाँत कुन्द कलीके समान कोमल अत्यंत मनोहर गलेमें लम्बायमान मोतियोंका हार विराजमान है मस्तकके ऊपर हीरक और मणिरत्नमें खचित प्रदीप्त मुकुटालंकार कर्णमें चन्द्ररेखाके समान करनफूल ॥ ३७ ॥ केशपाश मल्लिका और मालतीकी मालसे सुशोभित ललाट काश्मीर बिंदुद्वारा सुसज्जित और तीनों नेत्र मुखमण्डलकी अपूर्व शोभा संपादन करते हैं ॥ ३८ ॥

उनके एक हस्तमें पाश और दूसरे हाथमें अंकुश तथा अन्यान्य दोनों हाथ वर और अभयदान भङ्गिमासे विराजित देहकी कांति दाडमीके फूलके समान परिधान अरुणवर्ण अम्बर परमशोभा विस्तार करते हैं ॥३९॥ देवताओंने इस प्रकार समस्त शृङ्गारवेष धारिणी समस्त वांछापूरिणी संपूर्ण देवताओंके समान नमस्कृत हास्याननी अखिलमोहिनी ॥४०॥ अखिलजननी प्रसादसुमुखी कपटता रहित करुणाकी मूर्तिरूपिणी अंबिका देवीको सामने देखा ॥ ४१ ॥ उस करुणामयी मूर्तिको देखकर देवताओंने प्रणाम किया किंतु बाष्पभारसे कंठ रुकजानेके कारण कुछ भी न कह सके ॥४२॥ फिर अतिकष्टसे धैर्य अवलम्बन कर भक्तिमें भर शिर झुकाय प्रेम अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे जगदम्बिकाका स्तव करने लगे ॥ ४३ ॥ देवताओंने कहा हे जगदंबिके ! आप देवी और महादेवी हैं तथा आपही शिवरूपिणी हैं हम सदा संयतचित्तसे आपको वारंवार प्रणाम करते हैं हे देवि ! आपही साम्यावस्थाविशिष्ट मायोपाधियुक्त ब्रह्मरूपिणी प्रकृति और

पाशांकुशवराभीति चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ॥ रक्तवस्त्र परीधानां दाडिमीकुसुमप्रभाम् ॥ ३९ ॥ सर्वशृंगारवेषाढ्यां सर्वदेवनमस्कृताम् ॥ सर्वाशापूरिकां सर्वमातरं सर्वमोहिनीम् ॥ ४० ॥ प्रसादसुमुखीमंबा मंदस्मितमुखांबुजाम् ॥ अव्याजकरुणामूर्तिं ददृशुः पुरतः सुराः ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा तां करुणामूर्तिं प्रणेमुः सकलाः सुराः ॥ वक्तुं नाशक्नुवन्किंचिद्बाष्पसंरुद्धनिःस्वनाः ॥ ४२ ॥ कथंचित्स्थैर्यमालंब्य भक्त्या चानतकंधराः ॥ प्रेमाश्रुपूर्णनयनास्तुष्टुवुर्जगदंबिकाम् ॥ ४३ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ॥ नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ ४४ ॥ तामग्निवर्णां तपसा ज्वलंतीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् ॥ दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः ॥ ४५ ॥ देवीं वाचमजनयंत देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदंति ॥ सा नो मंद्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु ॥ ४६ ॥

आपही सर्व कल्याणरूपिणी हैं हम संयतमनसे आपके चरणकमलोंमें प्रणाम करते हैं ॥ ४४ ॥ हे जननि ! आपही योगियोंके हृदयमें अनल शिखाके समान अरुणवर्णसे दीप्ति पाती हैं आपही ज्ञान प्रभासे दीप्तिमान हैं. हे मातः ! आपही इस सम्पूर्ण ब्रह्मांडमें चैतन्यरूपसे सर्वत्र प्रकाशित होती हैं ब्रह्मादि देवता और मानवादि जीवगण कर्मफलप्राप्तिके लिये आपकी सेवा करते हैं हे देवि ! आपही संसारसागरसे तारनेवाली हैं अतएव हम घोर संसारसमुद्रसे पार होनेके लिये आपकी शरणागत होकर आपको वारंवार नमस्कार करते हैं ॥४५॥ हे मातः ! प्राणादिपञ्चवायुकी सहायतासे जो संपूर्ण भाव प्रकाश वाक्य उच्चारित होते हैं हम उसको माया कहते हैं वह माया हमारी कामधेनु अर्थात् हम उस कामधेनुरूपिणी मायासे इच्छानुसार धन, मान और अन्नादि दुहकर अहंकारमें

उन्मत्त होते हैं हे मातः ! आप हमारी वही भाषास्वरूप हैं अतएव आप सन्तुष्ट होकर हमारी वांछा पूर्ण कीजिये ॥४६॥ हे देवि ! आप सर्वसंहारक कालका भी संहार करती हैं भगवान् पद्मयोनि ब्रह्मा सदा आपकी स्तुति करते हैं हे मातः ! आपही विष्णुशक्ति लक्ष्मी स्कन्दमाता शिवशक्ति पार्वती ब्रह्मशक्ति सरस्वती देवमाता अदिति और आप ही सती नाम्नी दक्षकी कन्या हैं हे मातः ! आपही इस प्रकार अनेकरूप धारण करके अखिलब्रह्मांड पूत और संपूर्ण को शांति-दान करती हैं अतएव हे देवि ! आपको प्रणाम करते हैं ॥४७॥ हम आपकोही महालक्ष्मी जानते हैं हम आपको सर्वशक्तिरूपणी देवी भगवती जानकर आपका ध्यान करते हैं हे जननि ! आपही हमको अपने श्रवण मनन, और ध्यानमें प्रेरण कीजिये ॥४८॥ हे देवि ! आप ही विराट्रूपिणी हैं आपको नमस्कार है आपही सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भरूपणी हैं आपको नमस्कार है आप ही महदादि षोडषविकृतिरूपिणी हैं आपको नमस्कार है हे मातः ! आपही ब्रह्मरूपिणी

कालरात्रीं ब्रह्म स्तुतां वैष्णवीं स्कंदमातरम् ॥ सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥ ४७ ॥ महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि ॥ तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥ ४८ ॥ नमो विराट्स्वरूपिण्यै नमः सूत्रात्ममूर्तये ॥ नमोऽव्याकृतरूपिण्यै नमः श्रीब्रह्म मूर्तये ॥ ४९ ॥ यदज्ञानाज्जगद्भाति रज्जुसर्पस्रगादिवत् ॥ यज्ज्ञानाल्लयमाप्नोति नुमस्तां भुवनेश्वरीम् ॥ ५० ॥ नुमस्तत्पद लक्ष्यार्थां चिदेकर सरूपिणीम् ॥ अखंडानन्दरूपां तां वेदतात्पर्यभूमिकाम् ॥ ५१ ॥ पंचकोशातिरिक्तां तामवस्थात्रयसाक्षिणीम् ॥ पुनस्त्वंपदलक्ष्यार्थां प्रत्यगात्मस्वरूपिणीम् ॥ ५२ ॥ नमः प्रणवरूपायै नमो ह्रींकारमूर्तये ॥ नाना मन्त्रात्मिकायै ते करुणायै नमो नमः ॥ ५३ ॥

हैं आपको हम नमस्कार करते हैं ॥४९॥ जिनके सृष्टि अविद्याजनित ज्ञानसे यह जगत् रज्जू और स्रगादि (माला आदि) में सर्प के समान सत्य जान भ्रम होता है फिर जिनके सृष्टिविद्याजनित ज्ञानसे वह भ्रम दूर होता है हम भक्तिनम्रमनसे उन्हीं सर्वान्तर्यामिनी भगवतीभुवनेश्वरीका ध्यान करते हैं ॥५०॥ "तत्त्वमसि" इस महावाक्यस्थ तत् शब्दकी प्रतिपाद्य जो संपूर्ण देवताओंकी तात्पर्यभूमि चैतन्यरसरूपिणी और अखण्डानंदस्वरूप ब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ५१ ॥ तथा जो अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय इस पञ्चकोशके अतिरिक्त हैं जो जाग्रत्, स्वप्न सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंकी साक्षिणी और जो त्वम्पदकी भी लक्ष्यार्थ हैं हम उन्हीं ज्ञानब्रह्मस्वरूपिणी भुवनेश्वरी देवीका ध्यान करते हैं ॥ ५२ ॥ हे मातः ! आप ही प्रणवरूपिणी ह्रींकारमूर्ति नानाविधिमंत्रात्मिका और करुणामयी हो हम आपके चरणकमलोंमें वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ ५३ ॥

देवताओं के इस प्रकार उन मणिद्वीप निवासिनी जगदम्बिकाका स्तव करने पर उत्तम कोकिलके कण्ठके समान कण्ठवाली भगवती मधुर वचनों द्वारा उनसे कहने लगी ॥ ५४ ॥ देवी बोली हे देवताओ ! तुम किस लिये यहां आये ? तुम्हारा क्या कार्य है सो कहो मैं सदाही भक्तोंकी वाञ्छाको कल्पतरु और वर देनेवाली विद्यमान रहती हूं ॥ ५५ ॥ तुम मेरे भक्त हो मेरे विद्यमान रहते तुमको क्या चिंता है ? मैं तुमको दुःखसागर से उद्धार करूंगी ॥ ५६ ॥ हे देवताओ ! तुम मेरी यह प्रतिज्ञा सत्य ही जानो हे राजन् ! देवतागण देवीके यह प्रेमपूर्ण वचन सुनकर प्रसन्न हुए ॥ ५७ ॥ और जगन्माता से अपना मनो दुःख निवेदन करने लगे देवता बोले हे परमेश्वरि ! आप सर्वज्ञ और सब जगत्की साक्षी हैं इन तीनों जगतों में आप से अज्ञात कुछ नहीं है ॥ ५८ ॥

इति स्तुता तदा देवैर्मणिद्वीपाधिवासिनी ॥ प्राह वाचा मधुरया मत्तकोकिलनिःस्वना ॥ ५४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वदंतु विबुधाः कार्यं यदर्थमिह संगताः ॥ वरदाऽहं सदा भक्तकामकल्पद्रुमाऽस्मि च ॥ ५५ ॥ तिष्ठंत्यां मयि या चिन्ता युष्माकं भक्तिशालिनाम् ॥ समुद्धरामि मद्भक्तान्दुःखसंसारसागरात् ॥ ५६ ॥ इति प्रतिज्ञां मे सत्यां जानीथ विबुधोत्तमाः ॥ इति प्रेमाकुलां वाणीं श्रुत्वा संतुष्टमानसाः ॥ ५७ ॥ निर्भया निर्जरा राजन्नूचुर्दुःखं स्वकीयकम् ॥ देवा ऊचुः ॥ नाज्ञातं किंचिदप्यत्र भवत्याऽस्ति जगत्त्रये ॥ ५८ ॥ सर्वज्ञया सर्वसाक्षिरूपिण्या परमेश्वरि ॥ तारकेणासुरेन्द्रेण पीडिताः स्मो दिवानिशम् ॥ ५९ ॥ शिवांगजा द्वधस्तस्य निर्मितो ब्रह्मणा शिवे ॥ शिवांगना तु नैवास्ति जानासि त्वं महेश्वरि ॥ ६० ॥ सर्वज्ञपुरतः किं वा वक्तव्यं पामरैर्जनैः ॥ एतदुद्देशतः प्रोक्तमपरं तर्कयांबिके ॥ ६१ ॥ सर्वदा चरणांभोजे भक्तिः स्यात्तव निश्चला ॥ प्रार्थनीयमिदं मुख्यमपरं देहहेतवे ॥ ६२ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रोवाच परमेश्वरी ॥ मम शक्तिस्तु या गौरी भविष्यति हिमालये ॥ ६३ ॥

हे मातः ! शिव ! तारक नामक असुर हमको दिन रात दुःख देता है ॥ ५९ ॥ विश्वस्रष्टा विधाताने शिवके और सपुत्र से उसका वध निर्दिष्ट किया है. हे महेश्वरि ! इस समय शिव गृहिणी सतीने देह त्याग किया है सो आप जानती है ॥६०॥ जो सर्वज्ञ हैं फिर उनकेसामने पामरगण क्या कहें ? हे जगदम्बिके ! हमने यह सम्पूर्ण वृत्तांत संक्षेप से वर्णन किया और हमारा अन्यान्य दारुण दुःख आप मनमें जान सकती हैं ॥६१॥ हम अधिक क्या कहें ? आपके चरण कमलोंमें हमारी अचल भक्ति सदा विद्यमान रहे यही हमारी मुख्य प्रार्थना है और शिवकी सुतोत्पत्तिके लिये आप देह धारण कीजिये यह हमारी दूसरी प्रार्थना जानिये ॥ ६२ ॥ देवताओंके यह वचन सुन प्रसाद सुमुखी परमेश्वरी उनसे कहने लगी मेरी शक्ति जो गौरीरूपसे हिमालयमें उत्पन्न होगी ॥ ६३ ॥

वही शिव सीमन्तिनी होकर पुत्रोत्पादन पूर्वक उसके द्वारा तारकासुरका वध करके तुम्हारा कार्य साधन करेगी और मेरे चरणकमलोंमें तुम्हारी प्रेमपूर्ण निश्चल भक्ति होगी ॥ ६४ ॥ हिमालय भी अत्यंत भक्तिसहित एकान्त मनसे मेरी उपासना करते हैं अतएव उनके गृहमें मेरा जन्म ग्रहण करना अत्यंत प्रिय जानना चाहिए ॥ ६५ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! गिरिराज हिमालय भी उनके अत्यंत अनुग्रह सूचक वचन सुनकर प्रेम जनित बाष्पमें भर रुद्धकण्ठ हो अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे त्रैलोक्यसाम्राज्ञी भुवनेश्वरीसे कहने लगे ॥ ६६ ॥ हे देवि ! आप जिसके प्रति अनुग्रह करती हैं उसको आप अत्यंत महत् कर देती हैं नहीं तो जड़ और स्थावर पाषाणपुञ्ज मैं कहाँ ? और वाक्य तथा मनके अगोचर सच्चिदानंदरूपिणी आप कहां ? हमारे गृहमें उत्पन्न होकर आप हमारे प्रति इतना अनुग्रह कर क्या प्रकाश करती यही आपके अनिर्वचनीय महत्त्वका परिचय प्रदान करता है इसमें संदेह नहीं ॥ ६७ ॥ हे विमले ! हमारे पक्षमें आपके जनकत्व

शिवाय सा प्रदेया स्यात्सा वः कार्यं विधास्यति ॥ भक्तिर्मच्चरणांभोजे भूयाद्युष्माक मादरात् ॥ ६४ ॥ हिमालयो हि मनसा मामु पास्तेऽतिभक्तितः ॥ ततस्तस्य गृहे जन्म मम प्रियकरं मतम् ॥ ६५ ॥ व्यास उवाच ॥ हिमालयोऽपि तच्छ्रुत्वाऽत्यनुग्रहकरं वचः ॥ बाष्पैः संरुद्धकंठाक्षो महाराज्ञीं वचोऽब्रवीत् ॥ ६६ ॥ महत्तरं तं कुरुषे यस्यानुग्रहमिच्छसि ॥ नोचेत्क्वाहं जडः स्थाणुःक्व त्वं सच्चित्व रूपिणी ॥ ६७ ॥ असंभाव्यं जन्मशतैस्त्वत्पितृत्वं ममानघे ॥ अश्वमेधादि पुण्यैर्वा पुण्यैर्वातत्समाधिजैः ॥ ६८ ॥ अद्य प्रपंचे कीर्तिः स्याज्जगन्माता सुताऽभवत् ॥ अहो हिमालयस्यास्य धन्योऽसौ भाग्यवानिति ॥ ६९ ॥ यस्यास्तु जठरे संति ब्रह्मांडानां च कोटयः ॥ सैव यस्य सुता जाता को वा स्यात्तत्समो भुवि ॥ ७० ॥ न जानेऽस्मत्पितॄणां किं स्थानं स्यान्निर्मितं परम् ॥ एतादृशानां वासाय येषां वंशेऽस्ति मादृशः ॥ ७१ ॥

लाभका अनंत जन्म अश्वमेधादिजनित अथवा समाधिजनित पुण्यके अतिरिक्त और कोई कारण दिखाई नहीं देता ॥ ६८ ॥ अहो ! हमारे प्रति आपने क्या अनुग्रह किया है " जगन्माता जगद्धात्री इन हिमालयकी कन्या हुई अतएव यह व्यक्ति ही धन्य और भाग्यवान् है" अबसे हमारी इस प्रकार अतुल कीर्ति इस सम्पूर्ण जगत्में प्रचलित होगी ॥ ६९ ॥ जिनके जठरमें करोड़ करोड़ ब्रह्माण्ड स्थित रहते हैं वह जिनकी कन्या हुई पृथ्वीतलमें उसके समान सौभाग्यवान् और पुण्यवान् कौन हो सकता है ? ॥ ७० ॥ जिनके वंशमें मेरे समान पुण्यवान् मनुष्यने जन्म ग्रहण किया है मेरे उन पितरोंके वासार्थ कैसे परमोत्कृष्ट समस्त स्थान निर्मित हुए हैं वह मैं नहीं कह सकता ॥ ७१ ॥

दे. भा.
॥९७॥

हे मातः परमेश्वरि ! आपने जिस प्रकार प्रेम परिपूर्ण होकर कृपा प्रकाश की है इसी प्रकार आप हमसे अपना सब वेदांत सिद्ध स्वरूप ॥ ७२ ॥ और श्रुतिसम्मत भक्तियुक्त ज्ञान तथा योगका विषय कीर्तन कीजिये क्योंकि हम उसी ज्ञानके बलसे आपका स्वरूपत्व प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे ॥ ७३ ॥ व्यासजीने कहा हे महाराज ! हिमालयके इस प्रकार स्तुति युक्त वचन सुनकर भुवनेश्वरीने प्रसन्न मुखसे श्रुत्युक्त गूढ रहस्यका विषय कहना आरम्भ किया ॥ ७४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ देवीने कहा हे देवताओ ! जिसके श्रवण मात्रसे जीवगण मेरा स्वरूपत्व प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं मैं इस समय वही विषय वर्णन करती हूं तुम समाहित चित्तसे श्रवण करो ॥ १ ॥ हे गिरिवर ! सृष्टिके पूर्वमें एक मात्र मैं ही विद्यमान थी अन्य और कुछ नहीं था मेरेही आत्मस्वरूपको चित संवित् और परब्रह्म इत्यादि नामसे निर्देश किया है ॥ २ ॥ मेरा आत्मा

इदं यथा च दत्तं मे कृपया प्रेमपूर्णया ॥ सर्ववेदांतसिद्धं च त्वद्रूपं ब्रूहि मे तथा ॥ ७२ ॥ योगं च भक्तिसहितं ज्ञानं च श्रुति संमतम् ॥ वदस्व परमेशानि त्वमेवाहं यतो भवे: ॥ ७३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नमुखपंकजा ॥ वक्तुमारभतांबा सा रहस्यं श्रुतिगूहितम् ॥ ७४ ॥ इति श्रीदे० म० सप्तमस्कंधे देवीगीतायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ शृण्वंतु निर्जराः सर्वे व्याहरंत्या वचो मम ॥ यस्य श्रवणमात्रेण मद्रूपत्वं प्रपद्यते ॥ १ ॥ अहमेवास पूर्वं तु नान्यत्किंचिन्नगाधिप ॥ तदात्मरूपं चित्संवित्परब्रह्मैकनामकम् ॥ २ ॥ अप्रतर्क्यमनिर्देश्यमनौपम्यमनामयम् ॥ तस्य काचित्स्वतः सिद्धा शक्ति र्मायेति विश्रुता ॥ ३ ॥ न सती सा नासती सा नोभयात्मा विरोधतः ॥ एतद्विलक्षणा काचिद्वस्तुभूताऽस्ति सर्वदा ॥ ४ ॥ पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः ॥ चंद्रस्य चंद्रिकेवेयं ममेयं सहजा ध्रुवा ॥ ५ ॥

अनुमानके अतीत लक्ष्यके अतीत उपमाके अतीत और जन्म मरणादि विकारके भी अतीत पदार्थ है मेरेही आत्माकी स्वतः सिद्ध एक शक्ति है यह शक्ति माया नामसे विख्यात है ॥ ३ ॥ ब्रह्मज्ञान द्वार मायाका विनाश होता है यह माया सती अर्थात् सदा नित्य नहीं है और मायाके न होनेसे व्यवहारिक सत्ताका विरोध होनेके कारण असती भी नहीं है सत्ता और असत्ताकी स्थिति सम्भव नहीं हो सकती अतएव माया सती और असती यह उभयात्मिका भी नहीं हो सकती इस प्रकार अनिर्वचनीय वस्तुरूप मायाशक्ति मोक्षकालपर्यन्त विद्यमान रहती है ॥ ४ ॥ मेरी यह अनादि मोक्षपर्यंत स्थायिनी माया शक्ति अग्निकी उष्णताके समान सूर्यकी मरीचिके समान चन्द्रमाकी ज्योत्स्नाके समान स्वभावसे उत्पन्न होती है ॥ ५ ॥

सुषुप्तिकालके समय जीवोंका व्यवहार जिस प्रकार उसमें लीन होता है इसी प्रकार प्रलयकालके समय जीवोंके कर्मसमूह जीव और काल यह समस्त ही अभिन्न भावसे मायामें लीन हो जाते हैं ॥ ६ ॥ हे गिरिवर ! यद्यपि मैं निर्गुण हूं तथापि ऐसी मायाशक्तिके संयोगसे जगत्‌की कारण स्वरूप हुई हूं किंतु जो माया मेरा आश्रय करके रहती है उस मायाके मुझको आवरण करनेसे मायामें आश्रयावरकता दोष विद्यमान रहता है हे हिमवान् ! तुमको जानना चाहिये कि मेरे माया और अविद्या नामसे दो रूप हैं तिनमें विद्यारूपिणी प्रथम इसमें स्वाश्रय व्यामोहकारित्व दोष नहीं है और अविद्यारूपिणी दूसरा इसमें स्वाश्रय व्यामोहकारित्व दोष विद्यमान है इसके द्वाराही जीवोंकी सृष्टि होती है और विद्याके द्वारा जीवगण मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥७॥ मायाके सहित चैतन्यका संयोग होनेपरही वह मायाप्रतिबिंबित चैतन्य अर्थात् चिदाभासही जगत्‌का निमित्तकारण है और यह माया प्रपञ्चरूपी परिमाण समवायिकारण कहा जाता है

तस्यां कर्माणि जीवानां जीवाः कालश्च संचरे ॥ अभेदेन विलीनाः स्युः सुषुप्तौ व्यवहारवत् ॥ ६ ॥ स्वशक्तेश्च समायोगादहं बीजा त्मतां गता ॥ स्वाधारावरणात्तस्या दोषत्वं च समागतम् ॥ ७ ॥ चैतन्यस्य समायोगान्निमित्तत्वं च कथ्यते ॥ प्रपंचपरिणामाच्च समवायित्वमुच्यते ॥ ८ ॥ केचित्तां तप इत्याहुस्तमः केचिज्जडं परे ॥ ज्ञानं मायां प्रधानं च प्रकृतिं शक्तिमप्यजाम् ॥ ९ ॥ विमर्श इति तां प्राहुः शैवशास्त्रविशारदाः ॥ अविद्यामितरे प्राहुर्वेदतत्त्वार्थचिंतकाः ॥ १० ॥ एवं नानाविधानि स्युर्नामानि निगमा दिषु ॥ तस्या जडत्वं दृश्यत्वाज्ज्ञाननाशात्ततोऽसत्ती ॥ ११ ॥ चैतन्यस्य न दृश्यत्वं दृश्यत्वे जडमेव तत् ॥ स्वप्रकाशं च चैतन्यं न परेण प्रकाशितम् ॥ १२ ॥

॥ ८ ॥ कोई कोई शांखाध्यायी वेदके जाननेवाले इस मायाको तप कोई कोई तम कोई कोई जड कोई कोई ज्ञान अथवा कोई कोई माया प्रधान प्रकृति अजा और शक्ति नामसे निर्देश करते हैं ॥ ९ ॥ शैवशास्त्र तत्वज्ञ पंडित लोग उसको विमर्श और अन्यान्य वेदतत्वार्थचिंतक कोविदगण अविद्या कहकर निर्देश करते हैं फलतः यह माया समस्त वेदांतिगणोंकी उपजीव्य (निर्वाहक) है इसप्रकार निगमादि शास्त्रमें माया अनेक नामोंसे कही गई है ॥ १० ॥ जो वस्तु दृश्यमान हैं वही वही वस्तु जड हैं इस अभिचारी लक्षण हेतुमायाका जडत्व और स्वधिष्ठानज्ञाननाश हेतु मिथ्यात्व प्रतिपादित होता है किंतु चैतन्य दृश्य पदार्थ नहीं है अतएव उसको जड़ भी नहीं कहा जाता ॥ ११ ॥ चैतन्य स्वप्रकाश है वह अन्यके द्वारा प्रकाशित नहीं होता क्योंकि चैतन्य अन्यद्वारा प्रकाशित होता है यह स्वीकार करनेसे चैतन्य प्रकाशक प्रकाशित होता है ॥ १२ ॥

वह अन्यद्वारा प्रकाशित होता है इस प्रकार अनवस्था दोष उपस्थित होताहै स्वयंप्रकाश पदार्थकी स्थिरता नहीं है यह भी नहीं कहा जाता क्योंकि उसमें कर्म्म कर्त्ताका विरोध होता है एक पदार्थमें ही एक कालमें कर्तृत्व और कर्म्मत्व नहीं रह सकता अतएव दीपक के समान चैतन्यको स्वप्रकाश पदार्थ स्वीकार करना चाहिये ॥ १३ ॥ चैतन्य स्वयं प्रकाशमान पदार्थ होनेपर भी अन्य चन्द्र सूर्यादि पदार्थोंको भी प्रकाशित करता है अतएव हे पर्व्वतवर! मेरे संवितूरूप तनुका नित्यत्व सिद्ध हुआ ॥ १४ ॥ कारण कि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इत्यादि अवस्थाओंमें दृश्य पदार्थका व्यभिचार होता है किंतु किसी अवस्थामें ही सम्वित् वा चैतन्यका व्यभिचार अनुभव नहीं होता क्योंकि जो मैंने जाग्रत् अवस्थाका अनुभव किया है वही मैं स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाका अनुभव करती हूं मैं इस समय सोती थी, उसप्रकार अनुभव किया अतएव सम्वित् पदार्थका कभी व्यभिचार नहीं होता ॥ १५ ॥ बौद्धगण कहते हैं कि जिस प्रकार सम्वित् का अनुभव होता है इसी प्रकार सम्वित्के अभावका भी अनुभव होता है जो सत् है वही क्षणिक है इसप्रकार अनुमानद्वारा ज्ञानका भी अनित्यत्व प्रतिपादित

अनवस्थादोषसत्त्वान्न स्वेनापि प्रकाशितम् ॥ कर्मकर्त्रीविरोधः स्यात्तस्मात्तद्दीपवत्स्वयम् ॥ १३ ॥ प्रकाशमानमन्येषां भासकं विद्धि पर्वत ॥ अत एव च नित्यत्वं सिद्धसंवित्तनोर्मम ॥ १४ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादौ दृश्यस्य व्यभिचारतः ॥ संविदो व्यभिचारश्च नानुभूतोऽस्ति कर्हिचित् ॥ १५ ॥ यदि तस्याऽप्यनुभवस्तर्ह्ययं येन साक्षिणा ॥ अनुभूत स एवात्र शिष्टः संविद्वपुः पुरा ॥ १६ ॥ अत एव च नित्यत्वं प्रोक्तं सच्छास्त्रकोविदैः ॥ आनंदरूपता चास्याः परप्रेमास्पतत्त्वतः ॥ १७ ॥ मा न भूवं हि भूयासमिति प्रेमात्मनि स्थितम् ॥ सर्वस्यान्यस्य मिथ्या त्वादसंगत्वं स्फुटं मम ॥ १८ ॥

होता है इससे कहा जाता है कि यद्यपि सम्वित्के अभावका अनुभव होता है तथापि जिस साक्षीद्वारा उस सम्वित्के अभावका अनुभव होता है वही साक्षी सम्वित् वपु है अर्थात् ज्ञानशरीररूपसे प्रतिपन्न होता है क्योंकि साक्षी ज्ञानका नित्यत्व सबको ही स्वीकार करना होता है ॥ १६ ॥ अतएव अनवद्य सत् शास्त्रोंके तत्वज्ञ पंडितगण कहते हैं कि सम्वित् नित्य और परमप्रेमका आस्पद होनेसे वह आनंदरूप है कारण कि असुख कभी परम प्रेमका आस्पदीभूत नहीं हो सकता ॥ १७ ॥ और "मैं हूं" जीवोंका इस प्रकार अनुभव नहीं होता किंतु "मैं विद्यमान हूं" इस प्रकार प्रेम सम्पूर्ण जीवोंके आत्मामें प्रतिष्ठित रहता है यदि आत्माका आनंदरूपत्व न हो तो इस प्रकार आत्मप्रेम कभी संभव नहीं होता अतएव प्राणिमात्रके अनुभव हेतु सम्वित्का आनन्दरूपत्व सर्वथा सिद्ध हुआ है हे गिरिराज! यह सम्पूर्ण जगत् प्रपंच मायानिर्मित है अतएव वह मिथ्याभ्रम होनेसे सर्पादि मिथ्या पदार्थका जिसप्रकार रज्जु इत्यादिके सहित

सम्बध नहीं होता इसी प्रकार इस जगत्के सहित मेरा (आत्माका) असङ्गत्व भलीभांति सिद्ध हुआ और यह सम्पूर्ण संसार मिथ्या और परिच्छेद होनेसे मेरा आत्मस्वरूपिणीका अपरिच्छिन्नता प्रमाणित होती है ॥ १८ ॥ यदि कोई कहे कि ज्ञान आत्माका स्वरूप नहीं है वह आत्माका धर्म है यह भ्रांति विलास है क्योंकि यदि आत्माका धर्म होता तो अवश्यही उसकी जड़ता संघटित होती इसमें सन्देह नहीं ज्ञानका जडत्व सम्भव नहीं होता अतएव अन्य कहीं भी ज्ञानका जडपरिणामित्व दिखाई नहीं देता ॥ १९ ॥ यदि कहो कि तो ज्ञानका जडत्व हो वह भी नहीं हो सकता क्योंकि ज्ञान भी चित्स्वरूप और आत्मा भी चित्स्वरूप है चित्पदार्थका धर्मत्व नहीं और चित्पदार्थ चित्से भी भिन्न नहीं हो सकता अतएव चिद्रूप ज्ञानका धर्माधर्मभाव किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? ॥ २० ॥ अतएव आत्मा सर्वदा ही ज्ञानस्वरूप आनंदस्वरूप सत्यस्वरूप पूर्ण संगरहित और द्वैतवर्ज्जित है ॥ २१ ॥ यह

अपरिच्छिन्नताऽप्येवमत एव मता मम ॥ तच्च ज्ञानं नात्मधर्मो धर्मत्वे जडताऽऽत्मनः ॥ १९ ॥ ज्ञानस्य जडशेषत्वं न दृष्टं न च संभवि ॥ चिद्धर्मत्वं तथा नास्ति चितश्चिन्न हि भिद्यते ॥ २० ॥ तस्मादात्मा ज्ञानरूपः सुखरूपश्च सर्वदा ॥ सत्यः पूर्णोऽप्यसंगश्च द्वैतजालविवर्जितः ॥ २१ ॥ स पुनः कामकर्मादियुक्तया स्वीयमायया ॥ पूर्वानुभूतसंस्कारात्कालकर्मवि पाकतः ॥ २२ ॥ अविवेकाच्च तत्त्वस्य सिसृक्षावान्प्रजायते ॥ अबुद्धिपूर्वः सर्गोऽयं कथितस्ते नगाधिप ॥ २३ ॥ एतद्धि यन्मया प्रोक्तं मम रूपमलौकिकम् ॥ अव्याकृतं तदव्यग्रं मायाशबलमित्यपि ॥ २४ ॥ प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु सर्वकारण कारणम् ॥ तत्त्वानामादिभूतं च सच्चिदानंदविग्रहम् ॥ २५ ॥ सर्वकर्मघनीभूतमिच्छाज्ञानक्रियाश्रयम् ॥ ह्रींकारमंत्रवाच्यं तदादितत्त्वं तदुच्यते ॥ २६ ॥

आत्मा कामना और कर्मादियुक्त अपनी मायाद्वारा पूर्वानुभूत संस्कार वशसे काल और कर्मके विपाकानुसार ॥ २२ ॥ चौवीस तत्त्वोंके अविवेकजनित ही इस प्रकार सृष्टिविषयमें इच्छावान होता है हे गिरिवर ! सोता हुआ पुरुष जिस प्रकार पूर्व संस्कारसे अबुद्धिपूर्वक नींदसे उठता है इसी प्रकार आत्माकी यह सृष्टि भी कालकर्मके संस्कार अबुद्धिपूर्वकही साधित होती है ॥ २३ ॥ हे अचलेन्द्र ! मैंने जो तत्त्वका विषय वर्णन किया यही सर्व्वोत्तम और मेरा अलौकिक रूपमात्र है वेदमें यही अव्याकृत अव्यक्त और मायाशबल कहकर उल्लिखित हुआ है ॥ २४ ॥ और सम्पूर्ण शास्त्रोंमें इसको सर्व कारणोंका कारण सब तत्त्वका आदिभूत तथा सच्चिदानंद विग्रह कहकर निर्द्देश करते हैं ॥ २५ ॥ ज्ञान और क्रिया संयुक्त समस्त कर्म्म घनीभूत होनेसे वह ह्रींकार मंत्रका वाच्य होता है तत्वदर्शी महर्षीगण उस ह्रींकाररूप मायाबीजको ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आदि तत्त्व कहकर उल्लेख करते हैं ॥ २६ ॥

उस ह्रींकारवाच्य महत्स्वरूप मायाबीजरूप आदितत्त्वसे क्रमानुसार शब्दतन्मात्ररूप अपञ्चीकृत आकाश उत्पन्न होता है अनन्तर उससे स्पर्शात्मक वायु अनंतर उससे क्रमानुसार रूपात्मक तेज ॥ २७ ॥ इसके उपरांत रसात्मक जल तदनंतर गन्धगुणात्मक पृथ्वी उत्पन्न होती है पंडित लोग कहते हैं कि आकाशगुण एकमात्र शब्द है वायुका गुण शब्द और स्पर्श है ॥ २८ ॥ तेजका गुण शब्द स्पर्श और रूप जलका गुण शब्द स्पर्श रूप और रस है ॥ २९ ॥ तथा शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध यह पांच पृथ्वीके गुण हैं इन अपञ्ची कृत भूतोंसे व्यापक सूत्र उत्पन्न होता है वही लिङ्गदेह नामसे कहा गया है ॥ ३० ॥ यह सूत्र अर्थात् लिंगदेह सर्व प्राणात्मक और यही परमात्माका सूक्ष्म देह है पूर्वमें जो कहा गया है जिसमें जगत्का बीज प्रतिष्ठित और जिससे लिङ्गदेहकी उत्पत्ति है

तस्मादाकाश उत्पन्नः शब्दतन्मात्ररूपकः॥ भवेत्स्पर्शात्मको वायुस्तेजोरूपात्मकं पुनः ॥ २७ ॥ जलं रसात्मकं पश्चात्ततो गंधात्मिका धरा ॥ शब्दैकगुण आकाशो वायुः स्पर्शरवान्वितः ॥ २८ ॥ शब्दस्पर्शरूपगुणं तेज इत्युच्यते बुधैः ॥ शब्दस्पर्शरूपरसैरापो वेद गुणाः स्मृताः ॥ २९ ॥ शब्दस्पर्शरूपरसगंधैः पंचगुणं धरा ॥ तेभ्योऽभवन्महत्सूत्रं यल्लिंगं परिचक्षते ॥ ३० ॥ सर्वात्मकं तत्संप्रोक्तं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः ॥ अव्यक्तं कारणो देहः स चोक्तः पूर्वमेव हि ॥ ३१ ॥ यस्मिञ्जगद्बीजरूपं स्थितं लिंगोद्भवो यतः ॥ ततः स्थूलानि भूतानि पंची करणमार्गतः ॥ ३२ ॥ पंच संख्यानि जायंते तत्प्रकारस्त्वथोच्यते ॥ पूर्वोक्तानि च भूतानि प्रत्येकं विभजेद् द्विधा ॥ ३३ ॥ एकैकं भागमेकस्य चतुर्धा विभजेद्गिरे ॥ स्वस्वेतरद्वितीयांशे योजनात्पंच पंच ते ॥ ३४ ॥ तत्कार्यं च विराडदेहः स्थूलदेहोऽयमात्मनः ॥ पंच भूतस्थसत्त्वांशैः श्रोत्रादीनां समुद्भवः ॥ ३५ ॥

वही परमात्माका कारण देह है पूर्वोक्त रूपसे अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूत उत्पन्न होनेपर ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ फिर उनसे पञ्चीकरण द्वारा जिस प्रकार पञ्चीकृत भूतकी उत्पत्ति होती है इस समय उसका ही नियम कहती हूं हे गिरिराज! पूर्वोक्त पञ्चमहाभूतोंके प्रत्येकको दो भागोंमें विभक्त करके ॥ ३३ ॥ और उनके एकएक भागको पुनर्वार चार भागमें विभक्त करके फिर एक २ सबमेंसे ले प्रत्येकमें मिलावे इस प्रकार यह अष्टमांश पंचीकरण लानेसे वह पंचपंच अंशयुक्त हो एक एक स्थल महाभूत होता है ॥ ३४ ॥ इस पंचीकृत भूतपंचकका कार्य विराट्देह है वह परमेश्वरका स्थूलदेह कहा गया है इन पंचभूतस्थित प्रत्येकके सत्वांशसे श्रोत्र (कान) त्वगादि (त्वचाआदि) पंच ज्ञानेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ३५ ॥

उक्त सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियोंके प्रत्येकका सत्वांश मिलित होकर एक अन्तःकरण होता है यह अन्तः--करण वृत्तिभेदसे चार प्रकार है ॥ ३६ ॥ जब उसका संकल्प और विकल्पात्मक कार्य होता है तब उसको मन जब संशय विहीनरूपसे निश्चित ज्ञानरूप कार्य होता है तब उसको बुद्धि ॥ ३७ ॥ जब अनुसंधानरूप वृत्ति होती है तब चित्त जब अहंकृतिस्वरूप आत्मवृत्तिसमन्वित होता है तब उसको अहंकार कहते हैं ॥ ३८ ॥ उन पंचभूतके प्रत्येक रजअंशसे वाक् पाणी पाद पायु (गुदा) और उपस्थ नामक पंच कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है उनमें प्रत्येकके सम्पूर्ण राजअंशमिलित होकर प्राण अपान समान उदान और व्यान यह पंच प्राणवायु उत्पन्न होती हैं ॥ ३९ ॥ उनमें प्राणवायु हृदयमें अपानवायु गुह्यमें समानवायु नाभिस्थलमें उदान वायु कण्ठमें और व्यान वायु समस्त शरीरमें व्याप्त होकर स्थिति करती है ॥ ४० ॥ पंच ज्ञानेन्द्रिय पंच कर्मेंद्रिय पंच वायु और बुद्धि तथा मन यह सत्रह पदार्थ मिलित होकर ॥ ४१ ॥ मेरे सूक्ष्म शरीर

ज्ञानेंद्रियाणां राजेंद्र प्रत्येकं मिलितैस्तु तैः ॥ अंतःकरणमेकं स्याद् वृत्तिभेदाच्चतुर्विधम् ॥ ३६ ॥ यदा तु संकल्पविकल्प कृत्यं तदा भवेत्तन्मन इत्यभिख्यम् ॥ स्याद् बुद्धिसंज्ञं च यदा प्रवेत्ति सुनिश्चितं संशयहीनरूपम् ॥ ३७ ॥ अनुसंधानरूपं तच्चित्तं च परिकीर्तितम् ॥ अहंकृत्यात्मवृत्त्या तु तदहंकारतां गतम् ॥ ३८ ॥ तेषां रजोंशैर्जातानि क्रमात्कर्मेन्द्रियाणि च ॥ प्रत्येकं मिलितैस्तैस्तु प्राणो भवति पंचधा ॥ ३९ ॥ हृदि प्राणो गुदेऽपानो नाभिस्थस्तु समानकः ॥ कंठदेशेऽप्युदानः स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः ॥ ४० ॥ ज्ञानेंद्रियाणि पचैव पंच कर्मेंद्रियाणि च ॥ प्राणादिपञ्चकं चैव धिया च सहितं मनः ४१ ॥ एतत्सूक्ष्मशरीरं स्यान्मम लिंगं यदुच्यते ॥ तत्र या प्रकृतिः प्रोक्ता सा राजन्द्विविधा स्मृता ॥ ४२ ॥ सत्त्वात्मिका तु माया स्यादविद्या गुणमिश्रिता ॥ स्वाश्रयं या तु संरक्षेत्सा मायेति निगद्यते ॥ ४३ ॥ तस्यां यत्प्रतिबिंबं स्याद्बिंबभूतस्य चेशितुः॥स ईश्वरः समाख्यातः स्वाश्रयज्ञानवान्परः ॥ ४४ ॥

अथवा लिंगदेहकी उत्पत्ति होती है, उसमें जो प्रकृति स्थिति करती है वह दो भागमें विभक्त है ॥ ४२ ॥ एक शुद्ध सत्वात्मिक माया और दूसरी गुण मिश्रित मलिनसत्वप्रधान अविद्या कही जाती है जो स्वाश्रयको आवृत न करके रक्षा करती है वही माया शब्दसे उक्त हुई है ॥ ४३ ॥ इस स्वाश्रयकी अव्यामोह कारिणी शुद्ध सत्व प्रधान मायामें परमात्माका जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वही ईश्वर नामसे कहा गया है शुद्धसत्वप्रधान माया तदाधार ब्रह्मको आवरण न करनेके कारण यह स्वाश्रय ज्ञानवान् अर्थात् व्यापक ब्रह्मको जानती है और सर्वव्यापित्व हेतु तथा सर्वत्र इसके ज्ञानावरणके अभावहेतु इसको सर्वज्ञ कहा जाता है और अचिंत्य महाशक्तिविशिष्ट होनेके कारण सर्वकर्ता और सम्पूर्ण जगत्का अनुग्रह करनेवाला कहा जाता है ॥ ४४ ॥

और मलिनसत्वप्रधान अविद्यामें परमात्माका जो प्रतिबिंब पड़ता है वह जीवनामसे अभिहित हुआ हैं ॥ ४५ ॥ मलिनसत्वप्रधान अविद्या तदाश्रयरूप आनंद करनेके कारण यह जीव सर्वदुःखका आश्रय होता है उक्त जीव और ईश्वर दोनोंकेही अविद्या और विद्याद्वारा तीन देह होते हैं ॥ ४६ ॥ इन तीनों देहके अभिमान हेतु तीन नाम हैं जीव कारण देहाभिमानी होनेसे उसको प्राज्ञ सूक्ष्मदेहाभिमानी होनेसे तैजस ॥ ४७ ॥ और स्थूलाभिमानी होनेसे विश्व कहा जाता है और ईश्वर भी कार णदेहाभिमानी होनेसे उसको ईश सूक्ष्मदेहाभिमानी होनेसे 'सूत्र' और स्थूलदेहाभिमानी होनेसे 'विराट्' नामसे अभिहित होता है ॥ ४८ ॥ प्रथम जीव व्यष्टि देहत्रयाभिमानी और ईश्वर समष्टिदेहत्रयाभिमानी होता है यह सर्वेश्वर निरंतर आनंदानुभव हेतु तृप्त होनेपर भी जीवके प्रति मोक्षलाभरूप अनुग्रह करनेकी इच्छासे ॥ ४९ ॥ विविध भोगका आश्रयस्वरूप विश्वकी सृष्टि करता है हे राजन् ! वह ईश्वरभी ब्रह्मरूपिणी

सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वानुग्रहकारकः ॥ अविद्यायां तु यत्किंचित्प्रतिबिंबं नगाधिप ॥ ४५ ॥ तदेव जीवसंज्ञं स्यात्सर्वदुःखाश्रयं पुनः ॥ द्वयोरपीह संप्रोक्तं देहत्रयमविद्यया ॥ ४६ ॥ देहत्रयाभिमानाच्चाप्यभून्नामत्रयं पुनः ॥ प्राज्ञस्तु कारणात्मा स्यात्सूक्ष्म देही तु तैजसः ॥ ४७ ॥ स्थूलदेही तु विश्वाख्यस्त्रिविधः परिकीर्तितः ॥ एवमीशोऽपि संप्रोक्त ईशसूत्रविराट्पदैः ॥ ४८ ॥ प्रथमो व्यष्टिरूपस्तु समष्ट्यात्मा परः स्मृतः ॥ स हि सर्वेश्वरः साक्षाज्जीवानुग्रहकाम्यया ॥ ४९ ॥ करोति विविधं विश्वं नानाभोगाश्रयं पुनः ॥ मच्छक्तिप्रेरितो नित्यं मयि राजन्प्रकल्पितः ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे देवीगीतायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ देव्युवाच ॥ मन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम् ॥ साऽपि मत्तः पृथङ्माया नास्त्येव परमार्थतः ॥ १ ॥ व्यवहारदृशा सेयं विद्या मायेति विश्रुता ॥ तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्तिकेवलम् ॥ २ ॥

मेरी माया शक्तिसे प्रेरित होकर ही सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करता है क्योंकि मैं ब्रह्मरूपिणी हूं वह मुझमें ही रज्जुकल्पित सर्पके समान कल्पित हो रहा है अतएव उनको भी मेरी शक्तिके आधीन जानना चाहिये ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ देवीने कहा हे गिरिराज ! चराचरयुक्त यह संपूर्ण जगत मेरीही मायाशक्तिद्वारा रचित होता है वह माया मुझमें कल्पित होती है किंतु वास्तवमें वह माया मुझसे पृथक् नहीं है अतएव एकमात्र मैं ही चिद्वस्तु हूं मेरे अतिरिक्त चिद्वस्तु अन्य कुछ नहीं है ॥ १ ॥ व्यवहार दृष्टिसे वह माया विद्यादि स्वतन्त्र नामसे विख्यात होती है किंतु तत्व अथवा ब्रह्मदृष्टिसे मायाकी विद्यमानता नहीं है केवल एकमात्र ब्रह्महि विद्यमान रहता है ॥ २ ॥

मैं ही वह चिद्ब्रह्मरूपिणी अविद्या कर्म और अनेक प्रकार संस्कारयुक्त कूटस्थ ब्रह्मरूपसे सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करके उसके भीतर चिदाभासरूपसे प्राणवायु आगे करके प्रवेश करती हूं ॥ ३ ॥ हे गिरिवर ! इस प्रकार मेरे प्राणस्वीकार प्रवेश करनेपर लोकांतरगमन जन्म और मरणादि व्यवहार किस प्रकार सिद्ध हो सकते हैं ? जिस प्रकार एक मात्र व्यापक महाकाश उपाधि भेदसे घटाकाश और मठाकाश इत्यादि भिन्नभिन्न नामसे विख्यात होते हैं इसी प्रकार मैं अनेक स्थलमें प्राणस्वीकार करके अविद्या और अन्तःकरणके प्रभेदसे हेतु भिन्न भिन्न होती हूं अतएव उससे ही अनेक प्रकार भिन्न भिन्न जीवोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ४ ॥ जिस प्रकार सूर्य स्वीय किरणसंयोगसे पृथ्वीकी सम्पूर्ण वस्तु प्रदीप्त करके भी दूषित नहीं होता इसी प्रकार मैं भी उत्कृष्ट और निकृष्ट सम्पूर्ण वस्तुके अन्तःप्रवेश हेतु दोषलिप्त नहीं होती ॥ ५ ॥ मूढबुद्धि अज्ञान द्वारा बुद्ध्यादिनिष्ठ कर्तृत्व आत्मरूपिणी मुझमें आरोपित करके आत्माकोही

साऽहं सर्वजगत्सृष्ट्वा तदंतः प्रविशाम्यहम् ॥ मायाकर्मादिसहिता गिरे प्राणपुरःसरा ॥ ३ ॥ लोकांतरगतिर्नोचेत्कथं स्यादिति हेतुना ॥ यथायथाभवंत्येव मायाभेदास्तथातथा ॥ ४ ॥ उपाधिभेदाद्भिन्नाऽहं घटाकाशादयो यथा ॥ उच्चनीचादिवस्तूनि भासयन्भास्करः सदा ॥ ५ ॥ नदुष्यति तथैवाहं दोषैर्लिप्ता कदाऽपि न ॥ मयि बुद्ध्यादिकर्तृत्वमध्यस्यैवापरे जनाः ॥ ६ ॥ वदंति चाऽऽत्मा कर्मेति विमूढा न सुबुद्धयः ॥ अज्ञानभेदतस्तद्वन्मायाया भेदतस्तथा ॥ ७ ॥ जीवेश्वरविभागश्च कल्पितो माययैव तु ॥ घटाकाशमहाकाश विभागः कल्पितोयथा ॥ ८ ॥ तथैव कल्पितो भेदो जीवात्मपरमात्मनोः ॥ यथा जीवबहुत्वं च माययैव न च स्वतः ॥ ९ ॥ तथेश्वर बहुत्वं च मायया नस्वभावतः ॥ देहेंद्रियादिसंघातवासनाभेदभेदिता ॥ १० ॥

कर्ता कहते हैं किंतु बुद्धिमान् पंडितगण उसको स्वीकार नहीं करते फलतः मैं जीवके भीतर कर्त्रीरूपसे न रहकर साक्षीरूपसे स्थिति करती हूं ॥ ६ ॥ हे अचलेन्द्र ! अविद्या और विद्याके भेद हेतु जीवबहुत्व और ईश्वरबहुत्व प्रतिपादित होता है फलतः माया द्वारा ही मनुष्य पशु इत्यादि जीवभेद और ब्रह्मा विष्णु इत्यादिमें ईश्वरभेद होता है ॥ ७ ॥ जिस प्रकार महाकाश घटावच्छिन्न होनेपर महाकाश और घटाकाश ऐसा बिभाग कल्पित होता है इसी प्रकार व्यापक परमात्मा और जीवावच्छिन्न होकर परमात्मा और जीवात्माका इस प्रकार भेद कल्पित होता है ॥ ८ ॥ जिस प्रकार जीवका बहुत्व माया द्वारा कल्पित होता है स्वभावसे नहीं होता इसी प्रकार ईश्वरबहुत्व भी स्वभावसे नहीं होता मायाद्वाराही कल्पित होता है ॥ ९ ॥ हे धरणीधर ! देह इन्द्रिय और मन इत्यादिक भेदसे अविद्याही जीवके भेदका हेतु है अन्य कुछ नहीं है ॥ १० ॥

और जो तीनों गुणकी वासना भेदसे अर्थात् सात्विक राजसिक और तामसिक वासनाभेदसे मायाकी भी भिन्नता उत्पन्न होती है ॥ ११ ॥ वह विभिन्न मायाही ब्रह्मा विष्णु इत्यादि ईश्वरके भेदका कारण है नहीं तो कुछ नहीं है हे धराधरेन्द्र ! यह सम्पूर्ण जगत् ओत प्रोतभावसे मुझमें ही स्थित रहता है ॥ १२ ॥ अतएव मैं ही कारणदेहाभिमानी ईश्वर लिंगदेहाभिमानी सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ और स्थूलदेहाभिमानी विराट् हूं मैं ही ब्रह्मा विष्णु महेश्वर और मैं ही ब्राह्मी वैष्णवी और रौद्री शक्ति हूं ॥ १३ ॥ मैं ही सूर्य मैं ही चन्द्रमा मैं ही तारका और मैं ही पशु पक्षी चांडाल और तस्कर हूं ॥१४॥ मैं ही क्रूरकर्मा व्याध और सत्कर्मा महाजन तथा मैंही स्त्री पुरुष और नपुंसक हूं इसमें संदेह नहीं ॥ १५ ॥ हे गिरिवर ! जिस किसी स्थानमें जो कोई वस्तु दिखाई देती अथवा सुनाई

अविद्या जीवभेदस्य हेतुर्नान्यः प्रकीर्तितः ॥ गुणानां वासनाभेदभेदिताया धराधर ॥ ११ ॥ माया सा परभेदस्य हेतुर्नान्यः कदाचन ॥ मयि सर्वमिदं प्रोतमोतं च धरणीधर ॥ १२ ॥ ईश्वरोऽहं च सूत्रात्मा विराडात्माऽहमस्मि च ॥ ब्रह्माऽहं विष्णुरुद्रौ च गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी ॥ १३ ॥ सूर्योऽहं तारकाश्चाहं तारकेस्तथाऽस्म्यहम् ॥ पशुपक्षिस्वरूपाऽहं चांडालोऽहं च तस्करः ॥ १४ ॥ व्याधोऽहं क्रूरकर्माऽहं सत्कर्माऽहं महाजनः ॥ स्त्रीपुन्नपुंसकाकारोऽप्यहमेव न संशयः ॥ १५ ॥ यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥ अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्याऽहं सर्वदा स्थिता ॥ १६ ॥ न तदस्ति मया त्यक्तं वस्तु किंचिच्चराचराचरम् ॥ यद्यस्ति चेत्तच्छून्यं स्याद्वंध्यापुत्रोपमं हि तत् ॥ १७ ॥ रज्जुर्यथासर्पमालाभेदैरेका विभाति हि ॥ तथैवेशादिरूपेण भाम्यहं नात्र संशयः ॥ १८ ॥ अधिष्ठानातिरेकेण कल्पितं तन्नभासते ॥ तस्मान्मत्सत्तयैवैतत्सत्तावान्नान्यथा भवेत् ॥ १९ ॥ हिमालय उवाच ॥ यथा वदसि देवेशि समष्ट्यात्मवपुस्त्विदम् ॥ तथैव द्रष्टुमिच्छामि यदिदेवि कृपा मयि ॥ २० ॥

देती हैं मैं उस सम्पूर्ण वस्तुके भीतर और बाहर व्याप्त होकर सर्वदा स्थित रहती हूं ॥ १६ ॥ मेरे विना चराचरकी कोई वस्तु विद्यमान नहीं है यदि कुछ है तो वह वन्ध्याके पुत्रके समान निरर्थक है ॥१७॥ जिस प्रकार एकमात्र रज्जु सर्प और मालादिरूपसे प्रतिभात होती है इस प्रकार एकमात्र मैंही ब्रह्मस्वरूपिणी मैं ही ईश्वरादि रूपसे प्रतिभात होती हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ क्योंकि यह कल्पित जगत् अधिष्ठानसत्ताके अतिरिक्त हेतु प्रतिभात नहीं होता यह मेरी सत्ताद्वाराहीसत्तावान् होता है नहीं तो अन्य किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता ॥ १९ ॥ हिमालयने कहा हे देवि ! यदि मेरे प्रति आपकी कृपा हो तो आपकी समष्ट्यात्मक अर्थात् सर्वसमष्टीरूप सर्वाभिमानी विराट्मूर्ति देखनेकी इच्छा करता हूं आप अनुग्रह करके वह मुझको दिखाइये ॥ २० ॥

व्यासजीने कहा हे महाराज ! गिरिवरके यह वचन सुनकर विष्णु इत्यादि सम्पूर्ण देवताओंने प्रसन्नचित्त हो अत्यन्त मानसहित उनके उस वचनका अनुमोदन किया ॥ २१ ॥ अनन्तर भक्तोंकी वाञ्छा पूर्ण करनेवाली भक्तोंकी कामधेनु और कल्याणरूपिणी देवी भुवनेश्वरीने अपनारूप दिखानेमें देवताओंको उत्सुक जानकर अपना विराड्रूप दिखाया ॥ २२ ॥ वह महादेवीके उस विराट्रूपको देखने लगे. संपूर्ण उर्द्धस्थित सत्यलोक उस विराट्रूपिणीका मस्तक चन्द्रमा और सूर्य उसकी दोनों आंखे ॥ २३ ॥ संपूर्ण दिशा श्रोत्र (कान) संपूर्ण वेद वाक्य, वायु उसका प्राण, विश्व उसका हृदय, पृथ्वी जघनस्थल, ॥ २४ ॥ नभस्थल अर्थात् भुवर्लोक नाभिसरोवर ज्योतिषकमण्डल ऊरुस्थल महर्लोक ग्रीवा जनलोक मुखमण्डल ॥ २५ ॥ सत्यलोकके अधः स्थित तपोलोक उसका

व्यास उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा सर्वे देवाः सविष्णवः ॥ ननंदुर्मुदितात्मानः पूजयंतश्च तद्वचः ॥ २१ ॥ अथ देवमतं ज्ञात्वा भक्तकामदुघा शिवा ॥ अदर्शयन्निजं रूपं भक्तकामप्रपूरिणी ॥ २२ ॥ अपश्यंस्ते महादेव्या विराड्रूपंपरात्परम् ॥ द्यौर्मस्तकं भवेद्यस्य चंद्रसूर्यौ च चक्षुषी ॥ २३ ॥ दिशः श्रोत्रे वचो वेदाः प्राणो वायुः प्रकीर्तितः ॥ विश्वं हृदयमित्याहुःपृथिवी जघनं स्मृतम् ॥ २४ ॥ नभस्तलं नाभिसरो ज्योतिश्चक्रमुरः स्थलम् ॥ महर्लोकस्तु ग्रीवा स्याज्जनोलोको मुखं स्मृतम् ॥ २५ ॥ तपोलोको रराटिस्तु सत्यलोकादधः स्थितः ॥ इन्द्रादयो बाहवः स्युः शब्दः श्रोत्रं महेशितुः ॥ २६ ॥ नासत्यदस्रौ नासे स्तो गंधोघ्राणं स्मृतो बुधैः ॥ मुखमग्निः समाख्यातो दिवारात्री च पक्ष्मणी ॥ २७ ॥ ब्रह्मस्थानं भ्रूविजृंभोऽप्यापस्तालुः प्रकीर्तिता ॥ रसो जिह्वासमाख्याताः यमो दंष्ट्राः प्रकीर्तिताः ॥ २८ ॥ दंताःस्नेहकला यस्य हासो माया प्रकीर्तिता ॥ सर्गस्त्वपांगमोक्षः स्याद्व्रीडोध्वोंष्ठा महेशितुः ॥ २९ ॥ लोभः स्यादधरोष्ठोऽस्याधर्ममार्गस्तु पृष्ठभूः ॥ प्रजापतिश्च मेनं स्याद्यः स्रष्टा जगतीतले ॥ ३० ॥

ललाटफलक इंद्रादिदेवतायुक्त स्वर्गलोक उसकी बाहु, शब्द उस महेश्वरीका श्रवणेन्द्रिय ॥ २६ ॥ दोनों अश्विनीकुमार उसके नासापुट, गन्ध घ्राणेन्द्रिय, मुखके भीतर अग्नि दिन और रात उसके दोनों पक्षरूपसे प्रकाश पाते थे ॥ २७ ॥ और उनकी दोनों भौंहें चतुर्मुख ब्रह्माजीका स्थान, जल उसका तालु, रस उसकी जिह्वा, यमराज उनकी दाढें ॥ २८ ॥ स्नेह विलास दांत माया उसका हास्य, ब्रह्माण्डसृष्टि उसका कटाक्ष, व्रीडा ऊर्द्ध ओष्ठ ॥ २९ ॥ लोभ अधर और अधर्म उसका पृष्ठभाग, जो जगतीतलमें सृष्टिकर्ता प्रजापति हैं वह उसका मेढ्र ॥ ३० ॥

सम्पूर्ण कुक्षि समस्त पर्वत उस महेश्वरीके अस्थिस्वरूप, समस्त नदियें नाडी और सम्पूर्ण वृक्ष उसके केशरूपसे प्रकाश पाते थे ॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र ! कौमार यौवन और जरा उसकी उत्तमगति मेघसमूह उसका केशजाल दोनों सन्ध्या उन परम प्रभुकी दोनों वस्त्रस्वरूप ॥ ३२ ॥ चन्द्रमा उस जगदम्बिकाका मन हरि उसकी विज्ञान मुक्ति और रुद्र उसके अन्तःकरण ॥ ३३ ॥ अश्वादि संपूर्ण जीव उसको नितम्ब देश और अतलादि संपूर्ण महलोंक उसके कटिदेशसे चरणकमलोंतक स्थिति करते थे ॥३४॥ देवतागण आश्चर्ययुक्त नेत्रोंसे जगदम्बिकाकी इस प्रकार मूर्ति देखने लगे उनकी उस मूर्तिसे सहस्र २ ज्वाला माला निकलने लगीं जिह्वाद्वारा सम्पूर्ण जगत्के अस्वादन करने लगी ॥३५॥ दोनों दशनपंक्तियोंमें कटकटा शब्द होनेलगा संपूर्ण अक्षियोंसे

कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थीनि देव्या महेशितुः ॥ नद्योनाड्यः समाख्याता वृक्षाः केशाः प्रकीर्तिताः ॥ ३१ ॥ कौमारयौवनजरा वयोऽस्य गतिरुत्तमा ॥ बलाहकास्तु केशाः स्युः संध्ये तेवाससी विभोः ॥ ३२ ॥ राजन्छ्रीजगदंबायाश्चन्द्रमास्तु मनः स्मृतः ॥ विज्ञानशक्तिस्तु हरी रुद्रोऽतःकरणं स्मृतम् ॥ ३३ ॥ अश्वादि जातयः सर्वाः श्रोणिदेशे स्थिता विभोः ॥ अतलादिमहालोकाः कट्यधोभागतां गताः ॥ ३४ ॥ एतादृशं महारूपं ददृशुः सुरपुंगवाः ॥ ज्वालामालासहस्राढ्यं लेलिहानं च जिह्वया ॥ ३५ ॥ दंष्ट्राकटकटारावं वमंतं वह्निमक्षिभिः ॥ नानायुधधरं वीरं ब्रह्मक्षत्रौदनंच यत् ॥ ३६ ॥ सहस्रशीर्षनयनं सहस्रचरणं तथा ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं विद्युत्कोटिसमप्रभम् ॥ ३७ ॥ भयंकरं महाघोरं हृदक्ष्णोस्त्रासकारकम् ॥ ददृशुस्ते सुराः सर्वे हाहाकारं च चक्रिरे ॥ ३८ ॥ विकंपमानहृदया मूर्च्छामापुर्दुरत्ययाम् ॥ स्मरणं च गतं तेषा जगदंबेयमित्यपि ॥ ३९ ॥ अथ ते ये स्थिता वेदाश्चतुर्दिक्षु महाविभोः ॥ बोधयामासुरत्युग्रं मूर्छांतो मूर्च्छितान्सुरान् ॥ ४० ॥

अग्नि उद्गार आरम्भ हुआ हाथमें अनेक प्रकारके आयुध ब्राह्मण और क्षत्रिय उस घोरदर्शन वीर पुरुषके ओदनस्वरूप ॥ ३६ ॥ उनकी उस मूर्तिमें अनेक मस्तक अनेक नेत्र और अनेक चरण थे जिनकी सीमा नहीं उस मूर्तिके देखनेसे बोध होता था कि एक बारही करोड सूर्य उदय हुए हैं मानो अनेक विद्युन्माला एकत्र प्रकाशित होरही है ॥३७॥ महादेवीके वह महाभयंकर नेत्र भी मनको त्रास उत्पन्न करते थे इस प्रकार महाघोर विराट्मूर्ति देख संपूर्ण देवता लोगभीत होकर हाहाकार करने लगे ॥३८॥ और उनका हृदय काँपने लगा वह अत्यन्त मूर्च्छासे आक्रान्त होगये „यही हमारी पालन करने वाली जगदम्बिका है" यह ज्ञान एकवारही दूर होगया ॥३९॥ उससमय उन भुवनेश्वरीके चारों ओर जो संपूर्ण वेद स्थिति करते थे उन्होंने मूर्च्छासे उठाकर देवताओंको समझाया ॥ ४० ॥

अनन्तर वह निर्जरगण वह अत्युत्तम श्रुति प्राप्तकर धैर्यअवलम्बनपूर्वक अन्तर्जनित बाष्पसे रुद्धकण्ठ हो ॥ ४१ ॥ प्रेमविगलित अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे गद्गदव चनद्वारा जगदम्बिकाका स्तव करने लगे देवताओंने कहा हे मातः ! हम अत्यन्त दीन और आपसेही उत्पन्न हुए हैं आप हमारा अपराध क्षमा कीजिये ॥ ४२ ॥ और हमारे प्रति कोप त्याग कीजिये, हम आपके इस रूपको देखनेसे अत्यन्त भीत हुए हैं हे देवि ! पामर अमरगण आपकी क्या स्तुति करें ? ॥ ४३ ॥ आप स्वयं जब कि अपने पराक्रमकी सीमा करनेमें असमर्थ हैं तब हम आपके पीछे जन्म ग्रहण करके किस प्रकार उनको जान सकते हैं ॥४४॥ हे प्रणवात्मिके भुवनेश्वरि ! हम आपको नमस्कार करते हैं हे देवि ! संपूर्ण वेदान्तशास्त्रमें आपको प्रतिपादित किया है हम आपकी उसी ह्रींकार मूर्तिको नमस्कार

अथ ते धैर्यमालंव्य लब्ध्वा च श्रुतिमुत्तमाम् ॥ प्रेमाश्रुपूर्णनयना रुद्ध कंठास्तु निर्जराः ॥ ४१ ॥ बाष्पगद्गदया वाचा स्तोतुं समुपच क्रिरे ॥ देवाऊचुः ॥ अपराधं क्षमस्वांब पाहि दीनांस्त्वदुद्भवान् ॥ ४२ ॥ कोपं संहर देवेशि सभयारूपदर्शनात् ॥ का ते स्तुतिः प्रकर्तव्या पामरैर्निर्जरैरिह ॥ ४३ ॥ स्वस्याप्यज्ञेय एवाऽसौ यावान्यश्च स्वविक्रमः ॥ तदर्वाग्जयामानानां कथं स विषयो भवेत् ॥४४॥ नमस्ते भुवनेशानि नमस्ते प्रणवात्मिके ॥ सर्ववेदान्तसंसिद्धे नमो ह्रींकारमूर्तये ॥ ४५ ॥ यस्मादग्निः समुत्पन्नो यस्मात्सूर्यश्च चंद्रमाः ॥ यस्मादोषधयः सर्वास्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ ४६ ॥ यस्माच्च देवाः संभूताः साध्याःपक्षिण एव च ॥ पशवश्च मनुष्याश्च तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ ४७ ॥ प्राणापानौ व्रीहियवौ तपः श्रद्धाऋतं तथा ॥ ब्रह्मचर्यं विधिश्चैवयस्मात्तस्मै नमो नमः ॥ ४८ ॥ सप्त प्राणार्चिषो यस्मात्समिधः सप्त एव च ॥ होमाः सप्त तथा लोकास्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥४९॥ यस्मात्समुद्रा गिरयः सिंधवः प्रचरंति च ॥ यस्मादोषधयः सर्वा रसास्तस्मै नमो नमः ॥ ५० ॥

करते हैं ॥ ४५ ॥ जिनसे अग्नि सूर्य चन्द्रमा और जिनसे सम्पूर्ण औषधियें उत्पन्न हुई हैं उन्हीं सर्वात्मरूपिणीको नमस्कार है ॥४६॥ जिनसे संपूर्ण देवतागण साध्यगण पशुगण पक्षिगण और मनुष्यगण उत्पन्न हुए हैं हम उन्हीं सर्वात्मरूपिणी देवीके विराट्रूपको नमस्कार करते हैं ॥ ४७ ॥ जिनसे प्राण अपान व्रीहि यव तपस्या श्रद्धा सत्य ब्रह्मचर्य और सम्पूर्ण हितकर्तव्यतारूप विधि उत्पन्न हुई है हम उन्हीं सर्वात्मिका महामायाकी महामूर्तिको नमस्कार करते हैं ॥ ४८ ॥ जिनसे सप्त प्राण सप्त दीप्ति सप्त समाधि सप्त होम और सप्त लोक उत्पन्न हुए हैं हम इन्हीं सर्वस्व रूपिणीको नमस्कार करते हैं ॥ ४९ ॥ जिनसे संपूर्ण समुद्र सम्पूर्ण पर्वत समस्त नदी सम्पूर्ण औषधि और समस्त रस उत्पन्न हुए हैं हम उन्हीं भुवनेश्वरीकी विराट्मूर्तिको नमस्कार करते हैं ॥ ५० ॥

जिनसे यज्ञ यूप और दक्षिणा एवं ऋक् यजु और सामवेद उत्पन्न हुए हैं हम महामायाकी उस अखिल विश्वात्मक विराट्रूपको नमस्कार करते हैं॥ ५१ ॥ हे मातः महामाये ! आपके पुरोभागमें नमस्कार आपके पृष्ठ भागमें नमस्कार आपके दोनों पार्श्वमें नमस्कार आपके ऊर्द्धभागमें नमस्कार आपके अधो भागमें नमस्कार और आपके चारों ओर वारंवार नमस्कार करते हैं ॥ ५२ ॥ हे देवि ! आप अपने इस अलौकिक रूपको दूर करके अपना परम सुन्दर मनोहर रूप हमको दिखाइये ॥ ५३ ॥ व्यासजीने कहा हे राजन् ! करुणाकी अर्णवरूपिणी जगदम्बिकाने सुरगणोंको भीत देख अपना घोर विराट्रूप दूर करके परम सुन्दर भुवन मोहन पूर्वरूप दिखाया ॥५४॥ उनका सम्पूर्ण शरीर कोमल हो गया उन्होंने एक हस्तमें पाश और एक हस्तमें अंकुशास्त्र धारण किया अपर

यस्माद्यज्ञः समद्भूतो दीक्षा यूपश्चदक्षिणाः ॥ ऋचो यजूंषि सामानि तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ ५१ ॥ नमः पुरस्तात्पृष्ठे च नमस्ते पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ अध ऊर्ध्वं चतुर्दिक्षुमातर्भूयो नमो नमः ॥ ५२ ॥ उपसंहर देवेशि रूपमेतदलौकिकम् ॥ तदेव दर्शयाऽस्माकं रूपं सुन्दर सुन्दरम् ॥ ५३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति भीतान्सुरान्दृष्ट्वा जगदंबा कृपार्णवा ॥ संहृत्य रूपं घोरं तद्दर्शयामास सुन्दरम् ॥ ५४ ॥ पाशांकुशवराभीति धरं सर्वांगकोमलम् ॥ करुणापूर्णनयनं मंदस्मितमुखांबुजम् ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा तत्सुन्दरं रूपं तदा भीतिविवर्जिताः ॥ शांतचित्ताः प्रणेमुस्ते हर्षगद्गदनिःस्वनाः ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवी० महापुराणे सप्तमस्कंधे देवीगीतायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ क्व यूयं मंदभाग्या वै क्वेदं रूपं महाद्भुतम् ॥ तथापि भक्तवात्सल्यादीदृशं दर्शितं मया ॥ १ ॥ न वेदाध्ययनैर्योगैर्न दानैस्तपसेज्यया ॥ रूपं द्रष्टुमिदं शक्यं केवलं मत्कृपां विना ॥ २ ॥ प्रकृतं शृणु राजेंद्र परमात्माऽत्र जीवताम् ॥ उपाधि योगात्संप्राप्तः कर्तृत्वादिकमप्युत ॥ ३ ॥

दोनों हाथोंमेंसे एक हस्तमें वरदान और अन्य हस्त अभयदान भङ्गिमामें उद्यत उनके नेत्र देखनेसे बोध होता था कि मानो उनके एक वारही करुणारससे परिपूर्ण मुख कमलमें कुछेक हास्य विराजमान है ॥ ५५ ॥ देवतागण जगदम्बिकाकी इस प्रकार मूर्ति देखकर भय रहित हो शान्त चित्तसे हर्ष और गद्गद शब्दपूर्वक प्रणाम करने लगे ॥ ५६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥ श्रीदेवी बोली कहां तो तुम मंदभाग्य और कहा यह मेरा अद्भुत रूप तोभी भक्ति वत्सलतासे तुमको मैंने यह रूप दिखाया है॥१॥वेदाध्ययन योग दान तप यज्ञसे यह मेरा रूप नहीं दीखता इसमें केवल मेरी कृपाही कारण है ॥२॥ अब उसी प्रकृत विषयको श्रवण करो जो परमात्मा उपाधियोगसे जीवताको प्राप्त और कर्तृआदिपदसे व्यवहार किया जाता है ॥ ३ ॥

धर्म अधर्मके कारण अनेक प्रकारकी क्रिया करता है और यह जीव अनेकयोनियोंको प्राप्त होकर सुखदुःख भोगता है ॥ ४ ॥ फिर उन्हीं संस्कारोंके वशसे अनेक प्रकारके कर्मोंमें रत होता है अनेक देहोंसे युक्त हो अनेक सुखदुःख पाता है ॥ ५ ॥ घड़ी यंत्रके समान यह सदा विचरता ही रहता है इसको कभी विश्राम नहीं मिलता आजतक अनेक सृष्टि प्रलय हुई पर इसका विराम न हुआ इसका मल अज्ञान है इस अज्ञानसे इच्छा और उससे क्रिया होती है ॥ ६ ॥ इससे अज्ञान नाशके निमित्त क्रिया करनी चाहिए यही जन्मकी सफलता है ॥७॥ जो अज्ञान नाश किया जाय "यो ह्यविदित्वात्मानमस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः" इति श्रुतेः। पुरुषार्थकी समाप्ति जीवन्मुक्तकी दशाकी प्राप्ति और अज्ञान नाशमें एक विद्याही समर्थ है ॥ ८ ॥ हे पर्वतराज ! अज्ञानसे उत्पन्न कर्म अज्ञान से उत्पन्न हुई कर्मके नाशमें समर्थ नहीं है कारण कि इन दोनोंका परस्पर विरोध नहीं है कर्म द्वारा अज्ञानके नाशकी आशा न करनी चाहिये

क्रियाः करोति विविधा धर्माधर्मैकहेतवः ॥ नानायोनीस्ततः प्राप्य सुखदुःखैश्च युज्यते ॥ ४ ॥ पुनस्तत्संस्कृतिवशान्नानाकर्मरतः सदा ॥ नानादेहान्समाप्नोति सुखदुःखैश्च युज्यते ॥ ५ ॥ घटीयंत्रवदेतस्य न विरामः कदापि हि ॥ अज्ञानमेव मूलं स्यात्ततः कामः क्रिया स्ततः ॥ ६ ॥ तस्मादज्ञाननाशाय यतेत नियतंनरः ॥ एतद्धि जन्मसाफल्यं यदज्ञानस्य नाशनम् ॥ ७ ॥ पुरुषार्थसमाप्तिश्च जीवन्मुक्त दशापि च ॥ अज्ञाननाशने शक्ताविद्यैवतु पटीयसी ॥ ८ ॥ न कर्म तज्जनोपास्तिर्विरोधाभावतोगिरे ॥ प्रत्युताशा ज्ञाननाशे कर्मणा नैव भाव्यताम् ॥ ९ ॥ अनर्थदानि कर्माणि पुनः पुनरुशंति हि ॥ ततो रागस्ततो दोषस्ततोऽनर्थो महान्भवेत् ॥ १० ॥ तस्मात्सर्व प्रयत्नेन ज्ञानं संपादयेन्नरः ॥ कुर्वन्नेवेह कर्माणीत्यतः कर्माप्यवश्यकम् ॥ ११ ॥ ज्ञानादेव हि कैवल्यमतः स्यात्तत्समुच्चयः ॥ सहायतां व्रजेत्कर्म ज्ञानस्य हितकारि च ॥ १२ ॥ इति केचिद्वदंत्यत्र तद्विरोधान्न संभवेत् ॥ ज्ञानाद्धृद्ग्रंथिभेदः स्याद्धृद्ग्रंथौ कर्मसंभवः ॥ १३ ॥

॥ ९ ॥ कारण कि यह अनर्थके देनेवाले कर्म वारंवार प्रगट होते हैं फिर राग और फिर दोष इससे महा अनर्थ होता है ॥ १० ॥ इस कारण सब प्रयत्नसे मनुष्योंको ज्ञान सम्पादन करना चाहिये और "कुर्वन्नेवेह कर्माणि" इस श्रुतिसे कर्मको भी सदा करना आवश्यक कहा है ॥ ११ ॥ तथा 'ज्ञानादेव हि कैवल्यम्' अर्थात् ज्ञानसेही मुक्ति होती है इनका समुच्चय इस प्रकार है कि ज्ञानके होनेसे कर्म सदा सहायक है ॥ १२ ॥ इस प्रकार इस विषयमें कोई कहते हैं इस भांतिसे विरोध संभव नहीं होता कारण कि ज्ञानसे हृदयकी गांठ खुलती है, और हृदयकी ग्रंथिमें कर्म स्थित है जहां ज्ञानके आगे कर्मकी भावना हो वहां ज्ञान कर्मका समुच्चय कहना चाहिये ॥ १३ ॥

इस कारण उन ज्ञान और कर्मका तम और प्रकाशके समान एक साथ विरोध नहीं संभव हो सकता, इस कारण यदि ज्ञान उत्पन्न न हो तो यावज्जीव कर्मानुष्ठान करता रहै ॥ १४ ॥ हे महामते ! इस कारण जितने वैदिक कर्म हैं. वह सब चित्त शुद्धिके निमित्त हैं उनको यत्नपूर्वक करना चाहिये चित्त शुद्धि होनेसे ज्ञान प्राप्त होकर ज्ञानी होगा ॥ १५ ॥ शम-अन्तर इन्द्रियका निग्रह, दम बाह्य इन्द्रियोंका निग्रह तितिक्षा शीत उष्ण आदिका सहना वैराग्य दोनों लोकके फलमें विराग और अन्तःकरणकी शुद्धि जबतक यह प्राप्त न हो तबतक कर्म करता रहे फिर कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ १६ ॥ ज्ञान होनेपर सब कुछ त्याग आत्मवान् गुरुका आश्रय करे वेदपाठी ब्रह्ममें निष्ठावाले वेदवेदांगके ज्ञातासे छलरहित भक्तिपूर्वक ॥ १७ ॥ सावधान हो नित्य वेदांत श्रवण करे और 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्योंका नित्यही अर्थ विचारता रहे ॥ १८ ॥ "तत्त्वमसि" इत्यादिवाक्य जीव और ईशकी एकता बोधक हैं इनकी

यौगपद्यं न संभाव्यं विरोधात्तु ततस्तयोः ॥ तमः प्रकाशयोर्यद्वद्यौगपद्यं न संभवि ॥ १४ ॥ तस्मात्सर्वाणि कर्माणि वैदिकानि महामते ॥ चित्तशुद्ध्यर्थमेव स्युस्तानि कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ १५ ॥ शमो दमस्तितिक्षा च वैराग्यं सत्त्वसंभवः ॥ तावत्पर्यंतमेव स्युः कर्माणि न ततः परम् ॥ १६ ॥ तदंते चैव संन्यस्य संश्रयेद्गुरुमात्मवान् ॥ श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं च भक्त्या निर्व्याजया पुनः ॥ १७ ॥ वेदान्तश्रवणं कुर्यान्नित्यमेवमतंद्रितः ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यस्य नित्यमर्थं विचारयेत् ॥ १८ ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यं तु जीवब्रह्मैक्यबोधकम् ॥ ऐक्ये ज्ञाते निर्भयस्तु मद्रूपो हि प्रजायते ॥ १९ ॥ पदार्थावगतिः पूर्वं वाक्यार्थावगतिस्ततः ॥ तत्पदस्य च वाच्यार्थो गिरेऽहं परिकीर्तितः ॥ २० ॥ त्वंपदस्य च वाच्यार्थो जीव एव न संशयः ॥ उभयोरैक्यमसिना पदेन प्रोच्यते बुधैः ॥२१॥ वाच्यार्थयोर्विरुद्धत्वादैक्यं नैव घटेत ह ॥ लक्षणाऽतः प्रकर्तव्या तत्त्वमोः श्रुतिसंस्थयोः ॥ २२ ॥

एकता जानकर यह निर्भय होकर मेरा रूप होजाता है ॥ १९ ॥ पहले पदार्थका ज्ञान फिर वाक्यार्थका ज्ञान करे हे पर्वतराज ! 'तत्' पदका अर्थ षड्गुण ऐश्वर्यसम्पन्न मैं हूं ॥ २० ॥ और 'त्वं' पदका वाच्यार्थ निःसन्देह जीव है, 'असि' पदसे दोनों जीव ईश्वरकी एकता ज्ञात होती है अर्थात् वही तू है ॥ २१ ॥ यदि कहो कि अत्यन्त विरुद्ध धर्मवालेजीवेश्वरकी एकता किस प्रकार हो सकती है तो भागलक्षणासे कहते हैं, आशय यह कि, जब वाच्यार्थ विरुद्ध होनेसे दोनोंकी एकता न घटे तो उसमें लक्षणा करनी चाहिये जीवके असर्वज्ञत्व और परिच्छिन्नत्व आदि निकृष्ट धर्म हैं ईश्वरकी सर्वज्ञता व्यापकता आदि उत्कृष्ट धर्म हैं तब इनका अभेद कैसे हो इसपर श्रुतिसम्मत तत् 'त्वं' पदकी लक्षणा करनी चाहिये ॥ २२ ॥

किस अर्थमें लक्षणा करनी चाहिये तब कहते हैं चिन्मात्रमें लक्षणा होती है, सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ब्रह्मचैतन्य ईश्वर है असर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ब्रह्मचैतन्य जीव है इनमें दोनों धर्म छोडकर चिन्मात्र भागत्यागलक्षणासे ग्रहण करना, इस प्रकार लक्षणासे दोनोंकी एकता होगी अपने अभेदसे इनकी एकताका ज्ञान होनेसे अद्वय होगा यह इसका महाफल है ॥ २३ ॥ वही यह देवदत्त है इस वाक्यसे तत्कालविशिष्ट देवदत्तका इसकाल विशिष्ट देवदत्तसे भेद होनेपरभी वैशिष्ट्यरूप दोनों धर्मके त्यागसे अविरुद्ध व्यक्तिको भागत्यागलक्षणासे ग्रहणकर अभेद किया जाता है इसी कारण लक्षणा ग्रहण की है इस अनुभवसे स्थूलादिभेदरहित हो यह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ पंचीकृतमहाभूतसेही यह स्थूलदेह प्रगट हुआ है, यह भोगका स्थान जरा व्याधि तथा

चिन्मात्रं तु तयोर्लक्ष्यं तयोरैक्यस्यसंभवः ॥ तयोरैक्यं तथा ज्ञात्वा स्वाभेदेनाद्वयो भवेत् ॥ २३ ॥ देवदत्तः स एवायमितिवल्लक्षणा स्मृता ॥ स्थूलादि देहरदितो ब्रह्मासंपद्यते नरः ॥ २४ ॥ पंचीकृतमहाभूतसंभूतः स्थूलदेहकः ॥ भोगालयो जराव्याधिसंयुतः सर्व कर्मणाम् ॥ २५ ॥ मिथ्याभूतोऽयमाभाति स्फुटं मायामयत्वतः ॥ सोऽयं स्थूल उपाधिः स्यादात्मनो मे नगेश्वर ॥ २६ ॥ ज्ञान कर्मेन्द्रिययुतं प्राण पंचकसंयुतम् ॥ मनोबुद्धियुतं चैतत्सूक्ष्यं तत्कवयो विदुः ॥ २७ ॥ अपंचीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः ॥ द्वितीयोऽयमुपाधिः स्यात्सुखादेरवबोधकः॥ २८ ॥ अनाद्यनिर्वाच्यमिदमज्ञानं तु तृतीयकः ॥ देहोऽयमात्मनो भाति कारणात्मा नगेश्वरः ॥ २९ ॥ उपाधिविलये जाते केवलात्माऽवशिष्यते ॥ देहत्रये पंचकोशा अंतःस्थाः संति सर्वदा ॥ ३० ॥ पंचकोशपरित्यागे ब्रह्म पुच्छं हि लभ्यते ॥ नेति नेतीत्यादिवाक्यैर्मम रूपं यदुच्यते ॥ ३१ ॥

सब कर्मोंसे युक्त है ॥ २५ ॥ यह मिथ्या भी है परंतु मायासे सत्यसा दीखता है हे पर्वतराज! यह मेरे आत्माकी स्थूल उपाधि है ॥ २६ ॥ ज्ञानकर्मेंद्रियसे युक्त प्राणपंचकसे संयुक्त तथा मनबुद्धिसे युक्त देह सूक्ष्म उपाधि है ॥ २७ ॥ अपंचीकृत भूतोंसे प्रगट यह आत्माका सूक्ष्म देह है, यह अन्तः--करणकी सुखदुःखादि अवबोधक दूसरी उपाधि है ॥ २८ ॥ हे नगेश्वर! अनादि अनिर्वाच्य अज्ञानयुक्त यह कारणशरीर तीसरा है ॥ २९ ॥ इन स्थूलसूक्ष्मकारण उपाधियोंके लीन होनेमें केवल आत्मा अवशेष रहता है इन तीनों देहोंमें अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनंदमय यह पांच कोश सदा अन्तरस्थित रहते हैं ॥ ३० ॥ इन पंचकोशके त्यागमें 'ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा' ब्रह्ममें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है जो नेति २ इत्यादि वाक्योंसे मेरा रूप कहा जाता है ॥ ३१ ॥

यह ब्रह्म रूप न कभी उत्पन्न होता न मरता, न कभी होनेवाला और न कभी हुआ है यह अज नित्य शाश्वत पुरातन छहों विकारोंसे रहित है शरीरके हन्यमान होनेपरभी मरता नहीं हन्यमान नहीं होता ॥ ३२ ॥ जो मारनेवाला मारा ऐसा जानता है हत हुआ अपनेको हत मानता है यह दोनों ही इसको नहीं जानते कारण कि न यह मरता न मारा जाता है ॥ ३३ ॥ यह अणुसे अणु और महान्‌से महान् आत्मा होकरभी इस प्राणीके हृदयरूपी गुहा वा बुद्धिमें स्थित है इस आत्माकी महिमाको चित्तकी निर्मलता संकल्पविकल्परहित होनेसे जानता है तब वीतशोक होता है ॥ ३४ ॥ आत्मा रथी, शरीर रथ, बुद्धि सारथि, मन लगाम, ॥ ३५ ॥ इंद्रिय घोडे हैं यह विषयरूपी मार्गमें निरंतर गमन करते हैं, आत्मा चिदाभास इंद्रिय मन यह तीन कूटस्थमिलित होकर

न जायते म्रियते तत्कदा चिन्नाऽयं भूत्वा न बभूव कश्चित ॥ अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो नहन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ ३२ ॥ हतं चेन्मन्यते हंतुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ॥ उभौ तौ विजानीतो नाऽयं हंति न हन्यते ॥ ३३ ॥ अणोरणीयान्महतो महीयाना त्माऽस्य जंतोर्निहितो गुहायाम् ॥ तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमस्य ॥ ३४ ॥ आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ॥ बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३५ ॥ इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ॥ आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ३६ ॥ यस्त्वविद्वान्भवति चाऽमनस्कश्च सदाऽशुचिः ॥ न तत्पदमवाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥ ३७ ॥ यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कःसदा शुचिः ॥ स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥ ३८ ॥ विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवा न्नरः ॥ सोऽध्वनः परमाप्नोति मदीयं यत्परं पदम् ॥ ३९ ॥ इत्थं श्रुत्या च मत्या च निश्चित्यात्मानमात्मना ॥ भावयेन्मामात्मरूपां निदिध्या-सनतोऽपि च ॥ ४० ॥ योगवृत्तेः पुरास्वस्मिन्भावयेदक्षरत्रयम् ॥ देवीप्रणवसंज्ञस्य ध्यानार्थं मंत्रवाच्ययोः ॥ ४१ ॥

भोक्ता कहा जाता है ॥३६॥ जो पुरुष अविद्वान् अर्थात् अविवेकी होता है अस्वाधीन अशुचि होता है वह तत्पदको प्राप्त न होकर संसारमें पड़ता है ॥३७॥ और जो विज्ञानवान् स्वाधीन मन सदा पवित्र होता है वह उस पदको प्राप्त होता है जहांसे फिर आना नहीं होता ॥३८॥ जिसका विज्ञान सारथि मनकी लगाम रोके हुए है वह इस संसारके पार हो मेरे परमपदको प्राप्त होता है॥३९॥ इसप्रकार श्रुति बुद्धिद्वारा आत्मासे ही आत्माका निश्चय कर विक्षेपरहित हो साक्षा त्कार होनेसे चित्तकी एकाग्र वृत्तिसे आत्मरूप मेरा ध्यान करे ॥ ४० ॥ इस प्रकार निदिध्यासन अभ्याससे जब चित्तमें समाधिकी योग्यता होजाय तब समाधिसे पहले अपने शरीरमें प्रणवसंज्ञक मायाबीजमंत्रके तीन अक्षरोंका ध्यान करै मंत्रवाच्य मायाबीजमंत्रार्थके समष्टिव्यष्टिके ध्यानार्थ है ॥ ४१ ॥

हकार स्थूलदेह रकार सूक्ष्मदेह ईकार कारणदेहरूप है और मैं जो तुरीयरूप हूं सोई ह्रींकार है ॥ ४२ ॥ जैसे व्यष्टिदेहमें भावना की है इसी प्रकार समष्टि देहमें क्रमसे तीनों बीजोंको जानकर बुद्धिमान् समष्टिव्यष्टि पिंड और ब्रह्माण्डकी एकता ध्यान करें ॥ ४३ ॥ इस प्रकार आदर पूर्वक समाधिसे पहले ध्यानकर नेत्र मूंद मुझ जगदीश्वरीका ध्यान करे ॥ ४४ ॥ नासिकाके आभ्यन्तर फिरनेवाले प्राण अपानको समानकर विषयादिकी आकांक्षासे निवृत्त हुआ दोष और मत्सरतासे रहित ॥ ४५ ॥ छलरहित भक्तिसे युक्त हुआ गुह्य वा शब्दरहित एकांत स्थानमें वैश्वानरात्मक हकारको रकारमें लीन करे अर्थात् हकारवाच्य स्थूल देहको रकार वाच्य सूक्ष्मदेहमें लीन करे ॥ ४६ ॥ रकारवाच्य तैजस अर्थात् सूक्ष्म देहको ईकारवाच्य कारण देहमें लय

हकारः स्थूलदेहःस्याद्रकारः सूक्ष्मदेहकः ॥ ईकारः कारणात्माऽसौ ह्रींकारोऽहं तुरीयकम् ॥ ४२ ॥ एवं समष्टिदेहेऽपि ज्ञात्वा बीजत्रयं क्रमात्॥समष्टिव्यष्ट्योरेकत्वं भावयेन्मतिमान्नरः ॥ ४३ ॥ समाधिकालात्पूर्वं तु भावयित्वैवमादृतः ॥ ततो ध्यायेन्निलीनाक्षो देवीं मां जगदीश्वरीम् ॥ ४४ ॥ प्राणापानौ समौ कृत्वानासाभ्यंतरचारिणौ ॥ निवृत्तविषयाकांक्षो वीतदोषो विमत्सरः ॥ ४५ ॥ भक्त्या निर्व्या जया युक्तो गुहायां निःस्वने स्थले ॥ हकारंविश्वमात्मानं रकारे प्रविलापयेत् ॥ ४६ ॥ रकारं तैजसं देवमीकारे प्रविलापयेत् ॥ ईकारं प्राज्ञमात्मानं ह्रींकारे प्रविलापयेत् ॥ ४७ ॥ वाच्यवाचकताहीनं द्वैतभावविवर्जितम् ॥ अखंडं सच्चिदानंदं भावयेत्तच्छिखांतरे ॥ ४८ ॥ इति ध्यानेन मां राजन्साक्षात्कृत्य नरोत्तमः मद्रूप एव भवति द्वयोरप्येकता यतः ॥ ४९ ॥ योगयुक्त्याऽनया दृष्ट्वा मामात्मानं परा त्परम् ॥ अज्ञानस्य सकार्यस्य तत्क्षणेनाशको भवेत् ॥ ५० ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे देवीगीतायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ हिमालय उवाच ॥ योगं वद महेशानि सांगं संवित्प्रदायकम् ॥ कृतेन येन योग्योऽहं भवेयं तत्त्वदर्शने ॥ १ ॥

करे ईकारवाच्य कारण देहको ह्रींकारवाच्य ब्रह्ममें लय करे ॥ ४७ ॥ जब वाच्य और वाच्यकतासे हीन, द्वैतभावसे वर्जित होजाय तब चैतन्य अग्नि दीप शिखांतरमें अखंड सच्चिदानंदकी भावना करै ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार नरोत्तम ध्यानमें मेरा साक्षात्कार करके मेरा ही रूप हो जाता है कारण कि दोनोंकी एकता सिद्ध है ॥ ४९ ॥ इस प्रकार इस योगयुक्तिसे परात्पर मुझ आत्माको देखते ही अपने कार्यसहित अज्ञान उस समय नष्ट होजाता है ॥ ५० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ हिमालयने कहा हे महेश्वरि ! जिस योगद्वारा ब्रह्मलाभ होता है उस योगका विषय अंगोंसहित वर्णन् करो जिसका अनुष्ठान कर मैं तत्वदर्शनका अधिकारी होऊं ॥ १ ॥

श्रीदेवी बोली आकाश भूमि रसातलादिस्थानोंमें योग नहीं है जीव और आत्माकी अभेद विषयक चित्त वृत्तिको ही योग विशारद योग कहते हैं ॥ २ ॥ हे पापरहित ! काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य यह छः योगके शत्रु हैं जो इसमें विघ्न किया करते हैं ॥ ३ ॥ इस कारण योगियोंको आगे लिखे योगके अंगोंसे योग शत्रुओंको विनाश करके योग प्राप्त करना चाहिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम ॥ ४ ॥ प्रत्याहार, ध्यान और समाधि यह आठ अङ्ग योगियोंको योगमें सहायक कहें ॥ ५ ॥ किसीकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, दया, ऋजुता, क्षमा, धृति, सर्व नाशमें भी धीरता मित भोजन दो भाग अन्नसे पूर्ण करे एक भाग जलसे चौथा भाग वायुके गमनागमनको रक्खे यह अल्पाहार है तथा बाह्य

श्रीदेव्युवाच ॥ न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ नरसातले ॥ ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः ॥ २ ॥ तत्प्रत्यूहाः षडाख्याता योगविघ्न करानघ ॥ कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमात्सर्यसंज्ञकौ ॥ ३ ॥ योगांगैरेव भित्त्वा तान्योगिनो योगमाप्नुयुः ॥ यमं नियम मासनप्राणायामौ ततः परम् ॥ ४ ॥ प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं सार्धं समाधिना ॥ अष्टांगान्याहुरेतानि योगिनां योगसाधने ॥ ५ ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयाऽऽर्जवम् ॥ क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेतियमादश ॥ ६ ॥ तपःसंतोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम् ॥ सिद्धांतश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम् ॥ ७ ॥ दशैते नियमाः प्रोक्तामया पर्वतनायक ॥ पद्मासनं स्वस्तिकं च भद्रं वज्रासनं तथा ॥ ८ ॥ वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपञ्चकम् ॥ ऊर्वोरुपरि विन्यस्यसम्यक्पादतले शुभे ॥ ९ ॥ अंगुष्ठौ च निबध्नीयाद्धस्ता भ्यां व्युत्क्रमात्ततः ॥ पद्मासनमिति प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम् ॥ १० ॥ जानूर्वोरंतरे सम्यक्कृत्वा पादतले शुभे ॥ ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥ ११ ॥

आभ्यन्तरकी शुद्धि करे यह दश यम हैं ॥ ६ ॥ तपस्या, सन्तोष, आस्तिक्य, [वेद देव, द्विज और गुरुमें विश्वास] दान, देवपूजा, सिद्धांत अर्थात् वेदान्त वाक्यका श्रवण, अकार्य करनेमें लज्जा मति (सत्कर्म और सच्छास्त्र विषयक ज्ञान) जप और नित्यहोमादि ॥ ७ ॥ हे पर्वतनायक ! यह मैंने दश नियम कहे हैं पद्मासन, स्वस्तिक, भद्र, वज्रासन ॥ ८ ॥ औ वीरासन यह क्रमसे पांच आसन कहे हैं दोनों पैरोंके तलुए दोनों जंघाओंपर रखकर ॥ ९ ॥ हाथोंको पीठकी ओरसे ले आगे दाहिने हाथसे दहिने चरणका बायेंसे बायें चरणका अँगूठा पकडे यह योगियोंको प्रसन्न करनेवाला पद्मासन कहा है ॥ १० ॥ जानु और ऊरुओंके अन्तर दोनों पैरके तलुए भलीभांति स्थापितकर सरल भावसे सुखपूर्वक बैठनेको स्वस्तिक आसन कहते हैं ॥ ११ ॥

अंडकोशकी शिराके नीचे सीमनके दोनों पार्श्वमें दोनों गुल्फोंको भली प्रकार स्थापित कर दोनों हाथोंसे अंडकोशके अधोभागमें दोनों पैरोंका पाष्णिभाग हाथोंसे दृढ भावसे बांधकर ॥ १२ ॥ बैठनेका नाम योगियोंने भद्रासन कहा है योगी इसका विशेष आदर करते हैं दोनों चरण क्रमसे दोनों ऊरुओंपर रखकर दोनों जानुओंके निम्न भागमें अंगुली रखकर ॥ १३ ॥ दोनों हाथ स्थापन कर बैठनेको वज्रासन कहते हैं योगीजन एक ऊरुके नीचे एक चरण दूसरी ऊरुके नीचे दूसरा पद स्थापनकर ॥ १४ ॥ सरल कायासे जो स्थिति करते हैं इसको वीरासन कहते हैं योगका ज्ञाता प्रथम सोलह वार प्रणव उच्चारण करके इडा अर्थात् बाईं नासिकाद्वारा गुह्य वायुको आकर्षण करे ॥ १५ ॥ फिर जितनी देरमें चौंसठवार प्रणव उच्चारण हो उतने समय तक यह खेंची हुई वायु धारण करके पूरक करे फिर ३२ वार प्रणवोच्चारण कालमें शनैः २ सुषुम्नामध्यगत वायुको ॥ १६ ॥ दक्षिणनासा

सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्य गुल्फयुग्मं सुनिश्चितम् ॥ वृषणाधः पादपार्ष्णी पार्ष्णिभ्यां परिबंधयेत् ॥ १२ ॥ भद्रासनमिति प्रोक्तं योगिभिः परिपूजितम् ॥ ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्यजान्वोः प्रत्यङ्मुखांगुली ॥ १३ ॥ करौ विदध्यादाख्यातं वज्रासन मनुत्तमम् ॥ एकं पादमधः कृत्वा विन्यस्योरुं तथोत्तरे ॥ १४ ॥ ऋजुकायो विशेद्योगी वीरासनमितीरितम् ॥ इडयाऽऽकर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया ॥ १५ ॥ धारयेत्पूरितं योगी चतुःषष्ट्या तु मात्रया ॥ सुषुम्नामध्यगं सम्यग्द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः ॥ १६ ॥ नाड्या पिंगलया चैव रेचयेद्योगवित्तमः ॥ प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः ॥ १७ ॥ भूयोभूयः क्रमात्तस्य बाह्यमेवं समाचरेत् ॥ मात्रावृद्धिः क्रमेणैव सम्यग्द्वादश षोडश ॥ १८ ॥ जपध्यानादिभिः सार्धं सगर्भं त विदुर्बुधाः ॥ तदपेतं विगर्भं च प्राणायामं परे विदुः ॥ १९ ॥ क्रमादभ्यस्यतः पुंसो देहस्वेदोद्गमोऽधमः ॥ मध्यमः कंपसंयुक्तो भूमित्याग परो मतः ॥ २० ॥

पुटद्वारा रेचन करै योग शास्त्रज्ञाता पण्डितोंने इसका नाम प्राणायाम कहा है ॥ १७ ॥ इस प्रकार वारंवार बाह्य वायु ग्रहण करके पूरक कुंभक और रेचकका अभ्यास करे और क्रमानुसार प्रणवोच्चारणकी संख्या बढावे यह प्राणायाम पहले १२ वार पीछे १६ वार और फिर क्रमसे और भी अधिक करै ॥ १८ ॥ सगर्भ और अगर्भ भेदसे प्राणायाम दो प्रकारका है इष्ट मंत्रके जप ध्यानादि पूर्वक जो प्राणायाम किया जाता है वह सगर्भ है और जो प्राणायाम इष्ट मंत्रके जप ध्यानादि विना होता है वह विगर्भ प्राणायाम है ॥ १९ ॥ इस प्रकार क्रमसे प्राणायामका अभ्यास करते देहमें पसीना आनेसे वह प्राणायाम अधम, कम्प उत्पन्न होनेसे मध्यम और जिस प्राणायाममें साधक भूमि त्यागकर ऊंचा उठता है वह उत्तम प्राणायाम है ॥ २० ॥

जबतक उत्तम प्राणायामका फल लाभ न हो तबतब अभ्यास करता रहे इन्द्रिय सदाही अपने २ विषयोंमें अबाधित भावसे विचरण करती हैं ॥ २१ ॥ उनको विषयोंसे बलपूर्वक रोकनेहीका नाम प्रत्याहार है अंगूठा, गुल्फ, जानु, ऊरु, मूलाधार, लिंग, नाभि ॥ २२ ॥ हृदय, ग्रीवा, कंठ, लम्बिका, नासिका, भ्रूमध्य, मस्तक, मूर्धा (ब्रह्मरंध्र) इन द्वादशांत स्थानमें विधिपूर्वक ॥ २३ ॥ प्राणवायुको रोक रखनेका नाम धारणा है, प्रथम ध्यानसे अन्तःकरणको चैतन्यवत् अर्थात आत्मसंस्थ करके ॥ २४ ॥ उसमें अभीष्ट देवताके चिंतनका नाम ध्यान है जीवात्मा और परमात्माकी एकता भावना संप्रज्ञात समाधिको ॥ २५ ॥ मुनियोंने समाधि कहा है यह अष्टांग लक्षणवाला योग तुमसे वर्णन किया अब मन्त्रोंका सिद्धिदायक अति उत्कृष्ट योग तुमसे वर्णन

उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यावच्छीलनमिष्यते ॥ इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निरर्गलम् ॥ २१ ॥ बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारोऽभिधीयते ॥ अंगुष्ठगुल्फजानूरुमूलाधारलिंगनाभिषु ॥ २२ ॥ हृद्ग्रीवाकंण्ठदेशेषु लंबिकायां ततो नसि ॥ भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशांते यथाविधि ॥ २३ ॥ धारणं प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते ॥ समाहितेन मनसा चैतन्यांतरवर्तिना ॥ २४ ॥ आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते ॥ समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः ॥ २५ ॥ समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टांगलक्षणम् ॥ इदानीं कथये तेऽहं मंत्रयोगमनुत्तमम् ॥ २६ ॥ विश्वं शरीरमित्युक्तं पंचभूतात्मकं नग ॥ चंद्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् ॥ २७ ॥ तिस्रः कोटयस्तदर्धेन शरीरे नाडयो मताः ॥ तासु मुख्या दश प्रोक्तास्ताभ्यस्तिस्रो व्यवस्थिताः ॥ २८ ॥ प्रधाना मेरुदंडेऽत्र चंद्रसूर्याग्निरूपिणी ॥ इडा वामे स्थिता नाडी शुभ्रा तु चंद्ररूपिणी ॥ २९ ॥ शक्तिरूपा तु सानाडी साक्षादमृतविग्रहा ॥ दक्षिणे या पिंगलाख्या पुंरूपा सूर्यविग्रहा ॥ ३० ॥ सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्ना वह्निरूपिणी ॥ तस्यामध्ये विचित्राख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मकम् ॥ ३१ ॥

करती हूं ॥ २६ ॥ हे पर्वतराज! पिंड और ब्रह्मांडकी एकता होनेसे यह शरीर विश्व वा ब्रह्मांड कहा जाता है यह पंचभूतात्मक चन्द्र सूर्य और अग्निसे युक्त होकर जीव ब्रह्मके ऐक्यज्ञानदायक होता है ॥ २७ ॥ इस शरीरमें साढे तीन करोड़ नाडी हैं उनमें दश मुख्य हैं और दशमेंभी तीन अतिशय प्रधान हैं ॥ २८ ॥ इनमें भी एक सुषुम्ना नाड़ी प्रधान है चन्द्र सूर्य और अग्निरूपणी इस नाड़ीमें मेरुदण्डके मध्यभागमें स्थित होकर मूलधारसे ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त गमन किया है इसके वामभागमें शुभ्रवर्ण चन्द्र रूपिणी इडा है ॥ २९ ॥ यह शक्तिरूपा अमृतमयी और दक्षिण भागमें पुरुषरूपिणी सूर्य स्वरूपा पिंगला नाडी स्थित है ॥ ३० ॥ वह्निप्रधाना सुषुम्ना नाड़ी सब तेजोमयी है उसके मध्यमें स्थित चित्ररेखानामक नाडीके भीतर इच्छा ज्ञान और क्रियात्मक ॥ ३१ ॥

कोटिसूर्यके समान प्रभावशाली स्वयंभूलिंग प्रतिष्ठित है उसके ऊपर भागमें हरात्मा बिन्दुनाद अर्थात् हकार, रेफ, ईकार बिंदुनादात्मक मायाबीज स्थित है ॥ ३२ ॥ उसके ऊपरी भागमें दीपशिखाके समान लालवर्ण देवीरूपिणी कुंडलिनी शक्ति विराजमानहै हे नागेश्वर! यह मुझसे अभिन्नहै ॥ ३३ ॥ इसके बहिर्भागमें पीतवर्ण सुवर्णके समान कांतिवाले कमलकी चिंता करे उससे रचा दलोंमें श, ष, स ह यह चार अक्षर ध्यान करे ॥ ३४॥ इसके ऊपर षट्कोण कमलका ध्यान करे जो अग्निके समान छः दलोंसे युक्त हीरेकेसे कांतिवाला है इसके छहों दल, ब, भ, म, य, र, ल, इन अक्षरोंसे सम्पन्न हैं स्वर शब्दसे पर लिंग जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ यह षट्कोण मूलके आधारवाला है इसीसे इसको मूलाधार कहते हैं स्वशब्दसे पर लिङ्ग और स्वाधिष्ठान जानना चाहिये यही स्वाधिष्ठान

मध्ये स्वयंभूलिंगं तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥ तदूर्ध्वं मायाबीजं तु हरात्मा बिंदुनादकम् ॥ ३२ ॥ तदूर्ध्वं तु शिखाकारा कुंडली रक्तविग्रहा ॥ देव्यात्मिका तु सा प्रोक्ता मदभिन्ना नगाधिप ॥ ३३ ॥ तद्बाह्ये हेमरूपाभंबादिसांतचतुर्दलम् ॥ द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं तत्र विचिंतयेत् ॥ ३४ ॥ तदूर्ध्वं त्वनलप्रख्यं षड्दलं हीरकप्रभम् ॥ बादिलांतषड्वर्णेनस्वाधिष्ठानमनुत्तमम् ॥ ३५ ॥ मूलमाधारषट्कोणं मूलाधारं ततो विदुः ॥ स्वशब्देन परं लिंगं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः ॥ ३६ ॥ तदूर्ध्वं नाभिदेशे तु मणिपूरं महाप्रभम् ॥ मेघाभं विद्युदाभं च बहुतेजोमयं ततः॥ ३७ ॥ मणिवद्भिन्नं तत्पद्मं मणिपद्मं तथोच्यते॥दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफांताक्षरान्वितम्॥ ३८ ॥ विष्णुनाऽधिष्ठितं पद्मं विष्ण्वालोकनकारणम् ॥ तदूर्ध्वेऽनाहतं पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम् ॥ ३९ ॥ कादिठांतदलैरेकं पत्रैश्च समधिष्ठितम ॥ तन्मध्ये बाणलिंगं तु सूर्यायुतसमप्रभम् ॥ ४० ॥ शब्दब्रह्ममयं शब्दनाहतं तत्र दृश्यते ॥ अनाहताख्यं तत्पद्मं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥ आनंदसदनं तत्तु पुरुषाधिष्ठितं परम् ॥ तदूर्ध्वं तुविशुद्धाख्यं दलं षोडशपंकजम् ॥ ४२ ॥

पद्म है ॥ ३६ ॥ इसके ऊपर नाभिस्थानमें विद्युत् छटा और मेघके समान कांतिमान् अति तेजयुक्त महाप्रभावाला मणिपूर ॥ ३७॥ मणिवत्प्रभावाला होनेसे मणिपद्म कहाता है उसमें दशदल ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, यह अक्षरयुक्त हैं ॥ ३८ ॥ यह पद्म विष्णुसे अधिष्ठित होनेसे इसके ध्यानसे विष्णुका साक्षात्कार होता है इसके ऊर्ध्व भागमें बालसूर्यके समान प्रभायुक्त अनाहत पद्म है॥३९॥ यह क, ख, ग, घ, ङ, च छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, इन बारह वर्णोंयुक्त बारहदल सम्पन्न है इसके मध्यमें अयुत, १०००० सूर्यके समान प्रभा सम्पन्न बाणलिंग विराजमान है ॥ ४० ॥ किसी प्रकारकी ताडनाके विनाही इससे शब्द ब्रह्मकी उत्पति होती है इसीसे मुनिजन इसको अनाहत पद्म कहते हैं ॥ ४१ ॥ यह पद्म आनंदका धाम है इसमें रुद्ररूपी पुरुष विराजते हैं इसके ऊपर

भुविशुद्धनामक षोडश दल कमल ॥४२॥ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः इन सोलह स्वरोंसे युक्त धूम्रवर्ण महाकांतिमान् है पर मात्माके अवलोकनसे इसमें जीवशुद्ध होता है अर्थात् दोनोंका अभेद साक्षात्कार होनेसे जीव विशुद्धिको प्राप्त होता है ॥४३॥ इसी कारण इसको विशुद्ध पद्म कहते हैं यह अद्भुत पद्म आकाशनामसे अभिहित है इसके ऊपर भ्रूमध्यमें आत्माका परम अधिष्ठान आज्ञाचक्र है ॥४४॥ यह ह और क्ष दो दलसे युक्त मनोहर है इसमें चित्त स्थित होनेसे सब पदार्थोंका साक्षात्कार हो आता है, भूत भविष्य वर्तमान वस्तुओंमें यह तुम्हारा कर्त्तव्य है इसप्रकार परमेश्वरकी आज्ञाका संक्रमण होता है इसीसे इसको आज्ञापद्म कहते हैं ॥४५॥ इसके ऊर्ध्वमें कलासचक्र और उसके ऊर्ध्वमें रोधिनीचक्र हैं हे सुव्रत ! इस प्रकार आपके निकट आधार चक्रोंका वर्णन किया ॥४६॥ योगियोंका कथन है उसके ऊर्ध्वमें सहस्रारचक्र है यह बिंदु अर्थात् परमात्माका स्थान है यह आपसे सम्पूर्ण योगमार्ग वर्णन किया॥४७॥

स्वरैः षोडशभिर्युक्तं धूम्रवर्णमहाप्रभम् ॥ विशुद्धं तनुते यस्माज्जीवस्य हंसलोकनात् ॥ ४३ ॥ विशुद्धं पद्ममाख्यानमाकाशाख्यं महाद्भुतम् ॥ आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वे तु आत्मनाऽधिष्ठितं परम् ॥ ४४ ॥ आज्ञासंक्रमणं तत्र तेनाज्ञेति प्रकीर्तितम् ॥ द्विदलं हक्षसंयुक्तं पद्मं तत्सुमनोहरम् ॥ ॥४५ ॥ कैलासाख्यंतदूर्ध्वं तु रोधिनी तु तदूर्ध्वतः ॥ एवं त्वाधारचक्राणि प्रोक्तानि तव सुव्रत ॥ ४६ ॥ सहस्रारयुतं बिंदुस्थानं तदूर्ध्वमीरितम् ॥ इत्येतत्कथितं सर्वं योगमार्गमनुत्तमम् ॥ ४७ ॥ आदौ पूरकयोगेनाप्याधारे योजयेन्मनः ॥ गुदमेढ्रांतरे शक्तिस्तामाकुंच्य प्रबोधयेत् ॥ ४८ ॥ लिंगभेदक्रमेणैव बिंदुचक्रं च प्रापयेत् ॥ शंभुना तां पराशक्तिमेकीभूतां विचिंतयेत् ॥ ४९ ॥ तत्रोत्थितामृतं यत्तु द्रुतलाक्षारसोपमम् ॥ पाययित्वा तु तां शक्तिं मायाख्यां योगसिद्धिदम् ॥ ५० ॥ षट्चक्रदेवतास्तत्र संतर्प्यामृतधारया ॥ आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारंततः सुधीः ॥ ५१ ॥

यह जानकर जो करना चाहिये सोई कहती हूं, पहले पूरक प्राणायाम द्वारा आधारचक्रमें मन संयुक्त करे, गुदा और मेढ्रके भीतर मलाधारमें विराजमान कुंडलीनी शक्तिको मूलधारमें प्राप्त वायुद्वारा आकुंचित करके प्रबोधित करे ॥ ४८ ॥ अनंतर लिंगभेदक्रमसे अर्थात् पूर्वोक्त चक्रस्थित तेजमय स्वयंभू इत्यादि लिंगका भेदकर उस उस मार्गमें उस कुंडलिनी शक्तिको सहस्रार स्थानमें लावे फिर उस परमशक्तिको सहस्रारमें स्थित शंभुके सहित एकीभूत रूपसे चिन्तन करे ॥ ४९ ॥ अनंतर शिवशक्तिके संगमसे लाक्षारसके समान जो अमृत निर्गत होता है उसी आनंदस्वरूप अमृतसे योगसिद्धिकरी मायानामिनी कुंडलिनी शक्तिको तृप्त करे ॥५०॥ और छहों चक्रोंमें स्थित देवसमूहोंको उस अमृत धाराद्वारा तृप्त करके पूर्वोक्त मार्गसे उस शक्तिको मूल धारा पद्ममें लावै ॥ ५१ ॥

जो प्रतिदिन इस प्रकार योगका अभ्यास करते हैं उनके सम्बन्धमें छिन्नादिदोष दूषित सब मंत्र सिद्ध होते हैं इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ५२ ॥ और इसीसे जरामरणादि दुःखवाले संसारबंधनसे मुक्त होता है और मुझ जगन्मातामें जो सब गुण विद्यमान हैं ॥ ५३ ॥ ऐसे साधकको वह समस्त गुण प्राप्त होते हैं इसमें संदेह नहीं हे तात ! यह तुमसे अति उत्तम वायुधारणयोग कथन किया॥५४॥अब सावधान होकर चित्तधारणाख्ययोग सुनो दिक् काल और देशादिद्वाराअपरिच्छिन्न देवमूर्तिमें चित्तको स्थिरकर सकनेसे ॥ ५५ ॥ तन्मय होनेसे शीघ्रही जीवब्रह्मकी एकताका ज्ञान होता है उस समय साधक ब्रह्ममय हो जाता है और यदि चित्त रज तम द्वारमालीन हो तो शीघ्र योगसिद्धि नहीं होती ॥५६॥ तब योगी अवयव योगसे योगाभ्यास करे अर्थात् मेरे हस्तपादादि किसी मनोहर अङ्गमें

एवमभ्यस्यमानस्याऽप्यहन्यहनि निश्चितम् ॥ पूर्वोक्तदूषिता मन्त्राः सर्वे सिध्यंति नान्यथा ॥ ५२ ॥ जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबंधनात् ॥ ये गुणाः संति देव्या मे जगन्मातुर्यथा तथा ॥ ५३ ॥ ते गुणाः साधकवरे भवंत्येव न चान्यथा ॥ इत्येवं कथितं तात वायुधारणमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ इदानीं धारणाख्यं तु शृणुष्वावहितो मम ॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्न देव्यां चेतो विधाय च ॥ ५५ ॥ तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवब्रह्मैक्ययोजनात ॥ अथवा समलं चेतो यदि क्षिप्रं न सिद्धयति ॥ ५६ ॥ तदाऽवयव योगेन योगीयोगान्समभ्यसेत् ॥ मदीयहस्तपादादावंगे तु मधुरे नग ॥ ५७ ॥ चित्तं संस्थापयेन्मन्त्री स्थानस्थानजयात्पुनः ॥ विशुद्धचित्तः सर्वस्मिन्रूपे संस्थापयेन्मनः ॥५८॥ यावन्मनो लयं याति देव्यां संविदि पर्वत ॥ तावदिष्टमनुं मन्त्री जपहोमैः समभ्यसेत ॥ ५९ ॥ मंत्राभ्यासेन योगेनज्ञेयज्ञानाय कल्पते ॥ न योगेन विना मंत्रो न मंत्रेण विना हि सः ॥ ६० ॥ द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मसंसिद्धिकारणम् ॥ तमःपरिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते ॥ ६१ ॥

॥५७॥ चित्तको लगाय एकएक स्थानको जय करता हुआ, चित्तकी शुद्धता होनेसे मेरे सब स्वरूपमें मनको स्थापनकरे ॥ ५८ ॥ हे नगेन्द्र ! जबतक मुझ ब्रह्मरूपिणीमें चित्तका लय न हो तबतक मंत्रयोगपरायण साधक जप और होमके द्वारा इष्टमंत्रसाधनक अभ्यास करे ॥ ५९ ॥ मन्त्राभ्यास योगद्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है योगके विना मंत्रसिद्धि नहीं होती और मंत्रके विना योग सिद्ध नहीं होता मंत्र और योग दोनोंका अभ्यास ही ब्रह्मज्ञानका कारण है ॥ ६० ॥ घरमें रक्खा हुआ अंधकारसे आच्छन्न घड़ा जिस प्रकार दीपकसे दिखाई देता है इसी प्रकार मायासे आवृत जीवात्माभी मंत्रद्वारा प्रकाशित होता है अर्थात् मंत्र माया अंधकारको दूर करके आत्माका स्वरूप प्रकाश कर देताहै ॥ ६१ ॥

हे पर्वतराज! यह मैंने तुम्हारे समीप अंगके सहित सब योग विधिका वर्णन किया ॥ ६२ ॥ यह विद्या गुरुके निकट उपदेश प्राप्त करकेही जानी जाती है अन्यथा कोटिशास्त्रद्वारा भी इसका लाभ नहीं हो सकता है ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ श्रीदेवी बोलीं हे गिरिराज! योगीजन इस प्रकार योगयुक्त हो आसनमें बैठ छलरहित भक्तिसे मुझ ब्रह्मरूपिणीका ध्यान करे ॥ १ ॥ अब ब्रह्मस्वरूपका वर्णन करती हूं सुनो यह ब्रह्म आवि अर्थात् प्रकाशमान वस्तु अति समीपवर्ती और गुहाचर अर्थात् सर्वव्यापक होकर भी केवल बुद्धिरूप गुहामेंही इसकी प्राप्ति होती है यह योगादि साधन गम्य है इस ब्रह्मसेही आकाशादि समस्त पदार्थ कल्पित होते हैं इसमें पक्षी मनुष्य निमेषादि क्रियावान् सब पदार्थ स्थापित हैं ॥ २ ॥ हे देवताओ! मेरे इस ब्रह्मरूपको जानो जो माया और जगत् इन दोनोंसे श्रेष्ठ है लोकमें ज्ञानातीत और वरिष्ठ अर्थात् संपूर्ण बुद्धियोंको भी गम्य नहीं है सूर्यादितेजका

एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः ॥ इति योगविधिः कृत्स्नः सांगः प्रोक्तो मयाऽधुना ॥ ६२ ॥ गुरूपदेशतो ज्ञेयो नान्यथा शास्त्रकोटिभिः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ देव्युवाच ॥ इत्यादिवियोगयुक्तात्मा ध्यायेन्मां ब्रह्मरूपिणीम् ॥ भक्त्या निर्व्याजय राजन्नासने समुपस्थितः ॥ १ ॥ आविः सन्निहितं गुहाचरं नाम महत्पदम् ॥ अत्रैतत्सर्वं मर्पितमेजत्प्राणन्निमिषच्च यत् ॥ २ ॥ एतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥ यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च ॥ ३ ॥ तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः ॥ तदेतत्सत्यममृतं तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि ॥ ४ ॥ धनुर्गृहीत्वौपनिपदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत ॥ आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि ॥ ५ ॥ प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते ॥ अप्रम त्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥६॥

भी प्रकाश है इससे वह सूर्यादितेजसे भी अत्यंत दीप्तिमान् और अणुसे भी अणु अर्थात् अतिसूक्ष्म है जिसमें भूरादि लोक और उन लोकनिवासियोंकी स्थिति है ॥ ३ ॥ वह अक्षर अविनाशी पदार्थ ही ब्रह्म है यही प्राण, वाणी और मन स्वरूप है वही सत्य और अमृत स्वरूप है हे सौम्य ! मनरूपी बाणसे उसको विद्धकरना चाहिये अर्थात् उसमें मन समाधान करे ॥ ४ ॥ हे सौम्य! उसके विद्ध करनेका उपाय कहती हूं उपनिषदशास्त्र रूपी महाधनुष ग्रहणकर उसमें ध्यान और उपासनाका तीक्ष्ण बाण संधान और सब इंद्रियोंको अपने अपने विषयसे खैंचकर तद्गत चित्तसे उस ब्रह्मरूप लक्ष्यको विद्ध करे ॥ ५ ॥ जिस धनुआदिका विषय कहा है वह भलीभांति वर्णन करती हूं इस ब्रह्मरूप लक्ष्यवेधमें ॐकार वा देवी प्रणवही धनु है जिस प्रकार लक्ष्यमें बाणप्रवेशका कारण धनुष ही

है इसी प्रकार चित्तरूपी लक्ष्यमें प्रवेशसम्बन्धका प्रणव ही कारण है प्रणवका अभ्यास करते२ उससे संस्कृत हो प्रणवको अवलम्बनपूर्वक अप्रतिबद्ध भावसे ब्रह्ममें स्थिति की जाती है, इसमें आत्मा अर्थात् अन्तःकरणही शर है जिस कारण शर लक्ष्यको विद्ध करता है इसी प्रकार अन्तःकरणही आत्माको विद्ध करताहै इसी प्रकार अन्तःकरणको शर कहा गया है इस स्थलमें ब्रह्मही लक्ष्यवस्तु है साधक अप्रमत्त चित्तसे इस लक्ष्यको विद्ध करै तो बाण जिस प्रकार लक्ष्यभेद करके उसके संग एकात्मताको प्राप्त होता है इसी प्रकार साधकभी ब्रह्मके संग एकात्मताको प्राप्त हो सकते हैं ॥ ६ ॥ वह ब्रह्मपदार्थ अतिदुर्लक्ष्य वस्तु है इससे भलीभांति लक्ष्य करनेको फिर कहा जाता है, जिसमें स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, सब इंद्रियें और प्राणोंके सहितमन स्थित है उसीको आत्मा जानना चाहिये हे देवताओ ! इसको जानकर अन्य अपर विद्यारूप वाक्योंका त्याग करे यह ब्रह्मज्ञान ही मुक्तिका सेतु अर्थात् संसार सागरसे तारनेका हेतु है ॥७॥ जिस प्रकार रथकी नाभिमें सब आरे मिलकर सन्नि विष्ट रहते हैं इसी प्रकार जिस हृदयमें नाडियें प्रविष्ट हुई हैं उसी हृदयमें बुद्धिवृत्तिका साक्षीरूप आत्मा बुद्धिवृत्तिके द्वारा अनेक रूपयुक्त

यस्मिन्द्यौश्च पृथिवी चांतरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ॥ तमेवैकं जानथात्मानमन्या वाचो विमुंचथामृतस्यैष सेतुः ॥ ७ ॥ अरा इवरथ नाभौ संहता यत्र नाड्यः ॥ स एषोऽतश्चरते बहुधा जायमानः ॥ ८ ॥ ओमित्येवं ध्यायथात्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः पर स्तात् ॥ दिव्ये ब्रह्मपुरे व्योम्नि आत्मा संप्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥ मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय ॥ तद्विज्ञानेन परिपश्यंति धीरा आनंदरूपममृतं यद्विभाति ॥१०॥ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ११ ॥

होकर स्थिति करता है ॥८॥ ॐकारका अवलम्बन कर यथोक्त प्रकारसे उसी आत्माकी चिंता करनी चाहिये संसार सागरके पार जानेकी प्राप्तिमें तुम निर्विघ्न हो यह भगवतीका आशीर्वाद है तुम अविद्यारहित ब्रह्मस्वरूपको अवगत हो वह ब्रह्म जिस स्थानमें प्रतिष्ठित है सुनो जो सर्वज्ञ सर्ववित और जिसके जगत्सृष्टि आदि रूपकी विभूति पृथ्वीमें प्रसिद्ध है वह प्रकाशशाली आत्मा दिव्य हृदय कमलमें प्रतिष्ठित होनेसे प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ उस आत्माकी मनोवृत्ति द्वारा भावना होती है इसी कारण उसको मनोमय कहते हैं यही प्राण और शरीरका नेता यही अन्नमय हृदयपिण्डमें बुद्धिको स्थिर कर प्रतिष्ठित है विवेकी पुरुष इसको भलीभांति जान सकते हैं वह आनंद रूप दुःख से परे है अविनाशी रूपसे प्रकाशित होता है ॥१०॥ आत्मज्ञानका फल कहती हैं उस परमात्माका सक्षात्कार होनेसे हृदयग्रंथि अर्थात् चैतन्य और अहंकारका तादात्म्यभाव नष्ट हो जाता है समस्त ज्ञेयवस्तु विषयक संदेह दूर हो जाता है प्रारब्ध के अतिरिक्त सब कर्म नष्ट हो जाते हैं जब उस परात्परका साक्षात्कार होता है ॥ ११ ॥

फिर पूर्वोक्त विषयको संक्षेपसे कहती हूं यह ब्रह्म ज्योतिर्मय परकोश अर्थात् आनंदमय कोशमें प्रतिष्ठित है यह सत्वादि तीनों गुण रहित निष्फल (मायारहित) स्वच्छ वस्तु है यह सर्वप्रकाशक सूर्यादिका भी प्रकाशक है आत्मवित् जिसको बड़े परिश्रमसे जानते हैं वह हिरण्यमय परकोशमें स्थित है ॥१२॥ उस ब्रह्मको सूर्य प्रकाश नहीं कर सकते चन्द्र तारा बिजली वा अग्नि भी उसके प्रकाश करनेमें समर्थ नहीं बहुत क्या यह सम्पूर्ण जगत् उस स्वप्रकाश आत्मासे ही प्रकाशित होता है उससे ही यह सब प्रकाशित है ॥ १३ ॥ यह अमृतमय ब्रह्म ही आगे पीछे दक्षिण उत्तर नीचे और ऊपर भागमें स्थित है अधिक क्या इस सब जगत् कोही ब्रह्मय जानना चाहिये ॥१४॥ हे गिरिराज! जो पुरुष श्रेष्ठ इस प्रकार अनुभव कर सकते हैं वही कृतार्थ हैं वह ब्रह्मस्वरूप प्रसन्नस्वभाव होकर शोक और

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ॥ तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥ न तत्र सूर्यो ॥ १२ ॥ भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः ॥ तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १३ ॥ ब्रह्मैवेदमपुरस्ताद्ब्रह्म दक्षिणतश्चो त्तरेण ॥ अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वं वरिष्ठम् ॥ १४ ॥ एतादृगनुभवो यस्य स कृतार्थो नरोत्तमः ॥ ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ॥ १५ ॥ द्वितीयाद्वै भयं राजंस्तदभावाद्बिभेति न ॥ न तद्वियोगो मेऽप्यस्ति मद्वियोगोऽपि तस्य न ॥ १६ ॥ अहमेव स सोऽहं वै निश्चितं विद्धि पर्वत ॥ मद्दर्शनं तु तत्र स्याद्यत्र ज्ञानी स्थितो मम ॥ १७ ॥ नाहं तीर्थे न कैलासे वैकुंठे वा न कर्हिचित ॥ वसामि किंतु मज्ज्ञानिहृदयांभोजमध्यमे ॥ १८ ॥ मत्पूजाकोटिफलदं सकृन्मज्ज्ञानिनोऽर्चनम् ॥ कुलं पवित्रं तस्यास्ति जननी कृतकृत्यका ॥ १९ ॥

विषयकी कांक्षा रहित होते हैं॥ १५॥ हे गिरिराज! द्वैतभावही भयका कारण है द्वैतभाव दूर होनेसे फिर संसारभय नहीं रहता मैं अद्वैतभावनिष्ठसे वियुक्त नहीं हूं और वह मुझसे पृथक् नहीं है ॥ १६ ॥ हे पर्वतराज! यह निश्चय जानो, वह ज्ञानी व्यक्ति मैं हूं, जो मैं हूं सो वह ज्ञानी है, जिस किसी स्थानमें ज्ञानी क्यों न रहे उसी स्थानमें उसको मेरा दर्शन प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ मैं तीर्थ कैलास और वैकुण्ठमें निवास नहीं करती परंतु जो ज्ञानी मुझमें परायण हैं उसीके हृदय कमलमें वास करती हूं ॥ १८ ॥ जो कोई मुझमें निष्ठावाले ज्ञानीकी एकवार पूजा करता है उसको मेरी पूजाका कोटिगुणफल होता है, जिसका चित्त चैतन्य स्वरूप ब्रह्ममें लीन हुआ है उसका वंश पवित्र है उसकी माता कृतकृत्य ॥ १९ ॥

और उस पुरुषसे पृथ्वी पुण्यशालिनी होती है हेपर्वतराज ! आपने जो मुझसे ब्रह्मज्ञानका विषय पूँछा ॥ २० ॥ वह मैंने सब कह दिया इस विषयमें अब कुछ कहना नहीं है यह ज्येष्ठपुत्र भक्तिमान् शीलसम्पन्न ॥२१॥ यथोक्त शिष्यसे कहना अन्यसे नहीं कहना जिसकी इष्टदेवमें पराभक्ति होती है और देवता के समान गुरुमें भक्ति होती है ॥ २२ ॥ उसीके निमित्त श्रेष्ठ पुरुष यह ब्रह्मविद्या प्रकाश करते हैं अर्थात् उसी महात्माको यह विद्या प्रकाशितहोती है जो इस ब्रह्मविद्याका उपदेश करते हैं वह साक्षात् परमेश्वरस्वरूप हैं ॥ २३ ॥ इस विद्याको प्राप्त होकर शिष्य प्रत्युपकारमें असमर्थ होता है इससे जीवनपर्यन्त गुरुके समीप ऋणी रहता है, जो ब्रह्मरूपमें युक्त रहते हैं वह ब्रह्मजन्मदाता गुरु मातापित सेभी अधिक पूज्य हैं ॥ २४ ॥ पितासे प्रगट होकर जन्म मरण होनेसे नष्ट होते हैं परन्तु ब्रह्मरूप जन्मसे फिर कभी नष्ट नहीं होता, हे पर्वतराज ! " तस्मै न द्रुह्येत्कृतमस्य जानन् " इस श्रुतिने कहा है कि ब्रह्मदाता गुरुका कार्य स्मरणकर

विश्वंभरा पुण्यवती चिह्वयो यस्य चेतसः ॥ ब्रह्मज्ञानं तु यत्पृष्टं त्वया पर्वतसत्तम ॥ २० ॥ कथितं तन्मया सर्वं नातो वक्तव्यमस्ति हि ॥ इदं ज्येष्ठाय पुत्राय भक्तियुक्ताय शीलिने ॥ २१ ॥ शिष्याय च यथोक्तायवक्तव्यं नान्यथा क्वचित् ॥ यस्य देवे परा भक्ति र्यथा देवे तथा गुरौ ॥ २२ ॥ तस्यैते कथिताः ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥ येनोपदिष्टाविद्येयं स एव परमेश्वरः ॥ २३ ॥ यस्यायं सुकृतं कर्तुमसमर्थस्ततो ऋणी ॥ पित्रोरप्यधिकः प्रोक्तो ब्रह्मजन्मप्रदायकः ॥ २४ ॥ पितृजातं जन्म नष्टं नेत्थं जातं कदाचन ॥ तस्मै न द्रुह्येदित्यादिनिगमोऽप्यवदन्नग ॥ २५ ॥ तस्माच्छास्त्रस्य सिद्धांतो ब्रह्मदाताग़ुरुःपरः ॥ शिवे रुष्टे गुरु स्त्राता गुरौ रुष्टे न शंकरः ॥ २६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं तोषयेन्नग ॥ कायेन मनसा वाचा सर्वदा तत्परो भवेत् ॥ २७ ॥ अन्यथा तु कृतघ्नः स्या त्कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ इंद्रेणाथर्वणायोक्ता शिरश्छेदप्रतिज्ञया ॥ २८ ॥

कभी उससे द्रोह न करे ॥ २५ ॥ इस कारण शास्त्रके सिद्धान्तानुसार ब्रह्मदाता गुरु सबसे श्रेष्ठ है ! शिवके रुष्ट होनेपर गुरु रक्षक हो सकता है पर गुरुके रुष्ट होनेपर शिव कभी उसकी रक्षा नहीं करते ॥ २६ ॥ हे पर्वतराज ! इस कारण कार्य मन वचनसे सर्वदा यत्नपूर्वक श्रीगुरुको सन्तुष्ट करे ॥ २७ ॥ अन्यथा वह कृतघ्नी होगा और कृतघ्न पुरुषकी निष्कृति नहीं होती गुरुके वचन उल्लंघन करनेसे क्या दशा होती है सो कहते हैं दध्यंनामक आथर्वण मुनिने इन्द्रसे प्रार्थना की कि आप मुझे ब्रह्म विद्या दीजिये इन्द्रने कहा विद्या तो दूंगा पर यदि आप अन्य किसीको यह विद्या दोगे तो मैं तुम्हारा मस्तक छेदन करूंगा उनके स्वीकार करनेपर इन्द्रने ब्रह्मविद्या दी ॥ २८ ॥

तब कुछ काल उपरांत दोनों अश्विनीकुमारोंने मुनिके पास आय विद्याकी प्रार्थना की मुनिने कहा विद्या देनेसे मेरा मस्तक छेदन करेगा तब अश्विनीकुमार बोले हम आपका यह मस्तक छेदनकर आपके देहमें अश्वका मस्तक लगाये देते हैं उस मस्तकसे आप हमको विद्या उपदेश कीजिये, जब इंद्र आपका मस्तक छेदन करेगा तब हम आपका पूर्वशिर संयुक्त करदेंगे मुनिने सम्मत हो उनको ब्रह्म विद्याका उपदेश किया तब इंद्रने आकर उनका वह मस्तक छेदन किया तब अश्विनीकुमारोंने ॥२९॥ उनका मुख्य शिर जोडकर फिर उनके मुख्य शिरसे ब्रह्मविद्या सुनी यह कथा श्रुतिसिद्ध है इस प्रकार संकटसे प्राप्त होनेवाली विद्याको जिसने प्राप्त किया. हे पर्वतराज! वह धन्य और कृतकृत्य हैं ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां षट्त्रिंशो

अश्विभ्यां कथनेतस्य शिरश्छिन्नं च वज्रिणा ॥ अश्वीयं तच्छिरो नष्टं दृष्ट्वा वैद्यौ सुरोत्तमौ ॥ २९ ॥ पुनः संयोजितं स्वीयं ताभ्यां मुनि शिरस्तदा ॥ इति संकटसंपाद्याब्रह्मविद्या नगाधिप ॥ लब्धा येन स धन्यः स्यात्कृतकृत्यश्च भूधर ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे देवीगीतायांषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ हिमालय उवाच ॥ स्वीयां भक्तिं वदस्वांब येन ज्ञानं सुखेन हि ॥ जायेत मनुजस्यास्य मध्यमस्याविरागिणः ॥ १ ॥ देव्युवाच ॥ मार्गास्त्रयो मे विख्याता मोक्षप्राप्तौ नगाधिप ॥ कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च सत्तम ॥ २ ॥ त्रयाणामप्ययंयोग्यः कर्तुं शक्योऽस्ति सर्वथा ॥ सुलभत्वान्मानसत्वात्कायचित्ताद्यपीडनात् ॥ ३ ॥ गुणभेदान्मनुष्याणां सा भक्तिस्त्रिविधामता ॥परपीडां समुद्दिश्य दंभं कृत्वा पुरःसरम् ॥ ४ ॥ मात्सर्यक्रोधयुक्तो यस्तस्य भक्तिस्तु तामसी ॥ परपीडादिरहितः स्वकल्याणार्थमेवच ॥ ५ ॥

ऽध्यायः ॥ ३६ ॥ हिमालय बोले हे मातः! अधिरागी मध्यम अधिकारी पुरुषको जिस प्रकार सुख पूर्वक ज्ञानलाभ हो सके इस समय आप वही अपना भक्तियोग कहो ॥ १ ॥ देवीने कहा हे नगेंद्र! मुक्ति प्राप्तिके निमित्त तीन मार्ग हैं कर्मयोग ज्ञानयोग और भक्ति योग ॥ २ ॥ इन तीनोंमें भक्तियोग ही सहजमें सिद्ध होता है कारण कि,यह योग द्रव्यव्यय और शरीरकी पीडाके विना केवल मनकी वृत्तिसेही संपादित होता है, इससे सुलभ है ॥३॥ सत्व, रज, तम तीन प्रकारके गुणभेदसे मनुष्यकी भक्ति सात्विकी राजसी और तामसी ऐसी तीन प्रकारकी होती है जो दम्भप्रकाशपूर्वक दूसरेको पीडा देनेके निमित्त ॥ ४ ॥ मात्सर्य और क्रोधादियुक्त होकर उपासना करता है उसकी तामसी भक्ति है और जो परपीडादिसे रहित हो अपने कल्याणके निमित्त ही ॥ ५ ॥

सकाम भावसे यश और भोगमें लोलुप हो अतिभक्तिसे उस उस फल प्राप्तिके निमित्त अत्यन्त भक्तिसे उपासना करते हैं ॥ ६ ॥ और अपनी अज्ञतासे हुई भेद बुद्धिद्वारा मुझे अपनेसे अन्य जानते हैं हे नगाधिप ! उस पामरकी भक्ति राजसी है ॥ ७ ॥ परमात्माको अर्पण किये कर्महो पापनाश करनेमें समर्थ होते हैं वह वेदोक्त कर्म दिन रात मुझे अवश्य कर्तव्य है ॥८॥ इस प्रकार निश्चय कर जो भेदबुद्धि से मेरी प्रसन्नताके निमित्त नित्यकर्मानुष्ठान करता है हे पर्वतराज ! उस की सात्विकी भक्ति है ॥९॥ यह सात्विकी भक्ति परम प्रेमरूपा और परम भक्तिकी प्रापिका है किंतु यह स्वयंही परा भक्ति नहीं है कारण कि, इसमें भेदबुद्धि वर्तमान रहती है परन्तु राजसी और तामसी भक्ति परमभक्तिकी प्रापिका नहीं इससे तामसी और राजसी भक्तिका त्याग करके इसकाही आश्रय करे ॥१०॥

नित्यं सकामो हृदयं यशोर्थी भोगलोलुपः ॥ तत्तत्फलसमावाप्त्यै मामुपास्तेऽतिभक्तितः ॥ ६ ॥ भेदबुद्ध्या तु मां स्वस्मादन्यां जानाति पामरः ॥ तस्य भक्ति समाख्याता नगाधिप तु राजसी ॥ ७ ॥ परमेशार्पणं कर्म पापसंक्षालनाय च ॥ वेदोक्तत्वादवश्यं तत्कर्तव्यं तु मयाऽनिशम् ॥ ८ ॥ इति निश्चितबुद्धिस्तु भेदबुद्धिमुपाश्रितः ॥ करोति प्रीतये कर्म भक्तिः सा नग सात्त्विकी ॥ ९ ॥ पर भक्तेः प्रापिकेयं भेदबुद्ध्यवलंबनात् ॥ पूर्वप्रोक्ते ह्युभे भक्ती न परप्रापिके मते ॥१०॥ अधुना परभक्तिं तु प्रोच्यमानां निबोध मे ॥ मद्गुणश्रवणं नित्यं मम नामानुकीर्तनम् ॥ ११ ॥ कल्याणगुणरत्नानामाकरायां मयि स्थिरम् ॥ चेतसो वर्तनं चैव तैलधारासमंसदा ॥ १२ ॥ हेतुस्तु तत्र को वाऽपि न कदाचिद्भवेदपि ॥ सामीप्यसार्ष्टिसायुज्यसालोक्यानां न चैषणा ॥ १३ ॥ मत्सेवातोऽधिकं किंचि न्नैव जानाति कर्हिचित् ॥ सेव्यसेवकताभावात्तत्र मोक्षं न वांछति ॥ १४ ॥ परानुरक्त्यामामेव चिंतयेद्यो ह्यतंद्रितः ॥ स्वाभेदेनैव मां नित्यं जानाति न विभेदतः ॥ १५ ॥

हे नगेन्द्र ! अब मैं पराभक्तिको वर्णन करती हूं तुम सुनो जो कोई सदा मेरे गुण श्रवण और सदा मेरे नामको कीर्तन करता है ॥ ११ ॥ जिसका मन कल्याण और गुणरत्नका आकर मुझमेंही तैलधाराके समान अविच्छिन्नभावसे सदा स्थित रहता है ॥ १२ ॥ और उसमें किसी फलके हेतु व किसी फलकी आकांक्षा नहीं करता तथा ॥ सामीप्य, सार्ष्टि सायुज्य और सालोक्य मुक्तिकी भी कामना नहीं करता ॥१३॥ और जो प्राणी मेरी सेवासे अधिक और कुछ नहीं जानता, जो सेव्य सेवकभाव त्यागकर मोक्षकी भी आकांक्षा नहीं करता ॥ १४ ॥ जो जितेंद्रिय हो परानुरक्तिपूर्वक मेरी आकांक्षा करता है और मुझको अपनेसे पृथक् न करके मैं ही सच्चिदानंदरूप हूं ऐसा जानता है ॥ १५ ॥

और जो सब जीवोंमें मेराही रूप जानता है अपने परायेमें समान प्रीतियुक्त है ॥ १६ ॥ जो चैतन्यके समानत्वसे सर्वत्र विद्यमान सर्वस्वरूपिणी मेरे सहित सदा सब जीवोंका अभिन्नत्व जानता है ॥ १७ ॥ हे नगेश्वर ! जो भेद बुद्धि त्यागके कारण चण्डालपर्यंत सब जीवोंको नमस्कार और सत्कार करता और भेदवर्जनसे कहीं भी जिसकी द्रोहबुद्धि नहीं है ॥ १८ ॥ जो मेरा मेरे भक्तोंका दर्शन मेरा शास्त्रश्रवण और मेरे मंत्रादिविषषमें श्रद्धायुक्त है ॥ १९ ॥ मेरे हीमें प्रेमसे आकुलमति हो मेरी कथामात्र सुननेसे रोमांचित शरीर होता है प्रेमके आंसुओंसे जिसके नेत्र पूर्ण और गद्गद कण्ठ होता है ॥ २० ॥ हे नगेश्वर ! जो अनन्यभावसे जगत्की योनि सर्व कारणोंकी कारण मुझ परमेश्वरीकी पूजा करता है ॥ २१ ॥ जो भक्तिपूर्वक कृपणता त्याग मेरे नैमित्ति

मद्रूपत्वेन जीवानां चिंतनं कुरुते तु यः ॥ यथा स्वस्यात्मनि प्रीतिस्तथैव च परात्मनि ॥ १६ ॥ चैतन्यस्य समानत्वान्न भेदं कुरुते तु यः ॥ सर्वत्र वर्तमानानां सर्वरूपां च सर्वदा ॥ १७ ॥ नमते यजते चैवाप्याचांडालांतमीश्वर ॥ न कुत्रापि द्रोहबुद्धिं कुरुते भेदवर्जनात् ॥ १८ ॥ मत्स्थानदर्शने श्रद्धा मद्भक्तदर्शने तथा ॥ मच्छास्त्रश्रवणे श्रद्धा मंत्रतंत्रादिषु प्रभो ॥ १९ ॥ मयि प्रेमाकुलमती रोमांचिततनुः सदा ॥ प्रेमाश्रुजलपूर्णाक्षः कंठगद्गदनिस्वनः ॥ २० ॥ अनन्येनैवभावेन पूजयेद्यो नगाधिप ॥ मामीश्वरीं जगद्योनिं सर्वकारणकारणम् ॥ २१ ॥ व्रतानि मम दिव्यानि नित्यनैमित्तिकान्यपि ॥ नित्यं यः कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ २२ ॥ मदुत्सवदिदृक्षा च मदुत्सवकृतिस्तथा ॥ जायते यस्य नियतं स्वभावादेव ॥ भूधर ॥ २३ ॥ उच्चैर्गायंश्चनामानि ममैव खलु नृत्यति ॥ अहंकारादिरहितो देहतादात्म्यवर्जितः ॥ २४ ॥ प्रारब्धेन यथा यच्च क्रियते तत्तथा भवेत् ॥ नमे चिंताऽस्ति तत्रापि देहसंरक्षणादिषु ॥ २५ ॥ इति भक्तिस्तु या प्रोक्ता परभक्तिस्तु सा स्मृता ॥ यस्यां देव्यतिरिक्तं तु न किंचिदपि भाव्यते ॥ २६ ॥

कके दिव्यव्रत करता है ॥ २२ ॥ जिसको स्वभावसे ही मेरे उत्सव करने और देखनेकी इच्छा रहती है हे भूधर ! ॥ २३ ॥ जो मेरे नाम ऊंचे स्वरसे लेकर गाते और नृत्य करते हैं जो अहंकार और देहके तादात्म्यभावसे रहित हैं ॥ २४ ॥ जो कोई यह समस्त ही प्रारब्धकर्मानुसार होता है यह जानकर मेरे ध्यानके अतिरिक्त देहरक्षादि विषयमेंभी चिन्तानहीं करते ॥ २५ ॥ उन पुरुषोंकी यह भक्ति परा भक्ति कहाती है जिसमें देवीविचारके अतिरिक्त अन्य किसी विषयकी चिन्ता नहीं रहती ॥ २६ ॥

हे पर्वतराज ! इसप्रकार तत्त्वसे जिसको भक्ति प्राप्त हुई है वह तत्काल ही मेरे चिद्रूपमें लीन हो जाता है ॥ २७ ॥ जिस ज्ञानसे भक्ति और ज्ञान की पूर्णता होती है इस कारण वैराग्य और भक्तिकी पराकाष्ठाका ही नाम ज्ञान है ज्ञानमें यह दोनों ही हैं ॥ २८ ॥ हे पर्वतराज ! जो भक्ति करके भी प्रारब्धवश मेरे ज्ञानके अधिकारी नहीं होते वह मणिद्वीपमें गमन करते हैं ॥ २९ ॥ हे पर्वतराज ! वहां जाकर इच्छा न करनेसे भी अनेक भोगोंकी प्राप्ति होती है, उसके अन्तमें मेरा चिद्रूप ज्ञानलाभ करके ॥ ३० ॥ उस ज्ञानसे मुक्त हो जाता है कारण कि, ज्ञानके विना मुक्ति नहीं होती यहां जिसको संवित स्वरूप हृदयमें प्राप्त प्रत्यगात्माका ज्ञान होता है ॥ ३१ ॥ तो मेरे संवित् रूपका ज्ञान होनेसे उसके प्राण उत्क्रान्त नहीं होते इस शरीरमें ही लय हो जाते

इत्थं जाता परा भक्तिर्यस्य भूधरः तत्त्वतः ॥ तदैव तस्य चिन्मात्रे मद्रूपे विलयो भवेत् ॥ २७ ॥ भक्तेस्तुया परा काष्ठा सैव ज्ञानं प्रकीर्तितम् ॥ वैराग्यस्य च सीमा सा ज्ञाने तदुभयं यतः ॥ २८ ॥ भक्तौ कृतायां यस्यापि प्रारब्धवशतो नग ॥ न जायते मम ज्ञानं मणिद्वीपं स गच्छति ॥ २९ ॥ गत्वाऽखिलान्भोगाननिच्छन्नपि चर्च्छति ॥ तदंते मम चिद्रूपज्ञानं सम्यग्भवेन्नग ॥ ३० ॥ तेन मुक्तः सदैव स्याज्ज्ञानान्मुक्तिर्न चान्यथा ॥ इहैव यस्य ज्ञानं स्याद् हृद्गतप्रत्यगात्मनः ॥ ३१ ॥ मम संवित्परतनोस्तस्य प्राणा व्रजंति न ॥ ब्रह्मैव संस्तदाप्नोति ब्रह्मैव ब्रह्म वेद यः ॥ ३२ ॥ कंठचामीकरसममज्ञानात्तु तिरोहितम् ॥ ज्ञानादज्ञाननाशेन लब्धमेव हि लभ्यते ॥ ३३ ॥ विदिताविदिता दन्यन्नगोत्तम वपुर्मम ॥ यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा जले तथा पितृलोके ॥ ३४ ॥ छायातपौ यथा स्वच्छौ विविक्तौ तद्वदेव हि ॥ मम लोके भवेज्ज्ञानं द्वैतभावविवर्जितम् ॥ ३५ ॥

हैं न "तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति" इति श्रुतेः उसका ब्रह्मके साथ अभेद होता है "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" इति श्रुतेः ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार कंठमें स्थित सुवर्णका भ्रमवश नष्ट होना जाना जाता है और भ्रमके नष्ट होनेसे प्राप्त वस्तुकी ही प्राप्ति मानी जाती है ॥ ३३ ॥ हे नगसत्तम ! मेरे चिद्रूपतनुविहित घटादिकार्य अविदित माया रूपसे भिन्न हैं जिस प्रकार दर्पणमें प्रतिबिम्ब पडता है इसी प्रकार इस देहमें आत्माका अनुभव होता है और जिस प्रकार जलमें प्रतिबिम्ब पूर्वक अपेक्षा विविक्तरूपसे काशित होता है इसी प्रकारसे पितृलोकमें देहसे विविक्त भावमें आत्माका अनुभव होता है ॥ ३४ ॥ जैसे छाया और आतपका भेद प्रकाश स्वरूपसे स्वच्छरूपसे दीखता है इसी प्रकार मणिद्वीपमें द्वैतभाववर्जित ज्ञान होता है ॥ ३५ ॥

जो वैराग्यवान् होकर पूर्णज्ञान प्राप्त विना प्राणत्याग करते हैं वह प्रलयपर्यन्त ब्रह्म लोकमें निवास करके ॥ ३६ ॥ फिर पवित्र श्रीमान् पुरुषोंके घर जन्म ग्रहणकर साधन करनेके उपरान्त फिर ज्ञानलाभ करते हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! एक जन्ममें नहीं अनेक जन्मोंमें ज्ञान होता है इस कारण सब प्रयत्नसे ज्ञानको आश्रय करै ॥ ३८ ॥ यदि मनुष्यजन्म प्राप्त होकर ज्ञानलाभ न किया तो विनाश होगा कारण कि मनुष्यजन्म बडा दुर्लभ है उसमें भी ब्राह्मण और उसमें भी वेदप्राप्ति बहुत ही दुर्लभ है ॥ ३९ ॥ शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा यह षट्सम्पत्ति, योग सिद्धि और उत्तम गुरुकी प्राप्ति यह इस लोकमें बड़ी दुर्लभ है ॥ ४० ॥ इन्दियोंकी पटुता शरीरका संस्कार और अनेक जन्मोंके पुण्योदयसे मोक्षमें इच्छा होती है ॥ ४१ ॥

यस्तु वैराग्यवानेव ज्ञानहीनो म्रियेत चेत् ॥ ब्रह्मलोके वसेन्नित्यं यावत्कल्पं ततः परम् ॥ ३६ ॥ शुचीनां श्रीमतां गेहे भवेत्तस्य जनिः पुनः ॥ करोति साधनं पश्चात्ततो ज्ञानं हि जायते ॥ ३७ ॥ अनेकजन्मभी राजञ्ज्ञानं स्यान्नैकजन्मना ॥ ततः सर्वप्रयत्नेन ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत् ॥ ३८ ॥ नोचेन्महान्विनाशः स्याज्जन्मैतद् दुर्लभं पुनः ॥ तत्रापि प्रथमे वर्णे वेदप्राप्तिश्च दुर्लभा ॥ ३९ ॥ शमादिषट्कसंपत्तिर्योगसिद्धिस्तथैव च ॥ तथोत्तमगुरुप्राप्तिः सर्वमेवात्र दुर्लभम् ॥ ४० ॥ तथेंद्रियाणां पटुता संस्कृततत्वं मनोस्तथा ॥ अनेकजन्मपुण्यैस्तु मोक्षेच्छा जायते ततः ॥ ४१ ॥ साधने सफलेऽप्येवं जायमानेऽपि यो नरः ॥ ज्ञानार्थं नैव यतते तस्य जन्म निरर्थकम् ॥४२॥ तस्माद्राजन्यथाशक्त्या ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत् ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥ ४३ ॥ घृतमिव पयसि निगूढं भूते भूते च वसति विज्ञानम् ॥ सततं मन्थयितव्यं मनसा मंथानभूतेन ॥ ४४ ॥ ज्ञानं लब्ध्वा कृतार्थः स्यादिति वेदांतडिंडिमः ॥ सर्वमुक्तं समासेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४५ ॥ इति श्रीदे० म० सप्तमस्कंधे देवीगीतायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

जो मनुष्य साधनसे सफल होनेवाले इस शरीरको प्राप्त करके ज्ञानके निमित्त यत्न नहीं करता उसका जन्म निरर्थक है ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! इस कारण यथाशक्ति ज्ञान प्राप्तिके निमित्त यत्न करे तो अवश्य उसको पदपदमें अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ जैसे दूधमें घृत निमग्न है इसी प्रकार सब भूतोंमें ज्ञान निवास करता है उसको मंथानभूत मनमे सदा मथना चाहिये ॥ ४४ ॥ ज्ञानको प्राप्त होकर ही यह प्राणी कृतार्थ होता है यह वेदान्तकी घोषणा है यह संक्षेपसे आपके प्रति सब वर्णन किया अब क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवत महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

हिमालय बोले हे देवि ! इस पृथ्वीमें तुम्हारे मुख्य और प्रिय कितने स्थान हैं सो तुम मुझसे कहो ॥ १ ॥ हे मातः ! जिन सब व्रत और उत्सवका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य कृतकृत्य होते हैं अपने प्रीतिदायक उन सब व्रत और उत्सवका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ श्रीदेवी बोलीं हे पर्वतराज ! मैं सर्वाधिष्ठानस्वरूपिणी हूं इस कारण भूमण्डलमें जितने स्थान विद्यमान हैं वह सब ही मेरी अधिष्ठान भूमि है और मैं सब कालमयी हूं इस कारण सब काल ही मेरा व्रत और उत्सवात्मक है इस कारण जिस समय जिसका अनुष्ठान करे उसको ही मेरी प्रीतिप्रद जाने ॥३॥ पर तथापि भक्तवत्सलतासे कुछ तुमसे कहती हूं हे नगराज ! वह सावधान होकर मुझसे सुनो॥४॥ दक्षिणदेशमें कोलापुर (करवीर) स्थानमें लक्ष्मीनामसे सदा स्थित हूं सह्यनाम पर्वतमें मातृपुरस्थानमें रेणकारूपसे निवास करती

हिमालय उवाच ॥ कति स्थानानि देवेशि द्रष्टव्यानि महीतले ॥ मुख्यानि च पवित्राणि देवीप्रियतमानि च ॥ १ ॥ व्रतान्यपि तथा यानि तुष्टिदान्युत्सवा अपि ॥ तत्सर्वं वद मे मातः कृतकृत्यो यतो नरः ॥ २ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ सर्वं दृश्यं मम स्थानं सर्वे काला व्रतात्मकाः उत्सवाः सर्वकालेषु यतोऽहं सर्वरूपिणी ॥ ३ ॥ तथाऽपि भक्तवात्सल्यात्किंचिदथोच्यते ॥ शृणुष्वावहितो भूत्वा नगराज वचो मम ॥ ४ ॥ कोलापुरं महास्थानं यत्र लक्ष्मीः सदा स्थिता ॥ मातुः पुरं द्वितीयं च रेणुकाधिष्ठितं परम् ॥ ५ ॥ तुलजापुरं तृतीयं स्यात्सप्तशृंगं तथैव च ॥ हिंगुलाया महास्थानं ज्वालामुख्यास्तथैव च ॥ ६ ॥ शाकंभर्याः परं स्थानं भ्रामर्याः स्थानमुत्तमम् ॥ श्रीरक्तदंतिकास्थानं दुर्गास्थानं तथैव च ॥ ७ ॥ विंध्याचलनिवासिन्याः स्थानं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ अन्नपूर्णामहास्थानं कांचीपुरमनुत्तमम्॥८॥ भीमादेव्याः परं स्थानं विमलास्थानमेव च ॥ श्रीचंद्रलामहास्थानं कौशिकीस्थानमेव च ॥९॥ नीलांबायाः परं स्थानं नीलपर्वतमस्तके ॥ जांबूनदेश्वरीस्थानं तथा श्रीनगरं शुभम् ॥ १० ॥ गुह्यकाल्या महास्थानं नेपाले यत्प्रतिष्ठितम् ॥ मीनाक्ष्याः परमं स्थानं यत्त प्रोक्तं चिदंबरे ॥ ११ ॥ वेदारण्यं महास्थानं सुन्दर्याः समधिष्ठितम् ॥ एकांबरं महास्थानं परशक्त्या प्रतिष्ठितम् ॥ १२ ॥

हूं ॥५॥ तुलजापुर और सप्तशृंग स्थानमें हिंगुला और ज्वालामुखी निवास करती हैं ॥ ६ ॥ यह शाकम्भरी भ्रामरी, श्रीरक्तदन्तिका और दुर्गाका स्थान है ॥७॥ विन्ध्याचल निवासिनीका सर्वोत्तम स्थान है कांचीपुरमें अन्नपूर्णाका महास्थान॥८॥ यही पुर भीमदेवी, विमला श्रीचन्द्रकला और कौशिकीका महास्थान है॥९॥नीलपर्वतके शृंगमें नीलाम्बरीका परमस्थान और सुन्दर श्रीनगरको जाम्बूनदेश्वरीका परम स्थान जानो ॥ १० ॥ नेपालमें गुह्यकालीका उत्कृष्ट स्थान है चिदम्बरदेशमें मीनाक्षीका परमस्थान है ॥ ११ ॥ वेदारण्यक महास्थानमें सुन्दरी देवी, एकाम्बर महास्थानमें परा शक्ति स्थित रहती है ॥ १२ ॥

महालसा, योगेश्वरी और नीलसरस्वतीका स्थान चीनदेशमें है ॥ १३ ॥ वैद्यनाथमें बगलाका सर्वोत्तमस्थान है मणिद्वीपमें मुझ भुवनेश्वरीका परमस्थान है ॥ १४ ॥ जिस कामरूदेश सतीका योनिमंडल गिराहै, वह कामाख्या योनि डल त्रिपुरभैरवीका महास्थान है भूमंडलमें यह क्षेत्ररत्न है इस कारण ऐसा दूसरा स्थान नहीं है ॥ १५ ॥ इससे अधिक पृथ्वीमें ऐसा कोई स्थान नहीं है इस स्थानमें महामाया प्रत्येक मासमें रजस्वला होती है ॥ १६ ॥ यहांके सब देवता पर्वतभावको प्राप्त हो वहां निवास करते हैं ॥ १७ ॥ वहांकी सब पृथ्वी देवीरूप है ऐसा पंडित कहते हैं. इस कामाख्या योनिमण्डलसे श्रेष्ठ दूसरा स्थान नहीं है ॥१८॥ पुष्करक्षेत्र गायत्रीका परम स्थान है अमरेशमें चण्डिका और प्रभासमें पुष्करेक्षिणी निवास करती हैं ॥ १९ ॥ नैमिषमहास्थानमें लिंगधा

मदालसापरं स्थानं योगेश्वर्यास्तथैव च ॥ तथा नीलसरस्वत्याः स्थानं चीनेषु विश्रुतम् ॥ १३ ॥ वैद्यनाथे तु भगलास्थानं सर्वोत्तमं मतम् ॥ श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वर्या मणिद्वीपं मम स्मृतम् ॥ १४ ॥ श्रीमत्त्रिपुरभैरव्याः कामाख्यायोनिमंडलम् क्षेत्ररत्नं महामायाधिवासितम् ॥ १५ ॥ नातः परतरं स्थानं क्वचिदस्ति धरातले ॥ प्रतिमासं भवेद्देवी यत्र साक्षाद्रजस्वला॥ १६ ॥ तत्रत्या देवताः सर्वाः पर्वतात्मकतां गताः ॥ पर्वतेषु वसंत्येव महत्यो देवता अपि ॥ १७ ॥ तत्रत्या पृथिवी सर्वा देवीरूपा स्मृता बुधैः ॥ नातः परतरं स्थानं कामाख्यायोनिमंडलात् ॥ १८ ॥ गायत्र्याश्च परं स्थानं श्रीमत्पुष्करमीरितम् ॥ अमरेशे चंडिका स्यात्प्रभासे पुष्क रेक्षिणी ॥ १९ ॥ नैमिषे तु महास्थाने देवी सा लिङ्गधारिणी ॥ पुरुहूता पुष्कराक्षे आषाढौ च रतिस्तथा ॥ २० ॥ चंडमुंडीमहा स्थाने दंडिनी परमेश्वरी ॥ भारभूतौ भवेद्भूतिर्नाकुलेनकुलेश्वरी ॥ २१ ॥ चंद्रिका तु हरिश्चंद्रे श्रीगिरौ शांकरी स्मृता ॥ जप्ये श्वरेत्रिशूला स्यात्सूक्ष्मा चाम्रातकेश्वरे ॥ २२ ॥ शांकरी तु महाकाले शर्वाणी मध्यमाभिधे ॥ केदाराख्ये महाक्षेत्रे देवी सा मार्गदायिनी ॥ २३ ॥ भैरवाख्ये भैरवी सा गयायां मंगला स्मृता ॥ स्थाणुप्रिया कुरुक्षेत्रे स्वायंभुव्यपि नाकुले ॥ २४ ॥

रिणीदेवी, पुष्कराक्षमें पुरहूता और आषाढी स्थानमें रति निवास करती हैं ॥२०॥ चण्डमुण्डके महास्थानमें दण्डिनी; परमेश्वरी, भारभूतिस्थानमें भूति नकुल स्थानमें नकुलेश्वरी निवास करती हैं ॥ २१ ॥ हरिश्चन्द्रस्थानमें चंद्रिका, श्रीपर्वतमें शांकरी जप्येश्वरमें त्रिशूला और आम्रातकेश्वरमें सूक्ष्मा निवास करती हैं ॥ २२ ॥ उज्जयनीमें शांकरी मध्यमेश्वरमें शर्वाणी केदार महाक्षेत्रमें प्रसिद्धमार्गदायिनी ॥ २३ ॥ भैरवस्थानमें भैरवी गयामें मंगला कुरुक्षेत्रमें स्थाणुप्रिया नाकुलमें स्वायम्भुवी ॥ २४ ॥

कनखलमें उग्रा विमलेश्वरमें विश्वेशा अट्टहासमें महानंदा महेंद्र पर्वतमें महान्तका ॥ २५ ॥ भीम स्थानमें भीमेश्वरी वस्त्रापथमें भवानी शांकरी अर्धकोटि स्थानमें रुद्राणी ॥ २६ ॥ अविमुक्त स्थानमें विशालाक्षी महालयमें महाभागा गोकर्णमें भद्रकर्णी भद्रकर्णमें भद्रा ॥ २७ ॥ सुवर्णाख्यमें उत्पलाक्षी स्थाणु स्थानमें स्थाण्वीशा, कमलालयमें कमला छगलंडस्थान [दक्षिण देशमें समुद्रके निकट है] में प्रचंडा ॥ २८ ॥ कुरंडमें त्रिसंध्या माकोटमें मुकुटेश्वरी मंडलेशमें शांडकी कालंजरमें काली ॥ २९ ॥ शंकुकर्णमें ध्वनि स्थूलकेश्वरमें स्थूला और ज्ञानियोंके हृदयकमलमें परमेश्वरी देवी हृल्लेखा प्राणशक्ति रूपसे निवास करती हैं ॥ ३० ॥ हे नगेश्वर ! यह सब स्थान देवीके प्रिय हैं उन उन क्षेत्रोंका माहात्म्य सुनकर ॥ ३१ ॥

कनखले भवेदुग्रा विश्वेशा विमलेश्वरे ॥ अट्टहासे महानंदा महेंद्रे तु महांतका ॥ २५ ॥ भीमे भीमेश्वरी प्रोक्ता स्थाने वस्त्रापथे पुनः ॥ भवानी शांकरी प्रोक्ता रुद्राणी त्वर्धकोटिके ॥ २६ ॥ अविमुक्ते विशालाक्षी महाभागा महालये ॥ गोकर्णे भद्रकर्णी स्याद्भद्रास्या द्भद्रकर्णके ॥२७ ॥ उत्पलाक्षी सुवर्णाक्षे स्थाण्वीशा स्थाणुसंज्ञके ॥ कमलालये तु कमला प्रचंडा छगलंडके ॥ २८ ॥ कुरंडले त्रिसंध्या स्यान्माकोटे मुकुटे श्वरी ॥ मंडलेशे शांडकी स्यात्काली कालंजरे पुनः॥२९॥ शंकुकर्णे ध्वनिः प्रोक्तास्थूलास्यात्स्थूलकेश्वरे ॥ ज्ञानिनां हृदयांभोजे हृल्लेखा परमेश्वरी ॥ ३० ॥ प्रोक्तानीमानि स्थानानि देव्याः प्रियतमानि च ॥ तत्तत्क्षेत्रस्य माहात्म्यं श्रुत्वा पूर्वं नगोत्तम ॥ ३१ ॥ तदुक्तेन विधानेन पश्चाद्देवीं प्रपूजयेत् ॥ अथवा सर्वक्षेत्राणि काश्यां सति नगोत्तम ॥ ३२ ॥ तत्र नित्यं वसेन्नित्यदेवीभक्ति परायणः ॥ तानि स्थानानि संपश्यञ्जपन्देवीं निरंतरम् ॥ ३३ ॥ ध्यायंस्तच्चरणांभोजं मुक्तो भवति बंधनात् ॥ इमानि देवीनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ ३४ ॥ भस्मी भवंति पापानि तत्क्षणान्नग सत्वरम् ॥ श्राद्धकाले पठेदेतान्यमलानि द्विजाग्रतः ॥ ३५ ॥

उसमें कही विधिके अनुसार देवीकी पूजा कर. हे नगोत्तम ! अथवा सब पुण्यक्षेत्र काशीमें विद्यमान हैं ॥३२॥ देवीकी भक्तिमें तत्पर मनुष्य नित्य काशीमें निवास करे उन स्थानोंको देखता हुआ निरन्तर देवीका जप करे ॥ ३३ ॥ और भगवतीके चरणकमलका ध्यान करता हुआ भवबन्धनसे छूट जाता है. यह देवीके नाम जो प्रभातकाल उठकर पढता है ॥ ३४ ॥ हे नगसत्तम ! उसी समय उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और ब्राह्मणोंके समीप श्राद्धकालमें जो निर्मल नाम पढता है ॥ ३५ ॥

उसके सब पितर मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त होते हैं. हे सुव्रत ! अब तुमसे व्रतोंको कहती हूं ॥ ३६ ॥ नरनारियोंको यत्नपूर्वक व्रतानुष्ठान करना चाहिये अनंतर तृतीयाव्रत. रसकल्याणनीव्रत ॥ ३७ ॥ आर्दानन्दकरव्रत यह तृतीयाके व्रत हैं शुक्रवारका व्रत कृष्णाचतुर्दशीका व्रत ॥ ३८ ॥ भौमवारव्रत प्रदोषव्रत यह चार प्रकारके व्रत हैं इन व्रत और प्रदोषसमय देवदेव महादेव देवीको आसनमें बैठाय ॥ ३९ ॥ देवताओंके सहित देवीके सन्मुख नृत्य करते हैं इन व्रतोंमें उपवास कर प्रदोषके समय मंगलमयी शिवाका पूजन करे ॥ ४० ॥ और जो प्रति पखवारेमें ऐसा करता है उसपर देवी अधिक प्रसन्न होती है हे नग ! सोमवारका व्रत मुझको अतिप्रिय है ॥ ४१ ॥ उसमेंभी देवीको पूजनकर रात्रिमें भोजन करे दोनों नवरात्रियोंमें व्रत मेरा प्रसन्न करनेवाला है ॥ ४२ ॥ इस प्रकारसे और भी जो मत्सर हीन होकर मेरी प्रीतिके निमित्त नित्यनैमित्तिक व्रत करता है वह वे उपांगललितादिव्रत हैं ॥ ४३ ॥ इनके करनेसे मेरी

मुक्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयांति परमां गतिम् ॥ अधुना कथयिष्यामि व्रतानि तव सुव्रत ॥३६॥ नारीभिश्च नरैश्चैव कर्तव्यानि प्रयत्नतः ॥ व्रतमनंततृतीयाख्यं रसकल्याणिनीव्रतम् ॥ ३७ ॥ आर्द्रानंदकरं नाम्ना तृतीया या व्रतं च यत् ॥ शुक्रवारव्रतं चैव तथा कृष्ण चतुर्दशी ॥ ३८ ॥ भौमवारव्रतं चैव प्रदोषव्रतमेव च ॥ यत्र देवो महादेवो देवीं संस्थाप्य विष्टरे ॥ ३९ ॥ नृत्यं करोति पुरतः सार्धं देवैर्निशामुखे ॥ तत्रोपोष्य रजन्यादौ प्रदोषे पूजयेच्छिवाम् ॥ ४० ॥ प्रतिपक्षं विशेषेण तद्देवीप्रीति कारकम् ॥ सोमवारव्रतं चैव ममा तिप्रिय कृन्नग ॥ ४१ ॥ तत्रापि देवीं संपूज्य रात्रौ भोजनमाचरेत् ॥ नवरात्रद्वयं चैव व्रतं प्रीतिकरं मम ॥४२॥ एवमन्यान्यपि विभो नित्यनैमित्तिकानि च ॥ व्रतानि कुरुते यो वै मत्प्रीत्यर्थं विमत्सरः ॥४३॥ प्राप्नोति मम सायुज्यं स मे भक्तः स मे प्रियः ॥ उत्सवानपि कुर्वीत दोलोत्सवमुखान्विभो ॥ ४४ ॥ शयनोत्सवं कथा कुर्यात्तथा जागरणोत्सवम् ॥ रथोत्सवं च मे कूर्याद्दमनोत्सवमेव च ॥४५॥

सायुज्य मिलती है वह मेरा भक्त और मुझे प्रिय है फिर चैत्र शुक्ल तीजको दोला उत्सव करे शंकर सहित देवीकी कुंकुम, अगर, कपूर, मणि, वस्त्र, सुगन्ध, माला, धूप, दीपादिसे पूजा कर झुलावे इत्यादि और भी उत्सव कर ॥४४॥ आषाढ पूर्णिमाको शयनोत्सव वा इसके आगेकी तीज कार्तिक पूर्णिमाको जागरणोत्सव, आषाढ शुक्ल तृतीयाको रथोत्सव करे इसमें पृथ्वीको रथ, चन्द्रसूर्यको चक्र, वेदोंको अश्व ब्रह्माको सारथि माने अनेक मणियोंसे जडितफूलमालायुक्त रथकी कल्पनाकर उसमें शिवाको बैठावे और लोकोंकी रक्षा तथा लोकोंके देखनेको अम्बा रथपर चढी हैं यह भावना करे रथके चलनेमें शत २ जय शब्द करे. हे भगवति ! हम दीन जनोंकी रक्षा करो.इस प्रकार स्तोत्र पढ बाजे बजाय सीमाके समीप रथले जाय पूजा करे. फिर घर लावे उमासंहिता

(शिवपुराण) में यह कथा वर्णनकी है. चैत्रपूर्णिमाको दमनोत्सव ॥ ४५ ॥ श्रावणपूर्णिमाको पवित्रोत्सव मेरा प्रियकर है इसप्रकार मेरे भक्त दूसरे उत्सवोंको भी सदा करें ॥ ४६ ॥ प्रीतिसे मेरे भक्त सुवासिनी कुमारी और बटुकोंको मेरा स्वरूप जानकर तद्गतचित्त हो भोजन करावे ॥ ४७ ॥ वित्तशाठ्य कृपणता छोडकर कुसुमादिद्वारा इनकी पूजा करे जो सावधान हो प्रतिवर्ष भक्तिसे ऐसा करता है ॥४८॥ वह धन्य कृतकृत्य और मेरी प्रीतिका पात्र है इसमें सन्देह नहीं यह अपनी प्रियकर वस्तुओंका संक्षेपसे वर्णन किया ॥ ४९ ॥ यह वार्ता अशिष्य और अभक्तको कभी न देनी चाहिए ॥ ५० ॥ इतिश्री देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भाषायां अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ हिमालय बोले हे महेश्वरि ! देवदेवि ! महेशानि ! करुणासागर ! जगदम्बा ! अब भली

पवित्रोत्सवमेवापि श्रावणे प्रीतिकारकम् ॥ मम भक्तः सदा कुर्यादेवमन्यान्महोत्सवान् ॥ ४६ ॥ मद्भक्तान्भोजयेत्प्रीत्या तथा चैव सुवासिनीः ॥ कुमारीर्बटुकांश्चापि मद्बुद्ध्या तद्गतांतरः ॥ ४७ ॥ वित्तशाठ्येन रहितो यजेदेतान्सुमादिभिः ॥ य एवं कुरुते भक्त्या प्रतिवर्षमतंद्रितः ॥ ४८ ॥ स धन्यः कृतकृत्योऽसौ मत्प्रीतेः पात्रमंजसा ॥ सर्वमुक्तं समासेन मम प्रीतिप्रदायकम् ॥ नाशिष्याय प्रदातव्यं नाभक्ताय कदाचन ॥ ४९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे स० देवीगीतायामष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ हिमालय उवाच॥ देवदेवि महेशानि करुणासागरेऽम्बिके ॥ ब्रूहि पूजाविधिं सम्यग्यथावदधुना निजम् ॥१॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वक्ष्ये पूजाविधिं राजन्नम्बिकाया यथा प्रियम् ॥ अत्यंतश्रद्धया सार्धं शृणु पर्वतपुंगव ॥ २ ॥ द्विविधा मम पूजा स्याद्बाह्या चाभ्यंतराऽपि च ॥ बाह्याऽपि द्विविधा प्रोक्ता वैदिकी तांत्रिकी तथा ॥ ३ ॥ वैदिक्यर्चाऽपि द्विविधा मूर्तिभेदेन भूधर ॥ वैदिकी वैदिकैः कार्या वेददीक्षासमन्वितैः ॥ ४ ॥ तंत्रोक्तदीक्षावद्भिस्तु तांत्रिकी संश्रिता भवेत् ॥ इत्थं पूजारहस्यं च न ज्ञात्वा विपरीतकम् ॥ ५ ॥

प्रकार अपने पूजा विधानको कहिये ॥ १ ॥ श्रीदेवी बोलीं हे राजन् ! मैं अपनी प्रियकर पूजा विधि कहती हूं, हे पर्वतश्रेष्ठ ! तुम अतिशय श्रद्धापूर्वक श्रवण करो ॥ २ ॥ बाह्य आभ्यन्तरके भेदसे मेरी पूजा दो प्रकारकी है इसमें बाह्य भी वैदिक और तांत्रिक भेदसे दो प्रकारकी है॥ ३ ॥ हे भूधर ! वैदिक पूजाभी मूर्ति भेदसे दो प्रकारकी है, उसमें विराट्‌रूपसे देवीका ध्यानरूप पहली पूजा और कर चरणादि युक्त देवीकी मूर्तिका ध्यानकर वैदिक मंत्रोंसे देवीका आवाहन और विसर्जन करना यह दूसरी पूजा है इनमें वैदिक मंत्रोंसे दीक्षित पुरुषको वेद विधिके अनुसार वैदिकी पूजा ॥४॥ और तंत्र मार्गमें दीक्षित पुरुषको तंत्रोक्त विधिसे पूजा करनी चाहिये जो मूढ इस प्रकार पूजा रहस्य न जानकर वैदिक तांत्रिक रीतिसे और तांत्रिक दीक्षावाले वैदिक रीतिसे पूजा करे तो॥ ५ ॥

इस विपरीत भावके कारण वह मूढ पतित होता है अब प्रथम वैदिकी पूजाका विषय वर्णन करती हूं ॥३॥ हे भूधर ! जो तुमने मेरे साक्षात् पररूपका दर्शन किया है जिसमें अनन्त शिर अनन्त नेत्र अनन्त चरण हैं ॥७॥ जो सब शक्तिसे युक्त प्रेरक परात्पर है उसीका निरन्तर पूजन करे, इसीका नमस्कार ध्यान और स्मरण करे ॥८॥ हे नगराज ! यही प्रथम वैदिकी पूजाका स्वरूप है यह पूजाशान्त, सावधान मन, दंभ, अहंकारहीन होकर करनी चहिये ॥ ९ ॥ उसीमें तत्पर उसीका यजन और उसीकी शरण हो उसीको चित्तसे देखकर सदा जप ध्यान करो ॥ १० ॥ अनन्य प्रेम भक्तिसे मेरे भावको आश्रित हो यज्ञोंसे मेरा यजन और तप दानसे मुझ विराट्रूपको ही सन्तुष्ट करो ॥११॥ इस प्रकार करते हुए मेरे अनुग्रहसे संसार बंधनसे मुक्त होंगे मुझमें तत्पर और मुझमें आसक्त

करोति यो नरो मूढः स पतत्येव सर्वथा ॥ यत्र या वैदिकी प्रोक्ता प्रथमा तां वदाम्यहम् ॥ ६ ॥ यन्मे साक्षात्परम् रूपं दृष्टवानसि भूधर ॥ अनंतशीर्षनयनमनंतचरणं महत् ॥ ७ ॥ सर्वशक्तिसमायुक्तं प्रेरकं यत्परात्परम् ॥ तदेव पूजयेन्नित्यं नमेद्ध्यायेत्स्मरेदपि ॥८॥ इत्येतत्प्रथमार्चायाः स्वरूपं कथितं नग ॥ शांतः समाहितमना दंभाहंकारवर्जितः ॥ ९ ॥ तत्परो भव तद्याजी तदेव शरणं व्रज ॥ तदेव चेतशा पश्य जप ध्यायस्व सर्वदा ॥१०॥ अनन्यया प्रेमयुक्तभक्त्या मद्भावमाश्रितः ॥ यज्ञैर्यज तपोदानैर्मामेव परितोषय ॥११॥ इत्थं ममानुग्रहतो मोक्ष्यसे भवबन्धनात् ॥ मत्परा ये मदासक्तचित्ता भक्तवरा मताः ॥ १२ ॥ प्रतिजाने भवादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु ॥ ध्यानेन कर्मयुक्तेन भक्तिज्ञानेन वा पुनः ॥ १३ ॥ प्राप्याऽहं सर्वथा राजन्न तु केवलकर्मभिः धर्मात्संजायते भक्तिर्भक्त्या संजायते परम् ॥ १४ ॥ श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत्स धर्मः प्रकीर्तितः ॥ अन्यशास्त्रेण यः प्रोक्तो धर्माभासः स उच्यते ॥ १५ ॥ सर्वज्ञात्सर्वशक्तेश्च मत्तो वेदः समुत्थितः ॥ अज्ञानस्यममाभावादप्रमाणा न च श्रुतिः॥ १६ ॥

चित्त भक्तश्रेष्ठ कहे हैं ॥ १२ ॥ यह मेरी प्रतिज्ञा है ऐसे भक्तोंको मैं बहुत शीघ्र उद्धार कर देती हूं हे गिरिराज ! कर्म युक्त ध्यानयोग, अथवा भक्ति मिश्रित ज्ञान योगसे ही ॥१३॥ मैं प्राप्त हो सकती हूं केवल कर्मसे ही कोई मुझे प्राप्त नहीं कर सकता, धर्मसे भक्ति और भक्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ॥ १४ ॥ श्रुति स्मृतिमें प्रतिपादन किये कर्मको ही धर्म कहते हैं श्रुतिस्मृतिके विपरीत अन्य शास्त्रोंका कहा हुआ धर्म यथार्थ धर्म नहीं किन्तु धर्माभास है ॥१५॥ सर्वज्ञ और सब शक्ति सम्पन्न मेरे स्वरूपसे ही वेद प्रगट हुए हैं, इस कारण वेदके अप्रमाणकी शंका नहीं हो सकती. कारण कि, मैं अज्ञान रहित हूं इससे मुझसे प्रगट हुए वेद भ्रान्ति रहित सत्यवस्तु हैं दूसरे शास्त्र अज्ञपुरुषों द्वारा कल्पित हैं इससे वह वेदके सन्मुख अप्रमाण हैं इसीसे उनमेंका कहा हुआ धर्म धर्माभास है फल पक्षमें

वेदोक्त धर्महि यथार्थ धर्म है ॥१६॥ वेदोंका अर्थ ग्रहणकर स्मृति शास्त्र प्रवीण हुआ है इससे मनु आदि महर्षि प्रवीण स्मृतिशास्त्रका ग्रहण होता है ॥ १७ ॥ स्मृति और पुराणादिमें जिस किसी स्थलमें कटाक्षपूर्वक वेद विरुद्ध विषय कहा गया वह वैदिकोंको ग्रहण न करना चाहिये ॥१८॥ कारण कि, वेदके अतिरिक्त अन्यशास्त्र कर्ताओंके वचन अज्ञान संभूत हैं तो अज्ञान दोष वर्तमान होनेसे उनकी उक्तिका प्रमाण नहीं हो सकता ॥ १९ ॥ इस कारण मुमुक्षुओंको धर्मज्ञानके निमित्त सर्वथा वेद मार्गका आश्रय लेना चाहिये जिस प्रकार लोकमें राजाकी आज्ञा कभी नष्ट नहीं होती ॥ २० ॥ इसी प्रकार सर्वेशानी राजराजेश्वरी मेरी श्रुतिरूप आज्ञाको मनुष्य कैसे त्याग सकते हैं? अपनी आज्ञा रक्षा करनेको मैंने ब्राह्मण क्षत्रिय जाति ॥ २१ ॥ उत्पन्न की है, इस कारण

स्मृतयश्च श्रुतेरर्थं गृहीत्वैव च निर्गताः मन्वादीनां श्रुतीनां च ततः प्रामाण्यमिष्यते॥१७॥क्वचित्कदाचित्तत्रार्थकटाक्षेण परोदितम्॥ धर्मं वदंति सोंऽशस्तु नैव ग्राह्योऽस्ति वैदिकैः ॥ १८ ॥ अन्येषां शास्त्रकर्तृणामज्ञानप्रभवत्वतः ॥ अज्ञानदोषदुष्टत्वात्तदुक्तेर्न प्रमाणता॥१९॥ तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थं सर्वथा वेदमाश्रयेत् ॥ राजाज्ञा च यथा लोके हन्यते न कदाचन ॥ २० ॥ सर्वेशान्या ममाज्ञा सा श्रुतिस्त्याज्या कथं नृभिः ॥ मदाज्ञारक्षणार्थं तु ब्रह्मक्षत्रियजातयः ॥ २१ ॥ मया सृष्टास्ततो ज्ञेयं रहस्यं मे श्रुतेर्वचः ॥ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूधर ॥ २२ ॥ अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा वेषान्बिभर्म्यहम् ॥ देवदैत्यविभागश्चाप्यत एवाभवन्नृप ॥ २३ ॥ ये न कुर्वंति तद्धर्मं तच्छिक्षार्थं मया सदा ॥ संपादितास्तु नरकास्त्रासो यच्छ्रवणाद्भवेत् ॥ २४ ॥ यो वेदधर्ममुज्झित्य धर्ममन्यं समाश्रयेत् ॥ राजा प्रवासयेद्देशान्निजादेतानधर्मिणः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणैर्न च संभाष्याः पंक्तिग्राह्या न च द्विजैः ॥ अन्यानि यानि शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्विविधानि च ॥ २६ ॥ श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि तामसान्येव सर्वशः ॥ वामं कापालकं चैव कौलकं भैरवागमः ॥ २७ ॥

मेरा रहस्यरूप श्रुतिवाक्य अवश्य जानना चाहिये. हे भूधर! जब जब धर्मकी ग्लानि होती है ॥२२॥ और धर्मका अभ्युत्थान होता है तब मैं शाकंभरी आदि अनेक वेष रामकृष्णादि अवतार धारण करती हूं वेदके सद्भावसे ही वेद रक्षक देवता और वेद विनाशक दैत्य हैं यह विभाग कल्पित हुआ है ॥ २३ ॥ जो वेदोक्त धर्मका अनुष्ठान नहीं करते उनकी शिक्षाके निमित्तही नरकोंकी कल्पना की है जिनकी वार्तामात्रके श्रवणसे उनको भय प्राप्त होगा ॥ २४ ॥ जो वेद धर्मको छोड़कर दूसरे धर्मोंका आश्रय करते हैं राजाको उन अधर्मियोंको अपने देशसे निकलवा देना चाहिये ॥ २५ ॥ ब्राह्मणोंको उनके साथ संभाषण न करना चाहिये और उनको ब्रह्मभोजनकी पंक्तिमें ग्रहण न करना चाहिये इस लोकमें जो और भी अनेक प्रकारके शास्त्र हैं ॥ २६ ॥ उनमें जो श्रुतिस्मृति

विरुद्ध हैं वे सब तामसी हैं यदि कहो कि, फिर शिवने तंत्र क्यों बनाये इसपर कहते हैं याम, कापात्रिक, कौल, भैरवागम ॥ २७ ॥ जो पापी होकर वेद धर्माचरण करते हैं अर्थात् जब पापियोंकी वेद धर्माचरणसे सद्गति होगी तो कर्मकी विचित्रताके अभावसे प्रपंचविचित्र न होगा इस प्रकारका उनको अनेक फल दिखाकर उनकी प्रवृत्तिको मोहितकर वेदसे श्रद्धा च्यावित करनेको शिवजीने मोहनार्थ तंत्र निर्माण किये हैं कारण कि, पापी होनेसे वेदका अधिकार नहीं रहता इससे वे पापका फल पाकर शुद्ध हों पश्चात् वेदानुसार कर्म करे तथा दत्तके शाप, भृगुके शाप, दधिचिके शापसे जो ॥ २८ ॥ ब्राह्मण वेदसे बहिष्कृत हुए हैं उन ब्राह्मणोंको सोपान क्रमसे जन्मान्तरमें वेदाधिकार प्राप्तिके निमित्त कुछ परमेश्वरकी उपासना वक्तव्य है यह विचार कर ॥ २९ ॥ शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त, गाणपत्य यह पांच प्रकारके आगम शंकरने निर्माण किये ॥ ३० ॥ इनमें किसी २ अंशमें वेदानुकूल और कहीं २ वेदके विरुद्धभी कहा है इनमें

शिवेन मोहनार्थाय प्रणीतोनान्यहेतुकः ॥ दक्षशापाद् भृगोः शापाद्दधीचस्य च शापतः ॥ २८ ॥ दग्धा ये ब्राह्मणवरा वेदमार्गबहिष्कृताः ॥ तेषामुद्धरणार्थाय सोपानक्रमतः सदा ॥ २९ ॥ शैवाश्च वैष्णवाश्चैव सौराः शाक्तास्तथैव च ॥ गाणपत्या आगमाश्च प्रणीताः शंकरेण ॥ तु ॥ ३० ॥ तत्र वेदाविरुद्धोंऽशोऽप्युक्त एव क्वचित्क्वचित् ॥ वैदिकैस्तद्ग्रहे दोषो न भवत्येव कर्हिचित् ॥ ३१ ॥ सर्वथा वेदभिन्नार्थे नाधिकारी द्विजो भवेत् वेदाधिकारहीनस्तु भवेत्तत्राधिकारवान् ॥ ३२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैदिको वेदमाश्रयेत् ॥ धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत् ॥ ३३ ॥ सर्वैषणाः परित्यज्य मामेव शरणं गताः ॥ सर्वभूतदयावंतो मानाहंकारवजिताः ॥ ३४ ॥ मच्चिता मद्गतप्राणा मत्स्थानकथने रताः ॥ संन्यासिनो वनस्थाश्च गृहस्था ब्रह्मचारिणः ॥ ३५ ॥

वैदिकोंको वेदानुकूल अंशग्रहणमें दोष नहीं है कारण कि वायु संहितामें लिखा है श्रौत अश्रौतभेदसे शिवागमन दो प्रकारका है श्रौत वेदका सार, और अश्रौत स्वतंत्र है, वैदिकोंको श्रौतअंश ग्रहण करना कहा है ॥ ३१ ॥ सर्वथा वेदविरुद्ध अंशमें ब्राह्मण अधिकारी नहीं है जिनका वेदमें अधिकार नहीं है वही उस वेदविरुद्ध अंशके अधिकारी हैं ॥ ३२ ॥ इस कारण वैदिकद्विजाति सब प्रयत्नसे वेदका आश्रय करे. कारण कि, वेदोक्त धर्मानुष्ठानसे उत्पन्न हुआ ज्ञानही परब्रह्मका प्रकाशक है ॥ ३३ ॥ जो सब प्रकारकी वासना त्यागकर मेरी शरण हुए हैं जो सब प्राणियोंमें दया करते मान और अहंकारसे वर्जित हैं ॥ ३४ ॥ मुझमें चित्त लगाये मुझमें प्राण अर्पण किये मेरे स्थान वर्णनमें निरत संन्यासी, वनवासी. गृहस्थी, ब्रह्मचारी ॥ ३५ ॥

जो सदा भक्तिसे इस विराट्स्वरूप उपासनानामक योगका अनुष्ठान करते हैं सदा भक्तिसे उपासना करते हैं उन नित्ययोगाऽनुष्ठान करनेवालोंका मैं अज्ञानसे उत्पन्न हुआ अन्धकार ॥ ३६ ॥ अपने ज्ञानरूपी सूर्यके प्रकाशसे नष्ट कर देती हूं इसमें सन्देह नहीं, हे पर्वतराज ! इस प्रकार यह मैंने पहली वैदिकपूजाका ॥ ३७ ॥ स्वरूप संक्षेपसे कहा अब करचरणादिविशिष्ट मूर्तिपूजा दूसरी कहती हूं मूर्तिमें स्वच्छ भूमिमें सूर्यमण्डल, चंद्रमण्डल ॥ ३८ ॥ जल, बाणलिंग यंत्र, वस्त्र, हृदय कमलमें परात्परा जगदम्बिका देवीका ध्यान करे ॥ ३९ ॥ जो सगुण अर्थात् सत्वादिगुणसम्पन्न करुणारसपरिपूर्ण युवती अरुणवर्ण सुन्दरताके सारकी सीमा सर्वांगसुन्दरी ॥ ४० ॥ शृंगाररसमें परिपूर्ण भक्तोंके दुःख देखतेही कातर होनेवाली प्रसादसे सुमुखी, अम्बा अर्द्धचन्द्रसे शोभित

उपासते सदा भक्त्या योगमैश्वरसंज्ञितम् ॥ तेषां नित्याविमुक्तानामहमज्ञानजं तमः ॥ ३६ ॥ ज्ञानसूर्यप्रकाशेन नाशयामि न संशयः ॥ इत्थं वैदिकपूजायाः प्रथमाया नागाधिप ॥ ३७ ॥ स्वरूपमुक्तं संक्षेपाद् द्वितीयाया अथो ब्रुवे ॥ मूर्तौ वा स्थंडिले वाऽपि तथा सूर्येंदुमंडले ॥ ३८ ॥ जलेऽथवा बाणलिंगे यंत्रे वाऽपि महापटे ॥ तथा श्रीहृदयांभोजे ध्यात्वा देवीं परात्पराम् ॥ ३९ ॥ सगुणां करुणापूर्णां तरुणीमरुणारुणाम् ॥ सौंदर्यसारसीमां तां सर्वावयवसुंदराम् ॥ ४० ॥ शृंगाररससंपूर्णां सदा भक्तार्तिकातराम् ॥ प्रसादसुमुखीमंबां चंद्रखंडशिखंडिनीम् ॥ ४१ ॥ पाशांकुशवराभीति धराभानंदरूपिणीम् ॥ पूजयेदुपचारैश्च यथावित्तानुसारतः ॥ ४२ ॥ यावदांतरपूजायामधिकारो भवेन्न हि ॥ तावद्बाह्यामिमां पूजां श्रयेज्जाते तु तां त्यजेत् ॥ ४३ ॥ आभ्यंतरा तु या पूजा सा तु संविल्लयः स्मृतः ॥ संविदेव परं रूपमुपाधिरहितं मम ॥ ४४ ॥ अतः संविदि मद्रूपे चेतः स्थाप्यं निराश्रयम् ॥ संविद्रूपातिरिक्तं तु मिथ्या मायामयं जगत् ॥ ४५ ॥ अतः संसारनाशाय साक्षिणीमात्मरूपिणीम् ॥ भावयेन्निर्मनस्केन योगयुक्तेन चेतसा ॥ ४६ ॥

शिखाली ॥ ४१ ॥ चारों हाथोंमें पाश अंकुश, वर और अभय धारण किये, आनन्दरूपिणीकी वित्तके अनुसार षोडश उपचारसे पूजन करै ॥ ४२ ॥ जबतक आभ्यन्तर पूजामें अधिकार न हो तब तक इसी प्रकार पूजा करता रहे जब आभ्यन्तर पूजाका अधिकार हो जाय तो इच्छासे बाह्यपूजा छोडदे ॥ ४३ ॥ उपाधिरहित संवित् वा ब्रह्म ही मेरा स्वरूप है इस संवित् स्वरूपमें चित्तके लीन करनेकोही आभ्यन्तर पूजा कहते हैं ॥ ४४ ॥ इस कारण मेरे संविद्रूपमें एकान्तभावसे चित्त स्थापन करे कारण कि, संवित् वा ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य समस्त जगत् मायामय मिथ्या है ॥ ४५ ॥ इस कारण संसारनाशके निमित्त आत्मस्वरूपिणी सर्वसाक्षिणी मेरी निर्विकल्प भक्तियोग युक्त चित्तसे भावना कर ॥ ४६ ॥

इसके आगे बाह्यपूजाका विस्तार कहती हूं हे पर्वतसत्तम ! तुम सावधान मनसे सुनो ॥ ४७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधे भाषायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ श्रीदेवी बोलीं हे पर्वतराज! साधक प्रभातही उठकर मस्तकके ब्रह्मरंध्रमें स्थित कर्पूरवर्णके समान उज्ज्वल सहस्रार कमलाका स्मरण कर उसमें अपने अनुरूप गुरुके समान आकार स्मरण करे ॥ १ ॥ जो प्रसन्नतायुक्त उत्तम वेशसे भूषित भूषणोंसे सम्पन्न शक्ति पत्नीसहित हैं इस प्रकार पत्नीसहित गुरुका ध्यान करके देवी कुंडलिनीका ध्यान करे ॥ २ ॥ जो मूलाधारसे ब्रह्मरंध्रमें गमन करनेके समय प्रकाशमान अर्थात् चैतन्यरूपमें भासमान है और ब्रह्मरंध्रसे मूलाधारमें गमन करनेके निमित्त आनंदामृतमयी है, जो इस प्रकार सुषुम्नाप्रथम गमनागमनशील है उस पराशक्ति आनन्दरूपिणी कुंडलि

अतः परं बाह्यपूजाविस्तार कथ्यते मया ॥ सावधानेन मनसाश्शृणु पर्वत सत्तम ॥ ४७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे देवीगीतायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ प्रातरुत्थाय शिरसि संस्मरेत्पद्ममुज्ज्वलम् ॥ कर्पूराभं स्मरेत्तत्र श्रीगुरुं निजरूपिणम् ॥ १ ॥ सुप्रसन्नं लसद्भूषाभूषितं शक्तिसंयुतम् ॥ नमस्कृत्य ततो देवीं कुंडलीं संस्मरेद् बुधः ॥ २ ॥ प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ॥ अंतः पदव्यामनुसंचरंतीमानंदरूपा मबलां प्रपद्ये ॥ ३ ॥ ध्यात्वैवं तच्छिखामध्ये सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ ध्यायेदथ शौचादिक्रियाः सर्वाः समापयेत् ॥ ४ ॥ अग्निहोत्रं ततो हुत्वा मत्प्रीत्यर्थं द्विजोत्तमः ॥ होमांते स्वासने स्थित्वा पूजासंकल्पमाचरेत् ॥ ५ ॥ भूतशुद्धिं पुरा कृत्वा मातृकान्यासमेव च ॥ हृल्लेखामातृकान्यासं नित्यमेव समाचरेत् ॥ ६ ॥ मूलाधारे हकारं च हृदये च रकारकम् ॥ भ्रूमध्ये तद्वदीकारं ह्रींकारं मस्तके न्यसेत् ॥ ७ ॥

नीकी मैं शरण होता हूं ॥ ३ ॥ इस प्रकार ध्यानकर मूलाधारमें स्थित चैतन्यरूप अग्निकी कुंडलिनीरूप शिखाके भीतर मुझ सच्चिदानंदरूपिणी का ध्यान करे फिर शौच संध्यावंदनादि सब कार्य करै ॥ ४ ॥ फिर वह द्विजोत्तम मेरी प्रीतिके निमित्त अग्निहोत्र करके होमांतमें आसनपर आकर पूजाका संकल्प करे ॥ ५ ॥ इससे पहले भूतशुद्धि और मातृकान्यास करे मातृकान्यास हृल्लेखा अर्थात् मायाबीजद्वारा करे ॥ ६ ॥ मूलाधारमें हकार हृदयमें रकार भ्रूमध्यमें ईकार मस्तकमें ह्रीकारका न्यास करे ॥ ७ ॥

फिर प्रत्येक मंत्रमें किये न्यासोंको यथोक्त करे अपने देहमें धर्मादि पीठ[1]कल्पना कर पूजा करे ॥८॥ फिर प्राणायामद्वारा विकसित हृदय कमलरूप मेरे स्थानमें पंच प्रेतासनपर स्थिर महादेवीकी चिंतना करे ॥ ९ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव यह पंचप्रेत कहे जाते हैं यह मेरे पादमूलमें सदा स्थित रहते हैं यह पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश इन पांच महाभूतोंके और जाग्रत्, स्वप्न, सुसुप्तितुरीय, अतीत इस पांचों अवस्थाओंके अधिपति हैं और मैं पंचभूत तुरीय और अतीत अवस्थासे भी परे ब्रह्मरूपिणी हूं ॥ १० ॥ ११ ॥ इसी कारण यह मेरे आसनको प्राप्त हुए हैं यह शक्तितंत्रमें प्रसिद्ध है इस प्रकार मेरा ध्यान कर मानस उपचारसे मेरा पूजन और जप करे ॥ १२ ॥ जपका फल श्रीदेवीको समर्पण कर फिर अर्घ्य स्थापन करे फिर अर्घ्यपात्रादिको स्थापन करके पूजाके द्रव्योंकी

तत्तन्मंत्रोदितानन्यान्न्यासान्सर्वान्समाचरेत् ॥ कल्पयेत्स्वात्मनो देहे पीठं धर्मादिभिः पुनः ॥ ८ ॥ ततो ध्यायेन्महादेवीं प्राणयामैर्विजृंभिते ॥ हृदंभोजे मम स्थाने पञ्चप्रेतासने बुधः ॥९॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च इश्वरश्च सदाशिवः ॥ एते पञ्च महाप्रेताः पादमूले मम स्थिताः ॥ १० ॥ पञ्चभूतात्मका ह्येते पञ्चावस्थात्मका अपि ॥ अहं त्यव्यक्तचिद्रूपा तदतीताऽस्मि सर्वथा ॥ ११ ॥ ततो विष्टरतां याताः शक्तितंत्रेषु सर्वदा ॥ ध्यात्वैवं मानसैर्भोगैः पूजयेन्मां जपेदपि ॥ १२ ॥ जपं समर्प्य श्रीदेव्यै ततोऽर्घ्यस्थापनं चरेत् ॥ पात्रासादनकं कृत्वा पूजाद्रव्याणि शोधयेत् ॥ १३ ॥ जलेन तेन मनुना चास्त्रमंत्रेण देशिकः ॥ दिग्बंधं च पुरा कृत्वा गुरून्नत्वा ततः परम् ॥ १४ ॥ तदनुज्ञां समादाय बाह्यपीठे ततः परम् ॥ हृदिस्थां भवितां मूर्ति मम दिव्यां मनोहराम् ॥ १५ ॥ आवाहयेत्ततः पीठे प्राणस्थापनविद्यया ॥ आसनावाहने चाऽर्घ्यं पाद्याद्याचमनं तथा ॥ १६ ॥

शुद्धि करे ॥ १३ ॥ साधक मूलमंत्र वा फट् इस मंत्रसे अभिमंत्रित किये जलसे सब पूजाद्रव्य शुद्ध करे दिग्बंधकर गुरुओंको प्रणामपूर्वक ॥ १४ ॥ उनकी आज्ञाको ले पूर्वोक्त यंत्रादि द्वारा बाह्य पीठमें पूर्वमें भावनाकी हुई हृदयमें स्थित मेरी मनोहर मूर्तिको ॥ १५ ॥ प्राणस्थापन मंत्रद्वारा आवाहन करे, फिर भक्तिपूर्वक आसन, आवाहन पाद्य, अर्घ्य, आचमन ॥ १६ ॥

---

१ उस पंठपर अनन्ताय नमः पद्माय नमः अं सूर्यमंडलायनमः संसत्वायनमः रंरजसे नमः तंतमसेनमः । पूर्वादिदिशाओंमें ओं आत्मने नमः । अं अंतरात्मने नमः । पं परमात्मने नमः । ह्रींज्ञानात्मनेनमः । फिर पद्मके पूर्वादिदलमें जयायैनमः । विनयायै नमः । अपराजितायै नमः । नित्यायैनमः । विलासिन्यै नमः । दोग्ध्र्यै नमः । अघोरायै नमः । मध्ये मंगलायैनमः ॥ यह पीठशक्तिकी पूजा शारदामें है ।

स्नान, दोवस्त्र, भूषण और गंध, पुष्प, यथायोग्य भक्तिसे देवीके निमित्त प्रदान करे ॥ १७ ॥ फिर भलीप्रकार यंत्रस्थ आवरण देवताकी पूजा करे यदि प्रतिदिन आवरण देवताकी पूजा न कर सके तो शुक्रवारको करे ॥१८ ॥आवरण देवताको मूलदेवीका प्रभारूप जानना चाहिये और त्रिलोकीको उसको प्रभा मंडलसे व्याप्त चिंतन करे ॥ १९ ॥ इस प्रकार आवरण देवताओंको यथास्थानमें ध्यान और पूजादि करके फिर सावर्ण सायुध शक्तिसम्पन्न श्रीभुवनेश्वरीकी सुगंध गंधादि सुगंधित पुष्प ॥ २० ॥ नैवेद्य, तर्पण तांबूल और दक्षिणादि उपचारसे पूजा करे और हे हिमालय ! तुम्हारे किये सहस्रनामसे मुझको संतुष्ट करे ॥२१॥ तंत्रादिप्रोक्त कवच और '' अहं रुद्रेभिः '' यह सूक्त और भुवनेश्वरी उपनिषद्में '' सर्वे वैदेवा देवीमुपतस्थुः '' हृल्लेखा उपनिषदस्थ मंत्र ॥ २२ ॥ तथा

स्नानं वासोद्वयं चैव भूषणानि च सर्वशः ॥ गंधपुष्पं यथायोग्यं दत्त्वा देव्यै स्वभक्तितः ॥ १७ ॥ यन्त्रस्थानामावृतीनां पूजनं सम्यगाचरेत् ॥ प्रतिवारमशक्तानां शुक्रवारो नियम्यते ॥ १८ ॥ मूलदेवीप्रभा रूपाः स्मर्तव्या अंगदेवताः ॥ तत्प्रभापटलव्याप्तं त्रैलोक्यं च विचिंतयेत् ॥ १९ ॥ पुनरावृत्तिसहितां मूलदेवीं च पूजयेत् ॥ गंधादिभिः सुगंधैस्तु तथा पुष्पैः सुवासितैः ॥ २० ॥ नैवेद्यैस्तर्पणैश्चैव तांबूलैर्दक्षिणादिभिः ॥ तोषयेन्मां त्वत्कृतेन नाम्नां साहस्रकेण च ॥ २१ ॥ कवचेन च सूक्तेनाऽहं रुद्रेभिरिति प्रभो ॥ देव्यथर्वशिरोमंत्रैर्हल्लेखोपनिषद्भवैः ॥ २२ ॥ महाविद्यामहामंत्रैस्तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः ॥ क्षमापयेज्जगद्धात्रीं प्रेमार्द्रहृदयो नरः ॥ २३ ॥ पुलकांकितसर्वांगैर्बाष्परुद्धाक्षिनिःस्वनः ॥ नृत्यगीतादिघोषेण तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥ वेदपारायणैश्चैव पुराणैः सकलैरपि ॥ प्रतिपाद्या यतोऽहं वै तस्मात्तैस्तोषयेच्च माम् ॥ २५ ॥ निजं सर्वस्वमपि मे सदेहं नित्यशोऽर्पयेत् ॥ नित्यहोमं ततः कुर्याद्ब्राह्मणांश्च सुवासिनीः ॥ २६ ॥

महाविद्याके महामंत्रोंसे वारंवार देवीको संतुष्ट करे और प्रेमसे आर्द्र हृदय होकर देवीसे अपना अपराध क्षमा करावे ॥ २३ ॥ पुलकित अंग होकर प्रेमाश्रुसे परिपूर्ण नेत्र हो गद्गद वचनसे नृत्यगीतादिद्वारा मुझको वारंवार संतुष्ट करे ॥ २४ ॥ कारण कि समस्त वेद और पुराणकी प्रतिपाद्य वस्तु मैं हूं इस कारण वेदाध्ययन और पुराणोंके पाठद्वारा मुझे संतुष्ट करे ॥ २५ ॥ और समस्त ऐश्वर्य अपनी देह सहित मेरे अर्पण करे फिर नित्य हवनकर ब्राह्मण और सुन्दर वस्त्रधारी कुमारी ॥ २६ ॥

१ यह स्तोत्र कूर्मपुराणके बारहवें अध्यायमें है।

ब्राह्मणोंके बालक तथा दूसरे पामरजनोंको भी देवीकी बुद्धिसे भोजन करावे फिर अपने हृदयमें देवीको प्रणामकर संहार मुद्राद्वारा विसर्जन करे ॥ २७ ॥ हे सुव्रत ! सब मंत्रोंमें मायाबीज प्रधान है इस कारण मेरी सब पूजा इसीमंत्रसे करे ॥ २८ ॥ हृल्लेखारूपी दर्पणमें मैं सदा प्रतिबिम्बित हूं इस कारण हृल्लेखामंत्रसे दिया हुआ मानो सब मंत्रोंसे समर्पित होता है ॥ २९ ॥ इस प्रकार मेरी पूजा करनेपर भूषणादिसे गुरुकी पूजा करे और अपनेको कृतकृत्य जाने जो इस प्रकारसे श्रीभुवनेश्वरीकी पूजा करता है ॥ ३० ॥ उसको कहीं कभी कुछ भी दुर्लभ नहीं है देहान्तमें वह मेरे मणिद्वीपको सर्वथा प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ वह देवीका स्वरूप ही जानना चाहिये देवता

बटुकान्पामरानन्यान्देवीबुद्ध्या तु भोजयेत् ॥ नत्वा पुनः स्वहृदये व्युत्क्रमेण विवर्जयेत् ॥ २७ ॥ सर्वं हृल्लेखया कुर्यात्पूजनं मम सुव्रत ॥ हृल्लेखां सर्वमंत्राणां नायिका परमा स्मृता ॥ २८ ॥ हृल्लेखादर्पणे नित्यमहं तत्प्रतिबिंबिता ॥ तस्मा द्धृल्लेखया दत्तं सर्वमंत्रैः समर्पितम् ॥ २९ ॥ गुरुं संपूज्य भूषाद्यैः कृतकृत्य त्वमावहेत ॥ य एवं पूजयेद्देवीं श्रीमद्भुवनसुंदरीम् ॥ ३० ॥ न तस्य दुर्लभं किंचित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि ॥ देहांते तु मणिद्वीपं मम यात्येव सर्वथा ॥ ३१ ॥ ज्ञेयो देवीस्वरूपोऽसौ देवा नित्यं नमंति तम् ॥ इति ते कथितं राजन्महादेव्याः प्रपूजनम् ॥ ३२ ॥ विमृश्यैतदशेषेणाप्यधिकारानुरूपतः ॥ कुरु मे पूजनं तेन कृतार्थस्त्वं भविष्यसि ॥ ३३ ॥ इदं तु गीताशास्त्रं मे नाशिष्याय वदेत्क्वचित् ॥ नाभक्ताय प्रदातव्यं न धूर्ताय च दुर्हृदे ॥ ३४ ॥ एतत्प्रकाशनं मातुरुद्घाटनमुरोजयोः ॥ तस्मादवश्यं यत्नेन गोपनीयमिदं सदा ॥ ३५ ॥ देयं भक्ताय शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय चैव हि ॥ सुशीलाय सुवेषाय देवीभक्तियुताय च ॥ ३६ ॥

उसको नित्य नमस्कार करते हैं हे राजन् ! इस प्रकार आपसे यह देवीका पूजन कहा ॥ ३२ ॥ इसको भली प्रकार विचार कर अपने अधिकारके अनुसार मेरा पूजन करो इससे तुम कृतार्थ हो जाओगे ॥ ३३ ॥ यह गीताशास्त्र कभी अशिष्यके निमित्त न देना अभक्त धूत और दुर्मनवालेको न देना चाहिये ॥ ३४ ॥ इस शास्त्रका प्रकाश मानो माताके स्तनोंका उद्घाटन करना है इसकारण यत्नसे इसको गुप्त रखना चाहिये ॥ ३५ ॥ भक्त शिष्य और ज्येष्ठ पुत्रके निमित्त देना चाहिये तथा सुशील सुवेश देवीभक्तसे कहना उचित है ॥ ३६ ॥

श्राद्धकालमें यह ब्राह्मणोंके समीप पढै तो उसके सब पितर तृप्त होकर परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥ व्यासजी बोले ऐसा कहकर भगवती वहां ही अन्तर्धान होगई और देवीके दर्शनसे सब देवताभी प्रसन्न हुए ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले तब वही हैमवती देवी हिमालयके घर प्रकट होकर गौरीनामसे प्रसिद्ध हुई और शंकरने उनका पाणिग्रहण किया ॥ ३९ ॥ तब उनसे कार्तिकेयने जन्म लाभ करके तारक असुरको मारा "गौरीकी उत्पति ज्येष्ठशुक्ल चौथको अरुणोदयमें हुई यह रत्नावलीमें लिखा है" यह गौरी की उत्पत्ति कही अब लक्ष्मीकी उत्पत्ति सुनो, पूर्वमें समुद्र मथनेके समय अनेक रत्नप्रकट हुए थे ॥ ४० ॥ उस समय लक्ष्मीकी प्राप्तिके निमित्त

श्राद्धकाले पठेदेतद्ब्राह्मणानां समीपतः ॥ तृप्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयांति परमं पदम् ॥ ३७ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवांतरधीयत ॥ देवाश्च मुदिताः सर्वे देवीदर्शनतोऽभवन् ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ महितातो लये जज्ञे देवी हैमवती तु सा ॥ या गौरीति प्रसिद्धाऽऽसीद्दत्ता सा शंकराय च ॥ ३९ ॥ ततः स्कंदः समद्भूस्ततारकस्तेन पातितः ॥ समुद्रमंथने पूर्वं रत्नान्यासुर्नराधिप ॥ ४० ॥ तत्र देवैः स्तुता देवी लक्ष्मीप्राप्त्यर्थमादरात् ॥ तेषामनुग्रहार्थायनिर्गता तु रमा ततः ॥ ४१ ॥ वैकुंठाय सुरैर्दत्ता तेन तस्य शमोऽभवत् ॥ इति ते कथितं राजन्देवीमाहात्म्यमुत्तमम् रहस्यभूतयं ॥ ४२ ॥ गौरीलक्ष्म्योः समुत्पत्तिविषयं सर्वकामदम् ॥ न वाच्यं त्वेतदन्यस्मै रहस्यं कथितं यतः ॥ ४३ ॥ गीता गोपनीया प्रयत्नतः ॥ सर्वमुक्तं समासेन यत्पृष्टं तत्त्वयाऽनघ ॥ ४४ ॥

देवताओंने परम आदरसे उनकी स्तुति की तब उनके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त समुद्रसे लक्ष्मी निकलीं ॥ ४१ ॥ देवताओंने उनको भगवान् विष्णुको दिया जिससे वह बड़ी प्रसन्न हुई हे राजन् ! यह आपसे उत्तम देवीका माहात्म्य वर्णन किया ॥ ४२ ॥ यह गौरी और लक्ष्मीका प्रादुर्भाव सब कामनाका देनेवाला है । यह रहस्य जिस किसीके प्रति नहीं कहना चाहिये ॥ ४३ ॥ रहस्यमयी इस गीताको बडे यत्नसे गुप्त रखना चाहिये हे पापरहित ! तुमने जो विषयपूछा था वह सबसंक्षेपसे वर्णन किया ॥ ४४ ॥

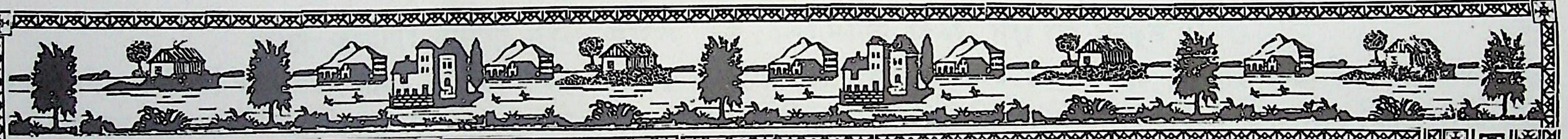
यह पवित्र पावन और दिव्य चरित्र है आपको अब और क्या सुननेकी इच्छा है ?॥ ४५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ इति सप्तमस्कन्धः समाप्तः ॥ ७ ॥

पवित्रं पावनं दिव्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कंधे देवीगीतायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ श्रीरस्तु ॥ स्कंधश्चायं समाप्तः ॥ ७ ॥

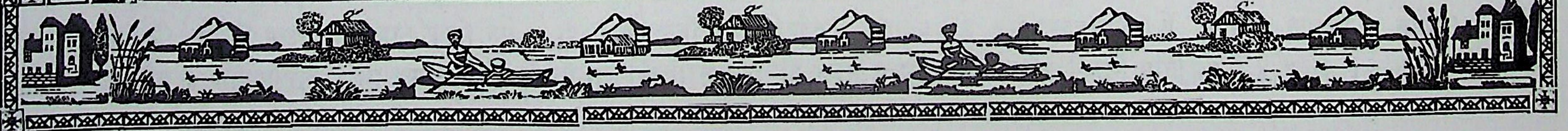
खशरद्व्यश्विव (२३५०) पद्यैस्तु द्वैपायनमुखच्युतैः ॥ श्रीमद्भागवतस्यास्य सप्तमस्कंध ईरितः ॥ १ ॥

दोहा–शिवाशंभुके पदकमल, प्रेमसहित मनलाय । श्रीसप्तमस्कन्धकी, भाषा लिखी बनाय ॥ १ ॥
दोसहस्र दोसै अधिक, पंचाशत यहि पद्य । सो सब वर्णे मिश्रने, निर्मलभाषागद्य ॥ २ ॥
सकलकामप्रद जानिये, यह गीताको ज्ञान । पढहिं सुनहिं करि प्रेम जो, पावहिं पद निर्वान ॥ ३ ॥
देवी हिमवत्को भयो, जो सुन्दर सम्वाद । सो सब भाषा करि कह्यो, बुध ज्वालापरसाद ॥ ४ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते सप्तमस्कन्धः समाप्तः



अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते अष्टमस्कन्धः प्रारभ्यते



दोहा--जगदानंदप्रदायिनी, सकल सुमंगल मूल। शिवाभवानी मिश्रपर सदा रहो अनुकूल ॥

जनमेजय बोले आपने सूर्य चन्द्रवंशी राजोंका जो चारित कहा सो अमृतका स्थान चरित्र हमने सुना ॥ १ ॥ अब यह सुननेकी इच्छा है कि, वह जगदम्बिका देवी सब मन्वन्तरोंमें जिस जिस रूपसे पूजित होती है ॥ २ ॥ और जिस जिस स्थानमें जिस जिस कर्मसे पूजित होती है "तथा जिस जिस शरीरसे देवी फल देनेको पूजी जाती है जिस जिस मंत्रबीजसे जहां जहां पूजी जाती है" देवीका विराट्रूप और उसका वर्णन ॥ ३ ॥ तथा जिस ध्यानसे उस सूक्ष्म शरीरमें बुद्धिकी गति होती है हे विप्रर्षे ! वह सब कहिये जिसमें हमको मंगलकी प्राप्ति हो ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले हे भारत ! देवीका आराधन सुनो

श्रीगणेशाय नमः ॥ जनमेजय उवाच ॥ सूर्यचंद्रान्वयोत्थानां नृपाणां सत्कथाश्रितम् ॥ चरितं भवता प्रोक्तं श्रुतं तदमृतास्पदम् ॥ १ ॥ अधुना श्रोतुच्छामि सा देवी जगदंबिका ॥ मन्वंतरेषु सर्वेषु यद्यद्रूपेण पूज्यते ॥ २ ॥ यस्मिन्यस्मिंश्च वै स्थाने येन येन च कर्मणा ॥ "शरीरेण च देवेशी पूजनीया फलप्रदा ॥ येनैव मंत्रबीजेन यत्र यत्र च पूज्यते ॥" देव्या विराट्स्वरूपस्य वर्णनं च यथातथम् ॥ ३ ॥ येन ध्यानेन तत्सूक्ष्मे स्वरूपे स्यान्मतेर्गतिः ॥ तत्सर्वं वद विप्रर्षे येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देव्याराधनमुत्तमम् ॥ यत्कृतेन श्रुतेनापि नरः श्रेयोऽत्र विंदते ॥ ५ ॥ एवमेतन्नारदेन पृष्टो नारायणः पुरा ॥ तस्मै यदुक्तवान्देवो योगचर्याप्रर्तकः ॥ ६ ॥ एकदा नारदः श्रीमान्पर्यटन्पृथिवीमिमाम् ॥ नारायणाश्रमं प्राप्तो गतखेदश्च तस्थिवान् ॥ ७ ॥ तस्मै योगात्मने नत्वा ब्रह्मदेवतनूद्भवः ॥ पर्यपृच्छदिमं चार्थं यत्पृष्टो भवताऽनघ ॥ ८ ॥ नारदउवाच ॥ देवदेव महादेव पुराण पुरुषोत्तम ॥ जगदाधार सर्वज्ञ श्लाघनीयोरुसद्गुण ॥ ९ ॥ जगतस्तत्त्वमाप्तुं यत्तन्मे वद यथेप्सितम् ॥ जायते कुत एवेदं कुतश्चेदं प्रतिष्ठितम् ॥ १० ॥

जिसके करने सुननेसे मनुष्यका कल्याण होता है ॥ ५ ॥ यही बात पहले नारदजीने नारायणसे पूछी थी योगमार्गके प्रवर्तक भगवानने जो उनसे कहा ॥ ६ ॥ वही कहते हैं एक समय श्रीमान् नारदजी पृथ्वीपर्यटन करते हुए नारायणके आश्रममें आय खेदरहित स्थित हुए ॥ ७ ॥ नारदजी उन योगात्माके निमित्त नमस्कार करके जो आपने पूछा यही बात पूछते हुए ॥ ८ ॥ नारदजी बोले, देवदेव ! महादेव ! हे पुराणपुरुषोत्तम ! हे जगत्के आधार हे सर्वज्ञ ! हे सद्गुणोंसे श्लाघनीय ! आप जगत्के जिस प्रकार आदि हो सो मुझे विस्तारसे कहो यह जगत् कहांसे उत्पन्न और किसमें प्रतिष्ठित है ॥ ९ ॥ १० ॥

दे. भा. और अन्तमें किसमें लय होता है तथा सम्पूर्ण फलका उदय कहांसे होता है और किसके ज्ञानसे यह माया नाशको प्राप्त होती है ॥ ११ ॥ किसके पूजन
॥ २ ॥ जप, ध्यानसे हे देव ! प्रकाश होता है जैसे सूर्योदयसे अन्धकार दूर होता है ॥ १२ ॥ हे देव ! सब प्रकारसे इस प्रश्नका उत्तर दीजिये, जिस प्रकार यह
लोक अन्धकारमें निमग्न हुआ तरजाय ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले जब इस प्रकारसे देवर्षि नारदजीने प्रश्न किया तब महायोगी नारायण प्रसन्न होकर कहने लगे
॥१४॥ नारायण बोले हे देवर्षि! सुनो जिस प्रकार यह जगत्का तत्त्व है जिसके जाननेसे यह जन्तु जगत्के भ्रममें नहीं पडता ॥ १५ ॥ देवीने मुझसे जगत्का
तत्त्व वर्णन कियाहै ऋषि, गन्धर्व, देवता और दूसरे मनीषियोंनेभी वर्णन किया है ॥१६॥ वह देवी जगत्को प्रगटकर पालन करती है और त्रिगुणके द्वारा वही

कुतोऽन्तं प्राप्नुयात्काले कुत्र सर्वफलोदयः ॥ केन ज्ञातेन मायैषा मोह भूर्नाशमाप्नुयात् ॥ ११ ॥ कयाऽर्चया किंजपेन किंध्यानेनात्म
हृत्कजे ॥ प्रकाशो जायते देव तमस्यर्कोदयो यथा ॥ १२ ॥ एतत्प्रश्नोत्तरं देव ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ यथा लोकस्तरेदंधतमसं त्वंजसैव
हि ॥ १३ ॥ व्यास उवाच ॥ एवं देवर्षिणा पृष्टोः प्राचीनो मुनिसत्तमः ॥ नारायणो महायोगी प्रतिनंद्य वचोऽब्रवीत् ॥ १४ ॥
नारायण उवाच ॥ शृणु देवर्षिवर्यात्र जगतस्तत्त्वमुत्ततमम् ॥ येन ज्ञातेन मर्त्यो हि जायते न जगद्भ्रमे ॥ १५ ॥ जगतस्तत्त्वमित्येव देवी
प्रोक्ता मयाऽपि हि ॥ ऋषिभिर्देवगंधर्वैरन्यैश्चापि मनीषिभिः ॥ १६ ॥ सा जगत्सृजते देवी तथा च प्रतिपालयते ॥ तया च
नाश्यते सर्वमिति प्रोक्तं गुणत्रयात् ॥ १७ ॥ तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि देव्याः सिद्धर्षिपूजितम् ॥ स्मरतां सर्वपापघ्नं कामदं मोक्षदं
तथा ॥ १८ ॥ मनुः स्वायंभुवस्त्वाद्यः पद्मपुत्रः प्रतापवान् ॥ शतरूपापतिः श्रीमान्सर्वमन्वंतराधिपः ॥ १९ ॥ स मनुः पितरं देवं
प्रजापतिमकल्मषम् ॥ भक्त्या पर्यचरत्पूर्वं तमुवाचात्मभूः सुतम् ॥ २० ॥ पुत्र पुत्र त्वया कार्यं देव्याराधनमुत्तमम् ॥ तत्प्रसादेन
ते तात प्रजासर्गः प्रसिद्ध्यति ॥ २१ ॥

जगत्का नाश करतीहै, उस सिद्ध और ऋषियोंसे पूजित देवीके स्वरूपको वर्णन करता हूं जो स्मरण करते ही सब पापको दूर करती है और काम तथा मोक्षकी
भा. टी. अ देनेवाली है ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीके पुत्र स्वायंभुव मनु हुए और शतरूपा उनकी स्त्री थी, यह मन्वन्तराधिप हैं ॥ १९ ॥ वह मनु अपने देवरूप पापरहित
पिताजीकी परमभक्तिसे उपासना करने लगे तब उन ब्रह्माजीने अपने पुत्रसे कहा ॥ २० ॥ हे पुत्र ! तुम देवीका श्रेष्ठ आराधन करो हे पुत्र ! उसके प्रसादसे
अ. १ यह तुम्हारी प्रजासृष्टि सिद्ध होगी ॥ २१ ॥

जब स्वायंभुवमनुसे इस प्रकार ब्रह्माजीने कहा तब वह तपसे जगत्की योनिरूप देवीको प्रसन्न करने लगे ॥ २२ ॥ सावधान मनसे देवीको सन्तुष्ट करने लगे जो आदिमाया सर्व शक्ति और सब कारणोंका कारण है ॥ २३ ॥ मनु बोले हे जगत्की कारणस्वरूप देवी ! आपको प्रणाम है तुम शंख, चक्र, गदा हाथमें लिये नारायणके हृदयमें स्थित हो ॥ २४ ॥ वेद मूर्ति जगत्की माता सब कारणोंकी कारण स्थानकी रूपवाली तीन वेदके प्रमाणकी ज्ञाता सब देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त कल्याणस्वरूप ॥२५॥ हे महेश्वरी ! हे महामाये ! महोदये ! महादेवकी प्रिया सर्वनिवास महादेवकी प्रिय करने वाली ॥२६॥ गोपेन्द्रकी प्रिया ज्येष्ठा महानंदा और महोत्सवस्वरूप महामारीके भय हरने वाली देवादिसे पूजित तुमको प्रणाम है ॥ २७ ॥ हे संपूर्ण मंगलोंकी मंगल ! हे शिवे ! हे सर्वार्थ

एवमुक्तः प्रजास्रष्टा मनुः स्वायंभुवो विराट् ॥ जगद्योनिं तदा देवीं तपसाऽतर्पयद्विभुः ॥ २२ ॥ तुष्टाव देवीं देवेशीं समाहितमतिः किल ॥ आद्यां मायां सर्वशक्तिं सर्वकारणकारणाम् ॥ २३ ॥ मनुरुवाच ॥ नमो नमस्ते देवेशि जगत्कारणकारणे ॥ शंखचक्रगदाहस्ते नारायणहृदाश्रिते ॥ २४ ॥ वेदमूर्ते जगन्मातः कारणस्थानरूपिणि ॥ वेदत्रयप्रमाणज्ञे सर्वदेवनुते शिवे ॥ २५ ॥ माहेश्वरि महाभागे महामाये महोदये ॥ महादेवप्रियावासेमहादेवप्रियंकरि ॥ २६ ॥ गोपेन्द्रस्य प्रिये ज्येष्ठे महानंदे महोत्सवे ॥ महामारीभयहरे नमो देवादिपूजिते ॥ २७ ॥ सर्व मंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ॥ शरण्ये त्र्यंबके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥ यतश्चेदं यया विश्वमोतं प्रोतं च सर्वदा ॥ चैतन्यमेवमाद्यंतरहितं तेजसां निधिम् ॥ २९ ॥ ब्रह्मा यदीक्षणात्सर्वं करोति च हरिः सदा ॥ पालयत्यपि विश्वेशः संहर्ता यदनुग्रहात् ॥ ३० ॥ मधुकैटभसंभूत भयार्तः पद्मसंभवः ॥ यस्याः स्तवेन मुमुचे घोरदैत्यभवांबुधेः ॥ ३१ ॥ त्वं ह्रीः कीर्तिः स्मृतिः कांतिः कमला गिरिजा सती ॥ दाक्षायणी वेदगर्भा बुद्धिदात्री सदाऽभया ॥ ३२ ॥

साधक ! हे शरणागतवत्सले गौरीनारायणी आपको प्रणाम है ॥ २८ ॥ जिसके द्वारा यह विश्व ओत प्रोत हो रहा है चैतन्यस्वरूप एक आद्यंतरहित तेजोंकी निधि ॥ २९ ॥ ब्रह्मा जिसके ईक्षणसे सब करता है जिसके अनुग्रहसे विष्णु पालते और शिव संहार करते हैं ॥ ३० ॥ जब मधुकैटभके भयसे ब्रह्माजी घबराये जिसकी स्तुतिसे घोर दैत्यभय छूट गया ॥ ३१ ॥ तुमही कीर्ति, स्मृति, कांति, कमला, गिरिजा, सती, दाक्षायणी, वेदगर्भा, बुद्धिकी देनेवाली, सदा निर्भयरूप ॥ ३२ ॥

मैं तुम्हारी स्तुति करता नमस्कार करता पूजन और जप करता हूं हे देवी ! मैं तुम्हारा ध्यान, इक्षण और श्रवण करता हूं तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा वेदके निधि, विष्णु लक्ष्मीके आवास, इन्द्र तीन लोकका अधिपति, पाशधारी वरुण उत्तम जलोंके पति ॥ ३४ ॥ कुबेर निधिनाथ और यमराज प्रेतराट्र हुए हैं निर्ऋति राक्षसोंके अधिपति चन्द्रमाके जलोंके स्वामी हुए ॥३५॥ हे देवेशि ! यह सब आपकी ही कृपासे हुए हे त्रिलोकवंद्ये ! हे लोकेशि ! हे महामंगल स्वरूपिणीं ! आपको प्रणाम है. हे जगन्माता ! फिर भी वारंवार प्रणाम है ॥ ३६ ॥ नारायण बोले जब दुर्गा नारायणी परादेवीकी इस प्रकार स्तुति करी हे देवर्षे ! तब भगवती प्रसन्न हो ब्रह्मपुत्रसे यह बोली ॥ ३७ ॥ श्रीदेवी बोली हे राजेन्द्र ! ब्रह्मपुत्र जो तुम्हारी इच्छा हो सो वर मांगो तुम्हारी स्तुति भक्ति

स्तोष्ये त्वां च नमस्यामि पूजयामि जपामि च ॥ ध्यायामि भावये वीक्षे श्रोष्ये देवि प्रसीद मे ॥ ३३ ॥ ब्रह्मा वेदनिधिः कृष्णो लक्ष्म्यावासः पुरंदरः ॥ त्रिलोकाधिपतिः पाशी याद सांपतिरुत्तमः । ३४॥ कुबेरो निधिनाथोऽभूद्यमो जातः परेतराट् ॥ नैर्ऋतो रक्षसां नाथः सोमो जातो ह्यपोमयः ॥ ३५ ॥ त्रिलोकवंद्यो लोकेशि महामांगल्यरूपिणि ॥ नमस्तेऽस्तु पुनर्भूयो जगन्मातर्नमो नमः ॥ ३६ ॥ नारायण उवाच ॥ एवं स्तुता भगवती दुर्गा नारायणी परा ॥ प्रसन्ना प्राह देवर्षे ब्रह्मपुत्रमिदं वचः ॥ ३७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वरं वरय राजेन्द्र ब्रह्मपुत्र यदिच्छसि ॥ प्रसन्नाऽहं स्तवेनात्र भक्त्या चाराधनेन च ॥ ३८ ॥ मनुरुवाच ॥ यदि देवि प्रसन्नाऽसि भक्त्या कारुणिकोत्तमे ॥ तदा निर्विघ्नतः सृष्टिः प्रजायाः स्यात्तवाऽऽज्ञया ॥ ३९ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ प्रजासर्गः प्रभवतु ममानुग्रहतः किल ॥ निर्विघ्नेन च राजेन्द्र वृद्धिश्चाप्युत्तरोत्तरम् ॥ ४० ॥ यः कश्चित्पठते स्तोत्रं मद्भक्त्या त्वत्कृतं सदा ॥ तेषां विद्याप्रजासिद्धिः कीर्तिः कांत्युदयः खलु ॥ ४१ ॥ जायंते धनधा न्यानि शक्तिरप्रहता नृणाम् ॥ सर्वत्र विजयो राजन्सुखं शत्रुपरिक्षयः ॥ ४२ ॥

पूर्वक आराधन और स्तुतिसे मैं प्रसन्न हूं ॥ ३८ ॥ मनु बोले हे करुणामयी ! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो, तो आपकी आज्ञासे यह सृष्टि निर्विघ्न पूरी हो जाय ॥ ३९ ॥ श्री देवी बोली मेरे अनुग्रहसे प्रजासर्ग कर सकोगे. हे राजेन्द्र ! दिन दिन वृद्धि होगी कोई विघ्न भी न होगा और जो कोई तुम्हारे किये इस स्तोत्रको मेरी भक्तिसे कहेंगे उनको विद्या और प्रजाकी सिद्धि तथा कांतिका उदय होगा ॥४०॥४१॥ जो शक्तिसे हत नहीं है उसको धनधान्यकी प्राप्ति होती है हे राजन् ! उसको सर्वत्र जय सुख होकर शत्रुका क्षय होता है ॥ ४२ ॥

नारायण बोले इस प्रकार ब्रह्मपुत्र मनुको वरदान देकर भगवती उसके देखते २ अन्तर्धान होगई ॥ ४३ ॥ तब प्रतापवान् ब्रह्मपुत्र राजा वरको प्राप्त हो ब्रह्मासे कहने लगे हे तात मुझे स्थान दो ॥ ४४ ॥ जहां स्थित होकर मैं श्रेष्ठ प्रजाकी रचना कर सकूं तथा यज्ञानुष्ठानकर मैं देवेशीका पूजन करूंगा आप शीघ्र आज्ञा दीजिये ॥ ४५ ॥ यह पुत्रके वचन सुन प्रजापति विभु विचारने लगे कि, यह कार्य कैसे होगा ॥ ४६ ॥ सृजन करते २ मुझे बहुत समय बीत गया और जलकी धाराओंमें मग्न हो सब भूमि नीचे जाती है ॥ ४७ ॥ इस मेरे चिन्तित कार्यको आदि पुरुष भगवान् सम्पादनकर हमारी सहायता करेंगे जिसके आदेशसे मैं स्थित हूं ॥ ४८ ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ नारायण बोले हे परंतप ! इस प्रकार उन ब्रह्माजीके विचार

नारायण उवाच ॥ एवं दत्त्वा वरान्देवी मनवे ब्रह्म सूनवे ॥ अंतर्धानं गता चासीत्पश्यतस्तस्य धीमतः ॥ ४३ ॥ अथलब्धवरो राजा ब्रह्मपुत्रः प्रतापवान् ॥ ब्रह्माणमब्रवीत्तात स्थानं मे दीयतां रहः ॥ ४४ ॥ यत्राहं समधिष्ठाय प्रजाः स्रक्ष्यामि पुष्कलाः ॥ यक्ष्यामि यज्ञै र्देवेशं तत्समादिश मा चिरम् ॥ ४५ ॥ इति पुत्रवचः श्रुत्वा प्रजापतिपतिर्विभुः ॥ चिंतयामास सुचिरं कथं कार्यं भवेदिदम् ॥ ४६ ॥ सृजतो मे गतः कालो विपुलोऽनंतसंख्यकः ॥ धरा वार्भिः प्लुता मग्ना रसं याताऽखिलाश्रयः ॥ ४७ ॥ इदं मच्चिंतितं कार्यं भगवाना दिपूरुषः ॥ करिष्यति सहायो मे यदादेशेऽह माश्रितः ॥ ४८ ॥ इति श्री० दे० भा० महापुराणे अष्टमस्कंधे भुवनकोशो नाम प्रथ मोऽध्यायः ॥ १ ॥ नारायण उवाच ॥ एवं मीमांसत स्तस्य पद्मयोनेः परंतप ॥ मन्वादिभिर्मुनिवरैर्मरीच्याद्यैः समततः ॥ १ ॥ ध्याय तस्तस्य नासाग्राद्विरिंचेः सहसाऽनघ ॥ वराहपोतो निरगादेकांगुलप्रमाणतः ॥ २ ॥ तस्यैव पश्यतः खस्थः क्षणेन किल नारद ॥ करि मात्रं प्रववृधे तदद्भुततमं ह्यभूत् ॥ ३ ॥ मरीचिमुख्यै र्विप्रेन्द्रैः सनकाद्यैश्च नारद ॥ तद्दृष्ट्वा सौकरं रूपं तर्कयामास पद्मभूः ॥ ४ ॥ किमेतत्सौकरव्याजं दिव्यं सत्त्वमवस्थितम् ॥ अत्याश्चर्यमिदं जातं नासिकाया विनिःसृतम् ॥ ५ ॥

करनेपर मनु आदि मुनिश्रेष्ठ और मरीचि आदि ऋषियोंने सब ओरसे विचार किया ॥ १ ॥ ब्रह्माजीके ध्यान करते ही उनके नासारन्ध्रसे एक अंगुल प्रमाणका एक वराह बालक प्रगट हुआ ॥२॥ हे नारद ! वह उनके देखते २ आकाशमें स्थित हुआ क्षणमात्रमें ही हाथीके समान बढ गया यह अद्भुत बात हुई ॥ ३ ॥ हे नारद ! मरीचिको आदिले ब्राह्मण श्रेष्ठ सनकादि तथा ब्रह्माजी उस सूकरको देख विचारने लगे ॥ ४ ॥ यह सूकर देहके उपालंभमें कौन अद्भुत जीव है, यह कोई दिव्य वस्तु अति आश्चर्य दायक मेरी नासिकासे निर्गत हुआ है ॥ ५ ॥

देखनेमें प्रथम तो यह अंगुष्ठ शिरके समान था क्षणमें ही पर्वतराजके समान होगया अहो यह भगवान् हैं वा यज्ञ है जो मेरा मन सन्देहमें डालकर चंचल कर रहे हैं ॥ ६ ॥ परमात्मा ब्रह्माके इस प्रकार तर्कना करनेसे पर्वततुल्य भगवान् गर्जना करने लगे ॥ ७ ॥ तब संहत हुए ब्राह्मणोंको ब्रह्माजी प्रसन्न करने लगे वह अपनी गर्जनाओंसे दिशाओंको शब्दायमान करने लगे ॥ ८ ॥ वे अपने खेदका नाशक घुर घुर शब्द सुनकर तप सत्य जनलोक निवासी श्रेष्ठ देवता ॥ ९ ॥ ऋक्साम अथर्वके छन्दोमय स्तोत्र तथा पुरुष सूक्तके वचनोंसे ब्राह्मण अभिवर्षण करने लगे ॥ १० ॥ हरि ईश्वर भगवान् उनके स्तोत्रोंको सुनकर कृपादृष्टिसे उनको देख जलमें प्रविष्ट हुए ॥ ११ ॥ उनके भीतर प्रवेश करनेसे केशरके आघातसे पीडित हो समुद्र कहने लगा हे शरणागतके दुःख

दृष्टोंऽगुष्ठशिरोमात्रः क्षणाच्छैलेन्द्रसन्निभः ॥ आहोस्विद्भगवान्कि वा यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥ ६ ॥ इति तर्कयतस्तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ वराह रूपो भगवाञ्जग र्जाचलसन्निभः ॥ ७ ॥ विरंचि हर्षयामास संहतांश्च द्विजोत्तमान् ॥ स्वगर्जशब्दमात्रेण दिक्प्रांतमनुनादयन् ॥ ८ ॥ ते निशम्य स्वखे दस्य शयिष्णुं घुर्घुरस्वनम् ॥ जनस्तपःसत्यलोकवासिनोऽमरवर्यकाः ॥ ९ ॥ छन्दोमयैः स्तोत्रवरैर्ऋक्सामाथर्वसंभवैः ॥ वचोभिः पुरुषं त्वाद्यं द्विजेन्द्राः पर्यवाकिरन् ॥ १० ॥ तेषां स्तोत्रं निशम्याद्यो भगवान्हरिरीश्वरः ॥ कृपावलोकमात्रेणानुगृहीत्वाऽप आविशत् ॥ ११ ॥ तस्यांतर्विशतः क्रूरसटाघातप्रपीडितः ॥ समुद्रोऽथाब्रवीद्देव रक्ष मां शरणार्तिहन् ॥ १२ ॥ इत्याकर्ण्य समुद्रोक्तं वचनं हरि रीश्वरः ॥ विदारयञ्जलचराञ्जगामांतर्जले विभुः ॥ १३ ॥ इतस्ततोऽभिधावन्सन्विचिन्वन्पृथिवीं धराम् ॥ आघ्रायाघ्राय सर्वेशो धरामासा दयच्छनैः ॥ १४ ॥ अंतर्जलगतां भूमिं सर्वसत्त्वा श्रियां तदा ॥ भूमि स देवदेवेशो दंष्ट्रयोदाजहार ताम् ॥ १५ ॥ तां समुद्धृत्य दंष्ट्राग्रे यज्ञेशो यज्ञपूरुषः ॥ शुशुभे दिग्गजो यद्वदुद्धृत्याथ सुपद्मिनीम् ॥ १६ ॥

दूर करनेवाले मेरी रक्षा करो ॥ १२ ॥ भगवान् सागरका यह वचन सुनकर जलचरोंको विदीर्ण करते सागरमें प्रविष्ट हुए ॥ १३ ॥ पृथ्वीके खोजनेको इधर उधर धावमान होने लगे वारंवार सूंघकर ऊपर उठाने योग्य धराको शनैःप्राप्त हुए ॥ १४ ॥ जो सब जीवोंके आश्रयवाली भूमि जलके अन्तरमें थी देवदेवेशने उसको अपनी दंष्ट्रापर धारण किया ॥ १५ ॥ यज्ञेश यज्ञ पुरुष उसको अपनी दंष्ट्रापर धारण कर पद्मिनीकी उखाडे दिग्गजके समान शोभित हुए ॥ १६ ॥

उन देवदेवको ब्रह्मा स्वराट् मनु देखकर वसुन्धराधारी देवकी स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले हे पुण्डरीकाक्ष ! हे भक्तोंके दुःख नाशक ! हे सब काम फलके दाता ! हे सुराधार आपने सत्यलोक तकको खर्व किया है आपकी जय हो ॥ १८ ॥ हे देव ! यह वसुधा धरणी आपसे शोभा पाती है जैसे मतंगद्वारा उखाड़ी हुई कमलिनी हो ॥ १९ ॥ यह आपका शरीर भूमिके संगमसे शोभा पाता है जैसे सूंडमें कमल उखाडे हाथीका शरीर शोभित हो ॥ २० ॥ हे सृष्टिसंहारकारक ! देवेश ! आपको प्रणाम है हे प्रभो ! आप दानवोंके नाशके निमित्त अनेक शरीर धारण करते हो ॥ २१ ॥ आपको आगे पीछे प्रणाम है, आप सम्पूर्ण देवताओंके आधार बृहद्धाम हो आपको प्रणाम है ॥ २२ ॥ आपनेही शक्तियुक्त हो मुझे प्रजाके निर्माणमें नियुक्त किया है आप

तं दृष्ट्वा देवदेवेशो विरंचिः समनुः स्वराट् ॥ तुष्टाववाग्भिर्देवेशं दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जितं ते पुंडरीकाक्ष भक्तानामार्तिनाशन ॥ खर्वीकृतसुराधार सर्वकामफलप्रद॥ १८ ॥ इयं च धरणी देव शोभते वसुधा तव ॥ पद्मिनीव सुपत्राढ्या मतंगजकरोद्धृता ॥ १९ ॥ इदं च ते शरीरं वै शोभते भूमिसंगमात् ॥ उद्धृतांबुजशुंडाग्रकरींद्रतनुसन्निभम् ॥ २० ॥ नमो नमस्ते देवेश सृष्टिसंहारकारक ॥ दानवानां विनाशाय कृतनानाकृतेप्रभो ॥ २१ ॥ अग्रतश्च नमस्तेऽस्तु पृष्ठतश्च नमो नमः ॥ सर्वामराधारभूत बृहद्धाम नमोऽस्तु ते ॥ २२ ॥ त्वयाऽहं च प्रजासर्गेनियुक्तः शक्तिबृंहितः ॥ त्वदाज्ञावशतः सर्गं करोमि विकरोमि च ॥ २३ ॥ त्वत्सहायेन देवेशा अमराश्च पुरा हरे ॥ सुधां विभेजिरे सर्वे यथाकालंयथाबलम् ॥ २४ ॥ इंद्रस्त्रिलोकीसाम्राज्यं लब्धवांस्त्वन्निदेशतः ॥ भुनक्ति लक्ष्मीं बहुलां सुरसंघप्रपूजितः ॥ २५ ॥ वह्निः पावकतां लब्ध्वा जाठरादिविभेदतः ॥ देवासुरमनुष्याणां करोत्याप्यानं तथा ॥ २६ ॥ धर्मराजोऽथ पितॄणामधिपः सर्वकर्मदृक् ॥ कर्मणां फलदाताऽसौ त्वन्नियोगादधीश्वरः ॥ २७ ॥ नैर्ऋतो रक्षसामीशो यक्षो विघ्नविनाशनः ॥ सर्वेषां प्राणिनां कर्मसाक्षी त्वत्तः प्रजायते ॥ २८ ॥

कीही आज्ञासे मैं प्रजाकी सृष्टि करता और बिगाडता हूं ॥ २३ ॥ हे देवेश ! आपकीही सहायतासे पहले देवताओंने अमृत पाया जो यथासमयमें बलानुसार प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥ इस त्रिलोकीके साम्राज्यको आपकीही आज्ञासे इन्द्र देवताओंसे पूजितहो ऐश्वर्यके सहित भोगता है ॥ २५ ॥ अग्नि जठरादिके भेदसे पावकताको प्राप्त होकर देवासुर मनुष्योंका पालन करता है ॥ २६ ॥ पितरोंके अधिपति धर्म राजभी सब कर्मोंके द्रष्टा हैं वह भी आपकेही नियोगसे सब कर्मोंके फलदाता हैं ॥ २७ ॥ नैर्ऋत राक्षसोंके अधिपतियक्ष विघ्ननाशक सब प्राणियोंके कर्मसाक्षी आपकेही द्वारा होते हैं ॥ २८ ॥

जलोंके पति वरुण लोकपाल जलाधिप आपकीही आज्ञाबलको प्राप्त हो लोकपालत्वको प्राप्त हुए हैं ॥ २९ ॥ वायु गंध वहन करनेवाला सबका प्राण धारण करनेका कारण वहभी लोकपालक जगत्का गुरु आपकीही आज्ञासे हुआ है ॥ ३० ॥ कुबेर किन्नर और यक्षोंके जीवनका आश्रय आपकीही आज्ञासे सब लोकमें मान्य हुआ है ॥ ३१ ॥ सब रुद्रोंके अधिपति ईश्वर अन्तकारी सब देवोंके पालक हे लोकेश ! आपकेही कारण सबके वन्दनीय हुए हैं ॥ ३२ ॥ हे जगदीश्वर ! भगवन् आपको प्रणाम है जिसके अंशभागसे सब देवता हुए हैं ॥ ३३ ॥ नारदजी बोले जब इस प्रकार ब्रह्माजीने आदि पुरुष भगवान्‌की स्तुति की तब भगवान्‌ने अपनी लीलाके अवलोकनसे उनपर कृपा की ॥ ३४ ॥ उसी समय महाअसुर हिरण्याक्ष वहां आकर मार्ग रोकने लगा तब भगवान्‌ने

वरुणो यादसामीशो लोकपालो जलाधिपः ॥ त्वदाज्ञाबलमाश्रित्य लोकपालत्वमागतः ॥ २९ ॥ वायुर्गंधवहः सर्वभूतप्राणानकारणम् ॥ जातस्तव निर्देशेन लोकपालो जगद्गुरुः ॥ ३० ॥ कुबेरः किन्नरादीनां यक्षाणां जीवनाश्रयः ॥ त्वदाज्ञांतर्गतः सर्वलोकपेषु च मान्य भूतः ॥ ३१ ॥ ईशानः सर्वरुद्राणामीश्च रांतकरः प्रभुः ॥ जातो लोकेशवंद्योऽसौ सर्वदेवाधिपालकः ॥ ३२ ॥ नमस्तुभ्यं भागवते जग दीशाय कुर्महे ॥ यस्यांशभागाः सर्वे हि जाता देवः सहस्रशः ॥ ३३ ॥ नारद उवाच ॥ एवं स्तुतो विश्वसृजा भगवानादिपूरुष ॥ लीला वलोकमात्रेणाऽप्यनुग्रहमवासृजत् ॥ ३४ ॥ तत्रैवाभ्यागतं दैत्यं हिरण्याक्षं महासुरम् ॥ रुधानमध्वनो भीमं गदयाऽताडयद्धरिः ॥ ३५ ॥ तद्रक्तपंकदिग्धांगो भगवानादिपूरुषः उद्धृत्य धरिणीं देवो दंष्ट्रया लीलयाऽप्सु ताम् ॥ ३६ ॥ निवेश्य लोकनाथेशो जगाम स्थान मात्मनः ॥ एतद्भगवतश्चित्रं धरण्युद्धरणं परम् ॥ ३७ ॥ शृणुयाद्यः पुमान्यश्च पठेच्चरितमुत्तमम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवीं गतिमाप्नु यात् ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारायण उवाच ॥ महीं देवः प्रतिष्ठाप्य यथा स्थाने च नारद ॥ वैकुंठलोकमगमद्ब्रह्मोवाच स्वमात्मजम् ॥ १ ॥

उसको गदासे ताडन किया ॥ ३५ ॥ भगवान् आदिपुरुषका शरीर उसके रुधिरसे आर्द्र होगया और इस प्रकार अपनी दंष्ट्रारूपी एक अंशसे पृथ्वीको उद्धार कर और उस जलके ऊपर ॥ ३६ ॥ स्थापित कर भगवान् अपने स्थानको गये वह भगवान्‌का धरणी उद्धार बड़ा आश्चर्यजनक है ॥ ३७ ॥ जो पुरुष इस चरित्रको पढते सुनते हैं वह सब पापसे रहित हो वैष्णवगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारायण बोले हे नारदजी ! इस प्रकार भगवान् भूमिको यथा स्थानमें स्थापित कर वैकुण्ठमें गये और ब्रह्माजीने अपने पुत्रसे कहा ॥ १ ॥

हे तेजस्वियों में श्रेष्ठ महाभुज! स्वायम्भुव! इस पृथ्वीके स्थान में स्थित होकर प्रजाकी रचना करो ॥२॥ देशकालके विभागसे यज्ञेशपुरुषका यजन करो ऊंचे नीचे पदार्थों से जो कि यज्ञके साधन हैं ॥ ३ ॥ शास्त्रोक्त वर्ण आश्रमके निबंधवाले धर्मका आचरण करो, इस क्रमयोगसे प्रजाकी वृद्धि होगी ॥ ४ ॥ गुणपूर्वक कीर्तिद्वारा कांतिमें अपने समान पुत्रोंको उत्पन्न करो जो विद्याविनयसम्पन्न और सदाचारयुक्त हों ॥ ५ ॥ और गुणयशवाली कन्या देकर प्रधान पुरुषेश्वरमें मनको समाधान कर ॥ ६ ॥ भक्तिसाधनके योगसे भगवान्‌की परिचर्या करते हुए योगियोंकी इष्टगतिको आप प्राप्त होंगे ॥ ७ ॥ पद्मयोनि

स्वायंभुव महाबाहो पुत्र तेजस्विनां वर ॥ स्थाने महीमये तिष्ठ प्रजाः सृज यथोचितम् ॥ २ ॥ देशकालविभागेन यज्ञेशे पुरुषं यज ॥
उच्चावचपदार्थैश्च यज्ञसाधनकैर्विभो ॥ ३ ॥ धर्ममाचर शास्त्रोक्तं वर्णाश्रमनिबंधनम् ॥ एतेन क्रमयोगेन प्रजावृद्धिर्भविष्यति ॥ ४ ॥
पुत्रानुत्पाद्य गुणतःकीर्त्या. कांत्याऽऽत्मरूपिणः ॥ विद्याविनयसंपन्नान्सदाचारवतां वरान् ॥ ५ ॥ कन्याश्च दत्त्वा गुणवद्यशोवद्भ्यः
समाहितः ॥ मनः सम्यक्समाधाय प्रधानपुरुषे परे ॥ ६ ॥ भक्तिसाधनयोगेन भगवत्परिचर्यया ॥ गतिमिष्टां सदा वंद्यां योगिनां
गमिता भवान् ॥ ७ ॥ इत्याश्वास्य मनुं पुत्रंपद्मयोनिः प्रजापतिः ॥ प्रजासर्गे नियम्याम्मुं स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ८ ॥ प्रजाः सृजत
पुत्रेति पितुराज्ञां समादधत् ॥ स्वायंभुवः प्रजासर्ग मकरोत्पृथिवीपतिः ॥ ९ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसो ॥ कन्यास्तिस्रः
प्रसूताश्च तासां नामानि मे शृणु ॥ १० ॥ आकृतिः प्रथमा कन्या द्वितीया देवहूतिका ॥ तृतीया च प्रसूतिर्हि विख्याता लोकपावनी
॥ ११ ॥ आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय च मध्यमाम् ॥ दक्षायादात्प्रसूतिं च यासां लोक इमाः प्रजाः ॥ १२ ॥ रुचेः प्रजज्ञे भगवा
न्यज्ञो नामादिपूरुषः ॥ आकूत्यां देवहूत्यां च कपिलोऽसौ च कर्दमात् ॥ १३ ॥

प्रजापति इस प्रकार अपने मनुपुत्रको समझाकर प्रजासर्गमें नियुक्त कर अपने धामको प्राप्त हुए ॥ ८ ॥ हे पुत्र! प्रजाको सृजन करो इस प्रकार उनकी आज्ञा धारण की तब स्वायंभुवमनुने प्रजासर्गकी रचना की ॥ ९ ॥ प्रियव्रत और उत्तानपाद यह मनुपुत्र बड़े प्रतापी हुए और तीन कन्या हुईं उनके नाम सुनो ॥ १० ॥ आकूती १ देवहूती २ प्रसूती ३ यह तीन कन्या लोकमें विख्यात हुईं ॥ ११ ॥ रुचिको आकूती, कर्दमको देवहूती; दक्षको प्रसूती, दी जिससे यह सब प्रजा हुइ हैं ॥ १२ ॥ रुचिके आदिपुरुष यज्ञनामसे आकूतीमें प्रगट हुए और देवहूतीमें कपिलदेव कर्दमजीसे प्रगट हुए ॥ १३ ॥

१ विदित होता है कि, इस राजाने अमेरिका में गमन किया और भूमिकी गोलाई जानी।

कपिलदेवजी सब लोकमें सांख्याचायनामसे विख्यात हुए हैं दक्षसे प्रसूतीमें बहुतसी संतान प्रगट हुई॥ १४॥ जिनके संतान देवता और तिर्यक् इत्यादि हुए वे सब लोकविख्यात सर्गके प्रवृत्त करनेवाले हुए ॥ १५ ॥ भगवान् यज्ञने यामनामक देवगणोंसे युक्त होकर एक समय राक्षसोंसे स्वायंभुवमनुकी रक्षा की थी ॥ १६॥ महायोगी भगवान् कपिलजी अपने आश्रम में स्थित हुए देवहूतीको सब अविद्याका निवृत्त करनेवाला परमज्ञान ॥ १७ ॥ तथा विशेषकर ध्यान, योग, अध्यात्मज्ञानका निश्चय, सब अज्ञानका नाशक कपिलशास्त्र ॥ १८ ॥ उपदेश कर वह महायोगी पुलहाश्रम में चले गये वह महाशय सांख्यमें निपुण अब तक वहां वर्तमान हैं ॥ १९ ॥ जिनके नामस्मरणमात्रसे सांख्ययोग सिद्ध हो जाता है, उन योगाचार्य सर्वश्रेष्ठ कपिलदेवजीको प्रणाम करता हूं

सांख्याचार्यः सर्वलोके विख्यातः कपिलो विभुः ॥ दक्षात्प्रसूत्यां कन्याश्च बहुशो जज्ञिरे प्रजाः ॥ १४ ॥ यासां संतानसंभूता देवतिर्यङ्नरादयः ॥ प्रसूता लोकविख्याताः सर्वे सर्गप्रवर्तकाः ॥ १५ ॥ यज्ञश्च भगवान्स्वायंभुवमन्वंतरे विभुः ॥ मनुं ररक्ष रक्षोभ्यो यामैर्देवगणैर्वृतः ॥ १६ ॥ कपिलोऽपि महायोगी भगवान्स्वाश्रमे स्थितः ॥ देवहूत्यै परं ज्ञानं सर्वाविद्यानिवर्तकम् ॥ १७ ॥ सविशेषं ध्यानयोगमध्यात्मज्ञाननिश्चयम् ॥ कापिलं शास्त्रमाख्यातं सर्वाज्ञानविनाशनम् ॥ १८ ॥ उपदिश्य महायोगी स ययौ पुलहाश्रमम् ॥ अद्यापि वर्तते देवः सांख्याचार्यो महाशयः ॥ १९ ॥ यन्नामस्मरणेनापि सांख्ययोगश्च सिद्ध्यति ॥ तं वंदे कपिलं योगाचार्यसर्ववरप्रदम् ॥ २० ॥ एवमुक्तं मनोः कन्यावंशवर्णमुत्तमम् ॥ पठतां शृण्वतां चाऽपिसर्वपापविनाशनम् ॥ २१ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि मनुपुत्रान्वयं शुभम् ॥ यदाकर्णनमात्रेण परं पदमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥ द्वीपवर्षसमुद्रादिव्यवस्था यत्सुतैः कृता ॥ व्यवहारप्रसिद्ध्यर्थं सर्वभूतसुखाप्तये ॥ २३ ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे भुवनकोशो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जो सब वरके देनेवाले हैं ॥ २० ॥ यह मनुकन्याका उत्तम वंश वर्णन किया इसके पढने सुननेसे सब पाप नाश होते हैं ॥ २१ ॥ अब मनुपुत्रों का सुन्दर वंश कहता हूं जिसके श्रवण करनेसे परमपदकी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥ द्वीप वर्ष, सागर आदिकी व्यवस्था जिसके पुत्रोंने की जिससे व्यवहारकी प्रसिद्धी और सब प्राणियोंको सुख प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारायण बोले स्वायंभुवमनुका ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत हुआ वह नित्य पिताकी सेवामें तत्पर सत्यधर्मका परायण हुआ ॥ १ ॥ उसने प्रजापति विश्वकर्माकी बर्हिष्मती नाम कन्या रूपशीलवतीसे विवाह किया ॥ २ ॥ उसमें अपने समान दश पुत्र और एक कन्या ऊर्जस्वतीनाम प्रगट की ॥ ३ ॥

आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, रुक्मशुक्रके ॥ ४ ॥ धृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि; वीतिहोत्र, कवि यह दश वह्निनामक हुए ॥ ५ ॥ इन दश पुत्रोंमें तीन विरक्त हो गये ये कवि, सवन और महावीर थे ॥६॥ यह सब आत्मविद्यामें निष्णात होनेके कारण ऊर्ध्व रेता हुए और परमहंसनामक आश्रममें आनंदसे निवास करने लगे ॥ ७ ॥ दूसरी भार्यामें तीन पुत्र हुए वे उत्तम, तामस, रैवत नामसे विख्यात हुए ॥ ८ ॥ यह प्रतापी पुत्र मन्वन्तरोंके अधिपति हुए, इस प्रकार राजा प्रियव्रत इस भूमिको भोगने लगा॥९॥ग्यारह अर्ब वर्ष तक बलवान् इन्द्रिय हो कर राज्य करता रहा जब सूर्य इस पृथ्वीके अर्धगोलकमें तपता है

नारायण उवाच् ॥ मनोः स्वायंभुवस्यासीज्ज्येष्ठः पुत्रः प्रियव्रतः ॥ पितुः सेवापरो नित्यं सत्यधर्मपरायणः ॥ १ ॥ प्रजापतेर्दुहितरं सुरूपां विश्वकर्मणः ॥ बर्हिष्मतीं चोपयेमे समानां शीलकर्मभिः ॥ २ ॥ तस्यां पुत्रान्दश गुणरन्वितान्भावितात्मनः ॥ जनयामास कन्यां चोर्जस्वतीं च यवीयसीम् ॥३॥ आग्नीध्रश्चेध्मजिह्वश्च यज्ञबाहुस्तृतीयकः ॥ महावीरश्चतुर्थस्तु पंचमो रुक्मशुक्रकः ॥ ४ ॥ घृत पृष्ठश्च सवनो मेधातिथिरथाष्टमः ॥ वीतहोत्रः कविश्चेति दशैते वह्निनामकाः ॥ ५ ॥ एतेषां दश पुत्राणां त्रयोऽप्यासन्विरागिणः ॥ कविश्च सवनश्चैव महावीर इति त्रयः ॥६॥ आत्मविद्यापरिष्णाताः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ॥ आश्रमे परहंसाख्ये निःस्पृहा ह्यभवन्मुदाः ॥ ७ ॥ अपास्यां च जायायां त्रयः पुत्राश्च जज्ञिरे ॥ उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चेति विश्रुताः ॥ ८ ॥ मन्वंतराधिपतय एते पुत्रा महो जसः ॥ प्रियव्रतः स राजेंद्रो बुभुजे जगतीमिमाम् ॥ ९ ॥ एकादशार्बुदाब्दानामव्याहतबलेंद्रियः ॥ यदा सूर्यः पृथिव्याश्च विभागे प्रथ मेऽतपत् ॥१०॥ भागे द्वितीये तत्रासीदंधकारोदयः किल ॥ एवं व्यतिकरं राजा विलोक्य मनसा चिरम् ॥ ११ ॥ प्रशास्ति मयिभूम्यां च तमः प्रादुर्भवेत्कथम् ॥ एवं निवारयिष्यामि भूमौ योगबलेन च ॥ १२ ॥ एवं व्यवसितो राजा पुत्रः स्वायंभुवस्य सः ॥ रथेनादित्य वर्णेन सप्तकृत्वः प्रकाशयन् ॥ १३ ॥ तस्यापि गच्छतो राज्ञो भूमौ यद्रथनेमयः ॥ पातितास्ते समुद्राख्यां भेजिरे लोक हेतवे ॥ १४ ॥

॥ १० ॥ तब नीचेके आधे भागमें अन्धकार रहता है राजाने यह व्यतिकर देख मनमें विचार किया ॥ ११ ॥ कि मेरे शासनकालमें पृथ्वीमें अन्धकार कैसे रह सकता है मैं अमने योगबलसे इस अन्धकारको दूर करूंगा ॥ १२ ॥ इस प्रकार स्वायंभुवपुत्रने विचार कर सूर्यके समान एक प्रकाशित रथ बनाय सात वार प्रदक्षिणा कर निम्नभागका अन्धकार दूर किया ॥ १३ ॥ ऐसी सात प्रदक्षिणा उस रथकी होने से जो भूमिमें गर्त हुए वही सात सागरनामसे विख्यात हुए ॥ १४ ॥

और भूमिविभागके कारण वही स्थलभाग सात द्वीप कहाये रथनेमिसे प्रगट हुई परिखाही सात सागर कहाये ॥ १५ ॥ उनके बीचकी भूमि सात द्वीपनाम वाली हुई, जंबू, प्लक्ष, शाल्मली ॥१६॥ कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप पुष्करद्वीप हुए इनका परिणाम भी एकसे दूसरेका दूना है ॥१७॥ और इनके चारों ओर कमसे खारीजल, इक्षुरस, सुरोद घृतरूपजल, ॥ १८ ॥ क्षीरोद, दधि, मन्दोद, शुद्धोद, यह सातसागर पृथ्वीमें विख्यात हैं यह जलोंके भेद हैं इन्हीं सातों सागरों से यह सातों वस्तु गो इक्षु आदि द्वारा प्रगट होती हैं ॥ १९ ॥ पहला जंबूद्वीप क्षारसमुद्रसे वेष्टित है, उसका राज्य राजाने आग्नीध्र

जाताः प्रदेशास्ते सप्त द्वीपा भूमौ विभागशः ॥ रथनेमिसमुत्थास्ते परिखाः सप्तसिंधवः ॥ १५ ॥ यत आसंस्ततः सप्त भुवो द्वीपा हि ते स्मृताः ॥ जंबुद्वीपः प्लक्षद्वीपः शाल्मलीद्वीपसंज्ञकः ॥ १६ ॥ कुशद्वीपः क्रौचद्वीपः शाकद्वीपश्च पुष्करः तेषां च परिमाणं तु द्विगुणं चोत्तरोत्तरम् ॥ १७ ॥ समंतत श्चोपक्लृप्तं बहिर्भाग क्रमेणि च ॥ क्षारोदेक्षुरसोदौ च सुरोदश्च घृतोदकः ॥ १८ ॥ क्षीरोदो दधिमंडोदः शुद्धोदश्चेति ते स्मृताः सप्तैते प्रतिविख्याताः पृथिव्यां सिंधवस्तदा ॥ १९ ॥ प्रथमो जम्बुद्वीपाख्यो यः क्षारोदेन वेष्टितः ॥ तत्पतिं विदधे राजा पुत्रमाग्नीध्रसंज्ञकम् ॥ २० ॥ प्लक्षद्वीपे द्वितीयेऽस्मिन्द्वीपेक्षुरससंप्लुते ॥ जातस्तदधिपः प्रैयव्रत इध्मादिजिह्वकः ॥ २१ ॥ शाल्मलीद्वीप एतस्मिन्सुरोदधिपरिप्लुते ॥ यज्ञबाहुं तदधिपं करोति स्म प्रियव्रतः ॥ २२ ॥ कुशद्वीपेऽतिरम्ये च घृतोदेनोपवेष्टिते ॥ हिरण्यरेता राजाऽभूत्प्रियव्रततनूजनिः ॥ २३ ॥ क्रौंचद्वीपे पंचमे तु क्षीरोदपरिसंप्लुते ॥ प्रैयव्रतो घृतपृष्ठः पतिरासीन्महाबलः ॥ २४ ॥ शाकद्वीपे चारुतरे दधिमंडोदसंकुले मेधातिथिरभूद्राजा प्रियव्रतसुतो वरः ॥ २५ ॥ पुष्करद्वीपके शुद्धोदकसिंधुसमाकुले ॥ वीति होत्रो बभूवासौ राजा जनकसंमतः ॥ २६ ॥ कन्यामूर्जस्वतीनाम्नीं ददावुशनसे विभुः ॥ आसीत्तस्यां देवयानी कन्या काव्यस्य विश्रुता ॥ २७ ॥

पुत्रको दिया ॥ २० ॥ इक्षुरससे वेष्टित प्लक्षद्वीपका अधिपति इध्मजिह्वको किया ॥ २१ ॥ सुरोदसे वेष्टित शाल्मलीद्वीपका अधिपति यज्ञबाहुको किया ॥ २२ ॥ घृतोदसे वेष्टित मनोहर कुशद्वीपका अधिपति रुक्मशुक्रको किया ॥ २३ ॥ क्षीरोदसे वेष्टित पांचवें क्रौंचद्वीपका अधिपति प्रियव्रतने महाबली घृतपृष्ठको किया ॥ २४ ॥ दधिमंडसे वेष्टित मनोहर शाकद्वीपका अधिपति राजाने सुपुत्र मेधातिथिको किया ॥ २५ ॥ शुद्ध जलसे पूर्ण पुष्कर द्वीपका अधिपति राजाने वीतिहोत्रको किया ॥ २६ ॥ ऊर्जस्वतीनामक कन्या उशनाको व्याहदी उससे देवयानी कन्या प्रगट हुई ॥ २७ ॥

इस प्रकार प्रियव्रतने सात द्वीपोंको विभाग करके पुत्रोंको दे ज्ञानमार्गकी प्राप्तिके निमित्त योगमार्गका आश्रय लिया ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्री नारायण बोले हे नारदजी द्वीपवर्षके भेदसे इस सब भूमण्डलका विस्तार सुनो ॥ १ ॥ जो संक्षेपसे कहता हूं विस्तारसे नहीं यह जम्बूद्वीप प्रमाणमें लाख योजन है ॥ २ ॥ यह विशाल गोलाकार कमलकर्णिकाके समान है जिसमें नव सहस्र योजनमें नौ वर्ष हैं ॥ ३ ॥ इतनेही चौडे पर्वतोंसे घिरा हुआ है अर्थात् एक २ वर्षका नौ सहस्रयोजनमें विस्तार है, आठ मर्यादा पर्वतोंमें विभक्त है ॥ ४ ॥ दक्षिण

एवं विभज्य पुत्रेभ्यः सप्तद्वीपान्प्रियव्रतः ॥ विवेकवशगो भूत्वा योगमार्गाश्रितोऽभवत् ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे भुवनकोशे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ देवर्षे शृणु विस्तारं द्वीपवर्षविभेदतः ॥ भूमंडलस्य सर्वस्य यथा देवप्रकल्पितम् ॥ १ ॥ समासात्संप्रवक्ष्यामि नालं विस्तरतः क्वचित् ॥ जंबुद्वीपः प्रथमतः प्रमाणे लक्षयोजनः ॥ २ ॥ विशालो वर्तुलाकारो यथाऽब्जस्य च कर्णिका ॥ नव वर्षाणि यस्मिंश्च नवसाहस्रयोजनैः ॥ ३ ॥ आयामैः परिसंख्यानि गिरिभिः परितः श्रितैः ॥ अष्टभिर्दीर्घरूपैश्च सुविभक्तानि सर्वतः ॥ ४ ॥ धनुर्वत्संस्थिते ज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ॥ दीर्घाणि तत्र चत्वारि चतुरस्रमिलावृतम् ॥ ५ ॥ इलावृतं मध्यवर्षं यन्नाभ्यां सुप्रतिष्ठितः ॥ सौवर्णो गिरिराजोऽयं लक्षयोजनमुच्छ्रितः ॥ ६ ॥ कर्णिकारूप एवायं भूगोलकमलस्य च ॥ मूर्ध्नि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनैर्विततस्त्वयम् ॥ ७ ॥ मूले षोडशसाहस्रतावताऽन्तर्गतः क्षितौः ॥ इलावृत स्योत्तरतो नीलः श्वेतश्च शृंगवान् ॥ ८ ॥ त्रयो वै गिरयः प्रोक्ता मर्यादावधयस्त्रिषु ॥ रम्यकाख्ये तथावर्षे द्वितीये च हिरण्मये ॥ ९ ॥ कुरुवर्षे तृतीये तु मर्यादा व्यंजयंति ये ॥ प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयस्तथा ॥ १० ॥

उत्तरके दो वर्ष धनुषके समान स्थित हैं और चार केवल दीर्घाकार मात्र हैं इस सबके मध्य इलावृत है ॥५॥ इलावृत मध्यदर्षनाभिरूपसे प्रतिष्ठित है इसमें मेरु सुवर्णका पर्वत लाख योजनका ऊंचा है ॥ ६ ॥ यह भूगोल कमलकी कर्णिकारूप है शिखरका बत्तीस सहस्र योजनका विस्तार है ॥ ७ ॥ मूलमें यह पर्वत सोलह सहस्र योजन तक चला गया है, इलावृतके उत्तरमें नील और श्वेत पर्वत शृंगवाला है ॥ ८ ॥ इनमें यह तीन मर्यादापर्वत कहाते हैं रम्यक नामक वर्ष दूसरे हिरण्मयवर्षमें ॥ ९ ॥ तथा तीसरे कुरुवर्षमें यह पर्वत मर्यादा करते हैं यह पूर्वकी ओरसे दीर्घ हुए क्षारसमुद्रतक अवधिवाले हैं ॥ १० ॥

एक तटसे दूसरे तटतक पूर्वसे उत्तरतक दो सहस्र योजनमें वर्त्तमान हैं इसके एक २ क्रमसे पूर्वसे उत्तर दिग्भागमें दश अंशसे किंचित् मात्र अधिक परिमाणमें दीर्घतासे स्थित है ॥ ११ ॥ इस पर्वतसे कितने नदनदी निकलते हैं इलावृतसे दक्षिणकी ओर निषध हेमकूट ॥ १२ ॥ और हिमालय यह तीन पर्वत विस्तारको प्राप्त हैं यह दश २ सहस्र योजनके ऊंचे हैं ॥१३॥ इन तीनों वर्षोंकी हरिवर्ष किं पुरुष और भारतवर्ष इन तीन वर्षोंकी मर्यादा होती है इनके विभाग करनेसे यह मर्यादापर्वत कहाते हैं ॥१४॥ इलावृतके पश्चिममें माल्यवान् नाम पर्वत है पूर्वमें श्रीमान् गंधमादन पर्वत है ॥ १५ ॥ नीलनिषपर्वतपर्यन्त यह मर्यादाकारी पर्वत दो सहस्र योजनपर्यन्त विस्तृत हो रहे हैं ॥ १६ ॥ केतुमाल और भद्राश्व वर्षोंकी मर्यादा करते हैं मंदर मेरुमंदर और सुपार्श्व ॥ १७ ॥ तथा कुमुद

द्विसहस्रपृथुतरास्तता एकैकशः क्रमात् ॥ पूर्वात्पूर्वाच्चोत्तरस्यां दशांशादधिकांशतः ॥ ११ ॥ दैर्घ्य एव ह्रसंतीमे नाना नदनदीयुताः ॥ इलावृताद्दक्षिणतो निषधो हेमकूटकः ॥ १२ ॥ त्रयो हिमालयश्चेति प्राग्विस्तीर्णाः सुशोभनाः ॥ अयुतोत्सेध भाजस्ते योजनैः परिकीर्तिताः ॥ १३ ॥ हरिवर्षं किंपुरुषं भारतं च यथातथम् ॥ विभागात्कथयंत्येते मर्यादागिरयस्त्रयः ॥ १४ ॥ इलावृतात्पश्चिमतो माल्यवान्नाम पर्वतः ॥ पूर्वेण च ततः श्रीमान्गंधमादनपर्वतः ॥ १५ ॥ आनीलनिषधं त्वेतौ चायतौ द्विसहस्रतः ॥ योजनैः पृथुतां यातौ मर्यादाकारकौ गिरी ॥ १६ ॥ केतुमालाख्यभद्राश्ववर्षयोः प्रथितौ च तौ ॥ मंदरश्च तथा मेरुमंदरश्च सुपार्श्वकः ॥ १७ ॥ कुमुदश्चेति विख्याता गिरयो मेरुपादकाः ॥ योजनायुतविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशम् ॥ १८ ॥ अवष्टंभकरास्ते तु सर्वतोऽभिविराजिताः ॥ एतेषु गिरिषु प्राप्ताः पादपाश्चूतजंबुनी ॥ १९ ॥ कदंबन्यग्रोध इति चत्वारः पर्वताः स्थिताः ॥ केतवो गिरिराजेषु एकादशशतोच्छ्रयाः ॥ २० ॥ तावद्विट पविस्ताराः शताख्यपरिणाहिनः ॥ चत्वारश्च ह्रदास्तेषु पयोमध्विक्षु सज्जलाः ॥ २१ ॥ यदुपस्पर्शिनो देवा योगैश्वर्याणि विंदते ॥ देवाद्यानानि चत्वारि भवंत ललनासुखाः ॥ २२ ॥

यह पर्वत मेरुपादरूप कहलाते हैं इनका अयुत १०००० योजनोंका विस्तार है और यह मेरुके चारों ओर हैं ॥ १८ ॥ अर्थात् मेरुको अवरोध करनेवाले यह सब ओरसे विराजते हैं इनही पर्वतोंपर आम जामुन ॥ १९ ॥ कदंब न्यग्रोधनामक चार वृक्ष स्थित हैं यह ग्यारह सौ योजन ऊंचे पर्वतकी ध्वजारूपसे शोभित हैं ॥२०॥ इतनाही वृक्षोंका विस्तार है उतनाही इनकी शाखाओंका परिमाण है और शोभित हैं इनमें पयह्रद, मधुह्रद, इक्षुह्रद, और अच्छे जलके चार ह्रद हैं ॥ २१ ॥ जिनके स्पर्शमात्र से देवतायोगैश्वर्यको जानते हैं और वह स्त्रीजनोंको सुखदायक चार देवोद्यान हैं ॥ २२ ॥

नन्दनवन, चित्ररथ, वैभ्राज और सर्वभद्र जहां देवता स्त्रीजनोंसे संयुक्त होकर ॥ २३ ॥ उपदेवताओंसे अपनी महिमा गवाते प्रसन्न होते हैं और स्वतंत्र होकर यथाकाम यथासुखसे विहार करते हैं ॥ २४ ॥ मन्दरपर्वतके ऊपर स्थित देव आम्रके ऊपरसे जो कि ग्यारहसे योजन ऊंचा है अमृतमय फल टपकते हैं ॥ २५ ॥ जो कि पर्वतखण्डके समान स्वादु और मृदु होते हैं उन गिर कर टूटे हुए फलोंके रससे ॥ २६ ॥ जो कि लालरंगसा रस है उससे अरुणोदा नदी निर्मलजलवाली दैत्यराजसे पूजित वहन करती है ॥२७॥ हे महाराज ! वहां पापहारिणी अरुणाख्या देवी जो सब कामना देती है उसको सब कोई पूजन करते हैं ॥ २८ ॥ उन पापनाशिनी अभयदायिनीको अनेक प्रकारके उपहार भट बलिसे पूजते हैं और उसके कृपावलोकनसे क्षेम और आरोग्य

नंदनंचैत्ररथकं वैभ्राजं सर्वभद्रकम् ॥ येषु स्थित्वाऽमरगणा ललनायूथ संयुताः ॥ २३ ॥ उपदेवगणैर्गीतमहि मानो महाशयाः ॥ विहरंति स्वतंत्रास्ते यथाकामंयथासुखम् ॥ २४ ॥ मंदरोत्संगसंस्थस्या देवचूतस्य मस्तकात् ॥ एकादशशतोच्छ्रायात्फलान्यमृत भांजि च ॥ २५ ॥ गिरिकूटप्रमाणानि सुस्वादूनि मृदूनि च ॥ तेषां विशीर्यमाणानां फलानां सुरसेन च ॥ २६ ॥ अरुणोदसवर्णेन अरुणोदा प्रवंतते ॥ नदी रम्यजला देवदैत्यराजप्रपूजिता ॥ २७ ॥ अरुणाख्या महाराज वर्तते पापहारिणी ॥ पूजयंति च तां देवीं सर्वकामफल प्रदाम् ॥ २८ ॥ नानोपहारबलिभिः कल्मषघ्न्य भयप्रदाम् ॥ तस्याः कृपावलोकेन क्षेमारोग्यं व्रजंति ते ॥ २९ ॥ आद्या माया तुलाऽनंता पुष्टिरीश्वरमालिनी ॥ दुष्टनाशकरी कांतिदायिनीति स्मृता भुवि ॥ ३० ॥ अस्याः पूजा प्रभावेण जांबूनद मुदावहत् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे भुवनलोकवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अरुणोदा नदी या तु मया प्रोक्ता च नारद ॥ मंदरान्निपतंती सा पूर्वेणेलावृतं प्लवेत् ॥ १ ॥ यज्जोषणाद्भवान्याश्चाऽनुचरीणां स्त्रियामपि ॥ यक्षगन्धर्वपत्नीनां देहगंधवहोऽनिलः ॥ २ ॥ वासयत्यभितो भूमिं दशयोजनसंख्यया एवं ॥ जंबूफलानां च तुंगदेशनिपातनात् ॥ ३ ॥

ताको प्राप्त होते हैं ॥२९॥ वह आद्यमाया अतुला, अनन्ता, पुष्टि, ईश्वरमालिनी है, वह दुष्टोंकी नाशक, कान्तिदायिनी, विख्यात हैं ॥ ३० ॥ इन्हींकी पूजाके प्रभावसे जाम्बूनद प्रवाहित होता है ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारद ! जो मैंने अरुणोदानामक नदी कही है वह मंदरपर्वतसे निकल कर इलावृतके पूर्वसे पतित होती है॥१॥ जिसके प्रेमपूर्वक सेवनसे भवानीकी अनुचरी—सखियें यक्ष गन्धर्वोंकी पत्नियोंके देहसे गंध ले चलनेवाली पवन ॥२॥ दश योजनपर्यंत भूमिको वासित करती है इस प्रकार जम्बू फलोंके ऊंचे देशसे गिरनेके कारण ॥ ३ ॥

वे हाथीके समान बडे फल टूटकर उसके रससे मेरुमंदरसे जम्बूनामक नदी ॥ ४ ॥ भूमिभागमें प्राप्त होकर इलावृतके दक्षिण ओरसे बहती है वहां जम्बूफलके आस्वादसे तुष्ट होनेके कारण देवी जम्बादिनी कहाती है ॥ ५ ॥ यहांके रहनेवाले देव नाग ऋषि राक्षस उसे संपूर्ण प्राणियोंपर दया करने वालीका पूजन करते हैं ॥ ६ ॥ वह पापियोंको पवित्र करनेवाली और स्मरणसेही रोग नाशनेवाली कीर्त्तनसे विघ्न हरती और सदा देवताओंकी माननीया है ॥ ७ ॥ वह कोकिलाक्षी कामकला दया और कामसे पूजित कठोर शरीरवाली धन्या देवताओंकी माननीया गर्भस्तन युक्त ॥ ८ ॥ इन नामोंसे वहांके निवासियोंको सदा भजन करना चाहिये जम्बूनदीके किनारेकी जो मृत्तिका है ॥९॥ वह जामुनके रससे संयुक्त हो वायु और सूर्यके संपर्कसे विद्याधर और देवताओंकी स्त्रियोंके

विशीर्यतामनस्थीनां कुञ्जरांगप्रमाणिनाम् ॥ रसेन् च नदी जंबूनाम्नी मेर्वाख्यमंदरात् ॥ ४ ॥ पतंती भूमिभागे च दक्षिणेलावृतं गता ॥ देवी जंबूफलास्वादतुष्टा जंब्वादिनी स्मृता ॥ ५ ॥ तत्रत्यानां च लोकानां देवनागर्षिरक्षसाम् ॥ पूजनीयपदा मान्या सर्वभूतदयाकरी ॥ ६ ॥ पावनी पापिनां रोगनाशिनी स्मरतामपि ॥ कीर्तिता विघ्नसंहर्त्री माननीया दिवौकसाम् ॥ ७ ॥ कोकिलाक्षी कामकला करुणा कामपूजिता ॥ कठोरविग्रहा धन्या नाकिमान्या गभस्तिनी ॥ ८ ॥ एभिर्नामपदैः कामं जपनीया सदा नृणाम् ॥ जंबूनदीरोधसोर्या मृत्तिका तीरवर्तिनी ॥ ९ ॥ जंबूरसेनानुविद्धचमाना वाय्वर्कयो गतः ॥ विद्याधरामरस्त्रीणां भूषणं विविधं महत् ॥ १० ॥ जाम्बूनदं सुवर्ण च प्रोक्तं देवविनिर्मितम् ॥ यत्सुवर्णं च विविधा योषिद्भिः कामुकासदा ॥ ११ ॥ मुकुटं कटिसूत्रं च केयूरादीन्प्रकुर्वत ॥ महा कदंबः संप्रोक्तः सुपार्श्वगिरिसंस्थितः ॥१२॥ तस्य कोटरदेशेभ्यः पंच धाराश्च याः स्मृताः ॥ सुपार्श्व गिरि मूर्ध्नीह पतंत्येता भुवं गताः ॥१३॥ मधुधाराः पञ्च तास्तु पश्चिमेलावृतं प्लुताः ॥ याश्चोपभुज्यमानानां देवानां मुखगन्धभृत् ॥ १४ ॥ वायुः समंततो गच्छञ्छत योजनवासनः ॥ धारेश्वरी महादेवी भक्तानां कार्यकारिणी ॥ १५ ॥

अनेक प्रकारके भूषणोंका हेतु ॥ १० ॥ देवनिर्मित जाम्बूनद सुवर्ण कहाता है जिस सोनेकी इच्छा देवताओंकी स्त्रियें करती हैं ॥ ११ ॥ मुकुट, मेखला, बाजूबंद आदि बनवाती हैं और सुपार्श्वपर्वतपर स्थित वृक्ष महाकदम्ब कहाता है ॥ १२ ॥ उसके खखोडलसे जो पांच धारा निकलती हैं वे सुपार्श्वपर्वतके शिखरसे पतित होती हैं ॥ १३ ॥ वे पांचों मधुधारा पश्चिम इलावृतमें बहती हैं जहांके भोगी देवताओंके मुखकी गंधको लेकर ॥ १४ ॥ वायु समन्तात् सौ योजन तक सुगन्ध कर देती है वहां भक्तोंकी कार्यसाधिका धारेश्वरी महादेवी है ॥ १५ ॥

वह देवताओंसे पूजित महा उत्साहवाली कालरूपा, महामनवाली वनग्रहणकी अधिष्ठात्री कर्मफलदात्री निवास करती है ॥ १६ ॥ वह करालदेहवाली, कालांगी करोड़ों कामको प्रवृत्त करनेवाली सर्वेश्वरी देवी इन नामोंसे पूजनी चाहिये ॥ १७ ॥ इसी प्रकार कुमुद पर्वतपर जो शतबलनामक वटवृक्ष हैं उसकी स्कन्ध शाखासे कुमुदशिखरपर होते हुए नद ॥१८॥ पय, दधि, मधु, घृत, गुड, अन्न, अम्बर, शय्या, आसन आदि आभरणदायक होते हैं बहुत क्या वे सब कामना देनेवाले हैं ॥१९॥ वे सब ओरसे इलावृतके उत्तरभागको प्लावित करते हैं उसके निकटवर्ती देवता असुरोंसे संवित मीनाक्षी देवी है ॥ २० ॥ वह निलाम्बरा. रौद्रमुखी नीलअलक संयुक्त, स्वर्गवासी देवताओंको फलदात्री और वरदायिनी है ॥ २१ ॥ अतिशय माननीया अतिपूज्या मत्तमातंगके

देवपूज्या महोत्साहा कालरूपा महानना ॥ वसते कर्मफलदा कांतारग्रहणेश्वरी ॥ १६ ॥ करालदेहा कालांगीं कामकोटिप्रवातनी ॥ इत्येतैर्नामभिः पूज्या देवी सर्वसुरेश्वरी ॥ १७ ॥ एवं कुमुदरूढो यो नाम्ना शतबलो वटः ॥ तत्स्कंधेभ्योऽधोमुखाश्च नदाः कुमुद मूर्धतः ॥ १८ ॥ पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यंबरादिभिः ॥ शय्यासनाद्याभरणैः सर्वे कामदुघाश्च ते ॥ १९ ॥ उत्तरेणेलावृतं ते प्लावयंति समंततः ॥ मीनाक्षी तत्तले देवी देवासु रनिषेविता ॥ २० ॥ नीलांबरा रौद्रमुखी नीलालकयुता च सा ॥ नाकिनां देवसंघानां फलदा वरदा च सा ॥ २१ ॥ अतिमान्याऽतिपूज्या च मत्तमातंग गामिनी ॥ मदनोन्मादिनी मानप्रिया मानप्रियांतरा ॥ २२ ॥ मारवेगधरा मारपूजिता मारमादिनी ॥ मयूरवरशोभाढ्या शिखिवाहन गर्भभूः ॥ २३ ॥ एभिर्नामपदैर्वंद्या देवी सा मीनलोचना ॥ जपतां स्मरतां मानदात्री चेश्वरसंगिनी ॥ २४ ॥ तेषां नदानां पानीयपाना नुगतचेतसाम् ॥ प्रजानां न कदाचित्स्याद्वलीपलितलक्षणम् ॥ २५ ॥ क्लमस्वेदादि दौर्गंध्यं जरामयमृतिभ्रमाः ॥ शीतोष्णवातवैवर्ण्यं मुखोपप्लवसंचयाः ॥ २६ ॥

समान गमन करनेवाली, मदनकी उन्मादक, मानप्रिया, मानप्रियांतरा ॥ २२ ॥ कामवेगधारिणी, कामपूजिता, काममादिनी सुन्दर मयूरवत् शोभाकी खान कार्तिकेयको गर्भसे प्रगट करनेवाली ॥ २३ ॥ इन नामोंसे मीनाक्षी देवीको प्रणाम करना चाहिये वह ईश्वरसंगिनी जपने और स्मरण करनेवालोंको मान देती है ॥ २४ ॥ उन नदोंके जलपान करनेवालोंके कभी बालोंमें श्वेतता तथा झाईं नहीं पडती ॥२५॥ परिश्रमके स्वेदकी दुर्गन्धि जरारोगकी प्राप्ति और भ्रम, शीत, उष्णवातसे विवर्ण मुखपर झाईं पड़ जाना ॥ २६ ॥

दे. भा. यह जीवन पर्यन्त भी नहीं होते हैं, जीवनपर्यन्त सुखी रहते निरंतर उनको अधिक सुख होता है ॥ २७ ॥ अब इसके आगे कहता हूं कि, उस
॥१०॥ पर्वतके निकटही सुवर्णमय नामवाले सुमेरुके पृथक् पर्वत हैं ॥ २८ ॥ वे बीस पर्वत कर्णिकाके समान शोभित होते हैं वे मेरुके मूलभागमें केसररूपसे स्थित हैं ॥ २९ ॥ वे चारों ओरसे शोभित हैं उनके नाम सुनो कुरंग, कुरग कुशुंभ, विककत ॥ ३० ॥ त्रिकूट, शिशक, पतंग, रुचक, निषध, शितीवास, कपिल, शंख, ॥३१॥ वैदूर्य, चारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालिंजर और नारद यह बीस पर्वत हैं ॥ ३२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे भाषायामष्टम स्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीनारायण बोले सुमेरुपर्वतके पूर्व दो पर्वत अठारहसहस्र योजनपर उत्तरकी ओरको लम्बे दो सहस्र ऊंचे और इतनेही चौड़े हैं

नापदश्चैव जायंते यावज्जीवं सुखं भवेत् ॥ नैरंतर्येण तत्स्याद्वै सुखं निरतिशायकम् ॥२७॥ तत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि संनिवेशं च तद्गिरेः ॥ सुवर्णमयनाम्नो वै सुमेरोः पर्वताः पृथक् ॥२८॥ गिरयो विंशतिपराः कर्णिकाया इवेहते ॥ केशरी भूय सर्वेऽपि मेरोमूलविभागके ॥ २९ ॥ परितश्चोपक्लृप्तास्ते तेषां नामानि शृण्वतः ॥ कुरंगः कुरगश्चैव कुशुम्भोऽथो विकंकतः ॥ ३० ॥ त्रिकूटः शिशिरश्चैव पतंगो रुचकस्तथा ॥ निषधश्च शितीवासः कपिलः शंख एव च ॥ ३१ ॥ वैदूर्यश्चारुधिश्चैव हंसो ऋषभ एव च ॥ नागः कालंजरश्चैव नारदश्चेति विंशतिः ॥ ३२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ गिरी मेरुं च पूर्वेण द्वौ चाष्टादशयोजनैः ॥ सहस्रैरायते चोदग्द्विसहस्रपृथूच्चकौ ॥ १ ॥ जठरो देवकूटश्चातावेतो गिरिवर्यकौ ॥ मेरोः पश्चिमतोऽद्री द्वौ पवमानस्तथाऽपरः ॥ २ ॥ पारियात्रश्च तौ तावद्विख्यातौ तुंगविस्तरौ ॥ मेरोर्दक्षिणतः ख्यातौ कैलासकर वीरकौ ॥ ३ ॥ प्रागायतो पूर्ववृत्तौ महापर्वत राजकौ ॥ एवं चोत्तरतो मेरोस्त्रिशृंगमकरौ गिरी ॥ ४ ॥ एतश्चाद्रिवरैरष्टसंख्यैः परिवृतो गिरिः ॥ सुमेरुः कांचनगिरिः परिभ्राजत्रविर्यथा ॥ ५ ॥ मेरोर्मूर्धनि धातुर्हि पुरी पंकजजन्मनः ॥ मध्यतश्चोपक्लृप्तेयं दशसाहस्रयोजनैः ॥ ६ ॥

॥ १ ॥ इन पर्वतोंके नाम जठर और देवकूट हैं मेरुके पश्चिमसे दो पर्वत इतनीही दूर इतनेही लम्बे चौडे हैं इसके आगे पवमान है ॥ २ ॥ और परियात्र
भा.टी.अ. है इनका भी पूर्वके समान विस्तार है मेरुके दक्षिणमें कैलास और करवीर पर्वत हैं यह पर्वतराज पूर्वदिशामें दीर्घहो रहे हैं इस प्रकार सुमेरुके उत्तरमें त्रिशृंग
अ० ७ और मकरपर्वत हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ इन आठ श्रेष्ठ पर्वतोंसे यह पर्वत व्याप्त है सुमेरु सुवर्णका पर्वत सूर्यके समान विराजमान होता है ॥ ५ ॥ सुमेरुके शिखरपर ही कमलभव विधाता ब्रह्माकी पुरी है, यह मध्यमें दशसहस्र योजनकी है ॥ ६ ॥

वह समान और चौकोन सोनेकी पुरी है ऐसा परावरके ज्ञाता महात्मा वर्णन करते हैं ॥ ७ ॥ उस पुरीके निम्नभागमें आठों लोकपालोंकी सुवर्णमयपुरी आठों दिशाओंमें स्थित हैं ॥ ८ ॥ वे सब ढाई सहस्रयोजनके प्रमाणमें हैं ऐसी मेरुपर ब्रह्मपुरीके सहित नौपुरी हैं मनोवती, अमरावती, ॥ ९ ॥ तेजोवती, संयमनी, कृष्णांगना, श्रद्धावती, गंधवती, महोदया ॥१०॥ यशोवती यह क्रमसे ब्रह्मा, इंद्र, अग्नि आदिकोंकी हैं उसी स्थानमें त्रिविक्रमावतारधारी भगवान् विष्णुके ॥ ११ ॥ वामपादके नखसे भिन्न होकर हे नारद ! अंडकटाहके ऊर्ध्वभागके रंध्रमध्यसे दिवलोकमें प्रविष्ट होती हुई सी ॥ १२ ॥ स्वर्गसे अवतरित होकर गंगा प्रवाहित होती है, जिसका जल सम्पूर्ण लोकोंका पाप हरण करता है ॥ १३ ॥ यह साक्षात् लोकमें भगवत्पदीनामसे विख्यात है वह सहस्रयुग पर्यन्त

समानचतुरस्रां च शातकौम्भमयीं पुरीम् ॥ वर्णयंति महात्मानः परावरविदो बुधाः ॥ ७ ॥ तां पुरीमनुलोकानामष्टानामीशिषां पराः ॥ पुर्यः प्रख्यातसौवर्णरूपास्ताश्च यथादिशम् ॥ ८ ॥ यथारूपं सार्धनेत्रसहस्रप्रमिताः कृताः ॥ मेरोर्नव पुराणि स्युर्मनोवत्यमरावती ॥ ९ ॥ तेजोवती संयमनी यथा कृष्णांगनाऽपरा ॥ श्रद्धावती गन्धवती तथा चान्या महोदया ॥ १० ॥ यशोवती च ब्रह्मेंद्रवह्न्यादीनां यथा क्रमम् ॥ तत्रैव यज्ञलिंगस्य विष्णोर्भगवतो विभोः ॥ ११ ॥ वाम पादांगुष्ठनखनिर्भिन्नस्य च नारद ॥ अंडोर्ध्वभागरंध्रस्य मध्यात्सं विशती दिवः ॥ १२ ॥ मूर्धन्यवततारेयं गंगा संविशती विभोः ॥ लोकानामखिलानां च पापहारिजलाकुला ॥ १३ ॥ इयं च साक्षा द्भगवत्पदी लोकेषु विश्रुता ॥ कालेन महता सा तु युगसाहस्र केण तु ॥ १४ ॥ दिवो मूर्धान मागत्य देवीदेवनदीश्वरी ॥ यत्तद्विष्णुपदं नाम स्थानं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १५ ॥ औतानपादिर्यत्रास्ते ध्रुवः परमपावन ॥ भगवत्पादयुगलपद्मकोशरजो दधत् ॥ १६ ॥ अद्या प्यास्ते स राजर्षिः पदवीमचलां श्रितः ॥ तत्र सप्तर्षस्तस्य प्रभावज्ञा महाशया ॥१७॥ प्रदक्षिणं प्रक्रमंति सर्वलोक हितेप्सवः ॥ आत्यंतिकी सिद्धिरियं तपतां सिद्धिदायिनी ॥ १८ ॥

बडे समय तक ॥ १४ ॥ दिव्य लोकके मूर्धदेशमें आकर वह देवनदियोंकी अधीश्वरी स्थित है जो विष्णुपदनामक त्रिलोकीमें विख्यात स्थान है ॥ १५ ॥ जहां परमपवित्र उत्तानपादके पुत्र ध्रुव निवास करते हैं जो भगवान्के चरणारविंदकी रज मस्तकपर धारण करते हैं ॥ १६ ॥ अबतक यह राजर्षि अचलप दवीको प्राप्त हो स्थित हैं वहां उनके प्रभावके जाननेवाले सप्तऋषि ॥ १७ ॥ सब लोकके हितकी इच्छासे उनकी परिक्रमा करते हैं यह तपकी आत्यंतिकी सिद्धि देनेवाली है ॥ १८ ॥

यही विचार कर वे महर्षि अपने जटाजूटोंमें नित्य गंगाका आदर करते अर्थात् स्नान करते हैं फिर यह देवी विष्णुपदसे अनेक सहस्र कोटि ॥ १९ ॥ विमानोंसे व्याप्त देवयान मार्गमें अवतरण करती हैं और चन्द्रमंडलको प्लावित कर ब्रह्मभवनमें प्राप्त होती हैं ॥ २० ॥ हे नारद ! ब्रह्मलोकमें वह चार प्रकारके भेदको प्राप्त होती है, और चार नामसे वह देवी चार दिशामें निर्गत हुई है ॥ २१ ॥ और सरित्पति सागरमें प्राप्त होती है गंगा, सीता, अलकनन्दा, चतुर्भद्रा यह चारोंके नाम हैं ॥२२॥ सीता ब्रह्मलोकसे होकर पर्वतोंके शिखरोंसे जिनका कि केशर नाम है अर्थात् सुमेरुकर्णिकाके केशरभूत पर्वतोंसे निकलती हुई ॥ २३ ॥ वह पापहारिणी गंधमादन पर्वतके शिखर में पतित होती है और भद्राश्ववर्षके मध्य होती हुई सागरसे मिलती है ॥ २४ ॥ इस प्रकार देवपूजितद्युलोककी

आद्रियंते च शिरसा जटाजूटोषितेन च ॥ ततो विष्णुपदाद्देवी नैकसाहस्र कोटिभिः ॥ १९ ॥ विमानैराकुले देवयानेऽवतरती च सा ॥ चन्द्रमंडलमाप्लाव्य पतंती ब्रह्मसद्मनि ॥ २० ॥ चतुर्धा भिद्यमाना सा ब्रह्मलोके च नारद ॥ चतुर्भिर्नामभिर्देवी चतुर्दिशमभिस्रुता ॥ २१ ॥ सरितां च नदीनां च पतिमेवान्वपद्यत ॥ सीता चालकनंदा च चतुर्भद्रेति नामभिः ॥ २२ ॥ सीता च ब्रह्मसदनाच्छिख रेभ्यः क्ष्माभृताम् ॥ केसराभिधनाम्नां च प्रसवंती च स्वर्णदी ॥ २३ ॥ गंधमादनमूर्ध्नीह पतिता पापहारिणी ॥ अंतरेण तु भद्राश्ववर्षे प्राच्यां समागता ॥ २४ ॥ क्षारोदधिं गता सा तु द्युनदी देव पूजिता ॥ ततो माल्यवतः शृंगाद् द्वितीया परिनिर्गता ॥ २५ ॥ ततो वेगवती भूत्वा केतुमालं समागता ॥ चक्षुर्नाम्नीदेव नदी प्रतीच्यां दिश्युपागता ॥ २६ ॥ सरितां पतिमाविष्टा सा गंगा देववंदिता ॥ ततस्तृतीया धारा तु नाम्ना ख्याता च नारद ॥ २७ ॥ पुण्या चालकनंदा वै दक्षिणेनाब्ज भूपदात् ॥ वनानि गिरिकूटानि समति क्रम्य चागता ॥ २८ ॥ हेमकूटं गिरिवरं प्राप्ताऽतोऽपीह निर्गता ॥ अतिवेगवती भूत्वा भारतं चागताऽपरा ॥ २९ ॥

नदी क्षारसमुद्रमें मिलती है और दूसरी माल्यवान्‌के शृंगसे निकली है ॥ २५ ॥ फिर बडी वेगवती होकर केतुमाल पर्वतसे संगतिको प्राप्त होती है चक्षु नामवाली देवनदी प्रतीची दिशामें प्राप्त होकर ॥ २६ ॥ देववंदित वह गंगा समुद्रमें प्राप्त हुई है हे नारद ! उसकी तीसरी धारा बडी विख्यात ॥ २७ ॥ पवित्र अलकनंदा ब्रह्मभवनके दक्षिणस्थानसे बही है वह अनेक वनपर्वतकूटोंको उल्लंघन करती प्राप्त हुई है ॥ २८ ॥ वह पर्वत श्रेष्ठ हेमकूटको प्राप्त होकर वहांसे निर्गत हुई और अतिवेगवती होकर भारतवर्षमें आई ॥ २९ ॥

यह नदी तीसरी दक्षिण सागरमें मिली है जिसमें स्नानको जाते हुए मनुष्योंको पदपदमें ॥ ३० ॥ राजसूय और अश्वमेधका फल मिलता है चौथी धारा शृंगवान पर्वतसे ॥ ३१ ॥ भद्रा नामवाली गिरती हुई उत्तर कुरुओंको तृप्त करती है वह त्रैलोक्यपावनी गंगा भी समुद्रमें मिली है ॥ ३२ ॥ प्रत्येक वर्षमें और भी नदी और नद हैं हे नारद ! बहुतसे मेरुपर मन्दार वृक्ष हैं वहां देवता सुख पाते हैं ॥ ३३ ॥ तो भी भारत वर्षको ही कर्मक्षेत्र कहते हैं और आठ वर्ष पृथ्वी सम्बधी स्वर्गसुख देते हैं ॥ ३४ ॥ अर्थात् हे नारदजी स्वर्गमें गये हुओंके शेष रहे पुण्यके भोगनेके स्थान हैं वहांके पुरुष अयुत वर्ष जीते वज्रके समान दृढ शरीर और देवताओंके तुल्य होते हैं ॥ ३५ ॥ पुरुषोंको दश २ सहस्र हाथियोंका बल होता है यह महा सुरतसे सन्तुष्ट होनेवाले स्त्री और

दक्षिणं जलधिं प्राप्ता तृतीया सा सरिद्वरा ॥ यस्याः स्नानाय सरतां मनुजानां पदेपदे ॥ ३० ॥ राजसूयाश्व मेधादिफलं तु न हि दुर्लभम् ॥ ततश्चतुर्थी धारा तु शृंगवत्पर्वतात्पुनः ॥ ३१ ॥ भद्राभिधा संस्रवंती कुरून्संतर्प्य चोत्तरान् ॥ समुद्रं समनु प्राप्त गंगा त्रैलोक्यपावनी ॥ ३२ ॥ अन्ये नदाश्च नद्यश्च वर्षेवर्षेऽपि संति हि ॥ बहुशो मेरुमंदारप्रसूताश्चैव नारद ॥ ३३ ॥ तत्राऽपि भारतं वर्षं कर्मक्षेत्रमुशंति हि ॥ अन्यानि चाष्ट वर्षाणि भौमस्वर्गप्रदानि च ॥ ३४ ॥ स्वर्गिणां पुण्यशेषस्य भोगस्थानानि नारद ॥ पुरुषाणांयुतायुचार्वज्रांगादेव सन्निभाः ॥ ३५ ॥ पुरुषा नागसाहस्रैर्दशभिः परिकल्पिताः ॥ महासौरतसंतुष्टा कलत्राढ्याः सुखान्विताः ॥ ३६ ॥ एकवर्षोनके चायुष्याप्तगर्भाः पियोऽस्त्रि हि ॥ त्रेतायुगसमःकालो वर्तते सर्वदैव हि ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ तेषु वर्षेषु देवेशाः पूर्वोक्तैः स्तवनैः सदा ॥ पूजयंति महा देवीं जपध्यानसमाधिभिः ॥ १ ॥ सर्वर्तुकुसुमश्रेणी शोभिता वनराजयः ॥ फलानां पल्लवानां च यत्र शोभा निरंतरम् ॥ २ ॥ तेषु कानन वर्षेषु वर्षपर्वतसानुषु ॥ गिरिद्रोणीषु सर्वासु निर्मलोदकराशिषु ॥ ३ ॥

सुखोंसे युक्त होते हैं ॥ ३६ ॥ हे वत्स ! यहांकी स्त्रियें चिरयुवती हैं एक वर्षकी अल्प आयु रहनेसे गर्भ धारण करनेमें समर्थ होती हैं और वहां निरंतर त्रेतायुगके समान समय रहता है ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीनारायण बोले उन २ वर्षोंमें देवता पूर्वोक्त स्तोत्रोंसे जपध्यान समाधीसे देवेशी का पूजन करते हैं ॥ १ ॥ वहां सब ऋतुके फूलोंसे वनराजी शोभाको प्राप्त होती है वहां फल पल्लव निरन्तर शोभाको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ उन वनवालेवर्षोंके पर्वतोंके निम्नभागमें तथा सब पर्वतोंकी द्रोणीमें जहां कि निर्मल जल है ॥ ३ ॥

कमलोंके समूह खिले हुए हंस सारस बैठे हुए जहां परस्पर मिले हुए पक्षियोंका शब्द हो रहा है ॥ ४ ॥ जलक्रीडाके विचित्र विनोदका जहां विहार होता है जहां सुन्दरियोंकी भौंके विलास देखे जाते हैं ॥ ५ ॥ जहांके पुरुष स्वच्छन्द स्त्रियोंसे विहार करते हैं इन नौओं वर्षोंमें आदिपुरुष भगवान् ॥ ६ ॥ " नारायण लोकों पर अनुग्रह करने वाले" सबसे पूजित हुए देवीकी आराधना करते स्थित होते हैं और अपनी मूर्तिके भेदसे लोगोंसे की हुई पूजाके कारण सब वर्षोंमें निवास करते हैं ॥ ७ ॥ इलावृत खण्डमें कमलभवके नेत्रोद्भूत एक रुद्रांशभव देव नित्य निवास करते हैं ॥ ८ ॥ उस क्षेत्रमें और किसीका प्रवेश नहीं होता है भवानीके शापसे वहां पुरुष जाते ही स्त्री हो जाता है ॥ ९ ॥ भवानी नाथके स्त्रियोंके कोटिगण देवेशको वेष्टन किये देव

विकचोत्पलमालासु हंससारससंचयैः ॥ विमिश्रितेषु तेष्वेवपक्षिभि कूजतेषु च ॥४॥ जलक्रीडादिभिश्चित्रविनोदैः क्रीडयंति च ॥ सुन्दरी ललितभ्रूणां विलासायतनेषु च ॥५ ॥तत्रत्या विहरंत्यत्र स्वैरं युवतिभिः सह ॥ नवस्वपि च वर्षेषु भगवानादिपूरुषः ॥६॥"नारायणाख्यो लोकानामनुग्रहरसैकदृक्" ॥ देवीमाराधयन्नास्ते स च सर्वैश्च पूज्यते ॥ आत्मव्यूहेनेज्यया‌ऽसौ सन्निधत्ते समाहितः ॥ ७ ॥ इलावृते तु भगवान्पद्मजाक्षिसमुद्भवः ॥ एक एव भवो देवो नित्यं वसति सांगनः ॥ ८ ॥ तत्क्षेत्रे नापरः कश्चित्प्रवेशं वितनोति च ॥ भवान्याः शापतस्तत्र पुमान्स्त्री भवति स्फुटम् ॥ ९ ॥ भवानीनाथकैः स्त्रीणामसंख्यैर्गणकोटिभिः ॥ संरुध्यमानो देवेशो देवं संकर्षणं भजन् ॥ १० ॥ आत्मना ध्यानयोगेन सर्वभूतहितेच्छया ॥ तां तामसीं तुरीयां च मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः ॥ ११ ॥ उपधावते चैकाग्रमनसा भगवानजः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानंतायाव्यक्ताय नम इति ॥ १२ ॥ भजे भजन्यारणपादपंकजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ॥ भक्तेष्वलं भावितभूतभावनं भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥ १३ ॥

संकर्षणका भजन करते हैं ॥ १० ॥ सब प्राणियोंके हितकी इच्छासे अपने ध्यानयोग द्वारा उस तामसी तुरीया नामक अपनी प्रकृतिमूर्तिको ॥ ११ ॥ एकाग्र मनसे भगवान् ध्यान करते हैं श्री भगवान् बोलेओं भगवान ! महा पुरुष सर्वगुणोंके संख्याता अनन्त अव्यक्तके निमित्त प्रणाम है ॥ १२ ॥ भजन करने योग्य शरण देनेवाले, ऐश्वर्यादिगुणके परम आश्रय, भक्तोंके निमित्त शरीर प्रगट करनेवाले संसारके नाशक अभक्तोंको संसारमें भावना करनेवाले आपके चरणोंका हमभजन करते हैं ॥ १३ ॥

जिसकी देखनेपर भी मायाके गुणकर्मकी वृत्तिद्वारा अणुमात्र भी दृष्टि लिप्त नहीं होती कारण कि नियमके निमित्त वह ईक्षण करता है जैसे जितक्रोध हमारी दृष्टि विषयोंमें संयुक्त है पर आप ऐसे नहीं इससे कौन आत्म जयकी इच्छावाला मुमुक्षु उसका आदर न करे ॥ १४ ॥ जो मायासे असदृश विदित होता है जैसे मधु और सबसे रक्तनेत्र हुआ मतवाला भयंकर विदित होता है जिनके चरण स्पर्शसे धर्षित इन्द्रिय हो नागवधू लज्जासे किसी प्रकार और उपासना करनेमें समर्थ नहीं होती ॥ १५ ॥ इस जगतकी स्थिति जन्म और संयमका जिनका हेतु कहते हैं और यह इन तीनोंसे विहीन भी है इसीसे ऋषि मन्त्र इनको अनन्त कहते हैं जो कि सहस्र मस्तकके किसी एक देशमें स्थित इस भूमण्डलको सरसोंके समान भी नहीं जानते ॥ १६ ॥ जिनका गुण निमित्तक आदि

न यस्य मायागुण कर्मवृत्तिभिर्निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ॥ ईशे कथा नो जितमन्युरंहसा कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥ १४ ॥
असद्दृशो यः प्रति भाति मायया क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः ॥ न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेंद्रियाः ॥ १५ ॥
यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयम त्रिभिर्विहीनं यमनंतमृषयः ॥ न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितंभूमंडलं मूर्धसहस्रधामसु ॥ १६ ॥
यस्याऽऽद्यआसीद्गुणविग्रहो महान्विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल ॥ यत्संवृतोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसमैंद्रियं सृजे
॥ १७ ॥ एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुंता इव सूत्रयंत्रिताः ॥ महानहंवैकृततामसेंद्रियाः सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम्
॥ १८ ॥ यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं मायां जनोऽयं गुरुसर्गमोहितः ॥ न वेद निस्तारणयोगमंजसा तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने
॥ १९ ॥ नारायण उवाच ॥ एवं स भगवान्रुद्रो देवं संकर्षणं प्रभुम् ॥ इलावृतमुपासीत देवीगणसमाहितः ॥ २० ॥ तथैव धर्मपुत्रोऽसौ
नाम्ना भद्रश्रवा इति ॥ तत्कुलस्याऽपि पतयः पुरुषा भद्रसेवकाः ॥ २१ ॥

विग्रह महत्तत्त्व है, वह विज्ञान सत्त्वके आश्रय भगवान् हैं वह चित्तरूप होनेसे सत्त्व प्रधान हैं जिस ब्रह्मसे प्रगट मैं रुद्र अपने त्रिगुणात्मक तेजवाले विभूतिरूप अहंकारसे तामसभूत सर्ग तथा इन्द्रिय समूहको सृजन करता हूं ॥ १७ ॥ यह हम सब जिस महात्माके वंशमें पक्षीके समान सूत्रमें बंधे हैं क्रियासे निरुद्ध हैं अहंकार विकार तामस इन्द्रिय हम जिसके अनुग्रहसे इस जगत्के सृजन करते हैं उसको प्रणाम करते हैं ॥ १८ ॥ जिसकी निर्माण की हुई कर्मरूप ग्रंथिवाली मायाको यह प्राणी प्रजासर्गमें मोहित हुआ कुछ जानता हैं परन्तु उसके निस्तारका उपाय नहीं जानता ऐसे विलीन और उदयवाले आपके रूपके निमित्त प्रणाम है ॥ १९ ॥ नारायण बोले इस प्रकार भगवान् रुद्रदेव संकर्षण प्रभुको देवीगणोंके सहित इलावृतमें उपासना करते हैं ॥ २० ॥ इसी प्रकार यह धर्मपुत्र

भद्र श्रवानामसे भद्राश्ववर्षमें सेवा करते हैं उस कुलके पति पुरुष भी भद्र नामक वर्ष पतिके सेवक हैं ॥ २१ ॥ भद्राश्ववर्षमें वासुदेवकी विख्यात हयग्रीव मूर्ति जो उसी नामसे अंकित है ॥ २२ ॥ परम एकाग्रमनसे समाधिस्थ होकर स्तुति करते उस मूर्तिकी उपासना करते हैं ॥ २३ ॥ भद्रश्रवस बोले भगवान् धर्मके स्थान विशुद्ध करनेवालेको प्रणाम है अहो भगवान् की चेष्टा बडी विचित्र है जो यह मनुष्य मारती हुई मृत्युको देखकर भी नहीं देखता है जो कि पुत्र वा वृद्ध पिताको दग्ध करके उन्हींके धनसे स्वयं जीनेकी इच्छा करता है और तुच्छ विषय सेवन करनेको पापका ही ध्यान करता है ॥ २४ ॥ कविजन इस संसारको नश्वर करते हैं अध्यात्मवादी विद्वान् भी समाधिमें ऐसाही देखते हैं हे अज! तोभी तुम्हारी मायासे मोहित होते हैं यह

भद्राश्ववर्षे तां मूर्तिं वासुदेवस्य विश्रुताम् ॥ हयमूर्तिभिदा तां तु हयग्रीवपदांकिताम् ॥ २२ ॥ परमेण समाध्यन्यवारकेण नियंत्रिताम् ॥ एवमेव च तां मूर्तिं गृणंत उपयांति च ॥ २३ ॥ भद्रश्रवस ऊचुः ॥ ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥ अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं घ्नंतं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ॥ ध्यायन्न सद्यर्हिं विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषुः ॥ २४ ॥ वदंति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यंति चाऽध्यात्मविदो विपश्चितः ॥ तथापि मुह्यंति तवाज मायया सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥ २५ ॥ विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते ह्यकर्तुरंगीकृतमप्यपावृतः ॥ युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥ २६ ॥ वेदान्युगान्ते तमसा तिरस्कृतान्रसातलाद्यो नृतुरंगविग्रहः ॥ प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय ते ॥ २७ ॥ एवं स्तुवंति देवेश हयशीर्षं हरिं च ते ॥ भद्रश्रवसनामानो वर्णयति च तद्गुणान् ॥ २८

आपकी चेष्टा बडी विचित्र है आपको प्रणाम है ॥ २५ ॥ आप विश्वके उत्पन्न पालन निरोध कर्म करते हो तथापि आवरण रहित होकर अकर्ताही हो ऐसा वेद स्वीकार करता है कारणकि मायासे ही सर्वात्मामें सृष्टिकार्य कारणतासे कही गई है, यथार्थमें तो सबसे व्यतिरिक्त निरुपाधि होनेसे आप निरावरण और अकर्ताही हैं ॥ २६ ॥ जो युगान्तमें असुररूप तमसे तिरस्कृत हुए वेदोंको हयग्रीव विग्रहवान् होकर रसातलसे लाय याचना करते ब्रह्माजीको देते हुए उस सत्य संकल्पके निमित्त प्रणाम है ॥ २७ ॥ इस प्रकार वे भद्रश्रवस् हयग्रीव भगवान्की स्तुति करते हैं और उनके गुण वर्णन करते हैं ॥ २८ ॥

इनके चरित्रको जो पढते सुनते हैं वह पापरूपी केंचलीको त्याग देवीके लोकको जाते हैं ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषाया मष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीनारायण बोले हरिवर्षमें भगवान नृसिंहजी पाप नाशक हैं वह भक्तोंपर कृपाकर योगयुक्त हो निवास करते हैं ॥ १ ॥ उनके उस मनोहर रूपको देखकर महाभक्त प्रह्लादजी उनकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ प्रह्लाद बोले ओंनमो भगवते यह मंत्र है संसारका मंगलही असुरोंका भी मन निर्मल हो और सब प्राणी परस्पर मिलकर मंगल ध्यान करें मन नारायणमें कल्याण युक्त रमे प्राणियोंकी हमारी मति निष्कामा हो ॥ ३ ॥ धरा पुत्र धन

एषां चरितमेतद्धि यः पठेच्छ्रावयेच्च यः ॥ पापकंचुकमुत्सृज्य देवीलोकं व्रजेच्च सः ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टम स्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ हरिवर्षे च भगवान्नृहरिः पापनाशनः ॥ वर्तते योगयुक्तात्मा भक्तानुग्रहकारकः ॥ १ ॥ तस्य तद्दयितं रूपं महा भागवतोऽसुरः ॥ पश्यन्भक्तिसमायुक्तः स्तौतितद्गुणतत्त्ववित ॥ २ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविर्भव वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रंधय रंधय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा ॥ अभयं ममात्मनि भूयिष्ठाः ॥ ॐ क्ष्रौं ॥ स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायंतु भूतानि शिवं मिथो धिया ॥ मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥ ३ ॥ माऽगारदा रात्मजवित्तबंधुषु संगो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः ॥ यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्सिद्ध्य त्यदूरान्न तथेंद्रियप्रियः ॥ ४ ॥ यत्संग लब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम् ॥ हरत्यजोऽतः श्रुतिभिर्गतोऽगजं को वै न सेवेत मुकुंदविक्रमम् ॥ ५ ॥ यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ॥ हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथे नासति धावतो बहिः ॥ ६ ॥

बंधुओंमें हमारा प्रेम न हो यदि हो तो भगवद्भक्तोंमें प्रेम हो जिसकी आत्मा अपनी प्राणवृत्तिसे संतुष्ट है वही सिद्ध होता है घरमें आसक्तिवाला नहीं ॥ ४ ॥ जिन हरिभक्तोंकी संगतिको प्राप्त होकर असाधारण ऐश्वर्य वाले भगवान्‌के चरित्र कर्णोंमें स्पर्श कर सेवन करनेवाले पुरुषोंके अन्तर्गत मलको हरण करते हैं और तीर्थ तो वारंवार अवगाहनसे मलको हरण करते हैं ऐसे भगवान्‌को कौन न सेवन करे ॥ ५ ॥ जिसकी भगवान्‌के चरणोंमें अकिंचन भक्ति है उसको सम्पूर्ण गुण और सब देवता सेवन करते हैं जिसकी हरिमें भक्ति नहीं उसको महद्गुण प्राप्त नहीं होते और वह विषय सुखके मनोरथोंमें बाहर धावमान होते हैं ॥ ६ ॥

जिस प्रकार मच्छी जलके विना जीवित नहीं हो सकती इसी प्रकार भगवान् सब शरीरियोंके जीवन रूप आत्मा हैं उन महान्‌को त्याग न कर जो घरादिमें प्रसक्त होते हैं तो उन दम्पतियोंके महत्त्वके समान अकिंचित्कर होता है ॥ ७ ॥ इस कारण रज, राग, विषाद, क्रोध, मान, स्पृहा, भय, दीनता, जो आधिका मूल है इसको और गृहरूपी चक्रवालको छोडकर नृसिंहजीका भजन करनेवालेको कहीं भय नहीं है ॥ ८ ॥ इस प्रकार प्रह्लादजी भक्तिसे दिनरात स्तुति करते हैं पापरूपी मातंगको सिंहरूप नृसिंहजीको अपने हृदयमें धारण करते हैं ॥९॥ केतुमाल वर्षमें भगवान् कामदेवका रूप धारण किये हैं और उस वर्षके निवासी सदा उनका पूजन करते हैं ॥ १० ॥ लक्ष्मी इस स्तोत्रसे उनका पूजन करती हैं उस वर्षके निवासियोंको निरन्तर मानदेती हैं ॥ ११ ॥ लक्ष्मी कहती है

हरिर्हि साक्षाद्भगवाञ्छरीरिणामात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ॥ हित्वा महांस्तंयदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दंपतीनाम् ॥ ७ ॥ तस्माद्रजोरागविषादमन्युमानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ॥ हित्वा गृहं संसृति चक्रवालं नृसिंहपादं भजतां कुतो भयम् ॥ ८ ॥ एवं दैत्य पतिः सोऽपि भक्त्याऽनुदिनमीडते ॥ नृहरिं पापमातंगहरिं हृत्पद्मवासिनम् ॥ ९ ॥ केतुमाले च वर्षे हि भगवान्स्मररूपधृक् ॥ आस्ते तद्वर्षनाथानां पूजनीयश्च सर्वदा ॥ १० ॥ एतेनोपासते स्तोत्रजालेन च रमाऽब्धिजा ॥ तद्वर्षनाथा सततं महतां मानदायिका ॥ ११ ॥ रमोवाच ॥ ॐ ह्रीं ह्रीं हूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय च्छंदोमयायान्नमयायामृतमयाय सहसे ओजसे बलाय कांतायकामाय नमस्ते उभयत्र भूयात्॥ स्त्रियोव्रतैस्त्वां हृषीकेश्वरं स्वतो ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम्॥तासां न ते वै परिपांत्यपत्यंप्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतंत्राः ॥१२॥ स वै पतिःस्यादकुतोभयः स्वतः स्वतः समंतत पाति भयातुरं जनम् ॥ स एक एवेतरथामिथो भयं नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥ १३ ॥

ओंह्रीं यह मंत्र है भगवान् हृषीकेश सब गुणविशेषोंसे लक्षित आत्मावाले क्रिया, ज्ञान, संकल्प, अध्यवसायवालोंके अधिपति ग्यारह इंद्रिय पाँच विषय लक्षणयुक्त सोलह कला, वेदोक्त कर्मसे प्राप्त होने योग्य अन्नमय, अमृतमय, सर्वमय, ओजबल, कान्ति कामके हेतुरूप भगवान्‌को सब ओर से प्रणाम है लोकमें स्त्रियों व्रतोंद्वारा इन्द्रियोंके पति ईश्वर आपको आराधन करके जो अन्यकी इच्छा करती हैं उनके वे पति और अपत्य उनकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते कारण कि प्रिय धन और आयुमें वे अस्वतंत्र हैं ॥१२॥ वही पति है जो स्वयं निर्भय हो और भयातुर जनको सब ओरसे रक्षा करनेमें समर्थ हो सो ऐसे एक आप ही हैं जो कि आप आत्मलाभसे अधिक और नहीं मानते, अन्याधीनमें सुख नहीं होता और स्वतंत्रोंके अधिक होनेमें मंडलेश्वरके समान परस्पर भय होता है ॥ १३ ॥

जो स्त्री तुम्हारे चरणकमलकी सेवाकी ही इच्छा करती है और फल इच्छा नहीं करती वह सब काममें लम्पट न होकर भी सबकामनाको प्राप्त होती है और जो फलान्तर प्राप्तिकी इच्छासे सेवा करती है वह उसको एक ही कामना आप देते हो और इससे फलभोगके उपरान्त भग्नयाच्ञा होनेसे फिर भी उनको दुःख होता है ॥ १४ ॥ हे भगवन्! मेरी प्राप्तिके निमित्त अज, ईश, सुर, असुर, इंद्रिय सुखमें बुद्धि लगाकर तप करते हैं, परन्तु तुम्हारे चरणकी भक्ति किये विना कोई भी मुझको प्राप्त नहीं होते, कारण कि तुममें मन लगानेके कारण मैं परतंत्र तुम्हारी अनुगामिनी हूं इससे तुम्हारे अनुगामीको देखती हूं अन्यको नहीं ॥ १५ ॥ हे अजित! सो आप जो अपना हस्तकमल भक्तोंके ऊपर रखतेहैं, वही मेरे ऊपर रखिये, वह आपका वंदित हाथ सब कामना देनेवाला होनेसे सत्पुरुषोंसे स्तुति किया

या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं न कामयेत्साऽखिलकामलंपटा ॥ तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो यद्भग्नयाच्ञा भगव-न्प्रतप्यते ॥ १४ ॥ मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादयस्तप्यंत उग्रं तप ऐंद्रियेधियः ॥ ऋते भवत्पादपरायणान्न मां विंदंत्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ॥ १५ ॥ स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वंदितं करांबुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् ॥ बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुः ॥ १६ ॥ एवं कामं स्तुवंत्येव लोकबंधुस्वरूपिणी ॥ प्रजापतिमुखा वर्षनाथाः कामस्य सिद्धये ॥ १७ ॥ रम्यके नाम वर्षे च मूर्तिं भगवतः पराम् ॥ मात्स्यां देवासुरैर्वंद्यां मनुः स्तौति निरंतरम् ॥ १८ ॥ मनुरुवाच ॥ ॐ नमो मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे बलाय महामत्स्याय नमः ॥ अंतर्बहिश्चाखिललोकपालकैरदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ॥ स ईश्वरस्त्वं य इदं वशे नयन्नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥ १९ ॥

गया है हे वरेण्य मुझको तो आप वक्षस्थलमेंही धारण करते हैं यह केवल आदर मात्र है परन्तु भक्तोंपर आपकी परम कृपा है आपकी मायाकी चेष्टा कौन जान सकता है ॥ १६ ॥ उस प्रकार लोकबंधुस्वरू वाले कामकी स्तुति करते हैं और प्रजापति वर्षके अधिपति कामकी सिद्धिके निमित्त इसप्रकार स्तुति करते हैं ॥ १७ ॥ रम्यकवर्षमें भगवानकी देवासुरोंसे वंदित मत्स्यमूर्ति है मनुजी उसकी इस प्रकार स्तुति करते हैं ॥ १८ ॥ मनु बोले सबसे मुख्य सत्वप्रधान प्राण ओजबलसम्पन्न महामत्स्यके निमित्त प्रणाम है जो अन्तर बाहर किसी लोकपालसे भी न देखे जाकर महापराक्रमसे विचरण करते हैं वह आप ईश्वर इस जगत्को वशीभूत करते हुए विधिनिषेधके आलम्बनसे काठकी पुतलीके समान नचाते हैं ॥ १९ ॥

अभिमानरूपी ज्वरको प्राप्त होकर भी लोकपाल जिसको छोडकर अन्य समस्त मिलकर द्विपद, चतुष्पद, सरीसृप, जंगम, स्थावर किसीकी भी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते॥ २० ॥ प्रलयके जलमें बड़े वेगसे विचरते हुए आपने इस पृथ्वी औषधी गुल्मलता बीजके आश्रय भूतको मेरे सहित धारण किया जगत्के प्राणगणात्मा आपके निमित्त प्रणाम है ॥ २१ ॥ इस प्रकार संशयके निवारण करनेवाले मत्स्यावतारधारी देवेशकी मनुजी स्तुति करते हैं ॥ २२ ॥ पाप दूर होजानेसे इस प्रकार ध्यानयोग द्वारा भगवान्की परिचर्या करते हुए परम भागवत मनुजी स्थित रहते हैं ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीनारायण बोले हिरण्यवर्षमें कूर्मरूपधारी भगवान् योगपति अर्यमासे पूजे जाकर स्थित होते हैं ॥ १ ॥ भगवान्

यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा हित्वा यतंतोऽपि पृथक्समेत्य च ॥ पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥ २० ॥ भवान्युगांतार्णव ऊर्मिमालिनि क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ॥ मया सहोरुक्रमतेऽज ओजसा तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नमः ॥ २१ ॥ एवं स्तौति च देवेशं मनु पार्थिवसत्तमः ॥ मत्स्यावतारं देवेशं संशयच्छेदकारणम् ॥ २२ ॥ ध्यानयोगेन देवस्य निर्धूताशेषकल्मषः ॥ आस्ते परिचरन्भक्त्या महाभागवतोत्तमः ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्ट० भुवनकोशवर्णने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ हिण्मये नाम वर्षे भगवान्कूर्मरूपधृक् ॥ आस्ते योगपतिः सोऽयमर्यम्णा पूज्य ईड्यते ॥ १ ॥ अर्यमोवाच ॥ ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुण विशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥ यद्रूपमेतन्निजमाययाऽर्पितमर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम् ॥ संख्या न यस्यास्त्य यथोपलंभनात्तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥ २ ॥ जरायुजं स्वेदजमंडजोद्भिदं चराचरं देवर्षिपितृभूतमैंद्रियम् ॥ द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्र द्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥ ३ ॥

कूर्मरूप संपूर्ण सत्वगुणोंके विशेषणोंसे उपलक्षित जलस्थानवाले सुखके वर्षानेवाले सर्वगत सबके आधार आपको प्रणाम है जिन्होंने अपना यह दृश्यरूप मायासेही कल्पना किया है यह पृथ्वी आदिभी इन्हींका स्वरूप है, जो बहुतरूपोंसे निरूपित किये जाते हैं अयथार्थ उपलंभनसे जिनके रूपोंकी संख्या नहीं है ऐसे अनिरुक्त प्रपंचवाले आपके निमित्त प्रणाम है ॥ २ ॥ जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज देवता, ऋषि, पिंतर चराचर यह द्यौ, आकाश, भूमिमें पर्वत सरित् समुद्र, द्वीप, ग्रह नक्षत्र, इन्द्रिय, सब आपही एक हो ॥ ३ ॥

जिसमें सांख्यादि आचार्यों ने विशेष नामरूपादिकी कल्पना की है यह चौवीस तत्त्वादि संख्या जिस तत्त्वदृष्टिसे अपनी न होती है उस सांख्यसिद्धान्तरूप आपके निमित्त प्रणाम है ॥ ४ ॥ अर्यमावर्षाधिपोंके सहित इस प्रकार देवेशकी स्तुति करते हैं और सब भूतोंके उत्पादक प्रभुको गानकर भजन करते हैं ॥ ५ ॥ उसके उत्तरकुरुओंमें भगवान् यज्ञपुरुष आदिवराह पृथ्वी देवीसे सदा पूजे जाते हैं ॥ ६ ॥ भगवान्का पूजन कर उनकी भक्तिसे आर्द्रहृदय होकर दैत्यमर्दन आदि वराहकी भगवती धरणी स्तुति करती है ॥ ७ ॥ भूमि बोली भगवान् मंत्रतत्वसे जानने योग्य यज्ञक्रतुरूप महायज्ञरूप शरीरवाले महाबराह (पृथ्वीके उद्धारक) शुद्ध यज्ञके अनुष्ठान करानेवाले तीन युगरूप आपको प्रणाम है [कलिमें यज्ञ च्छिन्न हैं] ॥ ८ ॥ विद्वान् और चतुर पुरुष जिसके स्वरूपको देहेन्द्रियादि गुणोंमें

यस्मिन्नसंख्येयविशेषनामरूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् ॥ संख्या यया तत्त्वदृशाऽपनीयते तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते ॥ ४ ॥
एवं स्तुवति देवेशमर्यमा सह वर्षपैः ॥ गीयते चाऽपि भजते सर्वभूतभवं प्रभुम् ॥५॥ ततोत्तरेषु कुरुषु भगवान्यज्ञ पूरुषः ॥ आदिवाराह
रूपोऽसौ धरण्या पूज्यते सदा ॥ ६ ॥ संपूज्य विधिवद्देवं तद्भक्त्याऽऽर्द्राऽऽर्द्रहृत्कजा ॥ भूमिः स्तौति हरिं यज्ञवाराहं दैत्यमर्दनम् ॥७॥
भूरुवाच ॥ ॐ नमो भगवते मंत्रतत्त्वलिंगाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महावराहाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥ ८ ॥ यस्य
स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् ॥ मथ्नंति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥ ९ ॥ द्रव्यक्रिया
हेत्वयनेशकर्तृभिर्मायागुणैर्वस्तुभिरीक्षितात्मने ॥ अन्वीक्षयांऽगातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतये नमोऽस्तु ते ॥ १० ॥ करोति विश्व
स्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं नेप्सितुमीक्षितुर्गुणैः ॥ माया यथाऽयो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥ ११ ॥

लकड़ीमें अग्निके समान विवेक साधनवाले मनसे मथन करते हैं, कर्म और उनके फलसे भी गूढ आपको देखनेकी इच्छावाले ज्ञानसे जानते हैं, ऐसे आपको प्रणाम है ॥ ९ ॥ विषय, इंद्रियव्यापार हेतु--देवता, देह, काल अहंकार इन मायाके गुण अर्थात् कार्य द्वारा जाना जाता हुआ जो आत्मा और विचारपूर्वक यमनियमादिसे निश्चययुक्त बुद्धिवालों द्वारा मायारहित अकृति करनेवाले आपके निमित्त प्रणाम है ॥ १० ॥ अयस्कान्त मणिसे जैसे लोह घूमता है इसी प्रकार माया अपने गुणोंसे परस्पर सहचारीकर अपने दर्शनगोचर उपस्थित होकर विश्वकी सृष्टि स्थिति और प्रलय करती है. इससे आपका कुछभी अभिलाष नहीं है, एक मात्र जीवकेही निमित्त नितान्त अनिच्छाक्रमसे इच्छाका संवेश हुआ है यह आपका आत्मा उस अदृष्टका साक्षीमात्र है आपको प्रणाम है ॥ ११ ॥

युद्धमें निवारण करनेवाले दैत्यको मथन करके जो आदि वराह मुझ भूमिको अपनी ढाढपर रखकर सागरसे निर्गत हुए और हस्तीके समान क्रीडा करते आये उन विभुको मैं प्रणाम करती हूं ॥ १२ ॥ किं पुरुषवर्षमें सबके अधिपति दशरथपुत्र आदिपुरुष श्रीरामकी सीतासहित महावीरजी स्तुति करते हैं ॥ १३ ॥ हनुमानजी कहते हैं उत्तमश्लोक भगवानको प्रणाम है आर्योंके लक्षण और शीलवृत्त सम्पन्न संयत चित्तवाले लोकानुसारकार्यकारीके निमित्त प्रणाम है साधुवादकी कसौटी ब्रह्मण्यदेव महापुरुष महाभागके निमित्त प्रणाम है, जो विशुद्ध अनुभववाले एक अपने तेजसेही सब गुणोंकी जाग्रदादि अवस्थाके तिरस्कार करनेवाले प्रत्यक् शांत सुबुद्धियोंके जानने योग्य, अनामरूप, अहंकार रहित, वेदान्तके प्रसिद्ध तत्त्व हैं उनकी शरण होता हूं ॥ १४ ॥ हे विभो ! आपका

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकरः ॥ कृत्वाऽग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुम् ॥ १२ ॥ किं पुरुषे वर्षेऽस्मिन्भगवंतं दाशरथिं च सर्वेशम् ॥ सीतारामं देवं श्रीहनुमानादिपूरुषं स्तौति ॥ १३ ॥ हनुमानुवाच ॥ ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम इति ॥ आर्यलक्षणशीलव्रताय नमः उपशिक्षितात्मने उपासितलोकाय नमः ॥ साधुवादनि कषणाय नमो ब्रह्मण्य देवाय महापुरुषाय महाभागाय नम इति॥यत्तद्विशुद्धानुभवात्ममेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ॥ प्रत्यक्प्रशांतं सुधियोपलंभनं ह्यनाम रूपं निरहं प्रपद्ये ॥ १४ ॥ मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभो ॥ कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीता कृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥ १५ ॥ न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान्वासुदेवः ॥ न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥ १६ ॥ न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ॥ तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥ १७ ॥

मनुष्यावतार लोकोंको शिक्षा करनेके निमित्त है केवल राक्षसोंके मारनेके निमित्तही नहीं है नहीं तो अपने स्वरूपमें रमण करनेवाले आपको सीताके निमित्त विरहव्यसन क्यों करने पडते यही दिखाया है कि स्त्रीसंगका दुःख दुर्निवार है ॥ १५ ॥ वह भगवान् वासुदेव आत्मज्ञानियोंके अतिशय सुहृद त्रिलोकीमें किसी वस्तुमें आसक्त नहीं उनको स्त्रीका कश्मल प्राप्त नहीं होता न दुर्वासाके आनेके समय लक्ष्मणको त्यागते [बाल्मीकि उत्तरकाण्ड देखो] ॥ १६ ॥ सत्कुलमें जन्म होना, रूप, सौभाग्य, वाणी, बुद्धि कर्तव्य यह भगवानके संतोषका कारण नहीं उन्हें केवल भक्ति प्यारी है देखो रामचन्द्रने इन ऊपरणोंसे रहित वनवासी वानरादिके साथ सख्यता की ॥ १७ ॥

सुर, असुर, नर, नारी कोई भी हो जो सर्वात्मासे थोडे भजनसे बहुत संतुष्ट होनेवाले मनुजाकार रामका भजन करते हैं वे मुक्त होते हैं कारण कि वे सब उत्तरकोसलवासियोंको स्वर्गमें ले गये श्रीनारायण बोले इस प्रकार किंपुरुषमें सत्यसंध दृढव्रत कमललोचन रामको वानरोत्तम महावीरजी ॥ १८ ॥ ॥१९ ॥ भक्तिपूर्वक स्तुतिकर गाते और पूजते हैं जो इस पवित्र रामचन्द्रकी कथा सुनते हैं ॥ २० ॥ वह सब पापसे रहित हो शुद्ध होकर रामके लोकको जाते हैं ॥ २१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीनारायण बोले इस भारत वर्षमें आदिपुरुषरूपसे मैं स्थित रहता हूं और आप इस प्रकार स्तुति करते हो ॥ १ ॥ नारदजी बोले भगवान शान्तिशीलके स्थान अहंकारहीन अकिंचनोंके धनरूप ऋषियोंमें श्रेष्ठ

सुरोऽसुरो वाऽप्यथवा नरोऽनरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ॥ भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कोसलान्दिवम् ॥ १८॥ नारायण उवाच ॥ एवंकिंपुरुषे वर्षे सत्यसंधं दृढव्रतम् ॥ रामं राजीवपत्राक्षं हनुमान्वानरोत्तमः ॥ १९ ॥ स्तौतिगायति भक्त्या च सपूजयति सर्वशः ॥ य एतच्छृणुयाच्चित्रं रामचंद्रकथानकम् ॥ २० ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा याति रामसलोकताम् ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ भारताख्ये च वर्षेऽस्मिन्नहमादि चपूरुषः ॥ ॥ तिष्ठामि भवता चैव स्तवनं क्रियतेऽनिशम् ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंस परमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नमइति ॥ कर्ताऽस्य सर्गादिषु यो न बध्यते न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ॥ द्रष्टुर्न दृश्यस्य गुणैर्विदूष्यते तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥२॥ इदं हि योगेश्वरयोगनैपुणं हिरण्यगर्भोभगवाञ्जगाद यत् ॥ यदंतकाले त्वयि निर्गुणे मनो भक्त्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥ ३ ॥

नारायण परमहंस परमगुरु आत्मारामोंके अधिपतिको प्रणाम है सृष्टिके आदिमें जो इस जगत्का कर्ता होकर भी कर्मसे बद्ध नहीं होता देहको प्राप्त होकर भी जो देहकी क्षुधा पिपासासें अभिभूत नहीं होते द्रष्टा होकर भी जिसकी दृष्टि गुणोंसे दूषित नहीं होती ऐसे आसक्त विविक्त साक्षी आपको प्रणाम है ॥२॥ हे योगेश्वर! यह आपके योगकी निपुणता हिरण्यगर्भने कही है अभिमानरूप कलेवर त्यागन करते हुए अन्तमें जिसने आपका उच्चारण कर तुममें मन लगाया वही पार होगया यही योग है ॥ ३ ॥

जैसे यहांके और परलोकके पदार्थोंके कामलम्पट पुरुष पुत्र दारा और धनकी चिंतामें लगे रहते हैं और कुत्सित कलेवरकी मृत्युसे नाश होनेकी चिंता करते हैं यदि विद्वान् होकर भी कोई यही चिंता करे तो उसका ज्ञानमें श्रममात्र है ॥ ४ ॥ हे अधोक्षज ! आप अपनेमें स्वाभाविक प्रेमरूपयोग हमको प्रदान कीजिये जिस योगसे हम आपकी मायासे इस कुकलेवरमें हुए अहंता, ममता, आदि दुर्भेद दुःखोंको नष्टकर सकें ॥ ५ ॥ इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ नारदजी सब सारके ज्ञाता अनामय नारायणकी सदा स्तुति करते हैं ॥६॥ इस भारतवर्षमें जो नदी पर्वतही हैं हे राजन् ! उनको कहता हूं सुनो ॥ ७ ॥ मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट ऋषभ कुटक, कोल्ल, सह्य, देवगिरि, ॥ ८ ॥ ऋष्यमूक, श्रीशैल, व्यंकटाचल, महेन्द्र वारिधार, विन्ध्य, मुक्तिमान्; ऋक्षपर्वत ॥ ९ ॥ पारियात्र, द्रोण,

यथैहिकामुष्मिककामलंपटः सुतेषुदारेषु धनेषु चिंतयन् ॥ शंकेत विद्वान्कुकलेवरात्ययाद्यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥ ४ ॥ तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां त्वंमाययाऽहंममतामधोक्षज ॥ भिंद्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि योगंत्वयि नः स्वभावजम् ॥ ५ ॥एवं स्तौति सदा देवं नारायणमनामयम् ॥ नारदो मुनिशार्दूलः प्रज्ञाताखिलसारदृक् ॥ ६ ॥ अस्मिन्वै भारते वर्षे सरिच्छैलास्तुसंति हि तान्प्रवक्ष्यामि देवर्षेशृणुष्वैकग्रमानसः ॥ ७ ॥ मलयो मंगलप्रस्थोमैनाकश्चित्रकूटकः ॥ ऋषभः कुटकः कोल्लः सह्यो देवगिरिस्तथा ॥ ८ ॥ ऋष्यमूकश्च श्रीशैलो व्यंकटाद्रिर्महेंद्रकः ॥ वारिधारश्च विंध्यश्च शुक्तिमानृक्षपर्वतः ॥९॥ पारियात्रस्तथा द्रोणश्चित्रकूटगिरिस्तथा गोवर्धनो रैवतकःककुभोनीलपर्वतः ॥१०॥ गौरमुखश्चेंद्रकीलो गिरिः कामगिरिस्तथा ॥ एते चान्येऽप्यसंख्यातागिरियो बहुपुण्यदाः ॥११॥ एतदुपन्नसरितः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ पानावगाहनस्नानदर्शनोत्कीर्तनैरपि ॥१२॥ नाशयंति च पापानि त्रिविधानि शरीरिणाम् ॥ ताम्रपर्णी चंद्रवशा कृतमाला वटोदका ॥ १३ ॥ वैहायसी च कावेरी वेणा चैव पयस्विनी ॥ तुंगभद्रा कृष्णवेणा शर्करावर्तका तथा ॥ १४ ॥ गोदावरी भीमरथी निर्विंध्या च पयोष्णि का ॥ तापी रेवा च सुरसा नर्मदा च सरस्वती ॥ १५ ॥

चित्रकूट, गोवर्द्धन, रैवतक, ककुभ, नीलपर्वत, ॥ १० ॥ गौरमुख, इन्द्रकील, कामगिरि इनके शिवाय और भी बहुतसे पुण्यदायक पर्वतहैं ॥ ११ ॥ इनसे उत्पन्न हुए सैकड़ों सहस्र नदी हैं जो अवगाहन, स्नान दर्शन और कीर्तनसे पवित्र करती हैं ॥ १२ ॥ प्राणियोंके तीनों प्रकारके पापको दू रकरती हैं, ताम्रपर्णी, चन्द्रवशा, कृतमाला, वटोदका, ॥ १३ ॥ वैहायसी, कावेरी वेणा, पयस्विनी तुंगभद्रा, कृष्णा, वेणा, शर्करावर्तका ॥ १४ ॥ गोदावरी, भीमरथी, निर्विन्ध्या, पयोष्णिका, तापी, रेवा सुरसा नर्मदा, सरस्वती ॥ १५ ॥

चमण्वर्न्ती, सिंधु, अंध, महानद शोण, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, वेदस्मृति, महानदी ॥१६॥ कौशिकी, यमुना, मंदाकिनी, दृषद्वती, गोमती, सरयू रोधवती, सप्तवती ॥१७॥ सुषोमा, शतद्रु, (सतलज) चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी, और विश्वा यह नदी हैं ॥ १८ ॥ इस भारतवर्षमें पुरुष अपनेकर्मोंसे जन्म धारण करके सत रज, तमके कारण क्रमसे शुक्र, लोहित, कृष्ण अन्तःकरणसे स्वर्ग मनुष्य और नरकके भोगनेवाले होते हैं ॥ १९ ॥ सब निवासियोंको अनेक भोग होते हैं और अपने २ वर्णके धर्मानुसार सबकी मोक्ष होती है ॥ २० ॥ इस वर्षमें यही एक प्रधान कार्य है कि अनायास ही परमेश्वर प्रसादरूप कार्यसिद्धि होती है स्वर्गवासी कहते हैं ॥ २१ ॥ अहो इन भारतवासियोंने क्या उत्तम कार्य किये हैं जिनपर स्वयं भगवान् विष्णु

चर्मण्वती च सिंधुश्च अंधशोणौ महानदौ ॥ ऋषिकुल्यात्रिसमा च वेदस्मृतिमहानदी ॥१६॥ कौशिकी यमुना चैव मंदाकिनी दृषद्वती ॥ गोमती सरयू रोधवती सप्तवती तथा ॥१७॥ सुषोमा च शतद्रुश्च चंद्रभागा मरुद्वृधा ॥ वितस्ता च असिक्नी च विश्वा चेति प्रकीर्तिताः ॥ १८ ॥ अस्मिन्वर्षे लब्धजन्मपुरुषैः स्वस्वकर्मभिः ॥ शुक्ललोहितकृष्णाख्यैर्दिव्यमानुषनारकाः ॥ १९ ॥ भवंतिविविधा भोगाः सर्वेषां च निवासिनाम् ॥ यथावर्णविधानेनाऽपवर्गो भवति स्फुटम्॥ २० ॥ एतदेव च वर्षस्य प्राधान्यं कार्यसिद्धितः ॥ वदंति मुनयो वेदवादिनः स्वर्ग वासिनः ॥ २१ ॥ अहो अमीषां किमकारिशोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ॥ यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुंदसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥ २२ ॥ किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रते र्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ॥ न यत्र नारायणपादपंकज स्मृतिः प्रमुष्टाऽतिशयेंद्रियोत्सवात् ॥ २३ ॥ कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्क्षणायुषां भारत भूजयो वरम् ॥ क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयांत्यभयं पदं हरेः ॥ २४ ॥

प्रसन्न हैं जो यह भारतवर्षमें जन्म लेकर मुकुन्द सेवामें हमको स्पृहा करते हैं ॥ २२ ॥ हमारे किये दुष्कर तप, व्रत, दान, जो तुच्छरूप है इसके द्वारा प्राप्त हुए स्वर्ग फलसे क्या है ? जहां नारायणके चरणारविंदके स्मरणकी स्मृति नहीं है, इंद्रियोंके भोगने से यह स्मरण चोर लिया है ॥ २३ ॥ फिर जन्म देनेवाले कल्पायुवाले स्वर्गस्थानसे क्षणमात्रको भारत भूमिमें प्राप्त होना उत्तम है अर्थात् अल्पायुवाले भारतमें जन्म श्रेष्ठ है, जहां बुद्धिमान् मनुष्य सब कुछ त्यागन कर क्षणमात्रमें हरिके समीपको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

जहां अमृतमयी नारायणकी कथा नहीं, जहां हरिभक्त साधुओंका समागम नहीं जहां यज्ञेशके यज्ञोंका महोत्सव नहीं ऐसा इंद्रलोकभी सेवन न करना चाहिये ॥ २५ ॥ जो प्राणी इस भारतवर्षमें मनुष्य जन्म पाकर ज्ञान क्रिया द्रव्यसे संपूर्ण हुए मुक्त होनेका यत्न नहीं करते फिर वनके जीवोंके समान बंधनमें प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ जिन्होंने श्रद्धापूर्वक कुशामें विभाग की हुई है विधि मंत्रसे पृथक् २ नाम लेकर दी है 'अग्नये जुष्टं निर्वपामि' इत्यादि कहा उनके पृथक् इंद्रादि नामसे आहूत परिपूर्ण हरि स्वयं उनके भागको ग्रहण करते हैं ॥ २७ ॥ यह सत्य है कि प्रार्थना करनेपर अर्थकी कामना पूरी करते हैं परंतु परमार्थ नहीं देते जिससे फिर मांगनेकी इच्छा न रहे और निष्काम होकर भोजन करते हैं उनको तो सब इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले अपने पादप

न यत्र वैकुंठयथासुधापगा नसाधवो भागवतास्तदाश्रयाः ॥ न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥ २५ ॥ प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जंतवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसंभृताम् ॥ न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते भूयो वनौका इव यांति बंधनम् ॥ २६ ॥ यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हविर्निरुप्तमिष्टं विधिमंत्रवस्तुतः ॥ एकः पृथङ्नामभिराहुतोः मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वय माशिषां प्रभुः ॥ २७ ॥ सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः ॥ स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छतामिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥ २८ ॥ "यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्य पूर्तस्य कृतस्य शोभनम् ॥ तेनाब्जनाभेः स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्वर्षे हरिर्भजतां श तनोति ॥ १ ॥,, नारायण उवाच ॥ एवं स्वर्गगता देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ प्रवदंति च माहात्म्यं भारतस्य सुशो भनम् ॥ २९ ॥ जंबुद्वीपस्य चाऽष्टौ हि उपद्वीपाः स्मृताः परे ॥ हयमार्गान्विशोधद्भिः सागरैः परिकल्पिताः ॥ ३० ॥ स्वर्णप्रस्थ श्चंद्रशुक्र आवर्तनर माणकौ ॥ मंदरोपाख्यहरिणः पांचजन्यस्तथैव च ॥ ३१ ॥

ल्लवको स्वयं देते हैं इससे निष्काम भजन श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥ "यदि हमको स्वर्गका सुख शेष है, हमारे इष्टापूर्तका कुछ शोभन है तो हमको अपर जन्ममें अज नाभके चरणोंका स्मरण हो और भारतवर्षमें जन्म होकर शांति मिले" नारायण बोले इस प्रकार स्वर्गके देवता सिद्ध और परम ऋषि भारतवर्षका सुन्दर माहात्म्य कहते हैं ॥२९॥ जम्बूद्वीपके समीप आठ और उपद्वीप हैं जिनको घोडा शोधते हुए सगरके पुत्रोंने कल्पित किया था ॥ ॥ ३० ॥ स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्तन, रमणक, मंदरहरिण पांचजन्य ॥ ३१ ॥

सिंहलद्वीप और लंका यह आठ उपद्वीप हैं जम्बूद्वीपका प्रमाण विस्तारपूर्वक कहा ॥ ३२ ॥ अब प्लक्षादि छः द्वीपोंका वर्णन करेंगे ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीनारायण बोले जितने प्रमाणका यह जम्बूद्वीप है उतने ही क्षारसमुद्रसे घिरा हुआ है ॥ १ ॥ जम्बूद्वीपसे जिस प्रकार मेरु वेष्टित है इसी प्रकार दूने विस्तारवाले लक्षद्वीपसे क्षारसमुद्र वेष्टित है ॥ २ ॥ जैसे बाहरी परिखा उपवनोंको वेष्टन करती हैं इसी प्रकार यह है उस प्लक्षद्वीपमें प्लक्षवृक्ष जम्बूद्वीपके जम्बू वृक्षके समान प्रमाण युक्त है ॥ ३ ॥ हिरण्यमय कांतिसे स्थित होता है वहां प्रियव्रतका इध्मजि

सिंहलश्च लंकेति उपद्वीपाष्टकं स्मृतम् ॥ जम्बुद्वीपस्य मानं हि कीर्तितं विस्तरेण च ॥ ३२ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि प्लक्षादिद्वीपषट्ककम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ जंबुद्वीपो यथा चायं यत्प्रमाणेन कीर्तितः ॥ तावता सर्वतः क्षारोदधिना परिवेष्टितः ॥ १ ॥ जंब्वाख्येन यथा मेरुस्तथा क्षारोदकेन च ॥ क्षारोदधिस्तु द्विगुणः प्लक्षाख्येनोपवेष्टितः ॥ २ ॥ यथैव परिखा बाह्योपवनेन हि वेष्ट्यते ॥ प्लक्षाख्यश्च स्वयं जंबुप्रमाणो द्वीपरूपभृत् ॥ ३ ॥ हिरण्मयोऽग्निस्तत्रैव तिष्ठतीति विनिश्चयः ॥ प्रियव्रतात्मजस्तत्र सप्तजिह्व इति स्मृतः ॥ ४ ॥ अग्निस्तदधिपस्त्विध्मजिह्वः त्वं द्वीपमेव च ॥ विभज्य सप्तवर्षाणि स्वपुत्रेभ्यो ददौ विभुः ॥ ५ ॥ स्वयमात्म विदां मान्यां योगचर्यां समाश्रितः ॥ तेनैव चाऽऽत्मयोगेन भगवंतमुपागतः ॥ ६ ॥ शिवं च यवसं भद्रं शांतं क्षेमामृते तथा ॥ अभयं चेति सप्तैव तद्वर्षाणि सदेक्षताम् ॥ ७ ॥ तेषु प्रोक्ता नदीः सप्त गिरयः सप्त चैव हि ॥ अरुणा नृम्णांगिरसी सावित्री सुप्रभातिका ॥ ८ ॥ ऋतंभरा सत्यंभरा इति नद्यः प्रकीर्तिताः ॥ मणिकूटो वज्रकूट इंद्रसेनस्तथैव च ॥ ९ ॥ ज्योतिष्मान्वै सुपर्णश्च हरिण्यष्ठीव एव च ॥ मेघमाल इति ख्याताः प्लक्षद्वीपस्य पर्वताः ॥ १० ॥

निवास करता है ॥ ४ ॥ उसके अधिपति अग्निजिह्वने अपने द्वीपके सात विभाग करके अपने सात पुत्रोंको बांट दिये ॥ ५ ॥ और स्वयं आत्मारामोंकीह माननीय योगचर्यामें मग्न हुआ, उसी योगसे भगवान्‌को प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ शिव, यवस, भद्र शांत, क्षेम, अमृत और अभय यह सात वर्ष उसके सात पुत्रोंके नामसे हुए ॥ ७ ॥ उनमें सात नदी और सात पर्वत मुख्य अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभातिका, ॥ ८ ॥ ऋतंभरा सत्यंभरा यह नदियें हैं मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन ॥ ९ ॥ ज्योतिष्मान्, सुपर्ण हिरण्यष्ठीव, मेघमाला यह प्लक्षद्वीपके पर्वत हैं ॥ १० ॥

नदियोंके जलमात्र दर्शन, स्पर्शसे सब पाप और मल वहांकी प्रजाके नष्ट होजाते हैं ॥ ११ ॥ हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन, सत्यांग, यह चार वर्ण प्लक्षद्वीपमें रहते हैं ॥ १२ ॥ मनुष्योंकी आयु सहस्र वर्षकी देखनेमें देवताओंके समान स्वरूपवान स्वर्गद्वार नामक त्रयी विद्याके विधानसे सूर्यका पूजन करते हैं ॥ १३ ॥ कि पुराणपुरुष विष्णुका जो सूर्यरूप है उसकी हम शरण होते हैं जो सत्यवादी आत्माका अधिष्ठानस्वरूप है उस ब्रह्मबोधक अमृतरूप शुभफल और अशुभफलके प्रेरक हैं उनको सत्यधर्मके अनुष्ठान और प्रेम भक्तिसे ध्यान कर शरणमें प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ हे नारदजी ! प्लक्षद्वीप तथा दूसरे पांचों द्वीपोंमें आयु, इन्द्रिय, ओज, बल, बुद्धि, प्राण ॥ १५ ॥ सब प्राणियोंका विक्रम स्वाभाविक उत्पन्न होता है. प्लक्षद्वीपके आगे ईखका समुद्र सब ओरसे व्याप्त

नदीनां जलमात्रेण दर्शनस्पर्शनादिभिः ॥ निर्धूता शेषरजसो निस्तमस्काः प्रजास्तथा ॥ ११ ॥ हंसश्चैव पतंगश्च ऊर्ध्वायन इतीत च ॥ सत्यांगसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः प्लक्षस्य द्वीपके ॥ १२ ॥ सहस्रायुः प्रमाणाश्च विविधोपम दर्शनाः ॥ स्वर्गद्वारं त्रयीविद्याविधिनार्कं यजंति ते ॥ १३ ॥ प्रत्नस्य विष्णो रूपं च सत्यर्तस्य च च ब्रह्मणः ॥ अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्य मात्मानमीमहि ॥ १४ ॥ प्लक्षादिषु च सर्वेषु पञ्चद्वीपेषु नारद ॥ आयुरिंद्रियमोजश्च बलं बुद्धिः सहोऽपि च॥ १५ ॥ विक्रमः सर्वलोकानां सिद्धिरौत्पत्तिकी सदा ॥ प्लक्षद्वीपात्परं चेक्षुरसोदः सरितां पतिः ॥ १६ ॥ प्लक्षद्वीपं समग्रं च परिवार्यावतिष्ठते ॥ शाल्मलाख्यस्ततोद्वीपश्चास्माद्द्विगुणविस्तरः ॥ १७ ॥ समानेन सुरोदेन सिंधुना परिवेष्टितः ॥ यत्र वै शाल्मलीवृक्षः प्लक्षायामः प्रकीर्तितः ॥ १८ ॥ स्थानं तत्पक्षिराजस्य गरुडस्य महात्मनः ॥ तस्य द्वीपस्य नाथो हि यज्ञबाहुः प्रियव्रतात् ॥ १९ ॥ जातः स एव सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो ददौ धराम् ॥ तद्वर्षाणां नामानि कथितानि निबोधत ॥ २० ॥ सुरोचनं सौमनस्यं रमणं देववर्षकम् ॥ पारिभद्रं तथाचाऽप्यायनं विज्ञातनामकम् ॥ २१ ॥ तेषु वर्षाद्रयः सप्त सप्तैव सरितः स्मृताः ॥ सरसः शतशृंगश्च वामदेवश्च कंदकः ॥ २२ ॥

है ॥ १६ ॥ जो प्लक्षद्वीपको सब ओरसे घेर कर स्थित है इसके आगे शाल्मलीद्वीप विस्तारमें इससे दूना है ॥ १७ ॥ जो अपने समान सुरासागरसे वेष्टित हो रहा है जहां सेमलका वृक्ष प्लक्षके समान है ॥ १८ ॥ वहां महात्मा पक्षिराज गरुडजीका स्थान है उस द्वीपका स्वामी यज्ञबाहु प्रियव्रतका ॥ १९ ॥ पुत्र उसके सात भाग कर अपने सात पुत्रोंको देता हुआ उसके वर्षोंके नाम सुनो ॥ २० ॥ सुरोचन, सौमनस्य, रमण, देववर्षक, पारिभद्र, आप्यायन, विज्ञातनाम ॥ २१ ॥ इनमें वर्षोंके मर्यादापर्वत सात और सात ही नदी हैं सरस, शतशृंग; वामदेव, कंदक ॥ २२ ॥

कुमुद, पुष्पवर्ष, सहस्त्रश्रुति यह सात पर्वत हैं नदियोंके नाम कहते हैं ॥ २३ ॥ अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नंदा, राका, कही हैं ॥२४॥ उस वर्षके सब पुरुष चारों वर्णके हैं जो श्रुतधर, वीर्यधर, वसुंधर, इषुंधर, कहाते हैं ॥२५॥ जो वेदमय सोममय भगवान् ईश्वरका यजन करते हैं जो अपनी किरण अन्नद्वारा शुक्लकृष्णपक्षोंका विभाग करते हुए देवता पितरोंका विभाग करते हैं ॥ २६ ॥ सम्पूर्ण प्रजाओंके अधिपति सोम हमपर प्रसन्न हों इस प्रकार सुरोदसे दूना अपने मानसे प्रतिष्ठित ॥ २७ ॥ घृतसे आवृत कुशद्वीप प्रकाशित होता है जिसमें इस द्वीपका कारण एक कुशस्तंब प्रकाशित होता है

कुमुदः पुष्पवर्षश्च सहस्र श्रुतिरेव च ॥ एते च पर्वताः सप्त नदीनामानि चोच्यते ॥ २३ ॥ अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहूस्तथा ॥ रजनी चैव नंदा च राकेति परिकीर्तिताः ॥ २४ ॥ तद्वर्षपुरुषा सर्वे चातुर्वण्यसमाह्वयाः ॥ श्रुतधरो वीर्यधरो वसुन्धर इषुंधरः ॥ २५ ॥ भगवंतं वेदमयं यजंते सोममीश्वर ॥ स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन्कृष्णशुक्लयोः ॥ २६ ॥ सर्वासा च प्रजाना च राजा सोमः प्रसीदतु ॥ एवं सुरो दाद्द्विगुणः स्वावमानेन प्रकीर्तितः ॥ २७ ॥ घृतोदेनावृतः सोऽयं कुशद्वीपः प्रकाशते ॥ यस्मिन्नास्ते कुशस्तंबो द्वीपाख्यां कारणो ज्वलन् ॥ २८ ॥ स्वशष्परोचिषा काष्ठा भासयन्परितिष्ठते ॥ हिरण्यरेतास्तद्वीपपतिः प्रैयव्रतः स्वराट् ॥ २९ ॥ स्वपुत्रेभ्यश्च सप्तभ्य स्तद्वीपं सप्तधाऽभजत् ॥ वसुश्च वसुदानश्च तथा दृढरुचिः परः ॥ ३० ॥ नाभिगुप्तस्तुत्यव्रतौविविक्तनामदेवकौ ॥ तेषां वर्षेषु सप्तैव सीमागिरिवराः स्मृताः ॥ ३१ ॥ नद्यः सप्तैव संतीह तन्नामानि निबोधत ॥ चक्रस्तथा चतुः शृंगः कपिलश्चित्रकूटकः ॥ ३२ ॥ देवानीकश्चोर्ध्वरोमा द्रविणः सप्त पर्वताः ॥ रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविंदा तथैव च ॥ ३३ ॥ श्रुतविंदा देवगर्भा घृतच्युन्मंदमालिके ॥ यत्पयोभिः कुशद्वीपवासिनः सर्व एव ते ॥ ३४ ॥

॥ २८ ॥ और अपने अंकुरोंकी कान्तिसे परम प्रकाशकर्ता स्थित होता है उस द्वीपका पति राजा हिरण्यरेता है ॥ २९ ॥ इससे भी अपने सात पुत्रोंके नामसे इस द्वीपके सात भाग किये वसु, वसुदान, दृढरुचि ॥ ३० ॥ नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त, नामदेवक यह सात हैं और सात ही इनमें मर्यादापर्वत हैं ॥ ३१ ॥ सात ही नदी हैं अब नाम सुनो चक्र, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूटक ॥ ३२ ॥ देवानीक, ऊर्ध्वरोमा, द्रविण यह सात पर्वत कहाते हैं रस कुल्या, मधुकुल्या, मित्रविंदा ॥ ३३ ॥ श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता,मन्दमालिका, यह ७ नदी हैं जिनके जलसे सब कुशद्वीप निवासी रहते हैं ॥ ३४ ॥

कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक यह चार वर्णोंकी संज्ञा है ॥ ३५ ॥ सबका देवतोंके समान रूप है सब कुछ जाननेवाले वे कर्ममें कुशल अग्निरूप देवका यजन करते हैं ॥ ३६ ॥ हे हव्यवाट् ! आप साक्षात् परब्रह्म रूप हो इससे देवतोंके यज्ञसे परमेश्वरको यजन करो यह उन्हींके नाम दिये हैं ॥ ३७॥ हे देव ! यह हम सब द्वीपवासी प्रकाश स्वरूप आपका यजन करते हैं ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारदजी बोले हे सम्पूर्ण अर्थके देखनेवाले अवशेष द्वीपोंका भी प्रमाण कहिये जिसके जाननेसे परमानंद प्राप्त हो ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले कुशद्वीपके चारों ओर घृतोदनाम सागर है इसके आगे क्रौंचद्वीप मानमें इससे दूना है ॥२॥ यह क्षीरोद सागरसे व्याप्त है इसीमें क्रौंचनामक पर्वत है अपने नामसे

कुशलः कोविदश्चैवाऽप्यभियुक्तस्तथैव च ॥ कुलकश्चेति संज्ञाभिश्चतुर्वर्णाः प्रकीर्तिताः ॥ ३५ ॥ जातवेद सरूपं तं देवं कर्मजकौशलैः ॥ यजंते देववर्याभाः सर्वे सर्वविदोजनाः ॥ ३६ ॥ परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट् ॥ देवानां पुरुषांगानां यज्ञेनपुरुषं यज ॥ ३७ ॥ एवं यजंते ज्वलनं सर्वे द्वीपाधिवासिनः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारद उवाच ॥ शिष्टद्वीपप्रमाणं च वद सर्वार्थदर्शन ॥ येन विज्ञातमात्रेण परानंदमयो भवेत् ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ कुशद्वीपस्य परितो घृतोदावरणं महत् ॥ ततो बहिः क्रौंचद्वीपो द्विगुणः स्यात्स्वमानतः ॥ २ ॥ क्षीरोदेनावृतो भाति यस्मिन्क्रौंचाद्रिरस्ति च ॥ नाम निर्वर्तकःसोऽयं द्वीपस्यपरिवर्तते ॥ ३ ॥ योऽसौ गुहस्य शक्त्या च भिन्नकुक्षिः पुराभवत् ॥ क्षीरोदेनासिच्यमानो वरुणेन च रक्षितः ॥ ४ ॥ घृतपृष्ठो नाम यस्य विभाति किल नायकः ॥ प्रियव्रतात्मजः श्रीमान्सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ५ ॥ स्वद्वीपं तु विभज्यैव सप्तधा स्वात्मजान्ददौ ॥ पुत्रनामसु वर्षेषु वर्षपान्सन्निवेशयन् ॥ ६ ॥ स्वयं भगवतस्तस्य शरणं संजगाम ह ॥ आमो मधुररुहश्चैव मेघ पृष्ठ सुधामकः ॥ ७ ॥ भ्राजिष्ठो लोहितार्णश्च वनस्पतिरितीव च ॥ नगा नद्यश्च सप्तैव विख्यातो भुवि सर्वतः ॥ ८ ॥

ही इसने यह द्वीप प्रगट किया है ॥ ३ ॥ जिसकी कुक्षि प्रथम कार्तिकेयकी शक्तिसे विदीर्ण हुई थी, फिर क्षीरोदसे सींचकर वरुणने इनकी रक्षा की थी ॥ ४ ॥ जिसका स्वामी घृतपृष्ठ नाम शोभित होता है यह भी प्रियव्रतका पुत्र सब लोकसे नमस्कृत है ॥५॥ इससे भी अपने द्वीपको पुत्रोंके नामसे विभाग कर उन सातोंको राज्य दे दिया ॥ ६ ॥ और आप भगवानकी शरणमें हुए आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामक ॥ ७ ॥ भ्राजिष्ठ लोहितार्ण, वनस्पति यह सात वर्षोंके नाम हैं इनमे भी सात मर्यादापर्वत और सात नदी हैं ॥ ८ ॥

शुक्ल, वैवर्धमान, भोजन उपबर्हण, नन्द, नन्दन, सर्वतोभद्र यह पर्वत हैं ॥ ९ ॥ अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, शुक्ला, पवित्रवती यह
नदी हैं ॥ १० ॥ इनका पवित्र जल वहांके चारों वर्ण पान करते हैं पुरुष, ऋषभ, द्रविण, देवक ॥ ११ ॥ यह चार वर्णके पुरुष वहां निवास करते हैं वहांके
पुरुष जलमय जलोंके पतिको ॥ १२ ॥ पूर्ण भक्तिसे जलकी अंजलीसे यजन करते हैं हे जलो ! तुम ईश्वरलब्धवीर्यरूप हो इससे भूः, भुवः, स्वः, त्रिलोकीको पवित्र
करते हो ॥ १३ ॥ वह आप स्पर्श करनेवाले हमारे शरीरोंको पवित्र करो जिससे कि आत्मस्वरूपसे तुम पाप हरनेवाले हो इस प्रकार मन्त्र जपकेअन्तमें
अनेक स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥ इस प्रकार चारों ओर क्षीरसागरसे वेष्टित ३२ लक्ष योजनमें विस्तृत है ॥ १५ ॥ अपने मानसे आगे इस द्वीपके दधि

शुक्लो वै वर्धमानश्च भोजनश्चोपबर्हणः ॥ नंदश्च नंदनः सर्वतोभद्र इति कीर्तिताः ॥ ९ ॥ अभया अमृतौघा चार्यका तीर्थवतीति च ॥
वृत्तिरूपवती शुक्ला पवित्रवतिका तथा ॥ १० ॥ एतासामुदकं पुण्यं चातुर्वर्ण्येन पीयते ॥ पुरुषऋषभौ तद्वद्द्रविरणाख्यश्च देवकः
॥ ११ ॥ एते चतुर्वर्णजाताः पुरुषा निवसंति हि ॥ तत्रत्याःपुरुषा आपोमयं देवमपांपतिम् ॥ १२ ॥ पूर्णेनांजलिना भक्त्या यजंते
विविधक्रियाः ॥ आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनंतीर्भूर्भुवःस्वः ॥ १३ ॥ ता नः पुनीताऽमीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुवः ॥ इतिमंत्रजपांते च
स्तुवंति विविधैः स्तवैः ॥ १४ ॥ एव परस्तात्क्षीरोदात्परितश्चोपवेशितः ॥ द्वात्रिंशल्लक्षसंख्याकयोजनायाममाश्रितः ॥१५॥ स्वमानेन
च द्वीपोऽयं दधिमंडोदकेन च ॥ शाकद्वीपो विशिष्टोऽयं यस्मिञ्छाको महीरुहः ॥१६॥ स्वक्षेत्रव्यपदेशस्य कारण स हि नारद ॥ प्रैयव्र
तोऽधिपस्तस्य मेधातिथिरिति स्मृतः ॥ १७ ॥ विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु च ॥ सप्त पुत्रान्निजान्स्थाप्य स्वयं योगगतिंगतः
॥१८॥पुरोजवो मनः पूर्वजवोऽथ पवमानकः॥धूम्रानीकश्चित्ररेफो बहुरूपोऽथ विश्वधृक्॥१९॥ मर्यादागिरयः सप्तनद्यः सप्तैव कीर्तिताः॥
ईशान ऊरुशृंगोऽथ बलभद्रः शतकेशरः॥२०॥सहस्रस्रोतको देवपालोऽप्यंते महाशनः॥एतेऽद्रयः सप्त चोक्ताःसरिन्नामानि सप्त च॥२१॥

मण्डोदसे घिरा हुआ शाकद्वीप है जिसमें एक शाकवृक्ष है ॥ १६ ॥ हे नारद ! वह अपने क्षेत्र व्यपदेशके कारण विख्यात है वहां प्रियव्रतका पुत्र मेधातिथि
राजा है ॥ १७ ॥ पुत्रके सात नामोंसे उसके सात भाग कर वहांका राज्य पुत्रोंको दे स्वयं योग गतिको प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ पुरोजव, मनःपूर्वज, पवमानक,
धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप, विश्वधृक्, यह सात नाम हैं ॥ १९ ॥ मर्यादा पर्वत और नदी भी सातही हैं ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, क्षतकेशर ॥ २० ॥ सहस्र
स्रोतक, देवपाल, महासन, यह सात पर्वत हैं नदियोंके नाम सुनो ॥ २१ ॥

अनघा, आयुर्दा, उभय स्पृष्टि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्र श्रुति, ॥ २२ ॥ निजधृति यह चार नदी बडी निर्मल हैं वहांके पुरुष सत्यव्रत, ऋतुव्रत, ॥ २३ ॥
दानव्रत, अनुव्रत, यह चार वर्णयुक्त हैं प्राणायाम द्वारा भगवान् प्राणवायुको ॥ २४ ॥ रोककर निर्मल हुए परम हरिरूपसे भजन करते हैं जो प्राणियोंके
अन्तरमें प्रवेश करके अपनी प्राणादि वृत्तियोंसे प्राणियोंको धारण करते हैं ॥ २५ ॥ अन्तर्यामी ईश्वर हमारी रक्षा कर जिसके वशीभूत यह सब जगत् है
इसके आगे दधिमंडोद बडे विस्तारमें है ॥ २६ ॥ यह पुष्करद्वीप, शाकद्वीपसे प्रमाणमें दूना है अपने बराबर स्वादूदकसे चारोंओर वेष्टित है ॥ २७ ॥ जहां
अग्निके वलयके समान पुष्कर विराजमान है, बडी पवित्र उसकी सुवर्ण पंखरी विस्तृत हुई सहस्रों हैं ॥ २८ ॥ यह श्रीभगवान् परमेष्ठी पुरुषका आसन है सब

अनघा प्रथमायुर्दा उभयस्पृष्टिरेव च ॥ अपराजिता पंचपदी सयस्रश्रुतिरेव च ॥२२॥ ततो निजधृतिश्चोक्ताः सप्तः नद्यो महोज्ज्वलाः ॥
तद्वर्षपुरुषाः सर्वे सत्यव्रतक्रतुव्रतौ ॥ २३ ॥ दानव्रतानुव्रतौ च चतुर्वर्णा उदीरिताः ॥ भगवंतं प्राणवायुं प्राणायामेन संयुता ॥ २४ ॥
यजंति निर्धूतरजस्तमसः परमं हरिम् ॥ अंतः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ॥ २५ ॥ अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो
यद्वशे इदम् ॥ परस्तादधिमंडोदात्ततस्तु बहुविस्तरः ॥ २६ ॥ पुष्करद्वीपनामाऽयं शाकद्वीपद्विसंगुणः ॥ स्वसमानेन स्वा दूदकेनाऽयं
परिवेष्टितः ॥२७॥ यत्राऽऽस्ते पुष्करः भ्राजदग्निचूडानिमानि च ॥ पत्राणि विशदानीह स्वर्णपत्रायुतायुतम् ॥ २८ ॥ श्रीमद्भगवतश्चेदमा
सनं परमेष्ठिनः ॥ कल्पितं लोकगुरुणा सर्वलोकसिसृक्षया ॥ २९ ॥ तद्द्वीप एक एवाऽयं मानसोत्तरनामकः ॥ अर्वाचीनपराचीनवर्षयो
रवधिर्गिरिः ॥ ३० ॥ उच्छ्रयायामयोः संख्याऽयुतयोजनसंमिता ॥ यत्र दिक्षु च चत्वारि चतसृषु पुराणि ह ॥ ३१ ॥ इंद्रादिलोक
पालानां यदुपर्यर्कनिर्गमः ॥ मेरुप्रदक्षिणीकुर्वन्भानुः पर्येति यत्र हि ॥ ३२ ॥ संवत्सरात्मकं चक्रं देवाहोरात्रतो भ्रमन् ॥ प्रैयत्र
तोऽधिपो वीतहोत्रः स्मात्मेजकद्वयम् ॥ ३३ ॥

लोकके रचनेकी इच्छासे लोक गुरुने यहां अपने आसनकी कल्पना की थी ॥ २९ ॥ इस द्वीपमें एकही पर्वत मानसोत्तर नामक है जो अर्वाचीन और परा
चीन वर्षोंकी मर्यादा करता है ॥ ३० ॥ यह लम्बावमें १०००० योजन है जिसकी चारों दिशाओंमें चार पुर हैं ॥ ३१ ॥ यह इन्द्रादि लोकपालोंके हैं
जिनके ऊपर होकर सूर्य गमन करते हैं जहां सूर्य मेरुकी प्रदक्षिण करते चलते हैं ॥ ३२ ॥ संवत्सरका चक्ररूपसे भ्रमण देवताओंका यहां उत्तरायण दक्षिणा
यनके भेदसे अहोरात्र होता है इसमें प्रियव्रतका पुत्र वीतिहोत्र राज्य करता है उसने अपने दो पुत्रोंको ॥ ३३ ॥

दो वर्ष कर वहां स्थापन किया रमण और धातकी यही दो अधिपति हुए ॥ ३४ ॥ अपने पूर्वजोंके समानक्रिय भगवद्भक्तिमें तत्पर इस वर्षके पुरुष ब्रह्मरूप परमेश्वरकी ॥ ३५ ॥ शील सम्पन्न होकर्म योगसे यजन करते हैं इस प्रकार ब्रह्म सालोक्यादि साधनोंके फलरूप ब्रह्मकी खोज करते हैं ॥ ३६ ॥ ऐसे एकान्त, अद्वैत, शान्त भगवान्‌को प्रणाम है ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कधे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ श्रीनारायण बोले इसके आगे लोकालोक नामक पर्वत है जिन पर्वतोंके अन्तराल मध्यमें ही सूर्यका आलोक है ॥ १ ॥ हे देवर्षे ! मानसोत्तरसे मेरुका जितना अन्तर है उतनीही वहां सुवर्णकीभूमि है यह शुद्धोद सागरके पार है यह एक करोड़ साढे सत्तावन लाख योजन पर्यन्त है बडी मनोरम है ॥ २ ॥ वह दर्पणके समान है देवताओंके

वर्षद्वये परिस्थाप्य वर्षना मधरं क्रमात् ॥ रमणो धातकिश्चैव तत्तद्वर्षपती उभौ ॥ ३४ ॥ कृताः स्वयं पूर्वजवद्भगवद्भक्तितत्पराः ॥ तद्वर्षपुरुषा ब्रह्मरूपिणं परमेश्वर ॥ ३५ ॥ सकर्मकेन योगेन यजंति परिशीलिताः ॥ यत्तत्कर्ममयं लिंगं ब्रह्मलिग जनोऽर्चयेत् ॥ ३६ ॥ एकांतमद्वयं शांतं तस्मै भगवते नमः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ततः परस्तादचलोलोका लोकेतिनामकः ॥ अंतराले च लोकालोकयोर्यः परिकल्पितः ॥ १ ॥ यावदस्ति च देवर्षे ह्यंतरं मानसोत्तरात् ॥ सुमेरोस्तावती शुद्धा कांचनी भूमिरस्ति हि ॥ २ ॥ दर्पणोदरतुल्या सा सर्वप्राणिविवर्जिता ॥ यस्यां पदार्थः प्रहितो न किंचित्प्रत्युदीयते ॥ ३ ॥ अतः सर्वप्राणिसंघरहिता सा च नारद ॥ लोकालोक इति व्याख्या यदत्र परिकल्पिता ॥ ४ ॥ लोकालोकांतरे चास्य वर्तते सर्वदा स्थितिः ॥ ईश्वरेण सलोकानां त्रयाणामंतगः कृतः ॥ ५ ॥ सूर्यादीनां ध्रुवांतानां रश्मयो यद्वशादिह ॥ अर्वाचीनाश्च त्रींल्लोकानातन्वनाः कदाऽपि हि ॥ ६ ॥ पराचीनत्वभाजो हि न भवंति च नारद ॥ तावदुन्नहनायामः पर्वतेन्द्रो महोदय ॥ ७ ॥

सिवाय अन्य कोई वहां नहीं जा सकता जिसमें डाला हुआ पदार्थ सुवर्णही हो जाता है ॥ ३ ॥ हे नारद ! इस कारण वहां प्राणी निवास नहीं करते लोकालोक इस पदकी लोकोंको 'अगम्य' यही व्याख्या है ॥ ४ ॥ लोकालोकके अन्तरमेंही अर्थात् मध्यमें सदा इसकी सर्वदा स्थिति है ईश्वरने यह त्रिलोकीके अन्तगामी किया है अर्थात् मर्यादा रूप है ॥ ५ ॥ सूर्यसे लेकर ध्रुवतककी किरणें जिसके कारण तीन लोकसे बाहर गमन नहीं करती ॥ ६ ॥ हे नारद ! यह परम महान् पर्वतराज इस प्रकार उन्नत और विस्तारयुक्त है, कभी भी रश्मियें इसको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होती ॥ ७ ॥

यही लोकोंके मानका विन्यास है कविजनोंने इन पर्वतोंके सहित पचास कोटि योजनका विस्तार कहा है ॥ ८ ॥ हे मुने ! भूगोलके चतुर्थांशमें लोका लोक पर्वत है उसके उपर चारों ओर परमेष्ठीब्रह्माजीने ॥ ९ ॥ जो दिग्गज निवेशित किये हैं उनके नाम सुनो ऋषभ. पुष्पचूड़, वामन अपराजित ॥ १० ॥ यह सम्पूर्ण लोककी स्थितिके कारण हैं इनकी विभूतिपराक्रम विशेष हैं ॥ ११ ॥ भगवान् हरि इनका विशुद्ध सत्व बढाते हुए विष्वक्सेनादि आठ सिद्धोंके सहित विराजते हैं ॥ १२ ॥ वह भगवान् शंख, चक्र, गदा,पद्म धारण किये अपने आयुधोंसे समान सब लोकोंके कल्याणके निमित्त स्थित हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकार इसको अपनी मायासे रचकर सनातन विष्णु एक कल्पतक इसकी रक्षा करते हैं ॥ १४ ॥ जो यह पूर्वमें अन्तर्विस्तार वर्णित हुआ है उससे ही आलो

एतावांल्लोकविन्यासोऽयं संस्थामानसक्षणैः ॥ कविभिः स तु पंचाशत्कोटिभिर्गणितस्य च ॥ ८ ॥ भूगोलस्य चतुर्थांशो लोकालोका चलो मुने ॥ तस्योपरि चतुर्दिक्षु ब्रह्मणा चात्मयोनिना ॥ ९ ॥ निवेशिता दिग्गजा ये तन्नामानि निबोधत ॥ ऋषभः पुष्पचूडोऽथ वामनोऽथापराजितः ॥ १० ॥ एते समस्तलोकस्य स्थितिहेतव ईरिताः ॥ तेषां च स्वविभूतीनां बहुवीर्योपबृंहणम् ॥ ११ ॥ विशुद्धसत्त्वं चैश्वर्यं वर्धयन्भगवान्हरिः ॥ आस्ते सिद्धचष्टकोपेतो विष्वक्सेनादिसंवृतः ॥ १२ ॥ निजायुधैः परिवृतोभुजदंडैः समंततः ॥ आस्ते सकललोकस्य स्वस्तये परमेश्वरः ॥ १३ ॥ आकल्पमेवं वेषं स गतो विष्णुः सनातनः ॥ स्वमायारचितस्यास्य गोपीथाया त्मसाधनः ॥ १४ ॥ योंऽतर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणकम् ॥ व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोकाचल इतीरणात् ॥ १५ ॥ ततः परस्ताद्योगे शगतिं शुद्धांवदंति हि ॥ अंडमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदंतरम् ॥ १६ ॥ सूर्याड गोलयोर्मध्ये कोटचः स्युः पंचविंशतिः ॥ मृतेंऽड एषः एतस्मिन्जातो मार्तंडशब्दभाक् ॥ १७ ॥ हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्यांडसमुद्भवः ॥ सूर्येण हि विभज्यंते दिशः खं द्यौर्मही भिदा ॥ १८ ॥ स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥ देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम् ॥ १९ ॥

कका परिमाण निर्दिष्ट होता है कारण कि इसके बहिर्भागमें लोकालोक प्रतिष्ठित हैं यह कहा गया है ॥ १५ ॥ हे नारद ! इस ऊपर शुद्ध योगियोंकीही गति है इस द्यावाभूमिके मध्यमें सूर्य गमन करते हैं ॥ १६ ॥ सूर्य अंड और भूमिगोलकका अन्तर कोटि योजन है वैराजरूपसे आत्माके प्रविष्ट होनेसे यह मार्तण्ड कहा जाता है ॥ १७ ॥ हिरण्य अंडसे प्रगट होनेसे यही हिरण्यगर्भ हैं, सूर्यसे ही दिशा आकाश द्युलोक और भूमिका भेद होता है ॥ १८ ॥ स्वर्ग, अप वर्ग, नरक, रसोंके स्थान, देवता, तिर्यक्,मनुष्य, सरीसृप, वृक्ष, लता ॥ १९ ॥

तथा संपूर्ण बीजसमूहोंकी आत्मा सूर्य ही है यह इतना भूमंडलका घेरा कहा ॥२०॥ इसीके अनुसार ज्ञाता गण द्युलोकका मान कहते हैं जैसे दोदलोंमें एकका मान जाननेसे दूसरेका जानाजाता है ॥ २१ ॥ इन दोनोंका जो मध्य है सो परस्पर सँलग्न है इनके मध्यमें तपनेवालोंमें श्रेठ सूर्य ॥ २२ ॥ अपने आतपसे प्रकाश करते त्रिलोकीको तपाते हैं, पहले उत्तरायणको प्राप्त होकर मंदगति करते हैं ॥२३॥ कारण कि यह आरोहण स्थान है इसमें जानेसे दिन बड़ा होता है और दक्षिणायनको प्राप्त होकर शीघ्र गति करते हैं ॥ २४ ॥ यह उतरनेका समय है उतरनेमें दिन छोटा होता है. विषुव'तुला मेष' संज्ञाको प्राप्त होकर

सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥ एतावान्भूमंडलस्य सन्निवेश उदाहृतः ॥२०॥ एतेन हि दिवो मानं वर्णयंति च तद्धियः ॥ द्विपलानां च निष्पावादीनांदलयोर्यथा ॥ २१ ॥ तयोरंत अंतरेण रिक्षं तदुभयसंधितम् ॥ यन्मध्यगश्च भगवान्भानुर्वै तपतां वरः ॥ २२ ॥ आतपेन त्रिलोकीं च प्रतपत्येव भासयन् ॥ उत्तरायणमासाद्य गतिमांद्यं वितन्वते ॥ २३ ॥ आरोहणस्थानमसौ गत्वाऽहो दैर्घ्यमाचरेत् ॥ दक्षिणायनमासाद्य गति शैध्र्यं वितन्वते ॥ २४ ॥ अवरोहस्थानमसौच्छन्ह्रस्वं दिनं चरेत् ॥ विषुवत्संज्ञमासाद्य गति साम्यं वितन्वते ॥ २५ ॥ समस्थानमथासाद्य दिनसाम्यं करोति च ॥ यदा च मेषतुलयोः संचरेद्धि दिवाकरः ॥ २६ ॥ समानानि त्वहोरात्राण्यातनोति त्रयी मयः ॥ वृषादिपंचसु यदा राशि ष्वर्को विरोचते ॥ २७ ॥ तदाऽहानि च वर्धते रात्रयोऽपि ह्रसंति च ॥ वृश्चिकादिषु सूर्यो हि यदासंचरते रविः ॥ २८ ॥ तदाऽपीमान्य होरात्राणि भवंति विपर्ययात् ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि भानोर्गमनमुत्तरम् ॥ शीघ्रमंदादिगतिभिस्त्रिविधं गमनं रवेः ॥ १ ॥ सर्वग्रहाणां त्रीण्येवस्थानानि सुरसत्तम ॥ स्थानं जारद्गवं मध्यं तथैरावतमुत्तरम् ॥ २ ॥ वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिति तत्त्वतः ॥ अश्विनी कृत्तिका याम्या नागवीथीति शब्दिता ॥ ३ ॥

साम्यगति होती है ॥२५॥ समस्थानको प्राप्त होनेसे दिन बराबर होता है जब मेष और तुलामें सूर्य होते हैं ॥ २६ ॥ तब दिनरात समान होते हैं और वृषादि पंच राशियोंमें जब गमन करते हैं॥२७॥तब दिन बढता रात छोटी होती है जब वृश्चिकादिमें गमन करते हैं तब दिन छोटा होकर रात बढती है॥२८॥ इति श्रीदेवीभावगते महापुराणे अष्टमस्कंधे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥श्रीनारायण बोले अब सूर्यका गमन कहता हूं शीघ्र मंदादिगतिसे सूर्यकातीन प्रकारका गमन है ॥१॥हे सुरसत्तम!सब ग्रहोंके तीनही स्थान हैं जारद्गवस्थान मध्यका और ऐरावत उत्तरका है॥२॥और वैश्वानर दक्षिणका है अश्विनी,कृतिका,भरणी नागवीथी हैं॥३॥

रोहिणी, आर्द्रा, मृगशिर, गजवीथी. पुष्य, आश्लेषा, आदित्या, (पुनर्वसु) ऐरावती वीथी हैं ॥ ४ ॥ इन तीन वीथियोंका उत्तरमार्ग कहा जाता है तथा पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, मघा यह आर्षभी वीथी है ॥ ५ ॥ हस्त, चित्रा, स्वाती, गोवीथी है ज्येष्ठा, विशाखा, अनुराधा, जारद्गवी, वीथी है ॥ ६ ॥ इन तीनों वीथियोंका मध्यम मार्ग कहा जाता है. मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा अजवीथी है ॥ ७ ॥ श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृगवीथी है, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती वैश्वानरी वीथी है ॥ ८ ॥ यह तीनों वीथियें दक्षिणमार्ग कहाती हैं उत्तरायणको प्राप्त होकर युगाक्षांति पाशसे बंधा है ॥ ९ ॥ वायुके बंधे इन पाशोंका

रोहिण्यार्द्रा मृगशिरो गजवीथ्यभिधीयते ॥ पुष्याश्लेषा तथाऽऽदित्या वीथी चैरावृती स्मृता ॥ ४ ॥ एतास्तु वीथयस्तिस्र उत्तरो मार्ग उच्यते ॥ तथा द्वे चापि फल्गुन्यौ मघा चैवार्षभी मता ॥ ५ ॥ हस्तश्चित्रा तथा स्वाती गोवीथीति तु शब्दिता ॥ ज्येष्ठा विशाखानुराधा वीथी जारद्गवी मता ॥ ६ ॥ एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमो मार्ग उच्यते ॥ मूलाषाढोत्तराषाढा अजवीथ्यभिशब्दिता ॥ ७ ॥ श्रवणं च धनिष्ठा च मार्गी शतभिषक्तथा ॥ वैश्वानरीभाद्रपदे रेवती चैव कीर्तिता ॥ ८ ॥ एतास्तु वीथयस्तिस्रो दक्षिणो मार्ग उच्यते ॥ उत्तरायणमासाद्य युगाक्षांतर्निबद्धयोः ॥ ९ ॥ कर्षणं पाशयोर्वायुबद्धयो रोहणं स्मृतम् ॥ तदाभ्यंतरगान्मंडलाद्रथस्य गतेर्भवेत् ॥ १० ॥ मांद्यं दिवसवृद्धिश्च जायते सुरसत्तम ॥ रात्रिह्रासश्च भवति सौमायनक्रमो ह्ययम् ॥ ११ ॥ दक्षिणायनके पाशे प्रेरणादवरोहणम् ॥ बहिर्मंडलवेशेन गतिशैध्र्यं तदा भवेत् ॥ १२ ॥ तदा दिनाल्पता रात्रिवृद्धिश्च परिकीर्तिता ॥ वैषुवेपाशसाम्याच्च समावस्थानतो रवेः ॥ १३ ॥ मध्यमंडलवेशश्च साम्यं रात्रिदिनादिके ॥ आकृष्येते यदा तौ तु ध्रुवे समधिष्ठितौ ॥ १४ ॥ तदाऽभ्यंतरतः सूर्यो भ्रमते मंडलानि च ॥ ध्रुवेण मुच्यमानेन पुना रश्मियुगेनतु ॥ १५ ॥

जो आकर्षण है वह रोहण है इसके अन्तरसे जो रथकी गति होती है ॥ १० ॥ हे सुरसत्तम ! इस कारण मंदगतिसे दिनकी वृद्धि होती है रात्रिकी ह्रास होती है यह चलनेका क्रम है ॥ ११ ॥ जब दक्षिणायन पाश ध्रुवलोकसे प्रेरण करता है तब अवरोहण होनेसे बहिर्मण्डलवेशद्वारा शीघ्र गति होती है ॥ १२ ॥ उस समय दिन छोटा रात्रि बडी होती है विषयमें साम्यपाश रहनेके कारण मध्यमण्डलप्रवेशके कारण ॥ १३ ॥ गतिसाम्य होनेसे दिन समान होता है जब वह ध्रुवके समीप खेंचे जाते हैं ॥ १४ ॥ तब अन्तरमें सूर्य मंडलमें भ्रमण करते हैं और जब ध्रुवद्वारा पाशयुगल मुक्त किये जाते हैं ॥ १५ ॥

तब बाहरी भागमें सूर्यमंडलोंमें भ्रमण करते हैं उस मेरुके पूर्वभाग इन्द्रकी पुरी है जो देवधानी कहाती है ॥ १६ ॥ दक्षिणमें यमकी संयमनी पुरी है पश्चिममें निम्लोची वरुणकी महापुरी है ॥ १७ ॥ उत्तरमें चन्द्रकी विभावरी पुरी है प्रथम इन्द्रपुरीकी ओरसे ब्रह्मवादी सूर्यका उदय कहते हैं ॥ १८ ॥ संयमनी आकर मध्याह्न और निम्लोचीमें आकर अस्त होता है ॥ १९ ॥ इनकी प्रवृत्तिसे मेरुके चारों ओरवाले अपना २ उदय कहते हैं जो मेरुके दक्षिणमें हैं वे इंद्रपुरीसे पूर्वादि जो पश्चिममें हैं वे यमपुरीसे जो उत्तरमें हैं वे वरुण पुरीसे आरंभ करके जो पूर्वमें हैं वे चन्द्रपुरीसे आरंभ करके सूर्यद्वारा चारों दिशा मानते हैं ॥ २० ॥ नक्षत्रादिके सन्मुख गतिसे मेरुके वाम ओर करते प्रवह नामक वायुसे भ्रमित होते ज्योतिष चक्रके कारण प्रतिदिन परिक्रमा करते हैं चक्रगति

तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मंडलानि च ॥ तस्मिन्मेरौ पूर्वभागे पुर्यैंद्री देवधानिका ॥ १६ ॥ दक्षिणे वै संयमनी नाम याम्या महापुरी ॥ पश्चान्निम्लोचनी नाम वारुणी वै महापुरी ॥ १७ ॥ तदुत्तरे पुरी सौम्या प्रोक्ता नाम विभावरी ॥ ऐंद्रपुर्यां रवेः प्रोक्त उदयो ब्रह्मवादिभिः ॥ १८ ॥ संयमन्यां च मध्याह्नो निम्लोचन्यां विमीलनम् ॥ विभावर्यां निशीथः स्यात्तिग्मांशोः सुरपूजितः ॥ १९ ॥ प्रवृत्तेश्च निमित्तानि भूतानां तानि सर्वशः ॥ मेरोश्चतुर्दिशं भानोः कीर्तितानि मया मुने ॥ २० ॥ मेरुस्थानां सदा मध्यं गत एव विभाति हि ॥ सव्यं गच्छन्दक्षिणेन करोति स्वर्णपर्वतम् ॥ २१ ॥ उदयास्तमये चैव सर्वकालं तु सम्मुखे ॥ दिवशास्वशेषासु तथा सुरर्षे विदिशासु च ॥ २२ ॥ यैर्यत्रदृश्यते भास्वान्स तेषामुदयः स्मृतः ॥ तिरोभावं च यत्रैति तत्रैवास्तमनं रवेः ॥ २३ ॥ नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः ॥ उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः ॥ २४ ॥ शक्रादीनां पुरे तिष्ठन्स्पृशत्येष पुरत्रयम् ॥ विकर्णौ द्वौ विकर्णस्थस्त्रीन्कोणान्द्वे पुरे तथा ॥ २५ ॥

वशसे अति दूर होनेसे भूमिमें लगा हुआ सा दर्शन होना उदय है आकाशमें आरूढ दर्शनही मध्याह्न भूमि प्रविष्ट होनेका दर्शनही अस्त है और बहुत दूर गमनही अर्धरात्रि है यह सब विचार हर स्वर्णपर्वतकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥ २१ ॥ उदय और अस्तमें सब समय सन्मुख होते हैं हे नारद ! और सब दिशा विदिशाओंमें ॥२२॥ जिनको यहां सूर्यका दर्शन होता है वही उनका उदय है और जहां तिरोभाव है वही अस्त है ॥२३॥ वास्तविक सूर्यका उदय अस्त नहीं है सदाही उदय है अपने दिखने और न दीखनेको उदयास्त मान लियाहै ॥ २४ ॥ शक्रादिके पुरमें स्थित होते यही इन्द्र, यम, सोम, तीनों पुरोंको किरणोंसे स्पर्श करते हैं तथा विकर्णमें स्थित हो ईशान कोण और वह्नि कोणको स्पर्श करते हैं और जब वह्निपुरमें होते हैं तब त्रिकोण अर्थात् वह्निकोण, निर्ऋति

कोण, ईशान कोण, इन्द्रपुर और यमपुरको स्पर्श करते हैं शेष मेरुसे व्यवधान हुए रहते हैं इसी प्रकार याम्यादि पुरको स्थितिमें जानना ॥ २५ ॥ सब द्वीप और वर्षोंके मेरु उत्तरमें स्थित हैं जो जहां सूर्योदय देखते हैं उसे ही पूर्व कहते हैं ॥ २६ ॥ उसीके वामभागमें मेरु होता है यह निर्णय है जब इन्द्रपुरीसे पन्द्रह घडीमें यमपुरीमें आते हैं ॥२७॥ तब यमपुरी आतेमें दो करोड़से तीन लाख पिचहत्तर सहस्र योजन मार्ग चलना होता है ॥ २८ ॥ कालमार्गको दिखाने वाले इतना मार्ग आक्रमण करते हैं इसी प्रकार वरुण सोम और फिर इन्द्रकी पुरीमें आते हैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार यह दिनमणि काल ज्ञानके निमित्त परिक्रमण करते हैं तथा और भी चन्द्र आदि ग्रह, द्युलोकमें विचरण करते हैं ॥ ३० ॥ नक्षत्रोंके साथ उदय और अस्तको प्राप्त होते हैं इस प्रकार एक

सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतः स्थितः ॥ यैर्यत्र दृश्यते भानुः सैव प्राचीति चोच्यते ॥ २६ ॥ तद्वामभागतो मेरुर्वर्ततेति विनिर्णयः ॥ यदि चैंद्र्याः प्रचलते घटिकादशपंचभिः ॥ २७ ॥ याम्यां तदा योजनानां सपादं कोटियुग्मकम् ॥ सार्धद्वादशलक्षाणि पंचनेत्रसहस्रकम् ॥ २८ ॥ प्रक्रामति सहस्रांशुः कालमार्गप्रदर्शकः ॥ एवं ततो वारुणीं च सौम्यमैंद्रीं सहस्रदृक् ॥ २९ ॥ पर्यैति कालचक्रात्मा द्युमणिः कालबुद्धये ॥ तथा चान्ये ग्रहाः सोमादयो ये दिविचारिणः ॥ ३० ॥ नक्षत्रैः सह चोद्यंति सह चास्तं व्रजंति ते ॥ एवं मुहूर्तेन रथो भानोरष्टशताधिकम् ॥ ३१ ॥ योजनानां चतुस्त्रिंशल्लक्षाणि भ्रमति प्रभुः ॥ त्रयीमयश्चतुर्दिक्षु पुरीषु च समीरणात् ॥ ३२ ॥ प्रवाहव्यात्सदा कालचक्रं पर्यैति भानुमान् ॥ यस्य चक्रं रथस्यैकं द्वादशारं त्रिनाभिकम् ॥ ३३ ॥ षण्नेमि कवयस्तं च वत्सरात्मकमूचिरे ॥ मेरुमूर्धनि तस्याक्षो मानसोत्तरपर्वते ॥ ३४ ॥ कृतेतरविभागो यः प्रोतं तत्र स्थांगकम् ॥ तैलकारकयंत्रेण चक्रसाम्यं परिभ्रमन् ॥ ३५ ॥ मानसोत्तरनाम्नीह गिरौपर्यैतिचांशुमान् ॥ तस्मिन्नक्षे कृतं मूलंद्वितीयोऽक्षो ध्रुवे कृतः ॥ ३६ ॥

मुहूर्तमें सूर्यका रथ ॥ ३१ ॥ चौतीस लाख आठसौ योजन भ्रमण करता है यह त्रयीविद्यामय वायुद्वारा चारों पुरियोंमें गमन करते हैं ॥ ३२ ॥ प्रवह नामक वायुद्वारा कालचक्ररूप सूर्य भ्रमण करता है जिनका संवत्सररूप एक पहिया बारह महीने रूप बाहर और तीन चातुर्मास्य नाभि ॥ ३३ ॥ षट्ऋतुरूप नेमि है कवि इसको ही संवत्सरात्मा कहते हैं मेरुके शिरोभाग मानसोत्तर पर्वतमें इसका अक्ष धुर है ॥ ३४ ॥ इसी सूर्यचक्रके प्रांतभागद्वारा अपरापर कला काष्ठा मुहूर्त, याम' प्रहर, अहोरात्र और पक्षादि विभक्त हुए हैं इसी निमित्त यह चक्र चलता है भगवान् भानुमान तेलकारके यंत्रके समान इस चक्रको भ्रमण कराते मानसोत्तर नामक उल्लिखित पर्वतकी परिक्रमा करते हैं, चक्रके पूर्वभागमें वे अक्ष और दूसरे भागमें अक्ष सन्निवेशित हुआ है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

दूसरा परिणाम इसका एक चतुर्थांश है यह तैलयंत्रके अक्षानुरूप कहा है इसके ऊपर भागमें जगत् पति सूर्यका भाग कहा गया है ॥ ३७ ॥ सूर्यका उपवेशन स्थान अर्थात् जहां स्थित हुआ जाता है वह श्रेष्ठ उनके ॥ ३८ ॥ रथका नीड छत्तीस लाख योजन है उसीके तुर्य भागमें इसकी दीर्घता है और शास्त्रोंमें इतना ही इस रथका युग (जुआ) कहा है इसमें गायत्री आदि छन्दनामके सात अश्व सूर्यके सारथिने लगाये हैं ॥ ३९ ॥ यही लोकोंके सुखके निमित्त आदित्य देवको वहन करते हैं अरुण सारथि सूर्यके आगे स्थित होकर भी प्रत्यङ् मुख स्थित हैं ॥ ४० ॥ यह गरुडके बड़े भ्राता रथवाहका कर्म करते हैं, इसी प्रकार अंगुष्ठप्रमाणवाले वालखिल्य नामक ऋषि ॥ ४१ ॥ साठ सहस्र सूर्यकी ओर मुख किये सूक्तवाक्योंसे सूर्यकी स्तुति करते चलते हैं ॥ ४२ ॥ इसी

तुर्यमानेन तैलस्य यंत्राक्षवदितीरितः ॥ कृतोपरितनो भोगः सूर्यस्य जगतां पतेः ॥ ३७ ॥ रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनमायतः ॥ तत्तुर्यभागतः सोऽर्यपरिणाहेन कीर्तिता ॥ ३८ ॥ तावानर्करथस्यात्र युगस्तस्मिन्हयाः शुभाः ॥ सप्तच्छदोऽभिधानाश्च सूरसूतेन योजिताः ॥ ३९ ॥ वहंति देवमादित्यं लोकानां सुखहेतवे ॥ पुरस्तात्सवितुः सूतोऽरुणाः पश्चान्नियोजितः ॥ ४० ॥ सौत्ये कर्मणि संयुक्तो वर्तते गरुडाग्रजः ॥ तथैव वालखिल्याख्या ऋषयोंऽगुष्ठपर्वकाः ॥ ४१ ॥ प्रमाणेन परिख्याताः षष्टिसाहस्र संख्यकाः ॥ स्तुवन्ति पुरतः सूर्यं सूक्तवाक्यैः सुशोभनैः ॥ ४२ ॥ तथा चाऽन्येचऋषयोगन्धर्वा अप्सरोरगाः ॥ ग्रामण्यो यातुधानाश्च देवाः सर्वे परेश्वरम् ॥ ४३ ॥ एकैकशः सप्तसप्त मासिमासि विरोचनम् ॥ सार्धलक्षोत्तरं कोटिनवकं भूमिमंडलम् ॥ ४४ ॥ द्विसहस्रं योजनानां सगव्यूत्युत्तरं क्षणात् ॥ पर्यैति देवदेवेशो विश्वव्यापी निरंतरम् ॥४५॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

श्रीनारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां चित्रं सोमादीनां गमादिकम् ॥ तद्गत्यनुसृता नृणां शुभाशुभनिदर्शना ॥ १ ॥

प्रकार और ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, उरग, ग्रामणी, यातुधान, देवता यह सब इन परमेश्वरको ॥ ४३ ॥ प्रत्येक चौदह, बारह, सात गुणे महीने महीनेमें विरोचनदेवकी सेवा करते हैं अर्थात् एक २ सात सात गणमें विभक्त होकर इन परम ज्योतिर्मय शरीरी परमेश्वर रूपी भानुमानकी उपासना करते हैं और नौ करोड़ ॥ ४४ ॥ एकलाख बावन हजार दो योजन भूमण्डलके परिमाणमें देवदेवेश्वर सर्वव्यापी एकक्षणमें परिभ्रमण करते हैं और क्षणमात्रको भी विश्राम नहीं करते ॥ ४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीनारायण बोले अब चन्द्रादिकी गति श्रवण करो, उनकी गतिसे मनुष्योंका शुभाशुभ जाना जाता है ॥ १ ॥

जैसे कुलालचक्र निरन्तर भ्रमण करता रहै तौ उसके आश्रयसे और कीटादिकी भी वही गति होती है अर्थात् घूमते हैं ॥ २ ॥ इसी प्रकार उसी कालचक्रकी राशिसमूह द्वारा मेरुकी धुरका अनुसरण करते सर्वदा प्रदक्षिणा करते हुए ॥ ३ ॥ सूर्यादि मुख्य ग्रहोंकी गति अन्यसी ही दीखती है नक्षत्रान्तरमें गमनके कारण इसी भाँति अन्य नक्षत्रोंमें गमन होता है ॥ ४ ॥ यह दोनों गति चक्रवशसे अविरुद्ध हैं सर्वत्र ही यह निर्णय है, यही भगवान् आदि पुरुषलोकभावन ॥ ५ ॥ नारायण सबके आधार लोकोंकी शुभकामनाके निमित्त भ्रमण करते हैं यही कर्मशुद्धिके निमित्त त्रयीमय कहे जाते हैं ॥ ६ ॥ वही अविनाशी कवियों द्वारा अवितर्क होकर सूर्यरूपसे बारह भेदसे कहे जाते हैं,यह स्वयं वसन्तादि षट्ऋतुओंमें ॥ ७ ॥ उनको सेवन करते हुए पूर्तिपूर्वक उनमें गुणस्थापन

यथा कुलाल चक्रेण भ्रमता भ्रमतां सह ॥ तदाश्रयाणां च गतिरन्या कीटादिनां भवेत् ॥ २ ॥ एवं हि राशिवृन्देन कालचक्रेण तेन च ॥ मेरुं धुरं च सरतां प्रादक्षिण्येन सर्वदा ॥ ३ ॥ ग्रहाणां भानुमुख्यानां गतिरन्येव दृश्यते ॥ नक्षत्रांतरगामित्वाद्भांतरे गमनं तथा ॥ ४ ॥ गति द्वयं चाविरुद्धं सर्वत्रैष विनिर्णयः ॥ स एव भगवानादिपुरुषो लोकभावनः ॥ ५ ॥ नारायणोऽखिलाधारो लोकानां स्वस्तये भ्रमन् ॥ कर्मशुद्धिनिमित्तं तु आत्मानं वै त्रयीमयम् ॥ ६ ॥ कविभिश्चैव वेदे न विजिज्ञास्योऽर्कधाऽभवत् ॥ षट्सु क्रमेण ऋतुषु वसंतादिषु च स्वयम् ॥ ७ ॥ यथोपजोषमृतुजान्गुणान्वै विदधाति च ॥ तमेनं पुरुषाः सर्वे त्रय्या च विद्यया सदा ॥ ८ ॥ वर्णाश्रमाचारपथा तथाऽऽम्नातैश्च कर्मभिः ॥ उच्चावचैः श्रद्धया च योगानां च वितानकैः ॥ ९ ॥ अंजसा च यजंते ये श्रेयो विंदंति ते मतम् ॥ अथैष आत्मा लोकानां द्यावाभूम्यंतरेण च ॥ १० ॥ कालचक्रगतो भुंक्ते मासान्द्वादश राशिभिः ॥ संवत्सरस्यावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा ॥ ११ ॥ नक्तं चेति सपादर्क्षद्वयमित्युपदिश्यते यावता षष्ठमंशं स भुंजीत ऋतुरुच्यते ॥ १२ ॥ संवत्सरस्यावयवः कविभिश्चोपवर्णितः ॥ यावताऽर्धेन चाकाशवीथ्यां प्रचरते रविः ॥ १३ ॥

करते हैं इन्हींको सब पुरुष त्रयीविद्या द्वारा ॥ ८ ॥ वर्णाश्रम आचारके मार्गसे तथा वेद, उच्चावच कर्मोंद्वारा श्रद्धा और योगसे ॥ ९ ॥ निरंतर अपने अभीष्टके निमित्त यजन करते और कल्याणको प्राप्त होते हैं यही लोकोंके आत्मा द्यावा पृथ्वीके अन्तरमें ॥ १० ॥ कालचक्रको प्राप्त हुए मेषादि बारह राशियों द्वारा बारह मासोंको भोगते हैं महीने संवत्सरके अवयव हैं महीनेके दो पक्ष हैं दिन ॥ ११ ॥ और रात सौर परिमाणमें सदा दो नक्षत्रोंका भोग होता है इस परिमाणसे छठे अंश अर्थात् दो राशिका भोग होता है इसका नाम ऋतु है ॥ १२ ॥ यह संवत्सरके अवयव कविजनोंने वर्णन किये हैं जब

तक सूर्य तीन ऋतुमें आकाश वीथीमें विचरण करते हैं ॥ १३ ॥ उसीको पूर्व पुरुष एक अयन कहते हैं और जब द्यावापृथ्वीके सहित समस्त मंडलमें गमन हो चुकता है ॥ १४ ॥ तो बारह ऋतुओंके भोगनेसे उस कालको वर्ष कहते हैं उसके पांच नाम हैं संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, ॥ १५ ॥ अनुवत्सर, इद्वत्सर, यह पांच नाम हैं सूर्यकी मंद, शीघ्र, सम गतिसे कालज्ञाताओंने ॥ १६ ॥ इसप्रकार सूर्यकी गति कही है । अब चन्द्रादिकी गति सुनो इसी प्रकार चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंसे लाख योजन दूर है ॥ १७ ॥ और सूर्यके संवत्सर भोगको दो पखवारोंमें भोगते हैं ॥ १८ ॥ सवादो दिन चन्द्रमा एक राशिपर रहते हैं इस प्रकार शीघ्र गतिसे चन्द्रमा नक्षत्रोंको भोगता है । कलाओंसे पूर्ण होते देवताओंकी प्रीति धारण करते हैं और क्षीणकला होनेमें

तं प्राक्तना वर्णयंति अयनं मुनिपूजिताः ॥ अथ यावन्नभोमंडलं सह प्रतिगच्छति ॥ १४ ॥ कार्त्स्न्येन सह भुंजीत कालं तं वत्सरं विदुः ॥ संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमेव च ॥ १५ ॥ अनुवत्सरमिद्वत्सरमिति पंचकमीरितम् ॥ भानोर्मांद्यशैघ्र्यसमगतिभिः कालवित्तमैः ॥ १६ ॥ एवं भानोर्गतिः प्रोक्ता चंद्रादीनां निबोधत ॥ एवं चंद्रोऽर्करश्मिभ्यो लक्ष योजनमूर्ध्वतः ॥ १७ ॥ उपलभ्यमानो मित्रस्य संवत्सरभुंजि च सः ॥ पक्षाभ्यां चौषधीनाथो भुक्तं मासभुंजि च स ॥ १८॥ सपादमाभ्यां दिवसभुक्ति पक्षभुंजि चरेत् ॥ एवं शीघ्रगतिः सोमो भुंक्ते नूनं भचक्रकम् ॥ १९ ॥ पूर्यमाणकलाभिश्चामामराणां प्रीतिमावहन् ॥ क्षीयमाणकलाभिश्च पितृणां चित्तरंजकः ॥ २० ॥ अहोरात्राणि तन्वानः पूर्वापरसुघस्रकैः ॥ सर्वजीवनिकायस्य प्राणो जीवः स एव हि ॥ २१ ॥ भुंक्ते चैकैकनक्षत्रं मुहूर्तत्रिंशता विभुः ॥ स एव षोडशकलः पुरुषोऽनादिरुत्तम ॥ २२ ॥ मनोमयोऽप्यन्नमयोऽमृतधामा सुधाकरः ॥ देवपितृमनुष्यादिसरीसृपसवीरुधाम् ॥ २३ ॥ प्राणाप्यायनशीलत्वात्स सर्व मय उच्यते ॥ ततो भचक्रं भ्रमति योजनानां त्रिलक्षतः ॥ २४ ॥ मेरुप्रदक्षिणेनैव योजितं चेश्वरेण तु ॥ अष्टाविंशतिसंख्यानि गणितानि सहाभिजित् ॥ २५ ॥

पितरोंका मन रंजन करते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ पूर्व अपर पक्षसे यह दिन रात्रिका विस्तार करते हैं सब जीवधारियोंके जीवनका हेतु है कारण कि, अमृतमय है, ॥ २१ ॥ तीस मुहूर्तमें एक २ नक्षत्रको भोगता है यही षोडशकलात्मक अनादि उत्तम पुरुष है ॥ २२ ॥ मनोमय अन्नमय अमृतके धाम सुधाकर देव, पितर, मनुष्य, सरीसृप, वीरुध ॥ २३ ॥ यह सबके प्राणोंका आयतन है शीलवान होनेसे सर्वमय है इसके आगे तीन लाख योजनमें नक्षत्रचक्र भ्रमण करता है ॥ २४ ॥ यह सब ईश्वरद्वारा नियुक्त हुए मेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं यह अभिजित सहित अट्ठाईस नक्षत्र हैं ॥ २५ ॥

इसके ऊपर दो लाख योजन शुक्र है यह आगे भोगे हुए सूर्यके नक्षत्रको पश्चात् भोगता है अर्थात् आगे, पीछे और सन्मुख चलते हैं ॥ २६ ॥ यह भी शीघ्र समान मंदगतिसे विचरण करता है यह लोकोंके अनुकूल सुखदायक कहे गये हैं ॥ २७ ॥ हे मुने ! शुक्र वृष्टि रोकनेवाले ग्रहोंकी शांति करता है शुक्रसे बुध दो लाख योजन दूर है ॥ २८ ॥ इसकी भी शुक्रके समान शीघ्र मंद और समान गति है जिस समय बुध जब सूर्यसे दूर हो जाता है उस समयमें ॥ २९ ॥ अतिपावन, अभ्रपात और अनावृष्टिका भय सूचन करता है उसके आगे मंगल दो लाख योजन ऊंचा है ॥ ३० ॥ यह तीन, तीन, पक्षमें एक एक राशिको भोगता है, यदि वक्री न हो तो तीन पक्षमें एक राशि पूर्ण करता है ॥३१॥ यह प्रायः अशुभ ग्रह दुःखोंको सूचन करता है इसके आगे दो

ततः शुक्रोद्विलक्षेण योजनानामथोपरि ॥ पुरः पश्चात्सहैवासार्कस्य परिवर्तते ॥२६॥ शीघ्रमंदसमानाभिर्गतिभिर्विचरन्विभुः हैं लोकानामनुकूलोऽयं प्रायः प्रोक्तः शुभावहः ॥ २७ ॥ वृष्टिविष्टंभश मनो भार्गवः सर्वदा मुने ॥ शुक्राद् बुधः समाख्यातो योजनानां द्विलक्षतः ॥ २८ ॥ शीघ्रमंदसमानाभिर्गतिभिः शुक्रवत्सदा ॥ यदाऽर्काद्व्यतिरिच्येत सौम्यःप्रायेण तत्र तु ॥२९॥ अतिवातभ्रपातानावृष्ट्यादिभयसूचकः ॥ उपरिष्टात्ततो भौमो योजनानां द्विलक्षतः ॥३०॥ पक्षैस्त्रिभिस्त्रिभिः सोऽयं भुंक्ते राशीनथैकशः ॥ द्वादशापि च देवर्षे यदि वक्रो न जायते ॥ ३१ ॥ प्रायेण शुभकृत्सोऽयं ग्रहौघानां च सूचकः ॥ ततो द्विलक्षमानेन योजनानां च गीष्पतिः ॥ ३२ ॥ एकैकस्मिन्नथो राशौ भुंक्त संवत्सरं चरन् ॥ यदि वक्रो भवन्नैवानुकूलो ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३३ ॥ ततः शनैश्चरो घोरो लक्षद्वयपरोमितः ॥ योजनैः सूर्यपुत्रोऽयं त्रिंशन्मासैः परिभ्रमन् ॥३४॥ एकैकराशौ पर्यैति सर्वान्राशीन्महाग्रहः ॥ सर्वेषामशुभो मंदः प्रोक्तः कालविदां वरैः ॥३५॥ ततः उत्तरतः प्रोक्तमेकादशसुलक्षकैः ॥ योजनैः परिसंख्यात सप्तर्षीणां च मंडलम् ॥३६॥ लोकानां शं भावयंतो मुनयः सप्त ते मुने ॥ यत्तद्विष्णुपदं स्थानं दक्षिण क्रमते च ते ॥ ३७ ॥ इति श्री० देवीभा० म० अष्टमस्कंधे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

लाख योजनपर बृहस्पति ॥ ३२ ॥ एक एक राशिको यदि वक्री न हो तो एक वर्षमें भोगता है वक्री न होनेपर यह ब्रह्मवादियोंको अनुकूल होता है ॥ ३३ ॥ इसके ऊपर दो लाख योजन घोर ग्रह शनैश्चर रहता है यह तीस महीनेमें एक राशिपरसे चलता है ॥ ३४ ॥ इसप्रकार यह महाग्रह बारह राशि भोग करता है ज्योतिषियोंने इसे सबके निमित्त अशुभ कहा है ॥ ३५ ॥ इसके ऊपर ग्यारह लाख योजनपर सप्तऋषियोंका मंडल है ॥ ३६ ॥ हे नारद ! यह सातों मुनि लोकोंके मंगल निमित्त विष्णुपद स्थानकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रीनारायण बोले सप्तर्षिमंडलसे तेरह लाख योजन आगे परम वैष्णवपद है ॥ १ ॥ जहां महाभागवत लोकवंदित उत्तानपादपुत्र ध्रुव, इन्द्र, अग्नि, कश्यप ॥ २ ॥ धर्मके सहित स्थित हैं और देखनेवाले सदाही उनकी बहुत मानना करते हैं ॥ ३ ॥ कल्पपर्यन्त जीनेवाले भगवत्की सब उपासना करते हैं ज्योतिश्चक्रमें प्राप्त सब ग्रह, नक्षत्रोंको ॥ ४ ॥ अव्यक्तगतिसे भ्रमण कराते हुए ईश्वरने इनको स्थाणुके समान निश्चल किया है ॥ ५ ॥ देवीपूजित हो अपनी कांतिसे सबको प्रकाश करते हैं जैसे मेढिस्तंभमें बँधे हुए पशुगण कर्षके द्वारा ॥ ६ ॥ उसके चारों ओर मंडलरूपसे भ्रमण करते हैं इसी प्रकारसे सब ग्रह, नक्षत्र, यथा

श्रीनारायण उवाच ॥ अथर्षिमंडलादूर्ध्वं योजनानां प्रमाणतः ॥ लक्षैस्त्रयोद शमितैः परमं वैष्णवं पदम् ॥ १ ॥ महाभागवतः श्रीमान्व र्तते लोकवंदितः ॥ औत्तानपादिरिंद्रेण वह्निना कश्यपेन च ॥ २ ॥ धर्मेण सह चैवास्ते समकालयुजा ध्रुवः ॥ बहुमानं दक्षिणातः कुर्वद्भिः प्रेक्षकैः सदा ॥ ३ ॥ आजीव्यः कल्पजीविनामुपास्ते भगवत्पदम् ॥ ज्योतिर्गणानां सर्वेषां ग्रहनक्षत्रभादिनाम् ॥ ४ ॥ कालेना निमिषेणायं भ्राम्यतां व्यक्तरंहसा ॥ अवष्टंभस्थाणुरिव विहितश्चेश्वरेण सः ॥ ५ ॥ भासते भासयन्भासा स्वीयया देवपूजितः ॥ मेढिस्तंभे यथा युक्ताः पशवः कर्षणार्थकाः ॥ ६ ॥ मंडलानि चरंतीमे सवनत्रितयेन च ॥ एवं ग्रहादयः सर्वे भगणाद्या यथाक्रमम् ॥ ७ ॥ अंतर्बहिर्विभागेन कालचक्रे नियोजिताः ॥ ध्रुवमेवाऽवलंब्याशु वायुनोदीरिता श्चरन् ॥८॥ आकल्पांतं च क्रमंति खे श्येनाद्याः खगा इव ॥ कर्मसारथयो वायुवशगाः सर्व एव ते ॥ ९ ॥ एवं ज्योतिर्गणाःसर्वे प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ सयोगानुगृहीतास्ते भूमौ न निपतंति च ॥ १० ॥ ज्योतिश्चक्रं केचिदेतच्छिशुमारस्वरूपकम् ॥ सोपयोगं भगवतो योगधारणकर्मणि ॥ ११ ॥ यस्यावाक् शिरसः कुंडलीभूतवपुषो मुने ॥ पुच्छाग्रे कल्पितो योऽयं ध्रुव उत्तानपादजः ॥ १२ ॥

क्रमसे ॥ ७ ॥ अन्तर बाहरके विभागद्वारा कालचक्रमें बंधे हैं केवल ध्रुवसे अवलम्बित हो वायुसे विचरण करते हैं ॥ ८ ॥ आकाशमें जैसे श्येनादि पक्षी उड़ते हैं इसी प्रकार कर्म सारथिरूप वायु रश्मि सारथिद्वारा बंधे हुए नहीं गिरते हैं ॥ ९ ॥ इसी प्रकार यह सब ज्योतिर्गण नक्षत्र प्रकृतिपुरुषके संयोगरूप अनुग्रहसे अनुगृहीत हुए नहीं गिरते हैं ॥ १० ॥ ज्योतिषचक्रको कोई शिशुमार स्वरूपसे कथन करते हैं कि भगवान्के योगसाधनकार्यसे यथोपयुक्त स्थित है इससे नहीं गिरता है ॥ ११ ॥ हे मुने ! यह कुंडली भूतकलेवरसे नीचा मुख किये स्थित है पुच्छके अग्रभागमें उत्तानपाद ध्रुव स्थित है ॥ १२ ॥

लांगू लमें पापरहित प्रजापति, तथा अग्नि, इंद्र और धर्म देवताओंसे पूजित हो स्थित होते हैं ॥ १३ ॥ धाता, विधाता पुच्छके अन्तमें, कटिमें सप्त ऋषि यह दक्षिणा वर्तके भोगसे कुण्डलाकार हैं ॥ १४ ॥ उत्तरायणके नक्षत्र अभिजितसे पुनर्वसु तक चौदह दक्ष पार्श्वमें और पुष्यसे उत्तराषाढ तक चौदह नक्षत्र दक्षिणपार्श्वमें हैं ॥ १५ ॥ कुंडलरूप शरीरके समान दोनों पार्श्वोंमें बराबर अवयवोंकी संख्या है ॥ १६ ॥ अजवीथी पृष्ठभागमें आकाशगंगा उदरमें पुनर्वसु पुष्य दक्षिणावामश्रेणीमें ॥ १७ ॥ आर्द्रा, श्लेषा,पश्चिमके दहिने बायें चरणमें अभिजित उत्तराषाढा दहिनी बाईं नासिकामें जानने ॥ १८ ॥ हे नारद इसी

लांगूलेऽस्य च संप्रोक्तः प्रजापतिरकल्मषः ॥ अग्निरिंद्रश्च धर्मश्च तिष्ठंते सुरपूजिताः ॥ १३ ॥ धाता विधाता पुच्छांते कट्यां सप्तर्ष यस्ततः ॥ दक्षिणावर्त भोगेन कुंडलाकारमीयुषः ॥ १४ ॥ उत्तरायणभानीह दक्षपार्श्वेऽर्पितानि च ॥ दक्षिणायनभानीह सव्ये पार्श्वेऽर्पितानि च ॥ १५ ॥ कुंडलाभोग वेशस्य पार्श्वयोरुभयोरपि ॥ समसंख्याश्चावयवा भवंति कजनंदन ॥ १६ ॥ अजवीथी पृष्ठभागे आकाशसरिदौदरे पुनर्वसुश्च ॥ पुष्यश्च श्रोण्यौ दक्षिणवामयोः ॥ १७ ॥ आर्द्राश्लेषे पश्चिमयोः पादयोर्दक्षवामयोः ॥ अभिजिच्चोत्तराषाढा नासयोर्दक्षवामयोः ॥ १८ ॥ यथासंख्यं च देवर्षे श्रुतिश्च जलभं तथा ॥ कल्पिते कल्पनाविद्भिर्नेत्रयोर्दक्षवामयोः ॥ १९ ॥ धनिष्ठा चैव मूलं च कर्णयोर्दक्षवामयोः ॥ मघादीन्यष्ट भानीह दक्षिणायनगानि च ॥ २० ॥ युंजीत वामपार्श्वीयवंक्रिषु क्रमतो मुने ॥ तथैव मृगशीर्षादीन्युदग्भानि च यानि हि ॥ २१ ॥ दक्षपार्श्वे वंक्रिकेषु प्रातिलोम्येन योजयेत् ॥ शततारा तथा ज्येष्ठास्कंधयोर्दक्षवामयोः ॥ २२ ॥ अगस्तिश्चोत्तरहनावधरायां हनौ यमः ॥ मुखेष्वंगारकः प्रोक्तो मंदः प्रोक्त उपस्थके ॥ २३ ॥ बृहस्पतिश्च ककुदि वक्षस्यर्को ग्रहाधिपः नारायणश्च हृदये चंद्रो मनसि तिष्ठति ॥ २४ ॥

प्रकार यथा संख्यक श्रवण और पूर्वाषाढा दहिने और बायें नेत्रोंमें कल्पना किये हैं ॥ १९ ॥ धनिष्ठा, और मूल दहिने बायें कर्णमें मघाको आदि ले आठ नक्षत्र दक्षिण पार्श्वमें ॥ २० ॥ तथा बाम पार्श्वकी अस्थियोंमें जानने हे मुनि ! इसी प्रकार मृगशिरा उदय गामी नक्षत्र ॥ २१ ॥ दक्षिणपार्श्वकी अस्थियोंमें प्रतिलोभसे युक्त करे शतभिषा और ज्येष्ठा दहिने बायें स्कन्धमें ॥ २२ ॥ उत्तरठोढीमें अगस्त्य नीचेके ठोढीमें यम, मुखमें मंगल, उपस्थमें शनि, ॥ २३ ॥ बृहस्पति ककुदमें, बुध वक्षस्थलमें ग्रहाधिसूर्यनारायण हृदयमें, चन्द्रमा मनमें ॥ २४ ॥

अश्विनीकुमार स्तनोंमें, नाभिमें शुक्र, प्राणापानमें बुध, गलेमें राहु केतु ॥ २५ ॥ सर्वांग और रोमकूपमें तारागण यह भगवान् विष्णुका सर्वदेवमय शरीर है [यह अलंकार है] ॥ २६ ॥ जो मौनहो प्रतिसंध्यामें इसका ध्यान करता है और इस मंत्रसे जो बुद्धिमान देखता हुआ उठता है उसका कल्याण होता है ॥ २७ ॥ ज्योतिर्लोक काल अनिमिषोंके पति महापुरुषका ध्यान करते हुए प्रणाम करते हैं ॥ २८ ॥ ग्रह नक्षत्र तारामय आप त्रिकालज्ञमें मंत्र पाठ करनेवालोंके पाप दूर करते हो आपको नमस्कार है और त्रिकालमें स्मरण करनेवालेके पाप तत्काल दूर होते हैं ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीनारायण बोले सूर्यके दशसहस्र योजन नीचे अयोग्य दारुण राहुका मंडल है ॥ १ ॥ यही सिंहिकापुत्र राहु

स्तनयोरश्विनौ नाभ्यामुशनाः परिकीर्तितः ॥ बुधः प्राणापानयोश्च गले राहुश्च केतवः ॥ २५ ॥ सर्वांगेषु तथा रोमकूपे तारागणाः स्मृताः ॥ एतद्भगवतो विष्णोः सर्वदेवमयं वपुः २६ ॥ संध्यायां प्रत्यहं ध्यायेत्प्रयतो वाग्यतो मुनिः ॥ निरीक्षमाणश्चोत्तिष्ठन्मंत्रेणाने नधीश्वरः ॥ २७ ॥ नमो ज्योतिर्लोकाय कालायानिमिषांपतये महापुरुषायाभिधीमहीति ॥ २८ ॥ ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकं पापापहं मंत्रकृतां त्रिकालम् ॥ नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं नश्येत तत्कालज माशु पापम् ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्ट मस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अधस्तात्सवितुः प्रोक्तमयुतं राहुमंडलम् ॥ नक्षत्रवच्चरति च सैंहिके योऽतदर्हणः ॥ १ ॥ सूर्याचंद्रमसोरेव मर्दनः सिंहिकासुतः ॥ अमरत्वं च खेटत्वं लेभे यो विष्णवनुग्रहात् ॥ २ ॥ यददस्तरणेर्बिंबं तपतो योजनायुतम् ॥ तच्छादकोऽसुरो ज्ञेयोऽप्यर्कसाहस्रविस्तरम् ॥३॥ त्रयोदशसहस्रं तु सोमस्याच्छादको ग्रहः ॥ यः पर्वसमये वैरानुबंधी छादकोऽभवत ॥ ४ ॥ सूर्याचंद्रमसोर्दूराद्भवेच्छादनकारकः ॥ तन्निशम्योभयत्रापि विष्णुना प्रेरितं स्वकम् ॥ ५ ॥ चक्रं सुदर्शनं नाम ज्वालामालीति भीषणम् ॥ तत्तेजसा दुःसहेन समंतात्परिवारितम् ॥ ६ ॥

सूर्य चन्द्रमाका मर्दन करनेवाला है इसने विष्णुके अनुग्रहसे अमरत्व और नक्षत्रत्व प्राप्त किया है ॥२॥ जो यह सूर्यका बिम्ब १०००० योजन तपता है उसका छादन करनेवाला यह असुर है चन्द्रमण्डल बारह सहस्र योजन है ॥ ३ ॥ तेरह सहस्र योजन होनेसे चन्द्रमाको राहु आच्छादन करता है जो अमावस्या और पूर्णिमाके पर्वसमयमें वैरसे अच्छादनकी इच्छा करता है ॥ ४ ॥ दूर होनेसे भी यह सूर्य चन्द्रका आच्छादक होता है, आच्छादन श्रवण होते ही विष्णु अपना ॥ ५ ॥ अग्निकी लपटोंसे भीषण, सुदर्शन चक्र प्रेरित करते हैं इसके दुस्सह तेजसे सब ओर घेरा हुआ ॥ ६ ॥

एक मुहूर्तमें ही खेदको प्राप्त होकर चकितमन होकर समीपसे ही निवृत्त होजाता है । इसीका नाम ग्रहण है ॥ ७ ॥हे देवर्षे ! लोकमें इसे ग्रहण कहते हैं सो तुम जानो । इसके नीचे परम पवित्र लोक ॥ ८ ॥ सिद्धि चारण और विद्याधरोंके हैं यह पुण्य निषेवित लोक १०००० दश सहस्र योजनके मध्यमें हैं ॥ ९ ॥ हे देवर्षे ! इसके नीचे यक्ष ,राक्षस, पिशाच,प्रेत; भूतोंके विहारस्थान हैं ॥१०॥ जहां तक वायु वाहन करती है वह अन्तरिक्ष है और जहां तक मेघ हैं यहीं तक इसकी अवधि है ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तम ! इसके नीचे सौ योजनमें पृथ्वीहै इसमें गरुड, श्येन, (गिद्ध) सारस ॥ १२ ॥ हंसादिक

मुहूर्तोद्विजमानस्तु दूराच्चकितमानसः ॥ आरन्निवर्तते सोऽयमुपराग इतीव ह ॥ ७ ॥ उच्यते लोकमध्ये तु देवर्षे अवबुध्यताम् ॥ ततोऽधस्तात्समाख्याता लोकाः परमपावनाः ॥८॥ सिद्धानां चारणानां च विद्याध्राणां च सत्तम ॥ योजनायुतविख्याता लोकाः पुण्य निषेविताः ॥ ९ ॥ ततोऽप्यधस्ताद्देवर्षे यक्षाणां च सरक्षसाम् ॥ पिशाचप्रेतभूतानां विहाराजिरमुत्तमम् ॥ १० ॥ अंतरिक्षं च तत्प्रोक्तं यावद्वायुः प्रवाति हि ॥ यावन्मेघास्ततो यंति तत्प्रोक्तंज्ञानकोविदैः ॥११॥ ततोऽधस्ताद्योजनानां शतंयावद्विजोत्तम ॥ पृथिवी परिसंख्याता सुपर्णश्येनसारसाः ॥ १२ ॥ हंसादयः प्रोत्पतंति पार्थिवाः पृथिवीभवाः ॥ भूसन्निवेशावस्थानं यथावदुपवर्णितम् ॥ १३ ॥ अधस्तादवनेः सप्तः देवर्षे विवराः स्मृताः ॥ एकैकशो योजनानामायामोच्छ्रायतः पुनः ॥ १४ ॥ अयुतांतरविख्याताः सर्वर्तुसुख दायकाः ॥ अतलं प्रथमं प्रोक्तं द्वितीयं वितलं तथा ॥ १५ ॥ तृतीयं सुतलं प्रोक्तं चतुर्थं वै तलातलम् ॥ महातलं पञ्चमं च षष्ठं प्रोक्तं रसातलम् ॥ १६ ॥ सप्तमं विप्र पातालं सप्तैते विवराः स्मृताः ॥ एतेषु बिलस्वर्गेषु दिवोऽप्यधिकमेव च ॥ १७ ॥ कामभोगैश्वर्यसुख समृद्धभुवनेषु च ॥ नित्योद्यानविहारेषु सुखास्वादः प्रवर्तते ॥ १८ ॥

पृथ्वीपर होनेसे पार्थिव कहाते और उडते हैं यह तुमसे पृथिवीका सन्निवेश वर्णन किया ॥ १३ ॥ हे नारद ! इस पृथ्वीतलमें भी सात विवर हैं इनमें एक एक दश दश सहस्र योजनमें हैं ॥ १४ ॥ यह बडे विख्यात १०००० अयुत योजनके अंतरमें स्थिति सब ऋतुओंमें सुखदायक हैं पहला अतल, दूसरा वितल ॥१५॥ तीसरा सुतल, चौथा तलातल, पांचवां महातल, छठा रसातल ॥ १६ ॥ सातवां पाताल है हे विप्र इस प्रकार सात विवरहैं इन बिलोंमें स्वर्गसे अधिक ऐश्वर्य है ॥ १७ ॥ कामभोग, ऐश्वर्य, सुख समृद्धिके भुवन नित्य उद्यानोंका विहार सदा सुखरूप होता है ॥ १८ ॥

१ ताराआदि रहित स्थान ।

कद्रूके पुत्र, दैत्य तथा बड़े बलशाली दानव अपने कलत्र सन्तान बंधुआदिके सहित सदा आनन्दसे रहतेहैं ॥ १९ ॥ अपने सुहृद और अनुजीवियोंसे युक्त गृहोंमें रहते हैं कोई भी उनकी कामना नहीं रोक सकता वे सब मायावी होते हैं ॥ २० ॥ यह सब ऋतुओंमें सुखसे सम्पन्न हो निवास करते हैं वे स्थान मायावी मैंने बनाये हैं ॥ २१ ॥ जिनकी मणिमुक्ताओंसे बड़ी शोभा हो रही है भवनोंकी सहस्रों अटारी छज्जोंकी शोभा हो रही है ॥ २२ ॥ सभा चौराहे आंगनोंकी शोभा देव सदनोंका तिरस्कार करती है नाग असुरोंके मिथुन, तथा कबूतर, मैना ॥ २३ ॥ तथा कृत्रिम भूमिपर उत्तम गृह शोभित होते हैं अलंकृत हुए उद्यान शोभाको प्राप्त हो रहे हैं ॥२४॥ जहांके विशाल फल, पुष्प, मनको प्रसन्न करनेवालेहैं ललनाओंके विलास योग्य जहांके स्थान शोभा पाते हैं ॥२५॥

दैत्याश्च काद्रवेयाश्च दानवा बलशालिनः ॥ नित्यप्रमुदिता रक्ताः कलत्रापत्यबंधुभिः ॥ १९ ॥ सुहृद्भिरनुजीवाद्यैः संयुताश्च गृहेश्वराः ॥ ईश्वरादप्रतिहतकामा मायाविनश्चते ॥ २० ॥ निवसंति सदा हृष्टाः सर्वर्तुसुखसंयुताः ॥ मयेन मायाविभुना येषु येषु च निर्मिताः ॥२१॥ पुरः प्रकामशो भक्ता मणिप्रवरशालिनः ॥ विचित्रभवनाट्टालगोपुराद्याः सहस्रशः ॥ २२ ॥ सभाचत्वरचैत्यादि शोभाढ्याः सुरदुर्लभाः ॥ नागासुराणां मिथुनैः सपारावतसारिकैः ॥ २३ ॥ कीर्णकृत्रिमभूमिश्च विवरेशगृहोत्तमैः ॥ अलंकृताश्चकासंति उद्यानानि महांति च ॥ २४ ॥ मनः प्रसन्नकारीणि फलपुष्पविशालिभिः ॥ ललनानां विलासार्हस्थानैः शोभितभांजि च ॥ २५ ॥ नानाविहंगमव्रातसंयुक्तजलराशिभिः ॥ स्वच्छार्णः पूरितह्रदैः पाठीनसमलंकृतैः ॥ २६ ॥ जलजंतुक्षुब्धनीरनीरजातैरनेकशः ॥ कुमुदोत्पलकह्लारनीलरक्तोत्पलैस्तथा ॥ २७ ॥ तेषु कृतनिकेतानां विहारैः संकुलानि च ॥ इंद्रियोत्सवकारैश्च तथैव विविधैः स्वरैः ॥ २८ ॥ अमराणां च परमांश्रियं चातिशयंति च ॥ यत्र नैव भयं क्वापि कालांगैर्दिनरात्रिभिः ॥ २९ ॥ यत्राहिप्रवराणां च शिरःस्थमणिरश्मिभिः ॥ नित्यं तमः प्रबाध्येत सदा प्रस्फुटकांतिभिः ॥ ३० ॥

अनेक विहंगोंके समूहसे जहांकी जलराशी शोभित होती है स्वच्छ जलसे पूर्ण ह्रद जिनमें पाठीन जातिकी मछली शोभित होती हैं ॥ २६ ॥ अनेक प्रकारके जलमें होनेवाले जन्तु जहांके जलोंको क्षुब्ध करते हैं, कुमुद, उत्पल, कह्लार, नील, लाल कमल ॥ २७ ॥ इनमें अपना विहार स्थान कल्पना किये हैं इन्द्रियोंको आनन्ददायक अनेक शब्द कर रहे हैं ॥२८॥ बहुत क्या देवताओंकी परम लक्ष्मीको तिरस्कार करते हैं जहां कालके अंगवाले दिन रातका कुछ भय नहीं है ॥ २९ ॥ जहां बड़े२सर्पोंके शिरोंकी मणियोंसे कभी अन्धकार न होकर प्रकाश बना रहता है ॥ ३० ॥

यहांके निवासियोंको दिव्य औषधि रसायनसे रस अन्नपान स्नानादिके कारण आधि व्याधि नहीं होती ॥ ३१ ॥ वली, बाल पकना, जीर्णता विवर्णता, स्वेद दुर्गंध, अनुत्साह, शरीरकी अवस्थाके गुण कभी बाधा नहीं देते ॥ ३२ ॥ उनको सदा कल्याण रहता है मृत्युका अन्यत्र भय नहीं होता भगवानके तेज और चक्र सुदर्शनको छोड़कर अन्यत्र भय नहीं है ॥ ३३ ॥ हे नारद! जिसमें भगवानके तेज प्रविष्ट होनेसे दैत्यस्त्रियोंके गर्भ भयसे पतित हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे भाषायां अष्टादशोध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारद ! पहले अतल नामक विवरमें मय पुत्र बलगर्वका खण्डन करनेवाले निवास करता है ॥ १ ॥ जिसने सर्वार्थ साधक ९६ छानवे माया सृजन की हैं जो कोई उनको धारण करता है वह मायावी होता है ॥२॥

न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसायनैः ॥ रसान्नपानस्नानाद्यैराधयो न च व्याधयः ॥ ३१ ॥ वलीपलित जीर्णत्ववैवर्ण्यस्वेदगंधताः ॥ अनुत्साहवयोवस्था न बाधंते कदाचन ॥ ३२ ॥ कल्याणानां सदा तेषां न च मृत्युभयं कुतः ॥ भगवत्ते जसोऽन्यत्र चक्राच्चैव सुदर्शनात् ॥ ३३ ॥ यस्मिन्प्रविष्टे दैतेयवधूनां गर्भराशयः ॥ प्रायो भयात्पतंत्येव स्रवंति ब्रह्मपुत्रक ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ प्रथमे विवरे विप्र अतलाख्ये मनोरमे ॥ मयपुत्रो बलो नाम वर्ततेऽखर्वगर्व कृत् ॥ १ ॥ षण्णवत्यो येन सृष्टा मायाः सर्वार्थसाधिकाः ॥ मायाविनोयाश्च सद्यो धारयंति च काश्चन ॥ २ ॥ जंभमाणस्य यस्यैव बलस्य बलशालिनः ॥ स्त्रीगणा उपपद्यंते त्रयो लोकविमोहनाः ॥ ३ ॥ पुंश्चल्यश्चैव कामिन्यः स्वैरिण्यश्चेति विश्रुताः ॥ या वै बिलायनं प्रेष्ठ प्रविष्टं पुरुषं रहः ॥ ४ ॥ रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा प्रयत्नतः ॥ स्वविलासवलोकानु रागस्मित विगूहनैः ॥ ५ ॥ संलापविभ्रमाद्यैश्च रमयंत्यपिता स्त्रियः ॥ यस्मिन्नुपप्रयुक्ते जनो मनुते बहुधा स्वयम् ॥ ६ ॥ ईश्वरोऽहमहं सिद्धो नागायुतबलो महान् ॥ आत्मानं मन्यमानः सन्मदांध इव कथ्यते ॥ ७ ॥

उस बलीबलके जंभाई लेनेसे त्रिलोकीको मोहित करनेवाली स्त्री प्रकट हो जाती है ॥ ३ ॥ पुंश्चली, स्वैरिणी तथा दूसरी कामिनी प्रकट होती हैं जो बिलमें प्रविष्ट हुए पुरुषको ॥ ४ ॥ हाटकरससे संभोगमें समर्थ करके अपने विलास अवलोकन अनुरागस्मित आलिंगनादि ॥ ५ ॥ तथा संलाप और विभ्रमादिसे रमण कराती हैं जिसके उपयोगमें मनुष्य अपनेको बहुत मानता है ॥ ६ ॥ मैं ईश्वर सिद्ध और दशसहस्र हाथीका बलवाला हूं वह ऐसे अपनेको मानता हुआ मदान्ध हो जाता है ॥ ७ ॥

हे नारद ! यह आपसे अतलकी स्थिति कही अब दूसरे विवर वितलका वृत्तान्त सुनो ॥ ८ ॥ भूतलके अधस्थल वितलमें भगवान् शिव हाटकेश्वरनामसे अपने पार्षद और गणोंसे संयुक्त हो ॥ ९ ॥ प्रजापतिके किये सर्गके बढानेके निमित्त देवताओंसे पूजित हुए भवानीके सहित विराजते हैं ॥ १० ॥ शिवके वीर्यसे यहां हाटकी सरित् प्रगट हुई है जो बढी हुई पावन और अग्निको अपने तेजसे बाहरही पान कर लेती है ॥ ११ ॥ वह्निद्वारा उगला हुआ वह हाटक नाम सेना दैत्योंको बहुत प्यारा है दैत्योंकी स्त्रीजन भूषण बनाय सदा उसे धारण करती हैं ॥ १२ ॥ उस बिलके नीचे सुतल है यहां पुण्यश्लोक विरोचन पुत्र राजाबलि निवास करता है ॥ १३ ॥ महेन्द्र देवका प्रिय करनेकी इच्छासे त्रिविक्रम भगवान् सुतलमें बलिको लाये ॥ १४ ॥ त्रिलोककी लक्ष्मी आक्षिप्त

एवं प्रोक्ता स्थितिश्चात्र अतलस्य च नारद ॥ द्वितीयविवरस्यात्र वितलस्य निबोधत ॥ ८ ॥ भूतलाधस्तले चैव वितले भगवान्भवः ॥ हाटकेश्वनामाऽयं स्वपार्षदगणैर्वृतः ॥ ९ ॥ प्रजापतिकृतस्यापि सर्गस्य बृंहणाय च ॥ भवान्या मिथुनीभूय आस्ते देवाधिपूजितः ॥ १० ॥ भवयोर्वीर्यसंभूता हाटकी सरिदुत्तमा ॥ समिद्धो मरुता वह्निरोजसा पिबतीव हि ॥११॥ तन्निष्ठ्यूतंहाटकाख्यं सुवर्णं ॥ दैत्यबल्लभम् दैत्यांगना भूषणार्हं सदा तं धारयंति हि ॥ १२ ॥ तद्बिलाधस्तलात्प्रोक्तं सुतलाख्यं बिलेश्वरम् ॥ पुण्यश्लोको बलि नामा आस्ते वैरोचनिर्मुने ॥ १३ ॥ महेंद्रस्य च देवस्य चिकीर्षुः प्रियमुत्तमम् ॥ त्रिविक्रमोऽपि भागवान्सुतले बलिमानयत् ॥१४॥ त्रैलोक्यलक्ष्मी माक्षिप्य स्थापितः किलदैत्यराट् ॥ इंद्रादि ष्वप्यलब्धा या सा श्रीस्तमनुवर्तते ॥ १५ ॥ तमेव देवदेवेशमाराधयति भक्तितः ॥ व्यपेतसाध्वसोऽद्यापि वर्तते सुतलाधिपः ॥ १६ ॥ भूमिदानफलंह्येतत्पात्रभूतेऽखिलेश्वरे ॥ वर्णयंति महात्मानो नैतद्युक्तं च नारद ॥ १७ ॥ वासुदेवे भगवति पुरुषार्थप्रदे हरौ एतद्दान फलं विप्र सर्वथा न हि युज्यते ॥ १८ ॥ यस्यैव देवदेवस्य नामापि विवशो गृणन् ॥ स्वकीयकर्मबंधीयगुणान्विधुनुतेंऽजसा ॥ १९ ॥

कर दैत्यराट्को वहां स्थापित किया जो लक्ष्मी इन्द्रादिको भी प्राप्त नहीं वह राजा बलिके है ॥ १५ ॥ वह सुतलपति निर्भय हो भगवान् वामनजीकी आराधना करते हुए आज तक वर्तमान हैं ॥ १६ ॥ पात्रभूत जगदीश्वरको भूमिदान करनेका ही फल है हे नारद ! ऐसा महात्मा जन वर्णन करते हैं सो वह अयुक्त नहीं है ॥ १७ ॥ वासुदेव भगवान हरिमें जो अपना पुरुषार्थ लगाते हैं हे विप्र इस दानका यह फल सब प्रकार उपयुक्त नहीं है ॥ १८ ॥ जिस देवदेवके विवश होकर नाम लेनेसे अपने किये कर्म बंधनके गुण सर्वथा नष्ट हो जाते हैं ॥ १९ ॥

जिस क्लेश बंधनकी हानिके निमित्त सांख्य योगादिका साधन किया जाता है यति नित्य भगवान अखिलेश्वरका ध्यान करते हैं ॥ २० ॥ हे नारद ! यह भगवान् नारायण आदि हमको मायामय भोगोंका ऐश्वर्य विस्तार करते हैं ॥ २१ ॥ तो अनुग्रह नहीं है कारण कि आत्माकी स्मृतिका नष्ट होना सम्पूर्ण क्लेशोंका कारण है जिसको सब उपायके ज्ञाता भगवान् विष्णुने ॥ २२ ॥ यांचाके छलसे हरण कर्म लिया अर्थात् देहको छोड और सर्वस्व ले लिया शेष भूमि न मिलनेसे वरुणकी पाशोंसे बांधकर ॥ २३ ॥ फिर गिरिकंदरामें छोड दिया आप द्वारे रहे तब भक्तिका प्रताप देख बलिने कहा यह इन्द्र महामूढ है जिसके मंत्री बृहस्पति हैं ॥ २४ ॥ जो प्रसन्न होकर इसने लोक सम्पत्तिकी याचना की यह त्रिलोकीका ऐश्वर्य क्या है अति तुच्छ है ॥२५॥ जो मूढ कल्याणोंके

यत्क्लेशबंधहानाय सांख्ययोगादिसाधनम् ॥ कुर्वते यतयो नित्यं भगवत्यखिलेश्वरे ॥ २०॥ न चायं भगवानस्मानुजग्राह नारद ॥ माया मयं च भोगानामैश्वर्यं व्यतनोत्परम् ॥ २१ ॥ सर्वक्लेशादिहेतुं तदात्मानुस्मृतिमोषणम् ॥ यं साक्षाद्भगवान्विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः ॥ २२ ॥ याच्ञाछलेनापहृतं सर्वस्वं देहशेषकम् ॥ अप्राप्तान्योपाय ईशः पाशैर्वारुणसंभवैः ॥ २३ ॥ बंधयित्वाऽवमुच्यापि गिरिद् र्यामिवाब्रवीत् ॥ असाविंद्रो महामूढो यस्य मंत्री बृहस्पतिः ॥ २४ ॥ प्रसन्नमिममत्यर्थमयाचल्लोकसंपदम् ॥ त्रैलोक्यमिदमैश्वर्यं कियदेतदतितुच्छकम् ॥ २५ ॥ आशिषां प्रभवं मुक्त्वा यो मूढो लोकसंपदि ॥ अस्मत्पितामहः श्रीमान्प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥ २६ ॥ दास्यं वव्रे विभोस्तस्य सर्वलोकोपकारकः ॥ पित्र्यमैश्वर्यमतुलं दीयमानं च विष्णुना ॥ २७ ॥ पितर्युपरते वीरे नैवैच्छद्भगवत्प्रियः ॥ तस्यातुलानुभावस्य सर्वलोकोपधीमतः ॥ २८ ॥ अस्मद्विधो नाल्पपक्वेतरदोषोऽवगच्छति ॥ एवं दैत्यपतिः सोऽयं बलिः परमपूजितः ॥ २९ ॥ सुतले वर्तते यस्य द्वारपालो हरिः स्वयम् ॥ एकदा दिग्विजये राजा रावणो लोकरावणः ॥ ३० ॥

स्वामी नारायणको छोडकर लोक सम्पदामें आसक्त है वह महामूढ है हमारे पितामह श्रीमान् प्रह्लाद भगवत्प्रिय ॥ २६ ॥ सर्वलोकका उपकार भगवत्का दासभाव मांगते हुए यद्यपि विष्णु पिताका सम्पूर्ण ऐश्वर्य देते थे ॥ २७ ॥ पर उन भगवत्प्रियने पिताके उपराम होनेमें इस बातकी इच्छा नहीं की यह दृश्यमान सब लोक जिसकी उपाधी ॥ २८ ॥ तथा जिसकी ऐश्वर्य शक्तिका अन्त नहीं उन भगवानका स्वरूप वा अन्त हमारी नाईं दोषयुक्त कौन जान सकता है ! इस प्रकार यह दैत्यपति बलि परमपूजित ॥ २९ ॥ सुतलमें वर्तता है जिसके द्वारपाल स्वयं नारायण हैं एक समय लोकोंको रुवानेवाला रावण दिग्विजयमें ॥ ३० ॥

सुतलमें प्रविष्ट हुआ तब भक्त अनुग्रहकारी भगवानने पादके अंगुष्ठसे १०००० योजन फेंक दिया था ॥ ३१ ॥ इस प्रकारके प्रभावशाली बलि सब सुखोंका स्थान है वह सुतलराजमें देवदेवके प्रसादसे स्थित है ॥ ३२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीनारायण बोले इसके नीचे तलातल नामक विवर है जहां त्रिपुराधिपति मयनामक दानव रहता है ॥ १ ॥ जिस समय शंकरने त्रिपुर जलाया तब इसकी रक्षा की थी देवदेवके प्रसादसे राज्य और सुखकी प्राप्ति की ॥ २ ॥ यह अनेकों मायामें पंडित मायावियोंका आचार्य है सब काम समृद्धिके निमित्त घोर राक्षस इसकी पूजा करते हैं ॥ ३ ॥ इसके नीचे विख्यात महातल है जिसमें कद्रूके पुत्र महाक्रोधी सर्प निवास करते हैं ॥ ४ ॥ हे नारद इनके अनेक शिर हैं प्रधान२तुमसे

प्रविशन्सुतले येन भक्ता नुग्रहकारिणा ॥ पादांगुष्ठेन प्रक्षिप्तो योजनायुतमत्र हि ॥३१॥ एवं भूतानुभावोऽयं बलिः सर्वसुखैकभुक्॥ आस्ते सुतलराजस्थो देवदेव प्रसादतः ॥ ३२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ततोऽधस्ताद्विवरकं तलातलमुदीरितम् ॥ दानवेंद्रो मयो नाम त्रिपुराधिपतिर्महान् ॥ १ ॥ त्रिलोक्याः शंकरेणाऽयं पालितो दग्धपूस्त्रयः ॥ देवदेव प्रसादात्तु लब्धराज्यसुखास्पदः ॥ २ ॥ आचार्यो मायिनां सोऽयं नानामायाविशारदः ॥ पूज्यते राक्षसैर्घोरैः सर्वकार्य समृद्धये ॥ ३ ॥ ततोधस्तात्सुविख्यातं महातलमिति स्फुटम् ॥ सर्पाणां काद्रवेयाणां गणः क्रोधवशो महान् ॥४॥ अनेक शिरसां विप्र प्रधानान्कीर्तयामि ते ॥ कुहकस्तक्षकश्चैव सुषेणः कालियस्तथा ॥ ५ ॥ महाभोगा महासत्त्वाः क्रूराः क्रूरस्वजातयः ॥ पतत्त्रिराजा धिपतेरुद्विग्ना सर्व एव ते ॥ ६ ॥ स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुंबस्य च संगताः ॥ प्रमत्ता विहरंत्येव नानाक्रीडाविशारदाः ॥ ७ ॥ ततोऽधस्ताच्चविवरे रसातलसमाह्वये ॥ दैतेया निवसंत्येव पणयो दानवाश्च ये ॥ ८ ॥ निवातकवचा नाम हिरण्यपुरवा सिनः ॥ कालेया इति ह प्रोक्ताः प्रत्यनीका हविर्भुजा ॥म् ९ ॥ महौजसश्चोत्पत्त्यव महासाहसिनस्तथा ॥ सकलेशस्य च हरेस्तेजसा हतविक्रमाः ॥ १० ॥

कहता हूं कुहक, तक्षक, सुषेण, कालिय ॥ ५ ॥ यह महाशरीरवाले महाबली क्रूर स्वजातिमें भी क्रूर हैं गरुडके डरसे यह सब भीत रहते हैं ॥ ६ ॥ अपनी स्त्री संतान सुहृत् कुडम्बियोंसे संगत हुए प्रमत्त हुए अनेक क्रीडाओंसे संगत रहते हैं ॥ ७ ॥ इस विवरके नीचे रसातल है उसमें दैत्य और पणनामके दानव निवास करते हैं ॥ ८ ॥ तथा हिरण्यपुरवासी निवातकवचोंके समूह जो कालेय कहाते और देवताओंके शत्रु होते हैं ॥ ९ ॥ यह उत्पत्तिसे ही महापराक्रमी महासाहसी हैं केवल भगवानके तेजसे ही इनका पराक्रम महान् होता है ॥ १० ॥

यह सदैवकाल विवरमें हो निवास करते हैं जो सरमा इंद्रकी दूतीद्वारा निरंतर मंत्ररूपवाणीसे ॥ ११ ॥ जो मंत्रवर्णात्मक होती है निरंतर ताडित होकर डरते हैं इसके नीचे पातालमें नागलोकके पालक निवास करते हैं ॥ १२ ॥ वे वासुकि आदि शंख, कुलिक, श्वेत, धनंजय, महाशंख, धृतराष्ट्र ॥ १३ ॥ शंखचूड कंबल, अश्वतर, देवउपदत्तक, महाक्रोधी महाफणाविषैले निवास करते हैं ॥ १४ ॥ किसीके पांच, सात, दश सौ ॥ १५ ॥ कोई सहस्र शिरवाले प्रकाशमान मणियें धारण करनेवाले हैं जिनकी किरणोंसे पातालका अंधकार दूर होता है ॥ १६ ॥ हे नारद ! वे सदा क्रोधसे फूत्कार करते हैं इसके मूलमें तीस सहस्र ॥ १७ ॥ योजन उपरांत भगवानकी तामसी कला सब देवताओंसे पूजित अनन्तनामसे विख्यात है ॥ १८ ॥ जिसको अहं इस अभिमानका लक्षण

बिलेशया इव सदा विवरे निवसंति हि ॥ वै भाग्भिः सरमया शक्रदूत्या निरंतरम् ॥११॥ मंत्रवर्णाभिरसुरास्ताडिता बिभ्यति स्म ह ॥ ततोऽप्यधस्तात्पाताले नागलोकाधि पालका ॥ १२॥ वासुकिप्रमुखाः शंखः कुलिकः श्वेत एव च ॥ धनंजयो मशाशंखो धृतराष्ट्रस्तथैव च ॥ १३ ॥ शंखचूडः कंबलाश्वतरो देवोपदत्तकः ॥ महामर्षा महाभोगा निवसंति विषोल्बणा ॥ १४ ॥ पंचमस्तकवंतश्च फणासप्तकभूषिताः ॥ केचिद्दशफणाः केचिच्छतशीर्षास्तथाऽपरे ॥ १५ ॥ सहस्रशिरसः केऽपि रोचिष्णुमणिधारकाः ॥ पातालरंध्रतिमिरनिकरं स्वमरीचिभिः ॥ १६ ॥ विधमंति च देवर्षे सदा संजात मन्यवः ॥ अस्य मूलप्रदेशे हि त्रिंशत्साहस्रकेंऽतरे ॥ १७ ॥ योजनैः परिसंख्याते तामसी भगवत्कला ॥ अनंताख्या समास्ते हि सर्वदेवप्रपूजिता ॥ १८॥ अहमित्यभिमानस्य लक्षणं यं प्रचक्षते ॥ संकर्षणं सात्वतीयाः कर्षणं द्रष्टृदृश्ययोः ॥ १९ ॥ इदं भूमंडलं यस्य सहस्रशिरसः प्रभोः ॥ अनंतमूर्तेः शेषस्य ध्रियमाणं च शीर्षके ॥ २० ॥ पृथ्वीगोलमशेषं हि सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥ यस्य कालेन देवस्य संजिहीर्षोः समं विभोः ॥२१॥ चराचरं भ्रुवोरंतर्विवरादुदपद्यत ॥ सांकर्षणो नाम रुद्रो व्यूहैका दशशोभितः ॥२२॥ त्रिलोचनश्च त्रिशिखं शूलमुत्तभयन्स्वयम् ॥ उदतिष्ठन्महासत्त्वो महाभूतक्षयंकरः ॥ २३॥

कहते हैं दृष्टादृष्टयका जो भलीप्रकार एकीकरण है उसको संकर्षण कहते हैं ॥ १९ ॥ हे नारद ! उन अनन्तमूर्तिसहस्रशिरवाले अनंतका मस्तकपर यह सारा भूमण्डल स्थित है ॥ २० ॥ उनपर यह सम्पूर्ण पृथ्वीका गोला सरसोंके समान लक्षित होता है चराचरके लय करनेको जिस कालमें इच्छा करते हैं तब उनकी भौंसे ग्यारह व्यूहसे शोभायमान संकर्षणनामक रुद्र प्रगट होते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ वे त्रिलोचन, हाथमें शूल लिये वह महासत्व सब प्राणियोंको भय देनेवाले उत्थित होते हैं ॥ २३ ॥

जिनके चरणकमलकी लालीसे नखमंडल महा अहिपतियोंकी माणिक्योंमें विराजते हैं ॥ २४ ॥ जिनको श्रेष्ठ जन एकांत भक्तियोगसे शिर झुकाकर प्रणाम करते हुए अपने मुखका प्रतिम्बिब देखते हैं ॥ २५ ॥ स्फुरित कुंडलोंके माणिक्योंकी कान्ति मण्डलसे सुन्दर कपोल और गंडस्थल प्रकाश करते हैं ॥ २६ ॥ सुन्दर अंगकी कांतिवाली नागराजकी कुमारियें भी विशद स्वच्छ, बडे ॥२७॥ शोभायमान भुजदंडोंको चंदन अगर केशरसे भूषित करती हैं ॥२८॥ उनके अंगस्पर्शमात्रसे कामातुर होजाती हैं मनोहर स्मित करके लज्जापूर्वक देखने लगती हैं ॥ २९ ॥ अनुरागके मदसे मत्त हो उनके लाल नेत्र घूमने लगते

यस्यांघ्रिकमलद्वंद्वशोणाच्छनखमंडले ॥ विराजन्मणिबिंबेषु महाहिपतयोऽनिशम् ॥ २४ ॥ एकांतभक्तियोगेन सह सात्त्वतपुंगवैः ॥ प्रणमंतः स्वमूर्ध्ना ते स्वमुखानि समीक्षते ॥ २५ ॥ स्फुरत्कुण्डलमाणिक्यप्रभामंडलभांज्यपि ॥ सुकपोलानि चारूणि गंडस्थलद्युमंति च ॥ २६ ॥ नागराजकुमार्योऽपिचावंग विलसत्त्विषः ॥ विशदैर्विपुलैस्तद्वद्धवलैः सुभगैस्तथा ॥ २७ ॥ रुचिरैर्भुजदंडैश्च शोभमाना इतस्ततः ॥ चंदनागुरुकाश्मीरपंकलेपेन भूषिताः ॥ २८ ॥ तदभिमर्षसंजातकामवेशसमायुताः ॥ ललितस्मितसंयुक्ताः सव्रीडं लोकयंति च ॥ २९ ॥ अनुराग मदोन्मत्तवि घूर्णारुणलोचनम् ॥ करुणावलोकनेत्रं च आशासानास्तथाऽऽशिषः ॥ ३० ॥ सोऽनंतो भगवान्देवोऽनंतसत्त्वो महाशयः ॥ अनंतगुणवार्धिश्च आदिदेवो महाद्युतिः ॥ ३१ ॥ संहृतामर्षरोषादिवेगो लोकशुभाय च ॥ आस्ते महातत्त्वनिधिः सर्वदेवप्रपूजितः ॥ ३२ ॥ ध्यायमानः सुरैः सिद्धैरसुरैश्चोरगैस्तथा ॥ विद्याधरैश्च गंधर्वैर्मुनिसंघैश्च नित्यशः ॥ ३३ ॥ अनारत मदोन्मत्तलोकविह्वललोचनः ॥ वाक्यामृतेन विबुधान्स्वपार्षदगणानपि ॥ ३४ ॥ आप्यायमानः स विभुर्वैजयंतीं स्रजं दधत् ॥ अम्लानाभिनवैः स्वच्छैस्तुलसीदल संचयैः ॥ ३५ ॥

हैं और करुणावलोकी नेत्रोंसे उनके आशीर्वादोंकी इच्छा करती हैं ॥ ३० ॥ वह अनंतसत्व महा यशस्वी, अनंत गुणसागर, महा द्युतिमान् ॥ ३१ ॥ अमर्षरोषादिको रोके हुए महा सत्वसम्पन्न सब देवताओंसे पूजित उस स्थानमें निवास करते हैं ॥ ३२ ॥ सुरसिद्धि, असुर, उरग, विद्याधर, गंधर्व, मुनिसमूह उनका नित्य ध्यान करते हैं ॥ ३३ ॥ निरंतर मदोन्मत्त तथा विह्वल नेत्र किये अपने वाक्यरूपी अमृतसे देवता और अपने पार्षदोंको ॥ ३४ ॥ प्रसन्न करते हुए वह विभु मलीन न होने वाले तुलसीदलोंसे सम्पन्न वैजयन्ती माला धारण किये स्थित हैं ॥ ३५ ॥

मत्त हुए भ्रमरोंके घोषसे संयुक्त नीलवस्त्र पहरे वह देवदेव एक कुण्डल धारण किये हैं ॥ ३६ ॥ हलकी ककुदपर वह श्री अविनाशी अपनी पुष्ट भुजा रखकर तथा इन्द्रके ऐरावतके समान कक्षा धारण कर विराजते हैं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार तत्त्वदर्शियोंने देवेशको उदारलीलावाला वर्णन किया है ॥ ३८ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ नारायण बोले भगवान् सनातन ब्रह्मपुत्र इनका प्रभावब्रह्मसभामें गाया करते हैं ॥ १ ॥ इस जगत्की उत्पत्ति स्थिति और लयके हेतु जिसके गुण हैं जिसकी ईक्षासे सत्वादि प्रकृतिके गुण अपने २ कार्यमें समर्थ होते हैं जिसका रूप ध्रुव और अनादि है जो एक होकर भी अपने में अनेक प्रपंच धारण करते हैं उस ब्रह्मरूपका तत्त्व यह प्राणी कैसे जान सकता है ॥ २ ॥ जिसके द्वारा यह सत् असत् प्रकाश करता है

माद्यन्मधुकरव्रातघोषश्रीसंयुतां सदा ॥ नीलवासा देवदेव एककुंडलभूषितः ॥ ३६ ॥ हलस्य ककूदिन्यस्तसुपीवरभुजोऽव्ययाम् ॥ महेंद्रः काञ्चनीं यद्वद्वक्त्रां च मतंगमः ॥ ३७ ॥ उदारलीलो देवेशो वर्णितः सात्त्वतर्षभैः ॥ इ० दे० भा०म० अष्टमस्कंधे विंशोध्यायः ॥ २० ॥ नारायण उवाच ॥ तस्यानुभावं भगवान्ब्रह्मपुत्रः सनातनः ॥ सभायां ब्रह्मदेवस्य गायमान उपासते ॥ १ ॥ उत्पत्तिस्थितिलय हेतवोऽस्य कल्पाः सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन् ॥ यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकनामात्मन्नानधात्कथमुहवेदतस्यवर्त्म ॥ २ ॥ मूर्तिं नः पुरुकृपया बभारसत्त्वं संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ॥ यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्यामादातुं स्वजनमनां स्युदारवीर्यः ॥३॥ यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मादार्त्तो वा यदि पतितः प्रलंभनाद्वा ॥ हंत्यहः सपदि नृणामशेषमन्यं कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥ ४ ॥ मूर्धन्य र्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् ॥ आनंत्यादनमितविक्रमस्य भूम्नः को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥ ५ ॥

वही भक्तोंके ऊपर कृपाकर सत्त्वमूर्ति धारण करते हैं अपने भक्तोंके मन वशीभूत करनेको जिसकी लीलासिंहरूप है उन्हींसे यह कार्यकारणमय विश्व दिखाई देता है मोक्ष इच्छावाले उन उदार वीर्यका सेवन क्यों न करें ॥ ३ ॥ आर्त वा पतित अवस्थामें अथवा उपहासमें भी उसका नाम एकवार कीर्तन करनेसे मनुष्यके सम्पूर्ण पाप उसी समय दूर हो जाते हैं, मोक्षाभिलाषी पुरुषगण इन अनन्त भगवानके अतिरिक्त और किसके आश्रय ग्रहण करें ॥ ४ ॥ शैल, सागर सरित, सम्पूर्ण प्राणियों सहित यह विशाल भूमि अपने मस्तकपर अणुवत् धारण करते हैं वे अनन्तस्वरूप हैं इस कारण उनके विक्रमका किसी प्रकार क्षय नहीं होता, यदि किसीके सहस्र जिह्वा हैं तो भी कोई उनके कार्य परम्पराके वर्णन करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ ५ ॥

इस प्रकार प्रभाववाले अनन्त गुण सम्पन्न भगवान् अनन्त स्वतंत्रता पूर्वक भूमिके मूलभागमें स्थित हैं जो अपनी लीलासे विश्वको धारण करते हैं ॥ ६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मनुष्य जिस प्रकार कर्म करे और शास्त्रविहित पदवीमें परतंत्र होकर ॥ ७ ॥ सर्वदा जिस जिस प्रकार कामना करता है इस लोकमें उसीके अनुसार हे राजेन्द्र ! मनुष्य मृगपक्षियोंमें ॥ ८ ॥ यह विपाकगति धर्मकी वशगामिनी कही हैं यह तुम्हारे प्रश्नानुसार सब प्रकार उच्चावच गति कही ॥९॥ नारदजी बोले हे भगवन् ! प्राणियोंके विहित कर्म सब ही समान हैं, परमात्मा भगवानने इस जगत्को विचित्र क्यों किया है,॥ १० ॥ नारायण बोले हे नारद ! कर्ताकी श्रद्धाके अनुसार कर्मकी गति अनेक प्रकारकी होती है कारण कि यह श्रद्धा त्रिगुणात्मक होनेसे फल भिन्न भिन्न देती है ॥ ११ ॥

एवंप्रभावो भगवाननंतो दुरंतवीर्योरुगुणानुभावः ॥ मूले रसायाः स्थित स्वात्मतंत्रो यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥ ६ ॥ एता ह्येवेह तु नृभिर्गतयो मुनिसत्तम ॥ गन्तव्या बहुशो यद्वद्यथाकर्मविनिर्मिताः ॥ ७ ॥ यथोपदेशं च कामान्सदा कामायमानकैः ॥ एता वतीर्हि राजेंद्र मनुष्यमृगपक्षिषु ॥ ८ ॥ विपाकगतयः प्रोक्ता धर्मस्य वशगास्तथा ॥ उच्चावचाविसदृश्या यथाप्रश्नं निबोधत ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ कर्तुः वैचित्र्यमेतल्लोकस्य कथं भगवता कृतम् ॥ समानत्वे कर्मणां च तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥१०॥ नारायण उवाच ॥ कर्तुः श्रद्धावशादेव गतयोऽपि पृथग्विधाः ॥ त्रिगुणत्वात्सद तासां फलं विसदृशं त्विह ॥११॥ सात्त्विक्या श्रद्धया कर्तुः सुखित्वं जायते सदा ॥ दुःखित्वं च तथा कर्तू राजस्याश्रद्धया भवेत् ॥१२॥ दुःखित्वं चैव मूढत्वं तामस्या श्रद्धयोदितम् ॥ तारतम्यात्तु श्रद्धानां फलवै चित्र्यमीरितम् ॥१३॥ अनाद्यविद्याविहितकर्मणां परिणामजाः ॥ सहस्रशः प्रवृत्तास्तु गतयो द्विजपुंगव ॥ १४ ॥ तद्भेदान्वर्णयिष्यामि प्राचु र्येण द्विजोत्तम ॥ त्रिजगत्या अंतराले दक्षिणस्यां दिशीह वै ॥ १५ ॥ भूमेरधस्ता दुपरि त्वतलस्य च नारद ॥ अग्निष्वात्ताः पितृगणा वर्तंते पितरश्च ह ॥ १६ ॥ वसंति यस्यां स्वीयानां गोत्राणां परमाशिषः ॥ सत्याः समाधिनां शीघ्रं त्वाशासानाः परेण वै ॥ १७ ॥

सात्विकी श्रद्धासे कर्म करनेसे सदा सुख होता है और राजसी श्रद्धासे दुःखरूप होता है ॥ १२ ॥ दुःख और मूढता तामसी श्रद्धासे होती है, श्रद्धाके तार तम्यसे फल विचित्र होता है ॥ १३ ॥ अनादि अविद्यासे विहित कर्मोंके परिणामसे होनेके कारण सहस्रों गति होजाती हैं ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तम ! विस्तारसे मैं इनके भेद कहता हूं त्रिजगतीके अन्तरालमें दक्षिणदिशामें ॥ १५ ॥ भूमिके अधोभाग अतलके ऊपर अग्निष्वात्तानामक पितृगण और पितर ॥ १६ ॥ निवास करते हैं वे परम समाधि साधनसे वहां स्थित हो अपने गोत्रोंकी आशीर्वाद करते हैं ॥ १७ ॥

इसी प्रकार पितृराज भगवान् यम अपने पुरुषों द्वारा लाये हुए ॥ १८ ॥ मृत प्राणीके प्रति यथाकर्म यथा दोषके अनुसार दण्ड देते हैं दण्डधारी भगवत्के वे गण हैं ॥ १९ ॥ धर्मके तत्त्व जाननेवाले आज्ञामें वर्तनेवाले यथा देशमें नियोजित अपने गणोंको निरन्तर भेजते हैं ॥ २० ॥ कोई नरकोंकी संख्या इक्कीस कोई अट्ठाईस कहते हैं यथा संख्यक आपसे वर्णन करता हूं ॥ २१ ॥ तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुंभीपाक ॥ २२ ॥ कालसूत्र, असि पत्रार्णव, सुकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन ॥ २३ ॥ संदंश, तप्तमूर्ति, वज्रकंटक, शाल्मली, वैतरणी ॥ २४ ॥ पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सार

पितृराजोऽपि भगवान्संपरेतेषु जंतुषु ॥ विषयं प्रापितेष्वेषु स्वकीयै पुरुषैरिह ॥ १८ ॥ सगणो भगवत्प्रोक्ताज्ञापरो दमधारकः ॥ यथा कर्म यथादोषं विदधाति विचारदृक् ॥ १९ ॥ स्वान्गणान्धर्मतत्त्वज्ञान्सर्वानाज्ञा प्रवर्तकान् ॥ सदा प्रेरयति प्राज्ञो यथादेशनियोजितान् ॥ २० ॥ नरकानेकविंशत्या.संख्यया वर्णयंति हि ॥ अष्टाविंशमितान्केचित्तान नुक्रमतो ब्रुवे ॥ २१ ॥ तामिस्र अंधतामिस्रो रौरवोऽपि तृतीयकः ॥ महारौरवनामा च कुंभीपाकोऽपरो मत ॥ २२ ॥ कालसूत्रं तथा चासिप त्रारण्यमुदाहृतम् ॥ शूकरस्य मुखं चांधकूपोऽथ कृमिभोजनः ॥ २३ ॥ संदंशस्तप्तमूर्तिश्च वज्रकंटक एव च ॥ शाल्मली चाथ देवर्षे नाम्ना वैतरणी तथा ॥ २४ ॥ पूयोदः प्राणरोधश्च तथा विशसनं मतम् ॥ लालाभक्षः सारमेयादनमुक्तमतः परम् ॥ २५ ॥ अवीचिरप्ययः पानं क्षारकर्दम एव च ॥ रक्षोगणाख्यसंभोजः शूलप्रोतोऽप्यतः परम् ॥ २६ ॥ दंदशूको वटारोधः पर्यावर्तनकः परम् ॥ सूचीमुखमती प्रोक्ता अष्टाविंशतिनारकाः ॥ २७ ॥ इत्येते नारका नाम यातनाभूमयः पराः ॥ कर्मभिश्चापि भूतानां गम्याः पद्मजसंभव ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ नारद उवाच ॥ कर्मभेदाः कतिविधा सनातन मुने मम ॥ श्रोतव्या सर्वथैवेते यातनाप्राप्तिभूमयः ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ यो वै परस्य वित्तानि दारापत्यानि चैव हि ॥ हरते स हि दुष्टात्मा यमानुचरगोचरः ॥ २ ॥

मेयादन ॥ २५ ॥ अविचि, अपःपान, क्षारकर्दम, रजोगण, संभीज, शूलप्रोत, ॥ २६ ॥ दंशशूक, वाटारोध, पर्यावर्तन, सूचीमुख, यह अट्ठाईस नरक हैं ॥ २७ ॥ यह नारकियोंको दुःख देनेवाली भूमियें हैं, हे नारद ! कर्मद्वारा प्राणी इनमें गमन करते हैं ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ नारदजी बोले हे सनातनमुने ! कर्मभेद कितने हैं और वे यातनाभूमि कैसे प्राप्त होती हैं सो कहिये ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले जो दुष्टात्मा पराया धन, दारा, सन्तान हरण करता है उसको यमदूत मारते हैं ॥ २ ॥

वे भयानक यमदूत कालपाशमें बांधकर महादुःखदायक तामिस्त्र नरकमें डालते हैं ॥ ३ ॥ वहां यमदूत पाश हाथमें लिये उसको ताडते दंड देते और घुडकते हैं ॥४॥ हे नारद ! तब यह नारकी मूर्छाको प्राप्त होता है जो कोई अपने स्वामीकी वंचना करके उसकी दाराको भोग करता है ॥ ५ ॥ यमकिंकर उसको अंधतामिस्त्र नरकमें डाल देते हैं जहां पड़कर इसको महादुःख होता है ॥ ६ ॥ तत्काल इसकी दृष्टि और मति नष्ट हो जाती है मूल भग्न होनेसे जैसे वृक्ष होता है यही दशा इसकी होती है ॥ ७ ॥ इस कारण इसका अंधतामिस्त्रनाम कहा है जो प्राणी अहंकारके वश हो निरन्तर भूतोंसे द्रोह करते हैं ॥ ८ ॥

कालपाशेन संबद्धो याम्यैरति भयानकैः ॥ तामिस्त्रनामनरके पात्यते यातनास्पदे ॥ ३ ॥ ताडनं दंडन चैव संतर्जनमतः परम् ॥ याम्याः कुर्वंति पाशाढ्याः कश्मलं याति चैव हि ॥ ४ ॥ मूर्च्छामायाति विवशो नारकी पद्मभूसुत ॥ यः पतिं वंचयित्वा तु दारा दीनुपभुज्यति ॥ ५ ॥ अंधतामिस्त्रनरके पात्यते यमकिंकरैः ॥ पात्यमानो यत्र जंतुर्वेदनापरवान्भवेत् ॥ ६ ॥ नष्टदृष्टिर्नष्टमतिर्भव त्यैवाविलंबतः ॥ वनस्पति र्भज्यमानमूलो यद्वद्भवेदिह ॥ ७ ॥ तस्मादप्यंधतामिस्त्रनाम्ना प्रोक्तः पुरातनैः ॥ एतन्ममाहमिति यो भूतद्रोहेण केवलम् ॥ ८ ॥ पुष्णाति प्रत्यहं स्वीयकुटुंबं कार्यलंपटः ॥ एतद्विहाय चात्रैव स्वाशुभेन पतेदिह ॥ ९ ॥ रौरवे नाम नरके सर्वसत्त्वभयावहे ॥ इह लोकेऽमुना ये तु हिंसिता जंतवः पुरा ॥ १० ॥ त एव रुरवो भूत्वा परत्र पीडयंति तम् ॥ तस्माद्रौरवमित्याहुः पुराणज्ञा मनीषिणः ॥ ११ ॥ रुरुः सर्पादतिक्रूरो जंतुरुक्तः पुरातनैः ॥ एवं महारौरवाख्यो नरको यत्र पूरुषः ॥ १२ ॥ यातनां प्राप्यमाणो हि यः परं देहसंभवः ॥ क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्ये घातयंति च ॥ १३ ॥ य उग्रः पुरुषः क्रूरः पशुपक्षिगणानपि ॥ उपरं धयते मूढो याम्यास्तं रंधयंति च ॥ १४ ॥

और कार्यमें लंपट हो अपने कुटुम्बको ही पुष्ट करते हैं वह यह सब यहीं छोडकर अपने कर्मसे ॥ ९ ॥ सब प्राणियोंको भयावह रौरव नरकमें पडते हैं और जिन्होंने इस लोकमें प्राणियोंकी हिंसा की है ॥ १० ॥ वेही रुरु होकर दूसरे जन्ममें उसको पीडा देते हैं इस कारण पुराणज्ञाता महात्मा इसको रौरव कहते हैं ॥ ११ ॥ पुरातन कहते हैं कि रुरु सर्पसे भी अति क्रूर हैं इसी प्रकार महारौरव नामक नरक है ॥ १२ ॥ जो दूसरोंको यातना करते हैं वे उसमें पडते और रुरुनामक क्रव्यादगण उसके शरीरको भक्षण करते हैं ॥ १३ जो कोई क्रूर और उग्र पुरुष पशुपक्षियोंको बंधनमें डालता है यमदूत उसको बांधते हैं ॥१४

वह उसे कुंभीपाकमें डालकर ऊपरसे तत्ता तेल डालते हैं, जितने पशुके रोम हैं उतनेही सहस्रवर्षतक ॥ १५ ॥ पिता ब्राह्मणका द्रोही कालसूत्र नरकमें पड़ता है अग्नि और सूर्यद्वारा तपाया जाकर नरकमें पडता है ॥ १६ ॥ क्षुधा, पिपासासे, इसका शरीर भीतर, बाहर तप्त होता है, वहीं रहना, सोना, फिरना और बैठना, दौडना, होता है ॥१७॥ जो अपने वेद मार्गसे पृथक् होकर पाखण्डमार्गमें चलता है विना आपदाके ऐसा करनेसे उस पापीपुरुषको यमकिंकर॥१८॥ असिपत्र-नामक नरकमें डालते हैं और उस नारकीके चाबुक मारते हैं ॥ १९ ॥ तब वह इधर उधर दौडता है और दुधारवाले असिपत्रोंसे विदीर्ण हो जाता है,, यातना भोगनेको एक शरीर मिलता है जिसको पीडा होती और प्राण नहीं निकलता'' ॥ २० ॥ सब अंग छेदन होनेसे ''हा मैं मरा'' ऐसा कह मूर्च्छित

कुंभीपाके तप्ततैले उपर्यपि च नारद ॥ यावंति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्रकम् ॥ १५ ॥ पितृविप्रब्राह्मणध्रुक्कालसूत्रे स नारके ॥ अग्न्य र्काभ्यां तप्यमाने नारकी विनिवेशितः ॥ १६ ॥ क्षुत्पिपासादह्यमानान्तःशरीरस्तथा बहिः ॥ आस्ते शेतेचेष्टते चावतिष्ठति च धावति ॥ १७ ॥ निजवेदपथाद्यो वै पाखंडं चोपयाति च ॥ अनापद्यपि देवर्षे तं पापं पुरुषं भटाः ॥ १८ ॥ असिपत्रवनं नाम नरकं वेशयंति च ॥ कशया प्रहरंत्येव नारकी तद्गतस्तदा ॥ १९ ॥ इतस्ततो धावमान उत्तालमतिवेगतः ॥ असिपत्रैश्छिद्यमान उभयत्र च धारभिः ॥ २० ॥ संछिद्यमानसर्वांगो हा हतोऽस्मीति मूर्छितः ॥ वेदनां परमां प्राप्तः पतत्येव पदेपदे ॥ २१ ॥ स्वधर्मानुगतं भुंक्ते पाखंडफल मल्पधीः ॥ यो राजा राजपुरुषो दंडयेद्वै त्वधर्मतः ॥ २२ ॥ द्विजे शरीरदंडं च पापीयान्नारकी च सः ॥ नरके सूकरमुखे पात्यते यमकिं करैः ॥ २३ ॥ विनिष्पिष्टावयवको बलवद्भिस्तथेक्षुवत् ॥ आर्तस्वरेण स्वनयन्मूर्छितः कश्मलं गतः॥ २४ ॥ संपीडयमानो बहुधा वेदनां यात्यतीव हि ॥ विविक्तपरपीडो योऽप्यविविक्तपरव्यथाम् ॥ २५ ॥

होता है परमदुःखको प्राप्त हो पदपदमें गिरता है ॥ २१ ॥ और वह दुष्टबुद्धि अपने धर्मानुसार पाखंड-फलको भोगता है जो राजा वा राजपुरुष अधर्मसे प्रजाको दंड देता है ॥ २२ ॥ तथा ब्राह्मणके शरीरमें दण्डप्रहार करता है वह नरकको जाता है, यमदूत उसको सूकरमुख नरकमें डालते हैं ॥ २३ ॥ वहां कोल्हूमें इसके अंग बलपूर्वक पीसे जाते हैं तब आर्तस्वरसे शब्द करता हुआ मूर्च्छित होता है ॥ २४ ॥ महापीडाको प्राप्त हो वेदनाको प्राप्त होता है जो पराई पीडाको नहीं जानता और कुत्सित कर्म करता हो ॥ २५ ॥

और ईश्वर द्वारा कल्पित रक्तपानादिकी वृत्तिवाले मत्कुणादिको व्यथा देते हैं वह अंधकूपनाम नरकमें डाले जाते हैं ॥ २६ ॥ वहां यह क्रूर जन्तु, पशु, मृग, पक्षीगण, सरीसृप, मशक, यूका, मत्कुण (खटमल), ॥२७॥ मक्खी, दंदशूकादि द्वारा अंधकारमें पीडा पाते हैं यह अवस्था कुशरीरकी नाईं देहमें आक्रमण करती है ॥ २८ ॥ जो पुरुष यत किंचित् अन्न और धनादिको प्राप्त होकर उससे शास्त्रविहित पंचयज्ञके अनुष्ठानपूर्वक देवताके उद्देश्यसे विभाग न करके काकके समान स्वयं भोग करता है ॥ २९ ॥ वह पापी पुरुष यमदूतोंद्वारा कृमिभोजन नरकमें पडकर अपने दुष्ट कर्मोंका फल भोगता है ॥ ३० ॥ वह भयंकर कीडोंका कुंड लाख योजनके विस्तारमें है वहां वे कृमिरूपसे उसका भक्षण करते हैं ॥३१॥ जो विना अतिथियोंको दिये स्वयं आपही खाजाता है

ईश्वरांकितवृत्तीनां व्यथामाचरते स्वयम् ॥ स चांधकूपे पतति तदभिद्रोहयंत्रिते ॥ २६ ॥ तत्रासौ जंतुभिः क्रूरैः पशुभिर्मृगपक्षिभिः ॥ सरीसृपैश्च मशकैर्यूकामत्कुणजातिभिः ॥ २७ मक्षिकाभिश्च तमसि दंदशूकैश्च पीड्यते ॥ परिक्रामति चैवात्र कुशरीरे च जंतुवत ॥२८॥ यस्तु संविहितैः पंचयज्ञैः काकैश्च संस्तुतः ॥ अश्नाति चासंविभज्य यत्किंचिदुपपद्यते ॥ २९ ॥ स पापपुरुषः क्रूरैर्याम्यैश्च कृमिभोजने ॥ नरकाधमके दुष्टकर्मणा परिपात्यते ॥ ३० ॥ लक्षयोजनविस्तीर्णे कृमिकुण्डे भयंकरे ॥ कृमिरूपं समासाद्य भक्ष्यमाणश्च तैः स्वयम् ॥ ३१ ॥ अप्रत्ताप्रहुतादो यः पातमाप्नोति तत्र वै ॥ यस्तु स्तेयेन च बलाद्धिरण्यं रत्नमेव च ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणस्यापहरति अन्यस्यापि च कस्यचित् ॥ अनापदि च देवर्षे तमसुत्र यमानुगाः ॥ ३३ ॥ अयस्मयैरग्निपिंडैः सन्दंशैर्निष्कुषंति च ॥ योऽगम्यां योषितं गच्छेदगम्यंपुरुषं च या ॥ ३४ ॥ तावमुत्रापि कशया ताडयंतो यमानुगाः ॥ तिग्मया लोहमय्या च सूर्म्याऽप्यालिंगयंति तम् ॥ ३५ ॥ तां चापि योषितं सूर्म्याऽऽलिंगयंतिः यमानुगाः ॥ यस्तु सर्वाभिगमनः पुरुषः पापसंचयी ॥ ३६ ॥

वह इसमें पड़ता है जो कोई चोरी वा बलसे सुवर्ण वा रत्न ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण वा और किसीका हरण करता है विना आपत्तिके ऐसा करनेपर उसे यमदूत ॥ ३३ ॥ लोहेके लाल किये अग्नि, पिंडोंसे उसे कूटते हैं जो पुरुष अगम्या स्त्रीमें गमन करता और जो स्त्री अगम्य पुरुष चांडालादिमें गमन करती है ॥ ३४ ॥ परलोकमें यमदूत उन दोनोंको चाबुकोंसे मारते हैं और तीव्र लोहेकी गरम स्त्री पुरुषोंकी मूर्तिसे उनको आलिंगन कराते हैं ॥ ३५ ॥ स्त्रीको पुरुषकी मूर्तिसे आलिंगन कराते हैं जो पापी पुरुष सबमें गमन करता है ॥ ३६ ॥

यमदूत उसको शाल्मली नरकमें डालते हैं जहां वज्र कंटक युक्त लोहेके सेमलकेसे काँटे हैं ॥ ३७ ॥ राजा वा राजपुरुष जो पाखंडी हैं जो धर्मसेतुको नष्ट करते हैं वही मरकर मर्यादाके तोडनेवाले वैतरणीमें पडते हैं हे नारद ! वह घोर नरककी नदी है वही नरकरूपी दुर्गकी परिखा है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ उसमें जीवगण सब ओरसे भक्षण करते हैं तथापि उनका प्राण और देह नष्ट नहीं होता ॥ ४० ॥ अपने कर्मानुसार निरंतर दुःख पाते हैं विष्ठा, मूत्र, पूय, रक्त, केश, अस्थि, नख, मांस ॥ ४१ ॥ मेद चर्बीसे संयुक्त नदीमें पापी डाले जाते हैं जो उच्च वृषलीपति होते भ्रष्टाचार, निर्लज्ज ॥ ४२ ॥ सत् आचरण नियमके त्यागी

निरयेऽमुत्र तंयाम्याः शाल्मलीरोपयंति तम् ॥ वज्रकंटकसंयुक्तां शाल्मलीं तामयस्मयीम् ॥ ३७ ॥ राजन्या राजपुरुषा ये वा पाखंडवर्तिनः ॥ धर्मसेतुं विभिंदंति ते परेत्य गता नराः ॥ ३८ ॥ वैतरण्य पतंत्येव भिन्नमर्यादपातकाः ॥ नद्यां निरयदुर्गस्य परिखायां च नारद ॥३९॥ यादोगणैः समंतात्तु भक्ष्यमाणा इतस्ततः ॥ नात्मना वियुजंत्येव नासुभिश्चापि नारद ॥४०॥ स्वीयेन कर्मपाकेनोपतपंति च सर्वतः ॥ विण्मूत्रपूयरक्तैश्च केशास्थिनखमांसकैः ॥ ४१ ॥ मेदोवसासंयुतायां नद्यामुपपतंति ते ॥ वृषलीपतयो ये च नष्टशौचा गतत्रपाः ॥ ४२ ॥ आचारनियमैस्त्यक्ताः पशु चर्यापरायणाः ॥ तेऽत्रानुकष्टगतयो विण्मूत्रश्लेष्मरक्तकैः ॥ ४३ ॥ श्लेष्ममलसमापूर्णे निपतंति दुराग्रहाः ॥ तदेव खादयंत्येता न्यमानुचरवर्गकाः ॥ ४४ ॥ ये श्वानगर्दभादीनां पतयो वै द्विजातयः ॥ मृगयारसिका नित्यमतीर्थे मृगघातकाः ॥ ४५ ॥ परेतांस्तन्यमभटा लक्षीभूतान्नराधमान् ॥ इषुभिश्च विभिंदंति तांस्तान्दुर्नयमागतान् ॥ ४६ ॥ ये दंभा दंभयज्ञेषु पशून्घ्नंति नराधमाः ॥ तानमुष्मिन्यमभटा नरके वैशसे तदा ॥ ४७ ॥ निपात्य पीडयंत्येव कशाघातैर्दुरासदैः ॥ यो भार्यां च सवर्णां वै द्विजो मदनमोहितः ॥ ४८ ॥

स्वेच्छाचारी हैं वेही इसमें आकर विष्ठा मूत्र श्लेष्मा रक्त ॥४३॥ तथा श्लेष्म मलसे पूर्णनदीमें पडते हैं यमानुचरके वेग इन्हीं वस्तुओंको प्राणी जनोंको खवाते हैं ॥ ४४ ॥जो द्विजाति श्वानगर्दभादिके पालक हैं तथा निरंतर मृगयामें आसक्त वृथा मृग मारते हैं ॥ ४५ ॥ मरनेपर यमराजके दूत उन क्रूरकर्मियोंको बाणोंसे लक्षकर मारते हैं ॥ ४६ ॥ जो नराधम दंभाचार परायण होकर पशुओंको दम्भयज्ञ प्रवृत्त कर मारते हैं यमकिंकर उनको विशसन नामक नर्कमें ॥ ४७ ॥ डालकर भयंकर कशाघातसे पीडा देते हैं जो द्विज कामसे मोहित हो अपनी सवर्ण भार्यामें ॥ ४८ ॥

मूढतासे वीर्यपात करता है उसको यमकिंकर रेतके कुंडमें डालकर वीर्यपात करते हैं ॥ ४९ ॥ जो चोर अग्नि और विषके देनेवाले सार्थनाशक हैं तथा ग्राम और सार्थके नाशक राजा और राजपुरुष हैं ॥ ५० ॥ उनके मरनेपर यमदूत उनको श्वानकाद नरकमें डालते हैं वहां महा अद्भुत बीस अधिक ॥ ५१ ॥ सातसौ सारमेय हैं जो बड़े वेगसे प्राणियोंको भक्षण करते हैं हे मुने सारमेयादन नामक दारुण नरक है ॥ ५२ ॥ अब अवीची आदि नरकोंका वर्णन करता हूं ॥ ५३ ॥ इति श्रीदेवीभागते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ श्रीनारायण बोले जो मनुष्य साक्षीमें सदा असत्य भाषण करते हैं तथा अर्थके लेने देनेमें असत्य भाषण करते हैं ॥ १ ॥ वे मरकर अवीचिनरकमें पड़ते हैं सौ योजन ऊंचे पहाडपरसे नीचे गिराये जाते हैं ॥ २ ॥

रेतः पाययते मूढोऽमुत्र तं यमकिंकराः ॥ रेतः कुंडे पातयंति रेतः संपाययंति च ॥ ४९ ॥ ये दस्यवोऽग्निदाश्चैव गरदाः सार्थ घातकाः ॥ ग्रामान्सार्थान्विलुंपंति राजानो राजपूरुषाः ॥ ५० ॥ तान्परेतान्यमभटा नयंति श्वानकादनम् ॥ विंशत्यधिकसंख्याताः सार मेया महाद्भुता ॥ ५१ ॥ सप्तशत्या समाख्याता रभसं खादयंति ते॥सारमेयादनं नाम नरकं दारुणं मुने ॥ ५२ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि अवीचिप्रमुखानन्मुने ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ये नरा सर्वदा साक्ष्ये पअनृतं भाषयंति च ॥दाने विनिमयेऽर्थस्य देवर्षेपापबुद्धय॥१॥ ते प्रेत्यामुत्र नरके अवीच्याख्येऽतिदारुणे ॥ योजनानां शतोच्छ्रायाद्गिरि मूर्ध्न पतंति हि ॥ २ ॥ अनाकशेऽधःशिरस स्तदवीचीतिनामके ॥ यत्र स्थलं दृश्यते च जलवद्वीचिसंयुतम् ॥ ३ ॥ अवीचिमत्ततस्तत्र तिलशश्छिनन्नविग्रहः ॥ म्रियते नैवदेवर्षे पुनरेवावरोप्यते ॥४॥ यो वा द्विजो राजन्यो वैश्यो वा ब्रह्मसंभव ॥सोमपीथस्तत्कलत्रं सुरां वा पिततीव हि ॥५॥ प्रमादतस्तु तेषां वै निरये परिपातनम् ॥ कुर्वंति यमदूतास्ते पानं कार्ष्णायसो मुने ॥ ६ ॥ वह्निनाद्रवमाणस्य नितरां ब्रह्म संभव ॥ संभावनेन स्वस्यैव योऽधमोऽपि नराधमः ॥ ७ ॥

अनाकाशमें नीचा शिरकर इस नरकमें गिराये जाते हैं जहां स्थलभाग जलके समान तरंगवाला दीखता है ॥ ३ ॥ इसीसे अवीचि कहते हैं इसमें गिरकर शरीर तिल २ छिन्न होजाता है पर हे नारद ! मरता नहीं फिर नवीन शरीर हो जाता है ॥ ४ ॥ हे नारद ! जो ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य सोमपान कर प्रमादवश सुरापान करते हैं ॥ ५ ॥ तो वह भी नरकमें जाते हैं हे मुने ! यमदूत उनको गरम लोहा पिलाते हैं ॥ ६ ॥ हे नारद ! जो निरन्तर अग्निसे पिघलाया जाता है जो नराधम अपने गौरवपरायण होकर ॥ ७ ॥

विद्या जन्म तपसे बडे वर्णाश्रमके आचारवाले जनोंके वरिष्ठ और श्रेष्ठ जानकर आदर नहीं करते ॥ ८ ॥ यमदूत उनको क्षारकर्दम नरकमें डालते हैं वहां नीचे शिरकर घोर यातना भोगनी पड़ती है ॥९॥ जो स्त्री वा पुरुष मोहित होकर अन्य देवको नरपशुद्वारा भजन करते हैं अर्थात् मांस भक्षणको ऐसा करते हैं ॥ १० ॥ वेमरे हुए पशु यमलोकमें प्राप्त हुए सैनिकके समान तीक्ष्ण खड्गसे विदीर्ण कर ॥ ११ ॥ उन पुरुषोंका रक्तपान कर अनेक प्रकार नाचते गाते हैं जैसे यहां दुरासद मांसभोजी पुरुष हैं वैसा ही करते हैं ॥ १२ ॥ हे नारद ! जो विना अपराध वन वा ग्राममें अनेक प्रकार विश्वासोंके उपायोंसे जीवन धारणकी इच्छावालोंको विश्वास देकर ॥१३॥ शूलसूत्रादिमें पाकर क्रीडा करते हैं मरकर वे यमदूतोंद्वारा शूलपात नरकमें डाले जाते हैं ॥ १४ ॥

विद्याजन्मतपोवर्णाश्रमाचारवतो नरान् ॥ वीयसोऽपि न बहु मन्यते पुरुषाधमः ॥ ८ ॥ स नीयते यमभटैः क्षारकर्दमनामके ॥ निरये ऽर्वाक्शिरा घोरां दुरंतयातनाश्नुते ॥ ९ ॥ ये वै नरा यजंत्यन्यं नरमेधेन मोहिताः ॥ स्त्रियोऽपि वा नरपशुंखादंत्यत्र महामुने ॥१०॥ पशवो निहतास्ते तु यमसद्मनि संगताः ॥ सौनिका इव ते सर्वे विदार्य सितधारया ॥ ११ ॥ असृक्पिबंति नृत्यंति गायंति बहुधा मुने ॥ यथेह मां सभोक्तारः पुरुषादा दुरासदाः ॥ १२ ॥ अनागसोऽपि येऽरण्ये ग्रामे वा ब्रह्मपुत्रक ॥ वैश्रंभकैरुपसृतान्विश्रंभय्य जिजीविषून् ॥ १३ ॥ शूलसूत्रादिषु प्रोतान्क्रीडनोत्कार कानिव ॥ पातयंति च ते प्रेत्य शूलपाते पतंति हि ॥ १४ ॥ शूलादिषु प्रोत देहाः क्षुत्तृड्भ्यां चातिपीडिताः ॥ तिग्मतुंडैः कंकबकैरितश्चेतश्च ताडिताः ॥ १५ ॥ पीडिता आत्मशमलं बहुधा संस्मरंति हि ॥ ये भूतानुद्वेजयंति नरा उल्वणवृत्तयः ॥ १६ ॥ यथा सर्पादि कास्तेऽपि नरके निपतंति हि ॥ दंदशूकाभिधाने च यत्रोत्तिष्ठंति सर्वतः ॥ १७ ॥ पंचाननाः सप्तमुखा ग्रसंति नरकागतान् ॥ यथा बिलेशया विप्र क्रूरबुद्धिसमन्विताः ॥ १८ ॥

वहां उनका देह शूलमें पोया जाता है क्षुधा पिपासासे वडे पीडित होते हैं तीक्ष्ण तुडवाले कंक और बकोंसेताडित होते हैं ॥१५॥ वे पीडित हो अपने पापोंको स्मरण करते हैं जो तीक्ष्ण वृत्तिवाले पुरुष प्राणियोंको उद्विग्न करते हैं ॥ १६ ॥ जैसे सर्प भय देते हैं ऐसे पुरुष भी नरकमें पडते हैं जो नरक दंशशूक है उसमें निरन्तर रहते हैं ॥ १७ ॥ वे पांच सात मुखवाले नरकवासियोको निरन्तर काटते हैं हे नारद ! जिस प्रकार बिलमें शयन करनेवाले मूषोंको सर्प उद्वेजित करते हैं ॥ १८ ॥

जो जीवगणोंको अन्धकूपमें तथा अन्धकारमय गुदादिमें बद्ध करते हैं यम किंकर हाथ उठाकर उनको ॥ १९ ॥ विषविमिश्रित अग्नि और धूमके परिपूर्ण वैसीही गुहाओंमें रुद्ध करते हैं ॥ २० ॥ जो गृहपति ब्राह्मण समयपर प्राप्त हुए अतिथियोंको नेत्रोंसे भस्म करनेसे पापदृष्टि फैलाकर देखते हैं ॥ २१ ॥ यमके अनुचर गण वज्रतुण्ड कंक और काकवटादि विहंगम ॥ २२ ॥ तथा क्रूरतरगृध्र बलपूर्वक उनके नेत्र फोडते हैं जो धन गर्वित पुरुष अहं कारसे बड़ा गर्व प्रकाश करते ॥२३॥ और तिरछी दृष्टिसे गुरु आदिमें धन चोरादिका सन्देह करते और निरन्तर धनके आयव्ययमेंही चिंतित रहते हैं ॥२४॥ इसमें सदा जिनका हृदय और मुख सूखता है कभी शान्त नहीं होता धनकी रक्षा ब्रह्मराक्षसके समान करते हैं यमकिंकर उनको ॥ २५ ॥ उनके कर्मानुसार सूचीमुख नरकमें डालते

येऽवटेषु कुसूलादिगुहादिषु निरुंधते ॥ तानमुत्रोद्यतकराः कीनाशपरि सेवकाः ॥ १९ ॥ तेष्वेवोपविशित्वा च वह्निना सगरेण च ॥ धूमेन च निरुंधंति पापकर्मरतान्नरान् ॥ २० ॥ योऽतिथीन्समय प्राप्तान्दिधक्षुरिव चक्षुषा ॥ पापेनेहा लोकयेच्च स्वयं गृहपतिर्द्विजः ॥ २१ ॥ तस्यापि पापदृष्टेर्हि निरये यमकिंकराः ॥ अक्षिणी वज्रतुंडा ये कंकाः काकवटादयः ॥ २२ ॥ गृध्राः क्रूरतराश्चापि प्रसह्यो त्पाटयंति हि ॥ य आढ्याभिमतिर्याति अहंकृत्याऽतिगर्वितः ॥ २३ ॥ तिर्यक्प्रेक्षण एवात्राभिविशंकी नराधमः ॥ चिंतयाऽर्थस्य सर्वत्रायति व्ययस्वरूपया ॥ २४ ॥ शुष्यद्धृदयवक्त्रश्च निर्वृतिं नैव गच्छति ॥ ग्रहवद्रक्षते चार्थं स प्रेतो यमकिंकरैः ॥ २५ ॥ सूचीमुखे च नरके पात्यते निजकर्मणा ॥ वित्तग्रहं च पुरुषं वायका इव याम्यकाः ॥ २६ ॥ किंकराः सर्वतोंऽगेषु सूत्रैः परिवयंति हि ॥ एते बहुविधा वित्तनरकाः पापकर्मणाम् ॥ २७ ॥ नराणां शतशः संति यातनास्थानभूमयः सहस्रशोऽपि देवर्षे उक्तानुक्तांस्तथाऽपि हि ॥ २८ ॥ विशंति नरकानेतान्यातनाबहुलान्मुने ॥ तथा धर्मपराश्चापि लोकान्यांति सुखोद्गतान् ॥ २९ ॥ स्वधर्मो बहुधा गीतो यथा तव महामुने ॥ देवीपूजनरूपो हि देव्याराधनलक्षणः ॥ ३० ॥

हैं और इस अर्थ पिशाच पुरुषको वायक (जुलाहे) के समान यमदूत ॥२६॥ सर्वांगमें सूत्र द्वारा वहन करते हैं इस प्रकारसे अनेकों नरक पापियोंको प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥ पापियोंको सैंकडों यातना स्थानकी भूमियें हैं हे देवर्षे सहस्रों कहे और वे कहे स्थान हैं ॥ २८ ॥ हे मुने ! इनमें बड़ी यातना प्राप्त होती है और धर्मपरायण सुखके लोकोंमें गमन करते हैं ॥ २९ ॥ उनको उत्तम स्थान प्राप्तिका धर्म बहुत प्रकार कहा है वह देवी पूजनरूप श्रेष्ठ धर्म है ॥ ३० ॥

जिसके अनुष्ठान मात्रसे यह प्राणी नरकको नहीं जाता पूजन करनेवाले मनुष्योंको वह देवी संसार सागरसे उद्धार करती है ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ नारद बोले हे भगवन् ! देवी आराधनरूप धर्म किस प्रकार है वह देवी आराधित होकर किस प्रकार परमपद देती है ॥ १ ॥ उसके आराधनकी विधि क्या है वह कब किस प्रकार आराधन की जाती है किसी प्रकार वह बडे नरकसे निकालकर रक्षा करती है ॥ २ ॥ श्री नारायण बोले हे ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ ! आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये जैसे धर्माराधनसे देवी प्रसन्न होती है ॥ ३ ॥ हे नारद ! जिसको स्वधर्म कहते हैं वह आप मुझसे सुनिये अनादि इस संसारमें देवीकी भली प्रकार पूजा करनेसे ॥ ४ ॥ हे मुने ! वह घोर संकटसे इस संसारमें रक्षा

येनाऽनुष्ठितमात्रेण नरो न नरकं व्रजेत् ॥ सा देवी भवपाथोधेरुद्धर्त्री पूजिता नृणाम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ धर्मश्च कीदृशस्तात देव्याराधनलक्षणः ॥ कथमाराधिता देवी सा ददाति परं पदम् ॥१॥ आराधनविधिः को वा कथमाराधिता कदा ॥ केन सा दुर्गनरकाद्दुर्गा त्राणप्रदा भवेत् ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच देवर्षे शृणु चित्तैकाग्र्येण मे विदुषांवर ॥ यथा प्रसीदते देवी धर्माराधनतः स्वयम् ॥ ३ ॥ स्वधर्मो यादृशः प्रोक्तस्तं च मे शृणु नारद ॥ अनादाविह संसारे देवी संपूजिता स्वयम् ॥ ४ ॥ परिपालयते घोरसंकटादिषु सा मुने ॥ सा देवी पूज्यते लोकैर्यथावत्तद्विधिं शृणु ॥ ५ ॥ प्रतिपत्तिथिमासाद्य देवीमाज्येन पूजयेत् ॥ घृतं दद्याद्ब्राह्मणाय रोगहीनो भवेत्सदा ॥ ६ ॥ द्वितीयायां शर्करया पूजयेज्जगदंबिकाम् ॥ शर्करां प्रददेद्विप्रे दीर्घायुर्जायते नरः ॥ ७ ॥ तृतीयादिवसे देव्यै दुग्धं पूजनकर्मणि ॥ क्षीरं दत्त्वा द्विजाग्र्याय सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ ८ ॥ चतुर्थ्यां पूजनेऽपूपा देया देव्यै द्विजाय च ॥ अपूपा एवदातव्या न विघ्नैरभिभूयते ॥ ९ ॥ पंचम्यां कदलीजातं फलं देव्यै निवेदयेत् ॥ तदेव ब्राह्मणे देयं मेधावान्पुरुषो भवेत् ॥ १० ॥

करती हैं सो लोक उस देवीको जिस विधानसे पूजते हैं वह सुनो ॥५॥ प्रतिपदातिथिको देवीका घृतसे पूजन करै और ब्राह्मणके निमित्त घृत देनेसे सदा रोग हीन होता है ॥ ६ ॥ द्वितीयाको जगदम्बिकाका शर्करासे पूजन करे ब्राह्मणको शर्करा देनेसे दीर्घायुको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ तृतीयाको देवीका दूधसे पूजन करे ब्रह्मणको इस दिन क्षीर देनेसे सब दुःख दूर हो जाते हैं ॥ ८ ॥ चौथको देवी और ब्राह्मणको पुए देनेसे विघ्न नहीं होते ॥ ९ ॥ पांचैको देवीको और ब्राह्मणको कदली देनेसे पुरुष बुद्धिमान् होता है ॥ १० ॥

छठको मधुसे देवीका पूजन करै ब्राह्मणको मधु देनेसे कान्तिको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ सप्तमीको गुड़ और नैवेद्य देवी तथा ब्राह्मणको देनेसे शोकरहित होता है ॥ १२ ॥ अष्टमीको देवीके निमित्त नैवेद्य और नारियल ब्राह्मणको देनेसे यह प्राणी ताप हीन होता है ॥ १३ ॥ नौमीको देवी और ब्राह्मणके निमित्त लाजा देनेसे इस लोक और परलोकमें सुख मिलता है ॥ १४ ॥ हे मुने ! दशमीको देवीके निमित्त काले तिल चढावे ब्राह्मणको देनेसे यमका भय नहीं होता ॥ १५ ॥ एकादशीको दहीसे देवीकी पूजा कर ब्राह्मणको देनेसे देवीका प्रिय होता है ॥ १६ ॥ द्वादशीको देवी और ब्राह्मणको पृथुक (चूरा)

षष्ठीतिथौ मधु प्रोक्तं देवीपूजनकर्मणि ॥ ब्राह्मणाय च प्रदातव्यं मधुकांतिर्यतोभवेत् ॥ ११ ॥ सप्तम्यां गुडनैवेद्यं देव्यै दत्त्वा द्विजाय च ॥ गुडं दत्त्वा शोकहीनो जायते द्विजसत्तम ॥ १२ ॥ नारिकेलमथाष्टम्यां देव्यै नैवेद्यमर्पयत् ॥ ब्राह्मणाय प्रदातव्यं ताप हीनो भवेन्नरः ॥ १३ ॥ नवम्यां लाजमंबायै चार्पयित्वा द्विजाय च ॥ दत्त्वा सुखाधिको भूयादिह लोके परत्र च ॥ १४ ॥ दशम्याम र्पयित्वा तु देव्यै कृष्णतिलान्मुने ॥ ब्राह्मणाय प्रदत्त्वा तु यमलोकाद्भयं नहि ॥ १५ ॥ एकादश्यां दधि तथा देव्यै चार्पयते तु यः ॥ ददातिब्राह्मणायैतद्देवीप्रियतमो भवेत् ॥ १६ ॥ द्वादश्यां पृथुकान्देव्यै दत्त्वाऽऽचार्याय यो ददेत् ॥ तानेव च मुनि श्रेष्ठ स देवीप्रियतां व्रजेत् ॥ १७ ॥ त्रयोदश्यां च दुकैगयाचर्णन्प्रददाति च ॥ तानेवा दत्त्वा विप्राय प्रजासंततिमान्भवेत् ॥ १८ ॥ चतु र्दश्यां च देवर्षे देव्यै सक्तून्प्रयच्छति ॥ तानेव दद्याद्विप्राय शिवस्य दयितो भवेत् ॥ १९ ॥ पायसं पूर्णिमातिथ्यामपर्णायै प्रय च्छति ॥ ददाति च द्विजाग्र्याय पितॄनुद्धरतेऽखिलान् ॥ २० ॥ तत्तिथौ हवनं प्रोक्तं देवीप्रीत्यै महामुने ॥ तत्तत्तिथ्युक्तवस्तूनाम शेषा रिष्टनाशनम् ॥ २१ ॥ रविवारे पायसं च नैवेद्यं परिकीर्तितम् ॥ सोमवारे पयः प्रोक्तं भौमे च कदलीफलम् ॥ २२ ॥ बुधवारे च संप्रोक्तं नवनीतं नवं द्विज ॥ गुरुवारे शर्करां च सितां भार्गववासरे ॥ २३ ॥

देनेसे देवीका प्रिय होता है ॥१७॥ तेरसको देवी और ब्राह्मणको चने देनेसे प्रजा और सन्तानवाला होता है ॥१८॥ हे नारद ! चौदसको देवी और ब्राह्मणके निमित्त सत्तू देनेसे शिवका प्रिय होता है॥१९॥ पूर्णिमाको जो अपर्णाका खीरसे पूजन कर ब्राह्मणको देता है उसके सब पितरोंका उद्धार होता है ॥२०॥ हे महामुने ! उस तिथिमें पूजा पटलके कहे अनुसार नित्य हवन करे तो सम्पूर्ण अरिष्ट शान्त होते हैं ॥ २१ ॥ रविवारको पायसका नैवेद्य देना, सोमवारको दूध, मंगलको कदलीफल ॥ २२ ॥ बुधको नवनीत (मक्खन), गुरुवारको शर्करा, शुक्रवारको मिश्री ॥ २३ ॥

शनिवारको गौका घी नैवेद्य कहा है हे मुने ! अब सत्ताइस नक्षत्रोंका नैवेद्य सुनो ॥ २४ ॥ घी, तिल, शर्करा, दही, दूध, दूधकी मलाई, दधिकूर्ची, लड्डू, फेनी, घृतमंडक ॥ २५ ॥ कसार वटपत्र (पापड) घेवर, वटक, खर्जूररस गुड निर्मित चणकपिष्ठ, शहत, घृतमें भुना सूरण ॥ २६ ॥ गुड पृथुक, द्राक्षा, खजूर, चारक, (खाद्यविशेष) अपूप (पूये) मक्खन, मूंगके लड्डू ॥ २७ ॥ और मातुलिंग (बिजारा नींबू) यह क्रमसे अश्विनी आदि सब नक्षत्रोंका नैवेद्य है अब विष्कंभादि योगका नैवेद्य कहते हैं ॥ २८ ॥ इन पदार्थोंके देनेसे जगदम्बा प्रसन्न होती हैं गुड, मधु, घी, दूध, दही, तक्र, पुए ॥ २९ ॥

शनिवारे घृतं गव्यं नैवेद्यं परिकीर्तितम् ॥ सप्तविंशतिनक्षत्रनैवेद्यं श्रूयतां मुने ॥ २४ ॥ घृतं तिलं शर्करां च दधिदुग्धं किलाट कम् ॥ दधिकूर्चीं मोदकं च फेणिकां घृतमण्डकम् ॥ २५ ॥ कंसारं वटपत्रं च घृत पूरमतः परम् ॥ वटकं कोकरसकं पूरणं मधु सूरणम् ॥ २६ ॥ गुडं पृथुकद्राक्षे च खर्जूरं चैव चारकम् ॥ अपूपं नवनीतं च मुद्गं मोदक एव च ॥ २७ ॥ मातुलिंगमिति प्रोक्तं भनै वेद्यं च नारद ॥ विष्कंभादिषु योगेषु प्रवक्ष्यामि निवेदनम् । २८ ॥ पदार्थानां कृतेष्वेषु प्रीणाति जगदंबिका ॥ गुडं मधु घृतं दुग्धं दधि तक्रं त्वपूपकम् ॥ २९ ॥ नवनीतं कर्कटीं च कूष्माण्डं चापि मोदकम् ॥ पनसं कदलं जंबुफलमाम्रफलं तिलम् ॥ ३० ॥ नारंगं दाडिमंचैव बदरीफलमेव च ॥ धात्रीफलं पायसं च पृथुकं चणकं तथा ॥ ३१ ॥ नारिकेलं जंभफलं कसेरुं सूरणं तथा ॥ एतानि क्रमशो विप्र नैवेद्यानि शुभानि च ॥ ३२ ॥ विष्कंभादिषु योगेषु निर्णीतानि मनीषिभिः ॥ अथ नैवेद्यमाख्यास्ये करणानां पृथङ्मुने ॥३३॥ कंसारं मंडकं फेणी मोदकं वटपत्रकम् ॥ लड्डुकं घृतपूरं च तिलं दधि घृतं मधु ॥३४॥ करणानामिदं प्रोक्तं देवीनैवेद्यमादरात् ॥ अथा न्यत्संप्रवक्ष्यामि देवी प्रीतिकरं परम् ॥३५॥ विधानं नारद मुने शृणु तत्सर्वमादृतः ॥ चैत्रशुद्धतृतीयायां नरो मधुकवृक्षकम् ॥ ३६ ॥

मक्खन, कर्कटी, कूष्माण्ड, मोदक, पनस, केला जामन, आम, तिल ॥३०॥ नारंगी, दाडिमी, बेर, आमला, पायस, पृथूक, चने ॥ ३१ ॥ नारियल, जंबीरी, कसेरू, जिमीकंद हे विप्र ! यह क्रमसे सुन्दर नैवेद्य ॥ ३२ ॥ विष्कंभादि योगोंमें महर्षियोंने निर्णय की हैं हे मुने ! अब पृथक् पृथक् करणोंका नैवेद्य कहते हैं, ॥ ३३ ॥ कसार, मण्डल, फेनी, मोदक, वटपत्रक, लड्डू, घृतपूर, तिल, दही, घी, मधु ॥ ३४ ॥ यह करणोंमें आदरसे नैवेद्य देना अब और भी देवीका प्रीति विधायक ॥३५॥ विधान कहता हूं हे नारद ! सो आदरसे सुनो मनुष्य चैत सुदी दोयजको महुएके पेड़को ॥ ३६ ॥

पूजन कर पंचमेवा निवेदन करे इस प्रकार बारह महीनोंमें तीज आदि तिथियोंमें क्रमसे ॥ ३७ ॥ शुक्लपक्षके विधानसे नैवेद्य दे हे नारद ! वैशाख मासमें गुडयुक्त नैवेद्य दे ॥ ३८ ॥ ज्येष्ठके महीनेमें देवीकी प्रीतिके निमित्त मधु दे आषाढमें नवनीत और मधूक दे ॥ ३९ ॥ श्रावणमें दही भादोंमें शर्करा, आश्विनमें पायस, कार्तिकमें दूध दे ॥ ४० ॥ अगहनमें फेनी, पूषमे दधिकूर्चिका, माघमें गौका घी ॥ ४१ ॥ और फाल्गुनमें नारियलका नैवेद्य दे, इस प्रकार बारह महीनेमें क्रमसे नैवेद्य देकर पूजे ॥ ४२ ॥ मंगला, वैष्णवी, माया कालरात्रि, दुरत्यया, महामाया, मातंगी. काली, कमलवासिनी ॥ ४३ ॥ शिवा, सहस्र चरणवाली, सब मंगलकी रूपवाली, इन नामोंसे देवीका मधूक वृक्षमें पूजन करे ॥ ४४ ॥ फिर मधूकमें स्थित देवेशीकी सब कामकी प्राप्ति

पूजयेत्पंच खाद्यं च नैवेद्यमुपकल्पयेत् ॥ एवं द्वादशमासेषु तृतीयातिथिषु क्रमात् ॥ ३७ ॥ शुक्लपक्षे विधानेन नैवेद्यमभिदध्महे ॥ वैशाखमासे नैवेद्यं गुडमुक्तं च नारद ॥ ३८ ॥ ज्येष्ठमासे मधु प्रोक्तं देवीप्रीत्यर्थमेव तु ॥ आषाढे नवनीतं च मधुकस्य निवेदनम् ॥ ३९ ॥ श्रावणे दधि नैवेद्यं भाद्रमासे च शर्करा ॥ आश्विने पायसं प्रोक्तं कार्त्तिके पय उत्तमम् ॥ ४० ॥ मार्गे फेण्युत्तमा प्रोक्ता पौषे च दधि कूर्चिका ॥ माघे मासि च नैवेद्यं घृतं गव्यं समाहरेत् ॥ ४१ ॥ नारिकेलं च नैवेद्यं फाल्गुने परिकीर्तितम् ॥ एवं द्वादशनैवेद्यैर्मासे च क्रमतोऽर्चयेत् ॥४२॥ मंगला वैष्णवी माया कालरात्रिर्दुरत्यया ॥ महामाया मतंगी च काली कमलवासिनी ॥४३॥ शिवा सहस्रचरणा सर्वमंगलरूपिणी ॥ एभिर्नामपदैर्देवीं मधूके परिपूजयेत् ॥ ४४ ॥ ततः स्तुवीत देवेशीं मधूकस्थां महेश्वरीम् ॥ सर्वकामसमृद्ध्यर्थं व्रतपूर्णत्वसिद्धये ॥ ४५ ॥ नमः पुष्करनेत्रायै जगद्धात्र्ये नमोऽस्तु ते ॥ माहेश्वर्यै महादेव्यै महामंगलमूर्तये ॥ ४६ ॥ परमा पापहंत्री च परमार्गप्रदा यिनी ॥ परमेश्वरी प्रजोत्पत्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी ॥४७॥ मददात्री मदोन्मत्ता मानगम्या महोन्नता ॥ मनस्विनी मुनिध्येया मार्तण्ड सह चारिणी ॥ ४८ ॥ जयलोकेश्वरी प्राज्ञे प्रलयाबुदसन्निभे ॥ महामोहविनाशार्थं पूजिताऽसि सुरासुरैः ॥ ४९ ॥

और व्रतपूर्तिके निमित्त स्तुति करै ॥ ४५ ॥ पुष्करनेत्र जगत्की माता माहेश्वरी माहादेवी महामंगल मूर्तिके निमित्त नमस्कार है ॥ ४६ ॥ परम पापनाशिनी, मुक्ति मार्गदायिनी परमेश्वरी प्रजाकी उत्पत्ति कारण परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ४७ ॥ मददायका, मदोन्मत्ता, मानसे गम्या, महाउन्नत, मनस्विनी. मुनियोंसे ध्यान करने योग्य सूर्य मंडलोंमें स्थित ॥ ४८ ॥ सब लोकोंकी ईश्वरी, प्राज्ञतमा, प्रलय मेघके समान कान्तिमान् महामोहके नाश करनेको सुरासुरोंसे पूजित, आपकी जय हो ॥ ४९ ॥

तुमही यमलोककी निवारण करनेवाली, यमसे, पूजनीय, यमकी अग्रजा; यमकी, निग्रहरूप, सबको यजनयोग्य तुमको प्रणाम है ॥ ५० ॥ समान स्वभाव, सबकी अधीश्वरी, सब संगसे रहित, लोककी विषयाशक्तिनाशिनी, काम्या, दयामयशरीरवाली, ॥५१॥ कंकालक्रूरा, कामाक्षी, मीनाक्षी, मर्मभेदनी, माधुर्यरूप शीलवाली, मधुरस्वरसे पूजित वा प्रणवसे पूजित ॥ ५२ ॥ तुम मायाबीजस्वरूपिणी, मंत्र जपकी सहायतासे प्राप्त होनेवाली, निदिध्यासनरूप. एकान्तविचारसे प्रसन्न होनेवाली साधकमनुष्योंके मानसमें प्राप्त, महादेवकी प्रियकरने वाली ॥ ५३ ॥ अश्वत्थ, वट, नींब, आम, कैथ, बेर, पनस, अर्क, (आक) करीरादिक्षी रवृक्षस्वरूपवाली ॥ ५४ ॥ तुम दुग्धवल्लीमें निवास करती दयनीयस्वरूप होनेसे अधिक दयावाली, दाक्षिण्य और करुणारूपवाली, सर्वज्ञवल्लभा हो आपकी जय;

यमलोकाभावकर्त्री यमपूज्या यमाग्रजा ॥ यमनिग्रहरूपा च यजनीये नमो नमः ॥ ५० ॥ समस्वभावा सर्वेशी सर्वसंगविवर्जिता ॥ संगनाशकरी काम्यरूपा कारुण्यविग्रहा ॥ ५१ ॥ कंकालक्रूरा कामाक्षी मीनाक्षी मर्मभेदिनी ॥ माधुर्यरूपशीला च मधुरस्वरपूजिता ॥ ५२ ॥ महामंत्रवती मंत्रगम्या मंत्रप्रियंकरी ॥ मनुष्यमानसगमा मन्मथारिप्रियंकरी ॥ ५३ ॥ अश्वत्थवटनिंबाम्रकपित्थबदरीगते ॥ पनसार्क करीरादिक्षीरवृक्षस्वरूपिणि ॥ ५४ ॥ दुग्धवल्लीनिवासार्हे दयनीये दयाधिके ॥ दाक्षिण्यकरुणारूपे जय सर्वज्ञवल्लभे ॥ ५५ ॥ एवं स्तवेन देवेशीं पूजनांते स्तुवीत ताम् ॥ व्रतस्य सकलं पुण्यं लभते सर्वदा नरः ॥ ५६ ॥ नित्यं यः पठते स्तोत्रं देवी प्रीतिकरं नरः ॥ आधिव्याधिभयं नास्ति रिपुभीतिर्न तस्य हि ॥ ५७ ॥ अर्थार्थी चार्थमाप्नोति धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ॥ कामानवाप्नुया त्कामी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥ ५८ ॥ ब्राह्मणो वेदसम्पन्नो विजयी क्षत्रियो भवेत् ॥ वैश्यश्च धनधान्याढ्यो भवेच्छूद्रः सुखाधिपः ॥ ५९ ॥ स्तोत्रमेतच्छ्राद्धकाले यः पठेत्प्रयतो नरः ॥ पितॄणामक्षया तृप्तिर्जायते कल्पवर्तिनी ॥ ६० ॥

हो ॥५५॥ इस प्रकारके स्तोत्रसे पूजनके अन्तमें देवीकी स्तुति करे तो मनुष्यको व्रतका सम्पूर्ण पुण्य प्राप्त होता है ॥५६॥ जो मनुष्य देवीकी प्रीति करनेवाले इस स्तोत्रको नित्यप्रति पढ़ते हैं उसको आधिव्याधि और शत्रुका भय नहीं होता ॥ ५७ ॥ अर्थी अर्थ, धर्मार्थी धर्म, कामी कामना, मोक्षार्थी मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥ ब्राह्मण इसके पाठसे वेदसम्पन्न, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धनधान्य समृद्धि और शूद्र अधिक सुख पाता है ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य नियत होकर श्राद्ध कालमें इस स्तोत्रको पढ़ते हैं तो उसके पितरोंकी कल्पपर्यन्त अक्षय तृप्ति होती है ॥ ६० ॥

इसप्रकार सुरपूजित देवीका आराधन कहा जो मनुष्यभक्तिसे पूजा करता है वह देवीके लोकको प्राप्त होता है ॥६१॥ हे नारद ! देवीके पूजनसे सब काम प्राप्त होते हैं और अन्तमें सब पापसे रहित हो शुद्धमति होती है ॥ ६२ ॥ वह जहां तहां पूजित और मान पाता है हे नारद ! जगन्माताके ही प्रसादसे वह उत्तम होता है ॥६३॥ उसको नरकका भय स्वप्नमें भी नहीं होता महामायाके प्रसादसे पुत्र पौत्रकी वृद्धि होती है ॥ ६४ ॥ वह निःसन्देह देवीका भक्त होता है यह तुमसे नरकके उद्धारलक्षणवाला धर्म कहा ॥ ६५ ॥ महादेवीका पूजन सब मंगलकारक है हे मुने ! इसी प्रकार महीनोंके क्रमसे मधूकपूजन करना ॥६६॥ जो सब प्रकार यह मधूक पूजन करता है वह पापरहित होता है उसको कोई रोगादि बाधाका भय नहीं होता ॥ ६७ ॥ इसके उपरांत प्रकृतिस्व

एवमाराधनं देव्याः समुक्तं सुरपूजितम् ॥ य करोति नरो भक्त्यास देवीलोकभाग्भवेत् ॥६१॥ देवीपूजनतो विप्र सर्वे कामा भवंति हि ॥ सर्वं पाप हतिः शुद्धा मतिरंते प्रजायते ॥६२॥ यत्र तत्र भवेत्पू ज्यो मान्यो मानधनेषु च ॥ जायते जगदंबायाः प्रसादेन विरंचिज ॥६३॥ नरकाणां न तस्याऽस्ति भयं स्वप्नेऽपि कुत्रचित् ॥ महामायाप्रसादेन पुत्रपौत्रादिवर्धनः ॥ ६४ ॥ देवीभक्तो भवत्येव नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ इत्येवं ते महाख्यातं नरकोद्धारलक्षणम् ॥ ६५ ॥ पूजनं हि महादेव्याः सर्वमंगलकारकम् ॥ मधूक पूजनं तद्वन्मासानां क्रमतो मुने ॥ ६६ ॥ सर्वं समाचरेद्यस्तु पूजनं हि मधुकाह्वयम् ॥ न तस्य गोगबाधादि भयमुद्भवतेऽनघ ॥ ६७ ॥ अथान्यदपि वक्ष्यामि प्रकृतेः पंचकं परम् ॥ नाम्ना रूपेण चोत्पत्त्या जगदानंददायकम् ॥ ६८ ॥ साख्यानं च समाहात्म्यं प्रकृतेः पंचकं मुने ॥ कुतूहलकरं चैव शृणु मुक्तिविधायकम ॥ ६९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां समाराधन विधानेऽष्टमस्कंधे देवीपूजननिरूपणं नाम चतुर्विंशोध्यायः ॥ २४ ॥ स्कन्धश्चायं समाप्तः ॥ १ ॥

नंदाग्निवसुभिः (८३९) पद्यैर्द्वैपायनमुखच्युतैः ॥ देवीभागवतस्यास्याष्टमः स्कंध उदीरितः ॥ १ ॥

रूपिणी महादेवीके अपर पंचक कीर्त्तन करेंगे उसके नामरूप और उत्पत्ति आदि समुदाय जगत्को आनंददायक है ॥६८॥ हे मुने ! आख्यान और माहात्म्यके सहित यह प्रकृतिपंचक श्रवण करो यह कौतूहलकारी और मुक्तिका विधायक है ॥ ६९ ॥ 'इसमें विराटस्वरूप वर्णन कर पश्चात् एक स्वरूपसे उपासना कही है सो विस्तार पूर्वक अष्टमस्कन्ध ८३९ श्लोकोंमें कहा है ।' इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषायां समाराधनविधाने अष्टमस्कन्धे देवीपूजननिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ स्कन्धश्चायं समाप्तः ॥ ८ ॥ शुभमस्तु.

इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते अष्टमस्कन्धः समाप्तः

अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते नवमस्कन्धः प्रारभ्यते

दोहा—भालबिन्दु केशर लसत, करुणासार शृंगार ॥ फुल्लकमललोचन विमल, वन्दों वारंवार ॥ १ ॥
जगदम्बाके चरणगह, नारायण संवाद ॥ सो सब भाषा कर लिखत, बुध ज्वालाप्रसाद ॥ २ ॥

भगवान् नारायण नारदजीसे बोले हे वत्स ! जो वेदादि सब शास्त्रोंमें ही त्रिगुण साम्यावस्थ मायाशबलित परब्रह्मरूपिणी प्रकृतिनामसे विख्यात है,वह परा प्रकृति ही सृष्टिके समयमें गणेश जननी, दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री इन पंच मूर्तिमें आविर्भूत होती है ॥ १ ॥ नारायणके मुखसे यह बात सुनते ही नारदजीने कहा हे भगवन् ! जो पुरुष इस जगत्में ज्ञानी कहकर प्रसिद्ध हैं. आप उन सबमें अग्रणी हैं, साधुता वा ज्ञानवत्तादि सभी आपमें जाज्वल्य मान रहती है, अतएव आप अनुग्रहपूर्वक कहिये कि, वह मूल प्रकृति कौन है ? अर्थात् वह चैतन्यरूपिणी है वा जड़ात्मिका ? क्योंकि मैंने सुना है कि "मायाशब

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती ॥ सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पंचधा स्मृता ॥१॥ नारद उवाच ॥ आविर्बभूव सा केन का वा सा ज्ञानिनां वर किं वा ॥ तल्लक्षणं साधो बभूव पंचधा कथम् ॥ २ ॥ सर्वासां चरितं पूजा विधानं गुण ईप्सितः ॥ अवतारः कुत्र कस्यास्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ प्रकृतेर्लक्षणं वत्स को वा वक्तुं क्षमो भवेत् ॥ किंचित्तथाऽपि वक्ष्यामि यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥ ४ ॥ प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः ॥ सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥ ५ ॥

लित ब्रह्म ही प्रकृति नामसे कहे जाते हैं" जो हो. आप उसके लक्षण प्रकाश करके कहिये तो मैं सब समझ लूंगा और एक बात यह है कि उस मूलप्रकृतिके आविर्भावका कारण क्या है ? विशेषकर उनका पांच मूर्तियोंमें ही आविर्भाव क्यों होता है ॥ २ ॥ विशेषतः उन अवतीर्ण दुर्गा इत्यादि पंच मूर्त्तिमें प्रत्येककी चारित्र गाथा, पूजाविधि, और उनकी पूजाका क्या फल है ? और उनमें कौन कौन मूर्ति किस किस स्थलमें अवतीर्ण हुई थी ? यह आप वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ नारायणने कहा हे वत्स ! इस विश्वसंसारमें ऐसा कौन है कि जो सम्पूर्ण रूपसे प्रकृतिके लक्षण कहनेमें समर्थ हो ? किंतु तो भी मैंने अपने पिता धर्मके मुखसे जो कुछ सुना है, वह किंचित् कहता हूं सुनो ॥ ४ ॥ 'प्र' यह उपसर्ग प्रकृष्टवाचक और "कृति" यह पद सृष्टिवाचक है, अतएव जो सृष्टिविषयमें प्रकृष्टरूपा हैं, वही महादेवी प्रकृति नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ५ ॥

हे वत्स! तुमसे प्रकृति शब्दका यह जो व्युत्पत्तिलक्षण कहा, यह तटस्थ लक्ष्मण मात्र है अब उसके स्वरूपका लक्षण कहता हूं, सावधान हो सुनो तीनों गुणोंमें सत्वगुणको विमल और ज्ञानप्रकाश करनेके कारण सर्वोत्कृष्ट जानना चहिये, सुतरां "प्र" शब्द प्रकृष्टार्थबोधक सत्वगुणमें वर्तित है विक्षेपतादोष होनेके कारण रजोगुण मध्यम है अतएव, कृ शब्दको रजोगुणमें प्रवर्तित होनेसे मध्यम जानना चाहिये, तमोगुण ज्ञानका आवरक होनेके कारण अधर्मनामसे विख्यात है "ति" शब्द तमोगुण बोधक है ॥ ६ ॥ अतएव निरतिशयरूपमें आवरण विक्षेपादि दोषरहित वह गुणातीत चिन्मयीब्रह्मरूपिणी जब उल्लिखित लक्षणाक्रान्त तीनों गुणोंसे मिलित होकर सर्व शक्तियुक्त होती है उस समय सृष्टिकार्यमें प्रधान है, इसीलिये उनको प्रकृति कहा जाता है ॥ ७ ॥ हे वत्स नारद ! प्रकृति शब्दकी सलक्षण व्युत्पत्ति फिर कहता हूं सुनो सृष्टिकी पूर्व अवस्थाका नाम 'प्र" और कृति शब्द सृष्टिवाचक है अतएव जो सृष्टिके पहले भी देदीप्यमान रहती हैं वह महादेवी ही प्रकृति नामसे कही गई हैं ॥ ८ ॥ इसका तात्पर्य यही है कि वह निरञ्जनदेव परमात्मा सृष्टिकार्यके निमित्त अपनी योगमायाके

गुणे सत्त्वे प्रकृष्टे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतः ॥ मध्यमे रजसि कृश्च तिशब्दस्तमसि स्मृतः ॥ ६ ॥ त्रिगुणात्मकस्वरूपा या सा च शक्तिसमन्विता ॥ प्रधाना सृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ॥ ७ ॥ प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिश्चसृष्टिवाचकः ॥ सृष्टेरादौ च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥ ८ ॥ योगेनात्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः ॥ पुमांश्च दक्षिणार्धांगो वामार्धा प्रकृतिः स्मृता ॥ ९ ॥ सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी ॥ यथाऽऽत्मा च तथा शक्तिर्यथाऽग्नौ दाहिका स्थिता ॥ १० ॥ अत एव हि योगीन्द्रैः स्त्रीपुंभेदो न मन्यते ॥ सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मञ्छश्वत्सदपि नारद ॥ ११ ॥

प्रभावसे दो प्रकार आविर्भूत होते हैं उन्हींके दक्षिणार्द्धभागका नाम पुरुष और वामार्द्ध भागका नाम प्रकृति है ॥ ९ ॥ अतएव हे वत्स! उन प्रकृति देवीको नित्य ब्रह्मरूपा सनातनी जानना चाहिये वस्तुतः जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति दोनों परस्पर भिन्न स्थित नहीं है इसी प्रकार पुरुष और प्रकृतिको अभिन्न जानो. हे वत्स नारद ! तुम ब्रह्मके मानसपुत्र हो अतएव तुमको समझानेके लिये बहुत श्रम उठाना नहीं पड़ेगा ॥ १० ॥ इसीलिये योगेन्द्र पुरुष प्रकृति पुरुषको अभिन्न चक्षुसे देखते हैं फलतः एकमात्र वह नित्य निरंजन चिदानंदमय निरंतर प्रकृति पुरुषरूपमें सर्वत्र विराजमान हैं इस अनन्त विश्व ब्रह्माण्डमें जो कुछ दिखाई देता है वह सर्वही ब्रह्ममय है, इस विश्व संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो उस प्रकृति पुरुषात्मक ब्रह्मके विना क्षण कालके लिये भी प्रकाश पासके ॥ ११ ॥

हे वत्स ! वह परब्रह्म अनिर्वचनीय महिमा शक्तिसंपन्न होनेपर भी मैंने तुम्हारी शक्ति और ज्ञानका उदय होनेके लिये उनके किंचिन्मात्र तत्त्वका वर्णन किया इसप्रकार इच्छामय सर्व ज्ञानैश्वर्य शक्तिमान् उन कृष्ण परमात्माको सृजनाभिलाषात्मिका इच्छाके उदय होतेही सहसा वह मूलप्रकृति (स्वरूप पराशक्ति) प्रथम सर्व नियन्त्री भगवती रूपमें (साम्यावस्थ मायोपहित ब्रह्मरूपिणी होकर) प्रादुर्भूत हुई ॥ १२ ॥ तदनन्तर सृष्टि--विषयक भिन्न भिन्न कार्य संपादन करनेके लिये हो, वा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये हो, अपने शरीरसे निज इच्छासे भक्तानुग्रहरूप ॥ १३ ॥ पांच शक्तिमूर्ति उत्पादन करीं यद्यपि यह पंच शक्तिही जगत्‌की सर्व प्रधान कहकर विख्यात हैं किंतु तो भी इनमें जो दुर्गानामसे प्रसिद्ध है, यही सर्व मंगलमयी पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी हैं क्योंकि परमात्मा श्रीकृष्ण जीवोंका मंगलसाधन करनेके लिये इस दुर्गाशक्तिके गर्भसेही गणेशरूपमें आविर्भूत होते हैं, इस कारण यही विश्व जगत्‌में विष्णुमाया नारायणी सब जीवोंका आश्र

स्वेच्छामयस्येच्छया च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया ॥ साऽऽविर्बभूव सहसा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ १२ ॥ तदाज्ञया पंचविधा सृष्टिकर्मविभेदिका ॥ अथ भक्तानुरोधाद्वा भक्तानुग्रह विग्रहा ॥ १३ ॥ गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया ॥ नारायणी विष्णुमाया पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी ॥ १४ ॥ ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः पूजिता स्तुता ॥ सर्वाधिष्ठात्री देवी सा शर्वरूपा सनातनी ॥ १५ ॥ धर्मसत्या पुण्यकीर्तिर्यशोमंगलदायिनी ॥ सुखमोक्ष हर्षदात्री शोकार्तिदुःखनाशिनी ॥ १६ ॥ शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणा ॥ तेजः स्वरूपा परमा तदधिष्ठातृ देवता ॥ १७ ॥

यरूप कही जाती हैं वास्तवमें यह दुर्गाशक्तिही परम मंगलमय परब्रह्म कृष्णकी प्रियतमारूप शक्ति है ॥ १४ ॥ हे वत्स ! तुमसे अधिक और क्या कहूं ! यही स्थिर जानो कि यह सर्वमंगलस्वरूप सनातनी भगवती दुर्गादेवीही सबकी अधिष्ठात्री देवता है इसी कारण क्या ब्रह्मादि देवतागण क्या मुनिगण क्या मनुष्यगण सभी उनकी अर्चन और स्तवादि करते हैं ॥ १५ ॥ इन भगवती दुर्गाके भाग्यवश एकवार प्रसन्न होनेपर यह शरणागत भक्तोंके सब शोक दुःखादि विनाश करके धर्म, चिरस्थायिनी कीर्ति, परम पवित्र मंगलमय यश एवं आनन्दादि समस्त सुख और मोक्षपर्यन्त देती है ॥ १६ ॥ यह नितान्त शरणागत दीनभक्तोंका परम आश्रयस्वरूप होकर उनकी सब विपदजालसे रक्षा करती है वास्तवमें इनकोही परमात्मा श्रीकृष्णके अन्तःकरणकी अधिष्ठात्रीरूपा तेजोमयी पराशक्ति जानना चाहिये ॥ १७ ॥

यह सर्वशक्तिस्वरूप भगवती दुर्गाही परमात्मा परमेश्वरकी नित्य संगिनी पराशक्ति है यही समस्त सिद्धपुरुषोंकी परमाराध्य है अठारह सिद्धि इनकेही हाथमें हैं यही आराधनासे संतुष्ट होकर भक्तोंको अभिलासित सिद्धिप्रदान करती है ॥ १८ ॥ यह महादेवी ही जगत्में स्थित जीवोंकी बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, पिपासा, छाया, तन्द्रा, दया, स्मृति, जाति, क्षांति, भ्रांति, शांति, कांति, चेतना ॥ १९ ॥ तुष्टि, पुष्टि लक्ष्मी और धृतिरूपा है यही वेदादि शास्त्रमें विश्वरूपिणी महामाया कहकर कीर्तित हुई है फलतः यह जगदाराध्य शक्तिही परमात्मा कृष्णकी स्वरूपा शक्ति है ॥ २० ॥ हे वत्स ! मैंने उन अनन्तगुणमयी भगवती दुर्गाकी जो सब गुणगाथा वर्णन की यह श्रुतिवर्णित प्रसिद्ध गुणराशिमें कुछेक अंशमात्र है क्योंकि वेदही जब उनके अनंत गुणग्राम वर्णन करके शेष नहीं करस कते तब इस विश्वमें ऐसी किसकी सामर्थ्य है जो उनके सम्पूर्ण गुणोंकी महिमा वर्णन करनेमें समर्थ हो तो केवल इतनाही जानो कि मैंने जो कुछ कहा है उसमें कहीं शास्त्रका मत अतिक्रम करके नहीं कहा सो जो हो उन परमेश्वरकी पराशक्तिके पांच अवतारोंमेंसे तुमने दुर्गारूपा प्रथमाशक्तिका माहात्म्य

सर्वशक्तिस्वरूपा च शक्तिरीशस्य संततम् ॥ सिद्धेश्वरी सिद्धिरूपा सिद्धिदा सिद्धिरीश्वरी ॥ १८ ॥ बुद्धिर्निद्रा क्षुत्पिपासा छाया तंद्रा दयास्मृतिः ॥ जातिः क्षांतिश्च भ्रांतिश्च शांतिः कांतिश्च चेतना ॥१९॥ तुष्टिः पुष्टिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिर्माया तथैव च ॥ सर्वशक्तिस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ २० ॥ उक्तः श्रुतौ श्रुतगुणश्चातिस्वल्पो यथागमम् ॥ गुणोऽस्त्यनंतोऽनंताया अपरां च निशामय ॥२१॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा सा परमात्मनः ॥ सर्वसंपत्स्वरूपा सा तदधिष्ठातृदेवता ॥२२॥ कांताऽतिदांता शांता च सुशीला सर्वमंगला॥ लोभमोहकामरोषमदाहंकारवर्जिता ॥ २३ ॥ भक्तानुरक्ता पत्युश्च सर्वाभ्यश्च पतिव्रता ॥ प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपात्रं प्रियंवदा ॥ २४ ॥

कुछेक सुना अब उनकी शक्तिके अवतार माहात्म्यका विषय कुछेक वर्णन करता हूं सुनो ॥ २१ ॥ परमात्माकी द्वितीय अवताररूपा शक्तिका नाम पद्मा लक्ष्मी है यह विशुद्ध सत्यस्वरूपा और यह महाशक्तिही परमात्मा कृष्णके संपूर्ण ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री देवता है ॥ २२ ॥ यह परम मनोहर मूर्ति लक्ष्मी रूपी महादेवी अतिशय जितेन्द्रिय है अतएव यह अतीव शान्तप्रकृति सुशील और समस्त मंगलकी आधार भूमि है अचंभेकी बात यही है कि ऐसे असाधारण गण होनेपर भी लोभ मोह काम क्रोध अहंकार कोई शत्रु उनको स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ २३ ॥ वह महादेवी निजपति और भक्तोंपर अत्यन्त अनुरक्त हैं विशेष कर वह निरंतर प्रियंवदा होनेसे भगवान्‌के प्राणके समान प्रीतिभाजन होती है इन सब असामान्य गुणोंके कारण इन्होंने पतिव्रताओंमें प्रधान आसन ग्रहण किया है ॥ २४ ॥

यह महाशक्ति जीवोंकी जीवन रक्षाके लिये एकांशमें शस्यरूपिणी है किंतु स्वरूपसे यह जगत्में सती धर्मका आदर्शरूप होकर महालक्ष्मी रूपसे वैकुण्ठ धाममें निरंतर निजपति वैकुंठनाथकी पदसेवामें निरत रहती है ॥ २५ ॥ हे वत्स ! यह महाशक्ति रूपिणीही स्वर्गधामकी स्वर्गलक्ष्मी राजाओंकी राजलक्ष्मी और मर्त्यलोकमें पुण्यवान् पुरुषोंकी गृहलक्ष्मी है ॥२६॥ हे नारद ! सम्पूर्ण प्राणियोंमें और संपूर्ण द्रव्य समूहमें जो मनोहर शोभा दिखाई देती है, वह समस्तही यह है यही पुण्यात्माओंकी कीर्तिरूप और बलवान् राजाओंका प्रभाव स्वरूप है ॥ २७ ॥ अधिक क्या कहूं ! यह स्थिर जानो कि यह निरंतर परोपकार व्रतरत साधुओंके अन्तरमें दयारूपसे वैश्योंमें वाणिज्य रूपसे और पापात्माओंके घरमें कलहके अंकुरस्वरूपसे विराजमान है ॥ २८ ॥ वास्तवमें इस लक्ष्मीरूपा दूसरी शक्तिको सम्यक् प्रकार जगत्की पूजनीय और वन्दनीय जानना चाहिये अब परमेश्वरकी ज्ञानाधिष्ठात्री वाक्यबुद्धि और विद्यारूप तीसरी शक्तिके

सर्वसस्यात्मिका देवी जीवनोपायरूपिणी ॥ महालक्ष्मीश्च वैकुंठे पतिसेवारता सती ॥ २६ ॥ स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥ गृहेषु गृहलक्ष्मीश्च मर्त्यानां गृहिणां तथा ॥ २६ ॥ सर्वप्राणिषु द्रव्येषु शोभारूपा मनोहरा ॥ कीर्तिरूपा पुण्यवतां प्रभारूपा नृपेषु च ॥ २७ ॥ वाणिज्यरूपा वणिजां पापिनां कलहांकुरा ॥ दयारूपा च कथिता वेदोक्ता सर्वसंमता ॥ २८ ॥ सर्वपूज्या सर्ववंद्या चान्यां मत्तो निशामय ॥ वाग्बुद्धिविद्याज्ञानाधिष्ठात्री च परमात्मनः ॥२९॥ सर्वविद्यास्वरूपा या सा च देवी सरस्वती ॥ सा बुद्धिः कविता मेधा प्रतिभा स्मृतिदा नृणाम् ॥ ३० ॥ नानाप्रकारसिद्धांतभेदार्थकलना मता ॥ व्याख्या बोधस्वरूपा च सर्वसंदेहभंजिनी ॥ ३१ ॥ विचार कारिणी ग्रंथकारिणी शक्तिरूपिणी ॥ स्वरसंगीतसंधानतालकारणरूपिणी ॥ ३२ ॥

अवतारका विषय कुछेक कहता हूं सुनो ॥ २९ ॥ जो इस अनन्तविश्वकी समस्त विद्यास्वरूप हैं जो महाशक्ति परमात्मा मनुष्यके हृदय बुद्धिरूपसे अवस्थित होकर मघाग्रंथ धारण सामर्थ्य, कविता शक्ति, स्मृति, शक्ति, और प्रतिभाशक्ति कार्यकालमें तत्तद् विषयकी स्फूर्ति प्रदान करती है उन तीसरी अवतार शक्तिका नाम सरस्वती है ॥ ३० ॥ सुधी पुरुषको किसी विषयमें सन्देह होनेपर यही उसका वह दुर्बोध व्याख्या अर्थ ध्यानमें स्थित करके सब संशय छेदन और नाना विषय सिद्धान्त सबका भिन्न भिन्न प्रकारसे अर्थ संकलनकर देती है ॥ ३१ ॥ हे वत्स ! पण्डितोंकी ग्रंथकरण शक्ति वा विचार शक्ति अथवा संगीत व्यवसायी गणोंकी स्वरसंगीतका सन्धान या ताललयादि इस महाशक्तिको इन सबकाही कारण जानना चाहिये ॥ ३२ ॥

यह महादेवीही समस्त शास्त्रकी व्याख्या और वाद अर्थात् वितर्क रूप हैं, इनकोही ब्रह्माण्डस्थ जीवोंको स्व स्व विषयमें ज्ञानरूपा और वाक्यरूपा जानना चाहिये, अधिक क्या ? इस महाशक्तिको अवलम्बन करकेही जीवगण अपनी अपनी जीवन यात्रा निर्वाह करते हैं " मैं ही सब विद्याका आधार भूमि हूं ,, सब जीवोंको यह विदित करनेके लिये ही इन मायादेवी सरस्वतीने एक हाथमें वीणा और दूसरे हाथमें पुस्तक धारण की है ॥ ३३ ॥ यह शुद्ध--सत्व--स्वरूप सुशील और श्रीहरिकी अत्यन्त प्रियतमा है इनका वर्ण हिमशिला चन्दन कुन्द चन्द्र कुमुद और श्वेत कमलके समान गौर है ॥ ३४ ॥ यह सदा रत्नकी माला लेकर परमात्मा श्रीकृष्णके नामका जप करती है यह तपस्वरूप और तपस्वियोंको तपका फल देती है ॥३५॥ यह सबकी सिद्धि और विद्यास्वरूप हैं यह सदा सबको सिद्धि प्रदान करती हैं इनके न होनेसे जगत्के सम्पूर्ण ब्राह्मण निरन्तर मृत मनुष्यके समान मूक गूंगे होते हैं॥३६॥ वेदमें जो जगदम्बिकाको तीसरी देवी

विषयज्ञानवाग्रूपा प्रतिविश्वोपजीविनी ॥ व्याख्या वादकरी शांता वीणापुस्तकधारिणी ॥ ३३ ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सुशीला श्रीहरि प्रिया ॥ हिमचंदनकुंदेंदुकुमुदांभोजसन्निभा ॥ ३४ ॥ यजन्ती परमात्मानं श्रीकृष्णं रत्नमालया ॥ तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्वि नाम् ॥ ३५ ॥ सिद्धिविद्यास्वरूपा च सर्वसिद्धिप्रदा सदा ॥ यया विना तु विप्रौघो मूको मृत समः सदा ॥३६॥ देवी तृतीया गदिता श्रुत्युक्ता जगदंबिका ॥ यथागमं यथाकिंचिदपरां त्वं निबोध मे ॥ ३७ ॥ माता चतुर्णां वर्णानां वेदांगानां च छंदसाम् ॥ संध्यावंदन मंत्राणां तंत्राणां च विचक्षण ॥ ३८ ॥ द्विजातिजातिरूपा च जपरूपा तपस्विनी ॥ ब्रह्मण्यतेजोरूपा च सर्वसंस्काररूपिणी ॥ ३९ ॥ पवित्ररूपा सावित्री गायत्री ब्रह्मणः प्रिया ॥ तीर्थानि यस्याः संस्पर्शं वांछंति ह्यात्मशुद्धये ॥ ४० ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशा शुद्धसर्व स्वरूपिणी ॥ परमानंदरूपा च परमा च सनातनी ॥ ४१ ॥

कहकर वर्णन किया है यह वह तीसरी देवी सरस्वती है यह मैंने उनकी कथा वर्णन की अब शास्त्रानुसार अपरा देवीका माहात्म्य वर्णन करता हूं सुनो ॥३७॥ जो चार वर्णकी जननी जो सम्पूर्ण वेदाङ्ग और सब छन्दोंकी उत्पत्तिका निदान हैं जो संध्यावन्दन मंत्र और तंत्रका स्थानीय बीज है, जो स्वयं सब विषयमें पण्डित हैं ॥ ३८ ॥ जो स्वयं तपस्विनी होकर भी ब्राह्मणोंकी जाति और तपःस्वरूप हैं, जो ब्रह्मण्य तेज और सर्व प्रकार संस्कार स्वरूप हैं ॥ ३९ ॥ जो स्वयं पवित्र रूपा, सावित्री और गायत्री नामसे कही जाती हैं, जो सदा ब्रह्मलोकमें वास करती हैं, सर्वतीर्थ पवित्र होनेके लिये जिनके स्पर्शकी प्रार्थना करते हैं ॥ ४० ॥ जिनका शुद्ध स्फटिकके समान शुभ्रवर्ण है, जो स्वयं शुद्ध सत्वस्वरूपका परमानन्दस्वरूपा सर्वश्रेष्ठ और सनातनी हैं ॥ ४१ ॥

परब्रह्मरूपिणी और मोक्ष दायनी हैं जो ब्रह्मकी तेजोमयी शक्ति और ब्रह्मतेजकी अधिष्ठात्री देवता हैं ॥४२॥ जिनके चरणरेणुके स्पर्शसे सम्पूर्ण जगत् पवित्र होता है वह देवी सावित्रीही चौथी प्रकृति हैं हे वत्स नारद ! अब तुमसे पांचवी शक्ति देवी राधिकाका विषय वर्णन करता हूं सुनो ॥ ४३ ॥ जो पंचप्रणालीकी अधिष्ठात्री देवी हैंजो स्वयं सबको जीवन स्वरूप जो श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं जो सब प्रकृति देवियोंसे अधिक सुन्दरी और सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ ४४ ॥ जो सब पदार्थमें विद्यमान रहती हैं, जो सौभाग्यके गर्वसे अत्यन्त गर्वित हैं जिनके गौरवकी सीमा नहीं है जो श्रीकृष्णका वामांग स्वरूप हैं क्या गुण क्या तेजमें कोई उनकी अपेक्षा अधिक नहीं है ॥ ४५ ॥ जो श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतमा सबकी सारभूत सर्वोत्कृष्ट सबकी आदि सनातनी परमानन्द स्वरूप धन्या मान्याऔर

परब्रह्मस्वरूपा च निर्वाणपद दायिनी ॥ ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता ॥ ४२ ॥ यत्पादरजसा पूतं जगत्सर्वं च नारद ॥ देवी चतुर्थी कथिता पंचमीं वर्णयामि ते ॥ ४३ ॥ पंचप्राणाधिदेवी या पंच प्राणस्वरूपिणी ॥ प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाभ्यः सुन्दरी परा ॥ ४४ ॥ सर्वयुक्ता च सौभाग्य मानिनी गौरवान्विता ॥ वामांगार्ध स्वरूपा च गुणेन तेजसा समा ॥ ४५ ॥ परावरा सारभूता पर माद्या सनातनी ॥ परमानंदरूपा च धन्या मान्या च पूजिता ॥ ४६ ॥ रासक्रीडाधिदेवी श्रीकृष्णस्य परमात्मनः ॥ रासमंडलसंभूता रासमंडलमंडिता ॥ ४७ ॥ रासेश्वरी सुरसिका रासावासनिवासिनी ॥ गोलोकवासिनी देवी गोपीवेषविधायिका ॥ ४८ ॥ परमाह्लाद रूपा च संतोषहर्षरूपिणी ॥ निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्ताऽत्मस्वरूपिणी ॥ ४९ ॥ निरीहा निरहंकारा भक्तानुग्रहविग्रहा ॥ वेदानुसारि ध्यानेन विज्ञाता सा विचक्षणैः ॥ ५० ॥

सबकी पूजिता हैं ॥ ४६ ॥ जो परमात्मा श्रीकृष्णके रासकी क्रीडाकी अधिदेवी हैं जिनसे रासमंडलकी उत्पत्ति हुई है जो रासमंडलकी भूषणस्वरूप हैं ॥ ४७ ॥ जो रासेश्वरी रसिकोंमें अग्रगण्य और सदा रासापासमें स्थिति करती हैं गोलोकधाम जिनका निवासस्थान है जिनसे सब गोपियें उत्पन्न हुई हैं ॥ ४८ ॥ जो परमानन्द परम सन्तोष और परमहर्षरूपा हैं जो सत्वादि तीनों गुणोंसे अतीत पदार्थ और निराकार हैं किन्तु निर्लिप्त भावसे सर्वत्र अव स्थान करती हैं जो सबकी आत्मास्वरूप हैं ॥ ४९ ॥ जो सब विषयोंमें ही निश्चेष्ट और अहंकार रहित हैं, जो भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लियेही केवल शरीर धारण करती हैं विचक्षण पण्डितगण केवल वेदोक्त ध्यान द्वारा जिनकी महिमा पाठ करते हैं ॥ ५० ॥

सुरेन्द्र और मुनीन्द्रगण जिनको कभी चक्षुसे नहीं देखते जिनके अग्निमें न जलनेवाला लाल वस्त्र है और सर्वाङ्ग अनेक प्रकारके अलंकारोंसे विभूषित हैं ॥ ५१ ॥ जिनके शरीरकी कान्ति देखनेसे बोध होता है कि एकही बार करोड चन्द्रमा उदय हुए हैं जो कृष्णदास्य कृष्णभक्ति और सब संपत्तिकी दान करनेवाली हैं ५२ ॥ जो वराहकल्पमें अर्थात् वाराहावतारसमयमें व्रजवासी वृषभानु नामक गोपके कन्य रूपमें अवतीर्ण हुई थीं वसुन्धरा जिनके चरणकमलोंके स्पर्शसे पवित्र होती हैं ॥५३॥ जो ब्रह्मादि देवताओंको भी अदृष्ट हैं भारतवर्षमें आय वृन्दावनमें जिनको सब सुखसे देखते हैं जो स्त्रीरत्नमें श्रेष्ठ रत्न हैं जिनके श्रीकृष्णकी छातीमें वास करनेसे बोध होता है ॥ ५४ ॥ मानों आकाशस्थित नीले बादलोंमें बिजली विराजमान है पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जिनके

दृष्टिदृष्टा न सा चेशैः सुरेन्द्रैर्मुनिपुंगवैः ॥ वह्निशुद्धांशुकधरा नानालंकारभूषिता ॥ ५१ ॥ कोटिचंद्रप्रभा पुष्टसर्वश्रीयुक्तविग्रहा ॥ श्रीकृष्णभक्तिदास्यैककरा च सर्वसंपदाम् ॥ ५२ ॥ अवतारे च वाराहे वृषभानुसुता च या ॥ यत्पादपद्मसंस्पर्शात्पवित्रा च वसुन्धरा ॥ ५३ ॥ ब्रह्मादिभिरदृष्ट या सर्वैर्दृष्टा च भारते ॥ स्त्रीरत्नसारसंभूता कृष्णवक्षस्थले स्थिता ॥ ५४ ॥ यथांऽबरे नवघने लोला सौदामनी मुने ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा पुरा ॥५५॥ यत्पादपद्मनखरदृष्टये चात्मशुद्धये ॥ न च दृष्टं च स्वप्नेऽपिप्रत्यक्षस्यापि का कथा ॥ ५६ ॥ तेनैव तपसा दृष्टा भुवि वृंदावने वने ॥ कथिता पंचमी देवी सा राधा च प्रकीर्तिता ॥५७॥ अंशरूपाः कालरूपाः कलांशांशांशसंभवाः ॥ प्रकृतेः प्रति विश्वेषु देव्यश्च सर्वयोषितः ॥ ५८ ॥ परिपूर्णतमाः पंच विद्यादेव्य प्रकीर्तिताः ॥ या याःप्रधानांशरूपा वर्णयामि निशामय ॥ ५९ ॥

चरणनखको देखकर आत्माको पवित्र करनेके लिये साठ हजार वर्ष घोर तपस्या की थी किन्तु चरणनखका प्रत्यक्ष देखना तो दूर रहे स्वप्नमें भी जिनका दर्शन प्राप्त करनेमें समर्थ न हुए ॥ ५५ ॥ ॥ ५६ ॥ किंतु अन्तमें तपके बलसे वृन्दावनके काननमें जिनका दर्शन पाकर कृतार्थ हुए हे वत्स नारद! वह यही पांचवी प्रकृति है इसको राधानामसे निर्देश करते हैं ॥ ५७ ॥ हे वत्स ! सब जगत्में जितनी स्त्रियें वास करती हैं वह सभी श्रीराधाके अंश कला कलांश और अंशांशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ५८ ॥ हे वत्स नारद ! मूलप्रकृतिसे दुर्गादि जो पांच पूर्णतम प्रकृति उत्पन्न हुई हैं, उनका विषय कहा, अब जो प्रकृतिकी अंशरूपा हैं उनका वृत्तान्त कहता हूं सुनो ॥ ५९ ॥

जो प्रधानांशस्वरूप भुवन पावनी गंगा हैं जो विष्णुके पादपद्मसे उत्पन्न हुई हैं जो द्रवरूपा और सनातनी हैं ॥ ६० ॥ जो पापियोंके पापरूपी काष्ठ जलानेमें प्रज्वलित अनलस्वरूप हैं, जो स्नान और पानादि विषयमें सुखशस्पर्शा हैं जो जीवोंको निर्वाणपद प्रदान करती हैं ॥ ६१ ॥ जो गोलोक धाम जानेकी सुख सोपान हैं जो सब तीर्थोंमें पूततम तीर्थ हैं, जो सब स्रोतवतीमें प्रधान स्रोतवती हैं ॥ ६२ ॥ जो महादेवके मस्तकस्थित जटामें रुकी मुक्तापंक्ति हैं जो इस कर्मक्षेत्र भारतवासी तपस्वियोंकी सद्यो संभूत तपस्या हैं ॥६३॥ जिनकी प्रभा पूर्ण चन्द्रके समान, श्वेतकमलके समान और दूधके समान धवल वर्ण है जो विशुद्ध सत्वस्वरूपिणी, निर्मल अहंकार हीन साध्वी और नारायणकी प्रिया हैं वह त्रिभुवन पावनी गंगा मूलप्रकृतिका अंश हैं ॥ ६४ ॥ विष्णुका

प्रधानांशस्वरूपा सा गंगा भुवनपावनी ॥ विष्णुविग्रह संभूताद्रव रूपा सनातनी ॥ ६० ॥ पापिपापेध्मदाहाय ज्वलदग्नि स्वरूपिणी ॥ सुखस्पर्शा स्नानपानैर्निर्वाणपददायिनी ॥ ६१ ॥ गोलोकस्थानप्रस्थानसुखसोपानरूपिणी ॥ पवित्ररूपा तीर्थानां सरिता च परावरा ॥ ६२ ॥ शंभुमौलिजटामेरुमुक्तापंक्तिस्वरूपिणी ॥ तपःसंपादिनी सद्यो भारतेषु तपस्विनाम् ॥ ६३ ॥ चंद्रपद्मक्षीरनिभा शुद्ध सत्त्वस्व रूपिणी ॥ निर्मला निरहंकारा साध्वी नारायणप्रिया ॥ ६४ ॥ प्रधानांशस्वरूपा च तुलसी विष्णुकामिनी विष्णुभूषणरूपाच विष्णुपाद स्थिता सती ॥६५॥ तपः संकल्पपूजादिसंघसंपादिनी मुने॥सारभूता च पुष्पाणां पवित्रा पुण्यदा सदा ॥ ६६ ॥ दर्शनस्पर्शनाभ्यां च सद्यो निर्वाणदायिनी ॥ कलौ कलुषशुष्केध्मदहनायाग्निरूपिणी ॥ ६७ ॥ यत्पादपद्मसंस्पर्शात्सद्यःपूता वसुन्धरा ॥ यत्स्प र्शदर्शने चैवेच्छंति तीर्थानि शुद्धये ॥ ६८ ॥ यया विना च विश्वेषु सर्वं कर्म च निष्फलम् ॥ मोक्षदा या मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदा ॥ ६९ ॥

मिनी देवी तुलसी हैं जो नारायणकी अलंकृतिरूपा हैं जो सदा नारायणके चरण कमलोंमें अवस्थान करती हैं ॥ ६५ ॥ क्या तपस्या, क्या संकल्प, क्या पूजादि कार्य, समस्तकार्य जिनके द्वारा संपादित होते हैं जो पुष्पोंमें प्रधान पवित्र और पुण्यदायिनी हैं ॥ ६६ ॥ जिनके दर्शन और स्पर्शसे तत्काल निर्वाणपद प्राप्त होता है जिनके अतिरिक्त कलियुगमें पापकाष्ठ दहनकी दूसरी अग्नि नहीं है जो स्वयं अग्निस्वरूपिणी हैं ॥ ६७ ॥ जिनके चरण कमलोंका स्पर्श करके वसुंधरा पवित्र हुई है सम्पूर्णतीर्थ स्व स्व शुद्धिलाभके लिये जिनके दर्शन और स्पर्शकी कामना करते हैं ॥ ६८ ॥ जिनके विना विश्वके सब कार्य निष्फल हैं जो मुमुक्षु पुरुषोंकी मोक्षदायिनी जो सबके सब प्रकार मनोरथ संपन्न करती हैं ॥ ६९ ॥

क.: कल्पवृक्षस्वरूप जो भारतके सब वृक्षोंकी अधिष्ठात्री देवता भारतवासी कामिनीगणोंको प्रसन्न करनेके लिये जो उत्पन्न हुई हैं और जो सर्वश्रेष्ठ देवता कहकर भारतके सर्वत्र परिगृहीत होती हैं ॥ ७० ॥ वह तुलसी देवी मूलप्रकृतिकी प्रधान अंश हैं कश्यपकन्या मनसा जो शंकरकी प्रिय शिष्या हैं सुतरां शास्त्रज्ञान विषयमें महापण्डिता हैं ॥७१॥ जो नागेश्वर अनंत देवकी बहन और समस्त नागगणोंसे सत्कृत हैं जो स्वयं सुन्दरी नागेश्वरी नागजननी और नागवाहिनी हैं ॥७२॥ जो सदा नागेन्द्रगणोंमें परिवेष्टित नागभूषणोंसे विभूषित नागेन्द्रगणसे वंदित और नागशय्यापर शयन करती हैं जो सिद्धयोगिनी ॥ ७३ ॥ विष्णुस्वरूपिणी विष्णुभक्ता और विष्णुपूजामें तत्पर हैं जो तपःस्वरूप और तपस्याकी फलप्रदा होकर भी स्वयं तपस्विनी हैं ॥७४॥ जो देवमानके तीन

कल्पवृक्षस्वरूपा या भारते वृक्षरूपिणी ॥ भारतीनां प्रीणनाय जाता या परदेवता ॥ ७० ॥ प्रधानांशस्वरूपा या मनसा कश्यपात्मजा ॥ शंकरप्रियशिष्या च महा ज्ञानविशारदा ॥ ७१ ॥ नागेश्वरस्यानंतस्य भगिनी नागपूजिता ॥ नागेश्वरी नागमाता सुन्दरी नागवाहिनी ॥ ७२ ॥ नागेंद्र गणसंयुक्ता नागभूषणभूषिता ॥ नागेंद्रवंदिता सिद्धा योगिनी नागशायिनी ॥७३॥ विष्णुरूपा विष्णुभक्ता विष्णुपूजापरायण ॥ तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी ॥७४॥ दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च तपस्तप्त्वा च या हरेः॥तपस्विनीषु पूज्या च तप स्विषुचभारते ॥७५॥ सर्वमंत्राधिदेवी च ज्वलंती ब्रह्मतेजसा ब्रह्मस्वरूपा परमा ब्रह्मभावनतत्परा ॥ ७६ ॥ जरत्कारुमुनेः पत्नी कृष्णांशस्य पतिव्रता ॥ आस्तीकस्य मुनेर्माता प्रवरस्य तपस्विनाम् ॥ ७७ ॥ प्रधानांशस्वरूपा या देवसेना च नारद ॥ मातृकासु पूज्यतमा सा षष्ठी च प्रकीर्तिता ॥ ७८ ॥ पुत्रपौत्रादिदात्री च धात्री त्रिजगतां सती ॥ षष्ठांशरूपा प्रकृतेस्तेन प्रष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ७९ ॥

लक्ष वर्षपर्यन्त श्रीहरिकी आराधना करके भारतमें तपस्वी और तपस्वियोंमें प्रधान कही गई हैं ॥ ७५ ॥ जो सम्पूर्ण मंत्रकी अधिदेवी जिनका शरीर ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान होता है जो स्वयं ब्रह्मरूपिणी होकर भी फिर ब्रह्मभावको भावना करती हैं ॥ ७६ ॥ जो श्रीकृष्णके अंशसे उत्पन्न और जरत्कारु ऋषिकी पतिव्रता स्त्री हैं जो मुनिश्रेष्ठ आस्तिक मुनिकी माता हैं वह भी मूल प्रकृति कीअंश हैं ॥ ७७ ॥ हे वत्स नारद ! जिनका नाम देवसेना है वही षष्ठी हैं षष्ठी देवी जो गौरीआदि षोडश मातृकामें श्रेष्ठतम मातृका हैं ॥ ७८ ॥ जो पतिव्रता तीनों जगत्‌को पुत्र पौत्रादि दात्री और सबकी धात्री हैं जो मूल प्रकृतिका षष्ठांशस्वरूप होनेके कारण षष्ठीनामसे कही गई हैं ॥ ७९ ॥

जो वृद्धभाव और योगिनीके वेषसे सम्पूर्ण बालकोंके निकट विद्यमान रहती हैं वैशाखादि बारह मासमें जिनकी पूजा सर्वत्र प्रचलित हुई है ॥ ८० ॥ बालकके उत्पन्न होनेपर छठे दिन सूतिका गृहसोवरमें जिनकी पूजा होती है और बीस दिन बीतनेपर इक्कीसवें दिन जिनकी शुभकरी पूजाका विधान करना होता है ॥ ८१ ॥ मुनि अवनतमस्तकसे जिनको प्रणाम और सदा जिनके दर्शनकी कामना करते हैं जो माताके समान स्नेहार्द्रहृदयसे सर्वदा बालकोंकी रक्षा करती हैं वह षष्ठी देवी मूल प्रकृतिका षष्ठांश हैं ॥ ८२ ॥ देवी मंगल चण्डिका जो जल स्थल अन्तरिक्ष और बालकोंके घर घर मंगल विधान करके भ्रमण करती हैं ॥ ८३ ॥ जो प्रकृति देवीके मुखमण्डलसे उत्पन्न हुई हैं और सर्वदा सबका सब प्रकार मंगल करती हैं सृष्टिकालमें मंगलमयी और

स्थाने शिशूनां परमा वृद्धरूपा च योगिनी ॥ पूजा द्वाद शमासेषु कस्या विश्वेषु संततम् ॥ ८० ॥ पूजा च सूतिकागारे पुरा षष्ठदिने शिशोः ॥ एकविंशतिमे चैव पूजा कल्याणहेतुकी ॥८१॥ मुनिभिर्नमिता चैषा नित्यकामाऽप्यतः परा ॥ मातृका च दयारूपा शश्वद्रक्षणकारिणी ॥८२॥ जले स्थले चांतरिक्षे शिशूनां सद्मगोचरे ॥ प्रधानांशस्वरूपा च देवी मंगलचंडिका ॥ ८३ ॥ प्रकृतेर्मुखसंभूता सर्वमंगलदा सदा ॥ सृष्टौ मंगलरूपा च संहारे कोपरूपिणी ॥ ८४ ॥ तेन मंगलचंडी सा पंडितैः परिकीर्तिता ॥ प्रतिमंगलवारेषु प्रीति विश्वेषु पूजिता ॥ ८५ ॥ पुत्रपौत्रधनैश्वर्ययशोमंगलदायिनी ॥ परितुष्टा सर्व वाञ्छाप्रदात्री सर्वयोषिताम् ॥ ८६ ॥ रुष्टा क्षणेन संहर्तुं शक्ता विश्वं महेश्वरी ॥ प्रधानांशस्वरूपा सा काली कमल लोचना ॥ ८७ ॥ दुर्गाललाटसंभूता रणे शुंभनिशुंभयोः ॥ दुर्गार्धांश स्वरूपा सा गुणेन तेजसा समा ॥ ८८ ॥

संहार कालमें प्रचण्ड रोष रूपिणी मूर्ति ॥ ८४ ॥ धारण करनेके कारण पण्डितोंने जिनका मंगल चण्डी नाम रक्खा है प्रतिविश्व और प्रति मंगलवारमें जिनकी पूजा होती है ॥ ८५ ॥ जो प्रसन्न होकर स्त्रियोंको पुत्र पौत्र धन ऐश्वर्य यश और सब प्रकार मंगल व सब प्रकार अभीष्ट प्रदान करती हैं, यह मंगल चंडी भी मूल प्रकृतिका अंश हैं ॥ ८६ ॥ कमललोचना महेश्वरी काली जो रुष्ट होनेसे क्षणकालमें सब विश्वकी संहार करनेमें समर्थ हैं ॥ ८७ ॥ जो समरमें शुंभ और निशुंभ दैत्योंको निपात करनेके लिये मूल प्रकृति दुर्गाके ललाट देशसे आविर्भूत हुई हैं, जो दुर्गाकी अर्धांश स्वरूपा और उनके समान गुणवती और तेजस्विनी हैं ॥ ८८ ॥

जिनके शरीरकी कान्ति देखनेसे बोध होता है मानो एकही कालमें करोड सूर्य उदय हुए हैं जो सब शक्तियोंमें प्रधान और सबकी अपेक्षा अधिक बलवती हैं ॥ ८९ ॥ जो सम्पूर्ण लोकोंको सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करती हैं जो सर्व श्रेष्ठ और योग स्वरूपा हैं जो अतिशय कृष्णभक्त एवं तेज गुण और विक्रममें कृष्णके समान हैं ॥ ९० ॥ निरंतर श्रीकृष्णकी चिन्तासे जिनका शरीर कृष्णवर्ण होगया है जो सनातनी एक निश्वासमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विध्वंस कर सकती हैं ॥९१॥ जो केवल क्रीडा और लोक शिक्षाके लिये दैत्योंके सहित समरमें प्रवृत्त हुई थीं जो पूजासे संतुष्ट होनेपर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चारों वर्गका फल प्रदान कर सकती हैं वह काली भी प्रकृतिका अंश हैं ॥ ९२ ॥ वसुन्धरा देवी, जिनका ब्रह्मादि देवतागण समस्त मुनिगण, चौदह मनु और संपूर्ण मनुष्य

कोटिसूर्यसमाजुष्ट पुष्टजाज्वलविग्रहा ॥ प्रधाना सर्वशक्तीनां बला बलवती परा ॥ ८९ ॥ सर्वसिद्धप्रदा देवी परमा योगरूपिणी ॥ कृष्णभक्ता कृष्णतुल्या तेजसा विक्रमैर्गुणैः ॥ ९० ॥ कृष्णभावनया शश्वत्कृष्ण वर्णा सनातनी ॥ संहर्तुं सर्वब्रह्माण्डं शक्ता निःश्वासमात्रतः ॥ ९१ ॥ रणं दैत्यैः समं तस्याः क्रीडया लोकशिक्षया ॥ धर्मार्थकाम मोक्षांश्च दातुं शक्ता च पूजिता ॥ ९२ ॥ ब्रह्मादिभिः स्तूयमाना मुनिभिर्मनुभिर्नरैः ॥ प्रधानांशस्वरूपा सा प्रकृतेश्च वसुंधरा ॥९३॥ आधाररूपा सर्वेषां सर्वसस्या प्रकीर्तिता ॥ रत्नाकरा रत्नागर्भा सर्वरत्नाकराश्रया ॥९४॥ प्रजाभिश्च प्रजे शैश्च पूजिता वंदिता सदा ॥ सर्वोपजीव्यरूपा च सर्वसंपद्विधायिनी ॥९५॥ यया विना जगत्सर्वं निराधारं चराचरम् ॥ प्रकृतेश्च कला या यास्ता निबोध मुनीश्वर ॥ ९६ ॥ यस्य यस्य च या पत्नी तत्सर्वं वर्णयामि ते ॥ स्वाहादेवी वह्निपत्नी प्रीतिविश्वेषुपूजिता ॥ ९७ ॥

स्तव करते हैं ॥ ९३ ॥ जो सबकी आधार स्वरूप और सर्व प्रकार शस्यसे परिपूर्ण हैं जो रत्नाकरा रत्नगर्भा और सर्व प्रकार श्रेष्ठतम वस्तुकी प्रसूति और आश्रम स्थान हैं ॥९४॥ प्रजामंडल और राजमंडल नित्य जिनकी पूजा और स्तुतिवाद करते हैं जो जीव मात्रकी (जीवनदायिनी) और सबको सब प्रकारकी सम्पद देनेवाली हैं ॥ ९५ ॥ जिनके विना स्थावर जंगमात्मक संपूर्ण जगत् निराधार हो जाता है वह वसुन्धराभी मूल प्रकृतिका अंश है. हे वत्स नारद ! जो प्रकृतिकी कलासे उत्पन्न है ॥ ९६ ॥ और जो जिनकी पत्नी हैं अब एकादि क्रमसे वह सब वर्णन करता हूं सुनो देवी स्वाहा अग्निकी पत्नी हैं, संपूर्ण विश्व उनकी पूजा करते हैं ॥ ९७ ॥

इनके विना देवतागण कभी आहुति ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होते दक्षिणा और दीक्षा, यह दोनों यज्ञपत्नी हैं इनका सर्वत्र आदर होता है ॥ ९८ ॥ यही क्या ? दक्षिणाके विना कोई कार्य सफल नहीं हो सकता देवी स्वधा पितरोंकी पत्नी हैं क्या मनुष्यगण, क्या मनुगण, क्या मुनिगण ॥ ९९ ॥ सबही स्वधादेवीकी पूजा करते हैं स्वधामंत्रके विना पितरोंको जो कुछ दान किया जाय वह सब निष्फल है देवी स्वस्ति वायुदेवकी पत्नी हैं इनका सम्पूर्ण विश्वमें आदर होता है ॥१००॥ स्वस्ति देवीके विना क्या आदान, क्या प्रदान कोई कार्य फल दायक नहीं हो सकता गणपतिकी पत्नीका नाम पुष्टि है जगत्में सबही पुष्टि देवीकी पूजा करते हैं ॥ १०१ ॥ जगत्में पुष्टिके विना क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी अतिशय क्षीण होते हैं, तुष्टि अनंत देवकी पत्नी हैं पृथ्वीके

यया विना हविर्दानं न ग्रहीतुं सुराः क्षमाः ॥ दक्षिणा यज्ञपत्नी च दीक्षा सर्वत्र पूजिता ॥ ९८ ॥ यया विना हि विश्वेषु सर्वकर्म हि निष्फलम् ॥ स्वधा पितॄणां पत्नी च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः ॥ ९९ ॥ पूजिता पितृदानं हि निष्फलं च यया विना ॥ स्वस्ति देवी वायु पत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता ॥ १०० ॥ आदानं च प्रदानं च निष्फलं च यया विना ॥ पुष्टिर्गणपतेः पत्नी पूजिता जगतीतले ॥ १०१ ॥ यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योषितोऽपि च ॥ अनंतपत्नी तुष्टिश्च पूजिता वंदिता भवेत् ॥ १०२ ॥ यया विना न संतुष्टाः सर्वे लोकाश्च सर्वतः ॥ ईशानपत्नी सम्पत्तिः पूजिता च सुरैर्नरैः ॥ १०३ ॥ सर्वे लोका दरिद्राश्च विश्वेषु च यया विना ॥ धृतिः कपिल पत्नी च सर्वैः सर्वत्र पूजिता ॥ १०४ ॥ सर्वे लोका अधैर्याश्च जगत्सु च यया विना ॥ सत्यपत्नी सती मुक्तैः पूजिता जगतीप्रिया ॥ १०५ ॥ यया विना भवेल्लोको बंधुतारहितः सदा ॥ मोहपत्नी दया साध्वी पूजिता च जगत्प्रिया ॥ ६ ॥

सर्वत्रही वह सत्कृत और वंदित होती हैं ॥ १०२ ॥ जिनके असद्भावसे पृथ्वीके किसी स्थानमें कोई मनुष्य सुखी नहीं हो सकता सम्पत्ति देवी ईशानकी पत्नी हैं क्या देवता क्या मनुष्य सभी जिनका समान आदर करते हैं ॥१०३॥ उनके न होनेसे जगत्‌के सभी मनुष्य दरिद्र दोषसे अत्यन्त पीडित होते ॥ देवी धृतिकपिल देवकी सहधर्मिणी हैं जगत्‌के सब स्थानोंमें ही सब इनका समान आदर करते हैं ॥ १०४ ॥ यही क्या ? इनके न होनेसे जगतके सब मनुष्य ही अत्यन्त अधैर्य होते देवी सती सत्यदेवकी पत्नी हैं यह जगत प्रिय हैं मुक्त पुरुष सर्वदाही इनकी पूजा करते हैं ॥१०५॥ सत्यप्रिया सती यदि विद्यमान न होतीं तो एक वार ही सम्पूर्ण जगत् बन्धुता (बाँधवपन) से वंचित हो जाता पति परायणा दया, मोह,देवकी पत्नी हैं सबही जगत् इनका आदर करतेहैं ॥ १०६ ॥

इनके न होनेसे पृथ्वीके सब मनुष्य सब विषयमें हताश होते देवी प्रतिष्ठा पुराण देवकी पत्नी हैं मनुष्य इनका जितना यत्न करता है, यह उनको उतनाही पुण्य प्रदान करती हैं ॥ १०७ ॥ अधिक क्या इनके विना पृथ्वीके समस्त मनुष्य जीवन मृतके समान होते, देवी कीर्त्ति सुकर्मकी पत्नी हैं यह स्वयं सिद्ध और कृतार्थ मनुष्य इनका परम आदर करते हैं ॥ १०८ ॥ इनके न होनेसे जगत्के सम्पूर्ण मनुष्य मृतकवत् यशहीन होते. क्रिया उद्योगकी पत्नी है, इनका सभी सन्मान और महा आदर करते हैं ॥ १०९ ॥ हे मुनिवर नारद ! जगत्में उद्योगकी पत्नी क्रिया यदि विद्यमान न होती, तो सब मनुष्य एक वारही विधि हीन हो जाते मिथ्या अधर्मकी पत्नी है इस जगत्में जितने धूर्त विद्यमान हैं वह सब इनका अत्यन्त आदर करते हैं ॥ ११० ॥ मिथ्याके न होनेसे विद्यालय विधान किया सब धूर्तपन जगत्में नहीं रहता सत्य युगमें यह कभी किसीको दिखाई न दी त्रेतासे ही इसके सूक्ष्मतम शरीरका संचार हुआ है

सर्वे लोकाश्च सर्वत्र निष्फलाश्च यया विना ॥ पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा सा पूजिता पुण्यदा सदा ॥ ७ ॥ यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतसमं मुने ॥ सुकर्मपत्नीसंसिद्धा कीर्तिर्धन्यैश्च पूजिता ॥ ८ ॥ यया विना जगत्सर्वं यशोहीनं मृतं यथा ॥ क्रिया तूद्योगपत्नी च पूजिता सर्वसंमता ॥ ९ ॥यया विना जगत्सर्वं विधिहीनं च नारद ॥ अधर्मपत्नी मिथ्या सा सर्वधूर्तैश्च पूजिता ॥ ११० ॥ यया विना जगत्सर्वमुच्छिन्नं विधि निर्मितम् ॥ सत्ये अदर्शना या च त्रेतायां सूक्ष्मरूपिणी ॥ ११ ॥ अर्धावयवरूपा च द्वापरे चैव संवृता ॥ कलौ महाप्रगल्भा च सर्वत्रः यापिका बलात् ॥ १२ ॥ कपटेन समं भ्रात्रा भ्रमते च गृहेगृहे ॥ शांतिर्लज्जा च भार्ये द्वे सुशीलस्य च पूजिते ॥ १३ ॥ याभ्यां विना जगत्सर्वमुन्मत्तमिव नारद ॥ ज्ञानस्य तिस्रो भार्याश्च बुद्धिर्मेधा धृतिस्तथा ॥ १४ ॥ याभिर्विना जगत्सर्वं मूढं मत्तसमं सदा ॥ मूर्तिश्च धर्म पत्नी सा कांतिरूपा मनोहरा ॥ १५ ॥

॥ १११ ॥ जब द्वापरयुग उपस्थित था, तब इसके अवयव अर्धपुष्ट थे, इसके उपरांत कलि प्रवृत्त हुआ तब इसके संपूर्ण अंग प्रत्यङ्ग सब अवयवमें पुष्ट होगये उस कालमें इसके समान वाचाल और व्यापिका दूसरी नहीं है ॥ ११२ ॥ उस समय यह अपने भ्राता कपटको संग लेकर मनुष्योंके घर घरमें भ्रमण करती है शान्ति और लज्जा यह दोनों ही सुशीलकी भार्या हैं ॥११३॥ इन दोनोंके विद्यमान न होनेसे संपूर्ण जगत् एकवार ही मूढ और उन्मत्त के समान होजाता. बुद्धि. मेधा और धृति, यह तीनों ज्ञानकी भार्या हैं ॥ ११४ ॥ इनके न होनेसे जगत्के संपूर्ण मनुष्य एकवार ही मूढ और उन्मत्त हो जाते मूर्ति धर्मदेवकी पत्नी है, यह सबकी कान्तिरूपिणी और अतीव मनोहारिणी है ॥ ११५ ॥

इनके न होनेसे परमात्मा आश्रयस्थान प्राप्त नहीं कर सकते इस कारण समस्तविश्व, निरालम्ब होजाता यह पतिव्रता सती मूर्ति शोभारूप ॥ ११६ ॥ लक्ष्मीरूप, सर्वत्र मान्या धन्या और पूजिता हैं सिद्धयोगिनी निद्रा कालाग्नि रुद्रदेवकी पत्नी हैं ॥११७॥ जिसके सम्बन्धसे जीवगण रात्रिकालमें समाच्छन्न होते हैं संध्या, रात्रि और दिन यह तीन कालकी भार्या हैं ॥ ११८ ॥ इनके न होनेसे विधाता भी संख्या, गणना करनेमें समर्थ नहीं होते क्षुधा और पिपासा दोनों लोभकी पत्नी हैं यह धन्य, मान्य और जगत् पूज्य हैं ॥ ११९ ॥ इन दोनोंके विद्यमान न होनेसे जगत्के सब जीव एकवार ही चिन्तासागरमें निमग्न होजाते, प्रभा और दाहिका यह दोनों तेजकी भार्या हैं ॥ १२० ॥ इन दोनोंके न होनेसे जगदीश्वर कभी जगत्की सृष्टि नियमित व्यवस्था व्यवस्थापित नहीं कर सकते, मृत्यु और जरा

परमात्मा च विश्वौघो निराधारोययया विना॥ सर्वत्र शोभारूपा च लक्ष्मीमूर्तिमतीसती ॥ १६ ॥ श्रीरूपा मूर्तिरूपा च मान्या धन्याऽति पूजिता ॥ कालाग्निरुद्रपत्नी च निद्रा सा सिद्धयोगिनी ॥ १७ ॥ सर्वे लोकाः समाच्छन्ना ययायोगेन रात्रिषु ॥ कालस्य तिस्रो भार्याश्च संध्या रात्रिर्दिनानि च ॥ १८ ॥ याभिर्विना विधाता च संख्या कर्तुं न शक्यते ॥ क्षुत्पिपासे लोभभार्ये धन्ये मान्ये च पूजिते ॥ १९ ॥ याभ्यां व्याप्तं जगत्सर्वं नित्यं चिंतातुरं भवेत् ॥ प्रभा च दाहिका चैव द्वे भार्ये तेजस स्तथा ॥ १२० ॥ याभ्यां विना जगत्स्रष्टा विधातुं च न हीश्वरः ॥ कालकन्ये मृत्युजरे प्रज्वारस्य प्रियाप्रिये ॥ २१ ॥ याभ्यां जगत्समुच्छिन्नं विधाता निर्मितं विधौ ॥ निद्रा कन्या च तंद्रा सा प्रीतिरन्या सुख प्रिये ॥ २२ ॥ याभ्यां व्याप्तं जगत्सर्वं विधिपुत्र विधोर्विधौ ॥ वैराग्यस्य च द्वे भार्ये श्रद्धा भक्तिश्च पूजिते ॥ २३ ॥ याभ्यां शश्वज्जगत्सर्वं यज्जीवन्मुक्तिमन्मुने ॥ अदितिर्देव माता च सुरभी च गवां प्रसूः ॥ २४ ॥ दितिश्च दैत्यजननी कद्रूश्च विनता दनुः ॥ उपयुक्ताः सृष्टिविधा वेतास्तु कीर्तिताः कलाः ॥ २५ ॥

दोनों कालकी कन्या हैं किंतु ज्वरकी प्रियतमा पत्नी हैं ॥ १२१ ॥ इनके न होनेसे विधातृविहित संपूर्ण सृष्टि वृद्धिको हो प्राप्त होती नष्ट न होती देवी तन्द्रा और प्रीति दीनों निद्राकी कन्या हैं यह दोनों सुखकी प्रियतमा भार्या हैं ॥ १२२ ॥ यह दोनों सम्पूर्ण जगत्में व्याप कर अवस्थानकरती हैं हे मुनि वर ! जगत् पूज्य श्रद्धा और भक्ति,वैराग्यकी भार्या है ॥ १२३ ॥ इन दोनोंके विद्यमान होनेसे विश्वको सब मनुष्य जीवन्मुक्तके समान अवस्थान कर सकते हैं इनके अतिरिक्त देव माता अदिति, गोजननी सुरभी ॥१२४॥ दैत्यजननी दिति, नागमाता कद्रु खगेंद्रजननी विनता और दानवमाता दनु यह सभी सृष्टि कार्यकी विशेष उपयोगिनी हैं, किंतु सब मूलप्रकृतिकी कला हैं ॥ १२५ ॥

दे. भा. ॥ ९ ॥

इनके अतिरिक्त अन्यान्य जो प्रकृतिकी कला विद्यमान् हैं उनके कितनोंहीके नाम कहता हूं, सुनो चन्द्रकी पत्नी रोहिणी, सूर्यकी भार्या संज्ञा ॥ १२६ ॥ मनुष्यपत्नी शतरूपा, इन्द्रपत्नी शची बृहस्पतिकी भार्या तारा, वशिष्ठकी पत्नी अरुन्धती ॥ १२७ ॥ गौतमपत्नी अहल्या, अत्रिकी भार्या अनुसूया, कर्दमका मिनी देवहूती दक्षभार्या प्रसूति ॥ १२८ ॥ पितरोंकी मानसी कन्या और अम्बिकाकी जननी, मेनका, लोपामुद्रा कुन्ती कुबेरपत्नी ॥ १२९ ॥ वरुणपत्नी, बलिराजाकी पत्नी विन्ध्यावली मनोहर दमयन्ती यशोदा, देवकी, ॥ १३० ॥ गान्धारि, द्रौपदी, शैब्या, सत्यवती, वृषभानुपत्नी कुलीना राधाकी जननी ॥ १३१ ॥ मन्दोदरी कौसल्या कौरवी सुभद्रा, रेवती, सत्यभामा, कालिन्दी, लक्ष्मणा ॥ १३२ ॥ जाम्बवती, नाग्नजिती, मित्रविंदा, लक्ष्मणा, रुक्मिणी,

कला अन्याः संति बह्वयस्तासु काश्चिन्निबोध मे ॥ रोहिणी चंद्रपत्नी च संज्ञा सूर्यस्य कामिनी ॥ २६ ॥ शतरूपा मनोर्भार्या शचीं द्रस्य च गेहिनी ॥ तारा बृहस्पते भार्या वसिष्ठस्याप्यरुंधती ॥ २७ ॥ अहल्या गौतमस्त्री साऽप्यनसूयाऽत्रिकामिनी ॥ देवहूती कर्द मस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी ॥ २८ ॥ पितॄणां मानसी कन्या मेनका सांऽबिका प्रसूः ॥ लोपामुद्रा तथा कुंती कुबेरकामिनी तथा ॥ २९ ॥ वरुणानी प्रसिद्धा च बलेर्विंध्या वलिस्तथा ॥ कांता च दमयंती च यशोदा देवकी तथा ॥ १३० ॥ गांधारी द्रौपदी शैब्या सा च सत्त्ववती प्रिया ॥ वृषभानुप्रिया साध्वी राधामाता कुलोद्वहा ॥ ३१ ॥ मन्दोदरी च कौसल्या सुभद्रा कौरवी तथा ॥ रेवती सत्यभामा च कालिंदी लक्ष्मणा तथा ॥ ३२ ॥ जांबवती नाग्नजितिर्मित्रविंदा तथा पुरा ॥ लक्ष्मणा रुक्मिणी सीता स्वयं लक्ष्मीः प्रकीर्तिता ॥३३॥ काली योजनगंधा च व्यासमाता महासती ॥ बाणपुत्री तथोषा च चित्रलेखा च तत्सखी ॥३४॥ प्रभावती भानुमती तथा मायावती सती ॥ रेणुका च भृगोर्माता च रोहिणी ॥ ३५ ॥ एकनंदा च दुर्गा सा श्रीकृष्ण भगिनी सती ॥ बह्वयः सत्यः कला श्चैव प्रकृतेरेव भारते ॥ ३६ ॥ या याश्च ग्राम देव्यः स्युस्ताः सर्वा प्रकृतेः कलाः ॥ कलांशांशसमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योषितः ॥ ३७ ॥

सीता, यह स्वयं लक्ष्मी हैं ॥ १३३ ॥ काली, योजनगंधा, महासती, पतिव्रता, व्यासजननी, बाणपुत्री, ऊषा उसकी सखी चित्रलेखा ॥ १३४ ॥ प्रभावती मान मती, सतीमायावती, परशुरामकी जननी रेणुका, बलरामकी जननी रोहिणी ॥१३५॥ एकनन्दा और श्रीकृष्णकी भगिनी सती दुर्गा इत्यादि अन्यान्य अनेक कामिनी भारतमें प्रकृतिका अंशस्वरूप हैं ॥१३६॥ इनके अतिरिक्त ग्रामदेवी भी प्रकृतिका अंश हैं और सब विश्वमें जितनी स्त्री विद्यमान हैं वह सब प्रकृतिके अंशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ १३७ ॥

अतएव स्त्रीका अपमान करनेसे प्रकृतिका अपमान होता है, पतिपुत्रवती पतिव्रता ब्राह्मणकी वस्त्र अलंकार और चन्दनादिसे पूजा करनेपर ॥ १३८ ॥ प्रकृतिकी पूजा हो जाती है यही क्या वस्त्रालंकार और चन्दनादिसे अष्टवर्षीय ब्राह्मण कुमारीकी पूजाकरनेपर भी ॥ १३९ ॥ प्रकृति देवी पूजित होती है उत्तम मध्यम और अधम सभी प्रकृति संभूत हैं ॥ १४० ॥ जो रमणी सत्वगुणके अंशसे उत्पन्न हैं वही उत्तम सुशील और पतिव्रता हैं जो रजोगुणके अंशसे उत्पन्न हैं वह मध्यम हैं और भोग्या हैं ॥ १४१ ॥ और भोग विषयमें अत्यन्त अनुरक्त होकर अपने कार्य साधनमें तत्पर होती हैं और जो तमोगुणसे उत्पन्न हैं वही अज्ञात कुलशील अधर्म कही गई हैं ॥ १४२ ॥ उनके समान दुर्मुख कुलनाशक धूर्त स्वाधीनता प्रिय और कलहनिपुण दूसरी स्त्रियें दिखाई नहीं

योषितामवमानेन प्रकृतेश्च पराभवः ॥ ब्राह्मणी पूजिता येन पतिपुत्रवती सती ॥ ३८ ॥ प्रकृतिः पूजिता तेन वस्त्रालंकारचंदनैः ॥ कुमारी चाष्टवर्षीया वस्त्रालंकारचंदनैः ॥ ३९ ॥ पूजिता येन विप्रस्य प्रकृतिस्तेन पूजिता ॥ सर्वाः प्रकृतिसंभूता उत्तमाधममध्यमाः ॥ १४० ॥ सत्त्वांशाश्चोत्तमा ज्ञेयाः सुशीलाश्च पतिव्रताः ॥ मध्यमा रजसंश्चांशास्ताश्च भोग्याः प्रकीर्तिताः ॥ ४१ ॥ सुखसंभोगवश्याश्च स्वकार्यतत्पराः सदा ॥ अधमास्तमसश्चांशा अज्ञातकुलसंभवाः ॥ ४२ ॥ दुर्मुखाः कुलहा धूर्ताः स्वतंत्राः कलहप्रियाः ॥ पृथिव्यां कुलटा याश्च स्वर्गे चाप्सरसां गणाः ॥ ४३ ॥ प्रकृतेस्तमसश्चांशाः पुंश्चल्यः परिकीर्तिताः ॥ एवं निगदितं सर्वं प्रकृते रूपवर्णनम् ॥ ४४ ॥ ताः सर्वाः पूजिताः पृथ्व्यां पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ पूजिता सुरथेनादौ दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ॥ ४५ ॥ ततः श्रीरामचंद्रेण रावणस्य वधार्थिना ॥ तत्पश्चाज्जगतां माता त्रिषु लोकेषु पूजिता ॥ ४६ ॥ जाताऽऽदौ दक्षकन्या या निहत्य दैत्यदानवान् ॥ ततो देहं परित्यज्य यज्ञे भर्तुश्य निंदया ॥ ४७ ॥

देती ऐसी स्त्रियें मृत्युलोकमें कुलटा और स्वर्लोकमें अप्सरा कहाती हैं ॥ १४३ ॥ यद्यपि पुंश्चली भी प्रकृतिका अंश हैं किंतु वह तमोगुणात्मक हैं यह तो प्रकृतिका स्वरूप वर्णन किया ॥ १४४ ॥ अतएव पुण्यक्षेत्र भारत भूमिमें समुदाय प्रकृति देवीकी पूजा करना सम्यक् प्रकार उचित है पूर्वकालमें सुरथराजाने दुर्गति नाशिनी मूल प्रकृति दुर्गाकी पूजा की थी ॥ १४५ ॥ इसके पीछे श्रीरामचन्द्रजीने रावणके मारनेकी इच्छासे उनकी पूजा करी फिर तीनों लोकमें उनकी पूजाका प्रचार हुआ ॥ १४६॥ उन्होंनेही प्रथम दक्षकीकन्यारूपमें जन्म ग्रहण किया उन्होंने ही दैत्यकुल और दानवकुलको संहार किया था उन्होंनेही दक्षके यज्ञ समयमें पतिनिन्दा सुन अपना देह त्याग फिर जन्मग्रहण किया था ॥ १४७ ॥

उन्होंने ही हिमाचलपत्नी मेनकाके गर्भसे जन्म ग्रहण करके पशुपतिको पतिलाभ किया था फिर कार्तिकेय और गणेश नामक पार्वतीके जो दो पुत्र उत्पन्न हुए उनमें कार्तिकेय नारायणके अंश और गणपति स्वयं राधापति श्रीकृष्ण थे ॥ १४८ ॥ हे देवर्षे ! इन दोपुत्रोंके उपरांत दुर्गासे जो लक्ष्मी देवीकी उत्पत्ति हुई प्रथम मङ्गलराजने उनकी पूजा की ॥ १४९ ॥ फिर त्रिलोकीमें क्या देवता क्या मनुष्य सबनेही उनकी पूजा करी प्रथम तो राजा अश्वपतिने सावित्री देवीकी पूजा करी ॥ १५० ॥ फिर त्रिभुवनमें क्या देवता क्या मुनिगण, सबही उनकी पूजा करते हैं देवीसरस्वती उत्पन्न होनेपर सबसे पहले भगवान् ब्रह्माजीने उनकी पूजा करी ॥ १५१ ॥ तबसे क्या श्रेष्ठतममुनिगण, क्या देवतागण, सभी उनकी पूजा करते हैं गोलोकरासमंडलमें पहले राधाकी पूजा हुई

जज्ञे हिमवतः पत्न्यां लेभे पशुपतिं पतिम् ॥ गणेशश्च स्वयं कृष्णः स्कंदो विष्णुकुलोद्भवः ॥ ४८ ॥ बभूवतुस्तौ तनयौ पश्चात्तस्याश्च नारद ॥ लक्ष्मीर्मंगलभूपेन प्रथमं परिपूजिता ॥ ४९ ॥ त्रिषु लोकेषु तत्पश्चाद्देवतामुनिमानवैः ॥ सावित्री चाऽश्वपतिना प्रथमं परिपूजिता ॥ १५० ॥ तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिपुंगवैः ॥ आदौ सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता ॥ ५१ ॥ तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिपुंगवैः॥ प्रथमं पूजिता राधा गोलोके रासमंडले ॥ ५२ ॥ पौर्णमास्यां कार्तिकस्य कृष्णेन परमात्मना ॥ गोपिकाभिश्च गोपैश्च बालिकाभिश्च बालकैः ॥ ५३ ॥ गवां गणैः सुरभ्या च तत्पश्चादाज्ञया हरेः ॥तदा ब्रह्मादिभिर्देवैर्मुनिभिः परया मुदा ॥ ५४ ॥ पुष्पधूपादिभिर्भक्त्यापूजिता वंदिता सदा॥ पृथिव्यां प्रथमं देवी सुयज्ञेनैव पूजिता ॥५५॥ शंकरेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ त्रिषु लोकेषु तत्पश्चादाज्ञया परमात्मनः ॥ ५६ ॥

॥१५२॥ कार्त्तिकी पौर्णमासीकी रजनीमें परमात्मारूपी भगवान् श्रीकृष्णने गोलोकधाम रासमंडलमें देवी राधाकी प्रथम पूजा करी फिर श्रीकृष्णकी अनुमतिसे सम्पूर्ण गोप सम्पूर्ण गोपिका सम्पूर्ण बालकबालिका ॥ १५३ ॥ गोपजननी सुरभी और अन्यान्य गोपोंने उनकी पूजा की. यही क्या ? तबसेही ब्रह्मादि देवता और मुनिपर्यंत अत्यन्त भक्तिसहित ॥ १५४ ॥ धूपदीपादि विविध उपहार द्वारा परमानन्दसे श्रीराधाकी पूजामें रत हुए हैं भूतलमें राधाका प्रथम सुयज्ञ राजाने पूजन किया ॥ १५५ ॥ भगवान् शंकरके उपदेशानुसार इस पुण्यक्षेत्र भारत भूमिमें राजा सुयज्ञने पूजा करी फिर परमात्मरूपी भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार तीनों लोकमें ॥ १५६ ॥

सर्वत्र उनकी पूजा प्रचलित हुई है मुनिगण भक्तिपूर्वक पुष्प धूपादि विविध उपहारसे सर्वदा देवीराधिकाकी पूजा करते हैं हे वत्स नारद ! इनके अतिरिक्त प्रकृतिके अंशसे जो सब देवी उत्पन्न हुई हैं भारतमें वह सबही पूजित होती हैं ॥ १५७ ॥ यही क्या ? ग्राममें ग्राम देवी वनमें वनदेवी और नगरमें नगर देवीकी पूजा होती है हे वत्स नारद ! यह मैंने तुमसे शास्त्रानुसार संपूर्ण प्रकृतियोंके शुभचरित्र वर्णन किया ॥ १५८ ॥ शास्त्रानुसार लक्षण कहे अब क्या सुन नेकी इच्छा है ? सो कहो ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ देवर्षि नारदने नारायणसे कहा हे प्रभो आपने जो संक्षेपसे पंचप्रकृति देवीका चरितविषय कहा वह मैंने सुना पर अब विस्तारसे कहिये ॥ १ ॥ आप वेदवेत्ताओंमें अग्रणी हैं इस कारण पूछता हूंकि इस जगत्प्रपंचके

पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सदा ॥ कला याः याःसमुद्भूता पूजितास्ताश्च भारते ॥ ९७ ॥ पूजिता ग्रामदेव्यश्च ग्रामे च नगरे मुने ॥ एवं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम् ॥ १५८ ॥ यथागमं लक्षणं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ नारद उवाच॥ समासेन श्रुतं सर्वं देवीनां चरितं प्रभो॥ विबोधनाय वोधस्य व्यासेन वक्तुम र्हसि ॥ १ ॥ सृष्टेराद्या सृष्टिविधौ कथमाविर्बभूव ह ॥ कथं वा पंचधा भूता वद वेदविदांवर ॥ २ ॥ भूता ययांशकलया तया त्रिगुणया भवे ॥ व्यासेन तासां चरितं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम् ॥ ३ ॥ तासां जन्मानुकथनं पूजाध्यानविधिं बुध ॥ स्तोत्रं कवच मैश्वर्यं शौर्यं वर्णय मंगलम् ॥ ४ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ नित्य आत्मा नभो नित्यं कालो नित्यो दिशो यथा ॥ विश्वानां गोलकं नित्यं नित्यो गोलक एव च ॥ ५ ॥ तदेकदेशो वैकुंठो नम्रभागानुसारकः ॥ तथैव प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मलीला सनातनी ॥ ६ ॥ यथाऽग्नौ दाहिका चंद्रे पद्मे शोभा प्रभा रवौ ॥ शश्वद्युक्ता न भिन्ना सा तथा प्रकृतिरात्मनि ॥ ७ ॥

पहिलेही मूलप्रकृति आद्याशक्तिकी सृष्टि क्यों हुई किस निमित्त वह पांच प्रकारसे हुई ॥२॥ कैसे त्रिगुणरूपिणी होकर पांच भागोंमें विभक्त हुई ? आनुपूर्वीसे सब सुननेकी इच्छा है ॥ ३ ॥ अतएव अब आप उनके मंगलदायक जन्मका वृत्तांन्त पूजाप्रकरण, ध्यानविधि, स्त्रोत्रकवच महिमा और प्रभाव-विषय सब विस्तारपूर्वक कहिये ॥ ४ ॥ नारायण ने कहा हे देवर्षे ! आत्मा, नभोमंडल, काल, दशदिक् विश्वोंके गोलक गोलोक ॥ ५ ॥ और जिसकी अपेक्षा निम्नभाग स्थित वैकुण्ठधाम जिस प्रकार नित्य पदार्थ हैं परब्रह्मरूपिणीकी मायारूपिणी मूलप्रकृति भी उसी प्रकार नित्य पदार्थ है ॥ ६ ॥ अग्नि और दाहिकाशक्ति, चन्द्र और रमणीयता, कमल और शोभा रवि और प्रभा जिस प्रकार अभिन्न भावसे परस्पर संयुक्त रहती हैं आत्मा और प्रकृति भी उसी प्रकार अभिन्न

भावसे परस्पर मिलित रहती हैं ॥ ७ ॥ जैसे सुनार सुवर्णके विना कुण्डल और कुंभार मट्टीके विना घट बनानेमें समर्थ नहीं है ॥ ८ ॥ इसी प्रकार आत्मा सर्वशक्तिस्वरूपाप्रकृतिके विना कोई कार्य नहीं कर सकता अतएव आत्मा प्रकृतिकी सहायतासे ही सर्वशक्तिमान् है ॥ ९ ॥ "श" ऐश्वर्यवाचक और "क्ति" पराक्रमवाचक है सुतरां ऐश्वर्य और पराक्रमस्वरूपा एवं इन दोनोंकी दात्री होनेसे मूलप्रकृति शक्तिनामसे कही गई है ॥ १० ॥ भग शब्दज्ञान, समृद्धि, सम्पत्ति, यश और बलवाचक है अतएव मूलप्रकृतिकी यह सब ज्ञानादिशक्ति विद्यमान रहनेसे उनको भगवती भी कहते हैं ॥ ११ ॥ आत्मा सदा शक्तिरूपा भगवतीके संग सम्मिलन होनेके कारण भगवान् नामसे अभिहित हुआ है भगवान् स्वयं इच्छामय देव हैं इसीलिये वह कभी साकार और कभी निराकार

विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुंडलं कर्तुमक्षमः ॥ विना मृदा घटं कर्तुं कुलालो हि न हीश्वरः ॥ ८ ॥ न हि क्षमस्तथाऽऽत्मा च सृष्टिं स्रष्टुं तया विना ॥ सर्वशक्तिस्वरूपा सा यया च शक्तिमान्सदा ॥ ९ ॥ ऐश्वर्यवचनः शश्च क्तिः पराक्रमएव च ॥ तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परकीर्तिता ॥ १० ॥ ज्ञानं समृद्धि संपत्तिर्यशश्चैव बलं भगः ॥ तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा ॥ ११ ॥ तया युक्तः सदाऽऽत्मा च भगवांस्तेन कथ्यते ॥ स च स्वेच्छामयो देवः साकारश्च निराकृतिः ॥ १२ ॥ तेजोरूपं निराकारं ध्यायंते योगिनः सदा ॥ वदंति च परं ब्रह्म परमानंदमीश्वरम् ॥ १३ ॥ अदृश्यं सर्वद्रष्टारं सर्वज्ञं सर्वकारणम् ॥ सर्वदं सर्वरूपं तं वैष्णवास्तन्न मन्वते ॥ १४ ॥ वदंति चैव ते कस्य तेजस्तेजस्विना विना ॥ तेजोमंडलमध्यस्थं ब्रह्म तेजस्विनं परम् ॥ १५ ॥ स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारणम् ॥ अतीव सुन्दरम् रूपं बिभ्रतं सुमनोहरम् ॥ १६ ॥ किशोरवयसं शांतं सर्वकांतं परात्परम् ॥ नवीननीरदाभासधामैकं श्याम विग्रहम् ॥ १७ ॥

होते हैं ॥ १२ ॥ योगिगण सदा इन्हीं निराकार भगवान्की तेजो मूर्तिकी भावना और उनको ही परमानन्दरूपी, परब्रह्म, परमेश्वर कहकर कीर्त्तन करते हैं ॥ १३ ॥ यद्यपि वह अदृश्य, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वकारण, सर्वदाता और सर्वरूपी हैं किन्तु वैष्णवगण यह बात स्वीकार नहीं करते ॥ १४ ॥ वह कहते हैं कि तेजस्वीके विना किस प्रकार तेजकी उत्पत्ति होगी ? अतएव जो ज्योति मण्डलके मध्यभागमें विराजमान रहते हैं वही परब्रह्म, वही तेजस्वी पुरुष, वही परात्पर ॥ १५ ॥ वही इच्छामय वही सर्वरूपी और वही सब कारणोंका कारण हैं और उनका रूप अत्यन्त मनोहर है ॥ १६ ॥ वह अवस्थामें किशोर उनकी मूर्ति अति शांत और सबसे कमनीय है, वह परात्पर हैं उनका श्यामाङ्ग नवीन मेघके समान आभासमान है ॥ १७ ॥

उनके दोनों नेत्रोंने मध्याह्नके कमलोंकी शोभाका तिरस्कार किया है, उनके दांतोंकी पंक्ति देखनेसे मुक्तापंक्ति भी लज्जित होती है ॥ १८ ॥ उनके चूडामें मयूरपुच्छ गलेमें मालतीमाला नासिका अत्यन्त मनोहर और मुखमें हास्य सदा विराजमान है। भक्तोंके प्रति दया प्रकाश करनेमें उनके समान दूसरा कोई नहीं है ॥ १९ ॥ पहरनेके पीताम्बरने मानो प्रज्वलित अग्निके समान द्युति धारण की है। आजानुलम्बित दोनों हाथमें मुरली विराजमान और संपूर्ण अंग रत्नमय भूषणोंसे भूषित हैं ॥ २० ॥ वह जगत्के एक मात्र आधार सबके प्रभु और सर्वशक्तिमान् विभु हैं, वह सबको सब प्रकार ऐश्वर्य और मंगल प्रदान करते हैं वह किसीके अधीन नहीं हैं ॥ २१ ॥ उनमें अपूर्णताका लेश मात्र भी नहीं है, वह स्वयं सिद्ध पुरुष और समस्त सिद्ध पुरुषोंमें प्रधान हैं सबको ही सिद्धि प्रदान करते हैं वैष्णवगण निरन्तर उन्हीं सनातन देवदेव श्रीकृष्णका ध्यान करते हैं ॥ २२ ॥ उनके प्रसादसे मनुष्योंको जन्म, मृत्यु,

शरन्मध्याह्नपद्मौघशोभमोचनलोचनम् ॥ मुक्ताच्छविविनिं द्यैकदंतपंक्तिमनोरमम् ॥ १८ ॥ मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यमंडितम् ॥ सुनसं सस्मितं कांतं भक्तानुग्रहकारणम् ॥ १९ ॥ ज्वलदग्निविशुद्धैकपीतांशुकसुशोभितम् ॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २० ॥ सर्वाधारं च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं विभुम् ॥ सर्वैश्वर्यप्रदं सर्वं स्वतंत्रं सर्वमगलम् ॥ २१ ॥ परिपूर्णतमं सिद्धं सिद्धेशं सिद्धिकारकम् ध्यायंते वैष्णवाः शश्वद्देवदेवं सनातनम् ॥ २२ ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम् ॥ ब्राह्मणो वयसा यस्य निमेष उपचर्यंते ॥ २३ ॥ स चाऽऽत्मा स परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥ कृषिस्तद्भक्तिवचनो नश्च तद्दास्यवाचकः ॥ २४ ॥ भक्तिदास्यप्रदाता यः स च कृष्णः प्रकीर्तितः ॥ कृषिश्च सर्ववचनो न कारो वीजमेव च ॥ २५ ॥ स कृष्णः सर्वस्रष्टाऽऽदौ सिसृक्षन्नेक एव च सृष्ट्युन्मुखस्तदंशेन कालेन प्रेरितः प्रभुः ॥ २६ ॥

जरा, व्याधि, शोक और भयका लेशमात्र भी नहीं रहता, उनका एक निमेष ब्रह्माकी आयुका परिमाण है ॥ २३ ॥ वही परमात्मा वही परब्रह्म कृष्ण नामसे अभिहित होते हैं 'कृषि' शब्द श्रीकृष्णकी भक्ति वाचक और "न" उनका दास्यवाचक है ॥ २४ ॥ अतएव जो भक्ति और दास्यके दाता हैं वही कृष्ण हैं प्रकारान्तरमें " कृषि " शब्दका अर्थ सकल और "न" शब्दका अर्थ बीज है ॥ २५ ॥ सुतरां जो सबके बीज अर्थात् सबके उत्पन्न कर्ता हैं वही कृष्ण हैं जब सबसे पहिले उन्होंने इस विश्वको उत्पन्न करनेकी इच्छा की तब एक मात्र श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य कोई विद्यमान नहीं था अन्तमें वही प्रभु कालप्रेरित होकर अंशसे सृष्टि कार्यमें उद्योगी हुए ॥ २६ ॥

फिर उन्हीं स्वेच्छामयके स्वीय इच्छानुसार द्विधा विभक्त होनेपर उनका वामभाग स्त्री और दहिना अंग पुरुष रूपमें परिणत होता है ॥ २७ ॥ तब वह सनातन महाकामी कामके एक मात्र आधार लोचन लोभनीय शोभायमान कमलके समान वामाङ्ग संभूता रमणीपर दृष्टिपात करते हैं ॥२८॥ इस स्त्रीके दोनों नितम्ब चन्द्रमण्डलका तिरस्कार करते हैं उसके दोनों ऊरु देखनेमें कदली स्तम्भ स्तंम्भित हो जायँ ॥ २९ ॥ उसके दोनों स्तनके देखनेसे शोभायमान दो श्रीफलकी भ्रान्ति होती है, कवरी बंधनमें पुष्प गुँथे हुए कमर अत्यंत पतली, देखनेमें अत्यन्त मनोहर ॥३०॥ अतीव सुन्दर मूर्ति अतिशांत मुखमें सदा हास्य दृष्टि पैरोंमें लगी हुई पहरनेके अनलमें विशुद्ध उत्कृष्ट, वस्त्र, सर्वाङ्गरत्नमय भूषणोंसे भूषित हैं ॥ ३१ ॥ उसके नयन चकोर आनन्दसे, निरंतर श्रीकृष्णके करोड़

स्वेच्छामयः स्वेच्छया च द्विधारूपो बभूव ह ॥ स्त्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान्स्मृतः ॥ २७ ॥ तां ददर्श महाकामीकामाधारां सनातनः ॥ अतीव कमनीयां च चारुपंकजसन्निभाम् ॥ २८ ॥ चंद्रबिंबविनिंद्यैकनितंबयुगलां पराम् ॥ सुचारुकदलीस्तंभनिंदितश्रोणिसुंदरीम् ॥ २९ ॥ श्रीयुक्तश्रीफलाकारस्तनयुग्ममनोरमाम् ॥ पुष्पजुष्टां सुवलितां मध्यक्षीणां मनोहराम् ॥ ३० ॥ अतीव सुंदरी शांतां सस्मितां वक्रलोचनाम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधारां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ ३१ ॥ शश्वच्चक्षुश्चकोराभ्यां पिबंती सततं मुदा ॥ कृष्णस्य मुखचंद्रं च चंद्रकोटिविनिंदितम् ॥ ३२ ॥ कस्तूरीबिंदुना सार्धमधश्चंदनबिंदुना ॥ समं सिंदूर बिंदुं च भालमध्ये च बिभ्रतीम् ॥ ३३ ॥ वक्रिमं कबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम् ॥ रत्नेंद्रसारहारं च दधतीकांतकामुकीम् ॥ ३४ ॥ कोटिचंद्रप्रभामृष्टशोभासमन्विताम् ॥ गमनेन राजहंसगजगर्वविनाशिनीम् ॥ ३५ ॥ दृष्ट्वा तां तु तया सार्धं रासेशो रासमंडले रासोल्लासे सुरसिको रासक्रीडां चकार ह ॥ ३६ ॥

चन्द्र लजानेवाले मुख चन्द्रको पान करते हैं ॥३२॥ उसके ललाटमें सिन्दूर बिन्दु उसके ऊपर चन्दन बिन्दु और उसके ऊपर कस्तूरी लगी हुई है ॥३३॥ उसके मस्तकका कबरी भार कुछेक वक्र, वहभी फिर मालती मालसे विभूषित सर्वोत्कृष्ट रत्नहार विराजित और वह सदा केवल स्वामीके प्रति स्पृहावती है ॥ ३४ ॥ उसका रूप देखनेसे बोध होता है मानो एक बारही करोड़ चन्द्रमा उदय हुए हैं उसका गमन देखकर राजहंस और मातङ्गका गर्व खर्व हो जाता है ॥ ३५ ॥ हे मुनिवर ! रासेश्वर रासक्रीडा रसिक श्रीकृष्ण वे क्षणकाल अपाङ्गमें उसको देख फिर उसका हाथ पकड़ राजमंडलमें जाय रासक्रीडा आरम्भ करी ॥ ३६ ॥

मानो शृङ्गारदेव स्वयं मूर्तिमान् होकर विविध शृंगार सुख संभव करने लगे यही क्या ? इस क्रीडामें ब्रह्माका एक दिन बीत गया ॥ ३७ ॥ तब जगत्पिताने थकित होकर शुभ कालमें उस वामाङ्ग सम्भूता रमणीकी योनिमें गर्भाधान किया ॥३८॥ प्रकृति देवी श्रीकृष्णके निपीडनसे बहुत थक गई थी इस कारण सुरताके अन्तमें उनके गात्रसे पसीना निकलने लगा ॥ ३९ ॥ और घनघन श्वास चलने लगा, उनके ही पसीनेने जल रूपमें परिणत होकर संपूर्ण विश्वको आच्छादित किया ॥ ४० ॥ और वह निश्वास वायु ही वायुरूप धारण करके जगत्वासी मनुष्योंके जीवन रूपमें परिणत हुआ ॥ ४१ ॥ वायु देवके वामाङ्ग जिस रमणीरत्नकी उत्पत्ति होती है वही इन वायु देवकी पत्नी और उसकेही संसर्गसे प्राण अपान समान उदान और व्यान नामक जो पंच पुत्रोंकी

नाना प्रकारशृंगारंशृंगारो मूर्तिमानिव ॥ चकार सुखसंभोगं यावद्वै ब्रह्मणोदिनम् ॥३७॥ ततः स च परिश्रांतस्तस्या योनौ जगत्पिता ॥ चकार वीर्याधानं च नित्यानंदे शुभक्षणे ॥ ३८ ॥ गात्रतो योषितस्तस्याः सुरतांते च सुव्रत ॥ निःससार श्रमजलं श्रांतायास्तेजसा हरेः ॥ ३९ ॥ महाक्रमणक्लिष्टाया निःश्वासश्च बभूव ह ॥ तदा वव्रे श्रमजलं तत्सर्वं विश्वगोलकम् ॥ ४० ॥ स च निःश्वासवायुश्च सर्वाधारो बभूव ह ॥ निःश्वासवायुः सर्वेषां जीविनां च भवेषु च ॥ ४१ ॥ बभूव मूर्तिमद्वायोर्वामांगात्प्राणवल्लभा ॥ तत्पत्नीसा च तत्पुत्राः प्राणाः पंच च जीविनाम् ॥ ४२ ॥ प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः ॥ बभूवुरेव तत्पुत्रा अधःप्राणाश्च पंच च ॥ ४३ ॥ धर्मतोयाधि देवश्च बभूव वरुणो महान् ॥ तद्वामांगाच्च तत्पत्नी वरुणानी बभूव सा ॥ ४४ ॥ अथ सा कृष्णाचिच्छक्तिः कृष्णगर्भं दधार ह ॥ शतमन्वंतरं यावज्ज्वलंती ब्रह्मतेजसा ॥ ४५ ॥ कृष्णप्राणाधिदेवी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया ॥ कृष्णस्य संगिनी शश्वत्कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥ ४६ ॥ शतमन्वंतरांते च कालेऽतीते तु सुंदरी ॥ सुषाव डिम्भं स्वर्णाभं विश्वाधारालयं परम् ॥ ४७ ॥

उत्पत्ति होती है वही जीवोंके पांच प्राण हैं उनके अतिरिक्त वायुपत्नीके गर्भसे नागादि और पांच अधः प्राणकी उत्पत्ति हुई है ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ पसीनेके जलसे जिस जलकी उत्पत्ति हुई वरुण देव उसके अधिष्ठाता और वरुणदेवके वामाङ्गसे जिस रमणीकी उत्पत्ति हुई वही वरुणपत्नी वरुणानी हैं ॥४४॥ इस ओर श्रीकृष्णकी ज्ञानरूपा शक्तिने श्रीकृष्णके सहवाससे शत मन्वन्तर पर्यंत गर्भधारण किया ब्रह्मतेजसे उसके शरीरने उज्ज्वल ज्योति धारण की ॥ ४५ ॥ कृष्ण ही इसके जीवन और वही कृष्णको प्राणोंसे भी प्रियपदार्थ है सदाही कृष्णके संगमें अवस्थित है अधिक क्या श्रीकृष्णके वक्षस्थलका आश्रय करके अवस्थान करती है ॥ ४६ ॥ अनन्तर शत वर्ष काल व्यतीत होनेपर उस सुन्दरीने सुवर्णके समान वर्णयुक्त एक बालक उत्पन्न किया यह (बालक)

ही विश्वाधारका एकमात्र आधार है ॥ ४७ ॥ तब श्रीकृष्णकी कान्ता उस डिम्भको देखकर मनमें अत्यंत दुःखी हुई और क्रोधमें भरकर उस डिम्भको ब्रह्माण्ड मध्यवर्ती सलिलमें डाल दिया ॥ ४८ ॥ यह देख श्रीकृष्ण हाहाकार शब्द कर उठे और उस समय यथोचित शाप देकर कहा ॥ ४९ ॥ हे कोपने! निष्ठुरे! जब तुमने क्रोधमें भरकर अपने सन्तानको त्याग दिया है तब मैं कहता हूँ कि आजसे तुम निःसन्देह अपत्यसे वञ्चित होगी ॥ ५० ॥ इसके अतिरिक्त जो सब दिव्याङ्गना तुम्हारे अंशसे उत्पन्न होंगी वह भी सब स्थिर यौवन होकर तुम्हारे समान अपुत्र होंगी ॥ ५१ ॥ हे मुनिवर! श्रीकृष्ण इस प्रकार शाप दे ही रहे थे उसी अवसरमें सहसा उस श्रीकृष्ण प्रियाकी जिह्वाके अग्रभागसे श्वेतवर्ण अति मनोरम एक कन्याकी उत्पत्ति हुई ॥ ५२ ॥

दृष्ट्वा डिंम्भं च सा देवीं हृदयेन व्यदूयत ।। उत्ससर्ज च कोपेन ब्रह्माण्डगोलके जले ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वा कृष्णश्च तत्त्यागं हाहाकारं चकार ह ॥ शशाप देवीं देवेशस्तत्क्षणं च यथोचितम् ॥ ४९ ॥ यतोऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले च निष्ठुरे ॥ भव त्वमनपत्याऽपि चाद्य प्रभृति निश्चितम् ॥ ५० ॥ या यास्त्वदंशरूपाश्च भविष्यंति सुरस्त्रियः ॥ अनपत्याश्च ताः सर्वास्त्वत्समा नित्ययौवनाः ॥ ५१ ॥ एतस्मिन्नंतरे देवीजिह्वाग्रात्सहसा ततः ॥ आविर्बभूव कन्यैका शुक्लवर्णा मनोहरा ॥ ५२ ॥ श्वेतवस्त्रपरीधाना वीणापुस्तकधारिणी ॥ रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्राधिदेवता ॥ ५३ ॥ अथ कालांतरे सा च द्विधारूपा बभूवह ॥ वामार्धांगाच्च कमला दक्षिणार्धाच्च राधिका ॥ ५४ ॥ एतस्मिन्नंतरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः ॥ दक्षिणार्धश्च द्विभुजो वामार्धश्चचतुर्भुजः ॥ ५५ ॥ उवाच वाणीं कृष्णस्तां त्वमस्य कामिनी भव ॥ अत्रैवमानिनी राधा तव भद्रं भविष्यति ॥ ५६ ॥ एवं लक्ष्मीं च प्रददौ तुष्टो नारायणाय च ॥ स जगाम च वैकुण्ठं ताभ्यां सार्धं जगत्पतिः ॥ ५७ ॥

उसके वस्त्र सफेद हाथमें वीणा और पुस्तक और सब अंग रत्नमय भूषणोंसे विभूषित थे वही सम्पूर्ण शास्त्रोंकी अधिदेवता है ॥ ५३ ॥ कुछ कालोपरांत वह श्रीकृष्ण प्रिया मूलप्रकृति दो भागमें विभक्त हुई उसके वाम अंगसे कमला और दक्षिणअंगसे राधिकाकी उत्पत्ति हुई ॥ ५४ ॥ इसी असवरमें श्रीकृष्ण भी द्विधा विभक्त हुए उनके दक्षिणार्द्धसे द्विभुज और वामार्द्धसे चतुर्भुज मूर्तिका आविर्भाव हुआ ॥ ५५ ॥ तब श्रीकृष्णने वीणाधारिणी वाणीसे कहा हे देवी! तुम इस द्विभुज पुरुषकी कामिनी होओ और राधासे कहा हे राधे ! तु अभिमानवती हो इस कारण तुम मेरी पत्नी होओ तुम्हारा मंगल होगा ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्णने संतुष्ट होकर लक्ष्मीको भी द्विभुज नारायणके हाथमें समर्पण किया फिर जगत्पति नारायण लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंको संग लेकर वैकुण्ठधाममें

चले गये ॥५७॥ हे मुनिवर श्रीकृष्णके शापसे लक्ष्मी और सरस्वती दोनों ही पुत्रधनसे वञ्चित नहीं चतुर्भुज नारायणके अंगसे उनके अनुरूप कितनेही पार्श्वचर उत्पन्न हुए ॥ ५८ ॥ वह सब रूप गुण तेज और वयसमें उनके समान थे इधर कमलाके शरीरसे भी उसके समान रूप गुणशालिनी करोड करोड पार्श्वचारिणियोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ५९ ॥ अनन्तर गोलोकनाथ श्रीकृष्णके रोमकूपसे असंख्य गोपोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ६० ॥ वह सभी रूप गुण पराक्रम और वयसमें गोलोकनाथके अनुरूप थे अधिक क्या ? वह सब उन विभुके प्राणोंके समान प्रियपात्र थे ॥ ६१ ॥ राधिकाके रोमोंसे गोपकन्याओंकी उत्पत्ति हुई वह सब गोपाङ्गना राधाके अनुरूप राधाकी ही पार्श्वचरीऔर सभी प्रियवंदा थीं ॥ ६२ ॥ उनका सम्पूर्ण शरीर रत्नमय भूषणोंसे विभूषित और सभी स्थिरयौवना

अनपत्ये च ते द्वे च जाते राधांशसंभवे ॥ भूता नारायणांगाच्च पार्षदाश्च चतुर्भुजाः ॥ ५८ ॥ तेजसा वयसा रूपगुणाभ्यां च समा हरेः ॥ बभूवुः कमलांगाच्च दासीकोटचश्च तत्समाः ॥ ५९ ॥ अत्र गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतो मुने ॥ भूताश्चा संख्यगोपाश्च वयसा तेजसा समाः ॥ ६० ॥ रूपेण च गुणेनैव बलेन विक्रमेण च ॥ प्राणतुल्यप्रियाः सर्वे बभूवुः पार्षदा विभोः ॥ ६१ ॥ राधांगलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः ॥ राधातुल्याश्च ताः सर्वराधादास्यः प्रियंवदाः ॥ ६२ ॥ रत्नभूषणभूषाढ्याः शश्वत्सुस्थिरयौवनाः ॥ अनपत्याश्च ताः सर्वाः पुंसः शापेन संततम् ॥ ६३ ॥ एतस्मिन्नंतरे विप्र सहसा कृष्णदेवता ॥ आविर्बभूव दुर्गा सा विष्णुमाया सनातनी ॥ ६४ ॥ देवी नारायणीशाना सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥ बुद्ध्यधिष्ठात्री देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ६५ ॥ देवीनां बीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ परिपूर्णतमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका ॥ ६६ ॥ तप्तकांचनवर्णाभा कोटिसूर्यसमप्रभा ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्या सहस्रभुजसंयुता ॥ ६७ ॥

थीं श्रीकृष्णके शापसे उनमें किसीके भी सन्तान सन्तति नहीं हुई ॥ ६३ ॥ हे द्विजवर ! इस ओर इसी समय सहसा कृष्णदेवता सनातनी विष्णुमाया दुर्गाकी उत्पत्ति हुई ॥ ६४ ॥ वही नारायणी वही ईशानी सबकी शक्तिरूपिणी और वही परमात्मारूपी श्रीकृष्णकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवता हैं॥ ६५ ॥ उनसे ही अन्यान्य देवियोंकी उत्पत्ति हुई है वही मूलप्रकृति और वही ईश्वरी हैं उनमें अपूर्णताका लेशमात्र नहीं है वही तेजःस्वरूपा और वही त्रिगुणात्मिका हैं ॥ ६६ ॥ उनका वर्ण तप्त कंचनके समान उज्ज्वल है, उनका सौन्दर्य देखनेसे बोध होता है मानो एकवार ही करोड़ सूर्य उदय हुए हैं, कुछेक हास्यसे मुस्कुरातामुख संतत प्रसन्न और हस्त संख्यामें सहस्र हैं ॥ ६७ ॥

दे.भा.
॥१४॥

और सब हाथोंमें ही अनेक प्रकारके अस्त्र हैं उन त्रिलोचनका परिधान अग्नि विशुद्ध उज्ज्वल वर्ण वस्त्र और अंगोंमें जो कितनेही रत्नाभरण हैं उनकी सीमा नहीं है ॥६८॥ उनके ही अंश और उनके ही अंशके अंशसे संपूर्ण रमणीरत्नकी उत्पत्ति हुई है उनकी ही मायाके प्रभावसे जगत्के संम्पूर्ण लोक मोहित हैं ॥ ६९ ॥ गृहस्थी लोग जिस जिस प्रकारके ऐश्वर्यकी कामना करते हैं वह उनको वही प्रदान करती हैं वही कृष्णभक्त मनुष्यको कृष्णभक्ति प्रदान करती हैं अधिक क्या ? वही वैष्णवोंकी वैष्णवी शक्ति हैं ॥ ७० ॥ वह मोक्षकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको मोक्ष और सुखकी इच्छा करने वाले पुरुषको सुख देती हैं वही स्वर्गकी स्वर्गलक्ष्मी और गृहकी गृहलक्ष्मी हैं ॥७१॥ वही तपस्वियोंका तप, राजाओंकी राज्यश्री, अग्निकी दाहिकाशक्ति सूर्यकी प्रभा ॥ ७२ ॥

नानाशस्त्रास्त्रनिकरं बिभ्रती सा त्रिलोचना ॥ वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषण भूषिता ॥ ६८ ॥ यस्याश्चांशांशकलया बभूवुः सर्वयोषितः ॥ सर्वे विश्वस्थिता लोका मोहिताः स्युश्च मायया ॥ ६९ ॥ सर्वैश्वर्यप्रदात्री च कामिनां गृहवासिनाम् ॥ कृष्णभक्तिप्रदा या च वैष्णवानां च वैष्णवी ॥ ७० ॥ मुमुक्षूणां मोक्षदात्री सुखिनां सुखदायिनी ॥ स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीश्च गृहलक्ष्मीर्गृहेषु च ॥ ७१ ॥ तपस्विषु तपस्या च श्रीरूपा तु नृपेषु च ॥ या वह्नौ दाहिकारूपा प्रभारूपा च भास्करे ॥ ७२ ॥ शोभारूपा च चंद्रे च सा पद्मेषु च शोभना ॥ सर्वशक्तिस्वरूपा या श्रीकृष्णे परमात्मनि ॥ ७३ ॥ यया च शक्तिमानात्मा यया च शक्तिमज्जगत् ॥ यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतमिव स्थितम् ॥ ७४ ॥ या च संसारवृक्षस्य बीजरूपा सनातनी ॥ स्थितिरूपा बुद्धिरूपा फलरूपा च नारद ॥ ७५ ॥ क्षुत्पिपासादयारूपा निद्रा तंद्रा क्षमा मतिः ॥ शांतिलज्जातुष्टिपुष्टिभ्रांतिकांत्यादिरूपिणी ॥ ७६ ॥ सा च संस्तूय सर्वेशं तत्पुरः समुवास ह ॥ रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः ॥ ७७ ॥

चन्द्रकी रमणीयता, कमलकी शोभा और परमात्मारूपी श्रीकृष्णकी शक्तिस्वरूप है ॥ ७३ ॥ क्या आत्मा क्या जगत् समस्त ही उनके द्वारा शक्तिशाली है उनके विना सम्पूर्ण जगत् प्रायः जीवन्मुक्त होता है ॥ ७४ ॥ हे नारद ! वही संसारवृक्षका बीज वही सनातनी वही स्थिति वही बुद्धि वही फल ॥७५॥ वही क्षुधा वही पिपासा वही दया वही निद्रा वही तन्द्रा वही क्षमा वही धृति वही शान्ति वही लज्जा वही पुष्टि और वही कान्तिरूपिणी हैं ॥ ७६ ॥ वह मूल प्रकृति सर्वेश्वर श्रीकृष्णका स्तव करके उनके सन्मुख अवस्थान करने लगी तब राधिकेश्वरने उसके बैठनेको सिंहासन दिया ॥ ७७ ॥

हे महामुने ! इसी समयमें पद्मनाभके नाभिपद्मसे अतीव रमणीय मूर्ति सावित्री पत्नीसहित चतुर्मुख ब्रह्माजीका अविर्भाव हुआ ॥ ७८ ॥ वह कमण्डलुधारी ज्ञानियोंमें अग्रणी तपः--परायण श्रीमान् चतुर्मुख उत्पन्न होते ही चारों मुखसे श्रीकृष्णका स्तव करने लगे ॥ ७९ ॥ इधर वह सुख संभूत शत चन्द्रप्रभा, अग्निविशुद्धवसनधारिणी अनेक प्रकारके भूषणोंसे भूषित ॥ ८० ॥ देवी सावित्री विश्वके एकमात्र कारण स्वरूप श्रीकृष्णका स्तव करके परमानन्दपूर्वक स्वामीके संग रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हुई ॥ ८१ ॥ इसी अवसरमें श्रीकृष्णभी द्विधा अर्थात दो भागोंमें विभक्त हुए उनका वामार्द्धभाग महादेव और दक्षिणार्द्ध गोपिकापति रूपमें परिणत हुआ ॥ ८२ ॥ महादेवजीके शरीरकी प्रभा विशुद्ध स्फटिकके समान शुभ्रवर्ण देखनेसे बोध होता है मानो एक

एतस्मिन्नंतरे तत्र सस्त्रीकश्च चतुर्मुखः ॥ पद्मनाभेर्नाभिपद्मान्निस्स सारमहामुने ॥ ७८ ॥ कमंडलुधरः श्रीमांस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः ॥ चतुर्मुखैस्तं तुष्टाव प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥ ७९ ॥ सा तदा सुंदरी सृष्टा शतचंद्रसमप्रभा ॥ वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषणा ॥ ८० ॥ रत्नसिंहासने रम्ये संस्तूय सर्वकारणम् ॥ उवास स्वामिना सार्धं कृष्णस्य पुरतो मुदा ॥ ८१ ॥ एतस्मिन्नंतरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः ॥ वामार्धांगो महादेवो दक्षिणे गोपिकापतिः ॥ ८२ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशः शतकोटिरविप्रभः ॥ त्रिशूलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्मांबरो हरः ॥ ८३ ॥ ततकांचनवर्णाभो जटाभारधरः परः ॥ भस्मभूषितगात्रश्च सस्मितश्चंद्रशेखरः ॥ ८४ ॥ दिगंबरो नीलकंठः सर्प भूषणभूषितः ॥ बिभ्रद्दक्षिणहस्तेन रत्नमालां सुसंस्कृताम् ॥ ८५ ॥ प्रजपन्पंचवक्त्रेण ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ सत्यस्वरूपं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम ॥ ८६ ॥ कारणं कारणानां च सर्वमंगलमंगलम् ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम् ॥ ८७ ॥

संग सौ करोडसूर्य उदय हुए हैं जिनके हाथमें त्रिशूल और पट्टिश, परिधान व्याघ्र चर्म ॥ ८३ ॥ शिरपर तप्तकाञ्चनके समान पिङ्गलवर्ण जटाभार सर्वाङ्गमें भस्म विलेपन मुखमें हास्य और भालमें अर्द्धचन्द्र ॥ ८४ ॥ जिनके कटितटमें वस्त्र नहीं अतएव दिगम्बर हैं जिनका कण्ठ नीलवर्ण है अंगमें सर्प विभूषण, दहिने हाथमें (जपके उपयोगी रत्नमाला) ॥ ८५ ॥ जो पंचमुखसे केवल सनातन वेदमंत्रका जप करते थे जो सत्यस्वरूप कृष्णस्वरूप परमात्मस्वरूप ईश्वरस्वरूप ॥ ८६ ॥ सम्पूर्ण उपादानके भी उपादानस्वरूप सम्पूर्णमंगलके भी मंगलस्वरूप, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भयभंजन ॥ ८७ ॥

श्रीकृष्णका स्तवकर मृत्युको जीत मृत्युञ्जय नाम पाया वहीं महादेव श्रीकृष्णके सन्मुख रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हुए ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारायण बोले हे देवर्षे ! मूलशक्तिप्रसूत जो डिम्भ ब्रह्माके वयःपरिमितकालतक जलमें भासमान था वह डिम्भ अब तक यथोचित समयमें सहसा द्विधा विदीर्ण हुआ ॥ १ ॥ इस डिम्भमें सौ करोड़ सूर्यके समान प्रभायुक्त एक बालक विद्यमान था मातासे परित्याग करनेसे स्तनपान नहीं कर सका इस कारण भूखसे कातर होकर क्षणकालतक वारंवार रोदन करने लगा ॥ २ ॥ जो बालक परिणाममें असंख्य ब्रह्माण्डके अधीश्वर रूपमें परिणत है पिता माता हीन वह बालक निराश्रय होकर जलसे ऊर्द्ध्वभाग अवलोकन करने लगा ॥ ३ ॥ फिर अन्तमें यही बालक

संस्तूय मृत्योर्मृत्युं तं यतो मृत्युंजयाभिधः ॥ रत्नसिंहासने रम्ये समुवास हरे पुरः ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथ डिंभो जले तिष्ठन्यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ ततः स काले सहसा द्विधाभूतो बभूव ह ॥ १ ॥ तन्मध्ये शिशुरेकश्च शतकोटिरविप्रभः ॥ क्षणं रोरूयमाणश्च स्तनांधः पीडितः क्षुधा ॥ २ ॥ पित्रा मात्रा परित्यक्तो जलमध्ये निराश्रयः ॥ ब्रह्मांडासंख्यनाथो यो ददर्शोर्ध्वमनाथवत् ॥ ३ ॥ स्थूलात्स्थूलतमः सोऽपि नाम्ना देवो महाविराट् ॥ परमाणुर्यथा सूक्ष्मात्परः स्थूलात्तथाऽप्यसौ ॥ ४ ॥ तेजसा षोडशांशोऽयं कृष्णस्य परमात्मनः ॥ आधार सर्वविश्वानां महाविष्णुश्च प्राकृतः ॥ ५ ॥ तेजकं लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च ॥ अस्याऽपि तेषां संख्यां च कृष्णो वक्तुं न हि क्षमः ॥ ६ ॥ संख्या चेद्रजसामस्ति विश्वानां न कदाचन ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा संख्या न विद्यते ॥ ७ ॥ प्रतिविश्वेषु संत्येवं ब्रह्मविष्णु शिवादयः ॥ पातालाद्ब्रह्मलोकांतं ब्रह्मांडं परिकीर्तितम् ॥ ८ ॥

एक ही वार स्थूलतम होकर महाविराट्नामसे अभिहित हुआ है जिस प्रकार परमाणुसे सूक्ष्म तम पदार्थ अन्य (दूसरा) नहीं है इसी प्रकार महाविराट्से स्थूलतम पदार्थ भी दूसरा नहीं है ॥ ४ ॥ इस महाविराट्का प्रभाव परमात्मारूपी श्रीकृष्णके सोलहवें अंशका एक अंश है किन्तु राधारूपा प्रकृतिसभूत यह बालक ही सब विश्वका एकमात्र आधार और वही महाविष्णुनामसे अभिहित है ॥ ५ ॥ उसके प्रत्येक रोममें असंख्य विश्व विराजान हैं अधिक क्या श्रीकृष्ण भी उन सब विश्वकी संख्या गणना करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ६ ॥ कदाचित् रजःसंख्याकी गणना हो जाय किन्तु विश्वकी सख्या गणना संभव नहीं है और इसी प्रकार कितने ब्रह्मा कितने विष्णु और कितने महादेव विद्यमान् रहते हैं उनकी भी संख्या नहीं है ॥ ७ ॥ प्रति ब्रह्माण्डमें ही ब्रह्मा विष्णु और महादेव विद्यमान

रहते हैं पातालसे ब्रह्मलोक पर्यन्त एक एक ब्रह्माण्डकी सीमा है ॥ ८ ॥ वैकुण्ठधाम उसके ऊपर अर्थात् ब्राह्मणके बहिर्भागमें अवस्थित है और गोलोकधाम इस वैकुंठधामके पञ्चाशतकोटि योजन ऊर्द्धभागमें अवस्थित है ॥ ९ ॥ श्रीकृष्ण जिस प्रकार नित्य और सत्यस्वरूप हैं यह गोलोकधाम उसी प्रकार है सप्तद्वीप समन्वित यह पृथ्वी सातसमुद्रसे परिवेष्टित रहती है ॥ १० ॥ इसमें उंचास उपद्वीप विद्यमान हैं इनके अतिरिक्त कितने ही जो पर्वत और वन विद्यमान रहते हैं उनकी संख्या नहीं है उनके ऊर्द्धमें ब्रह्मलोकसहित सप्तस्वर्ग ॥ ११ ॥ और अधोभागमें सप्तपाताल हैं यही ब्रह्मांडकी सीमा है धाराके व्यवधानसे आगे ऊर्द्ध्वमें भूर्लोक उसके ऊपर भुवर्लोक ॥ १२ ॥ उसके ऊपर स्वर्लोक उसके ऊपर जनलोक उसके ऊपर तपोलोक उसके ऊपर सत्यलोक ॥ १३ ॥ और

तत ऊर्ध्वं च वैकुंठो च ब्रह्मांडाद्बहिरेव सः ॥ तत ऊर्ध्वं च गोलोकः पंचाशत्कोटियोजनः ॥ ९ ॥ नित्यः सत्यस्वरूपश्च यथा कृष्णस्तथाऽप्ययम् ॥ सप्तद्वीपमिता पृथ्वी सप्तसागरसंयुता ॥ १० ॥ ऊनपंचाशदुपद्वीपाऽसंख्य शैलवनान्विता ॥ ऊर्ध्वं सप्त स्वर्गलोका ब्रह्मलोकसमन्विताः ॥ ११ ॥ पातालानि च सप्ताधश्चैवं ब्रह्माण्ड मेव च ॥ ऊर्ध्वं धराया भूर्लोको भुवर्लोकस्ततः परम् ॥ १२ ॥ ततः परश्च स्वर्लोको जनलोकस्तथा परः ॥ ततः परस्तपोलोकस्सत्यलोकस्ततः परः ॥ १३ ॥ ततः परं ब्रह्मलोकस्तप्त कांचनसन्निभः ॥ एवं सर्वं कृत्रिमं च बाह्याभ्यंतरमेव च ॥ १४ ॥ तद्विनाशे विनाशश्च सर्वेषामेव नारद ॥ जलबुदबुद्वत्सर्वं विश्वसंघम नित्यकम् ॥ १५ ॥ नित्यौ गोलोकवैकुंठौ प्रोक्तौ शश्वदकृत्रिमौ ॥ प्रत्येकं लोमकूपेषु ब्रह्मांडं परिनिश्चितम् ॥ १६ ॥ एषां संख्यां न जानाति कृष्णोऽन्यस्याऽपि का कथा ॥ प्रत्येकं प्रतिब्रह्मांडं ब्रह्मवि ष्णुशिवादयः ॥ १७ ॥ तिस्रः कोटयः सुराणां च संख्या सर्वत्र पुत्रक ॥ दिगीशाश्चैव दिक्पाला नक्षत्राणि ग्रहादयः ॥ १८ ॥

उसके ऊपर ब्रह्मलोक है, इस ब्रह्मलोककी प्रभा तप्तकांचनके समान है, किंतु यह ब्रह्माण्ड विवृतिके बहिर्भागमें स्थित हो वा आभ्यन्तरीण हो सम्पूर्ण पदार्थ ही कृत्रिम अर्थात् अनित्य हैं ॥१४॥ ब्रह्मांडके विनाशमें संपूर्ण ही नष्ट होता है, समस्त विश्व ही जलबुदबुद्के समान अनित्य है ॥ १५ ॥ केवल गोलोक और वैकुंठ धाम नित्य पदार्थ है महाविराट्के प्रत्येक रोममें ही एक एक ब्रह्मांड विराजमान है ॥ १६ ॥ दूसरेकी तो बात ही नहीं स्वयं श्रीकृष्ण भी इन समस्त ब्रह्मांडकी संख्या गणना करनेमें समर्थ नहीं हैं प्रत्येक ब्रह्मांडमें ही ब्रह्मा विष्णु और महादेव विद्यमान रहते हैं ॥ १७ ॥ हे वत्स नारद ! प्रति ब्रह्मांडमें ही देवताओंकी संख्या तीन करोड़ है इनमें कितने ही दिक्पति कितने ही दिक्पाल कितने ही नक्षत्र और कितनेही ग्रहादि हैं ॥ १८ ॥

भूलोकमें ब्राह्मणादि चारोंवर्ण और पातालमें नाग हैं इस प्रकार स्थावर जंगमात्मक विश्व विद्यमान रहता है, यही ब्रह्मांड विवृति है ॥१९॥ हे वत्स नारद ! इस ओर वह विराट् पुरुष वारंवार ऊपरको देखने लगे किंतु उन्होंने उस (दोभाग हुए) अंडेमें शून्य पदार्थके अतिरिक्त और कुछ नहीं देखा तब वह भूंखसे अत्यन्त कातर हो वारंवार रुदन करते हुए अत्यन्त चिंता करने लगे ॥ २० ॥ कुछ कालोपरान्त पूर्वसंस्कारके बलसे ज्यों ही उनके मनमें अस्तित्वबुद्धिका उदय हुआ, उसी समय वह परम पुरुष श्रीकृष्णके ध्यानमें निमग्न हुए तब तत्काल वहां उस सनातन ब्रह्मज्योतिको देखा ॥ २१ ॥ उनका रूप नवीन मेघके समान श्यामवर्ण दो हाथ परिधान पीताम्बर मुखमें कुछेक हास्य हाथमें मुरली और उनका रूप देखनेसे बोध होता था मानो भक्तके प्रति दया प्रकाश

भुवि वर्णाश्च चत्वारो ऽप्यधो नागाश्चराचराः ॥ अथ कालेऽत्र स विराडूर्ध्वं दृष्ट्वा पुनः पुनः ॥१९॥ डिम्भान्तरे च शून्यं च न द्वितीयं चकिंचन ॥ चिंतामवाप क्षुद्युक्तो रुरोद च पुनः पुनः ॥२०॥ ज्ञानं प्राप्य तदा दध्यौ कृष्णं परमपूरुषम् ॥ ततो ददर्श तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ २१ ॥ नवीनजलद श्यामं द्विभुजं पीतवाससम् ॥ सस्मितं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ २२ ॥ जहास बालकस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमीश्वरम् ॥ वरं तदा ददौ तस्मै वरेशः समयोचितम् ॥ २३ ॥ मत्समो ज्ञानयुक्तश्च क्षुत्पिपासादि वर्जितः ॥ ब्रह्मांडासंख्यनिलयो भव वत्स लयावधि ॥ २४ ॥ निष्कामो निर्भयश्चैव सर्वेषां वरदो भव ॥ जरामृत्युरोगशोकपीडादिव र्जितो भव ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वा तस्य कर्णे स महामंत्रं षडक्षरम् ॥ त्रिःकृत्वश्च प्रजजाप वेदांगप्रवरं परम् ॥ २६ ॥ प्रणवादि चतुर्थ्यंतं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् ॥ वह्निजायांत मिष्टं च सर्वविघ्नहरं परम् ॥ २७ ॥ मंत्रं दत्त्वा तदाहारं कल्पयामास वै विभुः ॥ श्रूयतां तद्ब्रह्मपुत्र निबोध कथयामि ते ॥ २८ ॥

करनेमें अत्यंत तत्पर हैं ॥ २२ ॥ विराट्रूपी बालक सर्वेश्वर अपने पिताको देखते ही आनन्दसे हँसने लगा तब उन वरद देवने बालकको समयोचित वर दान करके कहा ॥ २३ ॥ " हे वत्स ! तुम मेरे समान ज्ञानयुक्त होओ, तुम्हारी भूंख प्यास दूर हो तुम प्रलयकालपर्यन्त असंख्य ब्रह्मांडके आधार होओ ॥२४॥ तुम सम्पूर्ण वासनाको छोड सम्यक् प्रकारसे भयरहित हो प्राणियोंका अभीष्ट प्रदान करो जरा मरण रोग शोक वा किसी प्रकारकी पीड़ादि तुमको स्पर्श करनेमें समर्थ न हो"॥२५॥ यह कहकर उसके कानमें साङ्गवेद पूजित अभीष्टप्रद सर्वविघ्नविनाश "ओं कृष्णाय स्वाहा" यह षडक्षर महामंत्र तीनवारजपा ॥२६॥ ॥२७॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद ! विभु श्रीकृष्णने इस प्रकार महामंत्र प्रदान करके फिर उसके भोगके लिये जिस प्रकार आहार विधान किया वह कहता हूं सुनो ॥२८॥

प्रति विश्वमें भक्तलोग श्रीकृष्णको जो नैवेद्य प्रदान करते हैं उसका सोलहवां भाग वैकुंठपति नारायणके और अपर पन्द्रह भाग इस विराट्रूपी बालकके लिये कल्पित हुए हैं ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णने अपने लिये अंशकी कल्पना नहीं करी क्योंकि स्वयं गणातीत और पूर्णतम हैं अतएव जो सदाही तृप्त रहते हैं उनको फिर नैवेद्यका क्या प्रयोजन हैं ॥ ३० ॥ मनुष्य भक्तिपूर्वक उनको जो प्रदान करता है वह लक्ष्मीपति विराट् पुरुष ही उस सबको भोग करते हैं ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार उस विराट् पुरुषको मंत्र और वर देकर कहा हे वत्स ! तुम्हारी अब क्या अभिलाषा है ? सो कहो मैं अभी प्रदान करूंगा ॥ ३२ ॥ उस विराट्रूपी बालकने श्रीकृष्णका वचन सुनकर उनसे उचित वचन कहा ॥ ३३ ॥ बालक बोले हे विभो ! मुझको अब कुछ वासना नहीं है

प्रतिविश्वं यन्नैवेद्यं ददाति वैष्णवो जनः ॥ तत्षोडशांशो विषयिणो विष्णोः पंचदशास्य वै ॥ २९ ॥ निर्गुणस्यात्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च ॥ नैवेद्ये चैव कृष्णस्य न हि किंचित्प्रयोजनम् ॥ ३० ॥ यद्यद्ददाति नैवेद्यं तस्मै देवाय यो जनः ॥ स च खादति तत्सर्वं लक्ष्मीनाथो विराट् तथा ॥ ३१ ॥ तं च मंत्रवरं दत्त्वा तमुवाच पुनर्विभुः ॥ वरमन्यं किमिष्टं ते तन्मे ब्रूहि ददामि च ॥ ३२ ॥ कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच विराड् विभुः ॥ कृष्णं तं बालक स्तावद्वचनं समयोचितम् ॥ ३३ ॥ बालक उवाच ॥ वरो मे त्वत्पदांभोजे भक्तिर्भवतु निश्चला ॥ सततं यावदायुर्मे क्षणं वा सुचिरं च वा ॥ ३४ ॥ त्वद्भक्तियुक्तलोकेऽस्मिञ्जीवन्मुक्तश्च संतम् त्वद्भक्तिहीनो मूर्खश्चजीवन्नपि मृतो हि सः ॥ ३५ ॥ किं तज्जपेन तपसा यज्ञेन पूजनेन च ॥ व्रतेन च चोपवासेन पुण्येन तीर्थसेवया ॥ ३६॥ कृष्णभक्तिविहीनस्य मूर्खस्य जीवनं वृथा ॥ येनात्मना जीवितश्च तमेव न हि मन्यते ॥ ३७ ॥ यावदात्मा शरीरेऽस्ति तावत्स शक्तिसंयुतः ॥ पश्चाद्यांति गते तस्मिन्स्वतंत्रा सर्वशक्तयः ॥ ३८ ॥

केवल क्षणकाल हो वा दीर्घकाल हो जबतक जीवित रहूं तबतक आपके चरणकमलोंमें सदा मेरी विमलभक्ति रहे ॥ ३४ ॥ इस जगतमें जो पुरुष आपके भक्त हैं वह सदा ही जीवन्मुक्त हैं और जो आपके प्रति भक्तिशून्य हैं वह पुरुष जीवित रहनेपर भी मृतकके समान हैं ॥ ३५ ॥ कृष्णभक्तिविहीन पुरुषके जप तप यज्ञ पूजा नियम उपवास पवित्र तीर्थसेवा और अन्यान्य पुण्यकर्मके अनुष्ठान का क्या प्रयोजन है ? ॥ ३६ ॥ जो पुरुष परमात्मरूपी श्रीकृष्णसे जीवन धारण करके फिर उनको ही अग्राह्य करता है उसके समान कृतघ्न और कौन है ? उस कृष्णभक्तिहीन मूढका जीवन धारण करना वृथा है ॥ ३७ ॥ जबतक देहमें आत्मा वास करता है तबतक संपूर्ण शक्ति विद्यमान रहती हैं किंतु आत्माके प्रस्थान करते ही आत्माधीन संपूर्ण इन्द्रिकशक्ति भी उसके संग संग चली जाती हैं ॥ ३८ ॥

हे महाभाग ! जो प्रकृतिके अतीत स्वेच्छामय आदि पुरुष परमज्योतिस्वरूप सनातन ब्रह्म हैं आप स्वयं वह विश्वात्मा हैं ॥३९॥ हे वत्स नारद! विराट्रूपी बालक केवल इतना कहते ही चुप हो गया फिर भगवान् श्री कृष्णने श्रुति मधुरवचनसे कहा ॥ ४० ॥ भगवान् बोले हे वत्स ! तुम अनन्त काल मेरे समान स्थिर भावसे अवस्थान करो असंख्य ब्रह्माके अतीत होनेपर भी तुम्हारा पतन नहीं होगा ॥ ४१ ॥ तुम स्वीय अंशमें विभक्त होकर प्रति ब्रह्माण्डमें ही क्षुद्र क्षुद्र विराट्रूपसे परिणत होओ ब्रह्मा तुम्हारे नाभिकमलसे उत्पन्न होकर विश्वकी सृष्टि करेंगे ॥ ४२ ॥ सृष्टिसंहारके निमित्त उन ब्रह्माके ललाटसे एकादशरुद्र उत्पन्न होंगे किंतु वह सबही शिवांश हैं ॥ ४३ ॥ इन एकादशरुद्रोंमें जो कालाग्निनामक रुद्र हैं वही सब विश्वके संहारकर्ता हैं इनके सिवाय तुम्हारे क्षुद्रांशसे

स च त्वं च महाभाग सर्वात्मा प्रकृतेः परः ॥ स्वेच्छामयश्च सर्वाद्यो ब्रह्मज्योतिः सनातनः ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विरराम च नारद ॥ उवाच कृष्णः प्रत्युक्ति मधुरां श्रुतिसुन्दरीम् ॥ ४० ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ सुचिरं सुस्थिरं तिष्ठ यथाऽहं त्वं तथा भव ॥ ब्रह्मणोऽसंख्यपाते च पातस्ते न भविष्यति ॥ ४१ ॥ अंशेन प्रतिब्रह्मांडे त्वं च क्षुद्रविराड् भव ॥ त्वन्नाभिपद्माद्ब्रह्मा च विश्वस्रष्टा भविष्यति ॥ ४२ ॥ ललाटे ब्रह्मणश्चैव रुद्राश्चैकादशैव ते ॥ शिवांशेन भविष्यंति सृष्टिसंहरणाय वै ॥ ४३ ॥ कालाग्निरुद्रस्तेष्वेको विश्वसंहारकारकः ॥ पाता विष्णुश्च विषयी रुद्रांशेन भविष्यति ॥ ४४ ॥ मद्भक्तियुक्तः सततं भविष्यसि वरेण मे ॥ ध्यानेन कमनीयं मां नित्यं द्रक्ष्यसि निश्चितम् ॥ ४५ ॥ मातरं कमनीयां च मम वक्षःस्थलस्थिताम् ॥ यामि लोकं तिष्ठ वत्सेत्युक्त्वा सोंऽतरधीयत ॥ ४६ ॥ गत्वा स्वलोकं ब्रह्माणं शंकरं समुवाच ह ॥ स्रष्टारं स्रष्टुमीशं च संहर्तुं चैव तत्क्षणम् ॥ ४७ ॥ भगवानुवाच ॥ सृष्टिं स्रष्टुं गच्छ वत्स नाभिपद्मोद्भवो भव ॥ महाविराड्लोमकूपे क्षुद्रस्य च विधे शृणु ॥ ४८ ॥

एक एक विष्णु उत्पन्न होंगे और वह भगवान् विष्णु ही विश्वके पालक हैं ॥ ४४ ॥ मैं कहता हूं कि मेरे वरदानसे तुम सदा मेरे प्रति भक्तिमान् होगे और तुम ध्यानयोग अवलम्बन करते ही मेरी मनोहर मूर्ति देखोगे इसमें संदेह नहीं है ॥ ४५ ॥ मेरे वक्षस्थलाश्रित तुमको जननीका दर्शन भी दुर्लभ नहीं होगा हे वत्स ! तुम स्वच्छन्दतासे इस स्थानमें वास करो मैं गो लोकको चलता हूं जगत्पति श्रीकृष्ण यह कहकर अन्तर्धान होगये ॥ ४६ ॥ फिर उन्होंने गोलोकमें उपस्थित हो तत्काल सृष्टि और संहारकार्यपटु ब्रह्मा और महादेवजीसे कहा ॥ ४७ ॥ भगवान् बोले हे वत्स विधातः ! तुम शीघ्र जाओ जाकर सृष्टिकार्यके लिये महाविराट्के लोमसे जो क्षुद्रविराट् उत्पन्न हों उन सब क्षुद्रविराट्के नाभिपद्मसे अंशमें उत्पन्न होओ ॥ ४८ ॥

हे वत्स महादेव ! तुमभी जाओ जाकर सृष्टिसंहारके लिये प्रतिविश्वमें प्रत्येक ब्रह्माके कपालसे अंशमें उत्पन्न होओ किंतु देखो अपनी दीर्घकाल तपस्या करनी मत भूल जाना ॥४९॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद ! श्रीकृष्ण ब्रह्मा और महादेवको इस प्रकार आज्ञा करके मौन होगये इस ओर ब्रह्मा और शिवदाता शिव दोनों जगत् पतिको प्रणाम करके स्वस्वकार्य करनेके लिये गये ॥ ५० ॥ उधर उस ब्राह्माण्डगोलकजलमें जो महा विराट् भासमान थे पूर्वमें उनकेही अंशसे उनके ही प्रति लोमसे एक एक क्षुद्र विराट् उत्पन्न हुए थे ॥ ५१ ॥ दूर्वादलश्यामरूप पीताम्बरधारी हास्य प्रफुल्ल वदन युवा विश्वव्यापी जो विराट्रूपी जनार्दन जलशय्या पर शयन कर रहे थे ॥ ५२ ॥ ब्रह्माने जाकर उनके नाभिपद्मसे जन्मग्रहण किया जन्मग्रहण करनेके उपरांत कमलयोनिने उस नाभीपद्म और उसके

गच्छ वत्स महादेव ब्रह्मभालोद्भवो भव ॥ अंशेन च महाभाग स्वयं च सुचिरं तप ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम विधेः सुतः ॥ जगाम ब्रह्मा तं नत्वा शिवश्च शिवदायकः ॥ ५० ॥ महाविराड्लोमकूपे ब्रह्मांडगोलके जले ॥ बभूव च विराट् क्षुद्रो विराडंशेन सांप्रतम् ॥ ५१ ॥ श्यामो युवाः पीतवासाः शयानो जलतल्पके ॥ ईषद्धास्यः प्रसन्नास्यो विश्वव्यापी जनार्दनः ॥ ५२ ॥ तन्नाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलोद्भवः ॥ संभूय पद्मदंडे च बभ्राम युगलक्षकम् ॥ ५३ ॥ नांतं जगाम दंडस्यः पद्मनालस्य पद्मजः ॥ नाभिजस्य च पद्मस्य चिंतामाप पिता तव ॥५४॥ स्वस्थानं पुनरागम्य दध्यौ कृष्णपदांबुजम् ॥ ततो ददर्श क्षुद्रं तं ध्यानेन दिव्य चक्षुषा ॥ ५५ ॥ शयानं जलतल्पे च ब्रह्मांडगोलकाप्लुते ॥ यल्लोमकूपे ब्रह्मांडं तं च तत्परमीश्वरम् ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्णं चापि गोलोकं गोपगोपीसमन्वितम् ॥ तं संस्तूय वरं प्राप ततः सृष्टिं चकार सः ॥ ५७ ॥

मृणालदण्डमें लक्षयुगपर्यंत भ्रमण किया ॥ ५३ ॥ किन्तु किसी प्रकार भी पद्म और मृणाल दण्डका कुछ अन्त नहीं पाया हे वत्स नारद ! तब तुम्हारे पिता अत्यन्त चिंताकुल हो ॥ ५४ ॥ फिर अपने स्थानमें आय श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करने लगे ध्यानयोगके द्वारा दिव्यचक्षुसे प्रथम तो क्षुद्रविराट्का ॥ ५५ ॥ फिर जिनके लोममें ब्रह्माण्ड विराजमान है उन अनन्त जलशय्याशायी महाविराट् ॥ ५६ ॥ और फिर गोपगोपी समन्वित गोलोक विहारी परमेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन किया तब तुम्हारे पिताके गोलोकपतिके स्तुतिवादमें प्रवृत्त होनेपर उन्होंने तुम्हारे पिताको वर दिया इसके पीछे तुम्हारे पिता सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हुए ॥ ५७ ॥

प्रथम तो तुम्हारे पिताके मानससे सनकादि मातृगण और फिर कपालसे एकादश रुद्र उत्पन्न हुए ॥ ५८ ॥ इसके उपरांत उन जलमें सोये हुए क्षुद्रविराट् पुरुषके वामपार्श्वसे विश्वपात चतुर्भुज भगवान् विष्णुकी उत्पत्ति हुई वह श्वेतद्वीपमें जाकर वास करने लगे ॥५९॥ इस ओर तुम्हारे पिता उन क्षुद्रविराट्पुरुष के नाभिपद्ममें स्वर्ग मर्त्य और पाताल इस त्रिभुवनात्मक स्थावर जङ्गम समाकीण विश्वकी सृष्टि करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ६० ॥ हे वत्स नारद! इस प्रकार उन महाविराट्के लोमसे प्रत्येक विश्वकी उत्पत्ति हुई है और प्रतिब्रह्माण्डमेंही एक एक क्षुद्र विराट् एक एक ब्रह्मा एक एक विष्णु एक एक शिव और सनकादि अन्यान्य सम्पूर्ण विद्यमान रहते हैं ॥ ६१ ॥ हे द्विजवर! यह मैंने अतिसुखकर और मोक्षप्रद कृष्णके गुण कहे अब और क्या सुननेकी इच्छा है सो कहो

बभूवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सनकादयः ॥ ततो रुद्रकलाश्चापि शिवस्यैकादश स्मृताः ॥५८॥ बभूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः॥ चतुर्भुजश्च भगवान् श्वेतद्वीपे स चावसत् ॥ ५९ ॥ क्षुद्रस्य नाभिपद्मे च ब्रह्मा विश्वं ससर्ज ह ॥ स्वर्गं मर्त्यं च पातालं त्रिलोकीं सचराचरम् ॥ ६० ॥ एवं सर्वं लोमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च ॥ प्रतिविश्वे क्षुद्रविराड् ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ६१ ॥ इत्येवं कथितं ब्रह्मन्कृष्णसंकीर्तनं शुभम् ॥ सुखदं मोक्षदं ब्रह्मन्किंभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

नारद उवाच ॥ श्रुतं सर्वं मया पूर्वं त्वत्प्रसादात्सुधोपमम् ॥ अधुना प्रकृतीनां च व्यस्तं वर्णय पूजनम् ॥ १ ॥ कस्याः पूजा कृता केन कथं मर्त्यें प्रचारिता ॥ केन वा पूजिता का वा केन का वा स्तुता प्रभो ॥ २ ॥ तासां स्तोत्रं च ध्यानं च प्रभावं चरितं शुभम् ॥ काभिः केभ्यो वरो दत्तस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती ॥ सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पंचधा स्मृता ॥ ४ ॥

॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारदजीने कहा हे प्रभो! मैंने आपके अनुग्रहसे सुधाके समान मधुर पूर्वतन सब वृत्तान्त सुना, अब पंचप्रकृति देवीमें ॥ १ ॥ किसकी किसने किस मंत्रसे पूजा करी है किसने किस प्रकार किसका स्तव किया है? किस प्रकार किसकी पूजा मर्त्यलोकमें प्रचारित हुई है ॥ २ ॥ उनमें प्रत्येकका स्तोत्र, ध्यान प्रभाव और चरित सेवा किस प्रकार है? और किस देवीने किसको किस प्रकार वरदान किया है वह आनुपूर्विक संपूर्ण पृथक् पृथक् वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ नारायणने कहा हे वत्स! सृष्टि विषयमें गणेशजननी दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री यह पंचप्रकृति ही मूल धारा है यह तो सुना है ॥ ४ ॥

इसके अतिरिक्त उनकी पूजाविधि, अद्भुत प्रभाव अपूर्व स्तोत्र और सुधासदृश सर्वमंगलनिदान चरित वेद पुराण और तंत्रादि संपूर्ण शास्त्रोंमें ही प्रसिद्ध हैं अतएव उनके वर्णन करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ ५ ॥ अब जो प्रकृतिके अंश और कलासे उत्पन्न हैं उनके ही शुभचरितका वृत्तान्त आद्योपान्त वर्णन करता हूं सावधान होकर सुनो ॥ ६ ॥ काली, वसुन्धरा, गंगा, षष्ठी, मंगलचण्डिका तुलसी, मनसा, निद्रा, स्वधा, स्वाहा और दक्षिणा यह प्रकृतिका अंश है ॥ ७ ॥ इनका पुण्यदायक श्रवण सुखकर चरित्र उसीके संग जीवोंका कर्मविपाक ॥ ८ ॥ एवं दुर्गा और राधाका अत्यन्त विस्तारित उदारचरितका क्रमानुसार संक्षेपसे वर्णन करूंगा ॥ ९ ॥ सम्प्रति सरस्वतीका वृत्तान्त कहता हूं सुनो हे मुनिवर ! जिन वीणा पाणिके प्रभावसे अज्ञानान्ध मूढपुरुषोंका हृदयाकाश

आसां पूजा प्रसिद्धा च प्रभावः परमाद्भुतः ॥ सुधोपमं च चरितं सर्वं मंगलकारणम् ॥ ५ ॥ प्रकृत्यंशाः कला याश्च तासां च चरितं शुभम् ॥ सर्वं वक्ष्यामि ते ब्रह्मन्सावधानो निशामय ॥ ६ ॥ काली वसुंधरा गंगा षष्ठी मंगल चंडिका ॥ तुलसी मनसा निद्रा स्वधा स्वाहा च दक्षिणा ॥ ७ ॥ संक्षिप्तमासां चरितं पुण्यदं श्रुतिसुन्दरम् ॥ जीवकर्म विपाकं च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम् ॥ ८ ॥ दुर्गाया श्चैव राधाय विस्तीर्णं चरितं महत् ॥ तद्वत्पश्चात्प्रवक्ष्यामि संक्षेपक्रमतः शृणु ॥ ९ ॥ आदौ सरस्वती पूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता ॥ यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खोंभवति पंडितः ॥१०॥ आविर्भूता यथा देवी वक्त्रतः कृष्णयोषितः ॥ इयेषः कृष्णं कामेन कामुकी कामरूपिणी ॥ ११ ॥ स च विज्ञाय तद्भावं सर्वज्ञः सर्वमातरम् ॥ तामुवाच हितं सत्यं परिणामे सुखावहम् ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ भज नारायणं साध्वि मदंशं च चतुर्भुजम् ॥ युवानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तं च मत्समम् ॥१३॥ कामज्ञं कामिनीनां च तासां च कामपूरकम् ॥ कोटिकंदर्पलावण्यलीलालंकृतमीश्वरम् ॥ १४ ॥

भी ज्ञानालोकसे प्रकाशित होता है श्रीकृष्णने सबसे प्रथम उन्हीं देवी सरस्वतीकी पूजा भारतमें अवतीर्ण की है ॥ १० ॥ कामरूपिणी कामुकी देवी सरस्वतीने राधाके जिह्वाग्रभागसे आविर्भूत होकर कामवश कृष्णको ही पति बनानेकी अभिलाषा की ॥११॥ सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्ण तत्काल यह जानकर उस लोकमा तासे परिणाम सुखकर सत्य और पथ्यवचन कहने लगे ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण बोले हे पतिव्रते ! मेरे अंशोत्पन्न चतुर्भज नारायण युवा सुश्री और सर्वगुणान्वित हैं यही क्या ? वरन् मेरे ही समान हैं ॥ १३ ॥ वह ऐश्वरिक गुणसे विभूषित हैं अतएव स्त्रियोंके हृदयकी वासना विलक्षण जानते हैं और वासना पूर्ण भी करते हैं उनके सौन्दर्यकी बात क्या कहूं ? उनके शरीरमें करोड़ कामदेवकी लावण्यता क्रीड़ा करती है ॥ १४ ॥

हे कान्ते ! और यदि मुझको पति बनाकर मेरे निकट वास करनेकी इच्छा करो तो यह तुमको कल्याणदायक नहीं है क्योंकि मेरे समीपस्थ राधा तुम्हारी अपेक्षा प्रबल है ॥ १५ ॥ यदि कोई पुरुष अपेक्षाकृत बलवान् हो तो वह आश्रितपुरुषकी अन्यसे रक्षा करनेमें समर्थ हो सकता है किन्तु यदि उसकी अपेक्षा दुर्बल हो तो स्वयं असमर्थ होकर किस प्रकार दूसरेकी रक्षा कर सकता है ॥ १६ ॥ यद्यपि मैं सर्वेश्वर हूं और सबका शासन करता हूं किन्तु मुझमें राधाको शासन करनेकी सामर्थ्य नहीं है क्योंकि वह क्या प्रभाव ? क्यारूप ?क्या गुण ? सर्वांशमें ही मेरे समान है ॥ १७ ॥ राधाको परित्याग करनेकी भी मुझमें सामर्थ्य नहीं है क्योंकि राधा मेरे प्राणकी अधिष्ठात्री देवता है अतएव कौन पुरुष अपना जीवन विसर्जन करनेमें समर्थ होता है ? यद्यपि पुत्र सबके आदरकी

कांते कांतं च मां कृत्वा यदि स्थातुमिहेच्छसि त्वत्तो बलवती राधा न भद्रं ते भविष्यति ॥ १५ ॥ यो यस्मालवद्वान्वाणि ततोऽन्यं रक्षितुं क्षमः ॥ कथं परान्साधयति यदि स्वयमनीश्वरः ॥ १६ ॥ सर्वेशः सर्वशास्ताऽहं राधां बाधितुमक्षमः ॥ तेजसा मत्समा सा च रूपेण चगुणेन च ॥ १७ ॥ प्राणाधिष्ठातृदेवी सा प्राणां स्त्यक्तुं च कः क्षमः ॥ प्राणतोऽपि प्रियःपुत्रः केषां वास्ति च कश्चन ॥१८॥ त्वं भद्रे गच्छ वैकुण्ठं तव भद्रं भविष्यति ॥ पतिं तमीश्वरं कृत्वा मोदस्व सुचिरं सुखम् ॥ १९ ॥ लोभमोहकाम क्रोधमानहिंसाविवार्जिता ॥ तेजसा त्वत्समा लक्ष्मी रूपेण च गुणेन च ॥ २० ॥ तया सार्धं तव प्रीत्या शश्वत्कालः प्रयास्यति ॥ गौरवं च हरिस्तुल्यं करिष्यति द्वयोरपि ॥ २१ ॥ प्रतिविश्वेषु तां पूजां महतीं गौरवा न्वितताम् ॥ माघस्य शुक्लपंचम्यां विद्यारंभे च सुन्दरि ॥ २२ ॥

सामग्री है किन्तु तो भी क्या प्राणोंसे अधिक प्रियतम हो सकता है ? ॥ १८ ॥ इस कारण हे भद्रे ! तुम वैकुण्ठधाममें जाओ वहां तुमको कल्याणलाभ होगा तुम वैकुण्ठनाथको पतिपाकर चिरकाल सुखपूर्वक विहार कर सकोगी ॥ १९ ॥ यद्यपि लक्ष्मी वहां वास करती हैं किन्तु वह भी तुम्हारे समान काम. क्रोध, लोभ, मोह मद और मात्सर्यके वशीभूत नहीं हैं और क्या रूप, क्या गुण, क्या प्रभाव, सर्वांशमें ही तुम्हारे समान है ॥ २० ॥ अतएव उनके संग परमसुखसे काल व्यतीत कर सकोगी वैकुण्ठनाथहरिभी तुम दोनोंकाही समान आदर करेंगे ॥ २१ ॥ विशेषतः मैं कहता हूं प्रति ब्रह्माण्डमें ही माघमासकी जो शुक्ला पंचमीके दिन विद्यारंभ होता है उस दिनके महामहोत्सवमें ॥ २२ ॥

क्या मनुष्य, क्या मनुगण क्या देवगण, क्या मुमुक्षु मुनि, क्या वसु, क्या योगी, क्यानाग, क्या सिद्ध क्या गंधर्व क्या राक्षस ॥२३॥ सभी जबतक महाप्रलय उपस्थित नहीं होती तबतक प्रतिकल्प कल्पमें भक्तिभावसे षोडशोपचारद्वारा तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ २४ ॥ सब जितेन्द्रिय और संयमी होकर घटमें वा पुस्तकमें तुमको आवाहन करके यजुर्वेदके काण्वशाखोक्त विधानसे ध्यान और स्तवपाठ करके तुम्हारी अर्चना करेंगे॥ २५ ॥ तुम्हारा कवच आठ प्रकार गंधद्रव्यद्वारा भोजपत्रपर लिखसुवर्णके तावीजमें मढ़ाय कंठमें वा दक्षिण भुजामें धारण करें ॥ २६ ॥ विशेष करके विद्वान् पुरुष मात्रही पूजाकालके समय तुम्हारे स्तव पाठमें निरत होंगे इस प्रकार कहकर पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णने स्वयं सरस्वती देवीकी पूजा करी॥२७॥ उसी दिनसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा अनन्त देव, धर्म सनकादि मुनीन्द्र

मानवा मनवो देवा मुनींद्राश्च मुमुक्षवः ॥ वसवो योगिनः सिद्धा नागा गंधर्वराक्षसाः ॥ २३ ॥ मद्वरेण करिष्यंति कल्पेकल्पे लयावधि ॥ भक्तियुक्ताश्च दत्त्वा वै चोपचाराणि षोडश ॥ २४ ॥ कण्व शाखोक्तिविधिना ध्यानेनस्त वनेन च ॥ जितेंद्रियाः संयताश्च घटे च पुस्तकेऽपि च ॥२५॥ कृत्वा सुवर्णगुटिकां गंधचंदनचर्चिताम् ॥ कवचं ते ग्रहीष्यंति कंठे वा दक्षिणे भुजे ॥ २६ ॥ पठिष्यंति च विद्वांसः पूजाकालेच पूजिते ॥ इत्युक्त्वा पूजयामास तां देवी सर्वपूजिताम् ॥ २७ ॥ ततस्तत्पूजनं चक्रुर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ अनंतश्चापि धर्मश्च मुनींद्राः सनकादयः ॥ २८ ॥ सर्वे देवाश्च मुनयो नृपाश्च मानवादयः ॥ बभूव पूजिता नित्या सर्वलोकैः सरस्वती ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ पूजाविधानं कवचं ध्यानं चापि निरंतरम् ॥ पूजोपयुक्तं नैवेद्यं पुष्पं च चंदनादिकम् ॥ ३० ॥ वद वेदविदां श्रेष्ठ श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ वर्तते हृदये शश्वत्किमिदं श्रुतिसुन्दरम् ॥ ३१ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि कण्वशाखोक्तपद्धतिम् ॥ जगन्मातुः सरस्वत्याः पूजाविधिसमन्विताम् ॥ ३२ ॥

गण ॥ २८ ॥ समस्त देव, समस्त मुनि, समस्त राजा और समस्त दानवोंके समाजने सरस्वती देवीकी पूजा आरंभ की है हे वत्स नारद ! इस प्रकार उन अनन्तकालस्थायिनी देवी सरस्वतीकी पूजा तीनों लोकमें प्रचलित हुई है ॥ २९ ॥ नारदजी बोले हे वेदविदाम्बर ! सरस्वती पूजाकी श्रवण मनोहर पद्धति ध्यान, कवच, स्तोत्र और पूजाके उपयुक्त नैवेद्य, पुष्प और चन्दनादि उपचारका ॥३०॥ विषय सुननेके लिये मेरे हृदयमें सदा महाकौतूहल विद्यमान रहता है अतएव आप वह सब कहिये ॥ ३१ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद ! यजुर्वेदके अन्तर्गत काण्वशाखामें जन्मदाता सरस्वतीकी पूजाविधि समन्वित जैसी पद्धति प्रचलित है वह कहता हूं सुनो ॥ ३२ ॥

माघशुक्ला पंचमी वा विद्यारम्भदिनके पहिले दिन संयत हो ॥ ३३ ॥ स्नानके पीछे नित्य कर्मका अनुष्ठान कर कण्वशाखोक्त विधानसे हो अथवा तंत्रोक्त विधानसे हो भक्तिपूर्वक घट स्थापन करे ॥ ३४ ॥ इसके उपरांत प्रथम उस घटमें गणपतिकी पूजा करके फिर जो ध्यान करता हूं उसी ध्यानसे सरस्वतीकी भावना करके आवाहनपूर्वक फिर ध्यान पढ़कर षोडशोपचारसे पूजा करे ॥ ३५ ॥ हे भद्र ! अब वेदमें वा तंत्रमें पूजाकी जिस प्रकार नैवेद्य निर्दिष्ट हुई है ॥३६॥ अपने ज्ञानके अनुसार समस्त कहता हूं सुनो नवनीत दधि, क्षीर, खील, तिल,लड्डू ॥३७॥ गन्ना, इक्षुरस, पका हुआ गुड, मधु, स्वस्तिक (मंगल पिष्ठघृतयुक्त अन्न) शर्करा, सफेद धान्यके अक्षत, तंडुल, ॥३८॥ अस्विन्न शुक्ल धान्यका चिपिटक (बना हुआ पदार्थ) शुक्लमोदक, घृत सैंधव संयुक्त हविष्यान्न

माघस्य शुक्लपंचम्यां विद्यारंभदिनेऽपि च॥पूर्वेऽह्नि समयं कृत्वा तत्राऽह्नि संयतः शुचिः॥३३॥ स्नात्वा नित्यक्रियाः कृत्वा घटं संस्थाप्य भक्तितः॥स्वशाखोक्तविधानेन तां त्रिकेणाऽथवा पुनः ॥ ३४ ॥ गणेशम्पूर्वमभ्यर्च्य ततोऽभीष्टां प्रपूजयेत् ॥ ध्यानेन वक्ष्यमाणेन ध्यात्वा ऽऽवाह्य घटे ध्रुवम् ॥ ३५ ॥ ध्यात्वा पुनः षोडशोपचारेण पूजयेद्व्रती ॥ पूजोपयुक्तनैवेद्यं यच्च वेदे निरूपितम् ॥ ३६ ॥ वक्ष्यामि सौम्य तत्किंचिद्यथाधीतं यथागमम् ॥ नवनीतं दधि क्षीरं लाजांश्च तिललड्डुकम् ॥ ३७ ॥ इक्षुमिक्षुरसं शुक्लवर्णं पक्वगुडं मधु ॥ स्वस्तिकं शर्करा शुक्लधान्यस्याक्षतमक्षतम् ॥३८ ॥ अस्विन्नशुक्लधान्यस्य पृथकं शुक्लमोदकम् ॥ घृतसैंधवसंयुक्तं हविष्यान्नं यथोदितम् ॥ ३९ ॥ यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंयुतम् ॥ पिष्टकं स्वस्तिकस्याऽपिपक्वरंभाफलस्य च ॥ ४० ॥ परमान्नं च सघृतं मिष्टान्नं च सुधोपमम् ॥ नारिकेलं तदुदकं कसेरुं मूलमार्द्रकम्॥४१॥पक्वरंभाफलं चारु श्रीफलं बदरीफलम्॥कालदेशोद्भवं चारु फलं शुक्लंचसंस्कृतम् ॥ ४२ ॥ सुगन्धशुक्लपुष्पं च सुगंधं शुक्लचंदनम् ॥ नवीनं शुक्लवस्त्रं च शंखं च सुन्दरं मुने ॥ ४३ ॥

॥ ३९ ॥ यवचूर्ण वा गोधूम चूर्णका घृत संयुक्त पिष्टक, कसार स्वस्तिक पिष्टक (मंगलदायक मिष्टपदार्थ) स्वस्तिक युक्त पकी हुई केलेकी फलीका पिष्टक ॥४०॥ घृत संयुक्त परमान्न, अमृततुल्य मिष्टान्न, नारियल, नारिकेलोदक, कसेरू, मूली ॥४१॥ अदरक, पकी हुई केलेकी फली अत्युत्कृष्ट श्रीफल, बदरीफल (बेर) और यथाकाल यथा देशोत्पन्न अन्यान्य शुक्लवर्ण सुसंस्कृतफल प्रदान करे ॥ ४२ ॥ हे वत्स नारद ! सुगन्ध शुक्ल पुष्प सुगंधित श्वेतचन्दन नवीन शुक्लवस्त्र मनोहर शंख ॥ ४३ ॥

सफेद फूलोंकी माला, शुक्लहार और सुन्दर भूषण सरस्वतीको प्रदान करे हे महाभाग! वेदमें सरस्वती देवीका जिस प्रकार भ्रम भंजन श्रवणमनोहर ध्यान निर्दिष्ट हुआ है ॥ ४४ ॥ वह कहता हूं सुनो जो सरस्वती शुक्लवर्ण हास्य युक्त मनोहर हैं ॥ ४५ ॥ जिनके शरीरकी प्रभासे करोड चन्द्रमाकी प्रभा भी मलिनता धारण करती है जिनका परिधान अग्नि परीक्षित विशुद्ध पट्टवस्त्र है जिनके हाथमें वीणायंत्र और पुस्तक है ॥ ४६ ॥ जो सर्वोत्कृष्ट रत्नजात नव भूषणोंसे विभूषित है ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादि देवतागण सदा जिनकी पूजा करते हैं ॥ ४७ ॥ जो मुनीन्द्र, मनु और मनुष्योंसे सर्वदा वंदित होती हैं मैं भक्ति भावसे उन्हीं शुक्लवर्ण हास्यानना मनोहरा सरस्वतीकी वन्दना करता हूं विचक्षण पुरुष इस प्रकार ध्यान करके सब द्रव्य मूलमंत्र उच्चारणपूर्वक प्रदान करे ॥ ४८ ॥ फिर स्तवपाठ और कवच धारणपूर्वक पृथ्वीमें गिर कर दंडवत प्रणाम करे हे मुनिवर! यह देवी सरस्वती जिनकी इष्ट देवता है उनकी तो बात

माल्यं च शुक्लपुष्पाणां शुक्लहारं च भूषणम् ॥ यादृशं च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्यं श्रुतिसुन्दरम् ॥ ४४ ॥ तन्निबोध महाभाग भ्रमभंजनकारणम् ॥ सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहराम् ॥ ४५ ॥ कोटिचंद्रप्रभामुष्टपुष्ट श्रीयुक्तविग्रहाम् ॥ वह्निशुद्धां शुकधानां वीणापुस्तकधारिणीम् ॥४६॥ रत्नसारेंद्रनिर्माणनव भूषण भूषिताम् ॥ सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥ ४७ ॥ वंदे भक्त्या वंदितां च मुनींद्रमनुमानवैः ॥ एवं ध्यात्वा च मूलेन सर्वं दत्त्वा विचक्षणः ॥४८॥ संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दंडवद्भुवि ॥ येषां चेयमिष्टदेवी तेषां नित्या क्रिया मुने ॥ ४९ ॥ विद्यारंभे च वर्षान्ते सर्वेषां पंचमीदिने ॥ सर्वोपयुक्तो मूलं च वैदिकाष्टाक्षरः परः ॥ ५० ॥ येषां येनोपदेशो व तेषां स मूल एव च ॥ सरस्वतीचतुर्थ्यंतं वह्निजायांतमेव च ॥५१॥ लक्ष्मी मायादिकं चैव मंत्रोऽयं कल्पपादपः ॥ पुरा नारायणश्चेमं वाल्मीकाय कृपानिधिः ॥ ५२ ॥

ही नहीं ॥ ४९ ॥ इसके अतिरिक्त सर्व साधारणको विद्यारम्भ दिवसमें और वर्षके अन्तमें माघशुक्ला पंचमीके दिन सरस्वतीकी पूजा करनी चाहिये वेदोक्त अष्टाक्षर युक्त मंत्र ही सरस्वतीका मूलमंत्र है ॥ ५० ॥ अथवा जो जिस मन्त्रमें दीक्षित हों वही उनका मूलमंत्र है अतएव निज मूलमंत्रसे हो, वा सरस्वती शब्दमें चतुर्थी मिलाकर अग्नि पत्नी "स्वाहा" पर्यन्त शेष धरकर ॥ ५१ ॥ उसके पहिले प्रणव श्रीं ह्रीं बीज उच्चारण पूर्वक उस मंत्रसे अर्थात् "श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा" इस अष्टाक्षर मंत्रसे सरस्वतीको संपूर्ण वस्तु प्रदान करे लक्ष्मी मायादिक यह मंत्र ही कल्पवृक्ष है अर्थात् कल्पवृक्षके निकटसे जिस प्रकार संपूर्ण अभीष्ट लाभ होता है इस मन्त्रसे भी उसी प्रकार संपूर्ण अभीष्ट लाभ होता है कृपानिधि नारायणने पूर्वकालके समय ॥ ५२ ॥

पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें गंगाके तटपर वाल्मीकिको यह मन्त्र प्रदान किया इसके उपरान्त भृगुने एक समय सूर्य ग्रहणके समय पुष्करतीर्थमें महर्षि शुक्राचार्यको ॥ ५३ ॥ मरीचिने चन्द्रग्रहणके समय बृहस्पतिको, बदरिकाश्रममें ब्रह्माने भृगुको ॥ ५४ ॥ क्षीरोद सागरके तटपर जरत्कारुने आस्तिकको सुमेरु पर्वतमें विभाण्डकने धीमान् ऋष्यशृङ्गको ॥ ५५ ॥ शिवने कणाद और गौतमको सूर्यने याज्ञवल्क्य और कात्यायनको ॥ ५६ ॥ अनन्त देवने पातालतलमें बलि सभामें पाणिनीधीमान् भरद्वाज और शाकटायनको यह मंत्र प्रदान किया था ॥५७॥ इस मंत्रको चार लक्षवार जपनेसे ही मनुष्य सिद्ध होते हैं मंत्र सिद्ध होनेसे ही बृहस्पतिके समान शक्तिशाली हो सकता है ॥ ५८॥ पूर्वकालके समय विश्वस्रष्ट ब्रह्माजीने गंधमादन पर्वतमें भृगुको विश्वजय नामक जो कवच प्रदान किया

प्रददौ जाह्नवीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्यपर्वणि ॥ ५३ ॥ चंद्रपर्वणि मारीचो ददौ वाक्पतये मुदा ॥ भृगौश्चैव ददौ तुष्टो ब्रह्मा बदरिकाश्रमे ॥ ५४ ॥ आस्तिकस्य जरत्कारुर्ददौ क्षीरोदसन्निधौ ॥ विभांडको ददौ मेरावृष्यशृंगाय धीमते ॥ ५५ ॥ शिवः कणादमुनये गौतमाय ददौ मुदा ॥ सूर्यश्च याज्ञवल्क्याय तथा कात्यायनाय च ॥ ५६ ॥ शेषः पाणिनये चैव भारद्वाजाय धीमते ॥ ददौ शाकटायनाय सुतले बलिसंसदि ॥ ५७ ॥ चतुर्लक्षजपेनैव मंत्र सिद्धो भवेन्नृणाम् ॥ यदि स्यान्मंत्रसिद्धो हि बृहष्पतिसमो भवेत् ॥ ५८ ॥ कवचं शृणु विप्रेंद्र यद्दत्तं ब्रह्मणापुरा ॥ विश्वस्रष्ट्रा विश्वजयं भृगवे गन्धमादने ॥५९॥ भृगुरुवाच ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मविदां श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञान विशारद ॥ सर्वज्ञ सर्वजनक सर्वेश सर्वपूजित ॥ ६० ॥ सरस्वत्याश्च कवचं ब्रूहि विश्वजयं प्रभो ॥ आयातयामं मंत्राणां समूह संयुतं परम् ॥ ६१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम् ॥ श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुति पूजितम् ॥६२॥ उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने ॥ रासेश्वरेण विभुना रासे वै रासमंडले ॥ ६३ ॥

था, उसको कहता हूं, सुनो ॥ ५९ ॥ एक समय भृगुने सर्वेश्वर सर्वपूजित ब्रह्मासे कहा, भृगु बोले हे ब्रह्मन् ! आप सब वेद वेत्ताओंमें अग्रणी हैं वेदज्ञान विषयमें आपके समान दूसरा नहीं है ॥६०॥ यही कथा ? आपको अविदित कुछ भी नहीं है, अर्थात् आप सभी जानते हैं, क्योंकि समस्त ही आपसे उत्पन्न हुआ है, अतएव हे प्रभो ! जो निर्दोष और समस्त मंत्र गुणनिष्ठ है आप वही सर्वोत्कृष्ट विश्व विजय नामक सरस्वती कवच मेरे निकट कीर्तन कीजिये ॥६१॥ ब्रह्माजी बोले हे वत्स ! तुमने जो श्रवण मनोहर वेद विहित वेद पूजित सर्वाभीष्टप्रद सरस्वती कवचको पूछा सो कहता हूं सुनो ॥ ६२ ॥ सबसे पहले रासेश्वर विभु श्रीकृष्णने गोलोक धाममें वृन्दावन नामक अरण्यमें रासोत्सवके समय रासमंडलमें वह सरस्वती कवच मुझसे कहा था ॥ ६३ ॥

यह कवच अतीव गोपनीय और कल्पवृक्षके समान अश्रुत अद्भुत मन्त्रोंसे परिपूर्ण है ॥ ६४ ॥ यह कवच पाठ और धारण करके बृहस्पति बुद्धिवेत्ता विषयमें अग्रणी हुए हैं इसी कवचके बलसे शुक्राचार्यने दैत्योंके निकट प्रधानता लाभ की है ॥ ६५ ॥ इसी कवचके पाठसे मुनिवर वाल्मीकिने वाग्मिता लाभ करके कवीन्द्र पदमें आरोहण किया है स्वायंभुवमनु इसको धारण करके सर्वत्र समादृत हुए हैं ॥ ६६ ॥ कणाद, गौतम, कण्व, पाणिनि, शाकटायन, दक्ष, कात्यायन यह सभी इस कवचके प्रभावसे ग्रंथकार पदमें अभिषिक्त हुए हैं ॥ ६७ ॥ कृष्णद्वैपायन वेद व्यासने इस कवचको धारण करके वेद विभाग और अठारह पुराणकी रचना की है ॥ ६८ ॥ शातातप, संवर्त्त वसिष्ठ पराशर और याज्ञवल्क्य सरस्वती कवचको धारण और पाठ करके ग्रंथकार हुए हैं ॥६९॥ ऋष्यशृंग, भरद्वाज,

अतीव गोपनीयं च कल्पवृक्ष समं परम् ॥ अश्रुताद्भुतमंत्राणां समूहैश्च समन्वितम् ॥ ६४ ॥ यद्धृत्वा भगवाञ्छुक्रः सर्वदैत्येषुपूजितः ॥ यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मन्बुद्धि मांश्च बृहस्पतिः ॥६५॥ पठनाद्धारणाद्वाग्मी कवींद्रो वाल्मिको मुनिः ॥ स्वायंभुवो मनुश्चैव यद्धृत्वा सर्वपूजितः ॥ ६६ ॥ कणादो गौतमः कण्व पाणिनिः शाकटायनः ॥ ग्रंथं चकार यद्धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम् ॥ ६७ ॥ धृत्वा वेदविभागं च पुराणान्यखिलानि च ॥ चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनः स्वयम् ॥ ६८ ॥ शातातपश्च संवर्तो वसिष्ठश्च पराशरः ॥ यद्धृत्वा पठना ग्द्रंथं याज्ञवल्क्यश्चकार सः ॥ ६९ ॥ ऋष्यशृंगो भरद्वाजश्चास्तिको देवलस्तथा ॥ जैगीषव्यो ययातिश्च धृत्वा सर्वत्र पूजिताः ॥ ७० ॥ कवचस्यास्य विप्रेंद्र ऋषिरेव प्रजापतिः ॥ स्वयं छंदश्च बृहती देवता शारदांऽबिका ॥ ७१ ॥ सर्वतत्त्वपरिज्ञानसर्वार्थसा धनेषु च ॥ कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ७२ ॥ श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः ॥ श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदाऽवतु ॥ ७३ ॥ ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रे पातु निरंतरम् ॥ ॐ श्रीं ह्रीं भगवत्यै स्वाहा नेत्र युग्मं सदाऽवतु ॥ ७४ ॥

आस्तीक, देवल, जैगीषव्य और ययाति इन सबने इसके ही बलसे सर्वत्र समान आदर लाभ किया है ॥ ७० ॥ हे द्विजवर ! प्रजापति स्वयं इस कवचके ऋषि बृहती इसका छन्द और शारदा अम्बिका इसकी अधिष्ठात्री देवता हैं ॥ ७१ ॥ क्या तत्वार्थज्ञान क्या प्रयोजन सिद्धि क्या समस्त कविता सर्वत्र इसका विनियोग होता है ॥ ७२ ॥ श्री ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा सम्यक् प्रकारसे मेरे शिरकी रक्षा करो श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा मेरे कपालकी ॥ ७३ ॥ ओं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा सर्वदा मेरे दोनों कर्णकी औं श्रीं ह्रीं भगवत्यै स्वाहा सर्वदा मेरे दोनों नेत्र ॥ ७४ ॥

ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा सर्वदा मेरे नासिकाकी ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठात्र्यै देव्यै स्वाहा सदा मेरे ओष्ठकी ॥ ७५ ॥ ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहा मेरी दन्तपंक्तियें यह एकाक्षर मंत्र सदा मेरे कंठकी ॥ ७६ ॥ ॐ श्रीं ह्रीं मेरी ग्रीवाकी श्रीं मेरे दोनों कंधेको ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठात्री देव्यै स्वाहा सदा मेरे वक्षस्थल ॥ ७७ ॥ ॐ ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा मेरी नाभिकी ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहा मेरे दोनों हाथोंकी ॥ ७८ ॥ ॐ सर्ववर्णात्मिकायै स्वाहा मेरेचरणयुगल और ॐ वागधिष्ठात्र्यै देव्यै स्वाहा मेरे सर्वाङ्गकी सदा रक्षा करे ॥ ७९ ॥ ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा मेरे पूर्वदिक् ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मेरे अग्निकोण

ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वदाऽवतु ॥ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा चोष्ठं सदाऽवतु ॥ ७५ ॥ ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दंतपंक्ति सदाऽवतु ॥ ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो मम कंठं सदाऽवतु ॥ ७६ ॥ ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कंधौ मे श्रीं सदाऽवतु ॥ ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु ॥ ७७ ॥ ॐ ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम् ॥ ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम हस्तौ सदाऽवतु ॥ ७८ ॥ ॐ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदाऽवतु ॥ ॐ ह्रीं वागाधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा मां सर्वदाऽवतु ॥ ७९ ॥ ॐ सर्वकंठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदाऽवतु ॥ ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाऽग्निदिशि रक्षतु ॥ ८० ॥ ॐऐंह्रींक्लींसरस्वत्यैबुधजनन्यैस्वाहा ॥ सततंमंत्रराजोऽयं दक्षिणेमांसदाऽवतु ॥ ८१ ॥ ऐंह्रींश्रींत्र्यक्षरोमन्त्रोनैर्ऋत्यांसर्वदाऽवतु ॥ ॐऐं जिह्वाग्रवासिन्यैस्वाहामांवारुणेऽवतु ॥ ८२ ॥ ॐसर्वांबिकायैस्वाहावायव्येमांसदाऽवतु ॥ ॐ ऐंश्रींक्लींगद्यवासिन्यैस्वाहामामुत्तरेऽवतु ॥ ८३ ॥ ऐं सर्वशास्त्रावासिन्यै स्वाहैशान्यां सदाऽवतु ॥ ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वंसदाऽवतु ॥ ८४ ॥ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽधो मां तदाऽवतु ॥ ॐ ग्रंथबीजस्वरूपायै स्वाहा सर्वतोऽवतु ॥ ८५ ॥

॥ ८० ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा मेरे दक्षिणदिक् ॥ ८१ ॥ ऐं ह्रीं श्रीं यह त्र्यक्षरमंत्र मेरे नैर्ऋतकोण ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मेरे पश्चिमदिक् ॥ ८२ ॥ ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा मेरे वायुको ॐ ऐं ह्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा मेरे उत्तरदिक् ॥ ८३ ॥ ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहा मेरे ईशानकोण ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा मेरे ऊर्ध्वभाग ॥ ८४ ॥ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहा मेरे अधोभाग और ॐ ग्रंथबीजस्वरूपायै स्वाहा मेरे समस्त दिक्की रक्षा करे ॥ ८५ ॥

हे वत्स नारद ! यह मंत्र शरीर ब्रह्मस्वरूप विश्वजय नामक कवच तुमसे कहा ॥ ८६ ॥ पूर्व कालके समय मैंने यह कवच गंधमादनपर्वतमें धर्मदेवके मुखसे सुना था अब अतिशय स्नेह होनेके कारण तुमसे कहा किंतु यह कवच कभी किसीके निकट न कहना ॥ ८७ ॥ वस्त्र अलंकार और चन्दनद्वारा यथाविधि गुरुदेवकी अर्चना करके गुरुदेवके चरणमें दण्डवत्प्रणामपूर्वक यह कवच धारण करै ॥ ८८ ॥ फिर लक्षवार जप करनेसे कवच सिद्ध होता है कवचधारी पुरुष कवचके सिद्ध होनेसे ही बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् ॥ ८९ ॥ वाग्मी कवीन्द्र और त्रैलोक्यविजयी होता है अधिक क्या इस कवचके प्रभावसे संपूर्ण जय करनेमें समर्थ होता है ॥ ९० ॥ हे मुने ! और मैंने तुमसे यह काण्वशाखोक्तकवचका विषय कहा, और पूजा विधि ध्यान और वन्दनादिका विषय

इति ते कथितं विप्र ब्रह्ममंत्रौघविग्रहम् ॥ इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम् ॥ ८६ ॥ पुरा श्रुतं कर्मवक्त्रात्पर्वते गंधमादने ॥ तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥ ८७ ॥ गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचंदनैः ॥ प्रणम्य दंडवद्भूमौ कवचं धारयेत्सुधीः ॥ ८८ ॥ पंचलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत ॥ यदि स्यात्सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत ॥ ८९ ॥ महावाग्मी कवींद्रश्च त्रैलोक्य विजयी भवेत् ॥ शक्नोति सर्वं जेतुं च कवचस्य प्रसादतः ॥ ९० ॥ इदं च कण्वशाखोक्तं कवचं कथितं मुने ॥ स्तोत्रं पूजाविधानं च ध्यानं च वदनं शृणु ॥ ९१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ वाग्देव तायाः स्तवनं श्रूयतां सर्वकामदम् ॥ महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव तां पुरा ॥ १ ॥ गुरुशापाच्च स मुनिर्हतविद्यो बभूव ह ॥ तदा ऽऽजगाम दुःखार्तो रविस्थानं सुपुण्यदम् ॥ २ ॥ संप्राप्य तपसा सूर्यं लोलार्के दृष्टिगोचरे ॥ तुष्टाव सूर्यं शोकेन रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥३॥ सूर्यस्तं पाठयामास वेदं वेदांगमीश्वर ॥ उवाच स्तौहि वाग्देवीं भक्त्या च स्मृतिहेतवे ॥ ४ ॥

वर्णन करता हूं सुनो ॥ ९१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद ! पूर्वकालके समय ऋषिवर याज्ञवल्क्यने जिस स्तोत्रसे वाग्देवी सरस्वतीका स्तव किया था इस समय सर्वकामप्रद उन्हीं सरस्वतीका स्तव कीर्त्तन करता हूं सुनो ॥ १ ॥ मुनिवर याज्ञवल्क्य गुरुशापके कारण समस्तवेदादि भूलकर अत्यन्त दुःखित चित्तसे पुण्यप्रद रविस्थानमें गये ॥२॥ वहां कुछ काल तपस्याके पीछे सूर्य देवके नयन गोचर होनेपर अति शोकमें पीडित हो वारंवार रोदन करते करते उनकी स्तुतिमें प्रवृत्त हुए ॥ ३ ॥ तब भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर उनको संपूर्ण वेद और वेदाङ्गशिक्षा प्रदानपूर्वक कहा हे वत्स ! अब तुम स्मरण शक्ति प्राप्तिके लिये भक्ति सहित वाग्देवीका स्तव करो ॥ ४ ॥

दिवाकर यह कहते ही वहांसे अन्तर्धान होगये इधर मुनिवर याज्ञवल्क्य स्नान करके भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाय वाग्देवीके स्तवपाठमें प्रवृत्त हुए ॥ ५ ॥ याज्ञवल्क्यने कहा हे मातः ! गुरुके शापसे मेरी मति भ्रंश हुई है मैं विद्याहीन और तेज हीन होगया हूं मेरे दुःखकी अवधि नहीं है हे जगज्जननी ! मुझपर कृपा करो ॥६॥ मुझको ज्ञान, विद्या, स्मृति, शिष्य बोधिनी शक्ति, ग्रन्थकर्तृत्व और प्रतिभासम्पन्नसुशिष्यत्व प्रदान करो ॥ ७ ॥ जिससे सज्जनोंके समाजमें मेरी भी भलीभांति प्रतिभा और विचार शक्ति प्रसारित हो दैवके दुर्विपाकसे मेरा जो कुछ नष्ट हुआ है ॥ ८ ॥ वह भस्मराशिसमुद्गत बीजांकुरके समान संपूर्ण मेरे उत्पादिका शक्तिशून्य चित्तक्षेत्रमें उदय होकर पुनर्वार नवीनभाव धारण करे हे मातः ! तुम ही ब्रह्मस्वरूपिणी तुमही सर्वश्रेष्ठ तुम ही ज्योतिःस्वरूपा तुम ही सनातनी

तमित्युक्त्वा दीननाथोऽप्यंतर्धानं चकार सः ॥ मुनिः स्नात्वा च तुष्टाव भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥ ५ ॥ याज्ञवल्क्य उवाच ॥ कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हततेजसम् ॥ गुरुशापात्स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनं च दुःखितम् ॥ ६ ॥ ज्ञानं देहि स्मृतिं विद्यां शक्तिं शिष्यप्रबोधिनीम् ॥ ग्रंथकर्तृत्वशक्तिं च सुशिष्यं सुप्रतिष्ठितम्॥ ७ ॥ प्रतिभां सत्सभायां च विचारक्षमतां शुभाम् ॥ लुप्तं सर्वं दैवयोगान्नवीभूतं पुनः कुरु ॥ ८ ॥ यथाऽङ्कुरं भस्मनि च करोति देवता पुनः ॥ ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतिरूपा सनातनी ॥ ९ ॥ सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमोनमः ॥ विसर्गबिंदुमात्रासु यदि धिष्ठानमेव च ॥ १० ॥ तदधिष्ठात्री या देवी तस्यै नीत्यै नमो नमः ॥ व्याख्या स्वरूपा सा देवी व्याख्याधिष्ठातृरूपिणी ॥ ११ ॥ यया विना प्रसंख्यावान्संख्या कर्तुं न शक्यते ॥ कालसंख्या स्वरूपा या तस्यै देव्यै नमोनमः ॥ १२ ॥ भ्रमसिद्धांतरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥ स्मृतिशक्तिज्ञानशक्तिबुद्धिशक्तिस्वरूपिणी ॥ १३ ॥

॥९॥ और तुम ही समस्तविद्याकी अधिष्ठात्री देवी हो इस कारण तुमको वारं वार नमस्कार करता हूं हे मातः ! अनुस्वार विसर्ग और चन्द्रबिंदु जिन वर्णका आश्रय करके रहते हैं ॥१०॥ तुम वही स्वर्णस्वरूपिणी हो अतएव तुमको नमस्कार है. हे मातः तुमही शास्त्रकी व्याख्यास्वरूप और तुमही समस्त व्याख्याकी अधिष्ठात्री देवी हो ॥ ११ ॥ तुम्हारे विना गणितविद्याके पारदर्शी भी किसी विषयकी गणना करनेमें समर्थ नहीं हैं अतएव तुम कालगणनाकी संख्यास्वरूप हो ॥ १२ ॥ तुमही मनुष्योंका भ्रमभंजन करनेवाली सिद्धान्तशक्तिरूप हो अतएव तुमको बारंबार नमस्कार है हे मातः ! तुमही स्मृतिशक्ति, तुमही ज्ञान शक्ति, तुमही बुद्धिशक्ति स्वरूपिणी हो ॥ १३ ॥

तुमही प्रतिभाशक्ति और तुमही कल्पनाशक्ति हो अतएव बारंबार तुमको प्रणाम करते हैं स्वयं सनत्कुमारने भी जब भ्रमयुक्त होकर ब्रह्माजीसे प्रश्न किया ॥ १४ ॥ तब वह उसका सिद्धान्त करनेमें असमर्थ होकर मूकके समान निरुत्तर रहे तब परमात्मारूपी परमेश्वर श्रीकृष्णने वहां उपस्थित होकर ॥ १५ ॥ कहा हे प्रजापते ! तुम अभीष्टदात्री बागीश्वरीका स्तव करो तो तुम्हारा सिद्धान्त स्थिर होगा तब चतुराननने परमेश्वरकी आज्ञानुसार देवी सरस्वतीका स्तव करके ॥ १६ ॥ उनके प्रसादबलसे अति उत्तम सिद्धान्त स्थिर किया एक दिन वसुन्धराने संदिग्ध चित्तसे अनन्त देवके निकट प्रश्न किया ॥ १७ ॥ तब वह भी सिद्धान्त स्थिर करनेमें असमर्थ होकर मूकके समान निरुत्तर रहे अन्तमें महाभीत हो कश्यपकी आज्ञानुसार तुम्हारा स्तव करनेसे ॥ १८ ॥ उनका भ्रम दूर होकर सिद्धान्त स्थिर हुआ जब श्रीवेदव्यासजीने वाल्मीकिके निकट जायकर पुराणसूत्रका विषय पूँछा ॥ १९ ॥ तब मुनिवर बाल्मीकिने

प्रतिभाकल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमो नमः॥सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै ॥ १४॥ बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धांतं कर्तुमक्षमः ॥ तदाऽऽजगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः ॥ १५ ॥ उवाच स च तां स्तौहि वाणीमिष्टां प्रजापते ॥ स च तुष्टाव तां ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः ॥१६॥ चकार तत्प्रसादेन तदा सिद्धांतमुत्तमम् ॥ यदाप्यनंतं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुंधरा ॥१७॥ बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धांतं कर्तुमक्षमः ॥ तदा तां स च तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया ॥१८॥ ततश्चकार सिद्धांतं निर्मलं भ्रमभंजनम् ॥ व्यासः पुराणसूत्रं च पप्रच्छ वाल्मिकिं यदा ॥१९॥ मौनीभूतश्च सस्मार तामेव जगदंबिकाम् ॥ तदा चकार सिद्धांतं तद्वरेण मुनीश्वरः ॥२० ॥ संप्राप्य निर्मलं ज्ञानं भ्रमांध्यध्वंसदीपकम् ॥ पुराणसूत्रं श्रुत्वा च व्यासः कृष्णकुलोद्भवः ॥२१॥ तां शिवां वेद दध्यौ च शतवर्षं च पुष्करे ॥ तदा त्वत्तो वरं प्राप्य सत्कवींद्रो बभूव ह ॥ २२ ॥ तदा वेद विभागं च पुराणं च चकार सः॥यदा महेंद्रः पप्रच्छतत्त्वज्ञानं सदाशिवम् ॥ २३ ॥

हतबुद्धि होकर जगत्की मातास्वरूप तुमको स्मरण किया तुम्हारे प्रसादसे ज्ञान ज्योतिके प्रकाशित होने पर ऋषिवरका भ्रमान्धकार दूर हुआ ॥ २० ॥ तब वह श्रीवेदव्यासके किये प्रश्नके विषयका सिद्धान्त स्थिर करनेमें समर्थ हुए तब कृष्णांशोत्पन्न श्रीव्यासदेवजीने महर्षि बाल्मीकिजीके मुखसे पुराणसूत्रका विषय सुनकर तुम्हारी महिमा जानी ॥ २१ ॥ और फिर पुष्करतीर्थमें जाय शतवर्षपर्यन्त शान्तिदात्री स्वरूप तुम्हारी आराधनामें प्रवृत्त हुए उसके पीछे तुम्हारे प्रसन्न होकर उनको वर देनेसे वह कवीन्द्रपदवीमें आरूढ हुए ॥ २२ ॥ फिर उन्होंने वेदविभाग और अठारह पुराणोंकी रचना करी जब महेन्द्रने सदाशिवसे तत्वज्ञानकी कथा पूछी ॥ २३ ॥

तब सदाशिवने क्षणकाल तुम्हारी चिन्ता करके तत्वज्ञानका उपदेश प्रदान किया फिर एक समय देवराजने सुरुगुरु बृहस्पतिजीके निकट शब्दशास्त्रविषय प्रश्न पूछा ॥ २४ ॥ तब उन्होंने उसके उत्तर देनेमें असमर्थ होकर पुष्कर तीर्थमें जाय देवपरिणामसे हजारवर्ष पर्यन्त तुम्हारी आराधना करके तुमसे वर पाया ॥ २५ ॥ फिर दिव्य सहस्र वर्षपर्यन्त महेन्द्रको शब्दशास्त्र और शब्दशास्त्रार्थ विषयक उपदेश प्रदान करनेमें समर्थ हुए हे सुरेश्वरी ! जो मुनिगण शिष्यको शिक्षा प्रदान करते हैं ॥ २६ ॥ जो स्वयं अध्ययनमें प्रवृत्त होते हैं वह कोई भी प्रथम तुम्हारा स्मरण किये अपने कार्यमें प्रवृत्त नहीं हो सकते कितनेही मुनीन्द्र कितने हीं मनु ॥ २७ ॥ कितने ही दानव कितने हीं दैत्येन्द्र कितने हीं अमर यही क्या ब्रह्मा विष्णु और महादेव पर्यन्त तुम्हारी

क्षणं तामेव संचिंत्य तस्मै ज्ञानं ददौ विभु ॥ पप्रच्छ शब्दशास्त्रं च महेंद्रश्च बृहस्पतिम् ॥ २४ ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं च स त्वां दध्यौ च पुष्करे ॥ तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यवर्ष सहस्रकम् ॥ २५ ॥ उवाच शब्दशास्त्रं च तदर्थं च सुरेश्वरम् ॥ अध्यापिताश्च ये शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः ॥ २६ ॥ ते च तां परिसंचिंत्य प्रवर्तंते सुरेश्वरीम् ॥ त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रैर्मनुमानवैः ॥ २७ ॥ दैत्येंद्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥ जडीभूतः सहस्रास्यः पंचवक्त्रश्चतुर्मुखः ॥ २८ ॥ यां स्तोतुं किमहं स्तौमि तामेकास्येन मानवः ॥ इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥ २९ ॥ प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥ ज्योतीरूपा महामाया तेन दृष्टाऽप्युवाच तम् ॥ ३० ॥ सुकवींद्रो भवेत्युक्त्वा वैकुंठं च जगाम ह ॥ याज्ञवल्क्यकृतं वाणीस्तोत्रमेतत्तु यः पठेत् ॥ ३१ ॥ स कवींद्रो महावाग्मी बृहस्पतिसमो भवेत् ॥ महामूर्खश्च दुर्बुद्धिर्वर्षमेकं यदा पठेत् ॥ ३२ ॥

पूजा और तुम्हारा ही स्तव करते हैं किन्तु विष्णु जब सहस्रमुखसे महादेव पांचमुखसे और ब्रह्मा चार मुखसे ॥ २८ ॥ तुम्हारा स्तव करनेमें जड़ीभूत होते हैं तो फिर मैं सामान्य मनुष्य एक मुखसे क्या स्तव करूं कृतोपवास महर्षि याज्ञवल्क्यने इस प्रकार कहकर भक्तिभावसे मस्तक झुकाय ॥ २९ ॥ देवीको प्रणाम किया और क्षणक्षणमें रुदन करने लगे इस समय फिर उन ज्योतिरूप महामाया सरस्वतीसे नहीं रहा गया उन्होंने उनके समीप आकर कहा ॥३०॥ " हे वत्स ! तुम सुकवीन्द्र होओ " इस प्रकार वर दे वैकुण्ठधामको चली गई जो याज्ञवल्क्यकृत इस सरस्वतीस्तवका पाठ करते हैं॥ ३१ ॥ हे सुकवि वाग्मी और बृहस्पतिके समान बुद्धिशक्ति संपन्न हो सकते हैं यदि महामूर्ख मनुष्य भी एक वर्षतक यह वाणीस्तव पाठ करता है ॥ ३२ ॥

तो वह सहजमें ही सुपंडित मेधावी और सुकवि होनेमें समर्थ होता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
नारायणने कहा हे वत्स नारद ! सरस्वती सदाही वैकुण्ठमें नारायणके निकट वास करती हैं एक दिन गंगाके सहित कलह उपस्थित होनेपर उनके शापके कारण अंशद्वारा सरितरूपसे भारतमें अवतीर्ण हुई ॥ १ ॥ यह भारतमें अतिपावन पुण्यरूपा और पवित्र तीर्थस्वरूपिणी हैं पुण्यवान् मनुष्य इनके तटमें वास करके निरंतर इनकी सेवा करते हैं ॥२॥ यह तपस्वियोंकी तपस्या और तपका फलस्वरूप हैं जो पापस्वरूप काष्ठराशिको आहरण करता है, यह प्रज्वलित हुताशनरूप धारण करके उसकी उस पादरूप काष्ठराशिको भस्म करती हैं ॥ ३ ॥ भारतमें जो ज्ञान सहित सरस्वतीके जलमें कलेवर त्याग करते हैं,

स पंडितश्च मेधावी सुकवींद्रो भवेद्ध्रुवम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ सरस्वती तु वैकुंठे स्वयं नारायणांतिके ॥ गंगाशापेन कलहात्कलया भारते सरित् ॥ १ ॥ पुण्यदा पुण्यरूपा च पुण्यतीर्थस्वरूपिणी ॥ पुण्यवद्भिर्निषेव्या च स्थितिः पुण्यवतां मुने ॥ २ ॥ तपस्विनां तपो रूपा तपसः फलरूपिणी ॥ कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥ ३ ॥ ज्ञानात्सरस्वतीतोयेमृता ये मानवा भुवि ॥ तेषां स्थितिश्च वैकुंठे सुचिरं हरिसंसदि ॥ ४ ॥ भारते कृतपापश्च स्नात्वा तत्र च लीलया ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके वसेच्चिरम् ॥ ५ ॥ चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामक्षयायां दिनक्षये ॥ व्यतीपाते च ग्रहणेऽन्यस्मिन्पुण्यदिनेऽपि च ॥ ६ ॥ अनुषंगेण यः स्नातो हेतुनाऽश्रद्धयाऽपि वा ॥ सारूप्यं लभते नूनं वैकुंठे स हरेरपि ॥ ७ ॥ सरस्वतीमनुं तत्र मासमेकं च यो जपेत् ॥ महामूर्खः कवींद्रश्च स भवेन्नाऽत्र संशयः ॥ ८ ॥

वह सदा वैकुंठके मध्य हरिकी सभामें वास कर सकते हैं ॥ ४ ॥ भारतमें जो पापाचरणकर सरस्वतीजलमें स्नान करते हैं, वह लीलापूर्वकही अपने किये सब पापोंसे छूटकर दीर्घकालतक विष्णुलोकमें वास करते हैं ॥ ५॥ क्या चातुर्मास्यका समय, क्या पूर्णिमा, क्या अक्षया, क्या दिनक्षयसमय, क्या व्यतीपातयोग, क्या ग्रहणकाल, क्या अन्यपुण्यदिन ॥ ६ ॥ वा आनुषङ्गिक जिस किसी कारणसे हो अधिक क्या श्रद्धापूर्वक होनेपर भी सरस्वतीके जलमें केवल एकवार स्नान करनेसे वैकुण्ठधाममें जाकर श्रीहरिकी स्वरूपता लाभ करनेमें समर्थ होते हैं ॥ ७ ॥ एक मासतक सरस्वतीके तटपर वास करके सरस्वतीका मन्त्र जपनेसे महामूर्ख पुरुष भी कवींद्रपदमें प्रतिष्ठित हो सकता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥

दे. भा.
॥२५॥

एकवार मस्तक मुंडन करके सरस्वतीके तटपर वास करके जो पुरुष प्रतिदिन उसमें स्नान करता है उसको फिर गर्भकी यंत्रणा भोगनी नहीं होती ॥ ९ ॥ हे वत्सनारद ! यह तो मैंने भारत के असीम गुणोंमें सुखप्रद कामप्रद और सारभूत कुछेक वर्णन किया, अब और क्या सुननेकी इच्छा है ? सो कहो ॥ १० ॥ सूतजीने कहा हे शौनक ! मुनिवर नारदने नारायणके मुखसे इस प्रकार सुनकर सन्देह दूर होनेके लिये फिर उसी समय जो प्रश्न पूछा था, कहता हूं सुनो ॥ ११ ॥ नारदजी बोले हे प्रभो ! सरस्वती देवी गंगाके संग कलह करके उनके शापसे किस प्रकार स्वीय अंशद्वारा भारतमें पुण्यप्रद संवित् रूपसे अवतीर्ण हुई ॥१२॥ यह श्रुतिसार वृत्तान्त सुननेके लिये मेरा चित्त अत्यन्त उत्सुक हुआ है आपका वचनामृत पान करके किसी प्रकारभी मुझको तृप्ति नहीं होती

नित्यं सरस्वतीतोये यः स्नायान्मुण्डयन्नरः ॥ न गर्भवासं कुरुते पुनरेव स मानवः ॥ ९ ॥ इत्येवं कथितं किंचिद्भारतीगुणकीर्तनम् ॥ सुखदं कामदं सारं भूय किं श्रोतुमिच्छसि ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ नारायणवचः श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः ॥ पुनः पप्रच्छ संदेहमिमं शौनक सत्वरम् ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ कथं सरस्वती देवी गंगाशापेन भारते ॥ कलया कलहेनैव बभूव पुण्यदा सरित् ॥ १२ ॥ श्रवणे श्रुतिसाराणां वर्धते कौतुकं मम ॥ कथाऽमृते न मे तृप्तिः केन श्रेयसि तृप्यते ॥१३॥ कथं शशाप सा गंगा पूजितां तां सरस्वतीम् ॥ सा तु सत्त्वस्वरूपा या पुण्यदा शुभदा सदा ॥ १४ ॥ तेजस्विनीर्द्वयोर्वाद कारणं श्रुति सुंदरम् ॥ सुदुर्लभं पुराणेषु तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १५ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम् ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ १६ ॥ लक्ष्मीः सरस्वतीगंगा तिस्रो भार्या हरेरपि ॥ प्रेम्णा समास्तातिष्ठंति सततं हरिसन्निधौ॥ १७॥

फलतः श्रेयोलाभमें किसका चित्त चरितार्थता लाभ कर सकता है ? ॥ १३ ॥ सरस्वती सामान्य नारी नहीं है, त्रैलोक्यमें सभी उसकी पूजा करते हैं और गंगाभी सत्वगुणप्रधान हैं अतएव उन्होंने सर्वदा सबको पुण्य और शुभदात्री होकर सरस्वतीको किस लिये शाप दिया ॥ १४ ॥ दोनोंही तेजस्विनी थीं, अतएव बलवत् दोनों पक्षके विवादका कारण सुननेसे कानोंमें अमृतधारा वर्षण करता है विशेषकर पुराणमें यह सब वृत्तान्त अत्यन्त दुर्लभ है अतएव आप कृपा करके मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १५ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद ! जिस कथाके सुननेसे संपूर्ण पाप दूर होते हैं वही पुरातन कथा वर्णन करता हूं सुनो ॥ १६ ॥ लक्ष्मी सरस्वती और गंगा यह तीनों नारायणके निकट समान प्रेमसे वास करती हैं ॥ १७ ॥

इनमें गंगा एक दिनहास्य वदन् हो उत्सुक चित्तसे वारंवार नारायणके प्रति कटाक्ष विक्षेप करने लगीं ॥ १८ ॥ प्रभुनारायणभी यह देखकर चकितके समान गंगाकी ओर दृष्टिपात करके कुछेक हँसे यह देखकर लक्ष्मीने तो कुछ अपराध नहीं माना किंतु सरस्वती महाक्रोधित हो गई ॥ १९ ॥ यद्यपि सत्वगुणयुक्त लक्ष्मीजीने हास्यमुख हो उन क्रुद्ध सरस्वतीको अनेक प्रकारसे समझाया किंतु तो भी किसी प्रकार शांति न हुई ॥ २० ॥ वरन् क्रोधसे उनके वदनमण्डलने लोहितराग धारण किया दोनोंनेत्र रक्तवर्ण हो गये वह क्रोधके वश हो कांपने लगी उनके ओष्ठ बराबर प्रस्फुरित होने लगे तब भर्तासे कहने लगी ॥ २१ ॥ जो स्वामी सज्जन धार्मिक और गुणवान् है वह सब भार्याओंकोही समाननेत्रोंसे देखते हैं किंतु धूर्तोंके पक्षमें इसके विपरीत है ॥ २२ ॥ हे गदाधर ! गंगाके

चकार सैकदा गंगा विष्णोर्मुखनिरीक्षणम् ॥ सस्मिता च सकामा च सकटाक्षं पुनः पुनः ॥ १८ ॥ विभुर्जहास तद्वक्त्रं निरीक्ष्य च क्षणं तदा ॥ क्षमां चकार तद्दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैव सरस्वती ॥ १९ ॥ बोधयामास पद्मा तां सत्त्वरूपा च सस्मिता ॥ क्रोधाविष्टा च सा वाणी न च शांता बभूव ह ॥ २० ॥ उवाच वाणी भर्तारं रक्तास्या रक्तलोचना ॥ कंपिता कामवेगेन शश्वत्प्रस्फुरिताधरा ॥२१॥ सरस्वत्युवाच ॥ सर्वत्र समताबुद्धिः सद्भर्तुः कामिनीं प्रति ॥ धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य विपरीता खलस्य च ॥ २२ ॥ ज्ञातं सौभाग्यमधिकं गंगायां ते गदाधर ॥ कमलायां च तत्तुल्यं न च किंचिन्मयि प्रभो ॥ २३ ॥ गंगायाः पद्मया सार्धं प्रीतिश्चाऽस्ति सुसंमता ॥ क्षमां चकार तेनेदं विपरीतं हरिप्रिया ॥ २४ ॥ किं जीवनेन मेऽत्रैव दुर्भगायाश्च सांप्रतम् ॥ निष्फलं जीवनं तस्या या पत्युः प्रेमवंचिता ॥ २५ ॥ त्वां सर्वे सत्त्वरूपं च ये वदंति मनीषिणः ॥ ते च मूर्खा न वेदज्ञा न जानंति मतिं तव ॥ २६ ॥ सरस्वतीवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कोपसंयुताम् ॥ मनसा च समालोच्य स जगाम बहिः सभाम् ॥ २७ ॥

प्रतिही आपका प्रणय पक्षपात है लक्ष्मीके प्रतिभी उससे न्यून नहीं है केवल मैंही उससे वंचित हूं ॥ २३ ॥ इसी कारण गंगा और लक्ष्मीमें परस्पर प्रणय है क्योंकि आपभी लक्ष्मीको प्यार करते हैं अतएव लक्ष्मी यह विपरीतचरण क्यों न सहै ! ॥ २४ ॥ मैं हतभाग्य हूं मेरे जीवनसे क्या प्रयोजन है कारण कि जो स्त्री पति के प्रेमसे वंचित है उसका जीवन विडंबना मात्र है ॥ २५ ॥ जो मनीषिगण आपको सत्वगुणका अधिष्ठाता कहकर निर्देश करते हैं वह कभी पंडितपद वाच्य होनेके योग्य नहीं हैं वह नितान्त मूर्ख हैं उनको कुछभी वेदज्ञान नहीं है वह आपकी मनोवृत्ति जाननेमें एकान्त असमर्थ है ॥ २६ ॥ हे वत्स नारद ! नारायण सरस्वती के वचन सुन और उनको अत्यन्त कोपयुक्त जान क्षण काल चिन्ताके पीछे अन्तःपुरसे बाहर गये ॥ २७ ॥

इस ओर वागीश्वरी सरस्वती नारायणके जानेसे निर्भयचित्त हो क्रोधमें भर असहनीय कटुवचनोंके द्वारा गंगासे कहने लगी ॥२८ ॥ रे निर्लज्जे ! कामातुरे ! तू स्वामीके सौभाग्यका गर्व करती है स्वामी तेरे प्रति अत्यन्त प्रणय प्रकाश करते हैं वही जताती है ॥२९ ॥ तू बड़ी पतिसोहागिनी हुई है आज तेरा दर्प चूर्ण करूंगी ! आज देखती हूं तेरे हरि मेरा क्या करेंगे ? ॥ ३० ॥ यह कहतेही जब सरस्वती गंगाके केशाकर्षण अर्थात बाल खैंचनेमें उद्यत हुई, तब लक्ष्मीने दोनोंकी मध्यवर्तिनी होकर निवारण किया ॥ ३१ ॥ वाणी (सरस्वती)गंगाके बाधा देनेसे इतनी प्रबल होगई कि उस काल उसको कुछभी हिताहितका विचार नहीं रहा, वरन् उसने क्रोधसे अधीरहो यह कहकर शाप दिया कि हे पद्मे ! तुमने जब गंगाके अन्यान्य आचरण वा पक्षपात वशसे कुछ बात न

गते नारायणे गंगामुवाचे निर्भयं रुषा ॥ वागधिष्ठातृदेवी सा वाक्यं श्रवणदुष्करम् ॥ २८ ॥ हे निर्लज्जे हे सकामे स्वामिगर्वं करोषि किम् ॥ अधिकं स्वामिसौभाग्यं विज्ञापयितुमिच्छसि ॥२९॥ मानं चूर्णं करिष्यमि तवाऽद्य हरिसन्निधौ ॥ किं करिष्यति ते कान्तो ममैवं कांतवल्लभे ॥ ३० ॥ इत्येवमुक्त्वा गंगायाः केशं ग्रहीतुमुद्यता ॥ वारयामास तां पद्मा मध्यदेशं समाश्रिता ॥ ३१ ॥ शशाप वाणी तां पद्मां महाबलवती सती ॥ वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः ॥ ३२ ॥ विपरीतं यतो दृष्ट्वा किंचिन्नो वक्तुमर्हसि ॥ संतिष्ठति सभामध्ये यथा वृक्षो यथा सरित् ॥ ३३ ॥ शापं श्रुत्वा तु सा देवी न शशाप चुकोप ह ॥ तत्रैव दुःखिता तस्थौ वाणीं धृत्वा करेण च ॥ ३४ ॥ अत्युन्नतां तु तां दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरिताधराम् ॥ उवाच गंगा तां देव पद्मां चारक्त लोचनाम् ॥ ३५ ॥ श्रीगंगोवाच ॥ त्वामुत्सृज महोग्रा च पद्मां किं मे करिष्यति ॥ दुःशीला मुखरा नष्टा नित्यं वाचालरूपिणी ॥ ३६ ॥ वागधिष्ठात्री देवीयं सततं कलहप्रिया ॥ यावती योग्यता चास्यायावती शक्तिरेव च ॥ ३७ ॥

कहकर वृक्ष तथा सरित्के समान जड़भावसे स्थित रही तो मैं कहती हूं कि शीघ्र तुमको वृक्ष और सरित्स्वरूप धारण करना होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ ॥३३॥ लक्ष्मीने सरस्वतीकी बात सुनकर कुछभी क्रोध नहीं किया केवल दुःखितहो सरस्वतीका हाथ पकड़कर निस्तब्धभावसे अवस्थान करने लगी ॥३४॥ इस समय गंगाकेभी कोपसे वारंवार ओष्ठाधर कांपनेलगे फिर लाललाल नेत्र कर सरस्वती को क्रोधमें अत्यन्त उन्मत्त देख लक्ष्मीसे कहा ॥३५॥ गंगा बोली हे पद्मे ! तुम इस दुष्टस्वभावा मुखराको छोड दो,यह दुःशीला वाचाल हमारा क्या करेगी ? ॥ ३६ ॥ यह वाक्यकी अधिष्ठात्री होनेसे केवल सदा कलहही करती हैं उस दुर्मुखीका जितना प्रभाव है जितनी शक्ति है ॥ ३७ ॥

मेरे संग विवाद करके देख ले वह अपना बल कितना और मेरा बल कितना है ? यह जानने की इच्छा करती है ॥ ३८ ॥ अतएव उपेक्षाको छोड सब हम दोनों पराक्रम और प्रभाव देखो इस प्रकार कहकर गंगाने सरस्वतीको शाप देनेमें उद्यत हो लक्ष्मीसे कहा ॥ ३९ ॥ हे सखि पद्मे ! उसने जब तुमको सरिद्रूपिणी होनेका शाप दिया तब मैं भी कहती हूं कि, जहां पापी हैं वहां मृत्यु जो लोक नीचे है गमन करे ॥४०॥ उसको भी सरित्रूप धारण करके पापियोंके निवासस्थान मर्त्यलोक जाकर कलियुगमें उनके पापग्रहण करना हो यह सुनकर सरस्वतीने भी शाप दिया ॥४१॥ तुम भी पृथ्वीमें जाकर पापियोंका पाप ग्रहण करो. हे वत्स नारद ! इसी प्रकार कलह हो ही रहा था कि इसी समय भगवान् आये ॥ ४२ ॥ चतुर्भुजमूर्ति सर्वज्ञ भगवान् हरि चतुर्भुज चार पार्षदोंके

तथा करोतु वादं च मया सार्धं च दुर्मुखी ॥ स्वबलं यन्मम बलं विज्ञापयितुमिच्छति॥३८॥जानंतु सर्वे ह्युभयोः प्रभावं विक्रमं सति ॥ इत्येवमुक्त्वा सा देवी वाण्यै शापं ददाविति ॥३९॥ सरित्स्वरूपा भवतु सा या त्वां च शशाप ह ॥ अधो मर्त्यं सा प्रयातु संति यत्रैव पापिनः॥४०॥कलौ तेषां च पापानि ग्रहीष्यंति न संशयः॥इत्येवं वचनं श्रुत्वा तां शशाप सरस्वती॥४१॥त्वमेव यास्यसि महीं पापिपापं लभिष्यसि ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र भगवानाजगामः ह ॥४२॥ चतुर्भुजश्चतुर्भिश्च पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ॥ सरस्वतीं करे धृत्वा वासयामास वक्षसि ॥ ४३ ॥ बोधयामास सर्वज्ञः सर्वज्ञानं पुरातनम् ॥ श्रुत्वा रहस्यं तासां च शापस्य कलहस्य च ॥ ४४ ॥ उवाच दुःखितास्ताश्च वाचं सामयकीं विभुः ॥ श्रीभगवान् उवाच ॥ लक्ष्मि त्वं कलया गच्छ धर्मध्वजगृहं शुभे ॥ ४५ ॥ अयोनिसंभवा भूमौ तस्य कन्या भविष्यसि ॥ तत्रैव दैवदोषेण वृक्षत्वं च लभिष्यसि ॥ ४६ ॥ मदंशस्यासुरस्यैव शंखचूडस्य कामिनी ॥ भूत्वा पश्चाच्च मत्पत्नी भविष्यसि न संशयः॥४७॥त्रैलोक्यपावनी नाम्ना तुलसीति च भारते ॥ कलया च सरिद्भावं शीघ्रं गच्छ वरानने॥४८॥

सहित वहां आकर उपस्थित हुए और सरस्वतीको हाथ पकड़ हृदयसे लगाकर ॥४३॥ पुराना रहस्य कहने लगे तब वह अपने२शापदान और कलहका कारण जानकर ॥४४॥ अत्यन्त दुःखित हुई इसी समय भगवान् हरि समयोचित वचन द्वारा एकादिक्रमसे उनसे सब कहने लगे भगवान् बोले हे लक्ष्मि ! तुम अंशसे मर्त्यलोकमें धर्मध्वज राजाके घर ॥ ४५ ॥ अयोनिसंभवा कन्यारूपमें जन्म लोगी वहां भाग्यके दोषसे तुमको वृक्षत्व लाभ करना होगा ॥ ४६ ॥ वहां मेरे अंशसे उत्पन्न असुरेन्द्र शंखचूड़नामक तुम्हारा पाणिग्रहण करेगा फिर तुम यहां आकर जिस प्रकार मेरी पत्नी हैं उसी प्रकार रहोगी इसमें संदेह नहीं ॥ ४७ ॥ भारतमें जाकर तुम त्रैलोक्यपावनी तुलसीनामसे विख्यात होगी हे वरानने ! शीघ्र भारतमें जाय अंशके द्वारा सरित्रूपसे ॥ ४८ ॥

अवतीर्ण होकर पद्मावती नामसे विख्यात होओ हे गंगे ! तुमको भी सरस्वतीके शापसे मेरे अंशसे ॥४९॥ भारतमें भारतवासियोंके पाप दूर करनेको विश्वपावनी सरित्‌रूपसे अवतीर्ण होना पड़ेगा भगीरथके तपसे अनेक आराधना करके तुमको ले जानेसे ॥ ५० ॥ तुम भूलोकमें पूततमा भागीरथी नामसे विख्यात होगी वहां मेरे अंशसम्भूत समुद्र ॥ ५१ ॥ और मेरे अंशसे उत्पन्न राजा शन्तनु तुम्हारे पति होंगे हे भारती ! गंगाके शापसे तुमभी भारतमें जाकर अंशसे अवतीर्ण होवो ॥ ५२ ॥ दोनों सपत्नीके सहित कलहका फल भोगो, हे भद्रे ! तुम स्वयं पूर्णस्वरूपसे ब्रह्मसदनमें जाकर ब्रह्माकी पत्नी होओ ॥ ५३ ॥ गंगा भी पूर्णरूपसे शिवके समीप जाय और पद्मा मेरेही निकट रहे पद्मा अत्यंत शांतप्रकृति क्रोधरहित मद्भक्तिपरायण और सत्वगुणावलम्बिनी है ॥ ५४ ॥ पद्माके समान

भारतं भारतीशापान्नाम्ना पद्मावती भव ॥ गंगे यास्यसि पश्चात्त्वमंशेन विश्वपावनी ॥ ४९ ॥ भारतं भारतीशापात्पाप दाहाय पापिनाम् ॥ भगीरथस्य तपसा तेन नीता सुकल्पिते ॥ ५० ॥ नाम्ना भागीरथी पूजा भविष्यसि महीतले ॥ मदंशस्य समुद्रस्य जाया जायेर्ममाज्ञाया ॥ ५१ ॥ मत्कलांशस्य भूपस्य शंतनोश्च सुरेश्वरि ॥ गंगाशापेन कलया भारतं गच्छ भारति ॥ ५२ ॥ कलहस्य फलं भुंक्ष्व सपत्नीभ्यां सहाच्युते ॥ स्वयं च ब्रह्मसदने ब्रह्मणः कामिनी भव ॥ ५३ ॥ गंगा यातु शिवस्थानमत्र पद्मैव तिष्ठतु ॥ शांता च क्रोधरहिता मद्भक्ता सत्त्वरूपिणी ॥ ५४ ॥ महासाध्वी महाभागा सुशीला धर्मचारिणी ॥ यदंशकलया सर्वा धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः ॥ ५५ ॥ शांतरूपाःसुशीलाश्च प्रतिविश्वेषु पूजिताः ॥ तिस्रो भार्यास्त्रिशीलाश्च त्रयो भृत्याश्च बांधवाः ॥ ५६ ॥ ध्रुवं वेदविरुद्धाश्च न ह्येते मंगलप्रदा ॥ स्त्री पुंवच्च गृहे येषां गृहीणां स्त्रीवशः पुमान् ॥ ५७ ॥

साध्वी सच्चरित्रा भाग्यवती और धर्मचारिणी अतिविरल हैं जो स्त्रियें पद्माके अंशसे जन्म ग्रहण करती हैं वह सब अतिशय धार्मिका और पतिपरायण होती हैं ॥ ५५ ॥ अधिक क्या ? शान्तस्वभाव और सुशीलकामिनियोंका सर्वत्र समान आदर होता है क्या तीन भार्या क्या तीन भृत्य क्या तीन बांधव ॥ ५६ ॥ भिन्न स्वभावके तीन जन एकत्र बैठाना निषिद्ध है और वेदविरुद्ध है क्योंकि तीन जन कभी एकस्वभावके नहीं हो सकते अतएव भिन्नप्रकृति तीन जनोंका एकत्र वास कभी मंगल दायक नहीं है जिस घरमें पुरुषके समान स्त्रियोंका आधिपत्य प्रबल है और पुरुष स्त्रीके वशीभूत हैं ॥ ५७ ॥

उनका जन्म निष्फल है और पद पदमें उनको अशुभ संघटित होते हैं जिसकी स्त्री मुखदुष्ट योनिदुष्ट और कलहप्रिय है ॥ ॥ ५८ ॥ उसको निबिडवनमें चला जाना ही श्रेष्ठ है. क्योंकि ऐसे व्यक्तिके पक्षमें महावन घरकी अपेक्षा सुखका स्थान होता है वह मनुष्य घरमें पैर धोनेको जल बैठनेका स्थान भक्षणार्थ फल इत्यादि कुछ नहीं पाता ॥ ५९ ॥ किन्तु वनमें उसको किसी वस्तुका अभाव नहीं होता दुष्टा स्त्रीके संग रहनेकी अपेक्षा हिंसक जंतुओंमें वास वा अग्निमें प्रवेश करना उत्तम है ॥६०॥ परन्तु दुष्ट स्त्रीके समीप अवश्य घोर दुःख है हे वरानने! यद्यपि व्याधियंत्रण (रोगजनित कष्ट) वा विषयकी ज्वाला सहन हो सकती है ॥ ६१ ॥ किंतु दुष्टा स्त्रीके वाक्यकी यंत्रणा नहीं सही जाती अधिक क्या उसकी अपेक्षा मृत्युही श्रेष्ठ है जो स्त्रीके अत्यंत वशीभूत हैं, यह निश्चय जानो कि जबतक वह चितामें नहीं जायँगे तबतक उनके मन शांत न होंगे ॥ ६२ ॥ वह प्रतिदिन जिस कार्यका अनुष्ठान करते हैं उससे

निष्फलं च जन्म तेषामशुभं च पदेपदे ॥ मुखे दुष्टा योनिदुष्टा यस्य स्त्री कलहप्रिया ॥ ५८ ॥ अरण्यं तेन गंतव्यं महारण्यं गृहाद्वरम् ॥ जलानां च स्थलानां च फलानांप्राप्तिरेव च ॥५९॥ सततं सुलभा तत्र न तेषां गृह एव च॥ वरमग्नौ स्थितिर्हिंस्र जंतूनां सन्निधौ सुखम् ॥ ६० ॥ ततोऽपि दुःखं पुंसां च दुष्टस्त्रीसन्निधौ ध्रुवम् ॥ व्याधिज्वाला विषज्वाला वरं पुंसां वरानने ॥ ६१ ॥ दुष्टस्त्रीणां मुखज्वाला मरणादतिरिच्यते ॥ पुंसां च स्त्रीजितां चैव भस्मांतं शौचमध्रुवम् ॥ ६२ ॥ यदह्नि कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥ निंदितोऽत्रपरत्रैव सर्वत्र नरकं व्रजेत् ॥ ६३ ॥ यशःकीर्तिविहीनो यो जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ बह्वीनां च सपत्नीनां नैकत्र श्रेयसे स्थितिः ॥ ६४ ॥ एकभार्यः सुखी नैव बहुभार्यः कदाचन ॥ गच्छ गंगे शिवस्थानं ब्रह्मस्थानं सरस्वति ॥ ६५ ॥ अत्र तिष्ठतु मद्गेहे सुशीला कमलालया ॥ सुसाध्या यस्य पत्नी च सुशीला च पतिव्रता ॥ ६६ ॥

किसी प्रकार वह फलभागी नहीं हो सकते उनका इस लोक वा परलोक कहीं भी यश नहीं है वरन् चरमावस्थामें नरक प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ जिसका यश वा कीर्ति नहीं है उसका जीवन विडम्बना मात्र है बहुत सपत्नियोंका एकत्र रहना कभी मंगलका निमित्त नहीं है ॥ ६४ ॥ केवल एक स्त्री ग्रहण करके जब मनुष्य सुखी नहीं हो सकता तब बहुत भार्यावाले पुरुषको जो कष्ट होता है उसमें फिर कहना ही क्या है. हे गंगे! तुम शिवके समीप और सरस्वती! तुम ब्रह्माके घर जाओ ॥ ६५ ॥ केवल कमलवासिनी सुशीला कमला मेरे निकट रहे जिसकी पत्नी पतिव्रता सुशीला और आज्ञाकारिणी है ॥ ६६ ॥

उसको इस लोकमें सुख और धर्म एवं परकालमें मुक्तिलाभ होता है फलतः जिसकी स्त्री पतिव्रता है वह सर्वान्तःकरणसे सुख भोग करता है यही नहीं वरन् वह जीवन्मुक्त है ॥ ६७ ॥ और जिसकी स्त्री दुश्चरित्रा है इस लोकमें सर्वान्तःकरणके सहित उसको केवल दुःख ही भोगना पड़ता है अधिक क्या उसको जीवन्मृत कहनेसे भी अन्योक्ति नहीं होती ॥ ६८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद ! जब जगन्नाथ श्रीकृष्ण इस प्रकार कहकर मौन (चुप) हुए, तब लक्ष्मी सरस्वती और गंगा परस्परको आलिंगन करके अत्यन्त रुदन करने लगीं ॥ १ ॥ अनन्तर वह सब जगदीश्वर श्रीकृष्णकी ओर देखकर कम्पित गात्र हो शोक और भयसे आंसु बहाती हुई क्रमानुसार उनसे अपने मनका भाव कहने

इहस्वर्गे सुखं तस्य धर्मो मोक्षः परत्र च ॥ पतिव्रता यस्य पत्नी स च मुक्तः शुचि सुखी ॥ ६७ ॥ जीवन्मृतोऽशुचिर्दुःखी दुःशीला पतिरेव च ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम च नारद ॥ अतीव रुरुदुर्देव्य समालिंग्य परस्परम् ॥ १ ॥ ताश्च सर्वाः समालोक्य क्रमेणो चुस्तदेश्वर ॥ कंपिता साश्रु नेत्राश्च शोकेन चभयेन च ॥२॥ सरस्वत्युवाच ॥ विशापं देहि हे नाथ दुष्टमाजन्मशोचनम् ॥ सत्स्वामिना परि त्यक्ताः कुतो जीवंति ताः स्त्रियः ॥ ३ ॥ देह त्यागं करिष्यामि योगेन भारते ध्रुवम् ॥ अत्युन्नतो हि नियतं पातुमर्हति निश्चितम् ॥ ४ ॥ गंगोवाच ॥ अहं केनापराधेन त्वया त्यक्त्वा जगत्पते ॥ देहत्यागं करिष्यामि निर्दोषाया वधं लभ ॥ ५ ॥ निर्दोषकामिनीत्यागं करोति यो नरो भुवि ॥ स याति नरकं घोरं किंतु सर्वेश्वरोऽपि वा ॥ ६ ॥

लगीं ॥ २ ॥ प्रथम तो सरस्वतीने कहा हे नाथ! हमारे इस आजन्म पर्यंत क्लेशप्रद अति कठोर शापके छूटनेका क्या उपाय है? अबलागण क्या कभी अनुकूलपतिके त्यागनेपर जीवनधारण कर सकती हैं ॥ ३ ॥ हे नाथ ! मैं निश्चय कहती हूं कि, मैं भारतमें जाकर योगावलम्बनपूर्वक इस देहको विसर्जन करूंगी, महात्मा लोग निःसन्देह सदा सबकी रक्षा करतेहैं ॥ ४ ॥ फिर गंगाने कहा हे जगत्पते ! आपने किस अपराधसे मुझको त्याग किया ? मैं शरीर परित्याग करूंगी इस समय आप इस दोष विहीन रमणीके वधभागी हुए ॥ ५ ॥ इस भूमण्डलमें जो मनुष्य निरपराध स्त्रीको परित्याग करता है वह यद्यपि सर्वेश्वर हो किंतु तो भी उसको नरकगामी होना पड़ता है ॥ ६ ॥

पद्माने कहा हे नाथ! आप पूर्णसत्वगुणस्वरूप हैं. क्या आश्चर्य है कि, आपके शरीरमें किस प्रकार क्रोधका संचार हुआ? जो हो आप सरस्वती और गंगापर प्रसन्न हूजिये. क्योंकि क्षमा ही सत्पतिका प्रधान गुण है ॥ ७ ॥ और सरस्वतीने जब मुझको शाप दिया है तब मैं इसी समय भारतमें जानेको प्रस्तुत हूं किंतु मुझको कितने कालतक वहां रहना होगा ? कितने दिनोंमें आपके चरणकमलोंका दर्शन प्राप्त होगा ॥ ८ ॥ पापीगण सदा स्नान और अवगाहन द्वारा मेरे जलमें पापरूपी कीचड धोवेंगे तब किस उपायद्वारा उससे छूटकर फिर आपके चरण कमलोंका दर्शन पाऊंगी ॥९॥ जब मैं अंशसे धर्मध्वजकी दुहिता हूंगी तब मुझको कितने दिन पीछे आपका दर्शन प्राप्त होगा ॥ १० ॥ कितने दिन मुझको आपका अधिष्ठानभूत तुलसी वृक्षरूप धारण करके अवस्थान करना होगा ?

पद्मोवाच ॥ नाथ सत्त्वस्वरूपस्त्वं कोपः कथमहो तव ॥ प्रसादं कुरु भार्ये द्वे सदीशस्य क्षमा वरा ॥ ७ ॥ भारते भारती शापाद्या स्यामि कलयाह्ययम् ॥ कियत्कालं स्थितिस्तत्र कदा द्रक्ष्यामि ते पदम् ॥ ८ ॥ दास्यंति पापिनः पापं सद्यः स्नानावगाहनात् ॥ केन तेन विमुक्ताऽहमागमिष्यामि ते पदम् ॥ ९ ॥ कलया तुलसीरूपं धर्मध्वजसुता सती ॥ भुक्त्वा कदा लभिष्यामि त्वत्पदांबुजमच्युत ॥ १० ॥ वृक्षरूपा भविष्यामि त्वदधिष्ठातृ देवता ॥ समुद्धरिष्यसि कदा तन्मे ब्रुहि कृपानिधे ॥११॥ गंगा सरस्वतीशापाद्यदि यास्यति भारते ॥ शापेन मुक्ता पापाच्च कदा त्वां च लभिष्यति ॥ १२ ॥ गंगाशापेन वा वाणी यदि यास्यतिभारतम् ॥ कदा शापाद्विनिर्मुच्य लभिष्यति पदं तव ॥ १३ ॥ तां वाणीं ब्रह्मसदनं गंगां वा शिवमन्दिरम् ॥ गन्तुं वदसि हे नाथ तत्क्षमस्व च ते वचः ॥ १४ ॥ इत्युक्त्वा कमला कांतपादं धृत्वा ननाम सा ॥ स्वकेशैर्वेष्टनं कृत्वा रुरोद च पुनः पुनः ॥ १५ ॥

हे कृपानिधे! कहो कितने दिनोंमें मेरा उद्धार करोगे ॥ ११ ॥ भारतीके शापसे यदि गंगाको भारतमें अवतीर्ण होना पड़े तो शापसे और आपसे छूटकर कितने दिन पीछे आपका दर्शन कर सकती हैं ॥ १२ ॥ और यदि गंगाके शापसे सरस्वती भारतमें गमन करे तो उसके शापावसानमें कितना विलम्ब होगा ? कितने दिन पीछे आपके चरणोंका दर्शन करनेमें समर्थ होंगी ? ॥ १३ ॥ इसके अतिरिक्त सरस्वतीको ब्रह्मसदनमें और गंगाको शिवसदनमें जानेकी अनुमति दी सो इस विषयमें क्षमा कीजिये ॥ १४ ॥ हे वत्स नारद ! देवी कमला जगन्नाथसे यह बात कहकर उनके चरणकमलोंमें गिर गई और अपने केशोंसे उनके चरण वेष्टन करके वारंवार रोदन करने लगी ॥ १५ ॥

दे. भा.
॥२९॥

इसी समय भक्तानुग्रहकातर पद्मनाभ हरिने हास्यमुख और प्रसन्न चित्त हो पद्माको हृदयसे लगाकर कहा भगवान् बोले हे सुरेश्वरी! अपने वचनकी रक्षाकरके तुम्हारे कथनानुसार कार्य करूंगा, हे कमललोचने! जिस प्रकारसे दोनों बातोंकी रक्षा हो वह कहता हूं सुनो ॥ १६ ॥ सरस्वती एकांशसे नदीरूप धारण करके भारतमें और अर्धांशसे ब्रह्माके समीप वास करे और पूर्णांशसे वैकुण्ठमें मेरे समीप विद्यमान रहे ॥ १७ ॥ भगीरथके यत्नसे त्रिभुवन पूत (पवित्र) कर नेके लिये गंगाको एकांशसे भारतमें जाना होगा ॥ १८ ॥ और एकांशसे चन्द्रशेखरकी दुर्लभ जटामें स्थान लाभ करके स्वभावसे जिस प्रकार पवित्र हैं, उससे भी अधिक पवित्र होगी और पूर्णांशसे मेरे समीप अवस्थान करे ॥ १९ ॥ हे वामलोचने पद्मे ! तुम सबकी अपेक्षा निरपराध हो अतएव तुम्हारा अंशका

" उवाच पद्मनाभस्तां पद्मां कृत्वा स्ववक्षसि ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकातरः ॥ १ ॥ " ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वद्वाक्यमाचरिष्यामि स्ववाक्यं च सुरेश्वरि ॥ समतां च करिष्यामि शृणु त्वं कमलेक्षणे ॥ १६ ॥ भारतीयातु कलया सरिद्रूपा च भारते ॥ अर्धा सा ब्रह्मसदनं स्वयं तिष्ठतुमद्गृहे ॥ १७ ॥ भगीरथेन सा नीता गंगा यास्यति भारते ॥ पूतं कर्तुं त्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे ॥ १८ ॥ तत्रैव चंद्रमौलेश्च मौलिं प्राप्स्यति दुर्लभम् ॥ ततः स्वभावतः पूताऽप्यतिपूजा भविष्यति ॥ १९ ॥ कलांशांशेन गच्छ त्वं भारते वामलोचने ॥ पद्मावती सरिद्रूपा तुलसी वृक्षरूपिणी ॥ २० ॥ कलेः पंचसहस्रे च गते वर्षे च मोक्षणम् ॥ युष्माकं सरितां चैव मद्गेहे चागमिष्यथ ॥ २१ ॥ संपदा हेतुभूता च विपत्तिः सर्वदेहिनाम् ॥ विना विपत्तेर्महिमा केषां पद्मभवे भवेत् ॥ २२ ॥ मन्मन्त्रोपासकानां च सतां स्नानावगाहनात् ॥ युष्माकं मोक्षणं पापाद्दर्शनात्स्पर्शनात्तथा ॥ २३ ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि संत्यसंख्यानि सुन्दरि ॥ भविष्यंति च पूतानि मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ २४ ॥

अंश भारतमें पद्मावती नामक नदी और तुलसी वृक्षरूपमें परिणत होवे ॥ २० ॥ कलिके पांच हजार वर्ष बीतनेपर तुम शापसे छूटोगी तब फिर तुम मेरे गृहमें आसकोगी ॥ २१ ॥ हे पद्मे ! विपत्तिही देहधारियोंकी सम्पत्तिका निदान है संसार में विपत्तिके विना कोई सम्पद्का गौरव नहीं समझ सकता ॥ २२ ॥ मेरे मंत्रोपासक जो साधु पुरुष तुम्हारे जलमें स्नान और अवगाहन करेंगे उनके दर्शन और स्पर्शनसे तुम्हारा पाप छूट जायगा ॥२३॥ हे सुन्दरि ! मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शनसे भूलोक स्थित संपूर्ण तीर्थ पवित्र होंगे ॥ २४ ॥

भा. टी. न.
अ० ७

सुपवित्रधराका उद्धार और पवित्रता साधन करनेके लिये मेरे मंत्रो पासक अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ सब वैष्णव शाक्त और गाणपत्यादि संपूर्ण भक्त भारतमें वास करते हैं ॥ २५ ॥ मेरे भक्त वहां अवस्थान करके पैर धोते हैं वह स्थान निःसन्देह पवित्र तीर्थ कहकर परिगणित होते हैं ॥ २६ ॥ यही क्या ! मेरे भक्तोंके स्पर्श और दर्शनसे स्त्री हत्या गोहत्या और ब्रह्महत्याकारी एवं कृतघ्न और गुरुदारापहारी पुरुषतक भी पवित्र और जीवन्मुक्त होते हैं ॥ २७ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शनसे एकादशीविहीन संध्यावर्जित नास्तिक और नर हत्याकारीका भी पाप दूर होता है ॥ २८ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे असिजीवी मसिजीवी धावक अर्थात् रजककर्मकारी ग्रामयाचक और वृषवाही ब्राह्मणोंका भी पाप दूर होता है ॥ २९ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शनसे

मन्मंत्रोपासका भक्ता विश्रमंति च भारते ॥ पूतं कर्तुं तारितुं च सुपवित्र. वसुंधराम् ॥ २५ ॥ मद्भक्ता यत्र तिष्ठंति पादं प्रक्षालयंति च ॥ तत्स्थानं च महातीर्थं सुपवित्रं भवेद्ध्रुवम् ॥ २६ ॥ स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः ॥ जीवन्मुक्तो भवेत्पूतोम द्भक्त स्पर्शदर्शनात् ॥ २७ ॥ एकादशीविहीनश्च सन्ध्याहीनोऽथ नास्तिकः ॥ नरघाती भवेत्भूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ २८ ॥ असिजीवी मसीजीवी धावको ग्रामयाचकः ॥ वृषवाहो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ २९ ॥ विश्वासघाती मित्रघ्नो मिथ्यासाक्ष्यस्य दायकः ॥ स्थाप्यहारी भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३० ॥ अत्युग्रवान्पुंदूषकश्च जारकः पुंश्चलीपतिः ॥ पूतश्च वृषलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३१ ॥ शूद्राणां सूपकारश्च देवलो ग्रामयाजकः ॥ अदीक्षितो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३२ ॥ पितरं मातरं भार्यां भ्रातरं तनयं सुताम् ॥ गुरोः कुलं च भगिनीं चक्षुर्हीनं च बांधवम् ॥ ३३ ॥ श्वश्रूं च श्वशुरं चैव यो न पुष्णाति सुंदरि ॥ स महापातकी पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३४ ॥

विश्वासघातक मित्रद्रोही मिथ्यासाक्षीदाता और धरोहर मारनेवाला पुरुष भी पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ३० ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शनसे अति वाग्दुष्ट अर्थात् उग्रवचन बोलनेवाला जारक (अन्यपितासे उत्पन्न) पुंश्चली पति और पुंश्चलीका पुत्रभी पवित्र होता है ॥ ३१ ॥ मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शनसे जो ब्राह्मण शूद्रका पाचक (रसोई दार) जो देवल पुजारी हो जो ग्रामवालोंका यज्ञ करानेवाला और जो गुरु मंत्रमें दीक्षित नहीं है वह भी पवित्र होता है ॥ ३२ ॥ हे सुन्दरि ! जो पामर पिता, माता, भ्राता स्त्री पुत्र, कन्या, भगिनी अंध, बंधु ॥ ३३ ॥ गुरुकुल, सास और श्वसुरका भरण पोषण नहीं करता मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे वह पातकी भी पापसे छूट जाता है ॥ ३४ ॥

मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे पीपलका काटनेवाला मेरे भक्तोंकी निंदा करनेवाला औ शूद्रोंका अन्न भोजन करनेबाला ब्राह्मणपर्यन्त अपने अपने किये पापोंसे मुक्त होतार है ॥ ३५ ॥ जो देवताका द्रव्य और ब्राह्मणका द्रव्य हरण करता है जो लाक्षा (लाख) लोहा और रस तथा कन्या बेचता है ॥ ३६ ॥ जो महापातकी और शूद्रोंका शव फूंकनेवाला है वह भी मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्श करनेपर अपने अपने पापसे छूटते हैं ॥ ३७ ॥ महालक्ष्मीने कहा हे भक्तवत्सल ! आप भक्तोंके लक्षण कहिये जिन भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे नराधम शीघ्र पवित्र होते हैं ॥ ३८ ॥ हरिभक्ति विहीन घोर अहंकारी आत्मश्लाघमें निरत धूर्त शठ और साधुओंकी निन्दा करने वाले ॥ ३९ ॥ पापात्मा लोग भी शीघ्र महापातकसे छूटते हैं जिन भक्तोंके स्नानावगाहनसे संम्पूर्ण तीर्थ

अश्वत्थनाशकश्चैव मद्भक्तनिंदकस्तथा ॥ शूद्रान्नभोजी विप्रश्च पूतो मद्भक्तदर्शनात् ॥ ३५ ॥ देवद्रव्यापहारी च विप्रद्रव्यापहारकः ॥ लाक्षालोहरसानां च विक्रेता दुहितुस्तथा ॥ ३६ ॥ महापातकिनश्चैव शूद्राणां शवदाहकः ॥ भवेयुरेते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ ३७ ॥ श्रीमहालक्ष्मीरुवाच ॥ भक्तानां लक्षणं ब्रूहि भक्तानुग्रहकातर ॥ तेषां तु दर्शनस्पर्शात्सद्यः पूता नाराधमः ॥ ३८ ॥ हरिभक्तिविहीनाश्च महाहंकारसंयुता ॥ स्वप्रशंसारताः धूर्ताः शठाश्च साधुनिंदकाः ॥ ३९ ॥ पुनंति सर्वतीर्थानि येषां स्नानावगाहनात् ॥ येषां च पादरजसा पूता पादोदकान्मही ॥ ४० ॥ येषां संदर्शनं स्पर्शं ये वा वांछंति भारते ॥ सर्वेषां परमो लाभो वैष्णवानां समागमः ॥ ४१ ॥ न ह्यम्मयानितीर्थानि न देव मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनंत्युरुकालेन विष्णुभक्ताः क्षणादहो ॥ ४२ ॥ सूत उवाच ॥ महालक्ष्मीवचः श्रुत्वा लक्ष्मीकांतश्च सस्मितः ॥ निगूढतत्त्वं कथितुमपि श्रेष्ठोपचक्रमे ॥ ४३ ॥

पवित्रतालाभ करते हैं जिन भक्तोंकी चरणरेणु और पादोदकस्पर्शसे वसुन्धरा पवित्र होती है ॥ ४० ॥ भारतीय मनुष्य सदा जिन भक्तोंके दर्शन और स्पर्शकी प्रार्थना करते हैं और जिन भक्तोंके समागमसे भारी लाभ दूसरा नहीं है ॥ ४१ ॥ विशेषतः जलमय संपूर्ण तीर्थ एवं मृन्मय और शिलामय देवताओंसे बहुत कालमें पाप दूर होता है, किन्तु अब पूछती हूं कि, आपके जिन भक्तोंसे शीघ्र महापातक नष्ट होते हैं, आपके उन्हीं निर्दिष्ट भक्तोंके लक्षण किस प्रकार हैं ? ॥ ४२ ॥ सूतजीने कहा हे महर्षे ! लक्ष्मीकान्तने महालक्ष्मीके वचन सुन कुछेक हँसकर निगूढतत्त्व अर्थात् भक्तोंके लक्षण निर्देश करनेका उपक्रम करके कहा ॥ ४३ ॥

श्रीभगवान् बोले हे लक्ष्मी ! भक्तोंके लक्षण श्रुति और पुराणमें अत्यन्त गूढभावसे कथित हुए हैं यह अत्यन्त पवित्र पापघ्न (पाप नाशक) सुखद और भक्ति मुक्तिदायक है ॥ ४४ ॥ यह सारभूत गोपनीय वृत्तान्त खलके निकट प्रकाशित न करै किंतु तुम अत्यन्त सरलस्वभाव और मेरे प्राणोंके समान हो इस कारण तुमसे कहता हूं सुनो ॥ ४५ ॥ हे सुंदरि ! गुरुदेव मुखसे जिसके कानमें विष्णु, शिव, गणेश और सूर्यादिमंत्र पड़ता है, सम्पूर्ण वेदही उसको पवित्र और नरोत्तम कहते हैं ॥४६॥ ऐसे पुरुषके जन्म लेतेही उनके पूर्व शत (१००) पुरुष स्वर्ग हों वा नरकमें हों, तत्काल मुक्तिलाभ करते हैं ॥ ४७ ॥ और उनमें यदि कोई किसी स्थानमें वा किसी जीवयोनिमें जन्म ग्रहण करता है तो वह जीवन्मुक्त होकर अन्तमें विष्णुपद लाभ करता है ॥ ४८ ॥ जो पुरुष मेरे

श्रीभगवानुवाच ॥ भक्तानां लक्षणं लक्ष्मि गूढं श्रुतिपुराणयोः ॥ पुण्यस्वरूपं पापघ्नं सुखदं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ ४४ ॥ सारभूतं गोपनीयं न वक्तव्यं खलेषु च ॥ त्वां पवित्रां प्राणतुल्यां कथयामि निशामय ॥ ४५ ॥ गुरुवक्त्राद्विष्णुमंत्रो यस्य कर्णे पतिष्यति ॥ वदंति वेदास्तं चापि पवित्रं च नरोत्तमम् ॥ ४६ ॥ पुरुषाणां शतं पूर्वं तथा तज्जन्ममात्रतः ॥ स्वर्गस्थं नरकस्थं वा मुक्तिमाप्नोति तत्क्षणात् ॥ ४७ ॥ यैः कैश्चिद्यत्र वा जन्मलब्धं येषु च जंतुषु ॥ जीवन्मुक्तास्तु ते पूता यांति काले हरेः पदम् ॥ ४८ ॥ मद्भक्तियुक्तो मर्त्यश्च स मुक्तो मद्गुणान्वितः ॥ मद्गुणाधीनवृत्तिर्यः कथाविष्टश्च संततम् ॥ ४९ ॥ मद्गुणश्रुति मात्रेण सानंदः पुलकान्वितः ॥ सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च ॥ ५० ॥ न वांछति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वांछा मम सेवने ॥ ५१ ॥ इंद्रत्वं च मनुत्वं च ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभम् ॥ स्वर्गराज्यादिभोगं च स्वप्नेऽपि च न वांछति ॥ ५२ ॥

भक्ति रसमें आर्द्र होता है, जो पुरुष निरन्तर मेरे गुण कीर्तनमें और तदनुरूप व्यवहार करता है, जो पुरुष सदा मेरी कथामें चित्त लगाये रहता है ॥ ४९ ॥ और मेरे गुणानुवाद सुनकर जिसका मन आनन्दमें नृत्य करता रहता है, सर्वाङ्ग पुलकित होता है, कण्ठस्वर रुद्ध हो जाता है, अनवरत नेत्रोंसे आसु ओंकी धारा गिरती रहती है, बाह्यज्ञान तिरोहित होता है वही पुरुष मेरा भक्त है ॥५०॥ मेरे भक्त क्या सुख, क्या मुक्ति, क्या सायुज्य, क्या सारूप्य, क्या सालोक्य, क्या ब्रह्मत्व, क्या अमरत्व किसीकी इच्छा नहीं करते, वह केवल मेरी सेवा करनेमें अत्यंत तत्पर होते हैं ॥ ५१ ॥ वास्तविक वह कभी स्वप्नमें भी दुर्लभ इन्द्रत्व, मनुत्व, ब्रह्मत्व और स्वर्ग राज्यभोग करनेकी वासना नहीं करते ॥ ५२ ॥

मेरे भक्त केवल मेरेही गुण सुननेमें लग्न और मेरेही मधुर गुणगानमें नित्य आनंदित होकर भारतमें भ्रमण करते हैं, फलतः भारतमें ऐसे भक्त का जन्म अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ५३ ॥ वह पृथ्वीको पवित्र करके अन्तमें मेरे आलयरूप श्रेष्ठतम तीर्थमें गमन करते हैं, हे पद्मे ! यह मैंने तुमसे अभिलाषित समस्त विषय वर्णन किया अब जो रुचि हो, सो करो ॥ ५४ ॥ अनन्तर गंगादि सभी श्रीहरिकी आज्ञा पालन करनेको गईं इस ओर वह स्वयं हरि अपने धाममें अवस्थान करने लगे ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ नारायणने कहा हे देवर्षे ! अनन्तर सरस्वती गंगाके शापवश अंशसे पुण्यक्षेत्र भारतमें आई और पूर्णांशसे विष्णुभवन वैकुण्ठधाममें स्थिति करने लगी ॥ १ ॥ भारतमें गमन करनेके कारण उनका नाम भारती और ब्रह्माकी प्रिया होनेके कारण उनका दूसरा नाम ब्राह्मी हुआ है और वाणी अर्थात् वाक्यकी अधिष्ठात्री देवी हैं इस कारण उनका वाणी नाम हुआ

भ्रमंति भारते भक्तास्तादृग्जन्म सुदुर्लभम् ॥ मद्गुणश्रवणाः श्लाघ्यगानै र्नित्यं मुदाऽन्विताः ॥ ५३ ॥ ते यांति च महीं पूत्वा नरं तीर्थं ममाऽऽलयम् ॥ इत्येवं कथितं सर्वं पद्मे कुरु यथोचितम् ॥ ५४ ॥ तदाज्ञया तास्तच्चक्रुर्हरिस्तस्थौ सुखासने ॥ इति श्रीदेवीभा गवते महापुराणे नवमस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ सरस्वती पुण्यक्षेत्रेमाजगाम च भारते ॥ गंगाशापेन कलया स्वयं तस्थौ हरेः पदे ॥ १ ॥ भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणः प्रिया ॥ वाण्यधिष्ठातृदेवी सा तेन वाणी प्रकीर्तिता ॥ २ ॥ सरोवाप्यां च स्रोतस्सु सर्वत्रैव हि दृश्यते ॥ हरिः सरस्वांस्तस्येयं तेन नाम्ना सरस्वती ॥ ३ ॥ सरस्वती नदी सा च तीर्थरू पाऽतिपावनी ॥ पापिनां पापदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥ ४ ॥ पश्चाद्भागीरथी नीता महीं भगीरथेन च ॥ सा वै जगाम कलया वाणीशापेन नारद ॥ ५ ॥ तत्रैव समये तां च दधार शिरसा शिवः ॥ वेगं सोढुमयं शक्तो भुवः प्रार्थनया विभुः ॥ ६ ॥

है ॥ २ ॥ हरि सर्वव्यापी हैं, अतएव वह क्या सर अर्थात् सरोवर, क्या वापी, क्या स्रोत, सर्वत्रही विद्यमान रहते हैं, सरसमें विद्यमान होनेके कारण वह सरस्वान् हैं, वाणी उन सरस्वानकी शक्ति है, इसलिये सरस्वती नामसे कही गई हैं ॥३॥ नदी रूप सरस्वती अतिपावन तीर्थस्वरूप हैं ! मणियोंके पापरूपीकाष्ठ जलानेमें वह प्रज्वलित अग्निस्वरूप हैं ॥ ४ ॥ हे वत्स नारद ! सरस्वतीके शापसे देवी गंगाने अंशसे सलिलस्वरूप धारण किया, फिर भगीरथ उनको भूलोकमें लाये हैं इसी कारण उनका नाम भागीरथी हुआ है ॥ ५ ॥ भगीरथकी प्रार्थनासे जब गंगाकी एक धारा ऊपर पृथ्वीपर गिरी तब वसुन्धराके धारापातका वेग धारण करनेमें असमर्थ होनेपर एकमात्र धारण पटु श्रीमहादेवजीके निकट प्रार्थना करनेपर उन्होंने उस समय उनको मस्तकमें धारण किया था ॥ ६ ॥

भारतीके शापसे पद्माकोभी अंशसे पद्मावती नदी होकर भारतमें अवतीर्ण होना पड़ा है किंतु पूर्णभावसे वैकुण्ठमें नारायणकी अंकलक्ष्मी होकर वास करती हैं ॥ ७ ॥ इनका अपर अंश प्रथम भारतमें राजा धर्मध्वजके तुलसी नामसे विख्यात कन्यारूपमें अवतीर्ण हुआ ॥८॥ अन्तमें भारतीके शापसे और श्रीहरिकी आज्ञासे विश्वपावनी तुलसी वृक्षरूपमें परिणत हुई हैं ॥ ९ ॥ कलिके पांच हजार वर्ष बीतनेपर ही यह सब सरित् रूप त्यागकर भारतसे फिर वैकुण्ठधाममें हरिसदनमें गमन करेंगी ॥ १० ॥ श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार काशी और वृन्दावनके अतिरिक्त और संपूर्ण तीर्थ सरिद्गणोंके संग संग वैकुण्ठमें जाँयगे ॥ ११ ॥ इसके उपरांत कलिके दश हजार वर्ष बीतनेपर शालिग्राम शिला शिव और शिवशक्ति एवं पुरुषोत्तम जगन्नाथ इस भारतभूमिको छोड़कर अपने अपने

पद्मा जगाम कलया सा च पद्मावती नदी ॥ भारतं भारतीशापात्स्वयं तस्थौ हरेः पदे ॥ ७ ॥ ततोऽन्यथा सा कलया लेभे जन्म च भारते ॥ धर्मध्वजसुता लक्ष्मीर्विख्याता तुलसीति च ॥ ८ ॥ पुरा सरस्वतीशापात्पश्चाच्च हरिशापतः ॥ बभूव वृक्षरूपा सा कलया विश्वपावनी ॥ ९ ॥ कलेः पंचसहस्रं च वर्षं स्थित्वा च भारते ॥ जग्मुस्ताश्च सरिद्रूपं विहाय श्रीहरेः पदम् ॥ १० ॥ यानि सर्वाणि तीर्थानि काशीं वृंदावनं विना ॥ यास्यंति सार्धं ताभिश्च वैकुण्ठमाज्ञया हरेः ॥ ११ ॥ शालग्रामः शक्तिशिवौ जगन्नाथश्च भारतम् ॥ कलेर्दशसहस्रांते त्यक्त्वा यांति निजं पदम् ॥ १२ ॥ साधवश्च पुराणानि शंखानि श्राद्धतर्पणे ॥ वेदोक्तानि च कर्माणि ययुस्तैः सार्धमेव च ॥ १३ ॥ देवपूजा देवनाम तत्कीर्तिगुणकीर्तनम् ॥ वेदांगानि च शास्त्राणि ययुस्तैः सार्धमेव च ॥ १४ ॥ संतश्च सत्यं धर्मश्च वेदाश्च ग्रामदेवताः ॥ व्रतं तपश्चानशनं ययुस्तैः सार्धमेव च ॥ १५ ॥ वामाचाररताः सर्वे मिथ्याकपटसंयुताः ॥ तुलसी रहिता पूजा भविष्यति ततः परम् ॥ १६ ॥

स्थानको जायँगे अर्थात् भारतसे शालग्राम माहात्म्य पीठ स्थान माहात्म्य और पुरुषोत्तम माहात्म्य एक बारही अन्तर्धान हो जायगा ॥ १२ ॥ शैव शाक्त, गाणपत्य और वैष्णवादि धर्मपरायण साधुगण अठारह पुराण मांगल्य शंखध्वनि श्राद्धतर्पण और वेदोक्त क्रिया कलापादि कुछ भी नहीं रहेगी ॥ १३ ॥ देवपूजा देव प्रशंसा और देवताओंके गुणगानकी बात तो दूर रहे, देवताओंका नाम पर्यन्त भी लुप्त होगा साङ्गवेद शास्त्रका नाम पर्यंत फिर सुनाई नहीं देगा ॥१४॥ साधुसमाज, सत्य धर्म, चारों वेद, ग्राम्यवेद, देवी, व्रत, तपस्या और उपवास एक बारही लयको प्राप्त होंगे ॥ १५ ॥ सभी मद्यमांसादिकी सेवामें अनुरक्त होंगे, मिथ्या और कपटता सबको आश्रम करेगी, यदि कोई पूजाभी करेगा तो वह अर्चनातुलसी विहीन होगी ॥ १६ ॥

दे. भा. ॥३२॥

प्रायः समस्तलोक शठ, क्रूर, दाम्भिक, अहंकारी, तस्कर और हिंसक हो जाँयगे ॥ १७ ॥ पुरुष पुरुष और स्त्री स्त्रीमें परस्पर प्रणय नहीं रहेगी। केवल स्त्री पुरुष मात्र भेद रहेगा, जातिभेद एकबारही अन्तर्धान होगा, सुतरां विवाहके सम्बन्धमें भयका लेश मात्रभी न रहेगा, प्रतिपदार्थमें ही स्वस्वस्वाति सत्य बद्धमूल होगा अर्थात् पिता पुत्रके और पुत्र पिताके द्रव्यको स्पर्श नहीं कर सकेगा ॥ १८ ॥ पुरुष मात्रही प्रायः स्त्रीके वशीभूत होंगे और प्रत्येक घरमेंही प्रायः संपूर्ण स्त्रियें पुंश्चली धर्म अवलम्बन करेंगी, वह निरंतर तर्जन गर्जन करके अपने अपने स्वामीको ताड़ना करती रहेंगी ॥ १९ ॥ गृहिणी गृहकर्त्री होंगी और गृहस्वामी अधम मृत्युके समान उनके निकट हाथ जोडे रहेंगे सास और श्वसुर उनके निकट दास दासीके समान व्यवहृत होंगे ॥ २० ॥ स्त्रीके सहोदर इत्यादि

शठाः क्रूरा दांभिकाश्च महाहंकारसंयुताः ॥ चोराश्च हिंसकाः सर्वे भविष्यंति ततः परम् ॥ १७ ॥ पुंसो भेदः स्त्रीविभेदो विवाहो वाऽपि निर्भयः ॥ स्वस्वामिभेदो वस्तूनां भविष्यति ततः परम् ॥ १८ ॥ सर्वे स्त्रीवशगाः पुंसः पुंश्चल्यश्च गृहे गृहे ॥ तर्जनैर्भर्त्सनैः शश्वत्स्वामिनं ताडयंति च ॥१९॥ गृहेश्वरी च गृहिणी गृही भृत्याधिकोऽधमः ॥ चेटीदाससमौ वध्याः श्वश्रूश्च श्वशुरस्तथा ॥ २० ॥ कर्तारो बलिनो गेहे योनिसंबंधिबांधवाः ॥ विद्यासंबंधिभिः सार्धसंभाषाऽपि न विद्यते ॥ २१ ॥ यथाऽपरिचिता लोकास्तथा पुंसश्च बांधवाः ॥ सर्वकर्माक्षमाः पुंसो योषितामाज्ञया विना ॥ २२ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्राजात्याचारविवर्जिताः ॥ संध्या च यज्ञसूत्रं च भवेल्लुप्तं न संशयः ॥ २३ ॥ म्लेच्छाचारा भविष्यंति वर्णाश्चत्वार एव च ॥ म्लेच्छशास्त्रं पठिष्यंति स्वशास्त्राणि विहाय च ॥ २४ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशां वंशाः शूद्राणां सेवकाः कलौ ॥ सूपकारा सावकाश्च वृषवाहाश्च सर्वशः ॥ २५ ॥

बांधवलोगही गृहके कर्ता होंगे किंतु सहाध्यायीगणोंके सहित आलाप मात्र नहीं रहेगा ॥ २१ ॥ गृहस्वामिके भ्रातादि बांधवगण एकबारही अनजान परदेशीके समान अपरिचित होजायँगे गृहणीकी अनुमतिके विना गृहिकर्ताका किसी विषयमें कर्तृक करनेकी सामर्थ्य नहीं रहेगी ॥ २२ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि जाति भेद एकबारही तिरोहित होगा. संध्यावंदनादि कर्तव्य कार्यका अनुष्ठान करना तो दूर रहे ब्राह्मणगण एकबारही यज्ञोपवीत रहित होंगे ॥ २३ ॥ ब्राह्मणादि चारों वर्ण ही अपना अपना शास्त्र और आचार परित्याग करके म्लेच्छशास्त्र अध्ययन और म्लेच्छ आचारमें अत्यंत आसक्त होंगे ॥२४॥ कलियुगमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यगण शूद्रके दास होंगे सबही शूद्रके पाचक (रसोईदार) धावक (कपडेधोनेवाले) वा दूत और वृषवाहक अर्थात् बैलके लादने वाले होंगे ॥ २५ ॥

भा. टी. न अ० ८

मनुष्यमात्रही सत्यहीन पृथ्वी सस्यरहित, वृक्ष फलशून्य और स्त्रियें पुत्रहीन होंगी ॥ २६ ॥ गायोंके स्तनमें प्रायः दुग्ध नहीं रहेगा और यदि कुछेक दुग्ध निकला भी, तो घृत उत्पन्न नहीं होगा स्त्री पुरुष आपसमें प्रेमहीन और गृहस्थगण मिथ्यावादी होंगे ॥ २७ ॥ राजाका पराक्रम कुछ नहीं रहेगा प्रजागण क रभारसे अत्यंत पीड़ित हो जायँगे। क्या विस्तीर्ण जलवाली नदियें, क्या अल्पजला नदी, क्या कन्दरादि समस्त ही क्रमानुसार क्षीणजलवाली होंगी ॥ २८ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी धर्मप्रवृत्ति तिरोहित और पुण्यलोप होगा प्रथम तो लक्ष पुरुषोंमें एकजन पुण्यवान् होगा, किंतु फिर वह भी न रहेगा ॥ २९ ॥ क्या नर, क्या नारी, क्या बालक, सभी कुत्सित और विकृताकृति होंगे। कुत्सित बात और कुत्सित शब्दके अतिरिक्त किसीके मुखसे दूसरी

सत्यहीना जनाः सर्वे सस्यहीना च मेदिनी ॥ फलहीनाश्च तरवोऽपत्यहीनाश्च योषितः ॥ २६ ॥ क्षीरहीनास्तथा गावः क्षीरं सर्पिर्विवर्जितम् ॥ दंपती प्रीतिहीनौ च गृहिणः सत्यवर्जिताः ॥ २७ ॥ प्रतापहीनाभूपाश्च प्रजाश्च करपीडिताः ॥ जलहीना महानद्यो दीर्घिका कंदरादयः ॥ २८ ॥ धर्महीनाः पुण्यहीना वर्णाश्चत्वार एव च ॥ लक्षेषु पुण्यवान्कोऽपि न तिष्ठति ततः परम् ॥ २९ ॥ कुत्सिता विकृताकारा नरा नार्यश्च बालकाः ॥ कुवार्ता कुत्सितः शब्दो भविष्यति ततः परम् ॥ ३० ॥ केचिद्ग्रामाश्च नगरा नरशून्या भयानकाः ॥ केचित्स्वल्पकुटीरेण नरेण च समन्विताः ॥ ३१ ॥ अरण्यानि भविष्यंति ग्रामेषु नगरेषु च ॥ अरण्यवासिनः सर्वेजनाश्च करपीडिताः ॥ ३२ ॥ सस्यानि च भविष्यंति तडागेषु नदीषु च ॥ प्रकृष्टवंशजा हीना भविष्यंति कलौ युगे ॥ ३३ ॥ अलीकवादिनो धूर्ताः शठाश्चासत्यवादिनः ॥ प्रकृष्टानि च क्षेत्राणि सस्याहीनानि नारद ॥ ३४ ॥

बात उच्चरित नहीं होगी ॥ ३० ॥ कोई कोई ग्राम और कोई नगर एकबारही मनुष्यरहित होकर भीषणमूर्ति धारण करेंगे और किसी किसी स्थान वा अतिसामान्य कुटीरमें और सामान्यलोकोंमें स्थिति रहेगी ॥ ३१ ॥ सम्पूर्ण ग्राम और नगर अरण्यमें परिणत और अरण्यलोकोंके निवास पूर्ण होकर वनवासी मनुष्य कारभारसे पीडित हो जायँगे ॥ ३२ ॥ अनावृष्टिके कारण जलका अभाव होनेसे तालाब और नदियोंमें खेती होने लगेगी सद्वंशोत्पन्न कुलीन नितान्त नीच होजायँगे ॥ ३३ ॥ पृथ्वी अलीकवादी असत्यपरायण धूर्त और शठोंसे परिपूर्ण होगी भूमि भलीभांति जोतने से भी सस्यका नाममात्र नहीं रहेगा ॥ ३४ ॥

जो अतुल ऐश्वर्यके अधिपति कहकर विख्यात हैं वही निर्धन और जो देवभक्त हैं वही नास्तिक होंगे पुरवासियोंके शरीरमें दयाका लेशमात्र नहीं रहेगा वरन् वह प्रति वंशीके विद्वेष्टा और नरघातक होजायेंगे ॥ ३५ ॥ पृथ्वीके सब स्थानोंमें नर और नारीमात्र लघुकार्य व्याधिग्रस्त, क्षीणायु, रोगी और हीनयौवन होंगे ॥ ३६ ॥ सोलह वर्षमें पदार्पण न करते, ही केश सफेद वर्ण हो जायँगे, वीसवाँ वर्ष उपस्थित होनेपर समस्त पुरुष महावृद्ध होंगे, अष्टवर्षीय रमणी युवती रजस्वला और गर्भवती होंगी ॥ ३७ ॥ प्रसव करनेमें वर्ष नहीं जायगा इसके उपरांत सोलहवां वर्ष उपस्थित होतेही बुढापा आजायगा, कदाचित्ही कोई २ स्त्री पति पुत्रवती होगी नहीं तो प्रायःसभी वांझ होगी ॥ ३८ ॥ चारों वर्णही कन्या बेचेंगे माता भार्या पुत्रवधू कन्या और भगिनीके उपपतिही जीवनके

हीनाः प्रकृष्टा धनिनो देवभक्ताश्च नास्तिकाः ॥ हिंसकाश्च दयाहीनाः पौराश्च नरघातिनः ॥ ३५ ॥ वामना व्याधियुक्ताश्च नरा नार्यश्च सर्वतः ॥ स्वल्पायुषो गदायुक्ता यौवने रहिताकलौ ॥ ३६ ॥ पालिताः षोडशे वर्षे महावृद्धाश्च विंशतौ ॥ अष्टवर्षा च युवती रजोयुक्ता च गर्भिणी ॥ ३७ ॥ वत्सरांतप्रसूता स्त्री षोडशे च जरान्विता ॥ पतिपुत्रवती काचित्सर्वा वंध्याः कलौ युगे ॥ ३८ ॥ कन्याविक्रयिणः सर्वे वर्णाश्चत्वार एव ॥ च मातृजायावधूनां च जारोपेतान्नभक्षकाः ॥ ३९ ॥ कन्यानां भगिनीनां वा जारोपात्तान्न जीविनः ॥ हरेर्नाम्नां विक्रयिणो भविष्यंति कलौ युगे ॥ ४० ॥ स्वयमुत्सृज्यं दानं च कीर्तिवर्धनहेतवे ॥ ततः पश्चात्स्वदानं च स्वयमुल्लंघयिष्यति ॥ ४१ ॥ देववृत्तिं ब्रह्मवृत्तिं वृत्तिं गुरुकुलस्य च ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा सर्वमुल्लंघयिष्यति ॥ ४२ ॥ कन्यकागामिनः केचित्केचिच्च श्वश्रुगामिनः ॥ केचिद्वधूगामिनश्च केचिद्वै सर्वगामिनः ॥ ४३ ॥ भगिनीगामिनः केचित्सपत्नीमातृगामिनः ॥ भ्रातृजायागामिनश्च भविष्यंति कलौ युगे ॥ ४४ ॥

अवलम्बन होंगे ॥ ३९ ॥ विना अर्थके कोई हरि नाम जपजनित पुण्यसंचयमें अधिकारी नहीं होगा ॥ ४० ॥ यश प्राप्त होनेकी इच्छासे दान करके फिर अन्तमें उस अपनी दी हुई वस्तुको ग्रहण करे ॥ ४१ ॥ देवता ब्राह्मण वा गुरुकुलके निमित्त अपनी दी हुई हो, वा अपने पूर्व पुरुषोंकी दी हुई यदि कोई वृत्ति निर्दिष्ट हो, तो फिर आत्मसात (अपने अधीन) करनेमें त्रुटि नहीं होगी ॥ ४२ ॥ कोई कोई कन्या कोई कोई सास कोई कोई पुत्रवधू कोई सब कोई कोई ॥ ४३ ॥ भगिनी, कोई सपत्नी जननी और कोई कोई भ्रातृजाया गमन करेगा किसीको कोई गमन अवशिष्ट नहीं रहेगा ॥ ४४ ॥

केवलमातृयोनिके अतिरिक्त प्रत्येक घरमेंही अगम्यागमन प्रचलित हो जायगा ॥ ४५ ॥ कलियुगमें कौन किसकी पत्नी और किसका भर्ता कुछ निर्णय न रहेगा कौन किसकी प्रजा और कौन किसका ग्रामहै विशेषतःकौन वस्तु किसकी है कुछ निर्दिष्ट नहीं रहेगा ॥ ४६ ॥ सभी मिथ्यावादी, लम्पट, तस्कर, परस्त्रीकातर और नरघातक होंगे ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन श्रेष्ठतम तीनों वर्णके घरमें पापस्रोत बहता रहेगा शास्त्रनिषिद्ध लाक्षा (लाख) लोहा और लवण वेचना इनका जीवनोपाय होगा ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणगण वृषचालन, शूद्रका शवदाहन शूद्रान्नभोजन और वृषलीगमन करेंगे ॥ ४९ ॥ ऋषियज्ञादि पंचयज्ञमें फिर आस्था नहीं रहेगी प्रायः ब्राह्मणमात्रही अमावस्या (की रातको भोजन करेंगे) भोजन न करनेकी आज्ञा पालनमें विमुख होंगे

अगम्यागमनं चैव करिष्यंति गृहे गृहे ॥ मातृयोनिं परित्यज्य विहरिष्यंति सर्वतः ॥ ४५ ॥ पत्नीनां निर्णयो नास्ति भर्तृणां च कलौ युगे ॥ प्रजानां चैव ग्रामाणां वस्तूनां च विशेषतः ॥ ४६ ॥ अलीकवादिनः सर्वे सर्वे चोराश्च लंपटाः ॥ परस्परं हिंसकाश्च सर्वे च नरघातिनः ॥ ४७ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशां वंशा भविष्यंति च पापिनः ॥ लाक्षालोहरसानां च व्यापारं लवणस्य च ॥ ४८ ॥ वृषवाह्या विप्रवंशाः शूद्राणां शवदाहिनः ॥ शूद्रान्नभोजिनः सर्वे सर्वे च वृषलीरताः ॥ ४९ ॥ पंचयज्ञविहीनाश्च कुहू रात्रौ च भोजिनः ॥ यज्ञ सूत्रविहीनाश्च सन्ध्याशौचविहीनकाः ॥ ५० ॥ पुंश्चली वार्धुषाजीवा कुट्टनी च रजस्वला ॥ विप्राणां रंधनागारे भविष्यति च पाचिका ॥ ५१ ॥ अन्नानां नियमो नास्ति योनीनां च विशेषतः ॥ आश्रमाणां जनानां च सर्वे म्लेच्छाः कलौ युगे ॥ ५२ ॥ एवं कलौ संप्रवृत्ते सर्वं म्लेच्छमयं भवेत् ॥ हस्त प्रमाणे वृक्षे च अंगुष्ठे चैव मानवे ॥ ५३ ॥ विप्रस्य विष्णुयशसः पुत्रः कल्किर्भविष्यति ॥ नारायण कलांशश्च भगवान्बलिनां वरः ॥ ५४ ॥

यज्ञसूत्र दूर फेंककर ब्राह्मणोचित संध्यावन्दनादि और शौचाचार एकबारही त्याग करेंगे ॥ ५० ॥ ऋणदान जीवनी पुंश्चली और रजस्वला कुटनियें ब्राह्मणोंकी रन्धनशाला (रसोईघर में पाचिका अर्थात् भोजन बनानेवाली होंगी ॥ ५१ ॥ अन्नविचार योनि विचार आश्रमविचार और लोकविचार कुछभी नहीं रहेगा, सब ही म्लेच्छाचार होंगे ॥ ५२ ॥ हे वत्स ! नारद ! इस प्रकार घोर कलिके प्रवृति होनेपर सम्पूर्ण जगत् म्लेच्छोंसे भर जायेगा सम्पूर्ण वृक्षहस्तप्रमाण और मनुष्य सब अंगुष्ठप्रमाण होंगे ॥ ५३ ॥ इसी अवसरमें बलियोंमें श्रेष्ठ भगवान् नारायण अपने अंशसे विष्णुयशा नामक ब्राह्मणके घर उसके पुत्ररूपमें अवतीर्ण होंगे ॥ ५४ ॥

इसके उपरान्त वह हाथमें खड्ग धारणकर सुदीर्घ एक घोड़ेपर चढ़, तीन रात्रिमें पृथ्वी म्लेच्छहीन कर अंतर्धान होंगे ॥ ५५ ॥ तब पृथ्वी उनके अन्तर्धान होनेपर अराजक और दस्युग्रस्त हो जायगी ॥ ५६ ॥ इसी समय अनवरत छः दिन धारापातसे यह विस्तीर्ण स्थूलकाय पृथ्वी डूब जायेगी मनुष्य, वृक्ष और गृहादिका चिन्हमात्र भी नहीं रहेगा ॥ ५७ ॥ इसके उपरान्त एक वारही बारह सूर्य के उदय होकर कर प्रसारण करनेसे ही सम्पूर्ण जल सूखकर भूमण्डल समान हो जायेगा ॥ ५८ ॥ हे वत्सनारद ! इस प्रकार घोरतर कलिके बीतजानेपर और सत्ययुगके प्रवृत्तहोनेपर फिर तपस्यादि सत्वगुणनिष्ठ सत्य धर्मका पूर्ण प्राचार होगा ॥ ५९ ॥ फिर ब्राह्मणगण तपस्याधर्मनिष्ठ और वेदपरायण होजायँगे फिर घरघर स्त्रियें पतिपरायण और धर्मनिष्ठ हो जाँयगी

दीर्घेण करावलेन दीर्घघोटकवाहनः ॥ म्लेच्छशून्यां च पृथिवीं त्रिरात्रेण करिष्यति ॥ ५५ ॥ निर्म्लेच्छां वसुधां कृत्वा चांतर्धानं करिष्यति ॥ अराजका च वसुधा दस्युग्रस्ता भविष्यति ॥ ५६ ॥ स्थूलाऽप्रमाणषड्रात्रं वर्षधाराप्लुता मही ॥ लोक शून्या वृक्षशून्या गृहशून्या भवष्यति ॥ ५७ ॥ ततश्च द्वादशादित्याः करिष्यंत्युदयं मुने ॥ प्राप्नोति शुष्कतां पृथ्वी समा तेषां च तेजसा ॥ ५८ ॥ कलौ गते च दुर्धर्षे प्रवृत्ति च कृते युगे ॥ तपःसत्त्वसमा युक्तो धर्मः पूर्णो भविष्यति ॥ ५९ तपस्विनश्च धर्मिष्ठा वेदज्ञा ब्राह्मणा भुवि ॥ पतिव्रताश्च धर्मिष्ठा योषितश्च गृहेगृहे ॥ ६० ॥ राजानः क्षत्रियाः सर्वे विप्रभक्ता मनस्विनः ॥ प्रतापवंतो धर्मिष्ठाः पुण्य कर्मरताः सदा ॥ ६१ ॥ वैश्या वाणिज्यनिरताविप्रभक्ताश्च धार्मिकाः ॥ शूद्राश्च पुण्यशीलाश्च धर्मिष्ठा विप्रसे विनः ॥ ६२ ॥ विप्रक्षत्रविशां वंशा देवीभक्तिपरायणाः ॥ देवी मंत्ररताः सर्वे देवी ध्यानपरायणाः ॥ ६३ ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञा पुंमांस ऋतुगामिनः ॥ लेशो नास्ति ह्यधर्मस्य पूर्णोधर्मः कृते युगे ॥ ६४ ॥

॥ ६० ॥ फिर ब्राह्मणभक्त मनस्वीक्षत्रियगण सिंहासन अधिकार करेंगे पुनः उनका प्रताप, धर्म निष्ठा और सत्कर्मानुराग बढ़ेगा ॥ ६१ ॥ फिर वैश्योंकी वही वाणिज्यप्रवृत्ति वहीब्राह्मणभक्ति और वही धर्मानुरक्ति प्रत्यागमन करेंगी शूद्रगण फिर पुण्यशील धार्मिक और ब्राह्मणोंके सेवक होंगे ॥ ६२ ॥ पुनर्वार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी देवीध्यान देवीज्ञान और देवीमंत्र परायण होंगे ॥ ६३ ॥ फिर उन्ही वेद, उहीं स्मृति और उन्हीं पुराणोंका ज्ञान फैल जायेगा सब ही ऋतुकालमें भार्या गमन करेंगे अधर्मका लेशमात्रभी नहीं रहेगा पुनर्वार सत्युगमें धर्म पूर्णकलामें प्रवृत्त होगा ॥ ६४ ॥

इसके पीछे जब त्रेता उपस्थित होगा तब धर्म त्रिपाद, जब द्वापर तब द्विपाद जब कलिकी प्रवृत्ति तब एक पाद किंतु कलिके पूर्णकलामें प्रवृत्त होनेसे फिर धर्मका नाममात्र भी नहीं रहेगा ॥ ६५ ॥ हे वत्स नारद ! अब समयका स्वरूप कहता हूं सुनो रवि इत्यादि सातवार प्रतिपदादि षोडशतिथि वैशाखादि बारह मास. ग्रीष्मादि छै ऋतु ॥६६॥ शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष एवं दक्षिण और उत्तर दो अयन कल्पित हुए हैं चार प्रहरमें दिन चार प्रहरमें रात्रि सुतरां रात्रि और दिन लेकर एकदिन होता है इस प्रकार तीस दिनमें एक मास परिगणित होता है ॥ ६७ ॥ काल--संख्या--गणनामें पांच प्रकार वर्ष पहिलेही (अष्टमस्कंधमें) निर्देश किया है जिस प्रकार सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, यह चार युगपर्याय क्रमसे आकर फिर बीत जाते हैं वार और मासादि समात्मक वर्ष भी उसी प्रकार क्रमसे एकवार आकर और फिर बीत जाते हैं ॥ ६८ ॥ मनुष्योंका वर्ष पूर्ण होनेपर ही देवमानका एक दिन होता है गणना

धर्मस्त्रिपाच्च त्रेतायां द्विपाच्च द्वापरे ततः ॥ कलौ वृत्ते चैकपाच्च सर्वलुप्तिस्ततः परम् ॥ ६५ ॥ वाराः सप्त तथा विप्र तिथयः षोडश स्मृताः ॥ तथा द्वादश मासाश्च ऋतवश्च षडेव च ॥ ६६ ॥ द्वौ पक्षौ चायने द्वे च चतुर्भिः प्रहरैर्दिनम् ॥ चतुर्भिः प्रहरै रात्रिर्मास स्त्रिंशद्दिनैस्तथा ॥ ६७ ॥ वर्षं पंचविधं ज्ञेयं कालसंख्याविधिक्रमे ॥ यथा चाऽऽयांति यांत्येव यथा युगचतुष्टयम् ॥ ६८ ॥ वर्षे पूर्णे नराणां च देवानां च दिवानिशम् ॥ शतत्रये षष्ट्यधिके नाराणां च युगे कृते ॥ ६९ ॥ देवानां च युगं ज्ञेयं कालसंख्याविदां मतम् ॥ मन्वंतरं तु दिव्यानां युगानामेक सप्ततिः ॥ ७० ॥ मन्वंतरसमं ज्ञेयमायुष्यं च शचीपतेः ॥ अष्टाविंशतिमे चेन्द्रे गते ब्रह्मदिवानिशम् ॥ ७१ ॥ अष्टोत्तरशतेवर्षे गते पात श्चब्रह्मणः ॥ प्रलयः प्राकृतो ज्ञेयस्तत्राऽदृष्टा वसुन्धरा ॥ ७२ ॥

वित् पण्डित कहते हैं कि, इस प्रकार मनुष्योंके वर्ष परिमाण तीन सौ साठ मानवीय युग बीतनेपर ॥ ६९ ॥ देवमानका एक युग होता है इसी प्रकार (इकहत्तर) देवयुग बीतनेपर एक मन्वन्तर होता है ॥ ७० ॥ हे वत्स ! इस प्रकार एक एक मन्वन्तर शचीपति इन्द्रकी आयुका परिमाण अर्थात् एक एक मन्वन्तरके बीतनेपरही एक एक इंद्रका पतन होता है इस प्रकार अट्ठाइस (२८) इंद्रका पतन होनेपर हिरण्यगर्भ ब्रह्माका एक दिन होता है ॥ ७१ ॥ इस प्रकार परिमाणसे एक सौ आठ (१०८) वर्ष पूर्ण होनेपरही ब्रह्माका पतन होता है यह ब्रह्माका पतनही प्राकृत प्रलय है अर्थात् फिर उस समय यह पृथ्वी दिखाई नहीं देती ॥ ७२ ॥

संपूर्ण ब्रह्माण्ड जलमें डूब जाता है ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरादि ज्ञानपूर्ण ऋषिगण उन सत्यमय चिन्मय परब्रह्ममें एकवारही लीन होजाते हैं ॥ ७३ ॥ इसी समय प्रकृत देवीभी परब्रह्ममें विलीन होती हैं ब्रह्माका पतन और प्रकृतिका विलय इसकोही प्राकृत प्रलय कहते हैं ॥ ७४ ॥ हे मुनिवर ! यह प्रलयकाल मायायुक्त परब्रह्मरूपिणी मूलप्रकृतिका एक निमेष है इस समय जिस स्थानमें जितने ब्रह्माण्ड विद्यमान रहते हैं सब नष्ट होते हैं ॥ ७५ ॥ और यह निमेष परिमित काल बीतनेपरही फिर क्रमानुसार सृष्टिकार्य वर्धित होता है इस प्रकार कितनीही वार सृष्टि और कितनीही वार प्रलय होती है उसकी सीमा नहीं है ॥ ७६ ॥ अतएव कितने कल्प बीत गये हैं और कितने कल्प आवेंगे और कितनेवार कितने ब्रह्माण्ड सृष्टि और कितने वार

जलप्लुतानि विश्वानि ब्रह्म विष्णुशिवादयः ॥ ऋषयो ज्ञानिनः सर्वे लीनाः सत्ये चिदात्मनि ॥ ७३ ॥ तत्रैव प्राकृतिर्लीना तत्र प्रकृतिको लयः ॥ लये प्राकृतिके जाते याते च ब्रह्मणो मुने ॥ ७४ ॥ निमेष मात्रं कालश्च श्रीदेव्याः प्रोच्यते मुने ॥ एवं नश्यंति सर्वाणि ब्रह्माण्डान्यखिलानि च ॥ ७५ ॥ निमेषांतरकालेन पुनः सृष्टिक्रमेण च ॥ एवं कतिविधाः सृष्टिर्लयः कतिविधोऽपि वा ॥ ७६ ॥ कति कल्पा गतायाताः सख्यां जानाति कः पुमान् ॥ सृष्टीनां च लयानां च ब्रह्मांडानां च नारद ॥७७॥ ब्रह्मानांदीच ब्रह्माण्डेसंख्यां जानाति कः पुमान् ॥ ब्रह्मांडानां च सर्वेषामीश्वरश्चैक एव सः ॥ ७८ ॥ सर्वेषां परमात्मा च सच्चिदानन्दरूपधृक् ॥ ब्रह्मादयश्च तस्यां शास्तस्यांशश्च महाविराट् ॥ ७९ ॥ तस्यांशश्च विराट् क्षुद्रः सैवेयं प्रकृतिः परा ॥ तस्याः सकाशात्संजातोऽप्यर्धनारीश्वरस्ततः ॥ ८० ॥ सैव कृष्णो द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः ॥ चतुर्भुजश्च वैकुंठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥ ८१ ॥ ब्रह्मादितृणपर्यंतं सर्वं प्राकृतिकं भवेत् ॥ यद्यत्प्राकृतिकं सृष्टं सर्वं नश्वरमेव च ॥ ८२ ॥

कितने ब्रह्माण्डका लय होगया है, इसको कौन कह सकता है ? ॥ ७७ ॥ यदि ब्रह्माण्डही असंख्य हो तो कितने ब्रह्माण्डमें कितने विष्णु और कितने महेश्वर हैं इनकाभी निर्णय करनेमें कौन समर्थ होगा ? किंतु एकमात्रपरब्रह्म परमेश्वर इन असंख्य ब्रह्माडोंके अधीश्वर हैं ॥ ७८ ॥ वह सच्चिदानंदरूपी परमेश्वरही सबके परमात्मा हैं क्या ब्रह्मा क्या विष्णु क्या महादेव क्या महाविराट् ॥ ७९ ॥ क्या क्षुद्रविराट् सभी उनके अंश हैं वही मूल प्रकृति हैं उनसे ही अर्धनारीश्वर श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए हैं ॥ ८० ॥ द्विधाभूत होकर द्विजरूपसे गोलोकमें और चतुर्भुजरूपसे वैकुण्ठमें वास करते हैं ॥ ८१ ॥ ब्रह्मासे तृणपर्यन्त अति सामान्य पदार्थ भी प्रकृतिसे उत्पन्न हैं अतएव प्रकृतिप्रभव सम्पूर्ण पदार्थ नाशमान हैं ॥ ८२ ॥

इस प्रकार उस सृष्टिके निदान भूत स्वेच्छामय सत्यसनातन त्रिगुणातीत परब्रह्म प्रकृतिके अतीत पदार्थ हैं॥ ८३ ॥ उनकी उपाधि नहीं और आकृति भी नहीं है, तब जो यह सब स्वीकार करते हैं सो केवल भक्तोंपर अनुग्रह प्रकाश मात्र है कमलयोनि ब्रह्मा केवल उनके ही ज्ञानबलसे ब्रह्मांडकी रचना करनेमें समर्थ होते हैं ॥ ८४ ॥ योगीश्वर शिवने जो मृत्युञ्जय नाम धारण किया है, सबके संहारकर्त्ता और सर्वतत्त्व विज्ञाता हुए हैं, वह केवल उनकी ही कृपाका बल है ॥ ८५ ॥ तपश्चरणसे उन परब्रह्मकी उपलब्धि करनेके कारण वह सर्वेश, सर्वज्ञ, महाविभूतियुक्त, सर्वदर्शी, सर्वव्यापी, सबके रक्षक हैं और सर्वसम्पद्‌ दाता हुए हैं ॥ ८६ ॥ उनपर ब्रह्मके प्रति भक्ति और उनकी आराधना ही श्रीमान्‌ विष्णु वो सर्वेश्वरत्वलाभका मूल कारण है, महामाया प्रकृति देवी भी

एवंविधं सृष्टिहेतु सत्यं नित्यं सनातनम्‌ ॥ स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम्‌ ॥ ८३ ॥ निरुपाधि निराकारं भक्तानुग्रह कातरम्‌ ॥ करोति ब्रह्मा ब्रह्मांडं यज्ज्ञानात्कमलोद्भवः ॥ ८४ ॥ शिवो मृत्युंजयश्चैव संहर्ता सर्वसत्त्ववित्‌ ॥ यज्ज्ञानाद्यस्य तपसा सर्वेशस्तु तपो महान्‌ ॥ ८५ ॥ महाविभूतियुक्तश्च सर्वज्ञः सर्वदर्शनः ॥ सर्वव्यापी सर्वपाता प्रदाता सर्वसंपदाम्‌ ॥ ८६ ॥ विष्णुः सर्वेश्वरः श्रीमान्यद्भक्त्या तस्य सेवया ॥ महामाया च प्रकृतिः सर्वशक्तिमयीश्वरी ॥ ८७ ॥ सैवप्रोक्ताभगवती सच्चिदानंदरूपिणी ॥ यज्ज्ञानाद्यस्य तपसा यद्भक्त्या यस्य सेवया ॥ ८८ ॥ सावित्री वेदमाता च वेदाधिष्ठातृदेवता ॥ पूज्या द्विजानां वेदज्ञा यज्ज्ञानाद्यस्य सेवया ॥ ८९ ॥ सर्वविद्याधिदेवी सा पूज्या च विदुषां परा ॥ यत्सेवया यत्तपसा सर्वविश्वेषु पूजिता ॥ ९० ॥ सर्वग्रामाधिदेवी सा सर्वसंपत्प्रदायिनी ॥ सर्वेश्वरी सर्ववंद्या सर्वेषां पुत्रदायिनी ॥ ९१ ॥

उनके बलसे सर्वेश्वरी और सर्वशक्तिमयी हुई हैं ॥८७॥ भगवती दुर्गाने उनके ही प्रति भक्तिउनकी आराधना और उनकी ही सेवा करके अनुग्रहलाभ किया है और उस अनुग्रहके बलसेही सच्चिदानंदरूपणीमूलप्रकृति हुई है ॥ ८८ ॥ वेदमाता सावित्री उनके प्रतिभक्ति और उनकी ही सेवाके बलसे चार वेदकी अधिष्ठात्री देवी वेदज्ञा और ब्राह्मणोंकी पूज्य हुई है ॥ ८९ ॥ उनको समस्त विद्याओंकी अधिदेवी, समस्त विद्वनमण्डलीको आराध्य और सब विश्वमें पूजित होना केवल प्रकृति देवीकी आराधना और प्रकृति देवीकी उपासनाका फल मात्र है ॥ ९० ॥ उनकी ही आराधनाके बलसे सबकी सम्पद्दात्री और समस्त ग्रामकी अधिदेवी लक्ष्मी सबकी ईश्वरी सबसे स्तुतिको प्राप्त सर्वज्ञ सर्वदुःख निवारिणी सबकी वन्दनीय और सबको पुत्रदायिनी हुई हैं ॥ ९१ ॥

दे. भा. दुर्गा श्रीकृष्णके वामांगसम्भूत उनके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी ॥ ९२ ॥ राधा भी प्रकृतिको उपासनाके बलसे ही सबकी उपासना करनेयोग्य और सर्वज्ञान
॥३६॥ सम्पन्न हुई हैं मान गौरव और सौभाग्यमें सबसे अधिक हैं ॥ ९३ ॥ राधिकाका कृष्णकी प्राणेश्वरी होना कृष्णके निकट आदर और सन्मान लाभ करना श्रीकृष्णके वक्षस्थलमें स्थान प्राप्त होना और लोकातीत सौन्दर्य शालिनी होकर कृष्णको पतिपाना इन सब बातोंका मूलकारण शक्ति सेवा अर्थात् मूलप्रकृतिकी आराधना है, क्योंकि राधिकाने श्रीकृष्णको पतिलाभ करनेके लिये भारतमें शतशृंग पर्वतपर मूल प्रकृतिको प्रसन्नताके उद्देशसे ॥ ९४ ॥ देवमानके हजार वर्षपर्यंत घोरतर तपस्या की है फिर शक्तिरूपा मूलप्रकृतिके प्रसन्न होनेपर श्रीकृष्णने राधिकाको शशिकलाके समान देखकर ॥ ९५ ॥ स्वयं

सर्वस्तुता च सर्वज्ञा सर्वदुर्गार्तिनाशिनी ॥ कृष्णवामांससंभूता कृष्णप्राणाधिदेवता ॥९२॥ कृष्णाप्राणाधिका प्रेम्णा राधिका शक्तिसेवया ॥ सर्वाधिकं च रूपं च सौभाग्यं मानगौरवे ॥ ९३ ॥ कृष्णवक्षः स्थलस्थानं पत्नीत्वे प्राप सेवया ॥ तपश्चकार सा पूर्वं शत शृंगे च पर्वते ॥ ९४ ॥ दिव्यवर्षसहस्रं च पतिप्राप्त्यर्थमेव च ॥ जाते शक्तिप्रसादे तु दृष्ट्वा चंद्रकलोपमाम् ॥ ९५ ॥ कृष्णो वक्षःस्थले कृत्वा रुरोद कृपया विभुः ॥ वरं तस्यै ददौ सारं सर्वेषामपि दुर्लभम् ॥ ९६ ॥ मम वक्षःस्थले तिष्ठ मम भक्ता च शाश्वती ॥ सौभाग्येन च मानेन प्रेम्णाऽथो गौरवेण च ॥ ९७ ॥ त्वं मे श्रेष्ठा च ज्येष्ठा च प्रेयसी सर्वयोषिताम् ॥ वरिष्ठा च गारिष्ठा च संस्तुता पूजिता मया ॥९८॥ सततं तव साध्योऽहं वश्यश्च प्राणवल्लभे ॥ इत्युक्त्वा च जगन्नाथश्चकार ललनां ततः ॥ ९९ ॥ सपत्नीरहितां तां च चकार प्राण वल्लभाम् ॥ अन्या या याश्च ता देव्यः पूजिताः शक्तिसेवया ॥ १०० ॥

वक्षःस्थलमें धारणकर करुणायुक्त होकर उनको अनन्य दुर्लभ वर देकर कहा ॥ ९६ ॥ हे प्रिये ! तुम मेरे प्रति भक्तिमती होकर सदा मेरे वक्षःस्थलमें वास करो मेरी सब पत्नियोंके मध्य तुम सौभाग्यमें, मानमें, प्रणयमें, और गौरवमें सबसे श्रेष्ठ होओ ॥ ९७ ॥ तुम आजसे मेरी ज्येष्ठ और श्रेष्ठतमा पत्नी हुई मैं तुमको सर्वप्रधाना जानकर आदर करूंगा ॥ ९८ ॥ हे प्राणवल्लभे ! मैं सदा तुम्हारे वशीकृत और एकांत आधीन होकर रहूंगा हे मुनिवर ! जगन्नाथ श्रीकृष्णने इस प्रकार कहकर उसको सपत्नीहीन पत्नी बनाकर प्राणप्रिया किया ॥ ९९ ॥ पूर्वमें पंचप्रभूतिके अतिरिक्त संपूर्ण देवियोंकी कथा लिखी गई हैं, उन्होंने भी एक मूलप्रकृतिकी सेवासे सबकी अपेक्षा श्रेष्ठता लाभ की है ॥ १०० ॥

हे मुने ! अधिक क्या कहूं जिसकी जैसी तपस्या है, वह वैसा ही फल लाभ करता है हे मुनिवर ! भगवती दुर्गा दिव्य सहस्र वर्ष पर्यंत हिमालय पर्वतमें तपस्या ॥ १०१ ॥ और मूलप्रकृतिके चरणकमलोंका ध्यान करके सबकी पूजनीय हुई हैं देवी सरस्वती गंधमादनपर्वतमें ॥ १०२ ॥ दिव्यलक्ष वर्षतक तपस्या करके सबकी वंदनीय हुई हैं देवी लक्ष्मी दिव्य सौ युग पर्यंत पुष्करमें तपस्या करके ॥ १०३ ॥ मूलप्रकृतिके प्रसादबलसे सबको सम्पद्दात्री हुई हैं देवी सावित्री मलयपर्वतमें ॥ १०४ ॥ दिव्य साठ सहस्र वर्ष पर्यंत शक्तिकी आराधनासे सबकी पूजनीय और सबकी बन्दनीय हुई हैं हे विभो ! सौ मन्वन्तरतक शिवने तप किया है ॥१०५॥ ब्रह्मा और विष्णु इन्होंने शत मन्वन्तरतक शक्तिकी आराधना करके जगत्का पालकत्व पद लाभ किया है ॥ १०६ ॥

तपस्तु यादृशं यासां तादृक्ताहक्फलं मुने ॥ दिव्यं वर्ष सहस्रं च तपस्तप्त्वा हिमाचले ॥ १ ॥ दुर्गा च तत्पदं ध्यात्वा सर्वपूज्या बभूव ह ॥ सरस्वती तपस्तप्त्वा पर्वते गंध मादने ॥ २ ॥ लक्ष वर्षं च दिव्यं च सर्ववंद्या बभूव सा ॥ लक्ष्मीर्युगशतं दिव्यं तपस्तप्त्वा च पुष्करे ॥ ३ ॥ सर्वसंपत्प्रदात्री च जाता देवीनिषेवणात् ॥ सावित्री गलये तप्त्वा पूज्या वंद्या बभूव सा ॥ ४ ॥ षष्टिवर्षसहस्रं च दिव्यं ध्यात्वा च तत्पदम् ॥ शतमन्वंतरं तप्तं शंकरेण पुरा विभो ॥ ५ ॥ शतमन्वंतरं चेदं ब्रह्मा शक्ति जजाप ह ॥ शतमन्वंतरं विष्णुस्तप्त्वा पाता बभूव ह ॥१०६॥ दशमन्वंतरं तप्त्वा श्रीकृष्णः परमं तपः ॥ गोलोकं प्राप्तवान्दिव्यं मोदतेऽद्यापि यत्र हि ॥ ७ ॥ दशमन्वंतरं धर्मस्तप्त्वा वै भक्तिसंयुतः ॥ सर्वप्राणः सर्व पूज्यः सर्वाधारो बभूव सः ॥८॥ एवं देव्याश्च तपसा सर्वे देव्याश्च पूजिता ॥ मुनयो मनवो भूपा ब्राह्मणाचैव पूजिताः ॥९॥ एवं ते कथितं सर्वं पुराणं सयथागमम् ॥गुरुवक्त्राद्यथा ज्ञातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥११०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे शक्तिप्रादुर्भावे नारदनारायणसंवादेऽष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णने दश मन्वन्तरपर्यंत घोर तपस्या करके गोलोकमें स्थान पाया है और अबतक वहां परमानंदसे वास करते हैं ॥ १०७ ॥ धर्मदेव दश मन्वन्तर तक भक्तिभावसे शक्तिकी आराधना करके सबके जीवन स्वरूप, सबके आराध्य और सबके आधारस्वरूप हुए हैं ॥ १०८ ॥ हे मुनिवर ! इस प्रकार क्या देवीगण, क्या देवगण, क्या मुनिगण, क्या मनुगण, क्या भूपालगण, क्या ब्राह्मणगण सबही शक्तिकी आराधना करके जगत्में पूजनीय हुए हैं ॥ १०९ ॥ हे देवर्षे ! मैंने पूर्वकालमें गुरुके मुखसे वेदविधानानुसार जिस प्रकार सुना है वह सब पूर्वतन वृत्तान्त वर्णन किया अब और क्या सुननेकी वासना है, सो कहो ॥ ११० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

देवर्षि नारद नारायणसे बोले हे प्रभो ! आपने कहा कि, प्रकृतिदेवीके निमेषमें प्रलय उपस्थित होती है और उस पतनमेंही ब्रह्माण्डका पतन होता है और यह प्रलयही प्रकृतप्रलय है ॥ १ ॥ इस प्रलयमें वसुन्धरा देवी तिरोहित होती है सम्पूर्ण विश्वभी जलमें डूब जाता है और सम्पूर्ण जगत् प्रपंच प्रकृतिके शरीरमें लीन होता है ॥ २ ॥ किन्तु मैं जिज्ञासा करता हूं वसुन्धरा देवी तिरोहित होकर किस स्थानमें अवस्थान करती है और फिर सृष्टिके आरम्भमें वह किस प्रकार किस स्थानसे फिर आविर्भूत होती है !॥ ३ ॥ उनके इस प्रकार धन्य,मान्य,सर्वके आश्रय और विजयप्रद होनेका कारण क्या है ? आप अनुग्रह पूर्वक उनका मंगलनिदान जन्मवृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ नारायणने कहा हे वत्सनारद ! सबही कहते हैं कि, देवी वसुंधरा सृष्टिके प्रारम्भमें जन्म ग्रहण करती हैं किन्तु वास्तविक मायामयी प्रकृति देवीकी महिमासे उनकीही शक्तिरूपिणी धरणीका कभी आविर्भाव और कभी तिरोभाव होता

नारद उवाच ॥ देव्या निमेषमात्रेण ब्राह्मणः पात एव च ॥ तस्य पातः प्राकृतिकः प्रलयः परिकीर्तितः ॥ १ ॥ प्रलये प्राकृते चोक्ता तत्राऽदृष्टा वसुंधरा ॥ जलप्लुतानि विश्वानि सर्वे लीनाः परात्मनि ॥ २ ॥ वसुंधरा तिरोभूता कुत्र वा सा च तिष्ठति ॥ सृष्टेर्विधान समये साऽऽविर्भूता कथं पुनः ॥ ३ ॥ कथं बभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रया जया ॥ तस्याश्च जन्मकथनं वद मंगलकारणम् ॥ ४ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ सर्वादिसृष्टौ सर्वेषां जन्मदेव्या इति श्रुतिः ॥ आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च ॥ ५ ॥ श्रूयतां वसुधा जन्म सर्वमंगलकारणम् ॥ विघ्ननिघ्नकरं पापनाशनं पुण्यवर्धनम् ॥ ६ ॥ अहो केचिद्वदंतीति मधुकैटभमेदसा ॥ बभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमतः शृणु ॥ ७ ॥ ऊचतुस्तौ पुरा विष्णुं तुष्टौयुद्धेन तेजसा ॥ आवां वध्यौ न यत्रोर्वी पाथसा संवृतेति च ॥ ८ ॥

है अतएव उनकी इच्छानुसार प्रतिप्रलयमें पृथ्वी एकबार तिरोहित और फिर आविर्भूत होती है ॥ ५ ॥ जो हो, अब मंगलप्रद विघ्नविनाशन पापमोचन और पुण्यवर्द्धक पृथ्वीके जन्मका वृत्तांत वर्णन करता हूं, सुनो ॥ ६ ॥ कोई कोई कहते हैं कि, मधु और कैटभ दैत्यके मेदसे मेदिनीकी उत्पत्ति हुई है किंतु वास्तवमें यह बात नहीं है, सम्प्रति; मधुकैटभके मेदसे जो मेदनीकी उत्पत्ति हुई है वह विरुद्धमत वर्णन करता हूं, सुनो ॥ ७ ॥ अतिपूर्वकालमें विष्णुके संग और कैटभनामक दो दैत्योंका घोर युद्ध उपस्थित हुआ उस युद्धमें दोनों दैत्य विष्णुसे संतुष्ट होकर बोलेहे "विष्णु ! हम दोनों युद्धमें संतुष्ट हुए हैं, अतएव हमसे वर मांगो " विष्णुने कहा " यदि संतुष्ट हुए हो मैं यही वर मांगता हूं कि तुम मुझसे मारे जाओ " तब दैत्योंने कहा पृथ्वीका जो स्थान जलमें प्लावित न हो अर्थात् जहां जल न हो उस स्थानमें हमारा वध करो " ॥ ८ ॥

इसमें स्पष्ट बोध है कि, उन दोनों दैत्योंके जीवित कालमें पृथ्वी विद्यमान थी किंतु केवल जलमें निमग्न होकर अदृश्यभावसे अवस्थित थी, नहीं तो "पृथ्वी का जो स्थान जलकीर्ण न हो, इस स्थान में हमारा वध करो" यह बात क्यों कहते ? और केवल मेदसे पृथ्वीकी उत्पत्ति भी असंभव है क्योंकि शतसूर्य भी मेदको शुष्क करके पृथ्वीको उत्पन्न नहीं कर सकते तो मेदनीका फलितार्थ यही है कि, विष्णुके अपने उरुदेशके ऊपर स्थापना करके दोनों दैत्योंको विनाश करनेसे उनका जो मेद जलमें गिरा ॥ ९ ॥ और बाराहदेवने धराका उद्धार होनेपर उस धराके संग मेदका संश्लेष संबंध उपस्थित होनेके कारण पृथ्वीका नाम मेदिनी हुआ ॥ १० ॥ अब मैंने पूर्वकालमें समय पुष्कर तीर्थ में धर्म देवके मुखसे श्रुतिसम्मत, संगत और मंगलदायक जो मत सुना है वह कहता हूं सुनो ॥ ११ ॥ जलमें प्रविष्ट महा विराट्का मन सर्वाङ्ग व्यापी होनेसे प्रतिलोममेंही प्रविष्ट हुआ इसके पीछे पञ्चीकरण समयमें जो

तयोर्जीवनकाले न प्रत्यक्षा साऽभवत्स्फुटम् ॥ ततो बभूव मेदश्च मरणानंतरं तयोः ॥ ९ ॥ मेदिनीति च विख्यातेत्युक्तमेतन्मतं शृणु ॥ जलधौता कृता पूर्वं वर्धिता मेदसा यतः ॥ १० ॥ कथयामि ते तज्जन्म सार्थकं सर्वमंगलम् ॥ पुरा श्रुतं यच्छ्रुत्युक्तं धर्मवक्त्राच्च पुष्करे ॥ ११ ॥ महाविराट्शरीरस्य जलस्थस्य चिरं स्फुटम् ॥ मनो बभूव कालेन सर्वांग व्यापकं ध्रुवम् ॥ १२ ॥ तच्च प्रविष्टं सर्वेषां तल्लोम्नां विवरेषु च ॥ कालेन महता पश्चाद्बभूव वसुधा मुने ॥ १३ ॥ प्रत्येकं प्रतिलोम्नां च कूपेषु संस्थिता सदा ॥ आविर्भूता तिरोभूता सजला च पुनः पुनः ॥ १४ ॥ आविर्भूता सृष्टिकाले तज्जलोपर्युपस्थिता ॥ प्रलये च तिरोभूता जलस्याऽभ्यंतरे स्थिता ॥ १५ ॥ प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसंयुता ॥ सप्तसागर संयुक्ता सप्तद्वीपसमन्विता ॥ १६ ॥ हेमाद्रिमेरुसंयुक्ता ग्रहचंद्रार्कसंयुता ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च सुरैर्लोकैस्तदाज्ञया ॥ १७ ॥

महापृथ्वीकी उत्पत्ति हुई, उस महापृथ्वीको खंड खंड करके प्रत्येक लोममें स्थापना किया इसके अन्तर खंड खंडमें अवस्थित वह पृथ्वी सृष्टिकालमें एकबार आविर्भूत और प्रलयकालमें तिरोहित हुई ॥ १२ ॥ अतएव महाविराट्के प्रति लोमकूपमें जो मन प्रविष्ट होता है, उस मनसेही बहुत कालके पीछे वसुधाकी उत्पत्ति होती है ॥ १३ ॥ विराट्रूपी पुरुषके प्रतिलोमकूपमेंही एक एक पृथ्वी विराजमान रहती है केवल बारंबार आविर्भूत और तिरोभूत होना मात्र है ॥ १४ ॥ जब आविर्भूत होती है, तब जलके ऊपर भासमान होती और जब तिरोभूत होती है, तब जलमें मग्न होती है, ॥ १५ ॥ यह पृथ्वी प्रति विश्वमें ही शैल, कानन, सप्तसागर, सप्तद्वीप ॥ १६ ॥ सुमेरुपर्वत, चन्द्र सूर्य ग्रह, ब्रह्मा विष्णु शिवादि सुरलोक ॥ १७ ॥

संपूर्ण पुण्यतीर्थ, पवित्र भारतवर्ष काञ्चनीभूमि, सप्तस्वर्ग ॥ १८ ॥ अधोभागमें सप्तपाताल, ऊर्ध्वमें ब्रह्मलोक और ध्रुवलोक संयुक्त होकर स्थिति करते हैं इस प्रकार संपूर्ण पदार्थ संयुक्त एक एक भूमण्डल एक एक विश्व है ॥ १९ ॥ प्रतिभूमण्डलमें ही पूर्वोक्त नियमसे विश्व विरचित होता है सुतरां विश्वमात्रही कृत्रिम और नश्वर है ॥ २० ॥ जब प्राकृत प्रलय उपस्थित होकर ब्रह्माका पतन होता है और जब आदि सृष्टिका प्रारंभ होता है तब परमात्मा रूपी श्रीकृष्णसे ही महाविराट्की उत्पत्ति होती हैं ॥२१॥ सृष्टि, स्थिति, प्रलय काल और ब्रह्मादि समस्तही प्रवाहरूपसे नित्य हैं वराहकल्पमें सुरगण ॥ २२ ॥ मुनिगण, मनुगण, विप्रगण और गन्धर्वादि द्वारा जो वसुन्धरा पूजित होती है, यह भी प्रवाहरूपसे नित्य है श्रुतिमें कहा है कि; धरा वराह रूपधारी विष्णुकी

पुण्यतीर्थसमायुक्ता पुण्यभारतसंयुता ॥ कांचनीभूमिसंयुक्ता सप्तस्वर्गसमन्विता ॥ १८ ॥ पातालसप्त तदधस्तदूर्ध्वं ब्रह्मलोकतः ॥ ध्रुवलोकश्च तत्रैव सर्वं विश्वं च तत्र वै ॥ १९ ॥ एवं सर्वाणि विश्वानि पृथिव्यां निर्मितानि च ॥ नश्वराणि च विश्वानि सर्वाणि कृत्रिमाणि वै ॥२०॥ प्रलये प्राकृते चैव ब्रह्मणश्च निपातने ॥ महाविराडादिसृष्टौ सृष्टः कृष्णेन चात्मना ॥ २१ ॥ नित्यौ च स्थितिप्रलयौ काष्ठाकालेश्वरैः सह ॥ नित्याऽधिष्ठातृदेवी सा वाराहे पूजिता सुरैः ॥ २२ ॥ मुनिभिर्मनुभिर्विप्रैर्गंधर्वादिभिरेव च ॥ विष्णोर्वराहरूपस्य पत्नी सा श्रुतिसंमता ॥ २३ ॥ तत्पुत्रो मंगलो ज्ञेयो घटेशो मंगलात्मजः ॥ नारद उवाच ॥ पूजिता केन रूपेण वाराहे चः सुरैर्मही ॥ २४ ॥ वाराहे चैव वाराही सर्वैः सर्वाश्रया सती ॥ मूलप्रकृतिसंभूता पंचीकरणमार्गतः ॥ २५ ॥ तस्याः पूजाविधानं चाऽप्यधश्चोर्ध्वमनेकशः ॥ मंगलं मंगलस्यापि जन्म व्यासं वद प्रभो ॥ २६ ॥ नारायण उवाच ॥ वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा ॥ उद्दधार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलात् ॥ २७ ॥

पत्नी है ॥ २३ ॥ मंगल उस धराका पुत्र और मंगलके पुत्र घटेश हैं देवर्षिनारदने कहा हे भगवन् ! वराहकल्पमें वाराही नामक प्रसिद्ध, भूमि देवताओंने किस रूपमें पूजी ॥ २४ ॥ सचेतन और अचेतन सम्पूर्ण पदार्थोंकी आश्रय स्थानीय सुरपूजिता यह पृथ्वी पंचीकरण प्रथानुसार किस प्रकार मूलप्रकृतिसे उत्पन्न हुई ॥ २५ ॥ भूलोकमें और स्वर्लोकमें उसकी पूजापद्धति किस प्रकार है और मंगलकी भी मंगलजनक अर्थात् अत्यन्त पावक उस पृथ्वीका विस्तार किस प्रकार है और जन्मवृत्तांत किस प्रकार हैं, यह विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ २६ ॥ नारायणने कहा वराहदेव पूर्वकालके समय वाराह कल्पमें ब्रह्माजीके स्तुति करनेसे हिरण्याश दैत्यको मारकर पृथ्वीको रसातलसे निकाल लाये ॥ २७ ॥

फिर हृदयमें जिस प्रकार पद्मपत्र भासमान होता है, इसीप्रकार पृथ्वीको जलके ऊपर स्थापन किया इस ओर ब्रह्माजीने उसी अवसरमें उस धरापृष्ठमें अत्यन्त मनोहर विश्व संसार रचा ॥ २८ ॥ इसी समय करोड़ सूर्यके समान प्रभायुक्त वराहरूपी भगवान हरि पृथ्वीकी अधिदेवीको रूपवती और अनुरागवती देखकर ॥ २९ ॥ स्वयं मनोहरमूर्त्ति रमणोपयोगी वेष किया अनंतर देवमानके एक वर्ष पर्यन्त दिनरात दोनोंने रतिक्रिया की ॥ ३० ॥ सुन्दरी धरा संभोग सुखसे एकवारही मूर्च्छित हो गई, क्योंकि रसिकाके संग रसिकका समागम अत्यन्त सुखजनक है ॥ ३१ ॥ ईश्वर विष्णु भी धराके अंगस्पर्शजनित सुखसे अत्यंत अभिभूत हुए यही क्या? दिनरात्रि उनसे किस ओर होकर बीत गये थे कुछ न जान पड़े पूर्ण एकवर्ष बीतनेपर समागम सुखके अन्तमें पूर्ववत् बोधका विकास हुआ, तब

जले तां स्थापयामास पद्मपत्रं यथा ह्रदे ॥ तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा विश्वं सर्वं मनोहरम् ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा तदधिदेवीं च सकामां कामुको हरिः ॥ वाराहरूपी भगवान् कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ २९ ॥ कृत्वा रतिकलां सर्वां मूर्तिं च सुमनोहराम् ॥ क्रीडां चकार रहसि दिव्यवर्षमहर्निशम् ॥ ३० ॥ सुखसंभोगसंस्पर्शान्मूर्च्छां सम्प्राप सुंदरी ॥ विदग्धाया विदग्धेन संगमोऽतिसुखप्रदः ॥ ३१ ॥ विष्णुस्तदंगसंश्लेषाद् बुबुधे न दिवानिशम् ॥ वर्षांते चेतनां प्राप्य कामी तत्याज कामुकीम् ॥ ३२ ॥ पूर्वरूपं वराहं च दधार स च लीलया ॥ पूजां चकार तां देवो ध्यात्वा च धरणीं सतीम् ॥ ३३ ॥ धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः सिंदूरैरनुलेपनैः ॥ वस्त्रैः पुष्पैश्च बलिभिः संपूज्योवाच तां हरिः ॥ ३४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सर्वाधारा भव शुभे सर्वैः संपूजिता सुखम् ॥ मुनिभिर्मनुभिर्देवैः सिद्धैश्च दानवादिभिः ॥ ३५ ॥ अंबुवाचीत्यागदिने गृहारंभे प्रवेशने ॥ वापीतडागारंभे च गृहे च कृषिकर्मणि ॥ ३६ ॥

कामुक और कामुकी दोनोंमें पृथक् हुए ॥ ३२ ॥ श्रीहरिने पुनर्वार लीलापूर्वकही पूर्ववत् वराहरूप धारण किया और उस सती धरणीकी पूजा की ॥ ३३ ॥ और धूप, दीप, नैवेद्य, सिन्दूर, चन्दन, वस्त्र, पुष्प और अन्यान्य अनेक प्रकारकी सामग्रीसे उसकी पूजा करके कहा ॥ ३४ ॥ श्रीभगवान् बोले हे शुभे! तुम सम्पूर्ण पदार्थोंका आधार होओ मुनिगण, मनुगण, देवगण, सिद्धगण और दानवादि संपूर्ण स्वच्छन्दतासे तुम्हारी अर्चना करें ॥ ३५ ॥ मैं कहता हूं, अम्बुवाची त्यागके दिन और इसके अतिरिक्त गृहारंभ, गृहप्रवेश वापी वा तालाव इत्यादि खोदने एवं कृषि कार्यके प्रारंभ दिनमें ॥ ३६ ॥

१ आर्द्रानक्षत्रके प्रथम पादमें पृथ्वी रजस्वला होती है उस दिनको त्यागना चाहिये यही अम्बुवाची है। तीन दिनतक रजस्वला जाननी।

सबही तुम्हारी पूजा करेंगे जो मूढ तुम्हारी पूजासे विमुख होंगे वह निःसन्देह नरकवास करेंगे ॥ ३७ ॥ वसुंधराने कहा हे प्रभो ! मैं आपकी आज्ञानुसार वाराही मूर्ति धारण करके लीला पूर्वकही स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण विश्वको पीठपर वहन करूंगी ॥ ३८ ॥ मोती, सीपी, शालग्राम, शिवलींग, देवी प्रतिमा, शंख, प्रदीपयंत्र, माणिक्य, हीरक ॥ ३९ ॥ यज्ञोपवीत, पुष्प, पुस्तक, तुलसीपत्र, जपमाला, पुष्पमाला, सुवर्ण, कपूर, ॥ ४० ॥ गोरोचन, चन्दन और शालग्राम शिलाका जल यह सब किसी प्रकार वहन नहीं कर सकूंगी इन सबको वहन करनेसे मेरे कष्टकी सीमा नहीं रहेगी अर्थात् यह वस्तु किसी आधारपर धरो ॥ ४१ ॥ भगवान् नारायणने कहा हे सुन्दरी ! जो मूढ पापात्मा लोग तुम्हारी पीठपर यह सब द्रव्य स्थापन करेंगे, वह दिव्य शतवर्ष पर्यन्त

तव पूजां करिष्यंति मद्वरेण सुरादयः ॥ मूढा ये न करिष्यंति यास्यंति नरकं च ते ॥ ३७ ॥ वसुधोवाच ॥ वहामि सर्वं वाराहरूपेणाहं तवाज्ञया ॥ लीलामात्रेण भगवन्विश्वं च सचराचरम् ॥ ३८ ॥ मुक्तां शुक्तिं हरेरर्चां शिवलिंगं शिवां तथा ॥ शंखं प्रदीपं यंत्रं च माणिक्यं हीरकं तथा ॥ ३९ ॥ यज्ञसूत्रं च पुष्पं च पुस्तकं तुलसीदलम् ॥ जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं च सुवर्णकम् ॥ ४० ॥ गोरोचनं चन्दनं च शालग्रामजलं तथा ॥ एतान्वोढुमशक्ताऽहं क्लिष्टा च भगवञ्छृणु ॥ ४१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ द्रव्याण्येतानि ये मूढा अर्पयिष्यंति सुन्दरि ॥ यास्यंति कालसूत्रं ते दिव्यं वर्षशतं त्वयि ॥ ४२ ॥ इत्येवमुक्त्वाभगवान्विरराम च नारद ॥ बभूव तेन गर्भेण तेजस्वी मंगलग्रहः ॥ ४३ ॥ पूजां चक्रुः पृथिव्याश्च ते सर्वे चाऽज्ञया हरेः ॥ कण्वशाखोक्तध्यानेन तुष्टुवुश्च स्तवेन ते ॥४४॥ ददुर्मूलेन मन्त्रेण नैवेद्यादिकमेव च ॥ संस्तुता त्रिषु लोकेषु पूजिता सा बभूव ह ॥ ४५ ॥ नारद उवाच ॥ किं ध्यानं स्तवनं तस्या मूलमंत्रं च किं वद ॥ गूढं सर्वपुराणेषु श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ ४६ ॥

कालसूत्र (नरकविषेश) में गमन करेंगे ॥४२॥ हे वत्सनारद ! भगवान् नारायण धरासे इस प्रकार कहकर मौन होगये इस ओर पूर्वसंभोगके कारण धराके गर्भसे तेजस्वी मंगल ग्रह उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥ श्रीहरिकी आज्ञानुसार सबही काण्वशाखोक्त ध्यानसे धराकी पूजा करके स्तवपाठ करने लगे ॥ ४४ ॥ मूलमंत्रसे नैवेद्य इत्यादि समस्त द्रव्य देने लगे त्रैलोक्यमें सर्वत्रही उनका स्तव और पूजा चल निकली ॥ ४५ ॥ नारदजी बोले हे भगवन् ! वसुन्धराका ध्यान स्तव और मूलमंत्र पुराणोंमें अति गूढ है, अतएव उनको सुननेके लिये मुझको बड़ा कौतूहल उपस्थित हुआ है अनुग्रहपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ४६ ॥

नारायणने कहा हे वत्स ! सबसे पहिले वराह देवके पृथ्वीकी पूजा करनेपर फिर ब्रह्माने उनकी पूजा की ॥ ४७ ॥ ब्रह्माकी पूजाके पीछे समस्त मुनीन्द्र समस्त मनु और मनुष्यादि सबने पृथ्वीकी पूजा आरम्भ की है अब देवीका ध्यान स्तव और मंत्र कहता हूं सुनो ॥ ४८ ॥ पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने "ओं ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहा" इस मूलमंत्रसे पृथ्वीकी पूजा की थी इसके उपान्त फिर "हे देविधरे" तुम्हारा वर्ण श्वेतसरोज (कमल) के समान हे, तुम्हारा मुखमण्डल शरदके चन्द्रमाके समान है ॥ ४९ ॥ तुम्हारा सर्वाङ्ग चन्द्रनादिलेपनसे लिप्त है तुम्हारा संपूर्ण शरीर रत्नमय विभूषणोंसे विभूषित है, तुम सब रत्नोंका आधार हो, तुम्हारेही गर्भमें समस्त रत्न निहित रहते हैं तुम्हीं रत्नाकरमें व्याप्त हो ॥ ५० ॥ तुम्हीं अग्निपरीक्षित (वस्त्र) पहरे रहती हो हे स्मिता

श्रीनारायण उवाच ॥ आदौ च पृथिवी देवी वराहेण च पूजिता ॥ ततो हि ब्रह्मणा पश्चात्पूजिता पृथिवी तदा ॥ ४७ ॥ ततः सर्वैं र्मुनींद्रैश्च मनुभिर्मानवादिभिः ॥ ध्यानं च स्तवनं मन्त्रं शृणु वक्ष्यामि नारद ॥ ४८ ॥ ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण विष्णुना पूजिता पुरा ॥ श्वेतपंकजवर्णाभां शरच्चंद्रनिभाननाम् ॥ ४९ ॥ चन्दनोक्षितसर्वांगीं रत्नभूषणभूषिताम् ॥ रत्नाधारां रत्नगर्भां रत्नाकरसमन्विताम् ॥ ५० ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां वंदितां भजे ॥ ध्यानेनानेन सा देवी सर्वैश्च पूजिताऽभवत् ॥ ५१ ॥ स्तवनं शृणु विप्रेंद्र कण्वेशाखोक्तमेव च ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ जय जये जलाधारे जलशीले जलप्रदे ॥ ५२ ॥ यज्ञसूकरजाये त्वं जयं देहि जयावहे ॥ मंगले मंगलाधारे मंगल्ये मांगलप्रदे ॥ ५३ ॥ मंगलार्थं मंगलेशे मंगलं देहि मे भवे ॥ सर्वाधारे च सर्वज्ञे सर्वशक्तिसमन्विते ॥ ५४ ॥ सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे ॥ पुण्यस्वरूपे पुण्यानां बीजरूपे सनातनि ॥ ५५ ॥

नने ! तुम तीनों लोकोंसे जित हो, अतएव मैं तुम्हारी भजना करती हूं इस ध्यानसे सभी भूमिकी पूजा करने लगे ॥ ५१ ॥ नारायणने कहा हे द्विजेन्द्र ! अब काण्वशाखामें पृथ्वीका जिस प्रकार स्तव निर्दिष्ट हुआ है सो कहता हूं सुनो "हे जगजये ! हे जलाधारे ! हे जलशीले ! हे जयप्रदे ! ॥ ५२ ॥ हे यज्ञ वराहपत्नि ! हे जयावहे ! तुम मुझको जयप्रदान करो हे मंगले ! हे मंगलाधारे ! हेमांगल्ये ! हे मंगलप्रदे ! ॥ ५३ ॥ तुम मंगलप्रदानके लिये मंगलकी अधीश्वरी हुई हो, अतएव इस संसारमें मुझको मंगल प्रदान करो हे सर्वाधारे ! हे सर्वज्ञे ! हे सर्वशक्तिसमन्विते ! ॥ ५४ ॥ हे सर्वकामप्रदे ! हे देवि पृथिवि ! तुम इस संसारमें मुझको वांछित फलप्रदान करो हे पुण्यस्वरूपे ! हे समस्त पुण्यबीजरूपे ! हे सनातनि ! ॥ ५५ ॥

हे पुण्याश्रये ! तुम संपूर्ण पुण्यवान् पुरुषोंको स्थान स्वरूप हो, इस संसारमें तुम सबको पुण्यप्रदान करती हो, तुम्हीं संपूर्ण सस्य (धान्य) का आलस्य और तुम्हीं सब प्रकारके शस्य धनमें धनवती हो, तुम्ही सबको सब प्रकारका सस्य प्रदान करती हो ॥ ५६ ॥ इस संसारमें तुम्हीं एक समय समस्त सस्य करती हो और फिर एक समयमें अनेक प्रकारका सस्य उत्पन्न करती हो हे भूमे ! तु हीं भूमिपतियोंके सर्वस्व स्वरूप हो ॥ ५७ ॥ उनको श्रेष्ठतम आश्रयस्वरूप और सुख स्वरूप हो अतएव हे भूमिदे ! तुम मुझे भूमिदान करो''हे वत्स ! पृथ्वीका यह स्तोत्र अतीव पुण्यप्रद है, अधिक क्या प्रतिदिन प्रातःकालमें उठकर जो इस भूमि स्तोत्रको पढ़ते हैं ॥ ५८ ॥ वह करोड़ २ जन्ममें सार्वभौम राजा होकर काल व्यतीत कर सकते हैं मनुष्यगण इसको ,पाठ करके भूमिदानके

पुण्याश्रये पुण्यवतामालये पुण्यदे भवे ॥ सर्वसस्यालये सर्वसस्याढ्ये सर्वसस्यदे ॥ ५६ ॥ सर्वसस्यहरे काले सर्वसस्यात्मिके भवे ॥ भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे ॥ ५७ ॥ भूमिपानां सुखकरे भूमिं देहि च भूमिदे ॥ इदं स्तोत्रं महापुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ ५८ ॥ कोटिजन्मसु स भवेद्बलवान्भूमिपेश्वरः ॥ भूमिदानकृतं पुण्यं लभ्यते पठनाज्जनैः ॥ ५९ ॥ भूमिदानहरात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ अंबुवाचीभूकरणपापात्स मुच्यते ध्रुवम् ॥ ६० ॥ अन्यकूपे कूपखननपापात्स मुच्यते ध्रुवम् ॥ परभूमिहरात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६१ ॥ भूमौ वीर्यत्यागपापाद्भूमौ दीपादिस्थापनात् ॥ पापेन मुच्यते सोऽपि स्तोत्रस्य पठनान्मुने ॥ ६२ ॥ अश्वमेधशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ भूमिदेव्या महास्तोत्रं सर्वकल्याणकारकम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

पुण्यलाभ करनेमें अधिकारी होते हैं ॥ ५९ ॥ यदि कोई भूमिदान करके उसको फेरले,जो अम्बुवाची दिनमें भूमिखनन करता है ॥ ६० ॥ जो विना अनुमतिके दूसरेके बनाये कूपमें कूपखनन करता है, जो पराई भूमि हरण करता है ॥ ६१ ॥ जो भूमिमें वीर्यपात करता है जो भूमिके ऊपर प्रदीप स्थापन करता है, तो वह निःसंदेह इस स्तोत्रका पाठ करनेपर अपने २ किये पातकसे छूट जाता है ॥ ६२ ॥ इसके पढनेसे सौ अश्वमेधके समान पुण्यलाभ होता है इसमें संशय नहीं वास्तवमें देवी धरणीका यह स्तोत्र सब प्रकारके कल्याणका आकरस्वरूप है ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

नारदजी बोले हे देवताओंमें अग्रगण्य ! दूसरेकी भूमिका हरण, दूसरेके कूपमें कूपखनन ॥ १ ॥ अम्बुवाची दिनमें भूमिखनन, पृथ्वीपर वीर्यत्याग, भूमिके ऊपर प्रदीप स्थापन ॥ २ ॥ वा पृथ्वीपर अन्य प्रकारका असदाचरण करनेसे जिस प्रकार पापका स्पर्श होता है, सो कैसे कार्यका अनुष्ठान करनेसे उसका प्रतीकार होता है यह सुननेकी अभिलाषा है, कृपापूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ नारायण बोले हे वत्स नारद ! इस भारतमें जो कोई एक बिलस्त भूमि त्रिसंध्या करनेवाले ब्राह्मणको देता है, तो उसका शिवलोकमें वास होता है ॥ ४ ॥ धान्यपूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणको दान करनेसे दाता अन्तकालमें भूमिरेणुपरिमित समयतक विष्णुलोकमें वास करता है ब्राह्मणको ग्रामदान भूमिदान और धान्य दान करनेसे दाता और प्रतिगृहीता दोनों ही पापसे छूटकर देवीलोकमें जाते

नारद उवाच ॥ भूमिदानकृतं पुण्यं पापं तद्धरणेन च ॥ परभूहरणात्पापं कूपेऽन्धो खनने तथा ॥ १ ॥ अंबुवाच्यां भूखनने वीर्यस्य त्याग एव च ॥ दीपादिस्थापनात्पापं श्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥ २ ॥ अन्यद्वापृथिवीजन्यं पापं यत्पृच्छते परम् ॥ यदस्ति तत्प्रती कारं वद वेदविदांवर ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ वितस्तिमात्रां भूमिं च यो ददाति च भारते ॥ संध्यापूताय विप्राय स याति शिवमंदिरम् ॥ ४ ॥ भूमिं च सर्वसस्याढ्यां ब्राह्मणाय ददाति च ॥ भूमिरेणुप्रमाणाब्दमंते विष्णुपदेस्थिति ॥ ५ ॥ ग्रामं भूमिं च धान्यं च ब्राह्मणाय ददाति यः ॥ सर्वपापाद्विनिर्मुक्तौ चोभौ देवीपुरस्थितौ ॥ ६ ॥ भूमिदानं च तत्काले यः साधुश्चानुमोदते ॥ स च प्रयाति वैकुंठे मित्रगोत्रसमन्वितः ॥ ७ ॥ स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः ॥ स तिष्ठति कालसूत्रे यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ ८ ॥ तत्पुत्रपौत्रप्रभृतिर्भूमिहीनः श्रिया हतः ॥ पुत्रहीनो दरिद्रश्च घोरं याति च रौरवम् ॥ ९ ॥

हैं॥६॥ अधिक क्या यदि कोई सज्जन भूमिदानके प्रसंगमें स्थित होकर दाताका प्रवृत्ति करैं वह भी अन्तमें मित्र बांधवोंके सहित वैकुंठ धाममें गमन करते हैं ॥ ७ ॥ अपनी दी हुई हो वा पराई दी हुई हो ब्रह्मवृत्ति हरण करनेसे जबतक जगतमें चन्द्र सूर्य प्रकाशमान रहेंगे, तबतक उसको कालसूत्र नामक नरकमें वास करना पड़ेगा ॥ ८ ॥ यही नहीं, वरन् उसके पुत्र पौत्रादिकको भूमिहीन श्रीहीन पुत्रहीन और धनहीन हो तो घोरतर रौरवनरकमें वास करना होगा ॥ ९ ॥

ग्रामके प्रांतभागमें गोप्रचार[1] स्थानकी रक्षा करनी चाहिये, यही शास्त्रका शासन है किंतु यदि कोई उस गोप्रचार भूमिको कर्षण करके, उस भूमिजात धान्यादिसे पुण्यसंचय वा उसको ब्राह्मणके निमित्त देदे तो उसका पुण्यसंचय करना दूर रहे, वरन् वह दिव्य शतवर्ष पर्यंत कुंभीपाक नामक नरकमें वास करता है ॥ १० ॥ गोठ व तालावादि नष्ट करके जो उसमें धान्यादि उत्पन्न करता है, उसको भी चौदह इन्द्रपात होनेके समयतक असिपत्र नामक नरकमें वास करना पड़ता है ॥ ११ ॥ अन्यनिर्मित पृष्पकरणी इत्यादिमें स्नान करनेके समय पांच मिट्टीकी डली उठा करके स्नान करना चाहिये किंतु कोई यदि ऐसा न करके स्नान करता है उसको स्नानका फललाभ होना तो दूर रहे, वरन् उसको नरकवासका आश्रय ग्रहण करना होता है ॥ १२ ॥ जो पुरुष कामके

गवां मार्गं विनिष्कृष्य यश्च सस्यं ददाति च ॥ दिव्यवर्षशतं चैव कुंभीपाके च तिष्ठति ॥ १० ॥ गोष्ठं तडागं निष्कृष्यमार्गं सस्यं ददाति यः ॥ स तिष्ठत्यसिपत्रे च यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ११ ॥ पंच पिंडाननुद्धृत्य परकूपे च स्नाति यः ॥ प्राप्नोति नरकं चैव स्नानं निष्फलमेव च ॥ १२ ॥ कामी भूमौ च रहसि वीर्यत्यागं करोति यः ॥ भूमिरेणु प्रमाणं च वर्षं तिष्ठति रौरवे ॥१३॥ अंबुवाच्यां भूकरणं यः करोति च मानवः ॥ स याति कृमिदंशं च स्थितिस्तत्र चतुर्युगम् ॥ १४ ॥ परकीये लुप्तकूपे कूपं मूढः करोति यः ॥ पुष्करिण्यां च लुप्तायां पुष्करिणीं ददाति यः ॥ ॥ १५ ॥ सर्वं फलं परस्यैव तप्तकुंडं व्रजेच्च सः ॥ तत्र तिष्ठति संतप्तो यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १६ ॥ परकीये तडागे च पंकमुद्धृत्य चोन्मृजेत् ॥ रेणुप्रमाणवर्षं च ब्रह्मलोके वसेन्नरः ॥ १७ ॥

वशीभूत होकर किसी प्रकारकी निर्जन भूमिमें वीर्यपात करता है, तो उसको वहांकी भूमिकी रेणुका परिमित वर्षपर्यंत नरकका दुःख भोगना पड़ता है ॥ १३ ॥ अम्बुवाची दिनमें भूमिखनन करनेसे चार युग पर्यंत कृमिदेश नामक नरकमें काल व्यतीत करना पड़ता है ॥ १४ ॥ जो मूढ पुरुष कूप बनानेवालेकी वा जलाशयदाताकी विना अनुमति लिये लुप्तकूपका वा लुप्तजलाशयका पंकोद्धार करता है ॥ १५ ॥ तो उसका कुछभी फलोदय नहीं होता, वरन् पूर्व स्वामीको ही पुण्यलाभ होता है अधिकतर उस मूर्खको तप्तकुंड नरकमें जाकर चौदह इंद्रके समयपर्यंत वहां वास करना पड़ता है ॥ १६ ॥ दूसरेके सरोवरके जलमें स्नान करनेके समय पांच डली उठा करके स्नान करनेसे उन गुटिकाकी रेणुपरिमितकालस्नान करनेवाला ब्रह्मलोकमें वास करता है ॥ १७ ॥

१ जहां गौ चरा करती हैं उस स्थानको गोप्रचार कहते हैं

पिता और पितामहादिके श्राद्धमें भूस्वामी कोपिंड अर्थात् कोई खाद्य वस्तु बनादिये श्राद्ध करनेसे उस मूढ श्राद्ध करनेवालेको निःसन्देह नरक में वास करना पडता है ॥ १८ ॥ बिना आधार भूमिके ऊपर प्रदीप स्थापन, करनेसे सात जन्मतक अंधा और जन्मान्तरमें कुष्ठ रोगसे आक्रान्त होता है ॥ १९ ॥ मोती, मूंगा, हीरा, सुवर्ण, मणि इन पांच रत्नको भी भूमिमें स्थापन करनेसेस्थापन करनेवाला अंधा होता है ॥ २० ॥ शिवलिंग, शिवकी प्रतिमूर्ति और शालग्राम शिला भूमिमें स्थापन करनेसे स्थापनरनेवालेको शतमन्वन्तरतक कृमिभक्षक होकर वास करना पड़ता है ॥२१॥ शंख यंत्र शिलाजल अर्थात् चरणामृत पुष्प और तुलसी पत्र भूमिमें स्थापन करनेसे निःसदेह नरकवास प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ जयमाला पुष्पमाला गोरोचन और कपूर भूमिमें स्थापन करनेसे स्थापन करनेवालेको

पिंडं पित्रे भूमिभर्तुर्न प्रदाय च मानवः ॥ श्राद्धं करोति यो मूढो नरकं याति निश्चितम् ॥ १८ ॥ भूमौ दीपं योऽर्पयति स चांधः सप्तजन्मसु ॥ भूमौ शंख च संस्थाप्य कुष्ठं जन्मांतरे लभेत् ॥ १९ ॥ मुक्तां माणिक्यहीरौ च सुवर्णं च मणिं तथा ॥ पंच संस्थापयेद्भूमौ स.चांधः सप्तजन्मसु ॥२०॥ शिवलिंगं शिवामर्चां यश्चार्पयति भूतले ॥ शतमन्वंतरं यावत्कृमिभक्षस्स तिष्ठति ॥२१॥ शंखं यंत्रं शिलातोयं पुष्पं च तुलसीदलम् ॥ यश्चार्पयति भूमौ च स तिष्ठेन्नरके ध्रुवम् ॥ २२ ॥ जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं रोचनं तथा ॥ यो मूढश्चार्पयेद्भूमौ स याति नरकं ध्रुवम् ॥ २३ ॥ भूमौ चंदनकाष्ठं च रुद्राक्षं कुशमूलकम् ॥ संस्थाप्य भूमौ नरके वसेन्मन्वंतरावधि ॥ २४ ॥ पुस्तकं यज्ञसूत्रं च भूमौ संस्थापयेन्नरः ॥ न भवेद्विप्रयोनौ च तस्य जन्मांतरे जनिः ॥ २५ ॥ ब्रह्महत्यासमं पापमिह वै लभते ध्रुवम् ॥ ग्रंथियुक्तं यज्ञसूत्रं पूज्यं च सर्ववर्णकैः ॥ २६ ॥ यज्ञं कृत्वा तु यो भूमिं क्षीरेण न हि सिंचति ॥ स याति तप्त भूमिं च संतप्तः सप्त जन्मसु ॥२७॥ भूकंपे ग्रहणे यो हि करोति खननं भुवः ॥ जन्मांतरे महापापो ह्यंगहीनो भवेद् ध्रुवम् ॥ २८ ॥

निःसंदेह घोरतर नरककी यंत्रणा भोगनी पडती है ॥ २३ ॥ चन्दन काष्ठ रुद्राक्षमाला और कुश मूल पृथ्वीमें स्थापन करनेसे एक मन्वन्तर पर्यन्त नरकमें वास होता है ॥ २४ ॥ पुस्तक और यज्ञ सूत्र भूमिपर स्थापन करनेसे फिर उसको ब्राह्मणके कुलमें जन्म नहीं मिलता ॥ २५ ॥ बरन् उसको ब्रह्महत्याके समान पातकमें लिप्त होना पड़ता है ग्रंथियुक्त यक्षसूत्र सब वर्णोंको पूज्य है ॥ २६ ॥ यज्ञ कार्य समापनके पीछे जो पुरुष दूध दहीसे पृथ्वीका अर्थात् यज्ञ भूमिका अभिषेक नहीं करता उसको सात जन्मतक संतप्त होकर तप्त भूमिमें वास करना पड़ता है ॥२७॥ भूकम्प वा ग्रहणके समय जो मिट्टी खोदता है वह महापापी जन्मान्तरमें अंगहीन होता है ॥ २८ ॥

हे मुनिवर ! यह पृथ्वी सबका भवन होनेके कारण भूमि कश्यपकी कन्या होनेसे काश्यपी स्थिर रूप होनेसे अचला ॥ २९ ॥ संपूर्ण विश्वको धारण करनेके कारण विश्वम्भरा अनन्त विस्तार होनेसे अनन्ता और पृथुराजकी कन्या वा बहुत विस्तृत होनेके कारण पृथ्वीनामसे अभिहित हुई है ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ देवर्षि नारदने कहा हे वेदविदाम्बर ! अत्यन्त मनोहर पृथ्वीका उपाख्यान सुना अब गंगाका उपाख्यान सुननेकी इच्छा है ॥ १ ॥ पूर्वमें सुना है कि सुरेश्वरी विष्णु स्वरूपिणी विष्णुपादोद्भवा गंगा भारतीके शापसे भारतमें गई ॥ २ ॥ किंतु उनके भारतमें जानेका कारण क्या है ! किस युगमें किसीकी प्रार्थनासे वह भारतमें गई ? हे प्रभो ! वही पापनाशक पुण्यप्रद शुभवृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥३॥ श्रीनारायण

भवनं यत्र सर्वेषांभूमिस्तेन प्रकीर्तिता ॥ काश्यपी कश्यपस्येयमचलास्थिररूपतः ॥ २९ ॥ विश्वंभरा धारणाच्चानंतानंतस्वरूपतः ॥ पृथिवी पृथुकन्या त्वाद्विस्तृतंत्वा न्महामुने ॥३०॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे दशमोध्यायः ॥१०॥ नारद उवाच ॥ श्रुतं पृथिव्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम् ॥ गंगापाख्यानमधुना वद वेदविदां वर ॥१॥ भारते भारतीशापात्सा जगाम सुरेश्वरी ॥ विष्णु स्वरूपा परमा स्वयं विष्णुपदीति च ॥२॥ कथं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा ॥ तत्क्रमं श्रोतुमिच्छामि पापघ्नं पुण्यदं शुभम् ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ राजराजेश्वरः श्रीमान्सगरः सूर्यवंशजः ॥ तस्य भार्या च वैदर्भी शैब्या च द्वे मनोहरे ॥ ४ ॥ तत्पत्न्यामेकपुत्रश्च बभूव सुमनोहरः ॥ असमंज इति ख्यातः शैब्यायां कुलवर्धनः ॥ ५ ॥ अन्या चाऽऽराधयामास शंकरं पुत्र कामुकी ॥ बभूव गर्भस्तस्याश्च हरस्य च वरेण ह ॥६॥ गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिंडं सुषाव सा ॥ तद्दृष्ट्वा सा शिवं ध्यात्वा रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ॥ ७ ॥ शंभुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह ॥ चकार संविभज्यैतत्पिंडं षष्टिसहस्रधा ॥ ८ ॥

बोले हे वत्स ! पूर्वकालके समय सूर्यवंशमें सगर नामक श्रीमान् एक राजराजेश्वरने जन्म लिया था उनकी परमरूपवती दो भार्या थीं, तिनमें एकका नाम वैदर्भी और दूसरीका नाम शैब्या था ॥ ४ ॥ शैब्याके गर्भसे नरपतिके वंशधर अतिरूपवान् एक पुत्रने जन्म ग्रहण किया इस पुत्रका नाम असमञ्जस था ॥ ५ ॥ इस और दूसरी रानी वैदर्भी पुत्रकी इच्छासे श्रीशंकरकी आराधना करने लगी भगवान् भूत नाथके प्रसन्न होकर वरदेनेसे वैदर्भी गर्भवती हुई ॥ ६ ॥ अनन्तर शतवर्ष गर्भ धारणके पीछे उसने एक मांसका पिंड प्रसव किया यह देखकर राजपत्नी अत्यन्त दुःखितमनसे महादेवीकी शरणागत हो उच्चस्वरसे वारंवार रोदन करने लगी ॥७॥ तब भगवान् शंकरने ब्राह्मणके वेषमें वहां उपस्थित होकर उस मांसपिंडको सहस्र खंडमें विभक्त किया ॥ ८ ॥

वह सहस्रखंड महाबलपराक्रान्त पुत्ररूपमें परिणत हुए अधिक क्या ? उन कुमारोंके शरीरकी प्रभा ग्रीष्म कालके मध्याह्न सूर्यकी प्रभासे भी अधिक उज्ज्वल थी ॥ ९ ॥ किन्तु संपूर्ण कुमारोंके कपिलमुनिके शापसे भस्म होनेपर राजाने अत्यन्त रुदन करते करते निबिड़ वनमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ इधर असमंजस गंगाको लानेके लिये घोरतर तपस्या करने लगे क्रमानुसार लाख वर्ष बीतनेपर उन्होंने कालके वशीभूत होकर देह त्याग दिया ॥ ११ ॥ फिर उनके पुत्र अंशुमान् गंगाको लानेके लिये लक्षवर्ष पर्यंत कठोर तपस्या करके कालकवलमें पतित हुए ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त अंशुमान्के पुत्र भगवद्भक्त परम वैष्णव अजर अमर अशेष गुणोंकी खान बुद्धिमान् भगीरथने ॥ १३ ॥ गंगाको लानेके लिये एक लक्षवर्ष पर्यंत तपस्या की अन्तमें करोड़ ग्रीष्मके सूर्यके समान

सर्वे बभूवुः पुत्राश्च महाबलपराक्रमाः ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडप्रभामुष्टकलेवराः ॥ ९ ॥ कपिलस्य मुनेः शापाद्बभूवुर्भस्मसाच्च ते ॥ राजा रुरोद तच्छ्रुत्वा जगाम गहने वने ॥ १० ॥ तपश्चकाराऽसमंजो गंगानयनकारणात् ॥ लक्षवर्षं तपस्तप्त्वा ममार कालयोगतः ॥ ११ ॥ अंशुमांस्तस्य तनयो गंगानयनकारणात् ॥ तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥ १२ ॥ भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः ॥ वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः ॥ १३ ॥ तपः कृत्वा लक्षवर्षं गंगानयनकारणात् ॥ ददर्श कृष्णं ग्रीष्मस्थसूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ १४ ॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरंगोपवेषिणम् ॥ गोपालसुन्दरीरूपं भक्तानुग्रहरूपिणम् ॥१५॥ स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्नुतम् ॥ १६ ॥ निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारणम् ॥ १७॥

प्रभायुक्त श्रीकृष्णने उनको दर्शन दिया ॥ १४ ॥ उन किशोर मूर्ति गोपवेषधारी द्विभुज श्रीकृष्णके हाथमें मुरली विराजमान थी और उनका वह गोपाल सुन्दरीरूप देखनेसे बोध होता था मानों भक्तोंके प्रति अनुग्रहप्रकाश करनेके लिये ही सर्वदा उन्मुख रहते हैं ॥ १५ ॥ वह स्वेच्छामय परब्रह्म हैं उनकी अपूर्णता नहीं है ब्रह्मा विष्णु और महेश्वरादि देवता तथा मुनि इत्यादि सभी उन विभुका स्तव करते रहते हैं ॥ १६ ॥ वह किसीमें लिप्त नहीं है और सबके साक्षीरूपसे अवस्थान करते हैं वह तीनों गुणोंसे अतीत और प्रकृतिसे भी अतीत पदार्थ हैं कुछेक हास्यसे उनका मुखमंडल सदा ही प्रफुल्ल है भक्तोंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करनेमें उनके समान दूसरा और कोई नहीं है ॥ १७ ॥

---

१ सगरके यज्ञ करनेपर इन्द्रने घोडा हरणकर कपिलजीके समीप जा रक्खा यह राजकुमार उसको खोजने गये वहां पाय कपिलजीको दुर्वचन कहनेसे उनके कोपानलमें भस्म हुये असमंजसकी प्रार्थनासे गंगासे उद्धार होगा यह मुनिने कहा ना० पु०

दे. भा. ॥४३॥

उनका परिधान अग्नि परीक्षित विशुद्ध अंशुक और सर्वाङ्ग रत्नमय विभूषणोंसे विभूषित था राजाभगीरथ उस अपूर्व मूर्तिका दर्शन करके प्रणामपूर्वक वारं वार स्तव करने लगे ॥ १८ ॥ उनका सर्वाङ्ग पुलकावलीसे पूर्ण हो गया अनन्तर उन्होंने स्वच्छन्दतासे अपने वंशका तारनेवाला अभिमत वर लाभ किया ॥ १९ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने गङ्गासे कहा हे सुरेश्वरि ! सरस्वतीके शापसे तुम शीघ्र भारतमें अवतीर्ण होओ, मेरे कहनेके अनुसार तुम शीघ्र जाकर सगर-सन्तानका उद्धार करो ॥ २० ॥ वह सलिलकणवाही वायुके स्पर्शसे पवित्र हो, मेरे समान मूर्ति धारणकर दिव्य विमानमें चढ़ मेरे भवनमें आवेंगे ॥ २१ ॥ और निरन्तर वहां मेरे पार्षद होकर वास करेंगे और उनको जन्म जन्मान्तर कृतपातकमें लिप्त होना नहीं पड़ेगा ॥ २२ ॥ हे वत्सनारद ! वेदमें

वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् ॥ तुष्टाव दृष्ट्वा नृपतिः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ १८ ॥ लीलया च वरं प्राप वांछितं वंशतारणम् ॥ कृत्वा च स्तवनं दिव्यं पुलकांकितविग्रहः ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भारतं भारतीशापाद्गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि ॥ सगरस्य सुतान्सर्वान्पूतान्कुरु ममाज्ञया ॥२०॥ त्वत्स्पर्शवायुनाः पूता यास्यंति मम मंदिरम् ॥ बिभ्रतो मम मूर्तीश्च दिव्यस्यंदनगामिनः ॥ २१ ॥ मत्पार्षदा भविष्यंति सर्वं कालं निरामयाः ॥ समुच्छिद्य कर्मभोगान्कृताञ्जन्मनिजन्मनि ॥ २२ ॥ कोटिजन्मार्जितं पापं भारते यत्कृतं नृभिः ॥ गंगाया वात स्पर्शेन नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम् ॥ २३ ॥ स्पर्शनाद्दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः ॥ मौसलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम्॥ २४ ॥ शतकोटिजन्मपापं नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम् ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ २५ ॥ जन्मसंख्यार्जितान्येव कामतोऽपि कृतानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यंति मौसलस्नानतो नृणाम् ॥ २६ ॥

इस प्रकार वर्णित हुआ है कि मनुष्यगण भारतमें जन्म ग्रहण करके यदि करोड करोड जन्म पापाचरण करें तो भी एक गङ्गाके सलिलकणवाही वायुके स्पर्शसे वह सब ध्वंश हो जाते हैं ॥ २३ ॥ गङ्गाजीके दशन और गंगाजलके स्पर्शसे दशगुणा पुण्य होता है मनुष्य सामान्य दिनमें जो संकल्प रहित विधिज्ञान स्नान करता है गंगासलिल कणवाहि वायुसेवनकी अपेक्षा दशगुण पुण्यलाभ होता है ॥ २४ ॥ विशेषकर गंगामें स्नान करनेसे मनुष्य शीघ्र पापसे छूट जाता है वेदसे जाना गया है कि विधिपूर्वक गंगास्नान करनेपर भी शतकोटि जन्मजनित जो ब्रह्महत्यादि पातक हैं ॥ २५ ॥ ज्ञानकृत हों वा अज्ञानकृत हों जन्मपर्यंतके किये समस्त पातक विधिपूर्वकस्नानसे नष्ट हो जाते हैं ॥ २६ ॥

पुण्य दिनमें स्नान करनेसे जितना पुण्य लाभ होता है, उसका वर्णन करनेकी वेदमें भी सामर्थ्य नहीं है तो वेदमें जो कुछ वर्णन किया गया है वह अति सामान्य है ॥ २७ ॥ अधिक क्या ब्रह्मा विष्णु औ महादेवादि देवतागण भी गंगास्नानकी प्रकृत महिमा वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं हे प्रियवर ! यह तो साधारण दैनिक (नित्य) गंगास्नानका माहात्म्य है अब संकल्पजनित स्नानका माहात्म्य वर्णन करता हूं सुनो ॥ २८ ॥ साधारण दैनिक स्नानसे जो फल लाभ होता है संकल्पपूर्वक गंगास्नान करनेसे उसकी अपेक्षा दशगुणा पुण्य लाभ होता है और यदि सूर्यके संक्रमण दिनमें अर्थात संक्रांतिके दिन गंगास्नान किया गया तो उसकी अपेक्षा तीस गुणा पुण्य बढता है ॥ २९ ॥ अमावस्याके दिनमें गंगास्नान करनेसे पूववत् फल लाभ होता है किंतु दक्षिणायन स्नान करनेसे उसकी अपेक्षा दूना और उत्तरायणमें स्नान करनेसे पूर्वकी अपेक्षा दशगुणा पुण्य संचय होता है ॥ ३० ॥ चातुर्मास्य, पूणिमा, अक्षय

पुण्याहस्नानतः पुण्यं वेदा नैव वदंति च ॥ किंचिद्व द्वंति ते विप्र फलमेव यथागमम् ॥ २७ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्वं नैव वदंति च ॥ सामान्यदिवसस्नानसंकल्पं शृणु सुन्दरि ॥ २८ ॥ पुण्यं दशगुणं चैव मौसलस्नानतः परम् ॥ ततस्त्रिशद्गुणं पुण्यं रविसंक्रमणे दिने ॥२९॥ अमायां चापि तत्तुल्यं द्विगुणं दक्षिणायने ॥ ततो दशगुणं पुण्यं नराणामुत्तरायणे ॥३०॥ चतुर्मास्यां पौर्णमास्यामनंतं पुण्य मेव च ॥ अक्षयायां तत्तुल्यं चैतद्वेदे निरूपितम् ॥ ३१ ॥ असंख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम् ॥ सामान्यदिवसस्नानाद्दानाच्छतगुणं फलम् ॥ ३२ ॥ मन्वंतराद्यायां तिथौ युगाद्यायां तथैव च ॥ माघस्यासित सप्तम्यां भीष्माष्टम्यां तथैव च ॥ ३३ ॥ अथाप्यशोकाष्टम्यां च नवम्यां च तथा हरेः ॥ ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नंदायां तव दुर्लभम् ॥ ३४ ॥ दशहरादशम्यां तु युगाद्यादिसमं फलम् ॥ नंदासमं च वारुण्यां महत्वें चतुर्गुणम् ॥ ३५ ॥

नवमी वा तृतीयामें गंगा स्नान करनेसे जितना पुण्य लाभ होता है उसकी सीमा नहीं है ॥ ३१ ॥ और पूर्वोक्त पर्ववाले दिनमें स्नान और दान इन दोनों प्रकारके कार्योंका अनुष्ठान होनेसे पुण्य फललाभकी सीमा नहीं रहती प्रात्याहिक स्नानकी अपेक्षा दानसे शतगुणा पुण्य लाभ होता है ॥३२॥ मन्वन्तरा तिथि युगाद्या माघमासकी शुक्ला सप्तमी भीष्माष्टमी ॥ ३३ ॥ अशोकाष्टमी और श्रीरामनवमीके दिन गंगास्नान करनेसे महापुण्य लाभ होता है और नन्दास्नानसे उसकी अपेक्षा दूना पुण्य संचय होता है ॥ ३४ ॥ दशहरा दशमीमें स्नान करनेसे युगाद्या स्नान तुल्य फल होता है और यदि महानन्दा अथवा महावारुणीमें गंगास्नान किया जाय तो पूर्वकी अपेक्षा चतुर्गुणा पुण्य लाभ होता है ॥ ३५ ॥

दे. भा.
॥४४॥

महा महा वारुणीमें स्नान करनेसे साधारण गंगा स्नानकीअपेक्षा करोड गुणा पुण्य लाभ होता है ॥ ३६ ॥ चन्द्रग्रहणके समयमें स्नानकी अपेक्षा सूर्य ग्रहणमें स्नान करनेसे उसकी अपेक्षा दशगुणा पुण्य लाभ होता है किंतु अर्द्धोदय योगमें स्नान करनेसे उसकी अपेक्षा शतगुणा पुण्य लाभ होता ॥ ३७ ॥ हे वत्स ! जब देवेश हरि गंगा और भगीरथके सन्मुख इस प्रकार कहकर मौन हुए तब देवी गंगाने भक्तिपूर्वक कन्धे झुकाय उनसे कहा ॥ ३८ ॥ गंगा बोली हे नाथ ! यदि पूर्वविहित सरस्वतीके शापसे और आपकी आज्ञासे अवश्य ही मुझको भारतमें जाना होगा ॥ ३९ ॥ तो पापी मनुष्य मेरे जलमें जो पापमल धोवेंगे मैं किस प्रकार उनसे छुटकारा पाऊंगी ? इसका उपाय बताइये ॥ ४० ॥ और कितने समयतक मुझको भारतमें रहना होगा कितने दिनोंके पीछे मैं आपके

ततश्चतुर्गुणं पुण्यं द्विमहत्पूर्वके सति ॥ पुण्यं कोटिगुणं चैव सामान्यस्नानतोऽपि यत् ॥ ३६ ॥ चंद्रोपरागसमये सूर्ये दशगुणं ततः ॥ पुण्यमर्धोदये काले ततः शतगुणं फलम् ॥ ३७ ॥ इत्येव मुक्त्वा देवेशो विरराम तयोः पुरः ॥ तमुवाच ततो गंगा भक्तिनम्रात्सकंधरा ॥ ३८ ॥ गंगोवाच ॥ यामि चेद्भारतं नाथ भारती शापतः पुराः तवाज्ञया च राजेंद्र तपसा चैव सांप्रतम् ॥ ३९ ॥ दास्यंति पापिनो मह्यं पापानि यानि कानि च ॥ तानि मे केन नश्यंति तमुपायं वद प्रभो ॥ ४० ॥ कतिकालं परिमितं स्थितिर्मे तत्र भारते ॥ कदा यास्यामि देवेश तद्विष्णोः परमंपदम् ॥ ४१ ॥ ममान्यद्वांछितं यद्यत्सर्वं जानासि सर्ववित् ॥ सर्वान्तरात्मन्सर्वज्ञ तदुपायं वद प्रभो ॥ ४२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जानामि वांछितं गंगे तव सर्वं सुरेश्वरि ॥ पतिस्ते द्रवरूपायालवणोदो भविष्यति ॥ ४३ ॥ स ममांश स्वरूपश्च त्वं च लक्ष्मीस्वरूपिणी ॥ पिदग्धाया विदग्धेनसंगमो गुणवान्भुवि ॥ ४४ ॥ यावत्यः संति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते ॥ सौभाग्या त्वं च तास्वेव लवणोदस्य सौरते ॥ ४५ ॥

परमपदको प्राप्त हूंगी ॥ ४१ ॥ हे सर्वान्तर्यामिन् ! हे सर्वज्ञ ! हे प्रभो ! इसके अतिरिक्त मेरे मनकी जो वांछा है वह आपसे छिपी नहीं है, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं, अतएव अनुग्रह करके समस्त विषयका उपाय बताइये ॥ ४२ ॥ भगवान् श्रीहरिने कहा हे सुरेश्वरीगंगे ! मैंने तुम्हारे हृदयका भाव समझ लिया है, कुछ चिंता नहीं तुम्हारी जलमयी मूर्ति धारण करनेसे लवणोदधि तुम्हारे पति होंगे ॥ ४३ ॥ वह भी मेरे अंशस्वरूप और तुम भी लक्ष्मीस्वरूपिणी हो, अतएव भूलोकमें रसिकके संग रसिकाका समागम अतीव सुखजनक होता है ॥ ४४ ॥ भारतमें सरस्वती इत्यादि जो सब नदी विद्यमान हैं तुम उनकी अपेक्षा सौभाग्य शालिनी होगी ॥ ४५ ॥

भारतीके शापवश आजसे कलिके पांच हजार वर्षतक तुमको भारतमें रहना होगा ॥ ४६ ॥ तुम नित्य जलनिधिके संग क्रीडा कौतुकमें काल व्यतीत करोगी, क्योंकि जैसी तुम रसिका हो, वह भी इसी प्रकार रसिकचूडामणि है ॥ ४७ ॥ भारतवासी सब मनुष्य भगीरथकृत स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति और भक्तिभावसे तुम्हारी पूजाकरें ॥ ४८ ॥ काण्वशाखोक्त ध्यानद्वारा ध्यान करके जो प्रतिदिन तुम्हारी अर्चना, तुम्हारी स्तुति और तुमको प्रणाम करेंगे वह अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होंगे ॥ ४९ ॥ अधिक क्या शतयोजनके अन्तरमें भी वास करके जो कोई "गंगा गंगा," यह शब्द मुखसे उच्चारण करता है तो वह पुरुष सब प्रकारके पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें जाता है ॥ ५० ॥ हजार हजार पापियोंके स्नान करनेसे तुमको जो पाप स्पर्श होगा वह अवि

अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पंचसहस्रकम् ॥ वर्षं स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि ॥ ४६ ॥ नित्यं त्वमब्धिना सार्थं करिष्यसि रहो रतिम् ॥ त्वमेव रसिका देवी रसिकेंद्रेण संयुता ॥ ४७ ॥ त्वां स्तोष्यन्ति च स्तोत्रेण भगीरथकृतेन च ॥ भारतस्था जनाः सर्वे पूर्णयिष्यंति भक्तितः ॥ ४८ ॥ कण्वशाखोक्त ध्यानेन ध्यात्वा त्वां पूजयिष्यति ॥ यः स्तौति प्रणयेन्नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ४९ ॥ गंगा गंगेति योब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ५० ॥ सहस्रपापिनां स्नानाद्यत्पापं ते भविष्यति ॥ प्रकृतेर्भक्तसंस्पर्शादेव तद्धि विनंक्ष्यति ॥ ५१ ॥ पापिनां तु सहस्राणां शवस्पर्शेन यत्त्वयि ॥ तन्मन्त्रोपासकस्नानात्तदघं च विनंक्ष्यति ॥ ५२ ॥ तत्रैव त्वमधिष्ठानं करिष्यस्यघमोचनम् ॥ सार्धं सरिद्भिः श्रेष्ठाभिः सरस्वत्यादिभिः शुभे ॥ ५३ ॥ तत्तु तीर्थं भवेत्सद्यो यत्रतद्गुणकीर्तनम् ॥ त्वद्रेणुस्पर्श मात्रेण पूतो भवति पातकी ॥ ५४ ॥ रेणुप्रमाणवर्षं च देवेलोके वसेद् ध्रुवम् ॥ ज्ञानेन त्वयि ये भक्त्या मन्नामस्मृतिपूर्वकम् ॥ ५५ ॥

चलित चित्तसे सहना क्योंकि प्रकृति मंत्र उपासक भक्तोंके स्पर्शसे तुम्हारे संपूर्ण पातक नष्ट होंगे ॥ ५१ ॥ अधिक क्या हजार हजार पापी शव स्पर्श करके तुम्हारे जलमें स्नान करनेपर भी उन प्रकृति मन्त्रोपासक साधुओंके स्पर्शसे तुम्हारे समस्त ही पाप नष्ट होंगे ॥ ५२ ॥ हे शुभे ! तुम भारतमें सरस्वती इत्यादि श्रेष्ठ नदियोंके संग अवस्थान करके पापियोंके पापपंक प्रक्षालन करो ॥ ५३ ॥ जहां प्रकृति देवीकी महिमा कीर्तित होगी वह स्थान पवित्रतीर्थके नामसे विख्यात होगा तुम्हारी चरणरेणुके स्पर्शसे घोर पातकी भी पवित्र होंगे ॥ ५४ ॥ और वह निःसन्देह उस रेणुपरिमित वर्ष देवीलोक अर्थात् मणिद्वीपमें वास करेंगे जो ज्ञान सहित भक्तिपूर्वक मेरा नाम स्मरण करते करते ॥ ५५ ॥

तुम्हारे गोदमें देहत्याग करेंगे वह निःसन्देह मेरे लोकमें जाकर अन्तकालतक मेरे प्रधान पार्षद हो अवस्थान करेंगे ॥ ५६ ॥ कितनी ही असंख्य प्राकृत
प्रलय उनके दृष्टिगोचर होगी जिनकी सीमा नहीं मृत पुरुषका महापुण्य न रहनेसे उनका देह तुम्हारे क्रोडमें कभी पात नहीं हो सकता ॥ ५७ ॥ जबतक सूर्य
उदय होंगे तबतक वह पुरुष वैकुण्ठधाममें वास करेगा अनेक देह धारण कराय स्वकर्मफल भोगके अन्तमें ॥ ५८ ॥ उसको सारूप्य प्रदान करके पार्षद करता
हूं यदि कोई अज्ञानी पुरुष तुम्हारे जलको स्पर्श करके देह त्याग करे ॥ ५९ ॥ उसको सालोक्य प्रदान करके पार्षद करता हूं अधिक क्या यत् किंचित्
तुम्हारा नाम स्मरण करके स्थानान्तरमेंभी देहत्याग करनेसे ॥ ६० ॥ ब्रह्मा की अवस्था तक उसको सालोक्य प्रदान करता हूं और यदि भक्तिभावसे

समुत्सृजंति प्राणांश्च ते गच्छन्ति हरेः पदम् ॥ पार्षदप्रवरास्ते च भविष्यंति हरेश्चिरम् ॥ ५६ ॥ लयं प्राकृतिकं ते च द्रक्ष्यंति चाप्य
संख्यकम् ॥ मृतस्य बहुपुण्येन तच्छवं त्वयि विन्यसेत् ॥ ५७ ॥ प्रयाति स च वैकुण्ठं यावदह्नः स्थितिस्त्वयि ॥ कायव्यूहं ततः
कृत्वा भोजयित्वा स्वकर्मकम् ॥ ५८ ॥ तस्मै ददामि सारूप्यं करोमि तं च पार्षदम् ॥ अज्ञानी त्वज्जलस्पर्शाद्यदि प्राणान्समुत्सृजेत्
॥ ५९ ॥ तस्मै ददामि सालोक्यं करोमि तं च पार्षदम् ॥ अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम् ॥६०॥ तस्मै ददामि सालोक्यं
यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम् ॥ ६१ ॥ तस्मै ददामि सारूप्यमसंख्यं प्राकृतं लयम् ॥ रत्नेंद्रसार
निर्माणयानेन सह पार्षदैः ॥६२॥ सद्यः प्रयाति गोलोकं मम तुल्यो भवेद् ध्रुवम् ॥ तीर्थेऽप्यतीर्थे मरणेविशेषो नास्ति कश्चन ॥६३॥ मन्मंत्रो
पासकानां तु नित्यं नैवेद्यभोजिनाम् ॥ पूतं कर्तुं स शक्तो हि लीलया भुवनत्रयम् ॥६४॥ रत्नेंद्रसार यानेन गोलोकं संप्रयांति च ॥ मद्भक्ता
बांधवा येषां तेऽपि पश्वादयोऽपि हि ॥६५॥ प्रयांति रत्नयानेन गोलोकं चातिदुर्लभम् ॥ यत्र यत्रस्मृतास्ते च ज्ञानेन ज्ञानिनः सति ॥६६॥

तुम्हारा नाम स्मरण करके अन्यत्र देहत्याग करें ॥ ६१ ॥ उसको असंख्य प्राकृतलयपर्यंत सारूप्य प्रदान करता हूं, वह अति उत्तम रत्ननिर्मित विमानमें बैठ
तत्काल पार्षदोंके सहित ॥ ६२ ॥ गोलोकमें जाय मेरे समान रूप धारण कर सकता है उसको तीर्थ अतीर्थ मरनेमें कुछ विशेष नहीं है ॥ ६३ ॥ जो
नित्य मेरे मंत्रकी उपासना करके मुझको निवेदन की हुई वस्तु भक्षण करता है वह भक्तजन लीलापूर्वक ही त्रिभुवन पवित्र कर सकता है ॥ ६४ ॥ वह पुरुष
सर्वोत्कृष्ट रत्ननिर्मित विमानमें चढकर गोलोकधाममें जाता है हे पतिव्रते ! मेरे भक्तके बांधवगण भी यदि पशुजन्मलाभ करें ॥ ६५॥ तो वह भी मेरी भक्तिके प्रभावसे
पवित्र होकर रत्नमय विमानमें बैठ दुर्लभ गोलोकमें गमन कर सकते हैं भक्तिगण जिस किसी स्थानमें वास क्यों न करें भक्तिपूर्वक मुझको स्मरण करनेपर ॥ ६६ ॥

उस भक्तिके प्रभावसे वह जीवन्मुक्त होते हैं और पवित्र होते हैं भगवान् श्रीहरिने गंगासे इस प्रकार कहकर भगीरथसे कहा ॥ ६७ ॥ हे वत्स ! अब तुम भक्तिपूर्वक गंगाका स्तव और गंगाकी पूजा करो तब भगीरथने भक्तिभावसे ॥ ६८ ॥ कौथुमीशाखोक्त ध्यानसे देवीकी जा करके वारंवार उनकी स्तुति करी अनन्तर गंगा और भगीरथके परमात्मरूपी श्रीकृष्णको प्रणाम करनेपर ॥ ६९ ॥ वह उनके सामने ही अन्तर्धान हो गये देवर्षि नारदजी बोले हे वेदविदग्रगण्य ! राजा भगीरथने कुथुमशाखोक्त किस ध्यान किस स्वोत्र और किस विधानसे ॥ ७० ॥ गंगाकी पूजा करी हे श्रेष्ठ ! वह कहिये नारायणने कहा हे वत्स नारद ! प्रथम तो स्नानपूर्वक धौतवस्त्र पहर कर नित्य क्रिया करे ॥ ७१ ॥ फिर संयत होकर भक्तिभावसे गणेश दिनेश अग्नि विष्णु शिव और शिवा

जीवन्मुक्ताश्च ते पूता मद्भक्ते संविधानतः ॥ इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तां च प्रत्युवाच भगीरथम् ॥ ६७ ॥ स्तुहि गंगामिमां भक्त्या पूजां च कुरु सांप्रतम् ॥ भगीरथस्तां तुष्टाव पूजयामास भक्तितः ॥ ६८ ॥ कौथुमोक्तेन ध्यानेन स्तोत्रेणापि पुनः पुनः ॥ प्रणनाम च श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ६९ ॥ भगीरथश्च गंगा च सोंऽतर्धानं चकार ह॥ नारद उवाच ॥ केन ध्यानेन स्तोत्रेण केन पूजाक्रमेण च ॥ ७० ॥ पूजां चकार नृपतिर्वद वेदविदां वर ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा धृत्वा धौते च वाससी ॥ ७१ ॥ संपूज्य देवषट्कं च संयतो भक्तिपूर्वकम् ॥ गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥ ७२ ॥ संपूज्य देवषट्कं च सोऽधिकारी च पूजने ॥ गणेशं विघ्ननाशाय आरोग्याय दिवाकरम् ॥ ७३ ॥ वह्निं शौचाय विष्णुं च लक्ष्म्यर्थं पूजयेन्नरः ॥ शिवं ज्ञानाय ज्ञानेशं शिवां च मुक्तिसिद्धये ॥ ७४ ॥ संपूज्यैतांल्लभेत्प्राज्ञो विपरीतमतोऽन्यथा ॥ दध्यावनेन ध्यानेन तद्ध्यानं शृणु नारद ॥ ७५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते म० नवमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ ७२ ॥ इन छःदेवताओंकी पूजा करे क्योंकि इन छःदेवताओंकी विना पूजा किये पूजाका अधिकारी नहीं होता। प्रथम विघ्नविनाशके लिये गणेश, आरोग्यता लाभके लिये सूर्य ॥ ७३ ॥ पवित्र होनेके लिये अग्निदेव, ऐश्वर्यलाभके लिये विष्णु, ज्ञानलाभके लिये शिव और मुक्तिलाभके लिये शिवानीकी पूजा करे ॥ ७४ ॥ इन सब देवताओंकी पूजा करनेसे कार्यमें अधिकार होता है नहीं तो विपरीत फल प्राप्त होता है. अब भगीरथने जिस ध्यान द्वारा गंगाका ध्यान किया था वह कहता हूं सुनो ॥ ७५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

नारायणने कहा हे वत्सनारद ! अब पाप नाशक काण्वशाखोक्त गंगाका ध्यान कहता हूं सुनो, हे श्वेतसरोजवर्णे गंगे ! तुम सबके समस्त पाप ध्वंस करती हो ॥१॥ तुम्हीं श्रीकृष्णके शरीरसे उत्पन्न हुई हो तुम्हीं श्रीकृष्णके समान सामर्थ्य शालिनी हो तुम्हारे समान सती अन्य दूसरी नहीं है तुम अग्निपरीक्षित विशुद्ध वस्त्र पहरती हो, तुम्हारा सर्वांग रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित है ॥ २ ॥ तुमने शरत्कालीन शतपूर्णचन्द्रमाकी अपेक्षा उज्ज्वल ज्योति धारण की है ईषत् हास्यसे तुम्हारा मुखमंडल सदा प्रसन्न रहता है और तुम आजीवन स्थिर यौवना हो ॥ ३ ॥ तुम्हीं शान्तस्वभाव नारायणकी प्रियतमा और उनके सौभाग्य गर्वसे गर्विता हो तुम मालतीमालासे विभूषितकेशभारसम्पन्न हो ॥४॥ तुम्हारा गण्डदेश चन्दन बिन्दु सिंदूरबिंदु और नानाविध विचित्र कस्तूरी (-------)

श्रीनारायण उवाच ॥ ध्यानं च कण्व शाखोक्तं सर्वं पापप्रणाशनम् ॥ श्वेतपंकजवर्णाभां गंगां पापप्रणाशिनीम् ॥१॥ कृष्णविग्रहसम्भूतां कृष्णतुल्यां परां सतीम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ २ ॥ शरत्पूर्णेंदुशतकमृष्टशोभाकरां पराम् ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ ३ ॥ नारायणप्रियां शांतां तत्सौभाग्यसमन्विताम् ॥ बिभ्रतीं कबरीभारं मालती माल्य संयुतम् ॥ ४ ॥ सिंदूरबिंदुललितं सार्धं चन्दनबिंदुभिः ॥ कस्तूरीपत्रकं गंडे नानाचित्रसमन्वितम् ॥ ५ ॥ पक्वबिंबविनिंद्याच्छचा वोंष्ठपुटमुत्तमम्॥ मुक्तापंक्तिप्रभामुष्टदंतपंक्तिमनोरमम् ॥ ६ ॥ सुचारुवक्रनयनं सकटाक्षं मनोहरम् ॥ कठिनं श्रीफलाकारं स्तनयुग्मं च बिभ्रतीम् ॥ ७ ॥ बृहच्छ्रोणिं सुकठिनां रंभास्तंभविनिंदिताम् ॥ स्थलपद्मप्रभामुष्टपदपद्मयुगं वरम् ॥ ८ ॥ रत्नपादुक संयुक्तं कुंकुमाक्तं सयावकम् ॥ देवेंद्रमौलिमंदारमकरंदकणारुणम् ॥ ९ ॥

रेखासे कैसा सुसज्जित रहता है ॥ ५ ॥ तुम्हारे परिहित वस्त्र और अति मनोहर ओष्ठपुट परिपक्वबिम्बाफलकी अपेक्षा भी लोहित वर्ण हैं तुम्हारे दांतोंकी पंक्ति मुक्तापंक्तिकी शोभाका तिरस्कार करती है ॥ ६ ॥ तुम्हारे नयन कैसे मनोहर हैं तुम्हारा अपांग विलोकन कैसा आनंदजनक है तुम्हारे दोनों स्तन श्रीफलके समान कैसे कठिन हैं ॥ ७ ॥ नितम्बदेश रम्भास्तम्भकी अपेक्षा कैसे कठिन और सुघन हैं दोनों चरणकमलोंने स्थलपद्मकी शोभाका तिरस्कार करके कैसी शोभा धारण की है ॥ ८ ॥ चरणमें लोहित वर्ण पादुका कुंकुम और अलक्तक कैसी शोभा पाता है देवेन्द्रके मस्तकस्थित पारिजात कुसुमके मकरन्दमें दोनों चरणोंने कैसा अरुणिमा राग धारण किया है ॥ ९ ॥

देवता सिद्ध तथा मुनींद्रोंका दिया हुआ अर्घ्य चरणोंमें कैसी शोभा पाता है तपस्वियोंके मस्तक झुकाकर प्रणाम करनेसे बोध होता है कि मानों चरण कम लोंमें भ्रमपंक्ति सन्निविष्ट हुई है ॥ १० ॥ हे मातः ! तुम्हारे पादपद्म मुक्तिकी कामना करनेवालेको मुक्ति और भोगकी अभिलाषा करनेवालेको भोग प्रदान करते हैं हे मातः ! तुम्हीं वर तुम्हीं वरेण्य तुम्हीं वरद और तुम्हीं भक्तों पर अनुग्रह करनेवाली हो ॥ ११ ॥ तुम्हीं विष्णुप्रद प्रदान करती हो और तुम्हीं विष्णुपदसे उत्पन्न हुई हो सती हो तुमको प्रणाम करता हूं हे वत्स ! इस ध्यानसे त्रिपथगा शुभदायिनी गंगाका ध्यान करके ॥१२॥ षोडश उपचारसे पूजे आसन पाद्य अर्घ्यस्नानीय अनुलेपन ॥ १३ ॥ धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, सुशीतल जल, वसन, षण, माल्य, चंदन, आचमनीय ॥ १४ ॥ और मनोहर शय्या इन षोडश उपचारोंसे देवीकी

सुरसिद्धमुनींद्रैश्च दत्तार्घसंयुतं सदां ।। तपस्विमौलिनिकरभ्रमरश्रेणिसंयुतम् ॥ १० ॥ मुक्तिप्रद मुमुक्षूणां कामिनां सर्वभोगदम् ॥ वरां वरेण्यां वरदां भक्तानुग्रहकारिणीम् ॥ ११ ॥ श्रीविष्णोः पददात्रीं च भजे विष्णुपदीं सतीम् ॥ इत्यनेनैव ध्यानेन ध्यात्वा त्रिपथगां शुभाम् ॥ १२ ॥ दत्त्वा संपूजयेद्ब्रह्मन्नुपचाराणि षोडश ॥ आसनं पाद्यमर्घं च स्नानीयं चाऽनुलेपनम् ॥ १३ ॥ धूपंदीपं च नैवेद्यं तांबूल शीतलं जलम् ॥ वसनं भूषणं माल्यं गंधमाचमनीयकम् ॥ १४ ॥ मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश ॥ दत्त्वा भक्त्या च प्रणमेत्संस्तूय संपुटांजलिः ॥ १५ ॥ संपूज्यैवंप्रकारेण सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ नारद उवाच ॥ श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकांत जगत्पते ॥१६॥ विष्णोर्विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारकम् ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि पापघ्नं पुण्यकारकम् ॥१७॥ शिवसंगीतसंमुग्ध श्रीकृष्णांगसमुद्भवाम् ॥ राधांगद्रवसंयुक्तां तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥१८॥ यज्जन्म सृष्टेरादौ च गोलोके रासमंडले ॥ सन्निधाने शंकरस्य तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥ १९ ॥

पूजाकरे फिर हाथ जोड़े हुए स्तव करके भक्ति भावसे प्रणाम करे ॥१५॥ इस प्रकार पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल लाभ होता है नारदजीने कहा हे देवेश ! अब लक्ष्मीकान्त जगत्पति विष्णुके ।। १६ ॥ चरणोंसे उत्पन्न पतितपावनी श्रीगंगादेवीका पापनाशक पुण्यप्रद स्तोत्र सुननेकी इच्छा करता हूं, आप कहिये नारायण बोले हे वत्स नारद ! अब पापनाशक पुण्यप्रद ॥ १७ ॥ गंगास्तोत्र कीर्त्तन करता हूं सुनो जो शिवके संगीतसे मोहित हो श्रीकृष्णके अंशसे उत्पन्न हैं और श्री राधाके अंग जलमें सिंचित हैं उन गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ १८ ॥ सृष्टिके पहिले गोलक धाममें रासमंडलके मध्य जिनका जन्म हुआ है, जो सदा शंकरके समीप वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ १९ ॥

जिन्होंने कार्त्तिककी पूर्णिमाको गोप और गोपीमण्डलमें समाकीर्ण शुभप्रद राधाके रास महोत्सवमें अवस्थान किया उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २० ॥ जो विस्तारमें करोड़ योजन और दीर्घतामें अपना लक्षगुण स्थान अधिकार करके गोलोक धाममें वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २१ ॥ जो विस्तारमें साठलाख और दैर्घ्यमें उससे चतुर्गुण स्थान अधिकार करके वैकुण्ठमें वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २२ ॥ जो विस्तारमें तीसलाख योजन और दीर्घतामें उससे पचगुना स्थान अधिकार करके ब्रह्मलोकमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २३ ॥ जो विस्तारमें त्रिंशत्लक्ष योजन और दैर्घ्यमें उससे चतुर्गुण स्थान अधिकार करके शिवलोकमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २४ ॥ जो

गोपैर्गोपीभिराकीर्णे शुभे राधामहोत्सवे ॥ कार्त्तिकी पूर्णिमायां च तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥२०॥ कोटियोजन विस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः ॥ समावृता या गोलोके तां गंगा प्रणमाम्यहम् ॥२१॥ षष्टिलक्षयोजना या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा ॥ समावृता या वैकुण्ठे तां गंगा प्रणमाम्यहम् ॥ २२ ॥ त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये पंचगुणा ततः ॥ आवृता ब्रह्मलोके या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ २३ ॥ त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये चतुर्गुणा ततः ॥ आवृता शिवलोके या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ २४ ॥ लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः ॥ आवृता ध्रुवलोके या तां गंगा प्रणमाम्यहम् ॥ २५ ॥ लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पंचगुणा ततः ॥ आवृता चंद्रलोके या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ २६ ॥ षष्टिसहस्रयोजना या दैर्घ्ये दशगुणा ततः ॥ आवृता सूर्यलोके या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ २७ ॥ लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पंचगुणा ततः ॥ आवृता या तपोलोके तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ २८ ॥ सहस्र योजनायामा दैर्घ्ये दशगुणा ततः ॥ आवृता जनलोके या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ २९ ॥

विस्तारमें लक्षयोजन और दैर्घ्यमें उससे सातगुण स्थान अधिकार करके ध्रुव लोकमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २५ ॥ जो विस्तारमें लक्ष योजन और दैर्घ्यमें उससे पांच गुणा स्थान अधिकार करके चन्द्रलोकमें वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २६ ॥ जो विस्तारमें साठहजार योजन और दैर्घ्यमें उससे दशगुण स्थान अधिकार करके सूर्य लोकमें वास करती हैं.उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २७ ॥ जो विस्तारमें लक्ष योजन और दैर्घ्यमें उससे पांच गुणा स्थान अधिकार करके तपोलोकमें वास करती हैं उन्ही गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २८ ॥ जो विस्तारमें हजार योजन और दैर्घ्यमें उससे दशगुण स्थान अधिकार करके जल लोकमें वास करती हैं, उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ २९ ॥

जो विस्तारमें दशलक्ष योजन और दैर्घ्यमें उससे पचगुणा स्थान अधिकार करके महर्लोकमें वास करती हैं उन्ही गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३० ॥ जो विस्तारमें सहस्र योजन और दैर्घ्यमें उससे शतगुण स्थान अधिकार करके कैलासमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३१ ॥ जो मन्दाकिनी नामसे विख्यात होकर विस्तारमें शतयोजन और दैर्घ्यमें उससे दशगुण स्थान अधिकार करके इन्द्रलोकमें वास करती हैं उन्हीं गङ्गाको प्रणाम करता हूं ॥३२॥ जो भोगवती नामसे विख्यात होकर विस्तारमें दशयोजन और दैर्घ्यमें उनसे दशगुणा स्थान अधिकार करके पातालमें वास करती हैं उन्हीं गंगाको प्रणाम करता हूं ॥३३॥ जो भूमण्डलमें अलकनन्दाके नामसे विख्यात होकर विस्तारमें एक कोस वास किसी स्थानमें उसकी अपेक्षा कुछेक न्यून होकर बहती

दशलक्षयोजना या दैर्घ्ये पंचगुणा ततः ॥ आवृता या महर्लोके तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ ३० ॥ सहस्रयोजनायामा दैर्घ्ये शतगुणा ततः ॥ आवृता या च कैलासे तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ ३१ ॥ शतयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये दशगुणा ततः ॥ मंदाकिनी येंद्रलोके तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ ३२ ॥ पाताले भोगवती चैव विस्तीर्णा दशयोजना ॥ ततो दशगुणा दैर्घ्ये तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ ३३ ॥ क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा ततः क्षीणा च कुत्रचित् ॥ क्षितौ चालकनन्दा या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ ३४ ॥ सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रेतायामिंदुसन्निभा ॥ द्वापरे चन्दनाभा या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ ३५ ॥ जलप्रभा कलौ या च नाऽन्यत्र पृथिवीतले ॥ स्वर्गे च नित्यं क्षीराभा तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥ ३६ ॥ यत्तोयकणिकास्पर्शे पापिनां ज्ञानसंभवः ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटिजन्मार्जितं दहेत् ॥ ३७ ॥ इत्येवं कथिता ब्रह्मन्गंगापद्यैकविंशतिः ॥ स्तोत्ररूपं च परमं पापघ्नं पुण्यजीवनम् ॥ ३८ ॥ नित्यं यो हि पठेद्भक्त्या संपूज्य च सुरेश्वरीम् ॥ सोऽश्वमेधफलं नित्यं लभते नात्र संशयः ॥ ३९ ॥

हैं उन्हीं गङ्गाको प्रणाम करता हूं ॥ ३४ ॥ जो सतयुगमें क्षीरवर्ण त्रेतायुगमें चन्द्रवर्ण और द्वापरमें चन्दनवर्ण होकर बहती हैं उन्हीं गङ्गाको प्रणाम करताहूं ॥ ३५ ॥ जो कलियुगमें केवल भूमण्डलमें जलमयी और स्वर्गमें क्षीरमयी होकर बहती हैं उन्ही गंगाको प्रणाम करता हूं ॥ ३६ ॥ हे वत्स! इन गंगाके जलकणस्पर्शसे प्राणियोंके ज्ञानकृत कोटिजन्मार्जित ब्रह्महत्यादि सब भारी पातक भस्म होजाते हैं ॥ ३७ ॥ हे वत्स नारद! इस प्रकार इक्कीस पद्यमें पापनाशक और पुण्यवर्द्धक गंगाका परमस्तोत्र कहा गया है ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिपूर्वक सुरेश्वरि गंगाकी पूजा करके उनका स्तव करता है उसको अश्वमेध यज्ञका फल लाभ होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ३९ ॥

इसके प्रभावसे अपुत्र पुरुषको पुत्र और भार्याहीन पुरुषको भार्या लाभ होती है रोगी पुरुष रोगसे छूटता है और बँधा हुआ पुरुष बंधनसे छूट जाता है ॥ ४० ॥ जो प्रतिदिन प्रातःकालके समय उठकर गंगास्तव पाठ करता है वह पुरुष आख्यात नाम होने पर भी विख्यात नाम और अज्ञानान्ध होनेपर भी ज्ञानलोकमें पूर्ण होता है ॥ ४१ ॥ उसको दुःस्वप्न दर्शन सुस्वप्न और नित्य गंगास्नानजनित पुण्य लाभ होता है नारायणने कहा हे वत्स नारद ! राजा भगीरथ उपरोक्त स्तोत्रसे गंगाका स्तव करके ॥ ४२ ॥ उनको संग ले जहां सगरसन्तानगण कपिलदेवके शापसे भस्म हुए थे, वहां गये भागीरथीके सलिल कणवाही वायुके स्पर्शसे वह तत्काल मुक्त होकर वैकुंठधाममें चले गये ॥ ४३ ॥ भगीरथ जो गंगाको भूलोकमें लाये थे, इस कारण इनका नाम भागीरथी

अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्स्त्रियम् ॥ रोगात्प्रमुच्यते रोगी बंधान्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥ ४० ॥ अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पंडितः ॥ यः पठेत्प्रातरुत्थाय गंगास्तोत्रमिदं शुभम् ॥ ४१ ॥ शुभं भवेच्च दुःस्वप्ने गंगास्नानफलं लभेत् ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ स्तोत्रेणानेन गंगां च स्तुत्वा चैव भगीरथ ॥ ४२ ॥ जगाम तां गृहीत्वा च यत्र नष्टाश्च सागराः ॥ वैकुण्ठं ते ययुस्तूर्णं गंगाया स्पर्शवायुना ॥ ४३ ॥ भगीरथेन सा नीता तेन भागीरथी स्मृता ॥ इत्येवं कथितं सर्वं गंगोपाख्यानमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ पुण्यदं मोक्षदं सारंकिं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ नारद उवाच ॥ कथं गंगा त्रिपथगा जाता भुवनपावनी ॥४५॥ कुत्र वा केन विधिना तत्सर्वं वद मे प्रभो ॥ तत्रस्थाश्च जना ये ये ते च किं च क्रुरुत्तमम् ॥ ४६ ॥ एतत्सर्वं तु विस्तीर्णं कृत्वा वक्तुमिहार्हसि ॥ नारायण उवाच ॥ कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु राधायाः सुमहोत्सवः ॥ ४७ ॥ कृष्णः संपूज्य तां राधामुवास रासमण्डले ॥ कृष्णेन पूजितां सा तु संपूज्य हृष्टमानसाः ॥ ४८ ॥

हुआ है हे वत्स ! यह मैंने तुम्हारे निकट गंगाका उपाख्यान वर्णन किया ॥ ४४ ॥ यह उपाख्यान अतीव पुण्यप्रद और मोक्षपथका सोपान है, अब क्या सुननेकी अभिलाषा है सो प्रकाश करो नारदने कहा हे प्रभो! गङ्गा त्रिपथगा होकर किस प्रकार त्रिभुवन पावनी हुई ॥ ४५ ॥ कौन किस प्रकार उनको किस स्थानमें ले गया था और उस स्थानके रहनेवाले पुरुषोंने उनके संबंधमें किस प्रकार व्यवहार किया था ॥ ४६ ॥ यह सब आनुपूर्विक वर्णन कीजिये नारायण बोले हे वत्स नारद ! कार्तिकी पूर्णिमाके दिन श्रीराधाके महोत्सवमें ॥ ४७ ॥ श्रीकृष्णने राधाकी पूजा करके रासमण्डलमें स्थिति की तब कृष्णकी पूजित राधाकी प्रसन्नतासे पूजा करके ॥ ४८ ॥

ब्रह्मादि देवता और शौनकादि ऋषि परमानंदपूर्वक वहां वास करनेलगे इसी समय कृष्णविषयिणी संगीतशास्त्रकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती ॥ ४९ ॥ मनोहर ताल लयपूर्वक वीणायंत्रमें गान करने लगी तब ब्रह्माजीने सरस्वतीको सन्तुष्ट होकर रत्नमय हार ॥ ५० ॥ महादेवजीने ब्रह्माण्डमें दुर्लभमणि कृष्णनेसर्वोत्कृष्ट कौस्तुभमणि ॥ ५१ ॥ राधिकाने अमूल्य रत्ननिर्मित उत्कृष्ट हार नारायणने मनोहर सर्वोत्कृष्ट रत्नमयमाला ॥ ५२ ॥ लक्ष्मीने अमूल्य रत्नखचित कनक कुण्डल तथा जो विष्णुमाया मूलप्रकृति भगवती ॥ ५३ ॥ दुर्गा नारायणी ईश्वरीऔर ईशानी हैं उन्होंने दुर्लभ ब्रह्मभक्ति धर्ममें भक्ति और विपुल यश ॥ ५४ ॥ अग्निने अग्निपरीक्षित उत्कृष्ट वस्त्र और वायुने अति उत्तम मणिमय नूपुर प्रदान किये इसी समय भूतपति महादेवजी ब्रह्माजीके वचनानुसार

ऊषुर्ब्रह्मादयः सर्वे ऋषयः शौनकादयः ॥ एतस्मिन्नंतरेकृष्णसंगीता च सरस्वती ॥ ४९ ॥ जगौ सुन्दरतालेन वीणया च मनोहरम् ॥ तुष्टो ब्रह्मा ददौ तस्यै रत्नेंद्रसारहारकम् ॥ ५० ॥ शिवो मणींद्रसारं तु सर्वब्रह्माण्ड दुर्लभम् ॥ कृष्णः कौस्तुभरत्नं च सर्वरत्नात्परं वरम् ॥ ५१ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणं हारसारं च राधिका ॥ नारायणश्च भगवान्ददौ मालां मनोहराम् ॥ ५२ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणं लक्ष्मीः कनककुंडलम् ॥ विष्णुमाया भगवती मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ ५३ ॥ दुर्गा नारायणीशाना ब्रह्मभक्तिं सुदुर्लभाम् ॥ धर्मबुद्धिं च धर्मश्च यशश्च विपुलं भवे ॥ ५४ ॥ वह्निशुद्धांशुकं वह्निर्वायुश्च मणिनूपुरान् ॥ एतस्मिन्नंतरे शंभुर्ब्रह्मणा प्रेरितो मुहुः ॥ ५५ ॥ जगौ श्रीकृष्णसंगीतं रासोल्लाससमन्वितम् ॥ मूर्च्छां प्रापुः सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा ॥५६॥ कष्टेन चेतनां प्राप्य ददृशू रासमंडले ॥ स्थलं सर्वं जलाकीर्णं राधाकृष्णविहीनकम् ॥५७॥ अत्युच्चै रुरुदुः सर्वे गोपा गोप्यः सुरा द्विजाः ॥ ध्यानेन ब्रह्मा बुबुधे सर्वं तीर्थम भीप्सितम् ॥ ५८ ॥ गतश्च राधया सार्धं श्रीकृष्णो द्रवतामिति ॥ ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरात् ॥ ५९ ॥

॥ ५५ ॥ श्रीकृष्णके रासोत्सव विषयक संगीत आरंभ किया देवता यह देख मोहित हो चित्र लिखित पुतलीके समान रह गये और मूर्छित होगये ॥५६॥ यही क्या बरन् अत्यन्त कष्टसे उनको चैतन्यता प्राप्त हुई तब उन्होंने देखा कि रासमंडलमें वह राधा भी नहीं है और वह कृष्णभी नहीं है, सम्पूर्ण जलमय है ॥ ५७ ॥ तब गोप, गोपी, देवता और ब्राह्मण उच्चस्वरसे रोने लगे तब ब्रह्माजीने ध्यानमें स्थित होकर जाना कि, अब कुछ नहीं है, तीर्थ है ॥५८॥ संसारवासी पुरुषोंका उद्धार करनेके लियेही राधा और कृष्ण दोनोंने जलमयी मूर्ति धारणकी है हे वत्स नारद ! उस समय ब्रह्मादि सभी परमेश श्रीकृष्णकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ५९ ॥

और कहने लगे हे विभो ! तुम अब हमको अपनी मूर्ति दिखाकर अभिलाषित वर दो उसी समय अतिमधुर यह आकाशवाणी स्पष्टही ॥ ६० ॥ सबके कानोंमें प्रविष्ट हुई कि " मैं सर्वात्मा अर्थात् सर्वव्यापी और यह शक्तिरूपिणी राधाभी सर्वव्यापिनी है ॥ ६१ ॥ सुतरां मेरे वा राधाके संग क्षणकालके लिये भी तुम्हारा वियोग नहीं होगा तो मैं केवल भक्तोंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करनेके निमित्त देह धारण करता हूं इसीलिये मेरे देहमात्रसे केवल तुम्हारा वियोग है नहीं तो और कुछ नहीं है मेरे देहसे भी तुम्हारा कुछ प्रयोजन नहीं है हे देवगण ! वो भी यदि मेरे मंत्रपूत मनुगण, मानवगण, मुनिगण, वैष्णवगण ॥ ६२ ॥ और तुम मेरी स्पष्टमूर्ति देखनेकी अत्यन्त ही अभिलाषा करते हो तो मैं जो कहता हूं ॥ ६३ ॥ महेश्वरसे मेरा यह वचन प्रति

स्वमूर्तिं दर्शय विभो वाञ्छितं वरमेव नः ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी ॥ ६० ॥ तामेव शुश्रुवुः सर्वे सुव्यक्तां मधुरान्वि ताम् ॥ सर्वात्माऽहमियं शक्तिर्भक्तानुग्रह विग्रहा ॥ ६१ ॥ ममाप्यस्याश्च देहेन कर्त्तव्यं च किमावयोः ॥ मनवो मानवाः सर्वे मुनयश्चैव वैष्णवाः ॥ ६२ ॥ मन्मन्त्रपूतामां द्रष्टुमागमिष्यंति मत्पदम् ॥ मूर्तिं द्रष्टुं च सुव्यक्तां यदीच्छत सुरेश्वराः ॥ ६३ ॥ करोतु शंभुस्तत्रैवं मदीयं वाक्यपालनम् ॥ स्वयं विधातस्त्वं ब्रह्मन्नाज्ञां कुरु जगद्गुरुम् ॥ ६४ ॥ कर्तुं शास्त्रविशेषं च वेदांगं सुमनोहरम् ॥ अपूर्वमन्त्रनिकरैः सर्वाभीष्टफलप्रदैः ॥ ६५ ॥ स्तोत्रैश्च च निकरैर्ध्यानैर्युतं पूजाविधिक्रमैः ॥ मन्मन्त्रकवचस्तोत्र कृत्वा यत्नेन गोपनम् ॥ ६६ ॥ भवंति विमुखा येन जना मां तत्करिष्यति ॥ सहस्रेषु शतेष्वेको मन्मंत्रोपासको भवेत् ॥ ६७ ॥ जना मन्मंत्रपूताश्च गमिष्यंति च मत्पदम् ॥ अन्यथा न भविष्यंति सर्वे गोलोकवासिनः ॥ ६८ ॥

पालन करनेको कहो हे ब्रह्मन् ! विधातः तुम जगत्गुरु महादेवजीको यह आज्ञा दो ॥ ६४ ॥ कि वह वेदांग संगत मनोहर तन्त्रशास्त्र प्रणयन करैं और यह शास्त्र अभीष्टप्रद मंत्रसमूह ॥ ६५ ॥ स्तोत्र यथाविधि पूजा क्रमयुक्त ध्यानसे परिपूर्ण हो और इसमें मेरा मन्त्र कवच और स्तोत्र गूढभावसे सन्निवेशित रहै ॥ ६६ ॥ जिससे पापिष्ठ मनुष्यगण उसके मर्मावरोधमें असमर्थ होकर मेरे प्रति अत्यन्त विमुख हों जिससे सहस्रमें अथवा मनुष्योंमें एकैजन मेरा मंत्रोपास कहो ॥ ६७ ॥ और मेरे मंत्रोपासक साधुगण पूतात्मा होकर मेरे लोकमें गमन कर सकें मेरा शास्त्रप्रणीत न होनेसे अर्थात् यदि सभी इस शास्त्रके मर्मावरोधमें समर्थ होंगे और यदि सभी भूलोकसे गोलोकमें जायँगे ॥ ६८ ॥

तो तुम्हारा ब्रह्माण्ड कारण निष्फल होगा अतएव तुम सात्विक तामसिकादि भेदसे पंचप्रकार तथा नाना प्रकार लोकोंकी सृष्टि करो तो ॥ ६९ ॥ अपने कर्मके वश कोई भूलोकवासी और कोई कोई द्युलोकवासी होंगे हे ब्रह्मन् ! यदि महादेव देवसभाके सामने ॥ ७० ॥ तन्त्रशास्त्र बनानेके विषयमें दृढ प्रतिज्ञा करे तो मैं अपनी मूर्ति दिखाऊं हे वत्सनारद ! सनातन पुरुष श्रीकृष्ण यह कहकर विरत होगये ॥ ७१ ॥ इस प्रकार आकाशवाणीके अन्तमें जगत्कर्ता ब्रह्माजीने उसको सुननेसे आनन्दित होकर शिवजीको उस आकाशवाणीका मर्म समझाया ज्ञानियोंमें अग्रणी ज्ञानके अधीश्वर भूतनाथने विधाताका वचन सुन ॥ ७२ ॥ गंङ्गाजल हाथमें लेकर प्रतिज्ञा पूर्वक कहा मैं राधामन्त्रसे परिपूर्ण वेदका अविरोधी ॥ ७३ ॥ तन्त्रशास्त्र प्रणयन करूंगा गंगाजल स्पर्श करके

निष्फलं भविता सर्वं ब्रह्मांडं चैव ब्रह्मणः ॥ जनाः पंच प्रकाराश्च युक्ताः स्रष्टुं भवे भवे ॥ ६९ ॥ पृथिवीवासिनः केचित्केचित्स्वर्गनिवासिनः ॥ इदं कर्तुं महादेवः करोति देवसंसदि ॥ ७० ॥ प्रतिज्ञां सुदृढां सद्य स्ततो मूर्तिं च द्रक्ष्यति ॥ इत्येवमुक्त्वा गगने विरराम सनातनः ॥ ७१ ॥ तच्छ्रुत्वा जगतां धाता तमुवाच शिवं मुदा ॥ ब्रह्म णो वचनं श्रुत्वा ज्ञानेशो ज्ञानिनः वरः ॥ ७२ ॥ गंगातोयं करे कृत्वा स्वीकारं च चकार सः ॥ सयुक्तं विष्णुमायाया मंत्रौघैः शास्त्रमुत्तमम् ॥ ७३ ॥ वेदसारं करिष्यामि प्रतिज्ञापालनाय च ॥ गंगातोयमुपस्पृश्य मिथ्या यदि वदेज्जनः ॥ ७४ ॥ स याति कालसूत्रं च यावद्वै ब्रह्मणोवयः ॥ इत्युक्ते शंकरे ब्रह्मन्गोलोके सुरसंसदि ॥ ७५ ॥ आविर्बभूव श्रीकृष्णो राधया सहितस्ततः ॥ तं सुदृष्ट्वा च संहृ ष्टास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७६ ॥ परमानन्दपूर्णाश्च चक्रुश्च पुनरुत्सवम् ॥ कालेन शंभुर्भगवान्मुक्तिदीपं चकार सः ॥ ७७ ॥ इत्येवं कथितं सर्वं सुगोप्यं च सुदुर्लभम् ॥ सएव द्रवरूपा सा गंगा गोलोकसंभवा ॥ ७८ ॥

यदि कोई मिथ्या बात कहे ॥ ७४ ॥ तो वह ब्रह्माकी अवस्थाके कालतक घोरतर कालसूत्र नामक नरकमें वास करता है हे द्विजवर ! गोलोकस्थिर सुरसभाके सामने जब भगवान् शंकरने इस प्रकार कहा ॥ ७५ ॥ तब श्रीकृष्ण राधासहित वहां प्रगट हुए उनको देखतेही फिर देवताओंके आनन्दकी सीमा न रही इस समय वह उन पुरुषोत्तमकी स्तुति करके ॥ ७६ ॥ फिर पूर्ववत् आनन्दसे रासमहोत्सवमें प्रवृत्त हुए अनन्तर कुछकाल पीछे महादेवजीने मुक्तिदीप प्रज्वलित किया अर्थात् महादेवजीके द्वारा पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार तन्त्र शास्त्र प्रकाशित हुआ ॥ ७७ ॥ हे वत्स ! यह मैंने तुम्हारे निकट अति दुर्लभ गोपनीय वृत्तान्त प्रकाशित किया वह श्रीकृष्ण ही गोलोकसंभूत द्रवमयी गंगा हैं ॥ ७८ ॥

अभिन्न देह राधा और अङ्गोत्पन्न गंगा सबको भोगैश्वर्य और मुक्तिप्रदान करती हैं परमात्मा श्रीकृष्णने उनको स्थान स्थानमें स्थापित किया है ॥ ७९ ॥ सुतरां गंगा श्रीकृष्णस्वरूप और संम्पूर्ण ब्रह्माण्डके सर्वत्र सबके द्वारा समान पूज्यनीय हैं ॥ ८० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ देवर्षि नारदने कहा हे सुरेश्वर ! कलिके पांच हजार वर्ष बीतनेपर देवी गंगा किस लोकमें गई थीं ? सो कहिये ॥ १ ॥ नारायणने कहा हे वत्स ! भागीरथी भारतीके शापसे भारतमें अवतीर्ण होकर फिर ईश्वरकी इच्छासे शापके अन्तमें वैकुंठ धामको गई ॥ २ ॥ और इस ओर भी जैसेही शापका अवसान हुआ उसी समय भारती और पद्मावती दोनों भारत त्यागकर नारायणके समीप गई ॥ ३ ॥ गंगा लक्ष्मी और सरस्वती एवं

राधाकृष्णांगसंभूता भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ स्थाने स्थाने स्थापिता सा कृष्णेन च परात्मना ॥७९॥ कृष्णस्वरूपा परमा सर्वब्रह्मांडपूजिता ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ नारद उवाच ॥ कलेः पंचसहस्राब्दे समतीते सुरेश्वर ॥ क्क गता सा महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ नारायण उवाच ॥ भारतं भारती शापात्समागत्येश्वरेच्छया ॥ जगाम तत्र वैकुंठे शापान्ते पुनरेव सा ॥ २ ॥ भारती भारतं त्यक्त्वा तज्जगाम हरेः पदम् ॥ पद्मावती च शापांते गंगा सा चैव नारद ॥ ३ ॥ गंगा सरस्वती लक्ष्मीश्चैतास्तिस्रः प्रिया हरेः ॥ तुलसीसहिता ब्रह्मंश्चतस्रः कीर्तिताः श्रुतौ ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ केनोपायेन सा देवी विष्णुपादाब्जसंभवा ॥ ब्रह्मकमंडलुस्था च श्रुता शिवप्रिया च सा ॥ ५ ॥ बभूव सा मुनिश्रेष्ठ गंगा नारायणप्रिया ॥ अहो केन प्रकारेणयन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ पुरा बभूव गोलोके सा गंगा द्रवरूपिणी ॥ राधा कृष्णांगसंभूता तदंशातत्स्वरूपिणी ॥ ७ ॥ द्रवाधिष्ठा तृदेवी या रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ नवयौवनसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥ ८ ॥

तुलसी यह चार श्रीहरिकी प्रियतमा हैं ॥ ४ ॥ नारदने कहा हे भगवन् ! गंगा किस प्रकार विष्णुके पादपद्मसे उत्पन्न हुई ब्रह्माजीने किस निमित्त उनको कमंडलुमें धरा था ? सुना है कि वह शिवकी पत्नी हैं ॥ ५ ॥ तो फिर किस प्रकार नारायणकी पत्नी हुई ? हे मुनिवर ! यह सब वृत्तांत आदिसे अन्ततक मेरे निकट वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ नारायणने कहा हे मुने ! पूर्व कालके समय गंगाने शिवलोकमें द्रवमूर्ति धारण की थी, गंगा, श्रीकृष्ण और राधाके अंगसे उत्पन्न हैं सुतरां वह दोनोंका ही अंश और आत्मस्वरूपिणी हैं ॥ ७ ॥ वह जलकी अधिष्ठात्री देवी हैं उनके समान रूपवती भूमंडलमें दूसरी नहीं हैं वह नव यौवनसे युक्त और सब प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत हैं ॥ ८ ॥

शरत् कालीन मध्याह्न पंकजके समान उनके मुखमें हँसी रहती है, रूप अतीव मनोहर शरीरका वर्ण तप्त कांचनके समान और प्रभा शरत्कालीन चन्द्रमाके समान है ॥ ९ ॥ उनकी प्रभाके देखनेसे नयन और मन अतिशय स्निग्ध होते हैं वह स्वयं अति शुद्ध सत्वस्वरूपा हैं और नितम्ब पीन और कठिन हैं, उनके ऊपर अत्युत्कृष्ट वस्त्र ढका हुआ है ॥ १० ॥ उनके दोनों स्तन पीन, उन्नत, कठिन और सुगोल हैं नयनयुगल अति मनोहर सदा वक्रभावसे अपांगमें विलोकन ॥ ११ ॥ एक तो वङ्किमभावसे कबरी बन्धन उसके ऊपर मालतीमालाके समर्पित होनेसे अधिक मनोहर हुई हैं उनके भालमें चन्दन विन्दुके ऊपर सिन्दूर लगा होनेसे शोभाकी सीमा नहीं है ॥ १२ ॥ और गण्डोपरि कस्तूरी पत्रकी रचना होनेसे क्या सुन्दरता हुई है, उनके दोनों ओष्ठने

शरन्मध्याह्नपद्मास्या सस्मिता सुमनोहरा ॥ तप्तकांचन वर्णाभा शरच्चंद्रसमप्रभा ॥ ९ ॥ स्निग्धप्रभाऽतिसुस्निग्धा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥ सुपीनकठिनश्रोणिः सुनितंबयुगंबर ॥ १० ॥ पीनोन्नतं सुकठिनं स्तन युग्मं सुवर्तुलम् ॥ सुचारु नेत्रयुगलं सुकटाक्षं सुवंक्रिमम् ॥ ११ ॥ वंक्रिमं कबरीभारं मालती माल्यसंयुम् ॥ सिंदूरबिंदुललितंसार्धं चंदनबिंदुभिः ॥ १२ ॥ कस्तूरीपत्रिकायुक्तं गंडयुग्मं मनोरमम् ॥ बंधूककुसुमाकारमधरोष्ठं च सुन्दरम् ॥ १३ ॥ पक्वदाडिमबीजाभदंतपंक्तिसमुज्ज्वलम् ॥ वाससी वह्निशुद्धे च नीवीयुक्ते च बिभ्रती ॥ १४ ॥ सा सकामा कृष्णपार्श्वे समुवास सुलज्जिता ॥ वाससा मुखमाच्छाद्य लोचनाभ्यां विभोर्मुखम् ॥ १५ ॥ निमेषरहिताभ्यां च पिबंती सततं मुदा ॥ प्रफुल्लवदना हर्षान्नव संगमलालसा ॥ १६ ॥ मूर्छिता प्रभुरूपेण पुलकांकितविग्रहा ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र विद्यमाना च राधिका ॥ १७ ॥

बन्धुक पुष्पके समान रक्तवर्ण आभा धारण की है ॥ १३ ॥ इनके दातोंकी पंक्ति देखनेसे बोध होता है मानो सुपक्व दाडिमबीज श्रेणीबद्ध होकर स्थापित हैं उन्होंने नीवीस्थान (चीन) पर्यन्त अग्नि विशुद्ध वस्त्र युगल धारण किये हैं ॥ १४ ॥ हे वत्स नारद ! ऐसी रूपलावण्यवती और वेष भूषासम्पन्न गंगा रति लाभकी इच्छाकर लज्जा भावसे वस्त्राञ्चलसे अपना मुख ढक श्रीकृष्णके पार्श्वमें बैठ अनिमेष नयनसे ॥ १५ ॥ परमानन्दपूर्वक उनका चन्द्र वदन पान करने लगी नवसमागम लाभके आनंदसे उनका मुखकमल अत्यन्त प्रफुल्लित हो गया ॥ १६ ॥ वह श्रीकृष्णका रूप देखकर मूर्च्छित हो गई उनका सर्वांग रोमांचित होगया इसी अवसरमें कृष्णप्राणा राधिका वहां उपस्थित हुई ॥ १७ ॥

तीस करोड गोपी उनकी सहगामिनी थीं उनका रूप देखनेसे बोध होता है मानो एक कालमें करोड सूर्य उदय हुए हैं गंगाको श्रीकृष्णके पार्श्वमें बैठा देख क्रोधसे उनका मुखमंडल और दोनों नेत्र रक्तपद्मके समान रक्तवर्ण होगये ॥ १८ ॥ उनका वर्ण पीत चंपकके समान और गमन मदवाले हाथीके समान था वह अमूल्य रत्ननिर्मित अनेक प्रकारके भूषणोंसे विभूषित थीं ॥ १९ ॥ अमूल्य रत्न खचित अग्निपरीक्षित बहुमूल्य परिधेय पीताम्बरयुगल उनके नीविस्थानमें आबद्ध थे ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण प्रदत्त अर्घ्यमें समायुक्त स्थलपद्म प्रभाविनिन्दित सुरञ्जित चरणकमल पग पगमें विन्यस्त होते थे ॥ २१ ॥ वह उत्कृष्ट निर्मित विमानमें चढकर जब मंद मंद गमन करती थीं, उस समय ऋषिगण उनका श्वेत चामरसे वीजन करते थे ॥ २२ ॥ उनके सीमन्तके अधोभागमें सिंदूर विंदु और

गोपीत्रिंशत्कोटियुक्ता चन्द्रकोटिसमप्रभा ॥ कोपेनारक्तपद्मास्या रक्तपंकजलोचना ॥ १८ ॥ पीतचंपकवर्णाभा गजेंद्रमंदगामिनी ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभूषणभूषिता ॥ १९ ॥ अमूल्यरत्नखचितममूल्यं वह्नि शौचकम् ॥ पीत वस्त्रस्य युगलं नीवीयुक्तं चबिभ्रती ॥ २० ॥ स्थलपद्मप्रभामुष्टं कोमलं च सुरंजितम् ॥ कृष्णदत्तार्घ्यसंयुक्तं विन्यसन्ती पदांबुजम् ॥२१॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणविमानादवरुह्य सा ॥ सेव्यमाना च ऋषिभिः श्वेतचामरवायुना ॥ २२ ॥ कस्तूरीबिंदुभिर्युक्तंचंदनेन समन्वितम् ॥ दीप्तदीपप्रभाकारं सिंदूरबिंदुशोभितम् ॥ २३ ॥ दधती भालमध्ये च सीमन्ताधः स्थलोज्ज्वले ॥ पारिजातप्रसूनानां माला युक्तं सुवंक्रिमम् ॥ २४ ॥ सुचारूकबरीभारं कंपयंती सुकंपिता ॥ सुचारुरागसंयुक्तमोष्ठं कंपयती रुषा ॥ २५ ॥ गत्वोवासकृष्णपार्श्वे रत्नसिंहासने शुभे ॥ सखीनां च समूहैश्च परिपूर्णा विभोः प्रिया ॥ २६ ॥ तां दृष्ट्वा च समुतस्थौ कृष्णः सादरपूर्वकम् ॥ संभाष्य मधुरालापैः सस्मितश्चससंभ्रमः ॥ २७ ॥ प्रणेमुरतिसंत्रस्ता गोपा नम्रात्मकंधराः ॥ तुष्टुवुस्ते च भक्त्या च तुष्टाव परमेश्वरः ॥ २८ ॥

उज्ज्वल दीपशिखाके समान प्रभा विस्तार करती थीउनके दोनोंपार्श्वमें कस्तूरी बिन्दु और चन्दनबिंदु विराजमान था ॥ २३ ॥ वह जैसेही क्रोधसे कंपित होने लगी वैसेही उनका परिजातमाला वेष्टित ॥ २४ ॥ वक्र कबरीभार कंपित होने लगा चारु राग संयुक्त ओष्ठ प्रस्फुरित होने लगा ॥ २५ ॥ वह रोषयुक्त गमन करके श्रीकृष्णके पार्श्वमें रत्नमय सिंहासन पर बैठ गई और उनकी अनुगामिनी सखियें भी यथा स्थानमें बैठ गई ॥ २६ ॥ श्रीकृष्ण राधाको देखते ही संभ्रम और हास्यवदनसे उठकर सादर संभाषणपूर्वक मीठी बातें करने लगे ॥ २७ ॥ गोपियें संत्रस्त होकर मस्तक झुकाय प्रणामपूर्वक भक्तियुक्त हो स्तव करने लगीं तब श्रीकृष्ण भी उनकी स्तुति करने लगे ॥ २८ ॥

इसी समय देवी गंगाने भी उठकर अनेक स्तव स्तुति करके भय सहित विनयनम्र वचनोंसे कुशलप्रश्न पूछा ॥ २९ ॥ भयसे उनका कंठ ओष्ठ और तालु शुष्क हो गया उन्होंने नम्रभावसे श्रीकृष्णके चरणोंमें शरण ग्रहण की ॥ ३० ॥ जब श्रीकृष्णने उनको हृदयसे लगाय अभय प्रदान किया तब उनका चित्त स्थिर हुआ ॥ ३१ ॥ हे वत्सनारद ! उसी समय सुरेश्वरी गंगाने सिंहासनपर विराजमान सुस्निग्धा सुखदृश्या राधाको देखा कि, मानो ब्रह्मतेजसे ज्वलित हो रही हैं ॥ ३२ ॥ वह सृष्टिके आदिसे असंख्य ब्रह्मकी एकमात्र कर्त्री और सनातनी हैं उनके देखनेसे बोध होता है, मानों बारहवर्षकी नव यौवना कन्या है ॥ ३३ ॥ किसी विश्वसे ऐसी रूपवती वा गुणवती रमणी दूसरी दिखाई नहीं देती वह शांत कांत अनन्तर और आद्यन्त रहित हैं ॥ ३४ ॥ वह शुभा,

उत्थाय गंगा सहसा स्तुतिं बहु चकार सा ॥ कुशलं परिपप्रच्छ भीताऽतिविनयेन च ॥ २९ ॥ नम्रभागस्थिता त्रस्ता शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ॥ ध्यानेन शरणायत्ता श्रीकृष्णचरणांबुजे ॥ ३० ॥ तां हृत्पद्मस्थितां कृष्णो भीतायै चाभयं ददौ ॥ बभूव स्थिरचित्ता सा सर्वेश्वरवरेण च ॥३१॥ ऊर्ध्वं सिंहासनस्थां च राधां गंगा ददर्श सा ॥ सुस्निग्धां सुखदृश्यां च ज्वलंतीं ब्रह्मतेजसा ॥ ३२ ॥ असख्य ब्रह्मणः कर्त्रीमा दिसृष्टेः सनातनीम् ॥ सदा द्वादशवर्षीयां कन्याऽभिनवयौवनाम् ॥ ३३ ॥ विश्ववृन्दे निरुपमां रूपेण च गुणेन च ॥ शांतां कांतामनंतां तामाद्यंतरहितां सतीम् ॥ ३४ ॥ शुभां सुभद्रां सुभगां स्वामिसौभाग्यसंयुताम् ॥ सौंदर्यसुन्दरी श्रेष्ठां सर्वासु सुंदरीषु च ॥३५॥ कृष्णार्धांगां कृष्णसमां तेजसा वयसा त्विषा ॥ पूजितां च महालक्ष्मीं लक्ष्म्या लक्ष्मीश्वरेण च ॥ ३६ ॥ प्रच्छाद्यमानां प्रभया सभामीशस्य सुप्रभाम् ॥ सखीदत्तं च तांबूलं भुक्तवंती च दुर्लभम् ॥ ३७ ॥ अजन्यां सर्वजननीं धन्यां मान्यां च मानिनीम् ॥ कृष्णप्राणाधिदेवीं च प्राणप्रियतमां रमाम् ॥ ३८ ॥

सुभद्रा, ऐश्वर्यवती और स्वामि सौभाग्य शालिनी हैं, वह संपूर्ण रमणियोंमें प्रधान रत्न हैं देखनेसे बोध होता है मानो समुदाय सौंदर्य एकत्र सन्निवशित हुआ है ॥ ३५ ॥ वह श्रीकृष्णका अर्द्ध शरीर है क्या तेज, क्या वयस, क्या कान्ति, सर्वांशमेंही कृष्णके समान हैं लक्ष्मी और लक्ष्मीकांत दोनोंही उनकी पूजा करते हैं ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्णकी तादृश उज्ज्वल प्रभा है, किन्तु राधाके रूपसे सब आच्छादित होरही हैं वह सिंहासन पर बैठकर सखीका दिया हुआ ताम्बूल चाबने लगी ॥ ३७ ॥ वह सब जगत्को उत्पन्न करनेवाली हैं, किंतु उनको उत्पन्न करनेवाला कोई नहीं है वह धन्य मान्य और मानिनी हैं वह श्रीकृष्णकी प्राणेश्वरी और प्राणोंसे भी प्रियतमा रमणी हैं ॥ ३८ ॥

हे देवर्षे ? सुरेश्वरी गंगा अनिमेष लोचनसे वारंवार उनको देखने लगीं किंतु किसी प्रकार भी उनके नेत्र व उनका मन तृप्त नहीं हुआ ॥ ३९ ॥ इसी समय शान्तमूर्ति राधाने विनीत भाव हास्यवदन और मधुर वचन द्वारा जगदीश्वर श्रीकृष्णसे कहा ॥४०॥ राधा बोली प्राणेश्वर ! आपके पार्श्वमें हास्यवदन वक्रलोचन उत्सुक चित्तसे जो आपके वदन सुधाकरका पान कर रही है ॥ ४१ ॥ यह कल्याणी कौन है यह आपका रूप देखकर एकवार ही मोहित हुई है, इसका सब शरीर रोमाञ्चित दीखता है, यह वस्त्रसे अपना मुखमण्डल ढककर वारम्वार आपको देखती है ॥ ४२ ॥ और आपभी इसको देखकर उत्सुक चित्तसे हास्य करते हैं यह क्या व्यापार है मेरे गोलोकमें विद्यमान रहते ऐसा कुव्यवहार आरंभ क्यों हुआ ॥ ४३ ॥ आप तो वारंवार इस प्रकार दुष्कर्म

दृष्ट्वा राकेश्वरीं तृप्तिं न जगाम सुरेश्वरी ॥ निमेषरहिताभ्यां च लोचनाभ्यां पपौ च ताम् ॥ ३९ ॥ एतस्मिन्नंतरे राधा जगदीशमुवाच सा ॥ वाचा मधुरया शांता विनीता सस्मितामुने ॥ ४० ॥ राधो उवाच ॥ केयं प्राणेश कल्याणी सस्मिता त्वन्मुखांबुजम् ॥ पश्यंती सस्मितं पार्श्वे सकामा वक्रलोचना ॥ ४१ ॥ मूर्च्छां प्राप्नोति रूपेण पुलकांकितविग्रहा ॥ वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य निराक्षंती पुनः पुनः ॥ ४२ ॥ त्वं चापि तां संनिरीक्ष्य सकामः सस्मितः सदा मयि जीवति गोलोके भूता दुर्वृत्तिरीदृशी ॥ ४३ ॥ त्वमेव चैव दुर्वृत्तं वारं वारं करोषि च॥क्षमां करोमि प्रेम्णा च स्त्रीजातिः स्निग्धमानसा ॥ ४४ ॥ संगृह्य मा प्रियामिष्टां गोलोकाद्गच्छ लंपट ॥ अन्यथा न हि ते भद्रं भविष्यति व्रजेश्वर ॥ ४५ ॥ दृष्टस्त्वं विरजायुक्तो मया चंदनकानने ॥ क्षमाकृता मया पूर्वं सखीनां वचनादहो ॥४६॥ त्वया मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं पुरा ॥ देहं तत्याज विरजा नदीरूपा बभूव सा ॥४७॥ कोटियोजनविस्तीर्णा ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा ॥ अद्यापि विद्यमाना सा तव सत्कीर्तिरूपिणी ॥ ४८ ॥

करते हैं किंतु क्या करूं मैं स्त्रीजाति स्वभावसे ही सरलचित प्रणयके वश होकर समस्त ही क्षमा करती हूं ॥ ४४ ॥ हे लम्पट ! आप शीघ्र अपनी प्रणयिनीको लेकर गोलोकसे चले जाइये नहीं तो यह कार्य आपको कल्याणदायक नहीं है ॥ ४५ ॥ पहिले एक दिन चंदन वनमें गोपाङ्गना विरजाके संग इसी प्रकार मिलित देखा था, किंतु क्या करूं सखियोंके अनुरोधसे उसको क्षमा किया ॥ ४६ ॥ उप समय आप मेरे पैरका शब्द सुनकर भाग गये थे और विरजाने लज्जाके कारण देहत्याग करके नदीरूप धारण किया है ॥ ४७ ॥ उसका विस्तार बहुत योजन और दैर्घ्य इससे चतुर्गुण है अद्यापि आपकी कीर्तिस्वरूपा वह विरजा विद्यमान है ॥ ४८ ॥

विरजाकी यह घटना देखनेके पीछे मेरे गृह प्रस्थान करनेपर आप फिर उसके निकट जाय उच्चस्वर "विरजे विरजे" कहकर रोदन करते फिरते थे ॥ ४९ ॥ जब आपके चीत्कार शब्दसे उस सिद्धयोगिनीने योग बलद्वारा जलसे उत्थित होकर आपको भूषणभूषित अपनी दिव्यमूर्त्ति दिखाई ॥ ५० ॥ तब आप उसको खैंचकर संगममें प्रवृत हुए और उसमें वीर्य निक्षेप किया विरजाके क्षेत्रमें वीर्याधान करनेसे ही सात समुद्रोंकी उत्पत्ति हुई है ॥ ५१ ॥ दूसरे एक दिन चंपक वनमें शोभा नामक गोपिनीके संग संगत होते देखा था उस दिनभी आप मेरे पैरका शब्द सुनकर भाग गये थे ॥ ५२ ॥ किंतु शोभाने लज्जासे अपना कलेवर

गृहं मयि गतायां च पुनर्गत्वा तदंतिके ॥ उच्चै रुरोद विरजे विरजे चेति संस्मरन् ॥ ४९ ॥ तदा तोयात्समुत्थाय सा योगात्सिद्धयोगिनी ॥ सालंकारा मूर्तिमती ददौ तुभ्यं च दर्शनम् ॥ ५० ॥ ततस्तां च समाक्षिप्य वीर्याधानं कृतं त्वया ॥ ततौ बभूवुस्तस्यां च समुद्राः सप्त एव च ॥ ५१ ॥ दृष्टस्त्वं शोभया गोप्या युक्तश्चंपककानने ॥ सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥ ५२ ॥ शोभा देहं परित्यज्य जगाम चंद्रमंडले ॥ ततस्तस्याः शरीरं च स्निग्धं तेजो बभूव ह ॥ ५३ ॥ संविभज्य त्वया दत्तं हृदयेन विदूयता ॥ रत्नाय किंचित्स्वर्णाय किंचिन्मणिवराय च ॥ ५४ ॥ किंचित्स्त्रीणां मुखाब्जेभ्यः किंचिद्राज्ञे च किंचन ॥ किंचित्किसलयेभ्यश्च पुष्पेभ्यश्चापि किंचन ॥ ५५ ॥ किंचित्फलेभ्यः पक्केभ्यः सस्येभ्यश्चापि किंचन ॥ नृपदेवगृहेभ्यश्च संकृतेभ्यश्च किंचन ॥ ५६ ॥ किंचिन्नूतन पत्रेभ्यो दुग्धेभ्यश्चापि किंचन ॥ दृष्टस्त्वं प्रभया गोप्या युक्तो वृंदावने वने ॥ ५७ ॥

त्याग कर चन्द्र मण्डलमें प्रस्थान किया वह शोभाही चन्द्र मण्डलकी स्निग्ध तेज स्वरूपिणी है ॥ ५३ ॥ शोभाकी इस प्रकार दुर्दशा होनेपर आपने ही दुःखित अन्तःकरणसे उसका विभाग करके कुछ रत्नमें कुछ सुवर्णमें, कुछ उत्कृष्ट मणिमण्डलमें ॥ ५४ ॥ कुछ स्त्रियोंके मुखकमलमें कुछ राजशरीरमें, कुछ वृक्षपत्रमें, कुछ पुष्पमें ॥ ५५ ॥ कुछ पके हुए फलोंमें, कुछ धान्यमें कुछ कुछ नृप और देवतायतन (देवस्थान) में, कुछ कुछ सुसंस्कृत पदार्थोंमें ॥ ५६ ॥ कुछ कुछ नवकिसलयमें और कुछ थोड़सा दूधमें प्रदान किया था तीसरे आपको वृंदावनमें प्रभा गोपीके संग संगत होते देखा है ॥ ५७ ॥

१ इनके अधिष्ठाता पुरुष ।

मेरा शब्द सुनतेही आपके भोगनेपर प्रभा भी लज्जासे देह त्यागकर सूर्यमंडलमें उपस्थित हुई ॥ ५८ ॥ वह प्रभाही सूर्यमण्डलके तीव्रतेज स्वरूपमें परिणत हुई है आपने ही प्रणयविच्छेदके कारण मनमें क्षुभित हो रोदन करते करते ॥ ५९ ॥ कुछ नेत्र लज्जा और कुछ मेरे भयसे उस प्रभाको विभाग करके कुछ हुताशनमें कुछ यक्षमें ॥ ६० ॥ कुछ पुरुष सिंहमें कुछ देवताओंमें कुछ वैष्णवमें कुछ नागोंमें ॥ ६१ ॥ कुछ ब्राह्मणोंमें कुछ मुनियोंमें कुछ तपस्वियोंमें कुछ यशस्वियों एवं कुछ कीर्तिमती और सौभाग्यवती अबलाओंमें समर्पण किया है ॥६२॥ पूर्वमें प्रभाका इस प्रकार विभाग करके उसके वियोगमें आपको रोदन करना पड़ा था चौथे मैंने रासमंडलमें आपको शान्तिनी नामक गोपिनीके संग प्रेमासक्त होते देखा है ॥ ६३ ॥ वसन्तके आगममें आप एक दिन

सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥ प्रभादेहं परित्यज्य जगाम सूर्यमंडले ॥ ५८ ॥ ततस्तस्याः शरीरं च तीव्रं तेजो बभूव ह ॥ संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुरा ॥ ५९ ॥ विसृष्टं चक्षुषोः कृष्ण लज्जया मद्भयेन च ॥ हुताशनाय किंचिच्च यक्षेभ्यश्चापि किंचन ॥ ६० ॥ किंचित्पुरुषसिंहेभ्यो देवेभ्यश्चापि किंचन ॥ किंचिद्विष्णुजनेभ्यश्च नागेभ्योऽपि च किंचन ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणेभ्यो मुनिभ्यश्च तपस्विभ्यश्च किंचन ॥ स्त्रीभ्यः सौभाग्ययुक्ताभ्यो यशस्विभ्यश्च किंचन ॥ ६२ ॥ तत्तु दत्त्वा च सर्वेभ्यः पूर्वं प्ररुदितं त्वया ॥ शांतिगोप्या युतस्त्वं च दृष्टोऽसि रासमंडले ॥ ६३ ॥ वसंते पुष्पशय्यायां माल्यवांश्चंदनोक्षितः ॥ रत्नप्रदीपैर्युक्तं च रत्ननिर्माणमंदिरे ॥६४॥ रत्नभूषणभूषाढ्यो रत्नभूषितया सह ॥ तया दत्तं च तांबूलं भुक्तवांश्च पुरा विभो ॥६५॥ सद्यो मच्छब्द मात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥ शांतिर्देहं परित्यज्य भिया लीना त्वयि प्रभो ॥ ६६ ॥ ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह ॥ संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदात पुरा ॥६७॥ विश्वेतु विपिन किंचिद्ब्रह्मणे च मयि प्रभो ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपायै किंचिल्लक्ष्म्यै पुरा विभो ॥६८॥

गलेमें पुष्पमाला डाले और सर्वाङ्गमें चंदन विलेपन पूर्वक रत्नमयभूषणोंसे विभूषित हो रत्नदीपविराजित रत्नमंदिरमें ॥ ६४ ॥ वस्त्रालंकारसे विभूषिता शान्ति गोपीके संग पुष्पशय्यापर शयन करके प्रणयिनीका दिया हुआ ताम्बूल चर्वण करते थे ॥ ६५ ॥ आपने मेरा शब्द सुनतेही तत्काल प्रस्थान किया, शान्ति गोपीभी लज्जा और भयसे देहत्यागकर एकबारही आपके शरीरमें लीन हुई ॥ ६६ ॥ इससेही शान्ति गुण श्रेष्ठ कहकर परिगणित हुई है आपनेभी प्रणयभंगसे रोदन करते करते शान्तिके देहको विभाग करके ॥ ६७ ॥ विश्व संसारके मध्य कुछ वनस्थलमें कुछ ब्रह्माको कुछ मुझको कुछ शुद्धसत्व स्वरूप लक्ष्मीको ॥ ६८ ॥

कुछ अपने मंत्रोपासकको कुछ मेरे मंत्रोपासकोंको कुछ तपस्वियोंको कुछ धर्मको और कुछ धार्मिकोंको प्रदान किया था ॥ ६९ ॥ पांचवें मनमें विचार कर देखो फिर एक दिन आप सर्वाङ्गमें चंदन विलेपन और गलेमें पुष्पमाला डाल सज्जित हो रत्नभूषणोंसे विभूषित और गंध चन्दनसे चर्चित ॥ ७० ॥ ७१ ॥ क्षमा नाम्नीगोपीके संग पुष्पसमाकीर्ण चन्दनादियुक्त सुखशय्यापर शयन करके सुखपूर्वक सो रहे थे यही नहीं बरन् नव समागमके पीछे परस्परको आलिंगनपूर्वक नींदमें ऐसे अभिभूत हुए थे कि मेरे जाकर जगानेसे दोनोंकी निद्रा भंग हुई ॥ ७२ ॥ मैंने आपका पीताम्बर मनोहर मुरली वनमाला कौस्तुभ और अमूल्य रत्नकुंडल लेलिये थे ॥ ७३ ॥ फिर सखियोंके अनेक यत्न और वचनोंसे पुनर्वार प्रदान किये पाप और लज्जासे आपका

त्वन्मंत्रोपासकेभ्यश्च शाक्तेभ्यश्चापि किंचन ॥ तपस्विभ्यश्च धर्माय धर्मिष्ठेभ्यश्च किंचन ॥ ६९ ॥ मया पूर्वं च त्वं दृष्टो गोप्या च क्षमया सह ॥ सुवेषयुक्तो मालावान्गंधचंदनचर्चितः ॥ ७० ॥ रत्नभूषितया गंधचंदनोक्षितया सह ॥सुखेन मूर्च्छितस्तल्पे पुष्पचंदनचर्चिते ॥ ७१ ॥ श्लिष्टो निद्रितया सद्यः सुखेन नवसंगमात् ॥ मया प्रबोधिता सा च भवांश्च स्मरणं कुरु ॥ ७२ ॥ गृहीतंपीतवस्त्रं च मुरली च मनोहरा ॥ वनमाला कौस्तुभश्चाप्य मूल्यं रत्नकुंडलम् ॥ ७३ ॥ पश्चात्प्रदत्तं प्रेम्णाच सखीनां वचनादहो ॥ लज्जया कृष्णवर्णोऽभूद्भवान्पापेन यः प्रभो ॥ ७४ ॥ क्षमा देहं परित्यज्य लज्जया पृथिवीं गता ॥ ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह ॥७५॥ संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुनः ॥ किंचिद्दत्तं विष्णवे च वैष्णवेभ्यश्च किंचन ॥ ७६ ॥ धार्मिकेभ्यश्च धर्माय दुर्बलेभ्यश्च किंचन ॥ तपस्विभ्योपि वेदेभ्यः पंडितेभ्यश्च किंचन ॥ ७७ ॥ एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ त्वद्गुणं चैव बहुशो न जानामि परं प्रभो ॥ ७८ ॥ इत्येवमुक्त्वा सा राधा रक्तपंकजलोचना ॥ गंगां वक्तुं समारेभे नम्रास्यां लज्जितां सतीम् ॥ ७९ ॥

देह काला वर्ण हो गया था ॥ ७४ ॥ इसके पीछे क्षमाने लज्जासे देह त्यागकर पृथ्वीमें गमन किया इसी कारण क्षमाका शरीर श्रेष्ठतम गुणका आधार हुआ है ॥ ७५ ॥ अनन्तर आपने प्रणयवश अत्यन्त दुःखित हो उस देहको विभागकर कुछ विष्णुको कुछ वैष्णवोंको ॥ ७६ ॥ कुछ धर्मको कुछ धार्मिकोंको कुछ दुर्बलोंको कुछ तपस्वियोंको कुछ देवताओंको और कुछ पंडितोंको प्रदान किया था ॥ ७७ ॥ हे प्रभो ! मैं तुम्हारे गुणोंके विषयमें जितना जानती हूं वह सब कह दिया अब क्या सुननेकी अभिलाषा है ! इनके अतिरिक्त और भी आपके अनेक गुण हैं किंतु उनको मैं अधिक नहीं जानती ॥ ७८ ॥ इस समय लाल कमलके समान नेत्रोंवाली राधा कृष्णसे इस प्रकार कहकर उनकी बगलमें बैठी हुई लज्जासे नम्रमुखी गंगाकी यथोचित भर्त्सना करने लगी ॥७९॥

दे. भा. तब सिद्धयोगिनी गंगा योगबलसे समस्त रहस्य जान तत्काल सभासे अन्तर्धान हो अपनी जलमयी मूर्तिमें विलीन हुई ॥ ८० ॥ सिद्धयोगिनी राधाभी
॥५४॥ योगबलसे गंगाका रहस्यभेद जानकर चुल्लू द्वारा उसका सब जल पान करनेमें उद्यत हुई ॥ ८१ ॥ तब गङ्गाने योगबलसे यह सब बात जान श्रीकृष्णकी
शरणागत हो उनके चरणतलमें प्रवेश किया ॥ ८२ ॥ तब राधाने प्रथम गोलोक फिर गोलोकको त्यागकर वैकुण्ठधाम वैकुण्ठ त्यागकर ब्रह्मलोक इस प्रकार
योगबल द्वारा एकादि क्रमसे समस्तही देखा किन्तु कहीं भी गंगाका दर्शन न पाया ॥ ८३ ॥ गोलोक धामके सब स्थानजलहीन होकर शुष्कपंक हो गये
जलजन्तु सब जीवन शून्य होकर निपतित होने लगे ॥ ८४ ॥ तब ब्रह्मा, विष्णु शिव, अनन्त, धर्म, इन्द्र, निशाकर, दिवाकर, मनु, मुनि, सिद्ध और तपस्वीगण

गंगा रहस्यं विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी ॥ तिरोभूय सभामध्ये स्वजलं प्रविवेश सा ॥ ८० ॥ राधा योगेन विज्ञाय सर्वत्रावस्थितां च
ताम् ॥ पानं कर्तुं सामारेभे गंडूषात्सिद्धयोगिनी ॥ ८१ ॥ गंगा रहस्य विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी ॥ श्रीकृष्णचरणांभोजे विवेश
शरणं ययौ ॥ ८२ ॥ गोलोके स च वैकुण्ठे ब्रह्मलोकादिके तथा ॥ ददर्श राधा सर्वत्र नैव गंगा ददर्श सा ॥ ८३ ॥ सर्वत्र जलशून्यं
च शुष्कपंकं च गोलकम् ॥ जलजंतुसमूहैश्च मृतदेहैः समन्वितम् ॥ ८४ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवानंतधर्मेन्द्रेंदुदिवाकराः ॥ मनवो
मुनयः सर्वे देवसिद्धतपस्विनः ॥ ८५ ॥ गोलोकं च समाजग्मुः शुष्ककंठोष्ठतालुकाः ॥ सर्वे प्रणेमुर्गोविंदं सर्वेशं प्रकृतेः परम् ॥८६॥
वरं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं वरकारणम् गोपिकागोपवृंदानां सर्वेषां प्रवरं प्रभुम् ॥ ८७ ॥ निरीहं च निराकारं निर्लिप्तं च निराश्रयम् ॥ निर्गुणं
च निरुत्साहं निर्विकारं निरंजनम् ॥ ८८ ॥ स्वेच्छामयं च साकारं भक्तानुग्रहकारकम् ॥ सत्त्व स्वरूपे सत्यंशं साक्षिरूपं सना
तनम् ॥ ८९ ॥ परं परेशं परमं परमात्मानमीश्वरम् ॥ प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥ ९० ॥

॥ ८५ ॥ प्यासमे शुष्ककण्ठ और शुष्कतालु हो गोलोक धाममें आय जो सर्वेश्वर प्रकृतिके अतीत पदार्थ वरस्वरूप वरेण्य वरद वरिष्ठ और वर कारण हैं, जो
भा. टी. न गोपिका और गोपकुलमें सबसे प्रधान प्रभु हैं ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ जो निराकार निरीह निर्लिप्त निराश्रय निर्गुण निरुत्साह निर्विकार और निरंजन हैं ॥ ८८ ॥
अ० १३ जो इच्छामय भक्तोंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करनेके लिये आकार धारण करते हैं जो सत्यस्वरूप सत्येश साक्षी रूपी और सनातन पुरुष हैं ॥ ८९ जो परम
परमेश परमपरमात्मा और परमेश्वर हैं, उनको भक्ति भावसे मस्तक झुकाय प्रणाम करके सब स्तव करनेमें प्रवृत हुए ॥ ९० ॥

सबही भक्तिभावसे गद्गद सबहीके नत्रोंसे प्रेमाश्रुधार भरे और सबकाही कलेवर रोमाञ्चित हुआ ऐसे परात्पर भगवन्की स्तुति करने लगे ॥ ९१ ॥ जो ज्योतिर्मय परब्रह्म जो समस्त कारणोंके भी कारण जो अमूल्य रत्ननिर्मित सिंहासनपर विराजमान ॥ ९२ ॥ गोपालगण जिनका श्वेतचामरसे बीजन करते थे, जो परमानंदपूर्वक हास्यवदनसे गोपिकाओंका नृत्य गीत दर्शन और श्रवण करते थे ॥ ९३ ॥ जो प्राणोंसे भी प्रियतमा राधाके वक्षस्थलमें स्थित होकर उसका दिया हुआ सुगंधित ताम्बूल भक्षण करते थे ॥ ९४ ॥ मुनि मनुष्य और तपस्वी इत्यादि सबनेही उन पूर्णतम विभु रामेश्वर श्रीकृष्णको देखतेही प्रणाम किया ॥ ९५ ॥ एक साथही सबके मनमें हर्ष और आश्चर्य उत्पन्न हुआ तब उन्होंने परस्परके सुखकी अपेक्षा करके अन्तमें ॥ ९६ ॥ अपने मनका भाव

सगद्गदाः साश्रुनेत्राः पुलकांकितविग्रहाः ॥ सर्वे संस्तूय सर्वेशंभगवंतं परात्परम् ॥ ९१ ॥ ज्योतिर्मयं परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥ अमूल्यरत्ननिर्माण चित्र सिंहासनस्थितम् ॥ ९२ ॥ सेव्यमानं च गोपालैः श्वेतचामरवायुना ॥ गोपालिकानृत्यगीतं पश्यंतं सस्मितं मुदा ॥ ९३ ॥ प्राणाधिकप्रियतमाराधावक्षःस्थलस्थितम् ॥ तया प्रदत्तं तांबूलं भुक्तवंतं सुवासितम् ॥ ९४ ॥ परिपूर्णतमं रासे ददृशुश्च सुरेश्वरम् ॥ मुनयो मानवाः सिद्धास्तपसा च तपस्विनः ॥ ९५ ॥ प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुः परमविस्मयम् ॥ परस्परं समालोक्य प्रोचुस्ते च चतुर्मुखम् ॥ ९६ ॥ निवेदितं जगन्नाथं स्वाभि प्रायमभीप्सितम् ॥ ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुं कृत्वा स्वदक्षिणे ॥ ९७ ॥ वामतो वामदेवं च जगाम कृष्णसंनिधिम् ॥ परमानंद युक्तं च परमानंदरूपिणीम् ॥ ९८ ॥ सर्वं कृष्णमयं धाता ददर्श रासमंडले ॥ सर्वं समानवेषं च समानासनसंस्थितम् ॥ ९९ ॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं वनमाला विभूषितम् ॥ मयूरपिच्छचूडं च कौस्तुभेन विराजितम् ॥ १०० ॥ अतीवकमनीयं च सुन्दरं शांतविग्रहम् ॥ गुणभूषणरूपेण तेजसा वयसा त्विषा ॥ १ ॥

प्रकाश करनेके लिये ब्रह्माजीको नियुक्त किया तब चतुरानन ब्रह्मा विष्णुको दक्षिण ॥ ९७ ॥ और वामदेवको वामभागमें लेकर क्रमानुसार श्रीकृष्णके आगे गये और जाकर रासमंडलके जिस ओर दृष्टि डाली उसी ओर देखा कि परमानन्दरूपी परमानन्दयुक्त ॥ ९८ ॥ श्रीकृष्ण विराजमान हैं सबही कृष्णमय सबकाही आसन एकाकार सबकाही एक वेष ॥ ९९ ॥ सभी द्विभुज और मुरलीधारी हैं सबकेही गलेमें वनमाला सबकेही चूडेमें मोरपंख और सबकेही वक्षःस्थलमें कौस्तुभमणि है ॥ १०० ॥ उनकी मूर्ति अत्यन्त मनोहर अति सुंदर और अतीव शांत है क्या रूप ? क्या गुण ? क्या भूषण ? क्या प्रभा क्या अवस्था ? क्या कांति ? किसी विषयमेंभी किसीके संग कुछ भिन्न नहीं है ॥ १०१ ॥

कोई अपूर्ण नहीं और किसीका ऐश्वर्य्य न्यूनाधिक नहीं है उनमें कौन प्रभु और कौन सेवक है यह देखकर कहना कठिन है ॥ १०२ ॥ कभी तेजोमूर्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं कभी दिव्य स्पष्ट मूर्ति कभी निराकार कभी साकार कभी द्विविध ॥ १०३ ॥ कभी राधा नहीं केवल कृष्ण विराजमान हैं और कभी प्रति आसन परही राधाकृष्ण युगलरूपसे विराजमान हैं ॥ १०४ ॥ कभी कभी राधा कृष्णरूप धारण करती हैं सुतरां ब्रह्माजी उनको स्त्रीरूपी वा पुरुषरूपी कुछभी स्थिर न कर सके ॥ १०५ ॥ अन्तमें ध्यानद्वारा स्वीय हृदयपद्ममें स्थिर कृष्णकी चिन्ता करके भक्ति भावसे उनकी स्तुति कर उनसे अपराध क्षमा करनेकी प्रार्थना की ॥ १०६ ॥ तब श्रीकृष्णके प्रसन्न होने पर ब्रह्माजीने फिर नेत्र खोलकर देखा कि, श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें राधा विराज

परिपूर्णतमं सर्वं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥ किं सेव्यं सेवकं किं वा दृष्ट्वा निर्वक्तु मक्षमः ॥ २ ॥ क्षतं तेजःस्वरूपं च रूपं तत्र स्थितं क्षणम् ॥ निराकारं च साकारं ददर्श द्विविधं क्षणम् ॥ ३ ॥ एकमेव क्षणं कृष्णं राधया रहितं परम् ॥ प्रत्येकासनसंस्थं च तया सार्धं च तत्क्षणम् ॥ ४ ॥ राधारूपधरं कृष्णं कृष्णरूपं कलत्रकम् ॥ किं स्त्रीरूपं च पुरुषं विधाता ध्यातुमक्षमः ॥ ५ ॥ हृत्पद्मस्थं च श्रीकृष्णं ध्यात्वा ध्यानेन चक्षुषा ॥ चकार स्तवनं भक्त्या परिहारमनेकधा ॥ ६ ॥ ततः स्वचक्षुरुन्मील्य पुनश्च तदनुज्ञया ॥ ददर्श कृष्णमेकं च राधावक्षः स्थलस्थितम् ॥ ७ ॥ स्वपार्षदैः परिवृतं गोपीमंडल मंडितम् ॥ पुनः प्रणेमुस्तं दृष्ट्वा तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥ ८ ॥ तदभिप्रायमाज्ञाय तानुवाच रमेश्वरः ॥ सर्वात्मा स च सर्वज्ञः सर्वेशः सर्वभावनः ॥१०९॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आगच्छ कुशले ब्रह्मन्ना गच्छ कमलापते ॥ इहागच्छ महादेव शश्वत्कुशलमस्तु वः ॥ ११० ॥ आगता हि महाभागा गंगानयनकारणात् ॥ गगा च चरणांभोजे भयेन शरणं गता ॥ ११ ॥ राधे मां मातुमिच्छंती दृष्ट्वा मत्सन्निधानतः ॥ दास्यामीमां च भवतां यूयं कुरुत निर्भयाम् ॥ १२ ॥

मान हैं ॥ १०७ ॥ चारों ओर पार्षद और चारों ओर गोपीमण्डल है यह देखकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर उनको प्रणाम करके स्तव करने लगे ॥१०८॥ इस ओर उन सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी सर्वेश्वर सर्व कारण रमापति श्रीकृष्णने उनके हृदयका भाव समझ प्रत्येकको पृथक् पृथक् संबोधन देकर कहा ॥ १०९ ॥ श्रीभगवान् बोले हे ब्रह्मन् ! तुम कुशलसे तो हो ! कमलापते ! आओ महादेव ! यहां आओ, तुम्हारा मंगल हो ॥ ११० ॥ तुम गंगाके निमित्त मेरे समीप आये हो, गंगाने राधाके भयसे मेरे चरणोंमें शरण ली है ॥ १११ ॥ राधा गंगाको मेरे निकट बैठा देखकर इसको पान करनेमें उद्यत हुई थी जो हो मैं अब इसको तुम्हारे हाथमें समर्पण करता हूं, किन्तु तुम राधाके निकट प्रार्थना करके जिससे इसको अभयदान कर सको उसी विषयकी

चेष्टा करो ॥ ११२ ॥ तब कमलयोनि ब्रह्मा श्रीकृष्णका वचन सुनकर कुछेक हँसे और फिर सबकी आराध्या कृष्णपूजिता राधाकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ११३ ॥ ऋगादि चारोंवेदके विधाता चतुरानन, धाताने भक्तियुक्त हो कन्धे झुकाय चारोंमुखसे राधाका स्तव करनेके पीछे उनसे कहा ॥ ११४ ॥ हे राधे ! गंगा तुम्हारे और इन प्रभुके अंगसे उत्पन्न हुई है पूर्वकाल के समय तुम दोनों रासमंडलमें शंकरका संगीत सुनकर आर्द्र हो गये थे तुम्हारी वह आर्द्रताही द्रवमयी गंगा है ॥ ११५ ॥ अतएव यह जब तुम्हारे और श्रीकृष्णके अंगसे उत्पन्न है तब वह तुम्हारी कन्याके समान आदर करनेकी सामग्री है विशेषकर यह तुम्हारे मंत्रमें दीक्षित तुम्हारीही पूजा करती है ॥ ११६ ॥ चतुर्भुज वैकुंठनाथ उसके पति होंगे और जब अंशसे भूलोकमें अवतीर्ण होंगी

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा सस्मितः कमलोद्भवः ॥ तुष्टाव राधामाराध्यां श्रीकृष्णपरिपूजिताम् ॥ १३ ॥ वक्त्रैश्चतुर्भिः संस्तूय भक्तिन म्रात्मकंधरः ॥ धाता चतुर्णां वेदानामुवाच चतुराननः ॥ १४ ॥ चतुरानन उवाच ॥ गंगा त्वदंगसंभूता प्रभोश्च रासमण्डले ॥ युवयोर्द्र वरूपा सा मुग्धयोः शंकरस्वनात् ॥ १५ ॥ कृष्णांशा च त्वदंशा च त्वत्कन्यासदृशी प्रिया ॥ त्वन्मन्त्र ग्रहणं कृत्वा करोतु तव पूजनम् ॥ १६ ॥ भविष्यति पतिस्तस्या वैकुण्ठेशश्चतुर्भुजः ॥ भूस्था याः कलया तस्याः पतिर्लवणवारिधिः ॥ १७ ॥ गोलो कस्था च या गंगा सर्वत्रस्था तथांऽबिके ॥ तदंबिका त्वं देवेशी सर्वदा सा त्वदात्मजा ॥ १८ ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा स्वीचकार च सस्मिता ॥ बहिर्बभूव सा कृष्णपादांगुष्ठनखाग्रतः ॥ १९ ॥ तत्रैव सत्कृता शांता तस्थौ तेषां च मध्यतः ॥ उवास तोयादुत्थाय तदधिष्ठातृदेवता ॥ १२० ॥ तत्तोयं ब्रह्मणा किंचित्स्थापितं च कमंडलौ ॥ किंचिद्दधार शिरसिचन्द्रार्धकृत शेखरः ॥ २१ ॥

लवणोदधि उसके पति होंगे ॥ ११७ ॥ हे मातः ! जो गंगा गोलोक विहारिणी है वही सर्वत्र विहारिणी है हे देवेशि ! तुम उनकी माता हो वह सभी तब समयमें तुम्हारी कन्या[१] है ॥ ११८ ॥ हे वत्स ! जब राधाने विधाताके वचन सुनकर कुछेक हास्यपूर्वक गंगाकी रक्षामें सम्मति दी तब वह श्रीकृष्णचरणके अंगुष्ठाग्रभागसे बाहर निकलीं ॥ ११९ ॥ अनंतर द्रवमयी गंगा अपनी मूर्ति धारणकर जलसे समुत्थित हो महा आदरसे उनके समीप वास करने लगीं ॥ १२० ॥ भगवान् ब्रह्माने वह गंगाका जल कुछ अपने कमंडलुमें और कुछ भगवान् चन्द्रशेखरके मस्तकमें धारण किया ॥ १२१ ॥

१ यहां कन्याशब्द अलौकिक अर्थवाली कन्यामें है मनुष्योंके समान योनिप्रगटताका नहीं इससे मानुषी नियमका व्यवहार नहीं है यह दिव्य आविर्भाववाली देवी है इनके अनेक अंश आविर्भाव तिरोभाव अनेकरूपमें होते हैं ।

तब कमलयोनिने गंगाको राधामंत्रमें दीक्षित किया उसको सामवेदोक्त राधास्तोत्र राँधा कवच राधा ध्यान राधाकी पूजा विधि ॥ १२२ ॥ और राधाके पुरश्चरण प्रकरणकी शिक्षा प्रदान की उसीके अनुसार गंगा राधाकी पूजा करके उनके संग वैकुंठधाममें गई ॥ १२३ ॥ हे मुनिवर ! लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और विश्वको पवित्र करनेवाली तुलसी यह चारों नारायणकी पत्नी हैं ॥ १२४ ॥ अनंतर श्रीकृष्ण कुछेक हँसकर विधाताके निकट दूसरेको कठिनतासे जानने योग्य कालका वृत्तान्त विस्तार सहित कहने लगे ॥ १२५ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे महेश्वर ! हे विष्णो ! सम्प्रति तुम्हारे गंगाका ग्रहण और काल वृत्तान्त कहता हूं सुनो ॥ १२६ ॥ तुम तीनजने और अन्यान्य देवता मुनि मनु सिद्ध और अपरापर जो सब महात्मा इस स्थानमें उपस्थित हैं ॥ १२७ ॥ वह सभी जीवित

गंगायै राधिकामन्त्रं प्रददौ कमलोद्भवः ॥ तत्स्तोत्रं कवचं पूजां विधानं ध्यानमेव च ॥ २२ ॥ सर्वं तत्सामवेदोक्तं पुरश्चर्याक्रमं तथा ॥ गंगा तामेव संपूज्य वैकुण्ठं प्रययौ सह ॥ २३ ॥ लक्ष्मी सरस्वती गंगा तुलसी विश्वपावनी ॥ एतानारायणस्यैव चतस्रो योषितो मुने ॥ २४ ॥ अथ तं सस्मितः कृष्णो ब्रह्माणं समुवाच सः ॥ सर्वकालस्य वृत्तांतं दुर्बोधमविपश्चितम् ॥ १२५ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ गृहाण गंगा हे ब्रह्मन्हे विष्णो हे महेश्वर ॥ शृणु कालस्य वृत्तांतं मत्तो ब्रह्मन्निशामय । २६ ॥ यूयं च येऽन्ये देवाश्च मुनयो मनवस्तथा ॥ सिद्धा यशस्विनश्चैव ये येऽत्रैव समागताः ॥ २७ ॥ एते जीवंति गोलोके कालचक्रविवर्जिते ॥ जलप्लुते सर्वविश्वं जातं कल्पक्षयोऽधुना ॥ २८ ॥ ब्रह्माद्या येऽन्यविश्वस्थास्ते विलीनाऽधुना मयि ॥ वैकुंठं च विना सर्वं जलमग्नं च पद्मज ॥ २९ ॥ गत्वा सृष्टिं कुरु पुनर्ब्रह्मलोकादिकं भवम् ॥ स्वं ब्रह्मांडं विरचय पश्चाद्गंगा प्रयास्यति ॥ १३० ॥ एवमन्येषु विश्वेषु सृष्टौ ब्रह्मादिकः पुनः ॥ करोम्यहं पुनः सृष्टिं गच्छ शीघ्रं सुरैः सह ॥ ३१ ॥

हैं क्योंकि इस गोलोकधाममें कालचक्रका प्रभाव नहीं है अब कल्पान्तकाल उपस्थित है इस समय सब विश्व जलमें मग्न हैं ॥ १२८ ॥ अतएव गोलोकधाम और वैकुण्ठधामके अतिरिक्त अन्यान्य समस्त विश्वमें जो अपरापर ब्रह्मा विद्यमान थे वह सबही इस समय मेरे शरीरमें विलीन हुए हैं हे कमलयोने ! इस समय वैकुण्ठधाम और लोकधामके अतिरिक्त अन्य समस्तही जलमग्न हैं ॥ १२९ ॥ अब तुम जाकर फिर ब्रह्मलोकादिक्रमसे अपने ब्रह्मांडकी रचना करो. तब गङ्गा उस विरचित ब्रह्मांडमें जायगी ॥ १३० ॥ सभी अन्यान्य विश्व और उन विश्वके ब्रह्मांडोंकी सृष्टि करता हूं किंतु तुम शीघ्र देवताओंके संग अपना कार्य साधन करनेके निमित्त जाओ ॥ १३१ ॥

तुमको बहुत विलम्ब होगया है जितने ब्रह्मादिकोंका पतन हुआ है फिर सबकी उत्पत्ति होगी ॥ १३२ ॥ हे मुनिवर ! राधापति श्रीकृष्णने यह कहकर अपने अन्तःपुरमें प्रवेश किया इधर देवतालोगभी तत्काल वहांसे लौटकर फिर यत्नपूर्वक सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हुए ॥ १३३ ॥ गङ्गाभी फिर पहलेके समान गोलोकधाम, वैकुंठधाम, शिवलोक, ब्रह्मलोक और अन्यान्य जिस जिस स्थानमें पहिले वास किया था ॥ १३४ ॥ परमात्मा श्रीकृष्णकी आज्ञानुसार उसी स्थानमें वास करने लगी विष्णुके पादपद्मसे निकलनेके कारण उनका नाम विष्णुपदी भी है ॥ १३५ ॥ हे द्विजवर ! यह मैंने अतिसुख कर मोक्षप्रद और सारभूत गङ्गाका उपाख्यान वर्णन किया, अब और क्या सुननेकी वासना है सो प्रकाश करो ॥ १३६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां

गतो बहुतरः कालो युष्माकं च चतुर्मुखाः ॥ गताः कतिविधास्ते च भविष्यंति च वेधसः ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा राधिकानाथो जगामांतःपुरे मुने ॥ देवा गत्वा पुनःसृष्टिं चक्रुरेव प्रयत्नतः ॥ ३३ ॥ गोलोके च स्थिता गंगा वैकुण्ठे शिवलोकके ॥ ब्रह्मलोके स्थिताऽन्यत्र यत्र यत्र पुरःस्थिता ॥ ३४ ॥ तत्रैव सा गता गंगा चाज्ञया परमात्मनः ॥ निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदी स्मृता ॥ ३५ ॥ इत्येवं कथितं ब्रह्मन्गंगोपाख्यानमुत्तमम् ॥ सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१३६॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे गंगोपाख्यानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ नारद उवाच ॥ लक्ष्मी सरस्वती गंगा तुलसी विश्वपावनी ॥ एता नारायणस्यैव चतस्रश्च प्रिया इति ॥ १ ॥ गंगा जगाम वैकुंठमिदमेव श्रुतं मया ॥ कथं सा तस्य पत्नी च बभूवेति च न श्रुतम् ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ गंगा जगाम वैकुण्ठ तत्पश्चाज्जगतां विधिः ॥ गत्वोवाच तया सार्धं प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ राधा कृष्णांगसंभूता या देवी द्रवरूपिणी ॥ नवयौवनसंपन्ना सुशीला सुन्दरी वरा ॥ ४ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ नारदजी बोले हे प्रभो ! गङ्गा, लक्ष्मी, सरस्वती और विश्वपावनी तुलसी, यह चारों ही नारायणकी प्रियतमा हैं ॥१॥ उनमें गङ्गाने गोलोकधामसे वैकुंठमें गमन किया यह सुना, किंतु वह किस प्रकार नारायणकी पत्नी हुई ? यह नहीं सुना अतएव अब यही वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ नारायणने कहा जगत् स्रष्टा विधाता गङ्गाको आगे करके वैकुंठधाममें उपस्थित हुए और वहां जगदीश नारायणको प्रणाम करके कहा ॥ ३ ॥ हे प्रभो जो राधा कृष्णके अंगसे उत्पन्न नहीं है जो द्रवमयी नवयौवनसम्पन्न सुशील अलोक सामान्यरूपवती ॥ ४ ॥

शुद्ध सत्वस्वरूपा तथा क्रोध और अहंकार रहित हैं उन गंगाने कृष्णाङ्गसे उत्पन्न होनेके कारण उनके अतिरिक्त और किसीको भी पतित्वमें वरण करनेकी अभिलाषा नहीं करी ॥ ५ ॥ किंतु राधा अत्यंत अभिमानवती और अति उग्रस्वभाव है यही क्या वह गंगाको पान करनेमें उद्यत हुई थी ॥ ६ ॥ उसने राधाके भयसे तत्काल बुद्धिपूर्वक श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें प्रवेश किया सुतरां सम्पूर्ण गोलोक जलरहित होगया है ॥ ७ ॥ यह देखकर मैं इसका विशेष वृत्तान्त जाननेके लिये गोलोकपति श्रीकृष्णके निकट गया तब सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णने मेरे मनका भाव समझा ॥ ८ ॥ तत्काल अपने चरणनखके अग्रभागसे गंगाको बाहर निकाला और फिर राधामन्त्रमें दीक्षित करके मेरे हाथमें समर्पण किया ॥ ९ ॥ मैं भी राधापति श्रीकृष्णको प्रणाम करके गंगाको संग

शुद्धसत्त्वस्वरूपा च क्रोधा हंकारवार्जिता ॥ तदंगसंभवा नाऽन्य वृणोतीयं च तं विना ॥ ५ ॥ तत्रातिमानिनी राधा सा च तेजस्विनी वरा ॥ समुद्युक्ता पातुमिमां भीतेयं बुद्धिपूर्वकम् ॥ ६ ॥ विवेश चरणांभोजे कृष्णस्य परमात्मनः ॥ सर्वत्र गोलकं शुष्कं दृष्ट्वाऽहमगमं तदा ॥ ७ ॥ गोलोके यत्र कृष्णश्च सर्ववृत्तांतप्राप्तये ॥ सर्वांतरात्मा सर्वेषां ज्ञात्वाऽभिप्रायमेव च ॥ ८ ॥ बहिश्चकार गंगां च पादांगुष्ठनखाग्रतः ॥ दत्त्वाऽस्यै राधिकामन्त्रं पूरयित्वा च गोलकम् ॥ ९ ॥ प्रणम्य तां च राधेशं गृहीत्वाऽत्रागमं प्रभो ॥ गान्धर्वेण विवाहेन गृहाणेमां सुरेश्वरीम् ॥ १० ॥ सुरेश्वरेषु रसिके रसिकेयं समागता ॥ त्वं रत्नं पुंसु देवेश स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियं सती ॥ ११ ॥ विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् ॥ उपस्थितां स्वयं कन्यां न गृह्णातीह यः पुमान् ॥ १२ ॥ ते विहाय महालक्ष्मी रुष्टा याति न संशयः ॥ यो भवेत्पंडितः सोऽपि प्रकृतिं नावमन्यते ॥ १३ ॥ सर्वे प्राकृतिकाः पुंसः कामिन्य प्रकृतेः कलाः ॥ त्वमेव भगवान्नाथो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥ १४ ॥

ले आपके निकट आया हूं,अब तुम गांधर्व विधानसे इस सुरेश्वरी गंगाका पाणिग्रहण करो ॥ १० ॥ सुरसमाजमें तुम जैसे सुरसिक हो, यह भी वैसीही है पुरुष सम्प्रदायमें तुम जिस प्रकार रत्न हो यह भी उसी प्रकार रमणियोंमें रत्नस्वरूप है विशेष कर रसिकोंके संग रसिकोंका समागम अतीव सुखजनक है ॥ ११ ॥ तुम स्वयं आई हुई इस कन्याको ग्रहण करो, जो उपस्थित कन्याको ग्रहण नहीं करते हैं ॥ १२ ॥ महालक्ष्मी रुष्ट हो उनको छोड़कर चली जाती हैं, इसमें सन्देह नहीं है बुद्धिमान् पुरुष कभी प्रकृतिका अपमान नहीं करते ॥ १३ ॥ पुरुष मात्रही सब प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं और

रमणी मात्रही प्रकृतिका अंश हैं, सुतरां प्रकृति और पुरुष दोनों अभिन्न हैं अतएव परस्पर परस्परका अपमान करना कभी उचित नहीं है, यदि कहो कि " गंगा कृष्णासक्त हैं किस प्रकार मैं उसका पाणिग्रहण करूं ? " तो इस विषयमें यह कहना है कि, श्रीकृष्ण जिस प्रकार गुणातीत और प्रकृतिके अतीत पदार्थ हैं तुम भी उसी प्रकार हो ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णका अर्द्धांग द्विभुज और अपर अर्द्धांग चतुर्भुज है अतएव श्रीकृष्णमें और तुममें कुछ भी भेद नहीं है राधिका श्रीकृष्णके वामांगसे उत्पन्न हुई है ॥ १५ ॥ सुतरां श्रीकृष्ण स्वयं दक्षिणांश और पद्मा उनका वामांश है जिस प्रकार राधा और कमला दोनोंमें कुछ भी भिन्नता नहीं है इसी प्रकार श्रीकृष्णमें और तुममें कुछ भेद नहीं है सुतरां तुम्हारे देहसे उत्पन्न होनेके कारण यह तुमको पतित्वमें वरण करनेकी अभिलाषा करती हैं ॥ १६ ॥ जिस प्रकार प्रकृति और पुरुष अभेदात्मक है इसी प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों एकात्मा हैं ब्रह्मा नारायणसे

आर्धांगं द्विभुजः कृष्णो योर्धांगेन चतुर्भुजः ॥ कृष्णवामांगसंभूता बभूव राधिका पुरा ॥ १५ ॥ दक्षिणांशः स्वयं सा च वामांशः कमला तथा ॥ तेनेयं त्वां वृणोत्येव यतस्त्वद्देहसंभवा ॥ १६ ॥ एकांग चैव स्त्रीपुंसोर्यथा प्रकृतिपूरुषौ ॥ इत्येवमुक्त्वा धाता तां तंसमर्प्य जगाम सः ॥ १७ ॥ गांधर्वेण विवाहेन तां जग्राह हरिः स्वयम् ॥ नारायणः करं धृत्वा पुष्पचंदनचर्चितम् ॥ १८ ॥ रेमेरमापतिस्तत्र गंग या सहितो मुदा ॥ गंगा पृथ्वीं गता या सा स्वस्थानं पुनरागता ॥ १९ ॥ निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदीति च ॥ मूर्च्छां संप्रापसा देवी नवसंगमलीलया ॥ २० ॥ रसिका सुखसंभोगाद्रसिकेश्वरसंयुता ॥ तां दृष्ट्वा दुःखिता वाणी पद्मया वर्जिताऽपि च ॥ २१ ॥ नित्यमीर्ष्यति तां वाणी न च गंगा सरस्वतीम् ॥ गंगा शशाप कोपेन भारते च हरिप्रिया ॥ २२ ॥

इस प्रकार कह गंगाको उनके हाथमें समर्पण कर वहांसे चले गये ॥ १७ ॥ इधर नारायणसे स्वयं गान्धर्व विधान द्वारा गंगाका पुष्पचंदन चर्चित पाणिग्रहण किया ॥ १८ ॥ रमापति पद्माके समान गंगाके संग वैकुंठधाममें सुखसे विहार करने लगे गंगा सरस्वतीके शापसे पृथ्वीमें अवतीर्ण होकर फिर वैकुंठ धाममें चलीगई थीं ॥ १९ ॥ वह विष्णुके पाद पद्मसे उत्पन्न हुई इस कारण विष्णुपदीके नामसे विख्यात हुई हैं देवी गंगा नारायणके संग नवसमागम के कारण सुखमें एकांत मूर्च्छित हुई थीं, यही क्या उसके शरीरमें स्पन्दमात्र नहीं रहा ॥ २० ॥ इस प्रकार रसिका गंगा रसिक चूडामणि नारायणके सहित मिलित होकर परमसुखसे काल व्यतीत करने लगी लक्ष्मीके निवारण करनेपर भी गंगाके पतिसे सरस्वतीकी ईर्षा दूर न हुई ॥२१॥ वह नित्य गंगाके प्रति विद्वेष प्रकाश करने लगी किंतु गंगा उनके प्रति कुछ भी ईर्षा प्रकाश नहीं करती फिर अंतमें एक दिन बहुत विरक्त करनेसे गंगाने कुपित होकर

सरस्वतीको भारतमें जन्मग्रहण करनेका शाप दिया ॥ २२ ॥ सुतरां लक्ष्मी' सरस्वती और गंगा यह तीनों रमापति नारायणकी पत्नी हैं, अन्तमें देवी तुलसी उनकी पत्नी . हुई थीं सुतरां सब समेत नारायणकी चार पत्नी हैं ॥ २३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेनवमस्कंधे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ नारदजी बोले हे भगवन्! पतिपरायण तुलसी किस प्रकार नारायणकी पत्नी हुई कौन स्थान उनका जन्मभूमि है वह पूर्वजन्ममें कौन थीं उन्होंने कौन कुल अलंकृत किया था ॥ १ ॥ और वह किसकी कन्या थीं जो नारायण प्रकृतिके अतीत ॥ २ ॥ निर्विकार, निरीह (इच्छा रहित) विश्वात्मा परब्रह्म और परमेश्वर हैं, जो सबके ईश्वर ॥ ३ ॥ सर्वज्ञ सर्व कारण सबके आधार पूजनीयसर्वव्यापी और सबके परिपालक हैं, तुलसीने किस

गंगया सह तस्यैव तिस्रो भार्या रमापतेः ॥ सार्धं तुलस्या पश्चाच्च चतस्रश्चाभवन्मुने ॥२३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ ॥१४॥ नारद उवाच ॥ नारायणप्रिया साध्वी कथं सा च बभूव ह ॥ तुलसी कुत्र संभूता का वा सा पूर्वजन्मनि ॥ १ ॥ कस्य वा सा कुले जातस्य कन्या कुले सती ॥ केन वा तपसा सा चप्र ाप्ता प्रकृसंतेः परम् ॥ २ ॥ निर्विकारं निरीहं च सर्वविश्वस्वरूपकम् नारायणं परं ब्रह्म परमेश्वरमीश्वरम् ॥ ३ ॥ सर्वा राध्यं च सर्वेशं सर्वज्ञं सर्वकारणम् ॥ सर्वाधारं सर्व रूपं सर्वेषां परिपालकम् ॥ ४ ॥ कथमेतादृशी देवी वृक्षत्वं समवाप ह कथं साप्यसुरग्रस्ता संबभूव तपस्विनी ॥ ५ ॥ सुस्निग्धं मे मनो लोलं प्रेर यन्मां मुहुर्मुहुः ॥ छेत्तुमर्हसि सन्देहं सर्वसंदेहभंजन ॥ ६ ॥ नारायण उवाच ॥ मनुश्च दक्षसावर्णिः पुण्यवान्वैष्णवः शुचिः ॥ यशस्वी कीर्तिमांश्चैव विष्णोरशसमुद्भवः ॥ ७ ॥ तत्पुत्रो ब्रह्मसावर्णिर्धर्मिष्ठो वैष्णवः शुचिः ॥ तत्पुत्रो धर्मसावर्णिर्वैष्णवश्च जितेंद्रियः ॥ ८ ॥

तपस्याके फलसे उन नारायणको पतिलाभ किया ॥ ४ ॥ तुलसी ऐसी प्रधान देवी अर्थात् नारायणकी प्रिया होनेपर भी किस प्रकार वृक्षत्वको प्राप्त हुई ? किस प्रकार स्वयं निरपराध होनेपर भी दुर्दान्त असुर अर्थात् रावणके द्वारा ग्रस्त हुई? ॥ ५ ॥ हे सन्देहभंजन! मेरा निर्मल चित्त चंचल हो उठा है श्रवणपिपासा मुझको वारंवार व्याकुल करती है अतएव आप मेरा संशय छेदन कीजिये ॥ ६ ॥ नारायणने कहा हे वत्स नारद! दक्षसावर्णिके मनु अत्यन्त पुण्यवान् विष्णुभक्त यशस्वी कीर्तिमान् और विष्णुके अंशसे उत्पन्न थे ॥ ७ ॥ दक्षसावर्णिके पुत्र ब्रह्मसावर्णि भी अतिशय धार्मिक विष्णुभक्त और शुद्धसत्व था ब्रह्मासावर्णिके पुत्र धर्मसावर्णि भी विष्णुपरायण और जितेन्द्रिय थे ॥ ८ ॥

धर्मसावर्णिके पुत्र रुद्रसावर्णि भी जितेन्द्रिय और परमभक्त थे विष्णु परायण देवसावर्णि रुद्रसावर्णिके पुत्र थे ॥ ९ ॥ देवसावर्णिके पुत्रका नाम इन्द्रसावर्णि था इन्द्रसावर्णिके समान विष्णुभक्त अतिविरले हैं उनके ही पुत्रका नाम वृषध्वज है वृषध्वज घोरतर शैव थे ॥ १० ॥ शंकरने स्वयं उनके भवनमें देवमानके तीन युग पर्यंतवास किया था यही नहीं बरन् भगवान् भूतनाथ पुत्रसे भी अधिक उनपर स्नेह रखते थे ॥ ११ ॥ वृक्षध्वज नारायण, लक्ष्मी वा सरस्वती किसीको भी नहीं मानते, शंकरके अतिरिक्त और सब देवताओंकी पूजा एकवार ही छोड़ दी थी ॥ १२ ॥ उन्होंने उन्मत्त हो भादोंके महिनेंमें महालक्ष्मीकी पूजा और माघमासमें जो श्रीपंचमीकी पूजा ॥ १३ ॥ जोसर्व देव सम्मत थीं. उन सरस्वतीकी पूजा एकवार ही छोड दी थी तब सूर्यने यज्ञरहित विष्णुविद्वेशी निन्दक

तत्पुत्रो रुद्रसावर्णिर्भक्तिमान्विजितेंद्रियः ॥ तत्पुत्रो देवसावर्णिर्विष्णुव्रतपरायणः ॥ ९ ॥ तत्पुत्र इंद्रसावर्णिर्महाविष्णुपरायणः ॥ वृक्षध्वजश्च तत्पुत्रो वृक्षध्वजपरायणः ॥ १० ॥ यस्याश्रमे स्वयं शंभुरासीदेव युगत्रयम् ॥ पुत्रादपि परः स्नेहो नृपे तस्मिञ्छिवस्य च ॥ ११ ॥ न च नारायणं मेने न लक्ष्मीं न सरस्वतीम् ॥ पूजां च सर्वदेवानां दूरीभूतां चकार सः ॥१२॥ भाद्रे मासि महालक्ष्मी पूजां मत्तो बभज ह ॥ तथा माघीयपंचम्यां विस्तृतां सर्वदैवतैः ॥ १३ ॥ पापः सरस्वतीपूजां दूरीभूतां चकार सः ॥ यज्ञं च विष्णुपूजा च निंदंतं तं दिवाकरः ॥ १४ ॥ चुकोप देवो भूपेंद्रं शशाप शिवकारणात् ॥ भ्रष्टश्रीस्त्वं च भवेति तं शशाप दिवाकरः ॥१५॥ शूलं गृहीत्वा तं सूर्यमधावच्छंकर स्वयम् ॥ पित्रा सार्द्धं दिनेशश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ १६ ॥ शिवस्त्रिशूलहस्तश्च ब्रह्मलोकं ययौ क्रुधा ॥ ब्रह्मा सूर्यं पुरस्कृत्य वैकुण्ठं च ययौ भिया ॥ १७ ॥ ब्रह्मकश्यपमार्तंडाः संत्रस्ता शुष्कतालुकाः ॥ नारायणं च सर्वेशं ते ययुः शरणं भिया ॥ १८ ॥ मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते गत्वा तुष्टुवुश्च पुनः पुनः ॥ सर्वं निवेदनं चक्रुर्भयस्य कारणं हरौ ॥ १९ ॥

॥१४॥ सम्राट् वृषध्वजके प्रति कुपित होकर यह शाप दिया कि "हे राजन् ! जिस प्रकार तुम शुद्धशिवभक्त हो और किसीको नहीं मानते, ऐसे मैं कहता हूं कि अचिरात् तुम भ्रष्ट श्री होगे ॥ १५ ॥ देव शंकर शापकी बात सुनते कुपित हो स्वयं शूलास्त्र ग्रहण करके सूर्यके प्रति दौडे, तब सूर्यभयसे पिता कश्यपको संग लेकर ब्रह्माकी शरणागत हुए ॥१६॥ भगवान् शंकर क्रोधमें पूर्ण हाथमें त्रिशूल लिये ब्रह्मलोकमें गये ब्रह्माजी महादेवके भयसे सूर्यको संग लेकर वैकुण्ठधाममें गये ॥ १७ ॥ भयसे ब्रह्मा कश्यप और सूर्यके कण्ठ तालु सूख गये वह वैकुंठधाममें उपस्थित शरणागत हो भयसे ॥ १८ ॥ मस्तक झुकाय वारंवार स्तव करने लगे और अन्तमें उनसे भयका यथार्थ कारण कहा ॥ १९ ॥

नारायणने सुनते ही दयाभावसे उनको अभय देकर कहा " तुम स्थिर होओ जो मेरे विद्यमान रहते तुम्हारे भयका कोई कारण दिखाई नहीं देता ॥ २० ॥ जिस किसी स्थानमें पुरुष अवस्थान क्यों न करे यदि भयार्त्त हो मेरा स्मरण करे तो मैं तत्काल चक्रधारणपूर्वक वहां जाकर उसकी रक्षा करता हूं ॥ २१ ॥ हे देवगण ! मैं जगत्की सृष्टि स्थिति और प्रलय करता हूं मैं विष्णुरूपसे सब जगत्का पालन ब्रह्मरूपसे सब जगत्की सृष्टि और शिवरूपसे सब जगत्का संहार करता हूं ॥ २२ ॥ मैं ही शिव मैं ही तुम और मैं ही त्रिगुणात्मक सूर्य हूं मैं ही अनेक प्रकारके रूप धारण करके जगत्को पालन करता हूं ॥ २३ ॥ तुम अपने स्थानको जाओ तुमको भय क्या है ? मैं कहता हूं आजसे तुम्हारा महादेव जनित भय दूर हुआ ॥ २४ ॥ सर्वेश्वर भगवान् शंकर

नारायणश्च कृपया तेभ्यश्च ह्यभयं ददौ ॥ स्थिरा भवत हे भीता भयं किं च मयि स्थिते ॥ २० ॥ स्मरंति ये यत्र तत्र मां विपत्तौ भयान्विताः ॥ तांस्तत्र गत्वा रक्षामि चक्रहस्तस्त्वरान्वितः ॥ २१ ॥ पाताऽहं जगतां देवाः कर्ता च सततं सदा ॥ स्रष्टा च ब्रह्मरूपेण संहर्ता शिवरूपतः ॥ २२ ॥ शिवोऽहं त्वमऽहं चापि सूर्योऽहं त्रिगुणात्मकः ॥ विधाय नानारूपं च करोमि सृष्टिपालनम् ॥ २३ ॥ यूयं गच्छत भद्रं वो भविष्यति भयं कुतः ॥ अद्यप्रभृति मद्वरेण भयं वो नास्ति शंकरात् ॥ २४ ॥ सर्वेशो वै भगवाञ्छंकरश्च सतांपतिः ॥ भक्ताधीनश्च भक्तानां भक्तात्मा भक्तवत्सलः ॥२५॥ सुदर्शनः शिवश्चैव मम प्राणाधिकः प्रियः ॥ ब्रह्माण्डेषु न तेजस्वी हे ब्रह्मन्ननयोः परः ॥ २६ ॥ शक्तः स्रष्टु महादेवः सूर्यकोटिं च लीलया ॥ कोटिं च ब्रह्मणामेवं नासाध्यं शूलिनः प्रभोः ॥ २७ ॥ ब्रह्मज्ञानं नैव किंचिद्ध्यायते मां दिवानिशम् ॥ मन्मंत्रान्मद्गुणान्भक्त्या पंचवक्त्रेण गायति ॥ २८ ॥ अहमेवं चिंतयामि तत्कल्याणं दिवानिशम् ॥ यथा च मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥ २९ ॥

साधुओंकी गति हैं वह भक्ताधीन और भक्तवत्सल हैं ॥ २५ ॥ सूर्य और शिव दोनोंही मुझे प्राणोंसे भी प्रिय हैं हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माण्डमें शंकर और सूर्यके समान तेजस्वी और कोई नहीं है ॥२६॥ महादेवी लीला पूर्वकही करोड़ सूर्य और करोड ब्रह्माकी सृष्टि कर सकते हैं प्रभु शूलपाणिको कुछ भी असाध्य नहीं है ॥ २७ ॥ वह बाह्य (बाहरी) ज्ञानरहित होकर दिन रात मेरे ध्यानमें निमग्न रहते हैं वह तद्गत चित्त हो भक्ति पूर्वक पंचमुखसे केवल मेराही मंत्र जप और मेरे ही गुणोंका गान करते हैं ॥ २८ ॥ मैं भी दिन रात उनके कल्याणकी चिन्तामें रत रहता हूं मेरा जो जिस भावसे भजन करता है मैं भी उसके प्रति वैसाही अनुग्रह प्रकाश करता हूं ॥ २९ ॥

भगवान् महादेव शिवस्वरूप अर्थात् मंगलमय हैं, वह शिवके अर्थात् मोक्षके अधिष्ठात्री देवता हैं उनसे शिव अर्थात् मोक्षपद लाभ होता है इसी कारण पण्डितोंने उनको "शिव" नाम प्रदान किया है ॥ ३० ॥ हे वत्स नारद ! नारायण इस प्रकार कहते ही थे कि, इसी अवसरमें रक्तपद्मके समान लोहित नेत्र किये बैलपर चढे शूलधारी महादेवजी वहां आकर उपस्थित हुए ॥ ३१ ॥ और बैलसे उतर भक्तिभावसे कंधे झुकाय उन शान्त प्रकृति परात्पर लक्ष्मीकान्तको प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ लक्ष्मीकान्त इस समय रत्नमय गहनोंसे विभूषित होकर रत्नसिंहासनपर विराजमान थे उनके मस्तकमें किरीट कानमें दो कुण्डल देदीप्यमान. हाथमें चक्रास्त्र गलेमें वनमाला ॥ ३३ ॥ वर्ण नवीन नीले मेघके समान श्याममूर्ति अतीव मनोहर चतुर्भुज पार्षद चारों हाथोंसे श्वेत चामर

शिवस्वरूपो भगवाञ्छिवाधिष्ठातृदेवता ॥ शिवं भवति तस्माच्च शिवंतेन विदुर्बुधाः ॥ ३० ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र जगाम शंकरः स्थितः ॥ शूलहस्तो वृषारूढो रक्तपंकजलोचनः ॥ ३१ ॥ अवरुह्य वृषात्तूर्णं भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥ ननाम भक्त्या तं शांतं लक्ष्मीकांतं परात्परम् ॥ ३२ ॥ रत्नसिंहासनस्थं च रत्नालंकारभूषितम् ॥ किरीटिनं कुंडलिनं चक्रिणं वनमालिनम् ॥ ३३ ॥ नवीननीरदश्यामं सुंदरं च चतुर्भुजम् ॥ चतुर्भुजैः सेवितं च श्वेतचामरवायुना ॥ ३४ ॥ चंदनोक्षितसर्वांगं भूषितं पीतवाससम् ॥ लक्ष्मीप्रदत्ततांबूलं भुक्तवंतं च नारद ॥ ३५ ॥ विद्याधरीनृत्यगीतं पश्यंतं सस्मितं सदा ॥ ईश्वरं परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ ३६ ॥ तं ननाम महादेवो ब्रह्मणा नमितश्च सः ननाम सूर्यो भक्त्या च संत्रस्तश्चंद्रशेखरम् ॥ ३७ ॥ कश्यपश्च महाभक्त्या तुष्टाव च ननाम च ॥ शिवः संस्तूय सर्वेशं समुवास सुखासने ॥ ३८ ॥ सुखासने सुखासीनं विश्रांतं चंद्रशेखरम् श्वेतचामरवातेन सेवितं विष्णुपार्षदैः ॥ ३९ ॥

बीजन करते थे ॥ ३४ ॥ सर्वाङ्गमें चन्दन विलेपन और परिधान पीताम्बर था वह परमात्मा भक्तवत्सल भगवान् रत्नसिंहासन पर बैठे पद्माका दिया ताम्बूल चर्वण और हास्यवदनमें विद्याधरियोंका नृत्य गीत दर्शन और श्रवण करते थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ महादेवजीने उपस्थित होकर जैसेही नारायणको प्रणाम किया उसी समय उन ब्रह्माने भी भूतनाथको प्रणाम किया सूर्य भी तटस्थ होकर भक्तिभावसे उन चन्द्रशेखरके चरणोंमें अवनत हुए ॥ ३७ ॥ फिर कश्यपजीभी महाभक्ति युक्त हो उनको प्रणाम करके स्तव करने लगे इस ओर भगवान् शंकर भी नारायणकी स्तुति करके सिंहासनपर विराजमान हुए ॥ ३८ ॥ चन्द्रशेखरके आसन पर बैठनेसे नारायणके पार्षद श्वेत चामर लेकर उनकी बीजन करने लगे ॥ ३९ ॥

इसी समय विष्णुने अमृतधारावर्षी मधुर स्वर द्वारा शंकरसे कहा विष्णु बोले हे महेश्वर ! यहां आनेका कारण क्या है किस निमित्त कुपित हुए हो ! ॥ ४० ॥ महादेवीजी बोले हे विष्णो ! राजा वृषध्वज मेरा परमभक्त है, इस कारण मेरे प्राणोंसे भी प्रिय है भास्कर उसको शाप देना मेरे क्रोधके कारण हुए हैं ॥ ४१ ॥ पुत्रस्नेहके वश मैं अतिशय दुःखित होकर सूर्यका वध करनेमें उद्यत हुआ हूं सूर्य प्रथम तो ब्रह्माकी शरणागत हुए थे किन्तु अब विधाता को संग लेकर आपके निकट आये हैं ॥ ४२ ॥ जो विषण्ण (दुखी) होकर मनसे वा वचनसे तुम्हारी शरणागत होता है, वह एकवार ही निरापद और शंकारहित हो जाता है, बरन् जरा, मृत्यु वर्जित होता है ॥ ४३ ॥ और जो स्वशरीरसे तुम्हारी शरणागत होता है, उसको जैसा फल प्राप्त होता है, उसका

पीयूषतुल्यमधुरं वचनं सुमनोहरम् ॥ विष्णुरुवाच ॥ आगतोऽसि कथं चात्र वद कोपस्य कारणम् ॥ ४० ॥ महादेव उवाच ॥ वृषध्वजं च मद्भक्तं मम प्राणाधिकं प्रियम् ॥ सूर्यः शशाप इति मे प्रकोपस्य तु कारणम् ॥ ४१ ॥ पुत्रवत्सलशोकेन सूर्यं हंतुं समुद्यतः ॥ स ब्रह्माणं प्रपन्नश्च सूर्यश्च स विधिस्त्वयि ॥ ४२ ॥ त्वयि ये शरणापन्ना ध्यानेन वचसाऽपिवा ॥ निरापदो विशंकास्ते जरा मृत्युश्च तैर्जितः ॥ ४३ ॥ प्रत्यक्षं शरणापन्नास्तत्फलं किं वदामि भोः ॥ हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमंगलदा सदा ॥ ४४ ॥ किं मे भक्तस्य भविता तन्मे ब्रूहि जगत्प्रभो ॥ श्रीहतस्यास्य मूढस्य सूर्यशापेन हेतुना ॥ ४५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ कालोऽतियातो दैवेन युगानामेक विंशतिः ॥ वैकुण्ठे घटिकार्धेन शीघ्रं गच्छ त्वमालयम् ॥ ४६ ॥ वृषध्वजो मृतः कालाद्दुर्निवार्यात्सुदारुणात् ॥ रथध्वजश्च तत्पुत्रो मृतः सोऽपि श्रिया हतः ॥ ४७ ॥ तत्पुत्रौ च महाभागौ धर्मध्वजकुशध्वजौ ॥ हतश्रियौ सूर्यशापात्स्मृतौ परमवैष्णवौ ॥ ४८ ॥

क्या वर्णन करूं वास्तवमें हरिका स्मरण करनेसे कोई भय नहीं रहता बरन् सदा सब प्रकार मंगल लाभ होता है ॥ ४४ ॥ हे जगत् प्रभो ! आप अब बताइये सूर्यके शापसे हतश्री हुए मेरे मूढ भक्तका उपाय क्या होगा ॥ ४५ ॥ विष्णुने कहा हे शंकर ! दैवघटनाके कारण वैकुण्ठमें आनेसे इस आधीघड़ीमें मर्त्यलोकके मध्य इक्कीस युग बीत गये हैं अब तुम शीघ्र अपने स्थानको जाओ ॥ ४६ ॥ दुर्निवार दारुण कालके प्रभावसे वृषध्वजको लोकान्तर प्राप्त हुआ है, उसका पुत्र रथध्वज भी हतश्री होकर कराल काल कवलमें निपतित हुआ है ॥ ४७ ॥ रथध्वजके धर्मध्वज और कुशध्वज नामक दो महाभाग पुत्रोंने जन्म लिया है वह दोनोंही परम वैष्णव हैं, किन्तु सूर्यके शापसे हतश्री हुए हैं ॥ ४८ ॥

वह राज्यभ्रष्ट और श्रीभ्रष्ट होनेसे महालक्ष्मीकी आराधनामें अनुरक्त हुए हैं, महालक्ष्मी उन दोनोंकी भार्याओंके शरीरसे अंशमें अवतीर्ण होंगी ॥४९॥ तब फिर धर्मध्वज और कुशध्वज दोनों लक्ष्मीके अनुग्रहसे सम्प्रयुक्त होकर नृपश्रेष्ठ होंगे हे शम्भो! तुम्हारा सेवक वृषध्वज कालकवलमें पतित हुआ है अतएव तुम अपने स्थानको जाओ हे ब्रह्मन्! हे भास्कर! हे कश्यप! तुम भी अपने अपने स्थानको जाओ ॥ ५० ॥ हे वत्स नारद! भगवान् विष्णु इस प्रकार कहकर भार्याके सहित सभासे अन्तःपुरमें चले गये और देवताओंने भी परमानन्दसे अपने अपने स्थानको प्रस्थान किया ॥ ५१ ॥ और इस ओर पूर्णतम महादेवजी भी तपस्या करनेके लिये तत्काल वहां चले गये ॥ ५२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५॥ नारायणने कहा हे

राज्यभ्रष्टौ श्रियाभ्रष्टौ कमलातपसा रतौ ॥ तयोश्च भार्ययोर्लक्ष्मीः कलया च भविष्यति ॥ ४९ ॥ संप्रयुक्तौ तदा तौ च नृपश्रेष्ठौ भविष्यतः ॥ मृतस्ते सेवकःशंभो गच्छ यूयं च गच्छत ॥ ५० ॥ इत्युक्त्वा च सलक्ष्मीकः सभातोऽभ्यंतरं गतः ॥ देवा जग्मुः संप्रहृष्टाः स्वाश्रमं परमं मुदा ॥ ५१ ॥ शिवश्च तपसे शीघ्रं परिपूर्णतमो ययौ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारायण नारद संवादे शक्तिप्रादुर्भावे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ॥ लक्ष्मीं तौ च समाराध्य चोग्रेण तपसा मुने ॥ वरमिष्टं च प्रत्येकं संप्रापतुरभीप्सितम् ॥ १ ॥ महालक्ष्मीवरेणैव तौ पृथ्वीशौ बभूवतुः ॥ पुण्यवंतौ पुत्रवन्तौ धर्मध्वजकुशध्वजौ ॥ २ ॥ कुशध्वजस्य पत्नी च देवी मालावती सती ॥ सा सुषाव च कालेन कमलांशां सुतां सतीम् ॥ ३ ॥ सा च भूयिष्ठकालेन ज्ञानयुक्ता बभूव ह ॥ कृत्वा वेदध्वनिं स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिकागृहात् ॥ ४ ॥ वेदध्वनिं सा चकार जातमात्रेण कन्यका तस्मात्तां च वेदवतीं प्रवदंति मनीषिणः ॥ ५ ॥ जातमात्रेण सुस्नाता जगाम तपसे वनम् ॥ सर्वैर्निषिद्धा यत्नेन नारायणपरायणा ॥ ६ ॥

देवर्षे! धर्मराज और कुशध्वज दोनोंने घोर तपस्या द्वारा लक्ष्मीकी आराधना करके उनसे अभिमत (वांछित) वरलाभ किया ॥ १ ॥ इस वरसे वह फिर पृथ्वीश्वर हो गये, उनके पुण्यकी सीमा न रही दोनोंही पुत्रमुख देखनेमें अधिकारी हुए ॥ २ ॥ कुशध्वजकी पत्नीका नाम मालावती था सती मालावतीने बहुत कालके पीछे कमलाका अंश स्वरूप एक कन्या उत्पन्न की ॥ ३ ॥ यह कन्या लक्ष्मीका अंश होनेके कारण जन्मतेही ज्ञानपूर्ण हुई और उत्पन्न होते ही सूतिका गृहसे स्पष्ट वेद पाठकर उठी ॥ ४ ॥ जो कि उसने वेद ध्वनि की इसी कारण पंडितोंने उसको वेदवती संज्ञा प्रदान की थी ॥ ५ ॥ वह जन्म लेनेके पीछे स्नान करके तपके अर्थ वन जानेमें उद्यत हुई, जानेके समय उस नारायण परायण वेदवतीको यत्नपूर्वक सबनेही निषेध किया

किंतु उसने किसी प्रकार भी उनकी बातोंपर कान नहीं दिया ॥ ६ ॥ एक मन्वन्तर कालतक पुष्करमें जाकर लीलासेही उसने अति दुष्कर तपस्याकी ॥ ७ ॥ तो भी उसका शरीर कुछ शीर्ण नहीं हुआ वरन् क्रमसे मोटा होने लगा क्रमानुसार शरीरमें नवयौवनका अविर्भाव हुआ ॥ ८ ॥ एक दिन यह आकाशवाणी उसके कर्णमें प्रविष्ट हुई कि "हे सुन्दरि ! जन्मान्तरमें ब्रह्मादि वंदित श्रीहरि स्वयं तुम्हारे स्वामी होंगे" ॥ ९ ॥ यह बात सुनतेही वेदवतीके आनंदकी सीमा न रही, वह फिर गंधमादन पर्वतके निर्जन प्रदेशमें बैठकर तप करने लगी ॥१०॥ बहुत काल तपस्या करते करते एक दिन दुर्निवार रावण अतिथि वेषमें वहां उपस्थित हुआ ॥११॥ वेदवतीने देखतेही अतिथिभक्ति वशतः उसको पैर धोनेको जल स्वादिष्ठ फल और और शीतल पानी दिया ॥१२॥

एकामन्वंतरं चैव पुष्करे च तपस्विनी ॥ अत्युग्रां च तपस्यां च लीलया हि चकार सा ॥ ७ ॥तथाऽपि पुष्टा न क्लिष्टा नवयौवन संयुता ॥ शुश्राव सा च सहसा सुवाचमशरीरिणीम् ॥ ८ ॥ जन्मांतरे च ते भर्ता भविष्यति हरिः स्वयम् ॥ ब्रह्मादिभिर्दुराराध्यं पतिं लप्स्यसि सुन्दरि ॥ ९ ॥ इति श्रुत्वा च सा हृष्टा चकार ह पुनस्तपः ॥ अतीव निर्जनस्थाने पर्वते गंधमादने ॥ १० ॥ तत्रैव सुचिरं तप्त्वा विश्वस्य समुवास सा ॥ ददर्श पुरतस्तत्र रावणं दुर्निवारणम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा साऽतिथिभक्त्या च पाद्यं तस्मै ददौ किल ॥ सुस्वादभूतं फलं जलं चापि सुशीतलम् ॥ १२ ॥ तच्च भुक्त्वा स पापिष्ठश्चोवास तत्समीपतः ॥ चकार प्रश्नमिति तां का त्वं कल्याणि वर्तसे ॥ १३ ॥ तां दृष्ट्वा स वरारोहां पीनश्रोणिपयोधराम् ॥ शरत्पद्मोत्सवास्यां च सस्मितां सुदतीं सतीम् ॥ १४ ॥ मूर्च्छामवाप कृपणः कामबाणप्रपीडितः ॥ स करेण समाकृष्य शृंगारं कर्तुमुद्यतः ॥ १५ ॥ सती चुकोप दृष्ट्वा तं स्तंभितं च चकार ह ॥ स जडो हस्तपादैश्च किंचिद्वक्तुं न च क्षमः ॥ १६ ॥

पापिष्ठने अतिथ्य स्वीकार पूर्वक उसके समीप बैठकर पूँछा कि, हे कल्याणी ! तुम कौन हो ?॥ १३ ॥ वह दुराचारी उस (पुष्ट नितम्बवाली) पीनपयोधर, सम्पन्न शरत्पंकजवदना हास्य मुखी सुदती सुन्दरीको देखकर ॥ १४ ॥ कामबाणसे जर्जरित हो गया बाह्यज्ञान एकवारही तिरोहित होगया और वह पापाशय वेदवतीको आकर्षण करके बलात्कार करनेमं उद्यत हुआ ॥ १५ ॥ सती वेदवतीने यह देखकर कुपित हो अपने तपके प्रभावसे उसकोस्तम्भित किया अधिक क्या वह जड़के समान बैठा रहा उसको हाथ पैरादि चलाने वा बोलनेकी भी सामर्थ्य न रही ॥ १६ ॥

तब दुरात्मा मनही मनमें पद्मपलाशलोचना सती वेदवतीका स्तव करने लगा, पराशक्तिकी स्तुति कभी व्यर्थ होनेवाली नहीं है, उन्होंने संतुष्ट होकर उसको परलोकप्रद सुकृति प्रदान की॥ १७ ॥ किंतु उसके द्वारा यह शाप दिया गया "जब तन कामके वशीभूत होकर मेरे अंगको स्पर्श किया है, तब मेरे लियेही तुझको वंश सहित ध्वंस होना पड़ेगा इस समय मेरी कितनी सामर्थ है, देख " ॥ १८ ॥ हे वत्स नारद ! वेदवतीने रावणसे यह बात कहकर योगबलसे देह त्याग किया, तब रावण वेदवतीका वह देह गंगाके जलमें डालकर अपने भवनको चला गया ॥ १९ ॥ किंतु " क्या आश्चर्य देखा" इस रमणीने किस अद्भुत कार्यका अनुष्ठान किया? रावण वारंवार यह चिंता करके विलाप करने लगा ॥ २० ॥ हे वत्स ! पवित्रस्वभाव यह वेदवतीने ही एक समयमें जनका

तुष्टाव मनसा देवीं प्रययौ पद्मलोचनाम् सती तुष्टा तस्य स्तवनं सुकृतंच चकार ह ॥ १७ ॥ सा शशाप मदर्थे त्वं विनंक्ष्यसि सबां धवः ॥ स्पृष्टाऽहं च त्वया कामाद्बलं चाप्यवलोकय ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वासा च योगेन देहत्यागं चकार सा ॥ गंगायां तां च संन्य स्य स्वगृहं रावणो ययौ ॥ १९ ॥ अहो किमद्भुतं दृष्टं किं कृतं वाऽनयाऽधुना ॥ इति संचित्य संचित्य विललाप पुनः पुनः ॥२०॥ सा च॥ कालांतरे साध्वी बभूव जनकात्मजा ॥ सीतादेवीति विख्याता यदर्थे रावणो हतः ॥ २१ ॥ महातपस्विनी सा च तपसा पूर्वज न्मतः ॥ लेभे रामं च भर्तारं परिपूर्णतमं हरिम् ॥ २२ ॥ संप्राप तपसाऽऽराध्यं दुराराध्यं जगत्पतिम् ॥ सा रमा सुचिरं रेमे रामेण सह सुन्दरी ॥ २३ ॥ जातिस्मरा न स्मरति तपसश्च क्लमं पुरा ॥ सुखेन तज्जहौ सर्वं दुःखं चापि सुखं फले ॥२४॥ नानाप्रकारविभवं चकार सुचिरं सती ॥ संप्राप्य सुकुमारं तमतीव नवयौवना ॥ २५ ॥ गुणिनं रसिकं शांतं कांतं देवमनुत्तमम् ॥ स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरं तथा लेभे यथेप्सितम् ॥ २६ ॥

त्मजा सीता होकर जन्मग्रहण किया था, इस सीताके निमित्त ही रावण वंश समेत मृत्युको प्राप्त हुआ है ॥ २१ ॥ इस तपस्विन नेही जन्मांतरीयतपके प्रभावसे रामचंद्ररूपी पूर्णतम हरिको पतिलाभ ॥ २२ ॥ और बहुत काल तक उन दुराबध्य जगत्पतिके संग परम सुखके काल बिताया ॥ २३ ॥ उन्होंने जातिस्मरा होनेपर भी पूर्वजन्मकृत कठोर तपस्याका क्लेश कुछ भी अनुभव नहीं किया क्योंकि कष्ट सफल होनेपर कष्टको कष्ट कहकर बोध नहीं किया जाता ॥ २४ ॥ नवयौवना सीता सुकुमार शांत सुरसिक सर्वप्रधान देवस्त्रियोंमें मनोहर गुणवान अभिलाषित पतिलाभ करनेसे बहुतकाल अनेक प्रकारके सौभाग्य सुखभोग करने लगीं ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥

किंतु बलवान्कालकी गति दुर्निवार है कालके प्रभावसे पिताका सत्य पालन करनेके निमित्त उन सत्यप्रतिज्ञ रघुकुलधुरंधर श्रीरामचंद्रजीको वनवासका आश्रय लेना पड़ा ॥ २७ ॥ वह सीता और लक्ष्मणके संग समुद्रके तटपर वास करने लगे एक समय हुताशन (अग्नि) ब्राह्मणका वेश धारण करके उनके समीप आये ॥ २८ ॥ ब्राह्मणरूपी वैश्वानर श्रीरामचन्द्रजीको दुःखित देखकर स्वयं दुःखित हुए और उन्हीं सत्यनारायण हुताशनने सत्यस्वरूप रामचन्द्रजीसे कहा ॥ २९ ॥ द्विज बोले हे भगवन् श्रीरामचन्द्रजी ! जैसा समय आया है सो कहता हूं सुनो तुम्हारी सीता हरी जानेका समय उपस्थित है ॥ ३० ॥ दैवकी गति दुर्निवार है दैवसे बलवान दूसरा अन्य कोई नहीं है, इस कारण तुम जगज्जननी सीताको मेरे हाथमें समर्पण करो और इस समय इस छायारूपी

पितुः सत्यपालनार्थं सत्यसंधो रघूद्वहः ॥ जगाम काननं पश्चात्कालेन च बलीयसा ॥ २७ ॥ तस्थौ समुद्रनिकटे सीतया लक्ष्मणेन च ॥ ददर्श तत्र वह्निं च विप्ररूपधरं हरिः ॥ २८ ॥ रामं च दुःखितं दृष्ट्वा स च दुःखी बभूव ह ॥ उवाच किंचित्सत्येष्टं सत्यं सत्यपरायणः ॥ २९ ॥ भगवञ्छूयतां राम कालोऽयं यदुपस्थितः ॥ सीता हरणकालोऽयं तवैव समुप स्थितः ॥ ३० ॥ दैवं च दुर्निवार्यं च न च दैवात्परो बली ॥ जगत्प्रसूं मयि न्यस्य छायां रक्षांतिकेऽधुना ॥ ३१ ॥ दास्यामि सीतां तुभ्यं च परीक्षासमये पुनः ॥ देवैः प्रस्थापितोऽहं च न च विप्रो हुताशनः ॥ ३२ ॥ रामस्तद्वचनं श्रुत्वा न प्रकाश्य च लक्ष्मणम् ॥ स्वीकारं वचसश्चक्रे हृदयेन विदूयता ॥ ३३ ॥ वह्निर्योगेन सीताया मायासीतां चकार ह ॥ तत्तुल्यगुणसर्वांगां ददौ रामाय नारद ॥ ३४ ॥ सीतां गृहीत्वा स ययौ गोप्यं वक्तुं निषिध्य च ॥ लक्ष्मणो नैव बुबुधे गोप्यमन्यस्य का कथा ॥ ३५ ॥

सीताको अपने समीप रक्खो ॥ ३१ ॥ जब सीताकी परीक्षाका समय उपस्थित होगा, तब मैं इसको पुनर्वार तुम्हें समर्पण करूंगा देवताओंने मिलकर मुझे तुम्हारे पास भेजा है मैं यथार्थमें ब्राह्मण नहीं हूं, मैं अग्नि हूं ॥ ३२॥ श्रीरामचन्द्रजी अग्नि के वचन सुनकर उनमें सम्मत हुए, किंतु उनका हृदय विदीर्ण होने लगा उन्होंने लक्ष्मणजीसे यह सब बात कुछ न कही ॥ ३३ ॥ अग्निने योगबलसे माया सीता को उत्पन्न किया हे वत्स नारद ! वह माया सीता सब अंगों में प्रकृत सीताके समान हुई, तब उन्होंने वह माया रूपी सीता श्रीरामचन्द्रजीके हाथमें समर्पण करी ॥ ३४ ॥ हुताशन प्रकृत सीताको ग्रहण पूर्वक "यह बात किसी प्रकारभी दूसरेके निकट प्रकाशित न हो" यह कहकर चले गये इधर दूसरेकी बात तो क्या कहें; लक्ष्मण भी उस बातकोकुछ न जान सके ॥ ३५ ॥

एक दिन सहसा एक सुवर्णमृग श्रीरामचन्द्रको दिखाई दिया सीताने उस सुवर्णमृगके लिये यत्नपूर्वक श्रीरामचन्द्रजी को भेजा ॥ ३६ ॥ सुतरां वनमें सीताकी रक्षाके लिये लक्ष्मणजीको वहां रख स्वयं शीघ्रतासहित वहां जाय एक बाणसे उस स्वर्ण मृगको वींध डाला ॥ ३७ ॥ विद्ध होतेही उस मायामृगने " हा लक्ष्मण ! " कहकर ऊंचे स्वरसे चीत्कार करके सामने खडे हरिका दर्शन और हरिनाम स्मरण करते करते प्राण त्याग किया ॥ ३८ ॥ तब उसका वह मृगदेह दूर होकर दिव्यमूर्त्तिका आविर्भाव हुआ वह रत्ननिर्मित विमानमें चढ़कर वैकुंठ धाममें गया ॥ ३९ ॥ यह मायामृग पूर्वमें वैकुण्ठके दो द्वारपालोंका किंकर था, किन्तु कार्यवश राक्षसयोनि पाई थी, इस समय भगवान् भक्तहितकारी असुरारी कौशल्यानन्दवर्द्धक श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे मृत्युको प्राप्त हो फिर उन्हीं

एतस्मिन्नतरे रामो ददर्श कनकं मृगम् ॥ सीता तं प्रेरयामास तदर्थं यत्नपूर्वकम् ॥ ३६ ॥ संन्यस्य लक्ष्मणं रामो जानक्या रक्षणे वने ॥ स्वयं जगाम तूर्णं तं विव्याध सायकेन च ॥ ३७ ॥ लक्ष्मणेति च शब्दं स कृत्वा च मायया मृगः ॥ प्राणांस्तत्याज सहसा पुरो दृष्ट्वा हरिं स्मरन् ॥ ३८ ॥ मृगदेहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च ॥ रत्ननिर्माणयानेन वैकुंठं स जगाम ह ॥ ३९ ॥ वैकुंठलोकद्वार्यां सीत्किंकरो द्वारपालयोः ॥ पुनर्जगाम तद्वारमादेशाद्वारपालयोः ॥ ४० ॥ अथ शब्दं च सा श्रुत्वा लक्ष्मणेति च विक्लवम् ॥ तं हि सा प्रेरयामास लक्ष्मणं रामसन्निधौ ॥ ४१ ॥ गते च लक्ष्मणे रामं रावणो दुर्निवारणः ॥ सीतां गृहीत्वा प्रययौ लंकामेव स्वलीलया ॥ ४२ ॥ विषसाद च रामश्च वने दृष्ट्वा च लक्ष्मणम् ॥ तूर्णं च स्वाश्रमं गत्वा सीतां नैव ददर्श सः ॥ ४३ ॥ मूर्च्छां संप्राप सुचिरं विललाप भृशं पुनः ॥ पुनः पुनश्च बभ्राम तदन्वेषणपूर्वकम् ॥ ४४ ॥ कालेन प्राप्य तद्वार्तां गोदावरी नदीतटे ॥ सहायान्वानरान्कृत्वा बबंध सागरं हरिः ॥ ४५ ॥

वैकुण्ठके दोनों द्वारपालोंका किंकर हुआ ॥ ४० ॥ इधर देवी सीताने " हा लक्ष्मण ! " यह आर्तनाद सुनते ही अत्यन्त कातर हो लक्ष्मणको श्रीरामचन्द्र जीके निकट भेजा लक्ष्मणके आश्रमसे बाहर होते ही दुर्निवार रावण सीताको लेकर अत्यानंदसे लंकापुरीको चला गया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इस ओर श्रीरामचंद्रजी वनमें लक्ष्मणको आया हुआ देख विषादसागरमें निमग्न हुए और काल व्यतीत न कर अपने आश्रममें आये फिर सीताको न देखा ॥ ४३ ॥ तब तत्काल मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर गये बहुत देर पीछे चेत होने पर विलाप करते करते इधर उधर उसकी खोजमें विचरने लगे ॥ ४४ ॥ कुछ दिनों पीछे गोदावरीके तटपर उसकी सुधि पाय वानर सैन्यकी सहायतासे समुद्रमें पुल बांधा ॥ ४५ ॥

दे. भा. ॥६३॥ फिर सेनासहित लंकामें प्रवेश करके बाणोंके द्वारा रावणको बांधवोंसहित मार डाला ॥ ४६ ॥ अनंतर सीताकी अग्नि परीक्षाका समय उपस्थित हुआ उस काल हुताशनने श्रीरामचंद्रजीके हाथमें प्रकृत सीताको समर्पण किया ॥ ४७ ॥ तब छाया सीताने विनीत भावसे अग्नि और श्रीरामचंद्रजीसे कहा हे प्रभो ! अब मैं क्या करूं इसका उपाय बताइये ॥ ४८ ॥ अग्नि और श्रीरामचंद्रजी दोनोंने छाया सीतासे कहा है देवि ! तुम तपाचरणके लिये पुण्यप्रद पुष्करतीर्थमें जाओ वहां कुछ काल तप करके सहजमें ही स्वर्गलक्ष्मी हो सकेगी ॥ ४९ ॥ छायारूपो सीता यह बात सुन दिव्य तीन लाखवर्ष पर्यंत पुष्करमें तपस्या कर स्वर्गलक्ष्मी हुई ॥ ५० ॥ अंतमें यह स्वर्गलक्ष्मी ही एक समय यज्ञ कुण्डसे उत्पन्न हुई यही द्रुपदकी कन्या होकर पांचपांडवोंकी पत्नी हुई थी ॥ ५१ वही

लंकां गत्वा रघुश्रेष्ठो जघान सायकेन च ॥ कालेन प्राप्य तं हत्वा रावणं बांधवैःसह ॥ ४६ ॥ तां च वह्निपरीक्षां च कारयामास सत्वरम् ॥ हुताशस्तत्र काले तु वास्तवीं जानकीं ददौ ॥ ४७ ॥ उवाच छाया वह्निं च रामं च विनयान्विता ॥ करिष्यामीति किमहं तदुपायं वदस्व मे ॥ ४८ ॥ श्रीरामाग्नी ऊचतुः ॥ त्वं गच्छ तपसे देवि पुष्करं सुपुण्यदम् ॥ कृत्वा तपस्यां तत्रैव स्वर्गलक्ष्मीर्भविष्यसि ॥ ४९ ॥ सा च तद्वचनं श्रुत्वा प्रतप्य पुष्करे तपः ॥ दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च स्वर्गलक्ष्मीर्बभूव ह ॥ ५० ॥ सा च कालेन तपसा यज्ञकुंडसमुद्भवा ॥ कामिनी पांडवानां च द्रौपदी द्रुपदात्मजा ॥ ५१ ॥ कृते युगे वेद वती कुशध्वजसुता शुभा ॥ त्रेतायां रामपत्नी च सीतेति जनकात्मजा ॥ ५२ ॥ तच्छाया द्रौपदी देवी द्वापरे द्रुपदात्मजा ॥ त्रिहायणी च सा प्रोक्ता विद्यमाना युगत्रये ॥ ५३ ॥ नारद उवाच ॥ प्रियाः पंच कथं तस्या बभूवुर्मुनिपुंगव ॥ इति मच्चित्तसंदेहं भंज संदेहभंजन ॥ ५४ ॥ नारायण उवाच ॥ लंकायां वास्तवी सीता रामं संप्राप नारद ॥ रूपयौवनसंपन्ना छाया च बहुचिंतया ॥ ५५ ॥

सत्ययुगमें कुशध्वजकी कन्या वेदवती त्रेतायुगमें जनककन्या रूपसे रामपत्नी ॥ ५२ ॥ और द्वापरमें उसकी छाया द्रुपदात्मजा द्रौपदी नामसे उत्पन्न हुई यह सत्य, त्रेता और द्वापर इन तीन युगमें विद्यमान रहती है इस कारण उनको त्रिहारिणी कहते हैं ॥ ५३ ॥ देवर्षि नारदने नारायणसे कहा हे मुनिपुंगव ! हे सन्देह भंजन ! द्रौपदीके पांच पति क्यों हुए इस विषयमें मुझको महान् संशय उपस्थित हुआ है, अतएव आप मेरा संशय छेदन कीजिये ॥ ५४ ॥ नारायण बोले हे देवर्षि ! जब लंकापुरीमें प्रकृत सीता रामके समीप उपस्थित हुई तब अग्निदत्ता छाया रूपी नवयौवना सीताके अत्यन्त व्याकुल होनेपर ॥ ५५ ॥

अग्निदेव और श्रीरामचन्द्रजी दोनोंने उसको पुष्करमें जाय शंकरके आराधना करनेकी अनुमति दी अनंतर छायारूपी सीताने पुष्करमें तपस्या करते करते कामातुर और श्रेष्ठ पति प्राप्त होनेके लिये अत्यंत व्यग्र हो श्रीमहादेवजीके निकट वारंवार ॥ ५६ ॥ अर्थात् पांचवार "मुझको पति प्रदान करो" कहकर प्रार्थना करी ॥ ५७ ॥ रसिकचूडामणि शिवजीने यह कामना सुनकर "हे प्रिये ! तुम पांच पति प्राप्त करोगी" यह कहकर उसको वर दिया ॥ ५८ ॥ इसी कारण वह पांच पांडवोंको प्रियतम भार्या हुई थीं, हे वत्स नारद ! यह मैंने तुम्हारे निकट विस्तार सहित सब विषय वर्णन किया, अब दूसरी वास्तविक कथा वर्णन करता हूं सुनो ॥ ५९ ॥ लंका का युद्ध समाप्त होनेपर श्रीरामचन्द्रजी अपनी मनोहारिणी प्रियतमा पत्नी सीताको पाय विभीषणको लंकाके

रामाग्न्योराज्ञया तप्तुमुपास्ते शंकरं परम् ॥ कामा तुरा पतिव्यग्रा प्रार्थयंती पुनः पुनः ॥ ५६ ॥ पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन ॥ पतिं देहि पतिं देहि पंचवारं चकार सा ॥ ५७ ॥ शिवस्तत्प्रार्थनां श्रुत्वा प्रहस्य रसिकेश्वरः ॥ प्रिये तव प्रियाः पंच भविष्यंति वरं ददौ ॥ ५८ ॥ तेन सा पांडवानां च बभूव कामिनी प्रिया ॥ इति ते कथितं सर्वं प्रस्तावं वास्तवं शृणु ॥ ५९ ॥ अथ संप्राप्यलंकायां सीतां रामो मनोहराम् ॥ विभीषणाय तां लंका दत्त्वाऽयोध्यां ययौ पुनः ॥ ६० ॥ एकादशसहस्राब्दं कृत्वा राज्यं च भारते ॥ जगाम सर्वैर्लोकैश्च सार्धं वैकुंठमेव च ॥ ६१ ॥ कमलांशा वेदवती कमलायां विवेश सा ॥ कथितं पुण्यमाख्यानं पुण्यदं पापनाशनम् ॥ ६२ ॥ सततं मूर्तिमंतश्च वेदाश्चत्वार एव च ॥ संति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती श्रुता ॥ ६३ ॥ धर्मध्वजसुताख्यानं निबोध कथयामि ते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महा० नवमस्कंधे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

राज्यसिंहासन पर बैठाय स्वयं फिर अयोध्यामें आये ॥ ६० ॥ फिर ग्यारह हजार वर्षपर्यंत भारतमें आधिपत्य विस्तार कर अन्तमें फिर सब प्रजाओंके सहित वैकुण्ठधाममें उपस्थित हुए ॥ ६१ ॥ लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न वेदवती भी कमलाके शरीरमें विलीन हुई हे वत्स ! यह मैंने तुमसे वेदवतीका पवित्र उपाख्यान वर्णन किया इसके सुननेसे पापध्वंस और पुण्यका संचार होता है ॥ ६२ ॥ ऋगादि चारों वेद मूर्तिमान् होकर वेदवतीके जिह्वाग्रमें विराजमान् थे, इसी कारण उसका नाम वेदवती हुआ है ॥ ६३ ॥ यह मैंने तुम्हारे निकट कुशध्वजकी कन्या वेदवतीका वृत्तान्त वर्णन किया, अब धर्मध्वजकी कन्या तुलसीका वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनो ॥ ६४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

नारायणने कहा हे वत्स नारद ! धर्मध्वजकी पत्नीका नाम माधवी था माधवी गंधमादन पर्वतपर जाकर राजा धर्मध्वजके संग परमसुखसे विहार करने लगी ॥ १ ॥ वहां पुष्पोंसे अलंकृत और चंदन विलिप्त रतिशय्या प्रस्तुत हुई स्वयं सर्वाङ्गमें चन्दनविलेपन किया पुरुष और चन्दन गंध समायुक्त सुस्निग्ध वायु सब शरीरको शीतल करने लगा ॥ २ ॥ माधवी एक स्त्रीरत्न थी, उसका सर्वाङ्ग अति मनोहर था इस पर भी फिर सब रत्नमय भूषण पहिरे हुई थी वह जैसी रसिका थी, नरपति भी वैसेही रसिक चूडामणि थे बोध होता है मानो विधा ताने धर्मध्वजके लिये ही अनुरूप रसिका कामुकी को उत्पन्न किया है ॥ ३ ॥ दोनों ही रतिविशारद थे, सुतरां सुरतिमें किसीकी भी विरति नहीं थी इस कार्यके उपलक्षणमें देवमानके एक शतवर्ष पर्यंत दिनरात्रि किधर होकर बीत गये, वह यह कुछभी न जान सके ॥ ४ ॥ अनंतर नरपतिको चेत हुआ, तब वह रतिकार्यसे विरत हुए किंतु कामातुरा सुन्दरी माधवीकी

च माधवीति च विश्रुता ॥ नृपेण सार्धं साऽऽरामे रेमे च गंधमादने ॥ १ ॥ श्री नारायण उवाच ॥ धर्मध्वजस्य पत्नी शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचंदनचर्चिताम् ॥ चंदनांलिप्तसर्वाङ्गी पुष्पचंदनवायुना ॥ २ ॥ स्त्रीरत्नमतिचार्वंगी रत्नभूषण भूषिता ॥ कामुकी रसिका सृष्टा रसिकेन च संयुता ॥ ३ ॥ सुरतेविरतिनास्ति तयोः सुरतिविज्ञयोः ॥ गतं दैवं वर्षशतं न ज्ञातं चदिवानिशम् ॥ ४ ॥ ततो राजा मतिं प्राप्य सुरताद्विरराम च ॥ कामुकी सुन्दरो किंचिन्न च तृप्तिं जगाम सा ॥ ५ ॥ दधार गर्भं सा सद्यो देवादब्दशतं सती ॥ श्रीगर्भा श्रीयुता सा च संबभूव दिनेदिने ॥ ६ ॥ शुभे क्षणे शुभदिने शुभयोगे च संयुते ॥ शुभलग्ने शुभांशे च शुभस्वामि ग्रहान्विते ॥ ७ ॥ कार्त्तिकीपूर्णिमायां तु सितवारे च पाद्मज ॥ सुषाव सा च पद्मांशां पद्मिनीं तां मनोहराम् ॥ ८ ॥ शरत्पार्वणचंद्रास्यां शरत्पंकजलोचनाम् ॥ पक्कबिंबाधरोष्ठीं च पश्यंतीं सस्मितां गृहम् ॥ ९ ॥

इससे कुछ भी तृप्ति न हुई ॥ ५ ॥ जो हो दैवयोगसे उसने गर्भवती होकर शतवर्ष पर्यंत गर्भ धारण किया गर्भमें लक्ष्मीका आविर्भाव हुआ, इस कारण दिन दिन शरीरकी कांति बढ़ने लगी ॥ ६ ॥ अनंतर शुभदिन, शुभक्षण, शुभयोग, शुभलग्न शुभअंश एव शुभस्वामी और ग्रहयोगके उपस्थित होनेपर ॥ ७ ॥ कार्त्तिकी पूर्णिमा शुक्रवारमें लक्ष्मी अंश संभूत एक मनोहर कन्या उत्पन्न करी ॥ ८ ॥ कन्याका मुखमंडल शरद्के पूर्ण चन्द्रमाके समान और दोनों नेत्र शरदीय कमलकी शोभा विस्तार करते थे, अधर और ओष्ठ पक्व विम्बाफलकी शोभा प्रकाशित करते थे, कन्या उत्पन्न होते ही हास्य वदनसे सूतिका गृह (सोवर) को देखने लगी ॥ ९ ॥

उसके करतल (हथेली) और पदतल (पैरके तलुए) लालवर्ण थे नाभि गहरी और उसके निम्नदेशमें त्रिवली विराजमान् तथा नितम्ब गोलाकार थे ॥ १० ॥ शीतकालमें उस श्यामाङ्गीका शरीर उष्णस्पर्श और ग्रीष्ममें शीतल तथा सुखस्पर्श था केशकलाप न्यग्रोध जटाके समान लम्बे थे ॥ ११ ॥ उसका वर्ण पीत चम्पकके समान समुज्ज्वल था वह सब रमणी रत्नोंमें प्रधान रत्न थी नर और नारीगण उसके शरीरके सौन्दर्यकी तुलना देनेमें असमर्थ जानकर ॥ १२ ॥ महर्षियोंने उसका तुलसी नाम रक्खा, वह उत्पन्न होतेही योग्य स्त्री प्रकृतिके समान प्रतीयमान होने लगी ॥ १३ ॥ वारंवार सब उसकोनिषेध करने लगे,तो भी वह तपस्याके अर्थ बदरीवनमें चली गई वहां उसने देवमानके लक्ष वर्षतक कठोर तपस्या करी ॥ १४ ॥ नारायणके प्रतिलाभ करनाही उसकी तपस्याका प्रधान

हस्तपादतलारक्तां निम्ननाभिं मनोरमाम् ॥ तदध स्त्रिवलीयुक्तां नितंबयुगवर्तुलाम् ॥ १० ॥ शीते सुखोष्णसर्वांगीं ग्रीष्मे च सुखशीतलाम् ॥ श्यामां सुकेशीं रुचिरां न्यग्रोधपरिमंडलाम् ॥ ११ ॥ पीतचंपकवर्णाभां सुन्दरीष्वेव सुन्दरीम् ॥ नरा नार्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनां दातुमक्षमाः ॥ १२ ॥ तेन नाम्ना च तुलसीं तां वदंतिमनीषिणः ॥ सा च भूमिष्ठमात्रेण योग्या स्त्रीप्रकृतिर्यथा ॥ १३ ॥ सर्वैर्निषिद्धा तपसे जगाम बदरीवनम् ॥ तत्र देवाब्दलक्षं च चकार परमं तपः ॥ १४ ॥ मनसा नारायणः स्वामी भवितेति च निश्चिता ॥ ग्रीष्मे पंचतपाः शीतेतोयवस्त्रा च प्रावृषि ॥ १५ ॥ आसनस्था वृष्टिधारां सहंतीति दिवानिशम् ॥ विंशत्सहस्रवर्षं च फलतोयाशना च सा ॥ १६ ॥ त्रिंशत्सहस्रवर्षं च पत्राहारा तपस्विनी ॥ चत्वारिंशत्सहस्राब्द वाय्वाहारा कृशोदरी ॥ १७ ॥ ततो दशसहस्राब्दं निराहारा बभूव सा ॥ निर्लक्ष्यां चैकपादस्थां दृष्ट्वा तां कमलोद्भवः ॥१८॥ समाययौ वरं दातुं परं बदरिकाश्रमम् ॥ चतुर्मुखं च सा दृष्ट्वा ननाम हंसवाहनम् ॥ १९ ॥ तामुवाच जगत्कर्ता विधाता जगतामपि ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वरं वृणीष्व तुलसि यत्ते मनसि वांछितम् ॥ २० ॥

उद्देश्य था वह ग्रीष्ममें पंचतपा, शीतमें सलिलस्था और वर्षाके समय अनावृत (उघडे) स्थानमें बैठकर ॥ १५ ॥ दिनरात धारापात सहने लगीवीसहजार वर्ष केवल फल और जलाशनमें बीतगये ॥ १६ ॥ तीसहजार वर्ष केवल वृक्षके पत्तेमात्र आहार किये चालीस सहस्र वर्ष उपस्थित होनेपर वायुमात्र भक्षण करनेके कारण दिन दिन शरीर दुबला होने लग ॥ १७ ॥ अनंतर दशहजार वर्ष काल एक वार ही सब आहार छोड़ जब लक्ष्य विहीन होकर एक पैरसे खडी हुई उसी समय कमलयोनि ब्रह्माजी ॥ १८ ॥ यह देखकर वर देनेके लिये वहां आयेतब देखते ही तुलसीने तत्काल हंसवाहन चतुराननको प्रणाम किया ॥ १९ ॥ तब जगत्कर्ता विधाताने उससे कहा हे देवि तुलसी ! मनोवांछित वर मांगो ॥ २० ॥

तुम हरिभक्ति हरिदास्य, अजरता और अमरता इत्यादि जिसी किसी अभीष्टकी प्रार्थना करोगी, मैं वही दूंगा तुलसीने कहा हे तात ! इस समय मेरी जो अभिलाषा है, वह कहती हूं, सुनो ॥ २१ ॥ क्योंकि अंतर्यामी हैं, उनके निकट लाज करके क्या करूंगी हे प्रभो ! मेरा नाम तुलसी गोपी है मैं पूर्वकालके समय गोलोकमें अवस्थित करती थी ॥ २२ ॥ और मैं कृष्ण प्रिया राधाकी प्रिय किंकरी थी मैंने भी उसके अंगसे जन्म ग्रहण किया था उसकी सब सखियें भी मेरा आदर करती मैं एक समय रासमण्डलमें गोविंदके द्वारा सम्भुक्त होकर तृप्त न होनेसे प्रायः मूर्छित होकर गिरपड़ी थी ॥ २३ ॥ इसी अवसरमें रामेश्वरी राधाने वहां आय मुझको उस अवस्थामें देख गोविंदकी भर्त्सना करी और क्रोधमें भरकर मुझको यह शाप दिया कि ॥ २४ ॥ " तू अभी भूलोकमें जाकर

हरिभक्तिं हरेर्दास्यमजरामरतामपि ॥ तुलस्युवाच ॥ शृणु तात प्रवक्ष्यामि यन्मे मनसि वांछितम् ॥२१॥ सर्वज्ञस्यापि पुरतः का लज्जा मम सांप्रतम् ॥ अहं तु तुलसी गोपी गोलोकेऽहं स्थिता पुरा ॥ २२ ॥ कृष्णप्रिया किंकरी च तदंशातत्सखी प्रिया ॥ गोविन्दरतिसंभुक्तामतृप्तां मां च मूर्च्छिताम् ॥ २३ ॥ रासेश्वरी समागत्य ददर्श रासमण्डले ॥ गोविंदं भर्त्सया मास मां शशाप रुषाऽन्विता ॥ २४ ॥ याहि त्वं मानवीं योनिमित्येवं च शशाप ह ॥ मामुवाच स गोविंदो मदंशं च चतुर्भुजम् ॥ २५ ॥ लभिष्यसि तपस्तप्त्वा भारते ब्रह्मणो वरात् ॥ इत्येवमुक्त्वा देवेशोऽप्यंतर्धानं चकार सः ॥ २६ ॥ देव्या भिया तनुं त्यक्त्वाप्राप्तं जन्म गुरो भुवि अहं नारायणं कांतं शांतं सुन्दरविग्रहम् ॥ २७ ॥ सांप्रतं तं पतिं लब्धुं वरये त्वं च देवि मे ॥ ब्रह्मदेव उवाच ॥ सुदामानाम गोपश्च श्रीकृष्णांगसमुद्भवः ॥ २८ ॥ तदंशश्चाति तेजस्वी लेभे जन्म च भारते ॥ सांप्रतं राधिकाशापाद्दनुवंशसमुद्भवः ॥ २९ ॥

मानवी हो " तब गोविंदने मुझसे कहा " तेरे भारतमें जाकर तपस्या करने पर ब्रह्मा संतुष्ट होकर वर देंगे तू उसी वरके पानेसे मेरे अंश संभूत चतुर्भुज मूर्त्तिको अतिलाभ करेगी " हे तात ! देवेश ! श्रीकृष्ण यह बात कहकर अन्तर्धान होगये ॥ २५ ॥ ॥ २६॥ हे गुरो? मैंने उन देवी राधाके भयसे शरीर त्यागकर इस भूमण्डलमें जन्म ग्रहण किया है अब मेरी और कोई अभिलाषा नहीं है केवल मुझको यह वरदो " जिसमें शांत कांत सुन्दर शरीर नारायण को ॥ २७ ॥ पतिलाभ कर सकूं " ब्रह्माजीने कहा ! हे वत्से ! तुलसी सुदामा नामक गोप श्रीकृष्णके अंगसे उत्पन्न हुआ है ॥ २८ ॥ इस समय उस कृष्णांशरूपी अति तेजस्वी सुदामाने श्री राधाके शापसे भारतके मध्य दानव वंशमें जन्म ग्रहण किया है ॥ २९ ॥

उसका नाम शंखचूड है तीनों लोकमें उसके समान पराक्रमी दूसरा नहीं है पूर्वकालके समय वह गोलोक धाममें तुमको देख उसका चित्त कामबाणसे जर्ज रित हुआ ॥ ३० ॥ किन्तु केवल राधिकाके प्रभावसे तुमको आलिंगन करनेमें समर्थ न हुआ वही सुदामा अब जातिस्मर हुआ है ॥ ३१ ॥ हे सुन्दरी ! तुमभी जातिस्मरा हो कोई बात भी तुमसे छिपी नहीं है हे शोभने ! तुम इस समय उसकी पत्नी होओ ॥ ३२ ॥ फिर शान्त स्वभाव मनोहर मूर्त्ति नारायणको पतिलाभ कर सकोगी तुम नारायणके शाप अंशसे ॥ ३३ ॥ विश्वपावनी तुलसी वृक्षरूपमें परिणत होगी ॥ तुम पुष्पोंमें सर्व प्रधान पुष्प और नारायणको प्राणोंकी अपेक्षा भी प्रियतम होगी ॥ ३४ ॥ तुम्हारे पुष्पके विना किसीकी पूजा भी सिद्ध नहीं होगी तुम वृन्दावनमें वृक्षरूप धारण करके वृन्दावनी

शंखचूडेति विख्यातस्त्रैलोक्ये न च तत्समः ॥ गोलोके त्वां पुरा दृष्ट्वा कामोन्मथितमानसः ॥ ३० ॥ विलंभितुं न शशाक राधिकायाः प्रभावतः ॥ स च जातिस्मरस्तस्मात्सुदामाऽभूच्च सागरे ॥ ३१ ॥ जातिस्मरा त्वमपि सा जानासि सुन्दरि ॥ अधुना तस्य पत्नी त्वं संभविष्यसि शोभने ॥ ३२ ॥ पश्चान्नारायणं शांतं कांतमेव वरिष्यसि ॥ शापान्नारायणस्यैव कलया दैवयो गतः ॥ ३३ ॥ भविष्यति वृक्षरूपा त्वं पूता विश्वपावनी ॥ प्रधाना सर्वपुष्पेषु विष्णुप्राणाधिका भवेः ॥ ३४ ॥ त्वया विना च सर्वेषां पूजा च विफला भवेत् ॥ वृंदावने वृक्षरूपा नाम्ना वृन्दावनीति च ॥ ३५ ॥ त्वत्पत्रैर्गोपिगोपाश्च पूजयिष्यंति माधवम् ॥ वृक्षाधिदेवीरूपेण सार्धं कृष्णेन सन्ततम् ॥ ३६ ॥ विहरिष्यसि गोपेन स्वच्छंदं मद्वरेण च ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा सस्मिता हृष्टमानसा ॥ ३७ ॥ प्रणनाम च ब्रह्माणं तं किंचिदुवाच सा ॥ तुलस्युवाच ॥ यथा मे द्विभुजे कृष्णे वांछा च श्यामसुन्दर ॥ ३८ ॥ सत्यं ब्रवीमि हे तात न तथा च चतुर्भुजे ॥ आतृप्ताऽहं च गोविंदे दैवाच्छृंगारभंगतः ॥ ३९ ॥

नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ ३५ ॥ गोप और गोपियें तुम्हारे पत्र लेकर माधवकी पूजा करैंगी तुम तुलसी वृक्षकी अधिष्ठात्री देवी रूपसे सदा गोपवर श्रीकृष्णके संग स्वच्छन्द विहार करोगी ॥ ३६ ॥ हे वत्स नारद ! देवी तुलसी ब्रह्माजीके इस प्रकार वचन सुनकर अत्यन्त आनंदित हुई ॥ ३७ ॥ उनके मुखपर हास्यका विकाश हुआ तब उन्होंने विधाताको प्रणाम करके कहा तुलसी बोली हे तात ! मैं तुमसे सत्य कहती हूं कि, द्विभुज श्यामसुन्दर कृष्णके प्रति जैसी भक्ति है ॥ ३८ ॥ चतुर्भुजके प्रति वैसी नहीं है यह सत्य कहती हूं क्योंकि सहसा गोविंदके संग मेरी रतिभंग होनेसे मेरी आशा पूर्ण नहीं हुई ॥ ३९ ॥

मैं तो केवल गोविंदके वचनसे ही चतुर्भुजकी प्रार्थना करती थी अब निश्चय बोध होता है कि; आपके अनुग्रहसे फिर दुर्लभ गोविन्दको प्राप्त हूंगी ॥ ४० ॥ किंतु हे तात! अब मुझको राधाके भयसे कातर होना न पड़े ब्रह्माजी बोले हे वत्से ! मैं तुमको शोडषाक्षर राधामंत्र देता हूं ॥ ४१ ॥ मेरे वरसे तुम राधाकी प्राणके तुल्य स्नेहपात्र होगी तुम्हारा गुप्त विहार व्यापार फिर राधा नहीं जान सकेगी ॥ ४२ ॥ हे सौभाग्यवती! तुम राधाके समान गोविंदकी प्रियतमा होगी जगत्कर्त्ता ब्रह्माजीने तुलसीसे इस प्रकार कह उनको षोडशाक्षर ॥ ४३ ॥ राधामंत्र, स्तोत्र, कवच, पूजाविधि और पुरश्चरणके नियमका उपदेशका प्रदान ॥ ४४ ॥ पूर्वक यथेष्ट आशीर्वाद दिया तब तुलसी भी तदनुसार ही पूजा करनेमें प्रवृत्त हुई लक्ष्मीके समान तुलसीने भी इस प्रकार ब्रह्माजीके अनु

गोविन्दस्यैव वचनात्प्रार्थयामि चतुर्भुजम् ॥ त्वत्प्रसादेन गोविन्दं पुनरेव सुदुर्लभम् ॥ ४० ॥ ध्रुवमेव लभिष्यामि राधाभीतिं प्रमोचय ॥ ब्रह्मदेव उवाच ॥ गृहाण राधिकामंत्रं ददामि षोडशाक्षरम् ॥ ४१ ॥ तस्याश्च प्राणतुल्या त्वं मद्वरेण भविष्यसि ॥ शृंगारं युवयोर्गोप्यं न ज्ञास्यति च राधिका ॥ ४२ ॥ राधासमा त्वं सुभगे गोविन्दस्य भविष्यसि ॥ इत्येवमुक्त्वा दत्वा च देव्या वै षोडशाक्षरम् ॥ ४३ ॥ मंत्रं चैव जगद्धाता स्तोत्रं च कवचं परम् ॥ सर्वं पूजाविधानं च पुरश्चर्याविधिक्रमम् ॥ ४४ ॥ परां शुभाशिषं चैव पूजां चैव चकार सा ॥ बभूव सिद्धा सा देवी तत्प्रसादाद्रमा यथा ॥ ४५ ॥ सिद्धे मंत्रेण तुलसी वरं प्राप यथोदितम् ॥ बुभुजे च महाभोगं यद्विश्वेषु च दुर्लभम् ॥ ४६ ॥ प्रसन्नमनसा देवो त त्याज तपसः क्लमम् ॥ सिद्धे फले नराणां च दुःखं च सुखमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ भुक्त्वा पीत्वा च संतुष्टा शयनं च चकार सा ॥ तल्पे मनोरमे तत्र पुष्पचंदनचर्चिते ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादे तुलस्युपाख्याने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

ग्रहसे सिद्धिलाभ की थी ॥ ४५ ॥ सिद्धमन्त्रके प्रभावसे उनको अभीष्ट वर प्राप्त हुआ वह जगदुर्लभ अनेक भोगोंमें सौभाग्यवती हुई ॥ ४६ ॥ उनका मन सुस्थिर हुआ तपस्याका क्लेश दूर हो गया वास्तविक मनुष्यकी मनोकामना सिद्ध होनेपर चाहे जितना कष्टभोग क्यों न हो ? सबही सुखमें परिणत होता है ॥ ४७ ॥ फिर उन्होंने पान भोजन समाप्त करके पुष्प और चन्दन समायुक्त मनोहर शय्यापर शयन किया ॥ ४८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्री नारायण बोले हे वत्स नारद! इस प्रकार तपश्चर्या समाप्तिके पीछे वृषध्वज कन्या नवयौवन संपन्न तुलसी देवीके अत्यन्त आनन्दित होकर सुखसे शयन करने पर ॥ १ ॥ पंचशर (कामदेव) ने उनपर सम्मोहनादि पांच बाण छोड़े यद्यपि चंदन लगाये होकर पुष्प शय्यापर शयन कर रही थीं किंतु तो भी पुष्पधन्वाके बाणोंसे उनका शरीर दग्ध होने लगा ॥ २ ॥ उनका सर्वाङ्ग रोमाञ्चित होगया शरीरकाँपने लगा नेत्र रक्तवर्ण हो गये क्षणमें उद्वेग, क्षणमें मूर्च्छा ॥ ३ ॥ क्षणमें शुष्कता, क्षणमें सुखा वह तन्द्रा, क्षणमें दाह, क्षणमें प्रसन्नता ॥ ४ ॥ क्षणमें चेतना और क्षणमें विषाद होने लगा कभी शय्यासे उठे कभी बैठ जाय कभी उद्वेगसे फिर निद्रा हो जाती थी ॥ ५ ॥ क्षणमें सद्वेगसे भ्रमने लगती क्षणमें स्थित होती क्षणमें उद्वेगसे सो जाती ॥ ६ ॥ चन्दनदिग्ध, पुष्प

श्रीनारायण उवाच ॥ तुलसी परितुष्टा च सुष्वाप हृष्टमानसा ॥ नवयौवनसंपन्ना वृषध्वजवरांगना ॥ १ ॥ चिक्षेप पंच बाणश्च पञ्च बाणांश्च तां प्रति ॥ पुष्पायुधेन सा दग्धा पुष्पचन्दनचार्चिता ॥ २ ॥ पुलकांचितसर्वांगी कंपिता रक्तलोचना ॥ क्षणं सा शुष्कतां प्रापक्षणं मूर्च्छामवाप ह ॥ ३ ॥ क्षणमुद्विग्नतां प्राप क्षणं तंद्रां सुखावहाम् ॥ क्षणं च दहनं प्राप क्षणं प्राप प्रसन्नताम् ॥ ४ ॥ क्षण सा चेतनां प्राप क्षणं प्राप विषण्णताम् ॥ तत्तिष्ठंती क्षणं तल्पाद्गच्छंती निकटे क्षणम् ॥ ५ ॥ भ्रमन्ती क्षणमुद्वेगान्निवसंती क्षणं पुनः ॥ क्षणमेवसमुद्वेगात्सुष्वाप पुनरेव सा ॥ ६ ॥ पुष्पचन्दनतल्पं च तद्बभूवातिकंटकम् ॥ विषहारि सुखं दिव्यं सुन्दरम् च फलं जलम् ॥ ७ ॥ निलयं च बिलाकार सूक्ष्मवस्त्रं हुताशनः ॥ सिंदूरपत्रकं चैव व्रणतुल्यं च दुःखदम् ॥ ८ ॥ क्षणं ददर्श तंद्रायां सुवेषं पुरुषं सती ॥ सुन्दरं च युवानं च सस्मितं रसिकेश्वरम् ॥ ९ ॥ चन्दनोक्षितसर्वांगं रत्न भूषण भूषितम् ॥ आगच्छंतं माल्यवंतं पिबन्तं तन्मुखांबुजम् ॥ १० ॥ कथयंतं रतिकथां ब्रुवंतं मधुरं मुहुः ॥ संभुक्तवंतं तल्पे च समाश्लिष्यंतमीप्सितम् ॥ ११ ॥

शय्या उसको कंटक हो गयी अतीव सुन्दर और सुखकर फल तथा सुशीतल जल उसको विषवत् होगया ॥ ७ ॥ वासगृह भूविवर तथा सूक्ष्म सूक्ष्म वस्त्र हुताशनके समान बोध होनेलगे सिन्दूरबिन्दु उसको व्रणतुल्य दुःखदायक हुआ ॥ ८ ॥ वह तन्द्राके आवेशमें स्वप्न देखने लगी कि, एक सुवेष सुन्दर रसिक युवा पुरुष हास्यवदनसे उनके समीप उपस्थित हुआ है ॥ ९ ॥ उसका सर्वाङ्गचंदन विलिप्त और उत्कृष्ट रत्नमय विभूषणोंसे विभूषित और गलेमें वनमाला विराजमान है वह आकर मानों उनके मुखकमलका मधुपान करता है ॥ १० ॥ और रतिकथा तथा अन्यान्य अनेक प्रकारकी मधुर बातोंसे मिष्टालाप करता है और मानों आलिंगन पूर्वक शय्यापर शयन करके संभोग सुख आस्वादन करता है ॥ ११ ॥

फिर संभोगके पीछे एकवार चला जाता है और फिर निकट आजाता है जानेके समय "हे प्राणेश्वर ! कहां जाते हो निकट रहो" यह कहकर वह सीमन्तिनी उससे संभाषण करती है ॥ १२ ॥ और फिर ज्योंही चेतनका संचार हुआ, उसी समय वारंवार विलाप करने लगी हं वत्स नारद ! देवी तुलसी यौवन सीमामें भरकर इस प्रकार बद्रिकाश्रममें वास करने लगी ॥ १३ ॥ इधर महायोगी शंखचूडने महर्षि जैगीषव्यसे कृष्णमन्त्र पाया पुष्करमें सिद्धि प्राप्त करी ॥ १४ ॥ सर्वमंगलमय कवच गलेमें धारणपूर्वक ब्रह्माजीसे अपना अभिलाषित वर लाभ करके ॥ १५ ॥ उनकीही आज्ञानुसार बद्रिकाश्रममें उपस्थित हुआ उपस्थित होते ही शंखचूड देवी तुलसीके नेत्र पथका पथिक हुआ ॥ १६ ॥ शंखचूडके शरीरमें नव यौवनका अविर्भाव होनेसे बोध होता था मानो मूर्तिमान् काम है

पुनरेव तु गच्छंतमागच्छंतं च सन्निधौ ॥ यांतं क्व यासि प्राणेश तिष्ठेत्येवमुवाच सा ॥ १२ ॥ पुनश्च चेतनां प्राप्य विललाप पुनः पुनः ॥ एवं सा यौवनं प्राप्य तस्थौ तत्रैव नारद ॥ १३ ॥ शंख चूडो महायोगी जैगीषव्यान्मनोहरम् ॥ कृष्णमंत्रं च सम्प्राप्य कृत्वा सिद्धं तु पुष्करे ॥१४॥ कवचं च गले बद्ध्वा सर्वमंगलमंगलम् ॥ ब्रह्मणश्च वरं प्राप्ययत्ते मनसि वांछितम् ॥१५॥ आज्ञया ब्रह्मणः सोऽपि बदरीं च समाययौ ॥ आगच्छंतं शंखचूडं ददर्श तुलसी मुने ॥ १६ ॥ नवयौवनसंपन्नं कामदेवसमप्रभम् ॥ श्वेतचंपकवर्णाभं रत्नभूषणभूषितम् ॥ १७ ॥ शरत्पार्वणचंद्रास्यं शरत्पंकजलोचनम् ॥ रत्नसारविनिर्माणविमानस्थं मनोहरम् ॥ १८ ॥ रत्नकुंडलयुग्मेन गंडस्थलविराजितम् ॥ पारिजातप्रसूनानां मालावंतं च सुस्मितम् ॥ १९ ॥ कस्तूरीकुंकुमायुक्तसुगंधिचंदनान्वितम् ॥ सा दृष्ट्वा सन्निधावेनं मुखमाच्छाद्य वाससा ॥ २० ॥ सस्मिता तं निरीक्षंती सकटाक्ष पुनः पुनः ॥ बभूवातिनम्रमुखी नवसंगमलज्जिता ॥ २१ ॥ शरदिंदुविनिंद्यैकस्वमुखेंदुविराजिता ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणयावकावलिसंयुता ॥ २२ ॥

वर्णश्वेत चम्पकके समान और सर्वांगमें रत्नमय आभूषण थे ॥१७॥ मुखमण्डल शारदीय पूर्ण चन्द्र और चक्षु पद्मपलाशके सदृश बड़े थे वह मनोहर मूर्त्ति उत्कृष्ट रत्नमय विमानमें विराजमान थी ॥ १८ ॥ दो रत्नकुण्डल गण्डस्थलपर्यंत चलायमान थे गलेमें पारिजात पुष्पकी माला ॥ १९ ॥ शरीरमें कुंकुम और सुगंधित चंदन लगा हुआ था हे वत्स नारद ! देवी तुलसी शंखचूडको समीप आया हुआ देख वस्त्रके अंचलसे अपना मुख ढक ॥ २० ॥ हास्य वदनसे वारंवार उसके प्रति कटाक्ष विक्षेप और नव समागम पिपासाकी लज्जासे मुख नीचा करने लगी ॥ २१ ॥ जिसका विमल मुखचंद्र शरत्के चंद्रमाकी शोभाका तिरस्कार करता है चरणोंमें अमूल्य रत्ननिर्मित चरणभरण ॥ २२ ॥

और उत्कृष्ट मणिनिर्मित नूपुर हैं मस्तकमें सुगंधित मालतीमालासे कबरीबंधन है ॥ २३ ॥ कानमें अमूल्य रत्ननिर्मित मकराकृत विचित्र कुण्डल गण्ड स्थलपर्यंत चलायमान है ॥ २४ ॥ अमूल्य रत्नमय हारने स्तनमण्डलके मध्यभागमें लम्बायमान होकर वक्षःस्थलको उज्ज्वल किया है हाथमें रत्नमय कंकण और शंख भूषण है ॥ २५ ॥ दोनों बाहुमें रत्नमय केयूर और हाथोंकी अंगुलियोंमें श्रेष्ठ रत्नांगुली शोभा पाती है हे मुनिवर! शंखचूडने उस मनोहर सुशील सुन्दरी सती तुलसीको देखते ही ॥ २६ ॥ समीप आय बैठकर मधुरस्वरसे कहा शंखचूड बोला हे मानिनी ! कल्याणी ! हे कल्याणदायिनी ! तुम कौन हो किसकी कन्या हो ? ॥ २७ ॥ रमणियोंमें तुम धन्या और मान्या बोध होती हो, मैं तुम्हारा मौनीभूत दास हूं मेरे संग बात चीत करो ॥ २८ ॥ उत्सुक

मणींद्रसारनिर्माणक्वणन्मंजीररंजिता ॥ दधती कबरीभारं मालती माल्यसंयुतम् ॥ २३ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणमकराकृतिकुंडलाचित्रकुंडलयुग्मेन गंडस्थलविराजिता ॥ २४ ॥ रत्नेंद्रसारहारेण स्तनमध्यस्थलो ज्ज्वला ॥ रत्नकंकणकेयूर शंखभूषणभूषिता ॥ २५ ॥ रत्नांगुलीयकैर्दिव्यैरंगुल्यावलिराजिता ॥ दृष्ट्वा तां ललितां रम्यां सुशीलां सुन्दरी सतीम् ॥ २६ ॥ उवास तत्समीपे तु मधुरं तामुवाच सः ॥ शंखचूडउवाच ॥ का त्वं कस्य च कन्या च धन्या मान्या च योषिताम् ॥ २७ ॥ का त्वं मानिनि कल्याणि सर्वकल्याणदायिनी ॥ मौनीभूते किंकरे मां संभाषां कुरु सुन्दरि ॥ २८ ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा सकामा वामलोचना ॥ सस्मिता नम्रवदना सकामं तमुवाच सा ॥ २९ ॥ तुलस्युवाच ॥ धर्मध्वजसुताऽहं च तपस्यायां तपोवने ॥ तपस्विन्यहं तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम् ॥ ३० ॥ कामिनीं कुलजातां च रहस्येकाकिनीं सतीम् ॥ न पृच्छति कुले जात इत्येवं मे श्रुतौ श्रुतम् ॥ ३१ ॥ लंपटोऽसत्कुले जातो धर्मशास्त्रार्थवर्जितः ॥ येनाश्रुतः श्रुतेरर्थः स कामीच्छति कामिनीम् ॥ ३२ ॥

चित्तवाली उन वाम लोचना तुलसीने अनुरागवान् शंखचूडका वचन सुनतेही हास्य मुख और नम्रवदन होकर उससे कहा ॥ २९ ॥ तुलसी बोली महाराज! मैं वृक्षध्वजकी कन्या हूं तपश्चरणके अर्थ तपोवनमें आकर तपस्यामें निमग्न रहती हूं आप कौन हैं आपकी बातोंसे क्या प्रयोजन है? आप यथेच्छ यहांसे गमन कीजिये ॥ ३० ॥ शास्त्रमें सुना है कि, सद्वंशोत्पन्न पुरुष कभी सद्वंशमें उत्पन्न हुई निर्जन बैठी स्त्रीसे बात चीत नहीं करते ॥ ३१ ॥ जो लम्पट धर्मशास्त्रहीन, वेदज्ञानरहित और अकुलीन हैं वही कामीपुरुष अकेलेमें कामिनियोंके संग बात चीत करनेकी अभिलाशा करते हैं ॥ ३२ ॥

और जो स्त्रियें आपातरमणीय कामोन्मत्त और पुरुषकी अन्तक हैं, पयोमुख विषपूर्ण घड़ेके समान जिनके अन्तरमें गरल और मुखमें मधुरालाप है ॥ ३३ ॥ जिनके हृदय क्षुरधार और मुखमें मिष्टभाषा है जो सदा अपना कार्य साधनमें तत्पर हैं ॥ ३४ ॥ जो अपने कार्यके वश होकर स्वामीके वशवर्तिनी और अन्यथा स्वेच्छाचारिणी हैं, जिनके अन्तरमें मल भरा है किंतु वदन और नेत्रमें प्रसन्नता विद्यमान रहती है ॥ ३५ ॥ श्रुति और पुराणमें जिनका चरित अति दूषित वर्णित हुआ है, कौन विद्वान् बुद्धिमान् उन्नताशय पुरुष उनका विश्वास करता है ॥ ३६ ॥ ऐसी स्त्रियोंमें शत्रु मित्रका विचार नहीं है, वह नित्य नवीन अभिलाषा करती हैं, वह वेषवान् पुरुषको देखते ही अपने कार्य साधन करनेकी वासना करती है ॥ ३७ ॥ किन्तु बाहरमें अत्यन्त यत्नस हित स्वीय सतीत्वका घोषण करती हैं वह एकमात्र कामकी आधार हैं, वह सदा दूसरेके चित्तको आकर्षण और स्वीय कामवृत्ति चरितार्थ करनेके लिये

आपातमधुरां मत्तामंतेकां पुरुषस्य ताम् ॥ विषकुंभाकाररूपाममृतास्यां च संततम् ॥ ३३ ॥ हृदये क्षुरधा राभां शश्वन्मधुरभाषिणीम् ॥ स्वकार्यप रिनिष्पत्त्यै तत्परां सततं च ताम् ॥ ३४ ॥ कार्यार्थे स्वामिवशगामन्यथैवावशां सदा ॥ स्वांते मलिनरूपां च प्रसन्नवदनेक्षणाम् ॥ ३५ ॥ श्रुतौ पुराणे यासां च चरित्रमति दूषितम् ॥ तासु को विश्वसेत्प्राज्ञ प्रज्ञावांश्च दुराशयः ॥ ३६ ॥ तासां को वा रिपुर्मित्रं प्रार्थयंति नवंनवम् ॥ दृष्ट्वा सुवेषं पुरुषमिच्छंति हृदये सदा ॥ ३७ ॥ बाह्ये स्वार्थं सतीत्वं च ज्ञापयंती प्रयत्नतः ॥ शश्वत्कामा च रामां च कामाधारा मनोहरा ॥ ३८ ॥ बाह्ये छलात्खेदयंती स्वांतमैथुनमानसा ॥ कांतं हसंती रहसि बाह्येऽतीव सुलज्जिता ॥ ३९ ॥ मानिनी मैथुना भावे कोपना कलहांकुरा ॥ सुप्रीता भूरिसंभोगात्स्वल्पमैथुनदुःखिता ॥ ४० ॥ सुमिष्टान्नाच्छीततोयादाकांक्षती च मानसे ॥ सुन्दरं रसिकं कांतं युवानं गुणिनं सदा ॥ ४१ ॥

विशेष व्यग्र रहती हैं ॥ ३८ ॥ वह मुखसे नायकको प्रत्याख्यान करनेके उद्योग करती हैं, किन्तु अन्तरमें रमणवासना सदा जाज्वल्यमान है नायकको अकेला पानेपर निर्लज्ज हँसती रहती हैं किन्तु बाहर लज्जाकी सीमा नहीं रहती ॥ ३९ ॥ वह नायकके सहित संगत न होनेके कारण ही अभिमान में भरती हैं क्रोधसे अंग जलते रहते हैं और उनमें कलहबीज अंकुरित हो जाता है जब बराबर संभोग वासना चरितार्थ होती रहती हैं, तब फिर आनन्दकी सीमा नहीं रहती, किन्तु उसकी लाघवता होनेपर ही ऐसी दुःखाग्नि प्रज्वलित हो उठती है ॥ ४० ॥ मिष्टान्न और सुशीतल सलिलके कारण ही गुणवान् सुरसिक सुश्रीयुव पुरुष उनके एकमात्र लक्ष्यस्थल हैं ॥ ४१ ॥

वह संभोगमें चतुर सुरसिक युवाको पुत्रकी अपेक्षा प्राणोंसे अधिक प्रियतम जानती हैं ॥ ४२ ॥ और यदि वही प्रिय संभोगमें अपटु (मूर्ख) वा वृद्ध हो, तो उसको शत्रुके समान जानती हैं, क्रोधमें भरी सदा उसके संग क्लेश करती हैं ॥ ४३ ॥ यही क्या सर्प जिस प्रकार चूहेको ग्रास करता है, इस प्रकार वह तादृश पुरुषको ग्रासकर जाती हैं वह मूर्तिमान् दुःसाहस और समस्त दोषोंकी आकर (खान) स्वरूप हैं ॥ ४४ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादि देवता भी उनके निकट मोहित होते हैं यही क्या वह ऐसी मोहिनी स्त्रियोंका अन्त नहीं पासकते यह तपोमार्गकी महान् विघ्नकारी और मोक्षद्वारकी कपाट स्वरूप हैं ॥ ४५ ॥ हरिभक्ति ऐसी स्त्रियोंके निकट तीनों अवस्थामें नहीं जा सकती वह मायाकी एकमात्र आधार और संसाररूपी कारागारकी निगड (बेड़ी) स्वरूप

सुतात्परमभिस्नेहं कुर्वती रसिकोपरि ॥ प्राणाधिकं प्रियतमं संभोगकुशलं प्रियम् ॥ ४२ ॥ पश्यंति रिपुतुल्यं च वृद्धं वामैथुनाक्षमम् ॥ कलहं कुर्वती शश्वत्तेन सार्धं सुकोपना ॥ ४३ ॥ वाचया भक्षयंती तं सर्पमाखुमिवोल्वणम् ॥ दुःसाहसस्वरूपा च सर्वदोषाश्रया सदा ॥ ४४ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां दुःसाध्या मोहरूपिणी ॥ तपोमार्गार्गला शश्वन्मोक्षद्वारकपाटिका ॥ ४५ ॥ हरेर्भक्तिव्यवहिता सर्वमायाकरंडिका ॥ संसारकारागारे च शश्वन्निगडरूपिणी ॥ ४६ ॥ इंद्रजालस्वरूपा च मिथ्या च स्वप्न रूपिणी ॥ बिभ्रती बाह्यसौंदर्यमधोंऽगमतिकुत्सितम् ॥ ४७ ॥ नानाविण्मूत्रपूयानामाधारं मलसंयुतम् ॥ दुर्गंधि दोषसंयुक्तं रक्तारक्तम संस्कृतम् ॥ ४८ ॥ मायारूपा मायिनां च विधिना निर्मिता पुरा ॥ विषरूपा मुमुक्षूणामदृश्याऽप्यभिवांछताम् ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वा तुलसी तं च विरराम च नारद ॥ सस्मितः शंखचूडश्च प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ५० ॥ शंखचूड उवाच ॥ त्वया यत्कथितं देवि न च सर्वमलीककम् ॥ किंचित्सत्यमलीकं च किंचिन्मत्तो निशामय ॥ ५१ ॥

हैं ॥ ४६ ॥ वह ऐन्द्रजालिकी विद्या और मिथ्यास्वप्नस्वरूप हैं उनका बाहिरी सौन्दर्य सबको मोहित करता है उनका आधाअंग अति कुत्सित ॥ ४७ ॥ और विष्ठा मूत्र तथा लार इत्यादि मलका एकमात्र आधार है उसमें दुर्गंध दोषकी सीमा नहीं और वह स्थान रक्ताक्त एवं अति अपवित्र है ॥ ४८ ॥ भगवान् विधाताने उनको मायावी पुरुषों की माया और मुमुक्षु पुरुषोंको विषरूपा कहकर उत्पन्न किया है ॥ ४९ ॥ हे वत्स नारद ! जब देवी तुलसी शंखचूडसे इस प्रकार कहकर मौन होगई तब वह हास्यवदन हो उनसे कहने लगा ॥ ५० ॥ शंखचूड बोला हे देवि ! तुमने जो कहा वह सर्वथा मिथ्या नहीं है इसमें कुछ मिथ्या और कुछ सत्य है मैं इसका स्वरूप कहता हूं सुनो ॥ ५१ ॥

विधाताने सर्व विमोहन रमणीमूर्तिको द्विधा विभक्त करके उत्पन्न किया है उनमें एकभाग प्रशंसनीय और एक भाग अप्रशंनीय है ॥ ॥ ५२ ॥ लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री और राधा इत्यादि स्त्रियोंको सृष्टिके मूल कारण रूपमें उत्पन्न किया है अतएव यह आदि सृष्टि हैं ॥ ५३ ॥ जो सब स्त्रियें इनके अंशसे उत्पन्न हैं वास्तवमें वह अति प्रशंसनीय कीर्त्तिस्वरूप और मंगलदायक हैं ॥ ५४ ॥ शतरूपा, देवहूती, स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, छायावती, रोहिणी, वरुणानी शची ॥ ५५ ॥ कुबेरकी पत्नी दिति, अदिति, लोपामुद्रा, अनुसूया, (कौटभी) कोटरी, तुलसी ॥ ५६ ॥ अहल्या, अरुन्धती, मेना, तारा, मन्दो

निर्मितं द्विविधं धात्रा स्त्रीरूपं सर्वमोहनम् ॥ कृत्वा रूपं वास्तवं च प्रशस्यं चाप्रशंसितम् ॥ ५२ ॥ लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिकादिका ॥ सृष्टिसूत्रस्वरूपा च आद्या सृष्टिर्विनिर्मिता ॥ ५३ ॥ एतासामं शरूपं च स्त्रीरूपं वास्तवं स्मृतम् ॥ तत्प्रशस्यं यशो रूपं सर्वमंगलकारकम् ॥ ५४ ॥ शतरूपा देवहूती स्वधा स्वाहा च दक्षिणा ॥ छायावती रोहिणी च वरुणानी शची तथा ॥ ५५ ॥ कुबेरस्य च पत्नी याऽप्यादितश्च दितिस्तथा ॥ लोपामुद्राऽनसूया च कोटिभी तुलसी तथा ॥५६॥ अहल्याऽरुंधती मेना तारा मंदोदरी तथा ॥ दमयंती वेदवती गंगा च मनसा तथा ॥ ५७ ॥ पुष्टिस्तुष्टिः स्मृतिर्मेधा कालिका च वसुन्धरा ॥ षष्ठी मंगल चंडी च मूर्तश्च धर्मकामिनी ॥ ५८ ॥ स्वस्ति श्रद्धा च शांतिश्च कांतिः क्षान्तिस्तथा परा ॥ निद्रा क्षुत्पिपासा संध्या रात्रिदिनानि च ॥ ५९ ॥ सम्पत्तिर्धृतिकीर्ती च क्रिया शोभा प्रभा शिवा ॥ यत्स्त्रीरूपश्च सम्भूतमुत्तमन्तु युगे युगे ॥ ६० ॥ कलाकलांशरूपं च स्ववैंश्यादिकमेव च ॥ तदप्रशस्यं विश्वेषु पुंश्चलीरूपमेव च ॥ ६१ ॥ सत्त्वप्रधानं यद्रूपं तद्युक्तश्च प्रभावतः ॥ तदु त्तमं च विश्वेषु साध्वीरूपं च शंसितम् ॥ ६२ ॥

दरी, दमयन्ती, वेदवती, गंगा, मनसा ॥ ५७ ॥ पुष्टि, तुष्टि, स्मृति; मेधा, कालिका, वसुन्धरा, षष्ठी, मंगलचंडी धर्मकामिनी मूर्त्ति ॥ ५८ ॥ स्वस्ति, श्रद्धा, शान्ति, कान्ति, क्षान्ति, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा, संध्या, रात्रि, दिवा, ॥ ५९ ॥ सम्पत्ति, धृति, कीर्ति, क्रिया, शोभा प्रभा और शिवा इत्यादि जो सब स्त्रियें उत्पन्न होती हैं वह सब युगोंमें ही श्रेष्ठ हैं, ॥६०॥ स्वर्गवेश्या रमणीगण पूर्वोक्त कामिनियोंकी कला और अंशरूप हैं विश्वमें वह प्रशंसनीय नहीं हैं वह पुंश्चली कहकर विख्यात हैं ॥ ६१ ॥ जो स्त्रियें सत्वप्रधाना हैं वह श्रेष्ठ और प्रभा सम्पन्न हैं विश्वमें वही उत्तम और साध्वी कहकर प्रसिद्ध हैं ॥ ६२ ॥

वास्तवमें वह बात भी मिथ्या नहीं हैं पण्डितगण भी उनको उत्कृष्ट कहकर गणना करते हैं जिस प्रकार सत्वगुणात्मक अंश है इसी प्रकार रज और तमोगुणके भेदसे अंश नानाविधि हैं ॥ ६३ ॥ रजोगुणात्मिका स्त्रियोंको मध्यम कहा जाता है केवल भोग सुखमें लालच करनेवाली संभोगके वशीभूत और सदा स्वीय (अपने) कार्य साधनमें तत्पर हैं ॥ ६४ ॥ ऐसी स्त्रियें प्रायः कपटी मोहकारिणी और धर्मार्थ कार्यके बहिर्भूत होती हैं इस कारण रजोगुणात्मिका स्त्रियें प्रायः असती दोषमें लिप्त होती हैं ॥ ६५ ॥ पण्डित जन ऐसी स्त्रियों को मध्यम कहते हैं और तमोगुणात्मिका स्त्रियें अधम कही गई हैं ॥ ६६ ॥ सद्वंशोत्पन्न पण्डित गण कभी निर्जनमें वा गुप्त स्थानमें पराई स्त्रीके संग बात चीत नहीं करते ॥ ६७ ॥ किन्तु मैं केवल ब्रह्माकी आज्ञानुसार तुम्हारे निकट

तद्वास्तवं च विज्ञेयं प्रवदंतिमनीषिणः ॥ रजोरूपं तमोरूपं कलासु विविधंस्मृतम् ॥६३॥ मध्यमा रजसश्चांशास्तास्तु भोगेषु लोलुपाः ॥ सुखसम्भोगवश्याश्च स्वकार्ये निरताः सदा ॥ ६४ ॥ कपटा मोहकारिण्यो धर्मार्थविमुखाः सदा ॥ रजोरूपस्य साध्वीत्वमतो नैवोपजायते ॥ ६५ ॥ इदं मध्यमरूपं च प्रवदंति मनीषिणः ॥ तमोरूपं दुर्निवार्यमधमं तद्विदुर्बुधाः ॥ ६६ ॥ न पृच्छति कुले जातः पंडितश्च परस्त्रियम् ॥ निर्जने निर्जले वाऽपि रहस्यपि परस्त्रियम् ॥ ६७ ॥ आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना ॥ गांधर्वेण विवाहेन त्वां ग्रहीष्यामि शोभने ॥६८॥ अहमेव शंखचूडो देवविद्रावकारकः ॥ दनुवंश्यो विशेषेण सुदामाऽहं हरेः पुरा ॥६९॥ अहमष्टसु गोपेषु गोपोऽपि पार्षदेषु च ॥ अधुना दानवेंद्रोऽहं राधिकायाश्च शापतः ॥ ७० ॥ जातिस्मरोऽहं जानामि कृष्णमंत्रप्रभावतः ॥ जातिस्मरा त्वं तुलसी संभुक्ता हरिणा पुरा ॥ ७१ ॥ त्वमेव राधिकाकोपाज्जातासि भारते भुवि ॥ त्वां संभोक्तुमुत्सुकोऽहं नालं राधाभयात्ततः ॥७२॥

आया हूं हे सुन्दरी ! इस समय गांधर्व विवाहके अनुसार तुम्हारा पाणिग्रहण करूंगा ॥ ६८ ॥ मेरा नाम शंखचूड है देवता तकभी मुझको देखकर भयसे भाग जाते हैं, मैं पूर्वकालके समय सुदामा नामक ॥ ६९ ॥ श्रीहरिका अति प्रियतम सखा था सम्प्रति राधिकाके शापसे दानवकुलमें जन्म ग्रहण किया है, मैं श्रीकृष्णका पार्षद और आठ गोपोंमें प्रधान गोप था,इस समय राधिकाके शाप प्रभावसे दानवेन्द्र शंखचूड हुआ हूं ॥ ७० ॥ मैंने श्रीकृष्णके अनुग्रहसे और मन्त्रके प्रभावसे जातिस्मर होकर जन्म ग्रहण किया है तुम भी जातिस्मरा तुलसी हो, पूर्वमें श्रीकृष्णने तुमसे संभोग किया है ॥७१॥ तुमने राधिकाके कोपसे भारतमें जन्म ग्रहण किया है, मैं उस समय तुमको भोग करनेके लिये अत्यंत व्यग्र हुआ था किंतु राधाके भयसे आशा चरितार्थ नहीं कर सका ॥ ७२ ॥

दे. भा. ॥७०॥ हे मुनिवर ! जब शंखचूड यह बातें कहकर मौन हो गया तब तुलसी आनंदितमन हो हँसते हँसते उससे कहने लगी ॥ ७३ ॥ तुलसी बोली जगत्में ऐसे पुरुष ही यशस्वी होते हैं और स्त्रियें ऐसे कान्तकीही सदा अभिलाषा करती हैं ॥ ७४ ॥ वास्तवमें इस समय तुम्हारे द्वारा विचारसे परास्त हुई, जो पुरुष स्त्रीजित है, वह अत्यंत अशुचि और समाजनिन्दित है ॥ ७५ ॥ स्त्रीजित मनुष्यको पितृलोग देवलोग और गंधर्वगण पर्यंत त्याज्यज्ञान करते हैं यही नहीं वरन् पिता, माता, भ्राता पर्यंत मनही मनमें उससे घृणा करते हैं ॥ ७६ ॥ वेदमें कहा है कि, जननाशौच और मरणाशौच होनेपर ब्राह्मण दशवें, क्षत्रिय बारह दिनमें ॥ ७७ ॥ वैश्य पन्द्रह दिनमें और हीन जाति शूद्रभी एक महीनेमें शुद्धिलाभ करता है, किंतु स्त्रीजित अशुचि पुरुषका चितानलके अतिरिक्त

इत्येवमुक्त्वा स पुमान्विरराम महामुने ॥ सस्मितं तुलसी तुष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ७३ ॥ तुलस्युवाच ॥ एवंविधो बुधो नित्यं विश्वेषु च प्रशंसितः ॥ कांतमेतंविधं कांता शश्वदिच्छति कामतः ॥ ७४ ॥ त्वयाऽहमधुना सत्यंविचारेण पराजिता ॥ स निंदितश्चाप्यशुचिर्यः पुमांश्च स्त्रिया जितः ॥ ७५ ॥ निंदंति पितरो देवा बांधवाः स्त्रीजितं नरम् ॥ स्त्रीजितं मनसा माता पिता भ्राता च निंदति ॥ ७६ ॥ शुद्धो विप्रो दशाहेन जातके मृतके यथा ॥ भूमिपो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहतः ॥ ७७ ॥ शूद्रो मासेन वेदेषु मातृवद्धीन संकरः ॥ अशुचिःस्त्रीजितः शुद्ध्येच्चितादहन कालतः ॥ ७८ ॥ न गृह्णन्तीच्छया तस्य पितरः पिण्डतर्पणम् ॥ न गृह्णन्त्येवदेवाश्च तस्य पुष्पजलादिकम् ॥ ७९ ॥ किं वा ज्ञानेन तपसा जपहोमप्रपूजनैः ॥ किं विद्याया च यशसा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ ८० ॥ विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वं च परीक्षितः ॥ कृत्वा परीक्षां कांतस्य वृणोति कामिनी वरम् ॥ ८१ ॥ वराय गुणहीनाय वृद्धायाज्ञानिने तथा ॥ दरिद्राय च मूर्खाय रोगिणे कुत्सिताय च ॥ ८२ ॥

शुद्धिका उपाय नहीं है ॥ ७८ ॥ पितृ कभी इच्छापूर्वक स्त्रीजित पुरुषका पिंड और तर्पणादि ग्रहण नहीं करते अधिक क्या देवता भी उसका दिया पुष्प और जलांजलि ग्रहण करनेमें संकुचित होते हैं ॥ ७९ ॥ जिनका चित्त स्त्रियोंके अत्यंत वशीभूत है, उनके विज्ञान, तपस्या, जप होम, पूजा, विद्या और यशसे कोई फल उदय नहीं होता ॥ ८० ॥ मैंने तुम्हारा विद्याबल जाननेके लिये तुम्हारी परीक्षा की है, क्योंकि दोषगुणकी परीक्षा करके कांतको वरण करना स्त्रियोंका अवश्य कर्तव्य है ॥ ८१ ॥ गुणहीन, वृद्ध, अज्ञानान्ध, दरिद्र, मूर्ख, रोगयुक्त, कुत्सिताकार, अत्यंत कोपनस्वभाव, अत्यंत दुर्मुख, पंगु अंगहीन अंध बधिर (बहरा) ॥ ८२ ॥

मूक (गूंगा) जड और क्लीबतुल्य पापीको कन्यादान करनेसे ब्रह्महत्याके समान फल लाभ होता है ॥ ८३ ॥ शांतस्वभाव, गुणवान् विज्ञान सच्चरित्र, युवापुरुषको कन्यादान करनेसे दश अश्वमेधयज्ञका फललाभ होता है ॥ ८४ ॥ यदि कोई कन्याका पालन करके धनके लोभसे उस कन्याको बेचता है, उसको कुम्भीपाक नरकमें गिरना पड़ता है ॥ ८५ ॥ वह पातकी उस नरकमें वास करके उस कन्याका मूत्र और मल भक्षण करके काल व्यतीत करता है वह चौदह इन्द्रोंके समय पर्यंत कृमि और काकोंके द्वारा दंशित होते हैं ॥ ८६ ॥ इसमें भी उसका निस्तार नहीं होता उस नरकके भोगनेपर फिर उसको व्याधि ग्रसित होकर मनुष्य लोकमें जन्म ग्रहण करना पड़ता है उस मनुष्य जन्ममें मांसविक्रय और मांसभार वहन करके जीविका (निर्वाह)

अत्यन्तकोप युक्ताय वाऽत्यन्तदुर्मुखाय च ॥ पंगवे चांगहीनाय चांधाय बधिराय च ॥८३॥ जडाय चैव मूकाय क्लीबतुल्याय पापिने ॥ ब्रह्महत्यां लभे त्सोऽपि स्वकन्यां प्रददाति यः ॥८४॥ शान्तायगुणिने चैव यूने च विदुषेऽपि च ॥ साधवे च सुतां दत्त्वा दशयज्ञफलं लभेत् ॥८५॥ यः कन्यापालनं कृत्वा करोति यदि विक्रयम् ॥ विक्रेता धन लोभेन कुम्भीपाकं स गच्छति ॥८६॥ कन्यामूत्रं पुरीषं च तत्र भक्षति पातकी ॥ कृमिभिर्दंशितः काकैर्यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ८७ ॥ तदंते व्याधिसंयुक्तः स लभेज्जन्म निश्चितम् ॥ विक्रीणाति मांस भारंवहत्येव दिवानिशम् ॥ ८८ ॥ इत्येवमुक्त्वा तुलसी विरराम तपोनिधे ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किं करोषि शंखचूड संवादमनया सह ॥८९॥ गान्धर्वेण विवाहेन त्वं चास्या ग्रहणं कुरु ॥ पुरुषेष्वसि रत्नं त्वं स्त्रीषु रत्नं त्वियंसती ॥ ९० ॥ विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुण वान्भवेत् ॥ निर्विरोधसुखं राजन्को वा त्यजति दुर्लभम् ॥ ९१ ॥ योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नात्र संशयः ॥ किं परीक्षसि त्वं कान्त मीदृशं गुणिनं सति ॥ ९२ ॥ देवानामसुराणां च दानवानां विमर्दकम् ॥ यथा लक्ष्मीश्च लक्ष्मीशे यथा कृष्णे च राधिका ॥ ९३ ॥

करनी पड़ती है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ हे तपोधन ! जब तुलसी इस प्रकार कहकर मौन अर्थात् चुप हो गई, तब ब्रह्माजीने वहां प्रगट होकर शंखचूडसे कहा हे शंखचूड ! तुम क्यों वृथा तुलसीके संग कथोपकथनमें काल व्यतीत करते हो ॥ ८९ ॥ शीघ्र गांधर्व विवाहमें इसको ग्रहण करो तुम जैसे पुरुषरत्न हो, तुलसी भी वैसेही स्त्रीरत्न है ॥ ९० ॥ रसिकाके संग रसिकका समागम अतीव सुखकर होता है, हे राजन् ! अनायास प्राप्त दुर्लभ सुखको कौन पुरुष छोडनेकी इच्छा करता है ॥ ९१ ॥ जो पुरुष उसको त्याग करता है, इस जगतमें उसके समान पशु दूसरा कोई नहीं है,हे तुलसी ! तुमभी किसलिये ऐसे ॥ ९२ ॥ देवासुर दानव विमर्दनकारी गुणवान् पुरुषकी परीक्षा करती हो, हे वत्से ! तुम नारायणकी लक्ष्मी कृष्णकी राधिका ॥ ९३ ॥

दे. भा. ॥७१॥

मेरी सावित्री, भव (शिव) की भवानी, वराहकी धरा, यज्ञकी दक्षिणा ॥ ९४ ॥ अत्रिकी अनसूया, नलकी दमयंती, चन्द्रकी रोहिणी, कन्दर्पकी रति ॥ ९५ ॥ कश्यपकी अदिति, वसिष्ठजीकी अरुन्धती, गौतमकी अहिल्या, कर्दमकी देवहूति, ॥ ९६ ॥ बृहस्पतिकी तारा, मनुकी शतरूपा, हुताशनकी स्वाहा, यज्ञकी दक्षिणा ॥ ९७ ॥ देवेन्द्रकी शची, गणेश्वरकी पुष्टि, स्कन्दकी देवसेना, और धर्मकी मूर्तिके समान ॥ ९८ ॥ शंखचूडकी सौभाग्यशालिनी प्रियतमा पत्नी हो तुम रूपवान् शंखचूडके संग कुछ कालतक ॥ ९९ ॥ अनेक स्थानमें इच्छानुसार विहार करो इसके पीछे जब शंखचूड देहत्याग करेगा तब तुम गोलोकमें द्विभुज

यथा मयि च सावित्री भवानी च भवे यथा ॥ यथा धरावराहे च दक्षिणा च यथाऽध्वरे ॥ ९४ ॥ यथाऽत्रावनसूया च दमयंती यथा नले रोहिणी च यथा चंद्रे यथा कामे रतिः सती ॥ ९५ ॥ यथा दितिः कश्यपे च वसिष्ठेऽरुंधती सती ॥ यथाऽहल्या गौतमे च देवहूतिश्चकर्दमे ॥ ९६ ॥ यथा बृहस्पतौ तारा शतरूपा मनौ यथा ॥ यथा च दक्षिणा यज्ञे यथा स्वाहा हुताशने ॥ ९७ ॥ यथा शची महेंद्रे च यथा पुष्टिर्गणेश्वरे ॥ देवसेना यथा स्कन्दे धर्मे मूर्तिर्यथा सती ॥ ९८ ॥ सौभाग्या सुप्रिया त्वं ज शंखचूडे तथा भव ॥ अनेन सार्धं सुचिरं सुन्दरेण च सुन्दरि ॥ ९९ ॥ स्थाने स्थाने विहारं च यथेच्छं कुरु सन्ततम् ॥ पश्चात्प्राप्स्यसि गोलोके श्रीकृष्णं पुनरेव च ॥ १०० ॥ चतुर्भुजं च वैकुंठे शंखचूडे मृते सति इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ नारद उवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यानं भवता समुदाहृतम् ॥ श्रुतेन येन मे तृप्तिर्न कदाऽपि हि जायते ॥ १ ॥ ततः परं तु यज्जातं तत्त्वं वद महामते ॥ नारायण उवाच ॥ इत्येवमाशिषं दत्त्वा स्वालयं च ययौ विधिः ॥ २ ॥ गांधर्वेण विवाहेन जगृहे तां च दानवः ॥ स्वर्गे दुंदुभिवाद्यं च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥ ३ ॥ स रेमे रामया सार्धं वासगेहे मनोरमे ॥ मूर्च्छां सा प्राप तुलसी नवसंगमसंगता ॥ ४ ॥

श्रीकृष्ण ॥१००॥ और वैकुण्ठमें चतुर्भुज श्रीकृष्णके सहित महासुखसे अनायास विहार कर सकोगी ॥ १०१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ नारदजी बोले यह आपने बड़ा विचित्र आख्यान कहा जिसके सुननेसे किस प्रकार मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ १ ॥ इसके उपरांत जो हुआ सो हे महामते ! आप कहिये नारायण बोले इस प्रकार हरि आशिष दे अपने स्थानको गये ॥ २ ॥ दानवने गांधर्व विवाहसे उसको ग्रहण किया. उस समय स्वर्गमें दुंदुभी बजी और पुष्पवर्षा हुई ॥ ३ ॥ तब वह अपने घरमें उसके साथ रमण करने लगा और नवसंगमसे संगम होनेके कारण तुलसी मूर्छित हो गई ॥ ४ ॥

भा. टी. न. अ० १९

और वह साध्वी संभोग रूपी सुखसागरमें विना जलके ही निमग्न हो गई। चौंसठ शृंगारकी कलाओंसे युक्त जो चौंसठ प्रकार सुख है ॥ ५ ॥ जो कामशास्त्रमें रसिकोंके निमित्त कहा है जो अङ्ग प्रत्यंगके श्लेषसे स्त्रीजनोंको मनोहर है ॥ ६ ॥ वह सब शृंगार रस उस रसिकेश्वरने किया, अतीव मनोहर जन्तु और हित स्थानमें ॥ ७ ॥ पुष्प चन्दनकी शय्यामें पुष्प चन्दनकी सुगंधिद्वारा पुष्प चन्दनसे चर्चित फूलोंके उद्यान और नदियोंके किनारे ॥ ८ ॥ रासमें उस पुष्प चन्दनसे चर्चिताको ग्रहण कर रत्न और भूषणोंसे भूषित ॥ ९ ॥ उन सुरत चतुरोंकी सुरतसे विरति न हुई अपनी अनेक लीलाओंसे सतीने स्वामीका मन हर लिया ॥ १० ॥ और उस रसभावके ज्ञाताने भी अपनी प्रियाका मन हरलिया परस्पर शरीर संघर्षणसे राजाने उसकी छातीका और मस्तकका तिलक हर लिया

निमग्ना निर्जले साध्वी संभोगसुखसागरे ॥ चतुःषष्टिकलामानं चतुःषष्टिविधं सुखम् ॥ ५ ॥ कामशास्त्रे यन्निरुक्तं रसिकानां यथेप्सितम् ॥ अंगप्रत्यंगसंश्लेषपूर्वकं स्त्रीमनोहरम् ॥ ६ ॥ तत्सर्वं रसशृंगारं चकार रसिकेश्वरः ॥ अतीवरम्यदेशे च सर्वजन्तुविवर्जिते ॥ ७ ॥ पुष्पचन्दनतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना ॥ पुष्पोद्याने नदीतीरे पुष्पचन्दन चर्चिते ॥ ८ ॥ गृहीत्वा रसिको रासे पुष्पचन्दनचर्चिताम् ॥ भूषितो भूषणैनैव रत्नभूषणभूषिताम् ॥ ९ ॥ सुरते विरतिर्नास्ति तयोः सुरतिविज्ञयोः ॥ जहार मानसं भर्तुर्लीलया लीलया सती ॥ १० ॥ चेतनां रसिकायाश्च जहार रसभाववित् ॥ वक्षसश्चंदनं राज्ञस्तिलकं विजहार सा ॥ ११ ॥ स च जहार तस्याश्च सिंदूरबिंदुपत्रकम् ॥ तद्वद्वक्षस्युरोजे च नखरेखा ददौ मुदा ॥ १२ ॥ सा ददौ तद्वामपार्श्वे करभूषणलक्षणम् ॥ राजा तदोष्ठपुटके ददौ रदनदंशनम् ॥ १३ ॥ तद्गंडयुगले सा च प्रददौ तच्चतुर्गुणम् ॥ आलिंगनं चुम्बनं च जंघादिमर्दनं तथा ॥ १४ ॥ एवं परस्परं क्रीडां चक्रतुस्तौ विजानतौ ॥ सुरते विरते तौ च समुत्थाय परस्परम् ॥ १५ ॥ सुवेषंचक्रतुस्तत्र यद्यन्मनसि वांछितम् ॥ चन्दनैः कुंकुमारक्तैः सा तस्य तिलकं ददौ ॥ १६ ॥

॥ ११ ॥ उसने उस प्रियाका सिंदूर और बिन्दी हरण की उसने उसके वक्षस्थल और उरोजोंमें प्रसन्नतासे नखरेखा की ॥ १२ ॥ और प्रियाने उसके वामपार्श्वमें कर भूषणकी रेखा की राजाने उसके होठोंमें दंतदंशन किया ॥ १३ ॥ उसने उसके दोनों कपोलोंमें चौगुना दन्तचिह्न किया, आलिंगन चुम्बन जंघादि मर्दन ॥ १४ ॥ इस प्रकार वे दोनों परस्पर क्रीडा करने लगे, सुरतके विरत होनेमें वे दोनों परस्पर उठकर ॥ १५ ॥ मन वांछित वेष करते हुए उसने चन्दन और रक्त कुंकुमसे उसका तिलक किया ॥ १६ ॥

और सर्वांगमें सुन्दर अनुलेप किया सुवासित ताम्बूल और अग्निमें शुद्ध वस्त्र दिये ॥ १७ ॥ पारिजातके फूल जरारोगके हरने वाले तथा अमूल्य रत्नोंसे जडी अँगूठी ॥ १८ ॥ तथा त्रिलोकीमें श्रेष्ठ सुन्दर मणियें मैं तुम्हारी दासी हूं इस प्रकार वारंवार कह पराई ॥ १९ ॥ और परम भक्तिसे अपने गुणशाली स्वामीको प्रणाम किया और हँसकर उसके मुखको वारंवार अपने नेत्रोंसे ॥ २० ॥ निमेषरहित हो सुन्दरताकी खान देखने लगी. तब शंखचूडने उसे खैंचकर हृदयसे लगाया ॥ २१ ॥ घूंघटमें उसका हास्ययुक्त मुखकमल देखने लगा फिर भी उसके कपोल और विम्बोष्ठोंको चुम्बन किया ॥ २२ ॥ और वरुणके लाये

सर्वांगे सुन्दरे रम्ये चकार चानुलेपनम् ॥ सुवासं चैव ताम्बूलं वह्निशुद्धे च वाससी ॥ १७ ॥ पारिजातस्य कुसुमं जरारोगहरं परम् ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणमंगुलीयकमुत्तमम् ॥१८॥ सुंदरं च मणिवरं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ दासी तवाहमित्येवं समुच्चार्य पुनः पुनः ॥ १९ ॥ ननाम परया भक्त्या स्वामिनं गुणशालिनम् ॥ सस्मिता तन्मुखांभोजं लोचनाभ्यां पुनः पुनः ॥ २० ॥ निमेषरहिताभ्यां चाप्यपश्यत्कामसुन्दरम् ॥ स च तां च समाकृष्य चकार वक्षसि प्रियाम् ॥ २१ ॥ सस्मितं वाससाऽऽच्छन्नं ददर्श मुखपंकजम् ॥ चुचुंब कठिने गंडे बिंबोष्ठौ पुनरेव च ॥ २२ ॥ ददौ तस्यै वस्त्रयुग्मं वरुणादाहृतं च यत् ॥ तदाहृतां रत्नमालां त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम् ॥ २३ ॥ ददौ मंजीरयुग्मं च स्वाहाया आहृतं च यत् ॥ केयूरयुग्मं छायाया रोहिण्याश्चैव कुण्डलम् ॥ २४ ॥ अंगुलीयकरत्नानि रत्याश्च करभूषणम् ॥ शंखं च रुचिरं चित्रं यद्दत्तं विश्वकर्मणा ॥ २५ ॥ विचित्रपद्मकश्रेणीं शय्यां चापि सुदुर्लभाम् ॥ भूषणानि च दत्त्वा च भूपो हासं चकार ह ॥ २६ ॥ निर्ममे कबरीभारे तस्या मांगल्यभूषणम् ॥ सूचित्रं पत्रकं गंडमण्डलेऽस्याः समं तथा ॥ २७ ॥ चन्दलेखात्रिभिर्युक्तं चन्दनेन सुगन्धिना ॥ परीतं परितश्चित्रैः सार्धं कुंकुमबिंदुभिः ॥ २८ ॥

दो वस्त्र उसको दिये और उसीकी लाई त्रिलोकीमें दुर्लभ रत्नमाला दी ॥ २३ ॥ स्वाहाद्वारा अग्निसे लाये दो मंजीर नूपुर दिये सूर्यपत्नी छायाके लाये केयूर बाजूबंद और चन्द्रपत्नी रोहिणीके लाये कुण्डल दिये ॥ २४ ॥ अँगूठी आदि रत्न और रतिके भूषण तथा विश्वकर्माका दिया हुआ शंख ॥ २५ ॥ विचित्र पद्मरागमणिकी वनी शय्या तथा भूषण आदि देकर राजाने हास किया ॥ २६ ॥ और उसके कबरी भारमें मंगलके भूषण बांधे और सुचित्र चन्दन वल्लीरूप पत्र इसके गंडस्थलमें किये ॥ २७ ॥ तीन कर्पूरकी लेखा सुगंधित चन्दन और सब ओर विचित्र कुंकुमकी विंदु लगाई ॥ २८ ॥

प्रज्वलित दीपकके समान सिंदूरका तिलक किया. उसके दोनों पदकमल जो स्थल पद्मको लज्जित करते थे ॥ २९ ॥ वहां नखरेखाओंमें महावरसे विचित्र किया फिर वह रँगा हुआ पद अपनी छातीमें रखकर ॥ ३० ॥ हे देवी ! मैं तेरा दास हूं इस प्रकार वारंवार उच्चारण कर रत्नभूषित हाथसे उसे अपने वक्षस्थलमें कर ॥ ३१ ॥ तपोवनको छोड़कर राज्यके स्थानान्तरमें आया. मलयाचल, देव स्थान, तपोवन प्रत्येक पर्वतमें ॥ ३२ ॥ अतिरमणीय स्थान स्थान तथा निर्जन पुष्पोद्यान प्रति कन्दरा समुद्रके तट ॥ ३३ ॥ पुष्पभद्रा नदीके किनारे जहां मनोहर जल मिश्रित पवन चलती है दिव्य पुलिन २ नदी २ नद २ में ॥ ३४ ॥ मधुके कारण मधुकरोंकी दिव्य ध्वनिसे शब्दायमान विस्पन्दन वन सुरसन वन नन्दन गंधमादन

ज्वलत्प्रदीपाकारं च सिंदूरतिलकं ददौ ॥ तत्पादपद्म युगले स्थलपद्मविनिंदिते ॥ २९ ॥ चित्रालक्तकरामं च नखरे षु ददौ मुदा ॥ स्ववक्षसि मुहुर्न्यस्य सरागं चरणांबुजम् ॥ ३० ॥ हे देवि तव दासोऽहमित्युच्चार्य पुनः पुनः ॥ रत्नभूषितहस्तेन तां च कृत्वा स्ववक्षसि ॥ ३१ ॥ तपोवनं परित्यज्य राजा स्थानांतरं ययौ ॥ मलये देवनिलये शैले शैले तपोवने ॥ ३२ ॥ स्थाने स्थानेऽतिरम्ये च पुष्पोद्याने च निर्जने ॥ कंदरे कंदरे सिंधुतीरे चैवातिसुंदरे ॥ ३३ ॥ पुष्पभद्रानदीतीरे नीरवातमनोहरे पुलिने पुलिने दिव्ये नद्यां नद्यां नदे नदे ॥ ३४ ॥ मधौ मधुकराणां च मधुरध्वनिनादिते ॥ विस्पंदने सुरसने नन्दने गन्धमादने ॥ ३५ ॥ देवोद्याने नंदने च चित्रचंदनकानने ॥ चम्पकानां केतकीनां माधवीनां च माधवे ॥ ३६ ॥ कुन्दानां मालतीनां च कुमुदांभोजकानने ॥ कल्पवृक्षे कल्पवृक्षे पारिजातवने वने ॥ ३७ ॥ निर्जने कांचने स्थाने धन्ये कांचनपर्वते ॥ कांचीवने किंजलके कंचुके ॥ कांचनाकरे ॥ ३८ ॥ पुष्पचन्दनतल्पेषु पुंस्कोकिलरुतश्रुते ॥ पुष्पचन्दसंयुक्तः पुष्पचंदनवायुना ॥ ३९ ॥ कामुक्या कामुकः कामात्स रेमे रामया सह ॥ न हि तृप्तो दानवेन्द्रस्तृप्तिं नैव जगाम सा ॥ ४० ॥

॥ ३५ ॥ देवोद्यान नन्दन चित्र चन्दन कानकमें चम्पक केतकी वसंतमें वासन्ती लताओंके वनमें ॥ ३६ ॥ कुमुद मालती कुमुदाम्भोजवन प्रति कल्पवृक्ष परिजातके वन वनमें ॥ ३७ ॥ निर्जन कांचन स्थान धन्य कांचन पर्वत कांचीवन किंजल्क कंचुक कांचनाकर ॥ ३८ ॥ पुष्प चंदनोंकी शय्या पुंस्कोकिलाओंके शब्द पुष्प चंदनसे संयुक्त पुष्प चन्दनकी वायुसे सेवित ॥ ३९ ॥ इस प्रकार उस कामुकी रामाके संग वह कामुक रमण करने लगा दानवेंद्र और तुलसी कोई भी तृप्त नहीं हुए ॥ ४० ॥

अग्निमें पड़े घीके समान दोनोंका काम बढ़ने लगा, तब दानवराज उसके सहित अपने आश्रममें आय ॥ ४१ ॥ फिर रम्य क्रीडा गृहमें जाकर वारंवार विहार करने लगा इस प्रकार प्रतापी शंखचूडने राज्य भोगा ॥ ४२ ॥ एक मन्वन्तर पर्यंत वह राज राजेश्वर रहा. देव असुर दानवोंको ॥ ४३ ॥ तथा गंधर्व, किन्नर, राक्षसोंको शांतिमें रक्खा परंतु देवता अधिकार हरजानेसे भिक्षुकके समान विचरते थे ॥ ४४ ॥ वे सब बड़े दुःखी हो ब्रह्माकी सभामें गये और वारम्वार अपना वृत्तांत कहकर रोये ॥ ४५ ॥ तब ब्रह्मा देवताओं के साथ शंकरके स्थानमें गये और विधाताने चंद्रशेखर विश्वेशसे सब वर्णन किया

हविषा कृष्णवर्त्मैव ववृधे मदनस्तयोः ॥ तया समागत्य स्वाश्रमं दानवस्ततः ॥ ४१ ॥ रम्यं क्रीडालयं गत्वा विजहार पुनः पुनः ॥ एवं स बुभुजे राज्यं शंखचूडः प्रतापवान् ॥ ४२ ॥ एकमन्वन्तरं पूर्णं राजा राजेश्वरो महान् ॥ देवानामसुराणां च दानवानां च संततम् ॥ ४३ ॥ गन्धर्वाणां किन्नराणां राक्षसानां च शांतिदः ॥ हृताधिकारा देवाश्च चरंति भिक्षुका यथा ॥ ४४ ॥ ते सर्वेऽतिविषण्णाश्च प्रजग्मुर्ब्रह्मणः सभाम् ॥ वृत्तांतं कथयामासू रुरुदुश्च भृशं मुहुः ॥ ४५ ॥ तदा ब्रह्मा सुरैः सार्धं जगाम शंकरालयम् ॥ सर्वेशं कथयामास विधाता चन्द्रशेखरम् ॥ ४६ ॥ ब्रह्मा शिवश्च तैः सार्धं वैकुण्ठं च जगाम ह ॥ दुर्लभं परमं धाम जरामृत्युहरं परम् ॥४७॥ संप्राप च वरं द्वारमाश्रमाणां हरे रहो ॥ ददर्श द्वारपालांश्च रत्नासिंहासनस्थितान् ॥ ४८ ॥ शोभितान्पीतवस्त्रैश्च रत्नभूषणभूषितान् ॥ वनमालान्वितान्सर्वाञ्श्यामसुन्दरविग्रहान् ॥४९॥ शंखचक्रगदापद्मधरांश्चैव चतुर्भुजान् ॥ सस्मितान्स्मेरवक्रास्यान्पद्मनेत्रान्मनोहरान् ॥५०॥ ब्रह्मा तान्कथयामास वृत्तांते गमनार्थकम् ॥ तेऽनुज्ञां च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया ॥ ५१ ॥ एवं षोडश द्वाराणि निरीक्ष्य कमलोद्भवः ॥ देवैः सार्धं तानतीत्य प्रविवेश हरेः सभाम् ॥ ५२ ॥

॥ ४६ ॥ तब देवतोंके साथ ब्रह्मा और भगवान् शम्भु वैकुंठको गये जो परमधाम बड़ादुर्लभ जरामृत्युका हरनेवाला है ॥ ४७ ॥ उन हरिके स्थानके द्वारमें प्राप्त हुए वहां रत्नसिंहासनोंपर स्थित द्वारपालोंको देखा ॥ ४८ ॥ जो पीतवस्त्रोंसे शोभित और रत्नभूषणोंसे भूषित थे सब वनमाला पहरे श्याम सुन्दर शरीर ॥४९ चार भुजा शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये कमल मुख मुसकुराते हुए कमललोचन मनोहर है ॥५०॥ तब ब्रह्माने उनसे अपने आनेका वृत्तान्त कहा तब उनकी आज्ञासे ब्रह्माजी आदि भीतर गये ॥ ५१ ॥ इसप्रकार ब्रह्माजी सोलह द्वार देखते हुए देवताओंके साथ हरिकी सभामें प्रविष्ट हुए ॥ ५२ ॥

जो सभा देवर्षि तथा चतुर्भुजी पार्षदोंसे परिवृत थी सब नारायणस्वरूप और कौस्तुभ धारण किये थे ॥ ५३ ॥ जो नये चन्द्रके मण्डलके समान चौकोन मनो हर मणीन्द्र हारसे बनी हीरोंके सारसे शोभित ॥ ५४ ॥ अमूल्यरत्नोंसे खचित स्वेच्छासे हरिकी बनाई माणिक्य मालाके जालकी आभावाली मुक्ता पंक्तिसे विभूषित मंडलाकार ॥ ५५ ॥ कोटिरत्नोंके दर्पणोंसे मंडित विचित्र चित्ररेखा और अनेकचित्रोंसे विचित्र ॥ ५६ ॥ पद्मरागमणियोंसे रचित रुचिर मणियोंके कमलोंसे संयुक्त तथा स्यमन्तकमणि निर्मित सैकड़ों सोपानसे शोभित ॥ ५७ ॥ रेशमीकी ग्रंथि लगे सुन्दर चन्दनके पत्ते जो इन्द्रनील मणिके स्तंभोंमें लिपट रहे थे जिससे बड़ी मनोहर थी ॥ ५८ ॥ उन्हीं रत्नोंके पूर्णकुम्भोंके समूहोंसे युक्त तथा पारिजातके फूलोंकी बनी सैकड़ों मालाओंसे विराजित ॥ ५९ ॥ कस्तूरी,

देवर्षिभिः परिवृतां पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ॥ नारायणस्वरूपैश्च सर्वैः कौस्तुभभूषितैः ॥ ५३ ॥ नवेन्दुमण्डलाकारां चतुरस्रां मनोहराम् ॥ मणींद्रहारनिर्माणां हीरासारशोभिताम् ॥ ५४ ॥ अमूल्यरत्नखचितां रचितां स्वेच्छया हरेः ॥ माणिक्यमालाजलाभां मुक्तापंक्तिविभूषिताम् ॥ ५५ ॥ मंडितां मण्डालाकारै रत्नदर्पणकोटिभिः ॥ विचित्रैश्चित्ररेखाभिर्नानाचित्रविचित्रिताम् ॥ ५६ ॥ पद्मरागेन्द्ररचितां रुचिरां मणिपंकजैः ॥ सोपानशतकैर्युक्तां स्यमंतकविनिर्मितैः ॥ ५७ ॥ पट्टसूत्रग्रंथियुक्तैश्चारुचन्दनपल्लवैः ॥ इन्द्रनीलस्तंभवर्यैर्वेष्टितां सुमनोहराम् ॥ ५८ ॥ सद्रत्नपूर्णकुंभानां समूहैश्च समन्विताम् ॥ पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजिताम् ॥ ५९ ॥ कस्तूरीकुंकुमारक्तैः सुगंधिचन्दनद्रुमैः ॥ सुसंस्कृतान्तु सर्वत्र वासितां गन्धवायुना ॥ ६० ॥ विद्याधरीसमूहानां नृत्यजालैर्विराजिताम् ॥ सहस्रयोजनायामां परिपूर्णां च किंकरैः ॥ ६१ ॥ ददर्श श्रीहरिं ब्रह्मा शंकरश्च सुरैः सह ॥ वसंतं तन्मध्यदेशे यथेंदुं तारकावृतम् ॥ ६२ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासने स्थितम् ॥ किरीटिनं कुंडलिनं वनमालाविभूषितम् ॥ ६३ ॥ चंदनोक्षितसर्वांगं बिभ्रतं केलि पंकजम् ॥ पुरतो नृत्य गीतं च पश्यंतं सस्मितं मुदा ॥ ६४ ॥

कुंकुम, महावर, सुगंधितद्रव्य चन्दनवृक्षोंसे सर्वत्र संस्कार की हुई है और गंधवायुसे सुगंधित होरही ॥ ६० ॥ विद्याधरियोंके समूह नृत्य कर रहे सहस्रयोजनके विस्तारमें किंकरोंसे व्याप्त ॥ ६१ ॥ इस प्रकार ब्रह्मा और शिवजीने सभामें हरिभगवान्‌का दर्शन किया जो उनके मध्य तारोंमें चन्द्रमाके समान शोभित थे ॥ ६२ ॥ जो अमूल्य रत्नोंके बने विचित्र सिंहासनपर स्थित थे किरीट कुण्डल और वनमालासे भूषित ॥ ६३ ॥ सर्वांगमें चंदन लगाये लीला कमल हाथमें लिये आगे हँसते हुए नृत्य गीतका अवलोकन करते ॥ ६४ ॥

दे. भा.
॥७४॥

शान्त लक्ष्मी और सरस्वती जिनके चरणोंका स्पर्श कर रही लक्ष्मीके दिये सुगंधित ताम्बूलको चाबते हुए ॥ ६५ ॥ परमभक्तिसे गंगा श्वेत चमर कर रही और भक्तिसे शिर झुकाये सब कोई स्तुति कर रहे ॥ ६६ ॥ इस प्रकार परिपूर्णतम प्रभुको देखकर सब ब्रह्मादिक प्रणामकर स्तुति करने लगे ॥ ६७ ॥ उनके सर्वांग पुलकित हो गये आखोंमें जलभर गद्गद कंठ हो परम भक्तिसे भयभीत हुए शिर झुकाये रहे ॥ ६८ ॥ तब जगत्के विधाताने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक हरिसे सब वृत्तान्त कहा ॥ ६९ ॥ सर्वज्ञ सर्वभावज्ञाता हरि उन सबके वचन सुन हँसकर ब्रह्मासे रहस्य कहने लगे ॥ ७० ॥ श्रीभगवान् बोले हे ब्रह्माजी !

शांतं सरस्वतीकांतं लक्ष्मीधृतपदांबुजम् ॥ लक्ष्म्याप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवंतं सुवासितम् ॥ ६५ ॥ गंगया परया भक्त्यासेवितं श्वेतचामरैः ॥ सर्वैश्च स्तूयमानं च भक्तिनम्रात्मकंधरैः ॥ ६६ ॥ एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥ ब्रह्मादयः सुराः सर्वे प्रणम्य तुष्टुवुस्तदा ॥ ६७ ॥ पुलकांचितसर्वांगाः साश्रुनेत्राश्च गद्गदाः ॥ भक्ताश्च परया भक्त्या भीता नम्रात्म कंधराः ॥ ६८ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विधाता जगतामपि ॥ वृत्तांतं कथयामास विनयेन हरेः पुरः ॥ ६९ ॥ हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञः सर्वभाववित् ॥ प्रहस्योवाच ब्रह्माणं रहस्यं च मनोहरम् ॥ ७० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शंखचूडस्य वृत्तांतं सर्वं जानामि पद्मज ॥ मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा ॥ ७१ ॥ शृणु तत्सर्ववृत्तान्तमितिहासं पुरातनम् ॥ गोलोकस्यैव चरितं पापघ्नं पुण्यकारकम् ॥ ७२ ॥ सुदामा नाम गोपश्च पार्षद प्रवरो मम ॥ स प्राप दानवीं योनिं राधाशापात्सुदारुणात् ॥ ७३ ॥ तत्रैकदाऽहमगमं स्वालयाद्रासमंडलम् ॥ विरजामपि नीत्वा च मम प्राणाधिका परा ॥ ७४ ॥ सा मां विरजया सार्धं विज्ञाय किंकरीमुखात् ॥ पश्चात्क्रुद्धासाऽऽजगाम न ददर्श च तत्र माम् ॥ ७५ ॥ विरजां च नदीरूपां मां ज्ञात्वा च तिरोहितम् ॥ पुनर्जगाम सा दृष्ट्वा स्वालयं सखिभिः सह ॥ ७६ ॥

मैं शंखचूडका सब रहस्य जानता हूं वह पहले मेरा भक्त महातेजस्वी गोप रहा है ॥७१॥ उसके वृत्तांतका पुरातन इतिहास सुनो, गोलोकका चरित पापनाशक पुण्यकारी है ॥ ७२ ॥ सुदामानाम गोप मेरा श्रेष्ठ पार्षद था उसनेही राधाके दारुण शापसे दानवी योनि पाई है ॥ ७३ ॥ एक समयमें अपने स्थानसे रासमंडलमें गया और अपनी प्राणाधिक प्रिया विरजा गोपी भी संग थी ॥ ७४ ॥ उस समय राधा किंकरीके मुखसे विरजाके संग मुझे सुनकर देखनेको क्रोध किये आई परन्तु मुझे वहां न देखा ॥ ७५ ॥ विरजाको नदी रूप और मुझे अन्तर्धान जानकर तब वह फिर सखियोंके सहित अपने स्थानको गई ॥ ७६ ॥

तब वह देवी सुदामाके सहित मुझे मन्दिरमें देखकर मौन हुए मेरी क्रोधसे भर्त्सना करने लगी ॥ ७७ ॥ यह सुनकर इस बातको न सहकर सुदामाको क्रोध हुआ और मेरे समीप उसने क्रोधसे राधाको घुडका ॥ ७८ ॥ यह सुनतेही राधा क्रोधसे लाल नेत्रकर उसे मेरी सभामेंसे बाहर जानेकी आज्ञा दी ॥ ७९ ॥ तब आज्ञा पाते ही सहस्रों सखियां उठ खडी हुई और निवारण करनेके अयोग्य महातेजस्वी उस जल्पना करते गोपको बाहर करती हुई ॥ ८० ॥ फिर सुदामाने उन सखियोंको ताडन किया तब राधिकाने सखियोंका ताडन सुनकर रुष्ट हो यह दारुण शाप दिया अरे ! तू दानवी योनिको प्राप्त होगा ॥ ८१ ॥ तब शापित हो रुदन करता मुझे प्रणाम कर सुदामा जाने लगा तब नेत्रोंमें जल भर कृपाकर राधाने उसको निवारण किया ॥ ८२ ॥ हे वत्स ! स्थित

मां दृष्ट्वा मंदिरे देवी सुदामा सहितं पुरा ॥ भृशं सा भर्त्सयामास मौनीभूतं च सुस्थिरम् ॥ ७७ ॥ तच्छ्रुत्वाऽसह मानश्च सुदामा तां चुकोप ह ॥ स च तां भर्त्सयामास कोपेन मम सन्निधौ ॥ ७८ ॥ तच्छ्रुत्वा कोपयुक्ता सा रक्तपंकज लोचना ॥ बहिष्कर्तुं चकाराज्ञां संत्रस्तं मम संसदि ॥ ७९ ॥ सखीलक्षं समुत्तस्थौ दुर्वारं तेजसोल्वणम् ॥ वहिश्चकार तं तूर्णंजल्पंतं च पुनः पुनः ॥ ८० ॥ सा च तत्ताडनं तासां श्रुत्वा रुष्टा शशाप ह ॥ याहि रे दानवीं योनिमित्येवं दारुणं वचः ॥ ८१ ॥ तं गच्छंतं च शपंतं च रुदंतं मां प्रणम्य च ॥ वारयामास तुष्टा सा रुदती कृपया पुनः ॥ ८२ ॥ हे वत्स तिष्ठ मा गच्छ क्व यासीति पुनः पुनः ॥ समुच्चार्य च तत्पश्चाज्जगाम सा च विक्लवम् ॥ ८३ ॥ गोप्यश्च रुरुदुः सर्वा गोपाश्चापि सुदुःखिताः ॥ ते सर्वे राधिका चापि तत्पश्चाद्बोधिता मया ॥ ८४ ॥ आयास्यति क्षणार्धेन कृत्वा शापस्य पालनम् ॥ सुदामंस्त्वमिहागच्छेत्युक्त्वा सा च निवारिता ॥ ८५ ॥ गोलोकस्य क्षणार्धेन चैकं मन्वतरं भवेत् ॥ पृथिव्या जगतां धातरित्येव वचनं ध्रुवम् ॥ ८६ ॥

हो मत जाओ कहां जाते हो ऐसा वारम्वार कहा इस प्रकार कहकर फिर बड़े खेदको प्राप्त हुई ॥ ८३ ॥ सब गोपी रुदनकरनेलगीं और गोपभी बड़े दुःखित हुए उन सबने और मैंनेभी राधिकाको पीछे समझाया ॥ ८४ ॥ तब उसने कहा यह आधे क्षणमें शापका पालन करके आवेगा. हे सुदामा ! तुम यहां आना ऐसा कह उसको शोकसे निवारण किया स्वयं भी शोकरहित हुई ॥ ८५ ॥ परन्तु गोलोकका आधाक्षण मर्त्यलोकका एक मन्वन्तर होता है जगत्के धाताने पृथ्वीमें ऐसा ही नियम किया है ॥ ८६ ॥

इस प्रकार यह शंखचूड फिर वहीं आवेगा वह महाबलिष्ठ योगेश सब मायाका पण्डित है ॥ ८७ ॥ यह तुम हमारा शूल ग्रहण कर शीघ्र भारतमें जावो इस मेरे शूलसे शिवजी उस दानवका संहार करेंगे ॥ ८८ ॥ और वह दानव कण्ठमें मेरा ही सर्व मंगलकारक कवच धारण करता है इस कारण संसारमें विजयी हो रहा है ॥ ८९ ॥ हे ब्रह्मन् ! जबतक उसके पास वह कवच है तबतक उसको कोई नहीं मार सकता, ब्राह्मणका रूप धारण कर उसको मैं मांग लूंगा ॥ ९० ॥ जिस समय उसकी स्त्रीके सतीत्वकी हानि होगी उसी समय उसकी मृत्यु होगी यह वर तुमने ही दिया है ॥ ९१ ॥ सो मैं उसकी पत्नीसे निश्चित संगम करूंगा उसी समय उसकी मृत्यु होगी इसमें सन्देह नहीं [जगन्निवास हरिके प्रत्यक्ष संभोगसे उनमें दोष नहीं है कारण कि, वह सर्वत्र

इत्येवं शंखचूडश्च पुरस्तत्रैव यास्यति ॥ महाबलिष्ठो योगेशः सर्वमायाविशारदः ॥ ८७ ॥ मम शूलं गृहीत्वा च शीघ्रं गच्छत भारतम् ॥ शिवः करोतु संहारं मम शूलेन रक्षसः ॥ ८८ ॥ ममैव कवचं कंठे सर्वमंगलकारकम् ॥ बिभर्त्ति दानवः शश्वत्संसारे विजयी ततः ॥ ८९ ॥ तस्मिन्ब्रह्मन्स्थिते चैव न कोऽपि हिंसितुं क्षमः ॥ तद्याचनां करिष्यामि विप्ररूपोऽहमेव च ॥ ९० ॥ सतीत्वहानिस्तत्पत्न्या यत्र कालं भविष्यति ॥ तत्रैव काले तन्मृत्युरिति दत्तो वरस्त्वया ॥ ९१ ॥ तत्पत्न्याश्चोदरे वीर्यमर्पयिष्यामि निश्चितम् ॥ तत्क्षणे चैव तन्मृत्युर्भविष्यति न संशयः ॥ ९२ ॥ पश्चात्सा देहमुत्सृज्य भविष्यति मम प्रिया ॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथो ददौ शूलं हराय च ॥ ९३ ॥ शूलं दत्त्वा ययौ शीघ्रं हरिरभ्यंतरे मुदा ॥ भारतं च ययुर्देवा ब्रह्मरुद्रपुरो गमाः ॥ ९४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महा० नवमस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ब्रह्मा शिवं संनियोज्य संहारे दानवस्य च ॥ जगाम स्वालयं तूर्णं यथास्थानं सुरोत्तमाः ॥ १ ॥ चंद्रभागानदीतीरे वटमूले मनोहरे ॥ तत्र तस्थौ महादेवो देवविस्तारहेतवे ॥ २ ॥ दूतं कृत्वा चित्ररथं गंधर्वेश्वरमीप्सितम् ॥ शीघ्रं प्रस्थापयामास शंखचूडांतिकं मुदा ॥ ३ ॥

व्यापक हैं] ॥ ९२ ॥ पीछे वह देहत्यागकर मेरी ही प्रिया होगी. यह कह जगत्पतिने शिवजीको शूल दिया ॥ ९३ ॥ शूल देकर भगवान् निज मन्दिरमें प्रविष्ट हुए, ब्रह्मा शिव आदि देवता भारत वर्षमें आये ॥ ९४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां एकोनविंशोध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीनारायण बोले इस प्रकार दानवोंके संहारमें ब्रह्माजी शिवको नियुक्तकर देवता शीघ्रतासे अपने स्थानको चले गये ॥ १ ॥ चन्द्रभागा नदीके किनारे मनोहर वटमूलमें देवताओंके निस्तारके निमित्त महादेव स्थित हुए ॥ २ ॥ और गंधर्वोंके अधिपति चित्ररथगंधर्वको दूत बना शीघ्र ही शंखचूडके निकट भेजा ॥ ३ ॥

वह सर्वेश्वरकी आज्ञासे शीघ्र उस नगरमें गये जो महेन्द्र और कुबेरके नगरसे भी उत्कृष्ट था ॥ ४ ॥ पांचयोजनका विस्तार :दशयोजन दीर्घ स्फटिकमणियोंके समूहसे युक्त यानसे वेष्टित ॥ ५ ॥ सात परिखा और दुर्गसमन्वित जलती हुई अग्निके समान कोटिरत्नोंसे व्याप्त ॥ ६ ॥ मणिकी विचित्र वेदीवाली सैकडों गलियोंसे व्याप्त अनेक वस्तुओंसे विराजित वणिकोंके महलसे व्याप्त ॥ ७ ॥ सिन्दूरके आकारवाली विचित्रमणियोंसे वेष्टित भूषित और दिव्य सैकडों कोटियों आश्रमोंसे व्याप्त था ॥ ८ ॥ उसके मध्यमें शंखचूडका आश्रम था जो बलयाकार पूर्णचन्द्रमण्डलके समान था ॥ ९ ॥ अग्निकी शिखासे युक्त प्रज्वलित चार परिखासे व्याप्त वह दुर्ग शत्रुओंको दुर्गम तथा दूसरोंको सुगम था ॥ १० ॥ अति ऊँचे आकाशको छूनेवाले मणिजडित शिखरोंसे सम्पन्न

सर्वेश्वराज्ञया शीघ्रं ययौ तन्नगरं परम् ॥ महेंद्रनगरोत्कृष्टं कुबेरभवनाधिकम् ॥ ४ ॥ पंचयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये तद्द्विगुणंभवेत् ॥ स्फटिकाकारमणिभिर्निर्मितं यानवेष्टितम् ॥ ५ ॥ सप्तभिः परिखाभिश्च दुर्गमाभिः समन्वितम् ॥ ज्वलदग्निनिभैः शश्वत्कल्पितं रत्नकोटिभिः ॥ ६ ॥ युक्तं च वीथीशतकैर्मणिवेदिविचित्रितैः ॥ परितो वणिजां सौधैर्नानावस्तुविराजितैः ॥ ७ ॥ सिंदूराकारमणिभिर्निर्मितैश्च विचित्रितैः ॥ भूषितं भूषितैर्दिव्यैराश्रमैः शतकोटिभिः ॥ ८ ॥ गत्वा ददर्श तन्मये शंखचूडालयं परम् ॥ अतीव वलयाकारं यथा पूर्णेंदुमंडलम् ॥ ९ ॥ ज्वलदग्निशिखाक्ताभिःपरिखाभिश्चतसृभिः॥तद्दुर्गमं च शत्रूणामन्येषां सुगमं सुखम् ॥ १० ॥ अत्युच्चैर्गगनस्पर्शिमणिशृङ्गविराजितम् ॥ राजितं द्वादशद्वारैर्द्वारपालसमन्वितम् ॥ ११ ॥ मणीन्द्रसारनिर्माणैः शोभितं लक्षमन्दिरैः ॥ शोभितं रत्नसोपानै रत्नस्तंभविराजितम् ॥ १२ ॥ तद्दृष्ट्वा पुष्प दंतोऽपि वरं द्वारं ददर्श सः ॥ द्वारे नियुक्तं पुरुषं शूलहस्तं च सस्मितम् ॥ १३ ॥ तिष्ठंतं पिंगलाक्षं च ताम्रवर्णं भयंकरम् ॥ कथयामास वृत्तांतं जगाम तदनुज्ञया ॥ १४ ॥ अतिक्रम्य च तद्द्वारं जगामाभ्यन्तरं पुनः ॥ न कोऽपि रक्षति श्रुत्वा दूतरूपं रणस्य च ॥ १५ ॥ गत्वा सोऽभ्यन्तरद्वारं द्वारपालमुवाच ह ॥ रणस्य सर्ववृत्तांतं विज्ञापयत मा चिरम् ॥ १६ ॥

बारह द्वारोंमें स्थित द्वारपालोंसे सम्पन्न ॥ ११ ॥ मणियोंके सारवाले लक्ष मंदिरोंसे शोभित रत्नसोपान और रत्नोंके स्तंभोंसे शोभित था ॥ १२ ॥ यह देखकर पुष्पदन्तने द्वारको देखा कि, द्वारमें एक पुरुष शूल हाथमें लिये नियुक्त है ॥ १३ ॥ जो ताम्रवर्ण पिंगल लोचन बड़ा भयंकर है यह अपना वृत्तान्त कहकर उसकी आज्ञासे भीतर गया ॥ १४ ॥ उस द्वारको अतिक्रमण कर भीतर गया रण सम्बन्धी आह्वानमें आये हुए दूतको सुनकर कोई भी नहीं रोकता था ॥ १५ ॥ वह भीतरके द्वारपर जाय द्वारपालसे बोला कि, युद्धका वृत्तान्त बहुत शीघ्र कहो ॥ १६ ॥

उसने वहां जाकर दूतकी बात कही उसने बुलाया तब यह जाकर शंखचूडको देखने लगा ॥ १७ ॥ जो राजमंडलके मध्यमें स्थित रत्नसिंहासनपर शोभित जिसमें मणियोंके रचित सुन्दर दण्डे लगे थे ॥ १८ ॥ रत्नोंके कृत्रिम मनोहर पुष्पोंसे शोभित भृत्य द्वारा मस्तकपर श्वेतछत्र धारण किये हुए ॥ १९ ॥ श्वेतचमर लिये मनोहर पार्षदोंसे वींज्यमान रत्नोंके भूषणोंसे भूषित मनोहर सुन्दर वेष किये ॥ २० ॥ माल अनुलेपन और सुन्दर वस्त्र धारण किये अनेक सुवेष किये दानवोंसे व्याप्त ॥ २१ ॥ सैकडों शस्त्रधारी योधाओंसे सम्पन्न इस प्रकार उसको देखकर पुष्पदन्त बड़ा विस्मिता हुआ ॥ २२ ॥ और शंकरका कहा वृत्तान्त कहने लगा. पुष्पदन्त बोला हे राजेन्द्र ! मैं पुष्पदन्तनामवाला शिवका दूत हूं ॥ २३ ॥

स च तं कथयित्वा च दूतो गंतुमुवाच ह ॥ गत्वा वै शंखचूडं तं ददर्श सुमनोहरम् ॥ १७ ॥ राजमण्डलमध्यस्थं स्वर्णसिंहासने स्थितम् ॥ मणीन्द्ररचितं दिव्यं रत्नदंडसमन्वितम् ॥ १८ ॥ रत्नकृत्रिमपुष्पैश्च प्रशस्तैः शोभितं सदा ॥ भृत्येन मस्तकन्यस्तं स्वर्ण च्छत्रं मनोहरम् ॥ १९ ॥ सेवितं पार्षदगणै रुचिरैः श्वेतचामरैः ॥ सुवेषं सुन्दरं रम्यं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २० ॥ माल्येन लेपनं सूक्ष्मं सुवस्त्रं दधतं मुने ॥ दानवेंद्रैः परिवृतं सुवेषैश्च त्रिकोटिभिः ॥ २१ ॥ शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिरस्त्रपाणिभिः ॥ एवंभूतं च तं दृष्ट्वा पुष्पदंताः सविस्मयः ॥ २२ ॥ उवाच स च वृत्तांतं यदुक्तं शंकरेण च ॥ पुष्पदंत उवाच ॥ राजेंद्र शिव भृत्योऽहं पुष्प दंताभिधः प्रभो ॥ २३ ॥ यदुक्तं शंकरेणैव तद्ब्रवीमि निशामय ॥ राज्यं देहि च देवानामधिकारं च सांप्रतम् ॥ २४ ॥ देवाश्च शरणा पन्ना देवेशं श्रीहरि परम् ॥ हरिर्दत्त्वाऽस्य शूलं च तेन प्रस्थापितः शिवः ॥ २५ ॥ पुष्पभद्रानदीतीरे वट मूले त्रिलोचनः ॥ विषयं देहि तेषां च युद्धं वा कुरु निश्चितम् ॥ २६ ॥ गत्वा वक्ष्यामि किं शम्भुमथ तद्वद मामपि ॥ दूतस्य वचनं श्रुत्वा शंखचूडः प्रहस्य च ॥ २७ ॥ प्रभातेऽहं गमिष्यामि त्वं च गच्छेत्युवाच ह ॥ स गत्वोवाच तं तूर्णं वटमूलस्थमीश्वरम् ॥ २८ ॥

मैं शिवजीका सन्देशा कहता हूं सुनो इस समय देवताओंका राज्य और अधिकार उनको दे दो ॥ २४ ॥ सब देवता भगवान् विष्णुकी शरण हुए हैं हरिने शूलदेकर शिवको प्रस्थापित किया है ॥ २५ ॥ पुष्पभद्रा नदीके किनारे वटमूलमें भगवान् त्रिलोचन स्थित हैं या तो देवताओंका राज्य दो अथवा युद्ध करो ॥ २६ ॥ मैं शिवजीसे जाकर क्या कहूंगा सो आप कहिये दूतके वचन सुनकर शंखचूड हँसकर बोला ॥ २७ ॥ तुम चलो प्रभातको मैं आऊंगा तब उसदूतने जाकर वटमूलमें स्थित ईश्वरसे कहा ॥ २८ ॥

जो कुछ शंखचूडके मुखसे वचन निकले थे कहे, इसी समय स्कन्द शिवजीके निकट आये ॥ २९ ॥ वीरभद्र, नंदी, महाकाल सुभद्रक, विशालाक्ष, बाण, पिंगलाक्ष, विकंपन ॥ ॥ ३० ॥ विरूप, विकृत, मणिभद्र, बाष्कल, कपिल, दीर्घदंष्ट्र, विकट, ताम्रलोचन कालकंठ, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय, दुर्गम ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ आठभैरव, ग्यारह रुद्र, आठ वसु, बारह आदित्य ॥ ३३ ॥ हुताशन चन्द्रमा, अश्विनीकुमार, कुबेर, यम, जयन्त नलकूबर ॥ ३४ ॥ वायु, वरुण, बुध, मंगल, धर्म, ईशान, बली, कामदेव ॥ ३५ ॥ उग्रदंष्ट्र, उग्रचंड कोटर, कैटभी और स्वयं अष्टभुजा भयंकरी

शंखचूडस्य वचनं तदीयं तन्मुखोदितम् ॥ एतस्मिन्नंतरे स्कन्द आजगाम शिवांतिकम् ॥ २९ ॥ वीरभद्रश्च नन्दी च महाकालः सुभद्रकः ॥ विशालाक्षश्च बाणश्च पिंगलाक्षो विकंपनः ॥ ३० ॥ विरूपो विकृतिश्चैव मणिभद्रश्च बाष्कलः ॥ कपिलाख्यो दीर्घदंष्ट्रो विकटस्ताम्र लोचनः ॥ ३१ ॥ कालकण्ठो बली भद्रः कालजिह्वः कुटीचरः ॥ बलोन्मत्तो रणश्लाघी दुर्जयो दुर्गमस्तथा ॥ ३२ ॥ अष्टौ च भैरवा रौद्रा रुद्राश्चैकादशा स्मृताः ॥ वसवोऽष्टौ वासवश्च आदित्या द्वादशस्मृताः ॥ ३३ ॥ हुताशनश्च चन्द्रश्च विश्वकर्माऽश्विनौ च तौ ॥ कुबेरश्च यमश्चैव जयंतो नलकूबरः ॥ ३४ ॥ वायुश्च वरुणश्चैव बुधश्च मंगलस्तथा ॥ धर्मश्च शनिरीशानः कामदेवश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥ उग्रदंष्ट्रा चोग्रदण्डा कोटरा कैटभी तथा ॥ स्वयं चाष्टभुजा देवी भद्रकाली भयंकरी ॥ ३६ ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणविमानोपरि संस्थिता ॥ रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना ॥ ३७ ॥ नृत्यंती च हसंती च गायन्ती सुस्वरं मुदा ॥ अभयं ददाति भक्तेभ्योऽभया सा च भयं रिपुम् ॥ ३८ ॥ बिभ्रती विकटां जिह्वां सुलोलां योजनायताम् ॥ शंखचक्र गदापद्मखड्गचर्मधनुः शरान् ॥ ३९ ॥ खर्परं वर्तुलाकारं गंभीरं योजनायतम् ॥ त्रिशूलं गगनस्पर्शि शक्तिं च योजनायताम् ॥ ४० ॥

कालिकादेवी ॥ ३६ ॥ यह रत्नोंके सारसे निर्मित विमानोंपर स्थित थीं, लालवस्त्र पहरे लाल मालाका अनुलेपन लगाये ॥ ३७ ॥ नाचती सुन्दर सुरसे गाती हुई हँसती थी वह अभया अपने भक्तोंको अभय और शत्रुओंको भय देती थी ॥ ३८ ॥ एक योजन तक विस्तार होनेवाली विकट चलायमान जिह्वाको धारण किये. शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, चर्म, धनुष, शर ॥ ३९ ॥ गोल एक योजन परिमाणका खप्पर लिये, तथा गगनस्पर्शी त्रिशूल और एक योजनके परिमाणकी शक्ति धारण किये ॥ ४० ॥

दे. भा.
॥७७॥

मुद्गर, मूसल, वज्र, खेट, उज्वल, फलक, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, नागपाश ॥ ४१ ॥ नारायणास्त्र, गंधर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गरुडास्त्र, पर्जन्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, जृंभणास्त्र, पर्वतास्त्र, ॥ ४२ ॥ माहेश्वर वायव्य दंड सम्मोहन अव्यर्थमस्त्र, तथा दूसरे सैकडों दिव्यास्त्र युक्त थे ॥ ४३ ॥ और वहां तीनकोटि योगिनी आकर स्थित हुईं, जिनके संग विकट डाकिनी भी तीनकोटि थी ॥ ४४ ॥ भूत प्रेत पिशाच कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, राक्षस, यक्ष, किन्नर ॥ ४५ ॥ इनके सहित स्कंदजी शिवजीको प्रणामकर सहाय करनेको पिताके समीप उनकी आज्ञासे स्थित हुए ॥ ४६ ॥ उधर दूतके चले जानेपर प्रतापवान् शंखचूड

मुद्गरं मुसलं वज्रं खेटं फलकमुज्ज्वलम् ॥ वैष्णवास्त्रं वारुणास्त्रं वाह्नेयं नागपाशकम् ॥ ४१ ॥ नारायणास्त्रं गांधर्वं ब्रह्मास्त्रं गारुडं तथा ॥ पर्जन्यास्त्रं पाशुपतं जृंभणास्त्रं च पार्वतम् ॥ ४२ ॥ माहेश्वरास्त्रं वायव्यं दंडं संमोहनं तथा ॥ अव्यर्थमस्त्रकं दिव्यं दिव्यास्त्रशतकं परम् ॥ ४३ ॥ आगत्य तत्र तस्थौ च योगिनीनां त्रिकोटिभिः ॥ सार्धं च डाकिनीनां च विकटानां त्रिकोटिभिः ॥ ४४ ॥ भूतप्रेतपिशाचश्च कूष्मांडा ब्रह्मराक्षसाः ॥ वेताला राक्षसाश्चैव यक्षाश्चैव तु किन्नराः ॥ ४५ ॥ ताभिश्चैव सह स्कन्धः प्रणम्य चन्द्रशेखरम्॥ पितुः पार्श्वे सहायार्थंसमुवास तदाज्ञया ॥४६॥ अथ दूते गते तत्र शंखचूडः प्रतापवान्॥उवाच तुलसीं वार्ता गत्वाभ्यन्तरमेव च ॥ ४७ ॥ रणवार्तां च सा श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ॥ उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता ॥ ४८ ॥ तुलस्युवाच ॥ हे प्राणबन्धो नाथ तिष्ठ मे वक्षसि क्षणम्॥हे प्राणाधिष्ठातृदेव रक्ष मे जीवितं क्षणम्॥४९॥भुंक्ष्व जन्मसमासाद्य यन्मे मनसि वांछितम् ॥ पश्यामि त्वां क्षणं किंचिल्लोचनाभ्यां च सादरम् ॥ ॥ ५० ॥ आन्दोलयन्ते प्राणा मे मनोदग्धं च सन्ततम् ॥ दुःस्वप्नश्च मया दृष्टश्चाद्येव चरमे निशि ॥ ५१ ॥ तुलसीवचनं श्रुत्वा भुक्त्वा पीत्वा नृपेश्वरः ॥ उवाच वचनं प्राज्ञो हितं सत्यं यथोचितम् ॥ ५२ ॥

मंदिरमें जाय तुलसीसे यह सब बात कहने लगा ॥ ४७ ॥ रणकी वार्ता सुनकर उसका ओष्ठ और कंठ सूख गया और दुःखी मनसे वह साध्वी कहने लगी॥४८॥ तुलसी बोली हे प्राणबंधो ! हे स्वामिन् ! क्षणमात्र मेरे हृदयमें स्थित हो, हे प्राणके अधिष्ठाता देव ! मेरे प्राणोंकी रक्षा करो ॥ ४९ ॥ मेरे मनकी वांछित रतिको इस जन्ममें भोगो कुछ क्षणमें तुमको सादर नेत्रोंसे देखती हूं ॥ ५० ॥ इस समय मेरे प्राण चंचल और मन दग्ध होता है, हे स्वामिन् ! आजही रातको मैंने बुरा स्वप्न देखा है ॥ ५१ ॥ तुलसीके वचन सुन वह राजा भोजन पान करके यथेच्छ हितकारी सत्यवचन कहने लगा ॥ ५२ ॥

शंखचूड बोला सब कर्म योगिनीबन्धन कालसे युक्त है, शुभ हर्ष, सुख, दुःख, भय, शोक, मंगलकालसे होता है ॥ ५३ ॥ कालसेही वृक्ष और उसके स्कंध होते हैं, फिर कालसेही वे फल पुष्पवान् होते हैं ॥ ५४ ॥ कालसेही उनके फल पकते हैं फिर कालसेही पककर कालसेही गिरते हैं ॥ ५५ ॥ हे सुन्दरि ! यह सब विश्व कालसे होकर कालसेही नष्ट होता है. स्रष्टा कालसे प्रगट करता, रक्षक कालसेही रक्षा करता है ॥ ५६ ॥ कालसेही संहार और काल क्रमसे संचरण होता है ब्रह्मा विष्णु शिवादिकी पराप्रकृति ईश्वरी है ॥ ५७ ॥ वह प्रकृतिरूप ईश्वर सबका सृजनकर पालन करने उपरांत संहार करता है वही कालको भी नचाता है. समयपरही वह प्रभु अपनेसे अभिन्न प्रकृतिको निर्माण करके ॥ ५८ ॥ इस चराचर विश्वको करता है. वह सर्वात्मा परमेश्वर सर्वेश

शंखचूड उवाच ॥ कालेन योजितं सर्वं कर्म भोगनिबन्धनम् ॥ शुभं हर्षः सुखं दुःखं भयं शोकश्च मंगलम् ॥ ५३ ॥ काले भवंति वृक्षाश्च स्कंधवंतश्च कालतः ॥ क्रमेण पुष्पवंतश्च फलवंतश्च कालतः ॥५४॥ तेषां फलानि पक्वानि प्रभवंत्येव कालतः ॥ ते सर्वे फलिताः काले पातं यांति च कालतः ॥ ५५ ॥ काले भवति विश्वानि काले नश्यंति सुन्दरि ॥ कालात्स्रष्टा च सृजति पाता पाति च कालतः ॥५६॥ संहर्ता संहरेत्काले क्रमेण संचरंति ते ॥ ब्रह्मविष्णु शिवादीनामीश्वरः प्रकृतिः परा ॥५७॥ स्रष्टा पाता च संहर्ता स चात्मा काल नर्तकः ॥ काले स एव प्रकृतिं स्वाभिन्नां स्वेच्छया प्रभुः ॥ ५८ ॥ निर्माय कृतवान्सर्वान्विश्वस्थांश्च चराचरान् सर्वेशः ॥सर्वरूपश्च सर्वात्मा परमेश्वरः ॥ ५९ ॥ जनं जनेन जनिता जनं पाति जनेन यः ॥ जनं जनेन हरते तं देवं भज सांप्रतम् ॥ ६० ॥ यस्याज्ञया वाति वातः शीघ्रगामी च सांप्रतम् ॥ यस्याज्ञया च तपनस्तपत्येव यथाक्षणम् ॥ ६१ ॥ यथाक्षणं वर्षतींद्रो मृत्युश्चरति जंतुषु ॥ यथाक्षणं दहत्यग्निश्चंद्रो भ्रमति शीतवान् ॥ ६२ ॥ मृत्योर्मृत्युं कालकालं यमस्य च यमं परम् ॥ विभुं स्रष्टुश्च स्रष्टारं मातुश्च मातृकं भवे ॥ ६३ ॥ संहर्तारं च संहर्तुस्तं देवं शरणं व्रजः ॥ को वा बन्धुश्च केषां वा सर्वबन्धुं भज प्रिये ॥ ६४ ॥

और सर्वरूप है ॥ ५९ ॥ वही जनसे जनको प्रगट करते और जनसेही पालन करते हैं. जनको जनसेही हरण कराते हैं इस समय उन्हीं देवका भजन करते ॥ ६० ॥ जिनकी आज्ञासे पवन शीघ्रतासे गमन करता जिनकी आज्ञासे सूर्य प्रतिक्षण तपता है ॥ ६१ ॥ इन्द्र यथा क्षण वरसता मृत्यु प्राणियोंमें विचरण करता अग्नि जलाता और चन्द्रमा शीतल रहता ॥ ६२ ॥ मृत्युका मृत्यु कालका काल यमका यम स्रष्टासे भी स्रष्टा रक्षकके भी रक्षक विभु ॥ ६३ ॥ संहर्ताके भी संहार करनेवाले परमात्माकी शरण हो. हे प्रिये ! कौन किसका बंधु है जो सबका बंधु है उसका भजन करो ॥ ६४ ॥

मैं और तुम कौन हो विधाताने नियुक्त कर दिया है कर्मसेही तुमसे मिले अब वही तुमसे नियुक्त करता है ॥ ६५ ॥ शोक विपत्तिमें अज्ञानीही कातर होते हैं पंडित नहीं, यह सुख दुःखरूप काल चक्रनेमि क्रमसे भ्रमण करता है ॥ ६६ ॥ तुम अवश्य सर्वेश नारायणको प्राप्त होगी, जिस निमित्त पहले बद्रिकाश्रममें तप किया था ॥६७॥ मैंने तुमको ब्रह्माके वर और तपसे प्राप्त किया है और तुम्हारा तप हरिके निमित्त था इस कारण हे कामिनी ! तुम हरिको प्राप्त होगी ॥ ६८ ॥ गोलोकके वृंदावनमें तुम गोविंदको प्राप्त होगी और मैं भी यह दानवी शरीर त्यागनकर उस लोकमें जाऊंगा ॥ ६९ ॥ वह तुम मुझे और मैं तुमको देखूंगा मैं राधाके शापसे दुर्लभ भारतवर्षमें आया था ॥ ७० ॥ फिर वहीं जाऊंगा. हे प्रिये ! इसमें मुझको क्या शोक है तुम भी यह देहत्याग

अहं को वा च त्वं का वा विधिना योजितः पुरा ॥ त्वया सार्धं कर्मणा च पुनस्तेन वियोजितः ॥ ६५ ॥ अज्ञानी कातरः शोके विपत्तौ न च पण्डितः ॥ सुखे दुःखे भ्रमत्येव कालनेमिक्रमेण च ॥ ६६ ॥ नारायणं तं सर्वेशं कांतं यास्यसि निश्चितम् ॥ तपः कृतं यदर्थं च पुराबदरिकाश्रमे ॥ ६७ ॥ मया त्वं तपसा लब्धा ब्रह्मणस्तु वरेण च ॥ हर्यर्थं यत्तव तपो हरिं प्राप्स्यसिकामिनी ॥ ६८ ॥ वृन्दावने च गोविंदं गोलोके त्वं लभिष्यसि ॥ अहं यास्यामि तल्लोकं तनुं त्यक्त्वा च दानवीम् ॥ ६९ ॥ तत्र द्रक्ष्यसि मां त्वं च द्रक्ष्यामि त्वांच सांप्रतम् ॥ अगमं राधिकाशापाद्भारतं च सुदुर्लभम् ॥ ७० ॥ पुनर्यास्यामि तत्रैव कः शोको मे शृणु प्रिये ॥ त्वं च देहं परित्यज्य दिव्यं रूपं विधाय च ॥ ७१ ॥ तत्कालं प्राप्स्यसि हरिं मा कांते कातरा भव ॥ इत्युक्त्वा चदिनांते च तया सार्धं मनोहरम् ॥ ७२ ॥ सुष्वाप शोभने तल्पे पुष्पचन्दन चर्चिते ॥ नानाप्रकारविभवं चकार रत्नमन्दिरे ॥७३॥ रत्नप्रदीपसंयुक्ते स्त्रीरत्नं प्राप्य सुन्दरीम् ॥ निनाय रजनीं राजा क्रीडाकौतुकमंगलैः ॥ ७४ ॥ कृत्वा वक्षसि तां कांतां रुदतीमतिदुःखिताम् ॥ कृशोदरीं निराहारां निमग्नां शोकसागरे ॥ ७५ ॥ पुनस्तां बोधयामास दिव्यज्ञानेन ज्ञानवित् ॥ पुरा कृष्णेन यद्दत्तं भांडीरे तत्त्वमुत्तमम् ॥ ७६ ॥

दिव्यरूप धारण कर ॥ ७१ ॥ तत्काल हरिको प्राप्त होगी हे प्रिये ! शोक मत करो, यह कह दिनान्तमें उसके साथ मनोहर ॥ ७२ ॥ दिव्यचंदनसे चर्चित शय्यामें शयन करके तथा रतन मंदिरमें अनेक प्रकारके विभव कर ॥ ७३ ॥ जहां रत्नोंके दीपक जल रहे उस स्थानमें परम सुन्दरी स्त्रीरत्नको प्राप्त होकर क्रीडा कौतुक मंगलसे राजाने रात्रि व्यतीत की ॥ ७४ ॥ रोती और अति दुःखित अपनी प्रियाको गोदीमें बैठाय जो कृशोदरी निराहार शोकसागरमें निमग्न थी ॥ ७५ ॥ उस ज्ञानीने फिर भी दिव्यज्ञानसे उसको समझाया जो पहले कृष्णने भांडीर वनमें तत्त्वज्ञान दिया था ॥ ७६ ॥

वह सब शोकनाशी ज्ञान उसने उसको दिया तब वह देवी उस ज्ञानको प्राप्त होकर प्रसन्नवदन हुई ॥ ७७ ॥ सब विश्वको नश्वर मान प्रसन्नतासे क्रीडा करने लगी, तब वे दोनों स्त्री पुरुष क्रीडा करते हुए सुखसागरमें निमग्न हुए ॥ ७८॥ सर्वांग उनके पुलकित और निर्जनमें मूर्च्छित हुए सुरतमें उत्सुक होकर उन्होंने अंग प्रत्यंग संयुक्त कर लिये थे ॥ ७९ ॥ वे दो थे परंतु अर्ध नारीश्वरके समान एक अंग होगये थे उस समय तुलसी प्राणपतिको प्राणोंसे अधिक मानती हुई ॥ ८० ॥ और राजाने भी उस प्राणेश्वरी सतीको प्राणोंसे अधिक माना वह दोनों समान सुन्दर सुखसे स्थित हो सोये ॥ ८१ ॥ वह सुन्दर वेषवाले मनोहर सुख सम्भोगसे अचेष्ट होगये और रसाश्रयकी कथासे क्षणमें चैतन्यताको प्राप्त हुए ॥ ८२ ॥ मनोहर दिव्य कथा करते हास्य करने लगे, वह रसभावमें

स च तस्यै ददौ सर्वं सर्वशोकहरं परम् ॥ ज्ञानं संप्राप्य सा देवी प्रसन्न वदनेक्षणा ॥ ७७ ॥ क्रीडां चकार हर्षेण सर्वं मत्वेति नश्वरम् ॥ तौ दंपती च क्रीडंतौ निमग्नौ सुखसागरे ॥ ७८ ॥ पुलकांचितसर्वांगौ मूर्च्छितौ निर्जने मुने ॥ अंगप्रत्यंगसंयुक्तौ सुप्रीतो सुरतोत्सुकौ ॥ ७९ ॥ एकांगौ च तथा तौ द्वौ चार्धनारीश्वरो यथा ॥ प्राणेश्वरं च तुलसी मेने प्राणाधिकं परम् ॥ ८० ॥ प्राणाधिकां च तां मेने राजा प्राणेश्वरीं सतीम् ॥ तौ स्थितौ सुखसुप्तौ च तंद्रितौ सुन्दरौ समौ ॥ ८१ ॥ सुवेषौ सुखसंभोगादचेष्टौ सुमनोहरौ ॥ क्षणं सुचेतनौ तौ च कथयंतौ रसाश्रयात् ॥ ८२ ॥ कथां मनोरमां दिव्यां हसंतौ च क्षणं पुनः ॥ क्षणं च केलिसंयुक्तौ रसभावसमन्वितौ ॥८३॥ सुरते विरतिर्नास्ति तौ तद्विषयपंडितौ ॥ सततं जययुक्तौ द्वौ क्षणं नैव पराजितौ ॥ ८४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे शक्तिप्रादुर्भावे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीकृष्णं मनसा ध्यात्वा रक्षः कृष्णपरायणः ॥ ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय पुष्पतल्पान्मनोहरात् ॥१॥ रात्रिवासः परित्यज्य स्नात्वा मंगलवारिणा ॥ धौते च वाससी धृत्वा कृत्वा तिलकमुज्ज्वलम् ॥ २ ॥ चकाराह्निकमावश्यमभीष्टदेववंदनम् ॥ दध्याज्यमधुलाजांश्च ददर्श वस्तु मंगलम् ॥ ३ ॥

युक्त हो क्षणमें केलि करते क्षणमें बात करते ॥ ८३ ॥ वे दोनों इस विषयमें पंडित थे; इस कारण सुरतिसे विरामको प्राप्त न हुए निरन्तर दोनों जयकी इच्छा करते क्षणमात्रको भी पराजित न हुए ॥ ८४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां शक्तिप्रादुर्भावे विंशोध्यायः ॥ २० ॥ श्रीनारायण बोले वह कृष्णपरायण दानव कृष्णको मनमें ध्यानकर उस मनोहर फूलोंकी शय्यासे ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर ॥ १ ॥ रात्रिके वस्त्रत्याग मंगल जलसे स्नान कर धुले वस्त्र पहर उज्वल तिलक धारण कर ॥२॥ अभीष्ट आह्निक कर्म और देववंदन कर दहीघृत मधु खील इन मांगलिक पदार्थोंका दर्शन कर ॥३॥

श्रेष्ठ रत्न, श्रेष्ठमणि, श्रेष्ठ वस्त्र,श्रेष्ठ सुवर्ण जैसे वह नित्य ब्राह्मणोंको दान करता था इसी प्रकार कर ॥४॥ जो अमूल्य रत्न मुक्तामणि हीरे आदि थे वह यात्रा मंगलके निमित्त ब्राह्मण और गुरुजीको दे ॥ ५ ॥ गजरत्न, अश्वरत्न, धनरत्न यह सब दरिद्र ब्राह्मणोंको मंगलके निमित्त दिये ॥ ६॥ सहस्रों भंडारे दोलाख नगर शतकोटि ग्राम प्रसन्न हो ब्राह्मणों को दिये ॥ ७ ॥ सब दानवोंका अधिपति अपने पुत्रको करके उस भार्या और सब राज्यको पुत्रके समर्पणकर ॥ ८ ॥ प्रजा अनुचरोंके समूह भांडारादि दे अपने वस्त्र पहर धनुष धारण किया ॥ ९ ॥ और भृत्योंके द्वारा सेनासंग्रह कराई, तीन लाख घोडे, एकलाख हाथी

रत्नश्रेष्ठं मणिश्रेष्ठं वस्त्रश्रेष्ठं च कांचनम् ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददौ भक्त्या यथा नित्यं च नारद ॥ ४ ॥ अमूल्यरत्नं यत्किंचिन्मुक्तामाणिक्य
हीरकम् ॥ ददौ विप्राय गुरवे यात्रामंगलहेतवे ॥ ५ ॥ गजरत्नमश्वरत्नं धनरत्नं मनोहरम् ॥ ददौ सर्वं दरिद्राय विप्राय मंगलाय च
॥ ६ ॥ भांडाराणां सहस्राणि नगराणां द्विलक्षकम् ॥ ग्रामाणां शतकोटिं च ब्राह्मणाय ददौ मुदा ॥ ७ ॥ पुत्रं कृत्वा तु राजेन्द्रं सर्वेषु
दानवेषु च ॥ पुत्रे समर्प्य भार्यां तां राज्यं च सर्वसंपदम् ॥ ८ ॥ प्रजानुचरसंघं च भांडारं वाहनादिकम् ॥ स्वयं सन्नाहयुक्तश्च धनुष्पा
णिर्बभूव ह ॥ ९ ॥ भृत्यद्वारा क्रमेणैव चकार सैन्यसंचयम् ॥ अश्वानां च त्रिलक्षेण लक्षेण वरहस्तिनाम् ॥ १० ॥ रथानामयुतेनैव
धानुष्काणां त्रिकोटिभिः ॥ त्रिकोटिभिर्वर्म्मिणां च शूलिनां च त्रिकोटिभिः ॥ ११ ॥ कृता सेनाऽपरिमिता दानवेन्द्रेण नारद ॥ तस्यां
सेनापतिश्चैव युद्धशास्त्रविशारदः ॥ १२ ॥ महारथः स विज्ञेयो रथिनां प्रवरो रणे ॥ त्रिलक्षाक्षौहिणीसेनापतिं कृत्वा नराधिपः ॥ १३ ॥
त्रिंशदक्षौहिणीबाधं भांडौघं च चकार ह ॥ बहिर्बभूव शिबिरान्मनसा श्रीहरिं स्मरन् ॥ १४ ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणविमानमारुरोह सः ॥
गुरुवर्गान्पुरस्कृत्य प्रययौ शंकरांतिकम् ॥१५॥ पुष्पभद्रानदीतीरे यत्राक्षयवटः शुभः ॥ सिद्धाश्रमं च सिद्धानां सिद्धिक्षेत्रं च नारद ॥१६॥

॥ १० ॥ दशसहस्र रथ, तीनकोटि धनुषधारी तीनकोटि वर्मधारी तीनकोटि शूलधारी ॥ ११ ॥ हे नारद ! उस दानवेन्द्रने इतनी सेना एकत्र की उस सेनाका अधिपति युद्धशास्त्रमें विशारद ॥ १२ ॥ रथियों में प्रवर महारथी था.उसको तीनलाख अक्षौहिणीका सेनापति करके ॥ १३ ॥ और तीस अक्षौहिणीको रक्षामें किया. यह सब मनसे भगवान्‌का स्मरणकर शिविरोंसे बाहर हुए ॥ १४ ॥ और वह रत्नोंसे बने विमानपर चढा और गुरुजनोंको आगेकर शंकरके समीप गया ॥ १५ ॥ जहां पुष्पभद्रा नदीके किनारे सुन्दर अक्षयवट था. हे नारद ! वह सिद्धोंका सिद्धाश्रम सिद्धक्षेत्र है ॥ १६ ॥

इस पुण्यक्षेत्र भारतमें कपिलजीके तपका स्थान पश्चिम सागरके पूर्व और मलयाचलके पश्चिममें ॥ १७ ॥ श्रीशैलके उत्तरभाग गंधमादनके दक्षिणमें पाँचयोजनके चौडावमें और इससे सौगुनेके विस्तारमें ॥ १८ ॥ शुद्ध स्फटिकमणिके समान स्वच्छजलवाली इस पुण्यदायक भारतमें निरन्तर जलसे पूर्ण पुष्पभद्रा नदी है ॥ १९ ॥ वह सागरकी प्रिया भार्या निरन्तर सौभाग्यसे सम्पन्न शरावतीसे मिली है जो हिमालयसे निकली है ॥ २० ॥ वह गोमतीको बाईं ओर करती पश्चिमसागरमें मिली है वहां जाकर शंखचूडने शिवजीका दर्शन किया ॥ २१ ॥ जो सौकोटि सूर्यके समान कान्तिमान् वटमूलमें स्थित थे योगासनमारे मुद्रायुक्त हास्यकरते हैं ॥ २२ ॥ जो शुद्धस्फटिक मणिके समान ब्रह्मतेजसे प्रदीप्त हो रहे हैं त्रिशूल पट्टिश और व्याघ्रचर्मका वस्त्र धारे ॥ २३ ॥ भक्तोंकी

कपिलस्य तपः स्थानं पुण्यक्षेत्रं च भारते॥ पश्चिमो दधिपूर्वे च मलयस्य च पश्चिमे ॥ १७ ॥ श्रीशैलोत्तरभागे च गन्धमादनदक्षिणे ॥ पञ्चयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा तथा ॥ १८ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशा भारते च सुपुण्यदा ॥ शाश्वती जलपूर्णा च पुष्पभद्रा नदी शुभा ॥ १९ ॥ लवणाब्धि प्रिया भार्या शश्वत्सौभाग्यसंयुता ॥ शरावतीमिश्रिता च निर्गता सा हिमालयात् ॥२०॥ गोमतीं वामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमोदधौ ॥ तत्र गत्वा शंखचूडो ददर्श चन्द्रशेखरम् ॥२१॥ वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ कृत्वा योगासनं दृष्ट्वा मुद्रायुक्तं च सस्मितम् ॥ २२ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥ त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम् ॥ २३ ॥ भक्तमृत्युहरं शांतं गौरीकांतं मनोहरम् ॥ तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥ २४ ॥ आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ विश्वनाथं विश्वबीजं विश्वरूपं च विश्वजम् ॥२५॥ विश्वंभरं विश्ववरं विश्वसंहारकारकम् ॥ कारणं कारणानां च नरकार्णवतारणम् ॥२६॥ ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानंदं सनातनम् ॥ अवरुह्यविमानाच्च तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः ॥ २७ ॥ सर्वैः सार्धं भक्तियुक्तः शिरसा प्रानाम सः ॥ वामतो भद्रकालीं च स्कन्दं च तत्पुरः स्थितम् ॥ २८ ॥

मृत्यु हरनेवाले शांत गौरीकांत मनोहर तपके फल और सब सम्पत्तियोंके देनेवाले ॥ २४ ॥ आशुतोष प्रसन्नमुख भक्तोंपर दयाकरनेमें तत्पर विश्वनाथ विश्वबीज विश्वरूप विश्वज ॥ २५ ॥ विश्वके भरण करने वाले विश्वमें श्रेष्ठ विश्वके संहार कारक कारणोंके भी कारण नरकसागरसे तारनेवाले ॥ २६ ॥ ज्ञानदाता ज्ञानके बीज ज्ञानमें आनंद सनातनशिवको विमानसे उतरकर दानवेन्द्रने देखा ॥ २७ ॥ और सबके सहित भक्तियुक्त हो प्रणाम किया जिनके बाईं ओर भद्रकाली और आगे स्कन्दजी स्थित थे ॥ २८ ॥

तबकाली स्कन्द और शंकरने उसको आशीर्वाद दिया और नन्दीश्वरादि उसको आया देख खडे होगये ॥ २९ ॥ और परस्पर वार्ता करने लगे, राजाभी वार्ताकर शिवजीके समीप स्थित हुआ ॥ ३० ॥ तब भगवान् महादेवने प्रसन्न हो उससे कहा महादेवजी बोले ब्रह्मा जगत्के विधाता और धर्मवित् धर्मके पिता हैं ॥ ३१ ॥ उनके पुत्र मरीचि परम धार्मिक वैष्णव हैं. उनके पुत्र धार्मिष्ठ प्रजापति कश्यप हैं ॥ ३२ ॥ जिनको प्रसन्न हो दक्षने तेरह कन्या दान की हैं उसमें एक साध्वी दनु सौभाग्यसे वर्द्धित है ॥ ३३ ॥ उस दनुके चालीस पुत्र दानव बड़े तेजस्वी हुए उनमें एक विप्रचित्ति महाबली दानव हुआ ॥ ३४ ॥ उसका

आशिषं च ददौ तस्मै काली स्कन्दश्च शंकरः ॥ उत्तस्थुरागतं दृष्ट्वा सर्वे नन्दीश्वरादयः ॥ २९ ॥ परस्परं च भाषां ते चक्रुस्तत्र च सांप्रतम् ॥ राजा कृत्वा च संभाषामुवास शिवसंनिधौ ॥ ३० ॥ प्रसन्नात्मा महादेवो भगवांस्तमुवाच ह ॥ महादेव उवाच ॥ विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित् ॥३१॥ मरीचिस्तस्य पुत्रश्च वैष्णवश्चापि धार्मिकः ॥ कश्यपश्चापि तत्पुत्रो धर्मिष्ठश्च प्रजापतिः ॥ ३२ ॥ दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै भक्त्या कन्यास्त्रयोदश ॥ तास्वेका च दनुः साध्वी तत्सौभाग्यविवर्धिता ॥ ३३ ॥ चत्वारिंशद्दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोल्वणाः ॥ तेष्वेको विप्रचित्तिश्च महाब लपराक्रमः ॥ ३४ ॥ तत्पुत्रो धार्मिको दंभो विष्णुभक्तो जितेंद्रियः ॥ जजाप परमं मन्त्रं पुष्करे लक्षवत्सरम् ॥ ३५ ॥ शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ तदा त्वां तनयं प्राप परं कृष्णपरा यणम् ॥ ३६ ॥ पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वपि सुधार्मिकः ॥ अधुना राधिकाशापाद्भारते दानवेश्वरः ॥ ३७ ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतं तुच्छं मेने च वैष्णवः ॥ सालोक्य सार्ष्टिसायुज्यसामीप्यं च हरेरपि ॥ ३८ ॥ दीयमानं न गृह्णंति वैष्णवाः सेवनं विना ॥ ब्रह्मत्व ममरत्वं वा तुच्छं मेने च वैष्णवः ॥ ३९ ॥

पुत्र धार्मिक दंभ विष्णुभक्त जितेन्द्रिय हुआ, उसने लाख वर्षतक पुष्करमें परम मन्त्रका जप किया ॥ ३५ ॥ शुक्राचार्यको गुरु करके परमात्मा कृष्णको आराधन किया तब कृष्णपरायण तुम पुत्रको पाया ॥ ३६ ॥ पहले तुम गोपपार्षद गोपोंमें अति धार्मिक थे. हे दानवेश्वर ! अब इस भारतवर्षमें तुम राधाके शापसे ॥ ३७ ॥ जन्म ले वैष्णव हो ब्रह्मासे स्तम्ब पर्यन्त तुच्छ मानते हो सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्य मुक्ति हरिके ॥ ३८ ॥ देनेपर भी वैष्णव उनकी सेवा विना कुछ ग्रहण नहीं करते हैं वैष्णव ब्रह्मत्व और अमरत्व भी तुच्छ मानते हैं ॥ ३९ ॥

इन्द्रत्व और मनुत्वकी भी इच्छा नहीं करते फिर तुम कृष्णके भक्तका देवताओंके अधिकार लेनेमें क्यों भ्रमता है ॥ ४० ॥ हे भूमिपति ! देवताओंको राज्य देकर मेरी प्रीतिकी रक्षा करो तुम अपने राज्यमें सुख भोगो, देवता अपने अधिकारमें संतुष्ट हो ॥ ४१ ॥ तुम सब कश्यपके वंशमें हो विरोध मत करो जो कोई पाप ब्रह्महत्यादिक है ॥ ४२ ॥ वे ज्ञातिद्रोह पापकी सोलहवीं कलाके बराबर है. हे राजेन्द्र ! यदि अपनी सम्पदाकी हानि मानते हो ॥ ४३ ॥ तो सब अवस्था किसके समान बीतती है. लय प्राकृत लयमें ब्रह्माका भी तिरोभाव हो जाता है ॥ ४४ ॥ फिर ईश्वरकी इच्छासेही उसका आविर्भाव होता है. तपसे ज्ञानकी वृद्धि होती है. यह सत्य है किंतु स्मृतिका लोप होता है ॥ ४५ ॥ ज्ञानसेही स्रष्टा सृष्टि करता है. सत्ययुगमें सत्याश्रयसे परिपूर्ण धर्म होता है

इंद्रत्वं वा मनुत्वं वा न मेने गणनासु च ॥ कृष्णभक्तस्य ते किं वा देवानां विषये भ्रमे ॥ ४० ॥ देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं रक्ष भूमिप ॥ सुखं स्वराज्ये त्वं तिष्ठ देवास्तिष्ठन्तु वै पदे ॥ ४१ ॥ अलं भूतविरोधेन सर्वे कश्यपवंशजाः ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ ४२ ॥ ज्ञातिद्रोहस्य पापानि कलां नार्हंति षोडशीम् ॥ स्वसंपदां च हानिं च यदि राजेन्द्र मन्यसे ॥ ४३ ॥ सर्वावस्था च समतां केषां याति च सर्वदा ॥ ब्रह्मणश्च तिरोभावो लये प्राकृतिके सदा ॥ ४४ ॥ आविर्भावः पुनस्तस्य प्रभावा दीश्वरेच्छया ॥ ज्ञानवृद्धिश्च तपसा स्मृतिलोपश्च निश्चितम् ॥ ४५ ॥ करोति सृष्टिं ज्ञानेन स्रष्टा सोऽपि क्रमेण च ॥ परिपूर्णतमो धर्मः सत्ये सत्या श्रये सदा ॥ ४६ ॥ त्रिभागः सोऽपि त्रेतायां द्विभागो द्वापरे स्मृतः ॥ एकभागः कलौ पूर्वं तदंशश्च क्रमेण च ॥ ४७ ॥ कला मात्रं कलेः शेषे कुह्वां चंद्रकला यथा ॥ यादृक्तेजो रवेर्ग्रीष्मे न तादृक्छिशिरे पुनः ॥ ४८ ॥ दिनेषु यादृङ् मध्याह्ने सायं प्रातर्न तत्समम् ॥ उदयं याति कालेन बालतां च क्रमेण च ॥ ४९ ॥ प्रकांडतां च तत्पश्चात्कालेऽस्तं पुनरेति सः ॥ दिनेप्रच्छन्नतां याति कालेन दुर्दिने घने ॥ ५० ॥

॥ ४६ ॥ त्रेतामें तीन भाग द्वापरमें दो भाग रहता है कलियुगमें एक भाग और फिर वह भी क्रमसे घटता है ॥ ४७ ॥ कलियुगान्तमें कलामात्र शेष रह जाता है जैसे अमावसमें चन्द्रमाकी कला रहती है जैसे ग्रीष्मऋतुमें सूर्यका तेज रहता है वैसा शिशिर ऋतुमें नहीं होता ॥ ४८ ॥ दिनमें भी जैसा मध्याह्नमें होता है वैसा प्रभात और संध्यामें नहीं, समयपर ही उदय बाल ॥ ४९ ॥ और समयपर प्रचण्डता तथा फिर अस्त हो जाता है, और समय परही दुर्दिन होकर बादलोंमें छिप जाता है ॥ ५० ॥

राहुके ग्रासमें कुपित होकर फिर प्रसन्न होता है पूर्णिमाको चन्द्रमा परिपूर्ण होता है ॥ ५१ ॥ वैसा दिन दिन नहीं होकर क्षय होता रहता है और अमावसके उपरांत फिर दिन २ पुष्ट होता है ॥ ५२ ॥ शुक्ल पक्षमें संपत् युक्त कृष्ण पक्षमें क्षयसे मलीन होता है, राहुग्रस्त होनेसे मलीन और दिनमें शोभा नहीं पाता ॥ ५३ ॥ समयसेही चन्द्रमा शुभ्र और समयसेही भ्रष्टश्री होता है, इस समय सुतलमें बली भ्रष्टश्री है समयपर इंद्र होगा ॥ ५४ ॥ समयपरही पृथ्वी सब सस्य शालिनी होती है, यह पृथ्वी सबकी आधार है और समयपरही जलमें निमग्न हो छिप जाती है ॥५५॥ समयपरही जगत् नष्ट होकर समयपरही फिर होता है यह चराचर कालसे नष्ट होकर फिर प्रगट होता है ॥ ५६ ॥ ईश्वर की समता ब्रह्म परमात्मा देखो जिससे मैं मृत्युंजय होकर असंख्य प्राकृत

राहुग्रस्ते कंपितश्च पुनरेव प्रसन्नताम् ॥ परिपूर्णतमश्चंद्रः पूर्णिमायां च जायते ॥५१॥ तादृशो न भवेन्नित्यं क्षयं याति दिनेदिने ॥ पुनश्च पुष्टिमायाति परं कुह्वा दिनेदिने ॥५२॥ संपद्युक्तः शुक्लपक्षे कृष्णे म्लानश्च यक्ष्मणा ॥ राहुग्रस्ते दिने म्लानो दुर्दिने न विरोचते ॥५३॥ काले चन्द्रो भवेच्छुक्लो भ्रष्टश्रीः काल भेदतः ॥ भविष्यति बलिश्चेंद्रो भ्रष्ट श्री सुतलेऽधुना ॥ ५४ ॥ कालेन पृथ्वी सस्याढ्या सर्वाधारा वसुन्धरा ॥ कालेन जले निमग्ना सा तिरोभूताऽम्बुविप्लुता ॥ ५५ ॥ काले नश्यंति विश्वानि प्रभवंत्येव कालतः ॥ चराचरश्च कालेन नश्यंति प्रभवंति च ॥ ५६ ॥ ईश्वरस्यैव समता ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ अहं मृत्युंजयोयस्मादसंख्यं प्रकृतं लयम् ॥ ५७ ॥ अदर्शं चापि द्रक्ष्यामि वारंवारं पुनः पुनः ॥ स च प्रकृतिरूपं च स एव पुरुष स्मृतः ॥ ५८ ॥ सचात्मा स च जीवश्च नानारूपधरः परः ॥ करोति सततं यो हि तन्नामगुणकीर्तनम् ॥ ५९ ॥ काले मृत्युं स जयति जन्म रोगभयं जराम् ॥ स्रष्टा कृतो विधिस्तेन पाता विष्णुः कृतो भवेत् ॥ ६० ॥ अहं कृतश्च संहर्ता भयं विषयिणः कृताः ॥ कालाग्निरुद्रं संहारे नियोज्य विषये नृप ॥ ६१ ॥ अहं करोमि सततं तन्नामगुणकीर्तनम् ॥ तेन मृत्युंजयोऽहं च ज्ञानेनानेन निर्भयः ॥ ६२ ॥

प्रलयोंको ॥ ५७ ॥ अन्तर्धान और प्रगट होता बार बार देखता हूं वही प्रकृतिरूप और वही पुरुष है ॥ ५८ ॥ वही आत्मा वही नानारूपधारी जीव है. जो निरन्तर उसके नामगुणोंका कीर्तन करता है ॥ ५९ ॥ वह समयपर जन्मरोग भय जरावाली मृत्युको जय करता है विधाताको स्रजनेवाला और विष्णुको पालक इसीने किया है ॥ ६० ॥ और अहंकार युक्त संहार करनेवाला मैं हुआ हूं हे राजन् ! संहारमें कालाग्नि रुद्र नियुक्त होते हैं ॥ ६१ ॥ मैं स्वयं उसके नाम गुणका कीर्तन करता रहता हूं इसीके ज्ञानसे मैं निर्भय और मृत्युन्जय कहाता हूं ॥ ६२ ॥

गरुड़से सर्पके समान मृत्यु भी मृत्युके भयसे जिससे भागती है इस प्रकार सर्व भावनामें तत्पर सर्वेश उससे यह वचन कहा ॥ ६३ ॥ हे नारदजी ! सभाके मध्यमें शिवजी विरामको प्राप्त हुए और राजाभी यह वचन सुन वारंवार शिवजीकी प्रशंसा करने लगा ॥ ६४ ॥ और विनयपूर्वक शिवजीसे मधुर वचन बोला शंखचूड बोला हे देवजी ! आपने कहा यह इसी प्रकार है इसमें अन्यथा नहीं है ॥ ६५ ॥ तो भी आप यथार्थ मेरे निवेदनको सुनो जो कि आपने अभी ज्ञातिद्रोहका बड़ा पाप बताया है ॥ ६६ ॥ तब बलिका सर्वस्व हरण करके उसको पातालमें क्यों भेजा ? हे ईश्वर ! मैंने अब ऊर्ध्व लोकका ऐश्वर्य ग्रहण कर लिया है ॥ ६७ ॥ और सुतलसे उसको ऐश्वर्य उद्धार करनेकी सामर्थ्य स्वयं गदाधर भगवान् फिर भाई सहित हिरण्याक्षको देवताओंने क्यों

मृत्यु र्मृत्युभयाद्याति वैनतेयादिवोरगाः ॥ इत्युक्त्वा स च सर्वेशः सर्वभावेन तत्परः ॥ ६३ ॥ विरराम च शंभुश्च सभामध्ये च नारद ॥ राजा तद्वचनं श्रुत्वा प्रशशंस पुनः पुनः ॥ ६४ ॥ उवाच मधुरं देवं परं विनयपूर्वकम् ॥ शंखचूड उवाच ॥ त्वया यत्कथितं देव नान्यथा वचनं स्मृतम् ॥ ६५ ॥ तथापि किंचिद्यथार्थं श्रूयतां मन्निवेदनम् ॥ ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना च यत् ॥ ६६ ॥ गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुतः प्रस्थापितो बलिः ॥ मया समुद्धृतं सर्वमूर्ध्वमैश्वर्यमीश्वर ॥ ६७ ॥ सुतलाच्च समुद्धर्तुं नालं तत्र गदाधरः ॥ सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः ॥ ६८ ॥ शुंभादयश्चासुराश्च कथं देवैर्निपातिताः ॥ पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः ॥ ६९ ॥ क्लेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभोगिनः ॥ क्रीडाभांडमिदं विश्वं प्रकृतेः परमात्मनः ॥ ७० ॥ यस्मै यत्र स ददाति तस्यैश्वर्यं भवेत्तदा ॥ देवदानवयोर्वादः शश्वन्नैमित्तिकः सदा ॥ ७१ ॥ पराजयो जयस्तेषां कालेऽस्माकं क्रमेण च ॥ तदाऽऽवयोर्विरोधं वा गमनं निष्फलं परम् ॥ ७२ ॥ समसंबंधिनो बंधोरीश्वरस्य महात्मनः ॥ इयं ते महती लज्जा युद्धोऽस्माभिः सहाधुना ॥ ७३ ॥

मरवाया ॥ ६८ ॥ देवताओंने शुम्भादि असुरोंको क्यों मारा पहले समुद्र मंथनमें अमृत भी देवताओंने ही पिया ॥ ६९ ॥ हम दैत्यके बल क्लेशभागी और वह सब फलभोगी हुए यह विश्व परमात्मा प्रकृतिका क्रीडा भाजन है ॥ ७० ॥ जिसको जहां देता है वहीं उसको ऐश्वर्य मिलता है देव दानवोंका विवाद निमित्तसे निरन्तर होता है ॥ ७१ ॥ कालानुसार उनकी हमारी जय पराजय होती है. हमारे उनके बीचमें आपका आना परम निष्फल है ॥ ७२ ॥ ईश्वर महात्माका तो सबसे समान सम्बन्ध होता है और हमारे साथ युद्धमें तो आपको लज्जा होनी चाहिये ॥ ७३ ॥

कारण कि, आपके होते यदि हमारी जय होगी तो अधिक कीर्ति होगी. आप जीतेंगे तो कुछ भी आपकी बड़ाई नहीं; कारण कि, आप ईश्वर हो पराजयमें आपकी बडी हानि है यह वचन सुनकर शिवजी हँसते हुए ॥ ७४ ॥ उस दानवको यथोचित उत्तर देने लगे महादेवजी बोले ब्रह्माके वंशमें प्रगट हुए तुम्हारे साथ युद्धमें ॥ ७५ ॥ क्या लज्जा है, हे राजन् ! पराजयमें अकीर्ति भी नहीं है आदिमें हरिने भी मधुकैटभसे युद्ध किया था ॥ ७६ ॥ तथा हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्षसे भी गदाधरका युद्ध हुआ था ॥ ७७ ॥ मैंने भी पहिले त्रिपुरासुरके साथ युद्ध किया था सर्वेश्वरी सबकी माता प्रकृति देवीका भी ॥ ७८ ॥ शुम्भादि संग परम अद्भुत संग्राम हुआ था, तुम परमात्मा कृष्णके श्रेष्ठ पार्षद हो ॥ ७९ ॥ इससे जो जो दैत्य मेरे उनमें तुम्हारी

जये ततोऽधिका कीर्तिर्हानिश्चैव पराजये ॥ इत्येतद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य च त्रिलोचनः ॥ ७४ ॥ यथोचितमुत्तरं तमुवाच दानवेश्वरम् ॥ महादेव उवाच ॥ युष्माभिः सह युद्धे मे ब्रह्मवंशसमुद्भवैः ॥ ७५ ॥ का लज्जा महती राजन्न कीर्तिर्वा पराजये ॥ युद्धमादौ हरेरेव मधुना कैटभेन च ॥ ७६ ॥ हिरण्यकशिपोश्चैव सह तेनात्मना नृप ॥ हिरण्याक्षस्य युद्धं च पुनस्तेन गदा भृता ॥ ७७ ॥ त्रिपुरैः सह युद्धं च मयाऽपि च पुरा कृतम् ॥ सर्वेश्वर्याः सर्वमातुः प्रकृत्याश्च बभूव ह ॥ ७८ ॥ सह शुंभादिभिः पूर्वं समरः परमाद्भुतः ॥ पार्षदप्रवरस्त्वं च कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ७९ ॥ ये ये हताश्च दैतेया न हि केऽपि त्वया समाः ॥ का लज्जा महती राजन्मम युद्धे त्वया सह ॥ ॥ ८० ॥ सुराणां शरणस्यैव प्रेषितश्च हरेरहो ॥ देहि राज्यं च देवानामिति मे निश्चितं वचः ॥ ८१ ॥ युद्धं वा कुरु मत्सार्धं वाग्व्यये किं प्रयोजनम् ॥ इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम च नारद ॥ उत्तस्थौ शंखचूडश्च ह्यमात्यैः सह सत्वरम् ॥८२॥ इति श्रीदेवीभागते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शिवं प्रणम्य शिरसा दानवेंद्रः प्रतापवान् ॥ समारुरोह यानं च सहामात्यैः स सत्वरः ॥ १ ॥

समान कोई न था, सो हे राजन् ! मेरी तुमसे युद्धमें क्या लज्जा है ॥ ८० ॥ हरिने देवताओंको शरण देनेके ही निमित्त मुझे भेजा है देवताओंका राज्य दे दो यह मेरा निश्चित वचन ॥ ८१ ॥ "अथवा हमारे साथ संग्राम करो वाणीके व्ययसे क्या प्रयोजन है" हे नारद ! ऐसा कहकर भगवान् शंकर मौन हुए तब अमात्योंके सहित तत्काल शंखचूड उठ खडा हुआ ॥ ८२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीनारायण बोले वह प्रतापी दानवेन्द्र शिवजीको शिरसे प्रणाम कर अमात्योंके सहित शीघ्र अपने विमानपर चढ़ा ॥ १ ॥

और शिवजीने भी अपनी सेना और देवताओंको शीघ्र प्रेरणा किया और दानवेन्द्रने भी सेनासहित युद्धका आरम्भ किया ॥ २ ॥ स्वयं महेन्द्राका वृषपर्वासे, भास्करका विप्रचित्तिसे ॥ ३ ॥ दम्भका चन्द्रसे, कालका कालस्वरसे, हुताशनका गोकर्णसे ॥ ४ ॥ कुबेरका कालकेयसे, विश्वकर्माका भयसे, भयंकरका मृत्युसे, यमका संहारसे ॥ ५ ॥ वरुणका विकंकणसे, वायुका चंचलसे, बुधका घृतपृष्ठसे, शनैश्चरका रक्ताक्षसे ॥ ६ ॥ जयन्तका रत्नसारसे, वसुओंका वर्चसगणोंसे, अश्वनीकुमारोंका दीप्तिमानूसे, नलकूबरका धूम्रसे ॥ ७ ॥ धर्मका धुरन्धरसे मंगलका उषाक्षसे, भानुका शोभाकरसे मन्मथका पिठरसे

शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरम् ॥ दानवेंद्रः ससैन्यश्च युद्धारंभे बभूव ह ॥ २ ॥ स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्धं च वृषपर्वणा ॥
भास्करो युयुधे विप्र चित्तिना सह सत्वरः ॥ ३ ॥ दम्भेन सह चन्द्रश्च चकार परमं रणम् ॥ कालस्वरेण कालश्च गोकर्णेन हुताशनः
॥ ४ ॥ कुबेर कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च ॥ भयंकरेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा ॥ ५ ॥ विकंकणेन वरुणश्चंचलेन समीरणः ॥
बुधश्च घृतपृष्ठेन रक्ताक्षेण शनैश्चरः ॥ ६ ॥ जयन्तो रत्नसारेण विसवो वर्चसां गणैः ॥ अश्विनौ च दीप्तिमता धूम्रेण नलकूबरः ॥ ७ ॥
धुरंधरेण धर्मश्च उषाक्षेण च मंगलः ॥ शोभाकरेण वै भानुः पिठरेण च मन्मथः ॥ ८ ॥ गोधामुखेन चूर्णेन खड्गेन च ध्वजेन च ॥
कांचीमुखेन पिंडेन धूम्रेण सह नंदिना ॥९॥ विश्वेन च पलाशेनादित्याद्या युयुधुः परे ॥ एकादश च रुद्रा वै एकादशभयंकरैः ॥ १० ॥
महामारी च युयुधे चोग्रचण्डादिभिः सह ॥ नन्दीश्वरा दयः सर्वे दानवानां गणैः सह ॥ ११ ॥ युयुधुश्च महायुद्धे प्रलयेऽपि भयंकरे ॥
वटमूले च शम्भुश्च तस्थौ काल्या सुतेन च ॥ १२ ॥ सर्वे च युयुधुः सैन्यसमूहः सततं मुने ॥ रत्नसिंहासने रम्ये कोटिभिर्दानवैः सह
॥ १३ ॥ उवास शंखचूडश्च रत्नभूषणभूषितः ॥ शंकरस्य च ये योधा दानवैश्च पराजिताः ॥ १४ ॥

॥ ८ ॥ गोधामुख चूर्णखड्ग ध्वज कांचीमुख पिण्ड धूम्र नन्दी ॥ ९ ॥ विश्व और पलाशसे आदित्यादि युद्ध करने लगे. ग्यारह रुद्र ग्यारह भयंकर दैत्योंसे युद्ध करने लगे ॥ १० ॥ महामारी दैत्या उग्रचण्डादिके सहित संग्राम करने लगी और नन्दीश्वरादि सब दानवादि गणोंके साथ ॥ ११ ॥ उस महाप्रलयके भयंकरसंग्राममें युद्ध करने लगे और स्कन्दके सहित शंकर वटमूलमें स्थित हुए ॥ १२ ॥ हे मुने ! वह सब सैन्यसमूह संग्राम करने लगा मनोहर रत्नोंके सिंहासनमें कोटियों दानवोंके सहित ॥ १३ ॥ रत्नोंके भूषणोंसे भूषित शंखचूड स्थित हुआ, शंकरके योद्धा दानवोंसे पराजित होने लगे ॥ १४ ॥

और देवता भीत तथा क्षतविग्रह होकर भागने लगे, तब स्कन्दने कोपकर देवताओंको अभय दी ॥ १५ ॥ और तेजसे अपने गणोंका बल बढाने लगे सो यह एकमात्र ही दानवोंके गणोंसे युद्ध करने लगे ॥ १६ ॥ और युद्धमें सैकड़ो अक्षौहिणी सेनाका वध किया इधर कमललोचना कालीने अनेक असुरोंका संहार किया ॥ १७ ॥ और अतिक्रुद्ध हो दानवोंका रक्तपान करने लगी, दशलक्ष गजेन्द्र और कोटिशों लक्ष अश्व ॥ १८ ॥ हाथसे पकड़ पकड़ लीलासे ही मुखमें डालने लगी हे मुने ! युद्धमें सहस्रों कबन्ध नाचने लगे ॥ १९ ॥ स्कन्दके शरजालसे दानवोंका शरीर क्षत विक्षत होगया और वे महारणके पराक्रमी भयभीत हो भागने लगे ॥ २० ॥ वृषपर्वा विप्रचित्ति दंभ विकंकण यह बडे विक्रमसे स्कन्धके साथ युद्ध करने लगे ॥ २१ ॥ और

देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे भीताश्च क्षतविग्रहाः ॥ चकारकोपं स्कन्धश्च देवेभ्यश्चाभयं ददौ ॥ १५ ॥ बलं च स्वगणानां च वर्धयामास तेजसा ॥ सोऽयमेकश्च युयुधे दानवानां गणैः सह ॥ १६ ॥ अक्षौहिणीनां शतकं समरे च जघान सः ॥ असुरान्पातयामास काली कमललोचना ॥ १७ ॥ पपौ रक्तं दानवानामतिक्रुद्धा ततः परम् ॥ दशलक्षगजेंद्राणां शतलक्षं च कोटिशः ॥ १८ ॥ समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया ॥ कबंधानां सहस्रं च ननर्त समरे मुने ॥ १९ ॥ स्कन्दस्य शरजालेन दानवाः क्षतविग्रहाः ॥ भीताश्च दुद्रुवुः सर्वे महारणपराक्रमाः ॥ २० ॥ वृषपर्वा विप्रचित्तिर्दंभश्चापि विकंकणः ॥ स्कन्देन सार्धं युयुधुस्ते सर्वे विक्रमेण च ॥ २१ ॥ महामारी च युयुधे न बभूव च पराङ्मुखी ॥ बभूवुस्तेच संक्षुब्धाः स्कन्दस्य शक्तिपीडिताः ॥ २२ ॥ न दुद्रुवुर्भयात्स्वर्गे पुष्प वृष्टिर्बभूव ह स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महारुद्रसमुल्वणम् ॥ २३ ॥ दानवानां क्षयकरं यथा प्राकृतिको लयः राजा विमानमारुह्य चकार बाणवर्षणम् ॥ २४ ॥ नृपस्य शरवृष्टिश्च घनस्य वर्षणं यथा ॥ महाघोरांधकारश्च वह्न्युत्थानं बभूव च ॥ २५ ॥ देवाः प्रदुद्रुवुः सर्वेऽप्यन्ये नंदीश्वरादयः ॥ एक एव कार्त्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्धनि ॥ २६ ॥

पराङ्मुखी न होकर महामारी युद्ध ही करती रही वे सब स्कन्दकी शक्तिसे पीडित हो क्षुब्ध हुए ॥ २२ ॥ समरभयसे भागे नहीं इस करण स्वर्गसे पुष्पवृष्टि हुई, स्कंदका महाभयंकर समर देखकर ॥ २३ ॥ जो प्रकृति प्रलयके समान दानवोंका क्षयकारी था यह देख राजाने विमानपर चढ बाणोंकी वर्षा की ॥ २४ ॥ राजाकी शरवृष्टि मेघवर्षाके समान थी उससे महाघोर अन्धकार और अग्नि उठने लगी ॥ २५ ॥ नंदीश्वरादि और देवता यह देख भागने लगे इकले कार्तिके ही संग्रामस्थलमें स्थित हुए ॥ २ ॥

पर्वत शिला सर्पवृक्षकी बडी भयंकर वर्षा राजा करने लगा राजाकी घोर श वृष्टिसे स्कन्द ताडित हुए जैसे घने कुहरसे सूर्य ढक जाता है ॥ २७ ॥ राजाने स्कंधका महाघोर भयंकर धनुष छेदन कर दिया दिव्यरथको तोड़कर रथके पीठको छेदन कर दिया ॥ २८ ॥ दिव्यास्त्रसे उनके मयूरको भी जर्जरित कर दिया और सूर्यके समान प्रकाशित घातिनीशक्ति उनकी छातीमें मारी ॥ २९ ॥ ३० ॥ जिससे क्षणमें मूर्च्छाको प्राप्त होकर फिर चैतन्य हुए तब पहले विष्णुके दिये दिव्य धनुको लेकर ॥ ३१ ॥ रत्नोंमें श्रेष्ठ रत्नसागर विमानमें कार्तिकेय चढ़े और अस्त्र शस्त्र लेकर घोर दारुण संग्राम किया ॥ ३२ ॥ सर्प, पर्वत, वृक्ष पत्थर इन सबको शिवकुमारने क्रोधकर अपने अस्त्रजालसे छेदन कर दिया ॥ ३३ ॥ और पर्जन्य अस्त्रसे सब अग्नि बुझा दी और लीला

पर्वतानां च सर्पाणां शिलानां शखिनां तथा ॥ नृपश्चकार वृष्टिं च दुर्वारां च भयंकरीम् ॥ २७ ॥ नृपस्य शरवृष्ट्या च प्रहितः शिवनंदन ॥ नीहारेण च सांद्रेण प्रहितो भास्करो यथा ॥ २८ ॥ धनुश्चिच्छेद स्कंदस्य दुर्वहं च भयंकरः ॥ बभंज च रथं दिव्यं चिच्छेद रथपीठकान् ॥ २९ ॥ मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेण चकार सः ॥ शक्तिं चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षस्य घातिनीम् ॥ ३० ॥ क्षणं मूर्छां च संप्राप बभूव चेतनः पुनः ॥ गृहीत्वा तद्धनुर्दिव्यं यद्दत्तं विष्णुनापुरा ॥ ३१ ॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणयानमारुह्य कार्तिकः ॥ शस्त्रास्त्रं च गृहीत्वा च चकार रणमुल्वणम् ॥ ३२ ॥ सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा॥ सर्वांश्चिच्छेदकोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः ॥ ३३ ॥ वह्निं निर्वापयामास पार्जन्येन प्रतापवान् ॥ रथं धनुश्च चिच्छेद शंखचूडस्य लीलया ॥ ३४ ॥ सन्नाहं सारथिं चैव किरीटं मुकुटोज्ज्वलम् ॥ चिक्षेप शक्तिं शुक्लाभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि ॥ ३५ ॥ मूर्च्छां संप्राप्य राजा च चेतनश्च बभूव ह ॥ आरुरोह यानमन्यद्धनुर्जग्राह सत्वरः ॥ ३६ ॥ चकार शरजालं च मायया मायिनां वरः ॥ गुहं चच्छाद समरे शरजालेन नारद ॥ ३७ ॥ जग्राह शक्तिमव्यग्रां शतसूर्यसमप्रभाम् ॥ प्रलयाग्निशिखरूपां विष्णोश्च तेजसा वृताम् ॥ ३८ ॥

सेही शंखचूडका रथ और धनुष छेदन कर दिया ॥ ३४ ॥ उसका बख्तर सारथि किरीट उज्वल मुकुट तोड़कर दानवेन्द्रकी छातीमें एक स्वच्छ शक्तिका प्रहार किया ॥ ३५ ॥ जिससे राजा मूर्छित हो कुछ कालमें फिर चेतनाको प्राप्त हुए और दूसरे विमानपर चढ़कर शीघ्रही दूसरा धनुष ग्रहण किया ॥ ३६ ॥ तब उस मायावीने मायासे शरजाल बना लिया । हे नारद ! युद्धमें उस शरजालसे स्कन्धको आच्छादित कर दिया ॥ ३७ ॥ और व्यर्थ न होने वाली सौ सूर्यके समान शक्ति ग्रहण की, जो प्रलयाग्निके शिखाके समान विष्णुके तेजसे युक्त थी ॥ ३८ ॥

बड़े वेग और कोपसे वह कार्तिकेयपर छोड़ी उनके शरीरपर वह शक्ति अग्नि समूहके समान गिरी ॥ ३९ ॥ महाबली स्कन्द उस शक्तिके लगनेसे मूर्छित हुए. तब काली उन्हें गोदीमें ले शिवके समीप चली आई ॥ ४० ॥ तब शिवजीने लीलासेही अपने ज्ञानद्वारा उनको जीवित किया और अनन्तबल दिया जिससे वह प्रतापी शीघ्र उठ खड़े हुए ॥ ४१ ॥ तब काली स्कन्दकी रक्षा करनेको समरमें चली और नंदीश्वरादि नीर उनके पीछे चले ॥ ४२ ॥ सब देवता, गंधर्व, यक्ष, किन्नर चले. सैकडों बाजे और सैकडों मधुवाहक चले ॥ ४३ ॥ तब कालीने संग्राममें जाकर सिंहनाद किया, देवीके सिंहना

चिक्षेप तां च कोपेन महावेगेन कार्त्तिके ॥ पपात शक्तिस्तद्गात्रे वह्निराशिरिवोज्ज्वला ॥ ३९ मूर्च्छां संप्राप शक्त्या च कार्त्तिकेयो महाबलः ॥ काली गृहीत्वा तं क्रोडे निनाय शिवसन्निधौ ॥ ४० ॥ शिवस्तं चापि ज्ञानेन जीवयामास लीलया ॥ ददौ बलमनंतं च समुत्तस्थौ प्रतापवान् ॥ ४१ ॥ काली जगाम समरं रक्षितुं कार्त्तिकस्य या ॥ वीरास्तामनु जग्मुश्च ते नंचदीश्वरादयः ॥ ४२ ॥ सर्वे देवाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः ॥ वाद्यभांडश्च बहुशः शतशो मधुवाहका ॥ ४३ ॥ सा च गत्वाऽथ संग्रामं सिंहनादं चकार च ॥ देव्याश्च सिंहनादेन प्रापुर्मूर्च्छां च दानवाः ॥ ४४ ॥ अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनःपुनः ॥ दृष्ट्वा पपौ च माध्वीकं ननर्त रण मूर्धनि ॥४५॥ उग्रदंष्ट्रा चोग्रदंडा कोटकी च पपौ मधु ॥ योगिनी डाकनीनां च गणाः सुरगणादयः॥ ४६ ॥ दृष्ट्वा कालीं शंख चूडः शीघ्रमाजौ समाययौ ॥ दानवाश्च भयं प्रापू राजा तेभ्योऽभयं ददौ ॥ ४७ ॥ काली चिक्षेप वह्निं च प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ राजा निर्वापयामास पार्जन्येन च लीलया ॥ ४८ ॥ चिक्षेप वारुणं सा च तीव्रं च महदद्भुतम् ॥ गांधर्वेण चचिच्छेद दानवेंद्रश्च लीलया ॥ ४९ ॥

दसे ही दानव मूर्छित हो गये ॥ ४४ ॥ भगवतीने वारंवार भयंकर सिंहनाद किया और मधुपानकर संग्राममें नृत्य करने लगी ॥ ४५॥ उग्रदंष्ट्र उग्रदंड कोटिकीने मधुपान किया, योगिनी डाकिनीके गण सुरोंके समूह गर्जे ॥ ४६ ॥ कालीको देख शंखचूड शीघ्रही संग्राममें आया, दानव जो भयभीत हुए थे राजाने उनको अभय दिया ॥ ४७ ॥ कालीने प्रलयाग्नि शिखाके समान अग्नि फेंकी, राजाने पर्जन्य अस्त्रसे लीलापूर्वक उसको बुझा दिया ॥ ४८ ॥ तब भगवतीने तीव्र वारुणास्त्र छोड़ा, तब दानवेंद्रने लीलापूर्वक गन्धर्व अस्त्रसे उसको छेदन कर दिया ॥ ४९ ॥

तब कालीने वह्निशिखाके समान माहेश्वर अस्त्रन्यागन किया, राजाने लीलापूर्वक वैष्णव अस्त्रसे उसको शांत किया ॥ ५० ॥ तब देवीने मंत्रपूर्वक नारायण अस्त्र छोड़ा राजाने इसे देखतेही रथसे उतर प्रणाम किया ॥ ५१ ॥ इससे प्रलयाग्निके समान वह अस्त्र ऊपरको चला गया और शंखचूड भक्तिपूर्वक पृथ्वीमें दंडवत् करता हुआ ॥ ५२ ॥ तब भगवतीने यत्नसे मन्त्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र छोड़ा राजाने अपने ब्रह्मास्त्रसे उसको शांत किया ॥ ५३ ॥ तब देवीने मन्त्रपूर्वक दिव्यास्त्र छोड़ा राजाने अपने दिव्यास्त्रजालसे उसको शांत किया ॥ ५४ ॥ देवीने एक योजन प्रमाणकी शक्ति छोड़ी राजाने अपने दिव्यास्त्रोंसे उसको खण्ड खण्ड कर दिया ॥ ५५ ॥ तब देवीने क्रोधसे मंत्रपूत पाशुपतास्त्र ग्रहण किया तब उसके छोड़नेका निषेध करती हुई अशरीरिणी वाणी

माहेश्वरं प्रचिक्षेप काली वह्निशिखोपमम् ॥ राजा जघान तं शीघ्रं वैष्णवेन च लीलया ॥ ५० ॥ नारायणास्त्रं सादेवी चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् ॥ राजा ननाम तद्दृष्ट्वा चावरुह्य रथादसौ ॥ ५१ ॥ ऊर्ध्वं जगाम् तच्चास्त्रं प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ पपात शंखचूडश्च भक्त्या तं दंडवद्भुवि ॥ ५२ ॥ ब्रह्मास्त्रं सा च चिक्षेप यत्नतो मन्त्रपूर्वकम् ॥ ब्रह्मास्त्रेण महाराजो निर्वापं च चकार सः ॥ ५३ ॥ तथा चिक्षेप द्विव्यास्त्रं सा देवी मन्त्रपूर्वकम् ॥ राजा दिव्यास्त्रजालेन तन्निर्वाणं चकार च ॥ ५४ ॥ देवी चिक्षेप शक्तिं च यत्नतो योजनायताम् ॥ राजा दिव्यास्त्रजालेन शतखंडां चकार ह ॥ ५५ ॥ जग्राह मन्त्रपूतं च देवी पाशुपतं रुषा ॥ निक्षेपणं निरोद्धुं च वाग्बभूवाशरीरिणी ॥ ५६ ॥ मृत्युः पाशुपते नास्ति नृपस्य च महात्मनः ॥ यादवस्ति च मन्त्रस्य कवचं च हरेरिति ॥ ५७ ॥ यावत्सतीत्वमस्त्येव सत्याश्च नृपयोषितः ॥ तावदस्य जरा मृत्युर्नास्तीति ब्रह्मणो वचः ॥ ५८ ॥ इत्याकर्ण्य भद्रकाली न तच्चिक्षेप शस्त्रकम् ॥ शतलक्षं दानवानां जग्रास लीलया क्षुधा ॥ ५९ ॥ ग्रस्तुं जगाम वेगेन शंखचूडं भयंकरी ॥ दिव्यास्त्रेण सुतीक्ष्णेन वारयामास दानवः ॥ ६० ॥

हुई ॥ ५६ ॥ इस महात्मा राजाकी मृत्यु पाशुपतास्त्रसे नहीं है, जबतक इसके पास हरिका मंत्र और कवच है ॥ ५७ ॥ जबतक इस राजाकी भार्यामें सतीत्व है तबतक इस राजाकी जरा मृत्यु न होगी यह ब्रह्माजीका वर है ॥ ५८ ॥ यह सुनकर भद्रकालीने उस अस्त्रको नहीं छोड़ा और क्षुधा होनेसे लीलापूर्वक सौलक्ष दानवोंको ग्रहण कर लिया ॥ ५९ ॥ और बड़े वेगसे भय देती हुई शंखचूडके ग्रास करनेको दौडी तब दानवने तीक्ष्ण दिव्यास्त्रसे भगवतीको निवारण किया॥ ६० ॥

तब देवीने ग्रीष्मके सूर्यके समान प्रकाशित खड्गका प्रहार किया, दानवेन्द्रने अपने दिव्यास्त्रसे उस खड्गके सौखण्ड क र दिये ॥ ६१ ॥ फिर महादेवी बड़े वेगसे उसे खानेको दौड़ी वह श्रीमान् सब सिद्धोंका ईश्वर दानव अपना शरीर बढाने लगा ॥ ६२ ॥ तब भयंकरी कालीदेवीने बडे वेगसे एक घूंसेसे रथ तोड सारथीको नष्ट किया ॥६३॥ प्रलयाग्निके समान उसके ऊपर शूल चलाया, शंखचूडने लीलापूर्वक उसे बायें हाथसे पकड़ लिया ॥ ६४ ॥ तब देवीने बडे कोप और बड़े वेगसे घूंसा मारा जिससे घूमकर दैत्यक्षणमात्रमें मूर्छित होगया॥६५॥फिर वह प्रतापी क्षणमात्रमें चैतन्य हो उठा और देवीके साथ बाहुयुद्ध न करके प्रणाम

खड्गं चिक्षेप सा देवीग्रीष्मसूर्योपमं यथा ॥ दिव्यास्त्रेण दानवेंद्रः शतखंडं चकार सः ॥ ६१ ॥ पुनर्ग्रस्तुं महादेवीवेगेन च जगाम तम् ॥ सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमान्ववृधे दानवेश्वरः ॥ ६२ ॥ वेगेन मुष्टिना काली कोपयुक्ता भयंकरी ॥ बभंजच रथं तस्य जघान सारथिं सती ॥ ६३ ॥ सा च शूलं च चिक्षेप प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ वामहस्तेन जग्राह शंखचूडः स्वलीलया ॥ ६४ ॥ मुष्ट्या जघान तं देवी महाकोपेन वेगतः ॥ बभ्राम च तया दैत्यः क्षणं मूर्च्छामवाप च ॥ ६५ ॥ क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ प्रतापवान् ॥ न चकार बाहुयुद्धं देव्या सह ननाम ताम् ॥ ६६ ॥ देव्याश्चास्त्रं स चिच्छेद जग्राह च स्वतेजसा ॥ नास्त्रं चिक्षेप तां भक्तो मातृभक्त्या तु वैष्णवः ॥ ६७ ॥ गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः ॥ ऊर्ध्वं च प्रापयामास महावेगेन कोपिता ॥ ६८ ॥ ऊर्ध्वात्पपात वेगेन शंखचूडः प्रतापवान् ॥ निपत्य च समुत्तस्थौ प्रणम्य भद्रकालिकाम् ॥ ६९ ॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणं विमानं सुमनोहरम् ॥ आरुरोह हर्षयुक्तो न विश्रांतो महारणे ॥ ७० ॥ दानवानां च क्षतजं सा देवी च पपौ क्षुधा ॥ पीत्वा भुक्त्वा भद्रकाली जगाम शंकरांतिकम् ॥ ७१ ॥

किया ॥ ६६ ॥ देवीके अस्त्रोंको छेदन किया और अपने तेजसे ग्रहण किये परंतु भक्तिके कारण देवीपर अस्त्र नहीं चलाये. कारण कि वह वैष्णव मातृभक्त था ॥६७॥ तब देवीने दानवको ग्रहण कर वारंवार घुमाकर महावेगसे कोपकर ऊपरको उछाल दिया ॥ ६८ ॥ तब प्रतापी शंखचूड बडे वेगसे ऊपरसे कूदा और भद्रकालीको प्रणाम कर स्थित हुआ ॥ ६९ ॥ रत्नोंमें श्रेष्ठ रत्नोंके बने मनोहर विमानमें प्रसन्नतासे चढा और युद्धमें कुछभी थकित न हुआ ॥ ७० ॥ तब देवीने क्षुधासे दानवोंका रुधिरपान किया तब उसको पान भोजन कर भद्रकाली शंकरके समीप गई ॥ ७१ ॥

और यथाक्रम पूर्वापर युद्धका वृत्तांत कहा दानवोंके विनाश सुन शिवजी हँसे ॥ ७२ ॥ काली बोली अब युद्धमें लाखही दानव अवशिष्ट हैं जो मेरे मुखसे भोजन करते निकल गये हैं हे शिव ! और सब खा लिया ॥ ७३ ॥ जब संग्राममें पाशुपतास्त्रसे दानवेंद्रको मारने लगी तब यह अशरीरिणी वाणी हुई कि राजा तुमसे अवध्य है ॥ ७४ ॥ यह राजेन्द्र महाज्ञानी महाबली पराक्रमी है इससे मेरे ऊपर अपने अस्त्र नहीं चलाये किंतु मेरे अस्त्र छेदन किये ॥ ७५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ श्रीनारायणजी बोले तत्त्वज्ञान विशारद शिवजी इस तत्त्वको श्रवण कर हे नारद ! अपने गणोंके सहित युद्धमें गये ॥ १ ॥ शंखचूड शिवजीको देख विमानसे उतर परम भक्तिसे भूमिमें दंडवत करता हुआ ॥ २ ॥ और उनको

उवाच रणवृत्तातं पौर्वापर्यं यथाक्रमम् ॥ श्रुत्वा जहास शंभुश्च दानवानां विनाशनम् ॥ ७२ ॥ लक्षं च दानवेंद्राणामवशिष्टं रणेऽधुना ॥ भुंजंत्या निर्गतं वक्त्रात्तदन्यं भुक्तमीश्वर ॥ ७३ ॥ संग्रामे दानवेंद्रं च हंतुं पाशुपतेन वै ॥ अवध्यस्तव राजेति वाग्बभूवाशरीरिणी ॥ ७४ ॥ राजेन्द्रश्च महाज्ञानी महाबलपराक्रमः ॥ न च चिक्षेप मय्यस्त्रं चिच्छेद मम सायकम् ॥ ७५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे द्वाविंशोध्यायः ॥ २२ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शिवस्तत्त्वं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः ॥ ययौ स्वयं च समरे स्वगणैः सह नारद ॥ १ ॥ शंखचूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य च ॥ ननाम परया भक्त्या शिरसा दंडवद्भुवि ॥ २ ॥ तं प्रणम्य च वेगेन विमानमारुरोह सः ॥ तूर्णं चकार सन्नाहं धनुर्जग्राह दुर्वहम् ॥ ३ ॥ शिवदानवयोर्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा ॥ न बभूवतुरन्योन्यं ब्रह्मञ्जयपराजयौ ॥ ४ ॥ न्यस्तशस्त्रश्च भगवान्न्यस्तशस्त्रश्च दानवः ॥ रथस्थः शंखचूडश्च वृषस्थो वृषभध्वजः ॥ ५ ॥ दानवानां च शतकमुद्धृतं च बभूव ह ॥ रणे ये ये मृता शंभुर्जीवयामास तान्विभुः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरे वृद्ध ब्राह्मणः परमातुरः ॥ आगत्य च रणस्थानमुवाच दानवेश्वरम् ॥ ७ ॥

प्रणाम कर बड़े वेगसे विमानपर चढ़ा और दुर्वहा उद्योग कर धनुष धारण किया ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकारसे सौवर्ष पर्यंत शिव और दानवका युद्ध होता रहा परंतु किसीकी जय पराजय न हुई ॥ ४ ॥ तो शिव और दानव दोनोंहीने शस्त्र रख दिये रथमें स्थित शंखचूड और वृषमें स्थित शंकर थे ॥ ५ ॥ उस समय दानवोंके शतक अनेक युद्धमें मथित हो गये थे युद्धमें जो देवताओंके पक्षवाले मरे थे शिवजीने उनको जीवित कर दिया ॥ ६ ॥ इसी समय कोई वृद्ध ब्राह्मण परम आतुर रण स्थानमें आकर दानवेश्वरसे बोला ॥ ७ ॥

वृद्ध ब्राह्मणने कहा हे राजेंद्र ! इस समय मुझ ब्राह्मणको भिक्षा दो तुम मेरी मनवांछित सब सम्पत्तियोंके दाता हो ॥ ८ ॥ निरीह वृद्ध प्यासेके निमित्त दक्षिणा दो, परन्तु जब पहले शपथ कर लोगे तब पीछे कहूँगा ॥ ९ ॥ राजाने प्रसन्न हो शपथ पूर्वक स्वीकार किया तब उस मायीपुरुषने कहा मैं तुम्हारे कवच लेनेकी इच्छा करता हूं ॥ १० ॥ यह सुन उसने कवच उतार दिया और वह हरि कवच ग्रहणकर शंखचूड़का रूप धारण कर तुलसीके समीप गये ॥ ११ ॥ और जाकर उसमें मायापूर्वक वीर्य आधान किया और उसी समय शिवजीने हारिका शूल दानवके प्रति ग्रहण किया ॥ जो ग्रीष्मके मध्याह्न सूर्यके समान प्रलयाग्निके शिखाके समान था दुर्निवार दुर्धर्ष और शत्रुनाशमें अव्यर्थ था ॥ १२ ॥ १३ ॥ तेजमें चक्रके समान सब शस्त्र अस्त्रका सार

वृद्धब्राह्मण उवाच ॥ देहि भिक्षां च राजेन्द्र मह्यं विप्राय सांप्रतम् ॥ त्वं सर्वसंपदां दाता यन्मे मनसि वांछितम् ॥ ८ ॥ निरीहाय च वृद्धाय तृषिताय च सांप्रतम् ॥ पश्चात्त्वां कथयिष्यामि पुरः सत्यं च कुर्विति ॥ ९ ॥ ओमित्युवाच राजेन्द्र प्रसन्नवदनेक्षणः ॥ कवचार्थी जनश्चाहमित्युवाचातिमायया ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वा कवचं दिव्यं जग्राह हरिरेव च ॥ शंखचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति ॥ ११ ॥ गत्वा तस्यां मायया च वीर्याधानं चकार च ॥ अथ शंभुर्हरेः शूलं जग्राह दानवं प्रति ॥ १२ ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडप्रलयाग्निशिखोपमम् ॥ दुर्निवार्यं च दुर्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम् ॥ १३ ॥ तेजसा चक्रतुल्यं च सर्वशस्त्रास्त्रसारकम् ॥ शिवके शवयोरन्यदुर्वहं च भयंकरम् ॥ १४ ॥ धनुःसहस्रं दैर्घ्येण प्रस्थेन शतहस्तकम् ॥ सजीवं ब्रह्मरूपं च नित्यरूपमनिर्दिशम् ॥ १५ ॥ संहर्तुं सर्वब्रह्मांडमलं यत्स्वीयलीलया ॥ चिक्षेप तोलनं कृत्वा शंखचूडे च नारद ॥१६॥ राजा चापं परित्यज्य श्रीकृष्णचरणांबुजम् ॥ ध्याने चकार भक्त्त्या च कृत्वा योगासनं धिया ॥ १७ ॥ शूलं च भ्रमणं कृत्वा पपात दानवोपरि ॥ चकार भस्मसात्तं च सरथं चाऽथलीलया ॥ १८ ॥

शिवके सिवाय दूसरों को दुर्वह और भयंकर ॥ १४ ॥ दीर्घतामें सहस्र धनुष चौड़ाईमें सौहाथ, सजीव ब्रह्मरूप और नित्यरूप अनिर्देश्य ॥ १५ ॥ जो अपनी लीलासे सब ब्रह्माण्डके संहार करनेको समर्थ है हे नारद ! उसको उत्तोलन कर शिवजीने शंखचूडपर छोड़ा ॥ १६ ॥ तब राजा चापको छोड़ श्रीकृष्णके चरणारविंदों को योगासनमें ध्यान करने लगे ॥ १७ ॥ इधर वह शूल भ्रमणकर दानवके ऊपर गिरा और लीला सहित रथ सहितही उसको भस्म कर दिया ॥ १८ ॥

इधर राजाभी किशोर गोपवेश धारण कर दो भुजा मुरली हाथमें लिये रत्नभूषणोंसे भूषित ॥ १९ ॥ रत्नेंद्रसारसे बने गहने पहरे कोटिहौ गोपोंसे वेष्टित गोलोकसे आये उस विमानपर आरोहण कर अपने पुरको गया ॥ २० ॥ हे मुने ! जाकर शिरसे राधा—कृष्ण को प्रणाम किया और वृन्दावनके रासमें भक्तिमें चरणारविंदोंमें प्रणाम किया ॥ २१ ॥ यह दोनों सुदामाको देख प्रसन्नवदन हुए और प्रेमसे उनको अपनी गोदीमें लेते हुए ॥ २२ ॥ और बड़े वेगसे वह सूल श्रीकृष्णके समीप चला गया और शंखचूडकी अस्थिओंसे शंख जाति हुई ॥ २३ ॥ जो अनेक प्रकारके रूपसे पवित्र हुए देवार्चनमें युक्त रहते हैं और शंखका जल देवताओंको प्रीति दायक है ॥ २४ ॥ यह तीर्थके जलस्वरूप है, पर शिवजीके ऊपर शंखका जल नहीं दिया जाता जहां शंखका शब्द होता

राजाधृत्वा दिव्यरूपं किशोरं गोपवेषकम् ॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥ १९ ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणं वेष्टितं गोपकोटिभिः ॥ गोलोकादागतं यानमारुरोह पुरं ययौ ॥ २० ॥ गत्वा ननाम् शिरसा स राधाकृष्णयोर्मुने ॥ भक्त्त्या च चरणांभोजं रासे वृन्दावने वने ॥ २१ ॥ सुदामानं च तौ दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणौ ॥ क्रोडे चक्रतुरत्यंतं प्रेम्णाऽतिपरिसंयुतौ ॥ २२ ॥ अथ शूलं च वेगेन प्रययौ तं च सादरम् ॥ अस्थिभिः शंखचूडस्य शंखजातिर्बभूव ह ॥ २३ ॥ नानाप्रकाररूपेण शश्वत्पूता सुरार्चने ॥ प्रशस्तं शंखतोयं च देवानां प्रीतिदं परम् ॥ २४ ॥ तीर्थतोयस्वरूपं च पवित्रं शंभुना विना ॥ शंखशब्दो भवेद्यत्र तत्र लक्ष्मीः सुसंस्थिरा ॥ २५ ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु यः स्नातः शंखवारिणा ॥ शंखो हरेरधिष्ठानं यत्र शंखस्ततो हरिः ॥ २६ ॥ तत्रैव वसते लक्ष्मीर्दूरीभूतममंगलम् ॥ स्त्रीणां च शंखध्वनिभिः शूद्राणां च विशेषतः ॥ २७ ॥ भीता रुष्टा याति लक्ष्मीस्तत्स्थलादन्यदेशतः ॥ शिवोऽपि दानवं हत्वा शिवलोकं जगाम ह ॥ २८ ॥ प्रहृष्टो वृषभारूढः स्वगणैश्च समावृतः ॥ सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानंदसंयुताः ॥ २९ ॥

है वहां लक्ष्मी स्थित रहती है॥२५॥जो शंख जलसे स्नान करता है वह मानो सब तीर्थोंमें न्हा चुका, शंख हरिका अधिष्ठान है जहां शंख है वहीं हरि स्थित हैं ॥ २६ ॥ वहीं लक्ष्मी स्थित रहती और सब अमंगल दूर होते हैं पर स्त्री और शूद्र शंखध्वनि न करैं स्त्री और शूद्रोंकी शंख ध्वनिसे ॥२७॥ भीत और रुष्ट हो लक्ष्मी उस स्थानसे अन्यत्र चली जाती है, शिवजी भी दानवको मारकर निज लोकको चले गये ॥ २८ ॥ प्रसन्न हो वृषपर चढ़े अपने गणों सहित चले गये और देवता भी परमानन्दको प्राप्त अपने स्थानको गये ॥ २९ ॥

स्वर्गमें दुंदुभी बजी गंधर्व किन्नर गाने लगे और शिवजीके ऊपर पुष्पवर्षा हुई ॥३०॥ और बड़े २ मुनीन्द्रादि शिवजीकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेनवमस्कंन्धे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ नारदजी बोले भगवान् नारायणने तुलसीमें किस रूपसे वीर्याधान किया था वह आप मुझसे कहिये ॥१॥ श्रीनारायण बोले नारायण भगवान् देवताओंके कार्य साधनको शंखचूडका कवच मायासे ग्रहण कर ॥२॥ शंखचूडका रूप विधान कर शंखचूडके नाशकी इच्छासे उसका पातिव्रत्य भंग करने लगे ॥ ३ ॥ तुलसीके द्वार दुंदुभीका शब्द कराया और जय शब्द कराकर उस सुन्दरीको उद्बोधन कराया ॥ ४ ॥ वह सुनकर साध्वी परमानन्दको प्राप्त हुई और झरोखेमें परम आदरसे राजमार्गको देखने लगी ॥ ५ ॥ ब्राह्मणोंको धन देकर मंगल पाठ

नेदुर्दुंदुभयः स्वर्गे जगुर्गंधर्वकिन्नराः ॥ बभूव पुष्पवृष्टिश्च शिवस्योपरि संततम् ॥ ३० ॥ प्रशशंसुः सुरास्तं च मुनींद्रप्रवरादयः ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ नारायणश्च भगवान्वीर्याधानं चकार ह ॥ तुलस्यां केन रूपेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ नारायणश्च भगवान्देवानां साधनेषु च ॥ शंखचूडस्य कवचं गृहीत्वा विष्णुमायया ॥ २ ॥ पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तत्सतीगृहम् ॥ पातिव्रत्यस्य नाशेन शंखचूडजिघांसया ॥ ३ ॥ दुंदुभिं वादयामास तुलसी द्वारसन्निधौ ॥ जयशब्दं च तद्द्वारे बोधयामास सुंदरीम् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा च रवं साध्वी परमानंदसंयुता ॥ राजमार्गं गवाक्षेण ददर्श परमादरात् ॥ ५ ॥ ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा कारयामास मंगलम् बंदिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च वाचिभ्यश्च धनं ददौ ॥ ६ ॥ अवरुह्य रथाद्देवो देव्याश्च भवनंययौ ॥ अमूल्यरत्ननिर्माणं सुन्दरं सुमनोहरम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा च पुरतः कान्तं सा तं कान्त मुदाऽन्विता ॥ तत्पादं क्षालयामास ननाम च रुरोद च ॥ ८ ॥ रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास कामुकी ॥ ताम्बूलं च ददौ तस्मै कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ९ ॥ अद्य मे सफलं जन्म जीवनं च बभूव ह ॥ रणे गतं च प्राणेशं पश्यंत्याश्च पुनर्गृहे ॥ १० ॥

कराया बन्दी, भिक्षुक वाचियोंको बड़ा धन दिया ॥ ६ ॥ इधर रथपर स्थित हो देव देवीके मंदिरमें गये जो अमूल्य रत्नोंका बना बड़ा सुन्दर और मनोहर था ॥ ७ ॥ वह मनोहर अपने स्वामीको आगे देखतेही प्रसन्न हो उनका चरण धोय प्रणाम कर प्रेमाश्रु वर्षाने लगी ॥ ८ ॥ उस कामवतीने उन्हें रत्नोंके मनोहर सिंहासनपर बैठाया और कर्पूरादिसे सुवासित ताम्बूल इनको दिया ॥ ९ ॥ और बोली इस समय मेरा जीवन और जन्म सफल है जो युद्धमें गये प्राणेशको फिर आया देखती हूं ॥ १० ॥

जब वह कटाक्षसे देखती कामकी व्याप्तीसे पुलकित हुई और मधुर वाणीसे पतिसे रणवृत्तान्त पूँछने लगी ॥ ११ ॥ तुलसी बोली हे प्रभो ! तुम्हारा संग्राम असंख्य विश्वके संहार करनेवालेके संग हुआ, हे कृपानिधे ! विजय किस प्रकार हुई सो कहो ॥ १२ ॥ कमलापति तुलसीके वचन सुन हँसकर शंखचूडके रूपसे अमृतमय वचन कहने लगे ॥ १३ ॥ श्रीभगवान् बोले हे कान्ते ! हम दोनोंका संग्राम पूरे सौ वर्ष हुआ हे कामिनि ! उसमें सम्पूर्ण दानवोंका नाश हो गया ॥ १४ ॥ तब ब्रह्माजीने आकर हम दोनोंकी प्रीति करादी और ब्रह्माजीकी आज्ञासे मैंने देवताओंका अधिकार दे दिया ॥ १५ ॥ मैं अपने घर और शिवजी अपने लोकको गये, यह कह जगत्पतिने शयन किया ॥ १६ ॥ हे नारद ! तब उस रमाके सहित रमापति रमण करने लगे उस साध्वीने अलौकिक

सस्मिता सकटाक्षं च सकामा पुलकांकिता ॥ पप्रच्छ रणवृत्तान्तं कान्तंमधुरयागिरा ॥ ११ ॥ तुलस्युवाच ॥ असंख्यविश्वसंहर्त्रा सार्धमाजौ तव प्रभो ॥ कथं बभूव विजयस्तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥१२॥ तुलसीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य कमलापतिः ॥ शंखचूडस्य रूपेण तामुवाचामृतं वचः ॥ १३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आवयोः समरः कांते पूर्णशब्दं बभूव ह ॥ नाशो बभूव सर्वेषां दानवानां च कामिनि ॥ १४ ॥ प्रीतिं च कारयामास ब्रह्मा च स्वयमावयोः ॥ देवानामधिकारश्च प्रदत्तो ब्रह्मणाऽऽज्ञया ॥ १५ ॥ मायाऽऽगतं स्वभवनं शिवलोकं शिवो गतः ॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथः शयनं च चकार ह ॥ १६ ॥ रेमे रमापतिस्तत्र रमया सह नारद ॥ सा साध्वी सुख संभोगादाकर्षणव्यतिक्रमात् ॥ १७ ॥ सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच सा ॥ तुलस्युवाच ॥ को वा त्वं वद मायेश भुक्ताऽहं मायया त्वया ॥ १८ ॥ दूरीकृतं मत्सतीत्वं यदतस्त्वां शपामि हे ॥ तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिः शापभयेन च ॥ १९ ॥ दधार लीलया ब्रह्मन्सुमूर्तिं सुमनोहरम् ॥ ददर्श पुरतो देवी देवदेवं सनातनम् ॥ २० ॥ नवीननीरदश्यामं शरत्पंकजलोचनम् ॥ कोटिकंदर्पलीलाभं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २१ ॥

सुखसंभोग तथा आकर्षणके व्यतिक्रमसे "स्त्रीका बल आकर्षण कर स्वयं च्युत न होना" ॥ १७ ॥ वितर्क कर जाना कि यह मेरे पति नहीं हैं तब यों बोली तुम कौन हो तुलसी बोली हे मायेश ! तुम कौन हो जो मायासे तुमने मुझे भोगा ॥१८॥ मेरा सतीत्व दूर किया इस कारण मैं तुमको शाप देती हूं तुलसीके वचन सुनकर हरि शापके भयसे ॥ १९ ॥ अपनी मनोहर मूर्ति लीलासेही धारण करते हुए. तब उस देवीने आगे सनातन देव देवका दर्शन किया ॥ २० ॥ जो नवीन मेघके समान श्याम शरत्कमलके समान नेत्र कोटि कामके समान आभा रत्नोंके भूषणोंसे भूषित ॥ २१ ॥

कुछ हँसते प्रसन्न मुख पीतवस्त्रसे शोभित थे उनको देखतेही तुलसी मूर्छित होगई ॥ २२ ॥ फिर चैतन्य हो हरिसे बोली तुलसीने कहा हे नाथ ! तुम पाषाणके समान हो तुमको कुछ भी दया नहीं है ॥ २३ ॥ छलसे धर्म नष्टकर तुमने मेरे स्वामीको मारा तुम दयाहीन होनेसे पाषाण हृदय हो ॥ २४ ॥ इस कारण तुमको पाषाण होना पड़ेगा जो तुमको साधु कहते हैं वे अवश्य भ्रांत हैं ॥ २५ ॥ आपने विना अपराध अपना भक्त दूसरोंके निमित्त क्यों मारा ? इस प्रकार कह वह शोकसे व्याकुल हो वारंवार विलाप करने लगी ॥ २६ ॥ तब करुणासागर उसकी करुणाको देखकर नीतिसे उसे समझाते हुए बोले श्रीभगवान् बोले हे भद्रे ! कृष्ण मेरे पति हों इस निमित्त तुमने भारतवर्षमें मेरा आराधना किया और शंखचूडने तुम्हारे पानेको तप किया ॥ २७ ॥ २८ ॥

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं शोभितं पीतवाससम् ॥ तं दृष्ट्वा कामिनी कामं मूर्च्छां संप्राप लीलया ॥ २२ ॥ पुनश्च चेतनां प्राप्य पुनः सा तमुवाच ह ॥ तुलस्युवाच्य ॥ हे नाथ ते दया नास्ति पाषाणसदृशस्य च ॥ २३ ॥ छलेन धर्मभंगेन मम स्वामी त्वया हतः ॥ पाषाणहृदयस्त्वं हि दयाहीनो यतः प्रभो ॥ २४ ॥ तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं भवे देव भवा धुना ॥ ये वदंति च साधुं त्वां ते भ्रांता हि न संशयः ॥ २५ ॥ भक्तो विनाऽपराधेन परार्थे च कथं हतः ॥ भृशं रुरोद शोकार्ता विललाप मुहुर्मुहुः ॥ २६ ॥ ततश्च करुणां दृष्ट्वा करुणारससागरः ॥ नयेन तां बोधयितुमुवाच कमलापतिः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तपस्त्वया कृतं भद्रे मदर्थे भारते चिरम् ॥ त्वदर्थे शंखचूडश्च चकार सुचिरं तपः ॥ २८ ॥ कृत्वा त्वां कामिनीं सोऽपि विजहार च तत्क्षणात ॥ अधुना दातुमुचितं तवैव तपसः फलम् ॥ २९ ॥ इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यदेहं विधाय च ॥ रामे रम मया सार्धं त्वं रमा सदृशी भव ॥ ३० ॥ इयं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति च विश्रुता ॥ सुपुण्यदा नृणां पुण्ये भवतु भारते ॥३१॥ तव केशसमूहश्च पुण्यवृक्षो भविष्यति ॥ तुलसीकेशसम्भूता तुलसीति च विश्रुता ॥ ३२ ॥

उसने तुमको भार्या पाकर विहार कर अपने तपका फल पाया अब तुमने जिस निमित्त तप किया था तुमको वह फल देना उचित है ॥ २९ ॥ अब इस शरीरको त्याग दिव्य देह धारण कर लक्ष्मीके समान होकर तुम हमारे साथ रमण करो ॥ ३० ॥ यह तुम्हारा शरीर नदीरूप होकर गंडकी नामसे विख्यात होगा और भारतमें स्नान करनेवालोंको पुण्यरूप होगा ॥ ३१ ॥ तुम्हारे केशसमूहोंका एक पवित्र वृक्ष होगा, तुलसीके केशसे प्रगट होनेसे लोकमें तुलसी नामसे विख्यात होगी ॥ ३२ ॥

तीन लोकमें देवपूजनमें जितने पत्र पुष्प हैं हे वरानने ! उनमें तुम प्रधानरूपसे तुलसी होगी ॥ ३३ ॥ स्वर्ग, मृत्यु, पाताल गोलोकमें मेरे समीपही हे सुन्दरि ! सब पुष्पोंमें श्रेष्ठ तुम तुलसी वृक्ष होगी ॥३४॥ गोलोकमें विरजाके किनारे रासवृंदावनके वनमें, भांडीर चम्पकवन और सुन्दर चन्दनोंके वनमें ॥ ३५ ॥ माधवी, केतकी, कुंद, मालिका, मालतीके वन और पुण्यदेशोंमें पुण्यदायक तुम्हारा निवास होगा ॥ ३६ ॥ तुलसीतरुके मूलमें पुण्यस्थानोंमें पुण्यदायक सब तीर्थोंका अधिष्ठान तुम्हारा निवास होगा ॥ ३७ ॥ वहीं और भी सब देवताओंका अधिष्ठानी होगा हे वरानने ! तुलसी पत्रक मस्तकमें गिरनेके समय ॥ ३८ ॥ प्राणी सब यज्ञोंमें दीक्षित और सब तीर्थोंमें स्नान हो जाता है, जो तुलसीपत्रके जलसे अभिषेक करता है ॥ ३९ ॥ जो सहस्र अमृत घटसे भग

त्रिषु लोकेषु पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने ॥ प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने ॥ ३३ ॥ स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गोलोके मम सन्निधौ ॥ भव त्वं तुलसी वृक्षवरा पुष्पेषु सुन्दरी ॥ ३४ ॥ गोलोके विरजातीरे रासे वृन्दावने वने ॥ भांडीरे चम्पकवने रम्ये चन्दन कानने ॥ ३५ ॥ माधवीकेतकीकुन्दमालिकामालतीवने ॥ वासस्तेऽत्रैव भवतु पुण्यस्थानेषु पुण्यदः ॥ ३६ ॥ तुलसीतरुमूलेषु पुण्य देशेषु पुण्यदम् ॥ अधिष्ठानं च तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति ॥ ३७ ॥ तत्रैव सर्वदेवानां ममधिष्ठानमेव च तुलसीपत्रपतनप्राप्तये च वरानने ॥ ३८ ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत् ॥ ३९ ॥ सुधाघटसहस्राणां या तुष्टिस्तु भवेद्धरेः ॥ सा च तुष्टिर्भवेन्नूनं तुलसीपत्रदानतः ॥ ४० ॥ गवामयुतदानेन यत्फलं तत्फलं भवेत् ॥ तुलसीपत्रदानेन तत्फलं कार्त्तिके सति ॥ ४१ ॥ तुलसीपत्रतोयं च मृत्युकाले च यो लभेत् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ॥ ४२ ॥ नित्यं यस्तुलसीतोयं भुङ्क्ते भक्त्त्या च मानवः ॥ लक्षाश्वमेधजं पुण्यं सम्प्राप्नोति स मानवः ॥ ४३ ॥ तुलसीं स्वकरे कृत्वा धृत्वा देहे च मानवः ॥ प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ४४ ॥

वानूकी तुष्टि होती है वह फल तुलसी पत्रके दानसे हो जाती है ॥ ४० ॥ दश सहस्र गोदानका जो फल है वही फल कार्तिकमें तुलसीके दानका है ॥ ४१ ॥ तुलसीपत्रका जल जिसको मृत्युकालमें प्राप्त हो वह सब पापसे छूटकर विष्णुलोकमें जाता है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य नित्य भक्तिसे तुलसी जल प्राप्त करता है उसको लाख अश्वमेधका पुण्य प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य अपने हाथ वा देहमें तुलसी धारणकर तीर्थमें प्राण त्यागन करता है वह विष्णुलोकको जाता है ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य तुलसी काष्ठकी बनी मालाको धारण करता है उसको पद पदमें अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है ॥ ४५ ॥ जो तुलसीपत्रको हाथमें ले स्वीकार की हुई बातकी रक्षा नहीं करता वह चन्द्र आदित्यकी स्थितितक कालसूत्र नरकमें पड़ता है ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य तुलसी लेकर मिथ्या शपथ करता है वह चौदह इंद्रके कालपर्यंत कुंभीपाकमें जाता है ॥ ४७ ॥ जो मृत्युकालमें तुलसी जलकी कणिका भी मिल जाय तो वह रत्नोंके विमान पर बैठकर अवश्य वैकुंठको जाता है ॥ ४८ ॥ पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी, संक्रांति तथा मध्याह्न और निशिसंध्यामें तेल मलतेमें ॥४९॥ आशौच अपवित्र समयमें तथा रात्रिमें जो मनुष्य तुलसी तोडते हैं वे मानो हरिका शिर छेदन करते हैं ॥ ५० ॥ तीन रातका भी वासी तुलसीपत्र शुद्ध है श्राद्ध, व्रत, दान, प्रतिष्ठा,

तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृह्णाति यो नरः ॥ पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥ ४५ ॥ तुलसीं स्वकरे कृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति ॥ स याति कालसूत्रं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ४६ ॥ करोति मिथ्याशपथं तुलस्यां योऽत्र मानवः ॥ स याति कुम्भीपाकं च यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ४७ ॥ तुलसीतोय कणिकां मृत्युकाले च यो लभेत् ॥ रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठे प्राप्यते ध्रुवम् ॥ ४८ ॥ पूर्णिमायाममावस्यां च द्वादश्यां रविसंक्रमे ॥ तैलाभ्यंगं च कृत्वा च मध्याह्ने निशि सन्ध्ययोः ॥ ४९ ॥ अशौचेऽशुचिकाले ये रात्रिवासोऽन्विता नरा ॥ तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिंदंति हरेः शिरः ॥ ५० ॥ त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति ॥ श्राद्धे व्रते च दाने च प्रतिष्ठायां सुरार्चने ॥ ५१ ॥ भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति ॥ शुद्धं च तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि ॥ ५२ ॥ वृक्षाधिष्ठातृदेवी या गोलोके च निरामये ॥ कृष्णेन सार्धं नित्यं च नित्यं क्रीडां करिष्यसि ॥ ५३ ॥ नद्यधिष्ठातृदेवी या भारते च सुपुण्यदा ॥ लावणोदस्य सापत्नी मदंशस्य भविष्यति ॥ ५४ ॥ त्वं च स्वयं महासाध्वी वैकुण्ठे मम सन्निधौ ॥ रमासमा च रामा च भविष्यसि न संशयः ॥ ५५ ॥ अहं च शैलरूपेण गण्डकीतीरसन्निधौ ॥ अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः ॥ ५६ ॥

देवार्चन ॥ ५१ ॥ इनमें पृथ्वी पर गिरा जलमें पतित, जो विष्णुको दिया है, वह सब तुलसीपत्रक्षालनसे अन्य कर्ममें शुद्ध हैं ॥ ५२ ॥ जो यह वृक्षकी अधिष्ठात्री देवी है यह निरामय गोलोकमें कृष्णके साथ नित्य क्रीडा करेगी ॥ ५३ ॥ और नदीकी अधिष्ठात्री देवी होकर भारतमें भी पुण्यदायक है और यह मेरे अंशरूप सागरकी पत्नी होगी ॥ ५४ ॥ हे महासाध्वी ! तुम स्वयं वैकुंठमें मेरे समीप लक्ष्मीके समान होगी इसमें संदेह नहीं ॥ ५५ ॥ और मैं पाषाण रूपसे गंडकी नदीके किनारे तुम्हारे शापसे निवास करूंगा ॥ ५६ ॥

कोटि संख्यांक कीट अपनी तीक्ष्ण डाढ़ोंसे इसमें चक्रका चिन्ह करेंगे ॥५७॥ एक द्वार, चार चक्र, वनमालासे भूषित मालाकार रेखा नवीन मेघके आकारवाली लक्ष्मी नारायण नामक होगी ॥ ५८ ॥ जो एक द्वार चार चक्र नवीन मेघके समान हो वह वनमालासे रहित लक्ष्मी जनार्दन जाने ॥ ५९ ॥ जो दो द्वार चार चक्र और गोष्पादसे विराजित हों यह वनमाला रहित रघुनाथजी हैं ॥ ६० ॥ जो जिसमें अतिछोटे दो चक्र नवीन मेघके समान हों वह वनमाला रहित वामनजी हैं ॥६१॥ जो अतिक्षुद्र दो चक्र वनमालासे विभूषित हों वह गृहस्थियोंको सदा लक्ष्मीदायक श्रीधरका रूप जानना चाहिये ॥६२॥ जो स्थल गोल वनमालासे रहित हों और स्फुट दो चक्र हों उनको दामोदर जानो॥६३॥जो मध्यम वर्तुलाकार दो चक्र शर प्रहारके चिन्हसे अंकित हों वे शरतूण सहित रणराम

कोटिसंख्यास्तत्र कीटास्तीक्ष्णदंष्ट्रा वरायुधैः ॥ तच्छिलाकुहरे चक्रं करिष्यंति मदीयकम् ॥ ५७ ॥ एकद्वारं चतुश्चक्रं वनमालाविभूषितम् ॥ नवीन नीरदाकारं लक्ष्मीनारायणाभिधम् ॥५८॥ एकद्वारं चतुश्चक्रंनवीननीरदोपमम् ॥ लक्ष्मीजनार्दनो ज्ञेयो रहितो वनमालया ॥५९॥ द्वारद्वये चतुश्चक्रं गोष्पदेन विराजितम् ॥ रघुनाथाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥ ६० ॥ अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च नवीनजलदप्रभम् ॥ तद्वामनाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥ ६१ ॥ अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च वनमालाविभूषितम् ॥ विज्ञेयं श्रीधरं रूपं श्रीपदं गृहिणां सदा ॥ ६२ ॥ स्थूलं च वर्तुलाकारं रहितं वनमालया ॥ द्विचक्रं स्फुटमत्यन्तं ज्ञेयं दामोदराभिधम् ॥ ६३ ॥ मध्यमं वर्तुलाकारं द्विचक्रं बाणविक्षतम् ॥ रणरामाभिधं ज्ञेयं शरतूणसमन्वितम् ॥ ६४ ॥ मध्यमं सप्तचक्रं च च्छत्रभूषणभूषितम् ॥ राजराजेश्वरं ज्ञेयं राजसम्पत्प्रदं नृणाम् ॥ ६५ ॥ द्विसप्तचक्रं स्थूलं च नवनीरदसुप्रभम् ॥ अनन्ताख्यं च विज्ञेयं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ६६ ॥ चक्राकारं द्विचक्रं च सश्रीकं जलदप्रभम् ॥ सगोष्पदं मध्यमं च विज्ञेयं मधुसूदनम् ॥ ६७ ॥ सुदर्शनं चैकचक्रं गुप्तचक्रं गदाधरम् ॥ द्विचक्रं हयवक्त्राभं हयग्रीवं प्रकीर्तितम् ॥ ६८ ॥ अतीव विस्तृतास्यं च द्विचक्रं विकटं सति ॥ नरसिंहं सुविज्ञेयं सद्यो वैराग्यदं नृणाम् ॥ ६९ ॥

जानने ॥ ६४ ॥ जो मध्यम सातचक्र और छत्र भूषणसे भूषित हो वह मनुष्योंको राजसंपत्ति देने वाले राजेश्वर जानने ॥ ६५ ॥ जिनमें स्थल चौदह चक्र हों नये मेघके समान कान्तिमान उनको चार वर्गके फलदाता अनन्त जानना ॥ ६६ ॥ जो चक्राकार दोचक्र हों वामांकमें लक्ष्मीका चिन्ह हो वह जगत्के समान कांतिमान् गोपदसे अंकित मध्यमें परिमाण मधुसूदन जानने ॥ ६७ ॥ एक सुदर्शन चक्र गुप्तचक्र गदाधर जानने और दो चक्र हयमुखके आकारके यहग्रीव जानने ॥ ६८ ॥ जिनका अति विस्तृत मुख दोचक्र विकटाकार हो वह मनुष्योंको शीघ्र वैराग्य देनेवाले नृसिंहजी जानने ॥ ६९ ॥

जो दोचक्र विस्तृत मुख वनमालासे विभूषित हों वह गृहस्थियोंको सुख देनेवाले लक्ष्मीनृसिंह जानने ॥ ७० ॥ जिनके द्वार देशमें दोचक्र लक्ष्मीका वाम और चिन्ह सम (वक्रभिन्न) स्फुट हो उनको सब कामनादायक वासुदेव जानो ॥ ७१ ॥ सूक्ष्मचक्र नवीन मेघके समान प्रभावाले महामुखके अन्तमें सूक्ष्म छिद्र हों तो प्रद्युम्न जानो ॥ ७२ ॥ जो दो चक्र एकत्र मिले हों अर्थात् परस्पर दोनोंका मुख मिला हो और उनका पृष्ठ भाग विशालरूप हो वह गृहस्थियोंको सदा सुखदायम संकर्षण जानो ॥ ७३ ॥ जो गोल अति शोभित पीतवर्ण हो वह अनिरुद्ध जानो, मनीषी इनको गृहस्थियोंका सुखपायी कहते हैं ॥ ७४ ॥ जहां शालिग्रामकी शिला है वहां साक्षात् हरि हैं वहां लक्ष्मी सब तीर्थोंके सहित निवास करती हैं ॥ ७५ ॥ जितने पाप ब्रह्महत्याको

द्विचक्रं विस्तृतास्यं च वनमालासमन्वितम् ॥ लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयं गृहिणां च सुखप्रदम् ॥७०॥ द्वारदेशे द्विचक्रं च सश्रीकं च समं स्फुटम् ॥ वासुदेवं तु विज्ञेयं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ७१ ॥ प्रद्युम्नंसूक्ष्मचक्रं च नवीननीरदप्रभम् ॥ सुषिरच्छिद्रबहुलं गृहिणां च सुखप्रदम् ॥ ७२ ॥ द्वे चक्रे चैकलग्ने च पृष्ठं यत्र तु पुष्कलम् ॥ संकर्षणं सुविज्ञेयं सुखदं गृहिणां सदा ॥ ७३ ॥ अनिरुद्धं तु पीताभं वर्तुलं चातिशोभनम् ॥ सुखप्रदं गृहस्थानां प्रवदंति मनीषिणः ॥७४॥ शालग्रामशिला यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ॥ तत्रैव लक्ष्मीर्वसति सर्वतीर्थसमन्विता ॥ ७५ ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यंति शालग्रामशिलार्चनात् ॥ ७६ ॥ छत्राकारे भवेद्राज्यं वर्तुले च माहाश्रियः ॥ दुःखं च शकटारे शूलाग्रे मरणं ध्रुवम् ॥ ७७ ॥ विकृतास्ये च दारिद्र्यं पिंगले हानिरेव च ॥ भग्नचक्रे भवेद्व्याधिर्विदीर्णे मरणं ध्रुवम् ॥ ७८ ॥ व्रतं दानं प्रतिष्ठा च श्राद्धं च देवपूजनम् ॥ शालग्रामस्य सान्निध्यात्प्रशस्तं तद्भवेदिति ॥ ७९ ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु व्रतेषु च तपःसु च ॥ ८० ॥ पाठे चतुर्णां वेदानां तपसां करणे सति ॥ तत्पुण्यं लभते नूनं शालग्रामशिलार्चनात् ॥ ८१ ॥

आदि हैं लेकर वह सब शालिग्राम शिलाके पूजनेसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ७६ ॥ चक्राकारसे राज्य और गोलाकारसे महालक्ष्मी मिलती है, शकटाकारसे दुःख और शूलाकार अग्रभागवाली मूर्तिके पूजनसे मरण होता है ॥ ७७ ॥ विकृत मुखीसे दरिद्र पिंगल वर्णसे हानि भग्नचक्रसे व्याधि और विदीर्णसे अवश्य मरण होता है ॥ ७८ ॥ व्रत दान प्रतिष्ठा श्राद्ध देवपूजा शालिग्राम शिलाके निकट सब प्रशस्त होता है ॥ ७९ ॥ वह सब तीर्थोंके स्नान और सब यज्ञोंमें दीक्षित हो चुका तथा सब यज्ञ तीर्थ व्रत तप कर चुका ॥ ८० ॥ चारों वेदोंका पाठ तपस्या करनेका फल पा चुका जो शालिग्राम शिलाका पूजन करता है ॥८१॥

"जो शालिग्रामकी शिलाको जलसे सदा अभिषेक करता है उसको सब दानका पुण्य और भूमिकी प्रदक्षिणाका फल प्राप्त होता है" जो मनुष्य नित्य शालिग्राम शिलाके जलको पान करते हैं वह निःसन्देह देवताओंके इच्छित प्रसादको पाते हैं ॥ ८२ ॥ उसके स्पर्शको सम्पूर्ण तीर्थ वांछा करते हैं वह जीवन्मुक्त और महापवित्र हो अन्तमें हरिके पदको प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ वहां हरिके साथ असंख्य प्राकृत प्रलय पर्यंत निवास करता है जो उनकी सेवामें नियुक्त होता है ॥ ८४ ॥ जितने ब्रह्महत्याके समान पातक हैं वह उसे देखकर गरुडसे सर्पके समान भागते हैं ॥ ८५ ॥ हे देवि उसके चरणोंकी रजसे शीघ्रही वसुन्धरा पवित्र होती है उसके जन्मसे लाख पितर उसके कुलके तर जाते हैं ॥ ८६ ॥ जो कोई मृत्यु कालमें शालिग्राम शिलाजलको पान करता है वह सब

"शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं सदाचरेत् ॥ सर्वदानेषु यत्पुण्यं प्रदक्षिणं भुवो यथा ॥" शालग्रामशिलातोयं नित्यं भुंक्ते च यो नरः ॥ सुरेप्सितं प्रसादं च लभते नात्र संशयः ॥ ८२ ॥ तस्य स्पर्शं च वांछंति तीर्थानि निखिलानि च जीवन्मुक्तो महापूतोऽप्यंते याति हरेः पदम् ॥ ८३ ॥ तत्रैव हरिणा सार्धमसंख्यं प्राकृतं लयम् ॥ यास्यत्येव हि दास्ये च नियुक्तो दास्यकर्मणि ॥ ८४ ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ॥ तं दृष्ट्वा च पलायंते वैनतेयादिवोरगाः ॥ ८५ ॥ तत्पादरजसा देवी सद्यः पूता वसुंधरा ॥ पुंसां लक्षं तत्पितॄणां निस्तरेत्तस्य जन्मतः ॥ ८६ ॥ शालग्रामशिलातोयं मृत्युकाले च यो लभेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ८७ ॥ निर्वाणमुक्तिं लभते कर्म भोगात्प्रमुच्यते ॥ विष्णोः पदे प्रलीनश्चभविष्यति न संशयः ॥ ८८ ॥ शालग्रामशिलां धृत्वा मिथ्यावाक्यं वदेत्तु यः ॥ स याति कुंभीपाके च यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ ८९ ॥ शालग्रामशिलां धृत्वा स्वीकार यो न पालयेत् ॥ स प्रयात्यसिपत्रं च लक्षमन्वन्तरावधि ॥ ९० ॥ तुलसीपत्र विच्छेदं शालग्रामे करोति यः ॥ तस्य जन्मांतरे कान्ते स्त्रीविच्छेदो भविष्यति ॥ ९१ ॥

पापरहित हो विष्णुलोकको जाता है ॥ ८७ ॥ वह कर्म भोगसे रहित हो निर्वाण मुक्तिको प्राप्त होता है और निःसन्देह विष्णुके पदमें लीन होता है ॥ ८८ ॥ शालिग्राम शिलाको धारण कर जो मिथ्या वाक्य बोलता है वह ब्रह्माकी अवस्थापर्यंत कुंभीपाकमें जाता है ॥८९॥ शालिग्राम शिलाको धारण कर जो स्वीकारको पालन नहीं करता वह लाख मन्वन्तर तक असिपत्र वनमें जाता है ॥९०॥ जो शालिग्रामसे तुलसी पत्रका वियोग करता है हे कांते ! जन्मान्तरमें उसका स्त्रीसे वियोग होता है ॥ ९१ ॥

दे. भा. अथवा जो शंखसे तुलसीपत्रका वियोग करता है वह सात जन्म भार्याहीन और रोगी रहता है ॥ ९२ ॥ जो महाज्ञानी शालिग्राम तुलसीपत्र और शंखको
॥९१॥ एकत्र रखता है रक्षा करता है वह श्रीहरिका प्रिय होता है ॥ ९३ ॥ एकबारही जो जिसमें वीर्याधान करता है उसके वियोगमें परस्पर उनको दुःख
होता है ॥ ९४ ॥ तुम शंखचूडकी प्रिया एक मन्वन्तरतक रहीं तब शंखके सहित तुम्हारा वियोग केवल दुःखदाई ही है ॥९५॥ हे नारद ! इस प्रकार हरि
उससे कह विरामको प्राप्त हुए वह भी यह देह त्याग दिव्यरूप धारण कर ॥ ९६ ॥ लक्ष्मीके समान हरिके हृदयमें निवास करने लगी और लक्ष्मीपति
उसके सहित वैकुण्ठको गये ॥ ९७ ॥ हे नारद ! लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा, तुलसी यह चारों हरिकी प्रिया हुई ॥ ९८ ॥ तुलसीके देहसे तत्काल गन्डकी

तुलसीपत्रविच्छेदं शंखे यो हि करोति च ॥ भार्याहीनो भवेत्सोऽपि रोगी च सप्तजन्मसु ॥ ९२ ॥ शालग्रामं च तुलसीं शंखं चैकत्र
एव च ॥ यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरेः प्रियः ॥ ९३ ॥ सकृदेव हि यो यस्यां वीर्याधानं करोति च ॥ तद्विच्छेदे तस्य दुःखं
भवेदेव परस्परम् ॥ ९४ ॥ त्वं प्रिया शंखचूडस्य चैकमन्वंतरावधि ॥ शंखेन सार्धं त्वद्भेदः केवलं दुःखदस्तथा ॥ ९५ ॥ इत्युक्त्वा
श्रीहरिस्तां च विरराम च नारद ॥ सा च देहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च ॥ ९६ ॥ यथा श्रीश्च तथा सा चाऽप्युवास हरिव
क्षसि ॥ स जगाम तथा सार्धं वैकुंठं कमलापतिः ॥ ९७ ॥ लक्ष्मीः सरस्वती गंगा तुलसी चापि नारद ॥ हरेः प्रियाश्चतस्रश्च बभूवु
रीश्वरस्य च ॥९८॥ सद्यस्तद्देहजाता च बभूव गंडकी नदी ॥ ईश्वरः सोऽपि शैलश्च तत्तीरे पुण्यदो नृणाम् ॥९९॥ कुर्वंति तत्र कीटाश्च
शिलां बहुविधां मुने ॥ जले पतंति या याश्च फलदास्ताश्च निश्चितम् ॥ १०० ॥ स्थलस्थाः पिंगला ज्ञेयाश्चोपतापाद्रवेरिति ॥
इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे चतुर्विंशोऽध्यायः
॥ २४ ॥ नारद उवाच ॥ तुलसी च यदा पूज्य कृता नारायणप्रिया ॥ अस्याः पूजाविधानं च स्तोत्रं च वद सांप्रतम् ॥ १ ॥

नदी हुई और ईश्वर भी शिलारूपसे उसके समीप मनुष्योंको पुण्यदेनेको स्थित हैं ॥ ९९ ॥ हे मुने ! वहांके कीट अनेक प्रकारके शिलाओंमें चिन्ह करते
हैं उनमें जो जो जलमें पतित होती हैं वह वह मनुष्योंको फलदायी हैं ॥ १०० ॥ स्थलकी शिला सूर्यके उपतापसे पिंगलवर्ण हो जाती हैं यह आपसे सब
भा.टी.न. कहा अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १०१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे तुलसीमाहात्म्ये भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ नारदजी
अ० २५ बोले जब नारायणने अपनी प्रिया तुलसीको पूजनीय किया तो हे ब्रह्मन् ! इसकी पूजाविधि और स्तोत्र भी कहिये ॥ १ ॥

हे मुने! पहले किसने इनकी पूजा और स्तुति की और किससे किस प्रकार पूजनीया हुई वह आप कहिये ॥ २ ॥ सूतजी बोले नारदजीके वचन सुन मुनिश्रेष्ठ हँसकर पुण्यदायक पापहारिणी कथा कहने लगे ॥ ३ ॥ नारायण बोले हरिने तुलसीका पूजन कर रमाके साथ क्रीडा की और गौरवमें लक्ष्मीके समान उसका सौभाग्य किया ॥ ४ ॥ लक्ष्मी और गंगाने तो उसको नवसंगम सहन कर लिया परन्तु सौभाग्य और गौरवके क्रोधसे सरस्वतीने सहन न किया ॥ ५ ॥ उस मानिनीने क्लेश कर हरिके समीपही उसे ताडन किया तब तुलसी लज्जा और अपमानसे अन्तर्धान हो गई ॥ ६ ॥ वह सब सिद्धोंकी ईश्वरी देवी ज्ञानियोंकी सिद्धयोगिनी कोपसे हरिसे अन्तर्हित हो गई ॥ ७ ॥ तब हरिने तुलसीको न देखकर सरस्वतीको समझाया और फिर उसकी आज्ञा

केन पूजा कृता केन स्तुता प्रथमतो मुने ॥ तत्र पूज्या सा बभूव केन वा वद मामहो ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुंगवः ॥ कथां कथितुमारेभे पुण्यां पापहरां पराम् ॥ ३ ॥ नारायण उवाच ॥ हरिः संपूज्य तुलसीं रेमे च रमया सह ॥ रमासमानसौभाग्यां चकार गौरवेण च ॥ ४ ॥ सेहे च लक्ष्मीर्गंगा च तस्याश्च नवसंगमम् ॥ सौभाग्यगौरवं कोपात्तेन सेहे सरस्वती ॥ ५ ॥ सा तां जघान कलहे मानिनी हरिसन्निधौ ॥ व्रीडया चापमानेन सान्तर्धानं चकार ह ॥ ६ ॥ सर्वसिद्धेश्वरी देवी ज्ञानिनां सिद्धियोगिनी ॥ जगामादर्शनं कोपात्सर्वत्र च हरेरहो ॥ ७ ॥ हरिर्न दृष्ट्वा तुलसीं बोधयित्वा सरस्वतीम् ॥ तदनुज्ञां गृहीत्वा च जगाम तुलसीवनम् ॥ ८ ॥ तत्र गत्वा च सुस्नातो हरिः स तुलसीं सतीम् ॥ पूजयामास तां ध्यात्वा स्तोत्रं भक्त्या चकार ह ॥ ९ ॥ लक्ष्मी मायाकामवाणीबीज पूर्वं दशाक्षरम् ॥ वृन्दावनीति ङेन्तं च वह्निजायांतमेव च ॥ १० ॥ अनेन कल्पतरुणा मंत्रराजेन नारद ॥ पूज येद्यो विधानेन सर्वसिद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥ ११ ॥ घृतदीपेन धूपेन सिंदूरचंदनेन च ॥ नैवेद्येन च पुष्पेण चोपचारेण नारद ॥ १२ ॥

लेकर तुलसीके वनमें गये ॥ ८ ॥ वहां जाय हरिने स्नानकर तुलसी सतीका ध्यानकर पूजन किया और भक्तिसे स्तोत्र पढा ॥ ९ ॥ श्रीबीज, भुवनेश्वरी बीज, मन्मथबीज, वाग्बीज, चतुर्थीयुक्त, वृंदावनी वह्निजाया पूर्वक दशाक्षरमंत्र वह्निजायात्मक पढा अर्थात् बीज युक्त श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा ॥ १० ॥ हे नारद ! इस कल्पवृक्षरूप मंत्रराजसे जो विधानसे तुलसीका पूजन करता है उसको अवश्य सब सिद्धि प्राप्त होती हैं ॥ ११ ॥ घृतका दीपक धूप, चंदन नैवेद्य और पुष्पादि षोडशोपचारसे पूजी हुई ॥ १२ ॥

हरिके स्तोत्रसे सन्तुष्ट हो वह वृक्षसे निर्गत हुई और प्रसन्न हो हरिके चरणोंकी शरणमें हुई ॥ १३ ॥ तब विष्णुने उसको वर दिया तुम सर्वपूज्या होगी मैं तुम सुरूपाको शिर और वक्षस्थल में धारण करूंगा ॥ १४ ॥ और सब देवता आदि तुमको अपने शिरपर धारण करेंगे यह कह हरि उसको ग्रहणकर वैकुण्ठको गये ॥ १५ ॥ नारदजी बोले हे प्रभो ! तुलसीका ध्यान स्तोत्र पूजनविधान किस प्रकार है ? हे महाभाग! सो आप मुझसे कहिये ॥ १६ ॥ नारायण बोले तुलसीके अन्तर्धान होनेपर हरि वृन्दावनमें जाय विरहातुर हो तुलसीकी स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले जो कि, यह वृन्दरूप वृक्ष एकत्र होते हैं इस कारण पण्डित इसको वृन्दा कहते हैं यह मेरी प्रिया है इसको मैं भजता हूं ॥१८॥ आदिमें जो देवी पहले वृन्दावनके बनमें हुई इसीसे वृन्दावन कहा गया है उस

हरि स्तोत्रेण तुष्टा सा चाविर्भूता महीरुहात् ॥ प्रसन्ना चरणांभोजे जगाम शरणं शुभा ॥ १३ ॥ वरं तस्यै ददौ विष्णुः सर्वपूज्या भवेरिति ॥ अहं त्वां धारयिष्यामि सुरूपां मूर्ध्नि वक्षसि ॥ १४ ॥ सर्वे त्वां धारयिष्यंति स्वमूर्ध्नि च सुरादयः ॥ इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा च प्रययौ स्वालयं विभुः ॥ १५ ॥ नारद उवाच ॥ किं ध्यानं स्तवनं किं वा किं वा पूजाविधानकम् ॥ तुलस्याश्च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १६ ॥ नारायण उवाच ॥ अन्तर्हितायां तस्यां च हरिर्वृन्दावने तदा ॥ तस्याश्चक्रे स्तुतिं गत्वा तुलसीं विरहातुरः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वृन्दारूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवन्ति च ॥ विदुर्बुधास्तेन वृन्दां मत्प्रियां तां भजाम्यहम् ॥ १८ ॥ पुरा बभूव या देवी त्वादौ वृन्दावने वने ॥ तेन वृन्दावनी ख्याता सौभाग्यां तां भजाम्यहम् ॥ १९ ॥ असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरंतरम् ॥ तेन विश्वपूजिताख्या पूजितां च भजाम्यहम् ॥ २० ॥ असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणि त्वया सदा ॥ तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्यहम् ॥ २१ ॥ देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेन यया विना ॥ तां पुष्पसारः शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः ॥ २२ ॥ विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्तानन्दो भवेद् ध्रुवम् ॥ नंदिनी तेन विख्याता सा प्रीता भवतादिह ॥ २३ ॥

सौभाग्यवतीको मैं भजता हूं ॥१९॥ जो असंख्य विश्वोंमें निरन्तर पूजित है इससे उस विश्वपूजित नामवालीको मैं निरन्तर भजता हूं ॥ २० ॥ तुमसे सदा असंख्य विश्व पवित्र होते हैं उस विश्वपावनी देवीको मैं विरहसे स्मरण करता हूं ॥२१॥ जिसके विना पुष्पसमूहसे भी देवता संतुष्ट नहीं होते उस शुद्ध पुष्पोंकी सारको मैं शोकाकुल देखनेकी इच्छा करता हूं ॥ २२ ॥ विश्वमें जिसके प्राप्ति मात्रसे भक्तोंको आनंद होता है इसीसे वह नंदिनीनामसे विख्यात है हमपर प्रसन्न हो ॥ २३ ॥

सब संसारमें जिस देवीकी उपमाको कोई नहीं है और तुला न होनेसे तुलसी नामसे विख्यात है उस प्रियाकी मैं शरण होता हूं ॥ २४ ॥ यह कृष्णको जीवनरूप निरन्तर अतिशय प्यारी है इससे कृष्ण जीवनी नामवाली है मेरे जीवनकी रक्षा करे ॥ २५ ॥ इस प्रकार स्तुति कर रमापति वहां स्थित हुए तब चरणकमलमें प्रणाम करती तुलसीका हरिने साक्षात् दर्शन किया ॥ २६ ॥ जो मानिनी मानसे पूजित होकर अवमानके कारण नेत्रोंमें आंसू भरे थी हरिने प्रियाको देखतेही हृदयमें बसाया ॥ २७ ॥ और भारतीकी आज्ञासे उसके सहित अपने स्थानमें गये और सरस्वतीसे तुलसीकी प्रीति करादी ॥ २८ ॥ और सबसे पूजित होनेका विष्णुने उसे वर दिया सबको शिरोंपर धारण करके योग्य तथा मुझसे भी वन्दित और माननीया होगी ॥२९॥ तब वह देवी विष्णुके

यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च ॥ तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम् ॥ २४ ॥ कृष्णजीवनरूपा सा शश्वत्प्रियतमा सती ॥ तेन कृष्णजीवनी सा सा मे रक्षतु जीवनम् ॥ २५ ॥ इत्येवं स्तवनं कृत्वा तस्थौ तत्र रमापतिः ॥ ददर्श तुलसी साक्षात्पादपद्मनतां सतीम् ॥ २६ ॥ रुदतीमवमानेन मानिनीं मानपूजिताम् ॥ प्रियां दृष्ट्वा प्रियः शीघ्रं वासयामास वक्षसि ॥ २७ ॥ भारत्याज्ञां गृहीत्वा च स्वालयं च ययौ हरिः ॥ भारत्या सह तत्प्रीतिं कारयामास सत्वरम् ॥ २८ ॥ वरं विष्णुर्ददौ तस्यै सर्वपूज्या भवेरिति॥ शिरोधार्या च सर्वेषां वंद्या मान्या ममेति च॥२९॥ विष्णोर्वरेण सा देवी परितुष्टा बभूव च सरस्वती तामाकृष्य वासयामास सन्निधौ ॥३०॥ लक्ष्मीर्गंगा सस्मिता च तां समाकृष्य नारद ॥ गृहं प्रवेश यामास विनयेन सतीं सदा ॥३१॥ वृन्दावृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपाविनी॥पुष्पसारा नन्दिनी च तुलसी कृष्णजीवनी ॥३२॥ एतन्नामाष्टकं चैव स्तोत्रं नामार्थसंयुतम्॥यः पठेत्तां च सम्पूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ३३ ॥ कार्त्तिक्यां पूर्णिमायां च तुलस्या जन्म मंगलम् ॥ तत्र तस्याश्च पूजा च विहिता हरिणा पुरा ॥३४॥

वरसे संतुष्ट हुई और सरस्वतीने स्वयं उसे लेकरहरिके समीप बैठाया ॥ ३० ॥ हे नारद ! तब लक्ष्मी और गंगानेभी हँसकर तुलसीका हाथ पकड़ विनय पूर्वक घरमें प्रवेश कराया ॥ ३१ ॥ वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वकी पवित्रकरनेवाली विश्वसे पूजित हुई अथवा विश्वपावनी, विश्वपूजिता, पुष्पसारा, नंदिनी, कृष्णजीवनी ॥ ३२ ॥ इन आठ नामोंका स्तोत्र अर्थसंयुक्त जो पढता और तुलसीकी पूजा करता है उसको अश्वमेधका फल मिलता है ॥ ३३ ॥ कार्तिकी पूर्णिमाको तुलसीका मंगलमय जन्म है. हरिने उसी समय तुलसी पूजाका विधान कहा है ॥ ३४ ॥

उसमें जो भक्तिसे विश्व पावनीका पूजन करते हैं वह सब पापसेरहित हो विष्णुलोकको जाते हैं ॥ ३५ ॥ कार्तिकमें जो वैष्णवको तुलसीपत्र देता है उसको अवश्य दशसहस्र गोदानका फल मिलता है ॥ ३६ ॥ अपुत्रको पुत्र, प्रियाहीनको प्रिया, बन्धु, इस स्तोत्रके श्रवणमात्रसे प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ रोगी रोगसे, बन्धनमें पड़ा हुआ बन्धनसे, भीत भयसे और पापी पातकसे छूट जाता है ॥ ३८ ॥ यह आपसे स्तोत्र कहा वह अब ध्यान पूजा विधिको सुनो जिसको कण्वशाखामें कहे वेदमें तुम भी सब जानते हो ॥ ३९ ॥ विना आवाहनके तुलसीके वृक्षमेंही भक्तिसे पूजन करे उसको ध्यान कर षोडष उपचारसे पूजन करे ध्यान पातकोंका नाशक है ॥ ४० ॥ तुलसी, पुष्पसारा, सती, पूता, (पवित्र) मनोहरा, पापरूपी ईंधनके भस्म करनेकी जलती अग्निके शिखाके समान

तस्यां यः पूजयेतां च भक्त्या च विश्वपावनीम् ॥ सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ३५ ॥ कार्तिके तुलसीपत्रं यो ददाति च वैष्णवे ॥ गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम् ॥ ३६ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत्प्रियाम् ॥ बन्धुहीनो लभेद्बंधून्स्तोत्रश्रवणमात्रतः ॥ ३७ ॥ रोगी प्रमुच्येत रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धानात् ॥ भया न्मुच्येन भीतस्तु पापान्मुच्येत पातकी ॥ ३८ ॥ इत्येवं कथितं स्तोत्रं ध्यानं पूजाविधिं शृणु ॥ त्वमेव वेदे जानासि कण्वशाखोक्तमेव च ॥ ३९ ॥ तद्वृक्षे पूजयेत्तां च भक्त्या चावाहनं विना ॥ तां ध्यात्वा चोपचारेण ध्यानं पातकनाशनम् ॥ ४० ॥ तुलसीं पुष्पसारां च सतीं पूतां मनोहरम् ॥ कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमाम् ॥ ४१ ॥ पुष्पेषु तुलना यस्या नास्ति वेदेषु भाषितम् ॥ पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता ॥ ४२ ॥ शिरोधार्या च सर्वेषामीप्सिता विश्व पावनी ॥ जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भजे तां हरिभक्तिदाम् ॥ ४३ ॥ इति ध्यात्वा च सम्पूज्य स्तुत्वा च प्रणमेत्सुधीः ॥ उक्तं तुलस्युपाख्यानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ नारद उवाच ॥ तुलस्युपाख्यानमिदं श्रुतं चातिसुधोपमम् ॥ ततः सावित्र्युपाख्यानं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

॥ ४१ ॥ जिसके समान कोई पुष्प नहीं ऐसा वेदोंमें कहा है, सबमें पवित्र होनेसे जो तुलसी कहाती है ॥ ४२ ॥ सबको शिरपर धारण करने योग्य ईप्सिता, विश्वकी पवित्र करनेवाली स्वयं जीवनमुक्त, भक्तोंको मुक्ति देनेवाली, हरिभक्ति देनेवालीको भजता हूं ॥ ४३ ॥ बुद्धिमान् इस प्रकार ध्यानकर पूजन करनेके उपरान्त प्रणाम करे यह तुलसीका उपाख्यान कहा अब क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ४४ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ नारदजी बोले यह मैंने अमृतके समान तुलसीका उपाख्यान सुना अब आप मुझसे सावित्रीका उपाख्यान कहिये ॥ १ ॥

यह सावित्री वेदकी माता है इन्होंने किस कारणसे जन्म लिया और प्रथम किसके द्वारा लोकमें पूजित हुई ॥ २ ॥ नारायण बोले हे मुने! इस वेदमाताका प्रथम ब्रह्माजीने पूजन किया है, दूसरे कालमें वेदगणोंने और पश्चात् विद्वानोंने पूजन किया है ॥ ३ ॥ फिर भारतमें अश्वपति राजाने इनकी पूजा की पीछे चारों वर्णोंने इनकी पूजाकी ॥ ४ ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ! वह अश्वपति कौन थे और किस प्रकार उन्होंने पूजा की सर्वपूज्या वह देवी प्रथम एक और फिर दूसरोंसे पूजित हुई ॥ ५ ॥ श्रीनारायण बोले हे मुने! राजा अश्वपति भद्रदेशके निवासी थे, वह वैरियोंके बलहर्ता और मित्रोंका दुःखनाश करते थे ॥ ६ ॥ धर्मचारिणी उनकी महारानी मालती नामक विष्णु प्रिया लक्ष्मीके समान थी ॥७॥ हे नारद ! उसकी रानी वंध्या थी वसिष्ठके उपदेशसे भक्तिसे सावित्रीका

पुरा केन समुद्भूता सा श्रुता च श्रुतेः प्रसूः ॥ केन वा पूजिता लोके प्रथमे कैश्च वा परे ॥ २ ॥ नारायण उवाच ॥ ब्रह्मणा वेदजननी प्रथमे पूजिता मुने ॥ द्वितीये च वेदगणैस्तत्पश्चाद्विदुषां गणैः ॥३॥ तदा चाश्वपतिर्भूपः पूजयामास भारते ॥ तत्पश्चात्पूजया मासुर्व र्णाश्चत्वार एव च ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ को वा सोऽश्वपतिर्ब्रह्मकेन वा तेन पूजिता ॥ सर्वपूजया च सा देवी प्रथमे कैश्च वा परे ॥ ५ ॥ नारायण उवाच मद्रदेशे महाराजो बभूवाश्वपतिर्मुने ॥ वैरिणां बलहर्ता च मित्राणां दुःखनाशनः ॥ ॥ ६ ॥ आसीत्तस्य महाराज्ञी महिषी धर्मचारिणी ॥ मालतीति समाख्याता यथा लक्ष्मीर्गदाभृतः ॥ ७ ॥ सा च राज्ञी च वन्ध्या च वसिष्ठस्योपदेशतः ॥ चकाराधनं भक्त्त्या सावित्र्याश्चैव नारद ॥ ८ ॥ प्रत्यादेशं न सा प्राप्ता महिषी न ददर्श ताम् ॥ गृहं जगाम दुःखार्ता हृदयेन विदूयता ॥ ९ ॥ राजा तां दुःखितां दृष्ट्वा बोधयित्वा नयेन वै ॥ सावित्र्यास्तपसे भक्त्या जगाम पुष्करं तदा ॥ १० ॥ तपश्चकार तत्रैव संयतः शतवत्सरम् ॥ न ददर्श च सावित्र्याः प्रत्यादेशो बभूव च ॥ ११ शुश्रावाकाशवाणीं च नृपेंद्रश्चशरीरिणीम् ॥ गायत्र्या दशलक्षं च जपं त्वं कुरु नारद ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र आजगाम पराशरः ॥ प्रणनाम ततस्तं च मुनिर्नृपमुवाच च ॥ १३ ॥

आराधन करने लगी ॥ ८ ॥ बहुत कालतक आराधन करनेपर भी भगवतीसे उत्तर वा दर्शन न मिला तब दुःखी मनसे अपने घर चली आई ॥ ९ ॥ राजाने उसे दुःखी देखकर नीतपूर्वक समझाया और भक्तिसे सावित्रीकी तपस्या करनेको पुष्करमें गया ॥ १० ॥ वहां नियत इन्द्रिय होकर शतवर्ष तप किया परन्तु सावित्रीका दर्शन न पाकर आज्ञा पाई ॥ ११ ॥ राजाने आकाशसे अशरीरिणी वाणी सुनी कि,हे नारद ! तुम गायत्रीका दशलक्ष जप करो ॥ १२ ॥ उसी समय वहां पराशरजी आये राजाके प्रणाम करनेपर मुनिने उनसे कहा ॥ १३ ॥

मुनि बोले एकवार गायत्री जप दिनका किया पाप हर लेता है, दशवार जपनेसे दिनरातका किया पाप दूर होता है ॥ १४ ॥ सौवार जपनेसे महीनेका पाप दूर हो जाता है, सहस्रवार जपनेसे सम्वत्सरकृत पाप नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥ एक लाख जपनेसे जन्मका किया पाप और दश लक्षसे अन्य जन्मका और सौलाख जपनेसे सब जन्मका किया पाप नष्ट होता है ॥ १६ ॥ दशकोटि जपनेसे ब्राह्मणोंकी मुक्ति हो जाती है,जपका विधान कहते हैं, सर्पके फणके समान हाथ करके और अगुलियोंकेछिद्र मूँद और ऊर्ध्वाङ्गुलीके अग्र भागको अधोभागमें भुग्न करके ॥ १७ ॥ शिर झुकाये अचल भावसे प्राङ्मुख होकर द्विज जप करे अनामिकाके मध्य देश से नीचे वामक्रमसे ॥ १८ ॥ तर्जनीके मूल पर्यन्त जप करे यह करमालाका क्रम है श्वेत कमलकेबीज स्फटिक मणिकी माला ॥ १९ ॥

मुनिरुवाच ॥ सकृज्जापश्च गायत्र्याः पापं दिनभवं हरेत् ॥ दशवारं जपेनैव नश्येत्पापं दिवानिशम् ॥ १४ ॥ शतवारं जपश्चैव पापं मासार्जितं हरेत् ॥ सहस्रधा जपश्चैव कल्मषं मत्सरार्जितम् ॥ १५ ॥ लक्षो जन्मकृतं पापं दशलक्षोऽन्यजन्मजम् ॥ सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षाद्विनश्यति ॥ १६ ॥ करोति मुक्तिं विप्राणां जपो दशगुणस्ततः ॥ करं सर्पफणाकारं कृत्वा तद्रंध्रमुद्रितम् ॥ १७ ॥ आनम्र मूर्धमचलं प्रजपेत्प्राङ्मुखो द्विजः ॥ अनामिकामध्यदेशादधोऽवामक्रमेण च ॥ १८ ॥ तर्जनीमूलपर्यंतं जपस्यैवं क्रमः करे ॥ श्वेतपंकजबीजानां स्फटिकानां च संस्कृताम् ॥ १९ ॥ कृत्वा वा मालिकां राजञ्जपेत्तीर्थे सुरालये ॥ संस्थाप्य मालामश्वत्थपत्रे पद्मे च संयतः ॥ २० ॥ कृत्वा गोरोचनाक्तां च गायत्र्या स्नापयेत्सुधीः ॥ गायत्रीशतकं तस्यां जपेच्च विधिपूर्वकम् ॥ २१ ॥ अथवा पञ्चगव्येन स्नात्वा मालां सुसंस्कृताम् ॥ अथ गंगोदकेनैव स्नात्वा वाऽतिसुसंस्कृताम् ॥ २२ ॥ एवं क्रमेण राजर्षे दशलक्षं जपं कुरु ॥ साक्षाद्रक्ष्यसि सावित्रीं त्रिजन्मपातकक्षयात् ॥ २३ ॥ नित्यं संध्यां च हे राजन्करिष्यसि दिनेदिने ॥ मध्याह्ने चापि सयाह्ने प्रातरेव शुचिः सदा ॥ २४ ॥

बनाकर तीर्थमें जाय देवालयमें जप करै मालाको स्थापनकर पीपलके पत्ते कमलमें संयत होकर ॥ २० ॥ गोरोचनसे लिप्तकर सुधी पुरुष गायत्रीको स्नान करावे उसपर गायत्री शतकका जप करे ॥ २१ ॥ और पंचगव्यसे संस्कारकी हुई माला को संस्कार कराकर और फिर स्वयं स्नान कर मालाको भी गङ्गाजलसे स्नान कराय ॥ २२ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार दशलाख जप करो तब तीन जन्मके पातक क्षय होनेसे साक्षात् गायत्री देवी का दर्शन करोगे ॥ २३ ॥ हे राजन् ! जब दिन दिन नित्य सन्ध्याको करोगे मध्याह्न, सायाह्न और प्रभातमें सदा पवित्र रहोगे तो दर्शन पाओगे ॥ २४ ॥

जो संध्याहीन है वह नित्य अशुचि होनेसे सब कर्मों के अयोग होता है विना संध्याके जो दिनका किया कर्म है वह उसका फलभागी नहीं होता ॥ २५ ॥ जो प्रभात और सांयंसध्या नहीं करता उसको सर्व द्विज॥कर्मोंसे बाहर कर देना चाहिये ॥ २६ ॥ जो जीवन पर्यन्त तीनों कालमें संध्या करता है वह ब्राह्मण सूर्यके समान सदा अपने तेजसे तपता है॥ २७ ॥ उसके चरणकमलकी रजसे भूमि सदा पवित्र होती है जो ब्राह्मण संध्यासे पवित्र है वह पवित्र तेजस्वी जीवन्मुक्त होता है ॥ २८ ॥ उसके स्पर्श मात्रसे तीर्थ पवित्र होते हैं सर्प जैसे गरुड़को देख भागते हैं इस प्रकार उसे देख पाप भागते हैं॥ २९ ॥ और जो ब्राह्मण तीनों काल की संध्यासे रहित है देवता उसकी पूजा और पितर उसका पिण्ड ग्रहण नहीं करते ॥ ३० ॥ जो मूलप्रकृतिका अभक्त है और उसके

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥ यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥ २५ ॥ नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तुपश्चिमाम् ॥ स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ २६ ॥ यावज्जीवनपर्यंतं त्रिसंध्यां यः करोति च ॥ स च सूर्यसमो विप्रस्तेजसा तपसा सदा ॥ २७ ॥ तत्पादपद्मरजसा सद्यः पूता वसुंधरा ॥ जीवन्मुक्तः स तेजस्वी संध्यापूतो हि यो द्विजः ॥ २८ ॥ तीर्थानि च पवित्राणि तस्य संस्पर्शमात्रतः ॥ ततः पापानि यांत्येव वैनतेया दिवोरगा ॥ २९ ॥ न गृह्णंति सुराः पूजां पितर पिंडतर्पणम् ॥ स्वेच्छया च द्विजातेश्च त्रिसंध्यारहितस्य च ॥ ३० ॥ मूलप्रकृत्यभक्तो यस्तन्मंत्रस्याप्यनर्चकः ॥ तदुत्सवविहीनश्च विषहीनो यथोरगः ॥ ३१ ॥ विष्णुमंत्रविहीनश्च त्रिसंध्यारहितो द्विजः ॥ एकादशीविहीनश्च विषहीनो यथोरगः ॥३२॥ हरेरनैववेद्यभोजी धावको वृषवाहकः ॥ शूद्रान्नभोजी यो विप्रो विषहीनो यथोरगः ॥ ३३ ॥ शूद्राणां शवदाही यः स विप्रो वृषलीपतिः शूद्राणां सूपकारश्च विषहीनो यथोरगः ॥ ३४ ॥ शूद्राणांच प्रतिग्राही शूद्र याजी च यो द्विजः ॥ असिजीवी मसिजीवी विषहीनो यथोरगः ॥ ३५ ॥

मंत्रकी अर्चा नहीं करता और भगवतीके उत्सवविहीन है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३१ ॥ जो ब्राह्मण विष्णुमंत्र और तीनों संध्याओंसे रहित हैं तथा एकादशी व्रत विहीन है वह विषहीन सर्पके समान हैं ॥ ३२ ॥ जो विना भगवान्‌को भोग लगाये नैवेद्य खाता धावक कर्मकारी , बैलोंपर बोझ लादने वाला तथा शूद्रोंका अन्न खानेवाला जो ब्राह्मण है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३३ ॥ जो शूद्रोंके शवका दहन करनेवाला है वह ब्राह्मण शूद्रपति होता है जो शूद्रोंकी रसोई करता है वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ३४ ॥ जो ब्राह्मण शूद्रोंसे प्रतिग्रह लेता शूद्रोंको यजन कराता स्याहीका व्यवहार करनेवाला शस्त्र बेचने वाला विषहीन सर्पके समान है॥ ३५ ॥

जो ब्राह्मण कन्याका वेचनेवाला हरिनाम बेचनेवाला जो ब्राह्मण पुत्ररहित अवीर है ब्राह्मणी पतिकें भोजन करता है जो ऋतु स्नाताके अन्नका भोगनेवाला है ॥ ३६ ॥ जो कुटना है जो ब्याजसे जीता है, जो व्याज लेता है जो विद्या बेचता है वह विषहीन सर्पके समान होता है ॥ ३७ ॥ जो ब्राह्मण सूर्योदयतक सोता है जो ब्राह्मण मच्छी खाता है जो देवीकी पूजा से रहित है वह बिषहीन सर्पके समान है ॥ ३८ ॥ यह कहकर पराशर ने सब पूजाकी विधि क्रम और सावित्रीका ध्यानादिक वर्णन किया ॥ ३९ ॥ इस प्रकार राजाको सब देंकर हे मुने ! वह मुनि अपने आश्रमको गये राजाने सावित्रीको पूज वर पाया ॥ ४० ॥ नारदजी बोले सावित्रीका ध्यान और पूजा विधि क्या है और क्या स्तोत्र देकर पराशरजी चले गये ॥ ४१ ॥ और राजाने किस

यः कन्याविक्रयी विप्रो यो हरेर्नामविक्रयी ॥ यो विप्रोऽवीरान्नभोजी ऋतुस्नातान्नभोजकः ॥ ३६ ॥ भगजीवी वार्धुषिको विषहीनो यथोरगः ॥ यो विद्याविक्रयी विप्रो विषहीनो यथोरगः॥ ३७ ॥ सूर्योदये स्वपेद्यो हि मत्स्यभोजी च यो द्विजः ॥ शिवापूजादिरहितो विषहीनो यथोरगः ॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठः सर्वपूजाविधिक्रमम् ॥ तमुवाच च सावित्र्या ध्यानादिकमभीप्सितम् ॥ ३९ ॥ दत्त्वा सर्वं नृपेंद्राय ययौ च स्वाश्रमे मुने ॥ राजा संपूज्य सावित्रीं ददर्श वरमाप च ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ किं वा ध्यानं च सावित्र्याः किंवा पूजाविधानकम् ॥ स्तोत्रं मंत्रं च किं दत्त्वा प्रययौ स पराशरः ॥ ४१ ॥ नृपः केन विधानेन संपूज्य श्रुतिमातरम् ॥ वरं च कं वा संप्राप संपूज्य तु विधानतः ॥ ४२ ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि सावित्र्याः परमं महत् ॥ रहस्यातिरहस्यं च श्रुतिसिद्धं समासतः ॥ ४३ ॥ नारायण उवाच ॥ जेष्ठकृष्णत्रयोदश्यां शुद्धकाले च यत्नतः ॥ व्रतमेवं चतुर्दश्यां व्रती भक्त्या समाचरेत् ॥ ४४ ॥ व्रतं चतुर्दशाब्दं च द्विसप्तफलसंयुतम् ॥ दत्त्वा द्विसप्तनैवेद्यं पुष्पधूपादिकं चरेत् ॥ ४५ ॥ वस्त्रं यज्ञोपवीतं च भोजनं विधिपूर्वकम् ॥ संस्थाप्य मंगलघटं फलशाखासमन्वितम् ॥ ४६ ॥

विधानसे वेद माताका पूजन किया और उस पूजाके विधानसे क्या वर पाया ॥ ४२ ॥ वह मैं सब सावित्रीके परम महत् श्रुतिसिद्ध रहस्यको संक्षेपसे सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ४३ ॥ नारायण बोले ज्येष्ठकृष्ण त्रयोदशीको शुद्ध समय यत्नपूर्वक रहकर परम भक्तिसे चौदशको व्रत करै ॥ ४४ ॥ यह चौदश वर्षका व्रत चौदह फलसे संयुक्त है भगवतीको चौदह नैवेद्य देनेसे पुष्प और धूपादि करै ॥ ४५ ॥ वस्त्र यज्ञोपवीत विधिपूर्वक भोजन निवेदन कर फल शाखासंयुक्त मंगल घटस्थापन करके ॥ ४६ ॥

गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, शिवा, इनको भली प्रकार पूजनकर ब्राह्मण घटमें आवाहन करै ॥ ४७ ॥ जो मध्यदिनमें ध्यान कहा है वह सावित्रीका ध्यान सुनो. स्तोत्र पूजा विधान और सब कामना देनेवाला मंत्र है ॥ ४८ ॥ तपाये सुवर्णके समान कांतिमान् ब्रह्मतेजसे प्रकाशित ग्रीष्मऋतुके सहस्र मध्याह्न सूर्यके समान अति कांतिमान् ॥ ४९ ॥ कुछ हँसीसे प्रसन्नमुख रत्नके भूषणोंसे भूषित [अग्निशुद्ध शुकाधान] "अग्निमें न जलनेवाले वस्त्र पहरे" भक्तोंके ऊपर अनुग्रहका शरीर धारण करनेवाली ॥५०॥ सुखदायक मुक्तिकारक शान्त भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली मनोहर जगत्की निधियोंमें श्रेष्ठ सब सम्पति स्वरूपवाली सब सम्पत्तिकी स्वरूप और सब सम्पत्तियोंकी देनेवाली ॥ ५१ ॥ वेदकी अधिष्ठातृदेवी वेदशास्त्रकी स्वरूपवाली वेदबीजकी

गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥ संपूज्य पूजयेदिष्टं घटे आवाहिते द्विजः ॥ ४७ ॥ शृणु ध्यानं च सावित्र्याश्चोक्तं माध्यंदिने च यत् ॥ स्तोत्रं पूजाविधानं च मंत्रं च सर्वकामदम् ॥४८॥ तप्तकांचनवर्णाभां ज्वलंतीं ब्रह्मतेजसा ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंड सहस्रसंमितप्रभाम् ॥४९॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां भक्ता नुग्रहविग्रहाम् ॥ ५० ॥ सुखदां मुक्तिदां शांतां कांतां च जगतां विधेः ॥ सर्वसम्पत्स्वरूपां च प्रदात्रीं सर्वसम्पदाम् ॥५१॥ वेदधिष्ठा तृदेवीं च वेदशास्त्रस्वरूपिणीम् ॥ वेदबीज स्वरूपां च भजे तां वेदमातरम् ॥ ५२ ॥ ध्यात्वा ध्यानेन नैवेद्यं दत्त्वा पाणिं स्वमूर्धनि ॥ पुनर्ध्यात्वा घटे भक्त्या देवीमावाहयेद्व्रती ॥ ५३ ॥ दत्त्वा षोडशोपचारं वेदोक्तं मन्त्रपूर्वकम् ॥ संपूज्य स्तुत्वा प्रणमेद्देवदेवीं विधानतः ॥ ५४ ॥ आसनं पाद्यमर्घ्यं च स्नानीयं चानुलेपनम् ॥ धूपं दीपं च नैवेद्यं तांबूलं शीतलं जलम् ॥ ५५ ॥ वसनं भूषणं माल्यं गन्ध माचमनीयकम् ॥ मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश ॥ ५६ ॥ दारुसारविकारं च हेमादिनिर्मितं च वा ॥ देवाधारं पुण्यदंच मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ ५७ ॥

स्वरूपा जगन्माताका भजन करते हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार ध्यानमें ध्यान कर अपने शिरपर हाथ लगाया नैवेद्य, देकर फिर घटमें भक्तिसे ध्यान कर व्रती देवीका आवाहन करै ॥ ५३ ॥ वेदोक्त मंत्रपूर्वक षोडश उपचार देकर पूजन और स्तुति करके विधानसे देवदेवीका पूजन करै ॥ ५४ ॥ आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल ॥ ५५ ॥ वसन, भूषण, माला, गंध आचमन, मनोहर शय्या, यह षोडशवस्तु देनी चाहिए ॥ ५६ चन्दन वा सुवर्णादिके बना सिंहासन देवाधार पुण्यदायक मैंने तुमको निवेदन किया है ॥ ५७ ॥

देवी तीर्थजल पवित्र पाय रूप जो कि, महान् प्रीतिका देनेवाला है वह पूजाङ्गभूत शुद्ध मैंने तुमको निवेदन किया ॥ ५८ ॥ पवित्ररूप अर्घ्य, दूर्वा, पुष्पदलके सहित पुण्यदायक शंखजल सम्पन्न मैंने तुमको निवेदन किया है ॥ ५९ ॥ सुगंध रूप गंध जल स्नेह और सुगन्ध करनेवाला मैंने यह स्नानीय जल भक्तिसे निवेदन किया है तुम इसको ग्रहण करो ॥ ६० ॥ यह गन्धद्रव्योंसे प्रगट प्रीतिदायक दिव्य गन्ध है हे अम्बिके ! यह प्रेमसे दिया गन्धजल ग्रहण करो ॥६१॥ सब मंगलका रूप और सब मंगलका देनेवाला पुण्यदाक धूपको हे परमेश्वरी ! ग्रहण करो ॥ ६२ ॥ सुगंध युक्त सुखदायक मैंने तुमको निवेदन किया है यह जगत्के निमित्त दीप्तिकारक दीपक ॥ ६३ ॥ अंधकारके नाशका बीज मैंने तुमको निवेदन किया है तुष्टि पुष्टिदायक

तीर्थोदकं च पाद्यं च पुण्यदं प्रीतिदं महत् ॥ पूजांगभूतं शुद्धं च मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ ५८ ॥ पवित्ररूपमर्घं च दूर्वापुष्प दलान्वितम् ॥ पुण्यदं शंखतोयाक्तं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ ५९ ॥ सुगंधं गंधतोयं च स्नेहं सौगन्धकारकम् ॥ मया निवेदितं भक्त्या स्नानीयं प्रतिगृह्यताम् ॥ ६० ॥ गन्धद्रव्योद्भवं पुण्यं प्रीतिदं दिव्यगन्धदम् ॥ मया निवेदितं भक्त्या गन्धतोयं तवांबिके ॥ ६१ ॥ सर्वमंगलरूपं च सर्वं च मंगलप्रदम् ॥ पुण्यदं च सुधूपं तं गृहाण परमेश्वरि ॥ ६२ ॥ सुगंधयुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ जगतां दर्शनार्थाय प्रदीपं दीप्तिकारकम् ॥ ६३ ॥ अंधकारध्वंसबीजं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ तुष्टिदं पुष्टिदं चैव प्रीतिदं क्षुद्विनाशनम् ॥ ६४ ॥ पुण्यदं स्वादुरूपं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ तांबूलप्रवरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ६५ ॥ तुष्टिदं पुष्टिदं चैव मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ सुशीतलं वारि शीतं पिपासानाशकारणम् ॥ ६६ ॥ जगतां जीव रूपं च जीवनं प्रतिगृह्यताम् ॥ देहशोभास्वरूपं च सभाशोभाविवर्धनम् ॥ ६७ ॥ कार्पासजं च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम् ॥ कांचनादिविनिर्माणं श्रीकरं श्रीयुतं सदा ॥ ६८ ॥ सुखदं पुण्यदं रत्नभूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥ नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम् ॥ ६९ ॥

प्रीतिदायक क्षुधानाशक ॥ ६४ ॥ पुण्य और स्वादरूप यह नैवेद्य ग्रहण करो, यह सुन्दर रम्य ताम्बूल कर्पूरादिसे सुवासित ॥ ६५ ॥ तुष्टि, पुष्टिदायक मैंने तुमको निवेदन किया है यह सुन्दर ठंडाजल पिपासा नाशक ॥ ६६ ॥ जगतका जीवरूप जीवन ग्रहण करो, देहका शोभास्वरूप सभाकी शोभा बढ़ानेवाला ॥६७॥ सूत और रेशमका यह वस्त्र ग्रहण करो,सुवर्णादिका निर्मित लक्ष्मी करनेवाला श्रीयुक्त ॥ ६८ ॥ सुख और पुण्य देनेवाला यह पवित्रभूषण ग्रहण करो अनेक वृक्षोंसे उत्पन्न अनेकरूप सम्पन्न ॥ ६९ ॥

फलस्वरूप फलदायक यह फल ग्रहण करो, सब मंगलरूप सब मंगलोंका मंगलकर्ता ॥ ७० ॥ अनेक फूलोंसे निर्मित बहुत शोभा सम्पन्न प्रीति और पुण्यदायक यह माला ग्रहण करो ॥ ७१ ॥ हे देवि ! पुण्यदायक सुगंध भरी यह गंध ग्रहण करो, यह सुन्दर सिन्दूर मस्तककी शोभा बढानेवाला है ॥ ७२ ॥ भूषणोंमें श्रेष्ठ यह सिन्दूर ग्रहण करो विशुद्ध ग्रंथियोंसे संयुक्त पुण्यसूत्रमें बने ॥ ७३ ॥ वेदमंत्रसे पवित्रं इस यज्ञ सूत्रको ग्रहण करो. यह द्रव्य मूल मंत्रसे देकर फिर बुद्धिमान् स्तोत्र पाठ करे ॥ ७४ ॥ फिर व्रती भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दक्षिणा दे', सावित्र्यै स्वाहा " इस प्रकारसे ॥ ७५ ॥ लक्ष्मी बीज (श्रीबीज) मायाबीज (भुवनेश्वरी बीज) मन्मथबीज इन तीन बीज " पूर्वसावित्र्यै" यह मन्त्र पढ़े माध्यन्दिनोक्त स्तोत्र सब कामनाका

फलस्वरूपं फलदं फलं च प्रतिगृह्यताम् ॥ सर्वमंगलरूपं च सर्वमंगलमंगलम् ॥ ७० ॥ नानापुष्पविनिर्माणं बहुशोभासमन्वितम् ॥ प्रीतिदं पुण्यदं चैव माल्यं च प्रतिगृह्यताम् ॥ ७१ ॥ पुण्यदं च सुगंधाढ्यं गंधं च देवि गृह्यताम् ॥ सिंदूरं च वरं रम्यं भालशोभावि वर्धनम् ॥ ७२ ॥ भूषणानां च प्रवरं सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ॥ विशुद्धग्रंथिसंयुक्तं पुण्यसूत्रं विनिर्मितम् ॥ ७३ ॥ पवित्रं वेदमंत्रेण यज्ञ सूत्रं च गृह्यताम् ॥ द्रव्याण्येतानि मूलेन दत्त्वा स्तोत्रं पठेत्सुधीः ॥ ७४ ॥ ततो विप्राय भक्त्या च व्रती दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ सावि त्रीति चतुर्थ्यंतं वह्निजायांतमेव च ॥७५॥ लक्ष्मीमायाकामपूर्वं मंत्रमष्टाक्षरं विदुः ॥ माध्यंदिनोक्तं स्तोत्रं च सर्वकामफलप्रदम् ॥७६॥ विप्रजीवनरूपं च निबोध कथयामि ते ॥ कृष्णेन दत्तां सावित्रीं गोलोके ब्रह्मणे पुरा ॥ ७७ ॥ ॥ नायाति सा तेन सार्धं ब्रह्मलोके च नारद ॥ ब्रह्मा कृष्णाज्ञया भक्त्या तुष्टाव वेदमातरम् ॥ ७८ ॥ तदा सा परितुष्टा च ब्रह्माणं चकमे पतिम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सच्चिदानंद रूपे त्वं मूलप्रकृतिरूपिणी ॥ ७९ ॥ हिरण्यगर्भरूपे त्वं प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ तेजःस्वरूपे परमे परमानंदरूपिणि ॥ ८० ॥

देनेवाला है ॥ ७६ ॥ यह ब्राह्मणोंका जीवनरूप है सुनो मैं आपसे कहता हूं कृष्णने गोलोकमें पहले ब्रह्माको सावित्री दी थी ॥ ७७ ॥ हे नारद ! वह उनके साथ ब्रह्मलोकमें आनेको सम्मत न हुई तब ब्रह्माजीने कृष्णकी आज्ञासे वेदमाताको सन्तुष्ट किया ॥ ७८ ॥ तब उसने प्रसन्न होकर ब्रह्माको स्वामित्वमें वरण किया ब्रह्माजी बोले सच्चिदानन्दरूपे ! हे मूल प्रकृतिरूपवाली ! ॥ ७९ ॥ हे हिरण्य गर्भरूपिणी सुन्दरि ! तुम प्रसन्न हो. हे तेज स्वरूपे ! हे परमानन्द रूपिणी ! ॥ ८० ॥

हे द्विजातियोंकी जातिरूप सुंदरि ! प्रसन्न हो नित्य नित्य प्रिय देवी नित्यानंद स्वरूपिणी ॥ ८१ ॥ हे सब मंगलरूप सुन्दरि ! मुझपर प्रसन्न हो सर्वस्वरूप ब्राह्मणोंके मन्त्रसार परात्पर ॥ ८२ ॥ हे सुखमोक्षकी देनेवाली सुंदरी देवी ! प्रसन्न हो तुम ब्राह्मणोंके पापरूपी अग्निदाहके निमित्त जलती हुई अग्निकी सिखा हो ॥ ८३ ॥ हे ब्रह्मतेजकी देनेवाली सुन्दरी देवी ! प्रसन्न हो मन वचन कर्मसे मनुष्य जो पाप करता है ॥ ८४ ॥ वह पाप तुम्हारे स्मरण मात्रसे भस्मीभूत हो जाता हे जगत्के धाता ऐसे कहकर उस सभामें स्थित हुए ॥ ८५ ॥ सावित्री ब्रह्माके साथ ब्रह्मलोकमें गई. हे नारदजी ! अश्वपतिने इसी स्तवराजसे भगवती की स्तुति की ॥८६॥ तब सावित्रीका दर्शन कर मनवांछित वर पाया यह पवित्र स्तवराज संध्या करके जो पढता है

द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्या नंदस्वरूपिणी ॥ ८१ ॥ सर्वमंगलरूपे च प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे ॥ ८२ ॥ सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ विप्रपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमे ॥ ८३ ॥ ब्रह्मतेजःप्रदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ कायेन मनसा वाचा यत्पापं कुरुते नरः ॥ ८४ ॥ तत्त्वत्स्मरणमात्रेण भस्मीभूतं भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा जगतां धाता तस्थौ तत्र च संसदि ॥ ८५ ॥ सावित्री ब्रह्मणा सार्धं ब्रह्मलोकं जगाम सा ॥ अनेन स्तवराजेन संस्तूया श्वपतिर्नृपः ॥८६॥ ददर्श तां च सावित्रीं वरं प्राप मनो गतम् ॥ स्तवराजमिमं पुण्यं संध्यां कृत्वा च यः पठेत् ॥ ८७॥ पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलं लभते च तत् ॥ इति श्रीदेवीभागवते म० नवमस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ स्तुत्वाऽनेन सोऽश्वपतिः संपूज्य विधिपूर्वकम् ॥ ददर्श तत्र तां देवीं सहस्रार्कसमप्रभाम् ॥ १ ॥ उवाच सा च राजानं प्रसन्ना सस्मिता सती ॥ यथा माता स्वपुत्रं च द्योतयंती दिशस्त्विषा ॥ २ ॥ सावित्र्युवाच ॥ जानाम्यहं महाराज यत्ते मनसि वांछितम् ॥ वांछितं तव पत्न्याश्च सर्वं दास्यामि निश्चितम् ॥ ३ ॥

॥ ८७ ॥ वह इसके पाठसे चारवेद पढनेके फलको प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ नारायण बोले अश्वपति इस मंत्रसे स्तुति कर विधिपूर्वक पूजन करने उपरांत सहस्र सूर्यके समान कांतिवाली देवीने उनको दर्शन दिया ॥ १ ॥ और वह प्रसन्न मुख राजासे बोली जैसे माता अपने पुत्रसे कहती है. उनकी दशनकांतिसे दिशायें प्रदीप्त होगई ॥ २ ॥ सावित्री बोली हे राजन् ! जो तुम्हारे मनवांछित है मैं उसको जानती हूं जो तुम्हारी पत्नीको वांछित है वह मैं तुमको देती हूं ॥ ३ ॥

तुम्हारी साध्वी स्त्री कन्याकी अभिलाषी है और तुम पुत्रकी इच्छा करते हो तो भी क्रमसे प्राप्त होगा ॥ ४ ॥ ऐसे कहकर वह देवी ब्रह्मलोकको गई. राजा अपने घर गये उनके पहले कन्या हुई ॥ ५ ॥ सावित्रीके आराधनासे वह मानो दूसरी कमलाही हुई, अश्वपतिने उसका नाम'सावित्री' रक्खा ॥ ६ ॥ फिर वह समयानुसार दिन २ बढ़ने लगी वह शुक्लपक्षमें चन्द्रमाके समान बढ़ती हुई रूपयौवन सम्पन्न हुई ॥ ७ ॥ तब उसने द्युमत्सेन पुत्रोंको वरण किया, जो सत्यवान् सत्यशील अनेक गुण सम्पन्न था ॥ ८ ॥ राजाने अपनी उस सब भूषणोंसे भूषित कन्याको द्युमत्सेनको दिया वह भी उसको कौतुकसे लेकर घर आया ॥ ९ ॥ वह सत्यवान् सत्यविक्रमी संवत्सर बीतनेपर पिताकी आज्ञासे वनमें फल और काष्ठ लेने गया ॥ १० ॥ दैवयोगसे उस दिन सावित्री भी

साध्वी कन्याभिलाषं च करोति तव कामिनी ॥ त्वं प्रार्थयसि पुत्रं च भविष्यति क्रमेण च ॥ ४ ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवो ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ राजा जगाम स्वगृहं तत्कन्याऽऽदौ बभूव ह ॥ ५ ॥ आराधनाच्च सावित्र्या बभूव कमलापरा ॥ सावित्रीति च तन्नाम चकाराश्वपतिर्नृपः ॥ ६ ॥ कालेन सा वर्धमाना बभूव च दिनेदिने ॥ रूपयौवनसंपन्ना शुक्ले चंद्रकला यथा ॥ ७ ॥ सा वरं वरयामास द्युमत्सेनात्मजं सदा ॥ सत्यवंतं सत्यशीलं नानागुणसमन्वितम् ॥ ८ ॥ राजा तस्मै ददौ तां च रत्नभूषणभूषिताम् ॥ सोऽपि सार्धं कौतुकेन तां गृहीत्वा गृहं ययौ ॥९॥ स च संवत्सरेऽतीते सत्यवान्सत्यविक्रमः ॥ जगाम फलकाष्ठार्थं प्रहर्षं पितुराज्ञया ॥ १० ॥ जगाम साध्वी तत्पश्चात्सावित्री दैवयोगतः ॥ निपत्य वृक्षाद्दैवेन प्राणांस्तत्याजसत्यवान् ॥ ११ ॥ यमस्तं पुरुषं दृष्ट्वा बद्ध्वांऽगुष्ठसमं मुने ॥ गृहीत्वा गमनं चक्रे तत्पश्चात्प्रययौ सती ॥ १२ ॥ पश्चात्तां सुदतीं दृष्ट्वा यमः संयमनीपतिः ॥ उवाच मधुरं साध्वीं साधूनां प्रवरो महान् ॥ १३ ॥ धर्मराज उवाच ॥ अहो क्व यासि सावित्री गृहीत्वा मानुषीं तनुम् ॥ यदि यास्यसि कांतेन सार्धं देहं तदा त्यज ॥ १४ ॥ गन्तुं मर्त्यो न शक्नोति गृहीत्वा पांचभौतिकम् ॥ देहं च मम लोकं च नश्वरं नश्वरः सदा ॥ १५ ॥

सत्यवान्के संग गई वहां वृक्षसे निपतित होनेसे सत्यवान्का शरीर छूट गया ॥११॥ यमराज उस पुरुषको अंगुष्ठ प्रमाणके शरीरसे लेकर चले पतिव्रता धर्मके प्रभावसे सावित्रीने यमराजको देखा और उनके पीछे२चली ॥ १२ ॥ संयमनी पति यमराज इस प्रकार उस धर्मशीलाको देखकर साधुओंमें प्रवर महानुभावतासे कहने लगे ॥ १३ ॥ अहो सावित्री ! मानुषी शरीरसे तुम कहाँ जाती हो यदि जाना चाहती हो तो यह देह त्यागन कर चलो ॥ १४ ॥ पांच भौतिक शरीरसे कोई मनुष्य हमारे यहां जानेको समर्थ नहीं है कारण कि पांच भौतिक देह नश्वर है ॥ १५ ॥

दे. भा. तुम्हारे स्वामीकी आयु पूरी होगई अपने कर्मफल भोगनेको सत्यवान् मेरे लोकको जाता है ॥ १६ ॥ कर्मसे ही यह प्राणी प्रगट होकर कर्मसेही लय होता
।॥९८॥ है, सुख दुःख भय शोक कर्मसेही प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ कर्मसेही यह जीव इन्द्र कर्मसेही ब्रह्मपुत्र होता है अपने कर्मसेही हरिका दास और जन्मादि
रहित होता है ॥ १८ ॥ अपने कर्मसेही सब सिद्धि और अमरत्व प्राप्त होता है और कर्मसेही विष्णुके सालोक्यादि चारलोक प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥
देवत्व, मनुष्यत्व, राजेन्द्रत्व, शिवत्व, गणेशत्व कर्मसेही मनुष्यको प्राप्त होता है ॥ २० ॥ मुनिन्द्रपन, तपस्वीपन, क्षत्रिय तथा वैश्यत्व सब कर्मसेही प्राप्त

भर्तुस्ते पूर्णकालो वै बभूव भारते सति ॥ स्वकर्मफलभोगार्थं सत्यवान्याति मद्गृहम् ॥ १६ ॥ कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते ॥
सुखं दुखं भयं शोक कर्मणैव प्रणीयते ॥ १७ ॥ कर्मणेन्द्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा ॥ स्वकर्मणा हरेर्दासो जन्मादिरहितो भवेत्
॥ १८ ॥ स्वकर्मणा सर्वसिद्धिममरत्वं लभेद्ध्रुवम् ॥ लभेत्स्वकर्मणा विष्णोः सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ १९ ॥ सुरत्वं च मनुत्वं च
राजेन्द्रत्वं लभेन्नरः ॥ का कर्मणा च शिवत्वं च गणेशत्वं तथैव च ॥ २० ॥ कर्मणा च मुनींद्रत्वं तपस्विस्त्वं स्वकर्मणा ॥ स्वकर्मणा
क्षत्रियत्वं वैश्यत्वं च स्वकर्मणा ॥ २१ ॥ कर्मणैव च म्लेच्छत्वं लभते नात्र संशयः ॥ स्वकर्मणा जङ्गमत्वं शैलत्वं च स्वकर्मणा
॥ २२ ॥ कर्मणा राक्षसत्वं च किन्नरत्वं स्वकर्मणा ॥ कर्मणैवाधिपत्यं च वृक्षत्वं च स्वकर्मणा ॥ २३ ॥ कर्मणैव पशुत्वं च वनजीवी
स्वकर्मणा ॥ कर्मणा क्षुद्रजन्तुत्वं कृमित्वं च स्वकर्मणाः ॥ २४ ॥ दैतेयत्वं दानवत्वमसुरत्वं स्वकर्मणा ॥ इत्येतदुक्का सावित्री विर
राम स वै यमः ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सप्तविंशोध्यायः ॥ २७ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ यमस्य वचनं
श्रुत्वा सावित्री च पतिव्रता ॥ तुष्टाव परया भक्त्या तमुवाच मनस्विनी ॥ १ ॥

होता है ॥ २१ ॥ इसमें सन्देह नहीं कर्मसे म्लेच्छत्व होता है जंगमपन और शैलत्व भी कर्मसेही प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ कर्मसे राक्षसत्व किन्नरत्व प्राप्त
भा. टी.न होता है आधिपत्य और वृक्षत्व प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ कर्मसेही पशुत्व और वनजीवी होता है कर्मसेही क्षुद्र जन्तुपन कृमिपन प्राप्त होता है ॥ २४ ॥
दैत्यदानव असुरत्व सब अपने कर्मसे प्राप्त होते हैं सावित्रीसे यह कहकर यमराज मौन हुए ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां
अ० २८ सप्तविंशोध्यायः ॥ २७ ॥ श्रीनारायण बोले पतिव्रता सावित्री यमके यह वचन सुन परमभक्तिसे यमको प्रसन्न करती हुई बोली ॥ १ ॥

सावित्री बोलीकर्मका स्वरूप क्या है कैसे वह होता है उसका हेतु क्या है देही और देह क्या है तथा इसमें कर्म करनेवाला कौन है ॥ २ ॥ ज्ञान, बुद्धि, शरीरियोंका प्राण इन्द्रिय यह क्या हैं इसके लक्षण और देवता क्या है ॥ ३ ॥ भोक्ता और इसको भुगानेवाला कौन है भोग और इसकी निष्कृति क्या है, जीवन और परमात्मा क्या है ? इसकी व्याख्या आप हमसे कीजिये ॥ ४ ॥ धर्म ने कहा वेदमें जिसके करनेकी आज्ञा है वही धर्म है उसका करनाही परममङ्गल है और जो अवैदिक कर्म है वही अशुभ और नरकका देनेवाला है ॥५॥ जो देव सेवा विना कारण संकल्परहित होकर की जाती है वही सेवा कर्मकी निर्मूल करनेवाली परमभक्ति दायका है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य ब्रह्मभक्त है वही श्रुतियोंमें मुक्त कहा गया है उसको कौन कर्मफलका भोक्ता

सावित्र्युवाच ॥ किं कर्म तद्भवेत्केन को वा तद्धेतुरेव च ॥ को वा देही च देहः कः को वाऽत्र कर्मकारकः ॥ २ ॥ किं वा ज्ञानं च बुद्धिः का को वा प्राणः शरीरिणाम् ॥ कानीन्द्रियाणि किं तेषां लक्षणं देवताश्च काः ॥३॥ भोक्ता भोजियिता को वा कोवा भोगश्च निष्कृतिः॥ को जीवः परमात्मा कस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४ ॥ धर्म उवाच ॥ वेदप्रणिहितो धर्मः कर्म यन्मंगलं परम् ॥ अवैदिकं तु यत्कर्म तदेवाशुभमेव च ॥ ५ ॥ अहैतुकी देवसेवा संकल्परहिता सती ॥ कर्मनिर्मूलरूपा च सा एव परिभक्तिदा ॥ ६ ॥ को वा कर्मफलं भुंक्ते को वा निर्लिप्त एव च ॥ ब्रह्मभक्तो यो नरश्च स च मुक्तः श्रुतः श्रुतौ ॥ ७ ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिविवर्जितः ॥ भक्तिश्च द्विविधा साध्वि श्रुत्युक्ता सर्वसंमता ॥ ८ ॥ निर्वाण पददात्री च हरिरूप प्रदा नृणाम् ॥ हरिरूपस्वरूपां च भक्तिं वांछंति वैष्णवाः ॥ ९ ॥ अन्ये निर्वाणमिच्छन्ति योगिनो ब्रह्मवित्तमाः ॥ कर्मणो बीजरूपश्च सततं तत्फलप्रदाः ॥ १० ॥ कर्मरूपश्च भगवान्परात्मा प्रकृतिः परा ॥ सोऽपि तद्धेतुरूपश्च देही नश्वर एव च ॥ ११ ॥

और कौन निर्लिप्त है यह कुछ नहीं है ॥७॥ वह जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भयसे वर्जित होता है वेदमें कही भक्ति दो प्रकारकी है ॥ ८ ॥ एक निर्वाणपद देनेवाली निर्गुण भक्ति है दूसरी सगुण भक्ति हरिरूप देनेवाली है हरिरूपस्वरूप भक्तिकी वैष्णव इच्छा करते हैं ॥ ९ ॥ और जो ब्रह्मवियोगी हैं वे निर्वाणपदकी इच्छा करते हैं अब कर्मका उपादान कारण कहते हैं जो परमात्मा है वही कर्मरूप बीजका फल देनेवाला है ॥ १० ॥ कर्मरूप भगवान् हैं, जो परात्मा है और पराप्रकृति उसका हेतु है अर्थात् सृष्टिकी सृष्टि स्थिति संहार कर्मवाले भगवान् हैं मूल प्रकृति इसका उपादान कारण है विवृत तथा निमित्त कारण है उसमें अविद्या उपादान अर्थात अविद्यामें चित्प्रतिबिम्ब निमित्त कारण ब्रह्म विवृत कारण है अविद्यासे काम और कामसे कर्म होता है

इससे निमित्त कारण अदृष्टरूप विना कहे भी अर्थसे जान लेना, देह नश्वररूप है ॥११॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज यह ब्रह्माकी सृष्टिरूप विधिमें सूत्ररूप हैं ॥ १२ ॥ जो कर्मकर्ता जीव है वही देही है. वही भोक्ता है अन्तर्यामी आत्मा उसका भुगानेवाला है विभवके भेद सुखदुःख साक्षात्कार पर्यन्त भोग है आत्मामें अवस्था न होनेको निष्कृति मुक्ति कहते हैं ॥१३॥ सत् आत्मा और असत् माया इनके भेदका बीजरूप कारण ज्ञान है अर्थात् अपरोक्ष आत्मवस्तु विषय ब्रह्मविद्या ज्ञान है वह अनेक विधि घटपदादि विषय तथा विषयोंके जो परस्पर विभाग हैं उनका भेदक सब वासनाओंका बीज है॥ १४ ॥ सबकी विवेचना करने वाली बुद्धि ज्ञानका बीज है ऐसा श्रुतिमें कहा गया है और आयुके भेद पांच प्राण देहधारियोंको बलरूप हैं ॥ १५ ॥ मनकारूप कहते हैं इन्द्रियोंमें श्रेष्ठ ईश्वरका अंश अर्थात् ईश्वर परमात्माका बिम्बभूत संशयात्मक कर्मों अर्थात् इंद्रियविकारका प्रेरण करनेवाला देहधारियोंको स्वाधिन करनेमें

पृथिवी वायुराकाशो जलं तेजस्तथैव च ॥ एतानि सूत्ररूपाणि सृष्टिरूपविधौ सतः ॥ १२ ॥ कर्म कर्त्ता च देही च आत्मा भोजयिता सदा ॥ भोगो विभवभेदश्च निष्कृतिर्मुक्तिरेव च ॥ १३ ॥ सदासद्भेदबीजं ज्ञानं नानाविधं भवेत् ॥ विषयाणां विभागानां भेदि बीजं च कीर्तितम् ॥ १४ ॥ बुद्धिर्विवेचना सा च ज्ञानबीजं श्रुतौ श्रुतम् ॥ वायुभेदाश्च प्राणाश्चा बलरूपाश्च देहिनाम् ॥ १५ ॥ इंद्रियाणां च प्रवरमीश्वरांशमनूहकम् ॥ प्रेमकं कर्मणां चैव दुर्निवार्यं च देहिनाम् ॥ १६ ॥ अनिरूप्यमदृश्यं च ज्ञानभेदो मनः स्मृतम् ॥ लोचनं श्रवणं घ्राणं त्वक्च रसनमिंद्रियम् ॥ १७ ॥ अंगिनामंगरूपं च प्रेरकं सर्वकर्मणाम् ॥ रिपुरूपं मित्ररूपं सुखरूपं च दुःखदम् ॥ १८ ॥ सूर्यो वायुश्च पृथिवी ब्रह्माद्या देवताः स्मृताः ॥ प्राणदेहादिभृद्योहि स जीवः परिकीर्तितः ॥१९॥ परमं व्यापकं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥ कारणं कारणानां च परमात्मा स उच्यते ॥ २० ॥

अशक्य ॥ १६ ॥ निरूपण करनेमें अशक्य, दीखनेमें न आनेवाला, बुद्धिके भेदवाला मन है उसकी ज्ञानेंद्रिय कहते हैं लोचन, श्रवण, नासिका, त्वचा रसना इन्द्रियोंका॥ १७ ॥ तथा अंगियोंका अवयवरूप सब कर्मेंद्रियव्यापारोंका प्रेरक है रिपुरूप मित्ररूप सुखरूप तथा दुःखदायी है इन्द्रियोंमें आसक्त होनेसे रिपुरूप दुःखदाई होता है सद्विषयोंमें आसक्त होनेसे मित्ररूप सुखदाई है ॥ १८ ॥ इन्द्रियोंके देवता सूर्य, वायु, पृथ्वी, ब्रह्मादिक हैं विस्तारसे दिशा वायु, सूर्य, प्रचेता अश्विनीकुमार, अग्नि यह हैं जो प्राण देहादिका धारक है वह अन्तः--करणमें प्रतिविश्वरूपजीव कहाता है ॥ १९ ॥ परमात्माका स्वरूप कहते हैं जो परमव्यापक ब्रह्म निर्गुणप्रकृतिसे परे है और कारणोंका भी कारण है उसको परमात्मा कहते हैं ॥ २० ॥

हे देवो ! जो तुमने शास्त्रकी बात पूछी सो तुमसे सब कही यह ज्ञानियोंको ज्ञानरूप है । हे वत्स ! अब तुम यथासुख गमन करो ॥ २१ ॥ सावित्री बोली अपने स्वामीको और ज्ञानके सागर तुमको त्यागकर मैं कहां जाऊं ? जो मैं तुमसे प्रश्न करूं सो आप उत्तर दीजिये ॥ २२ ॥ हे पिता! किस २ कर्मसे यह प्राणी किस २ योनियोंमें गमन करता है किस कर्मसे स्वर्ग और किस कर्मसे नरक होता है ॥ २३ ॥ किस कर्मसे मुक्ति और किस कर्मसे गुरुमें भक्ति होती है, किस कर्मसे योगी और किस कर्मसे रोगी होता है ॥ २४ ॥ किस कर्मसे दीर्घजीवी और किस कर्मसे अल्पायु होता है, किस कर्मसे दुःखी और सुखी होता है ॥ २५ ॥ अंगहीन, काणा, बहरा, अन्धा, पंगु, प्रमत्त किस कर्मसे होता है ॥ २६ ॥ क्षिप्त, अति लोभी, चोर किस कर्मसे

इत्येवं कथितं सर्वं त्वयापृष्टं यथागमम् ॥ ज्ञानिनां ज्ञानरूपं च गच्छ वत्से यथासुखम् ॥ २१ ॥ सावित्र्युवाच ॥ त्यक्त्वा क्व यामि कान्तं वा त्वां वा ज्ञानार्णवं ध्रुवम् ॥ यद्यत्करोमि प्रश्नं च तद्भवान्वक्तुमर्हति॥२२॥कां कां योनिं याति जीवः कर्मणा केन वा पुनः ॥ केन वा कर्मणा स्वर्गं केन वा नरकंपितः ॥ २३ ॥ केन वा कर्मणा मुक्तिः केन भक्तिर्भवेद्गुरौ ॥ केन वा कर्मणा योगी रोगी वा केन कर्मणा ॥ २४ ॥ केन दीर्घजीवी च केनाल्पायुश्च कर्मणा ॥ केन वा कर्मणा दुःखी सुखी वा केन कर्मणा ॥ २५ ॥ अंगहीनश्चकाण श्च बधिरः केन कर्मणा ॥ अंधो वा पंगुरपि वा प्रमत्तः केन कर्मणा ॥ २६ ॥ क्षिप्तोऽतिलुब्धकश्चौरः केन वा कर्मणा भवेत् ॥ केन सिद्धिमवाप्नोति सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ २७ ॥ केन वा ब्राह्मणत्वं च तपस्वित्वं च केन वा ॥ स्वर्गभोगादिकं केन वैकुंठं केन कर्मणा ॥ २८ ॥ गोलोकं केन वा ब्रह्मन्सर्वो त्कृष्टं निरामयम् ॥ नरको वा कतिविधः किंसंख्यो नाम किं च वा ॥ २९ ॥ को वा कं नरकं याति कियंतं तेषु तिष्ठति ॥ पापिनां कर्मणा केन यो वा व्याधिः प्रजायते ॥ यद्यत्प्रिय मया पृष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवम स्कन्धे नारदनारायणसंवादे सावित्र्युपाख्यानेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

होता है और सिद्धि सालोक्यादि चतुष्टय किस कर्मसे प्राप्त होता है ॥२७॥ ब्राह्मणत्व तपस्वित्व स्वर्गभोगादि वैकुण्ठ किस कर्मसे प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ सबसे उत्कृष्ट निरामय गोलोक किस कर्मसे प्राप्त होता है नरक कितने हैं उनकी संख्या और नाम कहिये ॥ २९ ॥ कौन नरकमें जाना कितने काल वहां रहना होता है पापियोंकी किस कर्मसे क्या व्याधि होती है ॥ ३० ॥ जो मैंने आपसे पूँछा सो मुझसे कहिये ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

श्रीनारायण बोले सावित्रीके वचन सुन यमराज अति विस्मित हुए और हँसकर जीवोंका कर्मविपाक कहने लगे ॥ १ ॥ धर्म बोले हे वत्से ! अवस्थामें तो तुम द्वादश वर्षीया कन्या हो और ज्ञान तुम्हारा ज्ञानी योगियोंसे भी अधिक है ॥ २ ॥ सावित्रीके वरदानसे तुम सावित्रीकी कला हो राजाने तपसे तुमको प्राप्त किया है ॥ ३ ॥ जैसे लक्ष्मी भगवान्‌की गोदमें, भवानी शिवकी गोदमें, अदिति कश्यप, अहिल्या गौतम समीप ॥ ४ ॥ शची महेन्द्रसे, रोहिणी चन्द्रमासे, रति कामसे, स्वाहा अग्निसे ॥ ५ ॥ स्वधा पितरोंमें, संज्ञा दिवाकरमें, वरुणानी वरुणमें, दक्षिणा यज्ञमें ॥ ६ ॥ पृथ्वी वराहमें देवसेना कार्तिकेयमें अनुरक्त हैं अर्थात् जैसे देवताओंकी यह स्त्रियें अखंडित सौभाग्यवाली है इसी प्रकार तुम सत्यवान्‌में अखण्ड सौभाग्यवाली हो ॥ ७ ॥ यह मैंने तुझको वर दिया है हे महाभागे ! और

श्रीनारायण उवाच ॥ सावित्रीवचनं श्रुत्वा जगाम विस्मयं यमः ॥ प्रहस्य वक्तुमारेभे कर्मपाकं तु जीविनाम् ॥ १ ॥ धर्म उवाच ॥ कन्या द्वादशवर्षीया वत्से त्वं वयसाऽधुना ॥ ज्ञानं ते पूर्ववि दुषां ज्ञानिनां योगिनां परम् ॥ २ ॥ सावित्रीवरदानेन त्वं सावित्री कला सती ॥ प्राप्ता पुरा भूभृता च तपसा तत्समा सुते ॥ ३ ॥ यथा श्रीः श्रीपते क्रोडे भवानी च भवोरसि ॥ यथाऽदितिः कश्यपे च यथाऽहल्या च गौतमे ॥ ४ ॥ यथा शची महेन्द्रे च यथा चन्द्रे च रोहिणी ॥ यथा रतिः कामदेवे यथा स्वाहा हुताशने ॥ ५ ॥ यथा स्वधा च पितृषु यथा संज्ञा दिवाकरे ॥ वरुणानी च वरुणे यज्ञे च दक्षिणा यथा ॥ ६ ॥ यथा वराहे पृथिवी देवसेना च कार्त्तिके ॥ सौभाग्या सुप्रिया त्वं च तथा सत्यवतः प्रिये ॥ ७ ॥ अयं तुभ्यं वरो दत्तोऽप्यपरं यथेप्सितम् ॥ वृणु देवि महाभागे ददामि सकलेप्सितम् ॥ ८ ॥ सावित्र्युवाच ॥ सत्यवत औरसानां पुत्राणां शतकं मम ॥ भविष्यति महाभाग वरमेतन्मदीप्सितम् ॥ ९ ॥ मत्पितुः पुत्रशतकं श्वशुरस्य च चक्षुषी ॥ राज्यलाभो भवत्वेवं वरमेतन्मदीप्सितम् ॥ १० ॥ अंते सत्यवता सार्धं यास्यामि हरिमंदिरम् ॥ समतीते लक्षवर्षे देहीदं मे जगत्प्रभो॥ ११॥ जीवकर्मविपाकं च श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ विश्वनिस्तारबीजं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १२॥

भी जो तेरी इच्छा हो वह वर मांग मैं तुझको दूंगा ॥ ८ ॥ सावित्री बोली हे महाभाग ! सत्यव्रतके औरससे मेरे सौ पुत्र हों यही वर मुझको दीजिये ॥ ९ ॥ मेरे पिताके भी सौ पुत्र हों श्वशुर नेत्रविहीन हैं उनके नेत्र होजांय और उनका राज्य उनको प्राप्त हो जाय यही वर मुझको दो ॥ १० ॥ अन्तमें सत्यवान्‌के सहित हरिमंदिरमें मेरा गमन हो, लक्षवर्षके उपरान्त सत्यवान् और मैं इसलोकसे गमन करें ॥ ११ ॥ तथा जीवोंके कर्मविपाक सुननेका मुझे परम कौतूहल है वही विश्वके निस्तारका बीज है सो आप मुझसे कहिये ॥ १२ ॥

धर्मराज बोले हे महासाध्वी ! तेरे सब मनोरथ पूर्णहोंगे जीवोंका कर्मविपाक कहता हूं सुनो ॥ १३ ॥ इस पुण्यक्षेत्रभारतवर्षमें शुभाशुभकर्मोंसे ही जन्म होता है दूसरे स्थाननोंमें केवल पुण्य वा पापही भोगा जाता है ॥ १४ ॥ सुर, दैत्य, दानव, गंधर्व, राक्षसादि यह सब नर कर्मके करनेवाले हैं, पश्चादि सब जीव कर्मकारी नहीं हैं ॥ १५ ॥ मुख्यजीव कर्माधिकारी मनुष्यही सब योनियोंमें कर्म भोगते हैं स्वर्ग नरकमें शुभ अशुभ सर्वत्र है ॥ १६ ॥ विशेषकर यह जीव सब योनियोंमें भ्रमता है और पूर्व अर्जित कर्मके अनुसार अशुभ भोगता है ॥ १७ ॥ शुभकर्मसे स्वर्गलोकादिमें गमन करता है अशुभकर्मोंसे नरकमें भ्रमण करना होता है ॥ १८ ॥ कर्मके निर्मूल करनेका साधन भक्ति है वह दो प्रकारकी है एक निर्वाणरूप निर्गुण भक्ति और दूसरी मायाविशिष्ट ब्रह्मरूपिणी है

धर्मराज उवाच ॥ भविष्यति महासाध्वि सर्वं मानसिकं तव ॥ जीवकर्मविपाकं च कथयामि निशामय ॥ १३ ॥ शुभानामशुभानां च कर्मणां जन्म भारते ॥ पुण्यक्षेत्रे च नान्यत्र सर्वं च भुंजते जनाः ॥ १४ ॥ सुरादैत्या दानवाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः ॥ नराश्च कर्मजनका न सर्वे जीविनः सति ॥ १५ ॥ विशिष्टजीविनः कर्म भुंजते सर्वयोनिषु ॥ शुभाशुभ च सर्वत्र स्वर्गेषु नरकेषु च ॥ १६ ॥ विशेषतो जीविनश्च भ्रमंते सर्वयोनिषु ॥ शुभाशुभं भुंजते च कर्म पूर्वार्जितं परम् ॥ १७ ॥ शुभेन कर्मणा याति स्वर्लोकादिकमेव च ॥ कर्मणा चाशुभेनैव भ्रमंति नरकेषु च ॥ १८ ॥ कर्मनिर्मूलने भक्तिः सा चोक्ता द्विविधा सति ॥ निर्वाणरूपा भक्तिश्च ब्रह्मणः प्रकृतेरिह ॥ १९ ॥ रोगी कुकर्मणा जीवश्चारोगी शुभ कर्मणा ॥ दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुखी दुःखी च कर्मणा ॥ २० ॥ अंधादयश्चांगहीनाः कर्मणा कुत्सितेन च ॥ सिद्ध्यादिकमवाप्नोति सर्वोत्कृष्टेन कर्मणा ॥ २१ ॥ सामान्यं कथितं देवि विशेषं शृणु सुंदरि ॥ सुदुर्लभं सुगोप्यं च पुराणेषु स्मृतिष्वपि ॥ २२ ॥ दुर्लभा मानुषी जातिः सर्वजातिषु भारते ॥ सर्वेभ्यो ब्राह्मणः श्रेष्ठः प्रशस्तः सर्वकर्मसु ॥ २३ ॥ ब्रह्मनिष्ठो द्विजश्चैव गरीयान् भारते सति ॥ निष्कामश्च सकामश्च ब्राह्मणो द्विविधः सति ॥ २४ ॥

॥ १९ ॥ बुरे कर्म करनेसे रोगी और अच्छेकर्मसे अरोगी होता है दीर्घजीवी सुखी शुभकर्मसे अल्पायु और दुःखी दुष्टकर्मसे होता है ॥ २० ॥ अंधे और हीनांग खोटेकर्मोंसे होते हैं सर्वोत्कृष्ट कर्मोंसे सिद्धि आदिको प्राप्त होता है ॥२१॥ हे देवी ! यह आपसे सामान्यसे कहा अब विशेषरूपसे सुनो यह पुराणस्मृतियोंमें दुर्लभ है इसको भले प्रकार गुप्त रखना चाहिये ॥ २२ ॥ भारतकी सब जातियोंमें मानुषी जाति बडी दुर्लभ है इन सबमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है और वह सबकर्ममें श्रेष्ठ हैं ॥ २३ ॥ भारतमें ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ हैं निष्काम सकामभेदसे ब्राह्मण दो प्रकारके हैं ॥ २४ ॥

सकाम ब्राह्मण लोकप्रधान है और निष्काम भक्त है कर्मभोगी सकाम है और निष्काम उपद्रवरहित हैं ॥ २५ ॥ वह निष्काम देहत्यागकर निरामय पदको गमन करता है उन निष्कामियोंका फिर आगमन नहीं होता ॥ २६ ॥ जो परमात्मा ईश्वर द्विभुज कृष्णका सेवन करते हैं वह दिव्यरूपधारी भक्त गोलोकमें निवास करते हैं ॥ २७ ॥ सकामी वैष्णव वैकुण्ठमें जाकर फिर भारतमें आय द्विजातियोंमें जन्म ग्रहण करते हैं ॥ २८ ॥ फिर वे कालपाय क्रमसे निष्कामी होते हैं मैं उनकी निर्मल भक्ति प्रदान करता हूं ॥ २९ ॥ अवैष्णव ब्राह्मण सब जन्ममें सकाम होते हैं विष्णुभक्तिरहित होनेसे उनकी बुद्धि निर्मल नहीं होती

सकामाश्च प्रधानश्च निष्कामो भक्त एव च ॥ कर्मभोगी सकामश्च निष्कामो निरुपद्रवः ॥ २५ ॥ स याति देहं त्यक्त्वा च पदं यत्तन्निरामयम् ॥ पुनरागमनं नास्ति तेषां निष्कामिनां सति ॥ २६ ॥ सेवंते द्विभुजं कृष्णं परमात्मानमीश्वरम् ॥ गोलोकं प्रति ते भक्ता दिव्यरूपविधारिणः ॥ २७ ॥ सकामिनो वैष्णवाश्च गत्वा वैकुंठमेव च ॥ भारतं पुनरायांति तेषां जन्म द्विजातिषु ॥ २८ ॥ कालेन ते च निष्कामा भवंत्येव क्रमेण च ॥ भक्तिं च निर्मलां तेभ्यो दास्यामि निश्चितं पुनः ॥ २९ ॥ ब्राह्मणा वैष्णवाश्चैव सकामाः सर्वजन्मसु ॥ न तेषां निर्मला बुद्धिर्विष्णुभक्तिविवर्जिताः ॥ ३० ॥ तीर्थाश्रिता द्विजा ये च तपस्यानिरताः सति ॥ ते यांति ब्रह्मलोकं च पुनरायांति भारते ॥ ३१ ॥ स्वधर्मनिरता ये च तीर्थान्यत्र निवासिनः ॥ व्रजंति ते सत्यलोकं पुनरायांति भारते ॥ ३२ ॥ स्वधर्मनिरता विप्राः सूर्यभक्ताश्च भारते ॥ व्रजंति ते सूर्यलोकं पुन रायांति भारते ॥ ३३ ॥ मूलप्रकृतिभक्ता ये निष्कामा धर्मचारिणः ॥ मणिद्वीपं प्रयांत्येव पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ३४ ॥ स्वधर्मे निरता भक्ताः शैवाः शाक्ताश्च गाणपाः ॥ ते यांति शिवलोकं च पुनरायान्ति भारते ॥ ३५ ॥ ये विप्रा अन्यदेवेज्याः स्वधर्मनिरताःसति ॥ ते यांति सर्वलोकं च पुनरायांति भारते ॥ ३६ ॥

॥ ३० ॥ जो ब्राह्मण तीर्थमें आश्रित और तपस्यामें निरत हैं वह ब्रह्मलोकतक जाकर फिर भारतमें आते हैं ॥ ३१ ॥ जो अपने धर्ममें निरत हुए तीर्थ वा अन्यत्र कहीं निवास करते हैं वे सत्यलोकमें जाकर फिर भारतमें आते हैं ॥३२॥ स्वधर्ममें निरत ब्राह्मण सूर्यभक्त होनेसे सूर्यलोकमें गमनकर फिर भारतमें आते हैं ॥ ३३ ॥ मूलप्रकृतिके भक्त निष्काम ब्रह्मचारी महात्मा मणिद्वीपमें जाकर फिर नहीं आते हैं ॥ ३४ ॥ अपने धर्ममें निरत शैव, शाक्त, गाणपत्य, शिवादिमें गमनकर फिर भारतमें आते हैं ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण अपने धर्मम निरत हुए अन्यदेवताओंका यजन करते हैं वे सबलोकमें गमन करते फिर

भारतमें आते हैं ॥ ३६ ॥ जो हरिभक्त निष्काम ब्राह्मण स्वधर्ममें तत्पर भक्त हैं वे अपनी भक्तिके बलसे हरिलोकमें गमन करते हैं ॥ ३७ ॥ अपने धर्मसे रहित ब्राह्मण देवताओंके त्याग भूत प्रेतादिका सेवनकरतेहै वे भ्रष्टाचार अवश्य नरकमें जाते हैं ॥ ३८ ॥ चारोवर्ण अपने धर्ममें तत्पर हुए शुभकर्मके फलभोगी होते हैं ॥ ३९ ॥ जो अपने कर्मसे रहित हैं वेही नरकमें जाते हैं वह अपने कर्मफलभोगनेके कारण भारतवर्षमें नहीं होते ॥ ४० ॥ चारोंवर्ण अपने धर्ममें निरत हुए शुभफल पाते हैं अपने धर्ममें निरत ब्राह्मण अपने धर्ममें निरत ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणोंको कन्या देता है वह चन्द्रलोकमें गमन करता है. हे साध्वि वे चौदह इन्द्र भोग कालतक इन्द्रलोकमें निवास करते हैं॥ ४२ ॥ अलंकृत कन्यादानसे दूना फल मिलता हैं सकामा उस लोकको जाते है निष्कामा नहीं ॥ ४३ ॥ वे

हरिभक्ताश्च निष्कामाः स्वधर्मनिरता द्विजाः ॥ ते च यांति हरेर्लोकं क्रमाद्भक्ति बलादहो ॥ ३७ ॥ स्वधर्मरहिता विप्रा देवान्यसेवनाः सदा ॥ भ्रष्टाचाराश्च कामाश्च ते यांति नरकं ध्रुवम् ॥ ३८ ॥ स्वधर्मनिरता एव वर्णाश्चत्वार एव च ॥ भवंत्येव शुभस्यैव कर्मणः फलभोगिनः ॥ ३९ ॥ स्वकर्मरहिता ये च नरके यांति ते ध्रुवम् ॥ भारते न भवंत्येव कर्मणः फलभोगिनः ॥४०॥ स्वधर्मनिरता एवं वर्णाश्चत्वार एव च ॥ स्वधर्मरहिता विप्राः स्वधर्मनिरताय च ॥४१॥ कन्यां ददाति विप्राय चंद्रलोकं प्रयांति ते ॥ वसंति लभते साध्वि यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ४२ ॥ सालंकृताया दानेन द्विगुणं फलमुच्यते ॥ सकामा यांति तल्लोकं न निष्कामाश्च साधवः ॥ ४३ ॥ ते प्रयांति विष्णुलोकं फलसंघातवर्जिताः ॥ गव्यं च रजतं स्वर्णं वस्त्रं सर्पिः फलं जलम् ॥ ४४ ॥ ये ददत्येव विप्रेभ्यश्चंद्रलोकं प्रयांति ते ॥ वसंति ते च तल्लोके यावन्मन्वन्तरं सति ॥ ४५ ॥ सुचिरात्सुचिरं वासं कुर्वंति तेन ते जनाः ॥ ये ददति सुवर्णांश्च गाश्च ताम्रादिकं सति ॥ ४६ ॥ ते यांति सूर्यलोकं च शुचये ब्राह्मणाय च ॥ वसंति ते तत्र लोके वर्षाणामयुतं सति ॥ ४७ ॥ विपुले सुचिरं वासं कुर्वंति च निरा मयाः ॥ ददाति भूमिं विप्रेभ्यो धनानि विपुलानि च ॥ ४८ ॥

फलसंघातसे रहित विष्णुलोकको जाते हैं, घी, चांदी, सोना, वस्त्र, दूध, फल, जल ॥ ४४ ॥ जो ब्राह्मणोंको देते हैं वे चन्द्रलोकमें गमन करते हैं वे एकमन्वन्तर पर्यन्त उस लोकमें निवास करते हैं ॥ ४५ ॥ इस प्रकार वे प्राणी वहां बहुत कालपर्यन्त निवास करते हैं जो सुवर्ण और ताम्रसे अलंकृत कर गोदान करते हैं ॥ ४६ ॥ वे पवित्र ब्राह्मणको देनेवाले सूर्य लोकमें निवास करते हैं वे उन लोकोंम दशसहस्र वर्षतक निवास करते हैं ॥ ४७ ॥ वे उन लोकोंमें चिरकाल तक निरामय हो निवास करते हैं अनेक धन भूमि जो ब्राह्मणोंको देते हैं ॥ ४८ ॥

दे. भा. ॥१०२॥ वह मनोहर श्वेतद्वीप और विष्णुलोकमें गमन करतेहैं वह चन्द्रदिवाकरके स्थिति पर्यन्त वहां रहते हैं ॥ ४९ ॥ और वह विपुल लोकमें बहुत समयतक निवास करते हैं, जो मनुष्य भक्तिपूर्वक ब्राह्मणके निमित्त घर देते हैं ॥ ५० ॥ वह सुखदायक विष्णुलोकमें बहुत समयतक रहते हैं उसके रेणुप्रमाणतक विष्णु लोकमें महाप्रतिष्ठा होती है ॥ ५१ ॥ ऐसा होनेसे मनुष्य विपुललोकमें बहुत काल निवास करते हैं जो मनुष्य जिस जिस देवताके निमित्त घर देता है उस घरकी जितनी रेणु हैं उतने वर्षतक वह देवताके लोकमें निवास करता है, राजमहलका चौगुना पुण्य और देशको सौगुनापुण्य होता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ प्रकृष्ट देशका इससे दूना पुण्य है ऐसा ब्रह्माजीने कहा है जो सब पाप नाशके निमित्त सरोवर दान करता है ॥५४॥ वही उसके रेणुप्रमाण वर्षोंतक जनलोकको

स याति विष्णुलोकं च श्वेतद्वीपं मनोहरम् ॥ तत्रैव निवसत्येव यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ ४९ ॥ विपुले विपुलं वासं करोति पुण्यवान्मुने॥ गृहं ददाति विप्राय ये जना भक्तिपूर्वकम् ॥ ५० ॥ ते यांति विष्णु लोकं च सुचिरं सुखदायकम् ॥ गृहरेणुप्रमाणं च विष्णुलोके महत्तमे ॥ ५१ ॥ विपुले विपुलं वास कुर्वंति मानवाः सति ॥ यस्मै यस्मै च देवाय यो ददाति गृहं नरः ॥ ५२ ॥ स याति तस्य लोकं च रेणुमानाब्दमेव च ॥ सौधे चतुर्गुणं पुण्यं देशे शतगुणं फलम् ॥ ५३ ॥ प्रकृष्टे द्विगुणं तस्मादित्याह कमलोद्भवः ॥ यो ददाति तडागं च सर्वं पापापनुत्तये ॥ ५४ ॥ स याति जनलोकं च रेणुमानाब्दमेव च ॥ वाप्यां फलं दशगुणं प्राप्नोति मानवः सदा ॥ ५५ ॥ स तु वापीप्रदानेन तडागस्य फलं लभेत् ॥ धनुश्चतुः सहस्रेण दैर्घ्यमानेन निश्चितम् ॥ ५६ ॥ न्यूना वा तापती प्रस्थे सा वापी परिकीर्तिता ॥ दशवापीसमा कन्या यदि पात्रे प्रदीयते ॥ ५७ ॥ फलं ददाति द्विगुणं यदि साऽलंकृता भवेत् ॥ यत्फलं च तडागे च तदुद्धारे च तत्फलम् ॥ ५८ ॥

जाता है, बावडीका इसमें दशगुण फल मनुष्यको प्राप्त होता है " चार हाथका एक धनुष चार सहस्र धनुषकी वापी होती है दो सहस्र धनुषका कोश होता है " ॥ ५५ ॥ वापी प्रदानसे भी तडागका फल प्राप्त होता है जिसकी दीर्घता चारसहस्र धनुष हो ॥ ५६ ॥ उतनी ही चौडी वा उसके कुछ न्यून हो तो वह वापी कहाती है, यदि पात्रको दी जाय तो कन्यादानका इससे दशगुणा पुण्य है ॥ ५७ ॥ यदि कन्या अलंकारयुक्त हो तो दूना फल देती है जितना फल तडाग खुदानेमें है उतना ही उसके जीर्णोद्धारमें है ॥ ५८ ॥

बावडीकी पंक निकलवानेमें वापी दानका ही फल है, जो पीपलका वृक्ष लगाकर उसकी प्रतिष्ठा करता है ॥ ५९ ॥ वह दशसहस्र तपलोकमें जाता है, हे सावित्री! जो सबके निमित्त फूलोंका उद्यान लगाता है देता है ॥ ६० ॥ वह दशसहस्र वर्ष ध्रुवलोकमें निवास करता है, जो भारतवर्षमें विष्णुके निमित्त विमान देता है ॥ ६१ ॥ वह मन्वन्तर पर्यंत विष्णुलोकमें निवास करता है और जो चित्रयुक्त विपुलविस्तारका विमान देता है उसका चौगुना फल होता है ॥ ६२ ॥ पालकीदानका इससे आधा फल जो भक्तिपूर्वक हरिके निमित्त दोल (झूले) योग्यस्थानवाले मंदिरको देता है ॥ ६३ ॥ वह सौ मन्वन्तर तक विष्णु लोकमें निवास करता है, हे प्रतिव्रते! जो महलयुक्त राजमार्गको करता है ॥ ६४ ॥ वह दशसहस्रवर्ष इन्द्रलोकमें निवास करता है ब्राह्मण और

वाप्याश्च पंकोद्धरणे वापीतुल्यफलं लभेत् ॥ अश्वत्थवृक्षमारोप्य प्रतिष्ठां यः करोति च ॥ ५९ ॥ स प्रयाति ततो लोकं वर्षाणामयुतं सति ॥ पुष्पोद्यानं यो ददाति सावित्रि सर्वभूतये ॥६० ॥ स वसेद्ध्रुवलोकं च वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ यो ददाति विमानं च विष्णवे भारते सति ॥ ६१ ॥ विष्णु लोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं परम् ॥ चित्रयुक्ते च विपुले फलं तस्य चतुर्गुणम् ॥ ६२ ॥ तस्यार्धं शिबिकादाने फलमेव लभेद्ध्रुवम् ॥ यो ददाति भक्तियुक्तो हरये दोलमंदिरम् ॥ ६३ ॥ विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं शतम् ॥ राजमार्गं सौधयुक्तं यः करोति पतिव्रते ॥ ६४ ॥ वर्षाणामयुतं सोऽपि शक्रलोके महीयते ॥ ब्राह्मणेभ्योऽथ देवेभ्यो दाने समफलं लभेत् ॥ ६५ ॥ यद्धि दत्तं च तद्भुंक्ते न दत्तं नोपतिष्ठते ॥ भुक्त्वा स्वर्गादिजं सौख्यं पुण्यवाञ्जन्म भारते ॥ ६६ ॥ लभेद्विप्रकुलेष्वेव क्रमेणैवोत्तमादिषु ॥ भारते पुण्यमान्विप्रो भुक्त्वा स्वर्गादिकं फलम् ॥ ६७ ॥ पुनः सोऽपि भवेद्विप्रश्चैवं च क्षत्रियादयः ॥ क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा कल्पकोटिशतेन च ॥ ६८॥ तपसा ब्राह्मणत्वं च न प्राप्नोति श्रुतौ श्रुतम् ॥ नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥ ६९ ॥

देवताके निमित्त दानमें समान फल देता है ॥६५॥ जो दिया है सोई भोगा जाता है विनादिये नहीं मिलता स्वर्गादि सुख भोगकर यह पुण्यात्मा प्राणी भारतमें जन्म लेकर ॥ ६६ ॥ ब्राह्मण होता है क्रमसे उत्तम गतिको प्राप्त होता है भारतमें पुण्यवान् ब्राह्मण स्वर्गादि फल भोग कर फिर ॥ ६७ ॥ विप्रही होता है इसी प्रकार क्षत्रियादि जानने. क्षत्रिय, वैश्य,कोई क्यों न हो सौ कोटिकल्पमें भी ॥ ६८ ॥ तपस्या करके ब्राह्मण नहीं बनता, जन्मसे ही होता है यह श्रुतिमें कहा है सौ कोटिकल्पमें भी विना भोगे कर्मका क्षय नहीं होता ॥ ६९ ॥

शुभाशुभ किया कर्म अवश्यही भोगना होता है देव और तीर्थकी सहायतासे कायव्यूहसे शुद्ध हो जाता है ॥ ७० ॥ यह कुछ तुमसे कहा अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंन्धे भाषायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ सावित्री बोली हे भगवन् यम ! जिस कर्मसे यह प्राणी स्वर्गमें गमनकरते वे पुण्यवान् मनुष्य होते हैं वह आप हमसे कहिये ॥ १ ॥ धर्म बोले इस भारतमें जो अन्नदान करते हैं वह अन्नके जितने रेणु हैं उतने समयतक शिवलोकमें प्रतिष्ठा पाते हैं ॥ २ ॥ यह अन्नदान महादान है जो ब्राह्मणोंसे अतिरिक्तके निमित्त देता है वह अन्नदानके प्रमाणसे शिवलोकमें

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ दैवतीर्थसहायेन कायव्यूहेन शुद्ध्यति ॥ ७० ॥ एतत्ते कथितं किंचित्किं भूयः श्रोतु मिच्छसि ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादे सावित्र्युपाख्याने एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ सावित्र्युवाच ॥ प्रयांति स्वर्गमन्यं च येनैवकर्मणा यम ॥ मनवाः पुण्यवंतश्च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥ धर्मराज उवाच ॥ अन्नदानं च विप्राय यः करोति च भारते ॥ अन्नप्रमाणवर्षं च शिवलोके महीयते ॥ २ ॥ अन्नदानं महादानमन्येभ्योपि करोति यः ॥ अन्नदानप्रमाणं च शिवलोके महीयते ॥ ३ ॥ अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित् ॥ ४ ॥ देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वा ददाति चासनं यदि ॥ महीयते विष्णुलोके वर्षाणामयुतं सति ॥ ५ ॥ यो ददाति च विप्राय दिव्यां धेनुं पयस्विनीम् ॥ तल्लोममानवर्षं च विष्णुलोकेमहीयते ॥ ६ ॥ चतुर्गुणं पुण्यदिने तीर्थे शतगुणं फलम् ॥ दानं नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं भवेत् ॥ ७ ॥ गां यो ददाति विप्राय भारते भक्तिपूर्वकम् ॥ वर्षाणामयुतं चैव चंद्रलोके महीयते ॥ ८ ॥

प्रतिष्ठा पाता है ॥ ३ ॥ अन्नदानके समान न कुछ और दान है न होगा इसमें पात्रपरीक्षा और कालका नियम नहीं है ॥ ॥ ४ ॥ यदि देवता और ब्राह्मणोंके निमित्त आसन देता वह दशसहस्रवर्ष विष्णु लोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मणको दिव्य दुधारी गाय देता है वह उसके रोमप्रमाणवर्षतक विष्णुलोकमें महिमा पाता है ॥ ६ ॥ पुण्यदिन दान करनेसे चौगुना, तीर्थमें सौगुना; नारायणक्षेत्रमें दानका कोटिगुना फल है ॥ ७ ॥ जो भक्तिपूर्वक भारतमें ब्राह्मणको गौदेता है वह १०००० दश सहस्रवर्षतक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मणको उभयमुखी[1] गोदान करता है उसके लोममान वर्षतक विष्णु लोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ९ ॥ जो ब्राह्मणको मनोहर श्वेतछत्र देता है वह अयुत १०००० वर्ष वरुणलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥१०॥ जो जो पीडितशरीर ब्राह्मणके निमित्त दो वस्त्र देता है वह अयुतवर्ष वायुलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ११ ॥ जो ब्राह्मणके निमित्त सवस्त्र शालिग्राम देता है वह चन्द्रसूर्यकी स्थितितक वैकुण्ठमें निवास करता है ॥१२॥ जो ब्राह्मणको दिव्य मनोहर शय्या देता है वह चन्द्र सूर्यकी स्थितितक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥१३॥ जो देवता ब्राह्मणके निमित्त दीपदान करता है वह मन्वन्तर पर्यन्त वह्निलोकमें प्रतिष्ठा पाता है

यश्चोभयमुखीदानं करोति ब्राह्मणाय च ॥ तल्लोममानवर्षं च विष्णुलोके महीयते ॥ ९ ॥ यो ददाति ब्राह्मणाय श्वेतच्छत्रं मनोहरम् ॥ वर्षाणामयुतं सोऽपि मोदते वरुणालये ॥ १० ॥ विप्राय पीडितांगाय वस्त्रयुग्मं ददाति च ॥ महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं सति ॥ ११ ॥ यो ददातिब्राह्मणाय शालग्रामं सवस्त्रकम् ॥ महीयते स वैकुंठे यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ १२ ॥ यो ददाति ब्राह्मणाय दिव्यां शय्यां मनोहराम् ॥ महीयते चंद्रलोके यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ १३ ॥ यो ददाति प्रदीपं च देवभ्यो ब्राह्मणाय च ॥ यावन्मन्वंतरं सोऽपि वह्निलोके महीयते ॥ १४ ॥ करोति गजदानं च यदि विप्राय भारते ॥ यावदिंद्रो नरस्तावदिंद्रस्यार्धासने वसेत् ॥ १५ ॥ भारते योऽश्व दानं च करोति ब्राह्मणाय च ॥ मोदते वारुणे लोके यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १६ ॥ प्रकृष्टां शिबिकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च ॥ मोदते वारुणे लोके यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १७ ॥ प्रकृष्टां वाटिकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च ॥ महीयते वायुलोके यावन्मन्वंतरं सति ॥ १८ ॥ यो ददाति च विप्राय व्यजनं श्वेतचामरम् ॥ महीयते वायु लोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ १९ ॥

॥ १४ ॥ जो भारतमें ब्राह्मणके निमित्त गजदान करता है वह इन्द्रकी आयु पर्यन्त इन्द्रके अर्ध आसनमें निवास करता है ॥ १५ ॥ जो भारतमें ब्राह्मणके निमित्त अश्वदान करता हैं वह चौदह इन्द्रकी स्थितिपर्यन्त वरुण लोकमें निवास करता है ॥१६॥ जो ब्राह्मणको पालकी दान करता है वह चौदह इन्द्रकी स्थिति पर्यन्त वरुणलोकमें निवास करता है ॥ १७ ॥ जो ब्राह्मणको श्रेष्ठ बगियाका दान करता है वह मन्वन्तरपर्यन्त वायुलोकमें निवास करता है ॥ १८ ॥जो ब्राह्मणको व्यजन और श्वेतचामर देते हैं वह दश सहस्रवर्ष वायुलोकमें निवास करते हैं ॥ १९ ॥

---

१ गाभिणी

धान्य और रत्न देनेवाला चिरजीवी होता है. इसके दाता ग्रहीता दोनों वैकुण्ठको जाते हैं ॥ २० ॥ इस भारतमें जो मनुष्य निरन्तर श्रीहरिका नाम जपता है वह चिरजीवी होता है उससे मृत्यु पलायमान होती है ॥ २१ ॥ जो मनुष्य भारतवर्षमें दोलोत्सव कराता है पूर्णिमा और रात्रिके शेषमें इस उत्सवको करनेवाला जीवन्मुक्त होता है ॥ २२ ॥ इस लोकमें सुख भोगकर अंतमें विष्णुमंदिरको जाता है और निश्चय वहां सौ मन्वन्तरतक निवास करता है ॥ २३ ॥ उत्तराफाल्गुनीमें इससे भी दूना फल होता है वह कल्पान्तजीवी होता है यह ब्रह्माजीका कथन है ॥ २४ ॥ जो भारतमें ब्राह्मणके निमित्त तिल दान करता है वह तिल जितने हों उतने वर्षतक शिवमंदिरमें निवास करता है ॥ २५ ॥ फिर अच्छी योनिको प्राप्त होकर चिरजीवी सुखी होता है ताम्रपात्रके

धान्यं रत्नं यो ददाति चिरंजीवी भवेत्सुधीः ॥ दाता ग्रहीता तौ द्वौ च ध्रुवं वैकुंठगामिनौ ॥ २० ॥ सततं श्रीहरेर्नाम भारते यो जपेन्नरः ॥ स एव चिरजीवी च ततो मृत्युः पलायते ॥ २१ ॥ यो नरो भारते वर्षे दोलन कारयेत्सुधीः ॥ पूर्णिमारजनीशेषे जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ २२ ॥ इहलोके सुखं भुक्त्वायात्यंते विष्णुमंदिरम् ॥ निश्चितं निवसेत्तत्र शतमन्वंतरावधि ॥२३॥ फलमुत्तरफल्गुन्यां ततोऽपि द्विगुणं भवेत् ॥ कल्पांतजीवी स भवेदित्याह कमलोद्भवः ॥ २४ ॥ तिलदानं ब्राह्मणाय यः करोति च भारते ॥ तिलप्रमतिव च मोदते शिवमंदिरे ॥ २५ ॥ ततः सुयोनिं संप्राप्य चिरजीवी भवेत्सुखी ॥ ताम्रपात्रस्य दानेन द्विगुणं च फलं लभेत् ॥ २६ ॥ सालंकृतां च भोग्यां च सवस्त्रां सुंदरीं प्रियाम् ॥ यो ददाति ब्राह्मणाय भारते च पतिव्रताम् ॥ २७ ॥ महीयते चंद्रलोके यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ तत्र स्ववेंश्यया सार्धं मोदते च दिवानिशम् ॥ २८ ॥ ततो गंधर्वलोके च वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ दिवा निशं कौतुकेन चोर्वश्या सह मोदते ॥ २९ ॥

दानसे इससे दूना फल होता है ॥ २६ ॥ जो अलंकार सम्पन्न सवस्त्रा सुन्दरी पतिव्रता अपनी भार्याको ब्राह्मणके निमित्त दान करता है ॥ २७ ॥ वह मन्वन्तरपर्यन्त चंद्रलोकमें प्रवास करता है " पतिव्रताका दान कर फिर उसके भार वा यथाशक्ति सुवर्ण ब्राह्मणोंको देकर उसे ग्रहण करे अन्यथा दाता पति ग्रहीता दोनों नरकमें जाते हैं यह पतिव्रता शब्द ही सूचित करता है स्कन्दमें कहा है " स्त्रियं दत्त्वा ततस्तां तु क्रीणीयात्कांचनादिना " और वहां वह अप्सराओंके साथ निरन्तर क्रीडा करता है ॥ २८ ॥ फिर दश सहस्र वर्ष गंधर्व लोकमें दिनरात कौतुक देखता उर्वशीके साथ प्रसन्न होता है ॥ २९ ॥

और सहस्र जन्मतक सुंदरी प्रियाको प्राप्त होता है जो सती सौभाग्ययुक्त कोमल और प्रियवादिनी होती है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य ब्राह्मणके निमित्त श्रेष्ठ फल देता है वह फल प्रमाण वर्षतक इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ३१ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त हो सुंदर पुत्र लेता, फलयुक्त सहस्र वृक्षोंका दान प्रशंसनीय है ॥ ३२ ॥ अथवा जो ब्राह्मणोंको केवल फलदान करता है वह बहुतकाल स्वर्गमें रहकर फिर भारतमें आता है ॥ ३३ ॥ अनेक द्रव्य और धान्ययुक्त घर जो भारतमें ब्राह्मणको देता है ॥ ३४ ॥ वह सौ मन्वन्तरपर्यन्त स्वर्ग लोकमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त हो महाधनी होता है ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण

ततो जन्मसहस्रं च प्राप्नोति सुंदरीं प्रियाम् ॥ सतीं सौभाग्ययुक्तां च कोमलां प्रियवादिनीम् ॥ ३० ॥ प्रददाति फलं चारु ब्राह्मणाय च यो नरः ॥ फलप्रमाणवर्षं च शक्रलोके महीयते ॥ ३१ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य लभते सुतमुत्तमम् ॥ सफलानां च वृक्षाणां सहस्रं च प्रशंसितम् ॥ ३२ ॥ केवलं फलदानं वा ब्राह्मणाय ददाति च ॥ सुचिरं स्वर्गवासं च कृत्वा याति च भारते ॥ ३३ ॥ नानाद्रव्य समायुक्तं नानासस्य समन्वितम् ॥ ददाति यश्च विप्राय भारते विपुलं गृहम् ॥ ३४ ॥ सुरलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वंतरं शतम् ॥ ततः सुयोनिं संप्राप्य स महाधनवान्भवेत् ॥ ३५ ॥ यो नरः सस्यसंयुक्तां भूमिं च सुचिरां सति ॥ ददाति भक्त्या विप्राय पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ ३६ ॥ महीयते च वैकुण्ठं मन्वंतरशतं ध्रुवम् ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य महांश्च भूमिपो भवेत् ॥ ३७ ॥ तं न त्यजति भूमिश्च जन्मनां शतकं परम् ॥ श्रीमांश्च धनमांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजेश्वरः ॥ ३८ ॥ यो व्रजं च प्रकृष्टं च ग्रामं दद्याद् द्विजाय च ॥ लक्षमन्वंतरं चैव वैकुण्ठे स महीयते ॥ ३९ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य ग्रामलक्षसमन्वितम् ॥ न जहाति च तं पृथिवी जन्मनां लक्षमेव च ॥ ४० ॥ सुप्रजं च प्रकृष्टं च पक्वसस्यसमन्वितम् ॥ नानापुष्करिणीवृक्षफलवल्लीसमन्वितम् ॥ ४१ ॥

पुण्यक्षेत्र भारतमें सस्ययुक्त भूमि ब्राह्मणको देता है ॥३६॥ वह सौमन्वन्तर वैकुण्ठमें वास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त हो महान् राजा होता है ॥३७॥ सौ जन्म भी उसको भूमि त्यागन नहीं करती वह श्रीमान् धनवान् पुत्रवान् प्रजेश्वर होता है ॥ ३८ ॥ जो गोठ सहित अच्छा ग्राम ब्राह्मणको देते हैं यह लाख मन्वन्तर तक वैकुण्ठमें रहते हैं ॥ ३९ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर लाख ग्रामसे युक्त होता है लाख जन्म भी उसको पृथ्वी त्यागन नहीं करती है ॥ ४० ॥ भली प्रजायुक्त प्रकृष्ट पक्वशस्य सम्पन्न अनेक पुष्पकरणी वृक्ष फल वल्लिसे सम्पन्न ॥ ४१ ॥

नगर जो भारतमें ब्राह्मणके निमित्त देता है वह कैलासमें दशलाख इंद्रके काल पर्यन्त प्रसन्न रहता है ॥ ४२ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त हो भारतमें राजेंद्र होता है वह एक नियुत (१००००००) नगर प्राप्त करता है इसमें संदेह नहीं ॥ ४३ ॥ दशसहस्र जन्म पर्यन्त भी भूमि उसको त्यागन नहीं करती महीत लमें परम ऐश्वर्य सम्पन्न होता है ॥ ४४ ॥ जो ब्राह्मणोंको नगरोंका शतक सुप्रकृष्ट मध्यकृष्ट प्रजायुक्त देता है॥ ४५ ॥ तथा तडागसंयुक्त वापी अनेक वृक्षसंयुक्त देता है वह कोटिमन्वन्तरतक वैकुण्ठमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ४६ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर जम्बूद्वीपका अधिपति होता है स्वर्गमें जैसे इंद्र, इस प्रकार परम ऐश्वर्य सम्पन्न होता है ॥ ४७ ॥ कोटिजन्मतक भी उसको पृथ्वी नहीं छोड़ती वह राजराजेश्वर कल्पान्तजीवी होता है ॥ ४८ ॥ जो अपना समस्त

नगरं यश्च विप्राय ददाति भारते भुवि ॥ महीयते स कैलासे दशलक्षेंद्रकालकम् ॥ ४२ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य राजेन्द्रो भारते भवेत ॥ नगराणां च नियुतं स लभेन्नात्र संशयः ॥ ४३ ॥ धरा तं न जहात्येव जन्मनामयुतं ध्रुवम् ॥ परमैश्वर्यनियुतो भवेदेव मही तले ॥ ४४ ॥ नगराणां च शतकं देशं यो हि द्विजातये ॥ सुप्रकृष्टं मध्यकृष्टं प्रजायुक्तं ददाति च ॥ ४५ ॥ वापीतडागसंयुक्तं नाना वृक्षसमन्वितम् ॥ महीयते स वैकुण्ठे कोटि मन्वंतरावधि ॥ ४६ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य जंबुद्वीपपतिर्भवेत् ॥ परमैश्वर्यसंयुक्तो यथा शक्रस्तथा भुवि ॥ ४७ ॥ महीतं न जहा त्येव जन्मनां कोटिमेव च ॥ स कल्पांतजीवी स भवेद्राजराजेश्वरो महान् ॥ ४८ ॥ स्वाधि कारं समग्रं च यो ददाति द्विजातये चतुर्गुणं फलं चांते भवेत्तस्य न संशयः ॥ ४९ ॥ जम्बुद्वीपं यो ददाति ब्राह्मणाय तपस्विने ॥ फलं शतगुणं चांते भवेत्तस्य न संशयः ॥ ५० ॥ जम्बुद्वीप महीदातुः सर्वतीर्थानि सेवितुः ॥ सर्वेषां तपसां कर्तुस्सर्वेषां वासकारिणः ॥ ५१ ॥ सर्वदानं प्रदातुश्च सर्वसिद्धेश्वरस्य च ॥ अस्त्येव पुनरावृत्तिर्न भक्तस्य महेशितुः ॥ ५२ ॥ असंख्यब्रह्मणां पातं पश्यंति भुवनेशितुः ॥ निवसंति मणिद्वीपे श्रीदेव्याः परमे पदे ॥ ५३ ॥

अधिकार ब्राह्मणको देता है उसको अन्तमें उसका चौगुणा फल होता है ॥ ४९ ॥ जो तपस्वी ब्राह्मणको जम्बूद्वीपका अधिकार देता है उसको अंतमें उसका सौगुना फल होता है ॥ ५० ॥ जम्बूद्वीपका पृथ्वीका दान, सब तीर्थोंका सेवन सब तपस्या सब वासकारी ॥ ५१ ॥ सब दानके देनेवाले सब सिद्धेश्वर दर्शनसे पुनरावृत्ति होती है परंतु महेशानीके भक्त फिर नहीं लौटते ॥ ५२ ॥ जो मणिद्वीपमें श्रीदेवीके परमपदमें निवास करते हैं उन्होंने असंख्य ब्रह्माओंका पात देखा है ॥ ५३ ॥

देवी मंत्रके उपासक मानवी शरीर त्यागकर जरामृत्यु रहित दिव्यरूप और ऐश्वर्यको प्राप्त हो ॥ ५४ ॥ देवीके सारूप्यको प्राप्त होकर देवीकी सेवा करते हैं और मणिद्वीपमें अखंड लोक संक्षय देखते हैं ॥ ५५ ॥ देव सिद्ध और सब विश्व नष्ट होते हैं, परन्तु जन्म मृत्यु जराके हरनेवाले देवीके भक्त नष्ट नहीं होते हैं ॥ ५६ ॥ जो कार्तिकमें हरिके निमित्त तुलसी दान करते हैं वह तीन युग पर्यंत हरिमंदिरमें निवास करते हैं ॥ ५७ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर हरिभक्तियों प्राप्त होते हैं वह भारतभूमिमें जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ होते हैं ॥ ५८ ॥ जो अरुणोदयके समय गंगाके मध्यमें स्नान करते हैं वह साठ सहस्र युगतक हरिमंदिरमें निवास करता है ॥ ५९ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर श्रेष्ठ हरिभक्तिको प्राप्त होते हैं मनुष्य देहत्याग करनेपर फिर हरिके पदको जाते

देवीमन्त्रोपासकाश्च विहाय मानवीं तनुम् ॥ विभूतिं दिव्यरूपं च जन्ममृत्युजराहरम् ॥ ५४ ॥ लब्ध्वा देव्याश्च सारूप्यं देवीसेवां च कुर्वते ॥ पश्यंति ते मणिद्वीपे सखंडं लोकसंक्षयम् ॥ ५५ ॥ नश्यंति देवाः सिद्धाश्च विश्वानि निखिलानि च ॥ देवीभक्ता न नश्यंति जन्ममृत्युजराहराः ॥ ५६ ॥ कार्त्तिके तुलसीदानं करोति हरये च यः ॥ युगत्रयप्रमाणं च मोदते हरि मंदिरे ॥ ५७ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम् ॥ जितेंद्रियाणां प्रवरः स भवेद्भारते भुवि ॥ ५८ ॥ मध्ये यः स्नाति गंगायामरुणोदय कालतः ॥ युगषष्टिसहस्राणि मोदते हरिमन्दिरे ॥ ५९ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य विष्णुमन्त्रं लभेद्ध्रुवम् ॥ त्यक्त्वा च मानुषं देहं पुनर्याति हरेः पदम् ॥ ६० ॥ नास्ति तत्पुनरावृत्तिर्वैकुण्ठाच्च महीतले ॥ करोति हरिदास्यं च तथा सारूप्यमेव च ॥ ६१ ॥ नित्यस्नायी च गंगायां स पूतः सूर्यवद्भुवि ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥ ६२ ॥ तस्यैव पादरजसा सद्यः पूता वसुंधरा ॥ मोदते स च वैकुण्ठे यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ ६३ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम् ॥ जीवन्मुक्तोऽतितेजस्वी तपस्विप्रवरो भवेत् ॥ ६४ ॥ स्वधर्मनिरतः शुद्धो विद्वांश्च स जितेन्द्रियः ॥ मीनकर्कटयोर्मध्ये गाढं तपति भास्करः ॥ ६५ ॥

हैं ॥ ६० ॥ वैकुण्ठसे भूलोकमें फिर आवृत्ति नहीं होती हरि अपने दासोंको सारूप्य मुक्ति देते हैं ॥ ६१ ॥ गंगामें नित्य स्नान करने वाला सूर्यके समान पृथ्वीमें पवित्र होता है और पद पदमें उसको अश्वमेधका फल मिलता है ॥ ६२ ॥ उसीकी पादरजसे भूमि शीघ्र पवित्र होती है, वह चन्द्र दिवाकर पर्यंत वैकुण्ठमें निवास करता है ॥ ६३ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त हो हरिकी परमभक्तिको प्राप्त होता है, वह जीवन्मुक्त तेजस्वी तपस्विप्रवर होता है ॥ ६४ ॥ तथा स्वधर्ममें निरत शुद्ध विद्वान् जितेन्द्रिय होता है जैसे मीन और कर्कके मध्यमें सूर्य गाढरूपसे तपता है ॥ ६५ ॥

जो भारतमें किसीको सुगंधित जल देता है वह चौदह इन्द्र पर्यंत कैलासमें प्रसन्न होता है ॥ ६६ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर रूपवान् और सुखी होता है शिवभक्त तेजस्वी वेदवेदाङ्गका पारगामी होता है ॥ ६७ ॥ जो वैशाखमें ब्राह्मणको सत्तु दान करता है वह सत्तुके कणप्रमाण वर्षोंतक शिव मंदिरमें प्रसन्न रहता है ॥ ६८ ॥ जो भारतमें कृष्णजन्माष्टमीव्रत करता है निःसंदेह उसके सौ जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ६९ ॥ चौदह इन्द्रकी आयुपर्यंत वह निःसंदेह वैकुण्ठमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त हो कृष्णभक्ति लेते हैं ॥ ७० ॥ इस भारतवर्षमें जो शिवरात्रिका व्रत करते हैं वह सात मन्वन्तर पर्यंत शिवलोकमें निवास करते हैं॥ ७१ ॥ जो शिवरात्रिमें शिवके निमित्त बेलपत्र देता है वह पत्रके प्रमाण वर्षोंतक शिव मंदिरमें निवास करता है ॥७२॥

भारते यो ददात्येव जलमेव सुवासितम् ॥ स मोदते च कैलासे यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ६६ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य रूपवांश्च सुखी भवेत् ॥ शिवभक्तश्च तेजस्वी वेदवेदांगपारगः ॥ ६७ ॥ वैशाखे सक्तुदानं च यः करोति द्विजातये ॥ सक्तुरेणुप्रमाणाब्दं मोदते शिव मंदिरे ॥ ६८ ॥ करोति भारते यो हि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ॥ शतजन्मकृतं पापं मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६९ ॥ वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य कृष्णे भक्तिं लभेद् ध्रुवम् ॥ ७० ॥ इहैव भारते वर्षे शिवरात्रिं करोति यः ॥ मोदते शिवलोके स सप्तमन्वंतरावधि ॥ ७१ ॥ शिवाय शिवरात्रौ च बिल्वपत्रं ददाति च ॥ पत्रमानयुगं तत्र मोदते शिवमंदिरे ॥ ७२ ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य शिवभक्तिं लभेद् ध्रुवम् ॥ विद्यावान्पुत्रवाञ्छ्रीमान्प्रजावान्भूमिमान्भवेत् ॥ ७३ ॥ चैत्रमासेऽथवा माघे शंकरं योऽर्चयेद्व्रती ॥ करोति नर्तनं भक्त्या वेत्रपाणिर्दिवानिशम् ॥ ७४ ॥ मांसं वाऽप्यर्धमासं वा दश सप्तदिनानि च ॥ दिन मानयुगं सोऽपि शिवलोके महीयते ॥ ७५ ॥ श्रीरामनवमीं यो हि करोति भारते पुमान् ॥ सप्तमन्वंतरं यावन्मोदते विष्णुमंदिरे ॥७६॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य रामभक्तिं लभेद् ध्रुवम् ॥ जितेंद्रियाणां प्रवरो महांश्च धनवान्भवेत् ॥ ७७ ॥

फिर सुयोनिको प्राप्त हो शिवभक्ति पाता है. विद्यावान् पुत्रवान्, श्रीमान्, प्रजावान्, भूमिवान् होता है ॥ ७३ ॥ जो व्रती चैत्र वा माघमें शंकरका अर्चन करता है और भक्तिसे नृत्यकर दिनरात वेत्रवाणी होता है ॥ ७४ ॥ महीने पखवारे वा दश सातदिन जितने दिन अर्चन करै उतनेही युग पर्यंत शिवलोकमें प्रतिष्ठा है ॥ ७५ ॥ जो मनुष्य भारतवर्षमें श्रीराम नवमीव्रत करते हैं वह सात मन्वंतरतक विष्णुलोकमें प्रसन्न होते है ॥ ७६ ॥ फिर सुयोनिको प्राप्त होकर रामभक्तिको अवश्य लेते हैं जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ और महाधनी होते हैं ॥ ७७ ॥

जो शरत्कालमें देवीकी महा पूजा करते हैं महिष, छाँग, मेष, खड्ग, भेकादि ॥ ७८ ॥ नैवेद्य, उपहार, धूप, दीपादि तथा नृत्य गीतादिसे अनेक कौतुक करते हैं ॥ ७९ ॥ वह सात मन्वन्तरतक शिव लोकमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त हो निर्मल बुद्धि पाता है ॥ ८० ॥ पुत्र पौत्रकी बढानेवाली अतुल श्रीको प्राप्त होता है और महाप्रभावसे युक्त हाथी घोड़ोंसे युक्त होता है ॥ ८१ ॥ निःसंदेह वह राजराजेश्वर होता है. फिर शुक्लाष्टमीको प्राप्त होकर जो महालक्ष्मीको अर्चन करता है ॥ ८२ ॥ नित्य भक्तिसे पुण्यक्षेत्र भारतमें जो एक पक्षतक प्रकृष्ट षोडशोपचार करता है ॥ ८३ ॥ वह चौदह इन्द्रके

शारदीयां महापूजा प्रकुर्तेर्यः करोति च ॥ महिषैश्छागलैर्मेषैः खड्गैर्भेकादिभिः सति ॥ ७८ ॥ नैवेद्यैरुपहारैश्च धूप दीपादिभिस्तथा ॥ नृत्यगीतादिभिर्वाद्यैर्नान कौतुकमंगलम् ॥ ७९ ॥ शिवलोके वसेत्सोऽपि सप्तमन्वन्तरावधिः ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्यानरो बुद्धिं च निर्मलाम् ॥ ८० ॥ अतुलां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥ महाप्रभावयुक्तश्च गजवाजिसमन्वितः ॥ ८१ ॥ राजराजेश्वरः सोऽपि भवेदेव न संशयः ॥ ततः शुक्लाष्टमीं प्राप्य महालक्ष्मीं च योऽर्चयेत् ॥ ८२ ॥ नित्यं भक्त्या पक्षमेकं पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ दत्त्वा तस्यै प्रकृष्टानि चोपचाराणि षोडश ॥ ८३ ॥ गोलोके च वसेत्सोऽपि यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य राजराजेश्वरो भवेत् ॥८४॥ कार्त्तिकीपूर्णिमायां तु कृत्वा तु रासमंडलम् ॥ गोपानां शतकं कृत्वा गोपीनां शतकं तथा ॥ ८५ ॥ शिलायां प्रतिमायां च श्रीकृष्णं राधया सह ॥ भारते पूजयेद्भक्त्या चोपहारणि षोडश ॥ ८६ ॥ गोलोके वसते सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ भारतं पुनरागत्य कृष्णे भक्तिं लभेद्दृढाम् ॥ ८७ ॥ क्रमेण सुदृढां भक्तिं लब्ध्या मंत्रं हरेरहो ॥ देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयाति सः ॥ ८८॥ ततः कृष्णस्य सारूप्यं पार्षदप्रवरो भवेत् ॥ पुनस्तत्पतनं नास्ति जरामृत्यु हरो भवेत् ॥ ८९ ॥ शुक्लां वाऽप्यथवाकृष्णां करोत्येकादशी च यः ॥ वैकुंठे मोदते सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥ ९० ॥

समयतक गोलोकमें निवास करता है फिर सुयोनियोंको प्राप्त होकर राजराजेश्वर होता है ॥ ८४ ॥ जो कार्तिकी पूर्णिमाको रासमंडल करके गोप और गोपियोंका शतक पढै ॥ ८५ ॥ शिलाकी प्रतिमामें श्रीकृष्णराधिकाको षोडश उपचारसे भक्तिपूर्वक जो पूजन करता है ॥८६ ॥ वह गोलोकमें ब्रह्माकी आयु पर्यंत निवास करता है फिर भारतमें आकर कृष्णकी दृढभक्ति लेता है ॥८७॥ क्रमसे दृढभक्ति हरिकी प्राप्त होती है. तथा देहत्याग कर फिर वह गोलोकको जाता है ॥ ८८ ॥ फिर कृष्णके सारूप्यको पाय पार्षद होता है वहांसे फिर पतन नहीं होता जरा मृत्यु नहीं होती ॥ ८९ ॥ और जो शुक्ला वा कृष्णा एकादशी

दे. भा.

॥१०७॥

करता है वह ब्रह्माकी अवस्थातक वैकुंठमें निवास करता है ॥ ९० ॥ फिर भारतमें आकर कृष्णभक्त होता है अहो फिर क्रमसे हरिका दृढभक्त होता है ॥ ९१ ॥ देह त्यागनकर यह फिर गोलोकको जाता है फिर कृष्णका सारूप्य पाकर पार्षद होता है ॥ ९२ ॥ फिर वह जरामृत्यु रहित हो वहांसे पतित नहीं होता भाद्रशुक्ला द्वादशीको मनुष्योंको इन्द्रकी पूजाकरनी चाहिये ॥ ९३ ॥ तो वह साठ सहस्र वर्षतक इन्द्रलोकमें निवास करता है शुक्लपक्ष वा रविवार संक्रातिमें ॥ ९४ ॥ भारतमें सूर्यका पूजन कर जो हविष्य अन्न करता है वह चतुर्दश इन्द्रकी स्थिततक स्वर्गलोकमें निवास करता है ॥ ९५ ॥ फिर भारतमें आकर श्रीयुक्त योगी होता है ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीको जो सावित्रीका पूजन करता है ॥ ९६ ॥ वह सात मन्वन्तरतक ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा पाता है फिर पृथ्वीमें

भारतं पुनरागत्य कृष्ण भक्तिं लभेद्‌ ध्रुवम् ॥ क्रमेण भक्तिसुदृढां करोत्येकां हरेरहो ॥ ९१ ॥ देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयाति सः ॥ ततः कृष्णस्य सारूप्यं संप्राप्य पार्षदो भवेत् ॥ ९२ ॥ पुनस्तत्पतनं नास्ति जरामृत्युहरो भवेत ॥ भाद्रे मासे तु द्वादश्यां यः शक्रं पूजयेन्नरः ॥ ९३ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि शक्रलोके महीयते ॥ रविवारे च संक्रांत्यां सप्तम्यां शुक्लपक्षके ॥ ९४ ॥ संपूज्यार्कं हरिष्यान्नं यः करोति च भारते ॥ महीयते सोऽर्कलोके यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ९५ ॥ भारतं पुनरागत्य चारोगी श्रीयुतो भवेत् ॥ ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां सावित्रीं यो हि पूजयेत् ॥ ९६ ॥ महीयते ब्रह्मलोके सप्तमन्वंतरावधि ॥ पुनर्महीं समागत्य श्रीमानतुलविक्रमः ॥ ९७ ॥ चिरजीवी भवेत्सोऽपि ज्ञानवान्संपदा युतः ॥ माघस्य शुक्लपंचम्यां पूजयेद्यः सरस्वतीम् ॥ ९८ ॥ संयतो भक्तितो दत्त्वा चोपचाराणि षोडश ॥ महीयते मणिद्वीपे यावद्ब्रह्मदिवानिशम् ॥ ९९ ॥ संप्राप्य च पुनर्जन्म स भवेत्कवि पंडितः ॥ गां सुवर्णादिकं यो हि ब्राह्मणाय ददाति च ॥ १०० ॥ नित्यं जीवनपर्यंतं भक्तियुक्तश्च भारते ॥ गवां लोम प्रमाणाब्दं द्विगुणं विष्णु मंदिरे ॥ १ ॥

आकर श्रीमान् अतुल विक्रमी होता है ॥ ९७ ॥ वह ज्ञानवान् सम्पत्तिसे युक्त चिरंजीवी होता है माघशुक्ल पंचमीको जो सरस्वतीका पूजन करता है ॥९८॥ और भक्तिपूर्वक सोलह उपचार देता है वह कल्पपर्यंत मणिद्वीपमें निवास करता है ॥ ९९ ॥ फिर जन्मको प्राप्त होकर वह कवि पंडित होता है. सुवर्ण संयुक्त गौ जो ब्राह्मणके निमित्त देता है ॥ १०० ॥ वह जीवन पर्यंत नित्य भक्तियुक्त भारतमें गौओंका दान करनेसे जितने गौके लोम हों उससे दूनो वर्ष विष्णुमंदिरमें निवास करता है ॥ १०१ ॥

क्रीडा कौतुक मङ्गलपूर्वक हरिके सहित प्रसन्न होता है फिर लौट कर यहां राजराजेश्वर होता है ॥ २ ॥ श्रीमान् पुत्रवान् विद्वान् ज्ञानवान् सब प्रकार सुखी होता है जो भारतमें ब्राह्मणको मिष्टान्न भोजन कराता है ॥ ३ ॥ वह ब्राह्मणके लोमप्रमाणवर्षतक विष्णु मंदिरमें प्रसन्न होता है फिर यहां आकर सुखी और धनवान् होता है ॥४॥ विद्वान् चिरजीवी श्रीमान् अतुलविक्रम होता है जो भारतमें हरिका नाम लेता लिवाता है ॥५॥ वह नामके अनुसार विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा पाता है फिर यहां आकर सुखी और धनवान् होता है ॥ ६ ॥ जो नारायण क्षेत्रमें हरिका नाम लेनेसे कोटिगुणाफल होता है ॥ ७ ॥ ऐसा पुरुष सब पापसे रहित होकर जीवन्मुक्त होता है उसका फिर जन्म न होकर वह वैकुण्ठमें प्रतिष्ठा पाता है ॥ ८ ॥ वह विष्णुके सारूप्यको प्राप्त होता है फिर उसका पतन

मोदते हरिणा सार्धं क्रीडाकौतुकमंगलैः ॥ तदंते पुनरागत्य राजराजेश्वरो भवेत् ॥ २ ॥ श्रीमांश्च पुत्रवान्विद्वाञ्ज्ञानवान्सर्वतः सुखी ॥ भोजयेद्योऽपि मिष्टान्नं ब्राह्मणेभ्यश्च भारते ॥ ३ ॥ विप्रलोमप्रमाणब्दं मोदते विष्णुमंदिरे ॥ ततः पुनरिहागत्य सुखी च धनवान्भवेत् ॥ ४ ॥ विद्वान्सुचिरजीवी च श्रीमानतुलविक्रमः ॥ यो वक्ति वः ददात्येव हरेर्नामानि भारते ॥ ५ ॥ युगं नाम प्रमाणं च विष्णुलोके महीयते ॥ ततः पुनरिहागत्य सुखी च धनवान्भवेत् ॥ ६ ॥ यदि नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं भवेत् ॥ नाम्नां कोटिं हरर्यो हि क्षेत्र नारायणे जपेत् ॥ ७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥ न लभेत्स पुनर्जन्म वैकुण्ठे स महीयते ॥ ८ ॥ लभेद्विष्णोश्च सारूप्यं न तस्य पतनं भवेत् ॥ विष्णुभक्तिं लभेत्सोऽपि विष्णुसारूप्यमाप्नुयात् ॥ ९ ॥ शिवं यः पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिंगं च पार्थिवम् ॥ यावज्ज्वीवनपर्यंतं स याति शिवमंदिरम् ॥ ११० ॥ मृदो रेणुप्रमाणाब्दं शिवलोके महीयते ॥ ततः पुनरिहागत्य राजेन्द्रो भारते भवेत् ॥ ११ ॥ शिलां च पूजयेन्नित्यं शिलातोयं च भक्षति ॥ महीयते च वैकुण्ठे यावद्वै ब्रह्मणः शतम् ॥ १२ ॥ ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म हरिभक्तिं च दुर्लभाम् ॥ महीयते विष्णुलोके न तस्य पतनं भवेत् ॥ १३ ॥

नहीं होता वहविष्णुभक्तिको प्राप्त होकर विष्णुकी सारूप्यताको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ और जो पार्थिवलिंग बनाय नित्य शिवका पूजन करै वह जीवनपर्यंत शिवलोकमें निवास करता है ॥ ११० ॥ उस पार्थिवलिंगके रेणुप्रमात्र वर्षतक शिवलोकमें निवास करता है फिर भारतमें आय राजेन्द्र होता है ॥ ११ ॥ जो शालियामशिलाका नित्य पूजन कर चरणामृत लेता है वह सौ ब्रह्माकी आयुतक वैकुण्ठमें निवास करता है ॥ १२ ॥ फिर जन्म लेकर दुर्लभ हरिभक्तिको प्राप्त होता है और विष्णुलोकमें प्राप्त होकर फिर नहीं आता ॥ १३ ॥

दे. भा. सब तप और व्रत करके चौदह इन्द्रके कालतक वैकुण्ठमें निवास करता है ॥ १४ ॥ फिर भारतमें जन्मले राजा होता है पश्चात् जन्मले मुक्त होकर फिर
॥१०८॥ जन्म नहीं पाता ॥ १५ ॥ जो पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर सब तीर्थोंमें स्नान करता है वह निर्वाणताको प्राप्त होता है उसका भूमिमें जन्म नहीं होता ॥ १६ ॥
जो इस पुण्यक्षेत्रमें भारतमें अश्वमेध करता है वह घोड़ेके लोम प्रमाण वर्षतक इंद्रके अर्धासनका भागी होता है ॥ १७ ॥ यह मनुष्य राजसूयसे चौगुने
फलको प्राप्त होता है सब यज्ञोंसे विशेष देवी यज्ञ है ॥ १८ ॥ यह पहिले ब्रह्मा विष्णु और त्रिपुरासुरनाशके निमित्त शंकर ने किया था ॥१९॥ हे सुन्दरि !

तपांसि चैव सर्वाणि व्रतानि निखिलानि च ॥ कृत्वा तिष्ठति वैकुण्ठे यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ १४ ॥ ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म राजेंद्रो भारते
भवेत् ॥ ततो मुक्तो भवेत्पश्चात्पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ११५ ॥ यः स्नात्वा सर्वतीर्थेषु भुवः कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥ स तु निर्वाणतांयाति न
च जन्म भवेद्भुवि ॥ १६ ॥ पुण्यक्षेत्रे भारते च योऽश्वमेधं करोति च ॥ अश्वलोममिताशब्दं च शक्रस्यार्धासनं भजेत् ॥ ११७ ॥ चतु
र्गुणं राजसूयं फलप्राप्नोति मानव ॥ सर्वेभ्योऽपि मखेभ्यो हि परो देवीमखः स्मृतः ॥११८॥ विष्णुना च कृतः पूर्वं ब्रह्मणा च वरानने ॥
शंकरेण महेशेन त्रिपुरासुरनाशने ॥ १९ ॥ शक्तियज्ञः प्रधानश्च सर्वयज्ञेषु सुन्दरि नानेन ॥ सदृशो यज्ञस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ १२० ॥
दक्षेण च कृतः पूर्वं महान्संवादसंयुतः ॥ बभूव कलहो यत्र दक्षशंकरयोः सति ॥ २१ ॥ शेपुश्च नंदिनं विप्रा नंदी विप्रांश्च कोपतः ॥
यद्धेतोर्दक्षयज्ञं च बभंज चंद्रशेखरः ॥ २२ ॥ चकार देवीयज्ञं स पुरा दक्षः प्रजापतिः ॥ धर्मश्च कश्यपश्चैव शेषश्चापि च कर्दमः
॥ २३ ॥ स्वायंभुवो मनुश्चैव तत्पुत्रश्च प्रियव्रतः शिवः सनत्कुमारश्च कपिलश्च ध्रुवस्तथा ॥ २४ ॥ राजसूयसहस्राणां फलमाप्नोति
निश्चितम् ॥ देवीयज्ञात्परो यज्ञो नास्ति वेदे फलप्रदः ॥ १२५ ॥ वर्षाणां शतजीवी च जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥ ज्ञानेन तेजसा चैव
विष्णु भृत्यो भवेदिह ॥ २६ ॥

सब यज्ञोंमें शक्तियज्ञ प्रधान है तीन लोकमें इसके समान और यज्ञ नहीं हैं १२०॥ बड़े संभारसंयुक्त पहले इसको दक्षने किया जहां शंकर और दक्षका क्लेश
भा. टी.न. हुआ था ॥ २१ ॥ वहां ब्राह्मणोंमें नंदिको और नंदिने क्रोधकर ब्राह्मणोंको शाप दिया जिस कारण चन्द्रशेखरने दक्षका यज्ञ विध्वंस किया ॥ २२ ॥ दक्ष
अ० ३० प्रजापतिने पहले देवीका यज्ञ किया धर्म कश्यप और कर्दमने यज्ञ किया ॥ २३॥ स्वायंभुव मनु उनके पुत्र प्रियव्रत शिव सनत्कुमार कपिल ध्रुव ॥ २४ ॥
यह सबही यज्ञ करते हुए इससे सहस्र राजसूयका फल प्राप्त होता है देवी यज्ञकी बराबर वेदमें फल देनेवाला और यज्ञ नहीं है ॥ २५ ॥ सैकडों वर्ष

जीकर जीवन्मुक्त होता है वह ज्ञान और तेजमें विष्णुकी तुल्य होता है ॥ २६ ॥ देवताओंमें जैसे विष्णु, वैष्णवोंमें जैसे नारद शास्त्रोंमें जैसे वेद वर्णोंमें ब्राह्मण ॥ २७ ॥ तीर्थोंमें गंगा पवित्र करनेवालोंमें शिव व्रतोंमें एकादशी पुष्पोंमें जैसे तुलसी ॥ २८ ॥ नक्षत्रोंमें चन्द्रमा पक्षियोंमें गरुड स्त्रियोंमें जैसे प्रकृति राधा वाणी भूमि ॥२९॥ शीघ्रगामी इंन्दियों और चंचलोंमें जैसे मन प्रजापतियोंमें प्रजाओंके पति ब्रह्मा ॥ १३० ॥ वनोंमें वृन्दावन, वर्षोंमें भारत, श्रीमानों जैसे लक्ष्मी, विद्वानोंमें सरस्वती ॥ ३१ ॥ पतिव्रताओंमें दुर्गा, सौभागिनीयोंमें राधिका है हे भामिनी ! इसी प्रकार सब यज्ञोंमें देवीयज्ञ श्रेष्ठ है ॥ ३२ ॥ सौ

देवानां च यथा विष्णुर्वैष्णवानां च नारदः ॥ शास्त्राणां च यथा वेदा वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥ २७ ॥ तीर्थानां च यथा गंगा पवित्राणां शिवो यथा ॥ एकादशी व्रतानां च पुष्पाणां तुलसी तथा ॥ २८ ॥ नक्षत्राणां यथा चंद्रः पक्षिणां गरुडो यथा ॥ यथा स्त्रीणां च प्रकृती राधा वाणी वसुंधरा ॥ २९ ॥ शीघ्राणां चेंद्रियाणां च चंचलानां मनो यथा ॥ प्रजापतीनां ब्रह्मा च प्रजानां च प्रजापतिः ॥ १३० ॥ वृंदावनं वनानां च वर्षाणां भारतं तथा ॥ श्रीमतां च यथा श्रीश्च विदुषां च सरस्वती ॥ ३१ ॥ पतिव्रतानां दुर्गा च सौभाग्यानां च राधिका ॥ देवीयज्ञस्तथा वत्से सर्वयज्ञेषु भामिनि ॥ ३२ ॥ अश्वमेधशतेनैव शक्रत्वं लभेद् ध्रुवम्॥ सहस्रेण विष्णुपदं संप्राप्तः पृथुरेव च ॥ ३३ ॥ स्नानं च सर्वतीर्थानां सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् ॥ सर्वेषा च व्रतानां च तपसा फलमेव च ॥ ३४ ॥ पाठे चतुर्णां वेदानां प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा ॥ फलभूतमिदं सर्वं मुक्तिदं शक्तिसेवनम् ॥ १३५ ॥ पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु सर्वतः ॥ निरूपितं सारभूतं देवीपादांबुजार्चनम् ॥ ३६ ॥ तद्वर्णनं च तद्ध्यानं तन्नामगुणकीर्तनम् ॥ तत्स्तोत्रस्मरणं चैवं वंदनं जपमेव च ॥३७॥ तत्पादोदकनैवेद्यभक्षणं नित्यमेव च ॥ सर्वसम्मतमित्येवं सर्वेप्सितमिदं सति ॥ १३८ ॥

अश्वमेधसे शक्रत्वकी निश्चयही प्राप्ति होती है और सहस्रसे विष्णुपद मिलता है जो राजा पृथुको प्राप्त हुआ है ॥ ३३ ॥ सब यज्ञोंमें स्नान सब यज्ञोंमें दीक्षा सब व्रत और तपका फल ॥ ३४ ॥ चारवेदोंके पाठ भू प्रदक्षिणाका फल इनसेही मुक्तिदायक देवीके चरणकमलकी भक्ति होती है ॥ ३५ ॥ वेद पुराण और सब इतिहासोंमें देवीके चरण कमल पूजनको ही सार कहा है ॥ ३६ ॥ उसीका वर्णन ध्यान उसीके नाम गुणका कीर्तन उसीके स्तोत्रका स्मरण वंदन और जप ॥ ३७ ॥ उनके चरणको अमृत लेना उनका नैवेद्य भक्षण यह सब सम्मत और सब इच्छितोंका देनेवाला है ॥ ३८ ॥

दे. भा. ॥१०९॥ परब्रह्म निर्गुण पराप्रकृति मायाविशिष्ट मूलरूपिणीका भजन करो हे वत्से ! अपने स्वामीको ग्रहण कर अपने मंदिरमें सुखसे निवास करो ॥ ३९ ॥ यह मैंने तुमसे मनुष्योंका मांगलिक कर्मविपाक वर्णन किया यह सबके ईप्सित सर्व समस्त और तत्त्वज्ञानका देनेवाला है ॥ १४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ श्रीनारायण बोले यमराजके मुखसे सावित्री शक्तिका कीर्तन सुनकर नेत्रमें जल भरनेसे पुलकित हो यमराजसे बोली ॥ १ ॥ सावित्री बोली हे धर्म ! शक्तिका उत्कीर्तन सब धर्मोंका कारण है सुनने और कहनेवालोंकी जरा मृत्यु हरता है ॥ २ ॥ दानव सिद्ध तपस्वियोंकी परमपद दायक है, योग और वेदोंका कीर्तन हे विभो ! सबको मंगल करनेवाला है ॥ ३ ॥ मुक्ति अमरत्व और सब सिद्धियें श्री शक्तिके सेवककी सोलहवीं कला

भज नित्यं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतिं पराम् ॥ गृहाण स्वामिनं वत्से सुखं वस च मंदिरे ॥ ३९ ॥ अयं ते कथितः कर्मविपाको मंगलो नृणाम् ॥ सर्वेप्सितः सर्वमतस्तत्त्वज्ञानप्रदः परः ॥ १४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महा० नवमस्कंधे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शक्तेरुत्कीर्तनं श्रुत्वा सावित्री यमवक्रतः ॥ साश्रुनेत्रा सपुलका यमं पुनरुवाच सा ॥ १ ॥ सावित्र्युवाच ॥ शक्तेरुत्कीर्तनं धर्म सकलोद्धारकारणम् ॥ श्रोतॄणां चैव वक्तॄणां जन्ममृत्युजराहरम् ॥ २ ॥ दानवानां च सिद्धानां तपसा च परं पदम् ॥ योगानां चैव वेदानां कीर्तनं सेवनं विभोः ॥ ३ ॥ मुक्तित्वममरत्वं च सर्वसिद्धित्वमेव च ॥ श्रीशक्तिसेवकस्यैव कलां नार्हंति षोडशीम् ॥ ४ ॥ भजामि केन विधिना वद वेदविदां वरं ॥ शुभकर्मविपाकं च श्रुतं नृणां मनोहरम् ॥ ५ ॥ कर्माशुभविपाकं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ इत्युक्त्वा च सती ब्रह्मन्भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥ ६ ॥ तुष्टाव धर्मराजं च वेदोक्तेन स्तवेन च ॥ सावित्र्युवाच ॥ तपसा धर्ममाराध्य पुष्करे भास्करः पुरा ॥ ७ ॥ धर्मं सूर्यः सुतं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम् ॥ समता सर्वसभूतेषुर्वस्य साक्षिणः ॥ ८ ॥ अतो यन्नाम शमनमिति तं प्रणमाम्यहम् ॥ येनांतश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परम् ॥ ९ ॥

भी नहीं है ॥ ४ ॥ हे वेद विदांवर ! किस प्रकार उनका भजन किया जाय सो कहो मैंने मनुष्योंका शुभ कर्मविपाक तो सुना ॥ ५ ॥ अशुभ कर्मोंका विपाक भी आप हमसे कहिये हे ब्रह्मन् ! ऐसा कहकर वह सती नम्र कंधाकर ॥ ६ ॥ वेदोक्त स्तवसे धर्मराजको प्रसन्न करने लगी सावित्री बोली पहले पुष्करमें सूर्य देवने तपसे धर्मकी आराधना कर ॥ ७ ॥ धर्मराजनामक पुत्रको प्राप्त किया जिस सर्वसाक्षीकी सब भूतोंमें समानता है उस धर्मराजको प्रणाम करती हूं ॥ ८ ॥ इससे जिनका नाम शमन है इस कारण उसको प्रणाम करती हूं जिन्होंने सम्पूर्ण प्राणधारियोंका अंत किया है ॥ ९ ॥

जो समयपर कामानुरूप हरण करता है उसको मैं प्रणाम करती हूं जो पापियोंकी शुद्धिके हेतु दंड धारण करते हैं ॥ १० ॥ उन सब जीवोंके शास्ता दंड धरको प्रणाम करती हूं जो निरंतर सब विश्वका कलन करता है ॥ ११ ॥ जो अतीवदुर्निवार है उस कालको प्रणाम करती हूं जो तपस्वी ब्रह्मनिष्ठ संयमी जितेन्द्रिय हैं ॥ १२ ॥ जीवोंके कर्म फलदाता यमको प्रणाम करती हूं जो स्वात्मारास सर्वज्ञ पुण्य कर्मके करनेवालोंके मित्र हैं ॥ १३ ॥ तथा पापियोंके क्लेश देनेवाले पुण्यके मित्रको मैं प्रणाम करती हूं. जिनका जन्म ब्रह्मके अंशसे तेजसे प्रज्वलित है ॥ १४ ॥ जो परब्रह्मका ध्यान करने वाले हैं उन ईशको मैं प्रणाम करती हूं, हे मुने ! ऐसा कह सावित्रीने यमको प्राणम किया ॥ १५ ॥ तब यमने उनको शक्तिका भजन और कर्मविपाक वर्णन किया जो

कामानुरूपं कालेन तं कृतांतं नमाम्यहम् ॥ बिभर्ति दंडं दंडाय पापिनां शुद्धिहेतवे ॥ १० ॥ नमामि तं दंडधरं यः शास्ता सर्वजीविनाम् ॥ विश्वं च कलयत्येव यः सर्वेषु च संततम् ॥ ११ ॥ अतीव दुर्निवार्यं च तं कालं च प्रणमाम्यहम् ॥ तपस्वी ब्रह्मनिष्ठो यः संयमी संजितेंद्रियः ॥ १२ ॥ जीवानां कर्मफल दस्तं यमं प्रणमाम्यहम् ॥ स्वात्मारामश्च सर्वज्ञो मित्रं पुण्यकृतां भवेत् ॥ १३ ॥ पापिनां क्लेशदो यस्तं पुण्यमित्रं नमाम्यहम् ॥ यज्जन्म ब्रह्मणोंऽशेन ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥ १४ ॥ यो ध्यायति परं ब्रह्म तमीशं प्रणमाम्य हम् ॥ इत्युक्त्वा सा च सावित्री प्रणनाम यमं मुने ॥ १५ ॥ यमस्तां शक्तिभजनं कर्मपाक मुवाच ह ॥ इदं यमाष्टकं नित्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ १६ ॥ यमात्तस्य भयं नास्ति सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ महापापी यदि पठेन्नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥ १७ ॥ यमः करोति संशुद्धं कायव्यूहेन निश्चितम् ॥ १८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्ध एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ मायाबीजं महामन्त्रं प्रदत्त्वा विधिपूर्वकम् ॥ कर्माशुभविपाकं तमुवाच च रवेः सुतः ॥ १ ॥ धर्मराज उवाच ॥ शुभकर्मविपाकान्न नरकं याति मानवः ॥ कर्माशुभविपाकं च कथयामि निशामय ॥ २ ॥

प्रभात उठकर नित्य इस अष्टमको पढते हैं ॥ १६ ॥ उनको यमराजका भय नहीं होता वह सब पापोंसे छूट जाते हैं महापापी भी यदि नित्य भक्तिसे पढे तो ॥ १७ ॥ निश्चय उसको यमराज कायव्यूहसे शुद्ध कर देते हैं ॥ १८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ श्रीनारायण बोले विधिपूर्वक मायाबीज महामंत्रको देकर अशुभ कर्मके विपाकको यमराज कहने लगे ॥ १ ॥ धर्मराज बोले शुभकर्मके विपाकसे यह मनुष्य नरकको नहीं जाता है अब अशुभ कर्मका विपाक कहता हूं सुनो ॥ २ ॥

हे भामिनि ! अनेक पुराण और नामके भेद तथा अनेक प्रकारके कर्मोंसे यह जीव विविध प्रकारके स्वर्गमें जाता है ॥ ३ ॥ शुभ कर्मके विपाकसे नरकको नहीं जाता है कुकर्मके विपाकसे अनेक प्रकारके नरकमें जाता है ॥ ४ ॥ नरकके अनेक प्रकारके कुण्ड हैं वह अनेक शास्त्रके प्रमाण और कर्म भेदसे ॥ ५ ॥ वह मनुष्योंके क्लेश देनेवाले गर्त दुःखियोंको क्लेशदनेको विस्तृत हुए हैं भयंकर घोर और बड़े कुत्सित हैं ॥ ६ ॥ इसी प्रकार ८६ कुंड हैं वेद प्रसिद्ध उनके नाम सुनो ॥ ७ ॥ वह्निकुंड, तप्तकुंड, भयानक क्षारकुंड, विष्ठाकुंड, मूत्रकुंड, श्लेष्माकुंड, बड़ा दुःसह ॥ ८ ॥ गरकुंड दूषिकुंड, वसाकुंड, शुक्रकुंड, रुधिरकुंड,

नाना पुराणभेदेन नामभेदेन भामिनि ॥ नानाप्रकारं स्वर्गं च याति जीवः स्वकर्मभिः ॥ ३ ॥ शुभकर्मविपाकान्न नरकं याति कर्मभिः ॥ कुकर्मणनरकं याति नानाविधं नरः ॥ ४ ॥ नरकाणां च कुण्डा निसंति नानाविधानानि च ॥ नानाशास्त्रप्रमाणेन कर्मभेदेन यानि च ॥ ५ ॥ विस्तृच तानि च गर्तानि क्लेशदानि च दुःखिनाम् ॥ भयंकराणि घोराणि हे वत्से कुत्सितानि च ॥ ६ ॥ षडशीति च कुंडानि एवमन्यानि संति च ॥ निबोध तेषां नामानि प्रसिद्धानि श्रुतौ सति ॥ ७ ॥ वह्निकुण्डं तप्तकुण्डं क्षारकुण्डं भयानकम् ॥ विट्कुण्डं मूत्रकुण्डं च श्लेष्मकुण्डं च दुःसहम् ॥ ८ ॥ गरकुण्डं दूषिकुण्डं वासकुण्डं तथैव च ॥ शुक्रकुण्डमसृक्कुण्डमश्रुकुण्डं च कुत्सितम् ॥ ९ ॥ कुण्डं गात्रमलानां च कर्णविट्कुंडमेव च ॥ मज्जाकुंडं मांसकुण्डं नक्रकुण्डं च दुस्तरम् ॥ १० ॥ लोमकुंडं केश कुण्डमस्थिकुंडं च दुस्तरम् ॥ ताम्रकुण्डं लोहकुण्डं प्रतप्तं क्लेशदं महत् ॥ ११ ॥ चर्मकुण्डं तप्तसुराकुण्डं च परिकीर्तितम् ॥ तीक्ष्णं कण्टककुंडं च विषोदं विषकुण्डकम् ॥ १२ ॥ प्रतप्तकुण्डं तैलस्य कुन्तकुण्डं च दुर्वहम् ॥ कृमिकुण्डं पूयकूण्डं सर्पकुण्डं दुरंतकम् ॥ १३ ॥ मशकुण्डं दंशकुण्डं भीमं गरलकुण्डकम् ॥ कुण्डं च वज्रदंष्ट्राणां वृश्चिकानां च सुव्रते ॥ १४ ॥ शरकुण्डं शूलकुण्डं खड्गकुण्डं च भीषणम् ॥ गोलकुण्डं नक्रकुण्डं काककुण्डं शुचास्पदम् ॥ १५ ॥

कुत्सित अश्रुकुंड ॥ ९ ॥ शरीरके मलोंका कुंड, कर्णविट्कुंड, मज्जाकुंड,मांसकुंड, दुस्तर नक्रकुंड ॥ १० ॥ लोमकुंड, केशकुंड, दुस्तर अस्तिकुंड, ताम्रकुंड, लोहकुंड, तप्तकुंड, बड़ाक्लेश देनेवाला है ॥ ११ ॥ चर्मकुंड तप्तसुराकुंड; तीक्ष्णकंटककुंड, विषोदककुंड, विषकुंड, ॥ १२ ॥ तप्ततैलकुंड, दुर्वह अनेक प्रकारके, तुंडकुंड, कृमिकुंड, पूयकुंड दुरन्त सर्पकुंड ॥ १३ ॥ मण्डककुंड, दंशकुंड, भीष्मकुंड, गरलकुंड, वज्रदंष्ट्रकुंड वृश्चिककुंड ॥ १४ ॥ शरकुंड, शूलकुंड, खड्गकुंड, गोलकुंड, नक्रकुंड, काककुंड, शोकका स्थान ॥ १५ ॥

मंथान जीवोंके कुंड, बीज नामक जीवोंके कुंड, दुस्सह वज्रकुंड, तप्त पाषाणकुंड, तीक्ष्ण पाषाणकुंड ॥ १६ ॥ लालाकुंड, मसीकुंड, चूर्णकुंड, चक्रकुंड, वक्र कुंड, बड़ा विकट कूर्मकुंड ॥ १७ ॥ ज्वालाकुंड भस्मकुंड, दग्धकुंड, तप्तसूची असिपत्र क्षुरधार, सूचीमुख ॥ १८ ॥ गोकामुख नक्रकुंड, गजदंश, गोमुख, कुंभीपाक कालसूत्र, मत्स्योद, कृमिकंतुक, ॥ १९ ॥ पांसुभोज, पाशोंसे वेष्टित, शूलप्रोत, प्रकंपन, उल्कामुख, अंधकूप, वेधन, ताडन ॥ २० ॥ जालरंध्र, देहचूर्ण, दलन, शोषण, कशाघात, शूर्पज्वालामुख, धूमांध, नागवेष्टन ॥ २१ ॥ हे सावित्री ! यह सब कुण्ड पापियोंको क्लेश देनेवाले हैं लक्षों किंकर गण

मंथानकुण्डं बीजकुण्डं वज्रकुण्डं च च दुःसहम् ॥ तप्तपाषाणकुण्डं च तीक्ष्णपाषाणकुण्डकम् ॥ १६ ॥ लालाकुंडं मसीकुण्डं चूर्णकुण्डं तथैव च ॥ चक्रकुण्डं वक्रकुण्डं कूर्मकुण्डं महोल्वणम् ॥ १७ ॥ ज्वालाकुण्डं भस्मकुण्डं दग्धकुण्डं शुचिस्मिते ॥ तप्तसूचीमसिपत्रं क्षुरधारं सूचीमुखम् ॥ १८ ॥ गोकामुखं नक्रमुखं गजदंशं च गोमुखम् ॥ कुम्भीपाकं कालसूत्रं मत्स्योदं कृमिकंतुकम् ॥ १९ ॥ पांसुभोज्यं पाशवेष्टं शूलप्रोतं प्रकंपनम् ॥ उल्कामुखमंधकूपं वेधनं ताडनं तथा ॥ २० ॥ जालरंध्रं देहचूर्णं दलनं पोषणं कषम् ॥ शूर्पज्वालामुखं चैव धूमांधं नागवेष्टनम् ॥ २१ ॥ कुण्डा न्येतानि सावित्रि पापिनां क्लेशदानि च ॥ नियुतैः किंनरगणै रक्षितानि च संततम् ॥ २२ ॥ दंडहस्तैः पाशहस्तैर्मदमत्तैर्भयंकरैः ॥ शक्तिहस्तैर्गदाहस्तैरसिहस्तैः सुदारुणैः ॥ २३ ॥ तमोयुक्तैर्दयाही नैर्निवार्यैश्च न सर्वतः ॥ तेजस्विभिश्च निःशंकैराताम्रपिंगलोचनैः ॥ २४ ॥ योगयुक्तैः सिद्धियुक्तैर्नानारूपधरैर्भटैः ॥ आसन्नमृत्युभिर्दृष्टै पापिभिः सर्वजीविभिः ॥ २५ ॥ स्वकर्मनिरतैः सर्वैः शाक्तैः सौरैश्च गाणपैः ॥ आदृश्यैः पुण्यकृद्भिश्चसिद्धैर्योगिभिरेव च ॥ २६ ॥ स्वधमनिरतैर्वाऽपि विततैर्वा स्वतंत्रकैः ॥ बलवद्भिश्च निःशंकैः स्वप्नदृष्टैश्च वष्णवैः ॥ २७ ॥

इनकी रक्षा करते हैं ॥ २२ ॥ दण्ड पाश हाथमें लिये मदमत्त भयंकर शक्ति गदा दारुण असि हाथमें लिये ॥ २३ ॥ तमयुक्त दयाहीन अनिवार्य तेजस्वी निश्शंक ताम्रपिंगल लोचनवाले ॥ २४ ॥ कोई योगयुक्त कोई सिद्धियुक्त नानारूपधारी भट हैं यह जिनकी मृत्यु निकट है उन पापियोंको दीखनेवाले हैं ॥ २५ ॥ और जो अपने कर्ममें निरत सब शाक्त सौर गाणपत्य सिद्ध योगी पुण्यात्मा हैं उनको नहीं दीखनेवाले हैं ॥ २६ ॥ अपने धर्ममें श्रेष्ठ ज्ञानवाले वा स्वतंत्र मानसिक बलवान् निश्शंक वैष्णव ज्ञानियोंको देवभावापन्न होनेसे दूत स्वप्नमें दीखें तो दीखे नहीं तो उनकी नहीं दीखते उन देवरूप

पुरुषोंसे यमदूत अदृश्य हैं हे साध्वी ! यह तुमसे कुंडसंख्या निरूपणकी जिनका निवास जिस कुंडमें है वह समझो मैं तुमसे कहता हूं ॥ २७ ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ धर्मराज बोले हरिसेवामें निरत शुद्ध, योगसिद्ध, व्रती, तपस्वी, ब्रह्मचारी इनमें कोई नरकको नहीं जाता ॥ १ ॥ जो बलके विद्याधनके घमंडसे कटुवचन बोलकर अपने बंधु आदिको दग्ध करता है वह वह्निकुंडमें जाता है ॥ २ ॥ वह अपने शरीरके लोमप्रमाण वर्षतक हुताशनमें स्थित हो पीछे छायारहित वनमें पशुयोनिको तीन जन्मतक प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ कोई ब्राह्मण अपने

एतत्ते कथितं साध्वि कुडसंख्यानिरूपणम् ॥ येषां निवासो यत्कुण्डे निबोध कथयामि ते ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे सावित्र्युपाख्याने द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ धर्मराज उवाच ॥ हरिसेवारतः शुद्धो योगसिद्धि व्रती सति ॥ तपस्वी ब्रह्मचारी च न याति नरकं ध्रुवम् ॥ १ ॥ कटुवाचा बांधवांश्च वललेपेन यो नरः ॥ दग्धान्करोति बलवान्वह्नि कुंडं प्रयाति सः ॥ २ ॥ स्वगात्रलोममानाब्दं तत्र स्थित्वा हुताशने ॥ पशुयोनिमवाप्नोति नौद्रदग्धां त्रिजन्मनि ॥ ३ ॥ ब्राह्मणं तृषितं तप्तं क्षुधितं गृहमागतम् ॥ न भोजयति यो मूढस्तप्तकुंडं प्रयाति सः ॥ ४ ॥ तत्र तल्लोममानं च वर्षं स्थित्वा च दुःखदे ॥ तप्तस्थले वह्नितल्पे पक्षी च सप्तजन्मसु ॥ ५ ॥ रविवारे च संक्रांत्याममायां श्राद्धवासरे ॥ वस्त्राणां क्षारसंयोगं करोति केवलं नरः ॥ ६ ॥ स यातिक्षारकुंडं च सूत्रमानाब्दमेव च ॥ स व्रजेद्रजकीं योनिं सप्तजन्मसु भारते ॥ ७ ॥ मूलप्रकृति निंदां यः कुरुते मानवाधमः ॥ वेद निंदां शास्त्रनिंदां पुराणानां तथैव च ॥ ८ ॥ ब्रह्माविष्णुशिवादीनां तथा निंदां परो जनः ॥ गौरीवाण्यादी देवीनांतथा निंदापरो जनः ॥ ९ ॥

यहां भूंखा प्यासा आगया हो उसको जो मूढ भोजन नहीं कराता वह तप्तकुण्डको जाता है ॥ ४ ॥ वहां उसके लोमप्रमाण वर्षतक तप्तकुंडमें निवास कर फिर कहीं तप्तस्थल वह्नितल्पमें सातजन्म पक्षी होता है ॥ ५ ॥ रविवार संक्रांति अमावस श्राद्धदिवसमें जो वस्त्रोंमें खार लगाता है ॥ ६ ॥ वह उसके सूत्र प्रमाण वर्ष तक क्षार कुण्डमें जाता है और सात जन्मतक वह भारतमें धोबीकी योनिको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ जो मनुष्याधम मूल प्रकृतिकी निंदा करे है तथा वेद शास्त्र पुराणकी निंदा करते हैं ॥ ८ ॥ जो ब्रह्मा विष्णु शिवादिकी निंदा करते हैं तथा गौरी वाणी आदि देवताओंकी निंदा करते हैं ॥ ९ ॥

वे उस भयानक कुण्डमें सब जाते हैं इससे अधिक दुःखदायक और कोई कुण्ड नहीं है ॥ १० ॥ उसमें अनेक कल्प निवास कर फिर यह प्राणी सर्पयोनिमें जाता है देवी निंदाके अपराधका प्रायश्चित्त नही है ॥ ११ ॥ जो स्वयं वा दूसरेकी दी हुई सुरविप्रकी वृत्तिको हरण करते हैं वह साठ सहस्र वर्षतक विष्ठाके कुण्डमें गमन करते हैं ॥ १२ ॥ और साठ सहस्र वर्षतक वहां विष्ठा भोजन करता है फिर इतनेही समयतक भूमिमें आकर विष्ठाका कृमि होता है ॥ १३ ॥ जो दूसरेके सरोवरमें उनकी आज्ञाके विना स्वयं तडाग करते हैं तथा मूत्र करते हैं तो ये मूत्रकुण्डको गमन करते हैं ॥ १४ ॥ उसके रेणुमान वर्षतक मूत्र पान करता वहां स्थित रहता है फिर वहांसे आकर पूर्ण सौ वर्ष भारतमें वृष होता है ॥ १५ ॥ जो इकलाही मीठा खाता है वह श्लेष्म कुंडमें गमन करता

ते सर्वे निरये यांति तस्मिन्कुंडे भयानके ॥ नातः परतरं कुडं दुःखदं तु भविष्यति ॥ १० ॥ तत्र स्थित्वाऽनेककल्पं सर्पयोनिं व्रजेत्पुनः ॥ देवीनिंदापराधस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ११ ॥ स्वदत्तां पर दत्तां वा वृत्तिं च सुरविप्रयोः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कुंडं च प्रयाति सः ॥ १२ ॥ तावंत्येव च वर्षाणि विड्भोजी तत्र तिष्ठति षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च पुनर्भुवि ॥ १३ ॥ परकीयतडागे च तडागं यः करोति च ॥ उत्सृजेद्दैवदोषेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः ॥ १४ ॥ तद्रेणु मानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ पुनः पूर्णशताब्दं च स वृषो भारते भवेत् ॥ १५ ॥ एकाकी मिष्टमश्नाति श्लेष्मकुण्डं प्रयाति च ॥ पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ १६ ॥ ततः पूर्णशताब्दं च स प्रतो भारते भवेत् ॥ श्लेष्ममूत्रपरं चैव पूयं भुंक्ते ततः शुचिः ॥ १७ ॥ पितरं मातरं चैव गुरुं भार्यां सुतं सुताम् ॥ यो न पूष्णात्यनाथं च गरकुण्डं प्रयाति सः ॥ १८ ॥ पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ततो व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वाऽतिथिं वक्रचक्षुः करोति यो हि मानवः ॥ पितृदेवास्तस्य जलं न गृह्णन्ति च पापिनः ॥ २० ॥

है और सौ वर्षतक वहां उसको भोजन करता स्थित रहता है ॥ १६ ॥ फिर भारतमें आकर सौ वर्षतक प्रेत होता है यहां भी वह श्लेष्मा मूत्र पूय भोजन करने उपरांत शुद्ध होता है ॥ १७ ॥ माता, पिता, गुरु, भार्या, सुत, कन्या, तथा अनाथोंका जो पालन नहीं करता, वह विषकुण्डमें गमन करता है ॥ १८ ॥ और सौ वर्षतक वहां उसे यही भोजनकरनेको प्राप्त होता है फिर भूतयोनिको प्राप्त हो सौ वर्षमें पवित्र होता है ॥ १९ ॥ जो मनुष्य अतिथिको देखकर कुटिलनेत्र करते हैं उस पापीका जल पितृदेव ग्रहण नहीं करते ॥ २० ॥

और भी जो ब्रह्महत्यादि पाप है वह यही प्राप्त होकर अन्तमें दूषिकाकुण्डको गमन करता है ॥ २१ ॥ वहां यही भोजन करता सौ वर्षतक निवास करता है फिर सौ वर्षतक भूतयोनिको प्राप्त होकर सौवर्षमें पवित्र होता है ॥ २२ ॥ ब्राह्मणको देनेको कहा द्रव्य यदि और को दिया जाय तो वह वसाकुंडमें जाय वहां सौवर्षतक वही भोजन करते हैं ॥ २३ ॥ वह सात जन्ममें गिरगट होता है फिर यहां आकर महादरिद्री अल्पायु होता है ॥ २४ ॥ पुरुषको कामिनी वा कामिनीको पुरुष जो अपना वीर्यपान कराते हैं वह वीर्यके कुंडमें जाते हैं ॥ २५ ॥ और सौ वर्षतक यही भोजन करते वहां रहते हैं फिर सौ जन्म कृमिकोपाकर शुचि होता है ॥ २६ ॥ जो गुरु या ब्राह्मणको ताडनकर उनका रक्त भूमिपर गिराता है वह सौ वर्ष रक्तके कुंडमें स्थित हो उसीको भोजन करता है ॥ २७ ॥ फिर

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ इहैव लभते चांते दूषिकाकुंडमाव्रजेत् ॥ २१ ॥ पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति ततो ॥ व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः ॥ २२ ॥ दत्त्वा द्रव्यं च विप्राय चान्यस्मै दीयते यदि ॥ स तिष्ठति वसाकुण्डं तद्भोजी शतवत्सरम् ॥ २३ ॥ कृकलासो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु ॥ ततो भवेन्महारौद्रो दरिद्रोऽल्पायुरेव च ॥ २४ ॥ पुमांसं कामिनी वाऽपि कामिनीं वा पुमानथ ॥ यः शुक्रं पाययत्येव शुक्रकुंडं प्रयाति सः ॥ २५ ॥ पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ कृमियोनिं शताब्दं च व्रजेद्भूत्वा ततः शुचिः ॥ २६ ॥ संताड्य च गुरुं विप्रं रक्तपातं च कारयेत् ॥ स च तिष्ठत्यसृक्कुंडे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥ २७ ॥ ततो लभेद्व्याघ्रजन्म सप्तजन्मसु भारते ॥ ततः शुद्धिमवाप्नोति मानवश्च क्रमेण ह ॥ २८ ॥ योऽश्रु तत्याज गायंतं भक्तं दृष्ट्वा सगद्गद ॥ श्रीकृष्णगुणसंगीते हसत्येव हि यो नरः ॥ २९ ॥ स वसेदश्रुकुंडे च तद्भोजी शतवर्षकम् ॥ ततो भवेच्च चंडालस्त्रिजन्मनि ततः ॥ ३० ॥ करोति शठतां तद्वन्नित्यं सुहृदि यो नरः ॥ कुंडं गात्रमलानां च स प्रयाति शताब्दकम् ॥ ३१ ॥ ततः स गार्दभीं योनिमवाप्नोति त्रिजन्मनि ॥ त्रिजन्मनि च सार्गालीं ततः शुद्धो भवेद् ध्रुवम् ॥ ३२ ॥

भारतमें आय सात जन्म व्याघ्र होता है फिर क्रमसे शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ जो कोई अश्रुत्यागकर गद्गद हो गाते हुए भक्त वा श्रीकृष्णके गुण संगीत पर हास्य करता है ॥ २९ ॥ वह सौवर्षतक अश्रुकुण्डमें उन्हींको भोजन करता स्थित रहता है फिर तीन जन्म चांडाल होकर शुचि होता है ॥ ३० ॥ जो मनुष्य अपने सुहृदोंमें नित्य शठता करता है वह सौ वर्षतक शरीरके मलोंके कुण्डमें निवास करता है ॥ ३१ ॥ फिर वह तीन जन्म गधा होता है तीन जन्म शृगाल होकर शुद्ध होता है ॥ ३२ ॥

जो बहरेके ऊपर हँसकर अभिमानसे उसकी निंदा करता है वह सौवर्षतक कर्णविट्में निवास कर उसीको भोगता है ॥ ३३ ॥ फिर वह बहरा होकर सात जन्मतक दरिद्री होता है फिर सात जन्म अङ्गहीन होकर शुद्ध होता है ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य लोभसे अपनी उदरपूर्तिके निमित्त जीवघात करते हैं वह मज्ज्जाकुण्डमें निवास कर सौ वर्ष उसीको खाते हैं ॥ ३५ ॥ फिर खरगोश और सात जन्म मछली होता है तीन जन्म वराह और सात जन्म कुक्कुट होता है ॥ ३६ ॥ फिर कर्मसे मृगादि होकर फिर शुद्ध होता है जो मनुष्य अपनी कन्याका पालनकर बेचता है ॥ ३७ ॥ वह महामूढ़ अर्थके लोभसे मांस कुंडको गमन करता है और कन्याके लोकप्रमाण वर्ष वहां रहकर वह खाता हुआ वहां निवास करता है ॥ ३८ ॥ यमकिंकर उसपर महादंडका प्रहार करते

बधिरं यो हसत्येव निंदत्येवाभि मानतः ॥ स वसेत्कर्ण विट्कुंडे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥ ३३ ॥ ततो भवेत्स बधिरो दरिद्रः सप्त जन्मसु ॥ सप्तजन्मन्यंगहीनस्ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥ ३४ ॥ लोभात्स्वभरणार्थाय जीविनं हंति यो नरः ॥ मज्जाकुंडे वसेत्सोऽपि तद्भोजी लक्षवत्सरम् ॥ ३५ ॥ ततोभवच्च शशको मीनश्च सप्तजन्मसु ॥ त्रिजन्मानि वराहश्च कुक्कुटः सप्तजन्मसु ॥ ३६ ॥ एणादयश्च कमभ्यस्ततः शुद्धिं लभेदू ध्रुवम्॥स्वकन्यापालनं कृत्वाविक्रीणाति च यो नरः ॥ ३७ ॥ अर्थलोभान्महामूढो मांसकुंडं प्रयाति सः ॥ कन्यालोमप्रमाणाब्दं तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ३८ ॥ तस्य दंडप्रहारं च कुर्वंति यमकिंकराः ॥ मांसभारं मूर्ध्नि कृत्वा रक्तभारं लिहेत्क्षुधा ॥ ३९ ॥ ततोहि भारते पापी कन्याविट्कृमिगो भवेत् ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि व्याधश्च सप्तजन्मसु ॥ ४० ॥ त्रिजन्मनि वराहश्च कुक्कुटः सप्तजन्मसु ॥ मंडूको हि जलोकाश्च सप्तजन्मसु भारते ॥ ४१ ॥ सप्तजन्मसु काकाश्चततः शुद्धिं लभेद् ध्रुवम् ॥ व्रतानामुपवासानां श्राद्धादीनां च संगमे ॥ ४२ ॥ करोति यः क्षौरकर्म सोऽशुचिः सर्वकर्मसु ॥ स च तिष्ठति कुंडं च नखादीनां च सुंदरि ॥ ४३ ॥

हैं मांसभार शिरपर कराकर जिह्वासे रक्त चटवाते हैं ॥ ३९ ॥ फिर वह पापी भारतमें आय विष्ठा कीट तथा अन्य कीटादिमें जन्मलेता है साठसहस्र वर्ष यह योनि भोगकर सात जन्मतक व्याध होता है ॥ ४० ॥ तीन जन्ममें वराह सातजन्ममें कुक्कुट और सातजन्म भारतमें मण्डूक और जलौका होता है ॥ ४१ ॥ फिर सातजन्म काक होकर पश्चात् शुद्ध होता है व्रत उपवास और श्राद्धादिके समागममें ॥ ४२ ॥ जो क्षौर कराता है वह सब कर्ममें अशुचि होता है. हे सुन्दरी ! वह नखादिके कुंडमें पड़ता है ॥ ४३ ॥

और देवताओंके एकवर्ष पर्यन्त वही भोजन करता वहां स्थित रहता है जो भारतमें सकेश पार्थिवलिंगका पूजन करता है ॥ ४४ ॥ वह मृद्रेणुवर्ष परिमाण वर्षतक केशकुंडमें निवास करता है फिर हरके कोपसे यवनयोनिको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ सौवर्षमें शुद्धिको प्राप्त होकर राक्षस होता है जो गयामें पितरोंके निमित्त पिंड नहीं देता है ॥४६॥ वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक महाभयंकर अस्थिकुण्डमें निवास करता है फिर सुयोनिको प्राप्त होकर सातजन्ममें कुखंजा होता है ॥ ४७ ॥ फिर महा दरिद्री हो देहसे शुद्ध हो जाता है जो महामूढ गर्भवती अपनी कामिनीकी मैथुन सेवा करता है ॥ ४८ ॥ वह प्रतप्त ताम्रकुंडमें सौवर्ष निवास करता है जो अवीरा और ऋतुस्नाताका अन्न खाता है ॥ ४९ ॥ वह सातजन्म तप्तलोह कुंडमें निवास करता है वह रजकयोनिमें और

तद्देवदिनमानाब्दं तद्भोजी दंडताडितः ॥ सकेशं पार्थिवं लिंगं यो वाऽर्चयति भारते ॥ ४४ ॥ स तिष्ठति केशकुंडे मृद्रेणुमानवर्षकम् ॥ तदंते यावनीं योनिं प्रयाति हरकोपतः ॥ ४५ ॥ शताब्दाच्छुद्धिमाप्नोति राक्षसः स भवेद्ध्रुवम् ॥ पितॄणां यो विष्णुपदे पिंडं नैव ददाति च ॥ ४६ ॥ स च तिष्ठत्यस्थि कुण्डे स्वलोमाब्दं महोल्वणे ॥ ततः सुयोनिं संप्राप्य कुखंजः सप्तजन्मसु ॥ ४७ ॥ भवेन्महा दरिद्रश्च ततः शुद्धो हि देहतः ॥ यः सेवते महामूढो गुर्विणीं च स्वकामिनीम् ॥ ४८ ॥ प्रतप्ते ताम्रकुंडे च शतवर्षं स तिष्ठति ॥ अवी रान्नं च यो भुंक्ते ऋतुस्नातान्नमेव च ॥ ४९ ॥ लोहकुंडे शताब्दं च स च तिष्ठति तप्तके ॥ स व्रजेद्रजकीं योनिं काकानां सप्तजन्मसु ॥ ५० ॥ महाव्रणी दरिद्रश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ यो हि चर्माक्तहस्तेन देवद्रव्यमुपस्पृशेत् ॥ ५१ ॥ शतवर्षप्रमाणं च चर्मकुण्डे स तिष्ठति ॥ यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातो भुंक्ते शूद्रान्नमेव च ॥ ५२ ॥ स च तप्तसुराकुण्डे शताब्दं तिष्ठति द्विजः ॥ ततो भवेच्छूद्रयाजी ब्राह्मणः सप्तजन्मसु ॥ ५३ ॥ शूद्रश्राद्धान्नभोजी च ततः शुद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥ वाग्दुष्टः कटुको वाचा ताडयेत्स्वामिनं सदा ॥ ५४ ॥ तीक्ष्णकंटककुण्डे स तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ताडितो यमदूतेन दण्डेन च चतुर्गुणम् ॥ ५५ ॥

सातजन्म काकयोनिमें निवास करता है ॥ ५० ॥ फिर वह मनुष्य महाव्रणी दरिद्री और शुद्ध होता है जो चर्मके हाथसे देवद्रव्यको स्पर्श करता है ॥ ५१ ॥ वह सौवर्षतक चर्मके कुंडमें निवास करता है जो शूद्रकी आज्ञासे शूद्रका अन्न खाता है ॥ ५२ ॥ वह द्विज सुराकुंडमें सौवर्ष निवास करता है फिर सात जन्म तक वह ब्राह्मण शूद्रयाजी होता है ॥ ५३ ॥ फिर शूद्रके श्राद्धका अन्न भोगकर पश्चात् शुद्ध होता है जो वाग्दुष्ट कडवाणीसे सदा स्वामीको त्यागन करता है ॥ ५४ ॥ वह तीक्ष्णकंटकके कुंडमें उसीको खाता सदा निवास करता है और यमदूत अपने दण्डसे उसे चौगुना दंड देते हैं ॥ ५५ ॥

फिर सात जन्ममें उच्चैश्रवा होकर पवित्र होता है जो मनुष्य निर्दयी होकर विषसे किसीका जीवन हरते हैं ॥ ५६ ॥ वह सहस्रवर्ष उसीको खाते सहस्रवर्षतक रहते हैं फिर मनुष्यघाती और व्रणी सात जन्मतक होते हैं ॥ ५७ ॥ फिर सातजन्ममें कुष्ठी होकर शुद्ध होते हैं जो वृषवाहक दंडसे वृष और गौकी ताडना करता है ॥ ५८ ॥ अथवा भृत्युद्वारा ताडन करता वा स्वतंत्र ताडन करता है वह चारयुगतक तप्तलोकके कुंडमें निवास करता है ॥ ५९ ॥ इस प्रकार गौओंके लोमप्रमाण वर्षतक वहां रह कर फिर वृष होता है जो कुंत बरछी वा लोहको लालकर खेलसेही जीवको मारते हैं ॥ ६० ॥ वह दशसहस्र वर्षतक कुन्तके कुंडमें निवास करते हैं फिर सुयोनिको प्राप्त होकर उदरमें व्याधिवाले होते हैं॥ ६१ ॥ एकजन्म क्लेश पाकर फिर शुद्ध होते हैं जो द्विजाधम मांसके

तत उच्चैःश्रवाः सप्तजन्मस्वेव ततः शुचिः ॥ विषेण जीवनं हंति निर्दयो यो हि मानवः ॥ ५६ ॥ विषकुंडे च तद्भोजी सहस्राब्दं च तिष्ठंति ॥ ततोभवेन्नृपघाती च व्रणी च शतजन्मसु ॥ ५७ ॥ सप्तजन्मसु कुष्ठी च ततः शुद्धो भवेत् ध्रुवम् ॥ दण्डेन ताडयेद्गां हि वृषं च वृषवाहकः ॥ ५८ ॥ भृत्यद्वारा स्वतंत्रो वा पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ प्रतप्ते तैलकुंडेऽग्नो तिष्ठति स्म चतुर्युगम् ॥ ५९ ॥ गतां लोमप्रमाणाब्दं वृषो भवति तत्परम् ॥ कुंतेन हंति यो जीवं वह्नि लोहेन हेलया ॥ ६० ॥ कुंतकुंडे वसेत्सोऽपि वर्षाणामयुतं सति ॥ ततः सुयोनिं संप्राप्य चोदरे व्याधिसंयुतः ॥ ६१ ॥ जन्मनैकेन क्लेशेन ततःशुद्धो भवेन्नरः ॥ यो भुंक्ते च वृथा मांसं मांसलोभी द्विजाधमः ॥ ६२ ॥ हरेरनैवेद्यभोजी कृमिकुंडं प्रयाति सः ॥ स्वलोममानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ६३ ॥ ततो भवेन्म्लेच्छजातिस्त्रिजन्मनि ततो द्विजः ॥ ब्राह्मणः शूद्रयाजी च शूद्रश्राद्धान्नभोजकः ॥ ६४ ॥ शूद्राणां शवदाही च पूयकुण्डे वसेद् ध्रुवम् ॥ यावल्लोमप्रमाणाब्दं यमदंडेन सुव्रते ॥६५॥ ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ततो भारतमागत्य स शूद्रः सप्तजन्मसु ॥६६॥

लोभसे वृथा मांस खाता है ॥ ६२ ॥ हरिको विना भोग लगाये नैवेद्य भोग लगाता है वह कृमिकुंडमें गमन करता है और अपने लोमप्रमाण वर्षतक वहां निवास करता है ॥ ६३ ॥ फिर तीन जन्मतक म्लेच्छजातिमें रहकर ब्राह्मण होता है जो ब्राह्मण शूद्रयाजी और शूद्रका अन्न खानेवाला है ॥ ६४ ॥ जो शूद्रोंके शवदाह करता है वह पूयकुंडमें निवास करता है हे सुव्रते ! वह लोमप्रमाण वर्षोंतक यमदंडसे ॥ ६५ ॥ यमदूतोंद्वारा ताडित होकर वहां निवास करता है फिर भारतमें आय सातजन्म तक शूद्र होता है ॥ ६६ ॥

महारोगी दरिद्री बधिर मूक होता है कृष्ण सर्प वा जिसके मस्तकमें पद्माकार चिह्न होता है उस सर्पको जो मनुष्य मारता है ॥ ६७ ॥ वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक सर्पकुंडमें गमन करता है वह सर्पोंसे भक्षित हो यमदूतोंसे ताडित होता है ॥ ६८ ॥ और सर्पोंकी विष्ठा खाता हुआ निवास करता है पीछे सर्पही होता है फिर वह मनुष्य स्वल्पायु दादोंसे संयुक्त होता है ॥ ६९ ॥ फिर सर्पसे भक्षित होनेसे महाक्लेशसे उसकी मृत्यु होती है और विधिकी दी हुई जीविकासे जो क्षुद्रजंतुओंको मारता है ॥ ७० ॥ वह जंतुप्रमाण वर्षतक दंशमशकके कुंडमें निवास करता है और रातदिन यही जीव उसको भक्षण करते हैं जिससे वह अनाहार होकर शब्द करता है ॥ ७१ ॥ हाथपर विद्धहुए यमदूतोंसे ताडित हुआ रहता है फिर यहां आकर क्षुद्रजन्तु होकर पीछे यावनी जाति होता है

महारोगी दरिद्रश्च बधिरो मूक एव च ॥ कृष्णं पद्मं च के यस्य तं सर्पं हंति यो नरः ॥ ६७ ॥ स्वलोममानवर्षं च सर्पकुंडं प्रयाति सः ॥ सर्वेण भक्षितः सोऽथ यमदूतेन ताडितः ॥ ६८ ॥ वसेच्च सर्वविड्भोजी ततः सर्पो भवेद् ध्रुवम् ॥ ततो भवेन्मानवश्च स्वल्पायु र्दद्रुसंयुतः ॥ ६९ ॥ महाक्लेशेन तन्मृत्युः सर्वेण भक्षिताद् ध्रुवम् ॥ विधि प्रदत्तजीव्यांश्च क्षुद्रजतूंश्च हंति यः ॥ ७० ॥ स दंशमा शयोः कुण्डे जंतुमानाब्दमेव च ॥ दिवानिशं भक्षितस्तैरनाहारश्च शब्दवान् ॥ ७१ ॥ हस्तपादादिबद्धश्च यमदूतेन ताडितः ॥ ततो भवेत्क्षुद्रजंतुर्जातिश्च यावनी भवेत् ॥ ७२ ॥ ततो भवेन्मानवश्च सोंऽगहीनस्ततः शुचिः ॥ यो मूढो मधुमश्नाति हत्वा च मधुम क्षिकाः ॥ ७३ ॥ स एव गारले कुण्डे जीवमानाब्दकं वसेत् ॥ भक्षितो गरलैर्दग्धो यमदूतेन ताडितः ॥ ७४ ॥ ततोहि मक्षिकाजा तिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ दंडं करोत्यदंडचे च विप्रे दंडं करोति च ॥ ७५ ॥ स कुण्डं वज्रदंष्ट्राणां कीटानां याति सत्वरम् ॥ स तल्लो मप्रमाणाब्दं तत्र तिष्ठत्यहर्निशम् ॥ ७६ ॥ शब्दकृद्भक्षितस्तैस्तु यमदूतेन ताडितः ॥ करोति रोदनं भद्रे हाहाकारं क्षणेक्षणे ॥ ७७ ॥

॥ ७२ ॥ फिर अंगहीन मनुष्य होकर पीछे शुद्ध होता है जो मूढ मधुमाखीको मारकर मधुखाता है ॥७३॥ वह विषके कुंडमें जीवोंके प्रमाणवर्षतक निवास करता है और गरलसे दग्धहो जीवोंसे दग्धहो मेरे दूतोंसे ताडित होता है ॥ ७४ ॥ फिर मक्षिकहोकर मनुष्य शुद्ध हो जाता है जो अदंडको दंड करता और ब्राह्मणको दंड देता है ॥ ७५ ॥ वह वज्रदंष्ट्रकीटोंके कुंडमें अवश्य गमन करता है और वह उसके लोकप्रमाण वर्षतक वह रातदिन रहता है ॥ ७६ ॥ बड़ा शब्द करता है जीव भक्षण करते हैं मेरे दूत उसको ताडना करते हैं हे भद्रे ! वहां वह क्षणक्षणमें हाहाकार करता रोता है ॥ ७७ ॥

फिर सातजन्म सूकर होकर तीन जन्म काक होकर शुद्ध होता है ॥ ७८ ॥ जो मूढ अर्थलोभसे प्रजाको दंड देता है वह उनके लोमप्रमाण वर्षतक विच्छुओंके कुंडमें निवास करता है ॥ ७९ ॥ फिर भारतमें सातजन्म वृश्चिक होकर फिर अंगहीन व्याधि युक्त मानव होता है ॥ ८० ॥ ब्राह्मण शस्त्रधारी जो दूसरोंका घातक होता है जो ब्राह्मण संध्याहीन हरिभक्तिरहित है ॥ ८१ ॥ वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक बाणोंके कुंडमें पड़ता है शरादिसे विद्ध होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ८२ ॥ जो अंधकारयुक्त कारागारमें प्राणी और प्रजाको मारता है वह अपने दोषसे प्रमत्त हुआ गोलकुंडमें जाता है ॥ ८३ ॥ वह

पुनः सूकरयोनौ च जायते सप्तजन्मसु ॥ त्रिजन्मनि काकयोनौ ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ ७८ ॥ अर्थलोभेन यो मूढः प्रजादण्डं करोति सः ॥ वृश्चिककानां च कुण्डं च तल्लोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥ ७९ ॥ ततो वृश्चिकजातिश्च सप्तजन्मसु भारते ॥ ततो नरश्चांग हीनो व्याधिशुद्धो भवेद् ध्रुवम् ॥ ८० ॥ ब्राह्मणः शस्त्रधारी यो ह्यन्येषां धावको भवेत् ॥ संध्याही नश्च यो विप्रो हरिभक्ति विहीनकः ॥ ८१ ॥ स तिष्ठति स्वलोमाब्दं कुण्डेषु च शरादिषु ॥ विद्धः शरादिभिः शश्वत्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ ८२ ॥ कारागारे सांधकारे प्रणिहंति प्रजाश्च यः ॥ प्रमत्तः स्वस्य दोषेण गोलकुण्डं प्रयाति सः ॥ ८३ ॥ स पंकतप्ततोयाक्तं सांधकारं भयंकरम् ॥ तीक्ष्णदंष्ट्रैश्चकीटैश्च संयुक्तं गोलकुंडकम् ॥ ८४ ॥ कीटैर्विद्धो वसेत्तत्र प्रजालोमाब्दमेव च ॥ ततो भवेत्प्रजाभृत्यस्ततः शुद्धो भवेत्क्रमात् ॥ ८५ ॥ सरो वरादुत्थितांश्च नक्रादीन्हंतियोनरः ॥ नक्रकंटकमानाब्दं नक्रकुण्डं प्रयातिसः ॥ ८६ ॥ ततो नक्रादिजातीयो भवेन्नक्रादिषु ध्रुवम् ॥ ततः सद्यो विशुद्धो हि दंडेनैव पुनः पुनः॥८७॥वक्षः श्रोणीस्तनास्यं च यः पश्यति परस्त्रियाः ॥ कामेन कामुको यो हि पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ ८८ ॥ स वसेत्काकतुण्डे च काकैः संचूर्णलोचनः ॥ ततः स्वलोममानाब्दं भवेदन्धस्त्रिजन्मनि ॥ ८९ ॥

तप्ते जलकी कीच अंधकारसे भयंकर तीक्ष्ण डाढोंवाले जीवोंसे युक्त गोलकुण्ड है ॥ ८४ ॥ वहांकीटसे विद्ध हुआ प्रजाके लोमप्रमाण वर्षतक निवास करता है फिर प्रजाका मृत्यु होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ८५ ॥ जोसरोवरसे उडते हुए नक्रादिको मारता है वह नक्रकंटकप्रमाण वर्षतक नक्रकुंडमें जाता है ॥ ८६ ॥ फिर नक्रादिमेंही अवश्य उसका जन्म होता है फिर वारंवार दंडको प्राप्त हो शुद्ध होता है ॥ ८७ ॥ जो इस पुण्यक्षेत्रमें कामी होकर कामनासे परस्त्रियोंके हृदय, स्तन, मुख, नितम्ब देखता है ॥ ८८ ॥ वह काककुण्डमें वसता है वहां कौए उसके नेत्र फोडते हैं फिर वह अपने लोमप्रमाण वर्ष वहां रहकर

तीन जन्ममें वह्निआदिसे दग्ध होता है ॥ ८९ ॥ जो भारतमें देवब्राह्मणका सुवर्ण चुराता है वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक मंथानकुंडमें पडता है ॥ ९० ॥ यमदूतोंसे ताडित हुआ मंथानसे छन्न लोचन हो वहां उसको ही विटभोजन करनेको मिलती है फिर तीन जन्म अंधा होता है ॥ ९१ ॥ फिर वह महाक्रूर पातकी सात जन्मतक दरिद्री होता है फिर वह भारतमें स्वर्णकार और स्वर्णवर्णिक होता है ॥ ९२ ॥ हे सुन्दरी ! जो भारतमें तांबा और लोहा चुराता है वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक बीजकुडमें जाता है ॥ ९३ ॥ वहां वह बीजरूप विष्ठाभोजन करनेवाला बीजसेही छन्ननेत्र हुआ यमदूतोंसे ताडित हो पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ९४ ॥ फिर भारतमें देवचोर और देवद्रव्यको हरनेवाला दुस्तर वज्रकुडमें अपने लोमप्रमाण वर्षतक निवास करता है ॥ ९५ ॥ वहां वह देहसे वज्रोंसे

स्वर्णस्तेयी च यो मूढो भारते सुरविप्रयोः ॥ स च मंथानकुंडे वै स्वलोमाब्दं वसेद् ध्रुवम् ॥ ९० ॥ ताडितो यमदूतेन मंथानैश्छन्नलोचनः ॥ तद्विड्भोजी च तत्रैव ततश्चांधस्त्रिजन्मनि ॥ ९१ ॥ सप्तजन्म दरिद्रश्च महाक्रूरश्च पातकी ॥ भारते स्वर्णकारश्च स च स्वर्णवणिक्ततः ॥ ९२ ॥ यो भारते ताम्र चौरो लोहचोरश्च सुंदरि ॥ स च स्वलोममानाब्दं बीजकुंडं प्रयाति सः ॥ ९३ ॥ तत्रैव बीजविड्भोजी बीजैश्च छन्नलोचनः ॥ ताडितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ ९४ ॥ भारते देवचौरश्च देवद्रव्यापहारकः ॥ स दुस्तरे वज्रकुण्डे स्वलोमाब्दं वसेद् ध्रुवम् ॥ ९५ ॥ देहदग्धोऽपि तद्वज्रैरनाहारश्च शब्दकृत् ॥ ताडितो यमदूतैश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ ९६ ॥ रौप्यगव्यांशुकानां च यश्चौरः सुरविप्रयोः ॥ तप्तपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेद् ध्रुवम् ॥ ९७ ॥ त्रिजन्मनि च कंसोऽपि श्वेतरूपस्त्रिजन्मनि ॥ जन्मैकं श्वेतचिह्नश्च ततोऽन्ये श्वेतपक्षिणः ॥ ९८ ॥ ततो रक्तविकारी च शूली वै मानवो भवेत् ॥ सप्तजन्मसु चाल्पायुस्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ ९९ ॥ रैतं कांस्यमयं पात्रं यो हरेद्देवविप्रयोः ॥ तीक्ष्णपाषाणकुंडे च स्वलोमाब्दं वसेन्नरः ॥ १०० ॥

दग्ध होनेपर भोजन न मिलनेसे 'हा हा' शब्द करता है यमदूतोंसे ताडित हो पीछे शुद्ध होता है ॥ ९६ ॥ जो चांदी गौओंके पदार्थ तथा सुरविप्रके पदार्थोंका चोर है वह तत्ते पाषाणकुंडमें अपने लोमप्रमाण वर्षतक वहां निवास करता है ॥ ९७ ॥ तीन जन्म कूर्म और तीन जन्म कुष्ठी होता है एक जन्ममें श्वेतचिन्हवाला फिर श्वेत पक्षी होता है ॥ ९८ ॥ फिर रक्तविकार और शूलरोग ग्रसित मनुष्य होता है फिर सात जन्म अल्पायु होकर फिर शुद्ध होता है ॥ ९९ ॥ जो देव और ब्राह्मणके पीतलकांसेके पात्र हरण करता है वह अपने लोमप्रमाण वर्षतक पाषाणकुण्डमें जाता है ॥ १०० ॥

फिर सातजन्मतक भारतमें अश्वजाति होता है फिर अधिक अंगवाला पश्चात् पादरोगी होता है ॥ १ ॥ जो पुंश्चलीका अन्न खाता है और पुंश्चलीके अन्नसे जीता है वह अपने लोमप्रमाणवर्षतक लाला (लार) कुंडमें निवास करता है ॥ २ ॥ वहां यमदूत उसको ताडनकर लारही खवाते हैं इससे वह बडा दुःखित होता है फिर शूलरोगी और पश्चात् क्रमसे शुद्ध होता है ॥ ३ ॥ जो ब्राह्मण म्लेच्छोंकी सेवा और लेखे आदि कार्य करता है वह ब्राह्मण मसीकुण्डमें पड़कर दुःखी होता है और स्वालोमप्रमाण वर्षतक वहां निवास करता है ॥ ४ ॥ यमदूत उसे मारते हैं और वह मसी भक्षण करता वहां निवास करता है, फिर तीन जन्मतक कृष्णपशु होता है ॥ ५ ॥ फिर कृष्णवर्ण छाग फिर तीन जन्ममें कृष्णवर्ण फिर तालवृक्ष और पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ६ ॥ जो देव ब्राह्मणके

स भवेदश्वजातिश्च भारते सप्तजन्मसु ॥ ततोऽधिकांगजातिश्च पादरोगी ततः शुचिः ॥ १ ॥ पुंश्चल्यन्नं च यो भुंक्ते पुंश्चलीजीव्य जीविनः ॥ स्वलोममानवर्षं च लालकुण्डे वसेद्ध्रुवम् ॥ २ ॥ ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र दुःखितः ॥ ततश्चक्षुशूलरोगी ततः शुद्धः क्रमेणः सः ॥ ३ ॥ म्लेच्छसेवी मसीजीवी यो विप्रो भारते भुवि वसेत्स्वलोममानाब्दं मसीकुंडे स दुःखभाक् ॥ ४ ॥ ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥ ततस्त्रिजन्मनि भवेत्कृष्णवर्णः पशुः सति ॥ ५ ॥ त्रिजन्मनि भवेच्छागः कृष्णवर्णस्त्रिज न्मनि ॥ ततः स तालवृक्षश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ ६ ॥ धान्यादि शस्यं तांबूलं यो हरेत्सुरविप्रयोः ॥ आसनं च तथा तल्पं चूर्णकुंडे प्रयाति सः ॥ ७ ॥ शताब्दं तत्र निवसेद्यमदूतेन ताडितः ॥ ततो भवेन्मेषजातिः कुक्कुटश्च त्रिजन्मनि ॥ ८ ॥ ततो ॥ भवेद्वानरश्च कासव्याधियुतो भुवि ॥ वंशहीनो दरिद्रश्च अल्पायुश्च ततः शुचिः ॥१०९॥ करोति चक्रं विप्राणां हृत्वा द्रव्यं च यो जनः ॥ स वसेच्च क्रकुंडे च शताब्दं दंडताडितः ॥११०॥ ततो भवेन्मानवश्च तैलकारस्त्रिजन्मनि ॥ व्याधियुक्तो भवेद्रोगी वंशहीनस्ततः शुचिः ॥११॥

धान्यादि श्रेष्ठ ताम्बूल हरण करते हैं तथा जो आसन, शय्या हरण करते हैं वह चूर्णकुण्डमें जाते हैं ॥७॥ सौ वर्षतक वहां यमदूतोंसे ताडित होकर वहां निवास करते हैं फिर वह मेषजाति और तीन जन्मतक कुक्कुट होता है ॥ ८ ॥ फिर कास व्याधिसंयुक्त भूमिमें वानर होता है फिर वंशहीन और दरिद्री होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥ ९ ॥ जो मनुष्य ब्राह्मणोंका द्रव्य हरण कर चक्रपूजा वा कुलालादि चक्र करता है वह दंडसे ताडित होकर सौ वर्षतक चक्रकुण्डमें निवास करता है ॥ १० ॥ फिर तीन जन्मतक मर्त्यलोकमें तेली होता है व्याधियुक्त रोगी वंशहीन होकर पश्चात् शुचि होता है ॥ ११ ॥

जो पुरुष गोधन और ब्राह्मणोंमें वक्रता करता है वह वक्रकुण्डमें जाकर वहां सौ युगपर्यन्त निवास करता है ॥ १२ ॥ फिर वह वक्रांग और हीनांग सात जन्ममें होता है व दरिद्र वंशहीन भार्याहीन होकर फिर शुद्ध होता है ॥ १३ ॥ फिर गृध्र और तीन जन्ममें शूकर होता है तीन जन्ममें बिडाल और तीन जन्ममें मयूर होता है ॥ १४ ॥ जो ब्राह्मण निषिद्ध कूर्ममांस भक्षण करता है सौ वर्ष कूर्मकुंडमें उसको कूर्म भक्षण करते हैं ॥ १५ ॥ फिर कूर्म जन्म और तीन जन्ममें सूकर होता है तीन जन्म बिडाल और मयूर होकर शुद्ध होता है ॥१६॥ जो देव ब्राह्मणका घी और तेल हरण करता है वह पातकी ज्वालाकुण्ड और भस्मकुण्डमें गमन करता है ॥ १७ ॥ वहां सौ वर्ष रहकर तैलपाचित होता है सात जन्ममें मत्स्य और फिर मूषक होकर पवित्र होता है ॥ १८ ॥

गोधनेषु च विप्रेषु करोति वक्रतां पुमान् ॥ प्रयाति वक्रकुण्डं स स तिष्ठेद्युगशतं सति ॥ १२ ॥ ततो भवेत्स वक्रांगो हीनांगः सप्तजन्मनि ॥ दरिद्रो वंशहीनश्च भार्याहीनस्ततः शुचिः ॥ १३ ॥ ततो भवेद्गृध्रजन्मा त्रिजन्मनि च सूकरः त्रिजन्मनि बिडालश्च मयूरश्च त्रिजन्मनि ॥ १४ ॥ निषिद्धं कूर्ममांसं च ब्राह्मणो यो हि भक्षति ॥ कूर्मकुंडे वसेत्सोऽपि शताब्दं कूर्मभक्षतः ॥ १५ ॥ ततो भवेत्कूर्मजन्मा त्रिजन्मनि च सूकरः ॥ त्रिजन्मनि बिडालश्च मयूरश्च ततः शुचिः ॥ १६ ॥ घृतं तैलादिकं चैव यो हरेत्सुरविप्रयोः ॥ स याति ज्वालाकुंडं च भस्मकुंडं च पातकी ॥ १७ ॥ तत्र स्थित्वा शताब्दं च स भवेत्तैलपाचितः ॥ सप्तजन्मनि मत्स्यश्च मूषकश्च ततः शुचिः ॥ १८ ॥ सुगंधि तैलं धात्रीं वा गंधद्रव्यान्यदेव वा ॥ भारते पुण्यवर्षे च यो हरेत्सुरविप्रयोः ॥ १९ ॥ स वसेद्दग्धकुण्डे च भवेद्दग्धो दिवानिशम् ॥ स्वलोममानवर्षं च ततो दुर्गंधिको भवेत् ॥ १२० ॥ दुर्गंधिकः सप्तजन्म मृगानाभिस्त्रिजन्मनि ॥ सप्तजन्मसु मंथानस्ततो हि मानवो भवेत् ॥ २१ ॥ बलेनैव च्छलेनैव सारूपेण वा सति ॥ बलिष्ठश्च हरेद्भूमिं भारते परपैतृकीम् ॥ २२ ॥ स वसेत्तप्तसूर्चिं च भवेत्तापी दिवानिशम् ॥ तप्ततैले यथा जीवो दग्धो भवति संततम् ॥ २३ ॥

सुगंधि तेल धात्री (आमले) वा दूसरे गन्धद्रव्य जो सुरविप्रकी कोई वस्तु हरण करता है ॥ १९ ॥ वह दग्धकुण्डमें निवासकर दिनरात दग्ध होता है वह अपने लोम प्रमाण वर्षतक वहां निवास करके फिर दुर्गन्धिवाला होता है ॥ १२० ॥ सात जन्ममें दुर्गन्धिक, तीन जन्मतक मृगनाभि, सात जन्म मंथान और फिर मनुष्य होता है ॥ २१ ॥ छल बल वा हिंसासे बलिष्ठ पुरुष दूसरेकी पैतृकभूमि हरण करता है ॥ २२ ॥ वह तप्तसूची कुण्डमें पड़कर दिनरात तप्त होता है जैसे तप्त तेलमें जीव निरंतर दग्ध होता है ॥ २३ ॥

परंतु वह भस्म नहीं होता भोगमें देही नष्ट नहीं होता वह पापी सात मन्वन्तरतक वहीं निवास करता है ॥ २४ ॥ और अनाहार होकर 'हा हा' शब्द करता यमदूतोंसे ताडित होता है फिर वह साठ सहस्र वर्ष रहकर विष्ठाका कीट होता है ॥ २५ ॥ फिर भूमिहीन दरिद्री होकर पश्चात् शुद्ध होता है फिर स्वयोनिको प्राप्त होकर शुभकर्म करता है ॥ १२६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ धर्मराज बोले जो दयाहीन हो खड्गसे जीवोंको मारते हैं और जो लोभसे भारतमें मनुष्योंको मारते हैं ॥ १ ॥ वह चौदह मन्वन्तरतक असि पत्र वनमें निवास करते हैं उनमें जो ब्राह्मणोंको मारता है वह सौ मन्वन्तर निवास करता है ॥ २ ॥ अर्थात् वह खड्गसे छिन्न अंग होकर वहां निवास करता है और यमदूतोंसे ताडित हो अनाहार

भस्मसान्न भवत्येव भोगे देही न नश्यति ॥ सप्तमन्वंतरं पापी संतप्तस्तत्र तिष्ठति ॥ २४ ॥ शब्दं करोत्यनाहारो यमदूतेन ताडितः ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च भवेत्ततः ॥ २५ ॥ ततो भवेद्भूमिहीनो दरिद्रश्च ततःशुचि ॥ ततः स्वयोनिं संप्राप्य शुभ कर्मा चरेत्पुनः ॥ २६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ यमधर्म उवाच ॥ छिनत्ति जीवं खड्गेन दयाहीनः सुदारुणः ॥ नरघाती हंति नरमर्थलोभेन भारते ॥ १ ॥ असिपत्रे वसेत्सोऽपि यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ तेषु यो ब्राह्मणान्हंति शतमन्वंतरं वसेत् ॥ २ ॥ छिन्नांगः संवसेत्सोऽपि खड्गधारेण संततम् ॥ अनाहारः शब्द मुच्चैर्यमदूतेन ताडितः ॥ ३ ॥ मंथानः शतजन्मनि शतजन्मानि सूकरः ॥ कुक्कुटः सप्तजन्मानि सृगालः सप्तजन्मसु ॥ ४ ॥ व्याघ्रश्च सप्तजन्मानि वृकश्चैव त्रिजन्मसु ॥ सप्तजन्मसु मंडूको यमदूतेन ताडितः ॥ ५ ॥ स भवेद्भारते वर्षे महिषश्च ततः शुचिः ॥ ग्रामाणां नगराणां वा दहनं यः करोति च ॥ ६ ॥ क्षुरधारे वसेत्सोऽपि च्छिन्नांगस्त्रियुगं सति ॥ ततः प्रेतो भवेत्सद्यो वह्निवक्त्रो भ्रमन्महीम् ॥ ७ ॥ सप्तजन्मामेध्य भोजी कपोतः सप्तजन्मसु ॥ ततो भवेन्महाशूली मानवः सप्तजन्मनि ॥ ८ ॥

होनेसे हाहाकार करता है ॥ ३ ॥ सौ जन्म मंथानजीव, सौ जन्म शूकर सात जन्म कुक्कुट और सात जन्म शृगाल होता है ॥ ४ ॥ सात जन्मतक व्याघ्र, तीन जन्मतक वृश्चिक, सात जन्म मंडूक यमदूतोंसे ताडित हुआ होता है ॥ ५ ॥ फिर वह भारतवर्षमें महिष होकर पश्चात् शुद्ध होता है जो ग्राम और नगरोंमें आग लगाते हैं ॥ ६ ॥ वह असिधार कुण्डमें पड़कर तीन युगोंतक छिन्नांग होता है फिर प्रेत होकर वह्निमुख हो विचरण करता है ॥ ७ ॥ सात जन्मतक अमेध्य वस्तुका खानेवाला सात जन्मतक कपोत होकर फिर मनुष्यजन्ममें शूलरोगयुक्त होता है ॥ ८ ॥

फिर सात जन्ममें गलितकुष्ठ और पश्चात् शुद्ध होता है जो दूसरेके कानमें दूसरोंकी निन्दा करता है ॥ ९ ॥ और पराये दोषमें महाश्लाघी देव ब्राह्मणकी निंदा करता है वह सूचीमुख नरकमें सूचीविद्ध हो तीन युग पर्यन्त निवास करता है ॥ १० ॥ फिर वृश्चिक और सात जन्मतक सर्प होता है सात जन्म वज्रकीट और फिर भस्मकीट होता है ॥ ११ ॥ फिर महाव्याधियुक्त मनुष्य होकर सात जन्ममें शुद्ध होता है जो गृहस्थियोंके घरमें सैंध लगाय वहांकी वस्तु हरण करता है ॥१२॥ तथा गौ छाग, मेषादिको जो हरण करता है वह गोकामुखमें गमन करता है और यमदूतोंसे ताडित होकर वहां तीन युग निवास करता है ॥ १३ ॥ फिर सातजन्मतक व्याधि सम्पन्न हो गोजाति होता है तीन जन्म मेष और तीन जन्म छाग होता है ॥ १४ ॥ फिर मनुष्यजन्ममें

सप्तजन्म गलत्कुष्ठी ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ परकर्णे मुखं दत्त्वा परनिंदां करोति यः ॥ ९ ॥ परदोषे महाश्लाघी देवब्राह्मणनिंदकः ॥ सूचीमुखे वसेत्सोऽपि सूची विद्धो युगत्रयम् ॥ १० ॥ ततो भवेद् वृश्चिकश्च सर्पश्च सप्तजन्मसु ॥ वज्रकीटस्सप्तजन्म भस्मकीटस्ततः परम् ॥ ११ ॥ ततो भवेन्मानवश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः ॥ गृहिणां हि गृहं भित्त्वा वस्तुस्तेयं करोति यः ॥ १२ ॥ गाश्च च्छागांश्च मेषांश्च याति गोकामुखे च सः ॥ ताडितो यमदूतेन वसेत्तत्र युगत्रयम् ॥१३॥ ततो भवेत्सप्तजन्म गोजातिर्व्याधिसंयुतः ॥ त्रिजन्मनि मेषजातिश्छागजातिस्त्रिजन्मनि ॥ १४ ॥ ततो भवेन्मानवश्च नित्यरोगी दरिद्रकः ॥ भार्याहीनो बंधुहीनः संतापी च ततः शुचिः ॥ १५ ॥ सामान्यद्रव्यचौरश्च याति नक्रमुखं च सः ॥ ताडितो यमदूतेन वसेत्तत्राब्दकत्रयम् ॥१६॥ ततो भवेत्सप्तजन्म गोपतिर्व्याधिसंयुतः ॥ ततो भवेन्मानवश्च महारोगी ततः शुचिः ॥ १७ ॥ हंति गाश्च गजांश्चैव तुरगांश्च नगांस्तथा ॥ स याति गजदंशं च महापापी युगत्रयम् ॥ १८ ॥ ताडितो यमदूतेन नागदंतेन संततम् ॥ स भवेद्गजजातिश्च तुरगश्च त्रिजन्मनि ॥ १९ ॥

नित्य रोगी दरिद्र होता है भार्याहीन बन्धुहीन संतापी और फिर शुचि होता है ॥ १५ ॥ सामान्य द्रव्यका चुरानेवाला नक्रमुख नरकमें जाता है और यम दूतोंसे ताडित हो तीनवर्ष वहां निवास करता है ॥ १६ ॥ फिर सात जन्म व्याधियुक्त गोपति होता है फिर मानव महारोगी होकर पश्चात् शुद्ध होता है ॥ १७ ॥ जो गौ, हाथी, घोडे और वृक्षोंका नाश करते हैं वह महापापी तीन युगपर्यंत गजदंशनरकमें जाते हैं ॥ १८ ॥ और यमदूत हाथीदाँतसे निरंतर उसको मारते हैं फिर वह तीनजन्म घोडे और हाथीकी योनिको प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥

फिर गोजाति और म्लेच्छ जाति होकर पश्चात् शुद्ध हो जाते हैं जो प्याससे जलपान करती गायको निवारण करता है ॥ २० ॥ वह गोमुखाकार कृमितप्तोदनरकमें जाता है और वहां तप्त होकर एक मन्वन्तरतक रहता है ॥ २१ ॥ फिर वह मनुष्य गोहीन महारोगी दरिद्री होता है सातजन्म नीचजातिमें जन्म लेकर फिर शुद्ध होता है ॥ २२ ॥ जो शास्त्र वचनके तात्पर्यको न जानकर गोहत्या ब्रह्महत्या करता है जो अगम्यागमन और स्त्रीहत्या करता है ॥ २३ ॥ तथा जो महापापी भिक्षुहत्या और भ्रूणहत्या करता है वह चौदहमन्वन्तरतक कुम्भीपाकमें निवास करता है ॥ २४ ॥ वहाँ यमदूतोंसे ताडित होकर चूर्ण होता है कभी क्षणमें अग्नि और क्षणमें कंटकमें डाला जाता है ॥ २५ ॥ क्षणमें तप्ततेल और क्षणमें तपते जलमें निवास करना होता है क्षणमें तप्तलोह

गोजातिर्म्लेच्छजातिश्च ततः शुद्धी भवेन्नरः ॥ जलं पिबंतीं तृषितां गां वारयति यः पुमान् ॥ २० ॥ नरकं गोमुखाकारं कृमितप्तोदकान्वितम् ॥ तत्र तिष्ठति संतप्तो यावन्मन्वंतरावधि ॥ २१ ॥ ततोनरोऽपि गोहीनो महारोगी दरिद्रकः ॥ सप्तजन्मांत्यजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ २२ ॥ गोहत्यां ब्रह्महत्यां च करोति ह्यातिदेशिकीम् ॥ यो हि गच्छत्यगम्यां च यः स्त्रीहत्यां करोति च ॥ २३ ॥ भिक्षुहत्यां महापापी भ्रूणहत्यां च भारते ॥ कुंभीपाके वसेत्सोऽपि यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ २४ ॥ ताडितो यमदूतेन चूर्ण्यमानश्च संततम् ॥ क्षणं पतति वह्नौ च क्षणं पतति कंटके ॥ २५ ॥ क्षणं पतेत्तप्ततैले तप्तो येन क्षणं क्षणम् ॥ क्षणं च तप्तलोहे च क्षणं च तप्तताम्रके ॥२६॥ गृध्रो जन्मसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः ॥ काकश्च सप्तजन्मानि सर्पश्च सप्त जन्मसु ॥ २७ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ नानाजन्मसु स वृषस्ततः कुष्ठी दरिद्रकः ॥२८॥ सावित्र्युवाच ॥ विप्रहत्या च गोहत्या किंविधा चाऽऽतिदेशिकी ॥ का वा नृणामगम्या च को वा संध्याविहीनकः ॥ २९ ॥ अदीक्षितः पुमान्को वा को वा तीर्थप्रतिग्रही ॥ द्विजः को वा ग्रामयाजी को वा विप्रोऽथ देवलः ॥ ३० ॥ शूद्राणां सूपकारश्च प्रमत्तो वृषलीपतिः ॥ एतेषां लक्षणं सर्वं वद वेदविदांवर ॥ ३१ ॥

और क्षणमें तप्तताँबेके पत्रमें डाला जाता है ॥ २६ ॥ सहस्रजन्ममें गृध्र और सौजन्मतक शूकर सातजन्मतक काक और सातजन्मतक सर्प होता है ॥ २७ ॥ फिर साठ सहस्रवर्षतक विष्ठाका कीडा होता हैं. अनेक जन्मतक वृष और पश्चात् कुष्ठी दरिद्री होता है ॥ २८ ॥ सावित्री बोली अतिदेशिकी विप्रहत्या और गौहत्या कैसी होती है, मनुष्योंको अगम्या कौन है और संध्याविहीन कौनहै? ॥ २९ ॥ कौन अदीक्षित और तीर्थप्रतिग्रही कौन है कौन ग्रामयाजी ब्राह्मण और कौन देवल है ॥ ३० ॥ शूद्रोंका रसोइया प्रमत्त वृषलीपति कौन है हे वेदविदांवर इन सबके लक्षण कहो ॥ ३१ ॥

धर्मराज बोले श्रीकृष्ण उनकी पूजा तथा दूसरोंकी मूर्ति शिव शिवलिंग सूर्य सूर्यमणि ॥ ३२ ॥ गणेश दुर्गा हे सुन्दरी ! इसी प्रकार सर्वत्र देवताओंमें जो भेदबुद्धि करता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ३३ ॥ अपना गुरु इष्टदेव जन्मदाता माता इनमें जो भेदबुद्धि करता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ३४ ॥ वैष्णवभक्त तथा ब्राह्मणादि इतर देवताभक्त महात्माओंमें जो भेदबुद्धि करता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणका पादोदक शालिग्रामोदकमें जो भेदबुद्धि करता है वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ शिव और हरिके नैवेद्यमें भेद करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥ ३७ ॥ सर्वेश्वर सबके कारणके कारण सबके आदि सब देवताओंसे सेवनीय सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णमें ॥ ३८ ॥ मायासे अनेकरूप धारण करनेवाले वा एकनिर्गुणमें जो भेद करता है वह

धर्मराज उवाच॥ श्रीकृष्णे च तदर्चायामन्येषां प्रकृतौ सति ॥ शिवे च शिवलिंगे च सूर्ये सूर्यमणौ तथा ॥३२॥ गणेशेवाथ दुर्गाया मेवं सर्वत्र सुन्दरि ॥ यः करोति भेदबुद्धिं ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥३३॥ स्वगुरौ स्वेष्टदेवे च जन्मदातरि मातरि ॥ करोति भेदबुद्धिंयो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥३४॥ वैष्णवेषु च भक्तेषु ब्राह्मणेष्वितरेषु च ॥ करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥३५॥ विप्र पादोदके चैव शालग्रामोदके तथा ॥ करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्या लभेत्तु सः ॥३६॥ शिवनैवेद्यके चैव हरि नैवेद्यके तथा ॥ करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥३७॥ सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे सर्वकारणकारणे ॥ सर्वाद्ये सर्वदेवानां सेव्ये सर्वांतरात्मनि॥ ३८॥ माय याऽनेकरूपे वाऽप्येक एव हि निर्गुणे॥ करोतीशेन भेदं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥३९॥ शक्तिभक्ते द्वेषबुद्धिं शक्तिशास्त्रे तथैव च ॥ द्वेषं यः कुरुते मर्त्यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥४०॥ पितृदेवाचनं यो वा त्यजेद्वेदनिरूपितम् ॥ यः करोति निसिद्धिं च ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥४१॥ यो निंदति हृषीकेषं तन्मन्त्रोदासकं तथा ॥ पवित्राणां पवित्रं च ज्ञानानंदं सनातनम् ॥ ४२ ॥ प्रधानं वैष्णवानां च देवानां सेव्यमीश्वरम् ॥ ये नार्चयंति निन्दंति ब्रह्महत्यां लभंति ते ॥ ४३ ॥ ये निंदति महादेवीं कारणब्रह्मरूपिणीम् ॥ सर्वशक्तिस्वरूपां च प्रकृतिं सर्वमातरम् ॥ ४४ ॥

ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ जो शक्तिके भक्त और शक्तिशास्त्रमें द्वेषबुद्धिसे द्वेष करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥ ४० ॥ जो वेद निरूपित पितृ देवताओंके पूजनको निषेध करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥ ४१ ॥ जो हृषीकेश और उनके मंत्रोपासककी निंदा करता है तथा पवित्रोंका पवित्र सनातन ज्ञानानंद ॥ ४२ ॥ वैष्णवोंके प्रधान देव सेवनीय विष्णुकी जो अर्चा नहीं करता और निंदा करता है उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥ ४३ ॥ जो कारण ब्रह्मरूपिणी मूलप्रकृतिमहादेवी सर्वशक्तिस्वरूपा प्रकृति सबकी माता ॥ ४४ ॥

सर्ववेदस्वरूपिणी सबको जाननेयोग्य सबकी कारणरूपकी निंदा करता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ४५ ॥ कृष्णजन्माष्टमी और पवित्र रामनवमी, शिव रात्री, एकादशी, रविवार ॥ ४६ ॥ इन पांच पवित्रपर्वोंको जो मनुष्य नहीं करते हैं वह हत्याको प्राप्त होकर चांडालसे अधिक पापी होते हैं ॥ ४७ ॥ अम्बुवाची अर्थात् आर्द्रा नक्षत्रके आदिपादसे तीन दिन भूमि रजस्वला होती है उस समय उसका खनन तथा उस जलसे जो शौचादि करते हैं वे ब्रह्म हत्याको प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ गुरु, माता, साध्वीभार्या पुत्र, बेटी इन अनिंद्योंका जो पालन नहीं करते उनको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ४९ ॥ जिसका विवाह न हुआ न जिसने पुत्रका मुख न देखा वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता तथा हरिभक्तिहीन पुरुषको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ५० ॥ जो हरिको नैवेद्यका भोग

सर्वदेवस्वरूपां च सर्वेषां वंदिता सदा ॥ सर्वकारणरूपां च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ॥ ४५ ॥ कृष्ण जन्माष्टमीं रामनवमीं च सुपुण्य दाम् ॥ शिवरात्रिं तथा चैकादशीं वारे रवेस्तथा ॥ ४६ ॥ पंच पर्वाणि पुण्यानि ये न कुर्वंति मानवाः ॥ लभन्तिब्रह्महत्यां ते चांडाल धिकपापिनः ॥ ४७ ॥ अंबुवाच्यां भूखननं जलशौचादिकं च ये ॥ कुर्वंति भारते वर्षे ब्रह्महत्यां लभंति ते ॥ ४८ ॥ गुरुं च मातरं तातं साध्वीं भार्यां सुतं सुताम् ॥ अनिंद्यां यो न पुष्णाति ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ४९ ॥ विवाहो यस्य न भवेन्न पश्यति सुतं तु यः ॥ हरि भक्तिविहीनो यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ ५० ॥ हरेरनैवेद्यभोजी नित्यं विष्णुं न पूजयेत् ॥ पुण्यं पार्थिवलिंगं च ब्रह्महाऽसो प्रकीर्तितः ॥ ५१ ॥ गोप्रहारं प्रकुर्वंतं दृष्ट्वा यो न निवारयेत् ॥ याति गोविप्रयोर्मध्ये गोहत्यां तु लभेत्तु सः ॥ ५२ ॥ दंडैर्गास्ताडयेन्मूढो यो विप्रो वृषवाहनः ॥ दिने दिने गोवधं च लभते नात्र संशयः ॥ ५३ ॥ ददाति गोभ्य उच्छिष्टं भोजयेद्वृषवाहकम् ॥ भुनक्ति वृष वाहान्नं स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ५४ ॥

नहीं लगाता तथा जो विष्णुका नित्य पूजन नहीं करता तथा जो पवित्र पार्थिवलिंगका पूजन नहीं करता उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ५१ ॥ जो गौ प्रहार करते हुएको देखकर निवारण नहीं करता है गौ ब्राह्मणके मध्यसे होकर देखता चला जाता है उसको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ५२ ॥ जो विप्र दण्डसे गौको ताडन करते और बैलपर चढते हैं उनको दिन दिन गोहत्या लगती है इसमें संदेह नहीं ॥ ५३ ॥ जो गौओंको उच्छिष्ट देते गोवाहकको भोजन कराते तथा बैलपर चढने वालेका अन्न खाते हैं उनको गोहत्या लगती है ॥ ५४ ॥

जो शूद्रपतिको यजन कराते वा जो उसका अन्न खाते हैं उसको गोहत्याका पाप लगता है इसमें संदेह नहीं ॥ ५५ ॥ जो अग्निपर पैर रखते और चरणसे गायको ताडन करते हैं विना पैर धोये जो घरोंमें घुसते हैं वह गोहत्या पाते हैं ॥ ५६ ॥ जो गीले चरणोंसे भोजनको बैठते हैं तथा गीले चरण सोते हैं तथा सूर्योदयके समय जो भोजन करते हैं उनको ब्रह्महत्या लगती है ॥ ५७ ॥ जो अवीरान्न खाता है और जो ब्राह्मण कुटनापन करता है और जो तीनों कालकी संध्यासे रहित है उसे गोहत्या लगती है ॥ ५८ ॥ जो स्त्री अपने स्वामी और देवतामें भेदबुद्धि करती है और स्वामीको कटूक्ति कहती है उसको गो हत्या लगती है ॥ ५९ ॥ जो गोमार्गको बिगाड़कर सस्य तडाग वा दुर्गमें खेदता है उसे गोहत्या लगती है ॥ ६० ॥ जो गोवधके प्रायश्चित्तमें व्यतिक्रम

वृषलीपतिं याजयेद्यो भुक्तेऽन्नं तस्य यो नरः ॥ गोहत्याशतकं सोऽपि लभते नात्र संशयः ॥ ५५ ॥ पादं ददाति वह्नौ यो गाश्च पादेन ताडयेत् ॥ गेहं विशेदधौतांघ्रिः स्नात्वा गोवधमाप्नुयात् ॥ ५६ ॥ यो भुंक्ते स्निग्धपादेन शेते स्निग्धांघ्रिरेव च ॥ सूर्योदये च यो भुंक्ते स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ५७ ॥ अवीरान्नं च यो भुंक्ते योनिजीव्यस्य च द्विज ॥ यस्त्रिसंध्या विहीनश्च गोहत्यां लभते च सः ॥ ५८ ॥ स्वभर्तरि च देवे वा भेदबुद्धिं करोति या ॥ कटूक्त्या ताडयेत्कांतं सा गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ५९ ॥ गोमार्गं वर्जनं कृत्वा ददाति सस्यमेव वा ॥ तडागे वा तु दुर्गे वा स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ६० ॥ प्रायश्चित्ते गोवधस्य यः करोति व्यतिक्रमम् ॥ पुत्रलोभादथाज्ञानात्स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ६१ ॥ राजके दैवके यत्नाद्गोस्वामी गां न रक्षति ॥ दुःखं ददाति यो मूढो गोहत्यां स लभेद् ध्रुवम् ॥ ६२ ॥ प्राणिनो लंघयेद्यो हि देवार्चामनलंजलम् ॥ नैवेद्यं पुष्पमन्नं च स गोहत्यां लभे ध्रुवम् ॥ ६३ ॥ शश्वन्नास्तीति यो वादी मिथ्यावादी प्रतारकः ॥ देवद्वेषी स गुरुद्वेषी गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ ६४ ॥ देवताप्रतिमां दृष्ट्वा गुरुं वा ब्राह्मणं सति ॥ संभ्रमान्न नमेद्यो हि स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ ६५ ॥

करता है पुत्र लोभ वा अज्ञानसे न करे तो अर्थात् पुत्रने हत्या की है ऐसा जानकर जो प्रायश्चित नहीं करता उसे गोहत्या लगती है ॥ ६१ ॥ राजोपद्रव और देवके उपद्रवमें यत्नसे जो गोस्वामी गौओंकी रक्षा नहीं करता और जो मूढ़ दुःख देता है उसको अवश्य गोहत्या प्राप्त होती है ॥ ६२ ॥ जो प्राणी देवार्चा, अनल, जल, नैवेद्य, पुष्प, अन्न इनको उल्लंघन करता है उसे गोहत्या लगती है ॥ ६३ ॥ जो मिथ्यावादी छली अतिथिके आनेपर नहीं हैं ऐसा कहता है जो देवता और गुरुसे द्वेष करता है उसे गोहत्या लगती है ॥ ६४ ॥ देवताकी प्रतिमाको देखकर गुरु वा ब्राह्मणको देखकर सहसा प्रणाम नहीं

करता उसे गोहत्या लगती है ॥ ६५ ॥ जो ब्राह्मण क्रोधसे प्रणाम करनेवालेको आशीर्वाद नहीं देता तथा विद्यार्थीको विद्या नहीं देता उसको गोहत्या लगती है ॥६६॥ यह तुमसे शास्त्रानुसार गोहत्या और विप्रहत्या कही अब गम्य स्त्रियोंका वर्णन करता हूं सुनो ॥ ६७ ॥ अपनी स्त्री सबको गम्य है यह वेदानुशासन है, दूसरी अगम्या है यह वेदके ज्ञाता कहते हैं ॥ ६८ ॥ हे सुन्दरि ! सामान्यसे तुमसे सब कहा अब विशेषको श्रवण करो, जो अत्यन्त अगम्य है उसको कहता हूं सुनो ॥ ६९ ॥ शूद्रोंको विप्रपत्नी विप्रोंको शूद्रकी स्त्री हे पतिव्रते ! यह अत्यंत अगम्य और निंदनीय हैं ॥ ७० ॥ शूद्र यदि ब्राह्मणीमें गमन करे तो सौ ब्रह्महत्या लगती हैं और उसीके समान वह ब्राह्मणी भी कुम्भीपाकमें जाती है ॥ ७१ ॥ शूद्रोंको विप्रपत्नी और ब्राह्मणोंको

न ददात्याशिषं कोपात्प्रणताय च यो द्विजः ॥ विद्यार्थिने च विद्यां च स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ ६६ ॥ गोहत्यां विप्रहत्या च कथिता चाऽऽतिदेशिकी ॥ गम्यां स्त्रियं नृणामेव निबोध कथयामि ते ॥ ६७ ॥ स्वस्त्री गम्या च सर्वेषामिति वेदानुशासनम् ॥ अगम्या च तदन्या या चेति वेदविदो विदुः ॥ ६८ ॥ सामान्यं कथित सर्वं विशेषं शृणु सुंदरि ॥ अत्यगम्या हि या याश्च निबोध कथयामिताः ॥ ६९ ॥ शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी ॥ अत्यगम्या च निंद्या च लोके वेदे पतिव्रते ॥ ७० ॥ शूद्रश्च ब्राह्मणीं गत्वा ब्रह्महत्याशतं लभेत् ॥ तत्समं ब्राह्मणी चापि कुंभीपाकं लभेद् ध्रुवम् ॥७१॥ शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी ॥ यदि शूद्रां व्रजेद्विप्रो वृषलीपतिरेव सः ॥७२॥ स भ्रष्टो विप्रजातेश्च चांडालात्सोऽधमः स्मृतः ॥ विष्ठासमश्च तत्पिंडो मूत्रं तस्य च तर्पणम् ॥ ७३ ॥ न पितॄणां सुराणां च तद्दत्तमुपतिष्ठति ॥ कोटि जन्मार्जितंपुण्यं तस्यार्चातपसाऽर्जितम् ॥ ७४ ॥ द्विजस्य वृषलीलोभान्नश्यत्येव न संशयः ॥ ब्राह्मणश्च सुरापी तिविंड्भोजी वृषलीपतिः ॥ ७५ ॥ तप्तमुद्रादग्धदेहस्तप्तशूलांकितस्तथा हरिवासरभोजी च कुम्भीपाकं व्रजेद्द्विजः ॥ ७६ ॥

शूद्रपत्नी ऐसी ही है यदि ब्राह्मण शूद्रामें गमन करे तो वह वृषलीपति होता है ॥७२॥ वह विप्र ब्राह्मण जातिसे भ्रष्ट होकर चांडाल होता है उसका पिंड विष्ठाके समान और तर्पण मूत्रके समान होता है ॥ ७३ ॥ उसका दिया देवता पितरोंको प्राप्त नहीं होता और कोटि जन्मोंमें जो उसने तप पूजासे फल प्राप्त किया है ॥ ७४ ॥ वह उस ब्राह्मणका वृषलीके लोभसे नाश हो जाता है जो ब्राह्मण सुरापान करता है और वृषलीपति है वह विड्भोजी है ॥ ७५ ॥ तथा जिसका शरीर तप्तमुद्रासे दग्ध है तप्तशूलसे अंकित है तथा जो एकादशीके दिन भोजन करता है वह कुम्भीपाकमें जाता है ॥ ७६ ॥

गुरुपत्नी, राजपत्नी, सपत्नीमाता, पुत्री, पुत्रवधू, सास, सहोदरा, भगिनी, सती ॥ ७७ ॥ सगेभाईकी स्त्री, मामी, मा, (दादी) माताकी मा, (नानी) नानीकी बहन, भगिनी, भाईकी कन्या ॥ ७८ ॥ शिष्या, शिष्यकी पत्नी, भांजनेकी बहू, भाईके पुत्रकी स्त्री, ब्रह्माने इनको अधिक अगम्य कहा है ॥ ७९ ॥ जो अधमपुरुष इनके निकट कामनासे गमन करता है वह वेदमें मातृगामी है और सौ ब्रह्महत्याका उसको पाप लगता है ॥ ८० ॥ वह किसी कर्मके योग्य नहीं तथा स्पर्शके योग्य नहीं वह लोकवेदमें निंदित होता है वह महापापी रौरव दुःखरूप कुम्भीपाकमें गमन करता है ॥ ८१ ॥ जो अति अशुद्ध शास्त्रसे विहीन सन्ध्या करता है वा जो तीनों कालमें सन्ध्या नहीं करता वह सन्ध्याहीन ब्राह्मण है ॥ ८२ ॥ वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य,

गुरुपत्नीं राजपत्नीं सपत्नीं मातरं ध्रुवम् ॥ सुतां पुत्रवधू श्वश्रूं सगर्भां भगिनीं सतीम् ॥ ७७ ॥ सोदरभ्रातृजायां च मातुलानीं पितुः प्रसूम् ॥ मातुः प्रसूं तत्स्वसारं भगिनीभ्रातृकन्यकाम् ॥ ७८ ॥ शिष्यां शिष्यस्य पत्नीं च भागिनेयस्य कामिनीम् ॥ भ्रातुः पुत्रप्रियां चैवात्य गम्या आह पद्मजः ॥ ७९ ॥ एताः कामेन कांता यो व्रजेद्वै मानवाधमः ॥ स मातृगामी वेदेषु ब्रह्महत्याशतं व्रजेत् ॥ ८० ॥ अकर्मा होऽप्यसंस्पृश्यो लोके वेदे च निंदितः ॥ स याति कुंभीपाके च महापापी च सुदुष्करे ॥ ८१ ॥ करोत्यशुद्धां संध्यां वा न संध्या वाकरोति च ॥ त्रिसंध्यं वर्जयेद्यो वा संध्याहीनश्च स द्विजः ॥८२॥ वैष्णवं च तथा शैवं शाक्तं सौरं च गाणपम् ॥ योऽहंकारान्न गृह्णाति मंत्रं सोऽदी क्षितः स्मृतः ॥ ८३ ॥ प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम् ॥ तत्र नारायणः स्वामी गंगागर्भांतरे वसेत् ॥ ८४ ॥ तत्र नारायणःक्षेत्रे मृतो याति हरेः पदम् ॥ वाराणस्यां बदर्यां च गंगासागरसंगमे ॥ ८५ ॥ पुष्करे हरिहरक्षेत्रे प्रभासे कामरूस्थले ॥ हरिद्वारे च केदारे तथा मातृपुरेऽपि च ॥ ८६ ॥

इनमें जो अहंकारसे मन्त्र ग्रहण नहीं करता वही अदीक्षित है ॥ ८३ ॥ गंगाके प्रवाहसे चार हाथ भूमिपर्यन्त गंगागर्भ कहता है भगवान् नारायण निरन्तर वहां रहते हैं अथवा बहते जलके चार हाथतक किनारे किनारे तकके नारायण स्वामी हैं उस नारायणक्षेत्र काशी आदिमें जो प्रतिग्रह करता है वह तीर्थ प्रतिग्राही है ॥ ८४ ॥ नारायणक्षेत्रमें मरकर हरिके पदको जाता है वाराणसी बद्रिकाश्रम गंगासागर संगम ॥ ८५ ॥ पुष्कर, हरिहरक्षेत्र, त्र्यम्बक, प्रभास, कामरू, हरिद्वार, केदार, श्रीरेणका स्थान ॥ ८६ ॥

सरस्वतीके किनारे पवित्र वृन्दावनमें गोदावरी कौशिकी त्रिवेणी हिमालय॥८७॥जो इन पवित्र तीर्थोंमें कामना पूर्वक दान ग्रहण करता है यह तीर्थप्रतिग्राही कुम्भीपाकमें जाता है ॥८८॥ शूद्रसेवी,शूद्रयाजी,ग्रामयाजी,कहा है देवताकी पूजाकर आजीविका करनेवाला देवल कहाता है॥८९॥जो शूद्रकी रसोई करके जीविका करता है वह रसोईया है जो सन्ध्या पूजनसे हीन है वह प्रमत्त और पतित हो जाता है॥९०॥हे भद्रे!मैंने वृषलीपतिके सब लक्षण कहे यह महापातकी कुम्भी पाकको जाते हैं ॥९१॥ तथा जो दूसरे कुंडोंमें जाते हैं उनको सुनो मैं कहता हूं॥ ९२॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ धर्मराज बोले हे साध्वि ! देवताओंकी सेवाके विना कर्मबन्धन नष्ट नहीं होता शुद्धकर्म सुकर्मका बीज है और कुकर्मसे नरक होता है

सरस्वतीनदीतीरे पुण्ये वृन्दावने वने ॥ गोदा वर्यां च कौशिक्यां त्रिवेण्यां च हिमाचले ॥ ८७ ॥ एषु तीर्थेषु यो दानं प्रतिगृह्णाति कामतः ॥ स च तीर्थप्रतिग्राही कुम्भी पाके प्रयाति सः ॥ ८८ ॥ शूद्रसेवी शूद्रयाजी ग्रामयाजीति कीर्तितः ॥ तथा देवोपजीवी च देवलः परिकीर्तितः ॥ ८९ ॥ शूद्रपाकोप जीवी यः सूपकार इति स्मृतः ॥ संध्यापूजनहीनश्च प्रमत्तः पतितः स्मृतः ॥ ९० ॥ उक्तं सर्वं मया भद्रे लक्षणं वृषलीपतेः ॥ एते महापातकिनः कुम्भीपाके प्रयान्ति ते ॥ ९१ ॥ कुण्डान्यन्यानि ये यांति निबोध कथयामि ते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादे सावित्र्युपाख्याने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ धर्मराज उवाच ॥ देव सेवां विना साध्वि न भवेत्कर्मकृंतनम् ॥ शुद्ध कर्म शुद्धबीजं नरकश्च कुकर्मणा ॥ १ ॥ पुंश्चल्यन्नं च यो भुंक्ते योऽस्यां गच्छेत्प तिव्रते ॥ स द्विजः कालसूत्रं च मृतो याति सुदुर्गमम् ॥ २ ॥ शतवर्षं कालसूत्रे स्थिरीभूतो भवेद् ध्रुवम् ॥ तत्र जन्मनि रोगी च ततः शुद्धो भवेद् द्विजः ॥ ३ ॥ पतिव्रता चैकपतौ द्वितीये कुलटा स्मृता ॥ तृतीये धर्षिणी ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चलीत्यपि ॥ ४ ॥ वेश्या च पञ्चमे षष्ठे पुङ्गी च सप्तमेऽष्टमे ॥ तत उर्ध्वं महावेश्या साऽस्पृश्या सर्वजातिषु ॥ ५ ॥

॥ १ ॥ हे पतिव्रते ! जो व्यभिचारिणीका अन्न खाता है और उससे गमन करता है वह ब्राह्मण मर कर कालसूत्र नरकमें जाता है ॥ २ ॥ वह सौ वर्षतक कालसूत्रमें पड़ा रहता है उस जन्ममें रोगी और फिर यह मनुष्य शुद्ध होता है ॥३॥ एकपति तक पतिव्रता दूसरा करनेमें कुलटा तीसरे पर गमन करनेसे धर्षिणी और चतुर्थपर गमन करनेसे पुंश्चली कहाती है॥ ४ ॥ पांच और छः पुरुषतक वेश्या, सातवें आठवें पुरुषतक पुंगी, इससे अधिक पुरुषोंमें गमन करै तो वह महावेश्या कहाती है सब जातियोंसे वह स्पर्शके अयोग्य है ॥ ५ ॥

जो ब्राह्मण कुलटा धर्षिणी और पुंश्चलीके पास जाता है अथवा पुंगी वेश्या महावेश्याके समीप गमन करता है वह मत्स्योदनरकमें जाता है ॥ ६ ॥ कुलटा गामी सौ वर्ष धृष्टागामी ४०० वर्ष पुंश्चलीगामी छःगुणे वर्ष, वेश्यागामी अठगुणे ॥ ७ ॥ पुंगीगामी दशगुणे वर्ष वहां निवास करता है इसमें सन्देह नहीं, महावेश्याकी इच्छावाला इससे दशगुणे वर्ष नरकमें रहता है ॥ ८ ॥ और यमदूतोंसे ताडित होकर वहां ही यातनाको भोगता है कुलटागामी तीतर, धृष्टागामी वायस ॥ ९ ॥ पुंश्चलीगामी कोकिल वेश्यागामी भेडिया होता है और पुंगीगामी सातजन्म भारतमें सूकर होता है ॥१०॥ महावेश्यागामी सेमलका वृक्ष होता है, जो चन्द्रसूर्यके ग्रहण में भोजन करता है ॥ ११ ॥ वह अन्नके मानप्रमाण अरुंतुद नरकमें जाता है फिर उदररोगग्रसित मनुष्य होता है ॥ १२ ॥ गुल्म

यो द्विजः कुलटां गच्छेद्धर्षिणीं पुंश्चलीमपि॥ पुङ्गीं वेश्या महावेश्यां मत्स्योदे याति निश्चितम् ॥ ६ ॥ शताब्दं कुलटागामी धृष्टागामी चतुर्गुणम् ॥ षड्गुणं पुंश्चलीगामी वेश्यागामी गुणाष्टकम् ॥ ७ ॥ पुङ्गीगामी दशगुणं वसेत्तत्र न संशयः ॥ महावेश्याकामुकश्च ततो दशगुणं वसेत् ॥ ८ ॥ तत्रैव यातनां भुंक्ते यमदूतेन ताडितः ॥ तित्तिरिः कुलटागामी धृष्टागामी च वायसः ॥ ९ ॥ कोकिलः पुंश्चलीगामी वेश्यागामी वृकः स्मृतः ॥ पुङ्गीगामी सूकरश्च सप्तजन्मनि भारते ॥ १० ॥ महावेश्याप्रगामी च जायते शाल्मलीतरुः ॥ यो भुंक्ते ज्ञानहीनश्च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ११ ॥ अरुंतुदं स यात्येवाप्यन्नमानाब्दमेव च ॥ ततो भवेन्मा नवश्चाप्युदरे रोगपीडितः ॥१२॥ गुल्मयुक्तश्च काणश्च दंतहीनस्ततः शुचिः ॥ वाक्प्रदत्तां स्वकन्यां च योऽन्यस्मै प्रददाति च ॥ १३ ॥ स वसेत्पांसुकुंडे च तद्भोजी शतवत्सरम् ॥ तद्द्रव्यहारी यः साध्वि पांसुवेष्टे शताब्दकम् ॥ १४ ॥ निवसेच्छरशय्यायां मम दूतेन ताडितः ॥ भक्त्या न पूजयेद्विप्रः शिवलिंगं च पार्थिवम् ॥ १५ ॥ स याति शूलिनः पापाच्छूलप्रोतं सुदारुणम् ॥ स्थित्वा शताब्दं तत्रैवश्वापदः सप्तजन्मसु ॥ १६ ॥ ततो भवेद्देवलश्च सप्तजन्म ततः शुचि ॥ करोति कुंठितं विप्रं यद्भिया कंपते द्विजः ॥ १७ ॥

युक्त काना दांतोंसे हीन होकर पश्चात् शुद्ध होता है जो अपनी कन्याको वाग्दान कर फिर अन्यको देता है ॥ १३ ॥ वह धूरिके कुंड़में पडकर निरन्तर धूलिपान करता है हे साध्वि ! जो कन्याका द्रव्य हरण करता है वह सौवर्षतक धूरिसे युक्त ॥ १४ ॥ यमदूतोंसे ताडित हो शरशय्यापर शयन करता है जो ब्राह्मण भक्तिसे शिवलिंगका पूजन नहीं करता ॥ १५ ॥ वह पापी शूलप्रोत नामक नरकमें शूली होकर निवास करता है वह सौवर्षतक रहकर सात जन्मतक श्वापद जीव होता है ॥ १६ ॥ फिर देवल होकर सातजन्ममें पवित्र होता है जो ब्राह्मणको कुंठित करता है वा जिसके भयसे ब्राह्मण कंपित होता है ॥ १७ ॥

वह ब्राह्मणके लोमप्रमाण वर्षतक प्रकम्पन नरकमें निवास करता है जो क्रोध करके अपने स्वामीको देखता है ॥ १८ ॥ तथा कटूक्ति कहता है वह उल्मुक नरकमें जाता है मेरे दूत निरन्तर उसके मुखमें उल्मुख देते हैं ॥ १९ ॥ और उसके लोम प्रमाणवर्षतक शिरपर दण्डकी ताडना होती है फिर वह मानवी और सातजन्मतक विधवा होती है ॥ २० ॥ वह व्याधियुक्त वैधव्य भोगकर पश्चात् शुद्ध होता है जो ब्राह्मणी शूद्रसे संगम करती है, वह अन्धकूपमें जाती है ॥ २१ ॥ तप्ते शौचजल और अंधकारमें निराहार पड़ी रहती है और यमदूतोंसे ताडित हो बडे दुःखसे रहती है ॥२२॥ वह चौदहइन्द्रके कालतक शौचके जलमें निमग्न रहती है सहस्र काकी जन्म और सौजन्म सूकरी होती है ॥२३॥ सौजन्मतक शृगाली सौजन्ममें कुतिया सौजन्म कबतरी, सात जन्म वानरी

प्रकंपेन वसेत्सोऽपि विप्रलोमाब्दमेव च ॥ प्रकोपवदना कोपात्स्वामिनं या च पश्यति ॥१८॥ कटूक्ति तं प्रवदति सोल्मुकं संप्रयाति हि ॥ उल्कां ददाति तद्वक्त्रे सततं मम किंकर ॥ १९ ॥ दंडेन ताडयेन्मूर्ध्नि तल्लोमाब्दप्रमाणकम् ॥ ततो भवेन्मानवी च विधवा सप्तज न्मसु ॥ २० ॥ सा भुक्ता चैव वैधव्याधियुक्ता ततः शुचिः ॥ या ब्राह्मणी शूद्रभोग्या चांधकूपे प्रयाति सा ॥ २१ ॥ तप्तशौचोदके ध्वांते तदाहारी दिवानिशम् ॥ निवसेदतिसंतप्ता मम दूतेन ताडिता ॥ २२ ॥ शौचोदके निमग्ना सा यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ काकी जन्मसहस्राणि शतजन्मानि सूकरी ॥ २३ ॥ सृगाली शतजन्मानि शतजन्मानि कुक्कुटी ॥ पारावती सप्तजन्म वानरी सतप्तजन्मसु ॥ २४ ॥ ततो भवेत्सा चांडाली सर्वभोग्या च भारते ॥ ततो भवेच्च रजकी यक्ष्मग्रस्ता च पुंश्चली ॥ २५ ॥ ततः कुष्ठयुता तैला कारी शुद्धा भवेत्ततः ॥ निवसेद्वेधने वेश्या पुंगी च दंडताडने ॥ २६ ॥ जलरंध्रे वसेद्वेश्या कुलटा देहचूर्णके ॥ स्वैरिणी दलने चैव धृष्टा च शोषणे तथा ॥ २७ ॥ निवसेद्यातनायुक्ता मम दूतेन ताडिता ॥ विण्मूत्रभक्षा सततं यावन्मन्वंतरं सति ॥ २८ ॥ ततो भवेद्विट्कृमिश्च लक्षवर्षं ततः शुचिः ॥ ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गच्छेत्क्षत्रियां वाऽपि क्षत्रियः ॥ २९ ॥

॥ २४ ॥ फिर भारतमें सर्वभोग्या चाण्डाली होती है फिर धोबन फिर यक्ष्मरोगवाली पुंश्चली होती है ॥२५॥ फिर कुष्ठयुक्त होकर पश्चात् तेलन होती है तब शुद्ध होती है वेश्यावेधन और पुंगी दंडताडन नरकमें निवास करती है ॥ २६॥ वेश्या जलरंध्रस्थान और कुलटा देहचूर्णस्थान मेंनिवास करती है स्वैरिणी दलन और धृष्टा शोषण नरकमें निवास करती है ॥ २७ ॥ यह हमारे दूतोंसे ताडित हो बडी यातना युक्त निवास करती है, विष्ठा मूत्र भक्षणको निरंतर मिलता, ऐसे एक मन्वन्तरतक रहती है ॥ २८ ॥ फिर विष्ठाका कृमि होकर लाख वर्षमें शुचि होती है जो ब्राह्मण ब्राह्मणीमें क्षत्रिय क्षत्रियामें गमन करता है ॥ २९ ॥

वैश्य वैश्या और शूद्र शूद्रामें गमन करता है अर्थात् सवर्ण परदाराओंमें जो गमन करता है वह कषाय नरकमें जाता है ॥ ३० ॥ वहां कसैला तत्ता जल पानकर बारह वर्ष निवास करता है तब ब्राह्मण और क्षत्रिय शुद्ध होते हैं ॥ ३१ ॥ और इसी प्रकार स्त्री भी शुद्ध होती है यह ब्रह्माजीने कहा है हे पतिव्रते ! जो क्षत्रिय वा वैश्य ब्राह्मणीमें गमन करता है ॥ ३२ ॥ वह मातृगामी होकर सूर्पनामक नरकमें पड़ता है वह ब्राह्मणीके सहित उन कीडोंसे भक्षित होता है ॥ ३३ ॥ यमदूतोंसे ताडित हो तत्ते मूत्रका भोजन करना होता है एक मन्वन्तरपर्यन्त वहां इस प्रकार दुःखभोगना होता है ॥३४॥ सात जन्म वराह और फिर छाग होकर पवित्र होता है जो हाथमें तुलसी लेकर अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण नहीं करता ॥३५॥ वा मिथ्या शपथ करता है वह ज्वालामुख नरकमें जाता है वा

वैश्यो वैश्यां च शूद्रां वा शूद्रश्चापि व्रजेद्यदि ॥ सवर्णपरदारैश्च काषायं यांति ते जनाः ॥ ३० ॥ भुक्त्वा कषा यतप्तोदं निवसेद्वा शताब्दकम् ॥ ततो विप्रो भवेच्छुद्धस्ततो वै क्षत्रियादयः ॥३१॥ योषितश्चापि शुद्ध्यंतीत्येवमाह पितामहः ॥ क्षत्रियो ब्राह्मणीं गच्छेद्वैश्यो वाऽपि पतिव्रते ॥ ३२ ॥ मातृगामी भवेत्सोऽपि शूर्पे च नरके वसेत् ॥ शूर्पाकारैश्च कृमिभिर्ब्राह्मण्या सह भक्षितः ॥ ३३ ॥ प्रतप्तमूत्रभोजी च मम दूतेन ताडितः ॥ तत्रैव यातनां भुंक्ते यावदिं द्राश्चतुर्दश ॥ ३४ ॥ सप्तजन्म वराहश्च छागलश्च ततः शुचिः ॥ करे धृत्वा तु तुलसीं प्रतिज्ञां यो न पालयेत् ॥ ॥ ३५ ॥ मिथ्या वा शपथं कुर्यात्स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥ गंगातोयं करे कृत्वा प्रतिज्ञां यो न पालयेत् ॥ ३६ ॥ शिलां वा देवप्रतिमां स च ज्वाला मुखं व्रजेत् ॥ दत्वा दक्षिणहस्तं च प्रतिज्ञां यो न पालयेत् ॥३७॥ स्थित्वा देवगृहे वापि स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥ आस्पृश्य ब्राह्मणं गां च ज्वालावह्निं व्रजेद्द्विजः ॥ ३८ ॥ न पालयेत्प्रतिज्ञां च स च ज्वालामुखं व्रजेत ॥ मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः ॥ ३९ ॥

जो हाथमें गंगाजल लेकर प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता ॥ ३६ ॥ जो शालिग्राम वा देवमूर्ति हाथमें लेकर प्रतिज्ञा करता है और फिर उसे उल्लंघन करता है वह ज्वालामुख नरकमें जाता है अथवा दहिना हाथ मिला कर जो प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं करता ॥ ३७ ॥ देवगृहमें स्थित होकर भी जो कृत्यको उल्लंघन करता है वह ज्वालामुख नरकमें जाता है ब्राह्मण और गौको स्पर्शकर जो प्रतिज्ञा टालता है वहां ज्वालामुख नरकमें जाता है ॥ ३८ ॥ प्रतिज्ञाका न पालनेवाला ज्वालामुख नरकमें जाता है मित्रद्रोही कृतघ्न विश्वासघाती ॥ ३९ ॥

और मिथ्या साक्षी देनेवाला ज्वालामुख नरकमें जाता है वो वहां चौदह इंद्रके समय तक निवास करता है ॥ ४० ॥ अंगारोंसे प्रदग्धकर यमदूत उनको ताडन करते हैं तुलसीकी शपथकर पालन न करनेसे चाण्डाल होकर सातजन्ममें पवित्र होता है ॥ ४१ ॥ गङ्गा जलको स्पर्शकर मिथ्या करनेवाला म्लेच्छ होकर पांच जन्ममें शुचि होता है, शालिग्राम स्पर्शकर मिथ्या करनेसे विष्ठाका कृमि होकर सात जन्ममें पवित्र होत है ॥ ४२ ॥ अर्चाका स्पर्श करने वाला ब्राह्मण गृहस्थीके यहां कृमि होता है, सात जन्ममें शुद्ध होता है, दक्षिण हाथ देनेसे परकार्य न करनेवाला सातजन्मतक सर्प होता है ॥ ४३ ॥ फिर ब्रह्महीन होकर पश्चात् शुद्ध होता है जो देवगृहमें मिथ्या बोलता है वह सातजन्मतक पुजारी होता है ॥ ४४ ॥ विप्रादिका स्पर्श करनेवाला व्याघ्रजाति

मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैव स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥ एते तत्र वसंत्येव यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ४० ॥ तथांगार प्रदग्धाश्च यमदूतेन ताडिताः चांडालस्तुलसीं स्पृष्ट्वा सप्तजन्म ततः शुचिः ॥ ४१ ॥ म्लेच्छो गंगाजलस्पर्शी पंचजन्म ततः शुचि ॥ शिलास्पर्शी विट्कृमिश्च सप्त जन्मसु सुंदरि ॥ ४२ ॥ अर्चास्पर्शी ब्रह्मकृमिः सप्तजन्म ततः शुचि ॥ पक्षहस्त प्रदाता च सर्पश्च सप्तजन्मसु ॥ ४३ ॥ ततो भवेद्ब्र ह्महीनो मानवश्च ततः शुचिः ॥ मिथ्यावादी देवगृहे देवलः सप्तजन्मसु ॥ ४४ ॥ विप्रादिस्पर्शिकारी च व्याघ्रजातिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ ततो भवेच्च मूकः स बधिरश्च त्रिजन्मनि ॥ ४५ ॥ भार्याहीनो बंधुहीनो वंशहीनस्ततः शुचिः ॥ मित्रद्रोही च नकुलः कृतघ्नश्चाऽपि गंडकः ॥ ४६ ॥ विश्वासघाती व्याघ्रश्च सप्तजन्मसु भारते ॥ मिथ्यासाक्षी च वक्तव्ये मंडूकः सप्तजन्मसु ॥ ४७ ॥ पूर्वान्सप्तापरान्सप्त पुरुषान्हंति चात्मनः ॥ नित्यक्रियाविहीनश्च जडत्वेन युतो द्विजः ॥ ४८ ॥ यस्यानास्था वेदवाक्ये मन्दं हसति सन्ततम् ॥ व्रतोपवास हीनश्च सद्वाक्यपरनिंदकः ॥ ४९ ॥

होता है फिर मूक और तीन जन्मतक बहरा होता है ॥ ४५ ॥ भार्या बंधु और वंशहीन होकर पश्चात् पवित्र होता है मित्रद्रोही न्यौला और कृतघ्न होनेसे विघ्न कारी गंडक होता है ॥ ४६ ॥ विश्वासघाती भारतमें सातजन्म पर्यंत व्याघ्र होता है और मिथ्या साक्षीदेनेवाला सातजन्मतक मैंडक होता है ॥ ४७ ॥ वह अपने सात पहलेके और सात पीछेके पुरुषोंको मारता है जो नित्य क्रियासे हीन हैं वह ब्राह्मण जडत्वको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ जिसको वेदवाक्यमें श्रद्धा नहीं और मंद मंद हँसता है जो व्रत और उपवाससे हीन तथा सद्वाक्यकानिंदक है ॥ ४९ ॥

वह सौवर्ष धुवांपीता हुआ धूम्रांध नरकमें निवास करता है और सब जन्मके क्रमसे वह जलजंतु होता है ॥ ५० ॥ फिर अनेक प्रकारका मत्स्य होकर पश्चात शुद्ध होता है जो देवता और ब्राह्मणके धर्ममें उपहास करता है ॥ ५१ ॥ वह दश पहले और दश आगेके पुरुषोंको नरकमें डालकर धूम समूहसे युक्त धूम्रांध नरकमें जाता है ॥ ५२ ॥ धूमसे क्लेशित धूम्रभोगी वहां चौगुने समयतक निवास करता है फिर भारतमें सात जन्मतक मूषक होता है ॥ ५३ ॥ फिर अनेक प्रकारकी पक्षिजाति और कृमि योनियोंमें जाकर फिर अनेक जातिके वृक्ष और पशुयोनियोंमें जाकर पश्चात् मनुष्य होता है ॥ ५४ ॥ जो ब्राह्मण ज्योतिषसे डराकर धन लेते धन ठहराकर चिकित्सा करते हैं तथा लाख लोहादिका व्यापार और रसादि बेचते हैं ॥ ५५ ॥ वह नागोंसे वेष्टित होकर

धूम्रांधे च वसेत्सोऽपि शताब्दं धूम्र भक्षकः ॥ जलजंतुर्भवेत्सोऽपि शतजन्मक्रमेण च ॥ ५० ॥ ततो नानाप्रकारश्च मत्स्यजातिस्ततः शुचिः ॥ यः करोत्युपहासं च देवब्राह्मणयोर्धने ॥ ५१ ॥ पातयित्वा स पुरुषान्दशापूर्वान्दशापरान् ॥ सोऽयं याति च धूम्रांधं धूमध्वांतसमन्वितम् ॥ ५२ ॥ धूम्र क्लिष्टो धूम्रभोजी वसेत्तत्र चतुर्गुणम् ॥ ततो मूषकजातिश्च सप्तजन्मसु भारते ॥ ५३ ॥ ततो नाना विधाः पक्षिजातयः कृमिजातिभिः ॥ ततो नानाविधा वृक्षः पशवश्च ततो नरः ॥ ५४ ॥ विप्रो दैवज्ञजीवी च वैद्यजीवी चिकित्सकः ॥ लाक्षा लोहादिव्यापारी रसादि विक्रयी च यः ॥ ५५ ॥ स याति नागवेष्टं च नागैर्वेष्टितमेव च ॥ वसेत्स लोममानाब्दं तत्रैव नागपाशितः ॥ ५६ ॥ ततो नाना विधाः पक्षिजातयश्च ततो नरः ॥ ततो भवेत्स गणको वैद्यश्च सप्तजन्मसु ॥ ५७ ॥ गोपश्च कर्मकारश्च रंगकारस्ततः शुचिः ॥ प्रसिद्धानि च कुण्डानि कथितानि पतिव्रते ॥ ५८ ॥ अन्यानि चाप्रसिद्धानि क्षुद्राणि संति तत्र वै ॥ संति पातकिनस्तेषु स्वकर्मफल भोगिनः ॥ ५९ ॥ भ्रमंतिनानायोनिं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ इति श्रीदेवीभागवते महा पुराणे नवमस्कंधे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

नागवेष्ट नरकमें जाते हैं और अपने लोमप्रमाण वर्षतक वहां निवास करते हैं ॥ ५६ ॥ फिर अनेक प्रकारकी पक्षिजातिमें जन्म लेकर पश्चात् मनुष्य होते फिर वह गणक और सातजन्म वैद्य होता है ॥ ५७ ॥ गोप कर्मका रंगकार होकर फिर शुचि होता है हे पतिव्रते! यह प्रसिद्ध कुण्ड तुमसे कथन किये ॥ ५८ ॥ और भी बहुतसे अपवित्र और क्षुद्र कुंड उस स्थानपर हैं उससे पातकी अपने कर्मोंका फल भोगते हैं ॥ ५९ ॥ और अनेक योनिमें भ्रमते हैं अब तुम्हारे क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ६० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

सावित्री बोली हे महाभाग धर्मराज ! वेद वेदांगके पारगामी अनेक पुराण इतिहासका जो सार है सो दिखाइये ॥ १ ॥ जो सबका सारभूत सबका इष्ट सर्व सम्मत हो जो कर्मच्छेदका बीजरूप हो प्रशस्त और मनुष्योंको सुखदायक हो ॥ २ ॥ सब कुछ देनेवाला सबके मंगलका कारण जिससे मनुष्य भय और दुःखको प्राप्त हो ॥ ३ ॥ यह कुंड न देखै न कभी इनमें पडै जिससे जन्मादि न हो उसकर्मको दिखाइये और कहिये ॥ ४ ॥ यह कुंड किस आकारसे बने हुए हैं और किस प्रकारसे कौनरूपसे पापी वहां निवास करते हैं ॥ ५ ॥ अपना देह भस्म होनेसे यह प्राणी लोकांतर गमन करता है फिर यह किस देहसे शुभाशुभका भोग करता है ॥ ६ ॥ और बहुत कालतक क्लेश भोगनेसे भी यह देह क्यों नष्ट नहीं होता है ब्रह्मन् ! वह देह किस प्रकारका है सो आप मुझसे कहिये

सावित्र्युवाच॥ धर्मराज महाभाग वेदवेदांगपारग ॥ नानापुराणेतिहासे यत्सारं तत्प्रदर्शय ॥१॥ सर्वेषु सारभूतं यत्सर्वेष्टं सर्वसंमतम् ॥ कर्मच्छेदं बीजरूपं प्रशस्तं सुखदं नृणाम् ॥ २ ॥ सर्वप्रदं च सर्वेषां सर्वमंगलकारणम् ॥ भयं दुःखं न पश्यंति येन वै सर्वमानवः ॥ ३ ॥ कुण्डानि ते न पश्यंति तेषु नैव पतंति च ॥ भवेद्येन जन्मादि तत्कर्म वद सांप्रतम् ॥ ४ ॥ किमाकाराणि कुण्डानि तानि वा निर्मितानि च ॥ के च केनैव रूपेण तत्र तिष्ठन्ति पापिनः ॥ ५ ॥ स्वदेहे भस्मसाद्भूते याति लोकांतरं नरः ॥ केन देहेन वा भोगं करोति च शुभाशुभम् ॥ ६ ॥ सुचिरं क्लेशभोगेन कथं देहो न नश्यति ॥ देहो वा किंविधो ब्रह्मंस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ७ ॥ नारायण उवाच ॥ सावित्रीवचनं श्रुत्वा धर्मराजो हरिं स्मरन् ॥ कथां कथितुमारेभे कर्मबंधनिकृन्तनीम् ॥ ८ ॥ धर्मराज उवाच॥वत्से चतुर्षु वेदेषुधर्मेषु संहितासु च ॥ पुराणेष्वितिहासेषु पांचरात्रादिकेषु च॥९॥ अन्येषु धर्मशास्त्रेषु वेदांगेषु च सुव्रते ॥ सर्वेष्टं सारभूतं च पंचदेवीनुसेवनम् ॥ १० ॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकसंतापनाशनम् ॥ सर्वमंगलरूपं च परमानंदकारणम् ॥ ११ ॥ कारणं सर्वसिद्धीनां नरकार्णवतारणम् ॥ भक्तिवृक्षांकुरकरं कर्मवृक्षनिकृन्तनम् ॥ १२ ॥

॥ ७ ॥ नारायण बोले सावित्रीके वचन सुन धर्मराज हरिका स्मरण करते हुए इस कर्मबंधननाशिनी कथाको कहने लगे ॥८॥ धर्मराज बोले हे वत्से ! चारवेद सब धर्मसंहिताओंमें पुराण इतिहास पंचरात्र ॥९॥ हे सुव्रते ! तथा दूसरे धर्मशास्त्र वेदांगोंमें सबका इष्ट और सारभूत पंचदेवताओंकी उपासना है ॥ १० ॥ यह जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और संतापनाशिनी है सब मंगलकी रूप परमानंदकी कारण है ॥ ११ ॥ सब सिद्धियोंकी कारण नरकार्णवसे तारक भक्ति रूपी वृक्षका अंकुर करनेवाली कर्मवृक्षका छेदन करने वाली है ॥ १२ ॥

यह विमोक्षकी सोपान अविनाश पद है, सालोक्य सार्ष्टि सारूप्य सामीप्यादि देनेवाला शुभ है ॥ १३ ॥ हे शुभे! कुण्डोंको जो तुमने पूँछा इन कुण्डोंकी यमदूत सदा रक्षा करते हैं पंचदेवकी उपासना करनेवाले स्वप्नमें भी इन कुण्डोंका दर्शन नहीं करते हैं ॥ १४ ॥ जो देवीकी भक्ति नहीं करते वही हमारे स्थानमें आते हैं जो हरितीर्थमें जाते एकादशी आदि व्रत करते हैं ॥ १५ ॥ जो नित्य भगवान्को प्रणाम कर उनकी अर्चा करते हैं वे हमारी घोर संयमनी पुरीको नहीं आते ॥ १६ ॥ जो ब्राह्मण तीनों संध्याओंसे पवित्र शुद्धाचार हैं वह भी विना देवीकी उपासनाके मुक्तिको प्राप्त नहीं होते ॥ १७ ॥ जो अपने धर्ममें निरत आचारवाले स्वधर्ममें निरत हैं मर्त्यलोकमें जाते उनको मेरे दूतोंका दर्शन नहीं होता ॥१८॥ शिवके उपासकोंसे मेरे दूत इस प्रकार भय

विमोक्षसोपानमिदमविनाशपदं स्मृतम् ॥ सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यादिप्रदं शुभम् ॥ १३ ॥ कुंडानि यमदूतैश्च रक्षितानि सदा शुभे ॥ न हि पश्यंति स्वप्ने च पंचदेवार्चका नराः ॥ १४ ॥ देवीभक्तिविहीना ये ते पश्यंति ममालयम् ॥ यांति ये हरितीर्थं वा श्रयंति हरिवासरम् ॥ १५ ॥ प्रणमंति हरिं नित्यं हर्यर्चां कलयंति च ॥ न यान्ति तेऽपि घोरां च मम संयमिनीं पुरीम् ॥ १६ ॥ त्रिसंधूपिता विप्राश्च शुद्धाचारसमन्विताः ॥ निवृतिं नैव लप्स्यंति देवीसेवां विना नराः ॥ १७ ॥ स्वधर्मनिरताचाराः स्वधर्मे निरतास्तथा ॥ गच्छंतो मृत्युलोकं च दुर्दशा मम किंकरा ॥ १८॥ भीताः शिवपाशकेभ्यो वैनतेयादिवोरगाः ॥ स्वदूतं पाशहस्तं च गच्छंतं वारयाम्यहम् ॥ १९ ॥ यास्यंति ते च सर्वत्र हरिदासाश्रयं विना ॥ कृष्णमत्रोपासकाच्च वैनतेयादिवोरगाः ॥ ॥ २० ॥ देवीमंत्रोपासकानां नाम्नां चैव निकृंतनम् ॥ करोति नखलेखन्या चित्रगुप्तश्च भीतवत् ॥ २१ ॥ मधुपर्कादिकं तेषां कुरुते च पुनः पुनः ॥ विलंघ्य ब्रह्मलोकं च लोकं गच्छंति ते सति ॥ २२ ॥ दुरतानि च नश्यंति येषां संस्पर्शमात्रतः ॥ ते महाभाग्यवंतो हि सहस्रकुलपावनाः ॥ २३ ॥

खाते हैं जैसे गरुडसे सर्प और ऐसे स्थानमें पाशधारी दूतको जाता देखकर मैं निवारण कर देता हूं ॥ १९ ॥ हरिदासके आश्रयके सिवाय वे सर्वत्र गमन करते हैं गरुडसे सर्पके समान कृष्णभक्तसे मेरे दूत डरते हैं॥ २० ॥ देवीमंत्रके उपासकोंको भगवतीका नाम ही कर्म बंधनसे मुक्त करता है इनके कोई कर्म हो तो चित्रगुप्त नखलेखिनीसे भीत हुए लिखते हैं और जो अज्ञानसे चित्रगुप्तने लिखा है वह मंत्रजापसे नष्ट होता है ॥ २१ ॥ और उनको वारंवार मधुपर्क दिया जाता है वह इस लोकको उल्लंघनकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं ॥ २२ ॥ इनके स्पर्शमात्रसे पाप नष्ट होजाते हैं वे महाभाग्यवान् सहस्र कुलके पवित्र

करनेवाले होते हैं ॥ २३ ॥ जैसे प्रज्वलित अग्निमें शुष्क तृण भस्म होते हैं इस प्रकार उन भक्तोंको देखकर भयसे मोह भी मोहको प्राप्त होता है ॥२४ ॥ उनके काम कामियोंपर जाते कामना हीन होनेसे लोभ क्रोध भी नष्ट होते हैं. फिर रोग, जरा, शोक, भय और मृत्यु उनकी लीन हो जाती है ॥ २५ ॥ काल, सभा, शुभकर्म हर्ष भोग यह निवृत्त होता है. हे देवि ! जो जो इस पीडाको प्राप्त नहीं उनका वर्णन तुमसे किया ॥ २६ ॥ अब देहका विवरण सुनो यथायोग्य कहता हूं पृथ्वी, वायु, आकाश, तेज, जल ॥ २७ ॥ यह देहधारी और स्रष्टाकी सृष्टिके बीज हैं जो देह पृथ्वी आदि पंचभूतका बना है ॥ २८ ॥ वह कृत्रिम और नश्वर है यह यहां ही भस्म होता है परंतु पुरुषाकृति जीव अंगुष्ठप्रमाण शरीरवाला कर्मसे बद्ध है ॥ २९ ॥ यह भोगके निमित्त उस देहको धारण

यथा च प्रज्वलद्वह्नौ शुष्काणि च तृणानि च ॥ प्राप्नोति मोहः संमोहं तांश्च दृष्ट्वा च भीतवत् ॥ २४ ॥ कामश्च कामिनं याति लोभ क्रोधो ततः सति ॥ मृत्युः प्रलीयते रोगो जरा शोको भयं तथा ॥ २५ ॥ कालः शुभाशुभं कर्म हर्षो भोगस्तथैव च ॥ ये ये न यांति तां पीडां कथितास्ते मया सति ॥ २६ ॥ शृणु देहविवरणं कथयामि यथागमम् ॥ पृथिवी वायुराकाशं तेजस्तोयमिति स्फुटम् ॥ २७ ॥ देहिनां देहबीजं च स्रष्टृसृष्टि विधौ परम् ॥ पृथिव्यादिपंचभूतैर्यो देहो निर्मितो भवेत् ॥ २८ ॥ स कृत्रिमो नश्वरश्च भस्मसाच्च भवेदिह ॥ बद्धोऽगुष्ठप्रमाणश्चयो जीवः पुरुषः कृतः ॥ २९ ॥ बिभर्ति सूक्ष्मं देहं तं तद्रूपभोगहेतवे ॥ स देहो न भवेद्भस्म ज्वलदग्नौ ममालये ॥ ३० ॥ जलेन नष्टो देही वा प्रहारे सुचिरं कृते ॥ न शस्त्रेण नवाऽस्त्रेण सुतीक्ष्णकंटके तथा ॥ ३१ ॥ तप्तद्रवे तप्तलोहे तप्तपाषाण एव च ॥ प्रतप्तप्रतिमाश्लेषे यत्पूर्वपतनेऽपि च ॥ ३२ ॥ न दग्धो न च भग्नः स भुंक्ते संतापमेव च ॥ कथितो देहवृत्तांतः कारणं च यथागमम् ॥ ३३ ॥ कुंडानां लक्षणं सर्वं बोधाय कथयामि ते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे षट्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३६ ॥ धर्मराज उवाच ॥ पूर्णेन्दुमंडलाकारं सर्वं कुंडं च वर्तुलम् ॥ निम्नं पाषाणभेदैश्च पाचितं बहुभिः सति ॥ १ ॥

करता है वह देह यमालयकी प्रज्वलित अग्निमें भी भस्म नहीं होता ॥ ३० ॥ जलवा प्रहारसे भी यह नष्ट नहीं होता. शस्त्र, अस्त्र, तीक्ष्ण कंटक ॥ ३१ ॥ उपद्रव, तप्तलोह, तप्तपाषाण, तप्तप्रतिमासे आलिंगन कराने तथा पातन करनेसे ॥ ३२ ॥ दग्ध और भग्न नहीं होता अनेक संताप सहता है यह देहका वृत्तांत और कारण तुमसे कथन किया ॥ ३३ ॥ अब कुंडोंका विवरण करता हूं सुनो ॥ इति श्रीदेवीभावते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ धर्मराज बोले संपूर्ण कुण्ड चन्द्रमाके मंडलके समान गोल हैं और विलक्षण पाषाणरूप अंगारोंसे निरंतर जलते रहते हैं ॥ १ ॥

यह ईश्वरकी इच्छा निर्मित प्रलयपर्यंत अविनाशी रहते हैं वह स्थान पापोंके कारण अनेक क्लेश देनेवाला है ॥ २ ॥ और इसमेंसे जलते अंगारोंसे सौ हाथ ऊंची ज्वाला निकलती है यह अग्निकुण्ड सब ओरसे एक कोशके घेरेमें है ॥ ३ ॥ और महाशब्द करनेवाले पापियोंसे पूर्ण रहता है मेरे दूत निरन्तर रक्षा कर पापियोंको दंड देते हैं ॥ ४ ॥ तप्त जलसे पूर्ण कुण्ड हिंसक जन्तुओंसे पूर्ण है और दृढ़प्रहारसे वहां महाघोर काकु शब्द होता है ॥ ५ ॥ यह आध कोशमें है मेरे पार्षद दूत यहां पापियोंको दण्ड देते हैं एक कुंड तत्ते क्षार जलसे पूर्ण और काकोंसे व्याप्त है ॥ ६ ॥ पापियोंसे युक्त एक एक कोश पर्यंत बड़ा भयानक हैं और मेरे दूतोंसे ताडित हो पापी त्राहि त्राहि(रक्षा करो) यह शब्द करते हैं ॥ ७ ॥ अनाहारसे इनका ओष्ठतालु सूख जाता है इस प्रकार एक

न श्वरं चाऽऽप्रलयं निर्मितं चे श्वरेच्छया ॥ क्लेशदं पातकानां च नानारूपं तदालयम् ॥ २ ॥ ज्वलदंगाररूपं च शतहस्तशिखान्वितम् ॥ परितः क्रोशमानं च वह्निकुंडं प्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥ महाशब्दं प्रकुर्वद्भिः पापिभिः परिपूरितम् ॥ रक्षितं मम दूतैश्च ताडितैश्चापि संततम् ॥ ४ ॥ प्रतप्तोदकपूर्णं च हिंस्रजंतुसमन्वितम् ॥ महाघोरं काकुशब्दं प्रहारेण दृढेन च ॥ ५ ॥ क्रोशार्धमानं तद् दूतैस्ताडितैर्मम पार्षदः ॥ तप्तक्षारोदकैः पूर्णं पुनः काकैश्च संकुलम् ॥ ६ ॥ संकुलं पापिभिश्चैव क्रोशमानं भयानकम् ॥ त्राहीति शब्दं कुर्वद्भिर्मम दूतैश्च ताडितः ॥ ७ ॥ प्रचलद्भिरनाहारैः शुष्ककंठोष्ठतालुकैः ॥ विड्भिरेव कृतं पूर्णं क्रोशमानं च कुत्सितम् ॥ ८ ॥ अतिदुर्गंधिसंसक्तं व्याप्तं पापिभिरन्वहम् ॥ ताडितैर्मम दूतैश्च तदाहारैः सुदारुणैः ॥ ९ ॥ रक्षेतिशब्दं कुर्वद्भिस्तत्कीटैरेव भक्षितैः ॥ तप्तमूत्रद्रवैः पूर्णं मूत्रकीटैश्च संकुलम् ॥१०॥ युक्तं महापातकिभिस्तत्कीटैर्भक्षितैः सदा ॥ गव्यूति मानं ध्वांतावतं शब्द कृद्भिश्च संततम् ॥ ११ ॥ मद्दूतैस्ताडितैर्घोरैः शुष्ककंठोष्ठतालुकैः ॥ श्लेष्मपूर्णं प्रशमितं तत्कीटैः पूरितं तदा ॥ १२ ॥

कुण्ड क्रोशपर्यंत विट्से पूर्ण है ॥ ८ ॥ अति दुर्गंध युक्त है इसमें पापी भरे रहते हैं उस दारुण आहार करानेको पापी उनको ताडन करते रहते हैं ॥ ९ ॥ वहांके कीट उनको भक्षण करते हैं उस समय वे रक्षा करो रक्षा करो इस प्रकारका शब्द करते हैं यह तत्ते मूत्र जलसे पूर्ण और मूत्रके कीटोंसे व्याप्त हैं ॥ १० ॥ कीटोंसे खाये जाते महा पापियोंसे यह कुंड व्याप्त रहता है दो कोशके बीचमें ध्वांत नामक कुंड है जिसमें पापियोंका बड़ा शब्द होता है ॥ ११ ॥ घोर रूप मेरे दूतोंसे ताडित कंठ ओष्ठ तालु सूखनेसे दुःख पाते हैं श्लेष्मासे पूर्ण श्लेष्मकुण्ड है और उसी प्रकारके कीटोंसे व्याप्त है ॥ १२ ॥

और उसीके भोजी पापियोंसे यह वेष्टित रहता है आधे कोशमें गरलकुण्ड है इसमें गरभोजी डाले जाते हैं ॥ १३ ॥ इसके पापी गरलके कीडोंसे भक्षित होते हैं और मेरे दूतोंसे ताडित होकर बड़ा शब्द कर कंपित होते हैं ॥ १४ ॥ जो कि सर्पाकार वज्रसी डाढोंवाले दारुण शुष्ककंठ हैं नेत्रोंके मलसे पूर्ण दूषिकाकुण्ड है यह आधकोशमें हैं ॥ १५ ॥ यह पापियोंसे व्याप्त है इसमें भ्रमण करते कीट इनको भक्षण करते हैं वसाकुंड चारकोश पर्यंत व सारससे पूर्ण है ॥ १६ ॥ इसके भोजन करनेवाले पापियोंको मेरे दूत ताड़ना करते हैं शुक्रकुंड एक कोश परिमाणमें शुक्र कीडोंसे युक्त है ॥ १७ ॥ यहांके पापी निरन्तर इन कीडोंसे खाये जाते हैं रक्त कुंड बड़ा दुर्गंधियुक्त वापीके समान गहरा है ॥ १८ ॥ और उसके भोजी पापियोंसे संकुल कीटोंसे भक्षित होता है नेत्रोंके

तद्भोजिभिः पापिभिश्च वेष्टितं वेष्टितैः सदा ॥ क्रोशार्धं गरकुंडं च गरभोजिभिरन्वितम् ॥१३॥ गरकीटैर्भक्षितैश्च पापिभिः पूर्णमेव च ॥ ताडितैर्मम दूतैश्च शब्दकृद्भिश्च कंपितैः ॥ १४ ॥ सर्पाकारैर्वज्रदंष्ट्रैः शुष्ककंठैः सुदारुणैः ॥ नेत्रयोर्मलपूर्णं च क्रोशार्धं कीटसंयुतम् ॥ १५ ॥ पापिभिः संकुलं शश्वद्भ्रवद्भिः कीटभक्षितैः ॥ वसारसेन संपूर्णं क्रोशतुर्यं सुदुःसहम् ॥ १६ ॥ तद्भोजिभिः पातकिभिर्मम दूतैश्च ताडितैः ॥ शुक्रकुंडं क्रोशमितं शुक्रकीटश्च संयुतम् ॥ १७ ॥ पापिभिः संकुलं शश्वद्भ्रवद्भिः कीट भक्षितैः ॥ दुर्गंधि रक्त वर्णं च वापीमानं गभीरकम् ॥ १८ ॥ तद्भोजिभिः पापिभिश्च संकुलं कीटभक्षितम् ॥ पूर्णं नेत्राश्रुभिस्तप्तं बहुपापिभिरन्वितम् ॥ १९ ॥ वापीतुर्यप्रमाणं च रुदद्भिः कीटभक्षितैः ॥ नृणां गात्रमलैर्युक्तं तद्भक्षैः पापिभिर्युतम् ॥ २० ॥ ताडितैर्ममदूतैश्च व्यग्रैश्च कीटभक्षितैः ॥ कर्णविट्परिपूर्णं च तद्भक्षैः पापिभिर्वृतम् ॥ २१ ॥ पापीतुर्यप्रमाणां च ब्रुवद्भिः कीटभक्षितैः ॥ मज्जापूर्णं नराणां च महादुर्गंधिसंयुतम् ॥ २२ ॥ महापातकिभिर्युक्तं वापीतुर्यप्रमाणकम् ॥ परिपूर्णं स्निग्धमांसैर्मम दूतैश्च ताडितैः ॥ २३ ॥

आसुओंसे भरा अश्रुकुंड अनेक पापियोंसे व्याप्त है ॥ १९ ॥ यह पूर्वोक्त वापीकी प्रमाणमें चौथाई यहां कीटोंसे भक्षित होता रोता है गात्रमलकुंड मनुष्योंके गात्रके मलसे भरा है इसके खाने वाले पापी उसमें पडे रहते हैं ॥ २० ॥ यह यमदूतोंसे ताडित होकर कीटोंके भक्षणसे बडे दुःखी होते हैं कर्णविट्कुंड कानके मैलसे युक्त है यहां पापी यही खाते हैं और वहांके कीडे उनको काटते हैं ॥ २१ ॥ यह पूर्वोक्त बावडीसे विस्तारमें चौथाई है इसमें कीटोंसे भक्षित हो प्राणी रोता है मज्जाकुंड मनुष्योंकी मज्जासे युक्त महा दुर्गंधवाला है ॥ २२ ॥ यह महापातकियोंसे युक्त वापीसे चौथाई परिमाण युक्त है मांसकुंड माससे पूर्ण है यहां यमदूत पापियोंको ताडन करते हैं ॥ २३ ॥

यह वापी मानतक अनेक पापियोंसे व्याप्त होनेसे महाभयानक है इसमें कन्याके बेचनेवाले पडते और वहांके कीट उनको भक्षण करते हैं ॥ २४ ॥ वे बड़े भयानक शब्दसे त्रासित हो हाहाकार करते हैं नखकुंड लोमकुंड अस्थिकुंड यह बावडीसे चतुर्थांश विस्तारवाले हैं ॥ २५ ॥ यह पापियोंसे भरे निरन्तर मेरे दूतोंसे ताडित होते हैं तांबेके ऊपर प्रतप्त ताम्रकुंड है उल्मुकसे युक्त है॥ २६ ॥ इसमें तांबेकी तपाई लाखों प्रतिमा हैं प्रत्येक पापी इनसे चिपटाये जाते हैं तब यह बड़ा शब्द करते हैं ॥ २७ ॥ यह दोकोश के विस्तार में हैं यमदूत यहां पापियों को मारते हैं तप्त लोहधार और जलते अंगारोंसे युक्त लोहकुंड है ॥ २८ ॥ उसमें लोहोंकी गरम प्रतिमाओंसे पापी चिपटाये जाते हैं और गरम प्रतिमाओंमें चिपटनेसे बड़ा रुदन करते हैं ॥ २९ ॥ और दूतोंसे ताड़ित

पापिभिः संकुलं चैव वापीमानं भयानकैः ॥ कन्याविक्रयिभिश्चैव तद्भक्ष्यैः कीटभक्षितैः ॥ २४ ॥ पाहीति शब्दं कुर्वद्भिस्त्रासितैश्च भयानकैः ॥ वापीतुर्यं प्रमाणां च नखादिकचतुष्टयम् ॥ २५ ॥ पापिभिः संयुतं शश्वन्मम दूतैश्च ताडितैः ॥ प्रतप्तताम्रकुण्डं च ताम्रो पर्युल्मुकान्वितम् ॥ २६ ॥ ताम्राणां प्रतिमालक्ष्यैः प्रतप्तैर्व्यापृतं तदा ॥ प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टै रुदद्भिः पापिभिर्युतम् ॥ २७ ॥ गव्यूतिमानं विस्तीर्णं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ प्रतप्तलोहधारं च ज्वलदंगारसंयुतम् ॥ २८ ॥ लोहानां प्रतिमाश्लिष्टै रुदद्भिः पापिभिर्युतम् ॥ प्रत्येकं प्रतिमा श्लिष्टैः शश्वत्प्रज्वलितैर्भिया ॥ २९ ॥ रक्ष रक्षेति शब्दं च कुर्वद्भिर्दूतताडितैः ॥ महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥ ३० ॥ भयानकं ध्वांतयुक्तं लोहकुंडं प्रकीर्तितम् ॥ चर्मकुंडं तप्तसुराकुंडं वाप्यर्धमेव च ॥ ३१ ॥ तद्भोजिपापिभिर्व्याप्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ अतः शाल्मलिकुंडं च वृक्षकंटकशोभितम् ॥ ३२ ॥ लक्षपौरुषमानं च क्रोशमानं च दुःखदम् ॥ धनुर्मानैः कंटकैश्च सुतीक्ष्ण परिवेष्टितम् ॥ ३३ ॥ प्रत्येकं विद्धगात्रैश्च महापातकिभिर्युतम् ॥ वृक्षाग्रान्निपतद्भिश्च मम दूतैश्च पातितैः ॥ ३४ ॥ जलं देहीति शब्दं च कुर्वद्भिः शुष्कतालुकैः ॥ महाभियाऽतिव्यग्रैश्च दण्डैः संभग्नमस्तकैः ॥ ३५ ॥

होकर रक्षा करो २ ऐसा शब्द करते हैं यह दो कोशमें महा पापियोंसे युक्त है ॥ ३० ॥ भयानक अंधकार से युक्त लोहकुंड कहा है चर्मकुंड तप्तसुराकुंड वापीसे आधा है ॥ ३१ ॥ यमदूतोंसे ताडित उनके भोजी पापियोंसे युक्त है यह शाल्मलीकुंड तीक्ष्ण कांटोंसे व्याप्त हैं ॥ ३२ ॥ यह लक्षपुरुष प्रमाण एक कोशमें महा दुःखदायक है और धनुष प्रमाण लम्बे कांटे इसमें भरे पड़े हैं ॥ ३३ ॥ इसके प्रत्येक कंटकमें महापापी विंधे पड़े हैं, यमदूत वृक्षके अग्र भागसे उस कुंडमें धकेलते हैं ॥ ३४ ॥ तालु शुष्क होनेसे जल दो २ ऐसा शब्द करते हैं डरसे व्याकुल और दंडसे शिर चूर्ण किया जाता है ॥ ३५ ॥

और डरसे तेलपायी जीवोंके समान इधर उधर चलायमान होता है विषोदकुंड एक कोशतक तक्षकोंसे पूर्ण है ॥ ३६ ॥ उसके भक्षणवाले जीवों और पापियोंसे वह व्याप्त है मेरे दूत ताडन करते हैं तत्ते तेलका कुंड कीटादि से रहित है ॥ ३७ ॥ यह दग्ध अंगारोंसे वेष्टित महापापियोंसे व्याप्त है और दूतोंके मारनेसे दौडते महाशब्द करते हैं ॥ ३८ ॥ ध्वान्तयुक्त कुंतकुंड क्रोशमान क्लेशदायक बडा भयानक है शूलाकार अग्रमें तीक्ष्ण लोहशस्त्र बरछी समूहोंसे व्याप्त है ॥ ३९ ॥ यहां चार कोशतक बर्छियोंकीही शय्या है वहां बरछियोंसे विंधे पापी भरे पडे हैं ॥ ४० ॥ मेरे दूतोंके ताडन करनेसे उनके कंठ ओष्ठ तालु सूख गये हैं कीट कुण्डमें सर्पाकार शंकुके समान कीट हैं ॥ ४१ ॥ यह तीक्ष्ण दांतोंवाले विकृत अंग अंधकारमें व्याप्त हैं इनमें महापातकी भरे मेरे

प्रचलद्भिर्यथा तप्ततैलजीविभिरेव च ॥ विषोदैस्तक्षकाणां च पूर्वं च क्रोशमानकम् ॥ ३६ ॥ तद्भक्षैः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ प्रतप्ततैल पूर्णं च कीटादिपरिवर्जितम् ॥३७॥ महापातकिभिर्युक्तं दग्धांगारैश्च वेष्टितम् ॥ काकुशब्दं प्रकुर्वद्भिश्चलद्भिर्दूतपीडितैः ॥३८॥ ध्वांतयुक्तं क्रोशमानं क्लेशदं च भयानकम् ॥ शूलाकारैः सुतीक्ष्णाग्रैर्लोहशस्त्रैश्च वेष्टितम् ॥ ३९॥ शस्त्रतल्पस्वरूपं च क्रोशतुर्यप्रमाणकम् ॥ वेष्टितम् तत्पातकिभिः कुंतविद्धैश्च वेष्टितैः ॥ ४० ॥ ताडितैर्मम दूतैश्च शुष्ककंठोष्ठतालुकैः ॥ कीटैश्च शंकुप्रमितैः सर्पमानैर्भयंकरैः ॥ ४१ ॥ तीक्ष्णदंतैश्च विकृतैर्व्याप्तं ध्वांतयुतं सति ॥ महापातकिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ ४२ ॥ द्विगव्यूतिप्रमाणं च पूयकुंडं प्रचक्षते ॥ तद्भक्ष्यैः प्राणिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥४३॥ तालवृक्षप्रमाणैश्च सर्पकोटिभिरावृतम् ॥ सर्ववेष्टितगात्रैश्च पापिभिः सर्पभक्षितैः ॥ ४४ ॥ संकुलं शब्दकृद्भिश्च मम दूतैश्च ताडितैः॥ कुंडत्रयं मशादीनां पूर्णं च मशकादिभिः ॥ ४५ ॥ सर्वं क्रोशार्धमानं च महापातकिभिर्युतम् ॥ हस्तपादादिबद्धैश्च क्षतजौघेन लोहितैः ॥ ४६ ॥ हाहेति शब्दं कुर्वद्भिस्ताडितैर्मम पार्षदैः ॥ वज्रवृश्चिकयोः कुंडं ताभ्यां च परिपूरितम् ॥ ४७ ॥

दूतोंसे ताडित होते हैं ॥ ४२ ॥ चार कोशमें पूयकुण्ड है इसके जीव यहांके प्राणियोंको काटते यही पापी खाते और मेरे दूत इनको ताडन करते हैं ॥४३॥ सर्पकुंड तालवृक्षके समान लम्बे अनंत सर्पोंसे भरा है यहां सर्प पापीके सब शरीरमें लिपटकर उसको भक्षण करते हैं ॥ ४४ ॥ और मेरे दूतोंसे ताडित हो बडा शब्द करते हैं मशककुण्ड दंशकुण्ड गरलकुण्ड यह तीन कुंड मशकादिसे पूर्ण हैं ॥ ४५ ॥ यह सब आधेकोशके परिमाणमें महा पातकियोंसे युक्त है उसमें हाथ पैर बांधकर डालते हैं शरीर लोहू लुहान हो जाता है ॥ ४६ ॥ मेरे दूतोंसे ताडित हो हाहाकार शब्द करते हैं वज्रदंष्ट्रकुंड और वृश्चिककुंड यह इन

दोनोंसे पूर्ण हैं ॥ ४७ ॥ यह प्रमाणमें वापीसे आधे, वापियोंसे युक्त है जहां वज्रके समान विच्छू काटते हैं शरकुंड, शूलकुंड, खड्गकुंड, यह उन्हींसे पूर्ण हैं ॥ ४८ ॥ इनमें इन्हींसे बद्ध हुए पापी रहते हैं यह प्रमाणमें आधी बावडीके हैं और रक्त (रुधिर) से पूर्ण हैं गोल कुंड अंधकारमें तत्ते जल से पूर्ण है ॥ ४९ ॥ अनेक प्रकारके कीटोंसे परिपूर्ण जो पापियोंको भक्षण करते हैं यह भी पापीके अर्ध प्रमाणमें है यहां कीटभक्षित पापी दुःख पाते हैं ॥ ५० ॥ सब प्रकार रोते और दुःखी होते और यमदूत उनको ताडन करते हैं यह अति दुर्गंधिसे संयुक्त पापियोंको सदा दुःख दायक है ॥ ५१ ॥ दारुण विकटाकार पापियोंसे भक्षित नक्रकुंड है यह बावडीसे अर्धपरिमाणमें है,इसके जलमें कोटियों नाके हैं ॥ ५२ ॥ विष्ठा, मूत्र, श्लेष्म, भक्षण करनेवाले अनन्त काकभी जहां

वाप्यर्धं पादिभिर्युक्तं वज्रवृश्चिकदंशितैः ॥ कुंडत्रयं शरादीनां तैरेव परिपूरितम् ॥ ४८ ॥ तैर्विद्धैः पापिभिर्युक्तं वाप्यर्धमानं रक्त लोहितैः ॥ तप्ततोयोदकैः पूर्णं सध्वान्तं गोलकुंडकम् ॥४९॥ कीटैः संकुलमानैश्च भक्षितैःपापिभिर्युतम् ॥ वाप्यर्धं भीतैश्च पापिभिः कीटभक्षितैः ॥ ५० ॥ रुदद्भिः क्रोशमानैश्च मम दूतैश्च ताडितैः ॥ अतिदुर्गंधिसंयुक्तं दुःखदं पापिनां सदा ॥ ५१ ॥ दारुणैर्विकृताकारैर्भक्षितं पापिभिर्युतम् ॥ वाप्यर्धं परिपूर्णं च जलस्थैर्नक्रकोटिभिः ॥ ५२ ॥ विण्मूत्रश्लेष्मभक्षैश्च संयुतं शत कोटिभिः ॥ काकैश्च विकृताकारैर्भक्षितैः पापिभिर्युतम् ॥ ५३ ॥ मंथानकुंडं बीजकुंडं ताभ्यां पूर्णं धनुःशतम् ॥ भक्षितैः पापिभिर्युक्तं शब्दकृद्भिश्च संततम् ॥ ५४ ॥ धनुःशतं जीवयुक्तं पापिभिः संकुलं सदा ॥ शब्दकृद्भिर्वज्रदंष्ट्रैः सांद्रध्वांतमयं परम् ॥ ५५ ॥ वापीद्विगुणमानं च तप्तप्रस्तरनिर्मितम् ॥ ज्वलदङ्गारसदृशं चलद्भिः पापिभिर्युतम् ॥ ५६ ॥ क्षुरधारोपमैस्तीक्ष्णैः पाषाणैर्निर्मितं परम् ॥ मापातहकिभिर्युक्तं लालकुण्डं च लोहितैः ॥ ५७ ॥ क्रोशमात्रं च गंभीरं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ तप्तांजनाचलाकारैः परिपूर्णं धनुःशतम् ॥ ५८ ॥

पापियोंको भक्षण करते हैं ॥ ५३ ॥ मंथानकुंड और बीजकुंड, मंथान और बीज नामक कीटोंसे व्याप्त है सौ धनुषके प्रमाणमें है यह. उनसे भक्षितहो पापी बड़ाशब्द करते हैं ॥ ५४ ॥ सौ धनुषमें जीवोंसे जिनकी दंष्ट्रा वज्रके आकार युक्त हैं यह पापियोंको भक्षण करते जिनका बड़ा शब्द होता है और वहां बड़ा अंधकार है ॥ ५५ ॥ पाषाणकुंड वापी मानसे बना तत्ते पत्थरका है जलते अंगारके समान भूमिपर दौडते हुए पापियोंसे युक्त है ॥ ५६ ॥ क्षुरधारके समान तीक्ष्ण पाषाणोंसे निर्मित तीक्ष्ण पाषाणकुंड हैं लोहितयुक्त प्राणियोंसे युक्त लाला कुंड है ॥ ५७ ॥ यह एक कोश पर्यंत गहरा है मेरे दूत यहां पापियोंको दण्ड देते हैं मसीकुण्ड तप्तांजन पर्वतके समानवाले पाषाणोंसे व्याप्त है सौ धनुषपरिमाणमें है ॥ ५८ ॥

इसमें अनेक पापी पडते और मेरे दूत उनको दंड देते हैं यह चूर्ण द्रव्यसे पूर्ण चिल्लाते हुए पापियोंसे युक्त हैं ॥ ५९ ॥ यहीं भोजन करनेको मिलता बड़े प्रदग्ध होते मेरे दूत उनको मारते हैं कुलालचक्रकुंड निरंतर भ्रमण करता रहता है ॥६०॥ यह बड़ा तीक्ष्ण सोलह अरोंसे सम्पन्न चूर्णीभूत हुए पापियोंसे युक्त है बडाही टेढानिम्न चार कोशकेमध्यमें है ॥६१॥ कन्दराके आकारमें निर्मित तत्ते जलोंसे व्याप्त जलजंतुओंसे युक्त महापापियोंसे भरा हुआ है ॥ ६२॥ जहांके पापी प्रज्वलित होकर भयानक शब्द करते हैं महा अंधकार है, कूर्मकुंड अनेक विकृत आकारवाले दारुण कच्छपोंसे भरा है ॥ ६३ ॥ जो अपने जलमें पडे पापियोंको निरंतर भक्षण करते हैं ज्वालाकुण्ड अग्निके समान तेजवाले पदार्थोंसे निर्मित एक कोशपर्यंत है ॥ ६४ ॥ शब्द करनेवाले क्लेश पाये

चलद्भिः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥ पूर्णं चूर्णद्रवैः क्रोशमानं पापिभिरन्वितम् ॥ ५९ ॥ तद्भोजिभिः प्रदग्धैश्च मम दूतैश्चताडितैः ॥कुण्डं कुलालचक्रं च घूर्णमानं च संततम् ॥ ६० ॥ सुतीक्ष्णं षोडशारं च चूर्णितैः पापिभिर्युतम् ॥ अतीव वक्रं निम्नं च द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥ ६१ ॥ कंदराकरनिर्माणं तप्तोदैश्च समन्वितम् ॥ महापातकिभिर्युक्तं भक्षितैर्जलजंतुभिः ॥ ६२ ॥ ज्वलद्भिः शब्दकृद्भिश्च ध्वांतयुक्तं भयानकम् ॥ कोटिभिर्विकृताकारैः कच्छपैश्च सुदारुणैः ॥ ६३ ॥ जलस्थैः संयुतं तैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम् ॥ ज्वालाकलापैस्तेजोभिर्निर्मितैः क्रोशमानकम् ॥ ६४ ॥ शब्दकृद्भिः पातकिभिः संयुतं क्लेशदं सदा ॥ क्रोशमानं च गंभीरं तप्तभस्माभिरन्वितम् ॥ ६५ ॥ शश्वज्ज्वलद्भिः संयुक्तं पापिभिर्भस्मभक्षितैः ॥ तप्तपाषाणलोहानां समूहैः परिपूरितैः ॥ ६६ ॥ पापिभिर्दग्धगात्रैश्च युक्तं च शुष्कतालुकैः ॥ क्रोशमानं ध्वांतयुक्तं गंभीरमतिदारुणम् ॥ ६७ ॥ ताडितैश्च प्रदग्धैश्च दग्धकुण्डं प्रकीर्तितम् ॥ अतीवोर्मियुतं तोयं प्रतप्तक्षारसंयुतम् ॥ ६८ ॥ नानाप्रकारैर्विरुतैर्जलजंतुभिरन्वितम् ॥ द्विगव्यूतिप्रमाणं च गंभीरं ध्वांतसंयुतम् ॥६९॥

हुए पापियोंसे निरंतर व्याप्त है, भस्मकुंड एक कोशपर्यंत गहरे तत्तीभस्मसे युक्त है ॥६५॥ निरंतर भस्म होनेवाले और भस्म खानेवाले पापियोंसे युक्त है तत्ते पाषाण और लोह समूहोंसे परिपूर्ण है ॥६६॥ दग्धकुण्डमें दग्धगात्र हुये जीव रहते हैं और उनके कंठ तालु सूखजाते हैं यह कुंड एक कोशपर्यंत अंधकार मय बड़ा गंभीर और दारुण है ॥६७॥ यहां मेरे दूत पापियोंको मारते और दग्ध करते हैं,उससे यह दग्धकुंड कहाता है क्षारकुंड बडी २ लहरोंवाला तत्ते क्षारसे संयुक्त है ॥ ॥ ६८ ॥ अनेक प्रकारके शब्द करनेवाले जलजंतुओंसे सम्पन्न दो गव्यूती (चार कोश) के प्रमाणमें गम्भीर अंधकारसे युक्त है ॥ ६९ ॥

वहांके जीव पापियोंको दुःख देते और काटते हैं यह जलते और शब्द करते परस्पर एक दूसरेको देखते हैं ॥ ७० ॥ प्रतप्त सूचीकुंड बड़ा भयानक है असिपत्रकुंड असिपत्रके समान धारवाले पत्तोंसे सम्पन्न ताल वृक्षके नीचे है ॥ ७१ ॥ यह इन्हीं पत्तोंसे युक्त आधे कोशके मध्यमें है और वृक्षाग्र से गिराये जाते पापियोंके रुधिरसे व्याप्त है ॥ ७२ ॥ रक्षा करो इस प्रकार असत् पुरुष शब्द करते हैं वो कुंड गंभीर ध्वांतयुक्त रक्तकीटसे सम्पन्न है ॥ ७३ ॥ यह असिपत्रकुंड बड़ा भयानक है क्षुरधाराकुंड सौधनुषके प्रमाणमें तीक्ष्ण अस्त्रोंसे व्याप्त है ॥ ७४ ॥ यह पापियोंके रक्तसे पूर्ण भयानक क्षुरधाराओंसे सम्पन्न है सूचीमुखकुंड अस्त्रोंसे परिपूर्ण पापियोंके रक्तोंसे पूर्ण है ॥ ७५ ॥ यह परिमाणमें पचास धनुष, पापियोंको बड़ा क्लेशकारक है गोकानामक जन्तुविशेषके मुखके

तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं दंशितैर्जलजंतुभिः ॥ ज्वलद्भिः शब्दकृद्भिश्च न पश्यद्भिः परस्परम् ॥ ७० ॥ प्रतप्तसूचीकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम् ॥ असीवधारा पत्रस्याऽप्युच्चैस्तालतरोरधः ॥ ७१ ॥ क्रोशार्धमानं कुण्डं च पतत्पत्रसमन्वितम् ॥ पापिनां रक्तपूर्णं च वृक्षाग्रात्पततां ध्रुवम् ॥ ७२ ॥ परित्राहीतिशब्दं च कुर्वतामसतामपि ॥ गम्भीरं ध्वान्तयुक्तं च रक्तकीटसमन्वितम् ॥ ७३ ॥ तदसीपत्रकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम् ॥ धनुः शतप्रमाणं च क्षुरधारास्त्रसंयुतम् ॥ ७४ ॥ पापिनां रक्तपूर्णं च क्षुरधारं भयानकम् ॥ सूचीमुखास्त्रसंयुक्तं पापिरक्तौघपूरितम् ॥ ७५ ॥ पञ्चाशद्धनुरायामं क्लेशदं च सुचीमुखम् ॥ कस्यचिज्जंतुभेदस्य गोकाख्यस्य मुखाकृति ॥ ७६ ॥ कूपरूपं गभीरं च धनुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥ महापातकिनां चैव महाक्लेशप्रदं परम् ॥ ७७ ॥ तत्कीटभक्षितानां च नम्रास्यानां च संततम् ॥ कुण्डं नक्रमुखाकारंधनुः षोडशमानकम् ॥ ७८ ॥ गम्भीरं कूपरूपं च पापिनां संकुलं सदा ॥ धनुःशतप्रमाणं च कीर्तितं गजदंशनम् ॥ ७९ ॥ धनुस्त्रिंशत्प्रमाणं च कुण्डं च गोमुखाकृति ॥ पापिनां क्लेशदं शश्वद्गोमुखं परिकीर्तितम् ॥ ८० ॥ कालचक्रेण संयुक्तं भ्रममाणं भयानकम् ॥ कुंभाकारं ध्वान्तयुक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥ ८१ ॥

समान गोकामुख नरक है ॥ ७६ ॥ यह कूपके समान बड़ा गंभीर वीस धनुषके प्रमाणमें है यह महा पातकियोंको बड़ा क्लेशदेनेवाला है ॥ ७७ ॥ वहां गोकामुख नामवाले कीट पापियोंको भक्षण करते हैं वहां जीव निरंतर नम्र मुख रहते हैं नक्रमुखाकारकुंड सोलह धनुषके प्रमाणमें है ॥ ७८ ॥ यह कूपके समान गंभीर पापियोंसे सम्पन्न है गजदंशनकुंड सौ धनुषके प्रमाणमें है इसमें भी पापी दुःखपाते हैं ॥ ७९ ॥ गोमुखाकृतिकुंड तीस धनुषके प्रमाणमें है यह गोमुख निरंतर पापियोंको क्लेश देता है ॥ ८० ॥ कुंभीपाककुंड कालचक्रके समान भ्रमण करता कुंभके आकार अंधकार युक्त चार कोशमें है ॥ ८१ ॥

यह लाख पुरुषप्रमाण गंभीर और बडे विस्तारमें है इसमें पापी दुःख पाते हैं इसके अन्तर्गत कहीं तेल और कहीं ताम्रकुंड है ॥ ८२ ॥ यह कृमियोंसे भरा है प्रधान पापी उसमें मूर्छित पड़े रहते हैं सब ओरसे शब्द करते परस्पर नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ८३ ॥ यहां यमदूत मूशल और मुद्गरोंसे ताडन करते हैं घूर्णमान और पतित होते क्षण क्षण मूर्छित होते हैं ॥ ८४ ॥ और यमदूतोंसे पतित होते हुए रुदन करते हैं.हे सुन्दरि ! सब कुंडमें जितने पापी हैं ॥ ८५ ॥ कुंभीपाकमें इनसे चौगुने पापी रहते हैं वे इस दुःखदायक नरकमें चिरकाल तक अपने कर्मोंका भोग भोगते हैं ॥ ८६ ॥ यह कुंभीपाक सब कुंडोंमें प्रधान कहा है कालसूत्र नरकमें कालनिर्मित सूत्रसे पापी बंधे रहते हैं ॥ ८७ ॥ क्षणमात्रमें दूत ऊपरको उछालते और क्षणमें डुबा देते हैं. बहुत कालतक निश्वासबद्ध

लक्षपौरुषमानं च गंभीरविस्तृतं सति ॥ कुत्र चित्तप्ततैलं च ताम्रादिकुंडमेव च ॥ ८२ ॥ पापिनां च प्रधानैश्च मूर्छितैश्चः कृमिभिर्युतम् ॥
परस्परं च नश्यद्भिः शब्दंकृद्भिश्च संततम् ॥ ८३ ॥ ताडितैर्यमदूतैश्च मुसलैर्मुद्गरैस्तथा ॥ घूर्णमानैः पतद्भिश्च मूर्च्छितैश्च क्षणंक्षणम्
॥ ८४ ॥ पातितैर्यमदूतैश्च रुदंत्यस्मात्क्षणं पुनः ॥ यावंतः पापिनां संति सर्वकुण्डेषु सुन्दरि ॥ ८५ ॥ ततश्चतुर्गुणाः संति कुम्भीपाके
च दुःखदे ॥ सुचिरं वध्यमानास्ते भोगदेहा न नश्वराः ॥ ८६ ॥ सर्वकुण्डं प्रधानं च कुंभीपाकं प्रकीर्तितम् ॥ कालनिर्मितसूत्रेण
निबद्धा यत्र पापिनः ॥ ८७ ॥ उत्थापिताश्चदूतैश्च क्षणमेव निमज्जिताः ॥ निःश्वासबद्धाः सुचिरं तथा मोहं गताः पुनः ॥ ८८ ॥
अतीव क्लेशसंयुक्ता देयभोगेन सुन्दरि ॥ प्रतप्ततोययुक्तं च कालसूत्रप्रकीर्तितम् ॥ ८९ ॥ अवटः कूपभेदश्च मत्स्योदः स उदाहृतः ॥
प्रतप्ततोयपूर्णं च चतुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥ ९० ॥ व्याप्तं महापातकिभिर्याग्दधांगैश्च संततम् ॥ मद्दूतैस्ताडितैः शश्वदवटोदं प्रकीर्तितम्
॥ ९१ ॥ यत्रोदस्पर्शमात्रेण सर्वव्याधिश्च पापिनाम् ॥ भवेदकस्मात्पततां यस्मिन्कुंडे धनुःशते ॥ ९२ ॥ अरुंतुदैर्भक्षितैस्तु प्राणिभि
र्यच्च संकुलम् ॥ हाहेति शब्दं कुर्वद्भिस्तदेवांरुंतुदं विदुः ॥ ९३ ॥

होकर मोहको प्राप्त हो जाते हैं. ॥ ८८ ॥ हे सुन्दरि ! वह देह भोगके कारण दुःख पाते हैं यह कालसूत्रनरक तप्ते जलसे पूर्ण है ॥ ८९ ॥ अवट गर्तसमान कूपके भेदवाला मत्स्योदकुंड है यह भी तप्तजलसे भरा चौबीस धनुषके प्रमाणमें है ॥ ९० ॥ दग्ध अंगवाले महापातकियोंसे व्याप्त है और मेरे दूतोंद्वारा वे ताडित होते हैं और दुःख पाते हैं ॥ ९१ ॥ जिसके स्पर्श करते ही गिरते हुये पापियोंकी सब व्याधी एकसाथ प्राप्त हो जाती है यह सौ धनुष प्रमाण कुंड है ॥ ९२ ॥ और कृमि कंतुक कुंडमें इसीनामके जीव पापियोंको दुःख देते हैं वह मर्म स्थान छेदन होनेसे हाहाकार शब्द करते हैं ॥ ९३ ॥

पांसुभोज्यकुण्ड तत्ती धूलिसे भरा, जलती हुई भूमिसे व्याप्त सौ धनुषके प्रमाणमें है. यहांके जीवोंको तुष भक्षण कराई जाती है ॥ ९४ ॥ पाशसे वेष्टनकुंडमें गिरते प्राणी पाश वेष्टित हो जाता है यह पाश वेष्टनकुंड एक कोश पर्यन्त है ॥ ९५ ॥ शूलकुण्डमें गिरतेही पापी शूलसे वेष्टित होता है. यह शूलप्रोत कुण्ड बीस धनुषके प्रमाणमें है ॥ ९६ ॥ प्रकंपनकुण्डमें गिरते ही प्राणी कंपित होता है. यह बड़े शीतल जलका कुण्ड आधे कोशमें है ॥ ९७ ॥ जिसमें यमदूत पापियोंके मुखमें उल्का देते हैं. यह बीस धनुषके प्रमाणमें उल्का मुख नरक है ॥ ९८ ॥ अंधकूपकुण्ड लाख पुरुषके प्रमाण गहरा, सौ धनुषमें विस्तारवाला अनेक प्रकारके कृमियोंसे व्याप्त बड़ा भयानक है ॥ ९९ ॥ अधिक अंधकारसे व्याप्त गोल कूपाकार है और वहां वैसेही जीव पापियोंको भक्षण करते हैं व जीवगण परस्पर नष्ट

तप्तपांसुभिराकीर्णं ज्वलद्भिस्तुषदग्धकैः ॥ तद्भक्षैः पापिभिर्युक्तं पांसु भोजधनुःशतम् ॥ ९४ ॥ पातमात्रेण पापी च पाशेन वेष्टितो भवेत् ॥ क्रोशमात्रेण कुंभं च तत्पार्श्ववेष्टनं विदुः ॥ ९५ ॥ पातमात्रेण पापी च शूलेन वेष्टितो भवेत् ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणं च शूल प्रोतं प्रकीर्तितम् ॥ ९६ ॥ पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकंपनम् ॥ अतीव हिम तोयाक्तं क्रोशार्धं च प्रकंपनम् ॥ ९७ ॥ ददत्येव हि मे दूता यत्रोल्काः पापिनां मुखे ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणं तदुल्काभिश्च सुसंकुलम् ॥ ९८ ॥ लक्षपौरुषमानं च गंभीरं च धनुःशतम् ॥ नानाप्रकार कृमिभिः संयुक्तं च भयानकम् ॥ ९९ ॥ अत्यंधकारव्याप्तं च कूपाकारं च वर्तुलम् ॥ तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं प्रणश्यद्भिः परस्परम् ॥ १०० ॥ तप्ततोयप्रदग्धैश्च ज्वलद्भिः कीटभक्षितैः ॥ ध्वांतेन चक्षुषा चांधैरंध कूपः प्रकीर्तितः ॥ १ ॥ नानाप्रकारशस्त्रौघैर्यत्र विद्धाश्च पापिनः ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणं च वेधनं तत्प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥ दंडेन ताडिता यत्र मम दूतैश्च पापिनः ॥ धनुःषोडशमानं च तत्कुंडं दंडताडनम् ॥ १०३ ॥ निरुद्धाश्च महाजालैर्यथा मीनाश्च पापिनः ॥ धनुर्विंशत्प्रमाणं च जालरंध्रं प्रकीर्तितम् ॥ १०४ ॥ पततां पापिनां कुंडे देहश्चचूर्णो भवेदिह ॥ लोहबंदीनि बद्धानां कोटिपौरुषमानकम् ॥ १०५ ॥

होते हैं ॥ १०० ॥ तत्ते जलमें दग्ध होने और कीटोंके सम्मुख भक्षित होनेसे तथा नेत्रोंसे निरंतर अंधकार रहनेसे इसको अंधकूप कहते हैं ॥ १०१ ॥ जहां अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे पापी विद्ध होते हैं वहां बीस धनुषके प्रमाणमें वेधन नामवाला नरक है ॥ २ ॥ जहां यमदूत पापियोंको निरंतर दण्डसे ताडित करते हैं वह सोलह धनुष प्रमाण दंडताडनकुंड है ॥ ३ ॥ जिसमें पापी मच्छियोंके समान जालमें बाँधे जाते हैं वहां बीस धनुषके प्रमाणमें जालरन्ध्र नाम कुंड है ॥ ४ ॥ जहां गिरतेही पापियोंका देह चूर्ण हो जाता है जहां पापी लोहेकी वेडीमें बाँधे जाते हैं कोटि पुरुषोंके मानवाला ॥ ५ ॥

गंभीर अंधकारसे युक्त वीस धनुषके समान विस्तारवाला मूर्छित जड़ पापियोंसे युक्त देहचूर्ण नरक कहा है ॥ ६ ॥ और जहां यमदूतोंसे ताडित हो पापी दलित होते हैं वह सोलह धनुषके प्रमाणमें दलनकुंड है ॥ ७ ॥ जहां गिरतेही पापीके कंठ ओष्ठ तालु शुष्क होजाते हैं जहां तत्ती वालुका है तीस धनुषके प्रमाणवाला ॥ ८ ॥ सौ पुरुषमान गहरा अंधकारसे युक्त दूसरेको दुःख देनेवाले पापियोंको दुःखदायक शोषणकुंड है ॥ ९ ॥ अनेक प्रकारके चर्म कषायके जलसे पूर्ण सौ धनुषके प्रमाणमें दुर्गन्धसे युक्त और वहांके भक्षण करने वाले प्राणियोंसे व्याप्त कुषकुण्ड है ॥ ११० ॥ शूर्पकुण्ड शूर्पाकार बारह धनुषके प्रमाणमें है यह तत्ते लोहेकी वालुकासे युक्त पूर्ण पातकियोंसे भरा हुआ ॥ ११ ॥ दुर्गन्धसे युक्त यही वस्तु खानेवाले पापियोंसे संकुल यह शूर्पकारमुख

गंभीरध्वांतसंयुक्तं धनुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥ मूर्छितानां जडानां च देहचूर्णं प्रकीर्तितम् ॥ १०६ ॥ दलिताः पापिनो यत्र मम दूतैश्च ताडिताः ॥ धनुःषोडशमानं च तत्कुण्डं दलनं स्मृतम् ॥ १०७ ॥ पतनेनैव पापी च शुष्ककंठोष्ठतालुकः ॥ वालुकासु च तप्तासु धनुस्त्रिंशत्प्रमाणकम् ॥ ८ ॥ शतपौरुषमानं च गम्भीरं ध्वांतसंयुतम् ॥ पोषणं कुण्डमेतद्धि पापिनां परदुःखदम् ॥ ९ ॥ नानाचर्मकषायोदपरिपूर्णं धनुःशतम् ॥ दुर्गन्धियुक्तं तद्भक्ष्यैः प्राणिभिः संकुलं कषम् ॥ ११० ॥ शूर्पाकारमुखं कुण्डं धनुर्द्वादशमानकम् ॥ तप्तलोहवालुकाभिः पूर्णं पातकि संयुतम् ॥ ११ ॥ दुर्गंधियुक्तं तद्भक्ष्यैः पापिभिः संकुलं सति ॥ शूर्पाकारमुखं कुण्डं धनुर्द्वादशमात्रकम् ॥ १२ ॥ प्रतप्तवालुकापूर्णं महापातकिभिर्युतम् ॥ अंतरग्निशिखानां च ज्वालाव्याप्तमुखं सदा ॥ १३ ॥ धनुर्विंशतिमात्रं च प्रमाणं यस्य सुन्दरि ॥ ज्वाला भिर्दग्धगात्रैश्च पापिभिर्व्याप्तमेव च ॥ १४ ॥ तन्महाक्लेशदेशश्वत्कुण्डे ज्वालामुखे स्मृतम् ॥ पातमात्राद्यत्र पापीमूर्छितो वै नरो भवेत् ॥ ११५ ॥ तप्तेष्टकाभ्यं तरितं वाप्यर्धं जिह्म कुंडकम् ॥ धूम्रांधकारसंयुक्तं धूम्रांधैः पापिभिर्युतम् ॥ १६ ॥ धनुःशतं श्वासरन्ध्रे धूम्रांधं परिकीर्तितम् ॥ पातमात्राद्यत्र पापी नागैश्च वेष्टितो भवेत् ॥ १७ ॥

कुण्ड बारह धनुषके विस्तारमें है ॥ १२ ॥ ज्वालामुखकुंड तत्ती वालुसे व्याप्त महा पापियोंसे युक्त अंतरमें अग्नि शिखा और मुखपर भी ज्वालासे व्याप्त ॥ १३ ॥ जिसका वीस धनुषका प्रमाण है और ज्वालासे दग्ध शरीर हुए पापियोंसे संकुल ॥ १४ ॥ यह महाक्लेश देनेवाला ज्वालामुखकुंड है जहां गिरतेही पापी मूर्छित होते हैं ॥ १५ ॥ धूम्रांधकुंड तत्ती ईटोंके अंतरमें अर्धजिह्म धूम्र अंधकारसे संयुक्त धूम्रांध पापियोंसे युक्त है ॥ १६ ॥ यह सौ धनुषके प्रमाणमें स्वांसरंध होनेसे धूम्रांध कहाता है और जहां गिरतेही पापी नागोंसे वेष्टित होता है ॥ १७ ॥

वह सौ धनुषमें नागोंसे पूर्ण नागवेष्टितकुंड है यह मैंने ८६ छयासी कुंडोंका तुमसे वर्णन किया ॥ ११८ ॥ और उनका लक्षण भी कहा अब क्या सुननेकी इच्छा है ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ सावित्री बोली अब आप सारोंकी सार देवीभक्तिमुझको प्रदान कीजिये जो पुरुषोंके मुक्तिद्वारका बीज और नरकसागरसे तारनेवाली है ॥ १ ॥ मुक्तिसारोंकी कारण सम्पूर्ण अशुभों की विनाशक कर्मरूपी वृक्षकी निवारक और किये पापसमूहोंके विनाशक है ॥ २ ॥ और मुक्ति कितने प्रकारकी हैं उनके लक्षण क्या हैं तथा भक्तिका स्वरूप और भेद कितने हैं और किये

धनुःशतं नागपूर्णं तन्नागैर्वेष्टितं भवेत् ॥ षडशीति च कुंडानि मयोक्तानि निशामय ॥ लक्षणं चाऽपि तेषां च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ११८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे न० स्कन्धे नारदनारायणसंवादे सावित्र्युपाख्याने सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ सावित्र्युवाच ॥ देविभक्तिं देहि मह्यं साराणां चैव सारकम् ॥ पुंसां मुक्तिद्वारबीजं नरकार्णवतारकम् ॥ १ ॥ कारणं मुक्तिसाराणां सर्वाशुभविनाशनम् ॥ दारकं कर्मवृक्षाणां कृतपापौघहारणम् ॥ २ ॥ ॥ मुक्तिश्च कतिधाप्यस्ति किंवा तासां च लक्षणम् ॥ देविभक्तिं भक्तिभेदं निषेकस्याऽपि खंडनम् ॥ ३ ॥ तत्त्वज्ञान विहीना च स्त्रीजातिर्विधिनिर्मिता ॥ किंचिज्ज्ञानं सारभूतं वद वेदविदांवर ॥ ४ ॥ सर्वं दानं च यज्ञश्च तीर्थस्नानं व्रतं तपः ॥ अज्ञानिज्ञानदानस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ ५ ॥ पितुः शतगुणा माता गौरवे चेति निश्चितम् ॥ मातुः शतगुणः पूज्यो ज्ञानदाता गुरुः प्रभो ॥ ६ ॥ धर्मराज उवाच ॥ पूर्णं सर्वोवरो दत्तो यस्ते मनसि वांछितः ॥ अधुना शक्तिभक्तिस्ते वत्से भवतु मद्वरात् ॥ ७ ॥

कर्मोंका भोग किस प्रकार खण्डन होता है सो कहिये ॥ ३ ॥ विधाताने स्त्री जातिको तत्त्वज्ञानसे विहीन कहा है. हे वेदविदांवर ! सो आप सारभूत कुछ ज्ञान कहिये ॥ ४ ॥ सर्व दान, यज्ञ, तीर्थ स्नान, तप, व्रत यह अज्ञानीको ज्ञान प्रदान करनेकी सोलहवीं कला भी नहीं है ॥ ५ ॥ गौरवमें पितासे माता सौ गुनी है यह निश्चय है, परंतु हे प्रभो ! ज्ञानदाता गुरु मातासे सौ गुण पूज्य है ॥ ६ ॥ धर्मराज बोले हमने पहले तुमको वर दिया है, कि जो तुम्हारे मनमे इच्छित है सो प्राप्त होगा अब मेरे वरसे तुमको भगवतीकी भक्ति भी प्राप्त होगी ॥ ७ ॥

हे कल्याणि ! अब तुम देवीके गुण कीर्तन सुननेके योग्य हो जो वक्ता पृच्छक और सुननेवालोंके कुल तारण करनेवाली है ॥ ८ ॥ शेषजी जिसको सहस्र मुखसे नहीं कह सकते शंकर जिसको पंचमुखसे नहीं कह सकते ॥ ९ ॥ चारों वेदोंके धाता जगतके रचनेवाला विधाता ब्रह्मा चार मुखसे तथा सर्ववित् विष्णुभी पूर्णतया कहनेको समर्थ नहीं हैं ॥ १० ॥ कार्तिकेय छःमुखसे गणेश तथा योगींद्रोंके गुरु भी कहनेको समर्थ नहीं है ॥ ११ ॥ सब शास्त्रोंके सारभूत चार वेद हैं तथा दूसरे पंडित जिसके गुणोंकी कलामात्रभी नहीं जानते हैं ॥ १२ ॥ जिनके गुणवर्णनमें सरस्वतीभी जडीभूत हो रही है. सनत्कुमार, धर्म, सनन्दन, सनातन ॥ १३ ॥ सनक, कपिल, सूर्य तथा दूसरे ब्रह्माजीके पुत्र यह चतुर भी जिनके गुण नहीं कह सकते फिर दूसरे जड़बुद्धियोंकी कौन कहे

श्रोतुमिच्छसि कल्याणि श्रीदेवीगुणकीर्तनम् ॥ वक्तॄणां पृच्छकानां च श्रोतॄणां कुलतारणम् ॥ ८ ॥ शेषो वक्रसहस्रेण नहि यद्वक्तु मीश्वरः ॥ मृत्युंजयो न क्षमश्च वक्तुं पंचमुखेन च ॥९॥ धाता चतुर्णां वेदानां विधाता जगतामपि ॥ ब्रह्मा चतुर्मुखेनैव नाऽलंविष्णुश्च सर्ववित् ॥ १० ॥ कार्त्तिकेयः षण्मुखेन नाऽपि वक्तुमलं ध्रुवम् ॥ न गणेशः समर्थश्च योगींद्राणां गुरोर्गुरुः ॥ ११ ॥ सारभूताश्च शास्त्राणां वेदाश्चत्वार एव च॥ कलामात्रं यद्गुणानां न विदंति बुधाश्च ये ॥१२॥ सरस्वती जडीभूता नाऽलं तद्गुणवर्णने ॥ सनत्कुमारो धर्मश्च सनंदश्च सनातनः ॥१३॥ सनकः कपिलः सूर्यो येऽन्ये च ब्रह्मणः सुताः ॥ विचक्षणा न यद्वक्तुं किं चान्ये जडबुद्धयः ॥ १४ ॥ न यद्वक्तुं क्षमाः सिद्धा मनींद्रा योगिनस्तथा ॥ के चाऽन्ये च वयं के वा श्रीदेव्यागुणवर्णने ॥ १५ ॥ ध्यायन्ते यत्पदांभोजं ब्रह्म विष्णुशिवादयः ॥ अतिसाध्यं स्वभक्तानां तदन्येषां सुदुर्लभम् ॥ १६ ॥ कश्चित्किंचिद्विजानाति तद्गुणोत्कीर्तनं शुभम् ॥ अतिरिक्तं विजानाति ब्रह्मा ब्रह्मविशारदः ॥ १७ ॥ ततोऽतिरिक्तं जानाति गणेशो ज्ञानिनां गुरुः ॥ सर्वातिरिक्तं जानाति सर्वज्ञः शंभुरेव सः ॥ १८ ॥ तस्मै दत्तं पुरा ज्ञानं कृष्णेन परमात्मना ॥ अतीव निर्जनेऽरण्ये गोलोकं रासमण्डले॥ १९ ॥

॥ १४ ॥ जिन देवीके गुण कहनेको सिद्ध मुनींद्र भी समर्थ नहीं तो मैं तथा दूसरे क्या कह सकते हैं? ॥ १५ ॥ ब्रह्मा विष्णु, शिवादि जिनके चरणकमलोंको ध्यान करते हैं वह केवल भक्तोंकोही अतिशय साध्य है और दूसरोंको अतिशय दुर्लभ है ॥ १६ ॥ कोईही कुछ उनके गुणोंका कीर्तन जानता है पर हाँ ब्रह्मविशारद ब्रह्माजी कुछ विशेष जानते हैं ॥ १७ ॥ उनसे अधिक गणेश ज्ञानियोंके गुरु जानते हैं और सबसे अधिक सर्वज्ञ शंकर जानते हैं ॥ १८ ॥ परमात्मा कृष्णने उनको पहिले ज्ञान दिया था जो अतिशय निर्जनवन गोलोकके रासमण्डलमें ॥ १९ ॥

यह ज्ञान कहा था और शिवलोकमें शंकरके धर्मके निमित्त यह ज्ञान कहा था ॥ २० ॥ धर्मने पूछनेपर सूर्यसे कहा था जिसको सुनकर हमारे पिताने तपसे आराधनकर देवीको प्राप्त किया ॥ २१ ॥ प्रथम मुझको देवताओंके यह अधिकार देनेपर मैंने यह स्वीकार न किया और वैराग्ययुक्त होकर मैंने तपस्या करनेके निमित्त वन जानेकी इच्छा की ॥ २२ ॥ तब हमारे पिताने हमसे वह दुर्लभ ज्ञान कहा सो मैं तुमसे कहता हूं तुम सुनो ॥ २३ ॥ स्वयं वह भगवती भी अपने गुणोंको नहीं जानती औरोंकी तो क्या कथा है. हे वरानने ! जैसे आकाश अपना अन्त नहीं जानता ॥ २४ ॥ इसी कारण सर्वात्मा भगवान् सबके

तत्रैव कथितं किंचित्तद्गुणोत्कीर्तनं शुभम् ॥ धर्मं च कथयामास शिवलोके शिवः स्वयम् ॥ २० ॥ धर्मस्तु कथयामास भास्वते पृच्छते तथा ॥ यमाराध्य मत्पिताऽपि संप्राप तपसा सति ॥ २१ ॥ पूर्वं स्वं विषयंचाऽहं न गृह्णामिप्रयत्नतः ॥ वैराग्ययुक्ततपसे गंतुमिच्छामि सुव्रते ॥ २२ ॥ तदा मां कथयामास पिता तद्गुणकीर्तनम् ॥ यथा गमं तद्वदामि निबोधाऽतीव दुर्गमम् ॥ २३ ॥ तद्गुणं सा न जानाति तदन्यस्य च का कथा ॥ यथाकाशो न जानाति स्वांतमेव वरानने ॥ २४ ॥ सर्वात्मा सर्वभगवान्सर्वकारणकारणः ॥ सर्वेश्वरश्च सर्वाद्यः सर्ववित्परिपालकः ॥ २५ ॥ नित्यरूपी नित्यदेही नित्यानन्दो निराकृतिः ॥ निरंकुशो निराशंको निर्गुणश्च निरामयः ॥ २६ ॥ निर्लिप्तः सर्वसाक्षी च सर्वाधारः परात्पर ॥ मायाविशिष्टः प्रकृतिस्तद्विकाराश्च प्राकृताः ॥ २७ ॥ स्वयं पुमांश्च प्रकृतिस्तावभिन्नौ परस्परम् च ॥ यथा वह्नेस्तस्य शक्तिर्न भिन्नाऽस्त्येव कुत्रचित् ॥ २८ ॥ सेयं शक्तिर्महामाया सच्चिदानंदरूपिणी ॥ रूपंबिभर्त्यरूपा च भक्तानुग्रहहेतवे ॥ २९ ॥ गोपालसुन्दरीरूपं[1] प्रथमं सा ससर्ज ह ॥ अतीव कमनीयं च सुन्दरं सुमनोहरम् ॥ ३० ॥

कारणोंका कारण सर्वेश्वर सबकी आदि सब कुछ जाननेवाले सबसे परिपालक ॥ २५ ॥ नित्यरूपी, नित्य स्वरूपवाले, नित्यानंद, निराकृति, निरंकुश, निरानंद, निर्गुण, निरामय ॥ २६ ॥ निर्लिप्त सर्वसाक्षी, सर्वाधार, परात्पर, मायाविशिष्ट, प्रकृति और उसके विकार प्राकृत ॥ २७ ॥ स्वयं पुरुष और प्रकृति यह परस्पर अभिन्न जैसे अग्निसे अग्निकी शक्ति भिन्न नहीं है ॥ २८ ॥ सो यह महामाया सच्चिदानंदरूपिणी शक्ति अरूप होनेपर भी भक्तोंके अनुग्रह करनेको अनेक रूप धारण करती है ॥ २९ ॥ पहला इनका रूप परम अद्भुत गोपालसुन्दरी है जो अतिशय सुन्दर और मनोहर है ॥ ३० ॥

१ गोपीवेषधारी-कृष्ण ।

यह नये मेघके समान श्याम किशोर वेष सम्पन्न कोटिकंदर्पके समान सुन्दर लीलाधाम मनोहर ॥ ३१ ॥ शरतके मध्यान्ह कमलकी शोभाको जिनके नेत्र लज्जित करते शरत पूर्णिमाके कोटिचन्द्रोंको जिनका मुख लज्जित करता है ॥ ३२ ॥ अमूल्य रत्नोंके बने अनेक भूषणोंसे भूषित स्मितमुख पीतवसनसे निरंतर शोभायमान ॥ ३३ ॥ वह परब्रह्मका स्वरूप ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान सुखदृश्य शान्त राधाके कान्त अनन्तरूप ॥ ३४ ॥ निरन्तर मन्दमुसकानयुक्त गोपियोंसे देखे जाते हुए रासमण्डलके मध्यमें रत्नसिंहासनपर स्थित ॥ ३५ ॥ वंशी बजाते द्विभुज वनमालासे विभूषित कौस्तुभेन्द्र मणियोंमें श्रेष्ठ मणियोंसे जिनका वक्षस्थल उज्ज्वल हो रहा है ॥ ३६ ॥ कुंकुम अगर कस्तूरी और चन्दनसे चर्चित विग्रह सुन्दर चंपेकी मालासे युक्त मालती मालासे मंढित

नवीनन्नीरदश्यामं किशोरं गोपवेषकम् ॥ कंदर्पकोटिलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् ॥ ३१ ॥ शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभा मोचन लोचनम् ॥ शरत्पार्वणकोटींदुशोभाप्रच्छादनाननम् ॥३२॥ अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभूषणभूषितम् ॥ सस्मितं शोभितं शश्वदमूल्यपीतवाससा ॥३३॥ परब्रह्मस्वरूपं च ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥ सुखदृश्यं च शांतं च राधाकांतमनंतकम् ॥ ३४ ॥ गोपीभिर्वीक्ष्यमाणं च सस्मिताभिश्च संततम् ॥ रासमंडलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम् ॥ ३५ ॥ वंशीं क्वणंतं द्विभुजं वनमालाविभूषितम् ॥ कौस्तुभेंद्रमणीन्द्रेण शश्वद्वक्षःस्थलोज्ज्वलम् ॥ ३६ ॥ कुंकुमागुरुकस्तूरीचन्दनाचिंतविग्रहम् ॥ चारुकपचंमालाक्तं मालतीमाल्यमंडितम् ॥ ३७ ॥ चारुचन्द्रकशोभाढ्यं चूडावंक्रिमराजितम् ॥ एवंभूतं च ध्यायंति भक्ता भक्तिपरिप्लुताः ॥ ३८ ॥ यद्भयाज्जगतां धाता विधित्ते सृष्टिमेव च ॥ कर्मानुसाराल्लिखितं करोति सर्वकर्मणाम् ॥ ३९ ॥ तपसां फलदाता च कर्मणां च यदाज्ञया ॥ विष्णुः पाता च सर्वेषां यद्भयात्पाति संततम् ॥ ४० ॥ कालाग्निरुद्रः संहर्ता सर्वविश्वेषु यद्भयात् ॥ शिवो मृत्युंजयश्चैव ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः ॥ ४१ ॥ यज्ज्ञानाज्ज्ञानवानस्ति योगीशो ज्ञानवित्प्रभुः ॥ परमानंदयुक्तश्च भक्तिवैराग्यसंयुतः ॥ ४२ ॥

॥ ३७ ॥ सुंदर चंद्रके भूषणकी शोभासे व्याप्त चूडा वंक्रिमसे विराजमान् जिनको इस प्रकारसे भक्तजन ध्यान करते हैं ॥३८॥ जिनके भयसे ब्रह्मा जगत्की सृष्टि करते हैं और कर्मानुसार लिखे सब कर्मोंको करते हैं ॥ ३९ ॥ जिनकी आज्ञासे तप और कर्मोंके फलभी देते हैं और जिनके भयसे विष्णु सबकी रक्षा करते हैं ॥ ४० ॥ जिनके भयसे कालाग्नि रुद्र जगत्का संहार करते हैं शिव मृत्युंजय ज्ञानियोंके भी गुरु ॥ ४१ ॥ जिनके ज्ञानसे वह योगीश ज्ञानवित्प्रभु ज्ञानवान् हैं परमानंद तथा भक्ति वैराग्यसे संयुक्त है ॥ ४२ ॥

जिनके भयसे शीघ्रगामियोंमें श्रेष्ठ पवन वहन करती हैं जिसके भयसे सूर्य निरंतर तपता है ॥ ४३ ॥ जिनकी आज्ञासे मेघ वर्षता मृत्यु प्रणियोंमें विचरती है
जिनकी आज्ञासे अग्नि जलाती और जलशीतल रहता है ॥ ४४ ॥ दिक्पाल दिशाओंकी रक्षा करते जिनकी आज्ञासे महाभीत रहते हैं जिनके भयसे
राशिचक्र और ग्रह भीत होकर चलते हैं ॥ ४५ ॥ वृक्षोंमें फल लगते और भयसे फूल त्यागते हैं जिनकी आज्ञाके भयसे समयपर काल कलन करता है ॥४६॥
जलस्थलके जीव जिसकी आज्ञाके विना जीवन धारण नहीं कर सकते जो अकालमें रणमें विद्धको भी हरण नहीं कर सकते ॥ ४७ ॥ उन्हींकी आज्ञासे वायु जलको
तथा कूर्म सागरके जलको धारण करता है; कूर्म और शेष सागर पर्वतसहित भूमिको ॥ ४८ ॥ अर्थात् क्षमायुक्त नानारत्न सम्पन्नको जिसकी आज्ञासे धारण

यद्भयाद्वाति पवनः प्रवरः शीघ्रगामिनाम् ॥ तपनश्च प्रतपति यद्भयात्संततं सति ॥४३॥ यदाज्ञया वर्षतींद्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु ॥ यदा
ज्ञया दहेद्वह्निर्जलमेवं सुशीतलम् ॥४४॥ दिशो रक्षंति दिक्पाला महाभीता यदाज्ञया ॥ भ्रमंति राशिचक्राणि ग्रहाश्च यद्भयेन च ॥४५॥
भयात्फलंति वृक्षाश्च पुष्पंत्यपि च यद्भयात् ॥ यदाज्ञां तु पुरस्कृत्य कालः काले हरेद्भयात् ॥ ४६ ॥ तथा जलस्थलस्थाश्च न जीवंति
यदाज्ञया ॥ अकाले नाहरेद्विद्धं रणेषु विषमेषु च ॥ ४७ ॥ धत्ते वायुस्तोयराशिं तोयकूर्मं तदाज्ञया ॥ कूर्मोऽनंतं स च क्षोणींसमुद्रान्सा
च पर्वतान् ॥ ४८ ॥ सर्वा चैव क्षमारूपा नानारत्नं बिभर्ति या ॥ यतः सर्वाणि भूतानि स्थीयंते हंति तत्र हि ॥ ४९ ॥ इंद्रायुश्चैव
दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः ॥ अष्टाविंशे शक्रपाते ब्रह्मणश्च दिवानिशम् ॥ ५० ॥ एवं त्रिंशद्दिनैर्मासो द्वाभ्यामाभ्यामृतुः स्मृतः ॥
ऋतुभिः षड्भिरेवाब्दं ब्रह्मणो वै वयः स्मृतम् ॥ ५१ ॥ ब्रह्मणश्च निपाते च चक्षुरुन्मीलनं हरेः ॥ चक्षुरुन्मीलने तस्य लयं प्राकृतिकं
विदुः ॥ ५२ ॥ प्रलये प्राकृते सर्वे देवाद्याश्च चराचराः ॥ लीना धाता विधाता च श्रीकृष्णनाभिपंकजे ॥ ५३ ॥

करती है जिसके सब प्राणी स्थित और मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ इन्द्रकी आयु इकहत्तर चौकडी युगकी होती और अट्ठाईस इंद्रके पातमें ब्रह्माका एक
दिन होता है ॥ ५० ॥ इस प्रकार ब्रह्माके तीस दिनका महीना, दो महीनोंकी एक ऋतु छः ऋतुओंका ब्रह्माका एक वर्ष इस प्रकारके सौ वर्षकी ब्रह्माकी आयु होती
है ॥ ५१ ॥ ब्रह्माके निपात होनेपर विष्णुका एकपल होता है उनके चक्षु मीचनेपर प्राकृतिक प्रलय हो जाती है ॥ ५२ ॥ प्राकृतिक प्रलय होनेमें चराचर
सब देवता धाता विधाता श्रीकृष्णके नाभिकमलमें लीन हो जाते हैं ॥ ५३ ॥

क्षीरोदशायी विष्णु और वैकुंठमें जो चतुर्भुज हैं वह श्रीकृष्णके वामपार्श्वमें लीन हो जाते हैं ॥ ५४ ॥ जिसके ज्ञानमें ज्ञानाधीश सनातन शिव लीन हो जाते हैं और दुर्गा विष्णुमायामें सब शक्ति लीन हो जाती है ॥ ५५ ॥ और वह कृष्णकी बुद्धिमें स्थित होकर बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवता होती है. नारायण अंश स्कन्ध उनके वक्षस्थलमें लीन हो जाते हैं ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्ण अंशरूप गणेश्वर उनकी भुजामें लीन हो जाते हैं और पद्मांशा पद्मा राधामें लीन हो जाती है ॥ ५७ ॥ और सब देवताकी स्त्रियें गोपियोंमें और गोपीराधामें लीन होती है, वह कृष्णकी प्राणप्रिया देवी उनके प्राणोंमें स्थित होते हैं ॥ ५८ ॥ सावित्री और सब

विष्णुः क्षीरोदशायी च वैकुण्ठे यश्चतुर्भुजः ॥ विलीना वामापार्श्वे च कृष्णस्य परत्मात्मनः ॥ ५४ ॥ यस्य ज्ञाने शिवो लीनो ज्ञाना धीशः सनातन ॥ दुर्गायां विष्णुमायायां विलीनाः सर्वशक्तयः ॥ ५५ ॥ साच कृष्णस्य बुद्धौ च बुद्ध्यधिष्ठातृदेवता ॥ नारायणांशः स्कंदश्च लीनो वक्षसि तस्य च ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्णांशश्च तद्बाहौ देवाधीशो गणेश्वरः ॥ पद्मांशाश्चैव पद्मायां सा राधायां च सुव्रते ॥ ५७ ॥ गोप्यश्चाऽपि च तस्यां सर्वाश्च देवयोषितः ॥ कृष्ण प्राणाधिदेवी सा तस्य प्राणेषु संस्थिता ॥ ५८ ॥ सा वित्री च सरस्वत्यां वेदाः शास्त्राणि यानि च ॥ स्थिता वाणी च जिह्वायां तस्यैव परमात्मनः ॥ ५९ ॥ गोलोकस्य च गोपाश्चविलीनास्तस्य लोमसु ॥ तत्प्राणेषु च सर्वेषां प्राणा वाता हुताशनाः ॥ ६० ॥ जठराग्नौ विलीनाश्च जलं तद्रसनाग्रतः ॥ वैष्णवाश्चरणां भोजे परमानंदसंयुताः ॥ ६१ ॥ सारात्सारतरा भक्ती रसपी यूषपायिनः ॥ विराडंशाश्च महति लीनाः कृष्णे महाविराट् ॥ ६२ ॥ यस्यैव लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च॥ यस्य चक्षुष उन्मेषे प्राकृतः प्रलयो भवेत ॥ ६३ ॥

वेदशास्त्र सरस्वतीमें लीन होकर वह वाणी परमात्माकी जिह्वामें स्थित होती है ॥ ५९ ॥ गोलोकके गोप उनके लोममें स्थित होते हैं उनके प्राणमें सबके प्राणवायु अग्निमें लीन हो जाते हैं ॥ ६० ॥ जठराग्निमें हुताशन, जल उनके जिह्वामें, भक्तिसम्पन्न वैष्णव उनके चरणकमलमें परमानंदसे लीनहोते हैं ॥ ६१ ॥ जो सारसे भी सार भक्तिरूप अमृत पानेवाले हैं क्षुद्र विराट्के रूप महाविराट् में और महाविराट् कृष्णमें विलीन होते हैं ॥ ६२ ॥ जिसके लोमकूपोंमें अनन्त विश्व हैं जिनके नेत्रके उन्मेषमें प्राकृत प्रलय हो जाता है ॥ ६३ ॥

१ कठिनसे प्राप्त

फिर पलक खोलनेमें सृष्टि हो जाती है जितना समय पलक लगानेका है इतना ही खोलनेका है ॥ ६४ ॥ ब्रह्माके सौ वर्षमें सृष्टिका सूत्र लय होता है हे सुव्रते ! ब्रह्माकीसृष्टि और लयकी संख्या नहीं है ॥ ६५ ॥ जैसे पृथ्वीके रजोंकी संख्या नहीं है इसप्रकार सृष्टि और लयकी संख्या नहीं है, जिस सर्वान्त रात्माके नेत्रोंके पलक लगानेमें प्रलय हो जाती है ॥ ६६ ॥ और पलक खोलनेमें उनकी इच्छा से फिर सृष्टि हो जाती है वह कृष्ण भी उसकी प्रलयमें प्रकृ तिमें लीन हो जाते हैं ॥ ६७ ॥ कहीं पराशक्ति और निर्गुणपरम पुरुष है, पहले आगे सत् ही था ऐसा वेदके ज्ञाता कहते हैं ॥ ६८ ॥ मूलप्रकृतिही अव्यक्त और अव्याकृत पदनामवाली है चित्से अभिन्न हुई प्रलयमें स्थित रहती है ॥ ६९ ॥ उसके गुण कथन करनेको ब्राह्मण्डमें कौन समर्थ है ? चारों वेदोंमें चार

चक्षुरुन्मीलने सृष्टिर्यस्यैव पुनरेव सः ॥ यावत्कालो निमेषेण तावदुन्मीलनेन च ॥ ६४ ॥ ब्रह्मणश्च शताब्दे च सृष्टेः सूत्रलयः पुनः ॥ ब्रह्मसृष्टिलयानां च संख्या नास्त्येव सुव्रते ॥ ६५ ॥ यथा भूरजसां चैव संख्यानं नैव विद्यते ॥ चक्षुर्निमेषे प्रलयो यस्य सर्वांतगत्मनः ॥ ६६ ॥ उन्मीलने पुनः सृष्टिर्भवेदेवेश्वरेच्छया ॥ स कृष्णः प्रलये तस्यां प्रकृतौ लीन एव हि ॥ ६७ ॥ एकैव च परा शक्तिर्निराग्रुणः परमः पुमान् ॥ सदेवेदमग्र आसीदिति वेदविदो विदुः ॥ ६८ ॥ मूलप्रकृतिरव्यक्ताऽप्यव्याकृतपदाभिधा ॥ चिद भिन्नत्वमापन्ना प्रलये सैव तिष्ठति ॥ ६९ ॥ तद्गुणोत्कीर्तनं वक्तुं ब्रह्माण्डेषु च कः क्षमः ॥ मुक्तयश्च चतुर्वेदैर्निरुक्ताश्च चतुर्विधाः ॥ ७० ॥ तत्प्रधाना देवभक्तिर्मुक्तेरपि गरीयसी ॥ सालोक्यदा भवेदेका तथा सारूप्यदा परा ॥ ७१ ॥ सामीप्यदाऽथ निर्वाण प्रदा मुक्तिश्चतुर्विधा ॥ भक्तास्ता नहि वांछन्ति विना तत्सेवनं विभोः ॥ ७२ ॥ शिवत्वममरत्वं च ब्रह्मत्वं चावहेलया ॥ जन्ममृत्यु जराव्याधिभयशोकादिकं धनम् ॥ ७३ ॥ दिव्यरूपधारणं च निर्वाणं मोक्षणं विदुः ॥ मुक्तिश्च सेवारहिता भक्तिः सेवाविवर्धिनी ॥ ७४ ॥ भक्तिमुक्त्योरयं भेदो निषेकखंडनं शृणु ॥ विदुर्बुधा निषेकं च भोगं च कृतकर्मणाम् ॥ ७५ ॥

प्रकारकी मुक्ति कही गई है ॥ ७० ॥ उनमें प्रधान होनेसे भक्ति मुक्तिसे भी अधिक है सालोक्य, सारूप्य, ॥ ७१ ॥ सामीप्य और निर्वाण यह चार प्रकारकी मुक्ति है उस विभुकी सेवा भक्तिके सिवाय भक्तजन मुक्तिको इच्छा करते हैं ॥ ७२ ॥ शिवत्व, अमरत्व, ब्रह्मत्व, जन्ममृत्यु, जराव्याधि, भयशोकादिक धन यह सब वे तुच्छ जानते हैं ॥ ७३ ॥ तथा दिव्यरूपका धारण निर्वाण मुक्ति नहीं चाहते मुक्ति सेवा रहित है और भक्ति सेवाकी बढाने वाली है ॥ ७४ ॥ यह भक्ति और मुक्तिका भेद है. अब निषेक खण्डनके स्वरूपको सुनो पंडितजन किये कर्मोंके भोगको ही निषेक कहते हैं ॥ ७५ ॥

उस भोगका खण्डन ही श्रीविभुकी सेवा है. हे साध्वि ! यही तत्त्वज्ञान लोकवेदमें स्थित है ॥ ७६ ॥ यह विघ्नरहित और शुभका देनेवाला है. हे वत्से ! अब तुम यथासुख गमन करो. यह कह यमराजने उसके पतिको जिवाकर ॥ ७७ ॥ और उसको शुभ आशिर्वाद देकर जानेको इच्छाकी. यमराजको जाता देख सावित्री प्रणामकर ॥ ७८ ॥ साधुके वियोगसे दुःखी हो चरण पकड़कर रोने लगी सावित्रीका रोदन सुनकर कृपासागर यमराज ॥ ७९ ॥ स्वयं नेत्रोंमें आँसूभर उससे कहने लगे धर्म बोले पुण्यक्षेत्र भारतमें लाख वर्षतक सुखभोगकर ॥ ८० ॥ अन्तमें इस लोकको गमन करेगी. जहां देवी विराजमान होती है, हे भद्रे ! अपने घर जाकर सावित्रीका व्रत करो ॥ ८१ ॥ यह चौदह वर्ष करनेसे स्त्रीकी मोक्षका कारण है ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशीको सावित्रीका सुन्दर व्रत

तत्खंडनं च शुभदं श्रीविभोः सेवनं परम् ॥ तत्त्वज्ञानमिदं साध्वि स्थिरं च लोकवेदयोः ॥ ७६ ॥ निर्विघ्नं शुभदं चोक्तं गच्छ वत्से यथासुखम् ॥ इत्युक्त्वा सूर्य पुत्रश्च जीवयित्वा च तत्पतिम् ॥ ७७ ॥ तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा गमनं कर्तुमुद्यतः ॥ दृष्ट्वा यमं च गच्छंतं सा सावित्री प्रणम्य च ॥ ७८ ॥ रुरोद चरणौ धृत्वा साधुच्छेदेन दुःखिता ॥ सावित्रीरोदनं श्रुत्वा यमश्चैव कृपानिधिः ॥ ७९ ॥ तामित्युवाच संतुष्टः स्वयं चैव रुरोद ह ॥ धर्म उवाच ॥ लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्य क्षेत्रे च भारते ॥ ८० ॥ अन्ते यास्यसि तल्लोकं यत्र देवी विराजते ॥गत्वा च स्वगृहं भद्रे सावित्र्याश्च व्रतं कुरु ॥ ८१ ॥ द्विसप्तवर्षपर्यंतं नारीणां मोक्षकारणम् ॥ ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सावित्र्याश्च व्रतं शुभम् ॥ ८२ ॥ शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे महालक्ष्म्या यथाव्रतम् द्व्यष्टवर्षं व्रतं चैव प्रत्यादेयं शुचिस्मिते ॥ ८३ ॥ करोति भक्त्या या नारी सा याति च विभोः पदम् ॥ प्रतिमंगलवारे च देवीं मंगलदायिनीम् ॥ ८४ ॥ प्रतिमासं शुक्लषष्ठ्यां षष्ठीं मंगल दायिनीम् ॥ तथा चाषाढसंक्रांत्यां मनसां सर्वसिद्धिदाम् ॥ ८५ ॥ राधां रासे च कार्त्तिक्यां कृष्णप्राणाधिकप्रियाम् ॥ उपोष्य शुक्लाष्टम्यां च प्रतिमासं वरप्रदाम् ॥ ८६ ॥

करे ॥ ८२ ॥ भाद्रपद शुक्ल अष्टमीको महालक्ष्मीका जिस प्रकार व्रत है वैसा करे.हे शुचिस्मिते ! अथवा सोलह वर्षतक इस व्रतकी ॥ ८३ ॥ भक्तिसे जो स्त्री करती है वह विभुके लोकको गमन करती है प्रति मंगलवारको करनेसे देवी मंगलकी देनेवाली होती है ॥ ८४ ॥ प्रति महीनेको शुक्ला छठको छठ मंगल दायिनी है और इसी प्रकार आषाढकी षष्ठी मनसे सब सिद्धि देनेवाली है ॥ ८५ ॥ कार्तिकी पूर्णिमाको राधाव्रत जो कृष्णकी प्राणोंके समान अधिक प्यारी है तथा शुक्ला अष्टमीमें दुर्गाव्रत करे यह प्रतिमहीनेमें करनेसे वरदायी होती है ॥ ८६ ॥

विष्णुकी माया भगवती दुर्गा कठिन दुःखोंकी दूर करने वाली प्रकृति जगदम्बाको पतिपुत्रवाली ॥ ८७ ॥ तथा शुद्ध पतिव्रता वा यंत्र और प्रतिमाओंमें
जो स्त्री धन संतानके निमित्त पूजा करती है ॥ ८८ ॥ वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीविभुके स्थानमें गमन करती है इस प्रकार उत्तम साधक
नित्य देवीकी विभूतिको भक्तिसे पूजन करै ॥ ८९ ॥ इस समय सर्वरूपा परमेश्वरीका सेवन करना चाहिये इससे अधिक कृत्यकृत्यदायक और कुछ नहीं
है ॥ ९० ॥ यह कहकर धर्मराज अपने स्थानको चले गये और अपने स्वामीको लेकर सावित्री अपने स्थानको चली ॥ ९१ ॥ सावित्री और सत्यवानने
अपने आश्रममें जाय दूसरोंसे वह वृत्तांत कथन किया ॥ ९२ ॥ क्रमसे सावित्रीके पिताके पुत्र हुए और श्वसुरको नेत्र प्राप्त हुए और वरदानके कारण उसने भी

विष्णुमायां भगवतीं दुर्गां दुर्गार्तिनाशिनीम् ॥ प्रकृतिं जगदंबां च पति पुत्रवतीषु च ॥ ८७ ॥ पतिव्रतासु शुद्धासु यन्त्रेषु प्रतिमासु
च ॥ या नारी पूजयेद्भक्त्या धनसंतानहेतवे ॥ ८८ ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यं श्रीविभोः पदम् ॥ एवं देव्या विभूतिश्च पूजयेत्साध
कोऽनिशम् ॥ ८९ ॥ सर्वकालं सर्वरूपा संसेव्या परमेश्वरी ॥ नातः परतरं किंचि त्कृतकृत्यत्वदायकम् ॥ ९० ॥ इत्युक्त्वा तां धर्मराजो
जगाम निजमन्दिरम् ॥ गृहीत्वा स्वामिनं सा च सावित्री च निजालयम् ॥ ९१ ॥ सावित्री सत्यवांश्चैव प्रययौ च यथागमम् ॥
आयांश्च कथयामास स्ववृत्तांतं हि नारदः ॥ ९२ ॥ सावित्रीजनकः पुत्रान्संप्राप्तः प्रक्रमेण च ॥ श्वशुरश्चक्षुषी राज्यं सा च
पुत्रान्वरेण च ॥ ९३ ॥ लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ जगामस्वामिना सार्धं देवीलोकं पतिव्रता ॥ ९४ ॥ सवितुश्चा
धिदेवी या मन्त्राधिष्ठातृदेवता ॥ सावित्री ह्यपि वेदानां सावित्री तेन कीर्तिता ॥ ९५ ॥ इत्येवं कथितं वत्स सवित्र्याख्यानमुत्त
मम् ॥ जीवकर्मविपाकं च किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥ ९६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे
सावित्र्युपाख्यानेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

पुत्रोंकी प्राप्ति की ॥ ९३ ॥ वह पतिव्रता इस भारतक्षेत्रमें लाख वर्षतकसुख भोगकर स्वामीके संग देवीके मणिद्वीपको गई ॥ ९४ ॥ जो सविता अर्थात्
सूर्यमंडलात्मक देवताकी अन्तर्यामी ब्रह्मरूपिणी है तथा गायत्रीकी अधिष्ठात्री है, वेदोंकी माता होनेसे सावित्री कहाती है ॥ ९५ ॥ हे वत्स ! यह आपसे
इस प्रकार सावित्रीका उत्तम आख्यान कहा है तथा जीवका कर्मविवाक कहा अब फिर क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ९६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे
नवमस्कन्धे भाषायां अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८.॥

नारदजी बोले श्रीमूल प्रकृति तारिणी गायत्री देवीके माहात्म्ययुक्त सावित्री और यमके संवादमें निर्मल यश श्रवण किया ॥१॥ तथा उनके सत्यरूप गुणोंका कीर्तन जो मंगलोंका मंगल है सो सुना, हे भगवन् ! अब महालक्ष्मीका उपाख्यान सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ २ ॥ प्रथम किसने उनका पूजन किया है वह किस प्रकारकी है ? हे वेदविदांवर मुझसे आप उनके गुणोंका कीर्तन कीजिये ॥ ३ ॥ नारायण बोले हे नारदजी ! सृष्टिकी आदिमें परमात्मा कृष्णकी देवी राधाके वाम अंशसे रासमंडलमें यह प्रकट हुई है ॥४॥ यह अति सुंदरी श्यामा न्यग्रोधपर मंडित अथवा द्वादशवर्षकी अवस्थासे सम्पन्न निरंतर स्थिर यौवनवाली ॥५॥ श्वेतचम्पकके वर्णके समान सुखदृश्या परममनोहर शरतकी पूर्णिमाके कोटिचंद्रके प्रभाके समान मुखवाली ॥६॥ और शरतकी मध्याह्न कमलोंकी

नारद उवाच ॥ श्रीमूलप्रकृतेर्देव्या गायत्र्यास्तु निरा कृते ॥ सावित्रीयमसंवादे श्रुतं वै निर्मलं यशः ॥ १ ॥ तद्गुणोत्कीर्तनं सत्यं मंगलानां च मंगलम् ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि लक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर ॥ २ ॥ केनाऽऽदौ पूजिता साऽपि किंभूता केन वा पुरा ॥ तद्गुणोत्कीर्तनं मह्यं वद वेदविदांवर ॥ ३ ॥ नारायण उवाच ॥ सृष्टेरादौ पुरा ब्रह्मन्कृष्णस्य परमात्मनः ॥ देवी वामांससंभूता बभूव रासमण्डले ॥ ४ ॥ अतीव सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमंडिता ॥ तथा द्वादशवर्षीया शश्वत्सुस्थिरयौवना ॥ ५ ॥ श्वेतचम्पकवर्णाया सुखदृश्या मनोहरा ॥ शरत्पार्वण कोटींदुप्रभाप्रच्छदनानना ॥ ६ ॥ शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचना ॥ सा देवी द्विविधाभूता सहसैवेश्वरेच्छया ॥ ७ ॥ स्वीयरूपेण वर्णेन तेजसा वयसा त्विषा ॥ यशसा वाससा कृत्या भूषणेन गुणेन च ॥८॥ स्मितेन वीक्षणेनैव प्रेम्णा वाऽनु नयेन च ॥ तद्वामांसान्महालक्ष्मीर्दक्षिणांसाच्च राधिका ॥ ९ ॥ राधाऽऽदौ वरयामास द्विभुजं च परात्परम् महालक्ष्मीश्च तत्पश्चाच्चकमे कमनीयकम् ॥ १० ॥ कृष्णस्तद्गौरवेणैव द्विधारूपो बभूव ह ॥ दक्षिणांसश्च द्विभुजो वामांसश्च चतुर्भुजः ॥ ११ ॥ चतुर्भुजाय द्विभुजो महालक्ष्मीं ददौ पुरा ॥ लक्ष्यते दृश्यते विश्वं स्निग्धदृष्ट्या यथानिशम् ॥ १२ ॥

शोभाको जिनके लोचन मोचन करने वाले हैं वह देवी सहसाही ईश्वरकी इच्छासे दो रूप हुई ॥७॥ अपना रूप वर्ण, तेज, वय, कांति, यश, वसन, कृति, भूषण गुण ॥८॥ स्मितवी क्षण प्रेम अनुनयमें राधाके समानही थी. उन कृष्णके वाम अंशसे महालक्ष्मी और दक्षिण अंशसे राधिका प्रगट हुई है ॥९॥ राधाने प्रथम द्विजभुज परात्पर देवको वरण किया. महालक्ष्मीने पश्चात् उन मनोहरकी इच्छाकी ॥ १० ॥ तब कृष्ण राधाके गौरवसे दो रूप हुए दक्षिणांशसे द्विभुज और वाम अंगसे चतुर्भुज हुए ॥ ११ ॥ द्विभुज भगवान्‌ने महालक्ष्मीको चतुर्भुजके निमित्त दिया, जिससे यह सब जगत् निरंतरस्निग्ध दृष्टिसे दीखता है ॥ १२ ॥

और जो महती देवी है इसी कारण महालक्ष्मी कहाती है, राधाकांत द्विभुज लक्ष्मीकांत चतुर्भुज है ॥ १३ ॥ वह शुद्धसत्वस्वरूपवाली गोप और गोपियोंसे आवृत्त है चतुर्भुज लक्ष्मीके सहित वैकुंठमें गये ॥ १४ ॥ वह कृष्ण और विष्णु सर्वांशमें समान है महालक्ष्मीके योगमें वह अनेक रूपा हुई ॥ १५॥ वैकुंठमें महालक्ष्मी परिपूर्णतमा रमा है शुद्ध सत्वस्वरूपा सर्व सौभाग्यसे संयुक्त ॥ १६ ॥ वह सब स्त्रियोंमें प्रेमसे प्रधान है स्वर्गोंमें स्वर्ग लक्ष्मी इंद्रके सम्पत्स्वरूपिणी ॥ १७ ॥ पातालमें नागलक्ष्मी राजाओंमें राजलक्ष्मी घरोंमें गृहलक्ष्मी गृहिणी कला अंशसे निवास करती है ॥ १८ ॥ गृहस्थियोंके यहाँ सम्पत

देवीभूता च महती महाक्ष्मीश्च सा स्मृता ॥ राजाकांतश्च द्विभुजो लक्ष्मीकांतश्चतुर्भुजः ॥ १३ ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा च गोपैर्गोपीभिरावृता ॥ चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययौ पद्मया सह ॥ १४ ॥ सर्वांशेन समौतौद्वौ कृष्णनारायणौ परौ महालक्ष्मीश्च योगेन नानारूपा बभूव सा ॥ १५ ॥ वैकुंठे च महाक्ष्मीः परिपूर्णतमा रमा ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सर्वसौभाग्यसंयुता ॥ १६ ॥ प्रेम्णा सा च प्रधाना च सर्वासु रमणीषु च ॥ स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीश्च शक्रसंपत्स्वरूपिणी ॥ १७ ॥ पाताले नाग लक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥ गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वेव गृहिणां च कलांशतः ॥ १८ ॥ संपत्स्वरूपा गृहिणां सर्वमंगलमंगला ॥ गवां प्रसूतिः सुरभिर्दक्षिणा यज्ञकामिनी ॥ १९ ॥ क्षीरोदसिंधुकन्या सा श्रीरूपा पद्मिनीषु च ॥ शोभास्वरूपा चंद्रे च सूर्यमंडलमंडिता ॥ २० ॥ विभूषणेषु रत्नेषु फलेषु च जलेषु च ॥ नृपेषु नृपपत्नीषु दिव्यस्त्रीषु गृहेषु च ॥ २१ ॥ सर्वसस्येषु वस्त्रेषु स्थानेषु संस्कृतेषु च ॥ प्रतिमासु च देवानां मंगलेषु घटेषु च ॥ २२ ॥ माणिक्येषु च मुक्तासु माल्येषु च मनोहरा ॥ मणीन्द्रेषु च हीरेषु क्षीरेषु चन्दनेषु च ॥ २३ ॥ वृक्षशाखासु रम्यासु नवमेघेषु वस्तुषु ॥ वैकुण्ठपूजिता साऽऽदौ देवी नारायणेन च ॥ २४ ॥ द्वितीये ब्रह्मणाभक्त्या तृतीये शंकरेण च ॥ विष्णुना पूजिता सा च क्षीरोदे भारते मुने ॥ २५ ॥

स्वरूपा सब मंगलकी मंगल करनेवाली गायोंकी प्रकृति होनेसे सुरभी यज्ञकी कामनामें दक्षिणा ॥ १९ ॥ क्षीरसागरकी कन्या पद्मिनियोंमें श्री रूपा चन्द्रमामें शोभास्वरूप सूर्य मंडलमें मंडित ॥२०॥ विभूषण रत्नफल जल नृप नृपपत्नी दिव्यश्री और घरोंमें ॥२१॥ सब धन्य वस्त्र संस्कृतस्थान देवताओंकी प्रतिमा मंगल घटोंमें॥२२॥ माणिक्य मुक्ता मनोहर मालामणियोंके हार क्षीर और चंदनमें ॥२३॥ मनोहर वृक्षशाखा नवीन मेघ और वस्तुओंमें रहती है, प्रथम नारायणने वैकुंठमें पूजन किया॥२४॥दूसरीबार भक्तिसे ब्रह्माने और तीसरी बार शंकरने पूजन किया है, हे मुने! फिर क्षिरोदमें विष्णुने पूजन किया है॥२५॥

मानवेन्द्र स्वयंभू मनुने तथा ऋषि मुनि और सद्भक्ति करनेवाले गृहस्थियोंने पूजन किया है ॥ २६ ॥ गन्धर्व तथा नागादिने पातालमें पूजन किया है शुक्लाष्टमीको भाद्रपदमें ब्राह्मणने पूजन किया ॥ २७ ॥ हे नारद ! तीनों लोकमें भक्तिसे पक्षपर्यंत पूजन होता है. चैत्र, पौष, भाद्रपद, मंगलवारमें पूजन होता है ॥ २८ ॥ विष्णु तथा त्रिलोकीने भक्तिपूर्वक पूजा की वर्षके अन्तमें पूषसंक्रांति माघी पूर्णिमाको आवाहन करके ॥ २९ ॥ मनुने उसका पूजन कराया और मंगलारूपा लक्ष्मीका महेन्द्रने भी पूजन किया है ॥ ३० ॥ केदार, नील, सुबल, नल, ध्रुव, उत्तानपाद, इन्द्र, बलि, ॥ ३१ ॥ कश्यप दक्ष. कर्दम, विवस्वान प्रियव्रत, चन्द्र, कुबेर, वायु ॥ ३२ ॥ यम, वह्नि, वरुणने, पूजन किया और प्रणाम किया इस प्रकार सबने सर्वत्र पूजन किया,

स्वायंभुवेन मनुमा मानवेन्द्रैश्च सर्वतः ॥ ऋषींद्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सद्भिश्च गृहिभिर्भवे ॥ २६ ॥ गंधर्वैश्चैव नागाद्यैः पातालेषु च पूजिता ॥ शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे कृता पूजा च ब्रह्मणा ॥ २७ ॥ भक्त्या च पक्षपर्यंतं त्रिषु लोकेषु नारद ॥ चैत्रे पौषे च भाद्रे च पुण्ये मंगल वासरे ॥ २८ ॥ विष्णुना पूजिता ॥ सा च त्रिषु लोकेषु भक्तितः ॥ वर्षांते पौषसंक्रांत्यां माघ्यामावाह्य मंगले ॥ २९ ॥ मनुस्तां पूज यामास सा भूता भुवनत्रये ॥ पूजिता सा च महेन्द्रेण मंगलेनैव मंगला ॥ ३० ॥ केदारेणैव नीलेन सुबलेन नलेन च ध्रुवेणोत्तानपादेन शक्रेण बलिना तथा ॥ ३१ ॥ कश्यपेन च दक्षेण कर्दमेन विवस्वता ॥ प्रियव्रतेन चन्द्रेण कुबेरेणैव वायुना ॥ ३२ ॥ यमेन वह्निना चैव वरुणेनैव पूजिता ॥ एवं सर्वत्र सर्वेषु पूजिता वंदिता सदा ॥ ३३ ॥ सर्वैश्वर्याधिदेवी स सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ नारद उवाच ॥ नारायणप्रिया सा च परा वैकुण्ठवासिनी ॥ वैकुण्ठाधिष्ठातृदेवी महालक्ष्मीः सनातनी ॥ १॥ कथं बभूव सा देवी पृथिव्यां सिंधुकन्यका ॥ पुरा केन स्तुताऽऽदौ सा तन्मे व्याख्या तुमर्हसि ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ पुरा दुर्वाससः शापाद्भ्रष्टश्रीश्च पुरंदरः ॥ बभूव देवसंघश्च मर्त्यलोके च नारद ॥ ३ ॥

॥ ३३ ॥ वह सब ऐश्वर्यकी देवी सब सम्पत्स्वरूपिणी है ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ नारदजी बोले वह नारायणकी प्रिया श्रेष्ठ वैकुण्ठवासिनी, वैकुंठकी अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी सनातनी ॥ १ ॥ फिर भूमिमें किस प्रकार क्षीरसागरकी कन्या हुई और पहले किसने उनकी स्तुति की सो आप मुझसे कहिये ॥ २ ॥ श्रीनारायण बोले एक समय दुर्वासाके शापसे इन्द्र श्रीभ्रष्ट हुए थे और मृत्युलोकमें देवताओंके समूह एकत्रित हुए ॥ ३ ॥

लक्ष्मी स्वर्गादिको त्यागकर रुष्ट और परम दुःखित हुई. हे नारद ! वह जाकर वैकुंठमें लीन होगई ॥ ४ ॥ तब सब कोई दुःखी हो ब्रह्माकी सभामें गये और ब्रह्माजीको आगेकर वैकुण्ठमें गये ॥ ५ ॥ सब देवता वैकुण्ठमें परमदेव नारायणकी शरण हुए अतिदैन्ययुक्त होनेसे उनके कंठ ओष्ठ तालु सूख गये ॥ ६ ॥ तब पुराण पुरुषकी आज्ञासे कलारूप लक्ष्मी सर्व संपत्स्वरूपिणी सागरकन्या हुई थी ॥ ७ ॥ तब देवता दैत्योंने क्षीरसागर मंथनकर महालक्ष्मीको प्राप्त किया विष्णुने उनको देखा ॥ ८ ॥ देवादिको वर और क्षीरसागरशायी विष्णुको प्रसन्नतासे वनमाला देकर प्रसन्न किया ॥ ९ ॥ हे नारद ! तब देवताओंने असुरोंके ग्रसित राज्यको फिर पाया तब भगवतीकी पूजाकर सब कोई आपत्ति रहित हुए ॥१०॥ नारदजी बोले हे ब्राह्मन् ! तत्त्ववित् मुनिश्रेष्ठ

लक्ष्मीः स्वर्गादिकं त्यक्त्वा रुष्टा परमदुःखिता ॥ गत्वा लीना च वैकुंठे महालक्ष्मीश्च नारद ॥ ४ ॥ तदा शोकाद्ययुः सर्वे दुःखिता ब्रह्मणः सभाम् ॥ ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ययुर्वैकुंठमेव च ॥ ५ ॥ वैकुण्ठे शरणापन्ना देवी नारायणे परे अतीव दैन्ययुक्ताश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥ ६ ॥ तदा लक्ष्मीश्च कलया पुराणपुरुषाज्ञया ॥ बभूव सिंधुकन्या सा सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥ ७ ॥ तथा मथित्वा क्षीरोदं देवा दैत्यगणैः सह ॥ संप्राप्ताश्च महालक्ष्मीं विष्णुस्तां च ददर्श ह ॥ ८ ॥ सुरादिभ्यो वरं दत्त्वा वनमालां च विष्णवे ॥ ददौ प्रसन्नवदना तुष्टा क्षीरोदशायिने ॥ ९ ॥ देवाश्चाऽप्यसुरग्रस्तं राज्यं प्रापुश्च नारद ॥ तान्संपूज्य च सम्भूय सर्वत्र च निरापदः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ कथं शशाप दुर्वासा मुनिश्रेष्ठः कदाचन ॥ केन दोषेण वा ब्रह्मन्ब्रह्मिष्ठस्तत्त्ववित्पुरा ॥ ११ ॥ ममंथुः केन रूपेण जलधिं ते सुरादयः ॥ केन स्तोत्रेण वा देवी शक्रं साक्षाद्बभूव सा ॥ १२ ॥ को वा तयोश्च संवादो बभूव तद्वद प्रभो ॥ श्रीनारायण ॥ उवाच ॥ मधुपानप्रमत्तश्च त्रैलोक्याधिपतिः पुरा ॥ १३ ॥ क्रीडां चकार रहसि रंभया सह कामुकः ॥ कृत्वा क्रीडां तया सार्धं कामुक्या हृतमानसः ॥ १४ ॥ तस्थौ तत्र महारण्ये कामोन्मथितमानसः ॥ कैलासशिखरे यांतं वैकुण्ठाद्दषिसत्तमम् ॥ १५ ॥

दुर्वासाने क्यों शाप दिया क्या दोष था वह तो तत्त्ववित् थे ॥ ११ ॥ और उन सुरादिने किस प्रकार सागरको मथा और किस स्तोत्रसे देवी इन्द्रके सन्मुख प्रगट हुई ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! किस प्रकार उन इन्द्र और दुर्वासाका सम्वाद हुआ सो आप कहिये श्रीनारायण बोले पहले त्रैलोक्याधिपति इन्द्र मधुपानसे मत्त होकर ॥ १३ ॥ कामुक हो एकांतमें रंभाके साथ क्रीड़ा करने लगे. उसके साथ क्रीडा करनेसे देवराजका मन उसमें लग गया ॥ १४ ॥ कामसे उन्मथित हो उस महावनमें निवास करने लगे उस समय ऋषिश्रेष्ठ वैकुंठसे कैलाश शिखरमें जाते थे ॥ १५ ॥

उन ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित दुर्वासा ऋषिको देखकर कि, जिनकी प्रभा मध्याह्नकालीन सूर्यके समान चमक रही थी ॥ १६ ॥ तप्त सुवर्णके समान जटाभार बड़ा उज्वल श्वेत यज्ञोपवीत चीर दंड कमंडलु लिये ॥ १७ ॥ महा प्रकाशमान चलायमान इन्द्रके समान प्रकाशित लाखों वेदवेदांगोंके पारगामी शिष्योंसे युक्त ॥ १८ ॥ देखते ही इन्द्रने इनको शिरसे प्रणाम किया और प्रसन्न हो उन मुनिके शिष्या समूहोंको संतुष्ट किया ॥ १९ ॥ मुनिराजने शिष्यों सहित आशीर्वाद दिये और विष्णुके दिये मनोहर पारिजात पुष्पको ॥ २० ॥ " जो कि जरारोग और मृत्युका नाशक शोकहारी और मोक्षका करने वाला है " दिया शक्र उस फूलको लेकर राज्य सम्पत्तीसे प्रमत्त हो ॥ २१ ॥ उस अपने हाथीके ऊपर रखदिया हाथी उसके स्पर्शमात्र रूप और गुणसे

दुर्वाससं ददर्शेन्द्रो ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडसहस्रप्रभमीश्वरम् ॥ १६ ॥ प्रतप्तकांचनाकारं जटाभारमहोज्ज्वलम् ॥ शुक्लयज्ञोपवीतं च चीरं दंडौ कमंडलुम् ॥ १७ ॥ महोज्ज्वलं च तिलकं बिभ्रतं चेंदुसन्निभम् ॥ समन्वितं शिष्यलक्षैर्वेदवेदांगपारगैः ॥ १८ ॥ दृष्ट्वा ननाम शिरसा संप्रमत्तः पुरंदरः ॥ शिष्यवर्गं तदा भक्त्या तुष्टाव च मुदान्वितम् ॥ १९ ॥ मुनिना च सशिष्येण दत्तास्तस्मै शुभाशिषः ॥ विष्णु तत्तं पारिजातपुष्पं च सुमनोहरम् ॥ २० ॥ तज्जरारोगमृत्युघ्नं शोकघ्नं मोक्षकारकम् ॥ शक्रः पुष्पं गृहीत्वा च प्रमत्तो राज्यसंपदा ॥ २१ ॥ पुष्पं स न्यस्तयामास तदैव करिमस्तके ॥ हस्ती तत्स्पर्श मात्रेण रूपेण च गुणेन च ॥ २२ ॥ तेजसा वयसा कस्माद्विष्णुतुल्यो बभूव ह ॥ त्यक्त्वा शक्रं गजेन्द्रश्च जगाम घोरनकानम् ॥ २३ ॥ न शशाक महेंद्रस्तं रक्षितं तेजसा मुने ॥ तत्पुष्पं त्यक्तवंतं च दृष्ट्वा शक्रं मुनीश्वरः ॥ २४ ॥ तमुवाच महारुष्टः शशाप च रुषान्वितः ॥ मुनिरुवाच ॥ अरे श्रिया प्रमत्तस्त्वं कथं मामवमन्यसे ॥ २५ ॥ मद्दत्तपुष्पं दत्तं च गर्वेण करिमस्तके ॥ विष्णोर्निवेदितं चैव नैवेद्यं वा फलं जलम् ॥ २६ ॥ प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महा भवेत् ॥ भ्रष्टश्रीर्भ्रष्टबुद्धिश्च पुरभ्रष्टो भवेत्तु सः ॥ २७ ॥

॥ २२ ॥ तेज और वयसे विष्णुके तुल्य हुआ तब गजेन्द्र इन्द्रको छोडकर गहन वनमें चला गया ॥ २३ ॥ हे मुने ! तेजसे इन्द्र इसकी रक्षा करनेको समर्थ न हुआ, मुनीश्वरने इन्द्रको उस प्रकार फूल त्यागन करता हुआ देखकर ॥ २४ ॥ महारुष्ट होकर शाप दिया मुनि बोले अरे ! लक्ष्मीसे प्रमत्त तुम मेरा अपमान क्यों करते हो ॥ २५ ॥ मेरा दिया फूल तैंने हाथीके मस्तकपर क्यों रख दिया. विष्णुको निवेदन किया नैवेद्य जल, फल, ॥ २६ ॥ प्राप्त मात्रही भोगना चाहिये. अन्यथा ब्रह्महत्या लगती है, तुम भ्रष्टश्री भ्रष्टबुद्धि और अपने पुरसे भ्रष्ट हो जाओ ॥ २७ ॥

जो भाग्यसे उपस्थित हुए विष्णुके नैवेद्यको प्राप्त होतेही भोग लगाता है जो भक्त विष्णु निवेदित नैवेद्यको इस प्रकार भोग करते हैं ॥ २८ ॥ वह सौ पुरुषोंका उद्धार कर स्वयं जीवन्मुक्त होता है, जो नैवेद्य भोग लगाकर नित्य नारायणको प्रणाम करता है ॥ २९ ॥ अथवा भक्तिसे पूजन और स्तुति करता है वह विष्णुके समान होता है. उसकी स्पर्श की हुई वायुसे शीघ्र तीर्थ समूह शुद्ध हो जाते हैं ॥ ३० ॥ हे मूढ ! उनकी पादरजसे फिर भूमि शुद्ध होती है पुंश्चलीका अन्न अवीरान्न शूद्रान्न श्राद्धान्न ॥ ॥ ३१ ॥ तथा हरिके विना निवेदन किया अन्न वृथा मांसका भक्षण शिवलिंगपर चढाया हुआ पदार्थ शूद्रया जीका दिया द्रव्य ॥ ३२ ॥ चिकित्सक ब्राह्मणका अन्न पुजारीका अन्न कन्या बेचनेवालेका अन्न कुटनीका अन्न ॥ ३३ ॥ उच्छिष्ट अन्न वासी अन्न

यस्त्यजेद्विष्णुनैवेद्यं भाग्येनोपस्थितं शुभम् ॥ प्राप्तिमात्रेण यो भुंक्ते भक्तो विष्णु निवेदितम् ॥ २८ ॥ पुंसां शतं समुद्धृत्य जीवन्मुक्तः स्वयं भवेत् ॥ नैवेद्यं भोजनं कृत्वा नित्यं यः प्रणमेद्धरिम् ॥ २९ ॥ पूजयेत्स्तौति वा भक्त्या सा विष्णुसदृशो भवेत् ॥ तत्स्पर्शवा युना सद्यस्तीर्थौघश्च विशुध्यति ॥ ३० ॥ तत्पादरजसा मूढ सद्यः पूता वसुन्धरा ॥ पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं शूद्रश्राद्धान्नमेव च ॥ ३१ ॥ यद्धरेरनिवेद्यं च वृथा मांसस्य भक्षणम् ॥ शिवलिंगप्रदानं च यद्दत्तं शूद्रयाजिना ॥ ३२ ॥ चिकित्सकद्विजान्नं च देवलान्नं तथैव च ॥ कन्याविक्रयिणामन्नंयदन्नं योनिजीविनाम् ॥ ३३ ॥ उच्छिष्टान्नं पर्युषितं सर्वभक्षावशेषितम् ॥ शूद्रापतिद्विजानां च वृषवादद्विजान्नकम् ॥ ३४ ॥ अदीक्षितद्विजानां च यदन्नं शवदाहिनाम् ॥ अगम्यागा मिनां चैव द्विजानामन्नमेव च ॥ ३५ ॥ मित्रद्रुहां कृतघ्नानामन्नं विश्वा सघातिनाम् ॥ मिथ्यासाक्ष्यप्रदान्नं च ब्राह्मणान्नं तथैव च ॥ ३६ ॥ एते सर्वे विशुध्यंति विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात् ॥ श्वपचश्चेद्विष्णुसेवी वंशानां कोटिमुद्धरेत् ॥ ३७ ॥ हरेरभक्तो मनुजः स्वं च रक्षितुमक्षमः ॥ अज्ञानाद्यदि गृह्णातिविष्णोर्निर्माल्यमेव च ॥ ३८ ॥

सबके खालेनेपर अवशिष्ट अन्न शूद्रपति ब्राह्मणोंका अन्न वृषवाहक द्विजका अन्न ॥ ३४ ॥ अदीक्षित ब्राह्मणका अन्न शवदाही ब्राह्मणका अन्न अगम्यागामियोंका अन्न ॥ ३५ ॥ मित्रद्रोही कृतघ्नी विश्वासघाती मिथ्या साक्षी देनेवाले ब्राह्मणका अन्न ॥ ३६ ॥ यह सब विष्णुका नैवेद्य भक्षण करनेसे शुद्ध हो जाते हैं यदि श्वपच भी विष्णुका सेवी हो तो कोटिवंशोंका उद्धार करता है ॥ ३७ ॥ हरिका अभक्त मनुष्य अपनेको रक्षा करनेमें असमर्थ होता है वह अज्ञानसे यदि विष्णुका नैवेद्य ग्रहण कर ले ॥ ३८ ॥

तो इसमें संदेह नहीं कि वह सात जन्मके अर्जित पापसे मुक्त होता है और जो जानकर भक्तिसे विष्णुका नैवेद्य ग्रहण करते हैं ॥ ३९ ॥ हे इन्द्र ! वह कोटिजन्मके अर्जित पापसे निश्चयही मुक्त हो जाते हैं जो कि तुमने हमारा दिया फूल हाथीके मस्तक पर स्थापित किया है ॥ ४० ॥ इस कारण तुमको छोड़कर लक्ष्मी नारायणके स्थानको गमन करेगी मैं नारायणका भक्त हूं देवता विधातासे नहीं डरता हूं ॥ ४१ ॥ कालमृत्यु जरा किसीसे भी नहीं डरता हूं प्रजापति कश्यप तुम्हारे पिता मेरा क्या कर सकते हैं ॥ ४२ ॥ मैं बृहस्पति गुरुसे निःशंक हूं हे इन्द्र ! यह फूल जिसके शिरपर होता है उसका परम पूजन होता है ॥ ४३ ॥ यह सुनतेही इन्द्रने मुनिराजके चरण पकड़े और शोकसे व्याकुल हो ऊंचे स्वरसे रोता हुआ भयाकुल हुआ ॥ ४४ ॥ महेन्द्रने कहा हे

सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ ज्ञात्वा भक्त्या गृह्णाति विष्णोर्नैवेद्यमेव च ॥ ३९ ॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते निश्चितं हरे ॥ यस्मात्संस्थापितं पुष्पं गर्वेण करिमस्तके ॥ ४० ॥ तस्माद्युस्मान्परित्यज्य यातु लक्ष्मीहरेः पदम् ॥ नारायणस्य भक्तोऽहं न बिभेमि सुराद्विधेः ॥ ४१ ॥ कालान्मृत्योर्जरातश्य कानन्यान्गणयामि च किं ॥ करिष्यति ते तातः कश्यपश्च प्रजापतिः ॥ ४२ ॥ बृहस्पतिर्गुरुश्चैव निःशंकस्य च मे हरे ॥ इदं पुष्पं यस्य मूर्ध्नि तस्यैव पूजनं परम् ॥ ४३ ॥ इति श्रुत्वा महेंद्रश्च धृत्वा स चरणं मुनेः ॥ उच्चै रुरोद शोकार्तस्तमुवाच भयाकुलः ॥ ४४ ॥ महेंद्र उवाच ॥ दत्तः समुचितः शापो मह्यं माया पहः प्रभो ॥ हृतां न याचे संपत्तिं किंचिज्ज्ञानं च देहि मे ॥ ४५ ॥ ऐश्वर्यं विपदां बीजं ज्ञानप्रच्छन्नकारणम् ॥ मुक्तिमार्गकुठारश्च भक्तेश्च व्यवधायकम् ॥ ४६ ॥ मुनिरुवाच ॥ जन्ममृत्युजराशोकरागबीजांकुरं परम् ॥ संपत्तितिमिरांधश्च मुक्तिमार्गं न पश्यति ॥ ४७ ॥ संपन्मत्तो विमूढश्च सुरामत्तः स एव च ॥ बांधवैर्वेष्टितः सोऽपि बंधुत्वेनैव हे हरे ॥ ४८ ॥ संपत्तिमदमत्तश्च विषयांधश्च विह्वलः ॥ महाकामा राजसिकः सत्त्वमार्गं न पश्यति ॥ ४९ ॥

मायाहारी प्रभो ! आपने मुझको उचित शाप दिया है, मैं हरी हुई सम्पत्तिकी याचना नहीं करता आप मुझे कुछ ज्ञान दीजिये ॥ ४५ ॥ ऐश्वर्य विपत्तिका बीज ज्ञानका प्रच्छन्न करनेवाला है तथा मुक्तिमार्गको कुठार और भक्तिमें व्यवधान करनेवाला है ॥ ४६ ॥ मुनि बोले जन्म मृत्यु जरा शोक रोगका बीजांकुर हैं सम्पत्तिरूपी तिमिरमें अन्धा हो मुक्तिमार्गको नहीं देखता है ॥ ४७ ॥ सम्मत्तिसे मत्त विमूढ पुरुष सुरामत्तही कहा है और बांधवोंसे वेष्टित हुआ भी एक प्रकारके बंधनमें पड़ा है ॥ ४८ ॥ सम्पत्ति केसे मदमें मत्त हुआ विषयमें अंधा मदसे विह्वल महाकामी राजसी पुरुष मुक्तिमार्गको नहीं देखता है ॥ ४९ ॥

रजोगुणी तमोगुणी भेदसे विषयांध दो प्रकारका है अशास्त्रज्ञ तामसी और शास्त्रज्ञ रजोगुणी होता है ॥ ५० ॥ हे इन्द्र ! शास्त्र दो प्रकारका मार्ग दिखलाता है एक प्रवृत्तिका बीज और एक निवृत्तिका कारण है ॥ ५१ ॥ प्रथम मार्ग प्रवृत्तिरूपमें जीव भ्रमण करते हैं स्वच्छन्द प्रसन्न निर्विरोध उन्मत्तवत रहता है ॥ ५२ ॥ मधुके लोभसे आकर क्लेशमें सुखमानता है परिणाममें नाशकारक जन्म मृत्यु जरा करनेवाला है ॥ ५३ ॥ इस प्रकार अनेक जन्म पर्यंत भ्रमण करके अपने कर्मानुसार अनेक योनियोंमें विचरण करता है ॥ ५४ ॥ फिर ईश्वरके अनुग्रहसे उसको सत्संगकी प्राप्ति होती है सहस्त्रों सैकड़ोंमें कोई एक संसार सागरके पारके कारण ॥ ५५ ॥ साधु तत्त्वदीपकसे मुक्तिमार्ग दिखाता है तब यह जीव बंधनके खण्डनका यत्न करता है ॥ ५६ ॥

द्विविधो विषयांधश्च राजसस्तामसः स्मृतः ॥ अशास्त्रज्ञस्तामसश्च शास्त्रज्ञो राजसः स्मृतः ॥ ५० ॥ शास्त्रं च द्विविधं मार्गं दर्शयेत्सुरपुंगव ॥ प्रवृत्तिबीजमेकं च निवृत्तेः कारणं परं ॥ ५१ ॥ चरंति जीवनश्चादौ प्रवृत्तेर्दुःखवर्त्मनि ॥ स्वच्छंदं च प्रसन्नं च निर्विरोधं च संततम् ॥ ५२ ॥ आयाति मधुनो लोभात्क्लेशेन सुखमानितः ॥ परिणामे नाशबीजे जन्ममृत्युजराकरे ॥ ५३ ॥ अनेकजन्मपर्यंतं कृत्वा च भ्रमणं मुदा ॥ स्वकर्मविहितायां च नानायोन्यां क्रमेण च ॥ ५४ ॥ ततस्त्वेशानुगृहाच्च सत्संगं लभते च सः ॥ सहस्रेषु शतेष्वेको भवाब्धि पारकारणम् ॥ ५५ ॥ साधुस्तत्त्वप्रदीपेन मुक्तिमार्गं प्रदर्शयेत् तदा करोति यत्नं च जीवो बन्धनखंडने ॥ ५६ ॥ अनेकजन्मयोगेन तमसाऽनशनेन च ॥ तदा लभेन्मुक्तिमार्गं निर्विघ्नं सुखदं परम् ॥ ५७ ॥ इदं श्रुतं गुरोर्वक्त्राद्यत्पृच्छसि पुरंदर ॥ मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा वीतरागो बभूव सः ॥ ५८ ॥ वैराग्यं वर्धयामास तस्य ब्रह्मन्दिनेदिने ॥ मुनेः स्थानाद्गृहं गत्वा स ददर्शामरावतीम् ॥ ५९ ॥ दैत्यैरसुरसंघैश्च समाकीर्णं भयाकुलम् ॥ विषमोपप्लवां कुत्र बंधुहीनां च कुत्रचित् ॥ ६० ॥ पितृमातृकलत्रादिविहीनामति चंचलाम् ॥ शत्रुग्रतां च तां दृष्ट्वा जगाम वाक्पतिं प्रति ॥ ६१ ॥

अनेक जन्मके योग तपस्या भोजन त्यागसे निर्विघ्न परम सुखदायक मुक्तिमार्गको प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ हे इंद्र ! जो तुमने पूछा है यह मैंने गुरुके मुखसे सुना है तब मुनिके वचन सुन इंद्र ! बीतराग हुए ॥ ५८ ॥ और दिन दिन वैराग्य बढने लगा मुनिके स्थानसे घरको जाकर जब इन्द्रने अमरावतीको देखा तो ॥५९॥ वह दैत्य असुरोंसे व्याप्त बड़ी भयानक होगई थी कहीं विषका उपद्रव कहीं बंधहीनता ॥ ६० ॥ कहीं पिता माता कलत्रसे विहीन अतिचंचल तथा विविध शत्रुसे ग्रसित देखकर इन्द्रबृहस्पतिके समीप गये ॥ ६१ ॥

इन्द्रने मन्दाकिनीके किनारे गुरुजीको देखा जो परब्रह्मको ध्यान करते गङ्गाके जलमें स्थित थे ॥ ६२ ॥ सूर्यके सन्मुख पूर्वको मुख किये सब ओर मुखवाले ईश्वरके प्रेममें आंसू भरे रोमांच शरीर परमानंद सम्पन्न थे ॥ ६३ ॥ वरिष्ठ गरिष्ठ धनिष्ठ श्रेष्ठ पुरुषोंसे सेवित बंधुवर्गोंमें श्रेष्ठ ज्ञानियोंमें अतिश्रेष्ठ ॥ ६४ ॥ भातृवर्गोंमें ज्येष्ठ देव वैरियोंके अनिष्टकारक उन गुरुजीको जपमें तत्पर देखकर इन्द्र उसी स्थानमें स्थित हुए ॥ ६५ ॥ जब एक पहरके अन्तमें गुरुजी उठे तब प्रणाम किया और उनके चरणोंमें पड़कर अमरेश रुदन करने लगे ॥ ६६ ॥ और दुर्वासाके शापका सब वृत्तान्त कहा फिर वर और दुर्लभ ज्ञानकी प्राप्ति कही ॥ ६७ ॥ फिर वैरियोंसे ग्रस्त अपनी पुरीका वृत्तांत कहा शिष्यके वचन सुनकर बोलनेवालोंमें अति श्रेष्ठ सुबुद्धि ॥ ६८ ॥ बृहस्पतिजी

शक्रो मंदाकिनीतीरे ददर्श गुरुमीश्वरम् ॥ ध्यायमानं परं ब्रह्म गंगातोये स्थितं परं ॥६२॥ सूर्याभिसंमुखं पूर्वमुखं च विश्वतोमुखम् ॥ साश्रुनेत्रं पुलकिनं परमानंदसंयुतम् ॥ ६३ ॥ वरिष्ठं च गरिष्ठं च धर्मिष्ठं श्रेष्ठसेवितं ॥ प्रेष्ठं च बंधुवर्गाणामतिश्रेष्ठं च ज्ञानिनाम् ॥ ६४ ॥ ज्येष्ठं च भ्रातृवर्गाणामनिष्टं सुरवैरिणाम् ॥ दृष्ट्वा गुरुं जपन्तं च तत्र तस्थौ सुरेश्वरः ॥६५॥ प्रहरांते गुरुं दृष्ट्वा चोत्थितं प्रणनाम सः ॥ प्रणम्य चरणांभोजे रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥ ६६ ॥ वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्मशापादिकं तथा पुनर्वरोपलब्धिं च ज्ञानप्राप्तिं सुदुर्लभाम् ॥६७॥ वैरिग्रस्तां च स्वपुरीं क्रमेणैव सुरेश्वरः ॥ शिष्यस्य वचनं श्रुत्वा सुबुद्धिर्वदतांवरः ॥ ६८ ॥ बृहस्पतिरुवाचेदं कोपसंरक्तलोचनः ॥ गुरुरुवाच ॥ श्रुतं सर्वं सुरश्रेष्ठ मा रोदीर्वचनं शृणु ॥ ६९ ॥ न कातरो हि नीतिज्ञो विपत्तौ च कदाचन ॥ संपत्तिर्वा विपत्तिर्वा नश्वराश्रमरूपिणी ॥ ७० ॥ पूर्वस्य कर्मायत्ता च स्वयं कर्ता तयोरपि ॥ सर्वेषां च भवत्येव शश्वज्जन्मनिजन्मनि ॥ ७१ ॥ चक्रनेमिक्रमेणैव तत्र का परिदेवना ॥ उक्तं हि स्वकृतं कर्म भुज्यतेऽखिलभारते ॥ ७२ ॥ शुभाशुभं च यत्किंचित्स्वकर्मफलभुक्पुमान् ॥ नाऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥ ७३ ॥

क्रोधकर यह वचन बोले बृहस्पति बोले हे इन्द्र ! यह मैंने सुना परंतु मत रोओ हमारे वचन सुनो ॥ ६९ ॥ नीतिज्ञाता पुरुष विपत्तिमें कभी कातर नहीं होते हैं सम्पत्ति वा विपत्ति यह सब भ्रमरूप और नश्वर है ॥ ७० ॥ यह अपने पूर्व कर्मके अनुसार सबका स्वयं कर्ता है यह जन्म २ सबकोही प्राप्त होती है ॥ ७१ ॥ पहिलेके समान सुख दुख घूमते हैं इसमें दुख करना क्या है यह कहा ही है अपना किया कर्म भोगा जाता है ॥ ७२ ॥ शुभ अशुभ कोई क्यों न हो यह पुरुष अपने कर्मका फल भोगता है कोटिकल्प शतवर्षमें भी बिना भोगे कर्मक्षय नहीं होता है ॥ ७३ ॥

शुभाशुभ किया कर्म अवश्यही भोगना पड़ता है यह वेद में श्रीकृष्ण परमात्मा द्वारा कथित हुआ है ॥ ७४ ॥ अर्थात् सामवेदकीशाखामें ब्रह्माजीसे सबके कर्मोंका जन्म भोगावशेष कहा है ॥ ७५ ॥ अर्थात् कर्मकेही अनुसार भारतमें वा अन्य कहीं जन्म होता है कर्मसेही ब्रह्मशाप और कर्मसेही आशिर्वाद प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥ कर्मसेही महालक्ष्मी और दीनता प्राप्त होती है कोटि जन्मोंका उपार्जित पुण्य भी जीवोंके पीछे चलता है ॥ ७७ ॥ अर्थात् हे पुरन्दर ! विना भोगके उसकी छाया कभी नहीं छोड़ती देश कालपात्रके भेदसे कर्मोंकी ॥ ७८ ॥ कर्मसे ही न्यूनता और अधिकता होती है वस्तुके दानसे दिनदिन वस्तुओंके समान पुण्य होता है ॥ ७९ ॥ दिनके भेदसे कोटिगुण और असंख्य वा इससेभी अधिक पुण्य होता है और हे इन्द्र ! समदेशमें वस्तुदानका समान

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं ॥ इत्येवमुक्तं वेदे च कृष्णेन परमात्मना ॥ ७४ ॥ सामवेदोक्तशाखायां संबोध कमलोद्भवम् ॥ जन्मभोगावशेषे च सर्वेषां कृतकर्मणाम् ॥ ७५ ॥ अनुरूपं हि तेषां च भारतेऽन्यत्र चैव हि ॥ कर्मणा ब्रह्मशापं च कर्मणा च सुभाशिषम् ॥ ७६ ॥ कर्मणा च महालक्ष्मीं लभेद्दैन्यं च कर्मणा कोटि जन्मार्जितं कर्म जीविनामनुगच्छति ॥ ७७ ॥ नहि त्यजेद्विना भोगं तच्छायेव पुरंदर ॥ कालभेदे देशभेदे पात्रभेदे च कर्मणाम् ॥ ७८ ॥ न्यूनताधिकभावोऽपि भवेदेव हि कर्मणा ॥ वस्तुदानेन वस्तूनां समं पुण्यं दिने दिने ॥ ७९ ॥ दिनभेदे कोटिगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम् ॥ सम देशे च वस्तूनां दाने पुण्यं समं सुर ॥ ८० ॥ देशभेदे कोटिगुणमसंख्या वा ततोऽधिकम् ॥ समे पात्रे समं पुण्यं वस्तूनां कर्तुरेव च ॥ ८१ ॥ पात्रभेदे शतगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम् ॥ यथा फलंति सस्यानि न्यूनान्यप्यधिकानि च ॥ ८२ ॥ कर्षकाणां क्षेत्रभेदे पात्रभेदे फलं तथा ॥ सामान्यदिवसे विप्रदानं समफलं भवेत् ॥ ८३ ॥ अमायां रविसंक्रात्यां फलं शतगुणं भवेत् ॥ चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनंतं फलमेव च ॥ ८४ ॥

पुण्य है ॥ ८० ॥ देशभेदसे कोटिगुण असंख्य वा इससे अधिक होता है समपात्रमें वस्तुदानकरनेवालेको समानपुण्य होता है ॥ ८१ ॥ पात्र भेदसे सौगुना असंख्य वा उससे भी अधिक होता है जैसे धान्य बराबर बोये जाकर न्यूनाधिक फलते हैं ॥ ८२ ॥ कर्षकोंके क्षेत्र भेदसे न्यूनाधिकता होती है इसी प्रकार पात्रभेदमें फल होता है हे इन्द्र ! सामान्यदिनमें दानका समान फल होता है ॥ ८३ ॥ अमावस्या और संक्रांतिमें सौ गुणा फल होता है चातुर्मास्यकी पूर्णमासी में अनन्त फल होता है ॥ ८४ ॥

चन्द्रग्रहणका कोटिगुणा फल सूर्यग्रहणका उससेभी दशगुणा फल होता है ॥ ८५ ॥ और अक्षयतिथिमें अक्षयफल होता है इसी प्रकार और भी पुण्यदिनोंमें अधिक फल होता है ॥ ८६ ॥ जैसे दान स्नान जप और पुण्यकर्मोंमें होता है इसीप्रकार मनुष्योंके कर्मका फल जानना चाहिये ॥ ८७ ॥ जिस प्रकार दण्ड चक्रादिके भ्रमणसे कुम्हार घट निर्माण करता है और मृत्तिकासे कार्य करता है ॥ ८८ ॥ इसी प्रकार विधाता कर्मसूत्रसे फल देता है जिसकी आज्ञासे यह सृष्टि चलती है उस नारायणको भजो ॥ ८९ ॥ वह विधाताका विधाता, रक्षकका रक्षक, तीनों जगत्का, सृष्टिका भी सृजन करनेवाला, संहार करनेवालेका भी संहार करने वाला है ॥ ९० ॥ महा विपत्तिवाले संसारमें जो मधुसूदनका स्मरण करता है उसकी विपत्तिमें सम्पत्ति होती है ऐसा शंकरने कहा है ॥ ९१ ॥

ग्रहणे शशिनः कोटिगुणं च फलमेव च ॥ सूर्यस्य ग्रहणे वाऽपि ततो दशगुणं भवेत् ॥ ८५ ॥ अक्षयायामक्षयं तदसंख्यं फलमुच्यते ॥ एवमन्यत्र पुण्याहे फलाधिक्यं भवेदिति ॥८६॥ यथा दाने तथा स्नाने जपेऽन्यपुण्य कर्मसु ॥ एवं सर्वत्र बोद्धव्यं नराणां कर्मणां फलम् ॥८७॥ यथा दंडेन चक्रेण शरावेण भ्रमेण च ॥ कुम्भं निर्माति निर्माता कुंभकारो मृदा भुवि ॥८८॥ तथैव कर्मसूत्रेण फलं धाता ददाति च ॥ यस्याज्ञया सृष्टमिदं तं नारायणं भज ॥ ८९ ॥ स विधाता विधातुश्च पातुः पाता जगत्रये स्रष्टुः स्रष्टा च संहर्तुः संहर्ता कालका लकः ॥ ९० ॥ महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम् ॥ विपत्तौ ॥ तस्य संपत्तिर्भवेदित्याहशंकरः ॥ ९१॥ इत्येवमुक्त्वा तत्त्वज्ञः समा लिंग्य सुरेश्वरम् ॥ दत्त्वा शुभाशिषं चेष्टं बोधयामास नारद ॥ ९२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥ नारायण उवाच ॥ हरिं ध्यात्वा हरिर्ब्रह्मञ्जगाम ब्रह्मणः सभाम् ॥ बृहस्पतिं पुरस्कृत्य सर्वैः सुरगणैः सह ॥१॥ शीघ्रं गत्वा ब्रह्मलोकं दृष्ट्वा च कमलोद्भवम् ॥ प्रणेमुर्देवताः सर्वाः सहेंद्रा गुरुणा सह ॥२॥ वृत्तांतं कथयामास सुराचार्यो विधिं प्रति ॥ प्रहस्योवाच तच्छ्रुत्वा महेन्द्रं कमलासनः ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वत्स मद्वंशजातोऽसि प्रपौत्रो मे विचक्षणः ॥ बृहस्पतेश्च शिष्यस्त्वं सुराणामधिपः ॥ ४ ॥

वह तत्त्वज्ञ इस प्रकार कह इन्द्रको आलिंगन कर और इष्ट आशीर्वाद देकर समझा दिया ॥ ९२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ नारायण बोले तब इंद्रने हरिका ध्यानकर ब्रह्माकी सभा में गमन किया तब सब देवता बृहस्पतिको आगे करके ॥ १ ॥ शीघ्र ब्रह्मलोकमें जायब्रह्माजीको देख इंद्र और गुरुके सहित उनको प्रणाम करते हुए ॥ २ ॥ तब सुराचार्यने विधातासे यह सब वृत्तान्त कहा तब कमलासनने हँसकर महेन्द्रसे कहा ॥ ३ ॥ ब्रह्मा बोले हे वत्स ! मेरे वंशमें उत्पन्न हुए तुम मेरे चतुर प्रपौत्रहो बृहस्पतिके शिष्य और देवताओंके स्वयं अधिपतिहो ॥ ४ ॥

तुम्हारे मातामह दक्ष प्रताप वान् विष्णुभक्त हैं जिसके तीनों कुल शुद्ध हैं उसको अहंकार कैसे हो सकता है ॥ ५ ॥ जिसकी माता पतिव्रता और पिता शुद्ध जितेन्द्रिय है मातामहके मामा जिसका शुद्ध हो वह अहंकार युक्त कैसे हो सकता है ॥ ६ ॥ यह मनुष्य पिता और मातामहके दोषसे तथा गुरुके दोषसे देवताका अपराधी होता है ॥७। सबके अन्तरात्मा भगवान् सबके देहमें स्थित है जिसके देहसे निर्गत हो जाता है वह उसीसमय शवरूप हो जाता है ॥ ८॥ मन इंद्रियोंका अधिपति और शंकर ज्ञानरूप है प्रकृति भगवती बुद्धिसती विष्णुकी प्राणस्वरूपा है ॥ ९ ॥ निद्रादिक शक्तियें सब प्रकृतिकी कला हैं अपना प्रति बिम्बजीवभोग शरीरका धारणकरनेवाला है ॥ १० ॥ और जब आत्माका अधीश्वर चला जाता है तब सब संग्रामरूपसे चले जाते हैं, जैसे मार्गमें जाते राजाके

स्वयम् मातामहश्च दक्षस्ते विष्णुभक्तः प्रतापवान् ॥ कुलत्रयं यस्य शुद्धं कथ सोऽहंकृतो भवेत् ॥ ५ ॥ माता पतिव्रता यस्य पिता शुद्धो जितेंद्रियः ॥ मातामहो मातुलश्च कथं सोऽहंकृतो भवेत् ॥ ६ ॥ जनः पैतृकदोषेण दोषान्मातामहस्य च ॥ गुरु दोषात्त्रिभि र्दोषैर्हरिदोषी भवेद्ध्रुवम् ॥ ७ ॥ सर्वांतरात्मा भगवान् सर्वदेहेष्ववस्थितः ॥ यस्य देहात्स प्रयाति स शवस्तत्क्षणे भवेत् ॥ ८ ॥ मनोऽहमिंद्रियेशं च ज्ञानरूपो हि शंकरः ॥ विष्णुप्राणा च प्रकृतिर्बुद्धिर्भगवती सती ॥ ९ ॥ निद्रादयः शक्तयश्च ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः ॥ आत्मनः प्रतिबिंबश्च जीवो भोगशरीरभृत १० ॥ आत्मनीशे गते देहात्सर्वे यांति ससंभ्रमाः ॥ यथा वर्त्मनि गच्छंतं नरदेव मिवानुगाः ॥ ११ ॥ अहं शिवश्च शेषश्च विष्णुधर्मो महाविराट् ॥ यूयं यदंशा भक्ताश्च तत्पुष्पं न्यक्कृतं त्वया ॥ १२॥ शिवेन पूजितं पादपद्मं पुष्पेणा येन च ॥ तत्र दुर्वाससा दत्तं दैवेन न्यक्कृतं त्वया ॥ १३ ॥ तत्पुष्पं मस्तके यस्य कृष्णपादाब्जप्रच्युतम् ॥ सर्वेषां च सुराणां च तत्पूजा पुरतो भवेत् ॥ १४ ॥ दैवेन वंचितस्त्वं हि दैवं च बलव त्तरम् ॥ भाग्यहीनं जनं मूढं को वा रक्षितुमीश्वरः ॥ १५ ॥ सा श्रीगताऽधुना कोपात्कृष्णनिर्माल्यवर्जनात् ॥ अधुना गच्छ वैकुंठं मया च गुरुणा सह ॥ १६ ॥

पीछे उनके अनुचर भी जाते हैं ॥ ११ ॥ मैं, शिव, शेष, विष्णु, धर्म, महाविराट् तुम जिसके अंशके भक्तहो उसी फूलका तुमने तिरस्कार किया है ॥१२॥ जिस पुष्प शिवने भगवान्के चरणकमलका पूजन किया है वह दुर्वासाका दिया हुआ तुमने तिरस्कार कर दिया ॥ १३ ॥ वह कृष्णके चरणकमलका चढा पुष्प जिसके मस्तकमें स्थित है उसकी सबसे अधिक और पूजा पहले क्यों न हो ॥ १४ ॥ तुम प्रारब्धसे वंचित हुए हो दैव ही बलवान् है भाग्यहीन मनुष्यकी देवता भी रक्षा करनेको समर्थ नहीं ॥ १५ ॥ कृष्ण निर्माल्यके वर्जनसे अब लक्ष्मी चलीगई अब हमारे और गुरुके सहित वैकुण्ठको चलो ॥ १६ ॥

वहां श्रियानाथको सेवनकर मेरे वरसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होगी ब्रह्माजी यह कह सब देवतादिके सहित ॥ १७ ॥ वहाँ जाय सनातन परब्रह्म तेजस्वरूप अपने तेजके प्रकाशमान तेजस्वरूपको देखकर ॥ १८ ॥ ग्रीष्म मध्याह्न मार्तण्डके समान सौ कोटि सूर्यकी प्रभाशाली, कांति शान्ति अनादि मध्यांत लक्ष्मीकान्त अनंत ॥ १९ ॥ चार भुजावाले पार्षद और सरस्वतीसे युक्त भक्तिपूर्वक चारवेद और गंगासे परिवेष्टित ॥ २० ॥ और ब्रह्मा आदि सब देवता उनको प्रणाम करते हुए और भक्तिसे नम्र हो नेत्रोंमें आंसू भर परमेश्वरकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ और स्वयं ब्रह्माजी हाथ जोड़कर अपना वृत्तान्त कहने लगे और अपने अधिकार च्युत होनेसे देवता भी सब रोने लगे ॥ २२ ॥ उन्होंने विपद्ग्रस्त भयाकुल देवताओंको देखा, जो रत्नभूषण शून्य वाहनादिसे वर्जित

निषेव्य तत्र श्रीनाथं श्रियं प्राप्स्यसि मद्वरात् ॥ एवमुक्त्वा च स ब्रह्मा सर्वैः सुरगणैः सह ॥ १७ ॥ तत्र गत्वा परं ब्रह्म भगवंतं सनातनम् ॥ दृष्ट्वा तेजःस्वरूपं तं प्रज्वलते स्वतेजसा ॥ १८ ॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडशतकोटिसमप्रभम् ॥ शांतमनादिमध्यांतं लक्ष्मीकांतमनंतकम् ॥ १९ ॥ चतुर्भुजैः पार्षदैश्च सरस्वत्या युतं प्रभुम् ॥ भक्त्या चतुर्भिर्वेदैश्च गंगया परिवेष्टितम् ॥ २० ॥ तं प्रणेमुः सुराः सर्वे मूर्ध्ना ब्रह्मपुरोगमाः ॥ भक्तिनम्राः साश्रुनेत्रास्तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥ २१ ॥ वृत्तांतं कथयामास स्वयं ब्रह्मा कृतांजलिः ॥ रुरुदुर्देवताः सर्वाः स्वाधिकाराच्च्युताश्च ताः ॥ २२ ॥ स ददर्श सुरगणं विपद्ग्रस्तं भयाकुलम् ॥ रत्नभूषण शून्यं च वाहनादिविवर्जितम् ॥ २३ ॥ शोभाशून्यं हतश्रीकं निष्प्रभं समयं परम् ॥ उवाच कातरं दृष्ट्वा भयभीतिविभंजनः ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच माभैर्ब्रह्मन् हे सुराश्च भयं किं वो मयि स्थिते ॥ दास्यामि लक्ष्मीमचलां परमैश्वर्यवर्धिनीम् ॥ २५ ॥ किंच मद्वचनं किंचिच्छ्रूयतां समयोचितम् ॥ हितं सत्यं सारभूतं परिणामसुखावहम् ॥२६॥ जनाश्चासंख्यविश्वस्था मदधीनाश्च संततम् ॥ यथा तथाऽहं मद्भक्तपराधीनोऽस्वतंत्रकः ॥ २७ ॥ यंयं रुष्टो हि मद्भक्तो मत्परो हि निरंकुशः ॥ तद्गृहेऽहं न तिष्ठामि पद्मया सह निश्चितम् ॥ २८ ॥

थे ॥ २३ ॥ शोभासे शून्य लक्ष्मीसे हत, प्रभारहित भयभीत हुए देवताओंको कातर देखकर भयमोचन भगवान् कहने लगे ॥ २४ ॥ श्रीभगवान् बोले हे ब्राह्मण ! हे देवताओं ! मत डरो मेरे होते तुमको भय नहीं है मैं परम ऐश्वर्य बढानेवाली अचललक्ष्मीको दूंगा ॥ २५ ॥ परन्तु इस समय समयोचित मेरे वचनको सुनो जो हित सत्य सारभूत और परिणाममें सुख करनेवाले हैं ॥ २६ ॥ असंख्य विश्वमें स्थित प्राणी मेरे आधीन हैं परन्तु यथा तथा मैं भक्तोंके विषयमें पराधीन हूं ॥ २७ ॥ मेरे भक्त निरंकुश हैं वह जिस जिसपर रुष्ट होंगे मैं लक्ष्मीके सहित उनके यहां स्थित नहीं रहता हूं ॥ २८ ॥

दुर्वासा शंकरांश वैष्णव मेरे परम भक्त हैं उनके शापसे मैं तुम्हारे घर लक्ष्मीसहित चला आया हूं ॥ २९ ॥ जहां शंख ध्वनि नहीं है तुलसी और शिव शिवार्चन नहीं है तथा जहां ब्राह्मण भोजन नहीं होता वहां लक्ष्मी नहीं रहती ॥ ३० ॥ हे ब्रह्मन् ! जहां मेरे भक्त और मेरी निन्दा होती है वहां महारुष्ट हो महालक्ष्मी पराभवको प्राप्त होती है ॥ ३१ ॥ मेरी भक्तिसे हीन होकर जो मूढ हरिवासर एकदशीको भोजन करता है वा मेरे जन्मदिनमें भोजन करता है लक्ष्मी उनके घरसे चली जाती है ॥ ३२ ॥ जो मेरे नामको बेचता और स्वकन्याको बेचना तथा जहां अतिथि भोजन नहीं करते मेरी प्रिय उनके घरसे चली जाती है ॥ ३३ ॥ जो ब्राह्मण पुंश्चलीका पुत्र है उसका पति महापापीहै जो पापियोंके घर जाते हैं तथा जो शूद्रके श्राद्धान्नका भोजन करता है ॥ ३४ ॥

दुर्वासाः शंकरांशश्च वैष्णवो मत्परायणः ॥ तच्छापादागतोऽहं च सलक्ष्मीको हि वो गृहात् ॥ २९ ॥ यत्र शंखध्वनिर्नास्ति तुलसी न शिवार्चनम् ॥ न भोजनं च विप्राणां न पद्मा तत्र तिष्ठति ॥ ३० ॥ मद्भक्तानां च मे निंदा यत्र ब्रह्मन् भवेत्सुराः ॥ महारुष्टा महालक्ष्मीस्ततो याति पराभवम् ॥ ३१ ॥ मद्भक्तिहीनो यो मूढो भुंक्ते यो हरिवासरे ॥ मम जन्मदिने वापि याति श्रीस्तद्गृहादपि ॥३२॥ मन्नामविक्रयी यश्च विक्रीणाति स्वकन्यकाम् ॥ यत्रातिथिर्न भुंक्ते च मत्प्रिया याति तद्गृहात् ॥ ३३ ॥ यो विप्रः पुंश्चलीपुत्रो महापापी च तत्पतिः ॥ पापिनो यो गृहं याति शूद्रश्राद्धान्नभोजकः ॥ ३४ ॥ महारुष्टा ततो याति मंदिरात्कम लालया ॥ शूद्राणां शवदाही च भाग्यहीनो द्विजाधमः ॥ ३५ ॥ याति रुष्टा तद्गृहाच्च देवाः कमलवासिनी ॥ शूद्राणां सूपकारी यो ब्राह्मणो वृषवाहकः ॥३६॥ तत्तोयपानभीता च कमला ॥ याति तद्गृहात् ॥ अशुद्धहृदयः क्रूरो हिंसको निन्दको द्विजः ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणः शूद्रयाजी च याति देवी च तद्गृहात ॥ अवीरान्नं च यो भुंक्ते तस्माद्याति जगत्प्रसूः ॥ ३८ ॥

उसके यहांसे लक्ष्मी रूठकर चली जाती हैं जो शूद्रोंके शव जलाते हैं वह द्विजाधम भाग्यहीन हैं ॥ ३५ ॥ हे देवताओं ! उसके गृहसे लक्ष्मी कमलवासिनी चली जाती है जो ब्राह्मण होकर शूद्रोंका सूपकारी तथा जो ब्राह्मण वृषवाही है ॥ ३६ ॥ उनके जलपानके भयसे भी उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है जिसका हृदय अशुद्ध क्रूर जो द्विज हिंसक और निन्दक है ॥ ३७ ॥ तथा जो ब्राह्मण शूद्रयाजी है हे देवी ! उसके घरसे लक्ष्मी चली जाती है तथा जो अवीराका अन्न खाता है उसके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ३८ ॥

जो नाखूनोंसे तृणछेदन करते वा उनसे जो भूमिको लिखते हैं, जहांसे ब्राह्मण निराश चले जाते हैं उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ३९ ॥ जो ब्राह्मण सूर्योदयमें भोजन करते हैं जो ब्राह्मण दिनमें शयन करते हैं तथा जो दिनमें मैथुन करते हैं उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ४० ॥ जो ब्राह्मण आचार हीन और शूद्रसे प्रतिग्रह लेता है जो मूढ अदीक्षित है उसके स्थानसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ४१ ॥ जो ज्ञान हीन गीले पैरसे नंगा होकर सोता है तथा वाचाल और निरन्तर हँसता है उसके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ४२ ॥ शिरसे तेलसे न्हाया हुआ जो दूसरेका अंग स्पर्श करै तथा जो अपने शरीरमें बाजा बजाता है उसके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ४३ ॥ जो ब्राह्मण व्रत उपवाससे हीन और संध्यासे हीन अशुचि है तथा जो विष्णुभक्तिसे

तृणं छिनत्ति नखरैस्तैर्वा यो विलिखेन्महीम् ॥ निराशो ब्राह्मणो यत्र तद्गृहाद्याति मत्प्रिया ॥ ३९ ॥ सूर्योदये द्विजो भुंक्ते दिवा शायी च ब्राह्मणः ॥ दिवामैथुनकारी च यस्तस्माद्याति मत्प्रिया ॥ ४० ॥ आचारहीनो विप्रो यो यश्च शूद्रप्रति ग्रही ॥ अदीक्षितो हि यो मूढस्तस्माद्धि याति मत्प्रिया ॥ ४१ ॥ स्निग्धपादश्च नग्नो हि यः शेते ज्ञानदुर्बलः ॥ शश्वद्वदति वाचालो याति सा तद्गृहात्सती ॥ ४२ ॥ शिरःस्नातस्तु तैलेन योऽन्यांगं समुपस्पृशेत् ॥ स्वांगे च वादयेद्वाद्यं रुष्टा सा याति तद्गृहात् ॥ ४३ ॥ व्रतोपवासहीनो यः संध्याहीनोऽशुचिर्द्विजः ॥ विष्णु भक्ति विहीनस्तु तस्माद्याति च मत्प्रिया ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणं निंदयेद्यो हि तं च यो द्वेष्टि संततम् ॥ जीवहिंसो दयाहीनो याति सर्व प्रसूस्ततः ॥ ४५ ॥ यत्र यत्र हरेरर्चा हरेरुत्कीर्तनं तथा ॥ तत्र तिष्ठति सा देवी सर्वमंगलमंगला ॥ ४६ ॥ यत्र प्रशंसा कृष्णस्य तद्भक्तस्य पितामह ॥ सा च कृष्णप्रिया देवी तत्र तिष्ठति संततम् ॥४७॥ यत्र शंखध्वनिः शंख शिला च तुलसीदलम् ॥ तत्सेवा वंदनं ध्यानं तत्र सा परि तिष्ठति ॥ ४८ ॥

हीन है. इसके स्थानमें मेरी प्रिया नहीं रहती ॥ ४४ ॥ जो ब्राह्मणकी निन्दा करता और निरन्तर उनसे द्वेष करता है जो जीवहिंसक दयाहीन है उनके घरसे लक्ष्मी चली जाती है ॥ ४५ ॥ जहां जहां हरिकी अर्चा और हरिका कीर्त्तन होता है वहाँ २ सर्व मंगल देवी निवास करती है ॥ ४६ ॥ हे पितामह ! जहां कृष्ण और उनके भक्तोंकी प्रशंसा है वहां कृष्ण प्रिया देवी निरंतर निवास करती है ॥ ४७ ॥ जहां शंख, शंखध्वनि, शालिग्राम, तुलसीदल तथा भगवान्की सेवा, वंदन, ध्यान है वहां कमला निवास करती है ॥ ४८ ॥

जहां शिवलिंगार्चन और उनका सुन्दर कीर्त्तन है तथा दुर्गाका अर्चन और उनके गुणोंका गान है वहां लक्ष्मी निवास करती है ॥ ४९ ॥ जहां ब्राह्मणोंका सेवन और उनका भोजन है वहां सब वेदोंका अर्चन है वहां लक्ष्मी निवास करती है ॥ ५० ॥ सब देवताओंसे ऐसा कहकर रमापतिने लक्ष्मीसे कहा कि तुम अपनी कलासे क्षीर सागरमें जन्म लो ॥ ५१ ॥ जगन्नाथ इस प्रकार कहकर फिर ब्रह्मासे बोले कि, सागरसे लक्ष्मी मंथन कर देवताओंको दो ॥ ५२ ॥ हे मुने ! कमलाकान्त यह कहकरअन्तःपुरमें चले गये देवता भी तत्काल क्षीरसागरको गये ॥ ५३ ॥ कूर्मको भाजन कर और मंदरको मंथान करके और शेषको मंथपाश करके सुर असुरोंने सागरमंथन किया ॥ ५४ ॥ धन्वन्तरि, अमृत, उच्चैःश्रवा, अनेक रत्न ऐरावत हाथी, सुदर्शन, लक्ष्मी उसमेंसे निर्गत हुई

शिवलिंगार्चनं यत्र तस्य चोत्कीर्तनं शुभम् ॥ दुर्गार्चनं तद्गुणाश्च तत्र पद्मनिवासिनी ॥ ४९ ॥ विप्राणां सेवनं यत्र तेषां च भोजनं शुभम् ॥ अर्चनं सर्वदेवानां तत्र पद्ममुखी सती ॥ ५० ॥ इत्युक्त्वा च सुरान्सर्वान्रमामाह रमापतिः ॥ क्षीरोदसागरे जन्म कलयाऽऽक लयेति च ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वा तां जगन्नाथो ब्रह्माण पुनराह च ॥ मथित्वा सागरं लक्ष्मीं देयोवेभ्य देहि पद्मज ॥ ५२ ॥ इत्युक्त्वा कमलाकांतो जगामांतःपुरं मुने ॥ देवाश्चिरेण कालेन ययुःक्षीरोदसागरम् ॥ ५३ ॥ मंथानं मंदरं कृत्वा कूर्मं कृत्वा च भाजनम् ॥ कृत्वा शेषं मंथपाशं ममंथुरसुराः सुराः ॥ ५४ ॥ धन्वंतरिं च पीयूषमुच्चैःश्रवसमीप्सितम् ॥ नानारत्नं हस्तिरत्नं प्रापुर्लक्ष्मीं सुदर्शनम् ॥ ५५ ॥ वनमालां ददौ सा च क्षीरोदशायिने मुने ॥ सर्वेश्वराय रम्याय विष्णवेवैष्णवी सती ॥ ५६ ॥ देवैः स्तुता पूजिता च ब्रह्मणा शंकरेण च ॥ ददौ दृष्टिं सुरगृहे ब्रह्मशापविमो चनात् ॥ ५७ ॥ प्रापुर्देवाः स्वविषयं दैत्यग्रस्तं भयंकरम् ॥ महालक्ष्मीप्रसादेन वरदानेन नारद ॥ ५८ ॥ इत्येवं कथितं सर्वं लक्ष्म्यु पाख्यानमुत्तमम् ॥ सुखदं सारभूतं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

॥ ५५ ॥ हे मुने ! उन्होंने क्षीरोदशायीके निमित्त वनमालादी जो विष्णु सर्वेस्वर अति मनोहर हैं उनहीको वैष्णवी सतीने माला दी ॥ ५६ ॥ फिर देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त हो वह ब्रह्मा और शंकरसे पूजित हुई और ब्रह्माके शाप मुक्त होनेसे उन्होंने देवताओंके स्थानमें दृष्टि दी ॥ ५७ ॥ तब देवताओंने दैत्योंसे भयंकर ग्रसित अपने विषय (राज्य) को पाया हे नारद ! महालक्ष्मीके प्रसाद और वरदानसे ॥५८॥ राज्य पाया यह सब तुमसे लक्ष्मीका उपाख्यान कहा यह सुखदायक सारभूत है अब आपके क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ५९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

नारदजी बोले हे भगवन् ! हरिका उत्कीर्तन और उनका ज्ञान श्रवण किया और लक्ष्मीका उपाख्यान भी सुना हे प्रभो ! अब उनका स्तोत्र कहिये ॥ १ ॥ नारायण बोले इन्द्र तीर्थमें स्नान कर धुले वस्त्र पहर कर क्षीरसागरमें घट स्थापन कर छः देवताओंका पूजन करता हुआ ॥ २ ॥ गणेश, सूर्य, अग्नि, शिव, शिवा इनको भक्तिपूर्वक पुष्प गंधादिसे अर्चनकर ॥ ३ ॥ परमैश्वर्यरूपिणी लक्ष्मीका आवाहन कर देवेश ब्रह्मा और अपने पुरोहितके सहित पूजा करते हुए ॥ ४ ॥ मुनि ब्राह्मण हरि गुरु इनके आगे स्थित होनेमें तथा ज्ञानानन्द शिव और देवादिके सुदेशमें स्थित होनेसे ॥ ५ ॥ चन्दनसे सिक्त पारिजातका फूल ग्रहण करनेपर महालक्ष्मीदेवीका ध्यान करके हे नारद ! उनका पूजन किया ॥ ६ ॥ जो प्रथम ब्रह्माजीको हरिने सामवेदोक्त लक्ष्मीका ध्यान कहा था वही ध्यान किया

नारद उवाच ॥ हरेरुत्कीर्तनं भद्रं श्रुतं तज्ज्ञानमुत्तमम् ॥ ईप्सितं लक्ष्म्युपाख्यानं ध्यानं स्तोत्रं वद प्रभो ॥ १ ॥ नारायण उवाच ॥ स्नात्वा तीर्थे पुरा शक्रो धृत्वा धौते च वाससी ॥ घटं संस्थाप्य क्षीरोदे षड्देवान्पर्यपूजयत् ॥ २ ॥ गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥ एतान् भक्त्या समभ्यर्च्य पुष्पगंधादिभिस्तदा ॥ ३ ॥ आवाह्य च महालक्ष्मीं परमैश्वर्यरूपिणीम् ॥ पूजां चकार देवेशो ब्रह्मणा च पुरोधसा ॥ ४ ॥ पुरःस्थितेषु मुनिषु ब्राह्मणेषु गुरौ हरौ ॥ देवादिषु सुदेशे च ज्ञानानंदे शिवे मुने ॥ ५ ॥ पारिजातस्य पुष्पं च गृहीत्वा चंदनोक्षितम् ॥ ध्यात्वा देवीं महालक्ष्मीं पूजयामास नारद ॥ ६ ॥ ध्यानं च सामवेदोक्तं यद्दत्तं ब्रह्मणे पुरा ॥ हरिणा तेन ध्यानेन तन्निबोध वदामि ते ॥ ७ ॥ सहस्रदलपद्मस्थकर्णिकावासिनीं पराम् ॥ शरत्पार्वणकोटींदुप्रभामुष्टिकरां पराम् ॥ ८ ॥ स्वतेजसा प्रज्वलंतीं सुखदृश्यां मनोहराम् ॥ प्रतप्तकांचननिभशोभां मूर्तिमतीं सतीम् ॥ ९ ॥ रत्नभूषणभूषाढ्यां शोभितां पीतवाससा॥ईषद्धास्यां प्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्॥१०॥सर्वसंपत्प्रदात्रीं च महालक्ष्मीं भजे शुभाम्॥ध्यानेनानेन तां ध्यात्वा नानागुणसमन्विताम्॥११॥संपूज्य ब्रह्मवाक्येन चोपचाराणि षोडश॥ददौ भक्त्या विधानेन प्रत्येकं मंत्रपूर्वकम् ॥१२॥

सुनिये मैं वह ध्यान आपसे कहता हूं ॥ ७ ॥ सहस्रदल कमलकी कर्णिकामें निवास करनेवाली शरत्पूर्णिमाके कोटिचन्द्रकी प्रभाको तिरस्कार करनेवाली ॥ ८ ॥ अपने तेजसे प्रज्वलित मुख दृश्या मनोहर तप्त सुवर्णके समान शोभावाली मूर्तिमती सती ॥ ९ ॥ रत्नभूषणोंकी शोभासे पूर्ण पीतवस्त्रसे शोभित कुछ हास्यमे प्रसन्नमुखी निरन्तर स्थिर यौवनवाली ॥ १० ॥ सब सम्पत्तिकी देनेवाली शुभ महालक्ष्मीका भजन करता हूँ इस ध्यानसे उन अनेक गुणसम्पन्नका ध्यान करके ॥ ११ ॥ और सोलह उपचारसे ब्रह्मवाक्यसे पूजन कर प्रत्येक पदार्थको मंत्र पूर्वक भक्तिविधानसे दिया ॥ १२ ॥

प्रशस्त और प्रत्कृष्ट अनेक प्रकारके श्रेष्ठ पदार्थ अमूल्य रत्नसार जो ब्रह्माजीके बनाये हैं ॥ १३ ॥ और विचित्र आसन हे महालक्ष्मी ! ग्रहण करो और यह
सबसे वंदित मनोहर शुद्ध गङ्गाजल है ॥ १४ ॥ यह पापरूपी ईंधनके जलानेको अग्निरूप है हे लक्ष्मी ! इसको ग्रहण करो, यह पुष्प चंदन दूर्वादिसे संयुक्त
जाह्नवी जल है ॥ १५ ॥ और इस शंखमें स्थित अर्घ्यको हे कमल लोचने ! ग्रहण करो सुगंधित पुष्पका तेल और सुगंधित आमला ॥ १६ ॥ हे हरिप्रिये !
इस देहकी सुन्दरताके बीजको ग्रहण करो हे देवी ! यह सूती और रेशमी वस्त्र ग्रहण करो ॥ १७ ॥ रत्न और सुवर्णके गहने देहकी शोभा बढानेवाले हैं
यह श्रीकररत्न शोभाके निमित्त हैं हे देवि ! इसको ग्रहण करो ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण सुन्दरताके बीज और सब शोभा करनेवाले वृक्षकी निर्यासरूप गंध ग्रहण करो

प्रशस्तानि प्रकृष्टानि वराणि विविधानि च ॥ अमूल्यरत्नसारं च निर्वितं विश्वकर्मणा ॥ १३ ॥ आसनं च विचित्रं च महालक्ष्मि
प्रगृह्यताम् ॥ शुद्धं गंगोदकमिदं सर्ववंदितमीप्सितम् ॥ १४ ॥ पापेध्मवह्निरूपं च गृह्यतां कमलालये ॥ पुष्पचंदनदूर्वादिसंयुतं जाह्नवी
जलम् ॥ १५ ॥ शंखगर्भस्थितं स्वर्घ्यं गृह्यतां पद्मवासिनि ॥ सुगंधिपुष्पतैलं च सुगंधामलकीफलम् ॥ १६ ॥ देहसौंदर्यबीजं च
गृह्यतां श्रीहरेः प्रिये ॥ कार्पासजं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम् ॥ १७ ॥ रत्न स्वर्णविकारं च देहभूषाविवर्धनम् ॥ शोभायै श्रीकरं
रत्न भूषणं देवि गृह्यताम् ॥ १८ ॥ सर्वसौंदर्यबीजं च सद्यः शोभाकरं परम् ॥ वृक्ष निर्यासरूपं च गन्धद्रव्यादि संयुतम् ॥ १९ ॥
श्रीकृष्णकांते धूपं च पवित्रं प्रतिगृह्यताम्॥सुगंधियुक्तं सुखदं चंदनं देवि गृह्यताम्॥२०॥जगच्चक्षुःस्वरूपं च पवित्रं तिमिरापहम् ॥ प्रदीपं
सुखरूपं च गृह्यतां च सुरेश्वरि ॥२१॥नानोपहाररूपं च नानारससमन्वितम् ॥ अतिस्वादुकरं चैव नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥२२॥ अन्नं
ब्रह्मस्वरूपं च प्राणरक्षणकारणम् ॥ तुष्टिदं पुष्टिदंचैव देव्यन्नं प्रतिगृह्यताम्॥२३॥शाल्यन्नजं सुपक्वं च शर्करागव्यसंयुतम् ॥ स्वादुयुक्तं
महालक्ष्मि परमान्नं प्रगृह्यताम्॥२४॥शर्करागव्यपक्वं च सुस्वादु सुमनोहरम् ॥ मयानिवेदितम् भक्त्या स्वस्तिकं प्रतिगृह्यताम् ॥२५॥

॥ १९ ॥ हे कृष्णकांते ! यह पवित्र धूप ग्रहण करो यह सुगंधियुक्त सुखद चंदन है इसको ग्रहण करो ॥ २० ॥ यह जगतके चक्षुःस्वरूप पवित्र अन्ध
कारनाशक सुखरूप दीपक हे सुरेश्वरि ! ग्रहण करो ॥ २१ ॥ अनेक उपहाररूप अनेक रससे सम्पन्न अति स्वादिष्ठ नैवेद्य ग्रहण करो ॥ २२ ॥ यह अन्न
ब्रह्मस्वरूप प्राणरक्षणका कारण हैं देवि ! इस तुष्टि और पुष्टि देनेवालेको ग्रहण करो ॥ २३ ॥ शालि अन्नसे बनाई खीर शर्करा और दधिघृतयुक्त है, हे
महालक्ष्मी ! यह परम स्वादिष्ठ है इसको ग्रहण करो ॥ २४ ॥ शर्करा दूधमें पक सुस्वादिष्ठ मनोहर मेरा निवेदित यह स्वस्तिक अन्न ग्रहण करो ॥ २५ ॥

और भी अनेक प्रकारके पक्कमधुर अन्न मनोहर सुरभीके स्तनसे निकला स्वादिष्ठ ॥ २६ ॥ मनुष्योंका अमृत स्वरूप दूध घृतादि हे अच्युत प्रिय ग्रहण करो, अच्छे स्वादिष्ठ रससे संयुक्त गन्नेके रसमे प्रकट ॥ २७ ॥ अग्निमें पक्क अति स्वादिष्ठ गुड ग्रहण करो एवं गोधूम सस्योंका चूर्ण ॥ २८ ॥ सुपक्व गुड और गव्यसे युक्त मिष्टान्न ग्रहण करो सस्यचूर्णोद्भव पक्क स्वस्तिकादिसे युक्त ॥ २९ ॥ यह मेरे दिये नैवेद्यको भक्ति पूर्वक ग्रहण करो शीत वायुका करने वाला और दाहमें भी परम सुखकारी ॥ ३० ॥ हे कमल देवि ! यह व्यजन और श्वेतचमर आप ग्रहण करो मनोहर ताम्बूल कर्पूरादिसे सुवासित ॥ ३१ ॥ जिह्वाकी जडताका छेदकारी ताम्बूल ग्रहण करो सुवासित सुशीतल प्यासका नाशक ॥ ३२ ॥ जगत्का जीवनरूप जल हे देवि ! ग्रहण करो देहकी सुन्दरताका

नानाविधानि रम्याणि पक्कान्नानि फलानि च ॥ सुरभिस्तनसंत्यक्तं सुस्वादु सुमनोहरम् ॥ २६ ॥ मर्त्यामृतं सुगव्यं च गृह्यतामच्युत प्रिये ॥ सुस्वादुरससंयुक्तमिक्षुवृक्षसमुद्भवम् ॥ २७ ॥ अग्निपक्कमतिस्वादु गुडं च प्रतिगृह्यताम् ॥ यवगोधूमसस्यानां चूर्णरेणुसमुद्भवम् ॥ २८ ॥ सुपक्वं गुडगव्याक्त मिष्टान्नं देविगृह्यताम् ॥ सस्यचूर्णोद्भवं पक्वं स्वस्तिकादि समन्वितम् ॥ २९ ॥ मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ शीतवायुप्रदं चैव दाहे च सुखदं परम् ॥ ३० ॥ कमले गृह्यतां चेदं व्यजनं श्वेतचामरम् ॥ तांबूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥३१॥ जिह्वा जाड्यच्छेदकरं तांबूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ सुवासितं सुशीतं च पिपासानाशकारणम् ॥३२॥ जगज्जीवन रूपं च जीवनं देवि गृह्यताम् ॥ देहसौंदर्यबीजं च सदा शोभाविवर्धनम् ॥३३॥ कार्पासजं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम् ॥ रत्नस्वर्ण विकारं च देहभूषा दिवर्धनम् ॥३४॥ शोभाधारं श्रीकरं च भूषणं देवि गृह्यताम् नानाऋतुषु निर्माणं बहुशोभाश्रयं परम ॥३५॥ सुरभूप प्रियं शुद्धं माल्यं देवि प्रगृह्यताम् ॥ शुद्धिदं शुद्धरूपं च सर्वमंगलमंगलम् ॥ ३६ ॥ गंधवस्तूद्भवं रम्यं गंधं देवि प्रगृह्यताम् ॥ पुण्यतीर्थोदकंचैव विशुद्धं शुद्धि दंसदा ॥ ३७ ॥ गृह्यतां कृष्णकांते त्वं रम्यमाचमनीयकम् ॥ रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचंदनचर्चितम् ॥ ३८ ॥

बीज सदा शोभाका बढानेवाला ॥ ३३ ॥ कपास और रेशमी वस्त्र हे देवि ! ग्रहण करो यह स्वर्ण विकार रत्न देहकी शोभा बढ़ानेवाले ॥ ३४ ॥ शोभाधारक श्रीकरभूषण हे देवि ! ग्रहण करो अनेक ऋतुओंमें निमित्त बहु शोभाकारी ॥ ३५ ॥ सुरभूप प्रियमाला हे देवि ! ग्रहण करो शुद्धिदायक शुद्धरूप सब मंगलका मंगलरूप ॥ ३६ ॥ गन्ध वस्तुओंका उद्भव परम मनोहरगंध हे ! देवि ग्रहण करो पुण्यतीर्थका जल विशुद्ध और शुद्धिका देनेवाला है ॥ ३७ ॥ हे कृष्णकान्ते ! यह मनोहर आचमन ग्रहण करो रत्नसारादिसे निर्मित पुष्प चन्दनसे चर्चित ॥ ३८ ॥

वस्त्र भूषणोंसे भूषित शय्याको ग्रहण करो जो जो द्रव्य अपूर्व है और पृथ्वीमें अपूर्व है ॥ ३९ ॥ देवभूषणके योग्य हे देवि ! उन उन भूषणोंको ग्रहण करो हे देवपुंगव ! मूलमंत्रसे इन द्रव्योंको देकर ॥ ४० ॥ विधिपूर्वक भक्तिसे दशलक्ष मंत्रका जप करे दश लाख जपसे मंत्र सिद्धि होती है ॥ ४१ ॥ ब्रह्माका दिया मंत्र सब प्रकार कल्पवृक्ष होता है लक्ष्मी श्रीवीज मायावीज कामबीज वाणीबीज इनका उच्चारण कर चतुर्थीविभक्ति लगावे अर्थात् कमलवासिन्यै स्वाहा ॥ ४२ ॥ यह वैदिक मंत्रराज है और प्रसिद्ध है इसी मंत्रसे कुबेरने परमैश्वर्य पाया था ॥ ४३ ॥ राज राजेश्वर दक्ष सावर्णि मनु इसी मंगल दायक मंत्रसे सप्तद्वीपावसुमतीके पति हुए ॥ ४४ ॥ प्रियव्रत उत्तानपाद केदार नृपति हे नारद ! यह राजेन्द्र इसी मंत्रके प्रभावसे सिद्ध हुए थे ॥ ४५ ॥ सिद्धमंत्र

वस्त्रभूषणभूषाढ्यं सुतल्पं देवि गृह्यताम् ॥ यद्यद्द्रव्यमपूर्वं च पृथिव्यामपि दुर्लभम् ॥ ३९ ॥ देवभूषार्हभोग्यं च तद्द्रव्यं देवि गृह्यताम् ॥ द्रव्याण्येतानि दत्त्वा च मूलेन देवपुंगवः ॥ ४० ॥ मूलं जजाप भक्त्या च दशलक्षं विधानतः ॥ जपेन दशलक्षेण मन्त्रसिद्धिर्बभूव ह ॥ ४१ ॥ मन्त्रश्च ब्रह्मणा दत्तः कल्पवृक्षश्च सर्वतः ॥ लक्ष्मीर्माया कामवाणी ङेंता कमलवासिनी ॥ ४२ ॥ वैदिको मन्त्रराजोऽयं प्रसिद्धः स्वाहयाऽन्वितः ॥ कुबेरोऽनेन मन्त्रेण परमैश्वर्यमाप्तवान् ॥ ४३ ॥ राजराजेश्वरो दक्षः सावर्णिर्मनुरेव च ॥ मंगलोऽनेन मन्त्रेण सप्तद्वीपेऽवनीपतिः ॥ ४४ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ केदारो नृप एव च न एते सिद्धाश्च राजेन्द्रा मन्त्रेणानेन नारद ॥ ४५ ॥ सिद्धे मन्त्रे महालक्ष्मीः शक्राय दर्शनं ददौ ॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणविमानस्था वरप्रदा ॥ ४६ ॥ सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं छादयंति त्विषा च सा ॥ श्वेतचंपकवर्णाभा रत्नभूषणभूषिता ॥ ४७ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा ॥ बिभ्रती रत्नमालां च कोटि चंद्रसमप्रभाम् ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वा जगत्प्रसूं शांतां तुष्टां वै तां पुरंदरः ॥ पुलकांचितसर्वांगः साश्रुनेत्रः कृतांजलिः ॥ ४९ ॥ ब्रह्मणा च प्रदत्तेन स्तोत्रराजेन संयुतः ॥ सर्वाभीष्टप्रदेनैव वैदिकेनैव तत्र च ॥ ५० ॥

होनेपर महालक्ष्मीने इंद्रको दर्शन दिया वह वर देनेको रत्नोंके सारके सिंहासनपर स्थित होकर आई ॥ ४६ ॥ जिनकी कांतिसे सात द्वीपकी वसुमती आच्छादित होती थीं वह श्वेत चम्पेके वर्णवाली रत्न भूषणोंसे भूषित ॥ ४७ ॥ कुछेक हास्यसे प्रसन्नमुखी भक्तोंके अनुग्रहसे कातर हुई कोटिचंद्रमाके समान कांतिवाली रत्न मालाको धारण करती ॥ ४८ ॥ जगन्माताका दर्शन कर इन्द्र उनको संतुष्ट करने लगे उनका सब अंग पुलकितनेत्रोंमें जलभरि आया हाथ जोड़े ॥ ४९ ॥ ब्रह्माके दिये स्तोत्रराजसे जो सर्वाभीष्ट प्रद वैदिक है स्तुति करने लगे ॥ ५० ॥

इंद्र बोले कमलवासिनी नारायणी कृष्णप्रिया महालक्ष्मीको निरंतर नमस्कार है ॥ ५१ ॥ कमल लोचनी कमल मुखी पद्मासना पद्मिनी वैष्णवीके निमित्त प्रणाम है ॥ ५२ ॥ सर्व सम्पत् स्वरूपणी सर्वाराधिनी हरिभक्ति और हर्षदायिनीको प्रणाम है ॥ ५३ ॥ कृष्णके वक्षस्थलमें स्थित कृष्णेशी चंद्रशोभा स्वरूपिणी रत्नपद्मा शोभना ॥ ५४ ॥ सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी वृद्धिरूपा वृद्धिदायीको नित्य प्रणाम है ॥ ५५ ॥ जो महालक्ष्मी वैकुण्ठ क्षीरसागर स्वर्ग इंद्रके घरमें और राजाके स्थानमें हैं ॥ ५६ ॥ जो गृहस्थियोंके घरकी लक्ष्मी गृह देवता है जो सागरमें प्रगट हुई सुरभी दक्षिणा और यज्ञकामिनी है ॥ ५७ ॥ तुमही

पुरंदर उवाच ॥ नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः ॥ कृष्णप्रियायै सततं महालक्ष्म्यै नमो नमः ॥ ५१ ॥ पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः ॥ पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमोनमः ॥ ५२ ॥ सर्वसंपत्स्वरूपिण्यैसर्वाराध्यै नमो नमः ॥ हरिभक्ति प्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमोनमः ॥ ५३ ॥ कृष्णवक्षः स्थितायै च कृष्णेशायै नमो नमः ॥ चंद्रशोभास्वरूपायै रत्नपद्मे च शोभने ॥ ५४ ॥ संपत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः ॥ नमो वृद्धिस्वरूपायै वृद्धिदायै नमो नमः ॥५५॥ वैकुंठे या महालक्ष्मीर्या लक्ष्मीः क्षीरसागरे ॥ स्वर्ग लक्ष्मीरिंद्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये ॥ ५६ ॥ गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता ॥ सुरभिः सागरे जाता दक्षिणा यज्ञकामिनी ॥ ५७ ॥ अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालया ॥ स्वाहा त्वं च हविर्दाने काव्यदाने स्वधा स्मृता ॥ ॥ ५८ ॥ त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सव धारा वसुन्धरा ॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा ॥ ५९ ॥ क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा शारदा शुभा ॥ परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा ॥ ६० ॥ यया विना जगत्सर्वं भस्मीभूतमसारकम् ॥ जीवन्मृतं य विश्व च शश्वत्सर्वं यया विना ॥ ६१ ॥ सर्वेषां च परा माता सर्वबांधवरूपिणी ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी ॥ ६२ ॥ यथा माता स्तनांधानां शिशूनां शैशवे सदा ॥ यथा त्वं सर्वदा माता सर्वेपां सर्वरूपतः ॥ ६३ ॥

अदिति देवमाता कमला कमलालया हवि देनेमे स्वाहा और कव्यदानमें स्वधा हो ॥ ५८ ॥ तुमही विष्णुस्वरूपिणी सर्वाधारा वसुन्धरा हो शुद्ध सत्वस्वरूपा नारायण परायणी हो ॥ ५९ ॥ क्रोध हिंसासे वर्जित वरदायक शारदा शुभा हो तुमही परमार्थ दायिनी हरिका दासत्व देनेवाली ॥ ६० ॥ जिसके विना यह सब जगत् भस्मीभूत और असार है और जिसके विना यह सब विश्व जीता हुआ ही मृत है ॥ ६१ ॥ वह सबकी परामाता सबकी बंधुस्वरूपिणी तथा धर्म अर्थ काम मोक्षकी कारणरूपिणी तुमही हो ॥६२॥ जिस प्रकार माता दूध पीनेवाले बालकोंकी बालकपनमें रक्षा करती है हे माता ! इसी प्रकार तुम सबकी

सर्वरूपसे रक्षा करती हो ॥६३॥ चाहे मातासे पृथक् हुआ दुधारीबालक दैववश जीवित होजाय परंतु तुम्हारे विना कोई जीवित नहीं रहसकता यह सत्य है ॥६४॥
हे अम्बिके ! प्रसन्न स्वरूपिणी तुम हमसे प्रसन्न हो हे सनातनि ! हमारे वैरियोंके ग्रसे देशको हमें दीजिये ॥ ६५ ॥ जबतक मैं तुमसे हीन हूं तबतक बन्धुहीन
भिक्षुक हूं हे हरि प्रिये ! तबहीतक सब सम्पत्तिसे हीन हूं ॥ ६॥ ज्ञान धर्म और ईप्सित सौभाग्य मुझको दीजिये प्रभाव प्रताप और सब अधिकार दीजिये
॥ ६७ ॥ युद्धमें जय पराक्रम तथा परम ऐश्वर्य दो ऐसा कहकर महेन्द्रने सब देवताओंके सहित ॥ ६८ ॥ नेत्रोंमें जलभर वारंवार शिरसे प्रणाम किया ब्रह्मा
शंकर शेष धर्म केशव ॥६९॥ यह सबकी देवताओंके निमित्त प्रार्थना करते हुए तब देवताओंको वर और मनोहर पुष्पमाला ॥७०॥ संतुष्ट होकर देवताओंकी

मातृहीनः स्तनांधस्तु स च जीवति दैवतैः ॥ त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम्॥६४॥सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं मां प्रसन्ना भवां
बिके ॥ वैरि ग्रस्तं च विषयं देहि मह्यं सनातनि ॥६५॥ अहं यावत्त्वया हीनो बन्धुहीनश्च भिक्षुकः ॥ सर्वसंपद्विहीनश्च तावदेव हरिप्रिये
॥६६॥ ज्ञानं देहि च धर्मं च सर्वसौभाग्यमीप्सितम् ॥ प्रभावं च प्रतापं च सर्वाधिकारमेव च ॥६७॥ जयं पराक्रमं युद्धे परमैश्वर्य मेव
च ॥ इत्युक्त्वा च महेन्द्रश्च सर्वैं सुरगणैः सहः॥६८॥प्रणनाम साश्रुनेत्रो मूर्ध्ना चैव पुनः पुनः ॥ ब्रह्मा च शंकरश्चैव शेषो धर्मश्च केशवः
॥६९॥सर्वे चक्रुः परीहारं सुरार्थं च पुनः पुनः॥देवेभ्यश्च वरं दत्त्वापुष्पमालां मनोहराम्॥७०॥केशवाय ददौलक्ष्मीः संतुष्टा सुरसंसदि ॥
ययुर्देवाश्च संतुष्टाः स्वं स्थानं च नारद॥७१॥देवी ययौ हरेः स्थानं हृष्टा क्षीरोदशायिनी ॥ ययतुश्चैव स्वगृहं ब्रह्मेशानौ च नारद ॥७२॥
दत्त्वा शुभाशिषं तौ च देवेभ्यः प्रीतिपूर्वकम् ॥ इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः ॥ ७३ ॥ कुबेरतुल्यः स भवेद्राजराजेश्वरो
महान् " पञ्च लक्ष जपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ ७४ ॥ " सिद्धस्तोत्रं यदि पठेन्मासमेकं च संततम् ॥ महासुखी च राजेंद्रो भवि
ष्यति न संशयः ॥ ७५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

सभामें केशवको देती हुई हे नारद ! तब सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हो अपने अपने २ स्थानको गये ॥७१॥ और देवी भी प्रसन्न हो क्षीरोद शायीके स्थानको गई हे
नारद ! ब्रह्मा और शिव भी अपने स्थानोंको गये ॥७२॥ यह दोनों प्रेमसे देवताओंको शुभ आशिर्वाद देकर गये इस महापवित्र स्तोत्रको जो तीनों संध्याओंमें
पढ़ता है ॥७३॥ वह कुबेरतुल्य महान् राजराजेश्वर होता है पांचलाख जपनेसे मनुष्यको स्तोत्र सिद्धि हो जाती है ॥७४॥ इस सिद्धस्तोत्रको जो एकमास
निरन्तर पाठ करता है वह राजेन्द्र महासुखी होगा इसमें सन्देह नहीं ॥७५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

नारदजी बोले हे महाभाग हे नारायणसम हे प्रभो ! तुम रूप गुण यश तेजमें नारायण हो ॥ १ ॥ हे मुने ! आप ज्ञानी सिद्धि और योगियोंमें श्रेष्ठ हो तुम तपस्वीमुनियोंमें परे वेद विदाम्बर हो ॥ २ ॥ मैंने महालक्ष्मीका महा अद्भुत आख्यान जाना अब और भी कोई निगूढ़ उपाख्यान कहिये ॥ ३ ॥ जो अधि कही गोपनीय और सबके उपयोगी हो जो पुराणों में अप्रकाश्य और वेदोक्त धर्मसंयुक्त हो ॥ ४ ॥ नारायण बोले पुराणोंमें अनेक प्रकारके आख्यान अप्रका शित हैं वह सुने हुए अनेक प्रकारसे गूढ़ हैं ॥ ५ ॥ क्या उनमेंके सारभूत अख्यान सुननेकी तुम्हारी इच्छा है वह कितने प्रकार का गूढ तुमने सुना है ॥ ६ ॥ नारदजी बोले हविर्दानमें स्वाहादेवी सब कर्ममें प्रशस्त है पितृदानमें स्वधा और सबसे अधिक दक्षिणारूप है ॥ ७ ॥ इनका जन्म चरित्र फल और प्रधा

नारद उवाच ॥ नारायण महाभाग नारायण मम प्रभो ॥ रूपेणेव गुणेनैव यशसा तेजसा त्विशा ॥१॥ त्वमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः सिद्धानां योगिनां मुने ॥ तपस्विनां मुनीनां च परो वेदविदांवरः ॥२॥ महालक्ष्म्या उपाख्यानं विज्ञातं महदद्भुतम् ॥ अन्यत्किंचिदुपाख्यानं निगूढं वद सांप्रतम् ॥३॥ अतीव गोपनीयं यदुपयुक्तं च सर्वतः ॥ अप्रकाश्यं पुराणेषु वेदोक्तं धर्मसंयुतम् ॥४॥ नारायण उवाच ॥ नानाप्रकार माख्यानप्रकाश्यं पुराणतः ॥ श्रुतं कतिविधं गूढमास्ते ब्रह्मन्सुदुर्लभम् ॥५॥ तेषु यत्सारभूतं च श्रोतुं किंवा त्वमिच्छसि ॥ तन्मे ब्रूहि महाभाग पश्चाद्वक्ष्यामि तत्पुनः ॥६॥ नारद उवाच ॥ स्वाहादेवी हविर्दाने प्रशस्ता सर्वकर्मसु ॥ पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सर्वतो वरा ॥ ७ ॥ न तासां चरितं जन्मफलं प्राधान्यमेव च ॥ श्रोतुमिच्छामि त्वद्वक्त्राद्वद वेदविदांवर ॥ ८ ॥ सूत उवाच ॥ नारदस्यवचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिसत्तमः ॥ कथां कथितुमारेभे पुराणोक्तां पुरातनीम् ॥ ९ ॥ नारायण उवाच ॥ सृष्टेः प्रथमतो देवाः स्वाहारार्थं ययुः पुरा ॥ ब्रह्मलोकं ब्रह्मसभामाजग्मुः सुमनोहराम् ॥ १० ॥ गत्वा निवेदनं चक्रुराहारहेतुकं मुने ॥ ब्रह्मा श्रुत्वा प्रतिज्ञाय निषेवें श्रीहरिं परम् ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ यज्ञरूपो हि भगवान्कलया च बभूव ह ॥ यज्ञे यद्यद्धविर्दानं दत्तं तेभ्यश्च ब्राह्मणैः ॥ १२ ॥

नता हे वेदविदाम्बर ! आपके मुखसे सुनना चाहता हूं ॥ ८ ॥ सूतजी बोले नारदजीके वचन सुन मुनिश्रेष्ठ हँसकर पुराणोक्त पुरानी कथा कहने लगे ॥ ९ ॥ नारायण बोले सृष्टिसे प्रथम देवता अपने आहारके निमित्त गये अर्थात् ब्रह्मलोकमें मनोहर ब्रह्मसभामें प्राप्त हुए ॥ १० ॥ हे मुने ! जाकर अपने आहारके निमित्त निवेदन किया यह वार्त्ता सुन प्रतिज्ञाकर ब्रह्माजी श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ नारदजी बोले यज्ञरूप परमात्मा है अर्थात् यह यज्ञ उनकी कलाही है तो यज्ञमें जो ब्राह्मण देवताओंके निमित्त हवि देते हैं क्या देवता उससे तृप्त नहीं होते ॥ १२ ॥

नारायण बोले ब्राह्मण क्षत्रिय जो भक्तिसे हवि देते हैं हे मुनिश्रेष्ठ ! देवता उस दानवको नहीं प्राप्त होते थे वह किसी और कोही प्राप्त होता था ॥ १३ ॥
तब देवता दुःखी होकर ब्रह्माकी सभामें गये और जाकर आहारके निमित्त निवेदन किया ॥ १४ ॥ ब्रह्माजी यह सुनकर ध्यानसे श्रीकृष्णकी शरण हुए
और उनकी आज्ञासे ध्यानमें प्रकृतिकी पूजा की ॥ १५॥ प्रकृतिकी कलासे वह शर्वशक्ति स्वरूपिणी अति सुन्दरी नवीनवया रमणीया मनोहरा ॥ १६ ॥
कुछेक हंसीसे प्रसन्नमुखी भक्तोंपर अनुग्रह करनेमें तत्पर ब्रह्मासे बोली हे पद्मयोने ! वर मांगो ॥ १७ ॥ विधाता यह वचन सुनकर संभ्रमसे उससे बोले
प्रजापति बोले हे सुन्दरि ! तुम अतिशय अग्निकी दाहिका शक्ति हो ॥ १८ ॥ तुम्हारे विना यह भौतिक अग्नि जलानेको समर्थ नहीं होती तुम्हारा नाम

नारायण उवाच॥हविर्ददति विप्राश्च भक्त्या च क्षत्रियादयः॥सुरा नैव प्राप्नुवंति तद्दानं मुनिपुंगव॥१३॥देवा विषण्णास्ते सर्वे तत्सभां
च ययुः पुनः ॥ गत्वा निवेदनं चक्रु राहाराभावहेतुकम् ॥१४॥ ब्रह्मा श्रुत्वा तु ध्यानेन श्रीकृष्णं शरणं ययौ॥ पूजां चकार प्रकृतेर्ध्याने
नैव तदाज्ञया॥१५॥ प्रकृतेः कलया चैव सर्वशक्तिस्वरूपिणी ॥ अतीव सुन्दरी श्यामा रमणीया मनोहरा ॥ १६ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्या
भक्तानुग्रह कातरा॥उवाचेति विधेरग्रे पद्मयोने वरं वृणु ॥१७॥ विधिस्तद्वचनं श्रुत्वा स भ्रमात्समुवाच ताम् ॥ प्रजापतिरुवाच ॥ त्वमग्नेर्दा
हिका शक्तिर्भव याऽतीव सुन्दरी ॥ १८ ॥ दग्धुं न शक्तः प्रकृतीर्हुताशश्च त्वया विना ॥ त्वन्नामोच्चार्य मंत्रांते यो दास्यति हवि
र्नरः ॥ १९ ॥ सुरेभ्यस्तत्प्राप्नुवंति सुराः सानंदपूर्वकम् ॥ अग्नेः संपत्स्वरूपा च श्रीरूपा सा गृहेश्वरी ॥ २० ॥ देवानां पूजिता शश्व
न्नरादीनां भवांबिके ॥ ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा सा विषण्णा बभूव ह ॥ २१ ॥ तमुवाच ततो देवी स्वाभिप्रायं स्वयंभुवम् ॥ स्वाहो
वाच ॥ अहं कृष्णं भजिष्यामि तपसा सुचिरेण च ॥ २२ ॥ ब्रह्मंस्तदन्यं यत्किंचित्स्वप्नवद्भ्रममेव च ॥ विधाता जगतस्त्वं च
शंभुर्मृत्युंजयो विभुः ॥ २३ ॥ बिभर्ति शेषो विश्वं च धर्मः साक्षी च धर्मिणाम् ॥ सर्वाद्यपूज्यो देवानां गणेषु च गणेश्वरः ॥ २४ ॥

उच्चारणकर मंत्रान्तमें जो मनुष्य हवि देगा ॥ १९ ॥ उसको देवता आनंद पूर्वक प्राप्त होंगे वह गृहेश्वरी अग्नि की सम्पत् स्वरूप और गृहेश्वरी है ॥ २० ॥
हे अंबिके ! इस प्रकारसे तुम देवता मनुष्योंकी निरन्तर पूजनीया हो ब्रह्माके वचन सुनकर वह विषण्णवदन हुई ॥ २१ ॥ और स्वयंभूसे अपना अभिप्राय
कहने लगी मैं चिरकालके तपसे श्रीकृष्णका भजन करूंगी ॥२२॥ हे ब्रह्मन् ! उनके विना जो कुछ भी है वह भ्रमरूप है वह जगत्के विधाता शंभु मृत्युंजय
विभु हैं ॥ २३ ॥ शेष हो विश्वको धारण करते धर्मरूप हो धर्मियोंके साक्षी होते देवताओंमें सबके आप पूज्य गणेश्वर हैं ॥ २४ ॥

जिनके प्रसादसे प्रकृति सर्वाद्या और सर्व पूज्य हुई है ऋषि और मुनियोंने सेवापूर्वक जिसको सेवन किया है ॥ २५ ॥ मैं परमभावसे उनके पादपद्मको चिंतन करती हूं पद्ममुखी पद्मजन्म ब्रह्मासे यह वचन कहकर भगवान्‌के उद्देश्यसे ॥ २६ ॥ निरामय भगवान् कृष्णके निमित्त तप करनेको गई और एक चरणसे खड़े होकर लक्षवर्षतक तप किया ॥२७॥ तब प्रकृतिसे पर कृष्णका दर्शन हुआ,वह रूपिणी उनका अत्यंत कमनीयरूप देखकर ॥२८॥ और उनकी शोभासे कामुकी मूर्च्छित होगई तब वह सर्वज्ञ उनके अभिप्रायको जानकर उनसे बोले ॥ २९ ॥ उन तपसे क्षीण हुईको गोदीमें बैठकर श्री भगवान् बोले हे वरारोहे ! तुम अंशसे मेरी पत्नी होगी ॥ ३० ॥ हे कांते ! तुम नामसे नग्नजित् राजाकी कन्या नाग्नजिती होगी हे भामिनी ! इस समय तुम अग्निकी दाहिकारूप

प्रकृतिः सर्वसंपूज्या यत्प्रसादात्पुराऽभवत् ॥ ऋषयो मुनयश्चैव पूजिता यन्निषेवया ॥ २५ ॥ तत्पादपद्मं नियतं भावने चिंतया म्यहम् ॥ पद्मास्या पाद्ममित्युक्त्वा पद्मनाभानुसारतः ॥ २६ ॥ जगाम तपसे देवी ध्यात्वा कृष्णं निरामयम् ॥ तपस्तेपे वर्षलक्ष मेकपादेन पद्मजा ॥ २७ ॥ तदा ददर्श श्रीकृष्णं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥ अतीव कमनीयं च रूपं दृष्ट्वा च रूपिणी ॥ २८ ॥ मूर्च्छां संप्राप कालेन कामेशस्य च कामुकी ॥ विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञस्तामुवाच ह ॥ २९ ॥ समुत्थाप्य च तां क्रोडे क्षीणांगीं तपसा चिरम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वाराहे वै त्वमंशेन मम पत्नी भविष्यसि ॥ ३० ॥ नाम्ना नाग्नजिती कन्या कांते नग्नजितस्य च ॥ अधुनाऽग्नेर्दाहिका त्वं भवपत्नी च भामिनी ॥ ३१ ॥ मन्त्रांगरूपा पूजा च मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥ वह्निस्त्वां भक्तिभावेन संपूज्य च गृहेश्वरीम् ॥ ३२ ॥ रमिष्यति त्वया सार्धं रामया रमणीयया ॥ इत्युक्त्वांऽतर्दधे देवो देवीं संभाष्य नारद ॥ ३३ ॥ तत्राऽ जगाम संत्रस्तो वह्निर्ब्रह्मनिदेशतः ॥ सामवेदोक्तध्यानेन ध्यात्वा तां जगदंबिकाम् ॥ ३४ ॥ सम्पूज्य परितुष्टाव पाणिं जग्राह मंत्रतः ॥ तदा दिव्यं वर्षशतं स रेमे रामया सह ॥ ३५ ॥

पत्नी हो ॥ ३१ ॥ और मेरे प्रसादसे तुम मंत्रांगरूपा पूजनीया होगी अग्नि तुमको गृहेश्वरीरूपसे भक्तिभावसे पूजन करेगी ॥ ३२ ॥ और रमणीय रामा होकर रमण करोगी हे नारद ! इसप्रकार देवीसे कहकर देव अन्तर्धान होगये ॥ ३३ ॥ वहां ब्रह्माकी आज्ञासे व्याकुली भूत हुए अग्निदेवता आये सामवेदोक्त ध्यानसे जगदम्बिकाका ध्यान करके ॥ ३४ ॥ मंत्रपूर्वक पाणिग्रहण कर संतोष करते हुए और दिव्य सौवर्षतक रामाके साथ रमण करते हुए ॥ ३५ ॥

अत्यन्त निर्जनदेश संभोगमें सुखका देनेवाला हुआ तब अग्निके तेजसे देवीके गर्भकी स्थिति हुई ॥ ३६ ॥ देवीने बारह वर्षतक उस गर्भको धारण किया और फिर रमणीय मनोहर पुत्रोंको प्रकट किया ॥ ३७ ॥ दक्षिणाग्नि गार्हपत्य आहवनीय अग्नि यह क्रमसे हुए ऋषि मुनि और क्षत्रियादि ब्राह्मण ॥ ३८ ॥ यह स्वाहांत मंत्रको उच्चारणकर हविर्दानादि करते हुए, जो यह प्रशस्त स्वाहायुक्त मन्त्र ग्रहण करता है ॥ ३९ ॥ मंत्र ग्रहण मात्रसे उसको सब सिद्धि होती है जैसे विषहीन सर्प और वेदहीन ब्राह्मण है ॥ ४० ॥ जैसे पतिकी सेवामें विहीन स्त्री, विद्याहीन जैसे पुरुष. जैसे फल शाखाहीन निन्दित वृक्ष ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार स्वाहा हीन मंत्र फलदायक नहीं होता इससे सब ब्राह्मण संतुष्ट हुए देवताओंने आहुति ग्रहण की ॥ ४२ ॥ स्वाहांत मंत्र लगाकर ही सब फल हो

अतीव निर्जने देशे संभोगसुखदे सदा ॥ बभूव गर्भस्तस्यां च हुताशस्य च तेजसा ॥ ३६ ॥ तं दधार च सा देवी दिव्यं द्वादश वत्स रम् ॥ ततः सुषाव पुत्रांश्च रमणीयान्मनोहरान् ॥ ३७ ॥ दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयान्क्रमेण च ॥ ऋषयो मुनयश्चैव ब्राह्मणाः क्षत्रिया दयः ॥ ३८ ॥ स्वाहांतं मंत्रमुच्चार्य हविर्दानं च चक्रिरे ॥ स्वाहायुक्तं च मंत्रं च यो गृह्णाति प्रशस्तकम् ॥ ३९ ॥ सर्वसिद्धिर्भवेत्त स्य मंत्रग्रहणमात्रतः ॥ विषहीनो यथा सर्पो वेदहीनो यथा द्विज ॥ ४० ॥ पतिसेवाविहीनो स्त्री विद्याहीनो यथा पुमान् ॥ फल शाखाविहीनोश्च यथा वृक्षो हि निंदितः ॥४१॥ स्वाहाहीनस्तथा मन्त्रो न हुतः फलदायकः ॥ परितुष्टा द्विजाः सर्वे देवाः संप्रापुराहुतीः ॥ ४२ ॥ स्वाहांतेनैव मन्त्रेण सफलं सर्वमेव च ॥ इत्येवं कथितं सर्वं स्वाहोपाख्यानमुत्तमम् ॥ ४३ ॥ सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ नारद उवाच ॥ स्वाहापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं मुनीश्वर ॥ ४४ ॥ सम्पूज्य वह्निस्तुष्टाव येन तद्वद मे प्रभो ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ ध्यानं च सामवेदोक्तं स्तोत्रपूजाविधानकम् ॥ ४५ ॥ वदामि श्रूयतां ब्रह्मन्सावधानो मुनीश्वर ॥ सर्वयज्ञारंभकाले शालग्रामे घटेऽथवा ॥ ४६ ॥ स्वाहां संपूज्य यत्नेन यज्ञं कुर्यात्फलाप्तये॥ स्वाहां मन्त्रांगयुक्तां च मंत्रसिद्धिस्वरूपिणीम् ॥ ४७ ॥

जाता है यह आपसे सब उत्तम स्वाहाका उपाख्यान कहा है ॥ ४३ ॥ यह सुख और मोक्षदायक सारभूत है अब क्या सुननेकी इच्छा है नारदजी बोले हे मुनीश्वर ! स्वाहाकी पूजा विधान ध्यान स्तोत्र ॥ ४४ ॥ जिसके द्वारा अग्निने स्तुति की थी सो आप कहिये श्रीनारायण बोले सामवेदोक्त ध्यान स्तोत्र पूजाका विधान ॥ ४५ ॥ कहता हूं सो सावधान होकर आप श्रवण करो सब यज्ञके आरंभकालमें शालिग्राम तथा घटमें ॥ ४६ ॥ यत्नपूर्वक स्वाहाको पूजन करके फलप्राप्तिके निमित्त यज्ञ करे स्वाहा अङ्गसे युक्त मंत्र सिद्धिस्वरूप है ॥ ४७ ॥

सिद्ध और मनुष्योंको सिद्धकरनेवाला कर्मका फलदेनेवाला परम शुभ है इस प्रकार ध्यानकर मूलमंत्रादिसे पाद्यादिक दे ॥ ४८ ॥ तो स्तुतिकरनेसे सब सिद्धि होती है। अब मूलमंत्रको सुनो ॐ ह्रीं श्रीं ह्निजायै देव्यै स्वाहा ॥ ४९ ॥ जो इस प्रकार भक्तिसे पूजन करते हैं उनको सब सिद्धि होती है अग्नि बोले स्वाहा वह्निप्रिया वह्निजाया संतोषकारिणी ॥ ५० ॥ शक्तिक्रिया कालदात्री परिपाककरी ध्रुव सदा मनुष्योंकी गति दाहिका दहनमें समर्थ ॥ ५१ ॥ संसारकी साररूप घोर संसारकी तारनेवाली देवी जीवनरूप देवपोषण कारिणी ॥ ५२ ॥ जो भक्तिपूर्वक इन सोलह नामोंको पढ़ता है उसको इस लोक परलोकमें सर्व सिद्धि होती है ॥ ५३ ॥ अंगहीन न होकर उसके सब कर्म शुद्ध होते हैं इसके पाठसे अपुत्रके पुत्र भार्याहीनके भार्या प्राप्त होती है ॥५४॥

सिद्धां च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां शुभाम् ॥ इति ध्यात्वा च मूलेन दत्त्वा पाद्यादिकं नरः ॥ ४८ ॥ सर्वसिद्धिं लभेत्स्तुत्वामूलमन्त्रं मुने शृणु ॥ ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहेत्यनेन च ॥ ४९ ॥ यः पूजयेच्च तां भक्त्या सर्वेष्टं संभवेद् ध्रुवम् ॥ वह्निरुवाच ॥ स्वाहा वह्निप्रिया वह्निजाया संतोषकारिणी ॥ ५० ॥ शक्तिः क्रिया कालदात्री परिपाककरी ध्रुवा ॥ गतिः सदा नाराणां च दाहिका दहनक्षमा ॥ ५१ ॥ संसारसाररूपा च घोरसंसारतारिणी ॥ देवजीवनरूपा देवपोषणकारिणी ॥ ५२ ॥ षोडशैतानि नामानि यः पठेद्भक्तिसंयुतः ॥ सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य इह लोके परत्र च ॥ ५३ ॥ नांगहीने भवेत्तस्य सर्वकर्मसु शोभनम् ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं भर्याहीनो लभेत्प्रियाम् ॥ ५४ ॥ रंभोपमां स्वकांतां च संप्राप्य सुखमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥ इति श्रीदे० म० नवमस्कंधे नारदनारायणसंवादे स्वाहोपाख्याने त्रिचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ नारद शृणु वक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम् ॥ पितृणां च तृप्तिकरं श्राद्धान्नफलवर्धनम् ॥ १ ॥ सृष्टेरादौ पितृगणान्ससर्ज जगतां विधिः ॥ चतुरश्च मूर्तिमतस्त्रींश्च तेजः स्वरूपिणः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा सप्तपितृगणान् सुखरूपान्मनोहरान् ॥ आहारं ससृजे तेषां श्राद्धं तर्पणपूर्वकम् ॥ ३ ॥

वह रंभाके समान अपनी कान्ताको प्राप्त होकर सुख पाता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारदजी ! सुनो उत्तम स्वधा उपाख्यान कहता हूं यह पितरोंका तृप्तिकारी श्राद्धान्नका फल बढानेवाला है ॥ १ ॥ जगत्के विधाताने सृष्टिके आदिमें पितृगणोंकी सृष्टिके आदिमें जगत्के विधिने पितृगणोंकी रचना की है उसमें चार मूर्तिमान् और तीन तेज स्वरूपा है ॥ २ ॥ सात पितृगणोंको सुखरूप मनोहर देखकर विधाताने श्राद्ध तर्पण पूर्वक उनके आहारकी सृजना की ॥ ३ ॥

स्नान तर्पण पर्यंत श्राद्ध और देवपूजन पंचायतन पूजन तीनों संध्या और आह्निक कर्म जैसे शास्त्रमें श्रुत हुआ है ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मण नित्य तीनों संध्याओंमें श्राद्ध तर्पण नहीं करते तथा बलि और वेदध्वनि जिनके नहीं वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ५ ॥ जो देवीकी सेवासे विहीन है और भगवान्‌को विना निवेदन किये खाता है हे नारद ! भस्मपर्यंत उसको सूतक ही रहता है वह कर्मके योग नहीं रहता ॥ ६ ॥ ब्रह्मा पितरोंके श्राद्धादि निर्माण करके पितरोंके निमित्त प्राप्त हुए उस समय पितर ब्राह्मणादिके दिये अन्नको नहीं पाते थे ॥ ७ ॥ तब वे सब क्षुधित हो ब्रह्माकी सभामें गये और उस जगत्‌के विधातासे निवेदन करनेलगे ॥ ८ ॥ ब्रह्माजीने मनोहर एक मानसी कन्या प्रगट की जो रूप यौवनसे सम्पन्न सौ चन्द्रमाके समान कान्तिमान् थी ॥ ९ ॥ विद्या

स्नानं तर्पणपर्यन्तं श्राद्धं तु देवपूजनम् ॥ आह्निकं च त्रिसंध्यांतं विप्राणां च श्रुतौ श्रुतम् ॥ ४ ॥ नित्यं न कुर्याद्यो विप्रस्त्रिसंध्यं श्राद्धतर्पणम् ॥ बलिं वेदध्वनिं सोऽपि विषहीनो यथोरगः ॥ ५ ॥ देवीसेवाविहीनश्च श्रीहरेरनिवेद्यभुक् ॥ भस्मांतं सूतकं तस्य न कर्मार्हश्च नारद ॥ ६ ॥ ब्रह्मा श्राद्धोदकं सृष्ट्वा जगाम पितृहेतवे ॥ न प्राप्नुवंति पितरो ददति ब्राह्मणादयः ॥ ७ ॥ सर्वे च जग्मुः क्षुधिताः खिन्नास्तु ब्रह्मणः सभाम् ॥ सर्वं निवेदनं चक्रुस्तमेव जनतां विधिम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मा च मानसीं कन्यां ससृजे च मनोहराम् ॥ रूपयौवनसंपन्नां शतचंद्रनिभाननाम् ॥ ९ ॥ विद्यावतीं गुणवतीमतिरूपवतीं सतीम् ॥ श्वेतचंपकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ १० ॥ विशुद्धां प्रकृतेरंशां सस्मितां वरदां शुभाम् ॥ स्वधाभिधां च सुदतीं लक्ष्मीलक्षण संयुताम् ॥ ११ ॥ शतपद्मपदन्यस्तपादपद्मं च बिभ्रतीम् ॥ पत्नीं पितॄणां पद्मास्यां पद्मजां पद्मलोचनाम् ॥ १२ ॥ पितृभ्यश्च ददौ ब्रह्मा तुष्टेभ्यस्तुष्टिरूपिणी ॥ ब्राह्मणानां चोपदेशं चकार गोपनीयकम् ॥ १३ ॥ स्वधांतं मंत्रमुच्चार्य पितृभ्यो देयमित्यपि ॥ क्रमेण तेन विप्राश्च पित्रे दानं ददुः पुरा ॥ १४ ॥

वान् गुणवान् अतिरूप सम्पन्न सती श्वेतचम्पकके वर्णके समान रत्नभूषणोंसे भूषित ॥ १० ॥ विशुद्ध प्रकृतिका अंश मन्द हँसयुक्त वरदायक शुभ स्वधानामवाली सुरती लक्ष्मीके लक्षणसे संयुक्त ॥ ११ ॥ शतपद्मके पदमें चिह्नवाली चरणकमलोंके विलाससे युक्त पितरोंकी पत्नी पद्मास्या पद्मजा पद्मलोचना ॥१२॥ उस तुष्टिरूपिणीको ब्रह्माजीने पितरोंको दिया और ब्राह्मणोंको गोपनीय उपदेश किया ॥ १३ ॥ इस कारण स्वधारूप मंत्रको उच्चारण कर पितरोंको अन्न देना चाहिये क्रमसे विप्रोंने इस दानवको दिया ॥ १४ ॥

इससे देवताओंके दानमें स्वाहा और पितृ दानमें स्वधा कही जाती है और दक्षिणा सर्वत्र शस्त है अदक्षिण यज्ञ हत होता है ॥ १५ ॥ पितर देवता विप्र मुनि मनु यह सब शांत स्वधाको परम आदरसे पूजनकर स्तुति करते हुए ॥ १६ ॥ और देवादि संतुष्ट होकर पूर्ण मनोरथ हुए तथा विप्रादि औरस्वधा देवीके वरदानसे भागभोजी हुए ॥ १७ ॥ यह सब स्वधाका उपाख्यान तुमसे कहा यह सबका तुष्टिकरनेवाला है फिर और क्या सुननेकी इच्छा है ॥१८॥ नारदजी बोले हे महामुने ! स्वधा पूजा विधान ध्यान स्तोत्र यह आपसे सुननेकी इच्छा करता हूं हे वेदविदांबर ! आप कहिये ॥ १९ ॥ नारदजी बोले हे ब्रह्मन् ! वेदोक्त सब मंगलका ध्यान यह तुम सब जानते हो वृद्धिके लिये सब जानते हो ॥ २० ॥ शरद्कृष्णत्रयोदशी मघानक्षत्रयुक्त श्राद्धके दिनमें यत्न

स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा स्मृता ॥ सर्वत्र दक्षिणा शस्ता हतं यज्ञमदक्षिणम् ॥१५॥ पितरो देवता विप्रा मुनयो मनव स्तथा ॥ पूजां चक्रुः स्वधां शांतां तुष्टुवुः परमादरात् ॥ १६ ॥ देवादयश्च संतुष्टाः परिपूर्ण मनोरथाः ॥ विप्रादयश्च पितरः स्वधादेवी वरेण च ॥ १७॥ इत्येवं कथितं सर्वं स्वधोपाख्यानमेव च ॥ सर्वेषां च तुष्टिकरं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १८ ॥ नारद उवाच ॥ स्वधापूजा विधानं च ध्यानं स्तोत्रं महामुने ॥ श्रोतुमिच्छामि यत्नेन वद वेदविदांवर ॥ १९ ॥ नारायण उवाच ॥ ध्यानं च स्तवनं ब्रह्मन्वेदोक्तं सर्वं मंगलम् ॥ सर्वं जानासि च कथं ज्ञातुमिच्छसि वृद्धये ॥ २० ॥ शरत्वकृष्णत्रयोदश्यां मघायां श्राद्धवासरे ॥ स्वधां संपूज्य यत्नेन ततः श्राद्धं समाचरेत् ॥ २१ ॥ स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः श्राद्धं कुर्यादहंमतिः ॥ न भवेत्फलभाक्सत्यं श्राद्धस्य तर्पणस्य च ॥२२॥ ब्रह्मणो मानसीं कन्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ पूज्यां वै पितृदेवानां श्राद्धानां फलदां भजे ॥ २३ ॥ इति ध्यात्वा शिलायां वा ह्यथवा मंगले घटे ॥ दद्यात्पाद्यादिकं तस्यै मूलेनेति श्रुतौ श्रुतम् ॥ २४ ॥ ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहेति च महामुने ॥ समुच्चार्य च संपूज्य स्तुत्वा तां प्रणमेद् द्विजः ॥ २५ ॥

पूर्वक स्वधाका पूजन कर श्राद्ध आरंभ करे ॥ २१ ॥ जो ब्राह्मण विना स्वधाके अर्चन किये अहंकारसे श्राद्ध करता है वह श्राद्ध और तर्पणका फल भागी नहीं होता है ॥ २२ ॥ ब्रह्माकी मानसी कन्या जो निरंतर स्थिर यौवनवाली हे देवता पितरोंकी पूज्य श्राद्धका फल देनेवालीको भजन करता हूं ॥ २३ ॥ इसप्रकार शिला वा मंगल घटमें ध्यान करके मूल मन्त्रसे पाद्यादिक उसके निमित्त दे ऐसाश्रुतिमें कहा है ॥ २४ ॥ ओं ह्रां श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहा इस प्रकार उच्चारण और पूजन करके उनको प्रणाम करे ॥ २५ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ हे विशारद ! आप स्तोत्रको सुनिये जो पहले मनुष्यका वांछादायक ब्रह्माजीने कहा है॥२६॥नारायण बोले स्वधाके उच्चारण मात्रसेही मनुष्योंको तीर्थस्नानका फल होता है और सब पापोंसे मुक्त होकर वाजपेयका फल मिलता है ॥ २७ ॥ जो तीनवार स्वधा ३ उच्चारण करता है वह श्राद्ध और बलीतर्पणके फलको प्राप्त होता है ॥२८॥ श्राद्धकालमें सावधान हो जो स्वधास्तोत्रको सुनता है उसको निःसन्देह श्राद्धका फल प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ स्वधास्वधा स्वधा इस प्रकार जो तीनों संध्याओंमें पढता है वह साध्वी पुत्र गुणयुक्त विनीत प्रियाको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ तुम पितरोंकी प्राणतुल्या

स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र विशारद ॥ सर्ववांछप्रदं नृणां ब्रह्मणा यत्कृतं पुरा ॥ २६ ॥ नारायण उवाच ॥ स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफलं लभेत् ॥ २७ ॥ स्वधास्वधास्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत् ॥ श्राद्धस्य फलमाप्नोति बलेश्च तर्पणस्य च ॥ २८ ॥ श्राद्धकाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति समाहितः ॥ स लभेच्छ्राद्धसंभूतं फलमेव न संशयः ॥ २९ ॥ स्वधास्वधास्वधेत्येवं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ॥ प्रियां विनीतांस लभेत्साध्वीं पुत्र गुणान्विताम् ॥ ३० ॥ पितृणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी ॥ श्राद्धाधिष्ठातृदेवी च श्राद्धादीनां फलप्रदा ॥ ३१ ॥ नित्यात्वं सत्यरूपाऽसि पुण्यरूपासि सुव्रते ॥ आविर्भावतिरोभावौ सृष्टौ च प्रलये तव ॥ ३२ ॥ ॐ स्वस्तिश्च नमः स्वाहा स्वधा त्वं दक्षिणा तथा ॥ निरूपिताश्चतुर्वेदैः प्रशस्ताः कर्मिणां पुनः ॥ ३३ ॥ कर्मपूर्त्यर्थमेवैता ईश्वरेण विनिर्मिताः ॥ इत्येव मुक्त्वा स ब्रह्मा ब्रह्मलोके स्वसंसदि ॥ ३४ ॥ तस्थौ च सह सा सद्यः स्वधा साऽविर्बभू ह ॥ तदा पितृभ्यःप्रददौ तामेव कमलान नाम् ॥ ३५ ॥

द्विजोंकी जीवन रूपिणी हो, श्राद्धकी अधिष्ठातृदेवी श्राद्धादिके फल देनेवाली हो ॥ ३१ ॥ तुम नित्य सत्यरूपा पुण्यरूपा हो. हे सुव्रते ! अविर्भाव और तिरोभावमें तुम्हारी सृष्टि और प्रलय होती है ॥ ३२ ॥ ओं स्वस्ति नमः स्वाहा स्वधा दक्षिणा तुम हो चारों वेदोंमें श्रेष्ठ कर्मद्वारा तुमही निरूपित हुई हो ॥ ३३ ॥ ईश्वरने यह कर्म पूर्तिके अर्थही निर्माण किये हैं इस प्रकारसे ब्रह्मा कथन कर ब्रह्मलोककी सभामें ॥ ३४ ॥ स्थित हुए उस समय सहसास्वधा प्रगट हुई तब उस कमलाननाको ब्रह्माजीने पितरोंको दिया ॥ ३५ ॥

उसको प्राप्त हो पितृगण परमहर्षित होकर अपने स्थानको गये इस स्वधा स्तोत्रको जो बड़ा पवित्र कोई सावधान हो सुनते हैं ॥ ३६ ॥ वह मानो सब तीर्थोंमें स्नान करके वांछित फलको प्राप्त होते हैं ॥ इति देवीभागवते महापुराणेनवमस्कन्धे भाषायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ श्रीनारायण बोले स्वाहा और स्वधाका आख्यान सुनाया जो अत्यन्त श्रेष्ठ है अब दक्षिणाख्यान कहता हूं सावधान होकर सुनो ॥ १ ॥ गोलोकमें एक सुशीलानामक गोपी हरिको बहुत प्यारी थी वह राधाकी प्रधान सखी धन्यामान्या और अति मनोहरा थी ॥ २ ॥ वह बहुत सुन्दरी रामा सुभगा सुदती सती विद्यावती गुणवती तथा अति रूपवती थी ॥ ३ ॥ कलावती कोमलांगी कांता कमललोचना सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा शरीर शोभामें वट वृक्षके समान शोभित ॥ ४ ॥ कुछेक

तां संप्राप्य ययुस्ते च पितरश्च प्रहर्षिताः ॥ स्वधास्तोत्रमिदं पुण्यं यः शृणोति समाहितः ॥ ३६ ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु वांछितं फलमाप्नुयात् ॥ इति श्रीदेवीभागवते म० नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे स्वधोपाख्याने चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ श्री नारायण उवाच ॥ उक्तं स्वाहास्वधाख्यानं प्रशस्तं मधुरं परम् ॥ वक्ष्यामि दक्षिणाख्यानं सावधानो निशामय ॥ १ ॥ गोपी सुशीला गोलोके पुराऽसीत्प्रेयसी हरेः ॥ राधा प्रधाना सध्रीची धन्या मान्या मनोहरा ॥ २ ॥ अतीव सुन्दरा रामा सुभगा सुदती सती ॥ विद्या वती गुणवती चातिरूपवती सती ॥ ३ ॥ कलावती कोमलांगी कांता कमललोचना ॥ श्रोणी सुस्तनी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डिता ॥४॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्या रत्नालंकारभूषिता ॥ श्वेतचंपकवर्णाभा बिंबोष्ठी मृगलोचना ॥ ५ ॥ कामशास्त्रेषु निपुणा कामिनी हंसगामिनी ॥ भावानुरक्ता भावाज्ञा कृष्णस्य प्रियभामिनी ॥ ६ ॥ रसज्ञा रसिका रासे रासेशस्य रसोत्सुका ॥ उवासाऽदक्षिणेक्रोडे राधायाः पुरतः पुरा ॥ ७ ॥ संबभूवानम्रमुखो भयेन मधुसूदनः ॥ दृष्ट्वा राधां च पुरतो गोपीनां प्रवरोत्तमाम् ॥ ८ ॥ कामिनी रक्तवदनां रक्तपंकज लोचनाम् ॥ कोपेन कंपितांगीं च कोपेत स्फुरिताधराम् ॥ ९ ॥

हास्यसेही प्रसन्नमुखी रत्नोंके अलंकारोंसे युक्त श्वेतचम्पकके वर्णन समान कान्तिशाली बिम्बोष्ठी चारुमृगलोचनी ॥ ५ ॥ कामशास्त्रमें निपुण कामिनी हंसगामिनी भावमें अनुरक्त भावकी ज्ञाता कृष्णकी प्रिया भामिनी ॥६॥ रसकी ज्ञाता रासमें रसिक तथा रासेशके रसमें उत्सुक राधाके सन्मुख हरिके वाम अङ्गमें स्थित हुई ॥ ७ ॥ भयसे मधुसूदन नम्रमुख हुए गोपियोंमें श्रेष्ठ राधाको सन्मुख देखकर ॥ ८ ॥ जो कामिनी क्रोधसे लाल मुख किये लाल कमलके समान नेत्र कोपसे कंपित शरीर किये होठ फडकते हुए ॥ ९ ॥

बडे वेगसे राधाको गमन करती जानकर विरोधसे भीत हो भगवान् अन्तर्धान हुए ॥ १० ॥ शांतशरीर सत्वविग्रह कृष्णको गमन करते देखकर सुशीला दिगोपी भयसे कंपित हुईं ॥ ११ ॥ गोपियोंके लक्ष कोटि समूह उन लम्पटको देखकर भीत हो हाथ जोड भक्तिसे नम्र कंधे किये ॥ १२ ॥ रक्षा करो २ ऐसे वार २ देवीसे कहने लगे भयसे उनके चरण कमलकी शरणमें प्राप्त हुईं ॥ १३ ॥ सुदामाको आदिले तीनलाखकोटि गोप हे नारद ! भयसे यह सब उनके शरणागत हुए ॥ १४ ॥ स्वामीको द्रुत वेगसे गमन करता देखकर तथा पलायन करती उस सुशीला सहचरीको देखकर परमेश्वरीने शापदिया ॥ १५॥ यदि यह गोपी आजसे कभी गोलोकमें आवेगी तो तत्काल भस्म हो जायगी ॥ १६ ॥ देवदेवेश्वरीने क्रोधसे यह वचन कहकर रासेश्वरीने रासके मध्यमें रासेशको

वेगेन तां तु गच्छंतीं विज्ञाय तदनंतरम् ॥ विरोधभीतो भगवानंतर्धानं चकारः स ॥ १० ॥ पलायन्तं च कांतं च शांतं सत्त्वं सुविग्रहम् ॥ विलोक्य कंपिता गोप्यः सुशीलाद्यस्ततोभिया ॥ ११ ॥ विलोक्य लम्पटं तत्र गोपीनां लक्षकोटयः ॥ पुटांजलियुता भीता भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥ १२ ॥ रक्षरक्षेत्युक्तवंत्यो देवीमिति पुनः पुनः ॥ ययुर्भयेन शरणं तस्याश्चरणपंकजे ॥१३॥ त्रिलक्षकोटयो गोपाः सुदामादय एव च ॥ ययुर्भयेन शरणं तत्पादाब्जे च नारद ॥१४॥ पलायंतं च कांतं च विज्ञाय परमेश्वरी ॥ पलायंतीं सहचरीं सुशीलां च शशाप सा ॥ १५ ॥ अद्यप्रभृति गोलोकं सा चेदायाति गोपिका ॥ सद्योगमनमात्रेण भस्मसाच्च भविष्यति ॥ १६ ॥ इत्येवमुक्त्वा तत्रैव देवदेवेश्वरी रुषा ॥ रासेश्वरी रासमध्ये रासेशमाजुहाव ह ॥ १७ ॥ नालोक्य पुरतः कृष्णं राधा विरहकातरा ॥ युगकोटिसमं मेने क्षणभेदेन सुव्रता ॥१८॥ हे कृष्ण प्राणनाथे शाऽऽगच्छ प्राणाधिकप्रिय ॥ प्राणाधिष्ठातृदेवेश प्राणा यांति त्वया विना ॥ १९ ॥ स्त्रीगर्वः पतिसौभाग्याद्वर्धते च दिने दिने ॥ सुखं च विपुलं यस्मात्तं सेवेद्धर्मतः सदा ॥२०॥ पतिर्बंधुः कुलस्त्रीणामधि देवः सदागतिः ॥ परसंपत्स्वरूपश्च मूर्त्तिमान्भोगदः सदा ॥२१॥ धर्मदः सुखदः शश्वत्प्रीतिदः शांतिदः सदा ॥ सम्मानैर्दीप्यमानश्च मानदो मानखंडनः ॥२२॥

बुलाया ॥ १७ ॥ तब आगे कृष्णको न देखकर विरहसे कातर राधाने एकक्षणको कोटि युगके समान जाना ॥ १८ ॥ हे कृष्ण प्राणनाथ ईश प्राणाधिक प्रिय प्राणके अधिष्ठातृदेवता ! आओ तुम्हारे बिना प्राण जाते हैं ॥ १९ ॥ पतिके सौभाग्यसेही दिन दिन स्त्रीका गर्व बढता है और बड़ा सुख होता है इस कारण धर्मसे उसको सदा सेवन करै ॥ २० ॥ कुलस्त्रियोंका पति ही बंधु अधिदेवता सदा गति है परमसम्पत्ति स्वरूप मूर्तिमान् भोगदायक है ॥ २१ ॥ धर्म सुख प्रीति और सदा शांतिका देनेवाला है सन्मानसे दीप्तिमान् मानदायक मानका खण्डन करनेवाला है ॥ २२ ॥

यह स्वामी सारसे भी सारतर बंधुओंकी बंधुताका बढानेवाला स्त्रियोंको भर्ताके समान कहीं दूसरा बंधु नहीं है ॥ २३ ॥ स्वामी भरण करनेसे भर्त्ता और पालनसे पति कहाता है शरीरका ईश होनेसे स्वामी और कामदायक होनेसे कान्त कहाता है ॥ २४ ॥ सुखवृद्धि करनेसे बंधु और प्रीतिदानसे प्रिय कहाता है ऐश्वर्यदानसे ईश और प्राणेश होनेसे प्राणनायक होता है ॥ २५ ॥ रतिदानसे रमण, इससे अधिक कोई प्रिय नहीं इस कारण यह प्रियात्पर है स्वामीके वीर्यसे ही पुत्र होता है इस कारण इसको प्रिय कहते हैं ॥ २६ ॥ कुलस्त्रियोंको स्वामी सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय है और असत् कुलकी स्त्री अपने स्वामीकी महिमा नहीं जानती ॥ २७ ॥ सब तीर्थोंमें स्नान, सब यज्ञोंकी दक्षिणा, पृथ्वीकी परिक्रमा, सम्पूर्ण तप ॥ २८ ॥ सब व्रत और महादान और जितने प्रसिद्ध

सारात्सारतरः स्वामी बंधूनां बंधुवर्धनः ॥ न च भर्तुः समो बंधुर्बंधोर्बंधुषु दृश्यते ॥ २३ ॥ भरणादेव भर्ता च पालनात्पतिरुच्यते ॥ शरीरेशाच्च स स्वामी कामदः कांत उच्यते ॥२४॥ बन्धुश्च सुखवृद्ध्या च प्रीतिदानात्प्रियः स्मृतः ॥ ऐश्वर्यदानादीशश्च प्राणेशात्प्राण नायकः ॥ २५ ॥ रतिदानाच्च रमणः प्रियो नास्ति प्रियात्परः ॥ पुत्रस्तु स्वामिनः शुक्राज्जायते तेन सः प्रियः ॥ २६ ॥ शतपुत्रात्परः स्वामी कुलजानां प्रियः सदा ॥ असत्यकुलप्रसूताकांतं विज्ञातुमक्षमा ॥२७॥ स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दक्षिणा ॥ प्रादक्षिण्यं पृथिव्या श्चसर्वाणि च तपांसि च ॥ २८ ॥ सर्वाण्येव व्रतादीनि महादानानि यानि च ॥ उपोषणानि पुण्यानि यानि यानि श्रुतानि च ॥२९॥ गुरुसेवाविप्रसेवावेदसेवादिकं च यत् ॥ स्वामिनः पादसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥३०॥ गुरुविप्रेन्द्रदेवेषु सर्वेभ्यश्च पतिगुरुः ॥ विद्यादाता यथा पुंसां कुलजातां तथा प्रियः ॥ ३१ ॥ गोपीनां लक्षकोटीनां गोपानां तथैव च ॥ ब्रह्माडानाम् संख्यानां तत्रस्थानां तथैव च ॥ ३२ ॥ विश्वादिगोलकांतानामीश्वरी यत्प्रसादतः ॥ अहं न जाने तं कांतं स्त्रीस्वभावो दुरत्ययः ॥ ३३ ॥ इत्युक्त्वा राधिका कृष्णं तत्र दध्यो स्वभक्तितः ॥ रुरोद प्रेम्णा सा राधा नाथनाथेति चाऽब्रवीत् ॥ ३४ ॥

उपवास हैं ॥ २९ ॥ गुरु ब्राह्मण तथा वेदकी सेवा स्वामीकी पादसेवाकी सोलहवीं कलाके भी योग्य नहीं है ॥ ३० ॥ गुरु विप्रदेव सेवाओंमें गुरु सबसे अधिक है कारण कि पुरुषोंको विद्या दान करता है, इसी प्रकार कुलस्त्रियोंको स्वामी प्यारे हैं ॥ ३१ ॥ लक्षकोटि गोपी और गोप असंख्य ब्रह्माण्ड और उनकी स्थित ॥ ३२ ॥ जिसके प्रसादसे विश्वादि गोलकान्तोंकी ईश्वरी हूं मैं उस स्वामीको नहीं जानती स्त्रियोंका स्वभाव बड़ा दुरवगाह है ॥ ३३ ॥ यह कहकर राधिकाने भक्तिसे कृष्णका ध्यान किया और प्रेमसे रुदन कर नाथ २ कहने लगी ॥ ३४ ॥

हे रमण ! मैं दीना तुम्हारे वियोगसे दुःखी हूं मुझे दर्शन दो हे मुने ! इस प्रकार तो राधा व्याकुल हुई और उधर वह देवी दक्षिणा गोलोकसे भ्रष्ट हो ॥ ३५॥ महातप करके लक्ष्मीके शरीरमें प्रवेश करगई तब सम्पूर्ण देवता बड़ा दुस्तर यज्ञ करके भी ॥ ३६ ॥ उसका फल न पाते हुए तब दुःखी हो ब्रह्माजीके समीप गये तब विधाताने उनका निवेदन सुनकर वेदादिके जगत्पतिका ॥ ३७ ॥ बहुत कालतक ध्यान करके उनकी आज्ञा पायी कि मैं तुम्हारा कार्य करूंगा तब नारायण भगवान्ने महालक्ष्मीके शरीरसे ॥ ३८ ॥ निकालकर मनुष्योंकी लक्ष्मी दक्षिणा नाम उनको दी ब्रह्माजीने यज्ञके पूर्ण करनेमें और कर्मोंकी पूर्त्तिमें उसको दिया ॥ ३९ ॥ विधिपूर्वक यज्ञको पूजनकर परम प्रसन्नतासे उनको सन्तुष्ट किया जो कि तप्त सुवर्णके वर्णके समान कोटि चन्द्रके समान प्रभावाली

दर्शनं देहि रमण दीना विरहदुःखिता ॥ अथ सा दक्षिणा देवी ध्वस्ता गोलोकतो मुने ॥ ३५ ॥ सुचिरं च तपस्तप्त्वा विवेश कमलातनौ ॥ अथ देवादयः सर्वे यज्ञं कृत्वा सुदुष्करं ॥ ३६ ॥ नालभंस्ते फलं तेषां विषण्णाः प्रययुर्विधिम् ॥ विधिर्निवेदनं श्रुत्वा देवादीनां जगत्पतिम् ॥ ३७ ॥ दध्यौ च सुचिरं भक्त्या प्रत्यादेशमवाप सः ॥ नारायणश्च भगवान्महालक्ष्म्याश्च देहतः ॥ ३८ ॥ विनिष्कृष्य मर्त्यलक्ष्मीं ब्रह्मणे दक्षिणां ददौ ॥ ब्रह्मा ददौ तां यज्ञाय पूरणार्थं च कर्मणाम् ॥ ३९ ॥ यज्ञः संपूज्य विधिवत्तां तुष्टाव तदा मुदा ॥ तप्तकांचनवर्णाभांचंद्रकोटिसमप्रभाम् ॥ ४० ॥ अतीवकमनीयां च सुन्दरीं सुमनोहराम् ॥ कमलास्यां कोमलांगी कमलायत लोचनाम् ॥ ४१ ॥ कमलासनपूज्यां च कमलांगसमुद्भवाम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां बिंबोष्ठीं सुदतीं सतीम् ॥ ४२ ॥ बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषण भूषिताम् ॥ ४३ ॥ सुवेषाढचां च सुस्नातां मुनिमानसमोहिनीम् ॥ कस्तूरीबिंदुभिः सार्धं सुगंधिचंदनेंदुभिः ॥ ४४ ॥ सिंदूरबिंदुनाल्पेनाप्यलकाधः स्थलोज्ज्वलाम् ॥ सुप्रशस्तनितंबाढचां बृहच्छ्रोणि पयोधराम् ॥ ४५ ॥

॥ ४० ॥ अति ही कमनीय सुन्दरी मनोहर कमलमुखी कोमलांगी कमलके समान दीर्घलोचनी ॥ ४१ ॥ विधातासे पूजित लक्ष्मीके अंगसे प्रगट अग्निसे शुद्ध पट्ट वस्त्रधारिणी बिम्बाफलके समान ओष्ठवाली सुन्दर दातवाली सती ॥ ४२ ॥ मालती मालासे गुंथे वेणीके जूडेको धारण किये कुछेक हास्यसे प्रसन्नमुखी रत्नोंके भूषणोंसे भूषित ॥ ४३ ॥ सुवेष सुस्नात मुनियोंका मन भी मोहनेवाली कस्तूरीके बिन्दुओंके सहित सुगंधित चन्दन लगाये ॥ ४४ ॥ सिन्दूरके अल्प २ बिन्दुधारे उज्वल अच्छे नितम्बोंसे सम्पन्न पुष्टश्रोणी और स्तनोंसे युक्त ॥ ४५ ॥

कामदेवके आधाररूपवाली कामबाणसे पीडित इस प्रकार उस मनोहारिणीको देखकर यज्ञको मूर्छा प्राप्त हुई ॥ ४६ ॥ और विधातासे पूर्वमें बोधित होनेके कारण उसको भार्यात्वमें ग्रहण किया ॥ ४७ ॥ उसके साथ यज्ञ परम आनंदसे विहार करने लगा तब उस देवीने बारह दिव्य वर्षतक गर्भ धारण किया ॥ ४८ ॥ तब सब कर्मोंके फलरूप पुत्रको उत्पन्न किया कर्मके पूर्ण होनेमें वह पुत्र फलदायक होता है ॥ ४९ ॥ यज्ञ अपनी दक्षिणा पत्नी और फलरूप पुत्रके सहित यज्ञकर्म करनेवालोंको फलका दाता है ऐसा वेदवादी कहते हैं ॥ ५० ॥ इस प्रकार यज्ञ दक्षिणा और फलदायक पुत्रको प्राप्त होकर हे नारद ! सबको कर्मोंका फल देने लगे ॥ ५१ ॥ तब वेदादि संतुष्ट होकर पूर्ण मनोरथ हुए और सब अपने २ स्थानमें गये यह हमने धर्मके मुखसे सुना है ॥५२॥

कामदेवाधाररूपां कामबाणप्रपीडिताम् ॥ तां दृष्ट्वा रमणीयां च यज्ञो मूर्च्छामवाप ह ॥ ४६ ॥ पत्नीं तामेव जग्राह विधिबोधितपूर्वकम् ॥ दिव्यं वर्षशतं चैव तां गृही त्वातु निर्जने ॥ ४७ ॥ यज्ञो रेमे मुदा युक्तो रामेशो रमया सह ॥ गर्भं दधार सा देवी दिव्यं द्वादशवर्षकम् ॥ ४८ ॥ ततः सुषावपुत्रं च फलं वै सर्वकर्मणाम् ॥ परिपूर्णे कर्मणि च तत्पुत्रः फलदायकः ॥ ४९ ॥ यज्ञो दक्षिणया सार्धं पुत्रेण च फलेन च ॥ कर्मिणां फलदाता चेत्येवं वेद विदो विदुः ॥ ५० ॥ यज्ञश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रं च फलदायकम् ॥ फलं ददौ च सर्वेभ्यः कर्मणां चैव नारद ॥५१॥तदा देवादयस्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः ॥ स्वस्थाने ते ययुः सर्वे धर्मवक्रादिदं श्रुतम् ॥५२॥ कृत्वा कर्म च कर्ता च तूर्णंदद्याच्च दक्षिणाम् ॥ तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदं मुने ॥ ५३ ॥ कर्मी कर्मणि पूर्णे च तत्क्षणे यदि दक्षिणाम् ॥ न दद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथ वा ॥ ५४ ॥ मुहूर्ते समतीते तु द्विगुणा सा भवेद्ध्रुवम् ॥ एकरात्रे व्यतीते तु सा त्रिकोटिगुणा च सा ॥ ५५ ॥ त्रिरात्रे तच्छतगुणा सप्ताहे द्विगुणा ततः ॥ मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्धते ॥ ५६ ॥ संवत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटिगुणा भवेत् ॥ कर्म तद्यजमानानां सर्वं वै निष्फलं भवेत् ॥ ५७ ॥

कर्ता कर्म करके शीघ्र दक्षिणाको दे तो हे मुनिराज ! उसी समय वह उसके फलको प्राप्त होताहै ॥ ५३ ॥ कर्मी कर्मके पूर्ण होनेमें उसी समय यदि दक्षिणा ब्राह्मणोंको प्रारब्धवश वा आज्ञानसे न दे ॥ ५४ ॥ तो एक मुहूर्तके बीतनेमें वह दूनी हो जाती है एक रातके बीतनेमें सौगुणी हो जाती है ॥ ५५ ॥ तीन रातमें उससे सौगुणी और सप्ताहमें उससे द्विगुणी होती है और एक महीना बीतनेमें ब्राह्मणोंकी दक्षिणा लाखगुणी हो जाती है ॥ ५६ ॥ एकवर्ष बीतने पर फिर तीन कोटि गुणी होती है और उसके विना यजमानोंका सब कर्म निष्फल हो जाता है ॥ ५७ ॥

वह मनुष्य ब्रह्मस्वहारी होकर कर्मके योग्य नहीं होता उस पापसे पातकी होकर दरिद्र और व्याधियुक्त होता है ॥ ५८ ॥ लक्ष्मी दारुण शाप देकर उसके घरसे चली जाती है उसका दिया श्राद्ध तर्पण पितर ग्रहण नहीं करते ॥५९॥ इस प्रकार देवता उसकी पूजा और अग्नि आहुती ग्रहण नहीं करते कर्म समय मनसे संकल्पित दक्षिणारूप दान यजमान न दे तथा ग्रहीता ब्राह्मण न ले ॥ ६० ॥ वह टूटी रस्सीवाले घटके समान दोनोंही नरकको जाते हैं और मांग नेपरभी यदि दक्षिणा न दे ॥ ६१ ॥ तो ब्राह्मणका धन हरण करनेका प्रायश्चित्त लगता है इससे वह अवश्य कुंभीपाक नरक में जाता है ॥ ६२ ॥ फिर वह व्याधियुक्त दरिद्री चांडाल होता है सात आगे और सात पीछेके पुरुषाओंको नरकमें डालता है ॥ ६३ ॥ हे नारद ! यह तो आपसे कहा अब और क्या

स च ब्रह्मस्वहारी च न कर्मार्होऽशुचिर्नरः ॥ दरिद्रो व्याधियुक्तश्च तेन पापेन पातकी ॥ ५८ ॥ तद्गृहाद्याति लक्ष्मीश्च शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ पितरो नैव गृह्णंति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम् ॥ ५९ ॥ एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तामग्निराहुतिम् ॥ दत्तं न दीयते दानं ग्रहीता नव याचते ॥ ६० ॥ उभौ तौ नरके यात श्छिन्नरज्जो यथा घटः ॥ नार्पयेद्यजमानश्चेद्याचितश्चापि दक्षिणाम् ॥ ६१ ॥ भवेद्ब्रह्मस्वापहारी कुंभीपाकं व्रजेद्ध्रुवम् ॥ वर्षलक्षं वसेत्तत्र यमदूतेन ताडितः ॥ ६२ ॥ ततो भवेत्स चांडालो व्याधियुक्तो दरिद्रकः ॥ पातयेत्पुरुषान्सप्त पूर्वांश्च सप्तजन्मतः ॥ ६३ ॥ इत्येवं कथितं विप्रः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ नारद उवाच ॥ यत्कर्म दक्षिणाहीनं को भुंक्ते तत्फलं मुने ॥ ६४ ॥ पूजा विधिं दक्षिणायाः पुरा यक्षकृतं वद ॥ नारायण उवाच कर्मणोदक्षिणस्यैव कुत एव फलं मुने ॥ ६५ ॥ सदक्षिणे कर्मणि च फलमेव प्रवर्तते ॥ अदक्षिणं च यत्कर्म तद्भुंक्ते च बलिर्मुने ॥ ६६ ॥ बलये तत्प्रदत्तं च वामनेन पुरा मुने ॥ अश्रोत्रियः श्राद्धद्रव्यमश्रद्धा दानमेव च ॥ ६७ ॥ वृषलीपतिविप्राणां पूजाद्रव्यादिकं च यत् ॥ असद्द्विजैः कृतं यज्ञमशुचेः पूजनं च यत् ॥ ६८ ॥

सुननेकी इच्छा है नारद जी बोले हे मुने ! जो कर्म दक्षिणा है उसका फल कौन भोगता है ॥ ६४ ॥ और यज्ञकी की हुई दक्षिणाकी पूजाविधि कहिये नारायण बोले हे मुने ! अदक्षिणा कर्मका फलही कहा है ॥ ६५ ॥ दक्षिणावाले कर्मकाही फल मिलता है और जो कर्म दक्षिणाहीन है उसका फल बलि भोगते हैं ॥ ६६ ॥ यह पहले बामनजीने बलिको बर दिया है कि अश्रोत्रियके श्राद्धका द्रव्य तथा विना श्राद्धका दिया हुआ ॥ ६७ ॥ तथा वृषली ब्राह्मणोंका जो कुछ पूजादि द्रव्य है वा अशुद्ध असत् ब्राह्मणोंका यज्ञ अशुचिका पूजन ॥ ६८ ॥

तथा गुरुके अभक्तका कर्म बलि भोगता है इसमें सन्देह नहीं दक्षिणाका जो ध्यान स्तोत्र, पूजा विधान है ॥ ६९ ॥ वह सब कण्व शाखामें लिखा है सुनो
पहले वह यज्ञ अपनी कर्मदक्ष दक्षिणाको प्राप्त होकर ॥ ७० ॥ उसके स्वरूपसे मोहित हो कामसे व्याकुलीभूत मनसे प्रार्थना करने लगा यज्ञ बोला पहले तुम
गोलोककी गोपी सब गोपियोंमें श्रेष्ठ थीं ॥ ७१ ॥ और श्रीकृष्णकी सखी राधाके समान प्रिय थीं कार्तिकी पूर्णमासीको राधाके महोत्सव रासमें ॥ ७२॥
लक्ष्मीके दक्षिण अंशसे प्रगट हुई इससे दक्षिणा कहाती हो हे शोभने! पहले तुम शीलसे सुशीलनामसे विख्यात थी ॥ ७३ ॥ लक्ष्मीके दक्षिणांस भागवाली
तुम राधाके शापसे दक्षिणा हुई हो तुम गोलोकसे भ्रष्ट होकर हमारे भाग्यसे यहां प्राप्त हुई हो ॥७४॥ हे महाभागे ! कृपा करके मुझको अपना स्वामी करो

गुरावभक्तस्यकर्म बलिभुक्ते न संशयः ॥ दक्षिणायाश्च यद्ध्यानं स्तोत्रं पूजाविधिक्रमम् ॥ ६९ ॥ तत्सर्वं कण्व शाखोक्तं प्रवक्ष्यामि
निशामय ॥ पुरा संप्राप्य तां यज्ञः कर्मदक्षां च दक्षिणाम् ॥ ७० ॥ मुमोहास्याः स्वरूपेण तुष्टाव कामकातरः ॥ यज्ञ उवाच ॥ पुरा
गोलोकगोपीत्वं गोपीनां प्रवरावरा ॥ ७१ ॥ राधासमा तत्सखी च श्रीकृष्णप्रेयसीप्रिया ॥ कार्तिकी पूर्णिमायां तु रासे राधामहो
त्सवे ॥ ७२ ॥ आविर्भूता दक्षिणांसाल्लक्ष्म्याश्च तेन दक्षिणा ॥ पुरा त्वं च सुशीलाख्या ख्याता शीलेन शोभने ॥ ७३ ॥ लक्ष्मीदक्षां
सभागात्त्वं राधा शापाच्च दक्षिणा ॥ गोलोकात्त्वं परिभ्रष्टा मम भाग्यादुपस्थिता ॥ ७४ ॥ कृपां कुरु महाभागे मामेव स्वामिनं कुरु ॥
कर्मिणा कर्मणां देवी त्वमेव फलदा सदा ॥ ७५ त्वया विना॥ च सर्वेषां सर्वं कर्म च निष्फलम् ॥ त्वया विना तथा कर्म कर्मिणां
न च शोभते ॥ ७६ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दिक्पालादय एव च ॥ कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्च त्वया विना ॥ ७७ ॥ कर्मरूपी स्वयं
ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः यज्ञरूपी विष्णुरहं त्वमेषां साररूपिणी ॥ ७८ ॥ फलदातृ परं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिः परा ॥ स्वयं कृष्णश्च
भगवान्स च शक्तस्त्वया सह ॥ ७९ ॥ त्वमेव शक्तिः कांते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि ॥ सर्वकर्मणि शक्तोऽहं त्वया सह वरानने ॥ ८० ॥

हे देवि ! कर्मियोंके कर्मकी फलदाता तुम्ही हो ॥ ७५ ॥ तुम्हारे विना सबके सब कर्म निष्फल होते हैं और तुम्हारे विना कर्मियोंके कर्म शोभा नहीं पाते
॥ ७६ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेशादि दिक्पाल तुम्हारे विना कर्मके फल देनेको समर्थ नहीं हैं ॥ ७७ ॥ कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा जी हैं और फलरूपी महेश्वर हैं
यज्ञरूपी विष्णु मैं हूं और तुम इनकी साररूपिणी हो ॥ ७८ ॥ फलदायक परब्रह्म निर्गुण पराकृति हैं स्वयं कृष्ण भगवान् तुम्हारे सहित कार्यमें समर्थ हैं
॥ ७९ ॥ हे कान्ते ! तुमही हमारे जन्म जन्मान्तरकी शक्ति हो हे वरानने ! तुम्हारे सहित मैं सब कर्म करनेमें समर्थ हूं ॥ ८० ॥

यज्ञके अधिष्ठात्री देवता यह कहकर उसके आगे स्थित हुए तब वह कमलाकी कला उनपर संतुष्ट हुई और उनको भजने लगी ॥ ८१ ॥ यह दक्षिणा स्तोत्र जो कोई यज्ञकालमें पढ़ता है निःसन्देह उसको सब यज्ञोंका फल प्राप्त होता है ॥ ८२ ॥ राजसूय; वाजपेय, गोमेध, नरमेध, अश्वमेध, लांगल, श्रीकर, यशस्कर, वैष्णवयज्ञ, ॥ ८३ ॥ धनदायक, भूमिदायक, पूर्त, फलद, गजमेध, लोहयज्ञ स्वर्णयज्ञ, रत्नयज्ञ, ताम्रयज्ञ, ॥ ८४ ॥ शिवयज्ञ, रुद्रयज्ञ, शक्रयज्ञ, बंधुकयज्ञ, वृष्टिमें वरुणयाग, कंडक, वैरिमर्दन ॥ ८५ ॥ शुचियज्ञ धर्मयज्ञ पापमोचनयज्ञ ब्रह्माणीयज्ञ कर्मयाग योनियाग भद्रकयाग ॥ ८६ ॥ यदि इन यागोंके आरम्भमें इस स्तोत्र को जो कोई पढ़े निश्चय ही उसका सब कर्म निर्विघ्न होता है ॥ ८७ ॥ यह स्तोत्र तो कहा अब ध्यान और पूजा विधि

इत्युक्त्वा च पुरस्तस्थौ यज्ञाधिष्ठातृदेवता ॥ तुष्टा बभूव सा देवी भेजे तं कमलाकला ॥ ८१ ॥ इदं च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च यः पठेत् ॥ फलं च सर्वयज्ञानां प्राप्नोति नात्र संशयः ॥ ८२ ॥ राजसूये वाजपेये गोमेधे नरमेधके ॥ अश्वमेधे लांगले च विष्णुयज्ञे यशस्करे ॥ ८३ ॥ धनदे भूमिदे पूर्ते फलदे गजमेधके ॥ लोहयज्ञे स्वर्णयज्ञे रत्नयज्ञेऽथ ताम्रके ॥ ८४ ॥ शिवयज्ञे रुद्रयज्ञे शक्रयज्ञे च बंधुके ॥ वृष्टौ वरुणयागे च कंडके वैरिमर्दने ॥ ८५ ॥ शुचियज्ञे धर्मयज्ञेऽध्वरे च पापमोचने ॥ ब्रह्माणी कर्मयोगे च योनियागे च भद्रके ॥ ८६ ॥ एतेषां च समारंभे इदं स्तोत्रं च यः पठेत् ॥ निर्विघ्नेन च तत्कर्म सर्वं भवति निश्चितम् ॥ ८७ ॥ इदं स्तोत्रं च कथितं ध्यानं पूजाविधिं शृणु ॥ शालग्रामे घटे वापि दक्षिणां पूजयेत्सुधीः ॥ ८८ ॥ लक्ष्मीदक्षांससंभूतां दक्षिणां कमलाकलाम् सर्वकर्मसुदक्षां च फलदां सर्व कर्मणाम् ॥ ८९ ॥ विष्णोः शक्तिस्वरूपां च पूजितां वंदितां शुभाम् शुद्धिदां शुद्धिरूपां च सुशीलां शुभदां भजे ॥ ९० ॥ ध्यात्वाऽनेनैव वरदां मूलेन पूजयेत्सुधीः ॥ दत्त्वा पाद्यादिकं देव्यै वेदोक्तेनैव नारद ॥ ९१ ॥ ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहेति च विचक्षणः ॥ पूजयेद्विधिवद्भक्त्या दक्षिणां सर्वपूजिताम् ॥ ९२ ॥

सुनो शालिग्राम वा घटमें दक्षिणाको पूजन करे ॥ ८८ ॥ लक्ष्मीके दक्षिणांशसे समुत्पन्न कमलाकी कला दक्षिणा सब कर्ममें दक्ष और सब कर्मोंका फल देनेवाली ॥ ८९ ॥ विष्णुकी शक्तिस्वरूपा पूजित और विदित शुद्धिदा शुद्धिरूपा सुशीला शुभदायकाका मैं भजन करता हूं ॥ ९० ॥ वरदायककी इस प्रकार ध्यानकर मूलमंत्रसे पूजन करे और हे नारदजी ! वेदानुसार देवीको पाद्यादिक देकर ॥ ९१ ॥ ओं श्रींक्लींह्रींदक्षिणायै स्वाहा इस प्रकार के मंत्रसे विचक्षण पुरुष परम भक्तिसे सर्वपूजित दक्षिणाका पूजन करे ॥ ९२ ॥

हे ब्रह्मन्! यह आपसे दक्षिणाका आख्यान कहा यह सुखदायक प्रीतदायक और सब कर्मोंका फल देनेवाला है ॥ ९३ ॥ जो सावधान होकर इस दक्षिणाके आख्यानको सुनते हैं भारत भूमिमें वह कर्म अंगहीन नहीं होता है ॥ ९४ ॥ अवश्यही अपुत्र पुरुषके निश्चित गुणसम्पन्न पुत्र होता है भार्याहीन पुरुष सुशीलसुन्दर भार्याको प्राप्त करता है ॥ ९५ ॥ जो सुन्दरमुखी पुत्र प्रगट करनेवाली पतिव्रता शुद्ध कुलजा श्रेष्ठ वधू होती है ॥ ९६ ॥ विद्याहीनको विद्या और धनहीनको धन मिलता है भूमिहीनको भूमि और प्रजाहीनको प्रजा प्राप्त होती है ॥ ९७ ॥ संकटमें भाइयोंके वियोग विपत्ति बंधनकी उपस्थितिमें एक महीने इस स्तोत्रको सुनकर संकटसे मुक्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ९८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे भाषायां पञ्चचत्वारिं

इत्येवं कथितं ब्रह्मन्दक्षिणाख्या नमेव च ॥ सुखदं प्रीतिदं चैव फलदं सर्वकर्मणाम् ॥ ९३ ॥ इदं च दक्षिणाख्यानं यः शृणोति समाहितः ॥ अंगहीनं च तत्कर्म न भवे द्भारते भुवि ॥ ९४ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं निश्चितं च गुणान्वितम् ॥ भार्याहीनो लभेद्भार्यां सुशीलां सुन्दरीं पराम् ॥ ९५ ॥ वरारोहां पुत्रवतीं विनीतां प्रियवादिनीम् ॥ पतिव्रतां च शुद्धां च कुलजां च वधूं वराम् ॥ ९६ ॥ विद्याहीनो लभेद्विद्यां धनहीनो लभेद्धनम् ॥ भूमिहीनो लभेद्भूमिं प्रजाहीनोलभेत्प्रजाम् ॥ ९७ ॥ संकटे बंधुविच्छेदे विपत्तौ बंधने तथा ॥ मासमेकमिदं श्रुत्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥ ९८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते म० नवमस्कंन्धे नारदनारायणसंवादे दक्षिणोपाख्याने पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ नारद उवाच ॥ अनेकानां च देवीनां श्रुतमाख्यानमुत्तमम् ॥ अन्यासां चरितं ब्रह्मन्वद वेदविदां वर ॥ १ ॥ नारायण उवाच ॥ सर्वासां चरितं विप्र वेदेषु च पृथक्पृथक् ॥ पूर्वोक्तानां च देवीनां कासां श्रोतुमिहेच्छसि ॥ २ ॥ नारद उवाच षष्ठी मंगलचंडी च मनसाप्रकृतेः कला ॥ उत्पत्तिमासां चरितं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥ नारायण उवाच ॥ षष्ठांशा प्रकृतेर्या च सा च षष्ठी प्रकीर्तिता ॥ बालकानामधिष्ठात्री विष्णुमाया च बालदा ॥ ४ ॥

शोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ नारदजी बोले अनेक देवियोंका आख्यान सुना हे वेदविदांवर! अब दूसरी देवियोंका चरित्र वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ नारायण बोले हे ब्रह्मन्! वेदमें पृथक् पृथक् सबके चरित्र कहे हैं तुम पूर्वोक्त देवियोंमें किसके चरित्र सुनना चाहते हो ॥ २ ॥ नारदजी बोले षष्ठी, मंगली, चण्डी और मनसा प्रकृतिकी कला हैं इनकी उत्पत्ति और चरित्र मैं तत्वसे सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ३ ॥ नारायण बोले प्रवृत्तिका षष्ठांशही षष्ठी है यह बालकोंकी अधिष्ठात्री विष्णुकी माया बालकोंको देनेवाली है ॥ ४ ॥

यह देवसेना नामक मातृकाओंमें विख्यात है यह प्राणसे अधिक प्रियस्कन्दकी साध्वी सुव्रता भार्या है ॥ ५ ॥ बालकोंको आयु देनेवाली धात्री रक्षण करनेवाली है योगसे सिद्ध यह योगिनी निरन्तर बालकके पार्श्वभागमें स्थित रहती है ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् । उसकी पूजाविधि और इतिहास सुनो जो पुत्रदायक सुखदायक कथा धर्मराजके मुखसे सुनी है ॥ ७ ॥ स्वायंभु मनुके पुत्र राजा प्रियव्रत हुए यह तपस्यामें सदा रत योगीन्द्र भार्या परिग्रहण न करते हुए ॥ ८ ॥ तब ब्रह्माजीकी आज्ञासे स्त्री ग्रहण की परन्तु चिरकालतक भी कोई पुत्र नहीं हुआ ॥ ९ ॥ तब कश्यपजीने उनसे पुत्रेष्टि यज्ञ कराया मुनिने यज्ञचरु उनकी मालिनी नामक स्त्रीको दिया ॥ १० ॥ उस चरुके भक्षण करतेही उसको तत्काल गर्भ रहा तब बारह वर्षतक गर्भको धारण किया ॥ ११ ॥

मातृ कासु च विख्याता देवसेनाभिधा च या ॥ प्राणाधिकाप्रिया साध्वी स्कंदभार्या च सुव्रता ॥५॥ आयुः प्रदा च बालानां धात्री रक्षणकारिणी ॥ सततं शिशुपार्श्वस्था योगेन सिद्धियोगिनी ॥ ६ ॥ तस्याः पूजाविधिं ब्रह्मन्नितिहासमिदं शृणु ॥ यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण सुखदं पुत्रदं परम् ॥ ७ ॥ राजा प्रियव्रतश्चासीत्स्वायंभुवमनोः सुतः ॥ योगींद्रो नोद्वहद्भार्यां तपस्यासु रतः सदा ॥ ८ ॥ ब्रह्माज्ञया च यत्नेन कृतदारो बभूव ह ॥ सुचिरं कृतदारश्च न लेभे तनयं मुने ॥ ९ ॥ पुत्रेष्टिं यज्ञं तं चापि कारयामास कश्यपः ॥ मालिन्यै तस्य कांतायै मुनिर्यज्ञचरुं ददौ ॥ १० ॥ भुक्त्वा च तं चरुं तस्या सद्यो गर्भो बभूवह ॥ दधार तं च सा देवी दैवं द्वादशवत्सरम् ॥ ११ ॥ ततः सुषाव सा ब्रह्मन्कुमारं कनकप्रभम् ॥ सर्वावयवसंपन्न मृतमुत्तार लोचनम् ॥ १२ ॥ तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वा नार्यश्च बांधवस्त्रियः ॥ मूर्छामवाप तन्माता पुत्रशोकेन भूयसा ॥ १३ ॥ श्मशानं च ययौ राजा गृहीत्वा बालकं मुने ॥ रुरोद तत्र कांतारे पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि ॥ १४ ॥ नोत्सृजद्बालकं राजा प्राणां स्त्यक्तुं समुद्यतः ॥ ज्ञानयोगं विसस्मार पुत्रशोकात्सुदारुणात् ॥ १५ ॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र विमानं च ददर्श सः ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं मणिराजविनिर्मितम् ॥ १६ ॥

तब उसके सुवर्णके समान कांतिमान् पुत्र जन्मा जो सब अवयवसे सम्पन्न मृत उत्तार नेत्रयुक्त था ॥ १२ ॥ उसको मृतक देख सब स्त्री आदि हाहाकारसे रोने लगीं और पुत्रशोकसे माता मूर्छित होगई ॥ १३ ॥ हे मुने ! उस बालकको लेकर राजा श्मशानमें गये और उसे हृदयसे लगाय वनमें रुदन करने लगे ॥ १४ ॥ राजाने बालकको न छोड़ा और प्राण त्यागन करने पर उतारू हुआ और दारुण शोकसे ज्ञानयोगको भूल गया ॥ १५ ॥ इसी समय उसने एक विमान देखा जो शुद्ध स्फटिकमणिके समान मणिश्रेष्ठोंसे बना था ॥ १६ ॥

निरन्तर तेजसे प्रकाशमान क्षौमवस्त्रोंसे शोभित और अनेक प्रकारकी चित्र विचित्र फूलमालाओंसे विराजित ॥ १७ ॥ उसमें एक बड़ी मनोहरा देवीका दर्शन किया जो श्वेत चंपकके समान वर्ण सम्पन्न निरन्तर स्थिर यौवनवाली ॥ १८ ॥ कुछेक हास्यसे प्रसन्नमुखी रत्न भूषणोंसे भूषित कृपामयी योगसिद्धा भक्तोंके अनुग्रहमें तत्पर थी ॥ १९ ॥ राजाने भगवतीको देख परम आदरसे सन्तुष्ट किया बालकको भूमिपर छोड़कर उसका पूजन किया ॥ २० ॥ उस ग्रीष्मका लीन सूर्यके समान् कान्तिवाली प्रसन्न, तेजसे प्रज्वलित, शान्त, स्कंदकी भार्यासे राजा पूछने लगे ॥ २१ ॥ राजा बोला, हे शोभने कांते ! तुम कौन किसकी प्रिया हो हे वरारोहे ! तुम स्त्रियोंमें धन्या मान्या किसकी कन्या हो ॥ २२ ॥ राजाके यह वचन सुन यह जगन्मंगला चण्डिका देवसेना देवरणकारिणी

तेजसा ज्वलितं शश्वच्छोभितं क्षौमवास सा ॥ नानाचित्रविचित्राढ्यं पुष्पमालाविराजितम् ॥ १७ ॥ ददर्श तत्र देवीं च कमनीयां मनो हराम् ॥ श्वेतचंपकवर्णाभां शश्वत्सु स्थिरयौवनाम् ॥ १८ ॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ कृपामयीं गोगसिद्धांभक्त नुग्रह कातराम् ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा तां पुरतो राजा तुष्टाव परमादरम् ॥ चकार पूजनं तस्या विहाय बालकं भुवि ॥ २० ॥ पप्रच्छ राजा तां तुष्टां ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् ॥ तेजसा ज्वलितां शांतां कांतां स्कन्दस्य नारद ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ का त्वं सुशोभने कांते कस्य कांता सि सुव्रते ॥ कस्य कन्या वरारोहे धन्या मान्या च योषिताम् ॥ २२ ॥ नृपेंद्रस्य वचः श्रुत्वा जगन्मंगलचंडिका ॥ उवाच देवसेना सा देवानां रणकारिणी ॥ २३ ॥ देवानां दैत्यग्रस्तानां पुरा सेना बभूव सा ॥ जयं ददौ सा तेभ्यश्च देवसेना च तेन सा ॥ २४ ॥ श्री देवसेनोवाच ॥ ब्रह्मणो मानसीकन्या देवसेनाहमीश्वरी ॥ सृष्ट्वा मां मनसा धाता ददौ स्कंदाय भूमिप ॥ २५ ॥ मातृकासु च विख्याता स्कंदभार्या च सुव्रता ॥ विश्वे षष्ठीति विख्याता षष्ठांशा प्रकृतेः परा ॥ २६ ॥ अपुत्राय पुत्रदाऽहं प्रिया दात्री प्रियाय च ॥ धनदाऽहं दरिद्रेभ्यः कर्मिभ्यश्च स्वकर्मदा ॥२७॥ सुखं दुःखं भयं शोको हर्षो मंगलमेव च ॥ संपत्तिश्च विपत्तिश्च सर्वं भवति कर्मणा ॥ २८ ॥

बोली ॥ २३ ॥ पहले मैं दैत्योंसे ग्रस्त देवताओंकी सेना हुई थी, और देवताओंको जय देनेके कारणही देवसेना हुई ॥ २४ ॥ देवसेना बोली मैं ब्रह्माकी मानसी कन्यादेवसेना ईश्वरी हूं, हे राजन् विधाताने मुझे मनसे रचना कर स्कन्धके निमित्त दिया ॥ २५ ॥ मैं माताओंमें विख्यात स्कंदकी सुव्रता भार्या हूं और प्रकृतिका षष्ठांश होनेसे संसारमें षष्ठीनामसे विख्यात हूं ॥ २६ ॥ मैं अपुत्रोंको पुत्र और प्रियाकी इच्छावालोंको प्रिया देती हूं, दरिद्रोंको धन और कर्मियोंको कर्म देती हूं ॥ २७ ॥ सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मंगल, संपत्ति, विपत्ति, सब कर्मसे होती है ॥ २८ ॥

कर्मसे बहुत पुत्र कर्मसेही वंशहीन कर्मसेही मृत पुत्र और कर्मसेही चिरजिवी पुत्र होता है ॥ २९ ॥ कर्मसेही गुणवान् अङ्गहीन बहुत भार्यावाला तथा भार्याहीन होता है ॥ ३० ॥ कर्मसेही रूपवान् धर्मी रोगी व्याधित और अरोगी होता है ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! इस कारण सब शास्त्र वेदमें कर्मविशेष सुना गया है हे मुने ऐसा कह वह देवी बालकको ग्रहणकर ॥ ३२ ॥ महाज्ञानसे अपनी लीलासेही उसको जिवाती हुई जब राजाने कंचन वर्ण उस बालकको हँसता देखा ॥ ३३ ॥ तब राजासे देवसेना पूछकर उस बालकको लेकर आकाशमें जानेकी इच्छा करने लगी ॥ ३४ ॥ तब फिर राजा शुष्क कण्ठ ओष्ठ

कर्मणा बहुपुत्रश्च वंशहीनः स्वकर्मणा ॥ कर्मणा मृतपुत्रश्च कर्मणा चिरजीवनः ॥ २९ ॥ कर्मणा गुणवांश्चैव कर्मणा चांगहीनकः ॥ बहुभार्यश्च भार्या हीनश्च कर्मणा ॥ ३० ॥ कर्मणा रूपवान्धर्मी रोगी शश्वत्स्वकर्मणा ॥ कर्मणा च भवेद्व्याधिः कर्मणाऽऽरोग्यमेव च ॥ ३१ ॥ तस्मात्कर्म परं राजन्सर्वेभ्यश्च श्रुतौ श्रुतम् ॥ इत्येवमुक्त्वा सा देवी गृहीत्वा बालकं मुने ॥ ३२ ॥ महाज्ञानेन सा देवी जीवयामास लीलया ॥ राजा ददर्श तं बालं सस्मितं कनकप्रभम् ॥ ३३ ॥ देवसेना च पश्यंतं नृपमापृच्छ्य सा सदा ॥ गृहीत्वा बालकं देवी गगनं गंतुमुद्यता ॥ ३४ ॥ पुनस्तुष्टाव तां राजा शुष्ककंठोष्ठतालुकः ॥ नृपस्तोत्रेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह ॥ ३५ ॥ उवाच तं नृपं ब्रह्मन् वेदोक्तं कर्म निर्मितम् ॥ देव्युवाच ॥ त्रिषु लोकेषु त्वं राजा स्वायंभुवनोः सुतः ॥ ३६ ॥ मम पूजां च सर्वत्र कारयित्वा स्वयं कुरु ॥ तदा दास्यामि पुत्रं ते कुलपद्मं मनोहरम् ॥ ३७ ॥ सुव्रतं नाम विख्यातं गुणवंतं सुपंडितम् ॥ जातिस्मरं च योगींद्रं नारायणकलात्मकम् ॥ ३८ ॥ शतक्रतुकरं श्रेष्ठं क्षत्रियाणां च वंदितम् ॥ मत्तमातंगलक्षाणां धृतवंतं बलं शुभम् ॥ ३९ ॥ धनिनं गुणिनं शुद्धं विदुषां प्रियमेव च ॥ योगिनां ज्ञानिनां चैव सिद्धिरूपं तपस्विनाम् ॥ ४० ॥ यशस्विनं च लोकेषु दातारं सर्वसंपदाम् ॥ इत्येवमुक्त्वा सा देवी तस्मै तद्बालकं ददौ ॥ ४१ ॥

तालुसे उसकी प्रार्थना करने लगे तब वह देवी राजाके स्तोत्रसे सन्तुष्ट हुई ॥ ३५ ॥ और वेदोक्त कर्मको राजासे कहने लगी देवी बोली तुम स्वायंभुव मनुके पुत्र त्रिलोकीके राजा हो ॥ ३६ ॥ तुम सर्वत्र हमारी पूजा कराओ तब मैं तुमको कुलवर्द्धक मनोहर पुत्र दूंगी ॥ ३७ ॥ जो सुव्रत नामसे विख्यात गुणवान् पंडित जाति स्मरण वाला योगीन्द्र नारायणकी कलाही होगा ॥ ३८ ॥ सौ यज्ञका करनेवाला श्रेष्ठ क्षत्रियोंसे नमस्कृत लक्ष मत्त मातंगके बलसे सम्पन्न ॥ ३९ ॥ धनी गुणी शुद्ध विद्वानोंका प्रिय योगी ज्ञानी और तपस्वियोंका सिद्धरूप ॥ ४० ॥ लोकमें यशस्वी सब संपत्तियोंका देनेवाला होगा यह कहकर देवीने वह

बालक राजाको दिया ॥ ४१ ॥ राजाने पूजा स्वीकार की और देवी उसको सुन्दर वर देकर स्वर्गको गई ॥ ४२ ॥ राजा मंत्रियों सहित प्रसन्न हो अपने घर आये और आकर पुत्र पानेका वृत्तान्त कहा ॥ ४३ ॥ पुरुष स्त्रियें यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और पुत्रके निमित्त सर्वत्र मंगल कराया ॥ ४४ ॥ देवीको पूजनकर ब्राह्मणोंको धन दिया और राजाने प्रतिमहीने शुक्लषष्ठीमें महोत्सव ॥ ४५ ॥ षष्ठी देवीका कराया और सूतिका स्थानमें बालकोंके निमित्त छठीका उत्सव करवाया ॥ ४६ ॥ छठे अथवा इक्कीसवें दिन उसकी पूजा कराई बालकोंके शुभकार्य अथवा अन्नप्राशन दिनमें ॥ ४७ ॥ राजाने सर्वत्र पूजा कराई और

राजा चकार स्वीकारं पूजार्थं च प्रियव्रतः ॥ जगाम देवीस्वर्गं च दत्त्वा तस्मै शुभं वरम् ॥ ४२ ॥ आजगाम सहामात्यः स्वगृहं हृष्टमानसः ॥ आगत्य कथयामास वृत्तांतं पुत्रहेतुकम् ॥ ४३ ॥ श्रुत्वा बभूवुः संतुष्टा नरा नार्यश्च नारद ॥ मंगलं कारयामास सर्वत्र पुत्रहेतुकम् ॥ ४४ ॥ देवीं च पूजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनंददौ ॥ राजा च प्रतिमासेषु शुक्लषष्ठ्यां महोत्सवम् ॥ ४५ ॥ षष्ठ्या देव्याश्च यत्नेन कारयामास सर्वतः ॥ बालानां सूतिकागारे षष्ठाहे यत्नपूर्वकम् ॥ ४६ ॥ तत्पूजां कारयामास चैकविंशतिवासरे ॥ बालानां शुभकार्ये च शुभान्नप्राशने तथा ॥ ४७ ॥ सर्वत्रवर्धयामास स्वयमेव चकार ह ॥ ध्यानं पूजाविधानं च स्तोत्रं मत्तो निशामय ॥ ४८ ॥ यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण कौथुमोक्तं च सुव्रत ॥ शालग्रामे घटेवाऽथ वटमूलेऽथवा मुने ॥ ४९ ॥ भित्त्यां पुत्तलिकां कृत्वा पूजयेद्वा विचक्षणः ॥ षष्ठांशां प्रकृतेः शुद्धां प्रतिष्ठाप्य च सुप्रभाम् ॥ ५० ॥ सुपुत्रदां च शुभदां दयारूपां जगत्प्रसूम् श्वेतचंपकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ ५१ ॥ पवित्ररूपां परमां देवसेनां परां भजे ॥ इति ध्वात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा विचक्षणः ॥ ५२ ॥ पुनर्ध्यात्वा च मूलेन पूजयेत्सुव्रतां सतीम् ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च गंधपुष्पप्रदीपकैः ॥ ५३ ॥

आपभी की, उनकी ध्यानपूजाविधान और स्तोत्र मुझसे सुनो ॥ ४८ ॥ हे सुव्रत ! जो धर्मके मुखसे सुनकर कौथुमने कहा शालिग्राम, घट, अथवा वट मूलमें ॥ ४९ ॥ वा भतिमें मूर्ति खैंचकर चतुर पुरुष पूजन करे इस शुद्ध प्रकृतिके छठे अंशकी पूजा करके जो सुप्रभा ॥ ५० ॥ सुपुत्रदा सुभदा दयारूपा जगत्की प्रसूति श्वेतचम्पकके वर्णवाली रत्नोंके भूषणोंसे भूषित है ॥ ५१ ॥ उस पवित्ररूपा परमा देवसेनाका मैं भजन करता हूं इस प्रकार चतुर पुरुष ध्यान कर अपने शिरपर फूल रख कर ॥ ५२ ॥ फिर ध्यानकर मूलमंत्रसे सुव्रता सतीका पूजन करे। पाद्य, अर्घ्य, आचमन, गंध, पुष्प, दीप ॥ ५३ ॥

विविध नैवेद्य और फल निवेदन करे, ओंह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा, यह मंत्र विधिपूर्वक जपे ॥ ५४ ॥ इस अष्टाक्षर महामंत्रको यथाशक्ति जपे फिर स्तुतिकर भक्तिसे प्रणाम करे ॥ ५५ ॥ सामवेदोक्त स्तोत्र वर और पुत्रफलका देनेवाला है इस अष्टाक्षरमहामंत्रको जो एकलाख वार जपे ॥ ५६ ॥ उसको अवश्य सुपुत्रकी प्राप्ति होती है यह ब्रह्माजीने कहा है हे मुनिश्रेष्ठ! सब कामना दायक सुन्दर स्तोत्र सुनो ॥ ५७ ॥ हे नारद ! यह सबको वांछादायक स्तोत्र वेदोंमें गूढ रूपसे स्थित है प्रियव्रत बोले देवी महादेवी सिद्धि शांतिके निमित्त नमस्कार है ॥ ५८ ॥ शुभा देवसेना षष्ठी देवीको न० वरदा पुत्रदा धनदाके निमित्त प्रणाम है ॥ ५९ ॥ सुखदा, मोक्षदा, षष्ठी देवीको न० सृष्टि षष्ठांशरूपासिद्धाको प्रणाम है ॥ ६० ॥ माया सिद्धयोगिनी षष्ठी देवीको सारा शारदा परा देवीको

नैवेद्यैर्विविधैश्चापि फलेन शोभनेन च ॥ ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहेति विधिपूर्वकम् ॥ ५४ ॥ अष्टाक्षरं महामंत्रं यथाशक्ति जपेन्नरः ॥ ततः स्तुत्वा च प्रणमेद्भक्तियुक्तः समाहितः ॥५५॥ स्तोत्रं च सामवेदोक्तं वरं पुत्रफलप्रदम् ॥ अष्टाक्षरं महामन्त्र लक्षधा यो जपेत्ततः ॥५६॥ सुपुत्रं च लभेन्नूनमित्याह कमलोद्भवः ॥ स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ सर्वकामशुभावहम् ॥५७॥ वांछाप्रदं च सर्वेषां गूढं वेदेषु नारद ॥ नमो देव्यै महा देव्यै सिद्ध्यै शान्त्यै नमो नमः ॥ ५८ ॥ शुभायै देवसेनायै षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः ॥ वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नमः ॥५९॥ सुखदायै मोक्षदायै षष्ठ्यै देव्यैनमो नमः ॥ षष्ठ्यै षष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः ॥६०॥ मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ सारायै शारदायै च परादेव्यै नमो नमः ॥ ६१ ॥ बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ कल्याणदायै कल्याण्णै फलदायै च कर्मणाम् ॥६२॥ प्रत्यक्षायै स्वभक्तानां षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः ॥ पूज्यायै स्कंदकांतायै सर्वेषां सर्वकर्मसु ॥ ६३ ॥ देवरक्षणकारिण्यैषष्ठी देव्यै नमो नमः ॥ सिद्धसत्त्वस्वरूपायै वंदितायै नृणां सदा ॥ ६४ ॥ हिंसाक्रोधवर्जितायै षष्ठी देव्यै नमो नमः ॥ धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि ॥ ६५ ॥ मानं देहि जयं देहि द्विषोजहि महेश्वरि ॥ धर्मं देहि यशो देहि षष्ठी दिव्यै नमो नमः ॥ ६६ ॥

प्रणामहै ॥ ६१ ॥ बालकोंकी अधिष्ठात्रीदेवी षष्ठी देवीको प्रणाम है कल्याणदा कल्याणी कर्मोंका फल देनेवाली ॥ ६२ ॥ अपने भक्तोंके निमित्त प्रत्यक्ष होनेवाली षष्ठी देवीको प्रणाम है सब कर्मोंमें पूजनीया स्कन्दकांता ॥ ६३ ॥ देवरक्षणकारिणी षष्ठी देवीको प्रणाम है शुद्धसत्वस्वरूपा मनुष्योंसे सदा वंदित ॥ ६४ ॥ हिंसा क्रोध रहित षष्ठी देवीको प्रणाम है हे सुरेश्वरि ! धन, प्रिया और पुत्र दीजिये ॥ ६५ ॥ हे महेश्वरि ! मान और जय दो शत्रुओंको नष्ट करो धर्म और यश दो, षष्ठी देवीको प्रणाम है ॥ ६६ ॥

हे सुपूजित ! भूमि प्रजा और विद्या दो, कल्याण जयदायक षष्ठी देवीको प्रणाम है ॥ ६७ ॥ इससे देवीकी स्तुतिकर प्रियव्रतने पुत्र पाया था हे राजेंद्र ! षष्ठी देवीके प्रसादसे यशस्वी पुत्र मिला था ॥ ६८ ॥ जो यह षष्ठीका स्तोत्र एक वर्षतक सुनता है यह अपुत्र चिरंजीवीपुत्र को प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ और जो एक वर्ष भक्तिसे इसका पूजनकर सुनता है वह सब पापसे रहित होता है और महावंध्या भी प्रसूती होती है ॥ ७० ॥ वीर, गुणी, विद्वान्, यशस्वी, चिरायुष पुत्रको देवीके प्रसादसे प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ जो स्त्री काकवंध्या और मृतवत्सा होती वह एक वर्ष इस स्तोत्रको सुनकर षष्ठी देवीके प्रसादसे

देहि भूमिं प्रजां देहि विद्यांदेहि सुपूजिते ॥ कल्याणं च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ ६७ ॥ इति देवीं च संस्तूयलेभे पुत्रं प्रिय व्रतः ॥ यशस्विनं च राजेंद्रः षष्ठीदेव्याः प्रसादतः ॥ ६८ ॥ षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन्यः शृणोति तु वत्सरम् ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीवनम् ॥ ६९ ॥ वर्षमेकं च यो भक्त्या संपूज्येदं शृणोति च सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो महावन्ध्या प्रसूयते ॥ ७० ॥ वीरं पुत्रं च गुणिनं विद्यावंतं यशस्विनम् ॥ सुचिरायुष्यवन्तं च सूते देवीप्रसादतः ॥ ७१ ॥ काकवंध्या च या नारी मृतवत्सा च या भवेत् ॥ वर्षं श्रुत्वा लभेत्पुत्रं षष्ठी देवीप्रसादतः ॥ ७२ ॥ रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति चेत् ॥ मासेन मुच्यते बालः षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥ ७३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते म० नवमस्कन्धे नारदनारायणसंवादे षष्ठ्युपाख्याने षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ कथितं षष्ठ्युपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम ॥ देवी मंडलचण्डी च तदाख्यानं निशामय ॥ १ ॥ तस्याः पूजादिकं सर्वं धर्मव क्त्रेण यच्छ्रुतम् ॥ श्रुतिसंमतमेवेष्टं सर्वेषां विदुषामपि ॥ २ ॥ दक्षा या वर्तते चंडी कल्याणेषु च मंगला ॥ मंगलेषु च या दक्षा सा च मंगलचंडिका ॥ ३ ॥ पूज्या या वर्तते चंडी मंगलोऽपि महीसुतः ॥ मंगलाभीष्टदेवी या सा वा मंगलचंडिका ॥ ४ ॥

पुत्र पावेगी ॥ ७२ ॥ बालकके रोगी होनेमें जो पिता माता इसको सुने तो षष्ठी देवीके प्रसादसे एक महीनेमें बालक रोगसे मुक्त हो जाता है ॥ ७३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां षट्चत्वारिंशोध्यायः ॥ ४६ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारद ! यथाशास्त्र षष्ठीका उपाख्यान कहा अब मंगल चंडी देवीका उपाख्यान सुनो ॥१॥ उसकी सब पूजादि जो धर्म मुखसे सुनी है जो श्रुति और सब विद्वानोंको इष्ट है ॥२॥ जो कल्याणकर्मोंमें प्रतापवती है वह दक्षा चंडी है और जो मंगल कार्योंमें दक्ष हैं वह मंगलाचण्डी है ॥३॥ अथवा भूमि पुत्र मंगलकी अभीष्टदात्री जो चंडी है वह मंगलचंडिका है ॥ ४ ॥

मंगल एक मनु वंशमें सप्त द्वीपका अधिपति हुआ है उसकी पूजा और अभीष्टदानसे भी यह मंगलचंडिका कहाती है ॥ ५ ॥ मूर्ति भेदसेही वह दुर्गा मूलप्रकृति अधीश्वरी है प्रत्यक्षरूपसे स्त्रियोंको अभीष्टदात्री है ॥ ६ ॥ प्रथम इस परात्पराका शंकरने पूजन किया था जब घोर त्रिपुर वधको विष्णुने प्रेरणा की थी ॥ ७ ॥ हे नारद ! जब दैत्यने क्रोधकर आकाशसे विमान पातित किया था तब दुर्गतसंकटमें ब्रह्माके उपदेशसे ॥ ८ ॥ ब्रह्मा विष्णुके उपदेशसे शंकरने दुर्गा भगवतीको सन्तुष्ट किया था वह रूपभेदसे मंगलचंडी कहाती है ॥ ९ ॥ शिवजीसे यह कहा था कि हे प्रभो ! अब भय नहीं है विष्णु भगवान् वृषरूपसे तुम्हारे वाहन होंगे ॥ १० ॥ और निःसन्देह मैं युद्ध शक्तिस्वरूपा हूंगी हे शंकर ! मेरे और विष्णुके सहायक होनेसे

मंगलो मनुवंश्यश्च सप्तद्वीपधरापतिः ॥ तस्य पूज्याऽभीष्टदेवी तेन मंगलचंडिका ॥५॥ मूर्तिभेदेन सा दुर्गामूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ कृपारूपा ऽतिप्रत्यक्षा योषितामिष्टदेवता ॥ ६ ॥ प्रथमे पूजिता सा च शंकरेण परात्परा ॥ त्रिपुरस्य वधे घोरेविष्णुना प्रेरितेन च ॥ ७ ॥ ब्रह्म न्ब्रह्मोपदेशेन दुर्गतेन च संकटे ॥ आकाशात्पतिते याने दैत्येन पातितेरुषा ॥ ८ ॥ ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च दुर्गां तुष्टाव शंकरः ॥ सा च मंगलचंडी या बभूव रूपभेदतः ॥ ९ ॥ उवाच पुरतः शम्भोर्भयं नास्तीति तं प्रभो ॥ भगवान्वृषरूपश्च सर्वेशस्ते भविष्यति ॥ १० ॥ युद्धशक्तिस्वरूपाऽहं भविष्यामि न संशयः ॥ मायात्मना च हरिणा सहायेन वृषध्वज ॥ ११ ॥ जहि दैत्यं स्वशत्रुं च सुराणां पदघा तकम् ॥ इत्युक्त्वांतार्हिता देवी शंभो शक्तिर्बभूव सा ॥ १२ ॥ विष्णुदत्तेन शस्त्रेणजघान तमुमापतिः ॥ मुनींद्रपतिते दैत्ये सर्वे देवा महर्षयः ॥ १३ ॥ तुष्टुवुः शंकर देवं भक्तिनम्रात्मकन्धराः सद्यः शिरसि शंभोश्च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥ १४॥ ब्रह्मा विष्णुश्च संतुष्टो ददौ तस्मै शुभाशिषम् ॥ ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च सुस्नातः शंकरस्तथा ॥ १५ ॥ पूजयामास तां भक्त्या देवीं मंगलचंडिकाम् ॥ पाद्या र्घ्याचमनीयैश्च वस्त्रैश्च विविधैरपि ॥ १६ ॥

॥ ११ ॥ देवताओंके पदघातक शत्रुको तुम भलीभांति जयकर सकोगे यह कह भगवती अन्तर्द्धान होकर शंभुकी शक्ति हुई ॥ १२ ॥ और विष्णुके दिये शस्त्रसे शिवजीने उस दैत्यको मारा हे मुनीन्द्र ! उस दैत्यके पतित होनेमें सम्पूर्ण देवतामहर्षि ॥ १३ ॥ भक्तिसे नम्र कंधा हो शंकरकी स्तुति करने लगे और उसी समय शिवजीपर पुष्पवृष्टि हुई ॥ १४ ॥ ब्रह्मा विष्णुने प्रसन्न हो उनको श्रेष्ठ आशीर्वाद दिये और इन दोनोंकी आज्ञासे शिवजी स्नान कर ॥ १५ ॥ भक्तिसे मंगल चंडीका देवीकी पूजा करते हुए पाद्य अर्घ्य आचमन दूसरे अनेक प्रकारके वस्त्र ॥ १६ ॥

हे मुने ! पुष्प चन्दन नैवेद्य और अनेक प्रकार छाग, मेष, महिष, गवय, विविध पक्षी ॥ १७ ॥ वस्त्र, अलंकार, माला, पायस, पिष्ट पदार्थ, मधु, सुधा अनेक प्रकारके फल ॥ १८ ॥ संगीत, नृत्य, वाद्य उत्सव, नामकीर्तन द्वारा माध्यन्दिनके अनुसार ध्यान करके भक्तिपूर्वक ॥ १९ ॥ हे नारद मूलमंत्रसे देवीकी प्रीतिके निमित्त यह सब दिये "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्व पूज्ये देवी मंगल चंडिके हूं हूं फट् स्वाहा ॥ २० ॥ यह इक्कीस अक्षरका ओंकार रहित मंत्र है यह पूज्य कल्पतरु और भक्तोंको सब कामना देनेवाला है ॥ २१ ॥ दशलाख जपनेसे इस मंत्रकी सिद्धि अवश्य होती है हे ब्रह्मन् ! वेदोक्त सर्व सम्मत भगवतीका ध्यान सुनों ॥ २२ ॥ वह सोलह वर्षकी अवस्थावाली निरन्तर स्थित योवनवाली बिम्बोष्ठी सुदती निरन्तर शुद्ध शरत्पद्मके समान मुखवाली ॥ २३ ॥

पुष्पचंदननैवेद्यैर्भक्त्या नाना विधैर्मुने ॥ छागैर्मेषैश्च महिषैर्गवयैः पक्षिभिस्तथा ॥ १७ ॥ वस्त्रालंकारमाल्यैश्च पायसैः पिष्टकैरपि ॥ मधुभिश्च सुधाभिश्च फलैर्नानाविधैरपि ॥ १८ ॥ संगीतैर्नर्तकैर्वाद्यैरुत्सवैर्नामकीर्तनैः ॥ ध्यात्वा माध्यंदिनोक्तेन ध्यानेन भक्तिपूर्वकम् ॥ १९ ॥ ददौ द्रव्याणि मूलेन मंत्रेणैव च नारद ॥ ॐ ह्रीं श्रीक्लींसर्वपूज्ये देवि मंगलचंडिके ॥ २० ॥ हूंहूं फट्स्वाहाप्येकविंशाक्षरो मन्त्रः ॥ पूज्यः कल्पतरुश्चैव भक्तानां सर्वकामदः ॥ २१ ॥ दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ ध्यानं च श्रूयतां ब्रह्मन्वेदोक्तं सर्व संमतम् ॥ २२ ॥ देवीं षोडशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥ बिंबोष्ठीं सुदतीं शुद्धां शरत्पद्मनिभाननाम् ॥ २३ ॥ श्वेतचम्पकवर्णाभां सुनीलोत्पल लोच नाम् ॥ जगद्धात्रीं च दात्रीं च सर्वेभ्यः सर्वसम्पदाम् ॥ २४ ॥ संसारसागरे घोरे ज्योतीरूपां सदा भजे ॥ देव्याश्च ध्यानमित्येवं स्तबनं श्रूयतां मुने ॥ २५ ॥ महादेव उवाच ॥ रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मंगलचंडिके ॥ हारिके विपदां राशेर्हर्षमङ्गलकारिके ॥ २६ ॥ हर्ष मंगलदक्षे च हर्षमंगलदायिके ॥ शुभे मंगलदक्षे च शुभे मंगलचंडिके ॥ २७ ॥ मंगले मंगलार्हे च सर्वमंगलमंगले ॥ सतां मंगलदेदेवि सर्वेषां मङ्गलालये ॥ २८ ॥

श्वेतचम्पकके वर्णके समान नीलकमलवत् नेत्र जगद्धात्री और सबको सब संपत्तियोंकी देनेवाली ॥ २४ ॥ इस घोर संसारसागरमें ज्योतिरूपका सदा भजन करता हूं हे मुने ! देवीका यह ध्यान है अब स्तुति सुनों ॥ २५ ॥ महादेवजी बोले हे जगन्माता चण्डिके ! हमारी रक्षा करो विपत्ति समूहको हरनेवाली और हर्ष मंगलकी करनेवाली हो ॥ २६ ॥ हर्ष मंगलदक्ष और हर्ष मंगलकी देनेवाली शुभ मंगलमें दक्ष शुभमंगल चंडिके ॥ २७ ॥ मंगला मंगलके योग्य सब मंगल की करनेवाली हे देवी ! सत्पुरुषोंको मंगल देनेवाली सबके मंगलका स्थान ॥ २८ ॥

मंगलवारमें पूज्य मंगलकी अभीष्ट देवता तथा मनुवंशमें हुए मंगल राजासे निरन्तर पूजित ॥ २९ ॥ हे देवी ! तुम मंगलकी अधिष्ठात्री देवी मंगलकी भी मंगलस्वरूपा इस मंगलाधार संसारमें मोक्षमंगल देनेवाली तुम हो॥ ३० ॥ मंगलधारकी सार सब कर्मोंकी पारगामिनी प्रतिमंगलवारमें पूज्य सवर्त्र जानेवाली बहुत सुखकी देनेवाली हो ॥ ३१ ॥ शिवजी इस स्तोत्रसे मंगलचंडिकाकी स्तुतिकरके और प्रतिमंगलावारमें पूजा देकर गये ॥ ३२ ॥ प्रथम सर्व मंगलका शंकरने पूजन किया दूसरीवार मंगल ग्रहने इसका पूजन किया ॥ ३३ ॥ तीसरीवार राजा मंगलने पूजन किया चौथीवार मंगलवारको सुन्दरियोंने पूजा की ॥ ३४ ॥ पांचवींवार मंगलाकांक्षी मनुष्योंने पूजा की फिर सब संसार और विश्वेशने पूजा की ॥ ३५ ॥ फिर यह परमेश्वरी सर्वत्र पूजित हुई हे मुने ! देवता

पूज्ये मङ्गलवारे च मङ्गलाभीष्टदेवते ॥ पूज्ये मङ्गलभूपस्य मनुवंशस्य संततम् ॥ २९ ॥ मङ्गलाधिष्ठातृ देवि मङ्गलानां च मङ्गले ॥ संसारमङ्गलाधारे मोक्षमङ्गलदायिनि ॥ ३० ॥ सारे च मङ्गलाधारे पारे च सर्वकर्मणाम् ॥ प्रतिमङ्गलवारे च पूज्ये मङ्गलसुखप्रदे ॥ ३१ ॥ स्तोत्रेणानेन शंभुश्च स्तुत्वा मङ्गलचंडिकाम् ॥ प्रतिमङ्गलवारे च पूजां दत्त्वा गतः शिवः ॥ ३२ ॥ प्रथमे पूजिता देवी शिवेन सर्वमङ्गला ॥ द्वितीये पूजिता सा च मङ्गलेन ग्रहेण च ॥ ३३ ॥ तृतीये पूजिता भद्रा मङ्गलेन नृपेण च ॥ चतुर्थे मङ्गले वारे सुन्दरीभिः प्रपूजिता ॥ ३४ ॥ पंचमे मङ्गलाकांक्षिनरैर्मंगलचंडिका ॥ पूजिता प्रतिविश्वेषु विश्वेशपूजिता सदा ॥ ३५ ॥ ततः सर्वत्र संपूज्या बभूव परमेश्वरी ॥ देवैश्च मुनिभिश्चैव मानवैर्मनुभिर्मुने ॥ ३६ ॥ देवाश्च मङ्गलस्तोत्रं यः शृणोति समाहिताः ॥ तन्मङ्गलं भवेत्तस्य न भवेत्तदमङ्गलम् ॥ वर्धते पुत्रपौत्रैश्च मङ्गलं च दिनेदिने ॥ ३७ ॥ नारायण उवाच ॥ उक्तं द्वयोरुपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् ॥ श्रूयतां मनसाख्यानं यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥ ३८ ॥ सा च कन्या भगवती कश्यपस्य च मानसी ॥ तेनैव मनसा देवी मानसा या च दिव्यति ॥ ३९ ॥ मनसा जायते या च परमात्मानमीश्वरम् तेन सा मनसा देवी तेन योगेन दीव्यति ॥ ४० ॥

मुनि मानव मनु इन्होंने पूजन किया ॥ ३६ ॥ जो कोई सावधान होकर इसदेवीकेमंगलस्तोत्रको सुनते हैं उसका मंगल ही होता है अमंगल नहीं होता पुत्र पौत्रयुक्त मंगल दिन दिन बढता है ॥ ३७ ॥ नारायण बोले हे नारद ! यथाशास्त्र दोनों देवियोंका उपाख्यान कहा अब धर्मके मुखसे सुना मनसाका आख्यान सुनो ॥ ३८ ॥ यह भगवती कश्यपकी मानसी कन्या है यह मनसे क्रीडा करनेकेही कारण मनसा देवी विख्यात है ॥ ३९ ॥ जो मनसा परमात्मा ईश्वरका ध्यान करती है वह मनसा देवी इसी कारण उस योगसे क्रीडा करती है ॥ ४० ॥

यह देवी आत्मारामा वैष्णवी सिद्धयोगिनी है इससे तीन युग पर्यंत परमात्मा कृष्णका तप किया ॥ ४१ ॥ पुराने वस्त्रके समान इसका शरीर क्षीण देखकर वा जरत्कारु मुनिके समान क्षीण शरीर देखकर श्रीकृष्णने इसका जरत्कारु नाम रक्खा ॥ ४२ ॥ और कृपानिधिने इसको मनवांछित वर देकर स्वयं इनकी पूजा की और कराई थी ॥ ४३ ॥ स्वर्ग नाग लोक पृथ्वी और ब्रह्मलोक तक पूजा हुई तथा गौरी सुन्दरी मनोहर ॥ ४४ ॥ जगत् गौरी नामोंसे उनसे पूजित हो विख्यात हुई और शिवकी शिष्या होनेसेही यह शैवी कहाती हैं ॥ ४५ ॥ और अत्यन्त विष्णुभक्त होनेसे यह वैष्णवी कहाती हैं जनमेजयके यज्ञमें इसीने नागोंके प्राणोंको रक्षा की थी ॥ ४६ ॥ इसीसे यह नागेश्वरी और नागभगिनी कहकर विख्यात है यह विषहरण करनेमें स्वतंत्र होनेसेवि षहरी

आत्मा रामा च सा देवी वैष्णवी सिद्धयोगिनी ॥ त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ४१ ॥ जरत्कारुशरीरं च दृष्ट्वा यत्क्षीणमी श्वरः ॥ गोपीपतिर्नाम चक्रे जरत्कारुरिति प्रभुः ॥ ४२ ॥ वांछितं च ददौ तस्यै कृपया च कृपानिधिः ॥ पूजां च कारयामास चकार च स्वयं प्रभुः ॥ ४३ ॥ स्वर्गे च नागलोके च पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः ॥ भृशं जगत्सुगौरी सा सुन्दरी च मनोहरा ॥ ४४ ॥ जद्गौरीति विख्याता तेन सा पूजिता सती ॥ शिवशिष्या च सा देवी तेन शैवी प्रकीर्तिता ॥ ४५ ॥ विष्णुभक्ताऽतीव शश्वद्वैष्णवी तेन कीर्तिता ॥ नागानां प्राणरक्षित्री यज्ञे पारीक्षितस्य च ॥ ४६ ॥ नागेश्वरीति विख्याता सा नागभगिनीति च ॥ विषं संहर्तुमीशा या तेन विषहरी स्मृता ॥ ४७ ॥ सिद्धयोगहरात्प्राप तेन सा सिद्धयोगिनी ॥ महाज्ञानं च योगं च मृतसंजीवना पराम् ॥ ४८ ॥ महाज्ञानयुतां तां च प्रवदंति मनीषिणः ॥ आस्तीकस्य मुनींद्रस्य माता सापि तपस्विनी ॥ ४९ ॥ आस्तीकमाता विज्ञता जगत्यां सुप्रतिष्ठता ॥ प्रियामुनेर्जरत्कारोर्मुनींद्रस्य महात्मनः ॥ ५० ॥ योगिनो विश्वपूज्यस्य जरत्कारुप्रिया ततः ॥ जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धि योगिनी ॥ ५१ ॥ वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी तथा ॥ जरत्कारुप्रियास्तीकमाता विषहरेतिच ॥ ५२ ॥

कहाती है ॥ ४७ ॥ शिवजीसे सिद्धयोग प्राप्त होनेसे यह सिद्धयोगिनी है यह महाज्ञान योगदायक मृतसंजीवनी परा विद्या है ॥ ४८ ॥ मनीषी इसी कारण इसको महाज्ञानवती कहते हैं यह तपस्विनी आस्तीक मुनि श्रेष्ठकी माता है॥ ४९ ॥ आस्तीककी माता होकर ही जगत्में प्रतिष्ठित है और महात्मा जरत्कारु मुनीन्द्रकी प्रिया है ॥ ५० ॥ इसीसे विश्वपूज्ययोगी जरत्कारुकी प्रिया कहाती है जरत्कारु जगद्गौरी मनसा सिद्ध योगिनी है ॥ ५१ ॥ वैष्णवी नाग भगिनी शैवी नागेश्वरी जरत्कारु प्रिया आस्तीकमाता विषहरा ॥ ५२ ॥

महाज्ञानयुता देवीविश्वपूजिता यह बारह नाम जो पूजाके समय पढते हैं ॥ ५३ ॥ उसको तथा उनके वंशवालोंको सर्पोंका भय नहीं होता नागभयसे, शयनमें नागग्रस्त मंदिरमें कहीं भय नहीं होता ॥ ५४ ॥ नागेशोभे महादुर्गे नागवेष्टित विग्रहवाली ऐसा यह स्तोत्र पढ़कर सर्प भयसे छूट जाता है ॥ ५५ ॥ जो इस स्तोत्रको पढ़ता है उसे देखकर सर्प समूह भाग जाते हैं दशलाख जपनेसे मनुष्योंको स्तोत्र सिद्धि हो जाती है ॥ ५६ ॥ जिसको स्तोत्रसिद्धि हो जाय वह विष भी खा सकता है और भय नहीं होता और नागोंके भूषण करके वह नागवाहन हो सकता है ॥ ५७ ॥ वह पुरुष नागोंके आसन नागोंकी शय्यापर स्थित होनेवाला महासिद्ध होता है अन्तमें विष्णुके साथ निरन्तर क्रीडा करता है ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां सप्तचत्वारिं

महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता ॥ द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले तु यः पठेत् ॥ ५३ ॥ तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च नागभीते च शयने नागग्रस्ते च मंदिरे ॥ ५४ ॥ नागशोभे महादुर्गे नागवेष्टितविग्रहे ॥ इदं स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ ५५ ॥ नित्यं पठेद्यस्तं दृष्ट्वा नागवर्गः पलायते ॥ दशलक्षजपेनैव स्तोत्र सिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ ५६ ॥ स्तोत्र सिद्धिर्भवेद्यस्य सविषं भोक्तुमीश्वरः ॥ नागैश्च भूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः ॥ ५७ ॥ नागासनो नागतल्पो महासिद्धो भवेन्नरः ॥ अंते च विष्णुना सार्धं क्रीडत्येव दिवानिशम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे नारदनारायण संवादे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ मत्तः पूजा विधानं च श्रूयतां मुनिपुंगव ॥ ध्यानं च सामवेदोक्तं प्रोक्तं देवीविधानकम् ॥ १ ॥ श्वेतचंपकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥ २ ॥ महाज्ञानयुतां तां च प्रवरज्ञानिनां वराम् ॥ सिद्धाधिष्ठातृदेवीं च सिद्धां सिद्धप्रदां भजे ॥ ३ ॥ इति ध्यात्वा च तां देवीं मूलेनैव प्रपूजयेत् ॥ नैवेद्यैर्विविधैर्धूपैः पुष्पगंधानुलेपनैः ॥ ४ ॥ मूलमंत्रैश्च वेदोक्तैर्भक्तानां वांछितप्रदः ॥ मुने कल्पतरुर्नाम सुसिद्धो द्वादशाक्षरः ॥ ५ ॥

शोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारदजी ! अब मुझसे पूजाका विधान सुनो और ध्यान विधानभी सामवेदोक्त कहता हूं ॥ १ ॥ श्वेतचंपकके समान वर्ण रत्नोंके भूषणोंसे भूषित, वह्नि शुद्ध शुकाधाना, नागोंका यज्ञोपवीत पहरे ॥ २ ॥ महाज्ञानयुता बडे २ ज्ञानियोंमें भी बड़ी सिद्धाधिष्ठातृ देवी सिद्धा सिद्धि देनेवालीका भजन करता हूं ॥ ३ ॥ इस प्रकार देवीका ध्यानकर मूलमंत्रसे पूजा करे नैवेद्य धूप पुष्प गंधानुलेपन ॥ ४ ॥ और वेदोक्त मूलमंत्र पढनेसे वह भक्तोंको मनवांछित फलको देनेवाली है हे मुने ! मंत्रको कल्पतरु कहते हैं यह बारह अक्षरका है ॥ ५ ॥

" ओंह्रींश्रींक्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहा " यह मंत्र है इसके पांच लाख जपसे सिद्धि होती है ॥ ६ ॥ जिसको इस मंत्रकी सिद्धि हो वही भूमिमें सिद्ध है इसको विषभी अमृतके समान होता है वह धन्वन्तारिके समान होता है ॥ ७ ॥ हे नारद ! स्नानकर एकान्त शालामें बैठ ईशानी देवीको आवाहन कर यत्नसे पूजन करे ॥ ८ ॥ जो पंचमीको मनमें ध्यान कर देवीको बलि देता है वह अवश्य धन पुत्र और कीर्तिमान् होता है ॥ ९ ॥ यह पूजा विधान कहा अब आख्यान सुनो हे महाभाग ! वह धर्मके मुखसे निर्गत हुआ कहता हूं ॥ १० ॥ पहले मनुष्य नागोंसे बहुत व्याकुल हुए थे तब सब कश्यपकी शरणमें गये थे ॥ ११ ॥ तब ब्रह्माके सहित कश्यपने मन्त्रोंको निर्माण किया वे वेदके बीजानुसार ब्रह्माके उपदेशसे विषहर मंत्र बने ॥ १२ ॥ और सब मन्त्रोंकी अधिष्ठात्री

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मानसादेव्या स्वाहेति कीर्तितः ॥ पंचलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ ६ ॥ मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स सिद्धो जगतीतले ॥ सुधासमं विषं तस्य धन्वंतरिसमो भवेत् ॥ ७ ॥ ब्रह्मन्स्नात्वा तु संक्रांत्यां गूढशालसु यत्नतः ॥ आवाह्य देवीमीशानां पूजयेद्योऽतिभक्तितः ॥ ८ ॥ पंचम्यां मनसा ध्यायन् देव्यै दद्याच्च यो बलिम् ॥ धनवान् पुत्रवांश्चैव कीर्तिमान्स भवेद्ध्रुवम् ॥ ९ ॥ पूजाविधानां कथितं तदाख्यानं निशामय ॥ कथयामि महाभाग कच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥ १० ॥ पुरा नागभयाक्रांता बभूवुर्मानवा भुवि गतास्ते शरणं सर्वे कश्यपं मुनिपुंगवम् ॥ ११ ॥ मन्त्रांश्च ससृजे भीतः कश्यपो ब्रह्मणान्वितः ॥ वेद बीजानुसारेण चोपदेशेन ब्रह्मणः ॥ १२ ॥ मन्त्राधिष्ठातृदेवीं तां मनसा ससृजे तथा ॥ तपसा मनसा तेन बभूव मनसा च सा ॥ १३ ॥ कुमारी सा च संभूता जगाम शंकरालयम् ॥ भक्त्या संपूज्य कैलासे तुष्टाव चंद्रशेखरम् ॥ १४ ॥ दिव्यवर्षसहस्रं तं सिषेवे च मुनेः सुता ॥ आशुतोषो महेशश्च तां च तुष्टो बभूव ह ॥ १५ ॥ महाज्ञानं ददौ तस्यै पाठयामास साम च ॥ कृष्णमंत्रं कल्पतरुं ददावष्टाक्षरं मुने ॥ १६ ॥ लक्ष्मी मायाकामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं ततः ॥ त्रैलोक्यमंगलं नाम कवचं पूजनक्रमम् ॥ १७ ॥

देवीको मनसे सृजन किया वह तप और मनसे प्रगट होनेके कारण मनसा नामवाली हुई ॥ १३ ॥ वह कुमारी शंकरके स्थानको गई और कैलासमें जाय भक्तिसे पूजन कर शंकरको संतुष्ट किया ॥ १४ ॥ उस कन्याने शिवजीको दिव्य सहस्र वर्ष तक सेवन किया तब आशुतोष शिवजी उसपर प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥ उसको महाज्ञान देकर सामवेद पढाया और आठ अक्षरका कल्पतरु नामक कृष्ण मन्त्र उसको दिया ॥ १६ ॥ लक्ष्मी माया कामबीज चतुर्थी विभक्तियुक्त कृष्णका मन्त्र दिया और त्रैलोक्य मंगल नामक कवच और पूजन क्रम बताये ॥ १७ ॥

और वेदोक्त सर्वसम्मत पुरश्चरण कहा इस प्रकार वह मुनिसुता सती शिवजीसे मंत्रोंको प्राप्त होकर ॥ १८ ॥ शंकरकी आज्ञासे वह साध्वी पुष्करमें तप करनेको चली गई वहां परमात्मा कृष्णका तीन युगपर्यंत आराधना करके ॥ १९ ॥ सिद्ध हुई और कृष्णका दर्शन पाया उस कृशांगीबालाको देखकर कृपापूर्वक कृपानिधिने ॥ २० ॥ उसकी पूजा स्वयं की और दूसरोंसे कराई और उसको वर दिया कि तुम संसारमें पूजित होगी ॥ २१ ॥ इस प्रकार उस कल्याणीको वर दे भगवान् अन्तर्द्धान हुए प्रथम परमात्मा कृष्णने उसका पूजन किया ॥ २२ ॥ फिर शंकर कश्यप मुनि मनु नाग मनुष्योंने पूजन किया ॥ २३ ॥ इस प्रकार वह सुव्रता त्रिलोकीमें पूजित हुई कश्यपजीने प्रथम उसको जरत्कारु मुनीन्द्रको दिया था ॥ २४ ॥ मुनिश्रेष्ठकी इच्छा न थी परंतु ब्रह्माकी

पुरश्चर्याक्रमं चाऽपि वेदोक्तं सर्वसंमतम् ॥ प्राप्य मृत्युंजयान्मंत्रं सा सती च मुनेः सुता ॥ १८ ॥ जगाम तपसे साध्वी पुष्करं शंकराज्ञया ॥ त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ १९ ॥ सिद्धा बभूव सा देवी ददर्श पुरतः प्रभुम् ॥ दृष्ट्वा कृशांगीं बालां च कृपया च कृपानिधिः ॥ २० ॥ पूजां च कारयामास चकार च स्वयं हरिः ॥ वरं च प्रददौ तस्यै पूजिता त्वं भवे भव ॥ २१ ॥ वरं त्त्वा च कल्याण्यै ततश्चांतर्दधे हरिः ॥ प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना ॥ २२ ॥ द्वितीये शंकरेणैव कश्यपेन सुरेण च ॥ मुनिना मनुना चैव नागेन मानवादिभिः ॥ २३ ॥ बभूव पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु सुव्रता ॥ जरत्कारुमुनींद्राय कश्यपस्तां ददौ पुरा ॥ २४ ॥ अयाचितो मुनिश्रेष्ठो जग्राह ब्राह्मणाज्ञया ॥ कृत्वोद्वाहं महायोगी विश्रांतस्तपसा चिरम् ॥ २५ ॥ सुष्वाप देव्या जघने वटमूले च पुष्करे निद्रां जगाम स मुनिः स्मृत्वा निद्रेशमीश्वरम् ॥ २६ ॥ जगामस्तं दिनकरः सायंकाल उपस्थिते ॥ संचिंत्य मनसा सध्वी मनसा सा पतिव्रता ॥ २७ ॥ धर्मलोपभयेनैव चकारलोचनं सती ॥ अकृत्वा पश्चिमां संध्यां नित्यां चैव द्विजन्मनाम् ॥ २८ ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं लभिष्यति पतिर्मम ॥ नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ॥ ॥ २९ ॥

आज्ञासे उसको ग्रहण किया वह महायोगी उससे विवाह कर तपसे थकित हो ॥ २५ ॥ पुष्कर क्षेत्रवटके मूलमें देवीकी जंघापर शिर धरकर सो गये अर्थात् निद्रेश ईश्वरको स्मरण कर सोये ॥ २६ ॥ जब सन्ध्या समय सूर्य अस्त होने लगे तब पतिव्रता मनसाने विचार किया ॥ २७ ॥ अर्थात् सन्ध्याके धर्म लोप भयसे विचारने लगी ब्राह्मण नित्यकी पश्चिम सन्ध्या न करके ॥ २८ ॥ ब्रह्महत्यादि पापको प्राप्त होते हैं सो मेरे पतिको यह प्रायश्चित्त लगेगा जो पूर्व और पश्चिमकी संध्या नहीं करते ॥ २९ ॥

वह सर्वत्र नित्य अशुचि होता है उसे ब्रह्महत्यादि पाप लगते हैं यह वेदोक्त वार्ता विचारकर सुन्दरीने अपने पतिको जगाया ॥ ३० ॥ हे मुने ! वह मुनि जागतेही उसपर बड़े कुपति हुए मुनि बोले हे साध्वी ! तुमने सुखपूर्वक सोते मेरी निद्राभंग क्यों की ॥३१॥ जो स्वामीका अपकार करती है उसके व्रतादि सब व्यर्थ हो जाते हैं तप अनशन व्रत दान जो कुछ भी हो ॥ ३२ ॥ स्वामीकी अप्रिय करने वालीका सब वृथा हो जाता है जिसने स्वामीका पूजन किया उसने श्रीकृष्णका पूजन किया ॥ ३३ ॥ पतिव्रताके व्रतके निमित्त पतिही स्वयं नारायण हे सब दान सब यज्ञ तीर्थोंका सेवन ॥ ३४ ॥ सब व्रत तप सब उपवासादि सब सत्य धर्म और सब देवपूजन ॥ ३५ ॥ यह सब स्वामीसेवाकी सोलहवीं कला भी नहीं है जो पवित्र भारतवर्षमें पतिकी सेवा करती है ॥ ३६ ॥

स सर्वत्राऽशुचिर्नित्यं ब्रह्महत्यादिकं लभेत् ॥ वेदोक्तमिति संचिन्त्य बोधयामास सुन्दरी ॥ ३० ॥ स च बुद्धो मुनिश्रेष्ठस्तां चुकोप भृशं मुने ॥ मुनिरुवाच ॥ कथं मे सुखिनः साध्वि निद्राभंगः कृतस्त्वया ॥ ३१ ॥ व्यर्थं व्रतादिकं तस्या या भर्तुश्चाऽपकारिणी ॥ तपश्चाऽनशनं चैव व्रतं दानादिकं च यत् ॥ ३२ ॥ भर्तुरप्रियकारिण्याः सर्वं भवति निष्फलम् ॥ यया प्रियः पूजितश्च श्रीकृष्णः पूजितस्तया ॥३३॥ पतिव्रताव्रतार्थं च पतिरूपो हरिः स्वयम् ॥ सर्वदानं सर्वयज्ञः सर्वतीर्थनिषेवणम् ॥ ३४ ॥ सर्वं व्रतं तपः सर्वमुपवासादिकं च यत् सर्वधर्मश्च सत्यं च सर्वदेवप्रपूजनम् ॥ ३५ ॥ तत्सर्वं स्वामिसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥ पुण्ये च भारते वर्षे पतिसेवां करोति या ॥ ३६ ॥ वैकुंठे स्वामिना सार्धं सा याति ब्रह्मणः पदम् ॥ विप्रियं कुरुते भर्तुर्विप्रियं वदति प्रियम् ॥ ३७ ॥ असत्कुले प्रसूता हि तत्फलं श्रूयतां सति ॥ कुम्भीपाकं व्रजेत्सा च यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ ३८ ॥ ततो भवति चांडाली पतिपुत्रविवर्जिता ॥ इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो बभूव स्फुरिताधरः ॥३९॥ चकंपे तेन सा साध्वी भयेनोवाच तं पतिम् ॥ साध्व्युवाच ॥ संध्यालोपभयेनैव निद्राभंगः कृतस्तव ॥ ४० ॥ कुरु शांतिं महाभाग दुष्टाया मम सुव्रत ॥ शृंगारहारनिद्राणां यश्च भंगं करोति वै ॥ ४१ ॥

वह स्वामीके सहित वैकुण्ठमें ब्रह्मपदको प्राप्त होती है जो स्वामीका अप्रिय कहती और उनको अप्रिय वचन बोलती है ॥ ३७ ॥ वह असत्कुलकी उत्पन्न हुई जानती उसका फल सुनो वह चन्द्र सूर्यकी स्थितिपर्यन्त कुम्भीपाकमें पड़ती है ॥ ३८ ॥ फिर पतिपुत्रसे वर्जित चांडाली होती है यह कहते २ मुनि श्रेष्ठके होठ फडक उठे ॥ ३९ ॥ तब वह साध्वी भयसे कंपितहो मुनिश्रेष्ठसे बोली साध्वीने कहा स्वामिन् संध्याविधिके लोप होनेके भयसे ही आपको जगाया था ॥ ४० ॥ हे महाभाग मुझ दुष्टाकी शांति करो शृंगार आहार निद्राको जो भंग करता है ॥ ४१ ॥

वह चन्द्र सूर्यकी स्थितिपर्यन्त कालसूत्र नरकमें पडता है मनसा देवी यह कहकर स्वामीके चरणकमलमें ॥ ४२ ॥ भयभीत हो गिरपड़ी और वारंवार रुदन करने लगी तब क्रोधकर मुनि सूर्यको शाप देनेको उद्यत हुए ॥ ४३ ॥ उस स्थानमें भगवान् संध्याके सहित वहां आये हे नारद ! उस समय मुनिसे स्वयं भास्कर कहने लगे ॥ ४४ ॥ और विनय तथा भीतसे यथोचित वचन कहने लगे भास्कर बोले सूर्यास्तका समय देखकर इस साध्वीने धर्मके भयसे ॥ ४५ ॥ हे विप्र इस कारण तुमको जगाया अब मैं तुम्हारी शरण हुआ हूं हे ब्रह्मन् मुझे क्षमा कीजिये मुझे शाप मत दीजिये ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणोंका हृदय मक्खनके समान कोमल होता है इनका क्रोध क्षणार्ध होता है नहीं तो जगत् भस्म होजाय ॥ ४७ ॥ और फिर भी जगत्के निर्माण करनेमें समर्थ हो सकते हैं

स व्रजेत्कालसूत्रं वै यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ इत्युक्त्वा मनसा देवी स्वामिनश्चरणांबुजे ॥ ४२ ॥ पपात भक्त्यां भीता च रुरोद च पुनः पुनः ॥ कुपितं च मुनिं दृष्ट्वा श्रीसूर्यं शप्तुमुद्यतम् ॥ ४३ ॥ तत्राजगाम भागवान्संध्याया सह नारद ॥ तत्रागत्य मुनिंसम्युवाच भास्करः स्वयम् ॥ ४४ ॥ विनयेन च भीतश्च तया सह यथोचितम् ॥ भास्कर उवाच ॥ सूर्यास्तसमयं दृष्ट्वा साध्वी धर्मभयेन च ॥ ४५ ॥ बोधयामास त्वां विप्र शरणं त्वामहं गतः ॥ क्षमस्व भगवन्ब्रह्मन्मां शप्तुं नोचितं मुने ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणानां च हृदयं नवनीतसमं सदा ॥ तेषां क्षणार्धं क्रोधश्च यतो भस्म भवेज्जगत् ॥ ४७ ॥ पुनः स्रष्टुं द्विजः शक्तो न तेजस्वी द्विजात्परः ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मणो वंशः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥ ४८ ॥ श्रीकृष्णं भावयेन्नित्यं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा द्विजस्तुष्टो बभूव ह ॥ ४९ ॥ सूर्यो जगाम स्वथानं गृहीत्वा ब्राह्मणाशिषम् तत्याज मानसां विप्रः प्रतिज्ञापालनाय च ॥ ५० ॥ रुदतीं शोकसंयुक्तां हृदयेन विदूयता ॥ सा सस्मार गुरुं शंभुमिष्टदेवं विधिं हरिम् ॥ ५१ ॥ कश्यपं जन्मदातारं विपत्तौ भयकर्शिता ॥ तत्राजगाम गोपीशो भगवाञ्छंभुरेव च ॥ ५२ ॥

ब्राह्मणसे अधिक कोई तेजस्वी नहीं है ब्राह्मण ब्रह्माके वंशमें होनेसे तेजसे अधिक प्रज्वलित होता हैं ॥ ४८ ॥ सनातन ब्रह्मज्योति कृष्णकी नित्य भावना करे सूर्यके वचन सुन ब्राह्मण जरत्कारु संतुष्ट हुए ॥ ४९ ॥ और ब्राह्मणका आशीर्वाद ले सूर्य अपने स्थानको गये और ब्राह्मणने अपनी प्रतिज्ञा पालनके निमित्त मनसाको त्याग दिया ॥ ५० ॥ उसको शोकसे रोता देख यह भी दुःखी हुए उस समय मनसाने अपने गुरु शंकर इष्टदेवको विधाता हरिका स्मरण किया ॥ ५१ ॥ तथा इस विपत्तिमें जन्म दाता कश्यपका स्मरण किया तब उस स्थानमें गोपीश्वर. शम्भु ॥ ५२ ॥

ब्रह्मा और कश्यप मनसाके विचार करतेही आ गये जब ब्राह्मणने निर्गुण प्रकृतिसे परे अपने इष्टदेवको देखा ॥५३॥ तब परम भक्तिसे स्तुतिकर बारम्बार प्रणाम करने लगे तथा शिव ब्रह्मा और कश्यपको प्रणाम किया है ॥ ५४ ॥ हे देवताओ ! तुम कैसे आये यह प्रश्न भी किया ब्रह्माजी उनके यह वचन सुनकर सहसा समयानुसार ॥ ५५ ॥ हृषीकेशके चरणकमलको प्रणाम कर बोले यदि तुमने अपनी धर्मपत्नी सती मनसाको त्यागन किया है तो ॥ ५६ ॥ अपने धर्म पालन करनेके निमित्त इसको एक पुत्र दीजिये हे मुने ! जायामें पुत्रोत्पत्ति करके पश्चात् त्याग दो ॥ ५७ ॥ जो विरागी विना पुत्रोत्पत्ति किये अपनी प्रियाको त्यागता है उसका पुण्य चलनीके जलके समान निर्गत हो जाता है ॥ ५८ ॥ जरत्कारु मुनीश्वर इस प्रकार ब्रह्माजीका वचन सुन योगसे मंत्र

विधिश्च कश्यपश्चैव मनसा परिचिंतितः दृष्ट्वा विप्रोऽभीष्टदेवं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥५३॥ तुष्टाव परया भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥ नमश्चकार शंभुं च ब्रह्माणं कश्यपं तथा ॥ ५४ ॥ कथमागमनं देवा इति प्रश्नं चकार सः ॥ ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा सहसा समयोचितम् ॥ ५५ ॥ प्रत्युवाच नमस्कृत्य हृषीकेशपदांबुजम् ॥ यदि त्यक्ता धर्मपत्नी धर्मिष्ठा मनसा सती ॥ ५६ ॥ कुरुष्वास्यां सुतोत्पत्तिं स्वधर्म पालनाय वै जायायां च सुतोत्पत्तिं कृत्वा पश्चात्त्यजेन्मुने ॥ ५७ ॥ अकृत्वा तु सुतोत्पत्तिं विरागी यस्त्यजेत्प्रियाम् ॥ स्रवते तस्य पुण्यं च चालन्यां च यथाजलम् ॥ ५८ ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा जरत्कारुर्मुनीश्वरः ॥ चकार नाभिसंस्पर्शयोगेन मंत्रपूर्वकम् ॥ ५९ ॥ मानसा या मुनिश्रेष्ठ मुनिश्रेष्ठ उवाच ताम् जरत्कारुरुवाच ॥ गर्भेणानेन मनसे तव पुत्रो भविष्यति ॥ ६० ॥ जितेंद्रियाणां प्रवरो धार्मिको ब्राह्मणाग्रणीः ॥ तेजस्वी च तपस्वी च यशस्वी च गुणान्वितः ॥ ६१ ॥ वरो वेदविदां चैव ज्ञानिनां योगिनां तथा ॥ शतपुत्रो विष्णुभक्तो धार्मिकः कुलमुद्धरेत् ॥ ६२ ॥ नृत्यन्ति पितरः सर्वे जन्ममात्रेण वै मुदा ॥ पतिव्रता सुशीला या सा प्रियप्रियवादिनी ॥ ६३ ॥ धर्मिष्ठा पुत्रमाता च कुलस्त्री कुलपालिता ॥ हरिभक्तिप्रदो बंधुर्नचाभीष्टसुखप्रदः ॥ ६४ ॥

पूर्वक उसकी नाभिस्पर्श करते हुए ॥ ५९ ॥ मनसे यह करके मुनिश्रेष्ठने मनसासे कहा जरत्कारु बोले हे मनसे ! इस गर्भसे तुम्हारे पुत्र होगा ॥ ६० ॥ जितन्द्रियोंमें प्रवर धर्मात्मा ब्राह्मणोंमें अग्रणी होगा तेजस्वी तपस्वी यशस्वी गुणान्वित ॥ ६१ ॥ वेदवित् ज्ञानी और योगियोंमें श्रेष्ठ वह पुत्र धर्मात्मा विष्णुभक्त कुलका उद्धार करेगा ॥ ६२ ॥ ऐसे पुत्रके जन्ममात्रसे प्रसन्न हो पितर नृत्य करते हैं पतिव्रता सुशीला स्वामीसे प्रिय बोलनेवाली ॥ ६३ ॥ धर्मिष्ठा पुत्रकी माता कुलकी स्त्री कुलपालिका है जो बंधु हरिकी भक्ति देवही बंधु है, केवल अभीष्ट सुखप्रद बंधु नहीं होता ॥ ६४ ॥

हरिमार्गको दिखानेवाला बंधुही पिता है वही माता यथार्थमें गर्भ धारिणी है जो गर्भका रहना छुडा दे ॥ ६५ ॥ यमका भय छुडानेवाली दयाही भगिनी है विष्णुकामंत्र और भक्तिका देनेवाला गुरु होता है ॥ ६६ ॥ ज्ञानदाता गुरु वही है जिस ज्ञानमें कृष्णकी भावना होती है ब्रह्मासे स्तंवपर्यन्त जिससे चरा चर विश्व होता है ॥ ६७ ॥ आविर्भाव और तिरोभाव होता है उसके जाननेसे अधिक और क्या ज्ञान होगा ॥ ६८ ॥ यही तत्वोंका सारभूत है हरिसे अन्य वस्तु विडम्बना मात्र है मैंने तुझकोज्ञान दिया है ज्ञानदाता ही यथार्थ स्वामी है ॥ ६९ ॥ ज्ञानसे ही बंधसे छूटता है जो बंधनमें डाले वहशत्रु है जो गुरु विष्णु भक्तियुक्त ज्ञानको नहीं देता ॥ ७० ॥ वह शत्रु शिष्य घातीं है कारण कि वह बंधनसे मुक्त नहीं करता जननीके गर्भस्थितिके क्लेश और यमया

यो बंधुश्चेत्स च पिता हरिवर्त्मप्रदर्शकः ॥ सा गर्भधारिणी या च गर्भवासविमोचनी ॥६५॥ दयारूपा च भगिनी यमभीतिविमोचनीं ॥ विष्णुमन्त्रप्रदाता च स गुरुर्विष्णुभक्तिदः ॥ ६६ ॥ गुरुश्च ज्ञानदो यो हि यज्ज्ञानं कृष्णभावनम् ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतं यतो विश्वं चरा चरम् ॥ ६७ ॥ आविर्भूतं तिरोभूतं किंवा ज्ञानं तदन्यतः ॥ वेदजं यज्ञजं यद्यत्तत्सारं हरिसेवनम् ॥ ६८ ॥ तत्त्वानां सारभूतं च हरेरन्य द्विडंबनम् ॥ दत्तं ज्ञानं मया तुभ्यं स स्वामी ज्ञानदो हि यः ॥ ६९ ॥ ज्ञानात्प्रमुच्यते बन्धात्स रिपुर्यो हि बंधदः ॥ विष्णुभक्तियुतं ज्ञानं नो ददाति हि यो गुरुः ॥ ७० ॥ स रिपुः शिष्यघाती च यतो बन्धान्न मोचयत् ॥ जननीं गर्भजक्लेशाद्यमयातनया तथा ॥ ७१ ॥ न मोचयेद्यः स कथं गुरुस्तातो हि बांधवः ॥ परमानंदरूपं च कृष्णमार्गमनश्वरम् ॥ ७२ ॥ न दर्शयेद्यः सततं कीदृशो बांधवो नृणाम् ॥ भज साध्वि परं ब्रह्माच्युतं कृष्णं च निर्गुणम् ॥ ७३ ॥ निर्मूलं च भवेत्पुंसां कर्म वै तस्य सेवया ॥ मयाच्छलेन त्वं त्यक्ता क्षमस्वैतन्मम प्रिये ॥ ७४ ॥ क्षमायुतानां साध्वीनां सत्त्वात्क्रोधो न विद्यते पुष्करे तपसे यामि गच्छ देवि यथासुखम् ॥ ७५ ॥

तनासे ॥ ७१ ॥ जो मुक्त नहीं करता वह कैसा गुरु पिता वा बंधु है परमानन्द रूप अविनाशी कृष्णका मार्ग है ॥ ७२ ॥ जो इसको निरंतर नही दिखाता वह कैसा बंधु है हे साध्वि ! अच्युत निर्गुण परब्रह्मका भजन करो ॥ ७३ ॥ इनकी सेवासे पुरुष कर्म बंधनसे छूटता है मैंने इसी निमित्तसे तुमको त्यागा है सो क्षमा करना " विवाहके समय प्रतिज्ञा की थी यदि यह मेरी आज्ञा न पालन करेगी तो त्याग दूंगा" ॥ ७४ ॥ क्षमायुक्त साध्वी स्त्रियोंको सत्व गुण अधिक होनेसे क्रोध नहीं होता हे देवि ! अब मैं पुष्करमें तप करने जाता हूँ तुम यथा सुख गमन करो ॥ ७५ ॥

निस्पृही पुरुषोंके मनोरथ श्रीकृष्णके चरण कमलमेंही होते हैं जरत्कारुके वचन सुन मनसा बड़ी शोकित हुई ॥ ७६ ॥ आंखोंमें आंसू भर अपने प्राणवल्लभसे बोली मनसा बोली हे प्रभो ! आपकी निद्राभंग होनेसे मेरे त्यागनेमें आपका दोष नहीं है ॥ ७७ ॥ पर जहां मैं आपको स्मरण करूं वहां तुम आना बंधुका भेद महाक्लेशदायक है और इसके उपरांत पुत्रका भेद क्लेशकर है ॥ ७८ ॥ पर स्वामीका वियोग प्राणविच्छेदसे भी दुस्तर है पतिव्रताओंको पति सौ पुत्रोंसे अधिक प्रिय होता है ॥ ७९ ॥ सबसे अधिक प्रिय होनेसेही स्त्री पतिको प्रिय कहती है एक पुत्रवालीका जैसे पुत्रमें वैष्णवोंका जैसे हरिमें ॥ ८० ॥ एक नेत्रवालोंका जैसे नेत्रोंमें प्यासोंका जैसे जलमें भूखोंका अन्नमें और कामियोंका मैथुनमें ॥ ८१ ॥ चोरोंका पराये धनमें कुलटाओंका जारमें पण्डितोंका

श्रीकृष्णचरणांभोजे निस्पृहाणां मनोरथाः ॥ जरत्कारुवचः श्रुत्वा मनसा शोककातरा ॥ ७६ ॥ साश्रुनेत्रा च विनयादुवाच प्राणवल्लभम् ॥ मनसोवाच ॥ दोषो नास्त्येव मे त्यक्तुं निद्राभंगेन ते प्रभो ॥ ७७ ॥ यत्र स्मरामि त्वां नित्यं तत्र मामागमिष्यसि ॥ बंधुभेदः क्लेशतमः पुत्रभेदस्ततः परम् ॥ ७८ ॥ प्राणेशभेदः प्राणानां विच्छेदात्सर्वतः परः ॥ पतिः पतिव्रतानां तु शतपुत्राधिकं प्रियः ॥ ७९ ॥ सर्वस्मात्तु प्रियः स्त्रीणां प्रिय स्तेनो च्यते बुधैः ॥ पुत्रे यथैकपुत्राणां वैष्णवानां यथा हरौ ॥ ८० ॥ नेत्रे यथैकनेत्राणां तृषितानां कथाजले ॥ क्षुधितानां यथाऽन्ने च कामुकानां च मैथुने ॥ ८१ ॥ यथा परस्वे चौराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥ विदुषां च यथाशास्त्रे वाणिज्ये वणिजां यथा ॥ ८२ ॥ तथा शश्वन्मनः कान्ते साध्वीनां योषितां प्रभो ॥ इत्युक्त्वा मनसा देवी पपात स्वामिनः पदे ॥ ८३ ॥ क्षणं चकार क्रोडे तां कृपया च कृपानिधिः ॥ नेत्रोदकेन मनसां स्नापयामास तां मुनिः ॥ ८४ ॥ साश्रुनेत्रा मुनेः क्रोडं सिषेच भेदकातरा ॥ तदा ज्ञानेन तौ द्वौ च विशोकौ सम्बभूवतुः ॥ ८५ ॥ स्मारं स्मारं पदांभोजं कृष्णस्य परमात्मनः ॥ जगाम तपसे विप्र स्वकान्तां संप्रबोध्य च ॥ ८६ ॥

शास्त्रमें वनियोंका व्यापारमें ॥ ८२ ॥ जैसे मन होता है इसी प्रकार साध्वी स्त्रियोंका स्वामीमें मन होता है यह कहकर मनसा देवी स्वामीके चरणोंमें गिरी ॥ ८३ ॥ तब वह कृपानिधि क्षणमात्रको प्रियाको गोदमें लेते हुए और मुनिके नेत्रोंके जलसे मनसा भीजगई ॥ ८४ ॥ और वियोगके कारण नेत्रोंके जलसे स्वामीकी गोदी मनसाने भिजोदी तब दोनों ज्ञान अवलम्बन कर शोकरहित हुए ॥ ८५ ॥ वारवार परमात्मा कृष्णके चरणकमलका स्मरण कर अपनी प्रियाको समझाय ब्राह्मण तप करने गये ॥ ८६ ॥

और मनसा शिवजीके स्थान कैलास मंदिरको गई और शोकसे व्याकुल मनसाको पार्वतीने समझाया ॥ ८७ ॥ और शिवके अतिशय ज्ञान दानके कारण शिवालयमें स्थित वह साध्वी अच्छे दिन मंगल मुहूर्तमें ॥ ८८ ॥ नारायणके अंश योगी और ज्ञानियोंके गुरु पुत्रको उत्पन्न करती हुई शिवजीके मुखसे गर्भमेंही वह ज्ञान सुनकर ॥ ८९ ॥ योगीन्द्र योगी और ज्ञानियोंका गुरु हुआ तब मंगल वाचनकर उसके जात कर्म कराये ॥ ९० ॥ शिवजीने स्वयं उस बालकके कल्याणके निमित वेदपाठ करवाया और मणि रत्नकिरीटादि ब्राह्मणोंको दिया ॥ ९१ पार्वतीने लाख गौ और रत्न दिये शिवजीने चारों वेद और वेदांग ॥ ९२ ॥ मृत्युंजयके सहित ज्ञानपूर्वक बालकको पढाये और देवगुरुकी अधिक भक्ति उसकी माताके थी॥ ९३ ॥ इस कारण उसके बालकका

जगाम मनसा शंभोः कैलासं मंदिरं गुरोः ॥ पार्वतीं बोधयामास मनसां शोककर्शिताम् ॥ ८७ ॥ शिवश्चातीव ज्ञानेन शिवेन च शिवालयः ॥ सुप्रशस्ते दिने साध्वी सुषुवे मंगलक्षणे ॥ ८८ ॥ नारायणांशं पुत्रं तं योगिनां ज्ञानिनां गुरुम् ॥ गर्भस्थितो महाज्ञानं श्रुत्वा शंकरवक्रतः ॥८९॥ संस्बभूव च योगींद्रो योगिनां ज्ञानिनां गुरुः जातकं कारयामास वाचयामास मंगलम् ॥९०॥ वेदांश्च पाठया मास शिवाय शिवः शिशोः ॥ मणिरत्न किरीटांश्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ शिवः ॥ ९१ ॥ पार्वती च गवां लक्षं रत्नानि विविधानि च ॥ शंभुश्च चतुरो वेदान्वेदांगातितरांस्तथा ॥ ९२ ॥ ॥ बाललं पाठयामास ज्ञानं मृत्युंजयं परम् ॥ भक्तिरस्त्यधिका कान्तेऽभीष्टदेवे गुरौ तथा ॥ ९३ ॥ यस्यास्तेन च तत्पुत्रो बभूवाऽऽस्तीक एव च ॥ जगाम तपसे विष्णोः पुष्करं शंकराज्ञया ॥ ९४ ॥ संप्राप्य च महामंत्रं ततश्च परमात्मनः ॥ दिव्यं वर्षत्रिलक्षं च तपस्तप्त्वा तपोधनः॥९५॥आजगाम महायोगी नमस्कर्तुं शिवं प्रभुम् ॥ शंकरं च नमस्कृत्य स्थित्वा तत्रैव बालकः॥९६॥सा चाऽऽजगाम मनसा कश्यपस्याऽऽश्रमं पितुः॥तां सपुत्रां सुतां दृष्ट्वा मुदं प्राप प्रजापतिः ॥९७॥ शतलक्षं च रत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुने ॥ ब्राह्मणान्भोजयामास सोऽसंख्यान् श्रेयसे शिशोः ॥ ९८ ॥

नाम आस्तीक रक्खा तब वह शिवजीकी आज्ञासे पुष्करमें तप करनेको गया ॥ ९४ ॥ वहां परमात्माके महामंत्रको जो शिव जी ने दिया था जपते जपते उस तपस्वीने दिव्य तीन लाख वर्षतक तप किया ॥ ९५ ॥ तब फिर वह महायोगी शिवके नमस्कार करनेको आये और शिवजीको प्रणामकर वह कुमार वहां स्थित हुए ॥ ९६ ॥ और तब मनसा अपने पुत्रसहित पिता कश्यपके आश्रममें गई महर्षिने सुपुत्रा अपनी कन्याको देखकर बड़ा आनंदमान ॥ ९७ ॥ उस समय उन्होंने ब्राह्मणोंको सौलाख रत्न दिये और बालकके कल्याणार्थ असंख्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया ॥ ९८ ॥

हे परंतप ! उस समय अदिति और दिति सबको आनंद हुआ तब वह सुपुत्रा चिरकाल तक पिताके ॥ ९९ ॥ आश्रममें रही मैं उसका आख्यान कहता हूं सुनो उसी समय अभिमन्युतनय परीक्षितको ब्राह्मणका शाप हुआ था ॥ १०० ॥ हे नारद! देव दोष कर्मसेही हुआ कि एक सप्ताहमें तक्षक तुझको काटेगा ॥ १ ॥ यह शृंगी ऋषिने कौशिकीका जल हाथमें लेकर शाप दिया राजा यह सुनकर ऐसे स्थानमें स्थित हुए जहाँ स्वच्छन्द पवन भी नहीं जा सकता ॥ २॥ वह सात दिन देहकी रक्षामें तत्पर होकर रहा, सप्ताह बीतनेपर मार्गमें जाते तक्षकको ॥ ३ ॥ राजाके पास धनकी इच्छासे गमन करते धन्वन्तारि मिले वहां उन दोनोंका परस्पर प्रेमपूर्वक संवाद हुआ ॥ ४ ॥ तब तक्षकने स्वेच्छासे धन्वन्तारिको मणि दी वह उसे ले सन्तुष्ट मनसे गये ॥ ५ ॥ तक्षकने मंचपर स्थित राजाको

अदितिश्च दितिश्चान्या मुदं प्राप परंतप॥सा सपुत्रा च सुचिरं तस्थौ तातालये सदा ॥९९॥ तदीयं पुनराख्यानं वक्ष्यामि तन्निशामय ॥ अथाभि मन्युतनये ब्रह्मशापः परीक्षिते ॥ १०० ॥ बभूव सहसा ब्रह्मन् दैवदोषेण कर्मणा ॥ सप्ताहे समतीते तु तक्षकस्त्वां च धक्ष्यति ॥ १०१ ॥ शशाप शृंगी तत्रैव कौशिक्याश्च जलेन वै ॥ राजा श्रुत्वा तत्प्रवृत्तिं निर्वातस्थानमागतः ॥ २ ॥ तत्र तस्थौ च सप्ताहं देह रक्षणतत्परः ॥ सप्ताहे समतीते तु गच्छंतं तक्षकं पथि॥३॥धन्वंतरिर्नृपं भोक्तुं ददर्श गामुकः पथि॥तयोर्बभूव संवादः सुप्रीतिश्च परस्परम् ॥४॥धन्वंतरिर्मणिं प्राप तक्षकः स्वेच्छया ददौ ॥ स ययौ तं गृहीत्वा तु संतुष्टो हृष्टमानसः ॥ ५ ॥ तक्षको भक्षयामास नृपं तं मंचके स्थितम् ॥ राज जगाम तस्सा देहं त्यक्त्वा परत्र च ॥ ६ ॥ संस्कारं कारयामास पितुर्वै जनमेजयः ॥ राजा चकार यज्ञं च सर्पसत्रं ततो मुने ॥ ७ ॥ प्राणांस्तत्याज सर्पाणां समूहो ब्रह्मतेजसा ॥ स तक्षको वै भीतस्तु महेन्द्रं शरणं ययौ ॥ ८ ॥ सेंद्रं च तक्षकं हंतु विप्रवर्गः समुद्यतः ॥ अथ देवाश्च सेंद्राश्च संजग्मुर्मनसान्तिकम् ॥ ९ ॥ तां तुष्टाव महेंद्रश्च भयकातरविह्वलः ॥ तत आस्तीक आगत्य यज्ञं च मातुराज्ञया ॥ ११० ॥ महेंद्रतक्षकप्राणान्ययाचे मूमिपं परम् ॥ ददौ वरं नृपश्रेष्ठः कृपया ब्राह्मणाज्ञया ॥ १११ ॥

डस लिया राजाका तत्काल देह नष्ट होगया ॥ ६ ॥ जनमेजयने पिताके संस्कार कराये फिर जनमेजयने सर्पसत्र यज्ञ किया ॥ ७ ॥ वहां ब्रह्मतेजके कारण सर्पोंके समूह नष्ट होने लगे तब तक्षक डरकर महेन्द्रकी शरण गया॥ ८ ॥ तब ब्राह्मणोंने इंद्रसहित तक्षकके नष्ट करनेका उद्योग किया तब देवता इंद्रादिक मनसाके समीप गये॥ ९ ॥ वहां भयसे कातर और विह्वल हो इंद्रने उसको संतुष्ट किया तब माताकी आज्ञासे आस्तीकने यज्ञमें आकर ॥११०॥ राजासे महेन्द्र और तक्षकके प्राणोंकी याचना करी तब नृपश्रेष्ठने ब्राह्मणोंकी आज्ञासे वर दिया ॥ ११ ॥

और यज्ञ समाप्तकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी तथा विप्रमुनिदेवता मनसाके समीप गये ॥१२॥ और मनसाका पूजनकर पृथक् पृथक् पूजन करते हुए और उस समय इन्द्रने भी सामग्री सजाय पवित्र हो ॥१३॥ आदरसे मनसाको पूज उसकी स्तुति करी उसको प्रणामकर षोडशोपचार से पूजबलि दी ॥१४॥ यह भेंट पूजा ब्रह्मा विष्णुशिवकी आज्ञासे सन्तुष्ट होकर दी वे मनसा देवीको पूज अपने २ स्थानको गये ॥१५॥ यह आपसे सब कहा अब क्या सुननेकी इच्छा है नारदजी बोले महेन्द्रने मनसाको किस स्तोत्रसे प्रसन्न किया ॥ १६ ॥ और तत्त्वसे उनके पूजाविधि क्रमको कहिये नारायण बोले स्नान आच मन कर पवित्र वस्त्र पहर ॥१७॥

यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो दक्षिणां च ददौ मुदा ॥ विप्राश्च मुनयो देवा गत्वा च मनसांतिकम् ॥ १२ ॥ मनसां पूजयामासुस्तुष्टुवुश्च पृथक्पृथक् ॥ शक्रः संभृतसं भारो भक्तियुक्तः सदा शुचिः ॥ १३ ॥ मनसां पूजयामास तुष्टाव परमादरम् ॥ नत्वा षोडशोपचारं बलिं च तत्प्रियं तदा ॥ १४ ॥ प्रददौ परितुष्टश्च ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया ॥ संपूज्य मनसां देवीं प्रययुः स्वालयं च ते ॥ १५ ॥ इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ नारद उवाच ॥ केन स्तोत्रेण तुष्टाव महेंद्रो मनसां सतीम् ॥ १६ ॥ पूजाविधिक्रमं तस्याः श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ नारायण उवाच ॥ सुस्नातः शुचिराचांतो धृत्वा धौते च वाससी ॥१७॥ रत्नसिंहासने देवीं वासयामास भक्तितः ॥ स्वर्गगाया जलेनैव रत्नकुंभस्थितेन च ॥ १८ ॥ स्नापयामास मनसां महेंद्रो वेदमन्त्रतः ॥ वाससी वासयामास वह्निशुद्धे मनोहरे ॥ १९ ॥ सर्वाङ्गे चंदनं कृत्वा पादार्घ्यं भक्तिसंयुतः ॥ गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥ २० ॥ संपूज्याऽऽदौ देवषट्कं पूजयामास तां सतीम् ॥ ॐह्रींश्रीं मनसादेव्यै स्वाहेत्येवं च मन्त्रतः ॥ २१ ॥ दशाक्षरेण मूलेन ददौ सर्वं यथोचितम् ॥ दत्त्वा षोडशोपचारान्दुर्लभान्देवनायक ॥ २२ ॥ पूजयामास भक्त्या च विष्णुना प्रेरितो मुदा ॥ वाद्यं नानाप्रकारं च वादयामास तत्र वै ॥ २३ ॥ बभूव पुष्पवृष्टिश्च नभसो मनसोपरि ॥ देवप्रियाज्ञया तत्र ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया ॥ २४ ॥

रत्नसिंहासन पर मनसा देवी को बैठाय भक्तिपूर्वक रत्नघटमें भरे स्वर्गगंगाके जलसे॥१८॥वेदमंत्रसे इन्द्रने मनसा देवीको स्नान कराया और अग्निमें शुद्ध मनोहर वस्त्र पहराये॥१९॥सर्वांगमें चंदन लगाय भक्ति सहित पादार्घ देकर गणेश,सूर्य,अग्नि,विष्णु,शिव शिवा॥१२०॥पहले इन छहों देवताओंको पूजन कर फिर उस सती की पूजा की'ॐह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहा'यह मंत्र है॥२१॥दशाक्षर मूलमंत्रसे सब वस्तु समर्पण की इस प्रकार इन्द्रने दुर्लभ षोडश उपचार देकर॥२२॥विष्णुसे प्रेरित हो भक्तिपूर्वक पूजा करी और वहां अनेक प्रकारके बाजे बजाये॥२३॥ आकाशसे मनसाके ऊपर पुष्पवृष्टि हुई देवप्रियता विप्रकी आज्ञासे तथा ब्रह्मा विष्णु शिवकी

आज्ञासे ॥ २४ ॥ पुलकित हो नेत्रोंमें जल भर इंद्र स्तुति करने लगे, इंद्र बोले हे साध्वियोंमें श्रेष्ठ ! मैं तुम्हारी स्तुतिको इच्छा करता हूं ॥ २५ तुम परात्पर परमात्माकी कौन स्तुति कर सकता है, वेदमें स्तोत्रका लक्षण और स्वभावाख्यान॥२६॥हे प्रकृति ! तुम्हारे गुणोंकी गणना कोई नहीं कह सकता तुम शुद्धसत्वकी स्वरूप वाली क्रोध हिंसासे रहित हो॥२७॥ इससे मुनि तुमको त्यागनेके योग्य नहीं थे कारण कि चलते समय उन्होंने तुम्हारी याचना की थी हे साध्वी ! मैंने तुम्हारी पूजा की तुम मेरी माता अदितिके समान हो ॥ २८ ॥ तुम दयारूप होनेसे भगिनी और क्षमारूप होनेसे माता हो हे सुरेश्वरि ! तुमने मेरे प्राण पुत्रदारादि बचाये हैं ॥ २९ ॥ मैं प्रीति बढानेवाली तुम्हारी पूजाको करता हूं हे जगदंबिके ! तुम नित्य और सर्वत्र पूजनीया हो ॥ १३० ॥ हे सुरेश्वरी !

तुष्टाव साश्रु नेत्रश्च पुलकांकितविग्रहः ॥ पुरंदर उवाच ॥ देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि साध्वीनां प्रवरां वराम् ॥२५॥ परात्परां च परमां नहिं स्तोतुक्षमोऽधुना ॥ स्तोत्राणां लक्षणं वेदे स्वभावाख्यानततपरम् ॥२६॥ न क्षमः प्रकृते वक्तुं गुणानां णगनां तव॥ शुद्धसत्त्वस्व रूपा त्वं कोप हिंसाविवर्जिता ॥ २७ ॥ नच शक्तो मुनिस्तेन त्यक्तुं याच्ञा कृता यतः ॥ त्वं मया पूजिता साध्वी जननी मे यथाऽदितिः ॥ २८ ॥ दयारूपा च भगिनी क्षमारूपा यथा प्रसूः ॥ त्वया मे रक्षिताः प्राणाः पुत्रदारा सुरेश्वरि ॥ २९ ॥ अहं करोमि त्वत्पूजां प्रीतिश्च वर्धतां सदा ॥ नित्या यद्यपि पूज्या ॥ त्वं सर्वत्र जगदंबिके ॥ १३० ॥ तथाऽपि तव पूजां च वर्धयामि सुरेश्वरि ॥ ये त्वमा षाढसंक्रांत्यां पूजियिष्यंति भक्तितः ॥ ३१ ॥ पंचम्यां नमसाख्यायां मासान्ते वा दिनेदिने ॥ पुत्रपौत्रादयस्तेषां वर्धन्ते च धनानि वै ॥ ३२ ॥ यशस्विनः कीर्तिमंतो विद्यावन्तो गुणान्विताः ॥ ये त्वां न पूजयिष्यंति निंदंत्यज्ञानतो जनाः ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीहीना भविष्यंति तेषां नागभयं सदा ॥ त्वं स्वयं सर्वलक्ष्मीश्च वैकुंठे कमलालया ॥ ३४ ॥ नारायणांशो भगवाञ्जर त्कारुर्मुनीश्वरः ॥ तपसा तेजसा त्वां च मनसा ससृजे पिता ॥ ३५ ॥

तो भी तुम्हारी पूजाको बढाता हूं जो भक्तिसे तुम्हारी आषाढ़की संक्रांतको पूजन करेंगे ॥ ३१ ॥ वा मनसा नागपंचमी मासान्त वा दिन दिनमें पूजा करेंगे उनको पुत्र पौत्र और धनादिकीवृद्धिहोगी ॥ ३२ ॥ वे यशस्वी कीर्तिमान् विद्यावान् गुणी होंगे और जो तुम्हारा पूजन न कर अज्ञानसे निन्दा करेंगे ॥ ३३ ॥ वे लक्ष्मीहीन होंगे और उनको सदा नागोंसे भय होगा तुमही स्वयं सबकी लक्ष्मी वैकुंठमें कमलास्वरूप हो ॥ ३४ ॥ जरत्कारु मुनीश्वर नारायणके अंश हैं पिताने तुमको तेज और तपसे मनसे निर्माण किया है ॥ ३५ ॥

हमारी रक्षाको मनसे तुमको प्रगट किया है इस कारण तुम मानसी हो हे देवि ! तुम सिद्धियोगिनी मनसे ही सब कुछ करनेको समर्थ हो ॥ ३६ ॥ इस कारण हे मानसी देवि ! तुम पूजित और वंदित हुई हो जोकि देवता भक्तिसे मनसे तुमको पूजन करते हैं ॥ ३७ ॥ इस कारण विद्वान् लोग तुमको मानसी देवी कहते हैं हे देवि ! निरन्तर सत्यसेवनसे तुम सत्यस्वरूपा हो ॥ ३८ ॥ जो तुम्हारी नित्य भावना करते हैं वह तुममें तत्पर हुए तुमको प्राप्त होंगे इस प्रकार इन्द्र मनसाकी स्तुतिकर और अपनी भगिनीसे वर ग्रहण कर ॥ ३९ ॥ भूषण और सब सामग्रीले कुटुम्बसहित अपने घर गये और वह देवी पुत्रके सहित चिर कालतक पिताके यहां रही ॥ १४० ॥ वह अपने भाइयोंसे भी पूजित हो सर्वत्र माननीय और पूजनीया हुई, हे नारद ! गोलोकसे कामधेनुने उस पूजितके

अस्माकं रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा ॥ मनसादेवि शक्त्या त्वं स्वात्मना सिद्धयोगिनी ॥ ३६ ॥ तेनत्वं मनसादेवी पूजिता वंदिता भव ॥ ये भक्त्या मनसां देवाः पूजयंत्यनिशं भृशम् ॥ ३७ ॥ तेन त्वां मनसादेप्रवदंति मनीषिणः ॥ सत्य स्वरूपा देवि त्वं शश्वत्सत्यनिषेवणात् ॥ ३८ ॥ यो हि त्वां भावयेन्नित्यं स त्वां प्राप्नोति तत्परः ॥ इंद्रश्च मनसां स्तुत्वा गृहीत्वा भगिनीवरम् ॥ ३९ ॥ प्रजगाम स्वभवनं भूषया सपरिच्छदम् ॥ पुत्रेण सार्धं सा देवी चिरं तस्थौ पितुर्गृहे ॥ १४० ॥ भ्रातृभिः पूजिता शश्वन्मान्या वंद्या च सर्वतः ॥ गोलोकात्सुरभिर्ब्रह्मन् तत्रागत्य सुपूजिताम् ॥ ४१ ॥ तां स्नापयित्वा क्षीरेण पूजयामास सादरम् ॥ ज्ञानं च कथयामास गोप्यं सर्वं सुदुर्लभम् ॥ ४२ ॥ तथा देवैः पूजिता सा स्वर्लोकं च पुनर्ययौ ॥ इंद्रस्तोत्रं पुण्यबीजं मनसां पूजयेत्पठेत् ॥ ४३ ॥ तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च ॥ विषं भवेत्सुधा तुल्यं सिद्धस्तोत्रो यदा भवेत् ॥ ४४ ॥ पंचलक्ष जपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः ॥ सर्पशायी भवेत्सोऽपि निश्चितं सर्पवाहनः ॥ १४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवम स्कंधेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

समीप आकर ॥ ४१ ॥ क्षीरसे उसको स्नान कराकर आदरसे पूजन किया है और बड़ा दुर्लभ गुप्त ज्ञान उसको कथन किया ॥ ४२ ॥ उससे और देवतोंसे पूजित होकर वह स्वर्गलोकको गई, इन्द्रके स्तोत्र पुण्य बीज वालेसे जो मनसाका पूजन करता है और पढ़ता है ॥ ४३ ॥ उसे और उसके वंशवालोंको नाग भय नहीं होता जब यह स्तोत्र सिद्ध हो जाय तो विषभी सुधाकी तुल्य हो जाता है ॥४४॥ पांच लाख जपनेसे मनुष्य यह स्तोत्र सिद्ध कर लेता है और वह अवश्यही सर्पोंपर सोनेवाला और सर्पोंपर चढनेवाला हो सकता है ॥ १४५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायां अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

नारदजी बोले वह सुरभी देवी कौन है जो गोलोकसे आई हे ब्रह्मन्! मैं उसके जन्म चरित्र सुननेकी ईच्छा करता हूं ॥ १ ॥ नारायण बोले यह गौओंकी अधिष्ठात्री देवी गौओंकी प्रसूता गौओंमें प्रधान सुरभी गोलोक वासिनी गोलोकमें प्रगट हुई ॥ २ ॥ मैं सर्वादि सृष्टिका चरित्र कहता हूं सुनो जिस कारण फिर वृंदावनमें उसका जन्म हुआ ॥ ३ ॥ एक समय कौतुकी राधिकानाथ राधाके सहित गोपाङ्गनाओंसे युक्त पवित्र वृन्दावनमें गये ॥ ४ ॥ और वहां कौतुकसे ही एकान्तमें विहार करने लगे तब उनकी स्वेच्छासे क्षीरपानको इच्छा हुई ॥ ५ ॥ तब उन्होंने लीलापूर्वक वाम ओरसे सुरभी देवीकी सृष्टिकी जो वत्सयुक्त दुधारी थी वत्सका नाम मनोरथ था ॥ ६ ॥ उसको देखकर श्रीदामाने नये बर्तनमें दुहा वह क्षीर जन्म मृत्यु जराका हरनेवाला है ॥ ७ ॥ उसके

नारद उवाच ॥ का वा सा सुरभिर्देवी गोलोकादागता च या ॥ तज्जन्मचरितं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥१॥ नारायण उवाच ॥ गवामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रसूः॥गवां प्रधाना सुरभिर्गोलोके सा समुद्भवा॥२॥सर्वादिसृष्टेश्चरितं कथयामि निशामय॥बभूव तेन तज्जन्म पुरा वृन्दावने वने॥३॥एकदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकी॥गोपांगनापरिवृतः पुण्यं वृन्दावनं ययौ॥४॥सहसा तत्र रहसि विजहार स कौतुकात्॥बभूव क्षीरपानेच्छातस्य स्वेच्छामयस्य च॥५॥ससृजे सुरभिं देवीं लीलया वामपार्श्वतः॥वत्सयुक्तां दुग्धवंतीं वत्सो नाम मनोरथः ॥६॥दृष्ट्वा सवत्सां श्रीदामा नवभाण्डे दुदोह च॥क्षीरं सुधातिरिक्तं च जन्ममृत्युजराहरम्॥७॥ तदुत्थं च पयः स्वादु पापौगोपोपतिः स्वयम् ॥ सरो बभूव पयसां भाण्डविस्रंसनेन च॥८॥दीर्घं च विस्तृतं चैव परितः शतयोजनम्॥गोलोकेऽयं प्रसिद्धश्च सोऽपि क्षीरसरोवरः ॥९॥ गोपिकानां च राधायाः क्रीडावापी बभूव सा ॥ रत्नेंद्ररचितापूर्णं भूता चाऽपीश्वरेच्छया ॥ १० ॥ बभूव कामधेनूनां सहसा ॥ लक्षकोटयः ॥ यावंतस्तत्र गोपाश्च सुरभ्या लोमकूपतः ॥ ११ ॥ तासां पुत्राश्च बहवः संबभूवुरसंख्यकाः ॥ कथिता च गवां सृष्टिस्तया च पूरितं जगत् ॥ १२ ॥ पूजां चकार भगवान् सुरभ्याश्च पुरा मुने ॥ ततो बभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ॥ १३ ॥

स्वादुदूधको स्वयं गोपीपतिने पानकिया फिर उस पात्रके टूटनेसे वहां एक दूधका कुंड होगया ॥ ८ ॥ वह दीर्घ और विस्तृत सौ योजनके मध्यमें था वह क्षीरसरोवर गोलोकमें प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥ वह गोपी और राधाकी क्रीडा बावडी हुई और ईश्वरकी इच्छासे वह रत्नजडित होगई ॥ १० ॥ और वहां सहसा लक्ष कोटि कामधेनु हो गई जितने वहां गोप थे उतनेही सुरभीके लोम कूपसे ॥ ११ ॥ उनके असंख्य पुत्र हुए यह गौओंकी सृष्टि कही जिससे जगत् पूर्ण है ॥ १२ ॥ हे मुने! पहले भगवान्ने सुरभीकी पूजा की फिर त्रिलोकीमें इनकी पूजा होने लगी ॥ १३ ॥

दिवालीसे दूसरे दिन श्रीकृष्णकी आज्ञासे गौओंकी पूजा चली है यह हमने धर्मके मुखसे सुना है ॥ १४ ॥ ध्यान स्तोत्र मूलमंत्र जो जो पूजा विधिका क्रम है हे महाभाग ! वह वेदोक्तमें मैं सब कहता हूं सुनो ॥ १५ ॥ ॐ सुरभ्यै नमः यह षडक्षर मन्त्र है यह लाख वार जपनेसे सिद्ध होकर कामना पूर्ण करता है ॥ १६ ॥ यजुर्वेदका कहां ज्ञान और उसकी पूजा ऋद्धि और वृद्धि देनेवाली है ॥ १७ ॥ लक्ष्मीस्वरूपा परमा राधा सहचारी परमागौओंकी अधिष्ठात्री देवी गौओंकी आद्या प्रसूति ॥१८॥ पवित्राकी पवित्ररूपा परमा भक्तोंको सब कामना देनेवाली जिसने सब विश्व पवित्र किया है उस सुरभी देवीको भजन करता हूं ॥ १९ ॥ घटमें वा धेनुके शिरमें गौओंके बंधन और स्तवमें शालिग्राम जल तथा अग्निमें सुरभीको ब्राह्मण पूजा करे ॥ २० ॥

दीपान्विता परदिने श्रीकृष्णस्याऽज्ञया हरेः ॥ बभूवसुरभिः पूज्या धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम् ॥ १४ ॥ ध्यानं स्तोत्रं मूलमन्त्रं यद्यत्पूजाविधि क्रमम् ॥ वेदोक्तं च महाभाग निबोध कथयामि ते ॥ १५॥ ॐ सुरभ्यै नम इति मन्त्रस्तस्याः षडक्षरः ॥ सिद्धो लक्षजपेनैव भक्तानां कल्पपादपः ॥ १६ ॥ ध्यानं यजुर्वेदगीतं तस्याः पूजा च सर्वतः ॥ ऋद्धिदा वृद्धिदा चैव मुक्तिदा सर्वकामदा ॥ १७ ॥ लक्ष्मीस्वरूपां परमां राधासहचरीं पराम् ॥ गवामाधिष्ठातृदेवींग वायाद्यां गवां प्रसूम् ॥ १८ ॥ पवित्र रूपां पूतां च भक्तनां सर्वकामदाम् ॥ यया पूतं सर्वं विश्वं तां देवीं सुरभिं भजे ॥ १९ ॥ घटे वा धेनुशिरसि बन्धस्तम्भे गवामपि ॥ शालग्रामे जलाग्नौ वा सुरभिं पूजयेद्द्विजः ॥ २० ॥ दीपान्विता परदिने पूर्वाह्णे शक्तिसंयुतः ॥ यः पूजयेच्च सुरभिं स वै पूज्यो भवेद्भुवि ॥ २१ ॥ एकदा त्रिषु लोकेषु वाराहे विष्णुमायया ॥ क्षीरं जहारसुरभिश्चिंतिताश्च सुरादयः ॥ २२ ॥ ते गत्वा ब्रह्मलोके च ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा ॥ तदाज्ञया च सुरभिं तुष्टुव पाकशासनः ॥ २३ ॥ पुरंदर उवाच ॥ नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः ॥ गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदंबिके ॥ २४ ॥ नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः ॥ नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः ॥ २५ ॥

दिवालीसे अगले दिन पूर्वाह्णमें भक्तिपूर्वक जो गौओंकी पूजा करता है वह पृथ्वीमें पूजनीय होता है ॥ २१ ॥ एक समय वाराह कल्पमें विष्णुकी मायासे सुरभीने त्रिलोक का क्षीर ग्रहण कर लिया तब सब देवता चिन्ता करने लगे ॥ २२ ॥ और वे सब ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माको सन्तुष्ट करने लगे तब उनकी आज्ञासे इन्द्रने सुरभीकी प्रार्थना की थी ॥ २३ ॥ इन्द्र बोले देवी महादेवी सुरभी गौओंकी बीजस्वरूपा जगदम्बाको प्रणाम है ॥ २४ ॥ राधाप्रिया पद्मांशां कृष्णप्रिया गौओंकी माताको प्रणाम है ॥ २५ ॥

कल्पवृक्षकी स्वरूपवाली सबको निरंतर क्षीर धन और बुद्धि देनेवालीको प्रणाम है ॥ २६ ॥ शुभा, सुभद्रा, गोप्रदा, यशोदा कीर्तिदा, धर्मदाको प्रणाम है ॥ २७ ॥ इस स्तोत्रके सुनतेही जगत्प्रसूती प्रसन्न हुई और वहीं वह सनातनी ब्रह्मलोकमें प्रगट हुई ॥ २८ ॥ इंद्रको वांछित और दुर्लभ वर देकर वह गोलोकको और देवादि अपने लोकको गये ॥ २९ ॥ हे नारद ! तब सब विश्व दूधसे पूर्ण होगया दूधसे घी उससे यज्ञ और यज्ञसे देवताओंकी प्रीति हुई ॥ ३० ॥ इस महा पुण्यदायक स्तोत्रको जो भक्तिपूर्वक पढता वह गोमान्, धनवान्, कीर्तिमान्, पुत्रवान् होता है ॥ ३१ ॥ मानो वह सब तीर्थोंमें नहीं लिया सब यज्ञोंमें दीक्षित होगया और इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें कृष्णके मंदिरमें जाता है ॥ ३२॥ वहां चिरकालतक निवास कर कृष्णका सेवन करता

कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सततं परे ॥ क्षीरदायै धनदायै बुद्धिदाय नमो नमः ॥ २६ ॥ शुभायै च सुभद्रायै गोपप्रदायै नमो नमः ॥ यशोदायै कीर्तिदायै धर्मदायै नमो नमः ॥ २७ ॥ स्तोत्रश्रवणामात्रेण तुष्टा हृष्ट जगत्प्रसूः ॥ आविर्बभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी ॥ २८ ॥ महेंद्राय वरं दत्त्वा वांछितं चापि दुर्लभम् ॥ जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयोगृहम् ॥ २९ ॥ बभूव विश्वं सहसा दुग्धपूर्णं च नारद॥दुग्धं घृतं ततो यज्ञस्ततः प्रीतिः सुरस्य च॥३०॥इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुश्च यःपठेत् ॥ गोमान् धनवांश्चैव कीर्तिमान्पुत्रवांस्तथा॥३१॥स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यंते कृष्ण मन्दिरे ॥३२॥ सुचिरं निवसेत्तत्र करोति कृष्णसेवनम् ॥ न पुनःभवनं तत्र ब्रह्मापुत्रो भवेत्ततः ॥३३॥ इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणे नवमस्कंधे एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥ नारद उवाच ॥ श्रुतं सर्वमुपाख्यानं प्रकृतीनां यथातथम्॥यच्छ्रुत्वा मुच्यते जंतुर्जन्मसंसारबंधनात् ॥१॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि रहस्यं वेदगोपितम् ॥ राधायाश्चैव दुर्गाया विधानं श्रुतिचोदितम् ॥ २ ॥ महिमा वर्णितोऽतीव भवता परयोर्द्वयोः ॥ श्रुत्वा तं तद्भुतं चेतो न कस्य स्यान्मुनीश्वर ॥ ३ ॥ ययोरंशो जगत्सर्वं यन्नि यम्यं चराचरम् ॥ ययोर्भक्त्वा भवेन्मुक्तिस्तद्विधानं वदाऽधुना ॥ ४ ॥

है फिर यहां न लौटकर ब्रह्मपुत्र होता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भाषायामेकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ प्रकृतिका यथा योग्य सब उपाख्यान सुना जिसके सुननेसे प्राणी जन्म संसार बन्धनसे छूट जाता है ॥ १ ॥ अब वेदमें गुप्त रहस्यके सुननेकी इच्छा करता हूं जो राधा और दुर्गाका श्रुतिकथित विधान है ॥ २ ॥ तुमने इन दोनोंकी बड़ी महिमा वर्णन की है इसको सुनकर इसमें किसका मन न लगेगा ॥ ३ ॥ जिसके अंशसे यह सब चराचर जगत् है जिनकी भक्तिसे मुक्ति होती है उसका अब विधान कहो ॥ ४ ॥

नारायण बोले हे नारद ! सुनो वेदकथित विधान रहस्य कहता हूं जो आजतक किसीने नहीं कहा और सारका भी सार है परात्पर है ॥ ५ ॥ और यह सुनकर दूसरेसे न कहना चाहिये कारण कि बड़ा गुप्त है मूलप्रकृति जगदीश्वरी जगत्के प्रगट होनेमें ॥ ६ ॥ समष्टि व्यष्टि प्राणकी अधिदेवता राधा शक्ति तथा समष्टि व्यष्टि बुद्धिकी अधिदेवता दुर्गा यह समस्त जीवोंकी प्रेरणाकरनेवाली प्रगट हुई है ॥ ७ ॥ यह विराटादि सचराचर जगत् उसीके आधीन है जबतक इन दोनोंका प्रसाद न हो तबतक मुक्ति बडी दुर्लभ है ॥ ८ ॥ इस कारण उन दोनोंके प्रसन्न करनेके निमित्त दोनोंकाही सेवन करे हे नारद ! प्रथम भक्तिसे

नारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं श्रुतिचोदितम् ॥ यन्न कस्यापि चाऽऽख्यातं सारात्सारं परात्परम् ॥ ५ ॥ श्रुत्वा परस्मै नो वाच्यं यतोऽतीव रहस्यकम् ॥ मूलप्रकृति रूपिण्याः संविदो जगदुद्भवे ॥ ६ ॥ प्रादुर्भूतं शक्तियुग्मं प्राणबुद्ध्यधिदैवतम् ॥ जीवानां चैव सर्वेषां नियंतृप्रेरकं सदा ॥ ७ ॥ तदधीनं जगत्सर्वं विराडादि चराचरम् ॥ यावत्तयोः प्रसादो न तावन्मोक्षो हि दुर्लभः ॥ ८ ॥ ततस्तयोः प्रसादार्थं नित्यं सेवेत तद्द्वयम् ॥ तत्रादौ राधिकामन्त्रं शृणु नारद भक्तितः ॥ ९ ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्नित्यं सेवितो यः परात्परः ॥ श्रीराधेति चतुर्थ्यंतं वह्नेर्जाया ततः परम् ॥ १० ॥ षडक्षरो महामन्त्रो धर्माद्यर्थप्रकाशकः ॥ मायाबीजादि कश्चायं वांछाचिंता मणिः स्मृतः ॥ ११ ॥ वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ॥ एतन्मन्त्रस्य माहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते ॥ १२ ॥ जग्राह प्रथमं मन्त्र श्रीकृष्णो भक्तितत्परः ॥ उपदेशान्मूलदेव्या गोलोके रासमंडले ॥ १३ ॥ विष्णुस्तेनोपदिष्टस्तु तेन ब्रह्मा विराट् तथा ॥ तेन धर्मस्तेन चाऽहमित्येषा हि परंपरा ॥ १४ ॥

राधिकाका मन्त्र सुनो ॥ ९ ॥ जो परात्पर ब्रह्मा विष्णु आदिसे नित्य सेवित है उसके साथ श्रीराधा यह चतुर्थ्यन्त मन्त्र लगावै अर्थात् ओं ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा ॥ १० ॥ यह छः अक्षरका महामन्त्र धर्मादि अर्थका प्रकाशक है और माया बीज होनेसे वांछावालोंको चिन्तामणि है ॥ ११ ॥ सौ करोड मुख सौ करोड़ जिह्वा भी इस मन्त्रका माहात्म्य नहीं कह सकती ॥ १२ ॥ प्रथम इस मन्त्रको परम भक्तिसे कृष्णने ग्रहण किया. गोलोकमें रासमण्डलमें मूल देवीने उपदेश दिया था ॥ १३ ॥ उनसे विष्णुने विष्णुसे ब्रह्माने ब्रह्मासे विराट्ने, उनसे धर्मने, धर्मसे मैंने लिया यह इस मन्त्रकी परम्परा है ॥ १४ ॥

१ बुद्धि प्राणके संयमनाधीनही योग विचार है उनके आधीन मोक्ष है इससे बुद्धिप्राणके अधिष्ठात्री देवताओंकी उपासना करनी ॥

मैं इस मन्त्रको जपता हूं, इस कारण मैं इस मन्त्रका ऋषि हूं, ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवताभी नित्य उसका प्रसन्नतासे ध्यान करते हैं ॥ १५ ॥ राधामन्त्रकी उपासनाके विना कृष्ण पूजाका अधिकार नहीं होता इस कारण सब वैष्णवोंको राधाका अर्चन करना चाहिये ॥ १६ ॥ वह कृष्णकी प्रिया देवी हैं और इसीसे वह विभु राधाके आधीन हैं और वह रासेश्वरी उनके विना स्थित नहीं रह सकती ॥ १७ ॥ सब कामके साधनेसे ही इनका राधा नाम हैं दुर्गा मन्त्रके विना और जो मन्त्र इस स्कंधमें कहे हैं उन सबका ऋषि मैं हूं ॥ १८ ॥ इसका देवी गायत्री छन्द राधा देवता है प्रणव जीव भुवनेश्वरी शक्ति है ॥ १९ ॥ मूल मन्त्रको छः वार आवर्तनकर षडंग न्यास करे फिर रासकी नायिका महादेवी राधिकाका ध्यान करे ॥ २० ॥ हे मुने ! सामवेदके कहे अनुसार पूर्वोक्त प्रका

अहं जपामि तं मन्त्रंतेनाऽहमृषिरीडितः ॥ ब्रह्माद्याः सकला देवा नित्यं ध्यायंति तां मुदा ॥ १५ ॥ कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं विना ॥ वैष्णवैः सकलैस्तस्म त्कर्तव्यं राधिकार्चनम् ॥ १६ ॥ कृष्णप्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यतः ॥ रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति ॥ १७ ॥ राध्नोति सकलान्कामास्तस्माद्राधेति कीर्तिता ॥ अत्रोक्तानां मनूनां च ऋषिः स्म्यहमेव च ॥ १८ ॥ छन्दश्च देवीगायत्री देवताऽत्र च राधिका ॥ तारो बीजं शक्तिबीजं शक्तिस्तु परिकीर्तिता ॥१९॥ मूलावृत्त्या षडंगानि कर्तव्या नीतरत्र च ॥ अथ ध्यायेन्महादेवीं राधिकां रासनायिकाम् ॥ २० ॥ पूर्वोक्तरीत्या तु मुने सामवेदे विगीतया ॥ श्वेतचंपकवर्णाभां शरदिंदुसमाननाम् ॥ २१ ॥ कोटि चंद्रप्रतीकाशां शरदंभोजलोचनाम् ॥ बिंबाधरां पृथुश्रोणीं कांचीयुतनितम्बिनीम् ॥ २२ ॥ कुन्द पंक्ति समानाभदन्तपंक्तिविराजिताम् ॥ क्षौमांबरपरीधानां वह्निशुद्धांशुकान्विताम् ॥२३॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां करिकुंभयुगस्तनीम् ॥ सदा द्वादशवर्षीयां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ २४ ॥ शृंगारसिंधुलहरीं भक्तानुग्रहकातराम् ॥ मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम् ॥ २५ ॥

रसे ध्यान करे श्वेत चम्पेके समान वर्णकी कांति शरद्चन्द्रके समान मुख ॥ २१ ॥ कोटिचन्द्रके समान कांतिशरद् कमलके समान नेत्र बिम्बाके समान अधर बडा श्रोणिभाग कौंधनीयुक्त नितंब २२ ॥ कुंदकी पंक्तिके समान दांतोंकी पंक्ति क्षौमवस्त्र पहरे अग्निमें शुद्ध जोअग्निमें रखनेसे न जले वस्त्रोंसे युक्त ॥ २३ ॥ कुछेक हास्यसे प्रसन्न मुखवाली हस्तीके कुंभके समान स्तन द्वादश वर्षकी अवस्था रत्नोंके भूषणोंसे युक्त ॥ २४ ॥ शृंगारसागरकी लहरवाली भक्तके अनुग्रहमें तत्पर मल्लिका चमेलीकी मालायुक्त केशपाशसे विराजित ॥ २५ ॥

सुकुमार अंगकी लतावाली रासमण्डलके मध्यमें स्थित सुन्दर अभयकारिणी शान्त निरन्तर स्थित यौवनवाली ॥ २६ ॥ रत्नसिंहासनपर स्थित गोपी मण्डलकी नायिका कृष्णकी प्राणसे अधिक प्यारी वेदबोधित परमेश्वरीकी ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे ध्यान करके शालिग्राम शिला अथवा घटमें बाह्य ध्यान करके वा अष्टदल यंत्रमें विधानसे देवीका पूजन करे ॥ २८ ॥ आवाहन करनेके उपरांत आसनादि दे मूल मन्त्रका उच्चारणकर आसनादिकी कल्पना करे ॥२९॥ पाद्य चरणोंमें और मस्तकमें अर्घ्य दे और मुखमें मूलमंत्रसे तीन आचमन करे ॥ ३० ॥ फिर मधुपर्क और एक पयस्विनी गौ दे फिर स्नानशालामें लाकर वहां उसकी भावना करे ॥ ३१ ॥ उबटन स्नानविधि और वस्त्रादिकी कल्पना करके फिर अनेक अलंकारपूर्वक चन्दन दे ॥ ३२ ॥ अनेक प्रकारकी

सुकुमारांगलतिकां रासमंडल मध्यगाम् ॥ वराभयकरांशांतां शश्वत्सु स्थिरयौवनाम् ॥ २६ ॥ रत्नसिंहासनासीनां गोपीमंडलनायिकाम् ॥ कृष्णप्राणाधिकां वेदबोधितं परमेश्वरीम् ॥ २७ ॥ एवं ध्यात्वा ततो बाह्ये शालग्रामे घटेऽथवा ॥ यंत्रे वाऽष्टदले देवीं पूजयेत्सुविधानतः ॥ २८ ॥ आवाह्य देवा तत्पश्चादासनादि प्रदीयताम् ॥ मूलमंत्रं समुच्चार्य चासनादीनि कल्पयेत् ॥ २९ ॥ पाद्यं तु पादयोर्दद्यान्मस्तकेऽर्घ्यं समीरितम् ॥ मुखेत्वाचमनीयं स्याद्त्रिवारं मूलविद्यया ॥ ३० ॥ मधुपर्कं ततो दद्यादेकां गां च पयस्विनीम् ॥ ततो नयेत्स्नानशालां तां च तत्रैव भावयेत् ॥ ३१ ॥ अभ्यंगादिस्नानविधिं कल्पयित्वाऽथ वाससी ॥ ततश्च चंदनं दद्यान्नानालंकारपूर्वकम् ॥ ३२ ॥ पुष्पमाला बहुविधास्तुलसीमंजरीयुताः ॥ पारिजातप्रसूनानि शतपत्रादिकानि च ॥ ३३ ॥ ततः कुर्यात्पवित्रं तत्परिवारार्चनं विभोः ॥ अग्नीशासुरवायमध्ये दिक्ष्वंगपूजनम् ॥ ३४ ॥ कृत्वा पश्चादष्टदले दक्षिणावर्ततोऽग्रतः ॥ मालावतीमग्रदले वह्निकोणे च माधवीम् ॥ ३५ ॥ रत्नमालां दक्षिणे च नैर्ऋत्ये तु सुशीलकाम् ॥ पश्चाद्दले शशिकलां पूजियेन्मतिमान्नरः ॥ ३६ ॥ मारुते पारिजातां चाप्युत्तरे च परावतीम् ॥ ईशानकोणे संपूज्या सुन्दरी प्रिय कारिणी ॥ ३७ ॥

पुष्पमाला तुलसीकी मंजरीयुक्त दे पारिजातके फूल शतपत्र कमल पुष्प दे ॥ ३३ ॥ फिर पवित्रतापूर्वक परिवारका अर्चन करे फिर अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य, मध्यादिमें अंगपूजन करे ॥ ३४ ॥ फिर अष्टदलन यंत्रोंमें दक्षिण क्रमसे मालादि अष्टशक्तिका पूजन करे उसके क्रम यह है कि अग्रदलनमें मालावतीका, अग्निकोणमें माधवीका ॥ ३५ ॥ दक्षिणमें रत्नमालाका, नैर्ऋत्यमें सुशीलाका, पश्चिममें शशिकलाका; बुद्धिमान् नित्य पूजन करे ॥ ३६ ॥ वायव्यमें पारिजातका, उत्तरमें परावतीका, ईशानकोणमें प्रियकारिणी सुन्दरीका ॥ ३७ ॥

ब्रह्मा आदिका उसके बाहरभागमें आशापालका भूमिके अग्रभागमें और वज्रादि आयुध सहित इस प्रकारसे निरन्तर देवीका पूजन करै ॥ ३८ ॥ फिर आवरण सहित देवीका गंधादि उपचारके सहित तथा राज उपाचारके सहित बुद्धिमान् पूजन करे ॥ ३९ ॥ फिर सहस्रनाम स्तोत्रसे देवीका पूजन करे सहस्र संख्यक जप नित्य प्रयत्न से करे ॥ ४० ॥ जो इस प्रकारसे परादेवी परमेश्वरीका पूजन करते हैं वह विष्णुके तुल्य होकर गोलोकमें जाते हैं ॥ ४१ ॥ जो पण्डित कार्तिकी पूर्णमासीको राधाका जन्मोत्सव करता है उसको परादेवी रासेश्वरी अपना सान्निध्य देती है ॥ ४२ ॥ किसी एक कारणसे वृंदावन वनमें वही गोलोक स्थायिनी राधा वृषभानुनन्दिनी हुई ॥ ४३ ॥ इसमें कहे मंत्र और वर्ण संख्याके विधानसे पुरश्चरण कर्म कहा है और इसका दशांश होम

ब्राह्मयादयस्तु तद्बाह्येऽप्याशापालांस्तु भूपुरे ॥ वज्रादिकान्यायुधानि देवीमित्थं प्रपूजयेत् ॥ ३८ ॥ ततो देवीं सावरणां गंधाद्यैरुपचारकैः ॥ राजोपचारसहितैः पूजयेन्मतिमान्नरः ॥३९॥ ततः स्तुवीत देवेशीं स्तोत्रैर्नामसहस्रकैः ॥ सहस्रसंख्यं च जपं नित्यं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ ४० ॥ य एवं पूजयेद्देवीं राधां रासेश्वरीं पराम् ॥ स भवेद्विष्णुतुल्यस्तु गोलोकं याति संततम् ॥ ४१ ॥ यः कार्त्तिक्यां पौर्णमास्यां राधाजन्मोत्सवं बुधः ॥ कुरुते तस्य सान्निध्यं दद्याद्रासेश्वरी परा ॥ ४२ ॥ केनचित्कारणेनैव राधावृन्दावने वने ॥ वृषभानुसुताः जाता गोलोकस्थायिनी सदा ॥ ४३ ॥ अत्रोक्तानां तु मंत्राणां वर्णसंख्याविधानतः ॥ पुरश्चरणकर्मोक्तं दशांशं होममाचरेत् ॥ ४४ ॥ तिलैस्त्रिस्वादुसंयुक्तैर्जुहुयाद्भक्तिभावतः ॥ नारद उवाच ॥ स्तोत्रं वद मुने सम्यग्येन देवी प्रसीदति ॥ ४५ ॥ नारायण उवाच ॥ नमस्ते परमेशानि रासमण्डलवासिनि ॥ रासेश्वरि नमस्तेऽस्तु कृष्णप्राणाधिकप्रिये ॥ ४६ ॥ नमस्त्रैलोक्यजननि प्रसीद करुणार्णवे ॥ ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैर्वन्द्यमानपदांबुजे ॥ ४७ ॥ नमः सरस्वतीरूपे नमः सावित्रि शंकरि ॥ गंगापद्मावतीरूपे षष्ठिमंगलचंडिके ॥ ४८ ॥ नमस्ते तुलसीरूपे नमो लक्ष्मीस्वरूपिणि ॥ नमो दुर्गे भगवति नमस्ते सर्वरूपिणि ॥ ४९ ॥

करना चाहिये ॥ ४४ ॥ तिल, मधु, घृत, पयके साथ हवन करै और परमभक्ति करै नारदजी बोले हे मुने ! वह स्तोत्र कहिये जिससे देवी प्रसन्न हो ॥४५॥ नारायण बोले हे परमेशानि ! हे रासण्डलमें निवास करने वाली ! हे रासेश्वरि ! हे कृष्णप्राणाधिका ! तुमको प्रणाम है ॥ ४६ ॥ त्रैलोक्यजननी करुणाकी सागर ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओंसे नमस्कृतचरणवाली तुमको प्रणाम है ॥४७॥ सरस्वती रूप सावित्रि शांकरि गङ्गा पद्मावतीरूपे षष्ठि मङ्गलचंडिके ! तुमको प्रणाम है ॥ ४८ ॥ तुलसीरूप लक्ष्मी स्वरूपिणी दुर्गे भगवति सर्वस्वरूपिणी तुमको प्रणाम है ॥ ४९ ॥

तुम मूलप्रकृति करुणा रूपिणी हो तुमको प्रणाम है हे मातः ! हमको संसार सागरसे उद्धार कर दया करो ॥ ५० ॥ जो इस स्तोत्रको राधाको स्मरण करता तीनों संध्याओंमें पढ़ता है उसको कभी कोई बात दुर्लभ नहीं रहेगी ॥ ५१ ॥ वह देहांतमें नित्य रासमंडलमें निवास करता है यह परम रहस्य किसीसे नहीं कहना चाहिये ॥ ५२ ॥ हे ब्रह्मन् ! अब दुर्गाका विधान सुनो जिसके स्मरणमात्रसे महाआपत्ति दूर होती है ॥५३॥ जो इनका भजन नहीं करते हैं उनको कहीं कुछ नहीं है वह सर्व माता शैवीशक्ति सबसे उपासनीय है ॥ ५४ ॥ वह सबकी बुद्धि अधिष्ठात्री देवी अन्तर्यामी स्वरूपिणी बड़े संकटकी हरने

मूलप्रकृतिरूपां त्वां भजामः करुणार्णवाम् ॥ संसारसागरादस्मादुद्धरांब दयां कुरु ॥५०॥ इदं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेद्राधां स्मरन्नरः ॥ तस्य दुर्लभं किंचित्कदाचिच्च भविष्यति ॥५१॥ देहांते च वसेन्नित्यं गोलोके रासमंडले ॥ इदं रहस्यं परमं नचाऽऽख्येयं तु कस्यचित् ॥५२॥ अधुना शृणु विप्रेंद्र दुर्गादेव्या विधानकम् ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण पलायन्ते महापदः ॥ ५३ ॥ एनां न भजते यो हि तादृङ्नास्त्येव कुत्रचित् ॥ सर्वोपास्या सर्वमाता शैवी शक्तिर्महाद्भुता ॥ ५४ ॥ सर्वबुद्ध्यधिदेवीयमंतर्यामिस्वरूपिणी ॥ दुर्गसंकटहंत्रीति दुर्गेति प्रथिता भुवि ॥ ५५ ॥ वैष्णवानां च शैवानामुपास्येयं च नित्यशः ॥ मूलप्रकृतिरूपा सा सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥ ५६ ॥ तस्या नवाक्षरं मन्त्रं वक्ष्ये मन्त्रोत्तमोत्तमम् ॥ वाग्भवं शंभुवनिता कामवीजं ततः परम् ॥ ५७ ॥ चामुंडायै पदं पश्चाद्विच्चे इत्यक्षरद्वयम् ॥ नवाक्षरो मनुः प्रोक्तो भजतां कल्पपादपः ॥ ५८ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां ऋषियोऽस्य प्रकीर्तितः ॥ छन्दां स्युक्तानि सततं गायत्र्युष्णिगनुष्टुभः ॥ ५९ ॥ महाकाली महालक्ष्मीः सरस्वत्यापि देवता ॥ स्याद्रक्तदंतिकाबीजं दुर्गा च भ्रामरी तथा ॥ ६० ॥ नन्दा शाकंभरीदेव्यौ भीमा च शक्तयः स्मृताः ॥ धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोग उदाहृतः ॥ ६१ ॥

वाली पृथ्वीमें दुर्गा नामसे विख्यात है ॥ ५५ ॥ यह वैष्णव और शैवोंसे नित्य उपासनीय है वह मूल प्रकृतिरूप सृष्टिकी स्थिति अन्त करने वाली है ॥५६॥ उसकामंत्रोंमें उत्तम नवाक्षर मन्त्र कहता हूं, वाणी बीज भुवनेश्वरी बीज काम बीज ॥ ५७ ॥ ओं ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे इस प्रकार यह नवाक्षर मन्त्र है यह भजन करनेवालोंको कल्पवृक्षरूप है ॥ ५८ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश यह इनके ऋषि हैं गायत्री उष्णिक् अनुष्टुपू यह छन्द है ॥ ५९ ॥ महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वती देवता हैं रक्तदन्तिका दुर्गा भ्रामरी बीज हैं ॥६०॥ नन्दा शाकंभरी देवी भीमा शक्तियें हैं धर्म अर्थ काम मोक्षमें इनका विनियोग है ॥ ६१ ॥

ऋषि छन्द देवता मौली (शिर) मुख और हृदयमें न्यास करे सर्व अर्थ सिद्धिके निमित्त स्तनोंमें शक्तिबीजका न्यास कर तीन बीज दक्षिणस्तनमें और तीन शक्ति वामस्तनमें न्यास कर ॥ ६२ ॥ फिर तीन और चामुण्डायै इन चार बीजको और विच्चे इन दोसे और पूरे मन्त्रसे नमःस्वाहा वषट् हूं वौषट् फट् लगाकर षडङ्गन्यास करे ॥ ६३ ॥ शिखा दोनों नेत्र कान नासिका मुख गुद इनमें मन्त्रवर्णोंका न्यास कर सर्वाङ्गम न्यास करे ॥ ६४ ॥ ध्यान कहते हैं खड्ग, चक्र, गदा, बाण, चाप,परिघ, शूल, भुशुण्डी, शिर, शंख, हाथमें लिये ॥ ६५ ॥ महाकाली त्रिनयना नाना भूषणोंसे भूषित नीलांजनके समान दशपाद और दश मुखवालीको भजन करता हूं ॥ ६६ ॥ मधुकैटभके नाशके निमित्त ब्रह्माजीने जिनकी स्तुति की इस प्रकार कामबीज स्वरूपिणी महाकालीका ध्यान

ऋषिच्छंदोदैवतानि मौलौ वक्त्रे हृदि न्यसेत् ॥ स्तनयोः शक्तिबीजानि न्यसेत्सर्वार्थसिद्धये ॥ ६२ ॥ बीजत्रयैश्चतुर्भिश्च द्वाभ्यां सर्वेण चैव हि ॥ षडंगानि मनोः कुर्याज्जातियुक्तानि देशिकः ॥ ६३ ॥ शिखायां लोचनद्वंद्वं श्रुतिनासाननेषु च ॥ गुदे न्यसेन्मन्त्रवर्णान्स र्वेण व्यापकं चरेत् ॥ ६४ ॥ खड्गचक्रगदा बाणचापानि परिघं तथा ॥ शूलं भुशुंडीं च शिरः शंख संदधतीं करैः ॥ ६५ ॥ महाकालीं त्रिनयनां नानाभूषणभूषिताम् ॥ नीलांजनसमप्रख्यां दशपादाननां भजे ॥ ६६ ॥ मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टवांबुजासनः ॥ एवं ध्यायेन्म हाकालीं कामबीजस्वरूपिणीम् ॥ ६७ ॥ अक्षमालां च परशुं गदेषु कुलिशानि च ॥ पद्मं धनुष्कुंडिकां च दंडं शक्तिमसिं तथा ॥६८॥ चर्माम्बुजं तथा घंटा सुरापात्रं च शूलकम् ॥ पाशं सुदर्शनं चैव दधतीमरुणप्रभाम् ॥ ६९ ॥ रक्तांबुजासनगतां मायाबीजस्वरूपिणीम् ॥ महालक्ष्मीं भजेदेवं महिषासुरमर्दिनीम् ॥ ७० ॥ घंटाशूले हलं शंखं मुसलं च सुदर्शनम् ॥ धनुर्बाणान्हस्तपद्मैर्दधानां कुंदसन्निभाम् ॥ ७१ ॥ शुंभादिदैत्यसंहर्त्रीं वाणीबीजस्वरूपिणीम् ॥ महासरस्वतीं ध्यायेत्सच्चिदानंद विग्रहाम् ॥ ७२ ॥

करे ॥ ६७ ॥ महालक्ष्मीका ध्यान कहते हैं अक्षमाला, परशु, गदावज्र, पद्म,धनुष, कुंडिका, दंड, शक्ति, असि (तलवार) ॥ ६८ ॥ चर्माम्बुज, घंटा सुरा पात्र, शूल, पाश, सुदर्शन धारण करनेवाली अरुणप्रभा ॥ ६९ ॥ नावार्णअन्तर्गत माया बीजकी अधिदेवता लाल कमलके आसनमें स्थित महिषासुरमर्दिनी महादेवीको भजन करता हूं ॥ ७० ॥ महासरस्वतीका ध्यान कहते हैं घंटा, शूल, हल, मुसल,सुदर्शन, धनुर्बाण हस्तकमलमें धारे कुंदके समान ॥ ७१ ॥ शुंभादि दैत्यका संहार करनेवाली नवार्णमन्त्रके वाग् बीजकी अधिदेवता सच्चिदानंद विग्रहवाली महासरस्वतीका ध्यान करता हूं ॥ ७२ ॥

इसका यन्त्र पहले तीनकोण षट्कोण युक्त करे तथा उसे अष्टदल पद्म और चौबीसदल पद्मयुक्त करे ॥७३॥ भूगृह (गृह) से युक्त इस प्रकारसे विचार करै शालिग्राम घटयंत्रवा प्रतिमामें ॥ ७४ ॥ बाणलिंग वा सूर्यमें अनन्य बुद्धिसे देवीका यजमान करै जयादि शक्ति संयुक्त पीठ 'सिंहासन' में देवीका ध्यान करै जयादिशक्ति जयायैनमः विजयायै नमः अजितायै नमः अपराजितायै नमः नित्यायै नमः विलासिन्यै नमः दोग्ध्र्यैनमः अघोरायै नमः मङ्गलायै नमः ॥ ७५ ॥ आवरण देवता कहते हैं पूर्णकोण नाम देवीके अग्रकोणमें सरस्वती सहित ब्रह्माजीको पूजे 'सरस्वती सहिताय ब्रह्मणेनमः' इत्यादि सर्वत्र जानना नैर्ऋत्य कोणमें लक्ष्मी सहित हरिको ॥ ७६ ॥ वायुकोणमें पार्वतीसहित शिवको देवीके उत्तरकी ओर सिंह और वाम ओर महासुर महिषकी सायुज्य पानेके कारण पूजा करे ॥७७॥

यन्त्रमस्याः शृणु प्राज्ञ त्र्यस्रं षट्कोणसंयुतम् ॥ ततोऽष्टदलपद्मं च चतुर्विंशतिपत्रकम् ॥ ७३ ॥ भूगृहेण समायुक्तं यन्त्रमेवं विचिंतयेत् ॥ शालग्रामे घटे वाऽपि यन्त्रे वा प्रतिमासु वा ॥ ७४ ॥ बाणलिंगेऽथवा सूर्ये यजेद्देवी मनन्यधीः ॥ जयादिशक्तिसंयुक्ते पीठे देवीं प्रपूजयेत् ॥ ७५ ॥ पूर्वकोणे सरस्वत्या सहितं पद्मजं यजेत् ॥ श्रिया सह हरिं तत्र नैर्ऋते कोणके यजेत् ॥ ७६ ॥ पार्वत्या सहितं शंभुं वायुकोणे समर्चयेत् ॥ देव्या उत्तरतः पूज्यः सिंहो वामे महासुरम् ॥ ७७ ॥ महिषं पूजयेदन्ते षट्कोणेषु यजेत्क्रमात ॥ नंदजां रक्तदन्तां च तथा शाकंभरीं शिवाम् ॥ ७८ ॥ दुर्गां भीमां भ्रामरीं च ततो वसुदलेषु च ॥ ब्राह्मीं माहेश्वरीं चैव कौमारीं वैष्णवीं तथा ॥ ७९ ॥ वाराहीं नारसिंहीं च ऐंद्रीं चामुंडकां तथा॥ पूजयेच्च ततः पश्चात्तत्त्वपत्रेषु पूर्वतः॥ ८० ॥विष्णुमायां चेतनां च बुद्धिं निद्रां क्षुधां तथा ॥ छायाशक्तिं परां तृष्णां शांतिं जातिं च लज्जया ॥ ८१ ॥ शांतिं श्रद्धां कीर्तिलक्ष्म्यौ धृतिं वृत्तिं श्रुतिं स्मृतिम् ॥ दयां तुष्टिं ततः पुष्टिं मातृभ्रान्ती इति क्रमात् ॥ ८२ ॥ ततो भूपुरकोणेषु गणेशं क्षेत्रपालकम् ॥ बटुकं योगिनीश्चापि पूजयेन्मतिमान्नरः ॥ ८३ ॥

महिषपूजा अन्तमें करै यह यजनक्रमसे षट्कोणमें करै नन्दजा, रक्तदन्तिका, शाकंभरी, शिवा, ॥ ७८ ॥ दुर्गा, भीमा, भ्रामरीको पूजे आठों दलोंमें फिर ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी ॥ ७९ ॥ वाराही, नारसिंहीं, ऐन्द्री चामुण्डाको पूजै फिर चौबीस दलोंमें पूर्वसे क्रमानुसार ॥ ८० ॥ विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, परा, तृष्णा, शांति जाति, लज्जा ॥ ८१ ॥ शांति श्रद्धा,कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, वृत्ति, श्रुति,स्मृति, दया, तुष्टि, पुष्टिमातृ, भ्रांति यह क्रमसे पूजे ॥ ८२ ॥ फिर भूसुर कोणमें गणेश क्षेत्रपाल बटुक योगिनीका बुद्धिमान् पूजन करे ॥ ८३ ॥

इसके बाहर वज्रादि हाथमें लिये इन्द्रादिका पूजन करे इस प्रकार आवरणसहित देवीको पूज ॥ ८४ ॥ और भगवतीकी सन्तुष्टताके निमित्त विधिवत् राज उपचार समर्पण कर, फिर अर्थपूर्वक नवार्ण मंत्रका जप करे, इस मंत्रमें महासरस्वती महालक्ष्मी महाकालीके क्रमसे बीज हैं और वित् च इ यह तीन पद क्रमसे सत् चित् आनंदके वाचक चामुण्डापद ब्रह्मविद्याका विशेषण है, उसका हम ध्यान करते हैं, अर्थात् हे चिद्रूपिणी महासरस्वती हे सद्रूपिणी महासरस्वती हे आनंदरूपिणी महाकालिका तुमको चामुण्डाये ब्रह्मविद्या प्राप्तिके लिये ध्यान करता हूं ॥ ८५ ॥ फिर देवी के आगे सप्तशती स्तोत्र पढ़े इसके समान तीनों भुवनमें दूसरा स्तोत्र नहीं है. [यह मार्कण्डेय पुराणका है] ॥८६॥ इससे प्रतिदिन मनुष्य देवेशीका यजन करे चार लाख इसका पुरश्चरण और दशांश पायसका हवन

इंद्राद्यानपि तद्बाह्ये वज्राद्यायुधसंयुतान् ॥ पूजयेदनया रीत्या देवीं सावरणां ततः ॥ ८४ ॥ राजोपचारान्विविधान्दद्यादंबाप्रतुष्टये ॥ ततो जपेन्नवार्णं च मन्त्र मन्त्रार्थपूर्वकम् ॥ ८५ ॥ ततः सप्तशतीस्तोत्रं देव्या अग्रे तु संपठेत् ॥ नानेन सदृशं स्तोत्रं विद्यते भुवनत्रये ॥ ८६ ॥ ततश्चानेन देवेशीं तोषयेत्प्रत्यहं नरः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणामालयं जायते नरः ॥८७॥ इति ते कथितं विप्र श्रीदुर्गाया विधानकम् ॥ कृतार्थता येन भवेत्तदेतत्कथितं तव ॥ ८८ ॥ सर्वे देवा हरिब्रह्मप्रमुखा मनवस्तथा ॥ मुनयो ज्ञाननिष्ठाश्च योगिनश्चाऽऽश्रमास्तथा ॥ ८९ ॥ लक्ष्म्यादयस्तथा देव्यः सर्वे ध्यायंति तां शिवाम् ॥ तदैव जन्मसाफल्यं दुर्गास्मरणमस्तिचेत् ॥ ९० ॥ चतुर्दशाऽपि मनवो ध्यात्वा चरणपंकजम् ॥ मनुत्वं प्राप्तवंतश्च देवाः स्वं स्वं पदं तथा ॥ ९१ ॥ तदेतत्सर्वमाख्यातं रहस्यातिरहस्कम् ॥ प्रकृतीनां पंचकस्य तदंशानां च वर्णनम् ॥ ९२ ॥ श्रुत्वैतन्मनुजो नित्यं पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ लभते नाऽत्र संदेहः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ ९३ ॥

करे॥इससे मनुष्यको धर्म अर्थ काम मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥८७॥ हे विप्र ! यह आपसे श्रीदुर्गा पूजाका विधान कहा, इससे कृतार्थता प्राप्त होती है सो आपसे सुनाया ॥८८॥ सब देवता, हरि, ब्रह्मा, मनु, ज्ञाननिष्ठ मुनि, योगी आश्रमवासी ॥ ८९ ॥ लक्ष्मी आदिके देवी सब ही उस शिवाका ध्यान करती हैं दुर्गाके स्मर्णसे ही जन्मकी सफलता होती है ॥ ९० ॥ चौदह मनु जिसके चरणकमलका ध्यान करके मनुत्वको प्राप्त हुए तथा दूसरे देवता निज २ पदको प्राप्त हुए ॥९१॥ सो रहस्यसे भी रहस्य यह हमने तुमसे कहा है पांचों प्रकृति तथा उनके अंशोंका वर्णन किया ॥९२॥ इसके सुननेसे मनुष्य चारों पदार्थोंको प्राप्त

होता है इसमें संन्देह नहीं यह मैंने सत्य ही कहा है ॥ ९३ ॥ इसके सुननेसे अपुत्रको पुत्र, विद्यार्थीको विद्या मिलती है बहुत क्या जिस जिस निमित्त सुन उसको उसी २ कामनीकी प्राप्त होती ॥ ९४ ॥ जो देवीके आगे सावधान होकर नौरातमें इसको पढे उसपर भगवती अवश्य संतुष्ट होती है ॥ ९५ ॥ और जो मनुष्य नित्य एक एक अध्याय को पढता है वह देवीका प्रिय करनेवाला है, देवी उसके वशीभूत होती है ॥ ९६ ॥ इसमें यथाविधि शकुनोंकी परीक्षा करे उसका क्रम यह है कि कुमारीके अथवा बटुकके हाथसे ॥ ९७ ॥ अपना मनोरथ मनमें विचार कर पुस्तक पूजन करावे और जगत्की ईसानी देवीको वारंवार प्रणाम करे ॥ ९८ ॥ अच्छी प्रकार स्नान करी कन्याको लाकर और स्वयं स्नान कर एक सुवर्णशलाका उनके हाथमें दे ॥ ९९ ॥ उन अध्यायोंके

अपुत्रो लभते पुत्रं विद्यार्थी प्राप्नुयाच्च ताम् ॥ यं यं कामं स्मरेद्वापि तं तं श्रुत्वा समाप्नुयात् ॥ ९४ ॥ नवरात्रे पठेदेतद्देव्यग्रे तु समाहितः ॥ परितुष्टा जगद्धात्री भवत्येव हि निश्चितम् ॥ ९५ ॥ नित्यमेकैकमध्यायं पठेद्यः प्रत्यहं नरः ॥ तस्य वश्या भवेद्देवी देवीप्रियकरो हि सः ॥ ९६ ॥ शकुनांश्च परीक्षेत नित्यमस्मिन्यथाविधि ॥ कुमारीदिव्यहस्तेन यद्वा बटुकरांबुजात् ॥ ९७ ॥ मनोरथं तु संकल्प्य पुस्तकं पूजयेत्ततः ॥ देवीं च जगदीशानीं प्रणमेच्च पुनः पुनः ॥ ९८ ॥ सुस्नातां कन्यकां तत्राऽऽनीयाऽभ्यर्च्य यथाविधि ॥ शलाकां रोपयेन्मध्ये तया स्वर्णेन निर्मिताम् ॥ ९९ ॥ शुभं वाऽप्यशुभं तत्र यदायाति च तद्भवेत् ॥ उदासीनेऽप्युदासीनं कार्यं भवति निश्चितम् ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कंधे पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

बाणाक्षिरसरामैस्तु सार्धैः (३६२५ ॥) श्लोकैः सुविस्तरः ॥ देवीभागवतस्यास्य नवमस्कन्ध ईरितः ॥

चक्रमें शलाकाको रखावे फिर जिस अध्यायमें वह शलाका रक्खे उसके अनुसार उस अध्यायको देखकर जैसा लिखा हो वैसा कहे, उसीके अनुसार ग्रंथका शुभाशुभ फल कहे यदि शुभ हो तो शुभ यदि अशुभवार्ता निकले तो अशुभफल जानना यदि उसके डालनेमें कुमारी उदासीनता करे तो उदासीन फल जानना चाहिये यह आपसे देवीचरित्र वर्णन किया ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे गंगागर्भसम्भूतसर्वविद्यासम्पन्नमिश्रसुखानंदात्मजविद्यावारिधिपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतौ भाषाटीकायां पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते नवमस्कन्धः समाप्तः

अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते दशमस्कन्धः प्रारभ्यते

दोहा—शिवा भवानी भक्तहित,—कारिणि सब सुखमूल। जन ज्वालाप्रसादपर, सदा रहो अनुकूल ॥ श्रीनारदजी बोले हे नारायण अधराधार ! सबके पालनके कारण आपका कहा हुआ पापनाशन देवी चरित्र सुना ॥ १ ॥ सब मन्वन्तरमें वह देवी जो स्वरूप धारण करती है जिस आकारसे वह महेश्वरी प्रादुर्भाव करती है ॥ २ ॥ वह देवी महात्म्य संयुक्त कथा हमसे कहिये जिस प्रकार वह जिससे पूजित और स्तुतिको प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ और भक्तोंके भक्तवत्सलतासे मनोरथ पूर्ण करती है वह हम देवीचरित्र सुननेवालोंको ॥ ४ ॥ वर्णन कीजिये जिससे बड़े सुखकी प्राप्ति हो । श्रीनारायण बोले हे महर्षे ! पापनाशन चरित्रको श्रवण कीजिये ॥ ५ ॥ जो भक्तोंको भक्ति देनेवाला और महासंपत्ति करनेवाला है लोकपितामह ब्रह्मा महातेजस्वी जगत्के आदिकारण ॥ ६ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ नारद उवाच ॥ नारायण धराधार सर्वपालनकारण ॥ भवतोदीरितं देवीचरितं पापनाशनम् ॥ १ ॥ मन्वंतरेषु सर्वेषु सा देवी यत्स्वरूपिणी ॥ यदाकारेण कुरुते प्रादुर्भावं महेश्वरी ॥ २ ॥ तान्नः सर्वान्समाख्याहि देवीमाहात्म्यमिश्रितान् ॥ यथा च येन येनेह पूजिता संस्तुतापि हि ॥ ३ ॥ मनोरथान्पूरयति भक्तानां भक्तवत्सला ॥ तन्नः शुश्रूषमाणानां देवीचरित मुत्तमम् ॥ ४ ॥ वर्णयस्व कृपासिंधो येनाप्नोति सुखं महत् ॥ श्रीनारायण उवाच॥ आकर्णय महर्षे त्वं चरितं पापनाशनम् ॥ ५ ॥ भक्तानां भक्तिजननं महासंपत्तिकारणम् ॥ जगद्योनिर्महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ६ ॥ आविरासीन्नाभिपद्माद्देवदेवस्य चक्रिणः ॥ स चतुर्मुख आसाद्य प्रादुर्भावं महामते ॥ ७ ॥ मनुं स्वायंभुवं नाम जनयामास मानसात् ॥ स मानसो मनुः पुत्रो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ ८ ॥ शतरूपां च तत्पत्नीं जज्ञे धर्मस्वरूपिणीम् ॥ स मनुः क्षीरसिंधोश्च तीरे परमपावने ॥ ९ ॥ देवीमराधयामास महाभाग्यफलप्रदाम् ॥ मूर्तिं च मृन्मयीं तस्या विधाय पृथिवीपतिः ॥ १० ॥ उपासते स्म तां देवीं वाग्भवं स जपन् रहः ॥ निराहारो जितश्वासो नियमव्रतकर्शितः ॥ ११ ॥ एकपादेन संतिष्ठन् धरायामनिशंस्थिरः॥ शतवर्षं जितः कामः क्रोधस्तेन महात्मना ॥ १२ ॥

भगवान् चक्रधारीके नाभिकमलसे प्रगट हुए हे महामते ! इस प्रकार उन चतुर्मुखका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ७ ॥ उन्होंने मनसे स्वायंभुव मनुको प्रगट किया वह ब्रह्मा परमेश्वरी के मानस पुत्र हुए ॥ ८ ॥ धर्मरूपिणी उनकी पत्नी शतरूपा हुई वह मनु क्षीरसागरके परम पावन तटमें ॥ ९ ॥ महाभाग्य फलकी देनेवाली देवीकी आराधना करने लगे राजाकी मृण्मयी मूर्तिका विधान करके ॥१०॥ व एकान्तमें भजन करते वाङ्मय देवीका आराधना करने लगे निराहार श्वास रोके हुए नियमव्रतसे कार्शित ॥ ११ ॥ एक पैरसे निरन्तर पृथ्वीमें खड़े रहे इस प्रकार सौवर्षतक महात्माने काम क्रोध जीते रक्खा ॥ १२ ॥

और हृदयमें देवीके चरणोंका ध्यान करते रहे उनके तपसे जगन्माता देवी प्रगट हुई ॥ १३ ॥ और कहा हे राजन् ! वर माँगो यह आनन्दजनक दिव्य वचन सुन राजा ॥ १४ ॥ हृदयमें स्थित उन अमरदुर्लभ वरोंको मागता हुआ मनु बोले हे विशालाक्षि ! सर्वान्तरमें स्थित आपकी जय हो ॥ १५ ॥ हे माननीय ! पूजनीय जगत्की माता सब मंगल मंगला तुम्हारी कटाक्षसेही ब्रह्मा जगत् निर्माण करते हैं ॥ १६ ॥ भगवान् पालते और शंकर क्षणमें संहार करते हैं, तुम्हारी आज्ञासेही इन्द्र त्रिलोकीका शासक हैं ॥ १७ ॥ और यमराज दण्डसे प्राणियोंको शिक्षा देते हैं और वरुण पाशलिये अस्मदादिका पालन करते हैं ॥ १८ ॥ निधिपतित्व कुबेर करता है नैर्ऋत अग्नि वायु ईशान शेष ॥१९॥ यह सब तुम्हारी शक्तिसे होकर तुम्हारी शक्तिसेही परिबृंहित

भजे स्थावरतां देव्याश्चरणौ चिंतयन् हृदि ॥ तस्य तत्तपसा देवी प्रादुर्भूता जगन्मयी ॥१३॥ उवाच वचनं दिव्यं वरं वरय भूमिप ॥ तत आनन्दजनकं श्रुत्वा वाक्यं महीपतिः ॥१४॥ वरयामास तान्हृत्स्थान् वरानमरदुर्लभान् ॥ मनुरुवाच ॥ जय देवि विशालाक्षि जय सर्वांतर स्थिते ॥१५॥ मान्ये पूज्ये जगद्धात्रि सर्वमंगल मंगले ॥ त्वत्कटाक्षावलोकेन पद्मभूः सृजते जगत् ॥१६॥ वैकुंठः पालयत्येव हरः संहरते क्षणात् ॥ शचीपति स्त्रिलोक्याश्च शासको भवदाज्ञया ॥ १७ ॥ प्राणिनः शिक्षयत्येव दंडेन च परेतराट् ॥ यादसामधिपः पाशी पालनं मादृशामपि ॥ १८ ॥ कुरुते स कुबेरोऽपि निधीनां पतिरव्ययः ॥ हुतभुङ्नैर्ऋतो वायुरीशानः शेष एव च ॥ १९ ॥ त्वदंशसंभवा एव त्वच्छक्तिपरिबृंहिताः ॥ अथापि यदि मे देवि वरो देयोऽस्ति सांप्रतम् ॥ २० ॥ तदा प्रह्वाः सर्गकार्ये विघ्ना नश्यन्तु मे शिवे ॥ वाग्भव स्याऽपि मन्त्रस्य ये केचिदुपसेविनः ॥२१॥ तेषां सिद्धिः सत्वरापि कार्याणां जायतामपि ॥ ये संवादमिमंदेवि पठंति श्रावयंति च ॥२२॥ तेषां लोके भुक्तिमुक्ती सुलभे भवतां शिवे ॥ जाति स्मरत्वं भवतु वक्तृत्वं सौष्ठवं तथा ॥ २३ ॥ ज्ञानसिद्धिः कर्ममार्गसंसिद्धिरपि चास्तु हि ॥ पुत्रपौत्रसमृद्धिश्च जायेदित्येव मे वचः ॥ २४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

होते हैं तो भी हे देवि ! यदि इस समय मुझे वर देती हो तो ॥ २० ॥ हे शिवे ! इस बड़े सृष्टिके कार्यमें मेरे विघ्न नाशको प्राप्त हों जो वाग्बीज मंत्रका सेवन करते हैं ॥ २१ ॥ उनके कार्योंमें शीघ्रही सिद्धि हो जो इस देवीके संवादको पढ़ते सुनाते हैं ॥ २२ ॥ हे शिवे ! लोकमें उनको भक्ति मुक्ति सुलभ हो तुम्हारी कृपासे स्मरणता प्राप्त हो ॥ २३ ॥ ज्ञानसिद्धि कर्ममार्ग सिद्धि भी हो तथा पुत्र पौत्रकी समृद्धि हो यही मेरा वचन है ॥ २४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्री देवी बोली हे राजन् ! हे महाबाहो ! यह सब कुछ होगा जो तैंने प्रार्थना की यह मैं प्रदान करती हूं ॥ १ ॥ हे दैत्येन्द्र ! मैं प्रसन्न हूं मैं दैत्येन्द्रोंकी नाशक अमोघविक्रमवाली तुम्हारे मायाबीज जप और तपसे ॥ २ ॥ प्रसन्न हूं तुम्हारा राज्य निष्कंटक होगा और पुत्र वंश करनेवाले होंगे हे वत्स ! मुझमें तुम्हारी दृढभक्ति और अन्तमें सत् पदकी प्राप्ति होगी ॥३॥ हे महामुने ! इस प्रकार मनुराजसे कहकर देवी देखते २ विन्ध्यपर्वतको चली गई ॥ ४ ॥ जिस विंध्याचलको महर्षि अगस्त्यने रुद्ध कर लिया था जो पर्वत एकसमय सूर्यका मार्ग रोकनेको उठ खड़ा हुआ था ॥ ५ ॥ वह वरदायक विंध्यवासिनी विष्णुकी अवरजा सब लोकोंकी पूजनीया हुई ॥ ६ ॥ ऋषि बोले हे सूतजी ! यह विंध्याचल क्या है और किस प्रकार आकाश स्पर्श करने लगा था और इसने सूर्यका

श्रीदेव्युवाच ॥ भूमिपाल महाबाहो सर्वमेतद्भविष्यति यत्त्वया प्रार्थितं तत्ते ददामि मनुजाधिप ॥१॥ अहं प्रसन्ना दैत्येन्द्रनाशनाऽमोघविक्रमा ॥ वाग्भवस्य जपेनैव तपसा ते सुनिश्चितम् ॥२॥ राज्यं निष्कंटकं तेऽस्तु पुत्रा वंशकरा अपि॥मयि भक्तिर्दृढा वत्स मोक्षांते सत्यदे भवेत्॥३॥एवं वरान्महादेवी तस्मै दत्त्वा महात्मने॥पश्यतस्तु मनोरेव जगाम विंध्यपर्वतम्॥४॥ योऽसौ विंध्याचलो रुद्धः कुम्भोद्भवमहर्षिणा ॥ भानुमार्गावरोधार्थं प्रवृत्तो गगनं स्पृशन् ॥५॥ सा विंध्यवासिनी विष्णोरनुजा वरदेश्वरी ॥ बभूव पूज्या लोकानां सर्वेषां मुनिसत्तम॥६॥ऋषय ऊचुः॥कोऽसौ विन्ध्या चलः सूत किमर्थं गगनं स्पृशन्॥भानुमार्गावरोधं च किमर्थं कृतवानसौ॥७॥कथं च मैत्रावरुणिः पर्वतं तं महोन्नतम्॥प्रकृ तिस्थं च चकारेति सर्वं विस्तरतो वद ॥८॥ नहि तृप्यामहे साधो त्वदास्यगलितामृतम् ॥ देव्याश्चरित्ररूपाख्यं पीत्वा तृष्णा प्रवर्धते ॥९॥ सूत उवाच ॥ आसीद्विन्ध्याचलो नाम मान्यः सर्वधराभृताम् ॥ महावनसमूहाढ्यो महापादपसंवृतः ॥ १० ॥ सुपु ष्पितैरनेकैश्च लतागुल्मैस्तु संवृतः मृगा वराहा महिषा व्याघ्राः शार्दूलका अपि ॥ ११॥ वानराः शशका ऋक्षाः शृगालाश्च समंततः विचरंति सदा हृष्टः पुष्टः एव महोद्यमाः ॥१२॥ नदीनदजलाक्रांतो देवगंधर्वकिन्नरैः ॥ अप्सरोभिः किंपुरुषैः सर्वकामफलद्रुमैः ॥ १३ ॥

मार्ग क्यों रोका था ॥ ७ ॥ और किस प्रकार अगस्त्यजीने महा ऊँचे पर्वतको प्रकृतिमें स्थित किया यह आप विस्तारसे कहो ॥ ८ ॥ हे साधो ! आपके मुखसे निर्गत देवीचरित्ररूपी अमृतको पानकरके हम तृप्त नहीं होते हैं ॥९॥ सूतजी बोले विन्ध्याचल सब पर्वतों में मान्य महावन और वृक्षोंसे समृद्ध है ॥ १० ॥ वह अनेक पुष्प लता गुल्मोंसे युक्त मृग वराह महिष व्याघ्र शार्दूल ॥ ११ ॥ वानर खरगोश रीछ शृगालोंसे निषेवित जहां यह सब हृष्ट पुष्ट होकर विचरण करते हैं ॥ १२ ॥ नदी नदोंके जलोंसे आक्रांत, देव गंधर्व किन्नर अप्सरा किंपुरुष और कामना देनेवाले वृक्षोंसे सम्पन्न ॥ १३ ॥

पर्वतराज हैं वहां एक समय पृथ्वीपर्यटन करते हुए मुनिराज अपनी इच्छासे आकर प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ उनको देखतेही विंध्यका अधिष्ठात्री देवता अपने आसनसे शीघ्रताके सहित उठ पाद्य अर्घ्य दे ऋषिराजको आसन देता हुआ ॥ १५ ॥ देवर्षिके प्रसन्न होकर बैठनेपर 'विन्ध्यने कहा' हे देवर्षे ! इस समय आपने कहांसे आगमन किया है ॥ १६ ॥ आपके आनेसे मेरा मन्दिर पवित्र हुआ हे देव ! आपका विचरण सूर्यके समान अभयके निमित्तही है ॥ १७ ॥ सो जो आपका मनोवृत्त हो उसको कहिये नारदजी बोले हे पर्वतराज ! मैं सुमेरुसे आता हूं ॥ १८ ॥ वहां मैंने इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण आदिके लोक देख सब लोकपालोंके भवन चारों ओर हैं ॥ १९ ॥ जो कि मैंने अनेक भोगोंके देनेवाले देखे ऐसा कह नारदने फिर श्वास लिया ॥ २० ॥ मुनिको श्वास लेते

एतादृशे विंध्यनगे कदाचित्पर्यटन्महीम्॥देवर्षिः परमप्रीतो जगाम स्वेच्छया मुनिः॥१४॥ तं दृष्ट्वासनगो मंक्षु तूर्ण मुत्थाय संभ्रमात्॥ पाद्यमर्घ्यं तथा दत्त्वा वरासनमथार्पयत्॥१५॥सुखोपविष्टं देवर्षिं प्रसन्नं नग ऊचिवान्॥ विंध्य उवाच॥देवर्षे कथ्यतां जात आगमः कुत उत्तमः॥१६॥तवाऽऽगमनतो जातमनर्घ्यं मम मंदिरम्॥तव चंक्रमणं देवाऽभयार्थं हि यथा रवेः॥१७॥ अपूर्व जन्मनो वृत्तं तद्ब्रूहि मम नारद॥नारद उवाच॥ममाऽऽगमनमिंद्रारे जातं स्वर्णगिरेरथ ॥ १८ ॥ तत्र दृष्टा मया लोकाः शक्राग्नियमपाशिनाम् ॥ सर्वेषांलोकपालानां भवनानि समंततः॥१९॥ मया दृष्टानि विंध्यागनानाभोगप्रदानि च ॥ इति चोक्त्वा ब्रह्मयोनिः पुनरुच्छ्वासमाविशत् ॥२०॥ उच्छ्वसंतं मुनिं दृष्ट्वा पुनः पप्रच्छ शैलराट् ॥ उच्छ्वासकारणं किं तद्ब्रूहि देवऋषे मम ॥ २१ ॥ इत्याकर्ण्य नगस्योक्तं देवर्षिरमितद्युतिः ॥ अब्रवीच्छ्वासस्य कारणम् ॥ २२ ॥ गौरीगुरुस्तु हिमवाञ्छिवस्य श्वशुरः किल ॥ संबंधित्वात्पशुपतेः पूज्य आसीत्क्षमाभृताम् ॥२३॥ एवमेव च कैलासः शिवस्यावथः प्रभुः॥ पूज्यः पृथ्वीभृतां जातो लोके पापौघ दारणः॥२४॥ निषधः पर्वतो नीलो गंधमादन एव च ॥ पूज्याः स्वस्थानमासाद्य सर्व एव क्षमाभृतः॥ २५ ॥ यं पर्येति च विश्वात्मा सहस्रकिरणः स्वराट् ॥ सग्रहर्क्षगणोपेतः सोऽयं कनकपर्वतः ॥ २६ ॥

देखकर फिर विन्ध्य पूछा हे ऋषिराज दीर्घनिःश्वास लेनेका कारण कहिये ॥ २१ ॥ पर्वतराजके यह वचन सुन परम द्युतिमान् नारदजी बोले हे वत्स ! मेरे दीर्घश्वासका कारण सुनो ॥ २२ ॥ गौरी गुरु हिमालय शिवके श्वसुर हैं वह पशुपतिके सम्बन्ध सदा प्राणियोंसे पूजित हैं ॥ २३ ॥ एक कैलास शिवका निवासस्थान है वह भी पाप नाशक होनेसे लोकोंसे पूज्य है ॥ २४ ॥ निषध पर्वत नीलपर्वत गन्धमादन पर्वत यह सब पर्वत अपने स्थानको प्राप्त होकर सदा पूजनीय हैं ॥ २५ ॥ जिसकी विश्वात्मा सहस्रकिरण ग्रह नक्षत्र गणोंके सहित परिक्रमा करते हैं वह यह कनक पर्वत है ॥ २६ ॥

वह सब भूमिके पर्वतोंसे अपनेको श्रेष्ठ मानते हैं कि सबसे अग्रणी मैं हूं मेरे समान कोई नहीं ॥ २७ ॥ इस प्रकार मानियोंके अभिमान देखकर मैं श्वास त्याग करता हूं हम तपोबल वालोंका भी ऐसा कृत्य नहीं होता ॥ २८ ॥ यह बात मैंने प्रसंगसे कही अन्तमें ब्रह्मलोकको गमन करता हूं ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ इस प्रकार महातेजस्वी नारदजी उसको उपदेश देकर स्वच्छन्द विचरण करते ब्रह्म लोकको चले गये ॥ १ ॥ मुनिके चले जानेपर विन्ध्यको बड़ी चिन्ता हुई सदा शोकके कारण उसको शांतिकी प्राप्ति न हुई ॥ २ ॥ मैं अब क्या करूं मेरुको किस प्रकार जय करूं मेरे मनमें शांति और स्वास्थ्य नहीं होता ॥ ३ ॥ 'मेरे उत्साह' मान और कीर्तिको धिक्कार है तथा कुलको धिक्कार है' मेरे

आत्मानं मनुते श्रेष्ठं वरिष्ठं च धरा भृताम् ॥ सर्वेषामहमेवाग्र्यो नास्ति लोकेषु मत्समः ॥२७॥ एवं मानाभिमानं तं स्मृत्वोच्छ्वासो मयोज्झितः ॥ अस्तु नैतावता कृत्यं तपोबलवतां नग ॥ प्रसंगतो मयोक्तं ते गमिष्यामि निजं गृहम्॥२८॥इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे द्वितीयोध्यायः ॥२॥ सूत उवाच ॥ एवं समुपदिश्यायं देवर्षिः परमः स्वराट् ॥ जगाम ब्रह्मणो लोकं स्वैरचारी महामुनिः॥१॥ गते मुनिवरे विंध्य चिंतां लेभेऽनपायिनीम् ॥ नैव शांतिं स लेभे च सदांतः कृतशोचनः ॥२॥ कथं किंत्वत्र मे कार्यं कथं मेरुं जयाम्यहम् ॥ नैव शांतिं लभे नाऽपि स्वास्थ्यं मे मानसे भवेत् ॥३॥ "धिगुत्साहं च मानं च धिङ्मे कीर्तिं च धिक्कुलम्॥"धिग्बलं मे पौरुषं धिक् स्मृतं पूर्वैर्महात्मभिः ॥ एवं चिंतयमानस्य विंध्यस्य मनसि स्फुटम् ॥ ४ ॥ प्रादुर्भूता मतिः कार्ये कर्तव्या दोष कारिणी ॥ मेरुप्रदक्षिणां कुर्वन्नित्यमेव दिवाकरः ॥ ५ ॥ सग्रहर्क्षगणोपेतः सदा दृप्यत्ययं नगः ॥ तस्य मार्गस्य संरोधं करिष्यामि निजैः करैः ॥ ६ ॥ तदा निरुद्धो द्युमणिः परिक्रामेत्कथं नगम् ॥ एवं मार्गे निरुद्धे तु मया दिनकरस्य च ॥ ७ ॥ भग्नदर्पो दिव्यनगो भविष्यति विनिश्चितम् ॥ एवं निश्चित्य विंध्याद्रिः खं स्पृशन्ववृधे भुजैः ॥ ८ ॥

बल पौरुषको धिक्कार है जिसको पूर्व महात्माओंने सराहा है इस प्रकार चिंता करते विन्ध्यके मनमें ॥ ४ ॥ दोषकार्य करनेकी मति प्रकट हुई की यह सूर्य नित्य मेरुकी प्रदक्षिणा करते उदय होते हैं ॥ ५ ॥ ग्रहनक्षत्र गणोंके सहित परिक्रमा होनेसे मेरु सदा अभिमानमें है मैं अपने शृंगोंसे इसका मार्ग रोध करूंगा ॥ ६ ॥ तब सूर्य निरुद्ध होकर पर्वतको परिक्रमा कैसे करेगा इस प्रकार मेरे द्वारा सूर्य मार्ग निरुद्ध होनेसे ॥ ७ ॥ तो यह दिव्य पर्वत भग्नदर्प होगा इसमें संदेह नहीं यह विचार विन्ध्याद्रि अपने शृंगोंसे आकाशको स्पर्श करता बढ़ने लगा ॥ ८ ॥

और बड़े उन्नत शृंगोंसे सबको व्याप्त कर बढा कि कब सूर्य उदय हो और मैं उसका रोध करूं ॥ ९ ॥ इस विचारमें ही उसको रात बीत गई जिस समय प्रभातको सूर्यकिरणोंसे दिशा अंधकारहीन हुई ॥ १० ॥ और उदयाचलसे सूर्य उदय होने लगे और सूर्यकी उज्ज्वल किरणोंसे आकाश निर्मल हुआ ॥ ११ ॥ कमल खिले कुमोंदिनी कुँभिलाई सब लोक अपने अपने कार्यमें लगे ॥ १२ ॥ देवताओंको हव्य पितरोंको कव्य भूतोंको बलि दी जाने लगी, पराह्न तीसरा प्रहर और मध्याह्न समय सूर्य ॥ १३ ॥ वियोगिनीरूप पूर्व और आग्नेयी दिशाको सावधान करते हुए जो चिरकालकी विरहवती कामिनीके समान प्रज्वलित हो रही थी ॥ १४ ॥ इस प्रकार सूर्य अग्नि दिशाको छोड़कर जब दक्षिण दिशाको गमन करने लगे ॥ १५ ॥ तब आगे चलनेको समर्थ

महोन्नतैः शृंगवरैः सर्वं व्याप्य व्यवस्थितः ॥ कदोदेष्यति भास्वांवास्तं रोधयिष्याम्यहं कदा ॥ ९ ॥ एवं संचिन्तयानस्य सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ प्रभातं विमलं जज्ञे दिशो वितिमिराः करैः ॥१०॥ कुर्वन्स निर्गतो भानुरुदयायोदये गिरौ ॥ प्रकाशते स्म विमलं नभो भानुकरैः शुभैः ॥११॥ विकासं नलिनीं भेजे मीलनं च कुमुद्वती ॥ स्वानि कार्याणि सर्वे च लोकाः सम्प्रपतस्थिरे ॥१२॥ हव्यं कव्यं भूतबलिं देवानां च प्रवर्धयन् ॥ प्राह्णापराह्णमध्याह्नविभागेन त्विषां पतिः ॥१३॥ एवं प्राचीं तथाग्नेयीं समाश्वास्य वियोगिनीम् ॥ ज्वलंतीं चिरकालीनविरहादिव कामिनीम् ॥१४॥ भास्करोऽथ कृशानोश्च दिशं नूनं विहाय च ॥ याम्यां गंतु ततस्तूर्णं प्रतस्थे कमलाकरः ॥१५॥ न शेकुश्चाग्रतो मन्तुं ततोऽनूरुर्व्यजिज्ञपत् ॥ अनूरुरुवाच ॥ भानो मानोन्नतो विंध्यो निरुध्य गगनं स्थितः ॥१६॥ स्पर्धते मेरुणा प्रेप्सुस्त्वद्दत्तां च प्रदक्षिणाम् ॥ सूत उवाच ॥ अनूरुवाक्यमाकर्ण्य सविता ह्यसौ चिंतयन् ॥ १७ ॥ अहो गगनमार्गोऽपि रुध्यते चाऽतिविस्मयः ॥ प्रायः शूरो न किं कुर्यादुत्पथे वर्त्मनि स्थितः ॥१८॥ निरुद्धो नो वाजिमार्गो दैवं हि बलवत्तरम् ॥ राहुबाहुग्रहव्यग्रो यः क्षणं नावतिष्ठते ॥ १९ ॥ स चिरं रुद्धमार्गोऽपि किं करोति विधिर्बली ॥ एवं च मार्गे संरुद्धे लोकाः सर्वे च सेश्वराः ॥ २० ॥

न हुए उस समय वरुणने कहा, वरुण बोले हे सूर्य ! इस समय मानी विन्ध्य पर्वत ऊपरके उठा है ॥ १६ ॥ और आपसे प्रदक्षिणा पानेवाले मेरुसे स्पर्धा करता है, सूतजी बोले वरुणके वचन सुन सूर्य विचारने लगे ॥ १७ ॥ अहो आश्चर्य है क्या आकाशमार्ग भी रुद्ध हो सकता है उत्पथमार्गमें स्थित होकर शूर क्या नहीं कर सकते ॥ १८ ॥ मेरे अश्व मार्गमें रुकेंगे दैवही बलवान् है जो राहुकी बाहुसे व्यग्र होकर क्षणमात्रको भी स्थित नहीं होते ॥ १९ ॥ वह चिरकालतक मार्गमें रुद्ध होंगे बली विधाता क्या करेगा इस प्रकार रुद्धमार्ग होनेपर सबलोक और सब ईश्वर ॥ २० ॥

शरण और कर्तव्यको नहीं जानते हुए चित्रगुप्तादि भी सूर्यके द्वाराही कालको जानते हैं ॥ २१ ॥ वह भी विन्ध्य पर्वतसे रुद्ध होते हैं अहो देव बड़ा विपरीत है जब इस प्रकार स्पर्धा करते हुए गिरिदेवने सूर्यके रोकनेकी इच्छा की ॥ २२ ॥ उस समय स्वाहा स्वधाकार नष्ट होकर प्रायः जगत्‌ही नष्ट होने लगा इस प्रकार पश्चिम और दक्षिणके आलोक ॥ २३ ॥ निद्रासे नेत्रमूँदकर निशाको प्राप्त हुए पश्चिम और उत्तरके देश दिन रहनेसे तीक्ष्ण तापसे तपने लगे ॥ २४ ॥ प्रजागण मृत नष्ट भग्न और विनाशको प्राप्त होने लगी स्वधा और कव्यसे वर्जित हो जगत्‌में हाहाकार होने लगा ॥२५॥ देवता इन्द्र उद्विग्न होकर क्या करें इस प्रकार कहने लगे ॥ २६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूतजी बोले तब सम्पूर्ण

नान्वविंदत शरणं कर्तव्यं नान्वपद्यत ॥ चित्रगुप्तादयः सर्वेकालं जानंति सूर्यतः॥२१॥स रुद्धो विंध्यगिरिणा अहो दैवविपर्ययः ॥ यदा निरुद्धः सविता गिरिणा स्पर्धया तदा ॥२२॥ नष्टः स्वाहास्वधाकारो नष्टप्रायमभूज्जगत् ॥ एवं च पश्चिमा लोका दाक्षिणात्यास्तथैव च ॥२३॥निद्रामीलितचक्षुष्का निशामेव प्रपेदिरे॥प्रांचस्तथोत्तराहाश्च तीक्ष्णतापप्रतापिताः॥२४॥मृता नष्टाश्च भग्नाश्च विनाशमभजन्प्रजाः॥ हाहाभूतं जगत्सर्वं स्वधाकव्यविवर्जितम् ॥ देवाः सेंद्राः समुद्विग्नाः किं कुर्म इतिवादिनः ॥ २६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे देवीमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ सूत उवाच ॥ ततः सर्वे सुरगणा महेंद्र प्रमुखास्तदा ॥ पद्मयोनिं पुरस्कृत्य रुद्रं शरण मन्वयुः ॥ १ ॥ उपतस्थुः प्रणतिभिः स्तोत्रैश्चारुविभूतिभिः ॥ देवदेवं गिरिशयं शशिलोलितशेखरम् ॥ २ ॥ देवा ऊचुः ॥ जयदेव गणाध्यक्ष उमाललितपंकज ॥ अष्टसिद्धिविभूतीनां दात्रे भक्तजनाय ते ॥ ३ ॥ महामाया विलसितस्थानाय परमात्मने ॥ वृषांका यामरेशाय कैलासस्थितिशालिने ॥ ४ ॥ अहिर्बुध्न्याय मान्याय मनवे मानदायिने ॥ अजाय बहुरूपाय स्वात्मारामाय शंभवे ॥ ५ ॥ गणनाथाय देवाय गिरिशाय नमोऽस्तु ते ॥ महाविभूतिदात्रे ते महाविष्णुस्तुताय च ॥ ६ ॥

देवता महेन्द्र आदि ब्रह्माजीको आगेकर शंकरकी शरणमें गये ॥ १ ॥ और नम्रहो अनेक प्रकारकी स्तुति करने लगे उस समय देवदेव गिरिशायी चन्द्रमाको मस्तकपर धारण करनेवाले शंकरकी इस प्रकार प्रार्थना करने लगे ॥२॥ देवता बोले हे देवगणोंके अधिपति उमासे सेवित चरणवाले भक्तजनोंको आठ सिद्धि और विभूतिके देनेवाले ॥ ३ ॥ महामायासे परमात्मारूप स्थानपर शोभित वृषांके अमरोंके पति कैलासपर निवास करनेवाले ॥४॥ अहिर्बुध्नमान्य मनुके मानदेने वाले अज बहुरूप स्वात्माराम शंभु ॥ ५ ॥ गणनाथदेव गिरिशायीके निमित्त प्रणाम है महाविभूतिके दाता महाविष्णुके पुत्र ॥ ६ ॥

दे. भा.
॥ ५ ॥

विष्णुके हृदय कमलमें वास करनेवाले महायोगमें रत योगगम्य योगस्वरूप योगियोंके पतिके निमित प्रणाम है ॥ ७ ॥ आप योगीशके निमित्त प्रणाम है योगियोंके फलदाता दीन दानमें तत्पर दया सागररूप ॥ ८ ॥ दुःखोंके शान्त करने वाले उग्रीवीर्य गुणमूर्ति वृषध्वज कालकालके कलन करनेवाले आपको प्रणाम है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले जब देवताओंने इस प्रकार शंकरकी स्तुति की तब हँसकर गंभीर वाणीसे शिवजी देवताओंसे बोले ॥ १० ॥ श्रीभगवान् बोले हे देवताओ ! तुम्हारे इस रूपसे हम प्रसन्न हैं हे देवताओ ! मैं तुम सबके मनोरथ पूर्व करूंगा ॥ ११ ॥ देवता बोले हे सर्वदेवेश गिरिशायी भालचन्द्र महाबली आप दुःख दूर करनेवाले हमारा मंगल करो ॥ १२ ॥ विन्ध्याचल पर्वत से द्वेषकर ऊंचा हुआ है वह सूर्यका मार्ग निरोध कर

विष्णुहृत्कंजवासाय महायोगरताय च ॥ योगगम्याय योगाय योगिनां पतयेनमः ॥७॥ योगीशाय नमस्तुभ्यं योगानां फलदायिने ॥
दीनदानपरायापि दयासागरमूर्तये ॥ ८ ॥ आर्तिप्रशमनयोग्रवीर्याय गुणमूर्तये ॥ वृषध्वजाय कालाय कालकालाय ते नमः ॥ ९ ॥
सूत उवाच ॥ एवं स्तुतः स देवेशो यज्ञभुग्भिर्वृषध्वजः ॥ प्राह गंभीरया वाचा प्रहसन्विबुधर्षभान् ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रसन्नो
ऽहं दिविषदः स्तोत्रेणोत्तमपूरुषाः ॥ मनोरथं पूरयामि सर्वेषां देवतर्षभाः ॥११॥ देवा ऊचुः ॥ सर्वदेवेश गिरिश शशिमौलिविराजता ॥
अर्तानां शंकरस्त्वं च शं विधेहि महाबल ॥ १२ ॥ पर्वतो विंध्यनामास्ति मेरुद्वेष्टा महोन्नतः ॥ भानुमार्गनिरोद्धा हि सर्वेषां दुखदोऽनघ
॥ १३ ॥ तद्वृद्धिस्तंभयेशान सर्वकल्याणकृद्भव ॥ भानुसंचाररोधेन कालज्ञानं कथं भवेत ॥ १४ ॥ नष्टस्वाहास्वधाकारे लोके कः शरणं
भवेत् ॥ अस्माकं च भयार्तानां भवानेव हि दृश्यते ॥ १५ ॥ दुःखनाशकरो देव प्रसीद गिरिजापते ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नाऽस्माकं
शक्तिरस्तीह तद्वृद्धिस्तंभने सुराः ॥१६॥ इममेवं वदिष्यामो भगवंतं रमाधवम् ॥ सोस्माकं प्रभुरात्मा च पूज्यः कारणरूपधृक्॥१७॥

सबको दुःख देता है ॥ १३ ॥ हे ईशान ! सब मंगलकर्त्ता आप इसकी वृद्धिको निवारण कीजिये, यदि सूर्यका संचार रुक गया तो कालज्ञान किस प्रकार होगा ॥ १४ ॥ स्वाहा स्वधाकार नष्ट होनेमें लोक किसकी शरण होंगे, हम भयार्तोंकी आपही शरण हैं ॥ १५ ॥ हे गिरिजापते ! हमारे दुःखनाशक होकर हमपर आप कृपा कीजिये, श्रीभगवान् बोले हे देवताओ ! इस समय नियमके पालनानुसार तो हम उसकी वृद्धि नहीं रोकेंगे ॥ १६ ॥ परन्तु भगवान् माधवसे आप कहिये वह हम सबके आत्मा पूज्य कारणरूप धारी हैं ॥ १७ ॥

भा.टी.द.
अ० ४.

गोविन्द भगवान् विष्णु सब कारणोंके कारण हैं उनसे चलकर कहें वे सबका दुःख नाश करेंगे॥ १८॥ शिवजीके यह वचन सुनकर इन्द्रादिक देवता गणोंके सहित रुद्रको आगेकर कंपित होते हुए शीघ्रतासे वैकुण्ठको गये ॥ १९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूतजी बोले वे सब देवता वहां जाय कमललोचन, रमानाथ जगद्गुरु प्रभासे व्याप्त भगवान् विष्णुका दर्शन करते हुए ॥ १ ॥ और गद्गद स्वरसे स्तोत्र पाठ करने लगे, देवता बोले हे महापुरुषपूर्वज विष्णु ! आपकी जय हो ॥२॥ हे दैत्यशत्रुकाम जनक सब कामना और फलको देनेवाले महावराह गोविन्द महाय ज्ञके स्वरूपवाले ॥ ३ ॥ महाविष्णु, ध्रुवेश, आद्य, जगत्‌के उत्पत्ति कारण मत्स्यावतारमें वेदोंका उद्धार करनेवाले आधाररूपका ॥ ४ ॥ सत्यव्रत धराधीश

गोविंदो भगवान्विष्णुः सर्वकारण कारणः॥तं गत्वा कथयिष्यामः स दुःखांतो भविष्यति ॥१८॥ इत्येवमाकर्ण्य गिरीशभाषितं देवाश्च सेंद्राःसपयोजसंभवाः ॥ रुद्रं पुरस्कृत्य च वेपमाना वैकुंठलोकं प्रति जग्मुरंजसा ॥ १९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ ते गत्वा देवदेवेशं रमानाथं जगद्गुरुम् ॥ विष्णुं कमलपत्राक्षं ददृशुः प्रभयान्वितम् ॥ १ ॥ स्तोत्रेण तुष्टुवुर्भक्त्या गद्गदस्वरसत्कृताः ॥ देवा ऊचुः ॥ जय विष्णो रमेशाऽद्य महापुरुषपूर्वज ॥ २ ॥ दैत्यारे कामजनक सर्वका मफलप्रद ॥ महावराहगोविंद महायज्ञस्वरूपक ॥ ३ ॥ महाविष्णो ध्रुवेशाऽऽद्य जगदुत्पत्तिकारण ॥ मत्स्यावतारे वेदानामुद्धाराधार रूपक ॥ ४ ॥ सत्यव्रतधराधीश मत्स्यरूपाय ते नमः ॥ जयाऽकूपारदैत्यारे सुरकार्यसमर्पक ॥ ५ ॥ अमृतप्राप्तिकरेशान कूर्मरूपाय ते नमः ॥ जयाऽऽदिदैत्यनाशार्थमादिसूकररूपधृक् ॥ ६ ॥ मह्युद्धारकृतोद्योगकोलरूपाय ते नमः ॥ नारसिंहं वपुः कृत्वा महादैत्यं ददार यः ॥ ७ ॥ करजैर्वरदृप्तांगं तस्मै नृहरये नमः ॥ वामनं रूपमास्थाय त्रैलोक्यैश्वर्यमोहितम् ॥ ८ ॥ बलिं संछलयामास तस्मै वाम नरूपिणे ॥ दुष्टक्षत्रविनाशाय सहस्रकरशत्रवे ॥ ९ ॥

मत्स्यरूपधारी के निमित्त नमस्कार है अकूपार दयासागर दैत्यशत्रु देवकार्य कर्ता ॥ ५ ॥ अमृत प्राप्ति कर ईशान कूर्मरूप आपके निमित्त प्रणाम है जयादि दैत्यके नाश निमित्त आदि सूकररूप धारण करनेवाले ॥ ६ ॥ मही उद्धारके उद्योगकर्त्ता कालरूप आपके निमित्त प्रणाम है जो महानृसिंहरूप धारण कर महादैत्यकुलको नष्ट करते हुए ॥ ७ ॥ नखोंसे दीप्त अंगवाले नृसिंहजीके निमित्त प्रणाम है वामनरूप धारणकर त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे मोहित हुए ॥ ८ ॥ बलिको छलते हुए उस वामनरूप धारीके निमित्त प्रणाम है दुष्ट शत्रुके नाश करने सहस्र भुजावाले शत्रुको मारते हुए ॥ ९ ॥

उन रेणुकागर्भसंभूत परशुरामको प्रणाम है, दुष्ट राक्षस रावणके शिर छेदन करनेवाले ॥ १० ॥ अनन्त विक्रमी रामके निमित्त प्रणाम है, कंस दुर्योधन शिशुपाल राजचिह्नधारी दैत्योंके ॥ ११ ॥ भारसे आक्रान्त हुई पृथ्वीको जिन महाप्रभुने उद्धार किया और पापोंको दूरकर धर्मको स्थापन किया ॥ १२ ॥ बहुत प्रकारसे उन कृष्ण देवके निमित्त प्रणाम है दुष्ट यज्ञको विघात और पशुहिंसा निवृत्तिके लिये ॥ १३ ॥ बौद्धरूप धारण करनेवाले देवके निमित्त प्रणाम है जब लोक म्लेच्छ प्राय होकर दुष्टराजोंसे पीडित हुआ । १४ ॥ तब कल्किरूपधारी आप देवदेवके निमित्त प्रणाम है हे देव ! आपके दशावतार भक्तोंके रक्षा करने ॥ १५ ॥ और दुष्ट दैत्योंके नाशके निमित्त हैं इस कारण आप सब दुःखोंके हरनेवाले हैं भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले नारी

रेणुकागर्भजाताय जामदग्न्याय ते नमः ॥ दुष्टराक्षसपौलस्त्यशिरश्छेदपटीयसे ॥ १० ॥ श्रीमद्दाशरथे तुभ्यं नमोऽनंतक्रमाय च ॥ कंसदुर्योधनाद्यैश्च दैत्यैः पृथ्वीशलांछनैः ॥ ११ ॥ भाराक्रांतां महीं योऽसावुज्जहार महाविभुः ॥ धर्मं संस्थापयामास पापं कृत्वा सुदूरतः ॥ १२ ॥ तस्मै कृष्णाय देवाय नमोऽस्तु बहुधा विभो ॥ दुष्टयज्ञविघाताय पशुहिंसानिवृत्तये ॥ १३ ॥ बौद्धरूपं दधौ योऽसौ तस्मै देवाय ते नमः॥ म्लेच्छप्रायेऽखिले लोके दुष्टराजन्यपीडिते ॥ १४ ॥ कल्किरूपं समादध्यौ देवदेवाय ते नमः ॥ दशवतारास्ते देवभक्तानां रक्षणाय वै ॥ १५ ॥ दुष्टदैत्यविघाताय तस्मात्त्वं सर्वदुःखहृत् ॥ जयभक्तार्तिनाशाय धृतं नारीजलात्मसु ॥ १६ ॥ रूपं येन त्वया देव कोऽन्यस्त्वत्तो दयानिधिः ॥ इत्येवं देवदेवेशं स्तुत्वा श्रीपीतवाससम् ॥१७॥ प्रणेमुर्भक्तिसहिताः साष्टांगं विबुधर्षभाः ॥ तेषां स्तवं समाकर्ण्य देवः श्रीपुरुषोत्तमः ॥ १८॥ उवाच विबुधान्सर्वान् हर्षयञ्छ्रीगदाधरः ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रसन्नोऽस्मि स्तवेनाऽहं देवास्तापं विमुंचथ ॥ १९ ॥ भवतां नाशयिष्यामि दुःखं परमदुःसहम् ॥ वृणुध्वं च वरं मत्तो देवाः परमदुर्लभम् ॥ २० ॥ ददामि परमप्रीतः स्तवस्याऽस्यप्रसादतः ॥ य एतत्पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः ॥ २१ ॥

जलात्मरूपधारी आपकी जय हो ॥ १६ ॥ हे देव ! जो इस प्रकार रूप धारण करे तुमसे अधिक ऐसा दया सागर कौन है ? इस प्रकार देवदेव श्रीनिवासकी स्तुति कर ॥ १७ ॥ देवता साष्टांग भक्तिसे प्रणाम करते हुए श्रीपुरुषोत्तमदेव उनकी स्तुति सुनकर ॥ १८ ॥ उनको प्रसन्न करके गदाधर श्रीभगवान् बोले हे देवताओ ! तुमसे प्रसन्न हूँ आप दुःख त्यागो ॥ १९ ॥ तुम्हारा मैं परम दुःख दूर करूंगा हे देवताओ ! मुझसे तुम परम दुर्लभ वर मांगो ॥ २० ॥ मैं प्रसन्न हो इस स्तवके प्रभावसे तुमको वर देता हूं जो मनुष्य प्रभात ही उठकर इस स्तोत्रका पाठ करता है ॥ २१ ॥

उसको मेरी भक्ति होती और कभी दुःख नहीं होता है तथा उसके घरमें अलक्ष्मी काल कभी नहीं आक्रमण करती ॥ २२ ॥ उपसर्ग, वेताल ग्रह, ब्रह्म, राक्षस, वात, पित्त, श्लेष्माके रोग ॥ २३ ॥ अकाल मरण कभी नहीं होता चिरकालमें रहनेवाली सन्तति और सब सुखदायी भोग होते हैं ॥ २४ ॥ यह सब वस्तु स्तोत्रपाठको प्राप्त होती हैं बहुत कहनेसे क्या है यह स्तोत्र संपूर्ण अर्थका साधक है ॥ २५ ॥ इसके पाठसे मनुष्योंके भुक्ति मुक्ति दूर नहीं रहती हे देवताओ ! जो तुमको दुःख है वह निश्चय कहो ॥ २६ ॥ मैं तुम्हारा वह दुःख दूर करूंगा इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं है सब देवता इस प्रकार श्रीभगवानका वचन सुनकर ॥२७॥ प्रसन्न मन होकर विष्णुसे कहने लगे ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषायां पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

मयिभक्तिं परां कृत्वा न तं शोकः स्पृशेत्कदा ॥ अलक्ष्मी कालकर्णी च नाक्रामेत्तद्गृहं सुराः ॥ २२ ॥ नोपसर्गा न वेताला न ग्रहा ब्रह्मराक्षसाः ॥ न रोगा वातिकाः पैत्ताः श्लेष्मसंभविनस्तथा ॥ २३ ॥ नाऽकालमरणं तस्य कदापि च भविष्यति ॥ संततिश्चिरकालस्था भोगाः सर्वे सुखादयः ॥ २४ ॥ सम्भविष्यंति तन्मर्त्यगृहे यस्तोत्रपाठकः ॥ किं पुनर्बहुनोक्तेन स्तोत्रं सर्वार्थसाधकम् ॥ २५ ॥ एतस्य पठनान्नृणांभुक्तिमुक्ती न दूरतः ॥ देवा भवत्सु यद् दुःखं कथ्यतां तदसंशयम् ॥२६॥ नाशयामि न संदेहश्चाऽत्र कार्योऽणुरेव च ॥ एवं श्रीभगवद्वाक्यं श्रुत्वा सर्वे दिवौकसः ॥ २७ ॥ प्रसन्नमनसः सर्वे पुनरूचुर्वृषाकपिम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ श्रीशस्य वचनादेवाः संतुष्टा सर्व एव हि ॥ प्रसन्नमनसो भूत्वा पुनरेनं समूचिरे ॥ १ ॥ देवा ऊचुः ॥ देव देव महाविष्णो सृष्टिस्थित्यंतकारण ॥ विष्णो विन्ध्यनगोऽर्कस्यमार्गरोधं करोति हि ॥ २ ॥ तेनभानुविरोधेन सर्व एव महाविभो ॥ अलब्धभोगभागा हि किं कुर्मः कुत्र यामहि ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ या कर्त्री सर्वजगतामाद्या च कुलवर्धनी ॥ देवी भगवती तस्याः पूजकः परमद्युतिः ॥४॥ अगस्त्यो मुनिवर्योऽसौवाराणस्यां समासते ॥ तत्तेजोवंचकोऽगस्त्यो भविष्यति सुरोत्तमाः ॥५॥

सूतजी बोले विष्णुके वचनसे सब देवता प्रसन्न हुए और प्रसन्न मन होकर फिर भी कहने लगे ॥ १ ॥ देवता बोले हे देवदेव महाविष्णु ! सृष्टिकी स्थिति और अन्त करनेवाले देव यह विन्ध्यपर्वत सूर्यका मार्ग रोध करता है ॥ २ ॥ सो भानुके विरोधसे विना भाग पाये हुए क्या करें कहां जाँय ॥ ३ ॥ श्रीभगवान् बोले जो सबकी निर्माता आद्यो कुलवर्द्धिनी देवी भगवती है उसीके उपासक परमकान्तिमान् ॥ ४ ॥ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी वाराणसीमें स्थित हैं हे देवताओ ! वह अगस्त्यजी विन्ध्याचलका तेज हरण करेंगे ॥ ५ ॥

दे. भा. उन ब्राह्मण श्रेष्ठ अगस्त्यजीको प्रसन्न कर मुक्तिदायक काशीमें जाय अभयदान मांगो ॥ ६ ॥ सूतजी बोले जब इस प्रकार विष्णुने कहा तब सब देवता
॥ ७ ॥ प्रणाम कर काशीमें गये ॥ ७ ॥ वह देवता क्षणमात्रमें काशीपुरीमें जाय मणिकर्णिकामें भक्तियुक्त प्रणाम करके ॥८॥ देवता पितरोंका तर्पणकर विधिपूर्वक
दान दे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीके आश्रममें आये ॥ ९ ॥ जो प्रशान्त श्वापदोंसे व्याप्त अनेक वृक्षोंसे संघटित मयूर सारस हंस चक्रवाकोंसे उपाश्रित ॥ १० ॥
महावराह, कोल, व्याघ्र, शार्दूल, मृग, रुरु, खङ्ग, शरभसे ॥ ११ ॥ युक्त परम लक्ष्मीसे व्याप्त मुनिश्रेष्ठको देखते हुए और दंडके समान लेटकर सब प्रणाम

तं प्रसाद्य द्विजवरमगस्त्यं परमौजसम् ॥ याचध्वं विबुधाः काशीं गत्वा निःश्रेयसःपदीम् ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं समुपदिष्टास्ते
विष्णुना विबुधोत्तमाः ॥ प्रतीताः प्रणताः सर्वे जग्मुर्वाराणसीं पुरीम् ॥ ७ ॥ क्षणेन विबुधश्रेष्ठा गत्वा काशीपुरीं शुभाम् ॥ मणिकर्णी
समाप्लुत्य सचैलं भक्तिसंयुताः ॥ ८ ॥ सन्तर्प्य देवांश्च पितॄन्दत्त्वा दानं विधानतः ॥ आगत्य मुनिवर्यस्य चाश्रमं परमं महत्
॥ ९ ॥ प्रशांतश्वापदाकीर्णं नानापादपसंकुलम् ॥ मयूरैः सारसैर्हंसैश्चक्रवाकैरुपाश्रितम् ॥ १० ॥ महावराहैः कोलैश्च व्याघ्रैः शार्दूल
कैरपि ॥ मृगैरुरुभिरत्यर्थं खङ्गैः क्षरभकैरपि ॥ ११ ॥ समाश्रितं परमया लक्ष्म्या मुनिवरं तदा ॥ दंडवत्पतिताः सर्वे प्रणेमुश्च पुनः
पुनः ॥ १२ ॥ देवा ऊचुः ॥ जय द्विजगणाधीश मान्य पूज्य धरासुर ॥ वातापीबलनाशाय नमस्ते कुंभयोनये ॥ १३ ॥ लोपामुद्रा
पते श्रीमन्मित्रावरुणसम्भव ॥ सर्वविद्यानिधे गस्त्य शास्त्रयोने नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥ यस्योदये प्रसन्नानि भवंत्युज्ज्वलभांज्यपि ॥
तोयानि तोयराशीनां तस्मै तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥ काशपुष्पविकासाय लंकावासप्रियाय च ॥ जटामंडलयुक्ताय सशिष्याय
नमोऽस्तुते ॥ १६ ॥ जय सर्वामरस्तव्य गुणराशे महामुने ॥ वरिष्ठाय च पूज्याय सस्त्रीकाय नमोऽस्तुते ॥ १७ ॥

करने लगे ॥ १२ ॥ हे द्विजगणोंसे पूज्यमान भूमिसुर ! आपकी जय हो वातापीके बलनाशक अगस्त्यजीको प्रणाम है ॥ १३ ॥ लोपामुद्राके पति श्रीमान्
भा.टी.द. मित्र वरुणसे प्रगट सब विद्याके निधि, शास्त्रयोनि अगस्त्यजीके निमित्त प्रणाम है ॥१४॥ जिनके उदय होते ही जलसमूह निर्मल और उज्ज्वल हो जाते हैं उन
अ० ६ आपके निमित्त प्रणाम है ॥ १५ ॥ काशपुष्पोंके खिलानेवाले लंकावासके प्रिय जटामंडल युक्त शिष्योंके सहित आपको प्रणाम है ॥१६॥ सब देवताओंसे
स्तुतिको प्राप्त गुणराशि महामुनिवरिष्ठ पूज्य स्त्री सहित आपको प्रणाम है ॥ १७ ॥

हे स्वमिन् ! प्रसन्न हो हम सब आपकी शरण हुई हैं हे परमकांतिमान् ! हम दुस्तर शैलके दुःखसे पीडित हुए हैं ॥ १८ ॥ जब परमधर्मात्मा अगस्तजीकी इस प्रकार प्रार्थना की तब हँसते हुए महर्षि प्रसन्न हो बोले ॥ १९ ॥ मुनिने कहा हे देवताओ ! तुम त्रिभुवनमें सबसे श्रेष्ठ हो लोकपाल महात्मा निग्रह अनुग्रह करनेमें समर्थ हो ॥ २० ॥ जो अमरावतीके अधिपति तथा वज्र जिनका आयुध है, जिसके द्वारे आठों सिद्धि निवास करती हैं वह मरुत्पति इन्द्र ॥ २१ ॥ वैश्वानर हव्य कव्यका वहन करनेवाला अग्नि सब देवताओंका मुख है. उसको दुष्कर क्या है ॥ २२ ॥ सब रक्षोंका अधिपति कान्तिमान् सबके कर्मोंका साक्षी दण्डधारी देव है हे देवताओ ! कौन बात इतनी दुर्लभ है ॥२३॥ तो भी जो देवता अपने कार्यकी इच्छा करते हैं वह कहिये मैं अवश्य उसको

प्रसादः क्रियतां स्वामिन्वयं त्वां शरणं गताः ॥ दुस्तराच्छैलजाद्दुःखात्पीडिताः परमद्युते ॥ १८ ॥ इत्येवं तुस्संऽतोगस्त्यो मुनिः
परमधार्मिकः ॥ प्राह प्रसन्नया वाचा विहसन् द्विजसत्तमः ॥ १९ ॥ मुनिरुवाच ॥ भवंतः परमश्रेष्ठा देवास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ लोकपाला
महात्मानो निग्रहानुग्रहक्षमाः॥२०॥ योऽमरावत्यधीशानः ॥ कुलिशं यस्य चाऽऽयुधम् ॥ सिद्धचष्टकं च यद्द्वारि स शक्रो मरुतां पतिः
॥ २१ ॥ वैश्यवानरः कृशानुर्हि हव्यकव्यवहोऽनिशम् ॥ मुखं सर्वामराणां हि सोऽग्निः किं तस्य दुष्करम् ॥ २२ ॥ रक्षोगणाधिपौ
भामः सर्वेषां कर्मसाक्षिकः दंडव्यग्रकरो देवः किं तस्याऽसुकरं सुराः ॥ २३ ॥ तथाऽपि यदि देवेशाः कार्यं मच्छक्तिसिद्धिभृत् ॥
अस्ति चेदुच्यतां देवाः करिष्यामि न संशयः ॥२४॥ एवं मुनिवरे णोक्तं निशम्य विबुधर्षभाः ॥ प्रतीताः प्रणयोद्विग्नाः कार्यं निजगदुर्निजम्
॥ २५ ॥ महर्षे विंध्यगिरिणा निरुद्धोऽर्कविनिर्गमः त्रैलोक्यं तेन संविष्टं हाहाभूतमचेतनम् ॥ २६ ॥ तद्वृद्धिं स्तंभय मुने निजया
तपसः श्रिया॥भवतस्तेजसाऽगस्त्य नूनं नम्रो भविष्यति ॥२७॥एतदेवाऽस्मदीयं च कार्यं कर्तव्यमस्ति हि॥इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे
दशमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ सूत उवाच ॥ इति वाक्यं समाकर्ण्य विबुधानां द्विजोत्तमः ॥ करिष्ये कार्यमेतद्वः प्रत्युवाच ततो मुनिः ॥१॥

करूंगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २४ ॥ इस प्रकार देवता मुनिके वचन सुनकर प्रेमसे अपना कार्य करने लगे ॥ २५ ॥ हे महर्षि ! विन्ध्याचलने सूर्यका मार्ग निरुद्ध किया है उससे त्रिलोकी नष्ट होकर हाहाकार करती है ॥२६॥ हे मुने ! अपने तपकी कान्तिसे उसकी वृद्धि स्तंभित कीजिये हे ऋषे ! आपके तेजसे वह अवश्य नम्र होगा बस केवल यही हमारा कर्तव्य कार्य है ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सूतजी बोले अगस्त्यजी इस प्रकार ब्राह्मणोंके वचन श्रवण कर बोले मैं यह तुम्हारा कार्य करूंगा ॥ १ ॥

जब कुम्भजन्मा अगस्त्यजीने यह देवताओंका कार्य स्वीकार किया हे द्विजसत्तम ! तब देवता बड़े प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ मुनिके वचनसे सब देवता अपने २ स्थानोंको गये तब मुनिवर नृपकन्या अपनी स्त्रीसे कहने लगे ॥ ३ ॥ हे प्रिये ! यह अनर्थकारी विघ्न प्राप्त हुआ है विन्ध्य पर्वतने मार्ग रोकनेकी इच्छा की है ॥ ४ ॥ उस विघ्नका कारण पुरातन तत्ववादी ऋषियोंका वाक्य स्मरण करके मैंने जाना है जो काशीके उद्देश्यसे कहा गया है ॥ ५ ॥ मुमुक्षुओंको कभी काशीवास त्यागना न चाहिये परन्तु काशी सेवन करनेवालोंको बड़े विघ्न उपस्थित होते हैं ॥ ६ ॥ हे प्रिये ! वही काशीमें निवास करते हुए मुझे विघ्न प्राप्त हुआ है परम तपस्वी मुनि भार्यासे इस प्रकार कहकर ॥ ७ ॥ मणिकर्णिकामें स्नान कर विश्वेश्वरका दर्शन कर दण्डपाणिकी अर्चनाकर कालभैवरके

अंगीकृते तदा कार्ये मुनिना कुंभजन्मना ॥ देवाः प्रमुदिताः सर्वे बभूवुर्द्विजसत्तमाः ॥ २ ॥ ते देवाः स्वानि धिष्ण्यानि भेजिरे मुनिवाक्यतः ॥ पत्नीं मुनिवरः श्रीमानुवाच नृपकन्यकाम् ॥ ३ ॥ अये नृप सुते प्राप्तो विघ्नोऽनर्थस्य कारकः ॥ भानुमार्गनिरोधेन कृतो विंध्यमहीभृता ॥ ४ ॥ अज्ञातं कारणं तच्च स्मृतं वाक्यं पुरातनम् काशीमुद्दीश्य यद्गीतं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५ ॥ अविमुक्तं न मोक्तव्यं सर्वथैव मुमुक्षुभिः किन्तु विघ्ना भविष्यंति काश्यां निवसतां सताम् ॥ ६ ॥ सोऽतरायो मया प्राप्तः काश्यां निवसता प्रिये ॥ इत्येवमुक्त्वा भार्यां तां मुनिः परमतापनः ॥ ७ ॥ मणिकर्ण्यां समाप्लुत्य दृष्ट्वा विश्वेश्वरं विभुम् ॥ दंडपाणिं समभ्यर्च्य कालराज समागतः ॥ ८ ॥ कालराजमहाबाहो भक्तानां भयहारक ॥ कथं दूरयसे पुर्याः काशीपुर्यास्त्वमीश्वरः ॥ ९ ॥ त्वं काशीवासविघ्ननां नाशको भक्तरक्षकः ॥ मां किं दूरयसे स्वामिन् भक्तातिविनिवारक ॥ १० ॥ परापवादो नोक्तो मे न पैशुन्यं न चानृतम् ॥ केनकर्मविपाकेन काश्या दूरं करोषि माम् ॥ ११ ॥ एवं प्रार्थ्य च तं कालनाथं कुंभोद्भवो मुनिः जगाम साक्षि विघ्नेशं सर्वविघ्ननिवारणम् ॥ १२ ॥

समीप आये ॥ ८ ॥ कहने लगे हे महाबाहु ! भैरवजी भक्तोंका भय हरनेवाले ! तुम काशीपुरीके अधीश्वर होकर मुझे क्यों दूर करते हो ॥ ९ ॥ आप काशीके निवासियोंके सब भय दूर करते हो भक्तोंके रक्षक हो हे भक्तोंके भय निवारक ! मुझे क्यों दुःख देते हो ॥ १० ॥ न मैंने पराया अपवाद किया, न चुगली की, न असत्य बोला फिर किस कर्मविपाकसे मुझे काशीसे दूर करते हो ॥ ११ ॥ अगस्त्यजी इस प्रकार भैरवजीको प्रार्थना करके सब विघ्नके निवारण करनेवाले विघ्नेशकी साक्षीको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥

उनको देख और प्रार्थना करके पुरीसे बाहर हुए और श्रीमान् लोपामुद्राके पति दक्षिण दिशामें चले ॥ १३ ॥ वह महाभाग्यनिधि मुनि काशीके विरहसे सन्तप्त ही बारंबार काशीका स्मरण करते भार्याके सहित गये ॥ १४ ॥ आधे निमेषमेंही वह मुनि तपके यानमें प्राप्त हो आगे उठे हुए विन्ध्यपर्वतको देखने लगे ॥ १५ ॥ आगे स्थित होते हुए मुनिको देख पर्वत कम्पायमान हो गया और सूक्ष्म होकर पृथ्वीमें स्पर्श सा करने लगा ॥ १६ ॥ भक्तिभावसे पृथ्वीमें दंडवत् करता हुआ इस प्रकार महामुनि विन्ध्यपर्वतको नम्रीभूत देख कर ॥१७॥ प्रसन्न हो विन्ध्याचलसे कहने लगे हे वत्स ! मैं जबतक इधर आऊं

तं दृष्ट्वाऽभ्यर्च्य सम्प्रार्थ्य ततः पुर्या विनिर्गतः लोपामुद्रापतिः श्रीमानगस्त्यो दक्षिणां दिशम् ॥ १३ ॥ काशीविरहसन्तप्तो महाभाग्य निधिर्मुनिः ॥ सस्मृत्यानुक्षणं काशीं जगाम सह भार्यया ॥ १४ ॥ तपोयानमिवाऽरूह्य निमिषार्धेन वै मुनिः ॥ अग्रे ददर्श तं विंध्यं रुद्धांबरमथोन्नतम् ॥१५॥ चकंपे चाचलस्तूर्णं दृष्ट्वैवाग्रे स्थितं मुनिम् ॥ गिरिः खर्वतरो भूत्वा विवक्षुरवनीमिव ॥ १६ ॥ दंडवत्पतितो भूमौ साष्टांगं भक्तिभावितः ॥ तं दृष्ट्वा नम्र शिखरं विंध्यं नाम महागिरिम् ॥१७॥ प्रसन्नवदनोऽगस्त्यो मुनिर्विंध्यमथाऽब्रवीत् ॥ वत्सैवं तिष्ठ तावत्त्वं यावदागम्यते मया ॥ १८ ॥ अशक्तोऽहं गंडशैलारोहणे तव पुत्रक ॥ एवमुक्त्वा मुनिर्याम्यदिशंप्रति गमोत्सुकः ॥ १९ ॥ आरुह्य तस्य शिखराण्यवारूहदनुक्रमात् ॥ गतो याम्यदिशं चापि श्रीशैलं प्रेक्ष्य वर्त्मनि ॥ २० ॥ मलयाचलमासाद्य तत्राऽऽश्रम परोऽभवत् ॥ साऽपि देवी तत्र विंध्यमागता मनुपूजिता ॥ २१ ॥ लोकेषु प्रथिता विंध्यवासनीति च शौनक ॥ सूत उवाच ॥ एत च्चरित्रं परमं शत्रुनाशनमुत्तमम् ॥ २२ ॥ अगस्त्यविंध्यनगयोराख्यानं पापनाशनम् ॥ राज्ञ विजयदं तच्च द्विजानां ज्ञानवर्धनम् ॥ २३ ॥

तबतक तुम योंही स्थित रहो ॥१८॥ हे पुत्र ! तुम्हारे ऊंचे शिखर नहीं लाँघ सकता हूं ऐसा कहकर मुनि दक्षिण दिशा जानेको उत्सुक हुए ॥१९॥ और उसके शिखरोंपर आरोहण करते उतर गये फिर दक्षिण दिशामें जाय मार्गमें श्रीपर्वतको देख ॥ २० ॥ मलयाचलको प्राप्त हो वहां अपना आश्रम निर्माण करते हुए और मुनिसे पूजित हो देवीभी विन्ध्याचल पर आई ॥२१॥ हे शौनक ! वह लोकमें विन्ध्यवासिनी नामसे विख्यात हुई सूतजी बोले यह शत्रु नाशक परमोत्तम चरित्र है ॥२२॥ यह अगस्त्य और विन्ध्याचलका पापनाशी आख्यान है यह राजोंका विजय और द्विजोंके ज्ञानका बढानेवाला है ॥२३॥

वैश्योंको धान्यादिका दाता तथा शूद्रोंको सुख देनेवाला है इससे धर्मार्थीको धर्म और पुत्रार्थीको पुत्र मिलता है ॥ २४ ॥ भक्तिसे एकबार भी स्मरण कर नेसे कामनावालेकी सब कामना पूर्ण होती है इस प्रकार स्वयंभुवमनु भक्तिसे देवीका आराधन कर ॥ २५ ॥ अपने मन्वन्तरके आश्रयवाले पृथ्वीका राज्य लेते हुए हे सौम्य ! यह मैंने मन्वन्तर चरित्र वर्णन किया देवीका आद्य चरित्र है अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ २६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महा पुराणे दशमस्कधे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ शौनकजी बोले मैंने आपसे जो पूछा सो आपने आद्यमन्वन्तर कहा अब आप दिव्य तेजवाले मनुओंका

वैश्यानां धान्यधनदं शूद्राणां सुखदं तथा ॥ धर्मार्थी धर्ममाप्नोति धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥ २४ ॥ कामानमाप्नुवयात्कामी भक्त्या चास्य सकृच्छ्रवात् ॥ एवं स्वायंभुवमनुर्देवीमाराध्य भक्तितः ॥ २५ ॥ लेभे राज्यं धरायाश्च निजमन्वंतराश्रयम् ॥ २६ ॥ इत्येतद्वर्णितं सौम्य मया मन्वंतराश्रितम् ॥ आद्यं चरित्रं श्रीदेव्याः किं पुनः कथयामि ते ॥ २७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ शौनक उवाच ॥ आद्यो मन्वंतरः प्रोक्तो भवता चायमुत्तमः ॥ अन्येषामुद्भवं ब्रूहि मनूनां दिव्य तेजसाम् ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ एवमाद्यस्य चोत्पत्तिं श्रुत्वा स्वयंभुवस्य हि ॥ अन्येषां क्रमशस्तेषां सम्भूतिं परिपृच्छति ॥ २ ॥ नारदः परमो ज्ञानी देवीतत्त्वार्थकोविदः ॥ नारद उवाच ॥ मनूनां मे समाख्याहि सूत्पत्तिं च सनातन ॥ ३ ॥ नारायण उवाच ॥ प्रथमोऽयं मनुः स्वायंभुव उक्तो महामुने ॥ देव्याराधनतो येन प्राप्तं राज्यमकंटकम् ॥ ४ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ॥ राज्यपालनकर्तारौ विख्यातौ वसुधातले ॥५॥ द्वितीयश्च मनुः स्वारोचिष उक्तो मनीषिभिः ॥ प्रियव्रतसुतः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः ॥६॥ स स्वरोचिषनामापि कालिंदीकूलतो मनुः ॥ निवासं कल्पयामास सर्वसत्त्वप्रियंकरः ॥ ७ ॥

वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार स्वायंभुवकी उत्पत्ति सुनकर क्रमसे उनकी संभूतिकी इच्छासे ॥ २ ॥ परमज्ञानी देवीके तत्त्व जाननेमें पण्डित नारदजी पूछने लगे हे भगवन् ! मुझसे मनुओंकी उत्पत्ति कहिये ॥ ३ ॥ नारायण बोले पहले हमने आपसे स्वयंभुवमनुका चरित्र कहा जिससे देवीके आरा धनासे उन्होंने अकंटक राज्य पाया ॥ ४ ॥ उस मनुके प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए यह राजपालनमें पृथ्वीमें विख्यात हुए ॥ ५ ॥ दूसरे मनु स्वारोचिष हुए यह अप्रमेय पराक्रमी प्रियव्रताके पुत्र थे ॥६॥ वह स्वारोचिषनाम मनु कालिन्दीके तटपर सब प्राणियोंके प्रिय करनेको निवास करते हुए॥७॥

और जीर्ण पत्ते खाकर तप करनेको उद्यत हुए और देवीकी मृत्तिकाकी मूर्तिकी भक्तिसे पूजा करने लगे ॥ ८ ॥ इस प्रकार वनमें निवास करते बारह वर्ष बीत गये हे तात ! तब सहस्र सूर्यके समान कांतिवाली देवी प्रगट हुई ॥ ९ ॥ हे सुव्रत ! तब उनके स्तवराजसे देवी प्रसन्न हुई और स्वारोचिषको मन्वन्तरका आश्रय दिया ॥ १० ॥ इस प्रकार जगन्माता आधिपत्य देकर तारिणी नामसे विख्यात हुई इस प्रकार स्वारोचिषमनु तारिणीके आराधनासे ॥ ११ ॥ सब शत्रुओंसे रहित हो आधिपत्यको प्राप्त हुए इस प्रकार विधिपूर्वक धर्मको स्थापित कर राज्यको पुत्रोंको दे ॥ १२ ॥ भोग भोगकर अपने मन्वन्तरके आश्रयसे स्वर्ग लोकको गया प्रियव्रतका पुत्र मनु तीसरा उत्तमनामक हुआ ॥ १३ ॥ वह गंगा किनारे देवीका जप करता हुआ तप करने लगा इस प्रकार तीन वर्षमें

जीर्णपत्राशनो भूत्वा तपः कर्तुमनुव्रतः ॥ देव्या मूर्तिं मृन्मयीं च पूजयामास भक्तितः ॥८॥ एवं द्वादश वर्षाणि वनस्थस्य तपस्यतः ॥ देवी प्रादुरभूत्तात सहस्रार्कसमद्युतिः ॥ ९ ॥ ततः प्रसन्नादेवेशी स्तवराजेय सुव्रता ॥ ददौ स्वरोचिषायैव सर्वमन्वंतराश्रयम् ॥ १० ॥ आधिपत्यं जगद्धात्री तारिणीति प्रथामगात् ॥ एवं स्वारोचिषमनुस्तारिण्याराधनात्ततः ॥ ११ ॥ आधिपत्यं च लेभे स सर्वारातिविवर्जितम् ॥ धर्मं संस्थाप्य विधिवद्राज्यं पुत्रैः समं विभुः ॥ १२ ॥ भुक्त्वा जगाम स्वर्लोकं निजमन्वन्तराश्रयात् ॥ तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ॥ १३ ॥ गंगाकूले तपस्तप्त्वा वाग्भवं संजपन्नहः ॥ वर्षाणि त्रीण्युपवसन्दे व्यनुग्रहमाविशत ॥ १४ ॥ स्तुत्वा देवीं स्तोत्रवरैर्भक्तिभावितमानसः ॥ राज्यं निष्कंटकं लेभे सन्ततिं चिरकालिकीम् ॥ १५ ॥ राज्योत्थान्यानि सौख्यानि भुक्का धर्मान्युगस्य च ॥ सोऽप्याजगाम पदवीं राजर्षिवरभाविताम् ॥ १६ ॥ चतुर्थस्तामसोनाम प्रियव्रतसुतो मनुः ॥ नर्मदादक्षिणे कूले समाराध्य जगन्मयीम् ॥ १७ ॥ महेश्वरीं कामराजकूटजापपरायणः ॥ वासन्ते शारदे काले नवरात्रसपर्यया ॥ १८ ॥ तोषयामास देवेशीं जलजाक्षीमनूपमाम् ॥ तस्याः प्रसादमासाद्य नत्वा स्तोत्रैरनुत्तमैः ॥ १९ ॥

देवीके अनुग्रहको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ भक्तिसे भावित मन हो देवीको अनेक स्तोत्रोंसे पूजकर चिरकालिक सन्ततिके सहित निष्कंटक राज्यको प्राप्त होता हुआ ॥ १५ ॥ राजोंके योग्य सुख और युग धर्मको भोगकर राजर्षियोंसे भावित पदवीको प्राप्त होता हुआ ॥ १६ ॥ चौथा तामस नाम मनु प्रियव्रतका पुत्र हुआ वह नर्मदाके दक्षिणकूलमें जगन्माताकी आराधना कर ॥ १७ ॥ जो माहेश्वरी है उनका भजन कर कामराजके कूटजापमें पारायण हुआ वसन्त शरद और नवरात्रमें पूजा जपसे ॥ १८ ॥ श्रेष्ठ कमललोचनी देवीको सन्तुष्ट करता हुआ उनकी प्रसन्नताको अनेक स्तोत्रोंसे प्राप्त होकर ॥ १९ ॥

निर्भय हो अकंटक राज्य भोगने लगा और बड़े पराक्रमी शूर दशपुत्रोंको ॥ २० ॥ भार्यामें प्रगट कर स्वर्गलोकको गमन किया तामसका छोटा पांचवाँ
मनु रैवत हुआ ॥ २१ ॥ उसने भी यमुनाके किनारे कामराज मंत्रका जप किया जो साधकको अनेक प्रकारकी मनोरथसिद्धिका देनेवाला है ॥ २२ ॥
इसके आराधनसे उस मनुको श्रेष्ठ राज्यकी सिद्धि प्राप्त हुई और लोकमें सब सिद्धिविधायक बड़ा बल प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ और चिरायुष पुत्र पौत्र भार्या
सन्तति हुई इस प्रकार धर्मको स्थापन कर विषयोंको भोगकर ॥२४॥ अन्तमें वह शूर महेन्द्र स्थानको प्राप्त हुए ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे

अंकटकं महद्राज्यं बुभुजे गतसाध्वसः ॥ पुत्रान्बलोद्धताञ्छूरान्दशवीर्यनिकेतनान् ॥ २० ॥ उत्पाद्य निजभार्यायां जगामांबरमुत्त
मम् ॥ पंचमो मनुराख्यातो रैवतस्तामसानुजः ॥ २१ ॥ कालिंदीकूलमाश्रित्य जजाप कामसंज्ञकम् ॥ बीजं परमवाग्दर्पदायकं
साधकाश्रयम् ॥ २२ ॥ एतदाराधनादाप स्वाराज्यर्द्धिमनुत्तमाम् ॥ बलमप्रहतं लोके सर्वसिद्धिविधायकम् ॥ २३ ॥ सन्ततिं चिरका
लीनां पुत्रपौत्रमयीं शुभाम् ॥ धर्मान्व्यस्य व्यवस्थाप्य विषयानुपभुज्य च ॥ २४ ॥ जगामाप्रतिमः शूरो महेंद्रालयमुत्तम् ॥ इति
श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशम स्कंधेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां चित्रं देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥
अंगपुत्रेण मनुना यथाऽऽप्तं राज्यमुत्तमम् ॥ १ ॥ अंगस्य राज्ञः पुत्रोऽभूच्चाक्षुषो मनुरुत्तमः ॥ षष्ठः सुपुलहं नाम ब्रह्मर्षिं शरणं गतः
॥ २ ॥ ब्रह्मर्षे त्वामहं प्राप्तः शरणं प्रणतार्तिहन् ॥ शाधि मां किंकरं स्वामि येनाऽहं प्राप्नुयां श्रियम् ॥ ३ ॥ मेदिन्याश्चाधिपत्यं मे
स्याद्यथावदखंडितम् ॥ अव्याहतं भुजबलं शस्त्रास्त्रनिपुणं क्षणम् ॥ ४ ॥ संततिश्चिरकालीनाऽप्यखण्डं वय उत्तमम् ॥ अन्तेऽपवर्ग
लाभश्च यात्तथोपादिशाऽद्यमे ॥ ५ ॥

दशमस्कन्धे भाषायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीनारायण बोले अब विचित्र देवीका माहात्म्य सुनो जिस प्रकार अंगपुत्र मनुने उत्तम राज्य पाया ॥१॥ अंग
राजाका पुत्र चाक्षुषमनु हुआ यह छठवाँ मनु पुलहनाम ब्रह्मर्षि शरणको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ हे ब्रह्मर्षि ! मैं आपकी शरण हुआ हूं हे दुःखनाशक ! आप
मुझे समझाइये जिससे मैं श्रेष्ठ लक्ष्मीको प्राप्त होऊं ॥ ३ ॥ जैसे मेरा पृथ्वीमें अखण्ड राज्य होजाय मेरी भुजाओंका बल अप्रतिहत और अस्त्र शस्त्रमें मैं
निपुण हो जाऊं ॥ ४ ॥ निरन्तर स्थायी सन्तति, अखण्ड उत्तम आयु और अन्तमें मुक्ति हो इस प्रकार मुझे उपदेश करो ॥ ५ ॥

जब इस प्रकारके वचन मुनिने सुने तब राजपुत्रसे देवीका परमाराधन कहने लगे ॥६॥ हे राजन् ! मेरे श्रोत्रसुखकारी वचन सुनो तुम शिवाका आराधना करो उसके प्रसादसे यह सब कुछ हो जायगा ॥ ७ ॥ चाक्षुष बोले हे मुने ! भगवतीका परमाराधन किस प्रकार है किस प्रकार करना चाहिये वह कृपाकर आप कहिये ॥ ८ ॥ मुनि बोले हे राजन्! देवीका परम अव्यय पूजन आप सुनिये महासरस्वती देवता वाला बीज निरन्तर जपना चाहिये ॥ ९ ॥ तीन काल जपनेसे भुक्ति मुक्तिकी प्राप्ति होती है हे राजन्! वाग्भवबीजके समान और मंत्र नहीं है ॥ १० ॥ यह जपसेही सिद्धि करनेवाला बलवीर्यकी वृद्धि करनेवाला

इत्येवं वचनं तस्य मनोः कर्णपथेऽभवत् ॥ प्रत्युवाच मुनिः श्रीमान्देव्याः संराधनं परम् ॥ ६ ॥ राजन्नाकर्णय वचो मम श्रोत्रसुखं महत् ॥ शिवामाराधयाऽद्य त्वं तत्प्रसादादिदं भवेत् ॥ ७ ॥ चाक्षुष उवाच ॥ कीदृगाराधनं देव्यास्तस्याः परमपावनम् ॥ केना कारेण कर्तव्यं कारुण्याद्वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥ मुनिरुवाच ॥ राजन्नाकर्ण्यतां देव्याः पूजनं परमव्ययम् ॥ वाग्भवं बीजमव्यक्तं संजप्य मनिशं तथा ॥ ९ ॥ त्रिकालं संजपन्मर्त्यो भुक्तिमुक्ती लभेत्तु हि ॥ न बीजं वाग्भवादन्यदस्ति राजन्यनंदन ॥ १० ॥ जपात्सि द्धिकरं वीर्यबलवृद्धि करं परम् ॥ एतस्य जापात्पाद्मोऽपि सृष्टिकर्ता महाबलः ॥ ११ ॥ विष्णुर्यज्जपतः सृष्टिपालकः परिकीर्तितः ॥ महेश्वरोऽपि संहर्ता यज्जपादभवन्नृप ॥ १२ ॥ लोकपालास्तथाऽन्येऽपि निग्रहानुग्रहक्षमाः ॥ यदाश्रयादभूवंस्ते बलवीर्यमदोद्धताः ॥ १३ ॥ एवं त्वमपि राजन्य महेशीं जगदंबिकाम् ॥ समाराध्य महार्द्धिं च लप्स्यसेऽचिरकालतः ॥ १४ ॥ एवं स मुनिवर्येण पुलहेन प्रबोधितः ॥ अंगपुत्रस्तपस्तप्तुं जगाम विरजां नदीम् ॥ १५ ॥ स च तेपे तपस्तीव्रं वाग्भवस्य जपे रतः ॥ बीजस्य पृथिवीपालः शीर्णपर्णाशनो विभुः ॥ १६ ॥

है इसीके जपसे ब्रह्माजी सृष्टि करनेमें समर्थ हुए हैं ॥ ११ ॥ इसीके जपसे विष्णु सृष्टिपालक और महेश्वर संहर्ता कहे जाते हैं ॥ १२ ॥ तथा इसीसे दूसरे लोकपाल भी निग्रह अनुग्रह करनेमें समर्थ होते हैं जिसके आश्रयसे यह सब कोई बलवीर्य सम्पन्न हुए हैं ॥ १३ ॥ हे राजन् ! इसी प्रकार तुम भी माहेश्वरी जगदम्बिकाको आराधन कर शीघ्रही महासमृद्धिको प्राप्त होगे ॥ १४ ॥ जब मुनिश्रेष्ठ पुलहने इस प्रकार समझाया तब अंगपुत्र तप करने विरजानदीके तट पर गया ॥ १५ ॥ वहां वाणीबीजका जप करता परम तप करने लगा और यह राजा सूखे पत्तोंका आहार करने लगा ॥ १६ ॥

पहले वर्षमें पत्ते खाये दूसरेमें जल पिया तीसरेमें वायु भक्षण कर ठूंठके समान अचल रहे ॥ १७ ॥ इस प्रकार बारह वर्षपर्यंत राजाने भोजन त्यागकर जप किया जिससे मतिमें प्रकाश हुआ ॥ १८ ॥ जब एकांतमें देवीका भजन करने लगा तब साक्षात् परमेश्वरि जगन्माता प्रसन्न हो प्रगट हुई ॥ १९ ॥ जो तेज सम्पन्न दुराधर्ष सर्व देवमय ईश्वरी है, वह मनोहर अक्षरोंसे अंगपुत्रसे कहने लगी ॥ २० ॥ देवी बोली हे पृथ्वीपाल ! जो तुमने अपने मनमें विचारा है वह मांगो मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हो तुमको देती हूं ॥ २१ ॥ चाक्षुष बोले हे देवेशि ! जो प्रार्थना मेरे मनमें है उसको तुम जानती हो हे देवपू जिते ! अन्तर्यामिस्वरूपसे तुम सब जानती हो ॥ २२ ॥ यह मेरा बड़ा भाग्य है जो तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुआ हे देवि मुझको मन्वन्तरपर्यन्तके आश्रयका

प्रथमेऽब्दे पल्लवाशो द्वितीये तोयभक्षणः ॥ तृतीयेऽब्दे पवनभुक्तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥ १७ ॥ एवं द्वादशवर्षाणि त्यक्ताहारस्य भूभुजः ॥ वाग्भवं जपतो नित्यं मतिरासीच्छुभान्विता ॥ १८ ॥ तथा च देव्याः परमं मंत्रं संजपतो रहः ॥ प्रादुरासीज्जगन्माता साक्षाच्छ्रीपरमेश्वरी ॥ १९ ॥ तेजोमयी दुराधर्षा सर्वदेवमयीश्वरी ॥ उवाचांगतनूजं तं प्रसन्ना ललिताक्षरम् ॥२०॥ देव्युवाच ॥ पृथिवी पाल ते यत्त्वया चिंतितं परमं वरम् ॥ तद्ब्रूहि संप्रदास्यामि तपसा ते सुतोषिता ॥२१॥ चाक्षुष उवाच ॥ जानासि देवदेवेशि यत्प्रार्थ्य मनसेप्सितम् ॥ अंतर्यामिस्वरूपेण तत्सर्वं देवपूजिते ॥ २२ ॥ तथाऽपि मम भाग्येन जातं यत्तव दर्शनम् ॥ ब्रवीमि देवि मे देहि राज्यं मन्वंतराश्रितम् ॥२३॥ श्रीदेव्युवाच ॥ दत्तन्वंतरस्याऽस्य राज्यं राजन्यसत्तम ॥ पुत्रा महाबलास्ते च भविष्यंति गुणाधिकाः ॥ २४ ॥ राज्यं निष्कंटकं भाविमोक्षोंऽते चापि निश्चितः ॥ एवं दत्त्वा वरं देवी मनवे वरमुत्तमम् ॥ २५ ॥ जगामाऽदर्शनं सद्यस्तेन भक्त्या च संस्तुता ॥ सोऽपि राजा मनुः षष्ठः प्रसादात्तु तदाश्रयात् ॥ २६ ॥ बभूव मनुमान्योऽसौ सार्वभौमसुखैर्वृतः ॥ पुत्रास्तस्यबलोद्युक्ताः कार्यभारसहाद्दताः ॥ २७ ॥ देवीभक्ताश्च शूराश्च महाबलपराक्रमाः ॥ अन्यत्र माननीयाश्च महाराज्यसुखास्पदाः ॥ २८ ॥

राज्य दो ॥ २३ ॥ देवी बोली, हे राजसत्तम ! मैंने मन्वन्तरपर्यन्तका राज्य तुमको दिया तुम्हारे गुणी महाबली पुत्र होंगे ॥ २४ ॥ निष्कंटक राज्य और अन्तमें तुम्हारी मोक्ष होगी इस प्रकार देवी मनुको वर दे ॥ २५ ॥ उससे भक्तिपूर्वक स्तुतिको प्राप्त होकर अदर्शनको प्राप्त हुई वह राजा भगवतीके आश्र यसे छठा मनु हुआ ॥ २६ ॥ यह बडा मान्य और सार्वभौम सुखसे युक्त हुआ इसके पुत्र बड़े बली कार्यके भार वहनमें समर्थ हुए ॥ २७ ॥ वह सब देवीके भक्त, शूर, महाबली पराक्रमी हुए सर्वत्र माननीय महाराज सुखसे सम्पन्न हुए ॥ २८ ॥

इस प्रकार चाक्षुष मनुने देवीका आराधनकर श्रेष्ठताको प्राप्त हो अन्तमें वैकुण्ठ गमन किया और शिवाका पद पाया ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीनारायण बोले सातवें वैवस्वत मनु हुए जो श्राद्धदेवनामसे विख्यात परानंदके भोक्ता राजोंके माननीय हुए ॥ १ ॥ यह वैवस्वत मनु देवीकी परम प्रसन्नतासे उस तप और जपसे मन्वन्तरके अधिपति हुए ॥ २ ॥ आठवें मनु पृथ्वीमें विख्यात सावर्णि होंगे वह जन्मान्तरमें देवीका आराधन कर उनके वरदानसे॥ ३ ॥ सब राजोंसे पूजित मन्वन्तर पति हुए, यह धीर महा पराक्रमी देवीकी भक्तिमें परायण हुए ॥ ४ ॥

एवं च चाक्षुषमनुर्देव्याराधनतः प्रभुः ॥ बभूव मनुवर्योऽसौ जगामांते शिवापदम्॥२९॥इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे देवी चरित्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ सप्तमो मनुराख्यातो मनुर्वैवस्वतः प्रभुः ॥ श्राद्धदेवः परानन्द भोक्ता मान्यस्तु भूभुजाम् ॥ १ ॥ स च वैवस्वतमनुः परदेव्याः प्रसादत ॥ तथा तत्तपसा चैव जातो मन्वंतराधिपः ॥ २॥ अष्टमोममराख्यातः सावर्णि प्रथितः क्षितौ ॥ स जन्मांतर आराध्य देवीं तद्वरलाभतः ॥ ३ ॥ जातो मन्वंतरपतिः सर्वराजन्यपूजितः ॥ महापराक्रमी धीरो देवी भक्तिपरायणः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ कथं जन्मांतरे तेन मानुनाऽराधनं कृतम् ॥ देव्याः पृथिव्युद्भवायास्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ ५ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ चैत्रवंशसमुद्भूतो राजा स्वारोचिषेऽतरे ॥ सुरथो नाम विख्यातो महाबलपराक्रमः ॥ ६ ॥ गुणग्राही धनुर्धारी मान्यः श्रेष्ठः कविः कृती ॥ धनसंग्रहकर्ता च दाता याचकमंडले ॥ ७ ॥ अरीणां मर्दनो मानः सर्वास्त्रकुशलो बली ॥ तस्यैकदा बभूवुस्ते कोला विध्वंसिनो नृपाः ॥ ८ ॥ शत्रवः सैन्यसहिताः परिवार्यैनमूर्जिताः ॥ रुरुधुर्नगरीं तस्य राज्ञो मानधनस्य हि ॥ ९ ॥

नारदजी बोले इन मनुने किस प्रकार पूर्व जन्ममें पृथ्वीसे प्रगट भगवतीका आराधन किया था, सो आप हमसे कहिये ? ॥ ५ ॥ श्रीनारायण बोले स्वारोचिष मनुके अन्तरमें चैत्रवंशमें एक सुरथ नामवाला राजा बडा बली और विख्यात था ॥ ६ ॥ यह गुणग्राही, धनुर्धर मान्य श्रेष्ठ और कवि था, धनका संग्रह कर्त्ता और याचकमंडलको दान देता था ॥ ७ ॥ वह मानी शत्रुओंका मर्दन करनेवाला सब अस्त्रोंमें कुशल और बली हुआ एक समय उसकी कोलांनगरीके विध्वंस करनेवाले राजा ॥ ८ ॥ शत्रु सेनाके सहित आकर इसे घेरते हुए जब इस मानधनी राजाकी नगरी उन्होंने घेर ली ॥ ९ ॥

१ प्रकृतिखण्डके दुर्गामाहात्म्यमें इसका विस्तार है कि ध्रुवका पौत्र नंदि शत १०० अक्षौहिणी सेना लेकर नगरीपर चढा था ।

दे. भा. तब सुरथराजा सेनासहित शत्रुके मारनेकी इच्छासे नगरीसे बाहर निकला ॥ १० ॥ तब शत्रुओंने युद्ध कर सुरथ राजाको जीत लिया आमात्य मंत्री और
॥१२॥ कोषधन उसका सब जाता रहा ॥ ११ ॥ जब सब धन हरंगया तब राजा बडा दुःखी हुआ तब वह परमद्युति नगरीसे बाहर किये गये ॥ १२ ॥ और मृग
याके मिषसे वनको चले गये इकले वनमें भ्रांत हो राजा विचरने लगे ॥ १३ ॥ फिर किसी एक शान्तमनवाले श्वापदोंसे व्याप्त मुनि और शिष्यगणोंसे संयुक्त
॥ १४ ॥ मुनिश्रेष्ठ बुद्धिमान् दीर्घदृष्टिके आश्रममें राजा कुछ दिनों तक निवास करता हुआ ॥ १५ ॥ एक समय वह राजा पूजाके अन्तमें मुनिके समीप
जाय प्रणाम कर नम्रतासे पूछने लगा ॥ १६ ॥ हे मुनिराज ! मेरा मन बड़ा दुःखी है हे भूदेव ! तत्त्वज्ञान होने और निष्प्रज्ञा होनेपर भी ॥१७॥ शत्रुके द्वारा

तदा स सुरथो नाम राजा सैन्यसमावृतः ॥ निर्ययौ नगरात्स्वीयासर्वशत्रुनिबर्हणः ॥ १० ॥ तदा स समरे राजा सुरथः शत्रुभिर्जितः ॥
अमात्यैर्मन्त्रिभिश्चैव तस्य कोशगतं धनम् ॥ ११ ॥ हृतं सर्वमशेषेण तदाऽतप्यत भूमिपः ॥ निष्कासितश्च नगरात्स राजा परमद्युतिः
॥ १२ ॥ जगामाऽश्वमथाऽऽरुह्य मृगयामिषतो वनम् ॥ एकाकी विजनेऽरण्ये बभ्रामोद्भ्रांतमानसः ॥ १३ ॥ मुनेः कस्यचिदागत्य
स्वाश्रमं शांतमानसः ॥ प्रशांतजंतुसंयुक्तं मुनिशिष्यगणैर्युतम् ॥ १४ ॥ उवास कंचित्कालं स राजा परम शोभने ॥ आश्रमे मुनिवर्यस्य
दीर्घदृष्टेः सुमेधसः ॥ १५ ॥ एकदा स महीपालो मुनि पूजावसानके ॥ काले गत्वा प्रणम्याऽशु पप्रच्छ विनयान्वितः ॥ १६ ॥ मुने
मम मनो दुःखं बाधते चाधिसंभवम् ॥ ज्ञाततत्त्वस्य भूदेव निष्प्रज्ञस्य च संततम् ॥ १७॥ शत्रुभिर्निर्जितस्यापि हृतराज्यस्य सर्वशः ॥
तथापि तेषु मनसि मम त्वं जायते स्फुटम् ॥ १८ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं शर्म लभे मुने ॥ त्वद नुग्रहमाशासे वद वेदविदांवर
॥ १९ ॥ मुनिरुवाच ॥ आकर्णय महीपाल महाश्चर्यकरं परम् ॥ देवी माहात्म्यमतुलं सर्वकामप्रदं परम् ॥ २० ॥ जगन्मयी महा
माया विष्णुब्रह्महरोद्भवा ॥ सा बलादपहृत्यैव जंतूनां मानसानि हि ॥ २१ ॥

जो मेरा राज्यधन हरण हुआ है तो भी मेरे मनसे राज्यका ममत्व नहीं छूटता ॥ १८ ॥ हे मुनिराज ! मैं क्या करूं कहां जाऊं किस प्रकार मेरे मनमें शान्ति
भा. टी.द होगी हे वेद ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ ! अब मैं आपके अनुग्रहकी इच्छा करता हूं सो आप कृपा कर कहिये ॥ १९ ॥ मुनि बोले हे राजन् ! महाआश्चर्य करनेवाली
अ० १० बातको सुनो, जो देवीका माहात्म्य सब कामनादायक है ॥ २० ॥ जो जगन्मयी महामाया विष्णु, शिव ब्रह्माकी भी प्रगट करनेवाली है, जो बलसे जन्तु
ओंके मन आकर्षण करती है ॥ २१ ॥

और फिर मोहित कर देती है ऐसा जानो वही सब जगत्‌को उत्पन्नकर पालन करती है ॥ २२ ॥ और संहारके समय हररूप धारण करती है, वह काम दात्री महामाया दुरन्ता कालरात्रि है ॥ २३ ॥ यह काली विश्वकी संहार करनेवाली कमला कमलमें निवास करनेवाली है उसीसे सब जगत् होकर उसीमें प्रतिष्ठित है ॥ २४ ॥ अन्तमें उसीमें लय होगा इस कारण वही परात्पर है हे राजन् ! जिसके ऊपर उस देवीका प्रसाद हो जाता है ॥ २५ ॥ वही मोहके पार हो जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ राजा बोले हे कालके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! कहो वह कौनसी देवी है कौन इन प्राणियोंको मोहित करती है इसमें कारण क्या है ॥ १ ॥ वह देवी किससे प्रगट होती है क्या उसका स्वरूप है

मोहाय प्रतिसंयच्छेदिति जानीं हि भूमिप ॥ सा सृजत्यखिलं विश्वं सा पालयति सर्वदा ॥ २२ ॥ संहारे हररूपेण संहरत्येव भूमिप ॥ कामदात्री महामाया कालरात्रि दुरत्यया ॥ २३ ॥ विश्वसंहारिणी काली कमला कामलालया ॥ तस्यां सर्वं जगज्जातं तस्यां विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥ २४ ॥ लयमेष्यति तस्यां च तस्मात्सैव परात्परा ॥ तस्या देव्याः प्रसादश्च यस्योपरि भवेन्नृप ॥ स एव मोहमत्येति नान्यथा धरणीपते ॥ २६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ राजोवाच का सा देवी त्वया प्रोक्ता ब्रूहि कालविदांवर ॥ का मोहयति सत्त्वानि कारणं किं भवेद्विज ॥ १ ॥ कस्मादुत्पद्यते देवी किंरूपा सा किमात्मिका ॥ सर्वमाख्याहि भूदेव कृपया मम सर्वतः ॥ २ ॥ मुनिरुवाच ॥ राजन्देव्याः स्वरूपं ते वर्णयामि निशामय ॥ तथा चोत्पतिता देवी येन वा सा जगन्मयी ॥ ३ ॥ यदा नारायणो देवो विश्वं संहृत्य योगराट् ॥ आस्तीर्य शेषं भगवान्समुद्रे निद्रितोऽभवत् ॥ ४ ॥ तदा प्रस्वापवशगो देवदेव जनार्दनः ॥ तत्कर्णमलसंजातौ दानवौ मधुकैटभौ ॥ ५ ॥ ब्रह्माणं हंतुमुद्युक्तौ दानवौ घोररूपिणौ ॥ तदा कमलजो देवो दृष्ट्वा तौ मधुकैटभौ ॥ ६ ॥ निद्रितं देवदेवेशं चिंतामाप दुरत्ययाम् ॥ निद्रितो भगवानीशो दानवौ च दुरासदौ ॥ ७ ॥

क्या आत्मा है हे ब्रह्मन् ! कृपा कर आप यह सब कहिये ॥ २ ॥ मुनि बोले सुनो राजन् ! मैं तुमसे देवीका स्वरूप कहता हूं जिस प्रकार वह जगन्मयी प्रगट हुई सो आपसे कहता हूं ॥ ३ ॥ जिस समय योगनिद्रामें भगवान् सब जगतका संहार कर शयनकर गये और शेष शय्यापर सागरमें निद्रित हुए ॥ ४ ॥ तब देव देव जनार्दनके शयन करनेसे मधु कैटभ दानव उसके कानोंके मैलसे प्रगट हुए ॥ ५ ॥ वह घोररूप दानव ब्रह्माजीके मारनेको उद्यत हुए तब ब्रह्माजी उन दोनों दैत्योंको देखकर ॥ ६ ॥ तथा विष्णुको सोता देख बड़ी चिन्ताको प्राप्त हुए कि भगवान् शयन करते हैं और ये दोनों दैत्य बड़े प्रबल हैं ॥ ७ ॥

मैं क्या करूं कहां जाऊं किस प्रकार मुझे मंगलकी प्राप्ति हो इस प्रकार महात्मा ब्रह्माजीके चिन्ता करनेमें ॥ ८ ॥ तब कार्यसाधनी बुद्धि प्रगट हुई जिसके द्वारा भगवान् निद्रित हुए थे ॥९॥ उस सबकी प्रसूती भगवती देवीके शरण होता हूं ब्रह्माजी बोले हे जगद्धात्री ! भक्तोंके अभीष्ट फल देनेवाली आपकी जय हो ॥ १० ॥ हे जगत्की माया, महामाया, समुद्रमें शयन करनेवाली शिवे ! तुम्हारी आज्ञामें वश हुए सब अपना २ कार्य करते हैं ॥ ११ ॥ तुम कालरात्री महारात्री, मोहरात्री, मदसे उत्कट हो सर्वत्र व्याप्त वशगामिनी महा आनन्दकी मर्यादा हो ॥ १२ ॥ तुम पूजनीय महा आराधनीया माया, मधुमती, मही, परमापरमेशानी अर्थात् सबपर और अपरकी परमा कही गई हो ॥ १३ ॥ लज्जा, पुष्टि, क्षमा, कीर्ति, कान्ति, कारुण्य विग्रहवाली, मनोहर जगत्से

किं करोमि क्व गच्छामि कथं शर्म लभे ह्यहम् ॥ एवं चिंतयतस्तस्य पद्मयोनेर्महात्मनः ॥ ८ ॥ बुद्धिः प्रादुरभूत्तात तदा कार्यप्रसा
दिनी ॥ यस्या वंशगतोदेवो निद्रितो भगवान्हरिः ॥ ९ ॥ तां देवीं शरणं यामि निद्रां सर्वप्रसूतिकाम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेवि जग
द्धात्रि भक्ताभीष्टफलप्रदे ॥ १० ॥ जगन्माये महामाये मुद्रशयने शिवे ॥ त्वदाज्ञावाशगाः सर्वे स्वस्व कार्यविधायिनः ॥ ११ ॥
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहारात्रिर्मदोत्कटा ॥ व्यापिनी वशगा मान्या महानंदैकशेवधिः ॥ १२ ॥ महनीया महाराध्या माया मधुमती
मही ॥ परापराणां सर्वेषां परमा त्वं प्रकीर्तिता ॥ १३ ॥ लज्जा पुष्टिः क्षमा कीर्तिः कांतिः कारुण्य विग्रहा ॥ कमनीया जगद्वंद्या जाग्र
दादिस्वरूपिणी ॥ १४ ॥ परमापरमेशानी परनंदापरायणा ॥ एकाऽप्येकस्वरूपा च सद्वितीया द्वयात्मिका ॥ १५ ॥ त्रयी त्रिवर्गनि
लया तुर्या तुर्यपदात्मिका ॥ पंचमी पंचभूतेशी षष्ठी षष्ठेश्वरीति च ॥ १६ ॥ सप्तमी सप्तवारेशी सप्तसप्तवरप्रदा ॥ अष्टमी वसुनाथा
च नवग्रहमयीश्वरी ॥ १७ ॥ नवरागकला रम्या नवसंख्या नवेश्वरी ॥ दशमी दशदिक्पूज्या दशाशाव्यापिनी रमा ॥ १८ ॥

वंदित जाग्रदादि स्वरूपवाली ॥ १४ ॥ परमा, परमेशानी, परनन्दा, परायणा, अद्वतीया, एक, एक स्वरूप, वाली तथा मायावस्तुके सहित दयामयी हो कही द्वयात्मिका पाठ है, तब यह अर्थ करना कि द्वित्व संख्याविशिष्ट पदार्थात्मिका हो ॥ १५ ॥ त्रयीविद्यारूप, त्रिगुणरूपधर्म, अर्थकाम, स्वरूपिणी तुर्यावस्था स्वरूप ब्रह्मपदात्मिका, अथवा एकसे चार संख्या तिथिरूपा हो पंचतत्त्व संख्यारूप पांच भूतोंकी अधीश्वरी षष्ठी षट् संख्या रूपा अथवा छः के पूरक पदार्थकी अधीश्वरी हो ॥१६॥ सप्तमी तिथि सातों वारकी अधीश्वरी सात सात वरकी देनेवाली अष्टमी वसुओंकी अधीश्वरी, नवग्रहयुक्त और उनकी अधीश्वरी ॥१७॥ नवीन रागवानो रागोंकी कलासे मनोहर नौ संख्या तथा नौकी अधीश्वरी दशमी दश दिशाओंमें पूजनीया, दशों दिशाओंमें व्याप्त रमारूप ॥ १८ ॥

एकादशात्मायुक्त ग्यारह रुद्रोंसे निषेवित, एकादशी तिथिको प्यार करनेवाली, एकादश गणोंकी स्वामिनी ॥१९॥ द्वादशी, बारह भुजावाली बारह आदित्योंको प्रगट करनेवाली, त्रयोदशात्मिका " मलमासके सहित तेरहवां महीनाभी ग्रहण करना " देवी त्रयोदश गणको प्यार करनेवाली ॥ २० ॥ त्रयोदश नामवाली, तथा इनसे अभिन्न विश्वेदेवाओंकी अधिदेवी चौदह इन्द्रोंको वर देनेवाली चौदह मनुओंको प्रगट करनेवाली ॥ २१ ॥ पंचदशी कामराज विद्यारूपवाली त्रिपुर सुन्दरी विद्या, जानने योग्य पंचदशी तिथिवाली षोडशी षोडश भुजा सोलह चन्द्रमाकी कलामय व्याप्त ॥ २२ ॥ षोडशात्मक चन्द्रकिरणमें व्याप्त दिव्य कलेवर वाली हो, हे देवेशि ! तुम इस प्रकारके रूपवाली निर्गुण तमके उदयमें ॥ २३ ॥ आपने देवदेव रमापतिको ग्रहण किया है और यह दोनों दुरासद मधु

एकादशात्मिका चैवदशरुद्रनिषेविता ॥ एकादशीतिथिप्रीता एकादश गणाधिपा ॥ १९ ॥ द्वाद्वशी द्वादशभुजा द्वादशादित्यजन्मभूः
त्रयोदशात्मिका देवी त्रयोदशगणप्रिया ॥ २० ॥ त्रयोदशाभिधा भिन्ना विश्वेदेवाधिदेवता ॥ चतुर्दशेंद्रवरदा चतुर्दशमनुप्रसूः ॥ २१ ॥
पंचाधिकदशी वेद्या पंचाधिकदशी तिथिः ॥ षोडशी षोडशभुजा षोडशेंदुकलामयी ॥ २२ ॥ षोडशात्मकचंद्रांशुव्याप्तदिव्यकलेवरा ॥
एवंरूपाऽसि देवेशि निर्गुणे तामसोदये ॥२३॥ त्वया गृहीतो भगवान्देवदेवो रमापतिः ॥ एतौ दुरासदौ दैत्यौ विक्रांतौ मधुकैटभौ ॥२४॥
एतयोश्च वधार्थाय देवेशं प्रति बोधय ॥ मुनिरुवाच एवं स्तुता भगवती तामसी भगवत्प्रिया ॥ २५ ॥ देवदेवं तदा त्यक्त्वामोहयामास
दानवौ ॥ तदैव भगवान्विष्णुः परमात्मा जगत्पतिः ॥ २६ ॥ प्रबोधमापः देवेशो ददृशे दानवोत्तमौ ॥ तदा तौ दानवौ घोरौ दृष्ट्वा तं
मधुसूदनम् ॥२७॥ युद्धाय कृतसंकल्पौ जग्मतुः सन्निधिं हरेः॥ युयुधे च ततस्ताभ्यां भगवान्मधुसूदनः ॥ २८ ॥ पंचवर्ष सहस्राणि
बाहुप्रहरणो विभुः॥ तौ तदाऽतिबलोन्मत्तौ जगन्मायाविमोहितौ ॥ २९ ॥

कैटभदैत्य हैं ॥ २४ ॥ इनके वधके निमित्त देवदेवको जगाओ. मुनि बोले जब भगवत प्रिया तामसीकी इस प्रकार स्तुति की ॥ २५ ॥ तब देवदेवको त्यागन कर उसने दोनों दानवोंको मोहित किया, तभी भगवान्, विष्णु, परमात्मा, जगतपति ॥ २६ ॥ जागे और उन्होंने दोनों दानवोंको देखा तब वे दोनों घोर दानव मधुसूदनको देखकर ॥ २७ ॥ युद्धका संकल्प कर भगवान्के समीप गये उनके संग भगवान् वासुदेवका युद्ध हुआ ॥ २८ ॥ पांच सहस्र वर्षतक भगवान्ने बाहुयुद्ध किया तब यह दोनों बलसे मत्त हो जगन्मायासे मोहित हुए ॥ २९ ॥

वर मांगो यह मधुसूदनसे बोले आदि पुरुष भगवान् उन दोनोंके वचन सुन ॥ ३० ॥ बोले तुम दोनों हमारे वध्य हो तब वे दोनों बड़े बली हरिसे बोले ॥ ३१ ॥ हमको उस स्थानमें मारो जहां कहीं पृथ्वी जलसे व्याप्त न हो तब भगवान् शंखचक्रधारीने ॥ ३२॥ चक्रसे उसका शिरच्छेदन कर दिया हे राजन् ! इस प्रकार ब्रह्मासे स्तुतिको प्राप्त हो देवी प्रगट हुई ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! वह महाकाली सब योगेश्वरोंकी ईश्वरी है हे राजन् ! अब महालक्ष्मीकी उत्पत्ति सुनो ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे भाषायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ मुनि बोले महिषीगर्भसे प्रगट हुआ महाबली पराक्रमी

व्रियतां वर इत्येवमूचतुः परमेश्वरम् ॥ एवं तयोर्वचः श्रुत्वा भगवानादिपूरुषः ॥ ३० ॥ वव्रे वध्यावुभौ मेऽद्य भवेतामिति निश्चितम् ॥ तौ तदाऽतिबलौ देवं पुनरेवोचतुर्हरिम् ॥ ३१ ॥ आवां जहि न यत्रोर्वी पयसा च परिप्लुता ॥ यथेत्युक्त्वा भगवता गदाशंखभृता नृप ॥ ३२ ॥ कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥ एवं देवी समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता नृप ॥ ३३ ॥ महाकाली महाराज सर्वयोगेश्वरेश्वरी ॥ महालक्ष्म्यास्तथोत्पत्तिं निशामय महीपते ॥ ३४ ॥ इति श्रीदेवीभागवधे म० दशमस्कन्धे देवीमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ मुनिवाच ॥ महिषागर्भसंभूतो महाबलपराक्रमः ॥ देवान्सर्वान्पराजित्य महिषोऽभूज्जगत्प्रभुः ॥ १ ॥ सर्वेषां लोकपालानामधिकारान्महासुरः ॥ बलान्निर्जित्य बुभुजे त्रैलोक्यैश्वर्य मद्भुतम् ॥ २ ॥ ततः पराजिताः सर्वे देवाः स्वर्गपरिच्युता ॥ ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ते जग्मुर्लोकमुत्तमम् ॥ ३ ॥ यत्रोत्तमौ देव देवौ संस्थितौ शंकराच्युतौ ॥ वृत्तांतं कथयामासुर्महीषस्य दुरात्मनः ॥ ४ ॥ देवानां चैव सर्वेषां स्थानानि तरसा सुरः ॥ विनिर्जित्य स्वयं भुंक्ते बलवीर्यमदोद्धतः ॥ ५ ॥ महिषासुरनामाऽसौ दुष्टदैत्यामरेश्वरौ ॥ वधोपायश्च तस्याऽऽशु चिंत्यतामसुरार्दनौ ॥ ६ ॥

महिषासुर सब देवताओंको जीतकर जगत्का अधिपति स्वयं हुआ ॥ १ ॥ वह महासुर सब लोकपालोंके अधिकारोंको बलसे छीन त्रिलोकीका ऐश्वर्य भोगने लगा ॥ २ ॥ तब पराजित हो सब देवता स्वर्गसे च्युत हुए और ब्रह्माको आगेकर उत्तम लोकको गये ॥ ३ ॥ जहां उत्तम देव शंकर और अच्युत निवास करते हैं वहां जाकर दुरात्मा महिषासुरका वृत्तान्त कथन किया ॥ ४ ॥ कि उस असुरने बड़े वेगसे सब देवताओंके स्थान जीतकर मदोद्धत हो उनको स्वयं भोगा है ॥ ५ ॥ हे देवताओ ! वह महिषासुर बड़ा दुष्ट दैत्य है हे असुरनाशको ! उसके वधका उपाय विचारो ॥ ६ ॥

वह भगवान् देवताओंका इस प्रकार दुःखपूर्ण वचन सुनकर शंकर भगवान् बड़ा क्रोध करते हुए ॥ ७ ॥ हे राजन्! उस समय क्रोध करते हुए भगवान् हरिके मुखसे सहस्र सूर्यके समान दिव्यतेज निर्गत हुआ ॥ ८ ॥ फिर क्रमसे सब देवताओंका तेज देवताओंको प्रसन्न करता हुआ उनके शरीरसे निर्गत हुआ ॥ ९ ॥ शंभुके तेजसे मुख, यमके तेजसे केश, विष्णुके तेजसे भुजा ॥ १० ॥ चन्द्रमाके तेजसे स्तन, महेन्द्रके तेजसे मध्यभाग, वरुणके तेजसे जंघा हुई ॥ ११ ॥ भूमिके तेजसे नितम्ब, ब्रह्माके तेजसे चरण, सूर्यके तेजसे पादांगुली, इन्द्रके तेजसे हाथोंकी अंगुली ॥ १२ ॥ कुबेरके तेजसे नासिका, प्रजापतिके

एवं श्रुत्वा स भगवान्देवानामार्तियुग्वचः ॥ चकार कोपं सुबहु तथा शंकरपद्मजौ ॥ ७ ॥ एवं कोपयुतस्यास्य हरेरास्यान्महीपते ॥
तेजाः प्रादुरभूद्दिव्यं सहस्रार्कसमद्युति ॥ ८ ॥ अथानुक्रमतस्तेजः सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् ॥ शरीराद्दुद्भवं प्राप हर्षयद्विबुधाधिपान् ॥ ९ ॥
यदभूच्छंभुजं तेजो मुखमस्योदपद्यत ॥ केशाबभूवुर्याम्येन वैष्णवेन च बाहवः ॥ १० ॥ सौम्येन च स्तनौ जातौ माहेंद्रेण च मध्यमः ॥
वरुणेन ततो भूप जंघोरू संबभूवतुः ॥११॥ नितम्बौ तेजसा भूमेः पादौ ब्राह्मेण तेजसा ॥ पदांगुल्यो भानवेन वासवेन करांगुलीः ॥१२॥
कौबेरेण तथा नासा दंताः संजज्ञिरे तदा ॥ प्रजापत्येनातमेन तेजसा वसुधाधिप ॥ १३ ॥ पापकेन च संजातं लोचनत्रितयं
शुभम् ॥ साध्येन तेजसा जाते भृकुटचौ तेजसां निधी ॥ १४ ॥ कर्णौ वायव्यतो जातौ तेजसो मनुजाधिप ॥ सर्वेषां तेजसा देवी
जाता महिषमर्दिनी ॥ १५ ॥ शूलं ददौ शिवो विष्णुश्चक्रं शंखं च पाशभृत् ॥ हुताशनो ददौ शक्तिं मारुतश्चापसायकौ ॥ १६ ॥ वज्रं
महेंद्रः प्रददौ घण्टां चैरावताद्गजात् ॥ कालदंडं यमो ब्रह्मा चाक्षमालाकमंडलू ॥ १७ ॥ दिवाकरो रश्मिमालां रोमकूपेषु संददौ ॥
कालः खड्गं तथा चर्म निर्मलं वसुधाधिप ॥ १८ ॥ समुद्रो निर्मलं हारमजरे चांबरे नृप ॥ चूडामणिं कुण्डले च कटकानि तथांगदे
॥ १९ ॥ अर्धचन्द्रं निर्मलं च नूपुराणि तथा ददौ ॥ ग्रैवेयकं भूषणं च तस्यै देव्यै मुदान्वितः ॥ २० ॥

उत्तम तेजसे दांत ॥ १३ ॥ अग्निके तेजसे तीन नेत्र, संध्याके तेजसे तेजकी निधि भृकुटी ॥ १४ ॥ हे राजन् ! वायुके तेजसे कान, इस प्रकार सबके तेजसे महिषमर्दिनी प्रगट हुई ॥ १५ ॥ शिवने शूल, विष्णुने चक्र, वरुणने पाश, अग्निने शक्ति, वायुने धनुषबाण ॥ १६ ॥ महेन्द्रने वज्र, ऐरावतने घंटा. यमने कालदण्ड, ब्रह्माने अक्षमाला और कमंडलु ॥१७॥ दिवाकरने रोमकूपोंमें रश्मिमाला, हे राजन् ! कालने दिव्य ढाल तलवार ॥१८॥ समुद्रने निर्मलहार और मलीन न होनेवाले वस्त्र चूडामणि कटक कुंडल बाजूबंद ॥ १९ ॥ निर्मल अर्धचन्द्र और नूपुर तथा गलेका भूषण प्रसन्नतासे देवीके निमित्त दिया ॥ २० ॥

हे राजन् ! विश्वकर्माने यह सब देवीके निमित्त दिया, हिमालयने वाहनसिंह तथा अनेक रत्न दिये ॥ २१ ॥ धनाधिप कुबेरने सुरापूर्ण पानपात्र दिया शिवजीने नागहार दिया ॥ २२ ॥ और भी सम्पूर्ण देवताओंने जगन्माताका मान्य किया महिषपीडित देवता महादेवीकी स्तुति करने लगे ॥२३॥ इस प्रकार जगत्‌की उत्पन्न करनेवाली महेशानी की स्तुति की, देवताओंसे पूजित भगवती उनके स्तोत्रको सुनकर् ॥ २४ ॥ महिषासुरके मारनेको महानाद करती हुई हे राजन् ! उस नादसे महिषासुर चकित होगया ॥ २५ ॥ और सब सेना लेकर जगद्धात्रीके समीप आया तब महिषासुर देवीसे युद्ध करने लगा ॥ २६ ॥

विश्वकर्मा चोर्मिकाश्च ददौ तस्यै धरापते ॥ हिमवान्वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥ २१ ॥ पानपात्रं सुरापूर्णं ददौ तस्यै धनाधिपः ॥ शेषश्च भगवान्देवो नागहारं ददौ विभुः ॥ २२ ॥ अन्यैरशेषविबुधैर्मानिता सा जगन्मयी ॥ तां तुष्टुवुर्महादेवीं देवामहिषपीडिताः ॥ २३ ॥ नानास्तोत्रैर्महेशानीं जगदुद्भवकारिणीम् ॥ तेषां निशम्य देवेशी स्तोत्रं विबुधपूजिता ॥ २४ ॥ महिषस्य वधार्थाय महानादं चकार ह ॥ तेन नादेन महिषश्चकितोऽभूद्धरापते ॥ २५ ॥ आससाद जगद्धात्रीं सर्वसैन्यसमावृतः ॥ ततः स युयुधे देव्या महिषाख्यो महासुरः ॥ २६ ॥ शस्त्रास्त्रैर्बहुधा क्षिप्तैः पूरयन्नंबरातरम् ॥ चिक्षुरो ग्रामणीः सेनापतिर्दुर्धरदुर्मुखौ ॥ २७ ॥ बाष्कलस्ताम्रकश्चैव बिडालवदनोऽपरः ॥ एतैश्चान्यैरसंख्यातैः संग्रामांतकसन्निभैः ॥ २८ ॥ योधैः परिवृतो वीरो महिषो दानवोत्तमः ॥ ततः सा कोपताम्राक्षी देवी लोकविमोहिनी ॥ २९ ॥ जघान योधान्समरे देवी महिषमाश्रितान् ॥ ततस्तेषु हतेष्वेव स दैत्यो रोषमूर्छितः ॥ ३० ॥ आससाद तदा देवीं तूर्णं माया विशारदः ॥ रूपांतराणि संभेजे मायया दानवेश्वरः ॥ ३१ ॥ तानि तान्यस्य रूपाणि नाशयामास सा तदा ॥ ततोऽन्ते माहिषं रूपं बिभ्राणममरार्दनम् ॥ ३२ ॥

और शस्त्रास्त्रोंसे आकाश पूर्ण कर दिया; चिक्षुर, ग्रामणी, दुर्धर, दुर्मुख, ॥ २७ ॥ बाष्कल, ताम्र, बिडालवदन इस प्रकारके और भी दैत्य असंख्य संग्राम करने वाले ॥ २८ ॥ योद्धाओंसे युक्त दानवश्रेष्ठ महिषासुर आया तब क्रोधसे लाल नेत्रकर लोकमोहिनी देवी ॥ २९ ॥ महिषके आश्रित योद्धाओंको समरमें मारनेलगीं, तब उनके मरनेसे क्रोधसे मूर्छित हो वह दैत्य ॥ ३० ॥ मायामें चतुर देवीके समीप प्राप्त हुआ और मायासे दानव अनेक प्रकारके रूपान्तर धारण करने लगा ॥ ३१ ॥ भगवती उसके उन्हीं २ रूपोंका नाश करने लगी तब अन्तमें अमरमर्दकने महिषका रूप धारण किया ॥ ३२ ॥

तब देवीने पाशसे बाँधकर खड्गसे उसका शिरच्छेदन किया और देवगणोंके नाशक महिषासुरको भूमिमें पटक दिया ॥ ३३ ॥ तब सब सेनामें हाहाकार मच गया, सब ओर सेना भग्न हो गयी और सब देवता प्रसन्न हो देवेशीकी स्तुति करने लगे ॥ ३४ ॥ इस प्रकार महिषमार्दिनी लक्ष्मी प्रगट हुई हे राजन् ! अब जैसे सरस्वतीका प्रदुर्भाव हुआ सो सुनो ॥ ३५ ॥ एक समय बड़ा बली दैत्य शुंभनामक था, निशुंभ उसका भ्राता महाबली पराक्रमी था ॥ ३६ ॥ उससे पीडित हो देवता राजलक्ष्मीसे विहीन हो गये तब देवता हिमालयको प्राप्त देवीकी प्रार्थना आदरसे करने लगे ॥ ३७ ॥ देवता बोले हे भक्तोंके दुःख दूर करनेवाली देवी ! आपकी जय हो तुम दानवोंके नाश करनेकी रूप धारण करती हो हे पापरहिते ! तुम अजर अमर हो ॥ ३८ ॥ हे देवेशि ! तुम भक्तिसे ही

पाशेन बद्धा सुदृढं छित्त्वा खड्गेन तच्छिरः ॥ पातयामास महिषं देवी देवगणांतकम् ॥ ३३ ॥ हाहाकृतं ततः शेषसैन्यं भग्नं दिशो दश ॥ तुष्टुवुर्देवदेवेशीं सर्वे देवा प्रमोदिताः ॥ ३४ ॥ एवं लक्ष्मीः समुत्पन्ना महिषासुरमर्दिनी ॥ राजञ्छृणु सरस्वत्याः प्रादुर्भावो यथाऽभवत् ॥ ३५ ॥ एकदा शुंभनामाऽऽसीद्दैत्यो मदबलोत्कटः ॥ निशुंभश्चापि तद्भ्राता महाबलपराक्रमः ॥ ३६ ॥ तेन संपीडिता देवाः सर्वे भ्रष्टश्रियो नृप ॥ हिमवंतमथासाद्य देवीं तुष्टुवुरादरात् ॥ ३७ ॥ देवा ऊचुः ॥ जय देवेशि भक्तानामार्ति नाशनकोविदे ॥ दानवांतकरूपे त्वमजरामरणेऽनघे ॥ ३८ ॥ देवेशि भक्तिसुलभे महाबलपाराक्रमे ॥ विष्णुशंकरब्रह्मादिस्वरूपेऽनंतविक्रमे ॥ ३९ ॥ सृष्टिस्थितिकरे नाशकारिके कांतिदायिनि ॥ महातांडवसुप्रीते मोददायिनि माधवि ॥ ४० ॥ प्रसीद देवदेवेशि प्रसीद करुणानिधे ॥ निशुंभशुंभसंभूतभयापारांबुवारिधेः ॥ ४१ ॥ उद्धराऽस्मान्प्रपन्नार्तिनाशिके शरणागतान् ॥ एवं संस्तुवतां तेषां त्रिदशानां धरापते ॥ ४२ ॥ प्रसन्ना गिरिजा प्राह ब्रूत स्तवनकारणम् ॥ एतस्मिन्नंतरे तस्याः कोशरूपात्समुत्थिता ॥ ४३ ॥

प्राप्त होती हो तुम अनन्त विक्रमवाली विष्णु शंकर ब्रह्मादिका स्वरूप हो ॥ ३९ ॥ हे कान्तिदायिनी ! तुम सृष्टिकी स्थिति उत्पत्ति और संहार करती हो, महा तांडवसे प्रसन्न होनेवाली तथा मोद दायक हो ॥ ४० ॥ हे करुणानिधे देवदेवेशि ! प्रसन्न हो, तथा निशुंभशुंभका भय दूर करती हो ॥ ४१ ॥ हम तुम्हारी शरणमें आकर प्राप्त हुए हैं हमारा उद्धार करो हे धरापते ! इस प्रकार उनके स्तुति करने पर ॥ ४२ ॥ प्रसन्न होकर पार्वती बोली अपने स्तवनका कारण कहो इसी समय उसके शरीर कोशसे उत्थित होकर ॥ ४३ ॥

जगत्पूज्या कौशिकी प्रसन्न हो देवताओंसे कहने लगी, हे देवताओं ! मैं इस आपके स्तवनसे प्रसन्न हूं॥ ४४ ॥ तुम वर मांगो तब देवता बोले कि शुंभ निशुंभ यह दो भ्राता हैं इनमें बड़ा भाई ॥ ४५ ॥ शुंभ अपने पराक्रमसे त्रिलोकीको आक्रमण किये है, हे देवी ! वह दानवेश्वर बड़ा दुरात्मा है, इसका वध विचार किया जाय ॥ ४६ ॥ वह अपने तेजसे सबको तिरस्कार करता है श्रीदेवी बोली देवशत्रु शुंभ और निशुंभका मैं वध करूंगी ॥ ४७ ॥ तुम स्वस्थ होकर स्थित हो मैं तुम्हारे कंटकको नाश करूंगी इस प्रकार इन्द्रादि देवताओंसे दयामयी देवी कहकर ॥ ४८ ॥ देवताओंके देखते २ अदर्शन होगई और देवता प्रसन्न हो सुमेरुकी गुहाओंमें आये ॥ ४९ ॥ तब शुंभ निशुंभके भृत्य चंडमुण्डने उस सुन्दर अंगवाली लोक मोहिनी देवीको देख ॥ ५० ॥ अपने राजासे जाकर

कौशिकी सा जगत्पूज्या देवान्प्रीत्येदमब्रवीत् ॥ प्रसन्नाऽहं सुरश्रेष्ठा स्तवेनोत्तमरूपिणी ॥ ४४ ॥ व्रियतां वर इत्युक्ते देवाः संवव्रिरे वरम् ॥ शुंभनामावरो भ्राता निशुंभस्तस्य विश्रुतः ॥ ४५ ॥ त्रैलोक्यमोजसा क्रांतं दैत्येन बलशालिना ॥ तद्वधश्चिंत्यतां देवि दुरात्मा दानवेश्वरः ॥ ४६ ॥ बाधते सततं देवि तिरस्कृत्य निजौजसा ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ देवशत्रु पातयिष्ये निशुंभं शुंभमेव च ॥ ४७ ॥ स्वस्थास्तिष्ठत भद्रं वः कंटकं नाशयामि वः ॥ इत्युक्त्वा देवदेवेशी देवान्सेंद्रान्दयामयी ॥ ४८ ॥ जगामाऽदर्शनं सद्यो मिषतां त्रिदिवौकसाम् ॥ देवाः समागता हृष्टाः सुवर्णाद्रिगुहां शुभात् ॥ ४९ ॥ चंडमुंडौ पश्यतः स्म भृत्यौ शुंभनिशुंभयो ॥ दृष्ट्वा तां चारुसर्वांगीं देवीं लोकविमोहिनीम् ॥ ५० ॥ कथयामासतू राज्ञे भृत्यौ तौ चंडमुंडकौ ॥ देव सर्वासुर श्रेष्ठ रत्नभोगार्ह मानद ॥ ५१ ॥ अपूर्वा कामिनी दृष्टाचावाभ्यां रिपुमर्दन ॥ तस्याः संभोगयोग्यत्वमस्त्येव तव सांप्रतम् ॥ ५२ ॥ तां समानय चार्वंगीं भुंक्ष्व सौख्य समन्वितः ॥ तादृशी नासुरी नारी न गंधर्वी न दानवी ॥ ५३ ॥ न मानवी नापि देवी यादृशी सा मनोहरा ॥ एवं भृत्यवचः श्रुत्वा शुंभः परबलार्दनः ॥ ५४ ॥ दूतं संप्रेषयामास सुग्रीवं नाम दानवम् ॥ स दूतस्त्वरितं गत्वा देव्याः सविधमादरात् ॥ ५५ ॥

उसका रूप वर्णन किया हे मानदायी असुरश्रेष्ठ देव ! आप सम्पूर्ण रत्नोंके भोगनेवाले हैं ॥५१॥ हे शत्रुमर्दन ! हमने अपूर्व कामिनीका दर्शन किया है वह आपके ही संभोग योग्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५२ ॥ उस सुन्दर अंगवालीको बुलाकर सुख भोगो, उस प्रकारकी स्त्री असुर, गंधर्व, दानव ॥ ५३ ॥ मनुष्य देवताओंमें कहीं नहीं है, वह जैसी मनोहर है ऐसा कोई नहीं इस प्रकार शत्रुतापन शुंभ भृत्योंका वचन सुन ॥ ५४ ॥ सुग्रीव नामक अपने दानवदूतको भेजता हुआ, वह दूत शीघ्र तासे जाकर आदर पूर्वक ॥ ५५ ॥

देवीसे शुम्भके वचन आदरसे कहता हुआ; देवी ! शुम्भासुर नामक त्रिलोकीमें विजयी है ॥ ५६ ॥ वह त्रिलोकीके सब रत्नोंका भोक्ता देवताओंका मान्य है,हे देवि ! जो उसने कहा है वह हमारे अविनाशी वचन सुनो हे चारुलोचने ! जब कि मैं रत्नोंका भोक्ता हूं अविनाशी हूं ॥ ५७ ॥ तब तुम रत्नरूप होनेसे मेरा भजन करो, देवता असुर नरोंमें जितने रत्न हैं ॥ ५८ ॥ वह सब मेरे यहां हैं,हे सुभगे ! मुझे कामरससे भजन करो, देवी बोली हे दूत ! तुम सत्य ही दैत्यराजके प्रियकर वचन कहते हो ॥ ५९ ॥ पर जो पहले मैंने प्रतिज्ञा की है वह मिथ्या किस प्रकार हो सकती है हे दूत ! मेरी प्रतिज्ञाको सुनो ॥ ६० ॥ जो मेरा दर्प और बल नष्ट करे, जो लोकमें मुझसे अधिक बली होगा वही मेरे भोगका भागी होगा ॥ ६१ ॥ हे असुरेश्वर ! उस मेरी प्रतिज्ञाको

वृत्तांतं कथयामास देव्यै शुंभस्य यद्वचः ॥ देविशुंभासुरो नाम त्रैलोक्यविजयी प्रभुः ॥ ५६ ॥ सर्वेषां रत्न वस्तूनां भोक्ता मान्यो दिवौकसाम् ॥ तदुक्तं शृणु मे देवि रत्नभोक्ताऽहमव्ययः ॥ ५७ ॥ त्वं चापि रत्नभूताऽसि भज मां चारुलोचने ॥ सर्वेषु यानि रत्नानि देवासुरनरेषु च ॥ ५८ ॥ तानि मय्येव सुभगे भज मां कामजै रसैः ॥ देव्युवाच ॥ सत्यं वदसि हे दूत दैत्यराजप्रियंकरम् ॥ ५९ ॥ प्रतिज्ञा या मया पूर्वं कृता साप्यनृता कथम् ॥ भवेत्तां शृणुमे दूत या प्रतिज्ञा मया कृता ॥ ६० ॥ यो मे दर्पं विधुनुते यो मे बलम पोहति ॥ यो मे प्रतिबलो भूयात्स एव मम भोगवाक् ॥ ६१ ॥ ततः एनां प्रतिज्ञां मे सत्यां कृत्वा सुरेश्वरः गृह्णातु पाणिं तरसा तस्याशक्यं किमत्र हि ॥ ६२ ॥ तस्माद्गच्छ महादूत स्वामिनं ब्रूहि चादृतः ॥ प्रतिज्ञां चापि मे सत्यां विधास्यति बलाधिकः ॥६३॥ एवं वाक्यं महादेव्याः समाकर्ण्य स दानवः ॥ कथयामास शुंभाय देव्या बृत्तांतमादितः ॥ ६४ ॥ तदाप्रियं दूतवाक्यं शुंभः श्रुत्वा महाबलः ॥ कोपमाहारयामास महांतं दनुजाधिपः ॥ ६५ ॥ ततो धूम्राशनामानं दैत्यं दैत्यपतिः प्रभुः ॥ आदिदेश शृणु वचो धूम्राक्ष मम चादृतः ॥ ६६ ॥

सत्य कर मेरा पाणिग्रहण करे और उसे तो कुछ अशक्य नहीं है ॥ ६२ ॥ हे दूत ! इस कारण तुम जाकरस्वामीसे आदर पूर्वक मेरा वचन कहो यदि वह बलाधिक मेरी सत्य प्रतिज्ञा करेगा तो कार्य होगा ॥ ६३ ॥ वह दानव इस प्रकार देवीके वचन सुन आदिसे शुम्भके निमित्त देवीका वृत्तान्त कहता हुआ ॥ ६४ ॥ महाबली शुम्भ दूतसे यह अप्रिय वचन सुन बलकी अधिकता और अधिकाईसे महा क्रोध करता हुआ ॥ ६५ ॥ तब उस दैत्यपतिने धूम्राक्ष नामक दैत्यसे कहा मेरे वचन सुनो ॥ ६६ ॥

उस दुष्टाके बाल पकड़ कर यहां ले आओ देर न हो शीघ्र जाकर मेरे समीप लाओ ॥ ६७ ॥६८॥ धूम्रलोचन दैत्य यह आज्ञा पाकर साठ सहस्र असुरोंको लेकर हिमालयमें देवीके समीप गया और ऊंचे स्वरोंसे बोला हे शुभे ! दैत्यपतिको भजो ॥ ६९ ॥ उस महाबली शुम्भके भजनेसे सब भोगोंको प्राप्त होगी, न मानोगी तो केश पकड़ कर दैत्यराजके पास तुमको ले जाऊंगा ॥ ७० ॥ यह वचन उस दैत्यके सुनकर देवी बोली हे दैत्य ! जो कहता है वह सब सत्य है ॥ ७१ ॥ राजा शुम्भ और तू क्या करेगा सो कह ऐसा कहने पर शस्त्र लेकर वह दैत्य धावमान हुआ ॥ ७२ ॥ महेश्वरीने हुंकारसे ही उसको भस्म कर

तां दुष्टां केशपाशेषु धृत्वाऽप्यानीयतां मम ॥ समीपमविलंबेन शीघ्रं गच्छस्व मे पुरः ॥ ६७ ॥ इत्यादेशं समासाद्य दैत्येशो धूम्रलोचनः ॥ षष्टयसुराणां सहितः सहस्राणां महाबलः ॥ ६८ ॥ तुहिनाचलमासाद्य देव्याः सविधमेव सः ॥ उच्चैर्देवीं जगादाशु भज दैत्य पतिं शुभे ॥ ६९ ॥ शुंभं नाम महावीर्यं सर्वभोगानवाप्नुहि ॥ नो चेत्के शाग्रगृहीत्वा त्वां नेष्ये दैत्यपतिं प्रति ॥ ७० ॥ इत्युक्त्वा सा ततो देवी दैत्येन त्रिदशारिणा ॥ उवाच दैत्य यद्ब्रूषे तत्सत्यं ते महाबल ॥ ७१ ॥ राजा शुंभासुरस्त्वं च किं करिष्यति तद्वद ॥ इत्युक्तो दैत्यपोऽधावत्तूर्णं शस्त्रसमन्वितः ॥ ७२ ॥ भस्मसात्तं चकाराशु हुंकरेण महे श्वरी ॥ ततः सैन्यं वाहनेन देव्या भग्नं महीपते ॥ ७३ ॥ दिशो दशाभजच्छीघ्रं हाहाभूतमचेतनम् ॥ तद्वृत्तांतं समाश्रुत्य स शुंभो दैत्यराड्विभुः ॥ ७४ ॥ चुकोप च महाकोपाद् भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥ ततः कोपपरीतात्मा दैत्यराजः प्रतापवान् ॥ ७५ ॥ चंडं मुंडं रक्तबीजं क्रमतः प्रैषयद्विभुः ॥ ते च गत्वा त्रयो दैत्या विक्रांता बहुविक्रमाः ॥ ७६ ॥ देवीं ग्रहीतुमारब्धयत्नस्ते ह्यभवन्बलात् ॥ तानापतत एवासौ जगद्धात्री मदोत्कटा ॥ ७७ ॥ शूलं गृहीत्वा वेगेन पातयामास भूतले ॥ ससैन्यान्निहतांछ्रुत्वा दैत्यांस्त्रीन्दानवेश्वरी ॥ ७८ ॥

दिया और देवीके वाहन सिंहने सब सेना नष्ट कर दी ॥ ७३ ॥ और वह हाहाकार करती अचेतन हो दशों दिशामें धावमान हुई, दैत्यपति शुम्भने यह वृत्तान्त श्रवण कर ॥ ७४ ॥ महाक्रोधसे कुटिल भौंहें करली, तब वह प्रतापी दैत्यराज महाक्रोधकर ॥ ७५ ॥ क्रमसे चंड, मुंड, और रक्तबीजको भेजता हुआ, वे तीनों दैत्य बड़े विक्रमी वहां जाकर ॥ ७६ ॥ यत्नसे देवीके ग्रहणका यत्न करने लगे, तब जगद्धात्री मदोत्कटा उनपर टूट पड़ी ॥ ७७ ॥ शूल ग्रहण कर बड़े वेगसे उनको पृथ्वीमें गिरा दिया तब दानवेश्वर शुंभ, निशुंभने तीनों दैत्योंको मृतक और सेनाको नष्ट हुआ सुन ॥ ७८ ॥

तब क्रोध कर शुंभ निशुंभ आकर प्राप्त हुए और दोनोंने बड़ा युद्ध किया ॥ ७९ ॥ और देवीके वशीभूत होकर निहत हुए, इस प्रकार जगन्माता दैत्यप्रवर शुंभ निशुंभको मारकर ॥८०॥ वह वागीश्वरी देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त होने लगी, हे राजन्! यह भगवतीका उत्तम प्रादुर्भाव आपसे वर्णन किया ॥८१॥ यह क्रमसे महाकाली महालक्ष्मी, महासरस्वतीका वर्णन किया यही परा परमेश्वरी देवी जगत्की सृष्टि करती है ॥ ८२ ॥ यही देवी पालन और संहार करती है, इस जगत्के मोह निवारण करनेवाली देवीका आश्रय करो ॥ ८३ ॥ वही पूज्यतम महामाया आपका कार्य विधान करेगी, श्रीनारायण बोले इस प्रकार राजा मुनिके परम उत्तम वचन सुनकर ॥ ८४ ॥ सब कामना और फलके देनेवाली देवीकी शरणमें हुआ निराहार यतात्मा और सावधान हो

शुंभश्चैव निशुंभश्च समाजग्मतुरोजसा ॥ निशुंभश्चैशुंभश्च कृत्वा युद्धं महोत्कटम् ॥७९॥ देव्याश्च वशगौ जातौ निहतो च तया सुरौ ॥
इति दैत्यवरं शुंभं घातयित्वा जगन्मया ॥ ८० ॥ विबुधैः संस्तुता तद्वत्साक्षाद्वागीश्वरी परा ॥ एवं ते वर्णितो राजन्प्रादुर्भावोऽति
रम्यकः ॥ ८१ ॥ काल्याश्चैव महालक्ष्म्याः सरस्वत्याः क्रमेण च ॥ परापरेश्वरी देवी जगत्सर्गं करोति च ॥८२॥ पालनं चैव संहारंसैव
दधाति हि ॥ तां समाश्रय देवेशीं जगन्मोहनिवारिणीम् ॥ ८३ ॥ महामायां पूज्यतमां सा कार्यं ते विधास्यति ॥ श्रीनारायण उवाच ॥
इति राजा वचः श्रुत्वा मुनेः परमशोभनम् ॥८४॥ देवीं जगाम शरणं सर्वकामफलप्रदाम् ॥ निराहारो यतात्मा च तन्मनाश्च समाहितः
॥ ८५ ॥ देवीमूर्तिं मृन्मयीं च पूजयामास भक्तितः ॥ पूजनांते बलिं तस्यै निजगात्रासृजं ददत् ॥ ८६ ॥ तदा प्रसन्ना देवेशी जगद्यो
नि कृपावती ॥ प्रादुर्बभूव पुरतो वरं ब्रूहीति भाषिणी ॥८७॥ स राजा निजमोहस्य नाशनं ज्ञानमुत्तमम् ॥ राज्यं निष्कंटकं चैव याचति
स्म महेश्वरीम् ॥ ८८ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ राजन्निष्कंटकं राज्यं ज्ञानं वै मोहनाशनम् ॥ भविष्यति मया दत्तमस्मिन्नेव भवे तव ॥८९॥
अन्यच्च शृणु भूपाल जन्मांतरविचेष्टितम् ॥ भानोर्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता भवान् ॥ ९० ॥

उन्हींमें मन लगाया ॥ ८५ ॥ भक्तिसे देवीकी मृन्मयी मूर्तिकी पूजा करने लगा और पूजनके अन्तमें बलिमें अपने शरीरका रुधिर देने लगा ॥ ८६ ॥ तब जगत्की योनि कृपावती देवी प्रसन्न हुई और आगे प्रगट हो वर मांगनेको कहा ॥८७॥ तब राजाने अपने मोह नाशका उत्तम ज्ञान और निष्कंटक राज्य देवीसे मांगा ॥ ८८ ॥ श्रीदेवी बोली हे राजन्! निष्कंटक राज्य और मोह नाशक ज्ञान मेरे कृपासे इसी शरीरमें तुझको प्राप्त होगा ॥ ८९ ॥ हे राजन्! और भी जन्मान्तरकी चेष्टा सुनो आप सूर्यसे जन्म लेकर सावर्णिमनु होगे ॥ ९० ॥

दे. भा.
॥१८॥

वहाँ मन्वन्तरका पतिपन बड़ा विक्रम तथा बहुत सन्तान मेरे वरसे तुमको प्राप्त होंगी ॥ ९१ ॥ इस प्रकार वर देकर भगवती अन्तर्द्धान होगई, वह भी देवीके प्रसादसे मन्वन्तराधिप हुआ ॥ ९२ ॥ हे साधो! यह आपसे सावर्णिका जन्मकर्म वर्णन किया, इसके पढ़ने सुननेसे देवीके अनुग्रहकी प्राप्ति होती है ॥ ९३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीनारायण बोले अब शेषमनुओंका चरित्र श्रवण कीजिये जिसके स्मरणमात्रसे देवीकी भक्ति होती है ॥ १ ॥ वैवस्वतमनुके छःपुत्र बड़े विज्ञानी थे, करुण पृषध्र, नाभाग, दिष्ट ॥ २ ॥ शर्याति, त्रिशंकु यह महाबली थे

तत्र मन्वंतरस्यापि पतित्वं बहु विक्रमम् ॥ संततिं बहुलांचाऽपि प्राप्स्यते मद्वराद्भवान् ॥९१॥ एवं दत्त्वा वरं देवी जगामादर्शनं तदा ॥ सोऽपि देव्याः प्रसादेन जातो मन्वंतराधिपः ॥ ९२ ॥ एवं ते वर्णितं साधो सावर्णेर्जन्म कर्म च ॥ एतत्पठंस्तथा शृण्वन्देव्यनुग्रह माप्नुयात् ॥ ९३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे देवीमाहात्म्ये द्वाद शोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां शेषमनूनां चित्रमुद्भवम् ॥ यस्य स्मरणमात्रेण देवी भक्तिः प्रजायते ॥ १ ॥ आसन्वैवस्वतमनोः पुत्राः षड् विमलोदयाः ॥ करूषश्च पृषध्रश्च नाभागो दिष्ट एव च ॥ २ ॥ शर्यातिश्च त्रिशंकुश्च सर्व एव महा बलाः ॥ ततः षडेव ते गत्वा कालिंद्यास्तीरमुत्तमम् ॥ ३ ॥ निराहारा जितश्वासाः पूजां चक्रुस्ततः स्थिताः ॥ देव्या महीमयीं मूर्तिं विनिर्माय पृथक्पृथक् ॥ ४ ॥ विविधैरुपचारैस्तां पूजयामासुराद्दता ॥ ततश्च सर्व एवैते तपः सारा महाबलाः ॥ ५ ॥ जीर्णपर्णाशना वायुभक्षणास्तोयजीवनाः ॥ धूम्रपानरश्मिपाना क्रमजश्च बहुश्रमाः ॥ ६ ॥ ततस्तेषामादरेणाऽऽराधनं कुर्वतां सदा ॥ विमला मति रुत्पन्ना सर्वमोहविनाशिनी ॥ ७ ॥ बभूवुमनुपुत्रास्ते देवीपादैकचिन्तनाः ॥ मत्या विमलया तेषामात्मन्येवाखिलं जगत् ॥ ८ ॥

तब यह छहों कालिन्दीके तटपर जाकर ॥ ३ ॥ निराहार हुए श्वास रोककर पूजा करने लगे देवताकी मूर्ति बनाकर पृथक् २ सेवा की ॥ ४ ॥ और अनेक उपचारोंसे आदरपूर्वक पूजा करने लगे तब यह सब तपके सार महाबली ॥५॥ सूखे पत्ते, वायुभक्षण, तथा जल जीवी मात्र होकर धूमपान रश्मिपान करके महाश्रम करने लगे ॥ ६ ॥ तब इस प्रकार आदरसे उनके आराधन करनेपर सब मोहनाशिनी उज्ज्वल मति उनको प्राप्त हुई ॥ ७ ॥ वे सब देवीके चरणोंका ध्यान करने वाले मनुके पुत्र हुए, वह मतिकी विमलतासे अपनेमें ही सब जगत् ॥ ८ ॥

भा. टी.द
अ० १३

देखने लगे, बडी अद्भुत बात हुई इस प्रकार बारह वर्षके उपरांत वह जगदीश्वरी तपस्यासे ॥ ९ ॥ सहस्र सूर्यके समान कांतिमान् प्रगट हुई, विमलात्मा वे छः राजपुत्र उनको देखकर ॥ १० ॥ भक्तिसे नम्र अन्तःकरण भावसंयुक्त हो स्तुति करने लगे राजपुत्र बोले, माहेश्वरि, ईशानी, आपकी जय हो आप परम करुणामयी हो ॥११॥ सरस्वतीबीजके आराधनासे प्रसन्न होनेवाली, सरस्वतीबीजमें प्रतिपादित ' क्लीं ' विग्रहवाली क्लींसे प्रीति देनेवाली ॥ १२ ॥ कामराज मंत्र जपनेसे मनको आनंद देनेवाली, हे ईश्वरको प्रसन्न करनेवाली ! हे महामाया ! हे मोदमें तत्पर ! हे महासाम्राज्य दायिनी ! ॥ १३ ॥ हे विष्णु, सूर्य, शिव इन्द्रादिके स्वरूपवाली ! हे भोगकी बढानेवाली ! आपकी जय हो, जब महात्मा राजपुत्रोंने इस प्रकार भगवतीकी स्तुति की ॥ १४ ॥

दर्शनं संजगामाशु तदद्भुतमिवाभवत् ॥ एवं द्वादशवर्षांते तपसा जगदीश्वरी ॥ ९ ॥ प्रादुर्बभूव देवेशी सहस्रार्कसमद्युतिः ॥ तां दृष्ट्वा विमलात्मानो राजपुत्राः षडेवते ॥ १० ॥ तुष्टुवुर्भक्तिनम्रांतःकरणा भावसंयुताः ॥ राजपुत्रा ऊचुः ॥ महेश्वरि जयेशानि परमे करुणालये ॥११॥ वाग्भवाराधन प्रीते वाग्भवप्रतिपादिते ॥ क्लींकारवि हे देवि क्लींकारप्रीतिदायिनि ॥ १२ ॥ कामराजमनोमोददायिनीश्वरतोषिणि ॥ महामाये मोदपरे महासाम्राज्यदायिनि ॥ १३ ॥ विष्णवर्कहरशक्रादिस्वरूपे भोगवर्धिनि ॥ एवं स्तुता भगवती राजपुत्रैर्महात्मभिः ॥ १४ ॥ प्रसादसुमुखी देवी प्रोवाच वचनं शुभम् ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ राजपुत्रा महात्मानो भवंतस्तपसा युताः ॥ १५ ॥ निष्कल्मषाः शुद्धधियो जाता वै मदुपासनात् ॥ वरं मनोगतं सर्वं याचध्वमविलंबितम् ॥ १६ ॥ प्रसन्नाऽहं प्रदास्यामि युष्माकं मनसि स्थितम् ॥ राजपुत्रा ऊचुः ॥ देवि निष्कंटकं राज्यं संततिश्चिरजीविनी ॥ १७ ॥ भोगा अव्या हताः कामं यशस्तेजोमतिश्च ह ॥ अकुंठितत्वं सर्वेषामेष एव वरो हितः ॥ १८ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एवमस्तु च सर्वेषां भवतां यन्मनोगतम् ॥ अथान्यदपि मे वाक्यं श्रूयतामादरादिदम् ॥ १९ ॥

तब प्रसन्न हो, देवी सुन्दर वचन बोली देवी बोली हैं महात्मा राजपुत्रो ! आप बड़े तपसे संयुक्त हो ॥१५॥ तुम मेरी उपासनासे पापरहित और शुद्धिबुद्धि हुए हो, शीघ्र अपना मनवांछित वर मांगो ॥ १६ ॥ मैं प्रसन्न होकर आपके मनचिन्तित वरको दूंगी राजपुत्र बोले हे देवि ! निष्कंटकराज्य और चिरजीविनी सन्तान ॥ १७ ॥ विघ्नरहित भोग, यश, तेज, मति यह सब अकुंठित रहें, यही वर हमें हितकारी है ॥ १८ ॥ श्रीदेवी बोली जो तुम सबके मनमें स्थित है वह सब इसी प्रकार होगा और भी मेरे वाक्य आदरसे सुनो ॥ १९ ॥

तुम सब मन्वन्तरोंके अधिपति होगे और दीर्घजीवी सन्तानको प्राप्त होगे, तथा अनेक भोग भोगोगे ॥ २० ॥ अखंडित बल ऐश्वर्य तेज और विभूति होगी,हे राजपुत्रो ! मेरे प्रसादसे यह सब कुछ प्राप्त होगा ॥ २१ ॥ श्रीनारायण बोले इस प्रकार भ्रामरी जगदम्बिका इनको वरदान देकर उनसे भक्तिद्वारा स्तुतिको प्राप्त हो अन्तर्धान हुई ॥२२॥ वे सब राजपुत्रभी उस जन्ममें पृथ्वीका उत्तम राज्य भोगते हुए ॥ २३ ॥ पश्चात् भूतलमें अखण्ड सन्तान उत्पन्नकर और वंश स्थापनकर सब मनुओंके पति हुए ॥ २४ ॥ और जन्मान्तरके क्रमसे सावर्णिकेपदभागी हुए पहला दक्ष नौवाँ सावर्णि मनु हुआ ॥२५॥

भवंतः सर्व एवैते मन्वंतरपतीश्वराः ॥ संतत्या दीर्घ या भोगैरनेकैरपि संगमः ॥ २० ॥ अखंडितबलैश्वर्यं यशस्तेजोविभूतयः ॥ भवितारो मत्प्रसादाद्राजपुत्राः क्रमेण तु ॥ २१ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ एवं तेभ्यो वरान्दत्त्वा भ्रामरी जगदंबिका ॥ अंतर्धानं जगामाऽऽशु भक्त्या तैः संस्तुता सती ॥ २२ ॥ ते राजपुत्राः सर्वेऽपि तस्मिञ्जन्मन्यनुत्ततमम् ॥ राज्यं महीगतान्भोगान्बुभुजुश्च महौजसः ॥ २३ ॥ संततिं चाऽखंडितां ते समुत्पाद्य महीतले ॥ वंशं संस्थाप्य सर्वेऽपि मनूनां पतयोऽभवन् ॥ २४ ॥ भवांतरे क्रमेणैव सावर्णिपदभागिनः ॥ प्रथमोदक्षसावर्णिर्नवमो मनुरीरितः ॥२५॥ अव्याहतबलो देव्याः प्रसादादभवद्विभुः ॥ द्वितीयो मेरुसावर्णिर्दशमो मनुरेव च ॥ २६ ॥ बभूव मन्वंतरनृपो महादेवीप्रसादतः ॥ तृतीयो मनुराख्यातः सूर्यसा वर्णिनामकः ॥ २७ ॥ एकादशो महोत्सा हस्तपसा स्वेनभावितः ॥ चतुर्थश्चंद्रसावर्णिर्द्वादशो मनुराड् विभु ॥२८॥ देवीसमाराधनेनजातो मन्वंतरेश्वरः ॥ पंचमो रुद्रसावर्णिस्त्रयो दशमनुः स्मृतः ॥ २९ ॥ महाबलो महासत्त्वो बभूव जगदीश्वरः ॥ षष्ठश्च विष्णुसावर्णिश्चतु र्दशमनुः कृती ॥ ३० ॥ बभूव देवीवरतो जगतां प्रथितः प्रभुः ॥ चतुर्दशैते मनवो महातेजो बलैर्युताः ॥ ३१ ॥

यह देवीके वरसे अव्याहतगतिवाला महाबली हुआ, दूसरा मेरुसावर्णि दशवाँ मनु हुआ ॥ २६ ॥ यह भी महादेवीके प्रसादसे मन्वन्तरका अधिपति हुआ तीसरा मनु सूर्यसावर्णि नामके ॥२७॥ अपने तपके बलसे ग्यारहवां मनु हुआ चौथा. चन्द्रसावर्णि बारहवां मनु हुआ ॥ २८ ॥ यह भी देवीके आराधनासे मन्वन्तराधिपति हुआ पांचवा रुद्रसावर्णि तेरहवां मनु हुआ ॥ २९ ॥ यह महाबली महासत्ववान् जगत्का अधिपति हुआ, छठा विष्णुसावर्णि चौदहवाँ मनु हुआ ॥ ३० ॥ यह देवीके वरसे जगत्के प्रभु हुए यह चौदह मनु महातेज और बलसे सम्पन्न हैं ॥ ३१ ॥

यह देवीके आराधनासे लोकमें वंदित और पूजनीय हुए, और भ्रामरीके प्रसादसे महाप्रतापी हुए ॥ ३२ ॥ नारदजी बोले यह भ्रामरी देवी कौन है कैसे प्रगट हुई क्या आत्मावाली हैं आप यह विचित्र शोकनाशक आख्यान कहिये ॥ ३३ ॥ देवीकथामृत पान करते मेरी तृप्ति नहीं होती है इस अमृतपानसे मृत्युका भय नहीं रहता ॥३४॥ श्रीनारायण बोले हे नारदजी! जगन्माताकी चेष्टा सुनो मैं कहता हूं, जो अचिन्त्य अव्यक्तरूप विचित्र और मोक्षदायक है ॥ ३५ ॥ देवीका जो जो चरित्र है सो सब लोकके हितके निमित्त है, जैसा माताका कार्य पुत्रके निमित्त होता है ॥ ३६ ॥ पहले एक महाबली अरुण नामक दैत्य हुआ है, वह महाखल दैत्योंके निवासस्थान पातालमें देवीका द्वेष करता स्थित था ॥ ३७ ॥ वह देवताओंके जीतनेकी इच्छासे परम तप करता

देव्याराधनतः पूज्या वंद्यालोकेषु नित्यशः ॥ महा प्रतापिनः सर्वे भ्रामर्यास्तु प्रसादतः ॥ ३२ ॥ नारद उवाच ॥ केयं सा भ्रामरी देवी कथं जाता किमात्मिका ॥ तदाख्यानं वद प्राज्ञ विचित्रं शोकनाशकम् ॥ ३३ ॥ न तृप्तिमधिगच्छामि पिबन्देवीकथामृतम् ॥ अमृतं पिबतां मृत्युर्नाऽस्य श्रवणतो यतः ॥ ३४ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु नारद वक्ष्यामि जगन्मातुर्विचेष्टितम् ॥ अचिंत्या व्यक्तरूपाया विचित्रं मोक्षदायकम् ॥ ३५ ॥ यद्यच्चरित्रं श्रीदेव्यास्तत्सर्वं लोकहेतवे ॥ निर्व्याजया करुणया पुत्रे मातुर्यथा तथा ॥ ३६ ॥ पूर्वं दैत्यो महानासीदरुणाख्यो महाबलः ॥ पाताले दैत्यसंस्थाने देव द्वेषी महाखलः ॥ ३७ ॥ स देवाञ्जेतुकामश्च चकार परमं तपः ॥ पद्मसंभवमुद्दिश्य स नास्त्राता भविष्यति ॥ ३८ ॥ गत्वा हिमवतः पार्श्वे गंगाजलसुशीतले ॥ पक्वपर्णाशनो योगी संनिरुध्य मरुद्गणम् ॥ ३९ ॥ गायत्रीजपसंसक्तः सकामस्तमसा युतः ॥ दशवर्षसहस्राणि ततो वारिकणाशनः ॥ ४० ॥ दशवर्षसहस्राणि ततः पवन भोजनः ॥ दशवर्षसहस्राणि निराहारोऽभवत्ततः ॥ ४१ ॥ एवं तपस्यतस्तस्य शरीरादुत्थितोऽनलः ॥ ददाह जगतीं सर्वां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४२ ॥ किमिदं किमिदं चेति देवाः सर्वे चकंपिरे ॥ संत्रस्ताः सकला लोका ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ४३ ॥

हुआ, और ब्रह्मकाही तप किया कि हमारी रक्षा करेंगे ॥ ३८ ॥ हिमालयके निकट जाय शीतल गंगाजल पके पत्ते खाता हुआ श्वास रोककर ॥३९॥ गायत्रीजपसे संसक्त हुआ, तमयुक्त हो सकामतामे तपकरा दशसहस्र वर्षतक जलकणका भोजन किया ॥ ४० ॥ फिर दशसहस्र वर्षतक वायुभोजन किया फिर दशसहस्रवर्षतक निराहार रहा ॥४१॥ इस प्रकार तप करते२उसके शरीरसे अग्नि निकली उससे सब जगत् भस्म होने लगा यह बड़ी अद्भुत बात हुई ॥ ४२ ॥ यह क्या है यह क्या है यह कहकर सब देवता कम्पित होगये, और सब लोक संत्रस्त होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ ४३ ॥

दे. भा. ब्रह्माजी देवतोंकी विज्ञापना सुनकर गायत्रीके सहित हंसपर आरुढ होकर गये ॥ ४४ ॥ जो कि वह दैत्य प्राणमात्रसे अवशिष्ट सैकंड़ों नसोंसे व्याप्त सूखा
॥२०॥ पेट दुबला शरीर ध्यानसे नेत्र मीचे था ॥ ४५ ॥ तेजसे दीप्त दूसरी अग्निके समान उसको देखा, तब ब्रह्माजी बोले हे भद्र! जो तुम्हारे मनमें आवे सो वर
मांगो ॥४६॥ जब श्रवणमात्रसेही सन्तोषकारक वाक्य सुना तब अरुणने यह वाणी सुधाधाराके समान मानी ॥४७॥ आंख खोलतेही आगे गायत्रीसहित चारों
वेदोंसे संयुक्त ॥४८॥ रुद्राक्षकी माला लिए कुण्डिक हाथमें लिये, ओंकारका जप करते ब्रह्माजीको देखा, देखतेही प्रणाम करने उपरान्त अनेक स्तोत्रसे
स्तुतिकर ॥ ४९ ॥ यह बुद्धिसे विचार कर वर मांगा कि मेरी मृत्यु न हो, अरुणके वचन सुन ब्रह्मा आदरसे समझाने लगे ॥ ५० ॥ जब ब्रह्मा, विष्णु,

विज्ञापितं देववरैः श्रुत्वा तत्र चतुर्मुखः ॥ गायत्रीसहितो हंससमारूढो ययौ मुदा ॥ ४४ ॥ प्राणमात्रावशिष्टं तं धमनीशत संकुलम् ॥
शुष्कोदरं क्षामगात्रं ध्यान मीलितलोचनम् ॥४५॥ ददर्श तेजसा दीप्तं द्वितीयमिव पावकम् ॥ वरं वरय भद्रं ते वत्स यन्मनसि स्थितम्
॥ ४६ ॥ श्रुतिमात्रेण संतोषकारके वाक्यमूचिवान् ॥ श्रुत्वा ब्रह्ममुखाद्वाणीं सुधाधारामिवारुणः ॥ ४७ ॥ उन्मीलिताक्षः पुरतो ददर्शज
लजोद्भवम् ॥ गायत्री सहितं देवं चतुर्वेदसमन्वितम् ॥४८॥ अक्षस्रक्कुंडिकाहस्तं जपंतं ब्रह्म शाश्वतम्॥ दृष्ट्वोत्थाय ननामाऽथ स्तुत्वा
च विविधैः स्तवैः ॥४९॥ वरं वव्रे स्वबुद्धिस्थं मा भवेन्मृत्युरित्यपि ॥ श्रुत्वाऽरुणवचो ब्रह्मा बोधयामास सादरम् ॥ ५० ॥ ब्रह्मविष्णु
महेशाद्या मृत्युनाकवली कृताः ॥ तत्राऽन्येषां तु का वार्ता मरणे दानवोत्तम ॥ ५१ ॥ वरं योग्यं ततो ब्रूहि दातुं यः शक्यते मया ॥
नाऽत्राऽऽग्रहं प्रकुर्वंति बुद्धिमंतो जनाः क्वचित् ॥ ५२ ॥ इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा पुनः प्रोवाच सादरम् ॥ न युद्धे न च शस्त्रास्त्रान्न पुंभ्यो
नापि योषितः ॥ ५३ ॥ द्विपाद्भ्यो वा चतुष्पाद्भ्यो नोभयाकारतस्तथा ॥ भवेन्मे मृत्युरित्येवं देव देहि वरं प्रभो ॥ ५४ ॥ बलं च
विपुलं देहि येन देवरजयो भवेत् ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा तथास्त्वितिवचोऽब्रवीत् ॥ ५५ ॥

महेश, भी कालधर्म मानते हैं, तो हे दानव ! मरणमें औरोंकी तो बातही क्या है ॥५१॥ तुम वरके योग्य मांगो जिसको मैं देसकूं, बुद्धिमान् पुरुष इसमें आग्रह
भा. टी. द. नहीं करते ॥५२॥ यह ब्रह्मके वचन सुन फिर वह दैत्य आदरसे बोला कि युद्धमें शस्त्र, अस्त्र, पुरुष स्त्री ॥ ५३ ॥ द्विपाये, चौपाये, वा दोनों प्रकारके
अ० १३ आकारवाले इनमें किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो हे देव ! यही वर दो ॥ ५४ ॥ हे देव ! इतना अधिक बल दो जिससे मेरी जय हो ब्रह्माजीने यह वचन
सुनकर तथास्तु कहा ॥ ५५ ॥

वर देकर ब्रह्माजी शीघ्र ही अपने स्थानको चले गये, तब दैत्यने पातालसे अपने आश्रित ॥ ५६ ॥ दैत्योंको बुलाय ब्रह्माका वर सुनाया, वे सब असुर आकर दैत्यपतिको घेर लेते हए ॥ ५७ ॥ और युद्धके निमित्त अमरावतीमें दूतको भेजा दूतके वचन सुनकर देवराज भयसे कंपित हुए ॥ ५८ ॥ और देवताओंके साथ शीघ्रही ब्रह्मलोकको गये फिर ब्रह्माजी विष्णुको लेकर शंकरके स्थानमें गये ॥५९॥ और उस दैत्यके मारनेका विचार करने लगे.इसी समय वह दैत्य सेना लिये ॥ ६० ॥ बडी शीघ्रतासे स्वर्गको चला, सूर्य, चन्द्र, यम, अग्नि इन सबके अधिकारोंको पृथक् पृथक् ॥ ६१ ॥ लेकर आप अनेक रूप धारणकर तपसे स्वर्ग भोगने लगा यह सब देवता अपने २ स्थानसे भ्रष्ट हो कैलासको गये ॥ ६२ ॥ और सब देवता अपना २ दुःख पृथक् पृथक् शिवजीसे

दत्त्वा वरं जगामाशुः पद्मजः स्वं निकेतनम् ॥ ततोऽरुणाख्यो दैत्यस्तुपाता लात्स्वाश्रयस्थितान् ॥ ५६ ॥ दैत्यानाकारयामास ब्रह्मणो वरदर्पितः ॥ आगत्य तेऽसुराः सर्वे दैत्येशं तं प्रचक्रिरे ॥ ५७ ॥ दूतं च प्रेषयामासुर्युद्धार्थममरावतीम् ॥ दूतवाक्यं तदा श्रुत्वा देवराड् भयकंपितः ॥ ५८ ॥ देवैः सार्धं जगामाऽऽशु ब्रह्मणः सदनं प्रति ॥ ब्रह्मविष्णू पुरस्कृत्य जग्मुस्ते शंकरालयम् ॥५९॥ विचारं चक्रिरे तत्र ते वधार्थं सुरद्रुहाम् ॥ एतस्मिन्समये तत्र दैत्यसेना समावृतः ॥ ६० ॥ अरुणाख्यो दैत्यराजो जगामाऽऽशु त्रिविष्टपम् ॥ सूर्येन्दुयमवह्नीनामधिकारान्पृथपृथक् ॥ ६१ ॥ स्वयं चकार तपसा नानारूपधरोमुने ॥ स्वस्वस्थानच्युताः सर्वे जग्मुः कैलासमंडलम् ॥ ६२ ॥ शशंसुः शंकरं देवा स्वस्वदुःखं पृथक्पृथक् ॥ महान्विचारस्तत्राऽऽसीत्किंकर्तव्यमतः परम् ॥ ६३ ॥ न युद्धे न च शस्त्रास्त्रैर्न पुंभ्यो नापि योषितः ॥ द्विपाद्भ्यो वा चतुष्पाद्भ्यो नोभयाकारतोऽपि वा ॥ ६४ ॥ मृत्युर्भवेदिति ब्रह्मा प्रोवाच वचनं यतः ॥ इति चिंतातुराः सर्वे कर्तुं किंचिन्न च क्षमाः ॥ ६५ ॥ एतस्मिन्समये तत्र वागभूदशरीरिणी ॥ भजध्वं भुवनेशानीं सा वः कार्यं विधास्यति ॥ ६६ ॥ गायत्रीजपसंयुक्तो दैत्यराडचदि तां त्यजेत् ॥ मृत्युयोग्यस्तदा भूयादित्युच्चैस्तोषकारिणी ॥ ६७ ॥

निवेदन करने लगे, उस स्थानमें बडा विचार प्रारंभ हुआ कि, हमको अब क्या करना चाहिये ॥ ६३ ॥ युद्ध, अस्त्र शस्त्र, पुरुष, स्त्री, दुपाये, चौपाये वा दोनों प्रकारके जीवोंसे ॥ ६४ ॥ मृत्यु न हो यही उसको ब्रह्माजीका वरदान है, ऐसा विचार कर वे कुछ भी करनेमें समर्थ न हुए ॥ ६५ ॥ उसी समय अशरीरिणी वाणी हुई तुम इशानीका भजन करो वह तुम्हारा कार्य करेगी ॥ ६६ ॥ यह दैत्यराज गायत्रीका जप निरन्तर करता है, जो उसको त्याग देगा तो यह वधके योग्य होगा ऐसी संतोषकारिणी वाणी हुई ॥ ६७ ॥

देवीकी यह वाणी सुन आदरसे देवता मंत्रणा करने लगे तब बृहस्पतिको बुलाकर इन्द्रने कहा ॥६८॥ हे गुरुदेव ! आप देवकार्यसिद्धिके निमित्त असुरके पास जाओ जिस प्रकार वह गायत्रीका त्याग करे वैसा करो ॥ ६९ ॥ हम ध्यानयोगसे परमेशानीकी सेवा करते हैं, वह भगवती प्रसन्न होकर तुम्हारी सहायता करेगी ॥ ७० ॥ यह आदेश करके सब देवता जाम्बूनदेश्वरीके समीप गये कि, वह शोभना दैत्योंके भयसे घबराये हुए हमारी रक्षा करेगी ॥७१॥ वहां जाकर सब कोई तपश्चर्या करने लगे वे सब मायावीजके जपमें आसक्त देवीके ध्यानयज्ञमें परायण हुए ॥ ७२ ॥ तब बृहस्पति बहुत शीघ्र असुरके समीप गये मुनिको आया देख दैत्यराज पूंछने लगा ॥ ७३ ॥ हे मुनि ! तुम्हारा आगमन कहांसे किस निमित्त हुआ है, मैं तुम्हारा

श्रुत्वा देवीं तथा वाणीं मन्त्रयामासुरादृता ॥ बृहस्पतिं समाहूय वचनं प्राह देवराट् ॥६८॥ गुरो गच्छ सुराणां तु कार्यार्थमसुरं प्रति ॥ कथा भवेच्च गायत्रीत्यागस्तस्य तथा कुरु ॥ ६९ ॥ अस्माभि परमेशानी सेव्यते ध्यानयोगतः ॥ प्रसन्ना सा भगवती साहाय्यं ते करिष्यति ॥७०॥ इत्यादिश्य गुरुंसर्वे जग्मुर्जांबूनदेश्वरी ॥ सास्मान्दैत्यभयत्रस्तान्पालयिष्यति शोभना ॥७१॥ तत्रा गत्वा तपश्चर्यां चक्रुः सर्वे सुनिष्ठिताः ॥ मायाबीजजपासक्ता देवीमखपरायणाः ॥७२॥ बृहस्पतिस्ततः शीघ्रं जगामाऽसुरसन्निधौ ॥ आगतं मुनिवर्यं तं पप्रच्छाऽथ स दैत्यराट् ॥ ७३ ॥ मुने कुत्राऽगमः कस्मात्किमर्थमिति मे वद ॥ नाहं युष्मत्पक्षपाती प्रत्युताराति रेवच ॥ ७४ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच मुनिनायकः ॥ अस्मत्सेव्या च या देवी सा त्वया पूज्यतेऽनिशम् ॥ ७५ ॥ तस्मादस्मत्पक्षपाती न भवेस्त्वं कथं वद ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा मोहितो देवमायया ॥ ७६ ॥ तत्याज परमं मंत्रमभिमानेन सत्तम ॥ गायत्रीत्यागतो दैत्यो निस्तेजस्को बभूव ह ॥ ७७ ॥ कृतकार्यो गुरुस्तस्मात्स्थानान्निर्गतवान्पुनः ॥ ततो वृत्तांतमखिलं कथयामास वज्रिणे ॥ ७८ ॥ संतुष्टास्ते सुराः सर्वे भेजिरे परमेश्वरीम् ॥ एवं बहुगते काले कस्मिंश्चित्समये मुने ॥ ७९ ॥

पक्षपाती नहीं किन्तु शत्रु हूं ॥ ७४ ॥ यह उसके वचन सुन मुनिराज बोले जो देवी हमारी सेवनीय है,उसीको निरन्तर तुम आराधन करते हो ॥ ७५ ॥ फिर तुम हमारे पक्षपाती क्यों नहीं यह कहिये यह वचन सुन वह दैत्य देवमायासे मोहित हो ॥ ७६ ॥ अभिमानसे उस परम मंत्रका जप त्यागन करता हुआ, गायत्रीके त्यागतेही वह तेजहीन हो गया ॥ ७७ ॥ यह कार्यकर गुरु उस स्थानसे निर्गत हुए और इन्द्रसे सब वृत्तान्त कहा ॥ ७८ ॥ तब देवता संतुष्ट हो परमेश्वरीका भजन करने लगे हे मुने ! इस प्रकार बहुत समय बीतनेसे कुछ कालके उपरान्त ॥ ७९ ॥

जगन्मंगलकारिणी जगन्माता प्रगट हुई, कोटि सूर्यके समान प्रकाशमान, कोटि कामवत् सुन्दर ॥ ८० ॥ विचित्र लेपन लगाये चित्रित दो वस्त्रोंसे सम्पन्न विचित्र मालाका आभरण पहरे चित्र भ्रमरोंको मुठीमें लिये ॥ ८१ ॥ वरदायका अभयकारिणी शांत, करुणामृत सागरा अनेक भौंरोंसे संयुक्त फूलोंकी मालासे विराजित ॥ ८२ ॥ असंख्यात विचित्र भ्रमरियोंसे संयुक्त भ्रमरोंसे गीयमान अर्थात् ह्रींकार शब्द करते हुए भौंरोंसे सेवित ॥ ८३ ॥ चारों ओर कोटि२ऐसे भ्रमर व्याप्त सब शृंगार वेषसे सम्पन्न सब वेदोंसे प्रशंसित ॥ ८४ ॥ सर्वात्मावाली, सर्वमयी, सब मंगलकी रूपवाली, सर्वज्ञा, सबकी जननी, सर्वरूपा सर्वेश्वरी, शिवाको ॥ ८५ ॥ देखकर चंचलात्मा देवता प्रसन्नमन होकर वेदप्रतिपाद्या देवीका स्तव करने लगे ॥ ८६ ॥ देवता बोले हे देवि ! महा

प्रादूरासीज्जगन्माता जगन्मंगलकारिणी ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशा कोटिकंदर्पसुंदरा ॥ ८० ॥ चित्रानुलेपना देवी चित्रवासोयुगान्विता ॥ विचित्रमाल्याभरणा चित्रभ्रमरमुष्टिका ॥ ८१ ॥ वराभयकरा शांता करुणा मृतसागरा ॥ नानाभ्रमरसंयुक्तपुष्पमालाविराजिता ॥८२॥ भ्रमरीभिर्विचित्रा भिरसंख्याभिः समावृता ॥ भ्रमरैर्गायमानैश्चह्रींकारमनुमन्वहम् ॥ ८३ ॥ समंततः परिवृता कोटिकोटिभिरंबिका ॥ सर्वशृंगारवेषाढ्या सर्ववेदप्रशंसिता ॥ ८४ ॥ सर्वात्मिका सर्वमयी सर्वमंगलरूपिणी ॥ सर्वज्ञा सर्वजननी सर्वा सर्वेश्वरीशिवा ॥ ८५ ॥ दृष्ट्वा तां तरलात्मानो देवा ब्रह्मपुरोगमा ॥ तुष्टुवुर्हृष्टमनसो विष्टरश्रवसं शिवाम् ॥ ८६ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो देवि महाविद्ये सृष्टिस्थित्यंतकारिणि नमः कमलपत्राक्षि सर्वाधारे नमोऽस्तु ते ॥ ८७ ॥ सविश्वतैजसप्राज्ञविराट्सूत्रात्मिके नमः ॥ नमोव्याकृतरूपायैकूटस्थायै नमोनमः ॥ ८८ ॥ दुर्गे सर्वादिरहिते दुष्टसंरोधनार्गले ॥ निर्गलप्रेमगम्ये भर्ग देवि नमोऽस्तु ते ॥ ८९ ॥ नमः श्रीकालिके मातर्नमो नीलसरस्वति ॥ उग्रतारे महोग्रे ते नित्यमेव नमोनमः ॥ ९० ॥ नमः पीतांबरे देवि नमस्त्रिपुरसुन्दरि ॥ नमो भैरवि मातंगि धूमावति नमोनमः ॥ ९१ ॥

विद्ये सृष्टिकी स्थिति और अन्त करने वाली कमललोचनी सर्वाधारे ! तुमको प्रणाम है ॥ ८७ ॥ विश्व, तैजस, प्राज्ञ, विराट् सूत्रात्मावाली तुमको प्रणाम है, अव्याकृतरूप कूटस्थके निमित्त प्रणाम है ॥ ८८ ॥ हे दुर्गे ! तुम सर्वादिसे रहित दुष्टोंके निरोध करनेको शृंखलारूप स्वयं निरर्गल , प्रेमसे गम्यमान हो तेजरूप देवीके निमित्त प्रणाम है ॥ ८९ ॥ हे मातः कालिके हे नीलसरस्वती, हे उग्रतारा महाउग्रा, ! आपके निमित्त वारंवार प्रणाम है ॥ ९० ॥ हे पीताम्बरा ! [बगलामुखी देवी] हे त्रिपुर सुन्दरि भैरवी, मातंगी, धूमावती तुमको वारंवार प्रणाम है ॥ ९१ ॥

हे छिन्नमस्ता, ! आपको प्रणाम है हे क्षीरसागर कन्या ! आपको प्रणाम है हे शाकंभरि ! हे शिवे ! हे रक्तदन्तिके ! तुमको वारंवार प्रणाम है ॥९२॥
हे शुम्भनिशुंभकी दलन करनेवाली ! हे रक्तबीजनासिनी ! हे धूम्रलोचनकी, नाशक तेजरूपिणी ! तुमको वारम्वार प्रणाम है वृत्रासुरनाशिनी तुमको प्रणाम
है ॥ ९३ ॥ चण्डमुण्डनाशिनी दानवान्तकरी शिवा, विजया, गंगा, सारदा, विकच [खिले] मुखवाली शारदाको प्रणाम है ॥९४॥ हे पृथ्वीरूप दयारूप,
तेजो रूप, प्राण रूप, महाभूतरूप, तुमको वारम्वार प्रणाम है ॥ ९५ ॥ विश्वमूर्ति, दयाकी मूर्ति, धर्ममूर्ति, ज्योतिमूर्ति,देवमूर्ति ज्ञानमूर्ति, तुमको वारम्वार
प्रणाम है ॥ ९६ ॥ हे गायत्री ! [गान करनेवालोंकी रक्षक,] वरदायक, दिव्यगुणवाली, सावित्रि सरस्वती, स्वाहा स्वाधा, दक्षिणमाता, आपको

छिन्नमस्ते नमस्तेऽस्तु क्षीरसागरकन्यके ॥ नमः शाकंभरि शिवे नमस्ते रक्तदंतिके ॥ ९२ ॥ निशुम्भशुम्भदलनि रक्तबीजविनाशिनि ॥
धूम्रलोचननिर्णाशे वृत्रासुरनिबर्हिणि ॥ ९३ ॥ चंडमुंडप्रमथिनि दानवांतकरे शिवे ॥ नमस्ते विजये गंगे शारदे विकचानने ॥ ९४ ॥
पृथ्वीरूपे दयारूपे तेजोरूपे नमोनमः ॥ प्राण रूपे महारूपे भूतरूपे नमोऽस्तु ते ॥ ९५ ॥ विश्वमूर्ते दयामूर्ते धर्ममूर्ते नमोनमः ॥ देव
मूर्ते ज्योतिमूर्ते ज्ञानमूर्ते नमोऽस्तु ते ॥ ९६ ॥ गायत्रि वरदे देवि सावित्रि च सरस्वति नमः स्वाहे स्वधे मातर्दक्षिणे ते नमोनमः
॥ ९७ ॥ नेति नेतीति वाक्यैर्या बोध्यते सकलागमैः ॥ सर्वप्रत्यक्स्वरूपां तां भजामः परदेवताम् ॥ ९८ ॥ भ्रमरैर्वेष्टिता यस्माद्भ्रा
मरी या ततः स्मृता ॥ तस्यै देव्यै नमो नित्यं नित्यमेव नमोनमः ॥ ९९ ॥ नमस्ते पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्ते पुरतोंबिके ॥ नम ऊर्ध्वं
नमश्चाधः सर्वत्रैव नमोनमः ॥ १०० ॥ कृपां कुरु महादेवि मणिद्वीपाधिवासिनि ॥ अनंतकोटिब्रह्मांडनायिके जगदंबिके ॥ १ ॥
जय देवि जगन्मातर्जयः देवि परात्परे ॥ जय श्रीभुवनेशानि जय सर्वोत्तमोत्तमे ॥ २ ॥ कल्याणगुणरत्नाना माकरे भुवनेश्वरि ॥ प्रसीद
परमेशानि प्रसीद जगतो रणे ॥ ३ ॥

वारम्वार प्रणाम है ॥ ९७ ॥ सब आगम तुमको नेति वाक्यसे वर्णन करते हैं, हम सबसे पृथक् रूप परदेवताका भजन करते हैं ॥ ९८ ॥ भ्रमरोंसे वेष्टित
होनेसे तुम्हारा नाम भ्रामरी होगा; इस देवीस्वरूप आपको वारम्वार प्रणाम है ॥ ९९ ॥ दोनों ओर पृष्ठभाग आगे पीछे ऊपर नीचे सर्वत्र तुमको प्रणाम
है ॥ १०० ॥ हे मणिद्वीपाधिवासिनी महादेवि ! कृपा करो हे अनंत कोटि ब्रह्माण्डकी नायिका जगदम्बा ! ॥ १०१ ॥ देवी जगन्मातः परातपरा श्रीभुवने
शानी, सर्वोत्तमोंमें उत्तम, तुम्हारी जय हो ॥ १०२ ॥ कल्याणकारी गुणरूपी, रत्नोंकी खान भुवनेश्वरि, परमेशानी, जगतकी कारण प्रसन्न हो ॥ ३ ॥

नारायण बोले, इस प्रकार देवताओंके प्रगल्भ और मनोहर वचन सुन मत्त कोकिलाके समान जगदम्बा बोली ॥ ४ ॥ श्रीदेवी बोली, हे देवताओ मैं तुमसे प्रसन्न हूं जो तुम्हारी इच्छा हो सो हमसे कहो ॥ ५ ॥ देवीके वचन सुनकर देवता अपने दुःखका कारण दुष्टदैत्यका चरित्र और उसकी जगत्को बाधा देना कहने लगे ॥ ६ ॥ जिस प्रकार उसने देवता और ब्राह्मणोंकी अवमानना की उनका नाश किया था जैसे देवताओंको स्थानभ्रष्ट किया, वह सब आदरसे कहा ॥ ७ ॥ और यथावत् उन्होंने ब्रह्माके वरदानको कथन किया, तब महाभगवती देवताओंके मुखसे यह वचन सुन ॥८॥ उस स्थानमें स्थित भ्रमरोंको प्रेरणा करती हुई जो पार्श्वमें स्थित नाना रूप धारण किये थे ॥ ९ ॥ इस प्रकार बहुतसे भ्रमर और भ्रामरियोंको देवीने प्रगट किया, जिनके

नारायण उवाच ॥ इति देववचः श्रुत्वा प्रगल्भं मधुरं वचः ॥ उवाच जगदंबा सा मत्तकोकिलभाषिणी ॥ ४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ प्रसन्नाऽहं सदा देवा वरदेशशिखामणिः ॥ ब्रुवंतु विबुधा सर्वे यदेव स्याच्चकीर्षितम् ॥ ५ ॥ देवीवाक्यं सुराः श्रुत्वा प्रोचुर्दुःखस्य कारणम् ॥ दुष्टदैत्यस्य चरितं जगद्बाधाकरं परम् ॥ ६ ॥ देवब्राह्मणवेदानां हेलनं नाशनं तथा ॥ स्थानभ्रंशं सुराणां च कथयामासुरादृताः ॥ ७ ॥ ब्रह्मणो वरदानं च यथावत्ते समूचिरे ॥ श्रुत्वा देवमुखाद्वाणीं महाभगवती तदा ॥ ८ ॥ प्रेरयामास हस्तस्थान्भ्रमरान्भ्रमरी तदा ॥ पार्श्वस्थानग्रभागस्थान्नानारूपधरांस्तदा ॥९॥ जनयामास बहुशो यैर्व्याप्तं भुवनत्रयम् ॥ मटचीयूथवत्तेषां समुदायस्तु निर्गतः ॥११०॥ तदांतरिक्षं तैर्व्याप्तमंधकारः क्षितावभूत् ॥ दिवि पर्वतशृंगेषु द्रुमेषु विपिनेष्वपि ॥ ११ ॥ भ्रमरा एव संजातास्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ते सर्वे दैत्यवक्षांसि दारयामासुरुद्धताः ॥ १२ ॥ नरं मधुहरं यद्वन्मक्षिकाः कोपसंयुताः ॥ उपायो न च शस्त्राणां तथाऽस्त्राणां तदाऽभवत् ॥ १३ ॥ न युद्धं न च संभाषा केवलं मरणं खलु ॥ यस्मिन्यस्मिन्स्थले ये ये स्थिता दैत्या यथा यथा ॥ १४ ॥

जगत व्याप्त होगया शलभोंके यूथके समान उनका यूथ निर्गत हुआ ॥ ११० ॥ तब उनसे अन्तरिक्ष व्याप्त हो गया जिससे पृथ्वीमें अन्धकार छागया आकाश पर्वत वृक्षों और वनोंमें ॥ ११ ॥ भ्रमरही व्याप्त होगये यह अद्भुत बात हुई वे सब एकत्र होकर दैत्योंकी छातीं विदीर्ण करने लगे ॥ १२ ॥ जिस प्रकार शहतकी मक्खी शहत लेनेवाले मनुष्यको लिपट जाती है, ऐसे भौंरे लिपट गये उस समय अस्त्रशस्त्रोंका उपाय न चला ॥ १३ ॥ युद्ध और बात नहीं होती थी केवल मरणही होता था जिस २ स्थान जो जो दैत्य जिस प्रकार स्थित थे ॥ १४ ॥

वह वहां उसी प्रकार मरणको प्राप्त होते हुए, उस समय परस्पर किसीको किसीका समाचार ज्ञात न हुआ ॥ १५ ॥ क्षणमात्रमें वह सब दैत्य नष्ट होगये इस प्रकार कार्यकर भौंरे देवीके समीप आ गये ॥ १६ ॥ लोक सब आश्चर्य आश्चर्य कहने लगे कि, जगदम्बामें क्या आश्चर्य है, जिसकी माया इस प्रकार है ॥ १७ ॥ तब विष्णुको आदि लेकर सब देवतागण वहां प्रसन्न हो जगदम्बाका पूजन करने लगे ॥ १८ ॥ अनेक प्रकारके उपचार और भेंटोंसे पूजते जयशब्द करते फूल वर्षाने लगे ॥ १९ ॥ आकाशमें दुन्दुभी बजी, अप्सरा नाचने लगीं मुनिश्रेष्ठ वेदपाठ करने लगे और गन्धर्वादि गान

तत्रैव च तथा सर्वे मरणं प्रापुरुत्स्मयाः ॥ परस्परं समाचारो न कस्याप्यभवत्तदा ॥ १५ ॥ क्षणमात्रेण ते सर्वे विनष्टा दैत्य पुंगवाः ॥
कृत्वेत्थं भ्रमराः कार्यं देविनिकटमाययुः ॥ ११६ ॥ आश्चर्यमेतदाश्चर्यमिति लोका समूचिरे ॥ किं चित्रं जगदंबाया यस्या मायेयमी
दृशी ॥ १७ ॥ ततो देवगणाः सर्वे ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ निमग्ना हर्षजलधौ पूजयामासुरंबिकाम् ॥ १८ ॥ नानोपचारैर्विविधैर्नानोपा
यनपाणयः ॥ जयशब्दं प्रकुर्वाणा मुमुचुः समुनांसि च ॥ १९ ॥ दिवि दुंदुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ पेठुर्वेदान्मुनिश्रेष्ठा गंधर्वाद्या
जगुस्तथा ॥ १२० ॥ मृदंगमुरजावीणाढक्काडमरुनिःस्वनैः ॥ घण्टाशंखनिनादैश्च व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम् ॥२१॥ नानास्तोत्रैस्तदा स्तु
त्वा मूर्ध्न्याधायांजलींस्तदा ॥ जय मातर्जयेशानीत्येवं सर्वे समूचिरे ॥ २२ ॥ ततस्तुष्टा महादेवी वरान्दत्त्वा पृथक्पृथक् ॥ स्वस्मिंश्च
विपुलां भक्तिं प्रार्थिता तैर्ददौ च ताम् ॥ २३ ॥

करने लगे ॥ १२० ॥ मृदंग मुरज वीणा ढक्का डमरू घण्टा और शंखके शब्दोंसे त्रिभुवन व्याप्त होगया ॥ २१ ॥ अनेक स्तोत्रोंसे स्तुतिको करते शिरपर अंजली बांधकर पाता ! आपकी जय हो, हे ईशानी ! आपकी जय हो. इस प्रकारसे सब कहने लगे ॥ २२ ॥ तब महादेवी सब पर प्रसन्न हो उनको पृथक् २ वर देकर और उनको अपनेमें प्रार्थनानुसार अचला भक्ति देकर ॥ २३ ॥

देवताओंके देखते २ अन्तर्धान होगई यह आपसे सम्पूर्ण भ्रामरीका चरित्र कहा ॥ २४ ॥ यह पढ़ते और सुनतेमें सम्पूर्ण पापोंका नाशक है ॥ २५ ॥ यह देवीमाहात्म्यसे संयुक्त चरित्र पढने सुननेसे शुभ देता है ॥ २६ ॥ जो इसको नित्य पढते और सुनते हैं वह सम्पूर्ण पापसे रहित हो देवीके सायुज्यको

पश्यतामेव देवानामंतर्धानं गता ततः ॥ इति ते सर्वमाख्यातं भ्रामर्याश्चरितं महत् ॥ २४ ॥ पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ श्रुतमाश्चर्यजनकं संसारार्णवतारकम् ॥ २५ ॥ एवं मनूनां सर्वेषां चरितं पापनाशनम् ॥ देवीमाहात्म्यसंयुक्तं पठञ्छृण्वञ्शुभप्रदम् ॥ २६ ॥ यश्चैतत्पठते नित्यं शृणुयाद्योऽनिशं नरः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥ १२७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ छ ॥ दशमस्कन्धः समाप्तः ॥ १० ॥

सार्धरुद्रैः पंचशत (५११॥) श्लोकैर्व्यासकृतः शुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्य दशमस्कन्ध ईरितः ॥ १ ॥

पाते हैं ॥ १२७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृत--भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥



इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते दशमस्कन्धः समाप्तः

अथ श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकायुते एकादशस्कन्धः प्रारभ्यते

दोहा--शरणसुखद दुखभयहरण, करन सकल सुरकाज । रखहिं सदा जनमिश्रकी, श्रीजगदम्बा लाज ॥ १ ॥

नारदजी बोले, हे भगवन्! भूतभव्येश नारायण सनातन आपने देवीका चरित्र परम उत्तम कथन किया ॥ १ ॥ जिस प्रकार देवताओंकी प्रार्थनासे माता प्रगट होती है और देवीकी पूर्णकृपासे आपने अधिकारकी प्राप्ति कही ॥ २ ॥ अब वह सुननेकी इच्छा करता हूं जिससे वह सदा प्रसन्न होती है और अपने भक्तोंसे प्रसन्न होती हैं, वह आचार हमसे कहिये ॥ ३ ॥ श्रीनारायण बोले,हे तत्त्वज्ञाता नारदजी ! आपसे क्रमसे आचारकी विधि कहता हूं जिसके अनुष्ठानसे सदा देवी प्रसन्न होती है ॥ ४ ॥ ब्राह्मणको जो वार्ता दिन २ प्रभात समय उठकर करनी चाहिये वह मैं ब्राह्मणोंके उपकारके निमित्त कहता हूँ ॥ ५॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ नारद उवाच ॥ भगवन् भूतभव्येश नारायण सनातन ॥ आख्यातं परमाश्चर्यं देवीचारित्रमुत्तमम् ॥ १ ॥ प्रादुर्भावः परो मातुः कार्यार्थमसुरद्रुहाम् ॥ अधिकाराप्तिरुक्ताऽत्र देवीपूर्णकृपावशात् ॥ २ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि येन प्रीणाति सर्वदा ॥ स्व भक्तान्परिपुष्णाति तमाचारं वद प्रभो ॥ ३ ॥ नारायण उवाच ॥ शृणु नारद तत्त्वज्ञ सदाचारविधिक्रमम् ॥ यदनुष्ठानमात्रेण देवीं प्रीणाति सर्वदा ॥ ४ ॥ प्रातरुत्थाय कर्तव्यं यद्द्विजेन दिनेदिने ॥ तदहं संप्रवक्ष्यामि द्विजानामुपकारकम् ॥ ५ ॥ उदयास्तमयं याव द्द्विजः सत्कर्मकृद्भवेत् ॥ नित्यनैमित्तिकैर्युक्तः काम्यैश्चान्यैरगर्हितैः ॥ ६ ॥ आत्मैव न सहायार्थं पिता माता च तिष्ठति ॥ न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलम् ॥ ७ ॥ तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनु साधनैः ॥ धर्मेणैव सहायातु तमस्तरति दुस्तरम् ॥ ८ ॥ आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तःस्मार्त एव च ॥ तस्मादस्मिन्समायुक्तो नित्यं स्यादात्मनो द्विजः ॥ ९ ॥ आचाराल्लभते चायुरा चाराल्लभते प्रजाः ॥ आचारा दन्नमक्षय्यमाचारो हंति पातकम् ॥ १० ॥

उदयसे अस्तपर्यन्त जिसके द्वारा ब्राह्मण सत्कर्म करता है तथा नित्य नैमित्तिक अगर्हित कर्म करता है ॥ ६ ॥ आत्माका सहायक परलोकमें पिता, माता, पुत्र, स्त्री, ज्ञाति, कोई नहीं है केवल धर्म ही स्थित होता है ॥ ७ ॥ इस कारण अपनी सहायताके निमित्त साधनों द्वारा धर्मका उपार्जन करना चाहिये धर्मकी सहायतासे ही दुस्तर अंधकार तरा जाता है ॥ ८ ॥ श्रुति स्मृतिमें पहला मुख्य धर्म आचार ही कहा है इस कारण ब्राह्मणको नित्य आचारयुक्त होना चाहिये ॥ ९ ॥ आचारसे ही आयु, आचारसेही सन्तान, आचारसेही अक्षय अन्न प्राप्त होता और आचारसे ही पाप दूर होता है ॥ १० ॥

दे. भा.
॥ २ ॥

आचार ही मनुष्योंके कल्याणका कर्ता है जिससे इस लोकमें सुखी होकर परलोकमें सुख प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ अज्ञान और अंधजन्मवाले कुदृष्टियोंसे मोहित पुरुषोंको धर्मरूपी महादीपकही मुक्तिका दिखानेवाला है ॥ १२ ॥ आचारसे ही श्रेष्ठता प्राप्त होती है आचारसे कर्म प्राप्त होता, कर्मसे ज्ञान और ज्ञानसे मोक्ष होती है यह मनुजी कहते हैं ॥ १३ ॥ हे परंतप ! यह आचार ही सब धर्मोंमें श्रेष्ठ है, इसीसे ज्ञान होता है इस ज्ञानसे ही सब साधा जाता है ॥ १४ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जो पुरुष आचार हीन होकर वर्तता है वह शूद्रके समान सब धर्मोंसे बाहर होनेसे आचार भ्रष्ट होनेसे शूद्रके समान है ॥ १५ ॥ शास्त्र और लौकिक आचार दो प्रकारका है शुभकी इच्छावालेको यह दोनों ही करने चाहिये, त्यागने न चाहिये ॥ १६ ॥ ग्रामधर्म, जातिधर्म, देशधर्म,

आचारः परमो धर्मो नृणां कल्याणकारकः ॥ इहि लोके सुखी भूत्वा परत्र लभते सुखम् ॥ ११ ॥ अज्ञानांधजनानां तु मोहितैर्भ्रामितात्मनाम् ॥ धर्मरूपो महाद्वीपो मुक्तिमार्गप्रदर्शकः ॥ १२ ॥ आचारात्प्राप्यते श्रैष्ठ्यमाचारात्कर्मलभ्यते ॥ कर्मणो जायते ज्ञानमिति वाक्यं मनोः स्मृतम् ॥ १३ ॥ सर्वधर्मवरिष्ठोऽयमाचारः परमं तपः ॥ तदेव ज्ञानमुद्दिष्टं तेन सर्वं प्रसाध्यते ॥ १४ ॥ यस्त्वाचारविहीनोऽत्र वर्तते द्विजसत्तमः ॥ स शूद्रवद्बहिष्कार्यो यथाशूद्रस्तथैव सः ॥ १५ ॥ आचारो द्विविधः प्रोक्तः शास्त्रीयो लौकिकस्तथा ॥ उभावपि प्रकर्तव्यौ न त्याज्यौ शुभमिच्छता ॥ १६ ॥ ग्रामधर्मा जातिधर्मा देशधर्माः कुलोद्भवाः ॥ परिग्राह्या नृभिः सर्वे नैव तांल्लंघयेन्मुने ॥ १७ ॥ दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निंदितः ॥ दुःखभागी च सततं व्याधिना व्याप्त एव च॥ १८ ॥ परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ॥ धर्ममप्यसुखोदर्कं लोकविद्विष्टमेव च ॥१९॥ नारद उवाच ॥ बहुत्वादिह शास्त्राणां निश्चयः स्यात्कथं मुने ॥ कियत्प्रमाण तद्ब्रूहि धर्ममार्गविनिर्णये ॥ २० ॥

कुलधर्म यह सब मनुष्योंको ग्रहण करने चाहिये और उल्लंघन न करना चाहिये ॥ १७ ॥ दुराचारी पुरुष लोकमें निंदित होता है वह सदा दुःख भागी और व्याधिसे व्याप्त रहता है ॥ १८ ॥ धर्मसे रहित अर्थ और कामको भी त्यागन कर दे और जो धर्म भी प्राणियोंको पीडा करनेवाले हों उनको भी त्यागन कर दे पशुहननादि धर्म भी गर्हित है ॥ १९ ॥ नारदजी बोले हे मुने ! शास्त्र बहुत हैं इनमें निश्चय किस प्रकार हो सकता है ? सो धर्ममार्गके निर्णयमें किसका प्रमाण किया जाय ॥ २० ॥

श्रीनारायण बोले, परमात्माके श्रुति स्मृति यह दोनों नेत्र हैं, पुराण हृदय है, इन्हीं तीनमें कहा हुआ धर्म है और इसके सिवाय कहीं नहीं अर्थात् परमेश्वरके नेत्ररूप श्रुति स्मृतिसे देखा हुआ धर्म सत्य है और पुराणरूप हृदयमें विचारा हुआ सत्य है ॥ २१ ॥ जहां कहीं वेद स्मृति और पुराणोंमें विरोध दीखै वहां श्रुतिका प्रमाण मानना होता है और जहा पुराण और स्मृतिका विरोध ही वहां स्मृतिका प्रमाण मानना चाहिये ॥ २२ ॥ और जहाँ श्रुतिमें परस्पर विरोध हो वहां दोनों ही प्रमाण हैं जहां स्मृतिमें दो भाँति लिखा हो वहाँ भिन्न विषयकी कल्पना करके विरोधका परिहार करना चाहिये ॥ २३ ॥ और जो कहीं पुराण और तंत्रोंमें किसी कटाक्षसे जो धर्म कहा है वह श्रुति स्मृतिका विरोधी धर्म ग्रहण करना न चाहिये ॥ २४ ॥ और वेदका अविरोध तंत्रका प्रमाण

नारायण उवाच ॥ श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम् ॥ एतत्त्रयोक्त एव स्याद्धर्मो नान्यत्र कुत्रचित् ॥ २१ ॥ विरोधो यत्र तु भवेत्त्रयाणां च परस्परम् ॥ श्रुतिस्तत्र प्रमाणंस्याद्द्वयोर्द्वैधस्मृतिर्वरा ॥ २२ ॥ श्रुतिद्वैधं भवेद्यत्र तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ ॥ स्मृतौ ॥ स्मृतिद्वैधं तु यत्र स्याद्विषयः कल्प्यतां पृथक् ॥ २३ ॥ पुराणेषु क्वचिच्चैव तंत्रदृष्टं यथातथम् ॥ धर्मं वदंति तं धर्मं गृह्णीयान्न कथंचन ॥ २४ ॥ वेदाविरोधि चेत्तंत्रं तत्प्रमाणं न संशयः ॥ प्रत्यक्षश्रुतिरुद्धं यत्तत्प्रमाणं भवेन्न च ॥ २५ ॥ सर्वथा वेद एवासौ धर्ममार्गप्रमाणकः ॥ तेनाविरुद्धं यत्किंचित्तत्प्रमाणं न चान्यथा ॥२६॥ यो वेदधर्ममुज्झित्य वर्ततेऽन्यप्रमाणतः ॥ कुण्डानि तस्य शिक्षार्थं यमलोके वसंति हि ॥ २७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वेदोक्तं धर्ममाश्रययेत् ॥ स्मृतिः पुराणमन्यद्वा तंत्रं वा शास्त्रमेव च ॥ २८ ॥ तन्मूलत्वे प्रमाणं स्यान्नान्यथा तु कदाचन ॥ ये कुशास्त्राभियोगेन वर्तयंतीह मानवान् ॥ २९ ॥ अधोमुखोर्ध्वपादास्ते यास्यंति नरकार्णवम् ॥ कामाचाराः पाशुपतास्तथा वै लिंगधारिणः ॥ ३० ॥

हो सकता है इसमें सन्देह नहीं जो प्रत्यक्ष श्रुतिके विरुद्ध हो उमका प्रमाण नहीं हो सकता जिस प्रकार कि, तप्त मुद्राधारण आदि कहीं कहीं लिखा है, वह वेदके विरुद्ध होनेसे अप्रमाण है ॥ २५ ॥ धर्ममार्गमें सर्वथा वेद ही प्रमाण है, उसके अविरुद्ध ही जो कुछ हो उसीका प्रमाण है औरका नहीं ॥ २६ ॥ जो वेद धर्मको त्यागकर दूसरे प्रमाणमें वर्तते हैं उनके ही शिक्षाके निमित्त यमलोकमें कुण्ड विद्यमान हैं ॥ २७ ॥ इस कारण सब प्रयत्नसे वेदोक्त धर्मका आश्रय करना चाहिये स्मृति पुराण दूसरे और ग्रंथ वा तंत्रशास्त्र ॥ २८ ॥ यह वेदमूलक होनेसेही प्रमाण हैं, अन्यथा नहीं जो कुशास्त्रोंके योगसे मनुष्योंको वर्तवाते हैं ॥ २९ ॥ वे अधोमुख और ऊर्ध्वपाद होकर नरकसागरमें पड़ते हैं यथेष्ट आचरण करनेवाले, लिंगधारी पाशुपत ॥ ३० ॥

जो तप्तमुद्रा शंख चक्रजलाकर शरीरपर धारण करनेवाले वैखानस मतके अनुसार चलनेवाले वे वेदमार्गके बाहर चलनेवाले सब नरकमें जायँगे ॥ ३१ ॥ वेदकाही कहा हुआ सद्धर्म है इस कारण मनुष्योंको वही सदा करना चाहिये बार २ जागरूक होकर जानना चाहिये कि, मैंने आज क्या किया है ॥३२॥ दिया दिलाया वा वाणीसे कहा हुआ, वा सब उपपातक और महापातकोंमें मैंने क्या पातक किया है यह निरन्तर विचारना चाहिये ॥ ३३ ॥ जब पहरभर रात रहजाय तब उठकर ब्रह्मका ध्यान करै वह क्रम यह है कि पहले वाम ऊरुके ऊपर दक्षिण चरण चित्त करके रक्खे और दक्षिण ऊरुके ऊपर बाँयाँ चरण उसी प्रकारस्थापित करै ॥ ३४ ॥ फिर मस्तक कुछेक ऊंचा होकर हिलावे मुख ऊंचाकर अपनी ठोंडीसे वक्षस्थलको स्पर्शकर नेत्र बंदकर अपने बलसे

तप्तमुद्रांकिता ये च वैखानसमतानुगाः ॥ ते सर्वे निरयं यांति वेदमार्गबहिष्कृताः ॥३१॥वेदोक्तमेव सद्धर्मं तस्मात्कुर्यान्नरः सदा ॥ उत्था योत्थाय बोद्धव्यं किं मायाद्य कृतं कृतम् ॥ ३२ ॥ दत्तं वा दापितं वापि वाक्येनापि च भाषितम् ॥ उपपापेषु सर्वेषु पातकेषु महत्स्वपि ॥ ३३ ॥ अवाप्य रजनीयामं ब्रह्मध्यानं समाचरेत् ॥ ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये चोरौतथोत्तरम् ॥ ३४ ॥ तत्तानं किं चिदुत्तानं मुखमव ष्टभ्य चोरसा ॥ निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो दंतैर्दंतान्न संपृशेत् ॥ ३५ ॥ तालुस्थाचलजिह्वश्च संवृतास्यः सुनिश्चलः ॥ सन्निरुद्धेंद्रियग्रामो नातिनिम्नस्थितासनः ॥ ३६ ॥ द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्राणायाममुपक्रमेत् ॥ ततोऽध्येयः स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः ॥ ३७ ॥ धारयेत्तत्र चाऽऽत्मानं धारणांधारयेद् बुधः ॥ सधूमश्चविधूमश्च सगर्भश्चाप्यगर्भकः ॥ ३८ ॥ सलक्ष्यश्चाप्यलक्ष्यश्च प्राणायामस्तु षड् विधः ॥ प्राणायामसमो योगः प्राणायाम इतीरितः ॥ ३९ ॥

स्थित होकर दाँतोंसे दाँतोंको न लगावै ॥ ३५ ॥ जिह्वाको लौटाकर तालुस्थानमें लगादे विवृतमुख हो निश्चल हुआ इन्द्रियसमूहको रोके हुए चैलअजिन वा कुशके आसनपर स्थित जो बहुत नीचा न हो बैठे ॥ ३६ ॥ दूने वा तिगुने प्राणायामको करै इसके उपरान्त जो प्रभु हृदयमें दीपकके समान स्थित हैं उनका ध्यान करै ॥ ३७ ॥ और विद्वान् धारणपूर्वक धारणा करे, प्राणायाम सधूम (श्वाससंयुक्त) विधूम अर्थात् अतिशय अभ्याससे चित्तके स्थिर होनेपर मध्यम कहाता है, वही दो प्रकारका है सगर्भ (मंत्रजपके सहित) अगर्भ मन्त्रजपरहित ॥ ३८ ॥ फिर अति अभ्याससे चित्तके स्थिर होनेसे प्राणायामउत्तम होता है वह सलक्ष्य देवताके ध्यानके सहित अलक्ष्य ध्यानरहित होनेसे यह प्राणायाम छः प्रकारका है प्राणायामके समान योगप्राणायामही है दूसरा नहीं ॥ ३९ ॥

रेचक, पूरक, कुंभक नामसे तीन प्रकारका है इसमें ' ओं ' के तीनों वर्णोंका क्रमसे ध्यान होता है ॥ ४० ॥ वह परमात्माही प्रणव कहाता है और तन्मय होनेसे प्राणायाम उसीका रूप है बाँईं ओरकी नाडी इडा दक्षिण ओरकी नाडी पिंगला कहाती है सो इडानाडीद्वारा वायुको पूर्णकर अर्थात् वामनासिका पुटसे ३२ वार अकारको आवर्तन कर वायुको आरोपण कर उसे खैंचकर पूरक करै पीछे चौसठ वार उकारको आर्वतन करते हुए उदरमें स्थित कुंभक करके फिर दक्षिणनासापुटसे ॥ ४१ ॥ सोलह वार मकारका आर्वतन करता हुआ उस वायुको विरेचन करै अर्थात् त्यागे इसीप्रकार पिंगलासे करे यह प्राणायाम सधूम कहाता है ॥ ४२ ॥ प्राणायामके पश्चात् कुण्डलिनीके चक्रभेद कहते हैं इस देहमें क्रमसे षट् कमल हैं पहला गुदस्थानमें, दूसरा लिंगके मूलमें, तीसरा नाभिचक्र चौथा हृदयमें, पांचवां कण्ठ और छठा भ्रूमध्यमें हैं उनमें भ्रूमध्यमें जो कमल है उसमें दो दल हैं उन दो दलोंमें दक्षिण क्रमानुसार लगे हुए ब्रह्म हं, क्षं वर्ण हैं उनको नमस्कार करता हूं कण्ठमें जो कमल हैं उसमें सोलह दल हैं उन दलोंमें दक्षिणावर्तक क्रमसे लगे हुए अ, आ, इ, ई, उ, ऊ,

प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचपूरककुंभकैः ॥ वर्णत्रयात्मका ह्येते रेचपूरककुम्भका ॥ ४० ॥ स एव प्रणवः प्रोक्तः प्राणायामश्च तन्मयः ॥ इडया वायुमारोप्य पूरयित्वोदरे स्थितम् ॥ ४१ ॥ शनैः षोडशमात्राभिरन्यया तं विरेचयेत् ॥ एवं सधूमः प्राणानामायामः कथितो मुने ॥ ४२ ॥ आधारे लिंगनाभिप्रकटितहृदये तालुमूले द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदलद्वादशार्धे चतुष्के ॥ वासांते बालमध्ये डफक ठहिते कंठदेशे स्वराणां हक्षं तत्त्वार्थयुक्तं सकलगतं वर्णरूपं नमामि ॥ ४३ ॥ अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुंज वर्णा हरनियमित चिह्ना पद्मतं तुस्वरूपा ॥ रविहुतवहराकानायकास्यस्तनाढ्या सकृदपि यदि चित्ते संवसेत्स्यात्स मुक्तः॥ ४४ ॥

ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, सोलह स्वर वर्णरूप हैं उनको नमस्कार है हृदयस्थित पद्मके बारह दल हैं उनमें यथा क्रमसे क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, यह बारह वर्णरूप है, उनको प्रमाण है नाभिस्थानमें स्थित पद्मके १० दल हैं उनमें दक्षिणावर्तके अनुसार लगे हुए ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, वर्ण हैं इनको नमस्कार है लिङ्गमूल पद्मके छः दल हैं उसमें दक्षिणावर्त क्रमसे लगे हुए ब, भ, म, य, र, ल, वर्णको नमस्कार है गुदमूलस्थित पद्मके चार दल हैं उनमे दक्षीणावर्तक्रमसे स्थित व, श, ष, स, चार वर्णको नमस्कार है इनका आशय यह है कि, उक्त छः स्थानोंमें कहे छः पद्मोंके ध्यान कर उनके दलमें प्रत्येक रूप और वर्णका ध्यानकरके नमस्कार करै ॥४३॥ रक्तवर्ण चार युक्त गुदमूलमें जो कमल है उसमें पद्मनीलके सूतके समान अत्यन्त सूक्ष्मरूपावली कुलकुण्डलिनी शक्ति विराजमान है वह रजोगुणमयी रक्तवर्ण है सूर्यविन्दु उसका मुख अग्निबिन्दु उसके दोनों स्तन हैं उसका

दे. भा.
॥ ४ ॥

नाम मायाबीज अर्थात् (ह्रीं) है यह बीज प्रतिपाद्य अर्थ है वह जिसके हृदयमें एकवार भी प्रगट होता है वह जीवन्मुक्त होता है ॥ ४४ ॥ वही कुण्डलिनी शक्ति सहकृत अहंशब्दप्रतिपाद्य है यही हम, यही भगवती, वही, स्थित, गति, यात्रा, मति, चिन्ता, स्तुति वचन सर्वात्मक देव मैंही हूं और सब स्तुति हमारा अर्चन है ॥ ४५ ॥ मैंही देवी हूं दूसरा नहीं मैं ही ब्रह्म हूं शोकभागी नहीं मैं ही सच्चिदानंद हूं इस प्रकार अपने आत्मामें विचार करे ॥ ४६ ॥ फिर हर्षगद्गद चित्तसे देवी कुंडलिनीका ध्यान करै जो प्रथमही ब्रह्मरन्ध्रमें जानेसे प्रकाशमान है फिर मूलाधारमें आनेसे अमृतसे परिव्याप्त अर्थात् ब्रह्मरंध्रमें स्थित अमृतधारासे युक्त सुषुम्नामें गमन करती हुई आनंदरूप अबला कुंडलिनीको शरण होता हूं ॥ ४७ ॥ फिर अपने ब्रह्मरन्ध्रमें गुरुरूप ईश्वरका ध्यान करै

स्थितिः सैव गतिर्यात्रा मतिश्चिंता स्तुतिर्वचः ॥ अहं सर्वात्मिको देवः स्तुतिः सर्वं त्वदर्चनम् ॥ ४५ ॥ अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मै
वाहं न शोकभाक् ॥ सच्चिदानंदरूपोऽहं स्वात्मानमिति चिंतयेत् ॥ ४६ ॥ प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ॥
अंतःपदव्यामनुसंचरंतीमानन्दरूपामवलां प्रपद्ये ॥ ४७ ॥ ततो निज ब्रह्मरंध्रेध्यायेत्त गुरुमीश्वरम् ॥ उपचारैर्मानसैश्च पूजयेत्तु यथाविधि
॥ ४८ ॥ स्तुवीताऽनेन मंत्रेण साधको नियतात्मवान् ॥ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ॥ गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः
॥ ४९ ॥ इति श्रीदेवीभा० म० एकादशस्कंधे प्रातश्चितनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ आचार हीनं न पुनन्ति
वेदा यदप्यधीताः सह षड्भिरंगैः ॥ छंदांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुंतांइव जातपक्षाः ॥ १ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय तत्सर्वं
सम्यगाचरेत् ॥ रात्रेरंतिम यामे तु वेदाभ्यासं चरेद्बुधः ॥ २ ॥

और मनके कल्पित उपचारोंसे विधिपूर्वक पूजन करे ॥ ४८ ॥ इसप्रकार इस मंत्रसे संयुक्त होकर साधक स्तुति करै गुरुही ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरु देव महेश्वर है गुरुही परब्रह्म है उन श्रीगुरुदेवके निमित्त प्रणाम है ॥ ४९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशमस्कन्धे भाषायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

भा. टी.ए
अ० २

श्रीनारायण बोले चाहे षट् अंगोंसहित वेद पढा हो परन्तु आचारहीनको पवित्र नहीं कर सकता मृत्युकालमें आचारहीन पुरुषको वेद इस प्रकार त्यागन कर देते हैं जैसे पंख निकलनेसे पक्षी घौंसलोंको त्याग देते हैं ॥ १ ॥ ब्राह्म मुहूर्त पिछले पहरमें उठ मुखादि प्रक्षालन कर वह सब कुछ भली प्रकार करे और उस अन्तिम प्रहरमें विद्वान वेदाभ्यास करै ॥ २ ॥

फिर कुछ कालपर्यंत अपने इष्ट देवका चिन्तन करे पूर्व अनुसार योगी छः घडीतक कहे ब्रह्मध्यान करे ॥ ३ ॥ जिसके द्वारा जीव ब्रह्मकी निरंतर एकता होती है हे नारद ! वह उसी समय जीवन्मुक्त होता है ॥ ४ ॥ पचपन घडीके उपरान्त उषःकाल होता है सत्तावन घडीके उपरान्त अरुणोदय होता है अट्ठावन घडीपर प्रभात और शेषमें सूर्योदय होता है ॥ ५ ॥ प्रभातकाल उठकर विष्ठा मूत्र करे अर्थात् शयनस्थानसे उठकर बाणविक्षेप मात्रतक दूर जाकर वा अधिक दूर जाकर शौचादि करे ॥ ६ ॥ प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्यमें विष्ठा मूत्र करतेमें कानमें यज्ञोपवीत रक्खै वानप्रस्थ और गृहस्थ अवस्थामें यज्ञोपवीत पीठकी ओरही लगाकर ॥ ७ ॥ पृष्ठकी ओर कंठलम्बित यज्ञोपवीत करके गृहस्थी विष्ठा मूत्र करे ब्रह्मचारी कानपर धरै ॥ ८ ॥ तृणसे पृथ्वी

किंचित्कालं ततः कुर्यादिष्टदेवानुचिंतनम् ॥ योगी तु पूर्वमार्गेण ब्रह्मध्यानं समाचरेत् ॥ ३ ॥ जीवब्रह्मैक्यता येन जायते तु निरंतरम् ॥ जीवन्मुक्तश्च भवति तत्क्षणादेव नारद ॥ ४ ॥ पंचपंच उषःकालः सप्तपंचाऽरुणोदयः ॥ अष्टपंचाशद् भवेत्प्रातः शेषः सूर्योदयः स्मृतः ॥ ५ ॥ प्रातरुत्थाय यः कुर्याद्विण्मूत्रं द्विजसत्तमः ॥ नैर्ऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः ॥ ६ ॥ विण्मूत्रेऽपि च कर्णस्थ आश्रमे प्रथमे द्विजः ॥ निवीतं पृष्ठतः कुर्याद्वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥ ७ ॥ कृत्वा यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कंठलंबितम् ॥ विण्मूत्रं तु गृही कुर्यात्कर्णस्थं प्रथमाश्रमी ॥ ८ ॥ अंतर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा ॥ वाचं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनश्वासवर्जितः ॥ ९ ॥ न फालकृष्टे न जले न चितायां न पर्वते ॥ जीर्णदेवालये कुर्यान्न वल्मीके न शाद्वले ॥ १० ॥ न स सत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्न पथि स्थितः ॥ संध्ययोरुभयोर्जप्ये भोजने दतधावने ॥ ११ ॥ पितृकार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः ॥ उत्सारे मैथुने वापि तथा वा गुरुसन्निधौ ॥ १२ ॥ यागे दाने ब्रह्मयज्ञे द्विजो मौनं समाचरेत् ॥ देवता ऋषयः सर्वे पिशाचोरगराक्षसाः ॥ १३ ॥

आच्छादित करके वस्त्रसे शिर ढककर यत्नपूर्वक वाणीको रोक निष्ठीवन करे और श्वाससे वर्जित हो ॥ ९ ॥ हलसे जोती भूमि, जल, चिन्ता पर्वत, जीर्ण देवालय, वाल्मीक, (सर्पस्थान) हरित तृण ॥ १० ॥ जीवसहित गर्तस्थानमें, चलते हुए मार्गमें स्थित होता हुआ मलत्याग न करे दोनों संध्याओंमें जप, भोजन, दंतौन ॥ ११ ॥ पितृकार्य, देवकार्यमें, मूत्रपुरीष करनेमें, मैथुनमें गुरुके समीपमें ॥ १२ ॥ योगदान तथा ब्रह्मयज्ञमें द्विजको मौन रहना चाहिये सब देवता, ऋषि, उरग राक्षस ॥ १३ ॥

इस भूमिसे बाहर होजाओ मैं शौच करता हूं इस प्रकार प्रार्थना कर विधिपूर्वक शौच करे ॥ १४ ॥ वायु, अग्नि, ब्राह्मण, आदित्य, जल और गौको देखता हुआ कभी विष्ठामूत्र न करै ॥ १५ ॥ दिनमें उत्तरकी ओर मुखकर रात्रिमें दक्षिणकी ओर मुखकर मलमूत्र करे फिर उनके ऊपर मृत्तिका पत्ते और तृण डाल दे जिससे सूर्यकी किरणें न पडें ॥ १६ ॥ फिर मेढ्र ग्रहण किये उठकर जलके समीप जाय और पात्रमें जल ग्रहण कर अन्यत्र जाय ॥ १७ ॥ किनारेसे अच्छी श्वेतवर्णकी मृत्तिकाको ग्रहण करे और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, रक्त, पीत, कृष्णवर्णकी मृत्तिका ग्रहण करे ॥ १८ ॥ अथवा प्रभावमें जिस देशमें जो हो द्विजोत्तम उसीको ग्रहण करे जलके भीतरसे, देवगृहसे बँबईसे मूषककी खोदी हुई ॥ १९ ॥ शौचसे अवशिष्ट रही मृत्तिका यह सात मृत्तिका ग्रहण

इतो गच्छंतु भूतानि बहिर्भूमिं करोम्यहम् ॥ इति संप्रार्थ्य पश्चात्तु कुर्याच्छौचं यथाविधि ॥१४॥ वाय्वग्नी विप्रमादित्यमापः पश्यंस्तथैव गाः ॥ न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥ १५ ॥ उदङ्मुखो दिवा कुर्याद्रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥ तत आच्छाद्यः विण्मूत्रं लोष्ट पर्णतृणादिभिः ॥ १६ ॥ गृहीतलिंग उत्थाय स गच्छेद्वारिसन्निधौ ॥ पात्रे जलं गृहीत्वा तु गच्छेदन्यत्र चैव हि ॥१७॥ गृहीत्वामृत्तिकां कूलाच्छ्वेतां ब्राह्मणसत्तमः ॥ रक्तां पीतां तथा कृष्णां गृह्णीयुश्चान्यवर्णकाः॥१८॥अथवा या यत्र देशे सैव ग्राह्याद्विजोत्तमैः ॥ अंतर्जलाद्देव गृहाद्वल्मीकान्मूषकोत्करात् ॥ १९ ॥ कृतशौचावशिष्टाश्च न ग्राह्याः सप्तमृत्तिकाः ॥ मूत्रात्तुद्विगुणं शौचे मैथुने त्रिगुणं स्मृतम् ॥ २० ॥ एका लिंगे करे तिस्र उभयोर्मृद्द्वयं स्मृतम् ॥ मूत्रशौचं समाख्यातं शौचे तद्द्विगुणं स्मृतम् ॥२१॥ विट्शौचे लिंगदेशे तु प्रदद्यान्मृत्तिका द्वयम् ॥ पंचाऽपाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्तमृत्तिकाः ॥२२॥ वामपादः पुरस्कृत्य पश्चाद्दक्षिणमेव च ॥ प्रत्येकं च चतुर्वारं मृत्तिकां लेप येत्सुधीः ॥ २३ ॥ एव शौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ॥ त्रिगुणं वानप्रस्थस्य यतीनां च चतुर्गुणम् ॥ २४ ॥

न करे मूत्रसे दूनी शौचमें और मैथुनमें तिगुनी पवित्रता करे ॥ २० ॥ एकवार लिंगमें तीनवार हाथमें दोनों हाथोंमें दोबार मूत्र करनेपर शुद्धि करे और शौचमें उससे दूना करे ॥ २१ ॥ विष्ठाशौचमें लिंगदेशमें दोवार मृत्तिका लगावे पांचवार गुदामें दशवार हाथमें और फिर सातवार दोनों हाथोंमें मृत्तिका लगावे ॥ २२ ॥ वाम चरणको आगे कर पीछे दक्षिणको आगेकर प्रत्येकमें चार २ वार मृत्तिका लगावे ॥ २३ ॥ इस प्रकार गृहस्थीका शौच कहा है ब्रह्मचारीका इससे दूना वानप्रस्थका त्रिगुना और यतियोंका चौगुना है ॥ २४ ॥

गीली आमलेके समान मृत्तिका शौच कर्ममें लेनी चाहिये यह एक२वार ग्रहण करे इससे न्यून न करे ॥ २५ ॥ यह दिनका शौच कहा रातको इससे आधा करे आतुरको इससे आधा और मार्गमें स्थितको इससे भी आधा करना चाहिये ॥ २६ ॥ स्त्री. शूद्र, अशक्त और बालकोंको शौचकर्म वहांतक करे जहांतक गंधक्षय हो इसमें संख्या नहीं है ॥ २७ ॥ जबतक गंध और लेपका क्षय हो तबतक अशुद्ध है यह सब वर्णोंके निमित्त है ऐसा भगवान् मनुने कहा है ॥ २८ ॥ वाम हाथसे शौच करै दक्षिणसे नहीं नाभिसे नीचे बायाँ हाथ रहे नाभिसे ऊपर दहना रहे ॥ २९ ॥ यह शौचकर्मकी विधिमें है अन्यथा नहीं विष्ठा मूत्र उत्सर्जन करते समय जलपात्रको ग्रहण न करे ॥ ३० ॥ और जो मोहसे ग्रहण करै वो प्रायश्चित्त करै जो मोह वा आलस्यसे

आर्द्रामलकमाना तु मृत्तिका शौचकर्मणि ॥ प्रत्येकं तु सदा ग्राह्यानातोन्यूना कदाचन ॥ २५ ॥ एतद्दिवा स्याद्दिट्शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम् ॥ आतुरस्य तदर्धं तु मार्गस्थस्य तदर्धकम् ॥ २६ ॥ स्त्रीशूद्राणामशक्तानां बालानां शौचकर्मणि ॥ यथा गंधक्षयः स्यात्तु तथा कुर्यादसंख्यकम् ॥ २७ ॥ गंधलेपक्षयो यावत्तावच्छौ चं विधीयते ॥ सर्वेषामेव वर्णानामित्याह भगवान्मनुः ॥ २८ ॥ वामहस्तेन शौचं तु कुर्याद्वै दक्षिणेन न ॥ नाभेरधो वामहस्तो नाभेरूर्ध्वं तु दक्षिणः ॥ २९ ॥ शौचकर्मणि विज्ञेयौ नान्यथा द्विजपुंगवैः ॥ जलपात्रं न गृह्णीयाद्विण्मूत्रोत्सर्जने बुधः ॥ ३० ॥ गृह्णीयाद्यदि मोहेन प्रायश्चित्तं चरेत्ततः ॥ प्यद्रोहामथावाऽऽलस्यान्न कुर्याच्छौचमात्मनः ॥ ३१ ॥ जलाहारस्त्रिरात्रः स्यात्ततो जापाच्च शुध्यति ॥ देशकालद्रव्यशक्तिरस्वोपपत्तीश्च सर्वशः ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वा शौचं प्रकर्तव्यमालस्यं नात्र धारयेत् ॥ पुरीषोत्सर्जने कुर्याद्गंडूषान्द्वादशैव तु ॥ ३३ ॥ चतुरो मूत्रविक्षेपे नातोन्यूनान्कदाचन ॥ अधोमुखं नरः कृत्वा त्यजेत्तं वामतः शनैः ॥ ३४ ॥ आचम्य च ततः कुर्याद्दंतधावनमादरात् ॥ कंटकिक्षीरवृक्षोत्थं द्वादशां गुलमव्रणम् ॥ ३५ ॥ कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलं पूर्वार्धे कृतकूर्चकम् ॥ करंजोदुंबरौ चूतः कदंबो लोध्रचम्पकौ ॥ बदरीति द्रुमाश्चेति प्रोक्ता दंत प्रधावने ॥ ३६ ॥

अपना शौच नहीं करे तो ॥ ३१ ॥ तीनराततक जलाहार मात्र करता हुआ गायत्रीके जपसे शुद्ध होता है देश काल द्रव्य शक्ति और अपनी उपपत्ति ॥ ३२ ॥ विचार कर शौच करना चाहिये इसमें आलस्य न करै पुरीषोत्सर्जनके उपरान्त बारह कुल्ले करे ॥ ३३ ॥ मूत्र करने उपरान्त चार कुल्ले करैं कमती नहीं नीचेको मुख करता हुआ वाम ओरसे त्यागन करै ॥ ३४ ॥ फिर आचमन कर आदरसे दँतौन करे जो कीकड, अश्वत्थ गूलर, पिलखन, न्यग्रोधादिकी बारह अंगुल प्रमाणकी व्रणादिसे रहित हो ॥ ३५ ॥ जो कनिष्ठिकाके अग्रभागवत् स्थूल हो पूर्वार्द्ध जिसका पत्थरसे कूटकर कूचीके समान

कियाहो करंज, गूलर, आम, कदम्ब, लोध, चम्पा ॥३६॥ बेरी इनकी दँतोन करनी उत्तम है मंत्र यह है कि, अन्नके भक्षण और शत्रुओंके ध्वंसके निमित्त सोमराजा इस वृक्षमें प्रगट है ॥ ३७ ॥ वह यश और ऐश्वर्य द्वारा मेरे मुखको प्रक्षालन करैं आयु, बल, यश, कान्ति, प्रजा, पशु, धन, ॥ ३८ ॥ ब्रह्मा, प्रज्ञा और मेधा हे वनस्पते ! मुझे दीजिये निषिद्ध दिनोंमें जब कि,दँतौन न की जाती हो ॥ ३९ ॥ जलके बारह कुल्लेसे दँतौन करे उसने सविताका भक्षण और अपने कुलका घात किया ॥ ४० ॥ जिसने पडवा अमावस छठ नौमी एकादशी रविवारको दँतौन की इन दिनोंमें दातोंमें काष्ठका संयोग होनेसे सात कुलतक दग्ध करता है ॥ ४१ ॥ फिर निर्मल जलसे पादशौच करके तीनवार उत्तम जल पियै, फिर तर्जनी और अंगूठेसे दो वार जलस्पर्शकर नासिकाके दोनों

अन्नाद्यायव्यूहध्वंसे सोमो राजायमागमत् ॥ समे मुखं प्रक्षाल्यते यशसा च भगेन च ॥ ३७ ॥ आयुर्बलंयशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ॥ ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते ॥ ३८ ॥ अभावे दंतकाष्ठस्य प्रतिषिद्धदिनेषु च ॥ अपांद्वादशगंडूषैर्विदध्याद्दंतधावनम् ॥ ३९ ॥ सविता भक्षितस्तेन स्वकुलं तेन घातितम् ॥ ४० ॥ प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्येकादशी रवौ ॥ दंतानां काष्ठसंयोगाद्दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ ४१ ॥ कृत्वाऽलं पादशौचं ह्यमलमथ जलं त्रिः पिबेद् द्विर्विमृज्य तर्जन्यांगुष्ठवत्या सजलमभिमृशोन्नासिकारंध्रयुग्मम् ॥ अंगुष्ठानामिकाभ्यां नयनयुगयुतं कर्णयुग्मं कनिष्ठांगुष्ठाभ्यां नाभिदेशे हृदयमथ तले नांगुलीभिः शिरांसि ॥ ४२ ॥ इति श्रीदे० म० ए० द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ " शुद्धं स्मार्तं चाचमनं पौराणं वैदिकं तथा ॥ तांत्रिकं श्रौतमित्याहुः षड्विधं श्रुतिचोदितम् ॥ विण्मूत्रादिकशौचं च शुद्धं च परिकीर्तितम् ॥ स्मार्तपौराणिकं कर्म आचांते विधिपूर्वकम् ॥ वैदिकं श्रौतमित्यादिब्रह्मयज्ञादि पूर्वकम् ॥ अस्त्रविद्यादिकं कर्म तांत्रिको विधिरुच्यते ॥ " स्मृत्वा चोंकारगायत्रीं निबध्नीयाच्छिखां तथा ॥ पुनराचम्य हृदय बाहू स्कन्धो च संस्पृशेत ॥ १ ॥

पुटछुये फिर अंगुष्ठ अनामिकासे दोनों नेत्र फिर कनिष्ठिका अंगुष्ठसे कान और हृदय करतलसे सब अंगुलियोंसे शिरस्पर्श करे ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभाग
 वते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीनारायण बोले--"शुद्ध, स्मार्त आचमन, पुराण, वेद, तंत्र, श्रुतिमें कहा हुआ आचमन छः
 प्रकारका है विष्ठामूत्र आदिद्वारा शौच करने उपरान्त आचमन करना शुद्ध करता है, स्मार्त पौराणिक कर्मके उपरान्त किया हुआ आचमन स्मार्त और पौराणिक कहाता है ब्रह्मयज्ञादि पूर्वक आचमन वैदिक और श्रौत कहाता है अस्त्रविद्यादि कर्ममें तांत्रिक विधिका आचमन कहाता है' ॐकारपूर्वक गायत्रीका

स्मरणकर शिखा बाँधे फिर आचमन कर हृदय वा बाहु और कंधोंको छुये ॥ १ ॥ छींक, खखार, दांतोंकी उच्छिष्ट, असत्य भाषण और पतितोंसे भाषण कहनेमें दहिना कान स्पर्श करै ॥ २ ॥ अग्नि, जल, वेद, सोम, सूर्य, अनिल (वायु) यह सब ब्राह्मणके दहिने कानमें स्थित रहते हैं यह मंत्र पढे ॥ ३ ॥ फिर नदी आदिमें जाकर प्रभातस्नानकी शुद्धि करे. हे मुने! इससे देहकी शुद्धि होती है ॥ ४ ॥ यह देह अत्यन्त मलिन है इसके नौओं द्वारोंसे मल बहता है, इनके शोधनको सदा प्रभात स्नान करै ॥ ५ ॥ अगम्या स्त्रीमें गमनका पाप पतिग्रहका पाप गुप्तपाप भी स्नान करनेसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ६ ॥ विना स्नान किये सब क्रिया नष्ट हो जाती है इस कारण प्रतिदिन नित्य प्रभातमें स्नान करै ॥ ७ ॥ कुशाग्रहण करके स्नान और सन्ध्यावंदन करे प्रभात स्नान न

क्षुत निष्ठीवने चैव दंतोच्छिष्टे तथानृते ॥ पतितानां च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥ २ ॥ अग्निरापश्च वेदाश्च सोमः सूर्योऽनिल स्तथा ॥ सर्वे नारद विप्रस्य कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥ ३ ॥ ततस्तु गत्वा नद्यादौ प्रातः स्नानं विशोधनम् ॥ समाचरेन्मुनिश्रेष्ठ देहसंशुद्धि हेतवे ॥ ४ ॥ अत्यन्तमलिनो देही नवद्वारैर्मलं वहन् ॥ सदाऽऽस्ते तच्छोधनाय प्रातःस्नानं विधीयते ॥५॥ अगम्यागमनात्पापं यच्च पापं प्रति ग्रहात् ॥ रहस्याचरितं पापं मुच्यते स्नानकर्मणा ॥६॥ अस्नातस्य क्रियाः सर्वा भवंति विफला यतः॥ तस्मात्प्रातश्चरेत्स्नानं नित्य मेव दिनेदिने ॥ ७ ॥ दर्भयुक्तश्चरेत्स्नानं तथा संध्याभिवंदनम् ॥ सप्ताहं प्रातरस्नायी संध्या हीनस्त्रिभिर्दिनैः ॥ ८ ॥ द्वादशाहमनग्निः सन्द्विजः शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥ अल्पत्वाद्धोमकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्मणः ॥ ९ ॥ प्रातर्न तु तथा स्नायाद्धोमकालेविगर्हितः ॥ गाय त्र्यास्तु परं नास्ति इहि लोके परत्र च ॥ १० ॥ गायंतं त्रायते यस्माद्गायत्रीत्यभिधीयते ॥ प्रणवेन तु संयुक्तां व्याहृतित्रयसंयुताम् ॥ ११ ॥ वायुं वायौ जयेद्विप्रः प्राणसंयमनत्रयात् ॥ ब्राह्मणः श्रुतिसम्पन्नः स्वधर्म निरतः सदा ॥ १२ ॥

करनेसे सातदिनमें विना संध्याके तीन दिनमें ॥ ८ ॥ अग्निहोत्र न करनेसे बारह दिनमें द्विज शूद्रत्वको प्राप्त हो जाता है स्नानादि विधिके बहुत होने और हवनकालके अल्प होनेसे इस प्रकार स्नानविधि करके तथा संध्यादि विधि करनेमें होमकाल नहीं मिलता है ॥ ९ ॥ इससे प्रभातकालमें वैसी विधिसे स्नान न करके संक्षेपसे करै इसलोक और परलोकमें गायत्रीसे परे कुछ नहीं है ॥ १० ॥ अपने जपनेवालीकी रक्षा करती है इससे इसको गायत्री कहते हैं ओंकार और तीनों व्याहृतियोंके सहित ॥ ११ ॥ ब्राह्मण तीनवार प्राणायाम करके वायुका निरोध करे श्रुतिसम्पन्न ब्राह्मण सदा अपने धर्ममें निरत हुआ ॥ १२ ॥

वैदिक मंत्रका जप करे लौकिक मंत्रका नहीं गौके शृंगपर जितनी देर सरसों स्थित रहती है इतने कालतक भी जिनका प्राणनिरोध नहीं होता ॥ १३ ॥ वह माता पिताके १०१ एकसौ एक पितरोंको तारनेमें समर्थ नहीं होता सगर्भ प्राणायाम जपसे युक्त और अगर्भ ध्यानमात्रका होता है ॥ १४ ॥ स्नानका अंग भूत तर्पण देवता पितरोंको संतुष्ट करता है जलसे बाहर आय शुद्धवस्त्र धारण कर ॥ १५ ॥ विभूति और रुद्राक्ष धारण करे जपसाधकोंको सदा क्रमयोगसे करना चाहिये ॥ १६ ॥ कण्ठमें ३२ मस्तकमें ४० कानोंमें छः छः बारह २ हाथोंमें, भुजदण्डोंमें सोलह, नेत्रोंमें एक, शिखामें एक वक्षस्थलमें १०८ जो धारण करता है वह स्वयं शिवस्वरूप होता है ॥ १७ ॥ सुवर्ण अथवा चांदीके तारमें हे मुने ! रुद्राक्ष पिरोकर शिखा वा कर्णमें धारण करना चाहिये

स वैदिकं जपेन्मन्त्रं लौकिकं न कदाचन ॥ गोशृंगे सर्षपो यावत् तावद्येषां न संस्थिरः ॥ १३ ॥ न तारयंत्युभौ पक्षौ पितृनेकोत्तरं शतम् ॥ सगर्भो जपसंयुक्तस्त्वगर्भो ध्यानमात्रकः ॥ १४ ॥ स्नानांगतर्पणं कृत्वा देवर्षि पितृतोषकम् ॥ शुद्धे वस्त्रे परीधाय जलाद्बहिरुपागतः ॥ १५ ॥ विभूतिधा रणं कार्यं रुद्राक्षाणां च धारणम् ॥ क्रमयोगेन कर्तव्यं सर्वदा जपसाधकैः ॥ १६ ॥ रुद्राक्षान्कंठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव ॥ बाह्वोरिंदोः कलाभिर्नयनयुगकृते त्वेनमेकं शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः ॥ १७ ॥ बद्ध्वा स्वर्णेन रुद्राक्षं रजतेनाऽथवामुने ॥ शिखायां धारयेन्नित्यं कर्णयोर्वा समाहितः ॥१८॥ यज्ञोपवीते हस्ते वा कंठे तुंदेऽथ वा नरः ॥ श्रीमत्पंचाक्षरेणैव प्रणवेन तथापि वा ॥ १९ ॥ निर्व्याजभक्त्या मेधावी रुद्राक्षं धारयेन्मुदा ॥ रुद्राक्षधारणं साक्षाच्छिवज्ञानस्य साधनम् ॥ २० ॥ रुद्राक्षं यच्छिखायां तत्तारतत्त्वमिति स्मरेत् ॥ कर्णयोरुभयोर्ब्रह्मन् देवं देवीं च भावयेत ॥ २१ यज्ञोपवीते वेदांश्च तथा हस्ते दिशः स्मरेत् ॥ कंठे सरस्वतीं देवीं पावकं चापि भावयेत् ॥ २२ ॥ सर्वाश्रमाणां वर्णानां रुद्राक्षाणां च धारणम् ॥ कर्तव्यं मंत्रतः प्रोक्तं द्विजानां नान्यवर्णिनाम् ॥ २३ ॥

॥ १८ ॥ यज्ञोपवीतमें हाथमें कंठमें तुंदमें पंचाक्षर मंत्र नमःशिवाय वा ॐकारसे धारण करे ॥ १९ ॥ बुद्धिमान् निष्काम भक्तिसे रुद्राक्षको धारण करे रुद्राक्षका धारण साक्षात शिवके ज्ञानका साधक होता है ॥ २० ॥ शिखामें रुद्राक्ष है इस तारकतत्त्वका स्मरण करै दोनोंके कानोंमें रुद्राक्षमें देवदेवीको भावना करै ॥ २१ ॥ यज्ञोपवीतमें वेदोंकी, हाथोंमें दिशाओंकी कण्ठमें सरस्वती देवी और अग्निकी भावना करै ॥ २२ ॥ सब आश्रम और वर्णोंको रुद्राक्ष धारण करना चाहिये उनमें द्विजातियोंको मन्त्रपूर्वक धारण करना चाहिये अन्यथा नहीं ॥ २३ ॥

रुद्राक्षके धारण करनेसे वह निःसन्देह रुद्रही हो जाता है निषिद्धोंको देखता सुनता स्मरण करता हुआ ॥ २४ ॥ सूंघता, खाता, प्रलाप, करता, गमन विसर्जनमें इन निषिद्ध कर्मोंको करता हुआ ॥ २५ ॥ रुद्राक्ष धारण करनेसे फिर उसको पाप नहीं लगता है इसका भोजन किया हुआ देवताओंके भोजन करनेके समान है ॥ २६ ॥ जो उसने पान किया सो रुद्रने उसने सूंघा सो शिवने हे महामुने ! जिनको रुद्राक्ष धारणमें लज्जा है ॥ २७ ॥ उनका संसारसे क्रोडजन्ममें भी निस्तार नहीं होता रुद्राक्ष धारणको देखकर जो निन्दा करता है ॥ २८ ॥ उसकी उत्पत्तिमें संकरता है यह निश्चय है रुद्राक्षके धारणसे रुद्र भी रुद्रत्वको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ मुनि सत्य संकल्प और ब्रह्मा ब्रह्मत्वको प्राप्त हुए रुद्राक्ष धारणसे कोई वस्तु श्रेष्ठ नहीं है ॥ ३० ॥ रुद्राक्षधारीके

रुद्राक्षधारणाद्रुद्रो भवत्येव न संशयः ॥ पश्यन्नपि निषिद्धांश्च तथा शृण्वन्नपि स्मरन् ॥ २४ ॥ जिघ्रन्नपि तथा चाश्नन्प्रलपन्नपि संततम् ॥ कुर्वन्नपि सदा गच्छन्विसृजन्नपि मानवः ॥ २५ ॥ रुद्राक्षधारणादेव सर्वपापैर्न लिप्यते ॥ अनेन भुक्तं देवेन भुक्तं यत्तु तथा भवेत् ॥ २६ ॥ पीतं रुद्रेण तत्पीतं घ्रातं घ्रातं शिवेन तत् ॥ रुद्राक्षधारणे लज्जा येषामस्ति महामुने ॥ २७ ॥ तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥ रुद्राक्षधारिणं दृष्ट्वा परिवादं करोति यः ॥ २८ ॥ उत्पत्तौ तस्य सांकर्यमस्त्येवेति विनिश्चयः ॥ रुद्राक्षधारणादेव रुद्रो रुद्रत्वमाप्नुयात् ॥ २९ ॥ मुनयः सत्यसंकल्पा ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः ॥ रुद्राक्षधाणाच्छ्रेष्ठं न किंचिदपि विद्यते ॥ ३० ॥ रुद्राक्षधारिणे भक्त्या वस्त्रं धान्यं ददाति यः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥३१॥ रुद्राक्षधारिणं श्राद्धे भोजयेत विमोदतः ॥ पितृलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ३२ ॥ रुद्राक्षधारिणः पादौ प्रक्षाल्याद्भिः पिबेन्नरः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ ३३ ॥ हारं वा कटकं वापि सुवर्णं वा द्विजोत्तमः ॥ रुद्राक्षसहितं भक्त्या धारयन्रुद्रतामियात् ॥ ३४ ॥ रुद्राक्षं केवलं वापि यत्र कुत्र महामते ॥समन्त्रकं वा मन्त्रेण रहितं भाववर्जितम् ॥ ३५ ॥

निमित्त जो वस्त्र और धान्य देता है वह सब पापसे रहित होकर शिवलोकको जाता है ॥ ३१ ॥ जो रुद्राक्षधारीको प्रसन्न होकर जिमाता है वह पितृलोकको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥ जो पुरुष रुद्राक्षधारण किये पुरुषको चरण धोकर जलपानकरे वह सब पापसे मुक्त होकर शिवलोकको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ जो ब्राह्मण हार कटक वा सुवर्णको रुद्राक्षके सहित धारण करता है वह रुद्रताको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ हे महामते ! केवल रुद्राक्षको भी जहां कहीं मन्त्र वा अमन्त्रसे भाव वा अभावसे ॥ ३५ ॥

जो कोई भक्ति वा लज्जासे भी धारण करता है वह सर्व पापसे रहित हो भली प्रकारके ज्ञानको प्राप्त होता है ॥३६॥॥ अहो मैं रुद्राक्षका माहात्म्य नहीं कह सकता इससे सब प्रकार रुद्राक्ष धारण करे ॥ ३७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारदजी बोले हे अनघ ! जब रुद्राक्षका इस प्रकारका प्रभाव है और महान् पुरुषोंसे पूजित है तो इसका क्या कारण है कहिये ॥१॥ नारायण बोले यही वार्ता पहले भगवान् गिरीशसे षण्मुखने पूछी थी रुद्रने इसपर जो कहा सो सुनो ॥ २ ॥ ईश्वर बोले हे कुमार ! तत्वपूर्वक सुनो मैं संक्षेपसे कहता हूं पहले एक त्रिपुरनामक दैत्य बडा दुर्जय हो गया है ॥३॥ उसने ब्रह्मा विष्णु आदि सब देवताओंको तिरस्कृत करदिया, तब सबने उसकी व्यवस्था मुझसे कही ॥४॥ तब मैं अपने अघोर

यो वा को वा नरो भक्त्या धारयेल्लज्जयाऽपि वा ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात् ॥३६॥ अहो रुद्राक्षमाहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्याद्रुद्राक्षधारणम् ॥३७॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे सदाचारवर्णने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ एवंभूतानुभावोऽयं रुद्राक्षो भवताऽनघ ॥ वर्णितो महतां पूज्यः कारणं तत्र किं वद ॥ १ ॥ नारायण उवाच ॥ एवमेव पुरा पृष्टो भगवान् गिरिशः प्रभुः ॥ षण्मुखेन च रुद्रस्तं यदुवाच शृणुष्व तत् ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु षण्मुख तत्त्वेन कथयामिः समासतः ॥ त्रिपुरो नाम दैत्यस्तु पुराऽसीत्सर्वदुर्जयः ॥ ३ ॥ हतास्तेन सुराः सर्वे ब्रह्मविष्णवादिदेवताः ॥ सर्वैस्तु कथिते तस्मिंस्तदाऽहं त्रिपुरं प्रति ॥ ४ ॥ अचिंतयं महाशस्त्रमघोराख्यं मनोहरम् ॥ सर्वदेवमयं दिव्यं ज्वलंतं घोररूपि यत् ॥ ५ ॥ त्रिपुरस्य वधार्थाय देवानां तारणाय च ॥ सर्वविघ्नोपशमनमघोरास्तमचिंतयम् ॥ ६ ॥ दिव्यवर्षसहस्रं तु चक्षुरुन्मीलितं मया ॥ पश्चान्ममाकुलाक्षिभ्यः पतिता जलबिन्दवः ॥ ७ ॥ तत्राश्रुबिंन्दुतो जाता महारुद्राक्ष वृक्षकाः ॥ ममाऽऽज्ञया महासेन सर्वेषां हितकाम्यया ॥ ८ ॥ बभूवुस्ते च रुद्राक्षा अष्टत्रिंशत्प्रभेदतः ॥ सूर्यनेत्रसमुद्भूताः कपिला द्वादशस्मृताः ॥ ९ ॥

नामक महाशास्त्रको विचार कर जो सब देवमय दिव्य ज्वलित महाघोररूपी है॥५॥ उस समय त्रिपुरके वधकरने और देवताओंकी रक्षा करनेकी सब विघ्नके नाशके निमित्त अघोर अस्त्रका चिन्तन किया ॥६॥ दिव्य सहस्रवर्षतक मैंने नेत्र निमी लितकिये तब मेरे नेत्रोंसे जलबिन्दु गिरे ॥ ७ ॥ उन आंसुओंकी बूंदोंसे महारुद्राक्षके वृक्ष उत्पन्न हुए हे महासेनापते ! सबके हितकी कामनासे मेरी आज्ञासे उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ वे अट्ठाईस प्रकारके भेदवाले हुए सूर्यनेत्रसे उत्पन्न कपिलवर्णके बारह उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥

सोमनेत्रसे उत्पन्न हुए श्वेतवर्णके सोलह प्रकारके हैं और वह्निनेत्रसे उत्पन्न हुए कृष्णवर्ण दशभेदवाले हैं ॥ १० ॥ श्वेतवर्ण रुद्राक्ष जातिसे ब्राह्मण कहाता है, रक्तवर्ण क्षत्रिय, मिश्र वैश्य और कृष्णवर्ण शूद्रसंज्ञक हैं ॥ ११ ॥ एकमुखी साक्षात् शिव ब्रह्म हत्याको दूर करता है दोमुखी देवी और देव तास्वरूप हैं अनेक पाप दूर करता है ॥ १२ ॥ तीनमुखी साक्षात् अनल स्त्रीहत्या दूर करता है चतुर्मुखी स्वयं ब्रह्मा नरहत्या दूर करता है ॥ १३ ॥ पंचमुखी साक्षात् रुद्र कालाग्नि नामक है वह अभक्ष्यभक्षण और अगम्यागमन अपराधसे ॥ १४ ॥ तथा और भी सब पापोंसे मुक्त करता है षण्मुखवाले साक्षात् कार्तिकेय हैं इनको दक्षिणहाथमें धारण करना चाहिये ॥ १५ ॥ तो वह ब्रह्महत्यादि पापोंसे छूट जाते हैं इसमें सन्देह नहीं सातमुखी आनं

सोमनेत्रोत्थिताः श्वेतास्ते षोडशविधाः क्रमात् ॥ वह्निनेत्रोद्भवाः कृष्णा दश भेदा भवंति हि ॥ १० ॥ श्वेतवर्णश्चरुद्राक्षो जातितो ब्राह्म उच्यते ॥ क्षात्रो रक्तस्तथा मिश्रो वैश्यः कृष्णस्तु शूद्रकः ॥ ११ ॥ एकवक्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति द्विवक्रो देवदेव्यौस्या द्विविधं नाशयेदघम् ॥१२॥ त्रिवक्रस्त्वनलः साक्षात्स्त्रीहत्यां दहति क्षणात् ॥ चतुर्वक्रः स्वय ब्रह्मा नरहत्यांव्यपोहति ॥ १३ ॥ पञ्चव क्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नाम नामतः ॥ अभक्ष्यभक्षणोद्भूतैरगम्यागमनोद्भवैः ॥ १४ ॥ मुच्यते सर्वपापैस्तु पञ्चवक्रस्य धारणात् ॥ षड् वक्रः कार्तिकेयस्तु स धार्यो दक्षिणे करे ॥ १५ ॥ ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ सप्तवक्रो महाभागो ह्यनंगो नाम नामतः ॥ १६ ॥ तद्धारणान्मुच्यते हि स्वर्णस्तेयादिपातकैः ॥ अष्टवक्रो महासेनः साक्षाद्देवो विनायकः ॥ १७ ॥ अन्नकूटं तूलकूटं स्वर्णकूटं तथैव च ॥ दुष्टान्वयस्त्रियं वाऽथ संस्पृशंश्च गुरुस्त्रियम् ॥ १८ ॥ एवमादीनि पापानि हंति सर्वाणि धारणात् ॥ विघ्नास्तस्य प्रणश्यंति याति चांते परं पदम् ॥१९॥ भवंत्येते गुणा सर्वे ह्यष्टवक्रस्य धारणात् ॥ नववक्रो भैरवस्तु धारयेद्वामबाहुके ॥ २० ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदः प्रोक्तो मम तुल्यबलो भवेत् ॥ भ्रूणहत्यासहस्राणि ब्रह्महत्याशतानि च ॥ २१ ॥

गनामक है यह महाभाग है ॥ १६ ॥ इसके धारणादिसे स्वर्ण चोरी आदिके पापसे छूट जाता है हे पुत्र ! अष्टमुखी साक्षात् विनायक देव है ॥ १७ ॥ अन्नकूट, तुलाकूट, स्वर्णकूट, दुष्टवंशस्त्री वा गुरुस्त्रीका स्पर्श ॥ १८ ॥ इत्यादि पाप उसके धारणसे दूर होते हैं उनके सब पापनाश हो जाते हैं और अन्तमें परमपदको जाते हैं ॥१९॥ यह सब गुण अष्टमुखीके धारण करनेसे होते हैं नौ मुखका भैरव है उसे बाई भुजामें धारण करना चाहिये ॥ २० ॥ उस को भुक्तिमुक्तिकी प्राप्ति और मेरे तुल्य बल होता है सहस्रों गर्भहत्या सैकडों ब्रह्महत्या ॥ २१ ॥

नौमुखीके धारणसे शीघ्रही नाश होजाती है दशमुखी साक्षात् देवदेव जनार्दन है ॥ २२ ॥ ग्रह, पिशाच, वेताल, ब्रह्मराक्षस, पन्नगादि सब दशमुखके धारणसे शान्त हो जाते हैं ॥ २३ ॥ एकादशमुखी साक्षात् रुद्र है जो इसको शिखामें धारण करते हैं उसके पुण्यफलको सुनो ॥ २४ ॥ सहस्र अश्वमेध सौ वाजपेय और सौ सहस्र गोदानका जो फल है ॥ २५ ॥ वह एकादशमुखी रुद्राक्षके धारण करनेसे मिलता है और द्वादशमुखी रुद्राक्ष कर्णमें धारण करे ॥ २६ ॥ तो उससे बारह आदित्य प्रसन्न हो जाते हैं गोमेध और अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ शृंगवाले शस्त्रधारी और व्याघ्रादिका भय नहीं होता

सद्यः प्रलयमायांति नववक्रस्य धारणात् ॥ दशवक्त्रस्तु देवेशः साक्षाद्देवो जनार्दनः ॥ २२ ॥ ग्रहाश्चैत पिशाचाश्च वेताला ब्रह्मरा
क्षसाः ॥ पन्नगाश्चोपशाम्यंति दशवक्त्रस्य धारणात् ॥ २३ ॥ वक्त्रैकादशरुद्राक्षो रुद्रैकादशकं स्मृतम् ॥ शिखायां धारयेद्यो वै तस्य
पुण्यफलं शृणु ॥ २४ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥ २५ ॥ तत्फलं लभते
शीघ्रं वक्त्रैकादशधारणात् ॥ द्वादशास्यस्य रुद्राक्षस्यैव कर्णे तु धारणात् ॥ २६ ॥ आदि त्यास्तोषिता नित्यं द्वादशास्ये व्यव
स्थिताः ॥ गोमेधे चाऽश्वमेधे च यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥ २७ ॥ शृंगिणां शस्त्रिणां चैव व्याघ्रादीनां भयं नहि ॥ नच व्याधिभयं तस्य
नैव चाधिः प्रकीर्तितः ॥ २८ ॥ न च किंचिद्भयं तस्य न च व्याधिः प्रवर्तते ॥ न कुतश्चिद्भयं तस्य सुखी चैवेश्वरो भवेत् ॥ २९ ॥
हस्त्यश्वमृगमार्जारसर्पमूषकदर्दुरान् ॥ खरांश्च श्वशृगालांश्च हत्वा बहुविधानपि ॥ ३० ॥ मुच्यते नात्र सन्देहो वक्रद्वादशधारणात् ॥
वक्त्रत्रयोदशो वत्स रुद्राक्षो यदि लभ्यते ॥ ३१ ॥ कार्त्तिकेय समो ज्ञेयः सर्वकामार्थ सिद्धिदः ॥ रसो रसायनं चैव तस्य सर्वं प्रसि
द्ध्यति ॥ ३२ ॥ तस्यैव सर्वभोग्यानि नात्र कार्या विचाणा ॥ मातरं पितरं चैव भ्रातरं वा निहंति यः ॥ ३३ ॥

उसको आधि व्याधिका भी भय नहीं होता ॥२८॥ न उसके कोई भय और न व्याधि होती है न कहीं भय होता किन्तु सर्वत्र सुख होता है तथा अधिपति होता है ॥ २९ ॥ हाथी, अश्व, मृग, मार्जार, मूषक, दर्दुर खर, कुत्ते, शृगाल बहुत प्रकारके जीवोंको मारकर भी ॥ ३० ॥ द्वादशमुखी रुद्राक्षधारणसे इनके पाससे छूटा जाता है हे वत्स! यदि तेरह मुखी रुद्राक्ष प्राप्त हो जाय ॥ ३१ ॥ तब वह कार्तिकेयके समान सब अर्थ और कामना देनेवाला होता है उसको रस रसायन सब सिद्ध हो जाती हैं ॥३२॥ उसको सब भोग प्राप्त होते हैं इसमें विचारकी आवश्यकता नहीं जो माता पिता वा भाईको मारता है ॥ ३३ ॥

हे षण्मुख ! वह उसके धारणसे उस पापसे मुक्त हो जाता है--हे पुत्र ! यदि चौदह मुखी रुद्राक्ष धारण करता है ॥ ३४ ॥ तो शिरपर धारण करनेसे शिवके शरीररूप होता है हे मुने ! वारंवार वर्णनसे क्याहै ॥ ३५ ॥ वह सदा देवताओंसे पूजित होकर परमगतिको प्राप्त होता है एक ही रुद्राक्ष शिखापर भक्तिसे धारण करनेसे ॥ ३६ ॥ छव्वीसकी माला शिरपर पचासकी हृदयमें, सोलहकी बाहुमें बारहकी मणिबन्धमें ॥ ३७ ॥ हे षडानन ! एक सौ आठ, पचास, अथवा सत्ताईस दानेकी रुद्राक्षमाला ॥ ३८ ॥ धारण या जपनेसे अनन्त फल होता है १०८ रुद्राक्षोंकी माला धारण करते हैं ॥ ३९ ॥ हे षण्मुख ! उसको

मुच्यते सर्वपापेभ्यो धारणात्तस्य षण्मुख ॥ चतुर्दशास्यो रुद्राक्षो यदि लभ्येत पुत्रक ॥ ३४ ॥ धारयेत्स ततं मूर्ध्नि तस्य पिंडः शिवस्य तु ॥ किं मुने बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनःपुन ॥ ३५ ॥ पूज्यते संततं देवैः प्राप्यते च परा गतिः ॥ रुद्राक्ष एकः शिरसा धार्यो भक्त्या द्विजोत्तमैः ॥ ३६ ॥ षड्विंशद्भिः शिरोमाला पंचाशद्धृदयेन तु कलाक्षैर्बाहुवलये अर्काक्षैर्मणि बधनम् ॥ ३७ ॥ अष्टोत्तरशतेनापि पंचाशद्भिः षडानन ॥ अथवा सप्तविंशत्या कृत्वा रुद्राक्षमालिकाम् ॥ ३८ ॥ धारणाद्वा जपाद्वापिह्यनंतंफलमश्नुते ॥ अष्टोत्तरशतैर्मालां रुद्राक्षैर्धार्यते यदि ॥ ३९ ॥ क्षणेक्षणेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति षण्मुख ॥ त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य शिवलोके महीयते ॥ ४० ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ लक्षणं जपमालायाः शृणुवक्ष्यामि षण्मुख ॥ रुद्राक्षस्य मुखं ब्रह्मा बिंदू रुद्र इतीरितः ॥ १ ॥ विष्णुः पुच्छं भवेच्चैव भोगमोक्षफलप्रदम् ॥ पंचविंशतिभिश्चाक्षैः पंचवक्त्रैः सकंटकैः ॥ २ ॥ रक्तवर्णैः सितैर्मिश्रैः कृतरंध्रविदर्भितैः ॥ अक्षसूत्रं प्रकर्तव्यं गोपुच्छवलयाकृति ॥ ३ ॥ वक्त्रं वक्त्रेण संयोज्य पुच्छं पुच्छेन योजयेत् ॥ मेरुमूर्ध्वमुखं कुर्यात्तदूर्ध्वं नागपाशकम् ॥ ४ ॥

क्षण २ में अश्वमेधका फल प्राप्त होता है तथा २१ कुल उद्धारकर शिवलोकमें प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ईश्वर बोले हे षण्मुख ! जपमालाका लक्षण सुनो मैं कहता हूं रुद्राक्षका मुखब्रह्मा बिन्दु रुद्र कहा है ॥ १ ॥ विष्णु पुच्छ है जो भोगमोक्षको देनेवाला है पचीस रुद्राक्षोंकी पंचमुखी कंटकमाला ॥ २ ॥ जो लाल श्वेत वर्णोंसे मिश्रित रन्ध्रद्वारा ग्रंथित हो तो गोपुच्छबढायके आकारमाला निर्माण करनी चाहिये ॥ ३ ॥ मुखसे मुख और पुच्छसे पुच्छ संयुक्त करे मेरुको ऊर्ध्वमुख करे उसके ऊपर नागपाश धारण करे ॥ ४ ॥

दे. भा. ॥१०॥

इस प्रकारसे ग्रथित हुई गोपुच्छमाला सब सिद्धि देनेवाली होती है गंधजलसे धोकर फिर पंचगव्यसे प्रक्षालन कर ॥ ५ ॥ फिर शुद्ध जलसे प्रक्षालन करके मन्त्र समूहोंका न्यास करे फिर शिवास्त्र मंत्रसे जो षडंगमें है स्पर्शकर कवचमंत्र हुम् से संयुक्त करै ॥ ६ ॥ फिर मूलमन्त्रसे न्यास करे यह स्वयं पूर्वोक्तप्रकारसे करे वा गुरुके हाथसे करावे फिर सद्योजातादि मंत्रोंसे शोधन एकसौ आठ ॥ ७ ॥ मूलमन्त्रको उच्चारण कर शुद्ध भूमिमें रख, उनके ऊपर अम्बासहित रमका रुणिक शंकरका न्यास करे ॥ ८ ॥ इस प्रकार माला प्रतिष्ठित होकर सब कामना और फलके देनेवाली होती हैं जिस देवताका जो मंत्र है इसको उसीसे पूजन करे ॥ ९ ॥ मूर्धा कंठ वा हाथमें जपमालाका न्यास करे अर्थात् जपके अन्तमें इस स्थानोंपर रखले नियतात्मा होकर रुद्राक्षमालासे जप करना

एवं संग्रथितां मालां मन्त्रसिद्धिप्रदायिनीम् ॥ प्रक्षाल्य गंधतोयेन पंचगव्येन चोपरि ॥ ५ ॥ ततः शिवांभसाऽऽक्षाल्य ततो मन्त्रगणान्न्यसेत् ॥ स्पृष्ट्वा शिवास्त्रमन्त्रेण कवचेनावगुंठयेत् ॥ ६ ॥ मूलमन्त्रं न्यसेत्पश्चापूर्ववत्कारयेत्तथा ॥ सद्योजातादिभिः प्रोक्ष्य यावदष्टोत्तरं शतम् ॥ ७ ॥ मूलमन्त्रं समुच्चार्य शुद्धभूमौ निधाय च ॥ तस्योपरि न्यसेत्सांबं शिवं परमकारणम् ॥ ८ ॥ प्रतिष्ठिता भवेन्माला सर्वकामफलप्रदा ॥ यस्य देवस्य यो मन्त्रस्तां तेनैवाभिपूजयेत् ॥ ९ ॥ मूर्ध्नि कंठेऽथवा कर्णे न्यसेद्वा जपमालिकाम् ॥ रुद्राक्षमालया चैवं जप्तव्यं नियतात्मना ॥ १० ॥ कंठे मूर्ध्नि हृदि प्रांते कर्णे बाहुयुगेऽथवा ॥ रुद्राक्षधारणं नित्यं भक्त्या परमया युतः ॥११॥ किमत्र बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनः पुनः ॥ रुद्राक्षधारणं नित्यं तस्मादेतत्प्रशस्यते ॥१२॥ स्नाने दाने जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने ॥ प्रायश्चित्ते तथा श्राद्धे दीक्षाकाले विशेषतः ॥ १३ ॥ अरुद्राक्षधरो भूत्वा यत्किंचित्कर्म वैदिकम् ॥ कुर्वन्विप्रस्तु मोहेन नरके पतति ध्रुवम् ॥ १४ ॥ रुद्राक्षं धारयेन्मूर्ध्नि कंठे सूत्रे करेऽथवा ॥ सुवर्णमणिसंभिन्नं शुद्धं न न्यैर्धृतं शिवम् ॥ १५ ॥

चाहिये ॥ १० ॥ कंठ, शिर, हृदय, कान, बाहु इनमें परमभक्तिसे रुद्राक्ष धारण करना चाहिये ॥ ११ ॥ बहुत कहने और वारंवार वर्णन करनेसे क्या है, रुद्राक्ष नित्य धारणसे प्रतिष्ठा होती है ॥ १२ ॥ स्नान, दान, जप, होम, वैश्यदेव, सुरार्चन, प्रायश्चित्त, श्राद्ध और विशेष कर दक्षिणाकालमें ॥ १३ ॥ विना रुद्राक्षके धारण किये जो कुछ भी वैदिक कर्म करते हैं वह मोहसे नरकमें जाते हैं ॥१४॥ रुद्राक्षको शिरमें कण्ठमें यज्ञोपवीत और हाथमें सुवर्णसे युक्त रुद्राक्ष धारण करे कुछ मिलाके न धारे अशुचि होकर रुद्राक्षको न धारण करे सदा भक्तिसे धारण करे रुद्राक्ष वृक्षसे लगी हुई वायुके तृण भी पुण्यलोकको प्राप्त होते

हैं, जिनके जीवोंकी फिर आवृत्ति नहीं होती रुद्राक्ष धारण कर पाप करते हुए भी मनुष्य ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ सब पापतर जाते हैं ऐसा जाबाल श्रुति कहती है पशु भी रुद्राक्षधारणसे रुद्रलोकको प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ और जो मनुष्य रुद्राक्षकी माला धारण करते हैं उनकी बात तो कौन कहे एक भी रुद्राक्ष जो शिरपर शिवके भक्त धारण करते हैं ॥ १९ ॥ सब दुःखोंका ध्वंस करनेवाला और सब पापोंका मुक्त करनेवाला परमात्मा शंकरका जो नाम लेते हैं ॥ २० ॥ और जो रुद्राक्षसे अलंकृत हैं वह उत्तम भागवत हैं सब कल्याणकी इच्छावालोंको सदा रुद्राक्ष धारण करना चाहिये ॥ २१ ॥ कर्ण, शिखा, कण्ठ, हाथ, उदरमें महादेव विष्णु और ब्रह्माकी विभूति हैं ॥ २२ ॥ तथा और भी देवता भक्तिसे रुद्राक्ष धारण करते हैं सबके गोत्र ऋषि सब कूटस्थ

नाशुचिर्धारयेदक्षं सदा भक्त्यैव धारयेत् ॥ रुद्राक्षतरुसंभूतवातोद्धूततृणान्यपि॥१६॥पुण्यलोकं गमिष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम् रुद्राक्षं धारयन्पापं कुर्वन्नापि च मानवः ॥१७॥ सर्वं तरति पाप्मानं जाबालश्रुतिराह हि॥ पशवो हि च रुद्राक्षधारणाद्यांति रुद्रताम् ॥१८॥ किमु ये धारयंतिस्म नरारुद्राक्षमालिकाम् ॥ रुद्राक्षः शिरसा ह्येको धार्यो रुद्रपरैः सदा ॥१९॥ ध्वंसनं सर्वदुःखानां सर्वपापविमोचनम् ॥ व्याहरंति च नामानि ये शंभोः परमात्मनः ॥२०॥ रुद्राक्षालंकृता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ रुद्राक्षधारणं कार्यं सर्वश्रेयोऽर्थिभिर्नृभिः॥२१॥ कर्णपाशे शिखायां च कंठे हस्ते तथोदरे ॥ महादेवश्च विष्णुश्च ब्रह्मा तेषां विभूतयः ॥ २२ ॥ देवाश्चान्ये तथा भक्त्त्या खलुरुद्राक्षधारिणः ॥ गोत्रर्षयश्च सर्वेषां कूटस्था मूलरूपिणः ॥ २३ ॥ तेषां वंशप्रसूताश्च मुनयः सकला अपि ॥ श्रोतधर्मपराः शुद्धा खलु रुद्राक्षधारिणः ॥ २४ ॥ श्रद्धा न जायते साक्षाद्वेदसिद्धे विमुक्तिदे ॥ बहूनां जन्मनामंते महादेवप्रसादतः ॥ २५ ॥ रुद्राक्षधारणे वांछा स्वभावादेव जायते ॥ रुद्राक्षस्य तु माहात्म्यं जाबालैरादरेण तु ॥ २६ ॥ पठ्यते मुनिभिः सर्वैर्मया पुत्र तथैव च ॥ रुद्राक्षस्य फलं चैव त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ २७ ॥ फलस्य दर्शने पुण्यं स्पर्शात्कोटिगुणं भवेत् ॥ शतकोटिगुणं पुण्यं धारणाल्लभते नरः ॥ २८ ॥

मूलरूपी श्रौतधर्ममें रत रुद्राक्षके धारण करनेवाले हैं ॥ २३ ॥ उन्हींसे सब मुनियोंके वंश हैं वे सब रुद्राक्षधारी श्रौतधर्ममें तत्पर और शुद्ध हैं ॥ २४ ॥ वेदसिद्ध रुद्राक्षधारणमें एकसंग श्रद्धा नहीं होती परन्तु बहु जन्मोंके अन्तमें महादेवके प्रसादसे ॥ २५ ॥ रुद्राक्षधारणमें स्वभाव से ही वांछा होती है रुद्राक्ष माहात्म्य जाबालश्रुतियोंमें आदरपूर्वक ॥ २६ ॥ सब मुनियोंसे पढ़ा जाता है हे पुत्र! हम भी पढते हैं रुद्राक्षका फल त्रिलोकीमें विख्यात है ॥ २७ ॥ रुद्राक्षके दर्शनसे पुण्य स्पर्शसे कोटिगुण पुण्य और धारणसे उससे भी सौकोटिगुण पुण्य होता है ॥ २८ ॥

दे. भा. लक्षकोटि सहस्रलक्षकोटि सौगुना फल जपसे प्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं ॥ २९ ॥ हाथ, हृदय, कंठ कान और मस्तकमें जो रुद्राक्ष धारण करता है वह
॥११॥ शिव है इसमें संदेह नहीं ॥ ३० ॥ वह सब प्राणियोंसे अवध्य हो भूमिमें विचरण करता है वह शिवके समान सुरासुरोंका वन्दनीय होता है ॥ ३१ ॥ रुद्राक्ष धारी सदा मनुष्योंसे वन्दनीय होता है उच्छिष्ट वा विकर्ममें स्थित वा सब पापोंसे युक्तहो ॥ ३२ ॥ वह रुद्राक्षके धारणसे सब पापोंसे छूट जाता है कंठमें रुद्राक्ष बांधकर श्वानभी यदि प्राण त्यागे ॥ ३३ ॥ वह भी मुक्त हो जाता है मनुष्योंकी तो बातही क्या है जप ध्यानसे विहीन भी यदि रुद्राक्ष धारण करे ॥ ३४ ॥ वह सब पापसे निर्मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त होता है जो एकभी रुद्राक्ष यत्नपूर्वक धारण करता है ॥ ३५ ॥ वह इक्कीस कुलका उद्धार

लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥ जपाच्च लभते नित्यं नात्र कार्या विचारणा॥२९॥हस्ते चोरसि कंठे च कर्णयोर्मस्तके तथा ॥ रुद्राक्षं धारयेद्यस्तु स रुद्रो नात्र संशयः ॥ ३० ॥ अवध्यः सर्वभूतानां रुद्रवद्धि चरेद्भुवि ॥ सुराणामसुराणां च वंदनीयो यथा शिवः ॥ ३१ ॥ रुद्राक्षधारी सततं वंदनीयस्तथा नरैः ॥ उच्छिष्टो वा विकर्मस्थो युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ ३२ ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥ कंठे रुद्राक्षमाबध्य श्वापि वा म्रियते यदि ॥ ३३ ॥ सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति किं पुनर्मानुषोऽपि सः ॥ जपध्यानविहीनोपि रुद्राक्षं यदि धारयेत्॥३४॥सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्॥एकं वापि हि रुद्राक्षं कृत्वा यत्नेन धारयेत्॥३५॥एकविंशतिमुद्धृत्य रुद्रलोके महीयते ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राक्षस्य पुनर्विधिम् ॥ ३६॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ महासेन कुशग्रंथिपुत्रा जीवादयः परे ॥ रुद्राक्षस्य तु नैकोऽपि कलामर्हति षोडशीम् ॥ १ ॥ पुरुषाणां यथा विष्णुर्ग्रहाणां च यथा रविः ॥ नदीनां तु यथा गंगा मुनीनां कश्यपो यथा ॥ २ ॥ उच्चैः श्रवा यथाश्वानां देवानामीश्वरो यथा ॥ देवीनां तु यथा गौरी तद्वच्छ्रेष्ठमिदं भवेत् ॥ ३ ॥ नातः परतरं स्तोत्रं नातः परतरं व्रतम् ॥ अक्षय्येषु च दानेषु रुद्राक्षस्तु विशिष्यते ॥ ४ ॥

करके रुद्र लोकमें प्रतिष्ठा पाता है अब रुद्राक्षका फिर विधान कहता हूं ॥३६॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
भा. टी ए ईश्वर बोले हे महासेन! कुशग्रंथि जीयापोता आदिक जो कितनेही दूसरी वस्तु हैं यह रुद्राक्षकी सोलहवीं कलाको भी नहीं प्राप्त हो सकते ॥ १ ॥ पुरुषोंमें
अ० ६ जैसे विष्णु ग्रहोंमें जैसे सूर्य, नदियोंमें जैसी गंगा, मुनियोंमें कश्यप ॥ २ ॥ अश्वोंमें उच्चैःश्रवा, देवताओंमें जैसे महादेव, देवीमें जैसी गौरी इसी प्रकार यह सबसे श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ इससे परे दूसरा स्तोत्र इससे परे व्रत तथा अक्षय्य दोनोंमें रुद्राक्ष सबसे विशेष है ॥ ४ ॥

शिवभक्त शान्तके निमित्त उत्तम रुद्राक्ष देने चाहिये उसके पुण्य फलकी अनन्तता कोई नहीं कह सकता ॥ ५ ॥ कंठमें रुद्राक्ष धारण किये पुरुषको जो अन्न देता है वह कुलोंका उद्धार कर रुद्रलोकको जाता है ॥६॥ जिसके मस्तकमें विभूति, अंगमें रुद्राक्ष नहीं जो शिवके मंदिरमें जाकर पूजा नहीं करता वह ब्राह्मण श्वपचोंमें नीच है ॥ ७ ॥ मांस खाते मद्य पीते अन्त्यजोंका संग करते भी शिरमें रुद्राक्ष धारण करके पातकोंसे छूटता है ॥ ८ ॥ सब यज्ञ तपोदान वेदाभ्यासका जो फल है यह फल रुद्राक्षके धारणसे तत्काल मिलता है ॥ ९ ॥ जो चार वेद और पुराणपाठका फल है जो तीर्थ और सब विद्यासेवनका फल है वह फल शीघ्र ही रुद्राक्षधारणसे प्राप्त होता है प्रणयकालमें रुद्राक्ष धारण कर यदि मर जाय ॥ १० ॥ ११ ॥ वह फिर जन्मको प्राप्त न होकर रुद्रलोकमें गमन

शिवभक्ताय शांताय दद्याद्रुद्राक्षमुत्तमम् ॥ तस्य पुण्यफलस्यांतं नचा ह वक्तुमुत्सहे ॥५॥ धृतरुद्राक्षकंठाय यस्त्वन्नं संप्रयच्छतित्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ६ ॥ यस्य भाले विभूतिर्न नांगे रुद्राक्षधारणम् ॥ शंभोर्भवने पूजा स विप्रः श्वपचाधमः ॥ ७ ॥ खादन्मांसं पिबन्मद्यं संगच्छन्नंत्यजानपि ॥ पातकेभ्यो विमुच्येत रुद्राक्षे शिरसि स्थिते ॥ ८ ॥ सर्वयज्ञतपोदान वेदाभ्यासैश्च यत्फलम् ॥ यत्फलं लभते सद्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥ ९ ॥ वेदैश्चतुर्भिर्यत्पुण्यं पुराणपठनेन च ॥ यत्तीर्थसेवनेनैव सर्व विद्यादिभिस्तथा ॥ १० ॥ तत्पुण्यं लभते सद्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥ प्रयाणकाले रुद्राक्षं बंधयित्वा म्रियेद्यदि ॥ ११ ॥ स रुद्रत्वमवाप्नोति पुनर्जन्म न विद्यते ॥ रुद्राक्षं धारयेत्कंठे बाह्वोर्वा म्रियते यदि ॥ १२ ॥ कुलैकविंशमुत्तार्य रुद्रलोके वसेन्नरः ॥ ब्राह्मणो वापि चांडालो निर्गुणः ॥ सगुणोऽपि च ॥१३॥ भस्मरुद्राक्षधारी यः स देवत्वं शिवं व्रजेत ॥ शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि तथाऽभक्षस्य भक्षकः ॥१४॥ म्लेच्छो वाप्यथ चांडालो युतो वा सर्वपातकैः ॥ रुद्राक्षधारणादेव स रुद्रो नात्र संशयः ॥१५॥ शिरसा धार्यते कोटिः कर्णयोर्दशकोटयः ॥ शतकोटिर्गले बद्धो मूर्ध्नि कोटिसहस्रकम् ॥ १६ ॥ अयुतं चोपवीते तु लक्षकोटिर्भुजे स्थिते ॥ मणिबंधे तु रुद्राक्षो मोक्षसाधनकः परः ॥ १७ ॥

करता है कंठ और भुजामें रुद्राक्ष धारण करके यदि मृत्यु होजाय ॥ १२ ॥ वह २१कुल तारकर रुद्रलोकमें निवास करता है ब्राह्मण वा चाण्डाल निर्गुण वा सगुण कोई हो ॥ १३ ॥ भस्म रुद्राक्ष धारण करनेवाला शिवताको प्राप्त होता है, शुचि अशुचि अभक्ष्यका भक्षण करनेवाला ॥ १४ ॥ म्लेच्छ चाण्डाल वा सब पातकोंसे युक्त हो वह रुद्राक्ष धारणसे रुद्रही होजाता है इसमें सन्देह नहीं ॥१५॥ एक कोटि गुना फल शिरपर, दशकोटि कर्णमें, शतकोटि गलेमें मूर्धा पर सहस्र कोटि ॥१६॥ यज्ञोपवीतमें अयुत, भुजाओंमें लक्षकोटि गुना फल होता है, तथा मणिबंधमें रुद्राक्ष धारण कर मोक्षसाधनमें तत्पर होता है ॥१७॥

रुद्राक्षधारण करता हुआ जो कुछ कर्म ब्राह्मण वेदके अनुसार करता है उससे बडे फलको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ जो भक्तिरहित होकर भी कंठमें रुद्राक्षकी मालाको धारण करता है वह पापकर्मा भी मुक्त होजाता है ॥ १९ ॥ जो रुद्राक्षमें चित्त लगाकर रुद्राक्ष धारण करता है वह शिवभक्त शिवलोकमें शिवके समान नमस्कृत होता है ॥ २० ॥ विद्यावान् वा अविद्यावान् कोई भी रुद्राक्ष धारण करे वह शिवलोकको प्राप्त होता है, जैसे कीटक देशमें रासभ मुक्त हुआ ॥ २१ ॥ स्कन्दजी बोले हे देव! गर्दभने किस प्रकार रुद्राक्ष धारण किया ? कीटकमें किसने उसको दिया सो आप भलीप्रकार कहिये ॥ २२ ॥ श्रीभगवान् बोले हे पुत्र! पहली एक कथा सुनो विंध्याचल पर्वतपर एक गर्दभ रहता था, वह पथिकद्वारा रुद्राक्ष भार ढोया करता था ॥ २३ ॥ एक समय वह भार

रुद्राक्षधारको भूत्वा यत्किंचित्कर्म वैदिकम् ॥ कुर्वन्विप्रः सदा भक्त्या महदाप्नोति तत्फलम् ॥ १८ ॥ रुद्राक्षमालिकां कंठे धारयेद्भक्तिवर्जितः ॥ पापकर्मा तु यो नित्यं स मुक्तः सर्वबंधनात् ॥ १९ ॥ रुद्राक्षार्पितचेता यो रुद्राक्षस्तु न वै धृतः॥ असौ माहेश्वरो लोके नमस्यः स तु लिंगवत् ॥ २० ॥ अविद्यो वा सविद्यो वा रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥ शिवलोकं प्रपद्येत कीकटे गर्दभो यथा ॥ ॥ २१ ॥ स्कंद उवाच ॥ रुद्राक्षान्संदधे देव गर्दभः केन हेतुना ॥ कीकटे केन वा दत्तस्तद्ब्रूहि परमेश्वर ॥ २२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु पुत्र पुरावृत्तं गर्दभो विंध्यपर्वते ॥ धत्ते रुद्राक्षभारं तु वाहितः पथिकेन तु ॥ २३ ॥ श्रांतोऽसमर्थस्तद्भारं वोढुं पतितवान्भुवि ॥ प्राणैस्त्यक्तस्त्रिनेत्रस्तु शूलपाणिर्महेश्वरः ॥ २४ ॥ मत्प्रसादान्महासेन मदंतिकमुपागतः ॥ यावद्वक्त्रास्य संख्यानं रुद्राक्षाणां सुदुर्लभम् ॥ २५ ॥ तावद्युगसहस्राणि शिव लोके महीयते ॥ स्वशिष्येभ्यस्तु वक्तव्यं नाशिष्येभ्यः कदाचन ॥ २६ ॥ अभक्तेभ्योऽपि मूर्खेभ्यः कदाचिन्न प्रकाशयेत् ॥ अभक्तोवास्तु भक्तो वा नीचो नीचतरोऽपि वा ॥ २७ ॥ रुद्राक्षान्धारयेद्यस्तु मुच्यते सर्वपातकैः ॥ रुद्राक्षधारणं पुण्यं केन वा सदृशं भवेत् ॥ २८ ॥

उठानेमें असमर्थ होकर भूमिपर गिर गया और प्राण निकल गये तब त्रिनेत्र शूलपाणि महेश्वररूप हो ॥२४॥ मेरे प्रसादसे वह मेरे समीप प्राप्त हुआ जितने रुद्राक्षोंके मुखकी संख्या थी ॥ २५ ॥ उतनेही सहस्रवर्ष शिवलोकमें प्रतिष्ठा पाई यह अपने शिष्योंके प्रतिही कहनी अशिष्योंसे नहीं कहनी ॥ २६ ॥ अभक्त तथा मूर्खोंसे कथाओंको प्रकाश न करे कोई अभक्त वा भक्त नीचसे भी नीच क्यों न हो ॥ २७ ॥ जो रुद्राक्ष धारण करता है वह सब पातकोंसे छूट जाता है रुद्राक्षके धारणका पुण्य किसके समान कहे ॥ २८ ॥

तत्त्वदर्शी मुनियोंने यह महाव्रत कहा है जो सहस्र रुद्राक्षको धारण करता है ॥ २९ ॥ उसको सब देवता प्रणाम करते हैं वह रुद्रके समान है सहस्र न मिलें तो भुजाओंमें सोलह २ धारण करे ॥ ३० ॥ शिखामें एक, हाथोंमें बार २ कंठमें ३२ और चालीस मस्तकमें ॥ ३१ ॥ एक एक कानमें छः छः वक्षस्थलमें १०८ रुद्राक्ष जो धारण करता है वह रुद्रके समान पूजित होता है ॥ ३२ ॥ मुक्ता प्रवाल (मूँगा) स्फटिक चांदी वैडूर्य सुवर्णसहित जो धारण करता है वह शिवरूप होता है ॥ ३३ ॥ जो आलस्यसेही केवल रुद्राक्षोंको धारण करता है उसको पाप नहीं छूसकते जैसे सूर्यको अंधकार ॥ ३४ ॥ रुद्राक्ष मालाका मंत्र जपनेसे अनन्त फलका देनेवाला होता है जिसके अंगमें बहुत पुण्य देनेवाला एक भी रुद्राक्ष नहीं है ॥ ३५ ॥ उसका जन्म निरर्थक होता है इसी प्रकार

महाव्रतमिदं प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥ सहस्रं धारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः ॥ २९ ॥ तं नमंति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ॥ अभावे तु सहस्रस्य बाह्वोः षोडशषोडश ॥३०॥ एकं शिखायां करयोर्द्वादश द्वादशैव तु ॥ द्वात्रिंशत्कंठदेशे तु चत्वारिंशच्च मस्तके ॥३१॥ एकैकं कर्णयोः षट्षट् वक्षस्यष्टोत्तरं शतम् ॥ यो धारयति रुद्राक्षान्रुद्रवत्स तु पूज्यते ॥ ३२ ॥ मुक्ताप्रवालस्फटिकरौप्यवैडूर्यकांचनैः ॥ समेतान्धारयेद्यस्तु रुद्राक्षान्स शिवो भवेत् ॥ ३३ ॥ केवलानपि रुद्राक्षान्यद्यालस्याद्बिभर्ति यः ॥ तं न स्पृशंति पापानि तमांसीव विभावसुम् ॥ ३४ ॥ रुद्राक्षमालया मंत्रो जप्तोऽनंतफलप्रदः ॥ यस्यांगे नास्ति रुद्राक्ष एकोऽपि बहुपुण्यदः ॥ ३५ ॥ तस्य जन्म निरर्थं स्यात्त्रिपुंड्ररहितं यथा ॥ रुद्राक्षं मस्तके धृत्वा शिरःस्नानं करोति यः ॥ ३६ ॥ गंगास्नानफलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥ एकावक्त्रः पंचवक्त्र एकादशमुखाः परे ॥ ३७ ॥ चतुर्दशमुखाः केचिद्रुद्राक्षा लोकपूजिताः ॥ भक्त्या संपूज्यते नित्यं रुद्राक्षः शंकरात्मकः ॥ ३८ ॥ दरिद्रं वापि पुरुषं राजानं कुरुते भुवि ॥ अत्र ते कथयिष्यामि पुराणं मतमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ कोसलेषु द्विजः कश्चिद्गिरिनाथ इति श्रुतः ॥ महाधनी च धर्मात्मा वेद वेदांगपारगः ॥ ४० ॥

त्रिपुण्ड्ररहित है जो कोई रुद्राक्ष शिरपर धारण करके शिरसे स्नान करता है ॥ ३६ ॥ उसको गंगास्नानका फल प्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं एकमुखी पंचमुखी एकादशमुखी ॥ ३७ ॥ चौदहमुखी रुद्राक्ष लोकमें पूजित है जो शंकरात्मक रुद्राक्षको भक्तिसे पूजन करता है ॥ ३८ ॥ वह दरिद्रको भी राजा कर देता है इसमें आपसे उत्तम पुराणका मत कहता हूं ॥ ३९ ॥ कोशल देशमें कोई ब्राह्मण गिरिनाथ नामक बड़ा विख्यात महाधनी धर्मात्मा वेदवेदांगका पारगामी ॥ ४० ॥

यज्ञ करनेवाला दीक्षित था उसका पुत्रभी सुन्दर गुणनिधि नामवाला तरुण कामवत् सुन्दर था ॥ ४१ ॥ वह सुधिषण गुरुकी मुक्तावली पत्नीको अपने रूपयौवनमदसे मोहित करता हुआ ॥ ४२ ॥ उसके साथ कुछ कालतक तो भयसहित संगति करता हुआ पीछे गुरुको विष देकर उससे निर्भय मैथुन करने लगा ॥ ४३ ॥ जब माता पिताने उसके इस कुकर्मको जाना तब विष देकर उनको भी मार डाला ॥ ४४ ॥ तब अनेक विलासभोगमें द्रव्यके व्यय हो जानेसे वह दुष्ट ब्राह्मणोंके घरमें चोरी करने लगा ॥ ४५ ॥ सुरापानसे मदोन्मत्त होनेके कारण ज्ञातिने उसको बाहर कर दिया सबने इसको ग्रामसे निकाल दिया तब यह वनचारी होगया ॥ ४६ ॥ तब उस मुक्त वलीके साथ गहन वनको चला गया, मार्गमें स्थित हो द्रव्यके लोभसे बहुतसे ब्राह्मणोंको मारडाला

यज्ञकृद्दीक्षितस्तस्य तनयः सुन्दराकृतिः ॥ नाम्ना गुणनिधिः ख्यातस्तरुणः कामसुन्दरः ॥ ४१ ॥ गुरोः सुधिषणस्याथ पत्नीं मुक्ताव लीमथ ॥ मोहयामास रूपेण यौवनेन मदेन च ॥ ४२ ॥ संग तस्तु तया सार्धं कंचित्कालं ततो भिया ॥ विषं ददौ च गुरवे येभे पश्चात्तु निर्भयः ॥ ४३ ॥ यदा माता पिता कर्म किंचिज्जानाति यत्क्षणे ॥ मातरं पितरं चापि मारयामास तद्विषात् ॥ ४४ ॥ नानाविलासभोगैश्च जाते द्रव्यव्यये ततः ॥ ब्राह्मणानां गृहे चौर्यं चकार स तदा खलः ॥ ४५ ॥ सुरापानमदोन्मत्तस्तदा ज्ञातिबहि ष्कृतः ॥ ग्रामान्निष्कासितः सर्वैस्तदा सोऽभूद्वनेचरः ॥ ४६ ॥ मुक्तावल्या तया सार्धं जगाम गहनं वनम् ॥ मार्गे स्थितो द्रव्यलोभा ज्जघान ब्राह्मणान्बहून् ॥ ४७ ॥ एवं बहुगते काले ममार स तदाऽधमः ॥ नेतुं तं यमदूताश्च समाजग्मुः सहस्रशः ॥ ४८ ॥ शिव लोकाच्छिवगणास्तथैव च समागताः ॥ तयोः परस्परं वादो बभूव गिरिजासुत ॥ ४९ ॥ यमदूतास्तदा प्रोचुः पुण्यमस्य किमस्ति हि ॥ ब्रुवंतु सेवकाः शंभोर्यद्येनं नेतुमिच्छथ ॥ ५० ॥ शिवदूतास्तदा प्रोचुरयं यस्मिन्स्थले मृतः ॥ दशहस्तादधो भूमे रुद्राक्षस्तत्र चास्ति हि ॥ ५१ तत्प्रभावेन हे दूता नेष्यामः शिवसन्निधिम् ॥ ततो विमानमारुह्य दिव्यरूपधरो द्विजः ॥ ५२ ॥

॥ ४७ ॥ इस प्रकार बहुत समय बीतनेसे वह अधम मृत्युको प्राप्त होगया उसको लेनेको अनेक यमदूत आये ॥४८॥ उसी अवसर शिवलोकसे शिवजीके गण आये हे गिरजासुत! उनका परस्पर विवाद होनेलगा ॥ ४९ ॥ यमदूत बोले इसका क्या पुण्य है हे शिवके सेवको कहो ! जिसके कारण तुम इसको लेने आये हो ॥ ५० ॥ शिवदूत बोले यह जिस स्थानमें मृतक हुआ है वहां भूमिसे दश हाथ नीचे रुद्राक्ष है ॥ ५१ ॥ हे दूतो ! उसीके प्रभावसे हम इसको शिवके समीप ले जायँगे तब वह ब्राह्मण दिव्यरूप धर विमानपर चढ ॥ ५२ ॥

गुणनिधि दूतोंके साथ शिवके स्थानको गया ! हे सुव्रत ! यह तुमसे रुद्राक्षका माहात्म्य कहा ॥ ५३ ॥ यह रुद्राक्षकी महिमा संक्षेपसे तुमसे कही यह सब पापक्षयकारी महापुण्यका फल देनेवाला है ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारद ! इस प्रकार शिवजीने कार्तिकेयसे कहा था, रुद्राक्षकी महिमा जानकर वह कृतार्थ हुए ॥ १ ॥ इस प्रकार रुद्राक्षका प्रभाव मैंने कहा सदाचारके प्रसंगसे और भी सुनो ॥ २ ॥ जैसे रुद्राक्षकी महिमा बहुत पुण्यकी देनेवाली कही है वैसेही लक्षण और मन्त्र न्यास भी मैं तुमसे वर्णन करता हूं हे मुने ! सुनो ॥ ३ ॥

गतो गुणनिधिर्दूतैः सहितः शंकरालयम् ॥ इति रुद्राक्षमाहात्म्यं कथितं तव सुव्रत ॥ ५३ ॥ एवं रुद्राक्षमहिमा समासात्कथितो मया ॥ सर्वपापक्षयकरो महापुण्यफलप्रदः ॥ ५४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ एवं नारद षड् वक्रो गिरिशेन विबोधितः ॥ रुद्राक्षमहिमानं च ज्ञात्वाऽसीत्स कृतार्थकः ॥ १ ॥ इत्थंभूतानुभावोऽयं रुद्राक्षो वणितो मया ॥ सदाचार प्रसंगेन शृणु चान्यत्समाहितः ॥ २ ॥ यथारुद्राक्षमहिमा वर्णितोऽनन्तपुण्यदः ॥ लक्षणं मंत्रविन्यासं तथाऽहं वर्णयामि ते ॥ ३ ॥ लक्षं तु दर्शनात्पुण्यं कोटिस्तत्स्पर्शनाद्भवेत् ॥ तस्य कोटिगुणं पुण्यं लभते धारणान्नरः ॥ ४ ॥ लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥ तज्जपाल्लभते पुण्यं नरो रुद्राक्षधारणात् ॥ ५ ॥ रुद्राक्षाणां तु भद्राक्षधारणात्स्यान्महाफलम् ॥ धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम् ॥ ६ ॥ बदरीफलमात्रं तु प्रोच्यते मध्यमं बुधैः ॥ अधमं चणमात्रं स्यात्प्रतिज्ञैषा मयोदिता ॥ ७ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया ॥ वृक्षा जाताः पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः ॥ ८ ॥

देखनेसे लाखगुण स्पर्शसे करोण गुण और धारणसे उससे भी कोटि गुण पुण्य फल प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ लक्षकोटि सहस्र लक्षकोटि सौ गुना रुद्राक्षके जपसे पुण्य फल प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ रुद्राक्षोंमें भद्राक्ष धारणका बड़ा पुण्य है आमलेके समान रुद्राक्ष श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥ बेरके समान मध्यम, चनेके समान अधम हैं यह मेरी प्रतिज्ञा है ॥ ७ ॥ शिवकी आज्ञासे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्म शूद्र यह चार प्रकारके रुद्राक्षके वृक्ष हैं उन्हींके जातवाले सुभाक्ष कहाते हैं ॥ ८ ॥

दे. भा.
॥१४॥

श्वेत ब्राह्मण लाल क्षत्रिय, पीत वर्ण वैश्य और कृष्णवर्ण शूद्र जानने ॥ ९ ॥ ब्राह्मण श्वेत वर्णके, क्षत्रिय, लाल, वैश्य और शूद्र कृष्ण वर्णके धारण करे ॥ १० ॥ समान स्निग्ध दृढ कंटक उठे हुए शुभ होते हैं कृमिदष्ट छिन्न भिन्न कंटकों से रहित ॥ ११ ॥ व्रणयुक्त अनावृत यह छः प्रकारके रुद्राक्ष धारण न करे जिसमें स्वयं छिद्र हो वह उत्तम रुद्राक्ष है ॥ १२ ॥ और जो यत्नसे छिद्र किया रुद्राक्ष है वह मध्यम है समस्निग्ध, दृढ, गोलदानोंको रेशमके सूत्रसे पहरे ॥ १३ ॥ सब शरीरमें साम्यता पूर्वक विलक्षण धारण करे जैसे कसौटीपर घर्षण करनेसे सुवर्ण रेखा पड़ जाती है इस प्रकार जिसकी कसौ

श्वेतास्तु ब्राह्मणा ज्ञेयाः क्षत्रिया रक्तवर्णकाः ॥ पीता वैश्यास्तु विज्ञेयाः कृष्णाः शूद्राः प्रकीर्तिताः ॥ ९ ॥ ब्राह्मणो बिभृयाच्छ्वेतान्रक्ता न्राजा तु धारयेत् ॥ पीतान्वैश्यस्तु बिभृयात्कृष्णाञ्छूद्रस्तु धारयेत् ॥ १० ॥ समाः स्निग्धा दृढास्तद्वत्कंटकैः संयुताः शुभाः ॥ कृमिद ष्टाञ्छि भिन्नान्कंटकै रहितांस्तथा ॥ ११ ॥ व्रणयुक्तानावृतांश्च षड्रुद्राक्षांस्तु वर्जयेत् ॥ स्वयमेव कृतद्वारो रुद्राक्षः स्यादिहोत्तमः ॥ १२ ॥ यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत् ॥ समान्स्निग्धान्दृढान्वृत्तान्क्षौमसूत्रेण धारयेत् ॥ १३ ॥ सर्वगात्रेषु साम्येन समानाऽतिविलक्षणा ॥ निघर्षे हेमलेखाभा यत्र लेखा प्रदृश्यते ॥ १४ ॥ तदक्षमुत्तमं विद्यात्स धार्यः शिवपूजकैः ॥ शिखायामेकरुद्राक्षं त्रिंशद्वै शिरसावहेत् ॥ १५ ॥ षट्त्रिंशच्च गले धार्याबाह्वोः षोडश षोडश ॥ मणिबंधे द्वादशाक्षान्स्कंधे पंचाशतं भवेत् ॥ १६ ॥ अष्टो त्तरशतैर्मालोपवीतं च प्रकल्पयेत् ॥ द्विसरं त्रिसरं वापि बिभृयात्कंठदेशतः ॥ १७ ॥ कुंडले मुकुटे चैव कर्णिकाहारकेषु च केयूरे कट के चैव कुक्षिवंशे तथैव च ॥ १८ ॥ सुप्ते पीते सर्वकालं रुद्राक्षं धारयेन्नरः ॥ त्रिशतं त्वधमं पंचशतं मध्यममुच्यते ॥ १९ ॥

टीपर रेखा पड़ जाय ॥ १४ ॥ वह उत्तम रुद्राक्ष शिव भक्तोंको सदा धारण करना चाहिये जो शिखामें एक और तीस रुद्राक्ष शिरपर धारण करता है ॥ १५ ॥ गलेमें बाहुओंमें सोलह सोलह पहुँचेमें बारह और स्कन्धदेशमें पचास धारण करता है ॥ १६ ॥ एकसौ आठकी मालासे यज्ञोपवीतकी कल्पना करे दो लड़ वा तीन लड़की माला कण्ठमें धारण करे ॥ १७ ॥ कुंडल, मुकुट, कर्णिका, हार, केयूर, कटक, कुक्षिवंशमें ॥ १८ ॥ सोते पान करते सब समयमें मनुष्य रुद्राक्ष धारण करे तीनसौ धारण अधम, पांचसौ धारण करना मध्यम है ॥ १९ ॥

भा टी. ए
अ० ७

सहस्र धारण करना उत्तम है इस प्रकारके भेदसे धारण करे शिरमें 'ईषान' मंत्रसे कानमें ' तत्पुरुषाय विद्महे ' इत्यादि मंत्रसे ॥ २० ॥ ललाटमें अघोर मंत्रसे इसी मन्त्रसे हृदयमें अघोर बीज मन्त्रसे हाथोंसे धारण करे ॥ २१ ॥ पचास रुद्राक्षकी माला 'वामदेव' मन्त्रसे उदरमें इस प्रकार पंच ब्रह्म मन्त्रोंसे अंगोंमें रुद्राक्ष धारण करे ॥ २२ ॥ मूलमन्त्रसे ग्रथित कर रुद्राक्षोंको धारण करे एकमुखी रुद्राक्ष परतत्वका प्रकाशक है ॥ २३ ॥ परतत्वकी धारणासे उसका प्रकाश होता है. हे मुनिश्रेष्ठ ! द्विमुखी अर्धनारीश्वर होता है जो उसे धारण करता है उससे अर्धनारीश्वर प्रसन्न हो जाते हैं ॥ २४ ॥ त्रिमुखी

सहस्रमुत्तमं प्रोक्तं चैव भेदेन धारयेत् ॥ शिरसीशानमंत्रेण कर्णे तत्पुरुषेण च ॥ २० ॥ अघोरेणललाटे तु तेनैव हृदयेऽपि च ॥ अघोर बीजमंत्रेण करे यो धारयेत्पुनः ॥ २१ ॥ पंचाशदक्षग्रथितां वामदेवन चोदरे ॥ पंचब्रह्मभिरंगैश्चाप्येवं रुद्राक्षधारणम् ॥ २२ ॥ ग्रथितान्मूलमंत्रेण सर्वानक्षांस्तु धारयेत् ॥ एकवक्त्रस्तु रुद्राक्षः परतत्त्वप्रकाकः ॥ २३ ॥ परतत्त्वधारणाच्च जायते तत्प्रकाशनम् ॥ द्विवक्त्रस्तु मुनिश्रेष्ठ अर्धनारीश्वरो भवेत् ॥ २४ ॥ धारणादर्धनारीशः प्रीयते तस्य नित्यशः ॥ त्रिवक्त्रस्त्वनलः साक्षात्स्त्रीहत्यां दहति क्षणात् ॥ २५ ॥ त्रिमुखश्चैव रुद्राक्षोऽप्यग्नित्रयस्वरूपकः ॥ तद्धारणाच्च हुतभुक्तस्य तुष्यति नित्यशः ॥ २६ ॥ चतुर्मुखस्तु रुद्राक्षः पितामहस्वरूकः ॥ तद्धारणान्महाश्रीमान्महदा रोग्यमुत्तमम् ॥ २७ ॥ महती ज्ञान संपत्तिः शुद्धये धारयेन्नरः ॥ पंचमुखस्तु रुद्राक्षः पंचब्रह्मस्वरूपकः ॥ २८ ॥ तस्य धारणमात्रेण संतुष्यति महेश्वरः ॥ षड्वक्त्रश्चैव रुद्राक्षः कार्त्तिकेयाधिदैवतः ॥ २९ ॥ विनायकं चापि देवं प्रवदंति मनीषिणः ॥ सप्तवत्रस्क्तु रुद्राक्षः सप्तमात्राधिदैवतः ॥ ३० ॥

अग्निरूप है साक्षात् स्त्रीहत्याको दूर करता है ॥ २५ ॥ त्रिमुखी रुद्राक्ष भी तीन अग्निके रूपवाला है उसके धारणसे अग्निकी तृप्ति होती है ॥ २६ ॥ चतुर्मुखी रुद्राक्ष पितामह स्वरूपवाला है उसके धारणसे श्री और उत्तम आरोग्यकी प्राप्ति होती है ॥ २७ ॥ इससे महाज्ञान, सम्पत्ति और शुद्धिके निमित्त मनुष्यको धारण करना चाहिये पंचमुखी रुद्राक्ष पंचब्रह्म स्वरूपवाला है ॥ २८ ॥ उसके ारणमात्रसे शिवजी सन्तुष्ट होते हैं षण्मुखीके कार्तिकेय देवता हैं ॥ २९ ॥ कोई बुद्धिमान् गणेश देवता कहते हैं इससे यह दोनों प्रसन्न होते हैं सातमुखी रुद्राक्षकी सात मातायें देवता हैं ॥ ३० ॥

१ यह मन्त्र हमारे टीका किये शिवपुराणमें देखो

तथा सूर्य और सातों मुनि भी देवता हैं इसके धारणसे महालक्ष्मी और महाआरोग्यकी प्राप्ति होती है ॥ ३१ ॥ पवित्र होकर धारण करनेसे बड़ी ज्ञानकी सम्पत्ति प्राप्त होती है अष्टमुखी रुद्राक्षकी आठ मातायें देवता हैं ॥ ३२ ॥ यह आठो वसु और गंगाकोभी प्रसन्न करनेवाला है इसके धारण करनेसे यह सत्यवादी देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ३३ ॥ नवमुखीके यमराज देवता हैं इसके धारणसे यमराजका भय नहीं होता है ॥ ३४ ॥ दशमुखी रुद्राक्षकी दशदिश देवता हैं इसके धारणसे दशों दिशाओंको प्रीति होती है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३५ ॥ एकादशमुखीके ग्यारह रुद्र देवता हैं, इन्द्र देवता भी कहाते हैं यह सदा प्रीतिका बढानेवाला है ॥ ३६ ॥ बारहमुखी रुद्राक्ष महाविष्णुके स्वरूपवाला है इसके बारह आदित्य देवता हैं इसके धारणसे उनकी प्रीति होती है

सप्ताश्वदैवतश्चैव मुनिसप्तकदैवतः ॥ तद्धारणान्महाश्रीः स्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ महती ज्ञानसंपत्तिः शुचिर्वै धारयेन्नरः ॥ अष्टवक्त्रस्तु रुद्राक्षोऽप्यष्टमात्राधिदैवतः ॥ ३२ ॥ वस्वष्टक प्रीतिकरो गंगाप्रीति करः शुभः ॥ तद्धारणादिमे प्रीता भवेयुः सत्यवादिनः ॥ ३३ ॥ नववक्त्रतु रुद्राक्षो यमदेव उदाहृतः ॥ तद्धारणाद्यमभयं न भवत्येव सर्वथा ॥ ३४ ॥ दश वक्त्रतु रुद्राक्षो दशाशा दैवतः स्मृतः ॥ दशाशाप्रीतिजनको धारणे नात्र संशयः ॥ ३५ ॥ एकादशमुखस्त्वक्षो रुद्रैकादश दैवतः ॥ तमिन्द्रदैवतं चाहुः सदा सौख्यविवर्धनम् ॥ ३६ ॥ रुद्राक्षो द्वादशमुखो महाविष्णुस्वरूपकः ॥ द्वादशादित्यदवश्च बिभर्त्येव हि तत्परः ॥ ३७ ॥ त्रयोदशमुखश्चाक्षः कामदः सिद्धिदः शुभः ॥ तस्य धारणमात्रेण कामदेवः प्रसीदति ॥ ३८ ॥ चतुर्दशमुखश्चाक्षो रुद्रनेत्रसमुद्भवः ॥ सर्वव्याधिहरश्चैव सर्वारोग्यप्रदायकः ॥ ३९ ॥ मद्यं मांसंच लशुनं पलांडुं शिग्रुमेव च ॥ श्लेष्मातकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः ॥ ४० ॥ ग्रहणे विषुवे चैव संक्रमे अयने तथा ॥ दश च पौर्णमासे च पुण्येषु दिवसेष्वपि ॥ ४१ ॥ रुद्राक्षधारणात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ ३७ ॥ तेरहमुखी रुद्राक्ष काम और सिद्धि देनेवाला है इसके धारणमात्रसे कामदेव प्रसन्न होता है ॥ ३८ ॥ चौदहमुखी रुद्रके नेत्रसे प्रगट हुआ है यह सब व्याधि हरनेवाला और सब आरोग्यको देनेवाला है ॥ ३९ ॥ मद्य, आमिष, लहसन, प्याज, शिग्रु (सहिंजना) श्लेष्मातक, (लहसोडा) विड्वराह इतनी वस्तुओंका रुद्राक्षधारी सेवन न करे ॥ ४० ॥ ग्रहण विषुव (मेषतुला) संक्रान्ति अयन समय अमावस पूर्णिमा पवित्र दिनोंमें ॥ ४१ ॥ रुद्राक्ष धारणसे शीघ्रही सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीनारायण बोले हे महामुने ! अब भूतिशुद्धिका प्रकार तुमसे कहते हैं पर देवता कुंडलीको मूलाधारसे उठाकर ॥ १ ॥ सुषुम्नामार्गमें आश्रित होकर ब्रह्मरंध्रतक गई है इस प्रकार विचार करे और साधक हंसमात्रसे जीवब्रह्मकी एकता संयुक्त करके ॥ २ ॥ चरणोंसे लेकर जानुपर्यन्त चतुष्कोण यंत्रका विचार करे उससे लंबीजसे युक्त सुवर्णके वर्णका अवनीमण्डल स्मरण करे ॥ ३ ॥ जानुसे आदि लेकर नाभि पर्यन्त अर्धचन्द्रके समान दो पद्मसे अंकितबीजसे युक्त श्वेत कांतिवाले सोममण्डलका स्मरण करे ॥ ४ ॥ नाभिसे लेकर हृदयपर्यन्त त्रिकोण स्वस्तिक आसन रंबीजसे युक्त रक्तवर्ण पावक मंडलका स्मरण करे ॥ ५ ॥ हृदयसे लेकर भ्रूमध्य पर्यंत गोल छः बिन्दुसे लक्षित यंबीजसे युक्त धूम्रवर्ण वायुमंडलका स्मरण करै ॥ ६ ॥ भ्रूमध्यसे ब्रह्मरंध्रपर्यंत गोलाकार स्वच्छ परममनोहर हंबीजयुक्त आकाशमंडलका विचार करै ॥ ७ ॥ इस प्रकार भूतोंकी चिन्ताकर प्रत्येकको अपनेमें लयकरे भूको जलमें जलको अग्निमें अग्निको वायुमे वायुको आकाशमें ॥ ८ ॥ विलीन करके आकाशको अहंकारमें अहंकारको महत्तत्त्वमें महानको प्रकृतिमें मायाको आत्मामें लय करै ॥ ९ ॥ शुद्धसंवित होकर अपने शरीरमें पापपुरुषका चिन्तन करे जो बाई ओर स्थित कृष्णवर्ण अंगुष्ठपरिणामवाला है ॥ १० ॥ ब्रह्महत्यारूप शिरसे युक्त कनककी चोरीरूप बाहुसे युक्त मदिरापानरूपी हृदय गुरुतल्परूपी कटिसे युक्त ॥ ११ ॥

श्रीनारायण उवाच ॥ भूतशुद्धिप्रकारं च कथयामि महामुने ॥ मूलाधारात्समुत्थाय कुंडलीं परदेवताम् ॥ १ ॥ सुषुम्नामार्गमाश्रित्य ब्रह्मरंध्रगतां स्मरेत् ॥ जीवं ब्रह्मणि संयोज्य हंसमन्त्रेण साधकः ॥ २ ॥ पादादिजानुपर्यंतं चतुष्कोणं सवज्रकम् ॥ लंबीजाढ्यं स्वर्णवर्णं स्मरेदवनिमंडलम् ॥ ३ ॥ जान्वाद्यानाभि चंद्रार्धनिभं पद्मद्वयांकितम् ॥ वंबीजयुक्तं श्वेताभमंभसो मंडलं स्मरेत् ॥ ४ ॥ नाभेर्हृदयपर्यन्तं त्रिकोणं स्वस्तिकान्वितम् ॥ रंबीजेन युतं रक्तं स्मरेत्पावकमंडलम् ॥ ५ ॥ हृदो भ्रूमध्य पर्यंतं वृत्तं षड्बिंदुलांछितम् ॥ यं बीजयुक्तं धूम्राभं नभस्वन्मंडले स्मरेत् ॥ ६ ॥ आब्रह्मरंध्र भ्रूमध्याद् वृत्तं स्वच्छं मनोहरम् ॥ हंबीजयुक्तमाकाशमण्डलं च विचिंतयेत् ॥ ७ ॥ एवंभूतानि संचिंत्य प्रत्येकं संविलापयेत् ॥ भुवं जले जलं वह्नौ वह्निं वायौ नभस्यमुम् ॥ ८ ॥ विलाप्य खमहंकारे महत्तत्त्वेऽप्यहंकृतिम् ॥ महांतं प्रकृतौ मायामा त्मनि प्रविलापयेत् ॥ ९ ॥ शुद्धसंविन्मयो भूत्वा चिंतयेत्पापपूरुषम् ॥ वामकुक्षिस्थितं कृष्णमंगुष्ठपरिमाणकम् ॥ १० ॥ ब्रह्महत्या शिरोयुक्तं कनकस्तेयबाहुकम् ॥ मदिरापानहृदयगुरुतल्पकटीयुतम् ॥ ११ ॥

दे. भा.
॥१६॥

उसके संसर्गरूपी दोनों चरण उपपातकरूप मस्तकसे संयुक्त खड्गचर्म धारण करने वाले दुष्ट, अधोमुखसे दुःसह ॥ १२ ॥ इस प्रकार चिन्ताकर वायुबीजको स्मरण कर उस बीजसे उठी हुई वायुद्वारा पूरक प्राणायामसे देहको पूर्णकर पाप पुरुषको शुष्ककरै पश्चात् अपने शरीरमें स्थित पापपुरुषको रंबीजसे अग्नि प्रगट कर भस्म करै ॥ १३ ॥ कुंभकद्वारा वह्नि बीजके जपके उपरान्त वायुबीजको उच्चारणकर पापपुरुषकी भस्मको अपने शरीरसे बाहर फेंक दे यह क्रिया रेचक प्राणायामसे करै ॥ १४ ॥ अनन्तर स्वशरीरोद्भव भस्मको अमृत बीज ' वम् ' बीजका उच्चारण करके उससे उठे अमृतसे उसे संप्लावित करै जिससे पिण्डहो पीछे भूबीज 'लम्' मंत्रसे उसभस्मको घनीभूत करे और उसको कनक अंडवत् भावना करे ॥ ॥ १५ ॥ फिर आकाशका हंबीज जपकर

तत्संसर्गिपदद्वंद्वमुपपातकमस्तकम् ॥ खड्गचर्मधरं कृष्णमधोवक्त्रं सुदुःसहम् ॥ १२ ॥ वायुबीजं स्मरन्वायुं संपूर्यैनं विशोषयेत ॥ स्वशरीरयुतं मंत्री वह्निबीजेन निर्दहेत् ॥ १३ ॥ कुंभके परिजप्तेन ततः पापनरोद्भवम् ॥ बहिर्भस्म समुत्सार्य वायुबीजेन रेचयेत् ॥ १४ ॥ सुधाबीजेन देहोत्थं भस्म संप्लावयेत्सुधीः ॥ भूबीजेन घनीकृत्य भस्म तत्कनकांडवत्त ॥ १५ ॥ विशुद्धमुकुराकारं जपबीजं विहायसः ॥ मूर्धादिपादपर्यंतान्यंगानि रचयेत्सुधिः ॥ १६ ॥ आकाशादीनि भूतानि पुनरुत्पादयेच्चितः ॥ सोऽहं मन्त्रेण चात्मानमाये द्धृदयांबुजे ॥ १७ ॥ कुण्डली जीवमादाय परसंगात्सुधामयम् ॥ संस्थाप्य हृदयां भोजे मूलाधारगतां स्मरेत् ॥ १८ ॥ रक्तांभोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः शूलं कोदंडमिक्षूद्भवमणिगुणमप्यं कुशं पञ्चबाणान् ॥ बिभ्राणासृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या देवी बालार्कवर्णा भवतु सुख करी प्राणशक्तिः परा नः ॥ १९ ॥

उसपिंडकी मुकुराकार भावना करे फिर उस पिण्डके मूर्धासे नखपर्यंत अवयव मनसेही रचना करै ॥ १६ ॥ फिर जिस क्रमसे ब्रह्ममें पंचभूतोंका संहार किया है इसी क्रमसे फिर ब्रह्मसे पंचभूतोंको प्रगट करे,फिर 'सोहम्'मंत्रसे ब्रह्ममें एकीभूत हुए जीवको हृदय कमलमें लावे ॥ १७ ॥ पहले जैसे कुंडलीमें जीव ब्रह्मसे संयुक्त हुआ था वही कुंडली उस परमात्माके सङ्गसे सुधामय जीवनकों हृदय कमलमें स्थापन कर मूलाधारमें प्राप्त स्मरण करे यही जीवनका प्रकार है इसके उपरांत प्राणप्रतिष्ठा करे ॥ १८ ॥ शोणसागरमें स्थित नौका है उसमें स्थित एक रक्तकमल है उसमें आरूढ करकमलोंमें शूलकोदण्ड अर्थात् इक्षुका धनुष्य, पास अंकुश, पांच बाण, रक्तपूर्ण कपाल धारण किये षड्हस्ता,तीन नेत्रसे शोभित, पीनवक्षस्थल बालसूर्यके समान वर्णवाली देवी पराप्राणशक्ति

हमको सुखकारी हो ॥ १९ ॥ इस प्रकार परमात्मस्वरूपिणी प्राणशक्तिको ध्यान करके प्राणको स्थापनकर सब सिद्धिके निमित्त विभूति धारण करना चाहिये ॥ २० ॥ विभूतिके धारणका महाफज विस्तारसे कहता हूं कि श्रुतिस्मृतिके पुराणसे युक्त भस्मधारण करना परमउत्तम है ॥ २१ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीनारायण बोले जिन ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक यह शिरोव्रत किया है उन्हींसे अज्ञानबाधक इस परा विद्याको प्रकाश करना चाहिये ॥ १ ॥ और जिन्होंने विधिपूर्वक शिरोव्रत नहीं किया है उनको श्रुतिस्मृतिका आचरण उपकारी नहीं होता ॥ २ ॥ शिरोव्रतके आचारवाले ब्राह्मादि देवता हैं इससे ब्रह्माने ब्रह्मत्व पाया है औरसे नहीं ॥ ३ ॥ शिरोव्रतका माहात्म्य पूर्वसे पूर्वतरोंने भी किया है.सब ब्रह्मा

एवं ध्यात्वा प्राणशक्तिं परमात्मस्वरूपिणीम् ॥ विभूतिधारणं कार्यं सर्वाधिकृतिसिद्धये ॥ २० ॥ विभूतेर्विस्तरं वक्ष्ये धारणे च महाफलम् ॥ श्रुतिस्मृतिप्रमाणोक्तं भस्मधारणमुत्तमम् ॥ २१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ इदं शिरोव्रतं चीर्णं विधिवद्यैर्द्विजातिभिः ॥ तेषामेव परां विद्यां वदेदज्ञानबाधिकाम् ॥ १ ॥ विधिवच्छ्रद्धयासार्धं न चीर्णं यैः शिरोव्रतम् ॥ श्रौतस्मार्तसमाचारस्तेषामनुपकारकः ॥ २ ॥ शिरोव्रतसमाचारा देवब्रह्मादिदेवताः ॥ देवता अभवन्विद्धन् खलु नान्येन हेतुना ॥ ३ ॥ शिरोव्रतस्य माहात्म्यं पूर्वैं पूर्वतरं कृतम् ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवताः सकला अपि ॥ ४॥ सर्वपातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः ॥ शिरोव्रतमिदं येन चरितं विधिवद् बुध ॥५॥ शिरोव्रतमिदं नाम शिरस्याथर्वणश्रुतेः ॥ यदुक्तं तद्धिनैवान्यत्तत्तु पुण्येन लभ्यते ॥ ६ ॥ शाखाभेदेषु नामानि व्रतस्यास्या विभेदतः ॥ पठ्यंते मुनिशार्दूलशाखास्वेकव्रतं हि तत् ॥ ७॥ सर्वशाखासु वस्त्वेकं शिवाख्यं सत्यचिद्घनम् ॥ तथा तद्विषयं ज्ञानं तथैव च शिरोव्रतम् ॥ ८ ॥

विष्णु रुद्रदेवता शिरोव्रत करते हैं ॥ ४ ॥ सब पातकोंसे युक्त हुआ भी, इसके अनुष्ठानसे सब पातकोंसे छूट जाता है. हे ब्राह्मणो ! जिन्होंने शिरोव्रतका आचरण किया है वह मंगलको प्राप्त हुए हैं ॥ ५ ॥ अथर्वशिर उपनिषदमें यह शिरोव्रत कथन किया परन्तु यह पुण्यके द्वारा प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ हे मुनि राज ! शाखाभेदसे इस एकही व्रतके अनेकनाम पड़ेजाते हैं कोई पशुपत और कोई उसे शिवव्रत कहते हैं ॥ ७ ॥ सब शाखाओंमें यह एकही शिवनामव्रत सत् चित् घन है तथा उसको विषयका ज्ञान इसीप्रकार शिरोव्रत है ॥ ८ ॥

शिरोव्रतसे विहीन पुरुष सब धर्मोंसे रहित होता है सब विद्याओंमें अधिकारी हो वो भी धर्मवर्जित ही जानना यदि यह व्रत न किया हो ॥ ९ ॥ यह शिरो व्रत पापरूपी वनका दहन करनेवाला है सब विद्याओंका साधक है इस कारण इसको भलीभांतिसे आचरण करना चाहिये ॥ १० ॥ अथर्वणकी श्रुति सूक्ष्म अर्थका प्रकाशन करनेवाली है उसने प्रीतिसे जो कहा है उसको भलीप्रकार आचरण करना चाहिये ॥ ११ ॥ अग्नि इत्यादि छःमंत्र अर्थात् अग्निरितिभस्म, जलमितिभस्म, स्थलमितिभस्म, वायुरितिभस्म, व्योमेतिभस्म सर्वं हवाइदं भस्म' इन अथर्वणमें कहे छः मंत्रोंद्वारा भस्मको सब अंगमें लगावै इसका नाम शिरो व्रत है ॥ १२ ॥ सन्ध्यासमय आदरसे यहशिरोव्रत करे जबतक ब्रह्मविद्याका उदय हो तबतक उसकी विद्या उत्तम है ॥ १३ ॥ बारह वर्ष एकवर्ष, छःमहीने

शिरोव्रतविहीनस्तु सर्वधर्मविवर्जितः ॥ अपि सर्वासु विद्यासु सोऽधिकारी न संशयः ॥ ९ ॥ शिरोव्रतमिदं कार्यं पापकांतारदाहकम् ॥ साधनं सर्वविद्यानां यतस्तत्सम्यगाचरेत् ॥ १० ॥ श्रुतिराथर्वणी सूक्ष्मा सूक्ष्मार्थस्य प्रकाशिनी ॥ यदुवाच व्रतं प्रीत्या तन्नित्यं सम्यगाचरेत् ॥ ११ ॥ अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैः षड्भिः शुद्धेन भस्मना ॥ सर्वांगोद्धूलनं कुर्याच्छिरोव्रतसमाह्वयम् ॥ १२ ॥ एततच्छिरो व्रतं कुर्यात्संध्याकालेषु सादरम् ॥ यावद्विद्योदयस्तावत्तस्य विद्या खलूत्तमा ॥ १३ ॥ द्वादशाब्दमथाब्दं वा तदर्धं च तदर्धकम् ॥ प्रकुर्याद् द्वादशाहं वा संल्कपेन शिरोव्रतम् ॥ १४ ॥ शिरोव्रतेन यः स्नातस्तं तु नोपदिशेत्तु यः ॥ तस्य विद्या विनष्टा स्यान्निघृणः स गुरुः खलु ॥ १५ ॥ ब्रह्मविद्यागुरुः साक्षान्मुनिः कारुणिकः खलु ॥ यथा सर्वेश्वरः श्रीमान्मृदुः कारुणिकः खलु ॥ १६ ॥ जन्मांत रसहस्रेषु नरा ये धर्मचारिणः ॥ तेषामेव खलु श्रद्धा जायते न कदाचन ॥ १७ ॥ प्रत्युताज्ञानबाहुल्याद् द्वेष एव विजायते ॥ अतः प्रद्वेषयुक्तस्य न भवेदात्मवेदनम् ॥ १८ ॥

तीन महीने अथवा बारह दिन संकल्प करके शिरोव्रत करना चाहिये ॥ १४ ॥ जो शिरोव्रतसे स्नात है उसको जो गुरु उपदेश नहीं करता उसकी विद्या नष्ट होती है और वह गुरु कठोर है ॥ १५ ॥ ब्रह्मविद्याका देनेवाला ही साक्षात् परम कारुणिक गुरु है जैसे सर्वेश्वर श्रीमान परम कारुणिक नारायण हैं. इसी प्रकार सत् उपदेष्टा गुरु हैं ॥ १६ ॥ जिन मनुष्योंने सहस्रों जन्मांतरोंमें धर्माचरण किया है उनकी ही इसमें श्रद्धा होती है अन्योंकी नहीं ॥ १७ ॥ अज्ञा नकी बहुतापनसे इसमें द्वेष ही होता है इस कारण द्वेष युक्तको आत्मज्ञान नहीं हो सकता ॥ १८ ॥

हे ब्रह्मन्! इस ब्रह्मविद्या उपदेशके वे ही अधिकारी हैं जो शिरोव्रतमें स्नान कर चुके हैं ॥ १९ ॥ जिन ब्राह्मणोंने आदरसे पाशुपतव्रत किया है उन्हींको उपदेश करना चाहिये. यह वेदका अनुशासन है ॥ २० ॥ जो पशु हैं वह पुरुष इस व्रतसे पशुत्व त्यागन करे उन पशुओंको मारकर वह ज्ञानी पापी नहीं होता यह वेदांतका निश्चय है ॥ २१ ॥ जाबालि श्रुतिमें आदरपूर्वक त्रिपुंड्र धारण करना कहा है त्र्यम्बकमंत्र और तारक मंत्रसे लगावै ॥ २२ ॥ गृहस्थाश्रममें स्थित हुआ नित्य त्रिपुंड्र धारण करे तीनवार ॐकार अथवा हंस इस मंत्रसे धारण करे ॥ २३ ॥ भिक्षुक भी नित्य धारण करे यह जाबालकी श्रुति है त्र्यम्बकमंत्र, ओंकारमंत्र नमःशिवाय मंत्र चाहे ॥ २४ ॥ गृहस्थ और वनवासीको त्रिपुंड्र धारण करना उचित है मेधावी इत्यादि मंत्रसे दिन २ब्रह्मचारी

ब्रह्मविद्योपदेशस्य साक्षादेवाधिकारिणः ॥ त एव नेतरे विद्वन्ये तु स्नाता शिरोव्रतैः ॥ १९ ॥ व्रतं पाशुपतं चीर्णं यैर्द्विजैरादरेण तु ॥ तेषामेवोपदेष्टव्यमिति वेदानुशासनम् ॥ २० ॥ यः पशुस्तत्पशुत्वं च व्रतेनानेन संत्यजेत् ॥ तान्हत्वा न स पापीयान्भवेद्वेदांतनिश्चयः ॥ २१ ॥ त्रिपुंड्रधारणं प्रोक्तं जाबालैरादरेण तु ॥ त्रियंबकेन मन्त्रेण सतारेण शिवेन च ॥ २२ ॥ विपुंड्रं धारयेन्नित्यं गृहस्थाश्रममाश्रितः ॥ ओंकारेण त्रिरुक्तेन सहंसेन त्रिपुंड्रकम् ॥ २३ ॥ धारयेद्भिक्षुको नित्यमिति जाबालिकी श्रुतिः ॥ त्रियंबकेन मन्त्रेण प्राणवेन च शिवेन च ॥ २४ ॥ गृहस्थश्च वानप्रस्थो धारयेच्च त्रिपुंड्रकम् ॥ मेधावीत्यादिना वाऽपि ब्रह्मचारी दिने दिने ॥ २५ ॥ भस्मना सजलेनाऽपि धारयेच्च त्रिपुंड्रकम् ॥ ब्राह्मणो विधिनोत्पन्नस्त्रिपुंड्रभस्मनैव तु ॥ २६ ॥ ललाटे धारयेन्नित्यं तिर्यग्भस्मावगुंठनम् ॥ "महादेवस्य सम्बंधात्तद्धर्मेऽप्यस्ति संगतिः ॥" सम्यक् त्रिपुंड्रधर्मं च ब्राह्मणो नित्यमाचरेत् ॥ २७ ॥ आदिब्राह्मणभूतेन त्रिपुंड्र भस्मना धृतम् ॥ यतोऽत एव विप्रस्तु त्रिपुंड्रं धारयेत्सदा ॥ २८ ॥ भस्मना वेदसिद्धेन त्रिपुंड्रदेहगुण्ठनम् ॥ रुद्रलिंगार्चनं वाऽपि मोहतोऽपि च न त्यजेत् ॥ २९ ॥ त्रियंबकेन मन्त्रेण सतारेण तथैव च ॥ पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण प्रणवेन तथैव च ॥ ३० ॥

धारण करे ॥ २५ ॥ भस्म तथा जलसे त्रिपुंड्र धारण करे, ब्राह्मण विधिपूर्वक भस्मद्वारा त्रिपुंड्र धारण करे ॥ २६ ॥ ललाटमें तिरछी भस्म धारण करे [महादेवके सम्बंधसे इस धर्ममें संगति होती है] त्रिपुंड्रधर्मको नित्यही ब्राह्मणको धारण करना चाहिये ॥ २७ ॥ आदि ब्राह्मण ब्रह्माजीने त्रिपुंड्र धारण किया है इस प्रकार ब्राह्मण सदा त्रिपुंड्र धारण करे ॥ २८ ॥ वेदसिद्ध भस्मसे देहमें भस्म लगाकर त्रिपुंड्र चढाना चाहिये और मोहसे भी कभी शिवलिंगका अर्चन न त्यागे ॥ २९ ॥ त्र्यम्बकमंत्र तारक मंत्र पंचाक्षर वा प्रणवमंत्रसे ॥ ३० ॥

हे महामुने ! ललाट हृदय भुजाओंमें सन्यासाश्रममें भी स्थित हुआ नित्य त्रिपुंड्र धारण करे ॥ ३१ ॥ त्र्यायुषंजमदग्ने० मेधावीत्यादि० मंत्रसे गौणभस्म (अग्नि होत्रकी जो न हो) का त्रिपुंड्र भी ब्रह्मचारी धारण कर सकता है ॥ ३२ ॥ 'शिवायनमः' इस मंत्रसे सेवामें तत्पर शूद्र भी शरीरमें भस्म और मस्तकपर नित्य भक्तिसे त्रिपुंड्र लगावे ॥ ३३ ॥ हे सुव्रत और सबोंको विना मंत्रके ही शरीरमें भस्म और त्रिपुंड्र धारण करना चाहिये ॥ ३४ ॥ ऐश्वर्यके निमित्त शरीरमें भस्म लगाना त्रिपुंड्रका धारण करना धर्मोंसे श्रेष्ठ है इस कारण नित्य इसको भक्तिसे आचरण करे ॥ ३५ ॥ अग्नि होत्रकी भस्म वा विरजा होमकी भस्म आदरसे लेकर शुद्ध पात्रमें रख छोडे ॥ ३६ ॥ हाथ पैर धोये दो बार आचमन कर भस्म लेकर शनैः शनैः वह सद्योजातादि

ललाटे हृदये चैव दोर्द्वंद्वे च महामुने ॥ त्रिपुंड्रं धारयेन्नित्यं संन्यासाश्रमाश्रितः ॥३१॥ त्रियायुषेण मन्त्रेण न मेधावीत्यादिनाऽथवा ॥ गौणेन भस्मना धार्यं त्रिपुंड्रं ब्रह्मचारिणा ॥ ३२ ॥ नमों तेन शिवेनैव शूद्रः शुश्रूषणे रतः ॥ उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च नित्यं भक्त्या समाचरेत् ॥ ३३ ॥ अन्येषामपि सर्वेषां विना मन्त्रेण सुव्रत ॥ उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च कर्तव्यं भक्तितो मुने ॥ ३४ ॥ भूत्यैवोद्धूलनं तिर्यक् त्रिपुंड्रस्य च धारणम् ॥ वरेण्यं सर्वधर्मेभ्यस्तत्त्वान्नित्यं समाचरेत् ॥ ३५ ॥ भस्माग्निहोत्रजं वाऽथ विरजाग्निसमुद्भवम् ॥ आदरेण समादाय शुद्धे पात्रे निधाय तत् ॥ ३६ ॥ प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च द्विराचम्य समाहितः ॥ गृहीत्वा भस्म तत्पंचब्रह्ममन्त्रैः शनै शनैः ॥ ३७ ॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा अग्निरित्यादि मन्त्रितम् ॥ तैरेव सप्तभिर्मंत्रैस्त्रिवारमभिमंत्रयेत् ॥ ३८ ॥ ओमापोज्योतिरित्युक्त्वा ध्यात्वा मन्त्रनुदीरयेत् ॥ सितेन भस्मना पूर्वं समुद्धूल्य शरीरकम् ॥ ३९ ॥ विपापो विरजो मर्त्यो जायते नात्र संशयः ॥ ततो ध्यात्वा महाविष्णुं जगन्नाथ जलाधिपम् ॥ ४० ॥ संयोज्य भस्मना तोयमग्निरित्यादिभिः पुनः ॥ विमृज्य सांबं ध्यात्वा च समुद्धूल्योर्ध्वमस्तकम् ॥ ४१ ॥

पंचब्रह्म मंत्रों [सद्योजातादि] से ग्रहण कर ॥ ३७ ॥ तीन प्राणायाम करके अग्निरिति भस्म जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, वायुरिति भस्म व्योमेति भस्म, सर्वंहवा भस्म इन सात मंत्रोंसे तीन बार अभिमंत्रण करे ॥ ३८ ॥ ओम् आपोज्योतीरसोमृतम् यह कहकर मंत्रोंको उच्चारण कर पहले श्वेत भस्मसें शरीरको उद्धूलन करे ॥ ३९ ॥ इससे मनुष्य पापरहित होते हैं इसमें संदेह नहीं फिर जगन्नाथ जलाधिप महाविष्णुको ध्यान कर ॥ ४० ॥ भस्मसे जल मिलाय अग्निरित्यादि मंत्रोंसे वारम्वार मिलाकर शिवका ध्यान करते ऊर्ध्व मस्तकमें उद्धूलन करे ॥ ४१ ॥

इस भावनासे ब्रह्मभूत सितभस्म द्वारा अपने आश्रमके उचित मंत्रोंसे ललाट छाती स्कन्धोंमें ॥ ४२ ॥ मध्यमा अनामिका ॥ अंगुष्ठ इनसे सव्य अपसव्य द्वारा अर्थात् दो अंगुली बाई ओरसे आरम्भकर दक्षिण भागपर्यंत दो रेखा करे और अँगूठेसे दक्षिण भागसे आरम्भकर वाम भागपर्यंत एक रेखा करे इस प्रकार भक्तिसे तीनों कालमें त्रिपुंड्र धारण करे ॥ ४३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ नारायण बोले अग्निकी गौणभस्म भी अज्ञाननाशक और ज्ञान साशक है हे ब्रह्मन् ! हे ब्रह्मविदांवर ! तुम गौणभस्मको भी अनेक प्रकारकी जानो ॥ १ ॥ हे मुने ! और जैसी अग्निहोत्रकी भस्म है वैसे ही विरजा होमकी [संन्यासके] समय विरजाहोमका विशेष प्रचार है उपासन अग्निसे उत्पन्न स्मार्त विवाहाग्निसे प्रगट समिधाकी

ते च भावनया ब्रह्मभूतेन सितभ स्मना ॥ ललाटवक्षःस्कन्धेषु स्वाश्रमोचितमंत्रतः ॥ ४२ ॥ मध्यमानामिकांगुष्ठैरनुलोमविलोमतः ॥ त्रिपुंड्रं धारयेन्नित्यं त्रिकालेश्वपि भक्तितः ॥ ४३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ आग्नेयं गौणमज्ञानध्वंसकं ज्ञानसाधकम् ॥ गौणं नानाविधं विद्धि ब्रह्मन्ब्रह्मविदांवर ॥ १ ॥ अग्निहोत्राग्निजं तद्वद्विरजानलजं मुने ॥ औपासनसमुत्पन्नं समीदग्निसमुद्भवम् ॥ २ ॥ पचनाग्निसमुत्पन्नं दावानलसमुद्भवम् ॥ त्रैवर्णिकानां सर्वेषामग्निहोत्रसमुद्भवम् ॥३॥ विरजानलजं चैव धार्यं भस्म महामुने ॥ औपासनसमुत्पन्नं गृहस्थानां विशेषतः ॥ ४ ॥ समिदग्निसमुत्पन्नं धार्यं वै ब्रह्मचारिणा ॥ शूद्राणां श्रोत्रियागारपचनाग्निसमुद्भवम् ॥ ५ ॥ अन्येषामपि सर्वेषां धार्यं दावानलोद्भवम् ॥ कालश्चित्रा पौर्णमासी देशः स्वीयः परिग्रहः ॥ ६ ॥ क्षेत्रारामाद्यरण्यं वा प्रशस्तः शुभलक्षणः॥ तत्र पूर्वत्रयोदश्यां सुस्नातः सुकृताग्निकः ॥७॥ अनुज्ञाप्य स्वमाचार्यं संपूज्य प्रणिपत्य च ॥ पूजां वैशेषिकीं कृत्वा शुक्लांबरधरः स्वयम् ॥ ८ ॥

अग्निसे उत्पन्न ॥ २ ॥ पंचाग्निसे दावानलसे तथा अग्नि होत्रसे उत्पन्न हुई तीनो वर्णों और सबको हितकारी है ॥ ३ ॥ हे महामुने ! विरजा भस्म तीनों वर्णोंको धारण करनी चाहिये, स्मार्ताग्नि गृहस्थोंको धारण करनी चाहिये ॥ ४ ॥ समिधाग्नि ब्रह्मचारियोंको, शूद्रोंको श्रोत्रियके स्थानकी पचनाग्नि भस्म धारण करनी चाहिये ॥ ५ ॥ और सबको दावानलके अग्निकी भस्म धारण करनी चाहिये विरजानलकी उत्पत्तिका समय कहते हैं चित्रायुक्त पूर्णमासी पुण्यकाल है जहां स्वयं स्थितहो वही पुण्यदेशहै ॥ ६ ॥ क्षेत्र बगीचा वन शुभलक्षणवाला उत्तम है सो पहले त्रयोदशीके दिन स्नानकर आह्निक क्रियाकर ॥ ७ ॥ अपने आचार्यसे अनुज्ञालेकर पूजापूर्वक प्रणामकर तथा विशेष पूजाकर स्वयं शुक्लवस्त्र धारण कर ॥ ८ ॥

शुद्ध यज्ञोपवीत और श्वेतमालाको पहर श्वेत अनुलेपन लगाय कुशासनपर बैठ एकमुष्टि कुश ग्रहण कर ॥ ९ ॥ तीन प्राणायामकर पूर्व वा उत्तरको मुखकर
देवी और देवका ध्यान कर उसकी आज्ञा मनसे ग्रहण करके ॥ १० ॥ मैं यह व्रत करता हूं इस प्रकार संकल्पकर दीक्षित हो जबतक शरीरपात हो अथवा
बारह वर्षतक ॥ ११ ॥ वा छः वा तीन वा एक वर्षतक छः महीने तीन महीने वा एक महीने ॥ १२ ॥ बारहदिन छः दिन तीन दिन वा एक दिन व्रतकी
संकल्पना विधिके अनुसार ॥ १३ ॥ अपने गृह्यसूत्रके अनुसार अग्निका आधान करके विरजाहोमके निमित्त अग्निमें हवन करे घृत, समिधा और यथाविधि

शुद्धयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥ दर्भासने समासीनो दर्भमुष्टिं प्रगृह्य च ॥ ९ ॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्मुखो वाप्यु
दङ्मुखः ॥ ध्यात्वा देवं च देवीं च तद्विज्ञापनवर्त्मना ॥ १० ॥ व्रतमेतत्करोमीति भवेत्संकल्पदीक्षितः ॥ यावच्छरीरपातं वा
द्वादशाब्दमथाऽपि वा ॥ ११ ॥ तदर्धं वा तदर्धं वा मासद्वादशकं तु वा ॥ तदर्धं वा तदर्धं वा मासमेकमथापि वा ॥ १२ ॥ दिनद्वा
दशकं वाऽपि दिनषट्कमथापि वा ॥ तदर्धं दिनमेकं वा व्रतसंकल्पनावधि ॥ १३ ॥ अग्निमाधाय विधिवद्विरजाहोमकारणात् ॥ हुत्वाऽऽ
ज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथाविधि ॥ १४ ॥ पूताहात्पुरतो भूयस्तत्त्वानां शुद्धि मुद्दिशन् ॥ जुहुयान्मूलमंत्रेण तैरेव समिदादिभिः
॥ १५ ॥ तत्त्वान्येतानि मे देहे शुध्यंतामित्यनुस्मरन् ॥ पश्चाद्भूतादितन्मात्राः पंचकर्मेन्द्रियाणि च ॥ १६ ॥ ज्ञानकर्मविभेदेन पंच
पंच विभागशः ॥ त्वगादिधा तवः सप्त पञ्च प्राणादिवायवः ॥ १७ ॥ मनोबुद्धि रहंकारो गुणाः प्रकृतिपूरुषौ ॥ रागो विद्या कला चैव
नियतिः काल एव च ॥ १८ ॥ माया च शुद्धविद्या च महेश्वरसदाशिवौ ॥ शक्तिश्च शिवतत्त्व च तत्त्वानि क्रमशोः विदुः ॥ १९ ॥

चरुको त्यागे ॥ १४ ॥ ॥ पूर्णमासीसे प्रथम तत्वकी शुद्धि होती है इस उद्देश्यसे यह हवन करना चाहिये मूलमंत्रसे उन्ही समिधाओंद्वारा हवन करना चाहिये
॥१५॥ और यह स्मरण करे कि यह मेरे देहके तत्व शुद्धहों पीछे पांच महाभूत उन पांचोंकी तन्मात्रा पंचकर्मेन्द्रिय ॥ १६ ॥ यह ज्ञान और कर्मके भेदसे
पांच, पांच, तथा त्वचाआदि सातधातु और प्राणादि पांचवायु ॥ १७ ॥ मन, बुद्धि, अहंकार उनके सत्वादि गुण प्रकृति और पुरुष, राग, विद्या, कला, नियति,
काल ॥ १८ ॥ माया, शुद्धविद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिवतत्व, यह क्रमसे तत्त्व हैं ॥ १९ ॥

१ पृथ्वीतत्वमें शुध्यतां ज्योतिहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा यह क्रमसे जाने इस प्रकार एक २ तत्त्वका नाम उच्चारण कर हवन करे

विरजाहोमके मंत्रोंसे हवन करनेसे होता पापरहित होता है, गौका गोबर लाय उसका पिण्ड बनाय पंचाक्षरमंत्रसे उसको अभिमंत्रण कर ॥२०॥ उसको अग्निमें रखकर रक्षा करे और उस दिन हविष्यान्न खाय फिर प्रभातकाल चतुर्दशीको पूर्वोक्तरीतिसे पंचाक्षर द्वारा हवन करके ॥२१॥ उसदिन निराहार रहकर शेष समय व्यतीत करे फिर पूर्णिमाको नित्यकर्म समाप्त करके फिर पंचाक्षर मंत्रसे हवन करके ॥ २२ ॥ रुद्राग्निको विसर्जनकर यत्नसे भस्म लेकर फिर जटावान् वा मुंड शिखा वा एक जटावाला होकर ॥ २३ ॥ स्नानकरे यदि लोकलाज न रही हो तो दिगम्बर होजाय यदि सलज्ज हो तो काषाय वस्त्र चर्म चीरके वस्त्र धारण किया रहे ॥ २४ ॥ एक वस्त्र वा वल्कलधारी दण्ड और मेखला धारण किये रहे, पश्चात अपने दोनों चरणोंको प्रक्षालनकर फिर दोबारा आचमन

मंत्रैस्तु विरजैर्हुत्वा होताऽसौ विरजो भवेत् ॥ अथ गोमयमादाय पिंडीकृत्याभिमंत्र्य च ॥ २० ॥ न्यस्याग्नौ तं च संरक्ष्य दिने तस्मिन्हविष्यभुक् ॥ प्रभाते च चतुर्दश्यां कृत्वा सर्वं पुरोदितम् ॥ २१ ॥ तस्मिन्दिने निराहारः कालशेषं समापयेत् ॥ प्रातः पर्वणि चाप्येवं कृत्वा होमावसानतः ॥ २२ ॥ उपसंहृत्य रुद्राग्निं गृहीत्वा भस्म यत्नतः ततश्च जटिलो मुंडः शिखैकजट एव च ॥ २३ ॥ भूत्वा स्नात्वा पुनर्वीतलज्जश्चेत्स्याद्दिगम्बरः ॥ अन्यः काषायवसनश्चर्मचीरांबरोऽथवा ॥ २४ ॥ एकांबरो वल्कलवान्भवेद्दंडी च मेखली ॥ प्रक्षाल्य चरणौ पश्चाद् द्विराचम्याऽऽत्मनस्तनुम् ॥ २५ ॥ संकलीकृत्य तद्भस्म विरजानलसंभवम् ॥ अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः षड्भिराथर्वणैः क्रमात ॥ २६ ॥ विमृज्यांगानि मूर्धादि चरणांत च तैः स्पृशेत् ॥ ततस्तेन क्रमेणैव समुद्धूल्य च भस्मना ॥ २७ ॥ सर्वांगोद्धूलनं कुर्यात्प्रणवेन शिवेन वा ॥ ततश्च पुंड्रं रचयेत्त्रियायुषसमाह्वयम् ॥ २८ ॥ शिवभावं समागम्य शिवभावमथाचरेत् ॥ कुर्यात्त्रिसंध्यमप्येवमेतत्पाशुपतं व्रतम् ॥ २९ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव पशुत्वं विनिवर्तयेत् ॥ तत्पशुत्वं परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं व्रतम् ॥ ३० ॥ पूजनीयो महादेवो लिंगमूर्तिः सदाशिवः ॥ भस्मस्नान महापुण्यं सर्वसौख्यकरं परम् ॥ ३१ ॥

कर ॥ २५ ॥ विरजानलकी भस्मको एकत्र करके 'अग्निरिति भस्म'' इन अथर्वणके छः मंत्रोंसे ॥ २६ ॥ मूर्धासे चरणोंतक धोकर इसी क्रमसे भस्मसे उद्धूलन करे ॥ २७ ॥ फिर ओंकार वा शिवमंत्रसे सर्वांगमें भस्म लगावे फिर त्र्यायुषं जमदग्नेः'' इस प्रकारके मंत्रसे त्रिपुंड्र धारण करे ॥ २८ ॥ शिवभावको प्राप्त होकर शिवभावको ही आचरण करे. ऐसा तीनों संध्याओंमें करे. यह पाशुपत व्रत है ॥ २९ ॥ यह भुक्तिमुक्तिका दाता और पशुत्वका निवृत्त करनेवाला है इस कारण पशुत्व त्याग पाशुपत व्रत करके ॥ ३० ॥ लिंगमूर्ति सदाशिव महादेव सदा पूजाके योग्य हैं भस्मका स्नान महा पवित्र सब

दे. भा.
॥२०॥

सुखदायक है ॥ ३१ ॥ आयु, बल, आरोग्य, श्री और पुष्टिका बढानेवाला है, रक्षामंगल और सब सम्पत्तिकी समृद्धिके निमित्त करना चहिये ॥ ३२ ॥ भस्मसे स्नान करनेवाले मनुष्योंको महामारीका भय नहीं होता यह भस्म शान्ति पुष्टि और कामना देनेसे तीन प्रकारकी है ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ नारदजी बोले हे देव ! यह भस्म तीन प्रकारकी कैसे है इसके सुननेका मुझे परम कौतूहल है सो आप कहिये ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारद ! भस्मके तीनप्रकार आपसे कहता हूं सुनो यह महापापक्षयकारी महाकीर्ति करनेवाला है ॥ २ ॥ जो गोबर भूमिपर नहीं गिरनेपाता और हाथोंमेंही ग्रहणकर लिया जाता है और 'सद्योजातादि' पंच ब्रह्म मंत्रोंसे दग्धकियाजाय वह शांतिकरनेवाला होता है

आयुष्यं बलमारोग्यं श्रीपुष्टिवर्धनं यतः ॥ रक्षार्थं मंगलार्थं च सर्वसंपत्समृद्धये ॥ ३२ ॥ भस्मस्निग्धमनुष्याणां महामारीभयं न च ॥ शांतिकं पौष्टिकं भस्म कामदं च त्रिधा भवेत् ॥ ३३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ नारद उवाच ॥ त्रिविधत्वं कथं चास्य भस्मनः परिकीर्तितम् ॥ एतत्कथय मे देव महत्कौतूहलं मम ॥ १ ॥ नारायण उवाच ॥ त्रिविधत्वं प्रवक्ष्यामि देवर्षे भस्मनः शृणु ॥ महापापक्षयकरं महाकीर्तिकरं परम् ॥ २ ॥ गोमयं योनिसंबद्धं तद्धस्तेनैव गृह्यते ॥ ब्राह्मैर्मंत्रैस्तु संदग्धं तच्छांतिकृदिहोच्यते ॥ ३ ॥ सावधानस्तु गृह्णीयान्नरो वै गोमयं तु यत् ॥ अन्तरिक्षे गृहीत्वा तत्षडंगेन दहेदतः ॥ ४ ॥ पौत्रिकं तत्समाख्यातं कामदं च ततः शृणु ॥ प्रसादेन दहेदेतत्कामदं भस्म कीर्तितम् ॥ ५ ॥ प्रातरुत्थाय देवर्षे भस्मव्रतपरः शुचिः ॥ गवां गोष्ठेषु गत्वा तु नमस्कृत्वा तु गोकुलम् ॥ ६ ॥ गवां वर्णानुरूपाणां गृह्णीयाद्गोमयं शुभम् ॥ ब्राह्मणस्य च गौः श्वेता रक्ता गौः क्षत्रियस्य च ॥ ७ ॥ पीतवर्णा तु वैश्यस्य कृष्णा शूद्रस्य कथ्यते ॥ पौर्णमास्याममावास्यामष्टम्यां वा विशुद्धधीः ॥ ८ ॥ प्रासादेन तु मन्त्रेण गृहीत्वा गोमयं शुभम् ॥ हृदयेन तु मन्त्रेण पिंडीकृत्य तु गोमयम् ॥ ९ ॥

॥ ३ ॥ मनुष्य सावधान होकर गोबर ग्रहण करे अर्थात् उसे अन्तरिक्षमेंही ग्रहणकर षडंगके मंत्रोंसे भस्मकरे ॥ ४ ॥ यह पुष्टिकारक भस्म होती है अब कामनादायकको सुनो जो 'हौम्' मंत्रसे भस्मकी जाय वह कामद है ॥ ५ ॥ हे नारद ! भस्मका व्रत करनेवाला प्रभात ही उठकर गौके गोठमें जाय गोकुलको नमस्कार कर ॥६॥ गोओंके वर्णके अनुसार सुन्दर गोठर लेकर अर्थात् ब्राह्मणकी गौ श्वेत क्षत्रियकी लाल ॥७॥ वैश्यकी पीली और शूद्रकी कृष्ण वर्णकी कही है विशुद्धबुद्धिवाला पूर्णिमा अमावस अष्टमीमें ॥ ८ ॥ 'हौम' इस मंत्रसे सुन्दर गोबर ग्रहण कर 'हृदयायनमः' इस मन्त्रसे उसकी पिण्डी बनाय ॥ ९ ॥

भा. टी. ए
अ० ११

अच्छे स्थानमें सूर्यकी किरणोंसे सुखावे और भूसी वा बुस (भूसा) से वेष्टित कर प्रसाद मंत्रसे उसमें निपेक्ष करे ॥ १० ॥ वनकी अग्नि श्रोत्रियके स्थानकी अग्निमें शिवके बीज मंत्रसे डालकर पूर्वोक्त रीतिसे हवन करे ॥ ११ ॥ फिर चतुर पुरुष उस अग्निकुंडसे भस्म ग्रहण करे नया पात्र लेकर 'हौम्' मन्त्रसे उसमें भस्म डाले ॥ १२ ॥ केतकी, पाढल, खस, चन्दन और केशरादि अनेक सुगंधके द्रव्य ॥ १३ ॥ 'सद्योजात' मंत्रसे उसमें डाले पहले जल और पीछे भस्मस्नान करे ॥ १४ ॥ जलस्नानमें अशक्त हो तो भस्मस्नानही करे 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इत्यादि मंत्रसे हाथ पैर शिरके प्रक्षालन करने पर ॥ १५ ॥ अंगोंमें

रविरश्मिसुसन्तप्तं शुचौ देशे मनोहरे ॥ तुषेण वा बुसैर्वापि प्रासादेन तु निक्षिपेत् ॥ १० ॥ अरण्युद्भवमग्निं वा श्रोत्रियागारजन्तु वा तदग्नौ विन्यसेत्तं च शिवबीजेन मन्त्रतः ॥ ११ ॥ गृह्णीयादथ तत्राग्निकुंडाद्भस्मविचक्षणः ॥ नवपात्रं समादाय प्रसादेन तु निक्षिपेत् ॥ १२ ॥ केतकी पाटली तद्वदुशीरं चंदनं तथा ॥ नानासुगंधिद्रव्याणि काश्मीरप्रभृतीनि च ॥ १३ ॥ निक्षिपेत्तत्र पात्रे तु सद्यो मन्त्रेण शुद्धधीः ॥ जल स्नानं पुरा कृत्वा भस्म स्नानमतः परम् ॥ १४ ॥ जलस्नाने त्वशक्तश्च भस्मस्नानं समाचरेत् ॥ प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च शिरश्चेशा नमन्त्रतः ॥ १५ ॥ समुद्धूल्य ततः पश्चादाननं तत्पुरुषेण तु ॥ अघोरेण तु हृदयं नाभिं वामेन तत्परम् ॥ १६ ॥ सद्योमन्त्रेण सर्वांगं समुद्धूल्य विचक्षणः ॥ पूर्ववस्त्रं परित्यज्य शुद्धवस्त्रं परिग्रहेत ॥ १७ ॥ प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च पश्चादाचमनं चरेत् ॥ भस्मनोद्धूलनाभावे त्रिपुंड्र तु विधीयते ॥ १८ ॥ मध्याह्नात्प्राग्जलैर्युक्तं परतो जलवर्जितम् ॥ तर्जन्यनामिकामध्यैस्त्रिपुंड्रं च समाचरेत ॥ १९ ॥ मूर्ध्नि चैव ललाटे च कर्णे कण्ठे तथैव च ॥ हृदये चैव बाह्वोश्च न्यासस्थानं हि चोच्यते ॥ २० ॥ पंचांगुलैर्न्यसेन्मूर्ध्नि प्रसादेन तु मन्त्रतः ॥ त्र्यंगुलैर्विन्यसेद्भाले शिरोमंत्रेण देशिकः ॥ २१ ॥

उद्धूलन करे तत्पुरुष मंत्रसे मुखमें अघोर मंत्रसे हृदयमें, वामदेव मंत्रसे नाभिमें ॥ १६ ॥ सद्योजात मंत्रसे विचक्षण सर्वाङ्गमें समुद्धूलन करै. पहले वस्त्रको त्यागकर फिर शुद्ध वस्त्रको ग्रहण करे ॥ १७ ॥ हाथ पैर धोकर पीछे आचमन करे भस्मके उद्धूलनके अभावमें त्रिपुंड्र धारण करे ॥ १८ ॥ मध्याह्नसे पहले स्नान करे फिर जलके विना स्नान करे तर्जनी और अनामिका मध्यसे त्रिपुंड्र लगावे ॥ १९ ॥ शिर, ललाट, कर्ण, कंठ, हृदय, बाहु यह न्यासके स्थान है ॥ २० ॥ 'हौम्' मन्त्रसे पांच अंगुलीसे शिरमें लगावे तीन अंगुलीसे भालमें शिरोमंत्र (स्वाहा) से लगावै ॥ २१ ॥

'सद्यो' मंत्रसे दहिने कानमें 'वामदेव'मंत्रसे बांये कानमें 'अघोर' मंत्रसे कंठमें मध्य अंगुलीसे स्पर्शकरे ॥ २२ ॥ हृदयको हृदयद्वारा 'हृदयेनैवनमः' इस प्रकार तीन अंगुलीसे स्पर्श करे दक्षिण बाहुमें शिखामंत्रसे न्यास करे ॥ २३ ॥ तीन अंगुलसे वामबाहुसे तीन अंगुल कवचका न्यास करे 'ईशान' मंत्रसे मध्यमा अंगुली से नाभि स्पर्श करे ॥ २४ ॥ यह तीन रेखा ब्रह्मा विष्णु महेशरूप हैं पहली रेखा ब्रह्मा दूसरी विष्णु और तीसरी महेश्वर है ॥ २५ ॥ जो एक अंगुलीसे न्यास है उसका ईश्वर देवता है शिरो मध्यका ब्रह्मा और ललाटका देवता ईश्वर है ॥ २६ ॥ दोनों कानोंके अश्विनीकुमार गणेश गलेके देवता हैं क्षत्रिय वैश्य और शूद्र यह सर्वांगमें उद्धूलन न करै ॥ २७ ॥ और सब अंत्यज जातियोंका मंत्ररहित होता है अदीक्षित मनुष्योंका भी मंत्ररहित होता

सद्येन दक्षिणे कर्णे वामदेवेन वामतः ॥ अघोरेण तु कंठे च मध्यांगुल्या स्पृशेद्धृदम् ॥ २२ ॥ हृदयं हृदयेनैव त्रिभिरंगुलिभिः स्पृशेत् ॥ विन्यसेद्दक्षिणे बाहौ शिखामन्त्रेण देशिकः ॥२३॥ वामबाहौ न्यसेद्धीमान्कवचेन त्रियंगुलैः ॥ मध्येन संस्पृशेन्नाभ्यामीशान इति मन्त्रतः ॥ २४ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानास्तिस्रो रेखा इति स्मृताः ॥ आद्यो ब्रह्मा ततो विष्णुस्तदूर्ध्वं तु महेश्वरः ॥ २५ ॥ एकांगुलेन न्यस्तं यदीश्वरस्तत्र देवता ॥ ॥ शिरोमध्ये त्वयं ब्रह्मा ईश्वरस्तु ललाटके ॥ २६ ॥ कर्णयोरश्विनौ देवौ गणेशस्तु गले तथा ॥ क्षत्रियश्च तथा वैश्यः शूद्रश्चोद्धूलनं त्यजेत् ॥ सर्वेषामंत्यजातीनां मन्त्रेण रहितं भवेत् ॥ २७ ॥ " उदीक्षितं मनुष्याणामपि मत्रं विना भवेत् " ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ देवर्षे शृणु तत्सर्वं भस्मोद्धूलनजं फलम् ॥ सरहस्यविधानं च सर्वकामफलप्रदम् ॥ १ ॥ कपिलायाः शकृत्स्वच्छं गृहीत्वा गगनेऽपतत् ॥ न क्लिन्नेनापि कठिनं न दुर्गंधं न चोषितम् ॥ २ ॥ उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीयात्पतितं यदि ॥ पिंडीकृत्य शिवाग्न्यादौ तत्क्षिपेन्मूलमंत्रितम्॥ ३ ॥आदाय वाससाच्छाद्य भस्माधाने विनिक्षिपेत् ॥सुकृते सुदृढे शुद्धे क्षालिते प्रोक्षिते शुभे ॥ ४ ॥

है ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भाषायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीनारायण बोले हे देवर्षे! भस्म लगानेका फल सुनो यह रहस्य और विधान के सहित कहता हूं जो सब कामना और फलका देनेवाला है ॥ १ ॥ कपिला गौका गोबर आकाशमेंही ग्रहणकर जो बहुत पतला कठिन और दुर्गन्धयुक्त और बासी न हो ॥ २ ॥ और जो गिरपड़ा हो तौ ऊपरनीचेका त्यागकर बीचसे ग्रहण करे और शिवाग्निमें पिंडीकरके मूलमंत्रसे उसमें डाले ॥ ३ ॥ फिर उसे वस्त्रसे लेकर भस्मके पात्रमें डाले अच्छे सुकृत सुदृढ क्षालित सुदेशमें ॥ ४ ॥

उसको रखकर फिर पात्रमें डालै सुवर्ण ताम्रादि धातुका काठका मृत्तिका चैलवस्त्रका ॥ ५ ॥ अथवाऔर किसी प्रकारका शुद्ध भस्मधार कल्पना करे क्षौम वस्त्र (अलसीके वस्त्र) में वा अतिशुद्धमें भस्म धरे ॥ ६ ॥ मार्गमें जाते हुए स्वयं भस्म ग्रहण करे अथवा अनुचरोंको देदे पर अयुक्त पुरुषको न दे और न अपवित्र स्थानमें धरे ॥ ७ ॥ नीच अंगोंसे भस्मको स्पर्श न करे न कहीं डालै न उल्लंघन करे भस्म लेकर मंत्रसे नियुक्त करे ॥ ८ ॥ विभूति धारणकी विधि स्मृतिमें मेरी कही है जिसके आचरण करतेही निःसन्देह यह प्राणी शिवकी तुल्य हो जाता है ॥ ९ ॥ जो वेदमंत्रो द्वारा शैवोंने शिवके समीप भस्म धारण की है उसे प्रार्थना कर परमभक्तिसे करनी चाहिये ॥ १० ॥ तांत्रिकोंसे पूजित भस्म तंत्रोक्त मार्गसे ग्रहण करनी चाहिये और वैदिकोंको जहां कहांकी

विन्यस्य मन्त्री मन्त्रेण पात्रे भस्म विनिक्षिपेत् ॥ तैजसं दारवं चाथ मृण्मयं चैलमेव च ॥ ५ ॥ अन्यद्वा शोभनं शुद्धं भस्माधारं प्रकल्पयेत् ॥ क्षौमे चैवातिशुद्धे वा घनवद्भस्म निक्षिपेत् ॥ ६ ॥ प्रस्थितो भस्म गृह्णीयात्स्वयं चानुचरोऽपि वा ॥ नचा युक्तकरे दद्यान्न चाशुचितले क्षिपेत् ॥ ७ ॥ न संस्पृशेत्तु नीचांगैर्न क्षिपेन्न च लंघयेत् ॥ तस्माद्भसितमादाय विनियुंजीत मंत्रितम् ॥ ८ ॥ विभूतिधारण विधिः स्मृतिप्रोक्तो मयेरितः ॥ यदीयाचरणेनैव शिवतुल्यो न संशयः ॥ ९ ॥ शैवैः संपादितं भस्म वैदिकैः शिवसन्निधौ ॥ भक्त्या परमया ग्राह्यं प्रार्थयित्वा तु पूजयेत् ॥ १० ॥ तन्त्रोक्तवर्त्मना सिद्धं भस्मतांत्रिकपूर्वकैः ॥ यत्र कुत्रापि दत्तं चेत्तद्ग्राह्यं नैव वैदिकैः ॥ ११ ॥ शूद्रैः कापालिकैर्वाथ पाखंडैरपरैस्तु तत् ॥ त्रिपुंड्रं धारयेद्भक्त्या मनसाऽपि न लंघयेत् ॥ १२ ॥ श्रुत्या विधीयते यस्मात्तत्त्यागी पतितो भवेत् ॥ त्रिपुंड्रधारणं भक्त्या तथा देहावगुंठनम् ॥ १३ ॥ द्विजः कुर्याद्धि मन्त्रेण तत्त्यागी पतितो भवेत् ॥ उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च भक्त्या नैवाचरंति ये ॥ १४ ॥ तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥ येन भस्मोक्तमार्गेण धृतं न मुनिपुंगव ॥ १५ ॥

दीहुई ग्रहण नहीं करनी चाहिये ॥ ११ ॥ शूद्र कापालिकोंसे वा पाखंडवालोंसे न लेनी भक्तिसे त्रिपुंड्र धारण करे और मनसे भी उल्लंघन न करे ॥ १२ ॥ कारण कि इसमें श्रुतिका विधान है इसके त्यागसे पतित होता है भक्तिसे त्रिपुंड्रधारण देहमें अवगुंठन (मलना) ॥ १३ ॥ मंत्रपूर्वक ब्राह्मण करे इसके त्यागसे पतित होता है जो भक्तिसे भस्म धारण और त्रिपुण्ड्र नहीं लगाते हैं ॥ १४ ॥ करोड जन्मोंमें भी संसारसे उनका छुटकारा नहीं होता. हे मुनिश्रेष्ठ जिसने उक्तमार्गसे भस्म धारण न की ॥ १५ ॥

हे मुनिराज ! उसका शूकरके समान निष्फल जन्म जानना, जिन मनुष्योंका शरीर विना त्रिपुण्ड्रके है ॥ १६ ॥ वह श्मशानके समान है पुण्यात्माओंका उसका दर्शन करना न चाहिये भस्मरहित मस्तकको और शिवालयरहित ग्रामको धिक्कार है जो॥१७॥विना शिवके पूजनके जन्म विना शिवाश्रयके विद्याको धिक् है जो त्रिपुण्ड्र और शिवकी निन्दा करते हैं उनको धिक् है॥१८॥ जो भक्तिसे धारण करते कराते हैं वह कृशानुरहित भूधरके समान शोभित नहीं होते ॥ १९ ॥ जो विना सब साधनोंके भस्महीन शिवार्चन करते हैं भस्म धारण और त्रिपुंड्र जो भक्तिसे धारण नहीं करते ॥२०॥ उनका पूर्वाचरित सब विपरीत होता है, भस्म और वेदमंत्रद्वारा त्रिपुण्ड्रका धारण करना ॥ २१ ॥ विना त्रिपुण्ड्रके उचित आचार स्मार्त्त वैदिक कर्म अनर्थका कारण है उसका

तस्य विद्धि मुने जन्म निष्फलं सौकरं यथा ॥ येषां वपुर्मनुष्याणां त्रिपुण्ड्रेण विना स्थितम् ॥ १६ ॥ श्मशानसदृशं तस्यान्न प्रेक्ष्यं पुण्यकृज्जनैः ॥ धिग् भस्मरहितं भालं धिग्ग्राममशिवालयम् ॥ १७ ॥ धिगनीशार्चनं जन्म धिग्विद्यामशि वाश्रयम् ॥ त्रिपुंड्र ये विनिंदंति निंदंति शिवमेव ते ॥ १८ ॥ धारयंति च ये भक्त्या धारयंति तमेव ते ॥ यथा कृशानुरहितो भूधरो न विराजते ॥ १९ ॥ अशेषसाधनेऽप्येव भस्महीनं शिवार्चनम् ॥ उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च श्रद्धया नाचरंति ये ॥ २० ॥ तैः पूर्वाचरितं सर्वं विपरीतं भवेदपि ॥ भस्मया वेदमन्त्रेण त्रिपुंड्रस्य च धारणम् ॥ २१ ॥ विना वेदोचिताचारं स्मार्तस्यानर्थकारणम् ॥ कृतं स्या दकृतं तेन श्रुतमप्यश्रुतं भवेत् ॥२२॥ अधीतमनधीतं च त्रिपुंड्रं यो न धारयेत् ॥ वृथा वेदा वृथा यज्ञा दानं वृथा वृथा तपः ॥ २३॥ वृथा व्रतोपवासेन त्रिपुंड्रं यो न धारयेत् ॥ भस्मधारणकं त्यक्त्वा मुक्तिमिच्छति यः पुमान् ॥ २४ ॥ विषपानेन नित्यत्वं कुरुते ह्यात्मनो हि सः ॥ स्रष्टा सृष्टिच्छलेनाह त्रिपुंड्रस्य च धारणम् ॥ २५ ॥ ससर्ज स ललाटं हि तिर्यगूर्ध्वं न वर्तुलम् ॥ तिर्यग्रेखाः प्रदृ श्यते ललाटे सर्वदेहिनाम् ॥ २६ ॥ तथापि मानवा मूर्खा न कुर्वंति त्रिपुण्ड्रकम् ॥ न तद्ध्यातं न तन्मोक्षं तज्ज्ञानं न तत्तपः ॥ २७ ॥

किया न करनेके समान और सुना न सुननेके समान है ॥ २२ ॥ पढा अनपढा है जो त्रिपुंड्रको धारण नहीं करता उसका वेद; यज्ञ दान तप वृथा है ॥ २३ ॥ व्रत उपवास वृथा है जो त्रिपुंड्रको धारण नहीं करता जो पुरुष भस्म धारणको त्याग कर मुक्तिकी इच्छा करता है ॥ २४ ॥ वह विषपान करके अपनेको नित्य माननेकी इच्छा करता है जगत्स्रष्टाने सृष्टिके छलसेही त्रिपुंड्रका धारण करना कहा है ॥ २५ ॥ उसने ललाटको दण्डाकार उर्ध्व वा कदम्ब पुष्पवत् वर्तुलाकार सृजन नहीं किया है सबके ललाटमें तिर्यक् रेखा दिखाई देती हैं ॥ २६ ॥ तो भी मूर्ख मनुष्य त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करते हैं वह

ध्यान, मोक्ष, ज्ञान, तपस्या नहीं हैं जिसमें त्रिपुंड्र न हो ॥ २७ ॥ त्रिपुंड्र धारण किये विना ब्राह्मणने जो अनुष्ठान किया है वह वृथा है जैसे वेदके अध्ययनका शूद्र अधिकारी नहीं है ॥ २८ ॥ इसी प्रकार त्रिपुंड्रके विना विप्र शिवार्चनका अधिकारी नहीं, प्राङ्मुख हो ब्राह्मण पूर्ववत् हाथ पैर धोये आचमन कर ॥ २९ ॥ प्राणायाम पूर्वक संकल्प करके भस्म स्नान करे अग्नि होत्रकी शुद्ध भस्म लेकर ॥ ३० ॥ 'ईशान' मन्त्रसे अपने शिरपर धारण करे फिर 'तत्पुरुष' मंत्रसे मुखमें धारण करे 'अघोर' मन्त्रसे हृदय 'वामदेव' मंत्रसे गुह्य, और सद्योजातसे दोनों चरणोंमें मले ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ (ओंकारसे) सर्वांगमें उद्धूलन करे परम ऋषियोंने इसका आग्नेयस्नान नाम कहा है ॥ ३३ ॥ सब कर्मकी समृद्धिके निमित्त पंडितको पहले इसे करना चाहिये

विना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं च विप्रेण यदनुष्ठितम् ॥ वेदस्याध्ययने शूद्रो नाधिकारी यथा भवेत् ॥ २८ ॥ त्रिपुण्ड्रेण विना विप्रो नाधिकारी शिवार्चने ॥ प्राङ्मुखश्चरणौ हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य पूर्ववत् ॥ २९ ॥ प्राणानायम्य संकल्प भस्मस्नानं समाचरेत् ॥ आदाय भसितं शुद्धमग्निहोत्रसमुद्भवम् ॥ ३० ॥ ईशानेन तु मंत्रेण स्वमूर्धन विनिक्षिपेत् ॥ तत आदाय तद्भस्म मुखे च पुरुषेण तु ॥ ३१ ॥ अघोराख्येण हृदये गुह्ये वामाह्वयेन च ॥ सद्योजाताभिधानेन भस्मपादद्वये क्षिपेत् ॥ ३२ ॥ सर्वांगं प्रणवेनैव मंत्रेणोद्धूलनं ततः ॥ एतदाग्नेयकं स्नानमुदितं परमर्षिभिः ॥३३॥ सर्वकर्मसमृद्ध्यर्थं कुर्यादादाविदं बुधः ॥ ततः प्रक्षाल्य हस्तादीनुपस्पृश्य यथा विधि ॥ ३४ ॥ तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं विधिना ललाटे हृदये गले ॥ पंचभिर्ब्रह्मभिर्वापि कृतेन भसितेन च ॥ ३५ ॥ धृतमेतत्त्रिपुण्ड्रं स्यात्सर्वकर्मसु पावनम् ॥ शूद्रैरंत्यजहस्तस्थ न धार्यं भस्म च क्वचित् ॥ ३६ ॥ भस्मना सामग्निहोत्रेण लिप्तः कर्म समाचरेत् अन्यथा सर्वकर्माणि न फलंति कदाचन ॥३७॥ सत्यं शौचं जपो होमस्तीर्थं देवादिपूजनम् ॥ तस्य व्यर्थमिदं सर्वं यस्त्रिपुंड्रं न धारयेत् ॥ ३८ ॥ त्रिपुण्ड्रधृग्विप्रवरो यो रुद्राक्षरः शुचि ॥ स हंति रोगदुरितव्याधि दुर्भिक्षतस्करान् ॥ ३९ ॥

फिर हाथादिको प्रक्षालन कर यथा विधि जलस्पर्श कर ॥ ३४ ॥ जो त्रिपुंड्रकी विधिसे ललाट हृदय गलेमें पंच ब्रह्मके मन्त्रसे धारण करते हैं तथा भस्म धारण करते हैं ॥ ३५ ॥ तो त्रिपुंड्र धारण करनेसे सब कर्मोंमें पवित्र हो जाते हैं शूद्र और अन्त्यज जनोंके हाथकी भस्म कभी धारण न करनी चाहिये ॥ ३६ ॥ जो अग्निहोत्रकी भस्मसे लिप्त होकर कर्म करते हैं वे सिद्ध होते हैं इसमें अन्यथा कोई कर्म भी नहीं फलते हैं ॥ ३७ ॥ सत्य, शौच, जप होम, तीर्थ, देवादिपूजन त्रिपुंड्र न धारण करनेवालेके सब वृथा हैं ॥ ३८ ॥ जो ब्राह्मण पवित्र हो त्रिपुंड्र और रुद्राक्ष धारण करता है वह रोग, दुरित, व्याधि

और तस्करोंके शान्त करनेमें समर्थ होता है ॥ ३९ ॥ और आवृत्ति रहित ब्रह्मको प्राप्त होता है फिर नहीं लौटता वह ब्राह्मण पंक्तिपावन है श्राद्धमें ब्राह्मण और देवताओंसे पूजनीय है ॥ ४० ॥ श्राद्ध, यज्ञ जप, होम, वैश्वदेव, सुरार्चन इनमें त्रिपुंड धारण करनेसे पवित्र हो मनुष्य मृत्युको जय करता है ॥ ४१ ॥ मैं भस्म धारणका माहात्म्य फिर भी तुमसे कहता हूँ ॥ ४२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीनारायण बोले महापातक समूह तथा दूसरे पातक इसके धारणसे अवश्य नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १ ॥ एक भस्मही जिसने धारण की है उसके पुण्यका बल सुनो यतियोंको ज्ञान और वनवासियोंको वैराग्य देता है ॥ २ ॥ हे मुने ! गृहस्थोंको धर्म वृद्धिका करनेवाला है ब्रह्मचारियोंको स्वाध्यायका

समाप्नोति परं ब्रह्म यतो नावर्तते पुनः स पंक्तिपावनः श्राद्धे पूज्यो विप्रैः सुरैरपि ॥ ४० ॥ श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने ॥ धृतत्रिपुंड्रः पूतात्मामृत्युं जयतिमानवः ॥४१॥ भस्मधारणमाहात्म्यं भूयोऽपि कथयामि ते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ महापातकसंघाश्च पातकान्यपराण्यपि ॥ नश्यंति मुनिशार्दूल सत्यं सत्यं नचान्यथा ॥ १ ॥ एकं भस्म धृतं येन तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ यतीनां ज्ञानदं प्रोक्तं वनस्थानां विरक्तिदम् ॥ २ ॥ गृहस्थानां मुने तद्वद्धमंवृद्धिकरं तथा ॥ ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां स्वाध्यायप्रदमेव च ॥ ३ ॥ शूद्राणां पुण्यदं नित्यमन्येषां पापनाशनम् ॥ भस्म नोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ ४ ॥ रक्षार्थं सर्वभूतानां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ ५ ॥ यज्ञत्वेनैव सर्वेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ ६ ॥ सर्वधर्मतया तेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ ७ ॥ माहेश्वराणां लिंगार्थं विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ॥ भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक्त्रिपुंड्रकम् ॥ ८ ॥

देनेवाला है ॥ ३ ॥ शूद्रोंको पुण्यदायक तथा दूसरोंका भी पापनाश करनेवाला है. भस्म लगाना त्रिपुंड्र धारण करना ॥ ४ ॥ सब प्राणियोंकी रक्षाके निमित्त होता है यह वेदकी श्रुति है भस्मका सर्वांगमें लेपन तथा त्रिपुंड्र धारण ॥ ५ ॥ यह यज्ञमें सबको धारण करना चाहिये यह वैदिकी श्रुति है भस्म द्वारा उद्धूलन और तीर्यक् त्रिपुंड्र धारण ॥ ६ ॥ सब धर्मोंका कारण है यह वेदकी श्रुति है भस्म लगाना त्रिपुंड्र धारण ॥ ७ ॥ यह शैवोंका चिह्न है यह वेदकी श्रुति है भस्म लगाना त्रिपुंड्र धारण करना ॥ ८ ॥

सबके विज्ञानके निमित्त है. यह वेदकी श्रुति है, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र ॥ ९ ॥ हिरण्यगर्भ उनके अवतार वरुणादि इन सब देवताओंने भस्म और त्रिपुण्ड्र धारण किया है ॥ १० ॥ उमादेमी लक्ष्मी तथा सरस्वती दूसरे आस्तिक तथा और देवांगनाओंने भस्म और त्रिपुंड्र धारण किया है ॥ ११ ॥ यक्ष, राक्षस, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर मुनि सबने भस्म और त्रिपुण्ड्र धारण किया है ॥१२॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र, संकरजाति अपभ्रंश सबने भस्म और त्रिपुण्ड्र धारण किया है ॥ १३ ॥ जो उद्धूलन और त्रिपुण्ड्र आनंदसे धारण करते हैं वही शिष्ट और विद्वान् हैं हे मुनिश्रेष्ठ ! दूसरे नहीं ॥१४॥ जैसे स्त्रीवशीकरणमें कंठमें बहुमूल्य मणि सख्यता वाजीकरण औषधी वा गुटिका एक साधन है इसी प्रकार मुक्तिरूपी स्त्रीके वश करनेमें शिवलिंगमणि पंचाक्षर मंत्र सख्यता विभूति

विज्ञानार्थं च सर्वेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ॥ शिवेन विष्णुना चैव ब्रह्मणा वज्रिणा तथा ॥ ९ ॥ हिरण्यगर्भेण तदवतारैर्वरुणादिभिः ॥ भस्म देवताभिर्धृतं त्रिपुंड्रोद्धूलनात्मकम् ॥१०॥ उमादेव्या च लक्ष्म्या च वाचा चान्याभिरास्तिकैः ॥ सर्वस्त्रीभिर्धृतं भस्म त्रिपुंड्रोधूलनात्मना ॥११॥ यक्षराक्षसगंधर्वसिद्धविद्याधरादिभिः ॥ मुनिभिश्च धृतं भस्म त्रिपुंड्रोद्धूलनात्मना ॥१२॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरपि च संकरैः ॥ अपभ्रंशैर्धृतं भस्म त्रिपुंड्रोद्धूलनात्मना ॥ १३ ॥ उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च यैः समाचरितं मुदा ॥ त एव शिष्टा विद्वांसो नेतरे मुनिपुंगव ॥ १४ ॥ शिवलिंगं मणिः संख्यं मन्त्रः पंचाक्षरस्तथा ॥ विभूतिरौषधं पुंसां मुक्तिस्त्रीवश्यकर्मणि ॥ १५ ॥ भुनक्ति यत्र भस्मांगो मूर्खो वा पंडितोऽपि वा ॥ तत्र भुंक्ते महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः ॥१६॥ भस्मसंछन्नसर्वांगमनुगच्छति यः पुमान् ॥ सर्वपातकयुक्तोऽपि पूजितो मानवोऽचिरात् ॥ १७ ॥ भस्मसंछन्नसर्वांगं यः स्तौति श्रद्धया सह ॥ सर्वपातकयुक्तोऽपि पूज्यते मानवोऽचिरात् ॥ १८ ॥ त्रिपुंड्रधारिणे भिक्षाप्रदानेन हि केवलम् ॥ तेनाऽधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ॥ १९ ॥ येन विप्रेण शिरसि त्रिपुण्ड्रं भस्मना कृतम् ॥ कीकटेष्वपि देशेषु यत्र भूतिविभूषणः ॥ २० ॥

औषधी है ॥ १५ ॥ जहां भस्म धारण किये मूर्ख वा पंडित कोई भोजन करता है वहां सपत्नीका शंकर ही भोग लगाते हैं ॥ १६ ॥ जो शरीर में भस्म लगाये कहीं गमन करते हैं वह सब पातकोंसे युक्त होकर भी पूजित होता है ॥ १७ ॥ भस्म लगाकर जो श्रद्धासे स्तुति करता है वह सब पातकोंसे हितहो पूजित होता है ॥ १८ ॥ जो त्रिपुण्ड्र धारियोंको भिक्षा देते हैं उसने सब कुछ पढ़ा सुना औ अनुष्ठान कर लिया ॥ १९ ॥ जिस ब्राह्मणने शिरपर भस्मका त्रिपुण्ड्र लगाया वह मगधदेशमें भी विभूतिधारी ॥ २० ॥

रहता हुआ उसे काशी क्षेत्रके समान करता है दुःशील शीलयुक्त योगयुक्त वा लक्षणहीन हो ॥ २१ ॥ जो विभूति धारण करता है वह मेरे पुत्रवत् पूज्य है जो छद्मसभी विभूति धारण करता है ॥ २२ ॥ वह भी जिस गतिको प्राप्त होता है कोई सौ यज्ञ करनेसे भी उस गतिको नहीं प्राप्त होता संपर्क लीला वा भयसे भी जो विभूति धारण करता है वहभी महापुण्य पाता है ॥ २३ ॥ और विधियुक्त विभूति धारण करनेवाला मेरे समान पूज्य होता है वह शिव विष्णु और ब्रह्मादि देवतोंकी तृप्तिका कारण होवा है ॥ २४ ॥ पार्वती महालक्ष्मी और महासरस्वतीकी तृप्तिका कारण होता है दान यज्ञ और दुर्लभ तपसे भी ऐसा नहीं ॥ २५ ॥ तथा तीर्थयात्राका पुण्यभी त्रिपुंड्रधारणके समान नहीं है हे नारद ! दान, यज्ञ, धर्म, तीर्थयात्रा ॥ २६ ॥ ध्यान, तप यह त्रिपुण्ड्रधा

मानवस्तु वसेन्नित्यं काशीक्षेत्रसमं हि तत् ॥ दुःशीलःशील युक्तो वा योगयुक्तोऽप्यलक्षणः ॥ २१ ॥ भूतिशासनयुक्तो वा स पूज्यो मम पुत्रवत् ॥ छद्मनापि चरेद्यो हि भूतिशासनमेश्वरम् ॥ २२ ॥ सोऽपि यां गतिमाप्नोति न तां यज्ञशतैरपि ॥ संपर्काल्लीलया वापि भयाद्वा धारयेत्तु यः ॥ २३ ॥ विधियुक्तो विभूतिं तु स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥ शिवस्य विष्णोर्देवानां ब्रह्मणस्तृप्तिकारणम् ॥ २४ ॥ पार्वत्याश्च महालक्ष्म्या भारत्यास्तृप्तिकारणम् ॥ न दानेन न यज्ञेन तपोभिः सुदुर्लभैः ॥ २५ ॥ ना तीर्थयात्रया पुण्यं त्रिपुण्ड्रेण च लभ्यते ॥ दानं यज्ञाश्च धर्माश्च तीर्थयात्राश्च नारद ॥ २६ ॥ ध्यानं तपस्त्रिपुण्ड्रस्य कलां नार्हति षोडशीम् यथा राजा स्वचिह्नांकं स्वजनं मन्यते सदा ॥ २७ ॥ तथा शिवस्त्रिपुण्ड्रांकं स्वकीयमिय मन्यते द्विजातिर्वाऽन्यजातिर्वा शुद्धचित्तेन भस्मना ॥ २८ ॥ धारये द्यस्त्रिपुड्रांकं रुद्रस्तेन वशीकृतः ॥ त्यक्तसर्वाश्रमाचारो लुप्तसर्वक्रियोऽपि सः ॥ २९ ॥ सकृत्तिर्यक्त्रिपुण्ड्रांकं धारयेत्सोऽपि मुच्यते ॥ नास्य ज्ञानं परीक्षेत न कुलं न व्रतं तथा ॥ ३० ॥ त्रिपुण्ड्रांकितभालेन पूज्य एव हि नारद ॥ शिवमन्त्रात्परो मन्त्रोनास्ति तुल्यं शिवा त्परम् ॥ ३१ ॥

रणकी सोलहवीं कलाकेभी बराबर नहीं है जैसे राजा अपने चिह्नसे अपने भृत्यको पहँचानते हैं मानते हैं ॥२७॥ इसी प्रकार शिव त्रिपुण्ड्रधारीको अपने समान मानते हैं द्विजाति हो वा अन्यजाति हो जो शुद्धचित्तसे भस्म ॥ २८ ॥ और त्रिपुण्ड्र धारण करता है मानो उसने शंकरको वशीभूत कर लिया है ॥२९॥ जो एकबार भी तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं वह भी मुक्त हो जाते हैं इसके ज्ञान और कुल तथा व्रतकी परीक्षा न करे ॥ ३० ॥ मस्तक पर त्रिपुण्ड्र धारण करते ही वह पूज्य होता है शिवमंत्रसे अधिक मंत्र शिवसे परे देवता ॥ ३१ ॥

शिवार्चनसे परे पुण्य और भस्मसे अधिक तीर्थ नहीं है रुद्राग्निका जो परिवीर्य है उसीको भस्म कहते हैं ॥ ३२ ॥ यह सब पापोंकी नाशक और सब दुःखनिवारक है अन्त्यज, अधम, मूर्ख वा पंडित ॥३३॥ जिस स्थानमें विभूतिधारणपूर्वक निवास करता है उसमें सदाशिव पार्वतीसहित सब भूत गणोंको लिये सब तीर्थोंसे संयुक्तहो उसके निकट निवास करते हैं ॥ ३४ ॥ यह, सद्योजातादि' शिवके पांचमंत्र पवित्र हैं, भस्म शिवके अंगसे विभूषित है जिन्होंने ललाटपर त्रिपुण्ड्र लगाये हैं उनके दैवके लिखे खोटे अक्षर मिट जाते हैं ॥ ३५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥नारायण बोले जो भस्मधारीके निमित्त प्रसन्नतासे धन देता है उसके सब पाप नाश होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १ ॥ श्रुति स्मृति और सब

शिवार्चनात्परं पुण्यं नहि तीर्थं च भस्मना ॥ रुद्राग्नेर्यत्परं तीर्थं तद्भस्म परिकीर्तितम् ॥ ३२ ॥ ध्वंसनं सर्वदुःखानां सर्वपापविशोधनम् ॥ अंत्यजो वाऽधमो वापि मूर्खो वा पंडितोऽपि वा ॥ ३३ ॥ यस्मिन्देशे वसेन्नित्यं भूतिशासनसंयुतः ॥ तस्मिन्सदाशिवः सोमः सर्वभूतगणैर्वृतः ॥ सर्वतीर्थैश्च संयुक्तः सान्निध्यं कुरुते सदा ॥ ३४ ॥ एतानि पञ्च शिवमन्त्रपवित्रितानि भस्मानि कामदहनांगविभूषितानि ॥ त्रैपुंड्रकाणि रचितानि ललाटपट्टे लुंपंति दैवलिखितानि दुरक्षराणि ॥ ३५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ नारायण उवाच ॥ भस्मदिग्धशरीराय यो ददाति धनं मुदा ॥ तस्य सर्वाणि पापानि विनश्यंति न संशयः ॥ १ ॥ श्रुतयः स्मृतयः सर्वाः पुराणान्य खिलान्यपि ॥ वदंति भूतिमाहात्म्य तत्तस्माद्धारयेद्द्विजः ॥ २ ॥ सितेन भस्मना कुर्यात्रिसंध्यं यस्त्रिपुंड्रकम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ ३ ॥ योगी सर्वांगकं स्नानमापादतलमस्तकम् ॥ त्रिसंध्यमाचरेन्नित्यमाशु योगमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥ भस्मस्नानेन पुरुषः कुलस्योद्धारको भवेत् ॥ भस्मस्नानं जलस्नानाद संख्येयगुणान्वितम् ॥ ५ ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं लभते सर्वं भस्मस्नानान्न संशयः ॥ ६ ॥

पुराण विभूतिका माहात्म्य कहते हैं इससे ब्राह्मण भस्म धारण करे ॥ २ ॥ जो तीनों संध्याओंमें श्वेत भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है वह सब पापोंसे रहित हो शिवलोकमें जाता है ॥ ३ ॥ योगी पादसे मस्तकपर्यन्त सर्वांगमें स्नान करे जो तीनों संध्याओंमें ऐसा करता है वह शीघ्र योगको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ भस्मस्नायी पुरुष अपने कुलका उद्धारक होता है जल स्नानसे भस्म स्नान असंख्य गुणवाला है ॥ ५ ॥ सब तीर्थोंमें जो पुण्य सब तीर्थोंमें जो फल प्राप्त होता है वह सब भस्म स्नानसे प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ६ ॥

महापातक वा उपपातकसे युक्त हो वह सब भस्म स्नानसे ऐसे नष्ट हो जाते हैं जैसे अग्निसे ईंधनकी दशा होती हैं ॥ ७ ॥ जो महापातक वा उपपातक हैं वह सब दूर होते हैं बहुत क्या भस्म स्नानसे अधिक पवित्र कोई वस्तु नहीं यह प्रथम शिवने कहकर पीछे स्वयं स्नान किया ॥ ८ ॥ उसी दिनसे ब्रह्मादिमुनि शिवकी इच्छावाले सब प्रकार यतनसे भस्म स्नान कहते हैं ॥ ९ ॥ इस कारण जो कोई इस आग्नेय स्नानको करते हैं वह इसी शरीरसे रुद्र हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥१०॥ जो भस्म धारण करनेवालेको देखकर परितुष्ट होते हैं वह निःसन्देह देवता असुर मुनीन्द्रोंसे पूजित होते हैं सन्देह नहीं॥११॥ भस्मधारी पुरुषको देखकर जो खड़े होते हैं उनको देख देख देवराजभी प्रणाम करेंगे ॥ १२ ॥ हे मुने ! जिन्होंने भस्म धारणके उपरान्त अभक्ष्य भी भक्षण

महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकः ॥ भस्मस्नानेन तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेंधनम् ॥ ७ ॥ भस्मस्नानात्परं स्नानं पवित्रं नैव विद्यते ॥ एवमुक्तं शिवेनादौ तदा स्नातः स्वयं शिवः ॥ ८ ॥ तदा प्रभृति ब्रह्माद्या मुनयश्च शिवार्थिनः ॥ सर्वकर्मसु यत्नेन भस्मस्नानं प्रचक्रिरे ॥ ९ ॥ तस्मादेवच्छिरस्नानमाग्नेयं यः समाचरेत् ॥ अनेनैव शरीरेण स हि रुद्रो न संशयः ॥ १० ॥ ये भस्मधारिणं दृष्ट्वा परितृप्ता भवंति ते ॥ देवासुरमुनींद्रैश्च पूज्या नित्यं न संशयः ॥ ११ ॥ भस्मसंच्छन्नसर्वांगं दृष्ट्वोत्तिष्ठति यः पुमान् ॥ तं दृष्ट्वा देवराजोऽपि दंडवत्प्रणमिष्यति ॥ १२ ॥ अभक्ष्यभक्षणं तेषां भस्मधारणपूर्वकम् ॥ तेषां तद्भक्ष्यमेव स्यान्मुने नात्र विचारणा ॥ १३ ॥ यः स्नानि भस्मना नित्यं जल स्नात्वा ततः परम् ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवादरात् ॥ १४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् अग्नेयं भस्मना स्नानं यतीनां च विशिष्यते ॥ १५ ॥ आर्द्रस्नानाद्वरं भस्मस्नानमार्द्रवधो ध्रुवः आर्द्रं तु प्रकृतिं विद्यात्प्रकृतिं बंधनं विदुः ॥ १६ ॥ प्रकृतेस्तु प्रहाणाय भस्मना स्नानमिष्यते ॥ भस्मना सदृशं ब्रह्मन्नास्ति लोकत्रयेष्वपि ॥ १७ ॥

कर लिया है उनका वह भक्ष्यही है इसमें विचार नहीं है ॥१३॥ जो जलमें स्नान करनेसे पहले भस्मसे स्नान करता है ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ कोई हो आदरसे स्नान करके ॥ १४ ॥ सब पापरहित हो परमगतिको पाता है आग्नेय भस्मसे स्नान करना यतियोंको विशेष रीतिसे उचित है ॥ १५ ॥ जलके स्नानसे भस्म स्नान श्रेष्ठ है कारण कि भस्म स्नानसे प्रकृतरूप बंधनका नाश होता है ॥ १६ ॥ प्रकृतिबंधनके नाशके निमित्त ही भस्म स्नान कहा है हे ब्रह्मन् ! भस्मके समान कुछ भी त्रिलोकीमें नहीं है ॥ १७ ॥

पहले देवताओंने यह रक्षामंगल पवित्रताके निमित्त धारणकी थी हे मुने ! पहले शंकरने यह अपनी प्रियाको दी थी ॥ १८ ॥ इस कारण इस तेज संपन्न स्नानको सदा करना चाहिये कारण की भस्ममें अग्नि विद्यमान है जो सूक्ष्मरूपसे उसमें रहती है जिससे विद्युत् शक्तिबढती है,इससे स्नान कर भव पाशसे मुक्त हो शिवलोकमें जाता है ॥ १९ ॥ ज्वर, राक्षस, पिशाच, पूतना, कुष्ठ, गुल्म सब प्रकारके भगन्दर अस्सीवातके रोग ॥ २० ॥ चौंसठ पित्तके रोग बत्तीस प्रकारके श्लेष्मरोग व्याघ्र चोरका भय वा दूसरे दुष्टग्रहोंके रोग ॥ २१ ॥ भस्म स्नानसे ऐसे नष्ट होते हैं, जैसे सिंहको देखकर हाथी पलायन करते हैं शुद्ध शीतलजल और भस्मसे त्रिपुण्ड्रको ॥ २२ ॥ जो धारण करता है वह निःसन्देह परब्रह्मको प्राप्त होता है " जो कोई भस्मसे त्रिपुंड्रको धारण करता है वह निःसन्देह पाप

रक्षार्थं मंगलार्थं च पवित्रार्थं पुरा सुरैः ॥ भस्म दृष्ट्वा मुने पूर्वं दत्तं देव्यै प्रियेण तु ॥ १८ ॥ तस्मादेतच्छिरः स्नानमाग्नेयं यः समाचरेत् ॥ भवपाशैर्विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥१९॥ ज्वररक्षःपिशाचाश्च पूतनाकुष्ठगुल्मकाः ॥ भगंदराणि सर्वाणि चाऽशीतिर्वातरोगकाः ॥२०॥ चतुःषष्टि पित्तरोगाः श्लेष्मा सप्तत्रिपञ्चका ॥ व्याघ्रचौरभयं चौवाप्यन्ये दुष्टग्रहा अपि ॥२१॥ भस्मस्नानेन नश्यंति सिंहेनेव यथा गजाः ॥ शुद्धशीतजलेनैव भस्मना च त्रिपुंड्रकम् ॥ २२ ॥ यो धारयेत्परं ब्रह्म स प्राप्नोति न संशयः ॥ भस्मना च त्रिपुंड्रं च यः कोपि धारयेत् परम् ॥ स ब्रह्मलोकमाप्नोति मुक्तपापो न संशयः ॥" यथाविधिललाटे वै वह्निवीर्यप्रधारणात् ॥ २३ ॥ नाशयेल्लिखितां यामीं ललाटस्थां लिपिं ध्रुवम् ॥ कंठोपरिकृतं पापं नाशयेत्तत्धारणात् ॥ २४ ॥ कंठे च धारणात्कंठभोगादिकृतपातकम् ॥ बाह्वोर्बाहुकृतं पापं वक्षसा मनसा कृतम् ॥ २५ ॥ नाभ्यां शिश्नकृतं पापं गुदे गुदकृतं हरेत् ॥ पार्श्वयोर्धारणाद्ब्रह्मन्पररुयालिंगनादिकम् ॥ २६ ॥ तद्भस्मधारणं शस्तं सर्वत्रैव त्रिलिंगकम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां त्र्यय्यग्नीनां च धारणम् ॥ २७ ॥

रहित ही ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है, यथाविधि मस्तकमें अग्निवीर्य धारण करनेसे ॥२३॥ मस्तकमें लिखी यमकी लिपी मिट जाती है कंठके ऊपर भागसे किये पाप इसके धारणसे नष्ट हो जाते हैं ॥ २४ ॥ अर्थात् कंठमें धारणसे कंठभोगादिक किये पातक बाहुमें धारण करनेसे भुजासे किये पाप वक्षस्थलमें धारण करनेसे मनके किये पाप ॥ २५ ॥ नाभिमें धारणसे मेढ्रके, गुदामें धारण करनेसे गुह्यके, पार्श्वमें धारण करनेसे परस्त्री आलिंगनके सब पाप दूर होते हैं ॥ २६ ॥ इस कारणसे सर्वथा त्रिलिंगयुक्त भस्म धारण करनी चाहिये यह ब्रह्मा विष्णु महेशरूप तीन अग्नियोंका धारण है ॥ २७ ॥

त्रिपुंड्र धारण करनेसे मानो त्रिलोकीके गुण धारण कर लिये भस्म लगाये हुए विद्वान् ब्राह्मण महापातकसे प्रगट हुए ॥२८॥ दोषोंसे शीघ्रही मुक्त होता है इसमें संदेह नहीं भस्म लगानेवालेके दोष भस्माग्निसे नष्ट हो जाते हैं ॥२९॥ भस्म स्नानसे शुद्ध पुरुष आत्मनिष्ठ कहाता है सर्वांगमें भस्म लगाये भस्मसे त्रिपुंड्र जिनका दीप्तिमान है ॥३०॥ जो पुरुष भस्ममें शयन करते हैं वही आत्मनिष्ठ हैं भूत प्रेत पिशाच और बड़े दुःसह रोग ॥ ३१ ॥ भस्मनिष्ठकी निकटतासे ही दूर हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं यह प्रकाशमान होनेसे भसित, और पाप भक्षण करनेसे भस्म कहाती है ॥३२॥ यह विभूति पुरुषोंको ऐश्वर्य करने वाली और राक्षसोंसे रक्षा करनेवाली है, त्रिपुण्ड्रधारीको देखकर भूत प्रेतादि ॥ ३३ ॥ भीत और कंपित होकर शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं जैसे

गुणलोकत्रयाणां च धारणं तेन वै कृतम् ॥ भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वान्महापातकसंभवैः ॥ २८ ॥ दोषैर्विमुच्यते सद्यो मुच्यते च न संशयः ॥ भस्मनिष्ठस्य दह्यंते दोषा भस्माग्निसंगमात् ॥ २९ ॥ भस्मस्नानविशुद्धात्मा आत्मनिष्ठ इतिस्मृतः ॥ भस्मनादिग्ध सर्वांगो भस्मदीप्तत्रिपुंड्रकः ॥ ३० ॥ भस्मशायी च पुरुषो भस्मनिष्ठ इतिस्मृतः ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्यारोगाश्चातीव दुःसहाः ॥ ३१ ॥ भस्मनिष्ठस्य सान्निध्याद्विद्रवंति न संशयः ॥ भासनाद्भसितं प्रोक्तं भस्मकल्मषभक्षणात् ॥ ३२ ॥ भूतिर्भूतिकरी पुंसां रक्षा रक्षा करी पुरा ॥ त्रिपुंड्रधारणं दृष्ट्वा भूतप्रेतपुरः सराः ॥ ३३ ॥ भीताः प्रकंपिता शीघ्रं नश्यंत्येव न संशयः ॥ स्मरणादेव रुद्रस्य यथा पापं प्रणश्यति ॥ ३४ ॥ अप्यकार्यसहस्राणि कृत्वा यः स्नाति भस्मना ॥ तत्सर्वं दहते भस्म यथाऽग्निस्तेजसा वनम् ॥३५॥ कृत्वापि चातुलं पापं मृत्युकालेऽपि यो द्विजः ॥ भस्मस्नायी भवेत्कश्चित्क्षिप्रं पापैः प्रमुच्यते ॥ ३६ ॥ भस्मस्नानाद्धि शुद्धात्मा जितक्रोधो जितेंद्रियः ॥ मत्समीपं समागम्य न सभूयोऽभिवर्तते ॥ ३७ ॥ वनस्पतिगते सोमे भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥ अर्चित शंकरं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३८ ॥

रुद्रके स्मरण करते ही पाप नाश होजाते हैं ॥ ३४ ॥ जो सहस्रों अकार्य करके भी स्नान करता है वह भस्म सब नष्ट करती जैसे अग्निके तेजसे वन नष्ट हो जाता है ॥ ३५ ॥ जो ब्राह्मण अनेक पाप करके भी अन्तसमयमें भस्म स्नान करे वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ३६ ॥ भस्म स्नानसे शुद्धात्मा जितक्रोध और जितेन्द्रिय होकर मेरे समीप आकर फिर संसारमें नहीं पड़ता है ॥ ३७ ॥ जिस समय आमावास्याको चन्द्रमा वनस्पतिमें जाता है उस समय शरीरमें भस्म लगाकर शंकरके दर्शन करनेसे सब पाप दूर होजाते हैं अमावसको पंद्रहकला क्षीण होती हैं सो सोलहवीं कलासे सब प्राणियोंमें प्रवेश करके प्रभातको

प्रगट होता है ॥ ३८ ॥ जो पुरुष आयु ऐश्वर्य मोक्षकी कामना करे वह नित्य भस्म धारण करे ॥ ३९ ॥ यह त्रिपुंड्र ब्रह्मा विष्णु शिवात्मक परम पवित्र है जो घोर राक्षस प्रेत और क्षुद्र जन्तु हैं ॥ ४० ॥ वह त्रिपुंड्रधारी देखकर पलायन करते हैं इसमें संदेह नहीं शौचादि कर्मकर उज्ज्वल जलमें स्नान करके ॥ ४१ ॥ शिखासे मस्तकपर्यंत भस्म लगावे, जल स्नान तो देहका बाह्य मल दूर करता है ॥ ४२ ॥ और विभूतिस्नान बाहर भीतरका मल हरण करता है इससे जल स्नान न किया हो तो भी विभूति स्नान करे ॥ ४३ ॥ हे मुने ! भस्म स्नानसे विना किया कार्य भी नहीं किया है. यह श्रुतिमें कहा भस्मस्ना न आग्नेय स्नान कहाता है ॥ ४४ ॥ जब भीतर बाहर शुद्ध हो तब शिव पूजाका फल प्राप्त होता है जो बाह्य मल नाश करे वही स्नान है ॥ ४५ ॥ पर

आयुष्कामोऽथवा विद्वान्भूतिकामोथवा नरः ॥ नित्य वै धारयेद्भस्म मोक्षकामी च वै द्विजः ॥ ३९ ॥ त्रिपुंड्रं परमं पुण्यं ब्रह्मविष्णु शिवात्मकम् ॥ ये घोरा राक्षसाः प्रेता ये चान्ये क्षुद्रजंतवः ॥ ४० ॥ त्रिपुंड्रधारणं दृष्ट्वा पलायंते न संशयः ॥ कृत्वा शौचादिकं कर्म स्नात्वा तु विमले जले ॥ ४१ ॥ भस्मनोद्‌धूलनं कार्यमापादतलमस्तकम् ॥ केवलं वारुणं स्नानं देहे बाह्य मलापहम् ॥ ४२ ॥ विभूतिस्नानमनघं बाह्यांतरमलापहम् ॥ त्यक्त्वाऽपि वारुणं स्नानं तत्परः स्यान्न संशयः ॥ ४३ ॥ कृतमप्यकृतं सत्यं भस्मस्नानं विना मुने ॥ भस्मस्नानं श्रुतिप्रोक्तमाग्नेयं स्नानमुच्यते ॥ ४४ ॥ अंतर्बहिश्च संशुद्धं शिवपूजाफलं लभेत् ॥ यद्बाह्यमलमात्रस्य नाशकं स्नान मस्ति तत् ॥ ४५ ॥ तन्नाशयति तीव्रेण प्राणिबाह्यांतरं मलम् ॥ कृत्वाऽपि कोटिशो नित्यं वारुणं स्नानमादरात् ॥ ४६ ॥ न भव त्येव पूतात्मा भस्मस्नानं विना मुने ॥ यद्भस्मस्नानमाहात्म्यं तद्वदो वेद तत्त्वतः ॥ ४७ ॥ यद्वा वेद महादेवः सर्वदेवशिखामणिः ॥ भस्मस्नानमकृत्वैव यः कुर्यात्कर्म वैदिकम् ॥ ४८ ॥ स तत्कर्म कालार्धार्धमपि नाप्नोति वस्तुतः ॥ यः करिष्यति यत्नेन भस्मस्नानं यथाविधि ॥ ४९ ॥ स एवैकः सर्वकर्मस्वधिकारी श्रुतिश्रुतः ॥ पावनं पावनानां च भस्मस्नानं श्रुतिश्रुतम् ॥ ५० ॥

भस्म तीव्रतासे प्राणीके बाहर भीतरका मलनाश करती है जो करोडों वार आदरसे जल स्नान किया जाय॥४६॥हे मुने ! वह भस्मस्नान विना पवित्र नहीं होता है जो भस्म स्नानका माहात्म्य है वह तत्त्वसे वेदही जानता है ॥४७॥ अथवा सब देवताओंके अधिपति महादेव उसको जानते हैं भस्म स्नानके विना किये जो वैदिक कर्म करता है ॥ ४८ ॥ वह उस कर्मकी कलाके आधेको भी प्राप्त नहीं होता जो यत्नसे भस्म स्नान विधिपूर्वक करता है ॥ ४९ ॥ वह एकही सब कर्ममें अधिकारी है यह शास्त्रमें कथित है वेदमें कहा है भस्म स्नान पवित्रोंका भी पवित्र करनेवाला है ॥ ५० ॥

जो मोहसे नहीं करता है वह महापातकी होता है जो पुण्य ब्राह्मणोंको अनन्त जलस्नानसे प्राप्त होता है ॥५१॥ उससे अनन्त गुण भस्मस्नानसे प्राप्त होता है
तीनों कालमें यत्नसे भस्मस्नान करना चाहिये ॥५२॥ भस्मस्नान श्रौतकर्म है उसके त्यागनेसे पतित होता है मूत्रादि उत्सर्जनके उपरान्त यत्नसे भस्मस्नान
॥ ५३ ॥ करना चाहिये अन्यथा वह पवित्र न होगा जिसने विधिपूर्वक शौच किया हो वह ब्राह्मण भस्म स्नानके विना ॥ ५४ ॥ पवित्र नहीं होता न किसी
कर्ममें अधिकारी होता है अपानवायुके आनेमें जंभाई स्कन्दन तथा छींक आनेमें ॥ ५५ ॥ तथा थूकादिके निकलनेमें यत्नसे भस्मस्नान करना चाहिये यह
भस्म स्नान माहात्म्यका एकदेश तुमसे वर्णन किया ॥५६॥ फिर भी भस्मस्नानका माहात्म्य तुमसे कहता हूं हे मुनिश्रेष्ठ ! सावधान होकर आप सुनो ॥ ५७ ॥

न करिष्यति यो मोहात्स महापातकी भवेत् ॥ अनंतैर्वारुणैः स्नानैर्यत्पुण्यं प्राप्यते द्विजैः ॥ ५१ ॥ ततोऽनंतगुणं पुण्यं भस्मस्नानादवा
प्यते ॥ कालत्रयेऽपि कर्तव्यं भस्मस्नानं प्रयत्नतः ॥५२॥ भस्मस्नानं स्मृतं श्रौतं तत्त्यागी पतितो भवेत ॥ मूत्राद्युत्सर्जनांते तु भस्मस्नानं
प्रयत्नतः ॥५३॥ कर्तव्यमन्यथा पूता न भविष्यंति मानवाः ॥ विधिवत्कृतशौचोऽपि भस्मस्नानं विना द्विजः ॥ ५४ ॥ न भविष्यति
पूतात्मा नाधिकार्यपि कर्मणि अपानवायु निर्याते जृंभणे स्कंदने क्षुते ॥ ५५ ॥ श्लेष्मोद्गारेऽपि कर्तव्यं भस्मस्नानं प्रयत्नतः ॥ श्रीभ
स्मस्नानमाहात्म्यस्यैकदेशोऽत्र वर्णितः ॥ ५६ ॥ पुनश्च संप्रवक्ष्यामि भस्मस्नानोत्थितं फलम् ॥ सावधानेन मनसा श्रोतव्यं मुनिपुं
गव ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अग्निरित्यादिभिर्मं
त्रैर्भस्म संशोध्य सादरम् ॥ धारणीयं ललाटादौ त्रिपुण्ड्रं केवलं द्विजः ॥ १ ॥ ब्रह्मक्षत्रियवैश्याश्च एते सर्वे द्विजाः स्मृताः ॥ तस्माद्
द्विजैः प्रयत्नेन त्रिपुण्ड्रं धार्यमन्वहम् ॥ २ ॥ यस्योपनयनं ब्रह्मन् स एव द्विज उच्यते ॥ तस्माच्छ्रौतं द्विजैः कार्यं त्रिपुण्ड्रस्य च धार
णम् ॥ ३ ॥ विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः सत्कर्मसमाचरेत् ॥ तत्कृतं चाऽकृतप्रायं भवत्येव न संशयः ॥ ४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीनारायण बोले अग्नि इत्यादि मंत्रोंसे आदरपूर्वक भस्मको शोधन कर
ब्राह्मणको ललाटादिमें त्रिपुंड्र धारण करना चाहिये ॥ १ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह द्विज कहाते हैं इस कारण द्विजोंको यत्नपूर्वक त्रिपुंड्रधारण करना नित्य
उचित है ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिसका यज्ञोपवीत होगया हो उसीको ब्राह्मण कहते हैं इस कारण श्रौत ब्राह्मणोंको त्रिपुंड्रधारण करना चाहिये ॥ ३ ॥ जो
विभूति न धारण करके दूसरा सत्कर्म करता है वह निःसन्देह उसका विना कियेके समान होता है ॥ ४ ॥

भस्मधारण विना गायत्रीका उपदेश उचित नहीं अंगमें भस्मधारण करकेही गायत्रीका जप करे ॥ ५ ॥ मुनिश्रेष्ठ ! गायत्रीही ब्राह्मणताकी मूल है वह विना भस्मधारे किसीके यथार्थ उपदेश नहीं होते ॥६॥ हे मुने ! तबतक गायत्री ग्रहणका अधिकार नहीं है जबतक अग्निकी प्रगट हुई भस्म भालपर धारण नहीं की जाती ॥ ७ ॥ भस्मके विना मस्तकमें ब्राह्मणता नहीं दीखती हे ब्रह्मन् ! इसी कारण मैंने इसे हेतुयुक्त पुण्यदायक कहा है ॥ ८ ॥ जिसके मस्तकमें मंत्रसे पवित्र भस्म दिखाई देती है हम उसकोही विद्वान् ब्राह्मण कहते हैं यह सत्य है ॥ ९ ॥ जिसकी मणिके समान भस्म संग्रहमें स्वभाविक प्रीति है हे ब्राह्मन् ! वही ब्राह्मण है यह मैं सत्य कहता हूं ॥ १० ॥ और मणिके समान भस्म संग्रहमें जिसकी स्वभाविक प्रीति नहीं है वह जन्म जन्मान्तर चांडाल जानना

न गायत्र्युपदेशोऽपि भस्मनो धारणं विना ॥ ततो धृत्वैव भस्मांगे गायत्रीजपमाचरेत् ॥ ५ ॥ गायत्रीं मूलमेवाहुर्ब्राह्मण्ये मुनिपुंगव ॥ सा भस्मधारणाभावे न केनाप्युपदिश्यते ॥ ६ ॥ न तावदधिकारोऽस्ति गायत्रीग्रहणेमुने ॥ यावन्न भस्म भालादौ धृतमग्निसमुद्भवम् ॥ ७ ॥ भस्महीनललाटत्वं न ब्राह्मण्यानुमापकम् ॥ एकमेव मया ब्रह्मन्हेतुरुक्तः सुपुण्यदः ॥ ८ ॥ मंत्रपूतं सितं भस्म ललाटे परिवर्तते ॥ स एव ब्राह्मणो विद्वान्सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥ ९ ॥ यस्यास्ति सहजा प्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे ॥ स एव ब्राह्मणो ब्रह्मन्सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥ १० ॥ न यस्य सहजा प्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे ॥ स चांडाल इति ज्ञेयो जन्म जन्मांतरे ध्रुवम् ॥ ११ ॥ न यस्य सहजा प्रीतिस्त्रिपुंड्रोद्धूलनादिषु ॥ स चांडाल इति ज्ञेयः सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥१२॥ ये भस्मधारणं त्यक्त्वा भुंजंते च फलादिकम् ॥ ते सर्वे नरकं घोरं प्राप्नुवंति न संशयः ॥ १३ ॥ "विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः शिवं पूजयिष्यति ॥ स दुर्भगः शिवद्वेष्टा स द्वेषो नरकप्रदः ॥ सर्वकर्मबहिर्भूतो भस्मधारणवर्जितः ॥" विभूतिधारणं त्यक्त्वा कुर्वन् हेमतुलामपि ॥ न तत्फलमवाप्नोति पतितो हि भवेद्धि सः ॥ १४ ॥ यथोपवीतरहितैः संध्या न क्रियते द्विजैः ॥ तथा संध्या न कर्तव्या विभूतिरहितैरपि ॥ १५ ॥

॥ ११ ॥ जिसकी त्रिपुंड्र और भस्ममें स्वाभाविक प्रीति नहीं वह अन्त्यज है यह मैं सत्य कहता हूं ॥ १२ ॥ जो भस्म धारण किये विना फलादिक खाते हैं वे सब घोर नरकको जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ "विभूति धारण किये विना जो शंकरका पूजन करेंगे वह दुर्भागी शिवद्वेषी हैं वही द्वेष नरकका देनेवाला है विना विभूति धारण किये जो सुवर्णकी तुला करता है वह उसके फलको प्राप्त नहीं होता वह पतित होता है ॥ १४ ॥ जैसे उपवीत रहित ब्राह्मण सन्ध्या नहीं करता इसी प्रकार विभूतिके विना सन्ध्या न करे ॥ १५ ॥

जो मोहसे नहीं करता है वह महापातकी होता है जो पुण्य ब्राह्मणोंको अनन्त जलस्नानसे प्राप्त होता है ॥५१॥ उससे अनन्त गुण भस्मस्नानसे प्राप्त होता है तीनों कालमें यत्नसे भस्मस्नान करना चाहिये ॥५२॥ भस्मस्नान श्रौतकर्म है उसके त्यागनेसे पतित होता है मूत्रादि उत्सर्जनके उपरान्त यत्नसे भस्मस्नान ॥ ५३ ॥ करना चाहिये अन्यथा वह पवित्र न होगा जिसने विधिपूर्वक शौच किया हो वह ब्राह्मण भस्म स्नानके विना ॥ ५४ ॥ पवित्र नहीं होता न किसी कर्ममें अधिकारी होता है अपानवायुके आनेमें जंभाई स्कन्दन तथा छींक आनेमें ॥ ५५ ॥ तथा थूकादिके निकलनेमें यत्नसे भस्मस्नान करना चाहिये यह भस्म स्नान माहात्म्यका एकदेश तुमसे वर्णन किया ॥५६॥ फिर भी भस्मस्नानका माहात्म्य तुमसे कहता हूं हे मुनिश्रेष्ठ ! सावधान होकर आप सुनो ॥ ५७ ॥

न करिष्यति यो मोहात्स महापातकी भवेत् ॥ अनंतैर्वारुणैः स्नानैर्यत्पुण्यं प्राप्यते द्विजैः ॥ ५१ ॥ ततोऽनंतगुणं पुण्यं भस्मस्नानादवाप्यते ॥ कालत्रयेऽपि कर्तव्यं भस्मस्नानं प्रयत्नतः ॥५२॥ भस्मस्नानं स्मृतं श्रौतं तत्त्यागी पतितो भवेत् ॥ मूत्राद्युत्सर्जनांते तु भस्मस्नानं प्रयत्नतः ॥५३॥ कर्तव्यमन्यथा पूता न भविष्यंति मानवाः ॥ विधिवत्कृतशौचोऽपि भस्मस्नानं विना द्विजः ॥ ५४ ॥ न भविष्यति पूतात्मा नाधिकार्यपि कर्मणि अपानवायु निर्याते जृंभणे स्कंदने क्षुते ॥ ५५ ॥ श्लेष्मोद्गारेऽपि कर्तव्यं भस्मस्नानं प्रयत्नतः ॥ श्रीभस्मस्नानमाहात्म्यस्यैकदेशोऽत्र वर्णितः ॥ ५६ ॥ पुनश्च संप्रवक्ष्यामि भस्मस्नानोत्थितं फलम् ॥ सावधानेन मनसा श्रोतव्यं मुनिपुंगव ॥ ५७ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैर्भस्म संशोध्य सादरम् ॥ धारणीयं ललाटादौ त्रिपुण्ड्रं केवलं द्विजः ॥ १ ॥ ब्रह्मक्षत्रियवैश्याश्च एते सर्वे द्विजाः स्मृताः ॥ तस्माद्द्विजैः प्रयत्नेन त्रिपुण्ड्रं धार्यमन्वहम् ॥ २ ॥ यस्योपनयनं ब्रह्मन् स एव द्विज उच्यते ॥ तस्माच्छ्रौतं द्विजैः कार्यं त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम् ॥ ३ ॥ विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः सत्कर्मसमाचरेत् ॥ तत्कृतं चाऽकृतप्रायं भवत्येव न संशयः ॥ ४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीनारायण बोले अग्नि इत्यादि मंत्रोंसे आदरपूर्वक भस्मको शोधन कर ब्राह्मणको ललाटादिमें त्रिपुंड्र धारण करना चाहिये ॥ १ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह द्विज कहाते हैं इसकारण द्विजोंको यत्नपूर्वक त्रिपुंड्रधारण करना नित्य उचित है ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिसका यज्ञोपवीत होगया हो उसीको ब्राह्मण कहते हैं इस कारण श्रौत ब्राह्मणोंको त्रिपुंड्रधारण करना चाहिये ॥ ३ ॥ जो विभूति न धारण करके दूसरा सत्कर्म करता है वह निःसन्देह उसका विना कियेके समान होता है ॥ ४ ॥

भस्मधारण विना गायत्रीका उपदेश उचित नहीं अंगमें भस्मधारण करकेही गायत्रीका जप करे ॥ ५ ॥ मुनिश्रेष्ठ ! गायत्रीही ब्राह्मणताकी मूल है वह विना भस्मधारे किसीके यथार्थ उपदेश नहीं होते ॥६॥ हे मुने ! तबतक गायत्री ग्रहणका अधिकार नहीं है जबतक अग्निकी प्रगट हुई भस्म भालपर धारण नहीं की जाती ॥ ७ ॥ भस्मके विना मस्तकमें ब्राह्मणता नहीं दीखती हे ब्रह्मन् ! इसी कारण मैंने इसे हेतुयुक्त पुण्यदायक कहा है ॥ ८ ॥ जिसके मस्तकमें मंत्रसे पवित्र भस्म दिखाई देती है हम उसकोही विद्वान् ब्राह्मण कहते हैं यह सत्य है ॥ ९ ॥ जिसकी मणिके समान भस्म संग्रहमें स्वभाविक प्रीति है हे ब्राह्मन् ! वही ब्राह्मण है यह मैं सत्य कहता हूं ॥ १० ॥ और मणिके समान भस्म संग्रहमें जिसकी स्वभाविक प्रीति नहीं है वह जन्म जन्मान्तर चांडाल जानना

न गायत्र्युपदेशोऽपि भस्मनो धारणं विना ॥ ततो धृत्वैव भस्मांगे गायत्रीजपमाचरेत् ॥ ५ ॥ गायत्रीं मूलमेवाहुर्ब्राह्मण्ये मुनिपुंगव ॥ सा भस्मधारणाभावे न केनाप्युपदिश्यते ॥ ६ ॥ न तावदधिकारोऽस्ति गायत्रीग्रहणेमुने ॥ यावन्न भस्म भालादौ धृतमग्निसमुद्भवम् ॥ ७ ॥ भस्महीनललाटत्वं न ब्राह्मण्यानुमापकम् ॥ एकमेव मया ब्रह्मन्हेतुरुक्तः सुपुण्यदः ॥ ८ ॥ मंत्रपूतं सितं भस्म ललाटे परिव र्तते ॥ स एव ब्राह्मणो विद्वान्सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥ ९ ॥ यस्यास्ति सहजा प्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे ॥ स एव ब्राह्मणो ब्रह्मन्सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥ १० ॥ न यस्य सहजा प्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे ॥ स चांडाल इति ज्ञेयो जन्म जन्मांतरे ध्रुवम् ॥ ११ ॥ न यस्य सहजा प्रीतिस्त्रिपुंड्रोद्धूलनादिषु ॥ स चांडाल इति ज्ञेयः सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥१२॥ ये भस्मधारणं त्यक्त्वा भुंजंते च फलादिकम् ॥ ते सर्वे नरकं घोरं प्राप्नुवंति न संशयः ॥ १३ ॥ "विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः शिवं पूजयिष्यति ॥ स दुर्भगः शिवद्वेष्टा स द्वेषो नरक प्रदः ॥ सर्वकर्मबहिर्भूतो भस्मधारणवर्जितः ॥" विभूतिधारणं त्यक्त्वा कुर्वन् हेमतुलामपि ॥ न तत्फलमवाप्नोति पतितो हि भवेद्धि सः ॥ १४ ॥ यथोपवीतरहितैः संध्या न क्रियते द्विजैः ॥ तथा संध्या न कर्तव्या विभूतिरहितैरपि ॥ १५ ॥

॥ ११ ॥ जिसकी त्रिपुंड्र और भस्ममें स्वाभाविक प्रीति नहीं वह अन्त्यज है यह मैं सत्य कहता हूं ॥ १२ ॥ जो भस्म धारण किये विना फलादिक खाते हैं वे सब घोर नरकको जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ "विभूति धारण किये विना जो शंकरका पूजन करेंगे वह दुर्भागी शिवद्वेषी हैं वही द्वेष नरकका देनेवाला है विना विभूति धारण किये जो सुवर्णकी तुला करता है वह उसके फलको प्राप्त नहीं होता वह पतित होता है ॥ १४ ॥ जैसे उपवीत रहित ब्राह्मण सन्ध्या नहीं करता इसी प्रकार विभूतिके विना सन्ध्या न करे ॥ १५ ॥

उपवीत रहितोंको संध्यामें कहीं प्रतिनिधि होता है गायत्रीका जपादि तथा उपोषणादि होता है ॥ १६ ॥ पर विभूतिमें कोई प्रतिनिधि नहीं होता यदि कोई विभूति विना धारण किये संध्या करे ॥ १७ ॥ तो उसको प्रत्यवाय लगता है विना भस्मके यह ब्राह्मण गयत्रीका अधिकारी नहीं होता जैसे अन्त्यज वेदोंको सुनकर प्रत्यवायको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ इस प्रकार भस्म विना धारण किये शैव संध्या करनेसे प्रायश्चित्तको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ स्मार्त वा उसके अभावमें लौकिक कर्म सावधान होकर चाहे जैसे कर्म करे वह भस्मसंयुक्त हो वो पवित्र होता है ॥ २० ॥ संध्यादि कर्मोंमें ब्राह्मणको पवित्रतापूर्वक भस्मधारण करनी चाहिये भस्मनिष्ठ पुरुषको पाप स्पर्श नहीं करते ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक भस्मधारण करनी चाहिये अपने दहिने हाथसे मध्यकी तीन अंगुलीसे

गतोपवीतैः संध्यायां कार्यः प्रतिनिधिः क्कचित् ॥ जपादिकं तु सावित्र्यास्तथैवोपोषणादिकम् ॥ १६ ॥ विभूतिधारणे त्वन्यो नास्ति
प्रतिनिधिः क्कचित् ॥ विभूति धारणं त्यक्त्वा यदि संध्यां करोति यः ॥ १७ ॥ प्रत्यवैत्येव येनासौ नाधिकारी तदा द्विजः ॥ यथा
श्रुत्वांत्यजो वेदान्प्रत्यवैति तथा द्विजः ॥ १८ ॥ प्रत्यवैति न सन्देहः संध्याकृद्भस्मवर्जितः ॥ संपादनायं यत्नेन श्रौतं भस्म सदा द्विजे
॥ १९ ॥ स्मार्तं वा तदभावे तु लौकिकं वा समाहितैः ॥ यादृशं तादृशं वाऽस्तु पवित्रं भस्म संततम् ॥२०॥ धारणीयं प्रयत्नेन द्विजैः
संध्यादिकर्मसु ॥ न संविशंति पापानि भस्मनिष्ठं ततः सदा ॥ २१ ॥ कर्तव्यमपि यत्नेन ब्राह्मणैर्भस्मधारणम् ॥ मध्यांगुलित्रयेणैव
स्वदक्षिणकरस्य तु ॥ २२ ॥ षडंगुलायतं मानमपि चाधिकमानकम् ॥ नेत्र युग्मप्रमाणेन भाले दीप्तं त्रिपुंड्रकम् ॥ २३ ॥ कदाचिद्भ
स्मना कुर्यात्स रुद्रो नात्र संशय ॥ अकारो नामिका प्रोक्त उकारो मध्यमांगुलिः ॥ २४ ॥ मकारस्तर्जनी तस्मात्त्रिपुंड्रं त्रिगुणात्मकम् ॥
त्रिपुंड्रंमध्यमातर्जन्यनामाभिरनुलोमतः ॥ २५ ॥ अत्र ते कथयाम्येनमितिहासं पुरातनम् ॥ कदाचिदथदुर्वासाः पितृलोकं गतोऽभवत्
॥ २६ ॥ भस्मसंदिग्धसर्वांगो रुद्राक्षाभरणान्वितः ॥ शिवशंकरसर्वात्मञ्छ्रीमातर्जगदंबिके ॥ २७ ॥

धारण करे ॥ २२ ॥ त्रिपुंड्रका छः अंगुली वा इससे अंगुलीका भी प्रमाण है दोनों नेत्रोंके प्रमाण पर्यन्त मस्तकमें दीप्तिमान् त्रिपुंड्र ॥ २३ ॥ जो कभी भी भस्मका धारण करता है वह रुद्र होता है इसमें सन्देह नहीं, अकार अनामिका, उकार मध्यमा ॥ २४ ॥ मकार तर्जनी है इस प्रकार त्रिपुंड्र त्रिगुणात्मा है त्रिपुंड्रको मध्यमा तर्जनीके अनुलोपसे लगावे ॥ २५ ॥ मैं इसमें पुरातन इतिहास कहता हूं एक समय दुर्वासा पितृलोकको गये ॥ २६ ॥ सर्वांगमें भस्म लगाये रुद्राक्षके आभरणोंसे युक्त श्रीशंकर सर्वात्मन् श्रीमाता जगदम्बिका ॥ २७ ॥

इस प्रकार वहाँ तपस्वियोंके शिखामणि इन नामोंको उच्चारण करते गये तब कव्यवाडनलादि उस समय प्रत्युत्थान अभिवादन करते हुए ॥ २८ ॥ और आसनादिके उपचारसे बहुत मान करते हुए, तथा अनेक कथाओंसे परस्पर सम्भाषण करने लगे ॥ २९ ॥ उसी समय कुम्भीपाक नरकमें पड़े रहनेवालोंका घोर हाहाकार शब्द सुनाई दिया ॥ ३० ॥ कोई बोले मरे कोई बोले दग्ध हुए कोई बोले छिन्न भिन्न हुए इस प्रकार परस्पर रुदन करने लगे ॥ ३१ ॥ मुनिराज हृदय भर उस करुणा शब्दको सुनकर बड़े दुःखी हुए पितृनाथोंसे पूछा कि यह किनका शब्द है ॥ ३२ ॥ वे कहने लगे कि यह संयमनी पुरी है यहां यमराज पापियोंको कष्ट देते हैं ॥ ३३ ॥ अनेक कालरूपी कृष्णवर्ण भयंकर दूतोंके सहित इस पुरीके नायक यहां वर्तमान हैं ॥ ३४ ॥ यहां अनेक

नामानीति गृन्नुच्चैस्तापसानां शिखामणिः कव्यवाडादयस्ते तु प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥ २८ ॥ आसनाद्युपचारैश्च संमानं बहु चक्रिरे ॥ नानाकथाभिरन्योन्यसंभाषां चक्रिरे तदा ॥ २९ ॥ तस्मिंस्तु समये कुंभीपाकस्थानां तु पापिनाम् ॥ घोरः समभवच्छब्दो हा हताः स्मेति वादिनाम् ॥ ३० ॥ मृताः स्मेति वदंत्येके दग्धा स्मेतिपरे जगुः ॥ छिन्नाः स्मेति विभिन्नाः स्मेत्येवं रोदनकारिणः ॥ ३१ ॥ श्रुत्वा तं करुणं शब्दं दुःखितो मुनिराड् हृदि ॥ पप्रच्छ पितृनाथांस्तान्केषां शब्दोऽयमित्यति ॥ ३२ ॥ ते समूचुर्मुनेऽत्रैव पुरी संयमनी परा ॥ वर्तते यमराडत्र पापिनां भोगदायकः ॥ ३३ ॥ नानदूतैः कालरूपैः कृष्णवर्णैर्भयंकरैः ॥ सहितोऽत्रैव तत्पुर्या नायको विद्यतेऽनघ ॥ ३४ ॥ कुंडान्यनेकानि पापिनां भोगदानि च ॥ षडशीतिर्घोररूपैर्दूतैः परिवृतानि च ॥३५॥ तत्र मुख्यतमं कुंडं कुंभीपाकाभिधं महत् ॥ वर्तते तद्गतानां च यातनानां तु वर्णनम् ॥३६॥ कर्तुं न शक्यते कैश्चिदपि वर्षशतैरपि ॥ ये शिवद्रोहिणः संति तथा देवीविनिंदकाः ॥ ॥ ३७ ॥ ये विष्णुद्रोहिणः संति पतंत्यत्रैव ते मुने ॥ ये वेदनिंदकाः संति सूर्यस्य च गणेशितुः ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणानां द्रोहिणो ये पतं त्यत्रैव ते मुने ॥ कामाचाराश्च ये संति तप्तमुद्रांकिताश्च ये ॥ ३९ ॥

कुण्ड पापियोंको भोगदायक हैं जो चौरासी घोर दूतोंसे व्याप्त हैं ॥ ३५ ॥ वहां मुख्य कुंड कुंभी पाक नामवाला है वहां रहनेवालोंके दुःखका वर्णन ॥ ३६ ॥ कोई सौ वर्ष भी नहीं कर सकते जो शिव और देवीके द्रोही हैं तथा जो विष्णुके द्रोही हैं वे इस नरकमें पडते हैं जो वेद सूर्य और गणेशके निंदक हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हे मुने ! जो ब्राह्मणोंके द्रोही हैं वह यहां पतित होते हैं जो यथेच्छ मनके अनुसार आचरण करते तथा तपाकर बाहोंपर शंख चक्रादि लगाते हैं ॥ ३९ ॥

तथा जो त्रिशूलका अंक धारण करते हैं वह यहां पतित होते हैं "कारण कि यह बातें वेदानुकूल नहीं है" जो माता, पिता, गुरु, ज्येष्ठ, पुराण और स्मृतियों के निन्दक हैं ॥ ४० ॥ तथा जो धर्मके दूषक हैं वह यहां पतित होते हैं उन्हीका यह महाघोर दारुण शब्द सुनाई आता है ॥ ४१ ॥ यह हम रातदिन सुनते हैं इसके सुननेसे वैराग्य होता है यह उनके वचन सुन मुनिराज उनके देखनेकी इच्छासे ॥ ४२ ॥ शीघ्रही उठकर चले और कुण्डके समीप गये और नीचेको मुखकर देखने लगे उसी समय ॥ ४३ ॥ वहांके निवासियोंको स्वर्गसे अधिक सुख हुआ कोई हसने गाने और नाचने गाने लगे ॥ ४४ ॥ कोई उत्तम सुख बढनेसे परस्पर आलाप करने लगे मृदंग, मुरज, वीणा, ढक्का, दुंदुभीके शब्द ॥ ४५ ॥ पंचमस्वरसे भूषित वहांसे उठने लगे

त्रिशूलधारिणो ये च पतंत्यत्रैव ते मुने ॥ मातृ पितृ गुरुज्येष्ठपुराणस्मृतिनिंदका ॥ ४० ॥ ये धर्मदूषकाः संति पतंत्यत्रैव ते मुने ॥ तेषामयं महाघोरः शब्दः श्रवणदारुणः ॥ ४१ ॥ श्रूयतेऽस्माभिरनिशं वैराग्यं यच्छ्रुतेर्भवेत् ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा मुनिराट् तद्दिदृक्षया ॥ ४२ ॥ उत्थाय चलितस्तूर्णमयौ कुण्डसमीपतः ॥ अवाङ्मुखो ददर्शाऽधस्तस्मिन्नेव क्षणे मुने ॥ ४३ ॥ तत्रत्यानां पापिनां तु स्वर्गाधिकमभूत्सुखम् ॥ हंसति केचिद्गायन्ति नृत्यन्ति च तथा परे ॥ ४४ ॥ परस्परं रमंते तेऽप्युन्मत्ताः सुखवर्धनात् ॥ मृदंगमुरजावीणाढक्कादुंदुभिनिस्वनाः ॥ ४५ ॥ समुद्भूतास्तु मधुराः पंचमस्वरभूषिताः ॥ वसंतवल्लीपुष्पाणां सुगंध मरुतो ववुः ॥ ४६ ॥ मुनिस्तु चकितो दृष्ट्वा यमदूताश्च विस्मिताः ॥ शीघ्रं ते कथयामासुर्धर्मराजाय वेदिने ॥ ४७ ॥ महाराजमहाश्चर्यमधुने वाभवद्विभो ॥ स्वर्गादप्यधिकं सौख्यं कुंभीपाकस्थपापिनाम् ॥ ४८ ॥ निमित्तं नैव जानीमः कस्मादिदमभूद्विभो ॥ चकिताः स्म वयं सर्वे प्राप्ता देव त्वदंतिकम् ॥ ४९ ॥ निशम्य दूतवाणीं तां धर्मराट् शीघ्रमुत्थितः ॥ महामहिषमारूढो ययौ ते यत्र पापिनः ॥ ५० ॥

वसन्तकी वेलफूलोंकीसी हवा हवन करने लगी ॥ ४६ ॥ मुनि भी चकित और यमदूत भी विस्मित हुए उन्होंने शीघ्रही धर्मराजसे कहा ॥ ४७ ॥ हे महाराज ! इस समय बड़ा आश्चर्य हुआ कुंभीपाकवाले पापियोंको स्वर्गसे भी अधिक सुख हुआ है ॥ ४८ ॥ हे विभो ! यह किस कारणसे ऐसा हुआ इस निमित्तको मैं नहीं जानता हूं हम चकित होकर आपके समीप आकर प्राप्त हुए हैं ॥ ४९ ॥ यह वाणी सुन कर धर्मराज बहुत शीघ्रतासे उठे और महामहिषपर चढकर पापियोंके समीप गये ॥ ५० ॥

और दूतोंकेद्वारा इस बातको अमरावतीमें कहा भेजा, यह सुनकर देवराजभी देवताओंके सहित प्राप्त हुए ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकसे ब्रह्म वैकुण्ठसे भगवान् तथा दूसरे सब लोकपालभी वहां आकर प्राप्त हुए ॥ ५२ ॥ अपने गणोंके सहित कुंभीपाकको घेर कर खड़े हुए और वहांके जीवोंको स्वर्गसे अधिक सुखी देखने लगे ॥ ५३ ॥ सब चकित रहे किसीने उसके कारणको न जाना और बोले अहो यह कुण्ड तो पापके भोगके निमित्त किया था ॥ ५४ ॥ जब यहां यह सुख हुआ तो फिर पापसे क्या भय होगा परमात्माकी की हुई वेदमर्यादा कैसे छिन्न हुई ॥ ५५ ॥ भगवान्ने अपने संकल्पको मिथ्या किस प्रकार किया यह बड़ा आश्चर्य है इस प्रकार सब परस्पर कहने लगे ॥ ५६ ॥ समीपवर्ती होकर भी किसीने इस कारणको न जाना इसी समय भगवान् विष्णु देवता

तां वार्तां प्रेषयामास दूतद्वाराऽमरावतीम् ॥ श्रुत्वा तां देवराजोऽपि प्राप्तो देवगणैः सह ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकात्पद्मजोऽपि वैकुंठाद्विष्टर श्रवाः ॥ तत्तल्लोकाच्च दिक्पालाः समाजग्मुर्गणैः सह ॥ ५२ ॥ परिवार्य स्थिताः सर्वे कुंभी पाकमितस्ततः ॥ अपश्यंस्तद्गताञ्जीवान्स्व र्गाधिकसुखान्वितान् ॥ ५३ ॥ चकिता एव ते सर्वे न विदुस्तस्य कारणम् ॥ अहो पापस्य भोगार्थं कुण्डमेतद्विनिर्मितम् ॥ ५४ ॥ तत्र सौख्यं यदा जातं तदा पापात्तु किं भयम् ॥ उच्छिन्ना वेदमर्यादा परमेशकृता कथम् ॥ ५५ ॥ भगवान्स्वस्य संकल्पं वितथं कृतवा न्कथम् ॥ आश्चर्यमेतदाश्चर्यमेतदित्येवभाषिणः ॥ ५६ ॥ तटस्था अभवन्सर्वे न विदुस्तत्र कारणम् ॥ एतस्मिन्नंतरे शौरिः संमंत्र्य विबुधादिभिः ॥ ५७ ॥ ययौ कैश्चित्सुरगणैः सहितः शंकरालयम् ॥ पार्वत्या सहितं देवं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥ ५८ ॥ रमणीयतमांगं तं लावण्यखनिमद्भुतम् ॥ सदा षोडशवर्षीयं नानालंकारभूषितम् ॥ ५९ ॥ नानागणैः परिवृतं लालयंतं परां शिवाम् ॥ ददर्श चन्द्र मौलिं स चतुर्वेदं ननाम ह ॥ ६० ॥ वृत्तांतं कथयामास चमत्कृतमतिस्फुटम् ॥ एतस्य कारणं देव न जानीमः कथंचन ॥ ६१ ॥ वद तत्कारणं देव सर्वज्ञोऽसि यतः प्रभो ॥ विष्णुवाक्यं तदा श्रुत्वा प्रसन्नमुखपंकजः ॥ ६२ ॥

ओंसे सम्मतिकर ॥ ५७ ॥ कुछ देवताओंको साथले शिवके स्थानपर गये जहां वह देव कोटिकामके समान सुन्दर पार्वतीके सहित विराजमान् थे ॥ ५८ ॥ जो अतिशय रमणीय और लावण्यताकी खान है सदा सोलह वर्षकी अवस्था अनेक अलंकारोंसे शोभित ॥ ५९ ॥ नाना गणोंसे युक्त शिवाको प्यार करते हुए शंकरको देख चतुर्वेदके सहित हरिने प्रणाम किया ॥ ६० ॥ और उस चमत्कारका वृत्तान्त कहा कि हे देव ! हम इसका कारण नहीं जानते हैं ॥ ६१ ॥ हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हो इस कारण इसका कारण कहो विष्णुके यह वचन सुनकर प्रसन्नमुखसे ॥ ६२ ॥

मेघगंभीरवाणीसे शिवजी मधुर वाक्य बोले इसका निमित्त सुनो इसमें कुछभी आश्चर्य नहीं है ॥ ६३ ॥ यह सब भस्मकी महिमा है भस्मसे क्या नहीं होता है शैवसंमत दुर्वासाजी कुंभीपाक देखने गये ॥ ६४ ॥ सो वह नीचेको मुखकर देखने लगे उसी समय वायुवशसे उनके मस्तकसे भस्मके कण कुण्डमें पतित हुए ॥ ६५ ॥ उसीसे यह सब कुछ हुआ है यह भस्मकी महिमा है अबसे यह पितृलोक निवासियोंको तीर्थ ॥ ६६ ॥ होगा इसमें सन्देह नहीं यहां स्नान करनेसे सुख होगा और पितृतीर्थनाम होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ६७ ॥ यहां मेरी प्रतिमा देवीके सहित स्थापन करनी, पितृलोकनिवासी इसका पूजन करेंगे ॥ ६८ ॥ त्रिलोकीके सब तीर्थोंसे यह श्रेष्ठ होगा यहां पित्रीश्वरीकी पूजासे त्रिलोकी पूजित जाननी ॥ ६९ ॥ नारायण बोले हरि इस

उवाच मधुरं वाक्यं मेघगम्भीरया गिरा ॥ शृणु विष्णौ तन्निमित्तं नाश्चर्यं त्वत्र विद्यते ॥ ६३ ॥ भस्मनो महिमैवायं भस्मना किं भवेन्नहि ॥ कुम्भीपाकं गतो द्रष्टुं दुर्वासाः शैवसंमतः ॥ ६४ ॥ आवाङ्मुखो ददर्शाऽधस्तदा वायुवशाद्धरे ॥ भालभस्मकणास्तत्र पतिता दैवयोगतः ॥ ६५ ॥ तेन जातमिदं सर्वं भस्मनो महिमा त्वयम् ॥ इतः परं तु तत्तीर्थं पितृलोकनिवासिनाम् ॥ ६६ ॥ भविष्यति न संदेहो यत्र स्नात्वा सुखी भवेत् ॥ पितृतीर्थं तु तन्नाम्नाऽप्यत ऊर्ध्वं भविष्यति ॥ ६७ ॥ मल्लिंगस्थापनं तत्र कार्यं देव्याश्च सत्तम ॥ पूजयिष्यंति ते तत्र पितृलोकनिवासिनः ॥ ६८ ॥ त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि तत्र श्रेष्ठमिदं भवेत् ॥ पित्रीश्वरीपूजया तु त्रैलोक्यं पूजितं भवेत् ॥ ६९ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ इति देव वचः श्रुत्वा देवं मूर्ध्ना प्रणम्य च ॥ तदनुज्ञां समादाय ययौ देवांतिकं हरिः ॥ ७० ॥ तत्सर्वं कथयामास कारणं शंकरोदितम् ॥ साधु साध्विति ते प्रोचुरमरा मौलिचालनैः ॥ ७१ ॥ शशंसुर्भस्ममाहात्म्यं हरिब्रह्मादयः सुराः ॥ पितरश्चैव संतुष्टास्तीर्थलाभात्परंतप ॥ ७२ ॥ तत्तीर्थतीरे लिंगं च देव्या मूर्तिं यथाविधि ॥ स्थापयामासुरमराः पूजयामासुरन्वहम् ॥ ७३ ॥ तत्र ये प्राणिनोऽभूवन्पापभोगार्थमस्थिताः ॥ ते विमानं समारुह्य गता कैलासमंडलम् ॥ ७४ ॥

प्रकार हरके वचन सुन उनको शिरसे प्रणाम कर उनकी आज्ञा ले देवताओंके समीप आये ॥ ७० ॥ और शिवकी कही सब बात सुनाई सब देवता शिर कंपित करते धन्य २ कहने लगे ॥ ७१ ॥ हरि ब्रह्मादिक देवता भस्मका माहात्म्य कहने लगे हे परंतप ! तीर्थलाभसे पितरभी सन्तुष्ट हुए ॥ ७२ ॥ देवताओंने उस तीर्थके निकट शिवलिंग और देवीकी मूर्त्ति विधिपूर्वक स्थापन कर निरन्तर पूजा की ॥ ७३ ॥ उस स्थानमें पाप भोगनेको जितने प्राणी थे वे सब विमानोंमें बैठ कैलाशमंडलको चले गये ॥ ७४ ॥

वे भद्र नामवाले गण होकर आजतक वहां निवास करते हैं फिर वहांसे दूर देशमें कुंभीपाक नरक बनाया गया ॥ ७५ ॥ उस दिनसे देवताओंने वह शिवभक्तोंके जानेकी मनाई की है यह तुमने सब भस्मका माहात्म्य कहा ॥ ७६ ॥ हे मुने ! इससे अधिक और कुछ नहीं है ऊर्ध्वपुंड्रकी विधि अधिकारीके भेदसे ॥ ७७ ॥ वर्णन करता हूं जो वैष्णवशास्त्रमें है हे मुनिश्रेष्ठ ! ऊर्ध्वपुंड्रका प्रमाण दिव्य अंगुलीके भेद ॥ ७८ ॥ तथा वर्णमंत्र और उसका फल कहूंगा। पर्वतके अग्रभाग नदीके तट तथा विशेष कर शिवक्षेत्रमेंसे ॥ ७९ ॥ समुद्र तट, वल्मीक, तुलसीकी जड़की मृत्तिका लावे और सब मृत्तिका

नाम्ना भद्रगणास्ते तु वसंत्यद्यापि तत्र हि ॥ पुनश्च दूरदेशे तु कुंभीपाको विनिर्मितः ॥ ७५ ॥ निरुद्धं शैवगमनं देवैस्तत्र तु तद्दिनात् ॥ इति ते सर्वमाख्यातं भस्ममाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ७६ ॥ नातः परतरं किंचिदधिकं विद्यते मुने ॥ ऊर्ध्व पुंड्रविधिं चैवास्प्यधिकारीविभेदतः ॥ ७७ ॥ प्रवक्ष्ये मुनि शार्दूल वैष्णावागमलोकनात् ॥ ऊर्ध्वपुंड्रप्रमाणानि दिव्यान्यंगुलिभेदतः ॥ ७८ ॥ वर्णाभिमन्त्रदेवांश्च प्रवक्ष्यामि फलानि च ॥ पर्वताग्रे नदीतीरे शिवक्षेत्रे विशेषतः ॥ ७९ ॥ सिंधुतीरे च वल्मीके तुलसीमूलमाश्रिते ॥ मृद एतास्तु संग्राह्या वर्जयेदन्य मृत्तिकाः ॥ ८० ॥ श्यामं शांतिकरं प्रोक्तं रक्तवश्यकरं भवेत् ॥ श्रीकरं पीतमित्याहु धर्मदं श्वेतमुच्यते ॥ ८१ ॥ अंगुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमायुष्करी भवेत् ॥ अनामिकान्नदानित्यमुक्तिदा च प्रदेशिनी ॥ ८२ ॥ एतै रंगुलिभेदैस्तु कारयेन्न नखैः स्पृशेत् ॥ वर्तिदीपावलिकृतिं वेणुपत्राकृतिं तथा ॥ ८३ ॥ पद्मस्य मुकुलाकारं तथा कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ मत्स्यकूर्माकृति वापि शंखाकारं ततः परम् ॥ ८४ ॥ दशांगुलिप्रमाणं तु उत्तमोत्तममुच्यते ॥ नवांगुलं मध्यमं स्यादष्टांगुलमतः परम् ॥ ८५ ॥

वर्जित हैं ॥ ८० ॥ श्याम कांतिकारी, लाल वश्यकारी पीली श्रीकरनेवाली, श्वेत ऊर्ध्वपुण्ड्र धर्म देनेवाला है ॥८१॥ अंगुष्ठ पुष्टिदायक, मध्यमा आयुष्करी, अनामिका अन्नदायक, प्रदशनी अंगुली मुक्तिदायक है ॥ ८२ ॥ इन अगुंलीके भेदोंसे तिलक करे नखूनोंसे स्पर्श न करे जलते हुए दीपकके लोयके समान तथा बांसपत्रके आकार ॥ ८३ ॥ वा पद्मकी कलीके समान, प्रयत्नसे करे, मत्स्य कूर्मके आकार शंखके आंकार ॥ ८४ ॥ बनावे दशांगुलि प्रमाणका परमोत्तम तिलक है नौ अंगुलका मध्यम और आठ अंगुलका उससे भी निकृष्ट है ॥ ८५ ॥

१ ब्रह्माण्ड पुराणमें इसका विनियोग लिखा है ललाटमें बाहुवत् कानमें दंडके समान हृदयमें कमलके समान उदरमें दीपके समान स्कन्धमें जम्बू और पलाशवत् धारण करे ॥ ८४ ॥

सात छः पांच अंगुलका तीन प्रकारका मध्यम है चार तीन दो अंगुलका तीन प्रकार कनिष्ठ है ॥ ८६ ॥ ललाटमें केशवको जाने, उदरमें नारायण, हृदयमें माधव, कण्ठमें गोविन्द ॥ ८७ ॥ उदरके दक्षिणपार्श्वमें विष्णु, उसके दूसरे पार्श्व और बाहुमध्यमें मधुसूदन ॥ ८८ ॥ कर्णमें त्रिविक्रम, बाईकोखमें वामन, बाईभुजामें श्रीधर दहिने कानमें हृषीकेश ॥ ८९ ॥ पीठमें, पद्मनाभ कन्धेमें, दामोदरको स्मरण करे यह बारह वासुदेवके नाम लेकर तिलक करे यह तिलकोंके देवता हैं ॥ ९० ॥ प्रभात सन्ध्या समय पूजा और हवनके समय विधिसे इन नामोंको उच्चारणकर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे ॥ ९१ ॥ जो मनुष्य ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं वह अशुचि अनाचारी, चाहैं मनमें पाप भी स्मरण करते हों तो भी शुद्ध होते हैं ॥ ९२ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी जहां कहीं भी मृत्युको प्राप्त

सप्तषट्पंचभिः पुंड्रं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम् ॥ चतुस्त्रिद्व्यंगुलैः पुंड्रं कनिष्ठं त्रिविधं भवेत् ॥ ८६ ॥ लालटे केशवं विद्यान्नारायणमथो दरे ॥ माधवं हृदि विन्यस्य गोविंदं कंठकूपके ॥ ८७ ॥ उदरे दक्षिणे पार्श्वे विष्णु रित्यभिधीयते ॥ तत्पार्श्वबाहुमध्ये च मधुसूदनमेव च ॥ ८८ ॥ त्रिविक्रमकर्णदेशे वामकुक्षौ तु वामनम् ॥ श्रीधरं बाहुके वामे हृषीकेशं तु कर्णके ॥ ८९ ॥ पृष्ठे च पद्मनाभं तु ककुदा मोदरं स्मरेत् ॥ द्वादशैतानि नामानि वासुदेवेति मूर्धनि ॥ ९० ॥ पूजाकाले च होमे च सायं प्रातः समाहितः नामान्युच्चार्य विधिना धारयेदूर्ध्वपुंड्रकम् ॥ ९१ ॥ अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरेत् ॥ शुचिरेव भवेन्नित्यं मूर्ध्नि पुंड्रांकितो नरः ॥९२॥ ऊर्ध्वपुंड्रधरो मर्त्यो म्रियते यत्र कुत्रचित् ॥ श्वपाकोऽपि विमानस्थो मम लोके महीयते ॥ ९३ ॥ एकांतिनो महाभागा मत्स्वरूपविदोऽमलाः ॥ सांतरालान्प्रकुर्वंति पुंड्रान्विष्णुपदाकृतीन् ॥ ९४ ॥ परमैकांतिनोऽप्येवं मत्पादैकपरायणाः ॥ हरिद्राचूर्णसंयुक्ताञ्छूलाकारांस्तु वाऽम लान् ॥ ९५ ॥ अन्ये तु वैष्णवाः पुंड्रानच्छिद्रानपि भक्तितः ॥ प्रकुर्वीरन्दीपपद्मवेणु पत्रोपमाकृतीन् ॥ ९६ ॥ अच्छिद्रानपि सच्छि द्रान्कुर्युः केवलवैष्णवाः ॥ अच्छिद्रकरणे तेषां प्रत्यवायो न विद्यते ॥ ९७ ॥

हो चण्डाल पर्यंत भी हो वह विमानमें चढकर मेरे लोकको आताहै ॥ ९३ ॥ एकांत रहनेवाले महाभाग निर्मलही मेरा स्वरूप जानते हैं, जो दो रेखावाला मध्यमें शून्य विष्णुके पदके समान तिलक करते हैं ॥ ९४ ॥ वे परम एकान्ती भी मेरे चरणोंके भक्त हैं, जो हलदीके चूर्णसे संयुक्त शूलाकार अमल तिलक करते हैं ॥ ९५ ॥ तथा जो दूसरे वैष्णव भक्तिपूर्वक दीप कमलकी बांसीके पत्तेके समान अच्छिद्र तिलक करते हैं ॥ ९६ ॥ तथा दो अच्छिद्र और सच्छिद्र केवल वैष्णव तिलक करते हैं, तो अच्छिद्र करणमें उनको कोई विघ्न नहीं है ॥ ९७ ॥

जो एकांतिक परं वीरभक्त वैष्णव हैं उनको अच्छिद्र पुण्ड्रके करनेमें महा प्रत्यवाय प्राप्त होता है ॥ ९८ ॥ जो कोई दंडके आकार शोभित ऊर्ध्व पुण्ड्र करता है मध्यमें छिद्र रखता है अर्थात् दोनों रेखाओंके मध्यमें अवकाश रखता है केशवादि नामोंको उच्चारण करते हैं॥ ९९ ॥ तथा जो अवकाशयुक्त उज्ज्वल ऊर्ध्व पुण्ड्रोंको धारण करता है वह मानो मेरा मंदिरही करता है ॥ १०० ॥ विशाल मनोहर ऊर्ध्वपुण्ड्रके मध्यमें लक्ष्मी सहित अविनाशी विष्णु रमण करते हैं ॥ १ ॥ और जो द्विजाधम निरवकाश ऊर्ध्वपुंड्रको करता है वह विष्णुको स्थितकर वहांसे लक्ष्मी वियुक्त करता है ॥ २ ॥ जो मूढबुद्धि अच्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्रको करते हैं वह क्रमसे इक्कीस नरकोंको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ दोनों पार्श्व सीधे स्फुट करने चाहिये ऊर्ध्वपुण्ड्र दण्ड कमलके और

एकांतिनां प्रपन्नानां परमैकांतिनामपि ॥ अच्छिद्रपुंड्राकरणे प्रत्यवायो महान्भवेत् ॥ ९८ ॥ ऊर्ध्वपुंड्रं तु यः कुर्याद्दंडाकारं तु शोभनम् ॥ मध्येच्छिद्रं वैष्णवाश्च नमोऽन्तैः केशवादिभिः ॥ ९९ ॥ विमलान्यूर्ध्वपुंड्राणि सांतरालानि यो नरः ॥ करोति विपुलं तत्र मंदिरं मे करोति सः ॥ १०० ॥ ऊर्ध्वपुंड्रस्य मध्ये तु विशाले सुमनोहरे ॥ लक्ष्म्या साकं सहासीनो रमते विष्णुरव्ययः ॥ १ ॥ निरंतरालयः कुर्यादूर्ध्वपुंड्रं द्विजाधमः ॥ सहि तत्र स्थितं विष्णुं श्रियं चैव व्यपोहति ॥ २ ॥ अच्छिद्रमूर्ध्वपुंड्रं तु यः करोति विमूढधीः ॥ स पर्यायेण तानेति नरकानेकविंशतिम् ॥ ३ ॥ ऋजूनि स्फुटपार्श्वानि सांतरालानि विन्यसेत् ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्राणि दंडाब्जदीपमत्स्यनिभानि च ॥ ४ ॥ शिखोपवीतवद्धार्यमूर्ध्वपुंड्रं द्विजेन च ॥ विना कृताश्चेद्विफलाः क्रियाः सर्वा महामुने ॥ ५ ॥ तस्मात्सर्वेषु कार्येषु कार्यं विप्रस्य धीमतः ॥ उर्ध्वपुंड्रं त्रिशूलं च वर्तुलं चतुरस्रकम् ॥६॥ अर्धचन्द्रादिकं लिंगं वेदनिष्ठो न धारयेत् ॥ जन्मना लब्ध जातिस्तु वेदपंथानमाश्रितः ॥ ७ ॥ पुण्ड्रांतरं भ्रमाद्वाऽपि ललाटे नैव धारयेत् ॥ ख्यातिकांत्यादिसिद्ध्यर्थं चापि विष्णवागमादिषु ॥ ८ ॥

दीपकके समान करने चाहिये ॥ ४ ॥ द्विजको शिखा उपवीतके समान ऊर्ध्वपुंड्र धारण करना चाहिये हे महामुने ! इसके विना किये सब क्रिया निष्फल होगी ॥५॥ इस कारण सब कार्योंमें बुद्धिमानको ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिशूल, वर्तुलाकार चौकोन तिलक धारण करना चाहिये ॥६॥ वेदनिष्ठ पुरुषको अर्ध चन्द्रादि चिह्न धारण करने उचित नहीं हैं, वेदसे अतिरिक्तही इनके अधिकारी हैं जो जन्मसे द्विज हैं वेदमार्गका आश्रय लिये हैं॥७॥ वह भ्रमसे भी मस्तक ललाटमें कोई दूसरा पुण्ड्र न धारण करें वैष्णवशास्त्रोंमें ख्याति और कांति आदिकी सिद्धिके निमित्त तिलक धारण कहे हैं पर वैदिक पुरुषोंको नहीं चाहिये ॥८॥

वैदिक पुरुषको और तिलक न देना अर्थात् वैदिक जो तिरछे त्रिपुण्ड्रको छोड़कर किसी प्रकार भी भ्रमसे ॥ ९ ॥ ललाटमें भस्म वा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रको छोड़कर और कुछ धारण न करे जो मोहसे धारण करता है वह नारकी (आवागमन सम्पन्न) होता है जो ॥ १० ॥ वेदमार्गमें निष्ठावाला होकर यदि मोहसे अंकित होजाय वो अवश्य पतित होगा इसमें संदेह नहीं यही दशा अन्य पुण्ड्र धारणमें जाननी ॥ ११ ॥ वेदमार्गमें स्थित पुरुषको शरीर दगाना अंकित करना उचित नहीं, श्रौतधर्ममें निष्ठावालोंको वो श्रौतलिंगही युक्त है ॥ १२ ॥ हां जो श्रुतियोंके धर्ममें निष्ठ नही हैं उनके कारण वेदबाह्य चिह्न धारण करनेमें क्या निषेध है वेदसिद्धदेवताओंका सो वेदही चिह्न है ॥ १३ ॥ जो श्रौतकर्म नहिं करते तंत्रनिष्ठावाले हैं उनके अपरापर चिह्न होते हैं, पर

स्थितं पुण्ड्रांतरं नैव धारयेद्वैदिको जनः ॥ तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं संत्यज्य श्रौतं कथमपि भ्रमात् ॥ ९ ॥ ललाटे भस्मना तिर्यक्त्रिपुंड्रस्य च धारणम् ॥ विना पुण्ड्रांतरं मोहाद्धारयन्नारकी भवेत् ॥ ११० ॥ वेदमार्गैकनिष्ठस्तु मोहे नाप्यकितो यदि ॥ पतत्येव न संदेहस्तथा पुण्ड्रांतरादपि ॥ ११ ॥ नांकनं विग्रहे कुर्याद्वेदमार्ग समाश्रितः ॥ श्रौतधर्मैकनिष्ठानां लिंगं तु श्रौतमेव हि ॥ १२ ॥ अश्रौतधर्मनिष्ठानामश्रौतं लिंगमीरितम् ॥ देवता वेदसिद्धायास्तासां लिंगं तु वैदिकम् ॥ १३ ॥ अश्रौततंत्र निष्ठायास्तासामश्रौतमेव हि ॥ वेदसिद्धो महादेवः साक्षात्संसारमोचकः ॥ १४ ॥ भक्तानामुपकागय श्रौतं लिंगं दधाति च ॥ वेद सिद्धस्य विष्णोश्च श्रौतं लिंगं न चेतरत् ॥ १५ ॥ प्रादुर्भावविशेषाणामपि तस्य तदेव हि ॥ श्रौतं लिंगं तु विज्ञेयं त्रिपुंड्रोद्धूलनादिकम् ॥ १६ ॥ अश्रौतमूर्ध्वपुण्ड्रादिनैव तिर्यक्त्रिपुण्ड्रकम् ॥ वेदमार्गैकनिष्ठानां वेदोक्तेनैव वर्त्मना ॥ १७ ॥ ललाटे भस्मना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं धार्यमेव हि ॥ यस्तु नारायणं देवं प्रपन्नः परमं पदम् ॥ ११८ ॥

वैदिक कर्मसिद्ध महादेव साक्षात् संसारके छुडानेवाले हैं ॥ १४ ॥ भक्तोंके उपकारके निमित्तही श्रुतिसम्मत भस्मादि चिह्न धारण करते हैं वैदिक कर्मकारी वैष्णवको भी श्रुतिसम्मत भस्मही धारण करनी होगी अन्य नहीं (तप्तमुद्रा ऊर्ध्वपुंड्र तंत्रोक्त दीक्षावाले वैष्णवोंको है वेदानुसार वर्तनेवालोंको नहीं) ॥ १५ ॥ जो राम कृष्ण इत्यादि विशेष अवतार हुए हैं, उन्होंने वेदानुसार कर्मकर त्रिपुंड्र भस्म धारण की है इससे उनके भक्तोंको भी वही कर्तव्य है " रामचन्द्रका शिवस्थान वाल्मीकिमें और कृष्णका शिवकी तपस्या करना हरिवंश पुराणमें स्पष्ट है ॥ १६ ॥ जो श्रुतिकर्मसे बाह्य है वही ऊर्ध्वपुंड्रादिक धारण करते हैं वह तिर्यक् त्रिपुंड्र धारण नहीं करते जो वेदमार्गमें ही निष्ठावाले हैं वे वेदोक्त मार्गसे ॥ १७ ॥ ललाटमें भस्म और त्रिपुंड्र धारण करते हैं

जो नारायण देवकी शरण हो परम पदकी इच्छा करता है ॥ १८ ॥ वह गंधजलसे ललाटमें सदा शूलाकार तिलक धारे " इस अध्यायसे तथा दूसरे सूतसंहिता, पराशर कूर्मपुराणादिसे सिद्ध है कि भस्म धारण वैदिक कर्म है, त्रिपुंड्रवैदिक कर्म है, कारण कि श्रौतस्मार्त्त कर्मवालेही त्रिपुंड्र धारण करते हैं, इनकी पद्धति वैदिक है और दूसरे तिलकधारी वेदानुसार वा वेदको मुख्य मानकर कर्म नहीं करते बहुत क्या सन्ध्या आदि न करके सम्प्रदाय भेदमें रत हो रहे हैं इन्हीं कारणोंसे भारतवर्षमें वेदविद्या लुप्तसी होगई है " ॥ ११९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषायां पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥ श्रीनारायण बोले अब हम उत्तम संध्योपासन कहते हैं और भस्म धारणका माहात्म्य तो विस्तारसे कह चुके, सन्ध्याकालकी अधिष्ठात्री देवी गायत्रीकी उपासनाही सन्ध्योपासना है सन्ध्या तीन कालमें होती है सोई याज्ञवल्क्य कहते हैं पूर्वसन्ध्या गायत्री, मध्यमा सावित्री, पश्चिमा सरस्वतीरूप है गायत्री श्वेत, सावित्री

धारयेत्सर्वदा शूलं ललाटे गंधावारिणा ॥ ११९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते एकादशस्कन्धेपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ नारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां पुण्यं संध्योपासनमुत्तमम् ॥ भस्मधारणमाहात्म्यं कथितं चैव विस्तरात् ॥ १ ॥ प्रातः संध्याविधानं च कथयिष्यामि तेऽनघ ॥ प्रातःसंध्यां सनक्षत्रां मध्याह्ने मध्यभास्कराम् ॥ २ ॥ ससूर्यां पश्चिमां संध्यां तिस्रः संध्या उपासते ॥ तद्भेदानपि वक्ष्यामि शृणु देवर्षिसत्तम ॥ ३ ॥ उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका ॥ अधमा सूर्य सहिता प्रातःसंध्या त्रिधा मता ॥ ४ ॥ उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमाऽस्तमिते रवौ ॥ अधमा तारकोपेता सायंसंध्या त्रिधा मता ॥ ५ ॥

रक्त, सरस्वती कृष्णवर्ण है इसी क्रमसे ब्रह्म, रुद्र, विष्णुके समानाकार होनेसे तीन देवताओंका ध्यान कहा है, उपासनाका अर्थ ध्यान है कोई ध्यान जप कहते हैं, पर गायत्रीका जप प्रधान है, ऋषियोंने गायत्रीजपसेही दीर्घायु पायी है यह मनु कहते हैं ॥ १ ॥ हे पाप रहित ! अब मैं प्रभात सन्ध्याका विधान कहूंगा जब तारे दीखते हों उस समयसे आरंभ कर सूर्योदयपर्यन्त प्रातःसंध्या है । मध्य स्थानमें सूर्य आनेसेः मध्यमा है ॥ २ ॥ और सूर्यास्तसमयकी पश्चिमासंध्या है इसप्रकार तीन संध्या हैं हे नारद ! सुनो इनके भेदभी कहता हूं ॥ ३ ॥ तारोंसे युक्त उत्तमालुप्ततारेवाली मध्यमा; और सूर्य निकलेमें संध्या अथवा इसप्रकार प्रातःसंध्या तीन प्रकारकी है ॥ ४ ॥ सायंसन्ध्या सूर्यके सहित उत्तमा, सूर्यास्तमें मध्यमा, तारोंमें अधमा है इसप्रकार इसके भी तीन भेद हैं ॥ ५ ॥

ब्राह्मण वृक्ष है मूल उसकी संध्या है वेद शाखा है धर्म कर्म पत्ते हैं इससे मूलकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी मूल नष्ट होनेमें वृक्ष और शाखा कुछ नहीं रहती ॥ ६ ॥ जिसने संध्या न जानी तथा जिसने सन्ध्याकी उपासना न की, वह जीता हुआ ही शूद्र है वह मर करभी शूद्र होता है ॥ ७ ॥ इस कारण नित्यही सन्ध्योपासन करना चाहिये संध्याके विना और कर्मोंका अधिकारी नहीं होता ॥ ८ ॥ उदय और अस्तमें जबतक तीन घडी हो तबतक संध्योपासन करना चाहिये ऐसा न करनेसे प्रायश्चित्त लगता है ॥ ९ ॥ यदि कालातिक्रम हो जाय तो चतुर्थअर्घ्य दे अथवा आठ सौ गायत्री देवीको जपकर पीछे प्रायश्चित करे ॥ १० ॥ जिस कालमें जो कर्म करना है उस कालकी अधीश्वरी संध्याकी उपासना करके उस कर्मोंको करे ॥ ११ ॥ घरमें साधारण, गोष्ठमें मध्यमा,

विप्रो वृक्षो मूलकान्यत्र संध्या वेदः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् ॥ तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखा ॥ ६ ॥
संध्या येन विज्ञाता संध्या येनानुपासिता ॥ जीव मानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चैव जायते ॥ ७ ॥ तस्मान्नित्यं प्रकर्तव्यं संध्योपास
नमुत्तमम् ॥ तदभावेऽन्यकर्मादावधिकारी भवेन्नहि ॥ ८ ॥ उदयास्तमयादूर्ध्वं यावत्स्याद्घटिकात्रयम् ॥ तावत्संध्यामुपासीत प्रायश्चित्तं
ततः परम् ॥ ९ ॥ कालातिक्रमणे जाते चतुर्थार्घ्यं प्रदापयेत् ॥ अथवाऽष्ट शतं देवीं जप्त्वाऽऽदौतं समाचरेत् ॥ १० ॥ यस्मिन्काले
तु यत्कर्म तत्कालाधीश्वरीं च ताम् ॥ संध्यामुपास्य पश्चात्तु तत्कालीनं समाचरेत् ॥ ११ ॥ गृहे साधारणा प्रोक्ता गोष्ठे वै मध्यमा
भवेत् ॥ नदीतीरे चोत्तमा स्याद्देवीगेहेतदुत्तमा ॥ १२ ॥ यतो देव्या उपासेयं ततो देव्यास्तु सन्निधौ ॥ संध्यात्रयं प्रकर्तव्यं तदानं
त्याय कल्पते ॥ १३ ॥ एतस्या अपरं दैवं ब्राह्मणानां न विद्यते ॥ न विष्णूपासना नित्या न शिवोपासना तथा ॥ १४ ॥ यथा भवेन्म
हादेव्या गायत्र्याः श्रुतिचोदिता ॥ सर्ववेदसारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना ॥ १५ ॥ ब्रह्मादयोऽपि संध्यायां तां ध्यायंति जपंति च ॥
वेदाजपंति तां नित्यं वेदोपास्या ततः स्मृता ॥ १६ ॥

नदीतीरमें उत्तमा, और देवीके मंदिरमें उत्तमोत्तम है ॥ १२ ॥ जिस कारणसे कि यह देवीकी उपासना है इससे देवीके निकट तीनोंकालमें संध्या करे तो अनन्त फलकी देनेवाली है ॥ १३ ॥ इससे अधिक ब्राह्मणोंको और देवता नहीं है, विष्णु और महादेवकी उपासना अनन्त फल देनेवाली नहीं है ॥ १४ ॥ जैसे महादेवी गायत्रीकी उपासना वेदबोधित है सर्ववेदसारभूत गायत्रीकी अर्चना करनी चाहिये ॥ १५ ॥ ब्रह्मादिकभी सध्यामें उसीका ध्यान और जप करते हैं, वेदभी उसकी नित्य उपासना करते हैं इस कारण वह वेदद्वारा उपासनीय हैं ॥ १६ ॥

इस कारण सबही द्विज शाक्त हैं शैव वैष्णव नहीं हैं, आदिशक्ति वेदमाता गायत्रीकी उपासना करते हैं ॥ १७ ॥ आचमन कर केशवादिनामोंसे प्राणायाम करके केशव, नारायण, माधव ॥ १८ ॥ गोविंद, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, ॥१९॥ हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध ॥ २० ॥ पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नारसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि, श्रीकृष्ण ॥ २१ ॥ यह चौवीस नाम २४ संख्यामें ओंकारपूर्वक स्मरण कर स्वाहा लगाय फिर नमःलगावे ॥ २२ ॥ केशवाय स्वाहा, नारायणाय स्वाहा, माधवायस्वाहा, ऐसे तीननामसे जलपान करे गोविन्दायनमः विष्णवेनमःकहकर दोनों हाथ धोवे मधुसूदनत्रिविक्रमनामोंसे अंगुष्ठमूलसे होठ वामन श्रीधरादि दो नामोंसे मुखमार्जन कर ॥२३॥ हृषीकेश नामसे बायांहाथ प्रोक्षणकर पद्मनाभ

तस्मात्सर्वे द्विजाः शाक्ता न शैवा न च वैष्णवाः ॥ आदि शक्ति मुपासंते गायत्रीं वेदमातरम् ॥ १७ ॥ आचांतः प्राणमायम्य केश वादिकनामभिः ॥ केशवश्च तथा नारायणो माधव एव च ॥ १८ ॥ गोविंदो विष्णुरेवाथ मधुसूदन एव च ॥ त्रिविक्रमो वामनश्च श्रीधरोऽपि ततः परम् ॥ १९ ॥ हृषीकेशः पद्मनाभो दामोदर अतः परम् ॥ संकीर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नोऽप्यनिरुद्धकः ॥ २० ॥ पुरु षोत्तमाधोक्षजौ च नारसिंहोऽच्युतस्तथा ॥ जनार्दन उपेंद्रश्च हरिः कृष्णोंऽतिमस्तथा ॥२१॥ ॐ कारपूरकं नाम चतुर्विंशतिसंख्यया ॥ स्वाहाऽन्तैः प्राशयेद्वारि नमोऽतैः स्पर्शयेत्तथा ॥ २२ ॥ केशवा दित्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां प्रक्षालयेत्करौ ॥ मुखं प्रक्षालयेद्वाभ्यां द्वाभ्या मुन्मार्जनं तथा ॥ २३ ॥ एकेन पाणिं संप्रोक्ष्य पादावपि शिरोऽपि च ॥ संकर्षणादिदेवानां द्वादशांगानि संस्पृशेत् ॥ २४ ॥ दक्षिणे नोदकं पीत्वा वामेन संस्पृशेद्बुधः ॥ तावन्न शुध्यते तोयं यावद्वामेन न स्पृशेत ॥ २५ ॥ गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमात्रं जलं पिबेत् ॥ ततो न्यूनाधिकं पीत्वा सुरापानी भवेद् द्विजः ॥ २६ ॥

नामसे चरण प्रोक्षणकर दामोदर नामसे मूर्धा संकर्षणादिनामसे बारह अंगोंमें स्पर्शकरे संकर्षणसे मध्यमा अंगुली, वासुदेव प्रद्युम्नसे अंगुष्ठ और तर्जनीसे नासा पुटस्पर्शकरे अनिरुद्ध और पुरुषोत्तम नामसे अंगुष्ठ और अनामिकासे नेत्र छूकर, अधोक्षज नारसिंहनामसे श्रोत्र, अच्युत नामसे कनिष्ठ अंगुष्ठसे नाभिको स्पर्शकर, जनार्दननामसे पाणितलसे हृदयको स्पर्शकर उपेन्द्रनामसे शिरछूकर हरयेनमः श्रीकृष्णायनमःइनसे दहिनी और बाईं भुजमूलको स्पर्शकरे ॥ २४ ॥ दक्षिण हाथसे जल पीकर वामसे स्पर्श करे, जबतक वामहाथसे स्पर्श न करे तबतक जल शुद्ध नहीं होता ॥ २५ ॥ गौके कानके समान हाथका आकार करके एकमासे जलपिये फिर इससे न्यूनाधिकापिये तो ब्राह्मण सुरापायी होता है ॥ २६ ॥

दक्षिण हाथकी मिली हुई अंगुलियोंसे अंगूठा और कन अंगुली छोड़कर शेषसे आचमन करे ॥ २७ ॥ तब आकार स्मरण कर प्राणायाम करके तुरीयपाद सहित गायत्रीको जपता हुआ प्राणायाम करे ॥ २८ ॥ दक्षिणनासापुटसे वायु रेचन करे, बायेंसे उदरको पूर्णकर कुंभसे धारण करे इसका नाम पंडितोंने प्रणायाम कहा है ॥ २९ ॥ अंगुष्ठसे दक्षिण नाडीको पीडित करे, कनिष्ठ और अनामिकासे यह कार्य करे मध्यमा और तर्जनीको त्यागन करे ॥ ३० ॥ रेचक पूरक और कुंभक यह तीन प्रकारका प्राणायाम जितेंद्रिय योगी कहते हैं ॥ ३१ ॥ रेचकसे वायु छोड़ी जाती, पूरक पूर्णकरती, और समानतासे इसकी स्थितिका नाम कुंभक है ॥ ३२ ॥ नीलोत्पलके समान श्यामस्वरूपनाभिमें प्रतिष्ठित है, वहां चतुर्भुज हरिको पूरकके समय ध्यान करे ॥ ३३ ॥

संहतांगुलिना तोयं पाणिना दक्षिणेन तु ॥ मुक्तांगुष्ठकनिष्ठाभ्यां शेषेणाचमनं विदुः ॥ २७ ॥ प्राणायामं ततः कृत्वा प्रणवस्मृतिपूर्वकम् ॥ गायत्रीं शिरसा सार्धं तुरीयपदसंयुतम् ॥ २८ ॥ दक्षिणे रेचयेद्वायुं वामेन पूरितोदरम् ॥ कुंभेन धारयेन्नित्यं प्राणायामं विदुर्बुधाः ॥ २९ ॥ पीडयेद्दक्षिणानाडीमंगुष्ठेन तथोत्तराम् ॥ कनिष्ठानामिकाभ्यां तु मध्यमां तर्जनीं त्यजेत् ॥ ३० ॥ रेचकः पूरकश्चैव प्राणायामोऽथ कुंभकः ॥ प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसैः ॥ ३१ ॥ रेचकः सृजते वायुं पूरयेत्तु तम् ॥ साम्येन संस्थितिर्यत्तत्कुम्भकः परिकीर्तितः ॥३२॥ नीलोत्पलदलश्यामं नाभिमध्ये प्रतिष्ठितम् ॥ चतुर्भुजमहात्मानं पूरके चिंतयेद्धरिम् ॥ ३३ ॥ कुंभके तु हृदि स्थाने ध्यायेत्तुकमलासनम् ॥ प्रजापतिं जगन्नाथं चतुर्वक्त्रं पितामहम् ॥ ३४ ॥ रेचके शंकरं ध्यायेल्ललाटस्थं महेश्वरम् ॥ शुद्धस्फलकसंकाशं निर्मलं पापनाशनम् ॥ ३५ ॥ पूरके विष्णुसायुज्यं कुम्भके ब्रह्मणो गतिम् ॥ रेचकेन शंकरं तृतीयं तु प्राप्नुयादीश्वरं परम् ॥ ३६ ॥ पौराणाचम नाद्यं च प्रोक्तं देवर्षिसत्तम ॥ श्रौतमाचमनाद्यं च शृणु पापापहं मुने ॥ ३७ ॥ प्रणवं पूर्वमुच्चार्य गायत्रीं तु तदित्यृचम् पादादौ व्याहृती स्तिस्रः श्रौताचमनमुच्यते ॥ ३८ ॥

कुंभकके समय हृदयमें कमलासन प्रजापति जगन्नाथ चतुर्मुख पितामहका ध्यान करे ॥ ३४ ॥ रेचकके समय ललाटमें स्थित महेश्वर शुद्ध स्फटिकके समान पापनाशी शंकरका ध्यान करे ॥ ३५ ॥ पूरकमें विष्णुका सायुज्य कुंभकमें ब्रह्मकी गति, रेचकसे शिवकी परम गति प्राप्त होती है ॥ ३६ ॥ हे देवर्षि ! यह पुराणसम्मत आचमन आपसे कहा आपसे अब श्रौत आचमन कहता हूं ॥ ३७ ॥ पहले ओंकार पढकर फिर गायत्री त्रिपदी उच्चारणकर जलपान करे, यह श्रौत आचमन है ॥ ३८ ॥

जो व्याहृतिपूर्वक शिरके सहित गायत्रीका जपकरता प्रत्येकवार प्राणायाम रेचक पूरक कुंभक कर ऐसे तीनवार करनेका नाम प्राणायाम करे ॥ ३९ ॥ अब लक्षण सहित प्राणोंका आयाम कहतेहैं जो अनेक पापनाशक और महापुण्यका फलदेनेवाला है ओंकारसे पांचों अंगुलियों द्वारा नासाग्रभागकोपीडित करे यह मुद्रा वानप्रस्थ और गृहस्थोंके सब पापकी हरनेवाली है ॥ ४० ॥ कनिष्ठिका अनामिका और अंगूठेसे यती और ब्रह्मचारीका प्राणायाम होता है आपोहिष्ठा तीन मंत्रसे कुशोदकसे प्रोक्षण करे ॥ ४१ ॥ ऋचाके अन्त वा पादके अन्तमें मार्जन करे नौवार आपोहिष्ठादिके साथ प्रणव लगाय मार्जन करे ॥ ४२ ॥ मार्जनसे एक वर्षका किया पाप नष्ट होता है फिर 'सूर्यश्चमा' ७ ऋच पढकर जलपिये ॥ ४३ ॥ जो उसके अन्तःकरणका पाप नष्ट होजाता है प्रणव व्याहृति

गायत्रीं शिरसा सार्धं जपेद्व्याहृतिपूर्वकाम् ॥ प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिरयं प्राणसंयमः ॥ ३९ ॥ "सलक्षणं तु प्राणानामायामं कीर्त्यते ऽधुना ॥ नानापापैकशमनं महापुण्यफलप्रदम् ॥" पचांगुली भिर्नासाग्रं पीडयेत्प्रणवेन तु ॥ सर्वं पापहरा मुद्रा वाप्रस्थगृहस्थयोः ॥ ४० ॥ कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्यतेश्च ब्रह्मचारिणः ॥ आपोहिष्ठेति तिसृभिः प्रोक्षणं स्यात्कुशोदकैः ॥ ४१ ॥ ऋगंते मार्जनं कुर्यात्पादान्ते वा समाहितः ॥ नवप्रणवयुक्तेन आपोहिष्ठेत्यनेन तु ॥ ४२ ॥ नश्येदघं मार्चने न संवत्सरसमुद्भवम् ॥ तत आचमनं कृत्वा सूर्यश्चेति पिबेदपः ॥ ४३ ॥ अंतः करणसंभिन्नं पापं तस्य विनश्यति ॥ प्रणवेन व्याहृतिभिर्गायत्र्या प्रणवाद्यया ॥ ४४ ॥ आपोहिष्ठेति सूक्तेन मार्जनं चैव करयेत् ॥ उद्धृत्य दक्षिणे हस्ते जलं गोकर्णवत्कृते ॥ ४५ ॥ नीत्वा तं नासिकाग्रं तु वामकुक्षौ स्मरेदघम् ॥ पुरुषं कृष्णवर्णं च ऋतं चेति पठेत्ततः ॥ ४६ ॥ द्रुपदा वा ऋचं पश्चाद्दक्षनासापुटेन च ॥ श्वासमार्गेण तं पापमानयेत्करवारिणि ॥ ४७ ॥ नावलोक्यैव तद्वारि वामभागेऽश्मनि क्षिपेत् ॥ निष्पापं तु शरीरंमे संजातमिति भावयेत् ॥ ४८ ॥

गायत्री सबमें ॐकार लगाय ॥ ४४ ॥ 'आपोहिष्ठा' सूतसे मार्जन करे गोकर्णवत् किये दक्षिण हाथमें जल लेकर ॥ ४५ ॥ उसे नासिकाके अग्रभागमें लाकर बाईं ओरके पापको स्मरण करे कृष्णवर्ण पापपुरुषका ध्यानकरके 'ऋतंचसत्यं' यह पढे ॥ ४६ ॥ फिर द्रुपदादि मंत्रको पढता हुआ दक्षिण नासा पुटसे श्वासमार्गसे उस पापको हाथके जलमें लावे ॥ ४७ ॥ विनादेखे हुए उस जलको बाम भागमें अश्मके समान डाले मेरा शरीर पापरहित हो यही भावना करे ॥ ४८ ॥

१ ओमापोज्योतिरसोमृतम् ब्रह्मभूर्भुवःस्वरोम यह गायत्रीशिर है ।

फिर उठकर दोनों चरणोंको समान नियुक्त करके जलांजलि ग्रहण कर तर्जनी और अंगुष्ठके विना ॥ ४९ ॥ गायत्री पढ सूर्यको देख जल छोड़दे ऐसा तीनवार करे हे मुनि ! यह विधि पापनाशक और अघमोचनके निमित्त है ॥ ५० ॥ फिर 'असौवाआदित्य' इस मंत्रसे प्रदक्षिणा करे मध्याह्नमें एकही बार अर्घ्य होता है संध्याओंमें तीनवार अर्घ्यदे ॥ ५१ ॥ प्रभातकालमें कुछ नम्र हो मध्याह्नमें दंडवत स्थितहो और संध्यासमय आसनपर बैठा हुआ ही जलत्यागे ॥ ॥ ५२ ॥ जिस कारण जल त्यागा जाता है सो कारण सुनो मंन्देहा नामक तीस करोड़ महाबली राक्षस ॥ ५३ ॥ बड़े कृतघ्न और घोर

उत्थाय तु ततः पादौ द्वौ मासौ सन्नियोजयेत् ॥ जलां जलिं गृहीत्वा तु तर्जन्यंगुष्ठवर्जितम् ॥ ४९ ॥ वीक्ष्य भानुं क्षिपेद्वारि गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ॥ त्रिवारं मुनिशार्दूल विधिरेषोऽर्घ्यमोचने ॥ ५० ॥ ततः प्रदक्षिणां कुर्यादसावादित्यमन्त्रतः ॥ मध्याह्ने सकृदेव स्यात्संध्ययोस्तु त्रिवारतः ॥ ५१ ॥ ईषन्नम्रः प्रभाते तु मध्याह्ने दंड वत्स्थितः आसने चोपविष्टस्तु द्विजः साय क्षिपेदपः ॥ ५२ ॥ उदकं प्रक्षिपेद्यस्मात्तत्कारणमतः शृणु ॥ त्रिंशत्कोटचो महा वीरा मंदेहा नाम राक्षसाः ॥ ५३ ॥ कृतघ्ना दारुणा घोराः सूर्य मिच्छंति खादितुम् ॥ ततो देवगणाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ५४ ॥ उपासते महासंध्यां प्रक्षिपंत्युदकांजलीन् ॥ दह्यंते तेन दैत्यास्ते वज्रीभूतेन वारिणा ॥ ५५ ॥ एतस्मात्कारणाद्विप्राः संध्यां नित्यमुपासते ॥ महापुण्यस्य जननं संध्योपासनमीरितम् ॥ ५६ ॥ अर्घ्यांगभूतमन्त्रोऽयं प्रोच्यते शृणु नारद ॥ यदुच्चारणमात्रेण सांगं संध्याफलं भवेत् ॥ ५७ ॥ सोहमर्कोस्म्यहं ज्योतिरात्मा ज्योतिरहं शिवः ॥ आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योती रसोऽस्म्यहम् ॥ ५८ ॥

दारुण हैं यह सूर्यके खानेकीइच्छाकरते हैं जब सब देवता और तपोधन ऋषि संध्यायोंके उपवासनामें जलांजलि देते हैं वह जल वज्रीभूत होकर दैत्योंको नष्ट करते हैं [ताआपोवज्रीभूतास्तानिरक्षांसि मंदेहारुणोद्वीपे प्रक्षिपन्ति तैत्तिरीयश्रुतिः] ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इस कारणसे विप्र नित्य सन्ध्योपासनमें ऐसा करते हैं संध्योपासन महापुण्यका देनेवाला कहा है ॥ ५६ ॥ हे नारद ! यह अर्घ्यका अंगभूत मंत्र कहते हैं सुनो जिसके उच्चारणमात्रसे सांग संध्याका फल होता है ॥ ५७ ॥ वह मैं हूं सूर्य मैं हूं ज्योति, आत्मा ज्योति शिव मैं हूं आत्मज्योति शुक्र और सब ज्योतिका रस मैं हूं ॥ ५८ ॥

२ इनका विचार हमारी निर्मित संध्या विधिमें देखो।

हे ब्रह्मरूपिणी गायत्री देवी ! आकर मुझे वरदीजिये जपानुष्ठानकी सिद्धिके निमित्त मेरे हृदयमें प्रवेश कर ॥ ५९ ॥ हे देवी ! उठो और फिर आनेके लिये जाओ हे देवि ! मेरे हृदयमें प्रवेशकर अर्घ्योंमें गमन करो ॥ ६० ॥ फिर चतुर शुद्ध स्थानमें अपने आसनकी कल्पना करे उसपर बैठ वेदमाता गायत्रीका जप करे ॥ ६१ ॥ हे मुने ! प्राणायामके उत्तर यही खेचरी मुद्रा करे हे मुनिश्रेष्ठ ! वह प्रातःसंध्याके विधानमें कीर्त्तन की है ॥ ६२ ॥ हे नारद ! सुनो इसके नामका अर्थ कहता हूं जिस कारण कि, चित्त आकाशमें विचरता है आकाशमें गई जिह्वा चरती है ॥ ६३ ॥ जिस समय भौंके मध्यमें दृष्टि लगती है उसमें खेचरी मुद्रा होती है सिद्धासनके समान आसन कुंभकके समान प्राणायाम ॥ ६४ ॥ खेचरीके समान दूसरी मुद्रा नहीं. हे नारद ! यह सत्य

आगच्छ वरदे देवि गायत्रि ब्रह्मरूपिणि ॥ जपानुष्ठानसिद्ध्यर्थं प्रविश्य हृदयं मम ॥ ५९ ॥ उत्तिष्ठ देवि गंतव्यं पुनरागमनाय च ॥६०॥ अर्घ्येषु देवि गंतव्यं प्रविश्य हृदयं मम ॥ ततः शुद्धः स्थले नैजमासनं स्थापयेद् बुधः ॥ तत्रारुह्य जपेत्पश्चाद्गायत्रीं वेदमातरम् ॥ ६१ ॥ अत्रैव खेचरीमुद्रा प्राणायामोत्तरं मुने ॥ प्रातःसंध्याविधाने च कीर्तिता मुनिपुंगव ॥ ६२ ॥ तन्नामार्थं प्रक्ष्यामि सादरं शृणु नारद ॥ चित्तं चरति खे यस्माज्जिह्वा चरति खे गता ॥ ६३ ॥ भ्रुवोरंतर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥ न चासनं सिद्धसमं न कुंभसदृशोऽनिलः ॥ ६४ ॥ न खेचरीसमा मुद्रा सत्यं सत्यं च नारद ॥ घण्टावत्प्रणवोच्चाराद्वायुं निर्जित्य यत्नतः ॥ ६५ ॥ स्थिरासने स्थिरो भूत्वा निरहंकारनिर्ममः ॥ लक्षणं नारदमुने शृणु सिद्धासनस्य च ॥ ६६ ॥ योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसेन्मेढ्रे पादमथैकमेव हृदयं कृत्वा समं विग्रहम् ॥ स्थाणुः संयमितेंद्रियोऽचलदृशा पश्यन्भ्रुवोरंतरं तिष्ठत्येतदवीव योगिसुखदं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥ ६७ ॥ आयातु वरदादेवी अक्षरं ब्रह्मसंमितम् ॥ गायत्रीं छन्दसां मातरिदं ब्रह्म जुषस्व मे ॥ ६८ ॥

सत्य है घंटाके समान ॐकारके उच्चारणसे यत्नपूर्वक वायुको जीतकर ॥ ६५ ॥ अहंकार ममता छोड़ दृढ आसनपर दृढ होकर बैठे हे नारद ! सिद्धासनके लक्षण सुनो ॥ ६६ ॥ एक पादमूल लिंगके मूलमें दूसरे चरणका मूल वृषणके नीचे हृदय और शरीरको दंडवत् स्थितकर स्थाणुके समान नियतेन्द्रिय हो अचल दृष्टिसे भौंके मध्यभागको देखता हुआ स्थित हो, यह योगियोंको सुखदायक सिद्धासन है ॥ ६७ ॥ आसन बांधने उपरांत इस प्रकार आवाहन करें वरदायक देवी गायत्री छन्दोंकी माता ब्रह्मसम्मित अक्षर ब्रह्मके सेवनके निमित्त मेरे समीप आवे ॥ ६८ ॥

दे. भा. दिनमें पाप किया जाता है वह सब इससे छूट जाता है जो रात्रिमें पाप किया जाय वह रातकी उपासनासे छूट जाता है ॥ ६९ ॥ हे सब अक्षररूप हे
॥३६॥ महादेवि ! संध्या विद्या सरस्वति अजर अमर सर्व देवि तुमको प्रणाम है ॥ ७० ॥ फिर 'तेजोसि' इत्यादि मंत्रसे देवीका आवाहन करे जो तुम्हारा अनुष्ठान
किया है वह सब पूर्व हो ॥ ७१ ॥ फिर शापनाशके निमित्त भलीप्रकार विधान करे ब्रह्मा और विश्वामित्र दोका शाप है ॥ ७२ ॥ तथा वशिष्ठका यह
तीन प्रकारका शाप लगा है, ब्रह्माके स्मरणसे ब्रह्माका शाप ॥ ७३ ॥ विश्वामित्रके स्मरणसे विश्वामित्रका शाप वशिष्ठके स्मरणसे वशिष्ठका शाप दूर होता है
॥ ७४ ॥ हृदयकमलमें सत्यस्वरूप सत्यात्मक पुरुष निवास करते हैं उस परमात्माको मैं नित्य ध्यान करता हूं जो एकचित्तस्वरूप वाणीसे भी परे है ॥७५॥

यदह्नात्कुरुते पापं तदह्नात्प्रतिमुच्यते ॥ यद्रात्र्यात्कुरुते पापं तद्रात्र्यात्प्रतिमुच्यते ॥ ६९ ॥ सर्ववर्णे महादेवि संध्याविद्येसरस्वति ॥
अजरे अमरे देवि सर्वदेवि नमोस्तु ते ॥ ७० ॥ तेजोसीत्यादिमंत्रेण देवीमावाहयेत्ततः ॥ यत्कृतं त्वदनुष्ठानं तत्सर्वं पूर्णमस्तु मे ॥७१॥
ततः शापविमोक्षाय विधानं सम्यगाचरेत् ॥ ब्रह्मशापस्ततो विश्वमित्रस्य च तथैव च ॥ ७२ ॥ वशिष्ठशाप इत्येतत्रिविधं शापलक्षणम्
॥ ब्रह्मणः स्मरणेनैव ब्रह्मशापो निवर्त्यते ॥ ७३ ॥ विश्वामित्रस्मरणतो विश्वामित्रस्य शापतः ॥ वसिष्ठस्मरणादेव तस्य शापो विन
श्यति ॥ ७४ ॥ हृत्पद्ममध्ये पुरुषं प्रमाणं सत्यात्मकं सर्वजगत्स्वरूपम् ॥ ध्यायामि नित्यं परमात्मसंज्ञं चिद्रूपमेकं वचसामगम्यम्
॥ ७५ ॥ अथ न्यासविधिं वक्ष्ये सन्ध्याया अंगसंभवम् ॥ ॐकारं पूर्ववद्योज्यं ततो मन्त्रानुदीरयेत् ॥ ७६ ॥ भूरित्युक्त्व च पादाभ्यां
नम इत्येव चोच्चरेत् ॥ भुवः पूर्वं तु जानुभ्यां स्वः कटिभ्यां नमो वदेत् ॥ ७७ ॥ महर्नाभ्यै जनश्चैव हृदयाय ततस्तपः ॥ कंठाय च
च ततः सत्यं ललाटं परिकीर्तयेत् ॥ ७८ ॥ अंगुष्ठाभ्यः तत्सवितुस्तर्जनीभ्यां वरेण्यकम् ॥ भर्गो देवस्य मध्याभ्यां धीमहीत्येव
कीर्तयेत् ॥ ७९ ॥ अनामाभ्यां कनिष्ठाभ्यां धियो यो नः पदं वदेत् ॥ प्रचोदयात्करपृष्ठतलयोर्विन्यसेत्सुधी ॥ ८० ॥

अब संध्यामें अंगसंभव न्यासकी विधिको कहता हूं पहले ॐकार उच्चारण कर पीछे मंत्रको संयुक्त करे ॥ ७६ ॥ भूः पादाभ्यां नमः, भुवः जानुभ्यां नमः
भा. टी. ए. स्वःकटिभ्यां नमः, इस प्रकार कहे ॥ ७७ ॥ महर्नाभ्यै नमः,जनहृदयाय नमः,तपकंठाय नमः, सत्यंललाटाय नमः इसप्रकार कल्पना करे ॥ ७८ ॥ तत्सवितुः
अ० १६ अंगुष्ठाभ्यां नमः, वरेण्यम् तर्जनीभ्यां नमः, भर्गो देवस्य मध्यमाभ्यां नमः, धीमहि ॥ ७९ ॥ अनामिकाभ्यां नमः, धियोयोनः कनिष्ठाभ्यां नमः, प्रचोदयात
करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः इस प्रकार बुद्धिमान् न्यास करे ॥ ८० ॥

ब्रह्मात्मने तत्सवितुर्हृदयाय नमः । विष्ण्वात्मने वरेण्यं शिरसे नमः, ॥ ८१ ॥ भर्गोदेवस्य रुद्रात्मने शिखायैवषट्, शक्त्यात्मने धीमहि कवचायहुम्, ॥ ८२ ॥ कालात्मने धियोयोनः नेत्रत्रयाय वौषट्, प्रचोदयात्सर्वात्मने अस्त्राय फट् ॥ ८३ ॥ हे मुने ! अब अक्षरन्यास कहता हूं गायत्री मंत्रसंभूत न्यास पापके हरने वाले हैं ॥ ८४ ॥ पहले प्रणवको उच्चारण कर वर्णन्यास करना चाहिये पहले तत् उच्चारण करके पादांगुष्ठमें न्यास करे ॥ ८५ ॥ सकारका गुल्फोंमें विकारका जंघाओंमें तुकार जानुओंमें वकारका ऊरुओंमें ॥ ८६ ॥ रेकार गुदमें णिकार मेढ्रमें यकार कटिमें भकार नाभिमें ॥ ८७ ॥ गोकार हृदयमें दे दोनों

ब्रह्मात्मने तत्सवितुर्हृदयाय नमस्तथा ॥ विष्णवात्मने वरेण्यं च शिरसे नम इत्येपि ॥ ८१ ॥ भर्गो देवस्य रुद्रात्मने शिखायै प्रकीर्तितम् ॥ शक्त्यात्मने धीमहीति कवचाय ततः परम् ॥८२॥ कालात्मने धियो यो नो नेत्र त्रय उदीरितम् ॥ प्रचोदयाच्च सर्वात्मनेऽस्त्राय परिकीर्तितम् ॥८३॥ अक्षरन्यासमेवाग्रे कथयामि महामुने ॥ गायत्री वर्णसंभूतन्यासः पापहरः परः ॥ ८४ ॥ प्रणवं पूर्वमुच्चार्य पादागुष्ठद्वये न्यसेत् ॥ ८५ ॥ सकारं गुल्फयोस्तद्वद्विकारं जंघयोर्न्यसेत् ॥ जान्वोस्तुकारं विन्यस्य ऊर्वोश्चैव वकारकम् ॥ ८६ ॥ रेकारं च गुदे न्यस्यणिकारं लिंग एव च ॥ कट्यां यकारमेवात्र भकारं नाभिमण्डले ॥ ८७ ॥ गोकारं हृदये न्यस्य देकारं स्तनयोर्द्वयोः ॥ वकार हृदि विन्यस्य स्यकारं कंठकूपके ॥८८॥ धीकारं मुखदेशे तु मकारं तालु देशके ॥ हिकारं नासिकाग्रे तु धिकारं नेत्रमंडले॥८९॥ भ्रूमध्ये चैव योकारं योकारं च ललाटके ॥ नकारं वै पूर्व मुखे प्रकारं दक्षिणे मुखे॥९०॥ चोकारं पश्चिममुखे दकारं चोत्तरे मुखे ॥ योकारं मूर्ध्नि विन्यस्य तकारं व्यापकं न्यसेत् ॥ ९१ ॥ परमेश्वरीम् ॥ एतन्न्यासविधिं केचिन्नेच्छंति जपतत्परा ॥ ततो ध्यायेन्महादेवीं जगन्मातरमंबिकाम् ॥९२॥ भास्वज्जपाप्रसूनाभां कुमारीं परमेश्वरीम् ॥ रक्तांबुजासनारूढां रक्तगंधा नुलेपनाम् ॥ ९३ ॥

स्तनोंमें व हृदयमें स्य कंठमें ॥ ८८ ॥ धी मुखमें म तालुमें हि नासिकाके अग्रभागमें धि नेत्रमण्डलमें ॥ ८९ ॥ यो दोनों भ्रूमध्यमें यो ललाटमें नकार पूर्व मुखमें प्रकार दहिने मुखमें ॥ ९० ॥ चो पश्चिम मुखमें दकार उत्तर मुखमें या मूर्धामें तकारका व्यापकतामें न्यास करे ॥ ९१ ॥ कोई जापक यह न्यास विधि नहीं भी करते, फिर न्यास कर जगन्माता अम्बिका देवीका ध्यान करे ॥ ९२ ॥ जो परमेश्वरी चमकते हुए जशके फूलोंके समान प्रकाशमान हैं, जो लाल कमलके आसनमें आरूढ है लाल गंधका अनुलेपन लगाये है ॥ ९३ ॥

१ ओंतत् नमः पादांगुष्ठद्वये, ओंसनमः गुल्फद्वये, ओंविनमः जंघद्वये इस प्रकार चौवीसौ न्यास करे ।

लाल माला और वस्त्र पहरे हुए चारमुख चतुर्भुज प्रतिमुखमें दो दो नेत्र स्रुक् स्रुवा जपमाला और कमण्डलु धारण किये ॥ ९४ ॥ सम्पूर्ण आभरणोंसे संदीप्त ऋग्वेदकी कथन करनेवाली परा हंसके ऊपर स्थापित रक्तकमलपर स्थित आहवनीयके मध्यमें स्थित, ब्रह्म देवता अर्थात् ब्रह्माकी उपास्यदेवता ॥ ९५ ॥ चार वेदरूप चार चरणवाली पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व, अधर, अन्तरिक्ष अवान्तर दिशारूप आठ कुक्षिसम्पन्न व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्यो तिष, इतिहास, पुराण, उपनिषदरूप सात शिरवाली अग्निरूप मुख रूद्रशिखा और विष्णु रूप चिह्नवालीका ध्यान करे ॥ ९६ ॥ जिसके ब्रह्मा कवच सांख्यायन गोत्र है आदित्य मण्डलमें स्थित इस महेश्वरी देवीका ध्यान करे ॥ ९७ ॥ इस प्रकार विधिसे वेदमाता गायत्रीका ध्यान

रक्तमाल्यांबरधरां चतुरास्यां चतुर्भुजाम् ॥ द्विनेत्रां स्रुक्स्रुवौ मालां कुंडिकां चैव बिभ्रतीम् ॥ ९४ ॥ सर्वाभरणसंदीप्तामृग्वेदाध्यायिनीं पराम् ॥ हंसपत्रामाहवनीयमध्यस्थां ब्रह्मदेवताम् ॥ ९५ ॥ चतुष्पदामष्टकुक्षिं सप्तशीर्षां महेश्वरीम् ॥ अग्निवक्त्रां रुद्रशिखां विष्णु चित्तां तु भावयेत् ॥ ९६ ॥ ब्रह्मा तु कवचं यस्या स्मृतम् गोत्रं सांख्यायनं ॥ आदित्यमण्डलांतस्थां ध्यायद्देवीं महेश्वरीम् ॥ ९७ ॥ एवं ध्यात्वा विधानेन गायत्रीं वेदमातरम् ॥ ततो मुद्राः प्रकुर्वीत देव्याः प्रीतिकराः शुभाः ॥ ९८ ॥ संमुखं संपुटं चैव विततं विस्तृतं तथा ॥ द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुष्कं पंचकं तथा ॥ ९९ ॥ षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकांजलिकं तथा ॥ शकटं यमपाशं च ग्रथितं संमुखोन्मुखम् ॥ १०० ॥ विलंबं मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वराहकम् ॥ सिंहाक्रांतं महाक्रांतं मुद्गरं पल्लवं तथा ॥ १ ॥ चतुर्विंशतिमुद्राश्च गायत्र्याः संप्रदर्शयेत ॥ शताक्षरां च गायत्रीं सकृदावर्तयेत्सुधीः ॥ २ ॥ चतुर्विंशत्यक्षराणि गायत्र्याः कीर्तितानि हि ॥ जात वेदस नाम्नीं च ऋचमुच्चारयेदतः ॥ ३ ॥

करके फिर देवीकी प्रसन्न करनेवाली मुद्रा दिखावे ॥ ९८ ॥ संमुख, संपुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख चतुष्क पंचक ॥ ९९ ॥ षण्मुख, अधोमुख व्यापक, आंजलिक, शकट, यमपाश ग्रथित, सम्मुखोन्मुख ॥ १०० ॥ विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रांत, मुद्गर, पल्लव ॥ १ ॥ यह चौवीस मुद्रा एकांतमें गायत्रीको दिखावे और बुद्धिपूर्वक शताक्षरा गायत्रीको आवर्तन करे ॥ २ ॥ गायत्रीके २४ अक्षर कहे हैं ' जातवेदसे सुन वामसो' यह चौवालीस अक्षर ऋचा साथमें उच्चारण करे ॥ ३ ॥

तथा 'त्र्यम्बकं यजामहे' यह ३२ अक्षरके मन्त्रके साथमें गायत्री सताक्षरी हो जाती है यह महा पुण्यदायक है गायत्रीसे पहले शताक्षरी गायत्री जपे ॥ ४ ॥ पहले ओंकार उच्चारण कर फिर 'भूः भुवः, स्वः' कहकर २४ अक्षरवाली गायत्रीको जपे ॥ ५ ॥ इस प्रकार जो ब्राह्मण श्रेष्ठ नित्य जप करता है वह सन्ध्याका सब फल पाकर पूरा सुख पाता है ॥ १०६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ नारायण बोले भिन्नपाद गायत्री ब्रह्महत्या दूर करती है और संलग्न सब पाद पढनेसे जिसमें सन्दिग्ध अक्षर निकले ऐसी पढनेसे ब्रह्महत्या लगती है ॥ १ ॥ जो पाद आदिके सहित यथार्थ गायत्रीका उच्चारण नहीं करते वे द्विज अधोमुखसे सौ कोटि कल्प रहते हैं ॥ २ ॥ प्रणव, संपुट, षट् ओंकारादिसे गायत्री इतिहास

त्र्यंबकस्यर्चमावृत्य गायत्री शतवर्णका ॥ भवतीयं महापुण्या सकृज्जप्या बुधैरियम् ॥ ४ ॥ ॐ कारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च ॥ चतुर्विंशत्यक्षरां च गायत्रीं प्रोच्चरेत्ततः ॥ ५ ॥ एवं नित्यं जपं कुर्याद्ब्राह्मणो विप्रपुंगवः स समग्रं फलं प्राप्य संध्यायाः सुख मेधते ॥ १०६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ नारायण उवाच ॥ भिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्याप्रणाशिनी ॥ अभिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति ॥ १ ॥ अच्छिन्नपादागायत्री जपं कुर्वंति ये द्विजाः ॥ अधोमुखाश्च तिष्ठंति कल्पकोटिशतानि च ॥ २ ॥ संपुटैकषडोंकारा गायत्री विविधा मता ॥ धर्मशास्त्रपुराणेषु इतिहासेषु सुव्रत ॥ ३ ॥ पञ्चप्रणव संयुक्तां जपेदित्यनुशासनम् ॥ जपसंख्याऽष्टभागान्ते पादो जप्य स्तुरीयकः ॥ ४ ॥ स द्विजः परमो ज्ञेयः परं सायुज्यमाप्नुयात् ॥ अन्यथा प्रजपेद्यस्तु स जपो विफलो भवेत ॥ ५ ॥ संपुटैका षडोंकारा भवेत्सा उर्ध्वरेतसाम् ॥ गृहस्थो ब्रह्मचारी वा मोक्षार्थी तुरीयां जपेत् ॥ ६ ॥ तुरीयापादो गायत्र्याः परो रजसे सावदोम् ध्यानमस्य प्रवक्ष्यामि जपसांगफलप्रदम् ॥ ७ ॥

पुराणोंमें विविध प्रकार लिखी है ॥ ३ ॥ पांच प्रणवसे युक्त जप करनेकी भी आज्ञा है जितनी संख्याका जप करे उसके अष्टम भागमें 'परोरजसे' इत्यादि लगाकर चतुर्थ पाद जपना चाहिये ॥ ४ ॥ वह द्विज परम जानना और ऐसा करने पर सायुज्यकी प्राप्ति होती है अन्यथा जप करनेसे जप निष्फल होता है ॥ ५ ॥ संपुटा और षडोंकारा ऊर्ध्वरेतसवालोंको जपनी और गृहस्थी वा ब्रह्मचारी तुरीया एक ओंकारवालीको जपै ॥ ६ ॥ गायत्रीका चौथा पाद 'परोरजसे साव दोम् है अब इसका ध्यान जप सांग फलका देनेवाला कहता हूं ॥ ७ ॥

हृदयमें कमल खिलाहै सूर्य सोम अग्निका विम्बरूप प्रणवमय अचिन्त्यरूप जिसका सिंहासन है अचल परम सूक्ष्मज्योति आकाशका सार सच्चिदानन्दस्वरूप मेरे आनन्दका देनेवाला हो ॥८॥ तुरीया गायत्रीकी मुद्रा कहते हैं त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिंग; अम्बुज महामुद्रा यह सात दिखावे ॥९॥ जो सन्ध्या है वही सच्चिदानन्दरूपिणी गायत्री है उसको भक्तिसे ब्राह्मण नित्य पूजै और नमस्कार करे ॥ १० ॥ ध्यान योग्य देवकी पंचोपचारसे पूजा करे 'लंपृथिव्यात्मने गध समर्पयामि' नमोनमः इससे गंध ॥ ११ ॥ हमाकाशात्मने पुष्पं समर्पयामि नमोनमः इससे पुष्प, यंवाय्वात्मने धूपं समर्पयामि इसे धूप

हृदि विकसितपद्मं सार्कसोमाग्निबिंबं प्रणवमयचिंत्यं यस्य पीठं प्रकल्प्यम् ॥ अचलपरमसूक्ष्मं ज्योतिराकाशसारं भवतु मम मुदेऽसौ सच्चिदानन्दरूपः ॥ ८ ॥ त्रिशूलयोनी सुरभिमक्ष मालां च लिंगकम् ॥ अंबुजं च महामुद्रामिति सप्त प्रदर्शयेत् ॥ ९ ॥ या संध्या सैव गायत्री सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ भक्त्या तां ब्राह्मणो नित्यं पूजयेच्च नमेत्ततः ॥ १० ॥ ध्यातस्य पूजां कुर्वीत पञ्चभिश्चोपचारकैः ॥ लंपृथाव्यात्मने गंधमर्पयामि नमो नमः ॥ ११॥ हमकाशात्मने पुष्पं चार्पयामि नमो नमः ॥ यञ्च वाय्वात्मने धूपं चार्पयामि ततो वदेत् ॥ १२ ॥ रं च वह्न्यात्मने दीपमर्पयामि ततो वदेत् ॥ वममृतात्मने तस्मै नैवेद्यमपि चार्पयेत् ॥ १३ ॥ यं रं लं वं हमिति च पुष्पांजलिमथार्पयेत् ॥ एवं पूजां विधायाथा चांते मुद्राः प्रदर्शयेत् ॥ १४ ॥ ध्यायेत्तु मनसा देवी मन्त्रमुच्चारयेच्छनैः ॥ न कम्पयेच्छिरो ग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत् ॥ १५ ॥ विधिनाऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥ दशवारमशक्तो वा नातो न्यूनं कदाचन ॥ १६ ॥ तत उद्वासयेद्देवीमुत्तमेत्यनुवाकतः ॥ न गायत्रीं जपेद्विद्वाञ्जलमध्ये कथंचन ॥ १७ ॥

॥ १२ ॥ रंवहन्यात्मने दीपं समर्पयामि इससे दीप; वममृतात्मने नैवेद्यं समर्पयामि इससे नैवेद्य दे ॥ १३ ॥ यं रं लं वं हं कहकर पुष्पांजलि दे इस प्रकार पूजाकर अंतमें मुद्रा दिखावे ॥१४॥ मनसे देवीका ध्यानकर शनैःमुद्रा दिखावे शिर ग्रीवाको कंपित न करे दांत भी न दिखावे ॥१५॥ विधिपूर्वक एक सौ आठ बार वा २८ और शक्ति न हो तो दशबार जपे इसे न्यून न करे॥१६॥ फिर उत्तम अनुवाकसे देवीका अनुवासन करे जलके मध्यमें गायत्रीको न जपे "बहुत स्थानोंमें हारितादिके वचनोंसे जलमें भी जप लिखा है पर यदि आसनादि विद्यमान हो तो आलस्यसे जलमें न जपे इस कारण कहा है" ॥ १७॥

१ गायत्र्येकपदीद्विपदी इत्यादिसे हृदयसे उठावे ॥ उत्तरे शिखरे जातेसे विदा करे

कारण कि गायत्री अग्निमुखी है ऐसा कोई महर्षि कहते हैं सुरभि ज्ञान, शूर्प, कूर्म, योनि, पंकज ॥ १८ ॥ लिंग, निर्वाण यह आठ मुद्रा दिखावे जो अक्षर पद भ्रष्ट स्वर व्यंजन वर्जित है ॥ १९ ॥ हे कश्यप ! प्रियवादिनी यह हमारी क्षमा करना हे महामुने ! इसके उपरान्त गायत्रीका तर्पण करना चाहिये ॥ २० ॥ गायत्री छन्द विश्वामित्र ऋषि सवितादेवता तर्पणमें विनियोग करे ॥ २१ ॥ ओं भूरिति ऋग्वेदपुरुषं तर्पयामि ओं भुव इति यजुर्वेदं तर्पयामि ॥ २२॥ ओं स्वः इति सामवेदं तर्पयामि, ओं मह इत्यथर्ववेदं तर्पयामि ॥ २३ ॥ ओंजनःइति इतिहास पुराणपुरुषं तर्पयामि, ओं तपःसर्वागमपुरुषं तर्पयामि ॥ २४ ॥ ओं

यतः साऽग्निमुखी प्रोक्तेत्याहुः केचिन्महर्षयः ॥ सुरभिर्ज्ञानशूर्पं च कूर्मो योनिश्च पंकजम् ॥ १८ ॥ लिंगं निर्वाणकं चैव जपांतेऽष्टौ प्रदर्शयेत् ॥ यदक्षरपदभ्रष्टं स्वरव्यंजनवर्जितम् ॥ १९ ॥ तत्सर्वं क्षम्यतां देवि कश्यपप्रियवादिनी ॥ गायत्रीतर्पणं चातः करणीयं महामुने ॥ २० ॥ गायत्रीछन्द आख्यातं विश्वामित्र ऋषिः स्मृतः ॥ सविता देवता प्रोक्ता विनियोगश्च तर्पणे ॥ २१ ॥ भूरित्युक्त्वा च ऋग्वेदपुरुषं तर्पयामि च ॥ भुव इत्येतदुक्त्वा च यजुर्वेदमथो वदेत् ॥ २२ ॥ स्वर्व्याहृतिं समुक्त्वा च सामवेदं समुच्चरेत् ॥ मह इत्येतदुक्त्वांऽतेऽथर्ववेदं च तर्पयेत् ॥ २३ ॥ जनःपदांत इतिहासपुराणमितीरयेत् ॥ तपः सर्वागमं चैव पुरुषं तर्पयामि च ॥ २४ ॥ सत्यं च सत्यलोकाख्यपुरुषं तर्पयामि च ॥ ॐ भूर्भूर्लोकपुरुषं तर्पयामि ततो वदेत् ॥ २५ ॥ भुवश्चेति भुवर्लोकपुरुषं तर्पयामि च ॥ स्वः स्वर्गलोकपुरुषं तर्पयामि ततः परम् ॥ २६ ॥ ॐ भूरेकपदां नाम गायत्रीं तर्पयामि च ॥ भुवो द्विपदां गायत्रीं तर्पयामीति कीर्तयेत् ॥ २७ ॥ स्वश्च त्रिपदां गायत्रीं तर्पयामि ततो वदेत् ॥ ॐ भूर्भुवःस्वश्चेति तथा गायत्रीं च चतुष्पदाम् ॥ २८ ॥ उषसीं चैव गायत्रीं सावित्रीं च सरस्वतीम् ॥ वेदानां मातरं पृथ्वीमजां चैव तु कौशिकीम् ॥ २९ ॥ सांकृतिं वै सार्वजितिं गायत्रीं तर्पणे वदेत् ॥ तर्पणांते च शांत्यर्थं जातवेदसमीरयेत् ॥ ३० ॥

सत्यमिति सत्यलोकाख्यपुरुषं तर्पयामि, ओं भूःभूर्लोकपुरुषं तर्पयामि ॥ २५ ॥ ओं भुवः इति भुवर्लोकपुरुषं तर्पयामि ओं स्वः स्वर्लोकपुरुषं तर्पयामि ॥ २६ ॥ ओं भूरेकपदां गायत्रीं तर्पयामि. ओं भुवः द्विपदां गायत्रीं तर्पयामि ॥ २७ ॥ ओं स्वः त्रिपदां गायत्रीं तर्पयामि, ओं भूर्भुवःस्वः चतुष्पदां गायत्रीं तर्पयामि ॥ २८ ॥ उषसी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, वेदमातापृथ्वी, अजा, कौशिकी ॥ २९ ॥ सांकृति, सार्वजिति, गायत्री इन सबको तर्पणमें कहे तथा उषसीं तर्पयामि इत्यादि तर्पणके अन्तमें शान्तिके निमित्त 'सुनवामसोमम्' यह मंत्र बोले ॥ ३० ॥

शान्तिके निमित्त मानस्तोक यह मंत्र बोले वा त्र्यम्बकंयजामहे यह मंत्र उच्चारण करे ॥ ३१ ॥ वा शान्तिके निमित्त 'तच्छंयोः' यह मंत्र उच्चारणकरे 'अतोदेवा' यह दो मंत्र पढ सर्वांगमें स्पर्श करे ॥ ३२ ॥ 'स्योनापृथ्वी' इसमंत्रसे पृथ्वीमें प्रणाम करे फिर ब्राह्मण विधिसे गोत्रादिका उच्चारण करे ॥ ३३ ॥ इस प्रकार प्रभातकालीन संध्याका विधान है सन्ध्या करने उपरांत अग्निहोत्र करे ॥ ३४ ॥ फिर सावधान हो पंचायतन पूजा करे शिवा, शिव, गणपति, विष्णुको पूजे ॥ ३५ ॥ पुरुषसूक्त व्याहृतिसंयुक्त वा देवीके मूलमंत्रसे वा श्रीश्चतेलक्ष्मीश्चपत्न्यौ इस तैत्तिरीय शाखाके मंत्रसे पूजे ॥ ३६ ॥ मध्यमें भवानीको, ईशानमें माधवको,

मानस्तोकेति मन्त्रं च शांत्यर्थं प्रजपेत्सुधीः ॥ ततोऽपि त्र्यंबको मन्त्रः शांत्यर्थः परिकीर्तितः ॥ ३१ ॥ तच्छंयोरिति मन्त्रं च जपेच्छांत्यर्थमेव तु ॥ अतो देवा इति द्वाभ्यां सर्वांगस्पर्शनं चरेत् ॥३२॥ स्योनापृथिविमंत्रेण भूम्यै कुर्यात्प्रणामकम् ॥ यथाविधिं च गोत्रादीनुच्चरेद्द्विजसत्तमः ॥३३॥ एवं विधानं संध्यायाः प्रातःकाले प्रकीर्तितम् ॥ संध्याकर्मसमाप्त्यां तेऽप्यग्निहोत्रं स्वयं हुनेत् ॥३४॥ पंचायतनपूजां च त तः कुर्यात्समाहितः ॥ शिवां शिवं गणपतिं सूर्यं विष्णुं तथाऽर्चयेत् ॥ ३५ ॥ पौरुषेण तु सूक्तेन व्याहृत्या वा समाहितः ॥ मूलमन्त्रेण वा कुर्याद् ह्रीश्च ते इति मन्त्रतः ॥ ३६ ॥ भवानीं तु यजेन्मध्ये तथेशान्यां तु माधवम् ॥ आग्नेय्यां गिरिजानाथं गणेशं रक्षसां दिशि ॥ ३७ ॥ वायव्यामर्चयेत्सूर्यमिति देवस्थिति क्रमः ॥ षोडशानुपचारांश्च षोडशर्ग्भिर्हरेन्नरः ॥ ३८ ॥ देवीमभ्यर्च्य पुरतो यजेदन्याननुक्रमात् ॥ न देवीपूजनात्पुण्यमधिकं क्वचिदीक्ष्यते ॥ ३९ ॥ अत एव तु संध्यासु संध्योपास्तिः श्रुतीरिता ॥ नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या गणेश्वरम् ॥ ४० ॥ दूर्वाभिर्नार्चयेद्दुर्गां केतकैर्न महेश्वरम् ॥ मल्लिकाजातिकुसुमं कुटजं पनसं तथा ॥ ४१ ॥ किंशुकं बकुलं कुंदं लोध्रं तु करवीरकम् ॥ शिंशपाऽपराजितांपुष्प बंधूकागस्त्यपुष्पके ॥ ४२ ॥

आग्नेय दिशामें गिरिजापति शंकरको गणेशको राक्षसोंकी दिशामें पूजे ॥ ३७ ॥ वायव्य दिशामें सूर्यका यजन करे यह देवताओंके स्थापनका क्रम है पुरुष सूक्तके सोलह मंत्रोंसे भगवानका षोडशोपचार पूजन करे ॥ ३८ ॥ पहले देवीकी पूजाकर पीछे अन्य देवताओंकी पूजा करे देवीपूजनसे अधिक पुण्य कहीं नहीं है ॥ ३९ ॥ इसी कारण संध्यामें संध्योपासनकी श्रुति कही है अक्षतसे विष्णु और तुलसीसे गणेशका पूजन न करे ॥ ४० ॥ दूर्वासे भगवतीको केतकीसे शंकरको न पूजे. मल्लिका, जातिकुसुम, कुटज, पनस ॥ ४१ ॥ किंशुक, बकुल, कुंद, लोध, करवीर (कनेर) शिंशपा, अपराजिता फूल, बंधुक, अगस्त्य ॥ ४२ ॥

मदंत, सिन्धुवार, ढाकके फूल, दूर्वांकुर, बेलपत्र, जरिकाफूल ॥ ४३ ॥ शल्लकी, चमेली, आक, मंदार, केतकी कार्णिकार कदम्बके फूल ॥ ४४ ॥ पुन्नाग चम्पक, यूथिका, तगर इत्यादि पुष्प देवीके प्रिय हैं, भगवतीके दुर्गा विग्रहपर दूर्वांकुरका निषेध है अन्यत्र नहीं ॥ ४५ ॥ गुग्गुलकी धूप तिलके तेलका दीपक कर 'एक ओर घृतकाभी रख' पूजा करने उपरांत मूल मंत्र जपे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार पूजाकर वेदाभ्यास करे फिर अपनी वृत्तिके अनुसार पालनीयोंका पालन करे ॥ ४७ ॥ माता पिता गुरु गुरुपत्नी भार्या पुत्र अनाथादि पोष्य वर्ग हैं नियमपूर्वक चतुर पुरुष यह कृत्य दिनके तृतीय भागमें करे ॥ ४८ ॥

मदंतं सिंदुवारं च पालाशकुसुमं तथा ॥ दूर्वांकुरं विल्वदलं कुशमंजरिका तथा ॥ ४३ ॥ शल्लकीमाधवीपुष्पमर्कमन्दारपुष्पकम् ॥ केतकीं कर्णिकारं च कदंबकुसुमं तथा ॥ ४४ ॥ पुन्नागश्चंपकस्तद्वद्यूथिकातगरौ तथा ॥ एवमादीनि पुष्पाणि देवीप्रियकराणि च ॥ ४५ ॥ गुग्गुलस्य भवेद्धूपो दीपः स्यात्तिलतैलतः ॥ कृत्वेत्थं देवता पूजां ततो मूलमनुं जपेत् ॥ ४६ ॥ एवं पूजां समाप्यैव वेदाभ्यासं चरेद्बुधः ॥ ततः स्ववृत्त्या कुर्वीत पोष्यवर्गार्थसाधनम् ॥ ४७ ॥ तृतीयदिन भागे तु नियमेन विचक्षणः ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीनारद उवाच ॥ पूजाविशेषं श्रीदेव्याः श्रोतुमिच्छामि मानद ॥ येनाश्रितेन मनुजः कृतकृत्यत्वमावहेत् ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ देवर्षे शृणु वक्ष्यामि श्रीमातुः पूजनक्रमम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं साक्षात्समस्तापन्निवारणम् ॥ २ ॥ आचम्य मौनी संकल्प्य भूतशुद्ध्यादिकं चरेत् ॥ मातृकान्यास पूर्वं तु षडंगन्यासमाचरेत् ॥ ३ ॥ शंखस्य स्थापनं कृत्वा सामान्यार्घ्यं विधाय च ॥ पूजाद्रव्याणि चास्त्रेण प्रोक्षयेन्मतिमान्नरः ॥ ४ ॥ गुरोरनुज्ञामादाय ततः पूजां समारभेत् ॥ पीठपूजां पुरा कृत्वा देवीं ध्यायेत्ततः परम् ॥ ५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीनारदजी बोले हे मानद ! देवीकी विशेष पूजा सुननेकी इच्छा करता हूं जिसके आश्रयसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले हे देवर्षि ! सुनो श्रीमाताका पूजनक्रम कहता हूं जो साक्षात् भुक्तिमुक्तिदायक सब आपत्तियोंका निवारक है ॥ २ ॥ मौन हो आचमन कर संकल्प करनेउपरांत भूतशुद्धि करे फिर मातृकान्यासपूर्वक षडंगन्यास करे ॥ ३ ॥ शंखको स्थापनकर सामान्य अर्घ्य देकर फट् मन्त्रके जलसे पूजाद्रव्यको प्रोक्षण करे ॥ ४ ॥ फिर गुरुकी आज्ञा लेकर पूजा आरंभ करे, पहले पीठ पूजाकर फिर देवीका ध्यान करे ॥ ५ ॥

भक्ति प्रेमसे आसनादि उपचार करे और पंचामृतके जलोंसे देवीको स्नान करावे रसादिसे न्हवावे ॥ ६ ॥ पौंड्र ईखके रससे सौकलशोंसे जो देवीको स्नान कराता है उसका फिर जन्म नहीं होता ॥ ७ ॥ जो आमके रससे देवीको स्नान कराता है वा वेदपारायण करके इक्षुरससे न्हवावे ॥ ८ ॥ उसके घरको लक्ष्मी सरस्वती कभी त्यागन नहीं करती, जो वेदपारायण करता हुआ दाखके रससे ॥ ९ ॥ महेशानीको सकुटुंब स्नान कराता है वह नरोत्तम होता है, रेणुमात्र रसदेनेसे भी देवीलोकमें पूजित होता है ॥ १० ॥ कपूर अगर केसर कस्तूरीके जलोंसे न्हवाते वेदपारायण करता है ॥ ११ ॥ उसके सौ जन्मोंके पाप भस्म होते हैं, जो वेदपाठ करते दूधके कलशोंसे देवीको स्नान कराते हैं ॥ १२ ॥ वह कल्पपर्यन्त क्षीरसागरमें निवास करते हैं जो दहीसे न्हवाते वह दधि

आसनाद्युपचारैश्च भक्ति प्रेमयुतां सदा ॥ स्नापयेत्परदेवीं तां पंचामृतरसादिभिः ॥ ६ ॥ पौंड्रेक्षुरसपूर्णैस्तु कलशैः शतसंख्यकैः ॥ स्नापयेद्यो महेशानीं न स भूयोऽभिजायते ॥ ७ ॥ चूतरसैरेवं स्नापयेज्जगदंबिकाम् ॥ वेदपारायणं कृत्वा रसेनेक्षूद्भवेन वा ॥ ८ ॥ तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती ॥ यस्तु द्राक्षारसेनैव वेदपारायणं चरन् ॥ ९ ॥ अभिषिंचेन्महेशानीं सकुटुंबो नरोत्तमः ॥ रसरेणुप्रमाणं च देवीलोके महीयते ॥ १० ॥ कर्पूरागुरुकाश्मीरकस्तूरीपंकपंकिलैः ॥ सलिलैः स्नापयेद्देवीं वेदपारायणं चरन् ॥ ११ ॥ भस्मीभवंति पापानि शत जन्मार्जितानि च ॥ यो दुग्धकलशैर्देवीं स्नापयेद्वेदपाठतः ॥ १२ ॥ आकल्पं स वसेन्नित्यं तस्मिन्वै क्षीरसागरे ॥ यस्तु दध्नाभिषिंचेत्तां दधिकुल्यापतिर्भवेत् ॥ १३ ॥ मधुना च घृतेनैव तथा शर्करयाऽपि च ॥ स्नापयेन्मधुकुल्यादिनदीनां स पतिर्भवेत् ॥१४॥ सहस्रकलशैर्देवीं स्नापये द्भक्तितत्परः ॥ इह लोके सुखीभूत्वाप्यन्यलोके सुखी भवेत् ॥१५॥ क्षौमवस्त्रद्वयं दत्त्वा वायुलोकं स गच्छति ॥ रत्ननिर्मितभूषाणां दाता निधिपतिर्भवेत् ॥१६॥ काश्मीरचंदनं दत्त्वा कस्तूरीबिंदुभूषितम् ॥ तथा सीमंतसिंदूरं चरणेऽलक्तपत्रकम् ॥ १७ ॥ इन्द्रासने समारूढो भवेद्देवपतिः परः ॥ पुष्पाणि विविधान्याहुः पूजाकर्मणि साधवः ॥ १८ ॥

कुल्या नदी जो देवलोकमें हैं उनके अधिपति होते हैं ॥ १३ ॥ मधु घी शर्करासे स्नान करानेसे मधु, घी, शर्करादि कुल्याओंका अधिपति होता है ॥१४॥ जो भक्तिपूर्वक सहस्र कलशोंसे देवीको स्नान कराता है वह दोनों लोकमें सुखी होता है ॥ १५ ॥ दो अलसीके बने वस्त्र देकर वायुलोकमें जाता है, और रत्ननिधियोंका देनेवाला निधिपति होता है ॥ १६ ॥ केशर चन्दन, कस्तूरी, बिन्दी, केशविधायक सिंदूर चरणोंमें महावर ॥ १७ ॥ देकर इन्द्रासनमें स्थित हो देवपति होता है, महात्माओंने पूजामें अनेक फूल कहे हैं ॥ १८ ॥

यथालाभ उनको देकर कैलाशवासी होता है जो अमोघ बेलपत्र भगवतीको देता है ॥ १९ ॥ उसको कभी कदाचित् दुःख नहीं होता, तीनों बेलपत्र पर लालचंदनसे ॥ २० ॥ स्फुट तीन मायाबीज (ह्रीं) लिखकर और चतुर्थीयुक्त "ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः" उच्चारण कर ॥ २१ ॥ परम भक्तिसे देवीके चरण कमलमें कोमल पत्रोंको अर्पण करे ॥ २२ ॥ जो परम भक्तिसे ऐसा करते वह मनु होते हैं, जो कोमल और अति निर्मल ऐसे कोटि दलोंसे ॥ २३ ॥ भुवनेश्वरीका पूजन करते हैं, वह ब्रह्माण्डके अधिपति होते हैं, जो नवीन कुन्दके पुष्पोंको अष्टगंधसे युक्त ॥ २४ ॥ एककोटि चढाय पूजा करते हैं वह प्राजा

तानि दत्त्वा यथालाभं कैलासं लभते स्वयम् ॥ बिल्वपत्राण्यमोघानि यो दद्यात्परशक्तये ॥ १९ ॥ तस्य दुःखं कदाचिच्च क्वचिच्च न भविष्यति ॥ बिल्वपत्रत्रये रक्तचचंदनेन तु संलिखेत् ॥ २० ॥ मायाबीजत्रयं यत्नात्सुस्फुटं चातिसुन्दरम् ॥ मायाबीजादिकं नाम चतुर्थ्यंतं समुच्चरेत् ॥ २१ ॥ नमोऽतं परया भक्त्या देवीचरणपंकजे ॥ समर्पयेन्महा देव्यै कोमलं तच्च पत्रकम् ॥ २२ ॥ य एवं कुरुते भक्त्या मनुत्वं लभते हि सः ॥ यस्तु कोटिदलैरेव कोमलैरतिनिर्मलैः ॥ २३ ॥ पूजयेद्भुवनेशानीं ब्रह्मांडाधिपतिर्भवेत् ॥ कुन्द पुष्पैर्नवीनैस्तु लुलितैरष्टगन्धतः ॥ २४ ॥ कोटिसंख्यैः पूजयेत्तु प्राजापत्यं लभेद्ध्रुवम् ॥ मल्लिकामालतीपुष्पैरष्टगन्धेन लोलितैः ॥ २५ ॥ कोटिसंख्यैः पूजया तु जायते स चतुर्मुखः ॥ दशकोटिभिरप्येवं तैरेव कुसुमैर्मुने ॥ २६ ॥ विष्णुत्वं लभते मर्त्यो यत्सु रेष्वपि दुर्लभम् ॥ विष्णुनैतद्व्रतं पूर्वकृतं स्वपदलब्धये ॥ २७ ॥ शतकोटिभिरप्येवं सूत्रात्मत्वं व्रजेध्रुवम् ॥ व्रतमेतत्पुरा सम्यक्कृतं भक्त्या प्रयत्नतः ॥ २८ ॥ तेन व्रत प्रभावेन हिरण्योदरतां व्रजेत् ॥ जपाकुसुमपुष्पस्य वन्धूककुसुमस्य च ॥ २९ ॥

पत्य पदको प्राप्त होते हैं, अष्टगन्धसे मायाबीज लिखकर उसके सहित जो मल्लिका मालतीका ॥ २५ ॥ एक कोटि फूल चढाकर पूजा करते हैं वह चतुर्मुख होते हैं हे मुने ! जो उसके दशकोटि पुष्प चढाते हैं ॥२६॥ वह मनुष्य देवताओंको दुर्लभ विष्णुत्वको प्राप्त होते हैं अपनी पद प्राप्तिके निमित्त पहले विष्णुने यह व्रत किया था ॥ २७ ॥ इसके सौ कोटि फूल चढानेसे जिसमें मायाबीज लिखा हो मनुष्य सूत्रात्मापद 'हिरण्यगर्भ' को प्राप्त होता है यह व्रत प्रयत्नसे भक्तिपूर्वक करनेसे ॥ २८ ॥ इसके प्रभावसे हिरण्यगर्भताको प्राप्त होता है जपाकुसुम,बंधूक पुष्प ॥ २९ ॥

१ सावितः शुद्ध ।

दाडिमी कुसुमकी भी यही विधि है इसी प्रकार और भी फूल भक्तिसे देवीको अर्पण करे ॥ ३० ॥ इसके पुण्यफलोंके अन्तको ईश्वर भी नहीं जानते प्रत्येक ऋतुमें हुए फूलोंसे ॥ ३१ ॥ स्कन्धमें लिखे सहस्र नामकी संख्यासे सावधान हो प्रतिवर्ष देवीको समर्पण करे, जो ऐसा करता है वह महापातक संयुक्त होकर भी ॥ ३२ ॥ वा उपपातक संयुक्त हो वह उनसे छूट जाता है देहान्तमें वह साधक देवताओंको भी दुर्लभ देवीके पदकमलको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ हे मुने ! इसमें सन्देह नहीं काला अगर, कपूर, चन्दन ॥ ३४ ॥ सिह्लक (लोवान) घृत, गुग्गुल इनसे महादेवीको धूपदे जो भगवतीका मंदिर धूपित करता है

दाडिमीकुसुमस्यापि विधिरेष उदीरितः ॥ एवमन्यानि पुष्पाणि श्रीदेव्यै विधिनाऽर्पयेत् ॥ ३० ॥ तस्य पुण्यफलस्यांतं न जानातीश्वरोऽपि सः ॥ तत्तदृतूद्भवैः पुष्पैर्नामसाहस्रसंख्यया ॥ ३१ ॥ समर्पयेन्महादेव्यै प्रतिवर्षमतंद्रितः ॥ य एवं कुरुते भक्त्या महापातकसंयुतः ॥ ३२ ॥ उपपातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः ॥ देहांते श्रीपदांभोजं दुर्लभं देवसत्तमैः ॥ ३३ ॥ प्राप्नोति साधकवरो मुने नास्त्यत्र संशयः ॥ कृष्णागुरुं सकर्पूरं चन्दनेन समन्वितम् ॥ ३४ ॥ सिल्हकं चाज्यसंयुक्तं गुग्गुलेन समन्वितम् ॥ धूपं दद्यान्महादेव्यै येन स्याद्धूपितंगृहम् ॥ ३५ ॥ तेन प्रसन्ना देवेशी ददाति भुवनत्रयम् ॥ दीपं कर्पूरखण्डैश्च दद्याद्देव्यै निरंतरम् ॥ ३६ ॥ सूर्यलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ शतदीपांस्तथा दद्यात्सहस्रान्वा समाहितः ॥ ३७ ॥ नैवेद्यं पुरतो देव्या स्थापयेत्पर्वताकृतिम् ॥ लेह्यैश्चोष्यैस्तथा पेयैः षड्रसैस्तु समाहितैः ॥ ३८ ॥ नानाफलानि दिव्यानि स्वादूनि रसवंति च ॥ स्वर्णपात्रस्थितान्नानि दद्याद्देव्यै निरंतरम् ॥ ३९ ॥ तृप्तायां श्रीमहादेव्यां भवेत्तृप्तं जगत्त्रयम् ॥ यतस्तदात्मकं सर्वं रज्जौ सर्पो यथा तथा ॥ ४० ॥ ततः पानीयकं दद्याच्छुभं गंगाजलं महत् ॥ कर्पूरवालासंयुक्तं शीतलं कलशस्थितम् ॥ ४१ ॥

॥ ३५ ॥ उससे प्रसन्न हो देवेशी उसको त्रिलोकी देती है जो निरन्तर देवीको दीपक और कपूर देता है ॥ ३६ ॥ वह निःसन्देह सूर्य लोकको प्राप्त होता है जो सौ वा सहस्र दीपक देता है ॥ ३७ ॥ और महान् पर्वताकार नैवेद्य भगवतीके आगे स्थापित करता है लेह्य, चोष्य, पेय षड्रसोंको ॥ ३८ ॥ तथा अनेक दिव्य वादिष्ट रसभरे फल सोनेके पात्रमें रखकर जो देवीको देता है ॥ ३९ ॥ तो महा देवीके तृप्त होनेपर सब जगत् तृप्त हो जाता है, कारण कि यह सब जगत् तदात्मक ही है रज्जुमें सर्पकीसी समान भ्रम है ॥ ४० ॥ फिर सुन्दर गङ्गाजल पीनेको दे जो कर्पूर नेत्रवाला, इनसे शीतलकर कलशमें स्थापन

किया है ॥ ४१ ॥ फिर देवीके निमित्त सम्पूर्ण सुगन्ध लवंगसे युक्त मुखकी सुगंधि करनेवाला ताम्बूल दे, जिसमें कपूर भी हो ॥ ४२ ॥ महाभक्तिसे देनेसे देवी प्रसन्न होती है, मृदंग, वीणा, मुरज, ढक्का, दुंदुभीके शब्दोंसे ॥ ४३ ॥ तथा मनोहर गानोंसे जगन्माताको सन्तुष्ट करे, वेदपरायण तथा पुराणोंके स्तोत्र पढे ॥ ४४ ॥ सावधान हो देवीके निमित्त छत्र और दो चँवर प्रदान कर श्री देवीके निमित्त नित्य ही राजोपचार समर्पण करे ॥ ४५ ॥ अनेक प्रकारसे देवीकी प्रदक्षिणा नमस्कार करे और वारंवार जगद्धात्री जगदम्बासे क्षमा करावे ॥ ४६ ॥ जहां एकवार स्मरण करनेसे ही देवी प्रसन्न होती है, फिर इतने उपचारोंसे

ताम्बूलं च ततो देव्यै कर्पूरशकलान्वितम् ॥ एलालवंग संयुक्तं मुखसौगंध्यदायकम् ॥ ४२ ॥ दद्याद्देव्यै महाभक्त्या येन देवा प्रसीदति ॥ मृदंगवीणामुरजढक्कांदुदुभिनिःस्वनैः ॥ ४३ ॥ तोषयेज्जयतां धात्रीं गायनैरतिमोहनैः ॥ वेदपारायणैः स्तोत्रैः पुराणादिभिरप्युत ॥ ४४ ॥ छत्रं च चामरे द्वे च दद्याद्देव्यै समाहितः ॥ राजोपचारान् श्रीदेव्यै नित्यमेव समर्पयेत् ॥ ॥ ४५ ॥ प्रदक्षिणां नमस्कारं कुर्याद्देव्या अनेकधा ॥ क्षमापयेज्जगद्धात्रीं जगदम्बांमुहुर्मुहुः ॥ ४६ ॥ सकृत्स्मरणमात्रेण यत्र देवा प्रसीदति ॥ एतादृशोपचारैश्च प्रसीदेदत्र कः स्मयः ॥ ४७ ॥ स्वभावतो भवेन्माता पुत्रेऽतिकरुणावती ॥ तेन भक्तौ कृतायां तु वक्तव्यं किं ततः परम् ॥ ४८ ॥ अत्र ते कथयिष्यामि पुरावृत्त सनातनम् ॥ बृहद्रथस्यः राजर्षे प्रियं भक्तिप्रदायकम् ॥ ४९ ॥ चक्रवाको भवेत्पक्षीक्वचिद्देशे हिमालये ॥ भ्रमन्नानाविधान्देशान्ययौ काशीपुरं प्रति ॥ ५० ॥ अन्नपूर्णामहास्थाने प्रारब्धवशतो द्विजः ॥ जगाम लीलया तत्र कणलोभादनाथवत् ॥ ५१ ॥ कृत्वा प्रदक्षिणामेकां जगाम च विहायसा ॥ देशांतरं विहायैव पुरीं मुक्तिप्रदायिनीम् ॥ ५२ ॥ कालांतरे ममारासौ गतः स्वर्णपुरीं प्रति ॥ बुभुजे विषयान्सर्वान् दिव्यरूपधरो युवा ॥ ५३ ॥

प्रसन्न हो इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ४७ ॥ माता स्वभावसे ही पुत्रोंमें दयावती होती है, फिर भक्ति करनेपर तो क्या कहना है ॥ ४८ ॥ यहां एक भक्तिदायक बृहद्रथ राजर्षिका पुरातन इतिहास कहते हैं ॥ ४९ ॥ कहीं एक हिमालय देशमें चक्रवाक पक्षी था वह अनेक देशोंमें भ्रमण करता काशीपुरी गया ॥ ५० ॥ वह प्रारब्धवश अन्नपूर्णाके स्थानमें प्राप्त हुआ, वह कणलोभसे अनाथवत् लीलासे होगया ॥ ॥ ५१ ॥ फिर एक प्रदक्षिणकर आकाशमें गया, इस प्रकार देशान्तरोंको छोड़कर मुक्तिदायक पुरीमें रहा ॥ ५२ ॥ फिर कुछ कालान्तरमें मृत्युको प्राप्त हो स्वर्गमें गया दिव्यरूपधारी युवा होकर सब विषयोंको भोगने लगा ॥ ५३ ॥

इस प्रकार दो कल्प आनंदकर फिर भूलोकमें आया और सर्वोत्तम क्षत्रियोंके कुलमें जन्म पाया ॥ ५४ ॥ भूमण्डलमें बृहद्रथ नामसे प्रसिद्ध हुआ जो महा यज्ञ करनेवाला धर्मात्मा सत्यवादी जितेंद्रिय था ॥ ५५ ॥ त्रिकालका ज्ञाता सार्वभौम यम नियममें तत्पर शत्रुनाशी था और उसको इस भूमिमें दुर्लभ पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही ॥ ५६ ॥ इस किंवदन्तीको सुनकर वहां मुनिराज आकर प्राप्त हुए और राजासे अतिथिसत्कारको प्राप्त हो विस्तरों पर बैठे ॥ ५७ ॥ और सब ऋषि बोले हे राजन् ! हमको बड़ा संशय है किस पुण्यके प्रभावसे तुमको पूर्वजन्मकी स्मृति है ॥ ५८ ॥ तथा किस पुण्यके प्रभावसे तुमको त्रिकालज्ञान है तुम्हारा ज्ञान जाननेके निमित्त हम तुम्हारे शमीप आये हैं ॥ ५९ ॥ सो आप उपालंभरहित हो यथार्थ रूपसे हमसे वर्णन कीजिये. नारायण बोले

कल्पद्वयं तथा भुक्त्वा पुनः प्राप भुवं प्रति ॥ क्षत्रियाणां कुले जन्म प्राप सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ ५४ ॥ बृहद्रथेति नाम्नाऽभूत्प्रसिद्धः क्षितिमंडले ॥ महायज्वा धार्मिकश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ ५५ ॥ त्रिकालज्ञः सार्वभौमो यमी परपुरंजयः ॥ पूर्वजन्मस्मृतितस्य वर्तते दुर्लभा भुवि ॥ ५६ ॥ इति श्रुत्वा किंवदंतीं मुनयः समुपागताः ॥ कृता तिथ्या नृपेंद्रेण विष्टरेषूषुरेव ते ॥ ५७ ॥ पप्रच्छुर्मुनयः सर्वे संशयोऽस्ति महान्नृप ॥ केन पुण्यप्रभावेण पूर्वजन्मस्मृतिस्तव ॥ ५८ ॥ त्रिकालज्ञानमेवापि केन पुण्य प्रभावतः ॥ ज्ञानं तवेति तज्ज्ञातुमागताः स्म तवांतिकम् ॥ ५९ ॥ वद निर्व्याजया वृत्त्या तदस्माकं यथातथम् ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः ॥ ६० ॥ उवाच सकलं ब्रह्मंस्त्रिकालज्ञानकारणम् ॥ श्रूयतां मुनयः सर्वे मम ज्ञानस्य कारणम् ॥ ६१ ॥ चक्रवाकः स्थितः पूर्वं नीचयोनिगतोऽपि वा ॥ अज्ञानतोऽपि कृतवानन्नपूर्णा प्रदक्षिणाम् ॥ ६२ ॥ तेन पुण्यप्रभावेण स्वर्गेकल्पद्वयस्थितिः ॥ त्रिकालज्ञानतोऽप्यस्मिन्नभूज्जमनि सुव्रत ॥ ६३ ॥ को वेद जगदंबायाः पदस्मृतिफलं कियत् ॥ स्मृत्वातन्महिमानं तु पतंत्यश्रूणि मेऽनिशम् ॥ ६४ ॥

इसप्र कार उनके वचन सुन परम धर्मात्मा राजा ॥ ६० ॥ संपूर्ण त्रिकालज्ञानके कारणको कहने लगा, हे मुनियो ! तुम सब मेरे ज्ञानका कारण सुनो ॥ ६१ ॥ मैं पहले नीच योनि चक्रवाकमें स्थित था, अज्ञानसे मैंने अन्नपूर्णाकी प्रदक्षिणा की थी ॥ ६२ ॥ उस पुण्यके प्रभावसे स्वर्गमें दो कल्प रहा. हे सुव्रतो ! अब इस जन्ममें भूलोकमें त्रिकालज्ञान प्राप्त होकर स्थित हुआ हूं ॥ ६३ ॥ कौन जाने जगदम्बाके चरण स्मरणका कितना फल है वह महिमा उनकी स्मरण कर मेरे अश्रुपात होते हैं ॥ ६४ ॥

उन कृतघ्न पापी जनोंके जन्मको धिक्कार है जो सबकी माता देवीकी उपासना नहीं करते ॥ ६५ ॥ शिव विष्णुकी उपासना नित्य नहीं है परादेवीके उपासनाकी नित्य आज्ञा वेदमें स्थित है [अहरहःसंध्यामुपासीत इत्यादि] ॥ ६६ ॥ इस संदेह रहित स्थानमें बहुत क्या कहूं निरंतर भगवतीके चरणकमलोंका सेवन करना चाहिये ॥ ६७ ॥ भूमितलमें इससे अधिक और कुछ नहीं है वह परादेवी सगुणा निर्गुणा सेवन करनी चाहिये ॥ ६८ ॥ नारायण बोले इस प्रकार धार्मिक राजाका वचन सुन प्रसन्न मन हो सब अपने २ स्थानको गये ॥ ६९ ॥ भगवतीका इतना प्रभाव है फिर उसकी पूजाका फल कितना है यह कौन कह सकता है ? इसके पूँछनेपर पूरा उत्तर कौन दे सकता है ? ॥ ७० ॥ जिनका जन्म सफल है उन्हीं की इसमें श्रद्धा होती है जिनका जन्म

धिगस्तु जन्म तेषां वै कृतघ्नानां तु पापिनाम् ॥ ये सर्वे मातरं देवीं स्वोपास्यां न भजंति हि ॥ ६५ ॥ न शिवोपासना नित्या न विष्णूपासना तथा ॥ नित्योपास्तिः परादेव्या नित्या श्रुत्यैव चोदिता ॥ ६६ ॥ किं मया बहु वक्तव्यं स्थाने संशयवर्जिते ॥ सेवनीयं पदांभोजं भगवत्या निरंतरम् ॥ ६७ ॥ नातः परतरं किंचिदधिकं जगती तले ॥ सेवनीया परा देवी निर्गुणा सगुणाऽथवा ॥ ६८ ॥ नारायण उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राजर्षेर्धार्मिकस्य च ॥ प्रसन्नहृदया सर्वे गताः स्वस्वनिकेतनम् ॥ ६९ ॥ एवंप्रभावा सा देवी तत्पूजायाः फलं कियत् ॥ अस्तीति केन प्रष्टव्यं वक्तव्यं वा न केनचित् ॥७०॥ येषां तु जन्मसाफल्यं तेषां श्रद्धा तु जायते ॥ येषां तु जन्मसांकर्यं तेषां श्रद्धा न जायते ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ नारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् सन्ध्यां माध्याह्निकीं शुभाम् ॥ यदनुष्ठानतोऽपूर्वं जायतेऽत्युत्तमं फलम् ॥ १ ॥ सावित्रीं युवतीं श्वेत वर्णां चैव त्रिलोचनाम् ॥ वरदां चाक्षमालाढ्यां त्रिशूलाभयहस्तकाम् ॥ २ ॥ वृषारूढां यजुर्वेदसंहितां रुद्रदेवताम् ॥ ततो गुणयुतां चैव भुवर्लोकव्यवस्थिताम् ॥ ३ ॥ आदित्यमार्गसंचारकर्त्रीं मायां नमाम्यहम् ॥ आदिदेवीमथ ध्यात्वाऽऽचमनादि च पूर्ववत् ॥ ४ ॥

संकरता युक्त है उनकी श्रद्धा नहीं होती ॥ ७१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीनारायण बोले अब मध्याह्न समयकी शुभसंध्याको सुनो जिसके अनुष्ठानसे उत्तम फल होता है ॥ १ ॥ मध्याह्न समय सावित्री युवती श्वेतवर्णा त्रिलोचना वरदायक अक्षमालासे युक्त त्रिशूल अभय हाथमें धारण किये ॥ २ ॥ वृषपर आरूढ यजुर्वेद उच्चारण करती रुद्रसे उपास्य तमोगुणयुक्त भुवर्लोकमें स्थित ॥ ॥ ३ ॥ आदित्यमार्गमें संचार करनेवाली मायाको मैं प्रणाम करता हूं,इस प्रकार आदिदेवीको ध्यान कर पूर्ववत् आचमनादि कर ॥ ४ ॥

दे. भा. फिर अर्घ्यके निमित्त पुष्पचयन करे उसके अभावसे बिल्वपत्र जलसे संयुक्त करे ॥ ५ ॥ सूर्यके सन्मुख ऊर्ध्वमुख होकर अर्घ्य दे और सब प्रभात संध्याके
॥४३॥ समान उपचार करे ॥ ६ ॥ कोई मध्याह्नमें अर्घ्यदानका निषेध कर कहते हैं कि यह संप्रदाय सिद्ध नहीं इसमें कार्यहानि होती है ॥ ७ ॥ कारण यह है
कि, दोनों संध्याओंमें मन्देहा नाम राक्षस सूर्यकी भक्षणकी इच्छा करते हैं इससे अर्घ्य देते हैं यह श्रुतिकथित कारण है ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मण इस कारण संध्यामें
दोनों समय अवश्य अर्घ्य दे और दोनों संध्याओंमें ओंकार सहित गायत्रीका जप करे ॥ ९ ॥ फिर अर्घ्य दे अन्यथा श्रुतिघातक होता है 'आकृष्णेन' वा

अथ चार्घ्यप्रकरणं पुष्पाणि चिनुयात्ततः ॥ तदलाभे बिल्वपत्रं तोयेनामिश्रयेत्ततः ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वं च सूर्याभिमुखं क्षिप्त्वाऽर्घ्यं प्रति पादयेत् ॥ प्रातः संध्यादिवत्सर्वमुपसंहारपूर्वकम् ॥ ६ ॥ मध्याह्ने केचिदिच्छंति सावित्रीं तु तदित्यृचम् ॥ असंप्रदायं तत्कर्म कार्य हानिस्तु जायते ॥ ७ ॥ कारणं संध्ययोश्चात्र मंदेहानाम राक्षसाः॥भक्षितु सूर्यमिच्छन्ति कारणं श्रुतिचोदितम् ॥ ८ ॥ अतस्तु कारणा द्विप्रः संध्यां कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ संध्ययोरुभयोर्नित्यं गायत्र्या प्रणवेन च ॥ ९ ॥ अंभस्तु प्रक्षिपेत्तेन नान्यथा श्रुतिघातकः ॥ आकृष्णे नेति मंत्रेण पुष्पैर्वांबु विमिश्रितम् ॥ १० ॥ अलाभे बिल्वदूर्वादिपत्रेणोक्तेन पूर्वकम् ॥ अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नेनसांगं संध्याफलं लभेत् ॥ ११ ॥ अत्रैव तर्पणं वक्ष्ये शृणु देवर्षिसत्तम ॥ भुवः पुनः पूरुषं तु तर्पयामि नमोनमः ॥ १२ ॥ यजुर्वेदं तर्पयामि मण्डलं तर्पयामि च ॥ हिरण्यगर्भं च तथांऽतरात्मानं तथैव च ॥ १३ ॥ सावित्रीं च ततो देवमातरं साकृतिं तथा ॥सन्ध्यां तथैव युवतीं रुद्राणी नीमृजां तथा ॥ १४ ॥ सर्वार्थानां सिद्धिकरीं सर्वमंत्रार्थसिद्धिदाम् ॥ भूर्भुवःस्वः पुरुषं तु इति मध्याह्नतर्पणम् ॥ १५ ॥ उदुत्यमिति सूक्तेन सूर्योपस्थानमेव च ॥ चित्रं देवानामिति च सूर्योपस्थानमाचरेत् ॥ १६ ॥

'हंसः शुचिषद्' यह मंत्र पढकर फूल और जल मिलावे ॥ १० ॥ बिल्वदूर्वादि न मिले तो फूल फूलके अभावमें दूर्वादि मिलाय अर्घ्य देतो संध्याका
भा. टी. ए. सांग फल प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ हे देवर्षिसत्तम ! इसी विषयमें तर्पण कहते हैं ॐभुवः पुरुषं तर्पयामि नमोनमः ॥ १२ ॥ ॐयजुर्वेदं तर्पयामी ॐमण्डलं तर्पयामि
अ० १९ ॐहिरण्यगर्भंत०ॐअन्तरात्मानंत० ॥ १३ ॥ ॐसावित्रींत० ॐवेदमातरंत०ॐसांकृतिंत०ॐसन्ध्यांत०ॐयुवतींत० ॐरुद्राणींत० ॐ नीमृजांत० ॥ १४ ॥ ॐ
सर्वार्थानामसिद्धकरींत०ॐसर्वमन्त्रार्थसिद्धिदांत०ॐभूर्भुवःस्वः पुरुषं तर्पयामि, यह मध्याह्न तर्पण है ॥ १५ ॥ ओं 'उदुत्यम्' इस सूक्तसे और 'चित्रं देवानां'

इस मंत्रसे सूर्यका उपस्थान करे ॥ १६ ॥ फिर मंत्र साधनमें तत्पर अपना जप करे हे नारद ! सुनो मैं जपका भी प्रकार कहता हूं ॥ १७॥ प्रभातको हाथ ऊँचे कर संध्याको नीचे और मध्याह्नको हृदयमें हाथ धरकर जप करे ॥ १८ ॥ अनामिकाके दोनों पर्व मध्यम और मूल और कनिष्ठाके मूलपर्वसे दक्षिणावर्त क्रमसे तर्जनी मूल पर्वपर्यंत करमाला कही गई है ॥ १९ ॥ जो गोघ्न, पितृघ्न, मातृहा, गर्भहा, गुरुतल्पगामी, ब्राह्मणका धन हरनेवाला तथा जो सुरापान करता है ॥ २० ॥ वह मनुष्य एक सहस्र गायत्री जपकर पवित्र हो जाता है मन वचन कर्म और विषयेंद्रियके संगसे उत्पन्न हुआ पाप ॥ २१ ॥ गायत्री ऐसे तीन जन्मके मनुष्यके पाप दूर करती है जो गायत्रीको नहीं जानता है उसका परिश्रम वृथा है ॥ २२ ॥ चारों वेदका पढना, और एक ओर गायत्रीका

ततो जपं प्रकुर्वीत मंत्रसाधनतत्परः ॥ जपस्यापि प्रकारं तु वक्ष्यामि शृणु नारद ॥ १७ ॥ कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः सायं चाऽधः करौ तथा ॥ मध्याह्ने हृदयस्थौ तु कृत्वा जपमुदीरयेत् ॥ १८ ॥ पर्वद्वयमनामिक्याः कनिष्ठादिक्रमेण तु ॥ तर्जनीमूलपर्यन्तं करमाला प्रकीर्तिता ॥ १९ ॥ गोघ्नः पितृघ्नो मातृघ्नो भ्रूणहा गुरुतल्पगः ॥ ब्रह्मस्वक्षेत्रहारी च यश्च विप्रः सुराः पिबेत् ॥ २० ॥ स गायत्र्याः सहस्रेण पूतो भवति मानवः ॥ मानसं वाचिकं पापं विषयेंद्रियसंगजम् ॥ २१ ॥ तत्किल्बिषं नाशयति त्रीणि जन्मानि मानवः ॥ गायत्रीं यो न जानाति वृथा तस्य परिश्रमः ॥ २२ ॥ पठेच्च चतुरो वेदान् गायत्रीं चैकतो जपेत् ॥ वेदानां चावृतेस्तद्वद्गायत्रीजप उत्तमः ॥ २३ ॥ इति मध्याह्नसंध्यायाः प्रकारः कीर्तितो मया ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मयज्ञविधिक्रमम् ॥ २४ ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे एकादशस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ द्विराचम्य द्विजः पूर्वं द्विर्मार्जनमथाचरेत् ॥ उपस्पृशेत्सव्यपाणिं पादौ च प्रोक्षयेत्ततः ॥ १ ॥ शिरसि चक्षुषि तथा नासायां श्रोत्रदेशके ॥ हृदये च तथा मौलौ प्रोक्षणं सम्यगाचरेत् ॥ २ ॥ देशकालौ समुच्चार्य ब्रह्मयज्ञमथाचरेत् ॥ द्वौ दर्भौ दक्षिणे हस्ते वामेत्रीनासने सकृत् ॥ ३ ॥

जप इनमें गायत्रीही मुख्य है ॥ २३ ॥ यह मन मध्याह्न संध्याका प्रकार कहा अब ब्रह्म यज्ञ विधिका क्रम कहते हैं ॥ २४ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ नारायण बोले ब्राह्मण पहले तीनवार आचमन कर दोवार मार्जन करे सीधा हाथ धोकर फिर चरणोंको प्रक्षालन करे ॥ १ ॥ शिर चक्षु नासिका श्रोत्र हृदय शिर इनमें प्रोक्षण करे फिर देश काल उच्चारण कर ब्रह्मयज्ञ करे दक्षिणहाथमें दो कुशा, बायें हाथमें तीन, आसनमें एक ॥ २ ॥ ३ ॥

उपवीत शिखा और पादमूलमें एक एक रक्खे यह मुक्ति और सब पापक्षयमें उपयोगी है ॥ ४ ॥ सूत्रमें कहे देवताकी प्रीतिके निमित्त मैं ब्रह्मयज्ञ करता हूँ पहले तीन गायत्री पढकर फिर 'अग्निमीळे पुरोहितम्' ॥ ५ ॥ 'यदंग' इति, 'अग्निर्वै' इत्यादि मंत्र पढ फिर महाव्रतका यह मार्ग है महाव्रतंचैवपंथा, ऐसा कहे ॥ ६ ॥ फिर संहिताके 'विदामघवत्' 'महा व्रतस्य इषेत्वा ऊर्जेत्वा' ॥ ७ ॥ 'अग्नआयाहि, शन्नोदेवी' और उसका समाम्नाय 'वृद्धिरादैच्' पाणि० सू० ॥ ८ ॥ और अथशिक्षां प्रवक्ष्यामि पंचसंवत्सरेति मया रसतजभेत्येवगौग्मा, यह प्रतीक हैं इनको सम्यक् प्रकार कीर्त्तन करे ॥ ९ ॥ फिर अथातो धर्म

उपवीते शिखायां च पादमूले सकृत्सकृत् ॥ विमुक्तये सर्वपापक्षयार्थं चैवमेव हि ॥ ४ ॥ सूत्रोक्तदेवताप्रीत्यै ब्रह्मयज्ञं करोम्यहम् ॥ गायत्रीं त्रिर्जपेत्पूर्वं चाग्निमीले ततः परम् ॥ ५ ॥ यदंगेति ततः प्रोच्य अग्निर्वै इति कीर्तयेत् ॥ अथ महाव्रतं चैव पंथा एतच्च कीर्तयेत् ॥ ६ ॥ अथातः संहितायाश्च विदा मघवादित्यपि ॥ महाव्रतस्येति तथा इषे त्वोर्जे इतीव हि ॥ ७ ॥ अग्न आयाहि चेत्येवं शन्नो देवी रितीति च ॥ अथ तस्य समाम्नायो वृद्धिरादैजितीव हि ॥ ८ ॥ अथ शिक्षां प्रक्ष्यामि पञ्चसंवत्सरेति च ॥ मयरसतजभनेत्येव गौग्मा इत्येव कीर्तयेत् ॥ ९ ॥ अथातो धर्मजिज्ञासा अथातो ब्रह्म इत्यपि ॥ तच्छंयोरिति च प्रोच्य ब्रह्मणे नम इत्यपि ॥ १० ॥ तर्पणं चैव देवानां ततः कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ प्रजापतिश्च ब्रह्मा च वेदा देवास्तथर्षयः ॥ ११ ॥ सर्वाणि चैव च्छन्दांसि तथोंकारस्तथैव च ॥ वषट्कारो व्याहृतयः सावित्री च ततः परम् ॥ १२ ॥ गायत्री चैव यज्ञाश्च द्यावा पृथिवी इत्यपि ॥ अन्तरिक्षं त्वहोरात्राणि च सांख्या अतः परम् ॥ १३ ॥ सिद्धाः समुद्रा नद्यश्च गिरयश्च ततः परम् ॥ क्षेत्रौषधिवनस्पत्यो गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ १४ ॥ नागा वयांसि गावश्च साध्या विप्रास्तथैव च ॥ यक्षा रक्षांसि भूतानीत्येवमन्तानि कीर्तयेत् ॥ १५ ॥

जिज्ञासा, अथातो ब्रह्म जिज्ञासा, पढकर फिर नमोब्रह्मणे नमोस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै इत्यादि तच्छंयो इति उच्चारण करके पढे ॥ १० ॥ फिर देवताओंका तर्पण और प्रदक्षिणा करे प्रजापति, ब्रह्मा, वेद, देवता, ऋषि ॥ ११ ॥ सब छंद, ओंकार, वषट्कार, व्याहृति, सावित्री ॥ १२ ॥ गायत्री, यज्ञ, द्यावापृथ्वी, अन्तरिक्ष अहोरात्र, सांख्य ॥ १३ ॥ सिद्ध, समुद्र, नदी, पर्वत, औषधि, वनस्पति, गंधर्वअप्सरा ॥ १४ ॥ नाग, पक्षी, गौ, साध्य, विप्र, यक्ष, राक्षस, भूतादि कीर्त्तन करतर्पण करे ॥ १५ ॥

१ ओं प्रजापतिस्तृप्यतु ॐ ब्रह्मा तृप्यताम् ओ३म् वेदास्तृप्यन्ताम् इत्यादि तर्पणमें देख लो ।

फिर निवीती (गलेमें यज्ञोपवीत डाल) ऋषियोंका तर्पण करे वह शतार्चि, माध्यमा, गृत्समद ॥ १६ ॥ विश्वामित्र वामदेव अत्रि भरद्वाज वशिष्ठ प्रगाथ पावमान्य ॥ १७ ॥ क्षुद्रसूक्त महासूक्त सनक सनंदन सनातन सनत्कुमार ॥ १८ ॥ कपिल आसुरि वोहलि पंचशीर्षक यह ऋषि तर्पण प्राचीनावीतिसे करे ॥ १९ ॥ सुमंतु जैमिनि वैशंपायन पैल सूत्रभाष्य भारत महाभारत ॥ २० ॥ धर्माचार्यास्तृप्यन्तु ऐसा कहे जानन्ति बाहवि गार्ग्य गौतम शाकल्य २१ बाभ्रव्य माण्डव्यमांडूकेयास्तृप्यन्तु गर्गीवाचक्नवी तृप्यतु वडवा प्रातिथेयी तृप्यतु ॥ २२ ॥ सुलभामैत्रेयीं तृप्यतु कहोळा कौषीतक और महाकौषीतकको तर्पण करे ॥२३॥

अथो निवीती भूत्वा च ऋषीन्सन्तर्पयेदपि ॥ शतार्चितो माध्यमाश्च गृत्स मदस्तथैव च ॥ १६ ॥ विश्वामित्रो वामदेवोऽत्रिर्भरद्वाज एव च ॥ वसिष्ठश्च प्रगाथश्च पावमान्यस्ततः परम् ॥ १७ ॥ क्षुद्रसूक्ता महासूक्ता सनकश्च सनन्दनः ॥ सनातनस्थैवाऽत्र सनत्कुमार एव च ॥ १८ ॥ कपिलासुरिनामानौ वोहलिः पञ्चशीर्षकः ॥ प्राचीनावीतिना तच्च कर्तव्यमथ तर्पणम् ॥ १९ ॥ सुमन्तर्जैमिनिर्वैशम्पायनः पैलसूत्रयुक् ॥ भाष्यभारतपूर्वं च महाभारत इत्यपि ॥ २० ॥ धर्माचार्या इमे सर्वे तृप्यंत्विति च कीर्तयेत् ॥ जानंतिबाहविगार्ग्यगौमा तश्चैव शाकलः ॥२१॥ बाभ्रव्यमांडव्ययुतोमांडूकेयस्ततः परम् ॥ गार्गी वाचक्नवी चैव वडवा प्रातिथेयिका ॥ २२ ॥ सुलभायुक्तमैत्रेयी कहोलश्च ततः परम् ॥ कौषीतकम्महाकौषीतकं वै तर्पयेत्ततः ॥ २३ ॥ भारद्वाजं च पैंग्यं च महापैंग्यं सुयज्ञकम् ॥ सांख्यायनमैतरेयं महैतरेयमेव च ॥ २४ ॥ बाष्कलं शाकलं चैव सुजात वक्रमेव च ॥ औदवाहि च सौजामिं शौनकं चाश्वलायनम् ॥ २५ ॥ ये चान्ये सर्वं आचार्यास्ते सर्वे तृप्तिमाप्नुयुः ॥ ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ॥ २६ ॥ ते गृह्णंतु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोद कम् ॥ एवं ते ब्रह्मयज्ञस्य विधिरुक्तोमहामुने ॥ २७ ॥ यश्चायं कुरुते ब्रह्मयज्ञस्य विधिमुत्तमम् ॥ सर्ववेदांगपाठस्य फलमाप्नोति साधकः ॥ २८ ॥ वैश्वदेवे ततः कुर्यान्नित्यश्राद्धं तथैव च ॥ अतिथिभ्योऽन्नदानं च नित्यमेव समाचरेत् ॥ २९ ॥

भरद्वाज पैंग्य महापैंग्य सुयज्ञ सांख्यायन ऐतरेय महैतरेय ॥ २४ ॥ बाष्कल शाकल वसुजातवक्र औद वाहि सौजामि शौनक आश्वलायन ॥ २५ ॥ तथा जो और आचार्य हैं वे सब तृप्तिको प्राप्त हों जो हमारे कुलमें हुए अपुत्र और गोत्री मरे हैं॥ २६ ॥ यह मेरा दिया वस्त्रनिष्पीडित जल ग्रहण करें हे मुने! यह आपसे ब्रह्मयज्ञकी विधि कही ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो इस यज्ञकी उत्तम विधि करता है उस साधकको सब वेदांग पाठका फल होता है ॥२८॥ फिर वैश्वदेव और नित्य श्राद्ध करे अतिथियोंको नित्य अन्न दान करे ॥ २९ ॥

फिर गोग्रास दे ब्राह्मणोंके सहित भोजन करे दिनके पंचम भागमें यह उत्तम कर्म करे ॥ ३० ॥ दिनके छठे सातवें भागमें इतिहास पुराण पढे आठवें भागमें लोकयात्रा करे फिर बहिः सन्ध्या करे ॥ ३१ ॥ हे महामुने ! अब सायंसन्ध्या करता हूं जिसके अनुष्ठान मात्रसे महामाया प्रसन्न होती है ॥ ३२ ॥ साधक आचमन कर प्राणायाम करके स्थिर मौन हो पद्मासनसे बैठ योगयुक्त हो सायंकालमें स्थिर हो ॥ ३३ ॥ श्रुति स्मृति आदि कर्मादिमें सगर्भ प्राणायाम होता है, अगर्भ प्राणायाम ध्यान भावका और अमन्त्र कहा है ॥३४॥ भूतशुद्धि आदि करके अन्यथा कर्म दूर कर रेचक पूरक कुम्भकद्वारा सलक्षण (इष्ट) देवताका ध्यान करे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार चतुर पुरुष सन्ध्या कालमें ध्यान करके वृद्ध सरस्वती देवी कृष्ण अंग कृष्णवस्त्र धारण किये ॥ ३६ ॥

गोग्रासं च ततो दत्त्वा भुंजीत ब्राह्मणै सह अह्नस्तु पंचमे भागे प्रकुर्यादेतदुत्तमम् ॥ ३० ॥ इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठसप्तमकौ नयेत् ॥ अष्टमे लोकयात्रा तु बहिः संध्यां ततः पुनः ॥ ३१ ॥ अथ सायन्तनीं संध्यां प्रवक्ष्यामि महामुने ॥ यदनुष्ठानमात्रेण महामाया प्रसीदतु ॥ ३२ ॥ आचम्य प्राणानायम्य साधकः स्थिरमानसः ॥ बद्धपद्मासनो योगी सायंकाले स्थिरो भवेत् ॥ ३३ ॥ श्रुतिस्मृत्यादिकर्मादौ सगर्भः प्राणसंयमः ॥ अगर्भो ध्यानमात्रं तु स चामन्त्रः प्रकीर्तितः ॥ ३४ ॥ भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा नान्यथा कर्म कीर्तितम् ॥ सलक्षो देवतां ध्यात्वा पूरकुम्भकरेचकैः ॥ ३५ ॥ ध्यानं प्रकुर्यात्संध्यायां सायंकाले विचक्षणः ॥ वृद्धां सरस्वतीं देवीं कृष्णागीं कृष्णवाससम् ॥ ३६ ॥ शंखचक्रगदापद्महस्तां गरुडवाहनाम् ॥ नानारत्नलसद्भूषां क्वणन्मंजीरमेखलाम् ॥ ३७ ॥ अनर्घ्यरत्नमुकुटां तारहारवलीयुताम् ॥ ताटंकबद्धमाणिक्यकांतिशोभिकपोलकाम् ॥ ३८ ॥ पीतांबरधरां देवीं सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥ सामवेदेन सहितां संयुतां सत्त्ववर्त्मना ॥ ३९ ॥ व्यवस्थितां च स्वर्लोके आदित्यपथगामिनीम् ॥ आवाहयाम्यहं देवीमायांतीं सूर्यमण्डलात् ॥ ४० ॥ एवं ध्यात्वा च तां देवीं संन्ध्यासंकल्पमाचरेत् ॥ आपोहिष्ठेति मन्त्रेण अग्निश्चेति तथैव च ॥ ४१ ॥

शंख चक्र गदा पद्म हाथमें लिये गरुडवाहना अनेक रत्नोंके भूषणोंसे शोभित मंजीर मेखलाके शब्दसे व्याप्त ॥ ३७ ॥ अनर्घ्य रत्नके मुकुट धारे तारहारावलीसंयुक्त ताटंक कर्णभूषणमें बँधे माणिक्यकी कांतिसे शोभित कपोलवाली ॥ ३८ ॥ पीताम्बरधारिणी सच्चिदानन्दरूपिणी देवी सामवेदके सहित सत्यमार्गमें संयुक्त ॥ ३९ ॥ स्वर्लोकमें स्थित आदित्य मार्गमें गमन करनेवाली सूर्यमण्डलसे आती हुई देवीको आवाहन करता हूं ॥ ४० ॥ इस प्रकार देवीको ध्यान करके सन्ध्या संकल्प करे आपोहिष्ठा और अग्निश्चेति मन्त्रोंसे ॥ ४१ ॥

और शेषपूर्ववत् आचमन आदि करे श्रीनारायणकी प्रीतिके निमित गायत्रीका उच्चारण कर ॥४२॥ शुद्ध मनसे साधक सूर्यके निमित्त अर्घ्यदे दोनों चरण समान कर हाथमें अंजलिले ॥ ४३ ॥ मंडलमें स्थित देवताका ध्यान करके क्रमसे अर्घ्यदे जो मूढात्मा ज्ञानसे वर्जित हो नीरमें अर्घ्यदेता है वह ज्ञानरहित होता है ॥ ४४ ॥ जो स्मृतिके मंत्रोंको उल्लंघन करता है वह प्रायश्चित्ती होता है फिर असावादित्य इन मन्त्रसे सूर्योपस्थान करके॥ ४५ ॥ आसनपर बैठ गायत्रीका जप करे सहस्र वा पांचसौ श्रीदेवीके ध्यानपूर्वक जप करे ॥ ४६ ॥ और प्रभात कालके समान उपस्थानादि करे सायंसंध्याके तर्पण क्रमसे परिकीर्त्तन

विदध्यादाचमनकं शेषं पूर्ववदीरितम् ॥ गायत्रीमन्त्रमुच्चार्य श्रीनारायणप्रीतये ॥ ४२ ॥ अर्घ्यं दद्याच्च सूर्याय साधकः शुद्धमानसः ॥ उभौ पादौ समौ कृत्वा हस्ते कृत्वा जलांजलिम् ॥ ४३ ॥ देवं ध्यात्वा मण्डलस्थं क्षिपेदर्घ्यं ततः क्रमात् ॥ अर्घ्यं दद्यात्तु यो नीरे मूढात्मा ज्ञानवर्जितः ॥ ४४ ॥ उल्लंघ्य स्मृतिमन्त्रांश्च प्रायश्चित्ती भवेद्द्विजः ॥ ततः सूर्यमुपस्थायाप्यसावादित्य मन्त्रतः ॥ ४५ ॥ गायत्र्याश्च जपंकुर्यादुपविश्य ततो बृसीम् ॥ सहस्रं वा तदर्धं वा श्रीदेवीध्यानपूर्वकम् ॥ ४६ ॥ यथा प्रातः पुनस्त द्वदुपस्थानादिकं चरेत् सायंसंध्यातर्पणे च क्रमेण परिकीर्तयेत् ॥ ४७ ॥ वसिष्ठ ऋषिरेवाऽत्र सरस्वत्याः प्रकीर्तितः ॥ देवता विष्णुरूपा सा छन्दश्चैव सरस्वती ॥ ४८ ॥ सायंकालीनसंध्यायास्तर्पणे विनियोगकः ॥ स्वरित्युक्त्वा च पुरुषं सामवेदं तथैव च ॥ ४९ ॥ मण्ड लं चेति संप्रोच्य हिरण्यगर्भकन्तथा ॥ तथैव परमात्मानं ततोऽपि च सरस्वतीम् ॥ ५० ॥ वेदमातरमेवात्र संकृतिं तद्वदेव च ॥ संध्यां वृद्धां तथा विष्णुरूपिणीमुषसीं तथा ॥ ५१ ॥ निमृजीं च तथा सर्वसिद्धीनां कारिणीं तथा ॥ सर्वमन्त्राधिपतिकां भूर्भुवः स्वश्च पूरुषम् ॥ ५२ ॥ इत्येवं तर्पणं कार्यं संध्यायाः श्रुतिसम्मतम् ॥ सायंसंध्याविधानं च कथितं पापनाशनम् ॥ ५३ ॥

करे ॥ ४७ ॥ सायंसंध्यारूप सरस्वतीका वसिष्ठ ऋषि विष्णु देवता सरस्वती छन्द है ॥ ४८॥ और सायंसंध्याके तर्पणमें विनियोग है स्व कहकर पुरुषको सामवेदको ॥ ४९ ॥ मण्डल हिरण्यगर्भका उच्चारण करके तथा परमात्मा, सरस्वती ॥ ५० ॥ वेदमाता संकृति सन्ध्या वृद्धा विष्णुरूपिणी उषसी ॥ ५१ ॥ निमृजी सर्वसिद्धीनां करणीम् सब मंत्रकी अधिपतिका भूर्भुवः पुरुष ॥ ५२ ॥ इस प्रकार संध्यामें श्रुति ! सम्मत तर्पण करना चाहिये यह तुमसे पापनाशक सायंसंध्याका विधान कहा॥ ५३ ॥

सब दुःख हरनेवाला व्याधिनाशक और मोक्षदायक है हे मुनिश्रेष्ठ सदाचारमें यह सायंसंध्यामें प्राधान्य कहा है ॥ ५४ ॥ सन्ध्या करनेसे देवी भक्तोंको इष्ट देती हैं ओं स्वःपुरुषं तर्पयामि, ओं सामवेदं तर्पयामि, ओं मंडलं तर्पयामि इत्यादि कहे ॥ ५५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां विंशोध्यायः ॥ २० ॥ श्रीनारायण बोले हे ब्रह्मन् अब गायत्रीका पापनाशक यथेष्टफलदायक पुरश्चरण कहता हूं ॥ १ ॥ पर्वतके अग्रभाग नदीके किनारे वेलकी मूल जलाशय गोष्ठ देवालय अश्वत्थ उद्यान तुलसीवन ॥ २ ॥ पुण्यक्षेत्र गुरुके पार्श्व चित्त एकाग्रवाले स्थलमें पुरश्चरण करनेवाला मन्त्री सिद्ध होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ जिस किसीभी मन्त्रका पुरश्चरण आरंभ करे तीनों व्याहृतियोंके सहित १०००० गायत्री जपे ॥ ४ ॥ नृसिंह

सर्वदुःखहरं व्याधिनाशकं मोक्षदं तथा ॥ सदाचारेषु संध्यायाः प्राधान्यं मुनिपुंगव ॥ ५४ ॥ सन्ध्याचरणतो देवी भक्ता भीष्टं प्रयच्छति ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् गायत्र्याः पापनाशनम् ॥ पुरश्चरणकं पुण्यं यथेष्टफलदायकम् ॥ १ ॥ पर्वताग्रे नदी तीरे बिल्वमूले जलाशये ॥ गोष्ठे देवालयेऽश्वत्थे उद्याने तुलसीवने ॥ २ ॥ पुण्यक्षेत्रे गुरोः पात्रे चितैकाग्र्यस्थलेऽपि च ॥ पुरश्चरणकृन्मंत्री सिद्ध्यत्येव न संशयः ॥ ३ ॥ यस्य कस्यापि मंत्रस्य पुरश्चरणमारभेत् ॥ व्याहृतित्रयसंयुक्तां गायत्रीं चाऽऽयुतं जपेत् ॥ ४ ॥ नृसिंहार्कवराहाणां तांत्रिकं वैदिकं तथा ॥ विना जप्त्वा तु गायत्रीं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ ५ ॥ सर्वे शाक्ता द्विजा प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः ॥ आदिशक्तिमुपासंते गायत्रीं वेदमातरम् ॥ ६ ॥ मंत्रं संशोध्य यत्नेन पुरश्चरणतत्परः ॥ मंत्रशोधनपूर्वांगमात्मशोधनमुत्तमम् ॥ ७ ॥ आत्मतत्त्वशोधनाय त्रिलक्षं प्रजपेद् बुधः ॥ अथवा चैकलक्षं तु श्रुतिप्रोक्तेन वर्त्मना ॥ ८ ॥

सूर्य वाराहादि तांत्रिक वा वैदिक पुरश्चरण कोई हो विनागायत्रीके जपे सब निष्फल होजाता है ॥ ५ ॥ सबही ब्राह्मण शाक्त हैं शैव और वैष्णव नहीं सब वेदमाता आदिशक्ति गायत्रीकी उपासना करते हैं ॥ ६ ॥ पुरश्चरणमें तत्पर मनुष्य यत्नसे इस प्रकार प्रथम १०००० दशसहस्र मन्त्रका जपकर उसे शोधन कर पीछे पुरश्चरणमें तत्परहो और मन्त्र शोधनसे पहले अंगशोधन आत्मशोधन करे सो तीन लाख वा एकलाख आत्मशोधनके निमित्त गायत्री जपे, यही पुरश्चरण भास्करमें लिखा है ॥ ७ ॥ विद्वान् आत्मतत्त्वशोधनके निमित्त तीन लाख गायत्रीका जप करे अथवा वेदकथित आज्ञानुसार एक लाख जपे ॥ ८ ॥

जो अपने और मंत्रशोधनके विना जो कुछ क्रिया करता है वह सब निष्फल होतीहै यह श्रुतिकथित कारण है ॥ ९ ॥ तपसे देहको तापित करे पितृ और देवताओंका तर्पण करे कारण कि तपसे ही स्वर्ग मिलता, तपसे महानता होती है ॥ १० ॥ क्षत्रिय अपनी आपत्ति बाहुवीर्यसे तरजाता है धनसे वैश्य, शूद्र सेवासे और ब्राह्मण जप होमसे आपत्ति तर जाता है ॥ ११ ॥ हे विप्रेन्द्र ! इस कारण यत्नपूर्वक तप करे तापस शरीर शोषणको ही उत्तम तपस्या कहते हैं ॥ १२ ॥ इसको विधिमार्ग कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतसे शोधे हे नारद ! अब अन्नशुद्धि कारणको कहता हूं सुनो ॥ १३ ॥ विना मांगे जो मिला, उञ्छ वृत्ति शुक्ला अयाचित भिक्षा यह चार वृत्ति हैं इस प्रकार वैदिकोंने अन्नकी शुद्धि कही ॥ १४ ॥ शुद्ध भिक्षा अन्नको लेकर उसके चार भाग करके उसमें

आत्माशुद्धिं विना कर्तुजपहोमादिका क्रियाः ॥ निष्फलास्तास्तु विज्ञेयाः कारणं श्रुतिचोदितम् ॥ ९ ॥ तपसा तापयेद्देहं पितृन्देवांश्च तर्पयेत् ॥ तपसा स्वर्गमाप्नोति तपसा विंदते महत् ॥१०॥ क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापद आत्मनः ॥ धनेन वैश्यः शूद्रस्तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः ॥ ११ ॥ अत एव तु विप्रेंद्रं तपः कुर्यात्प्रयत्नतः शरीरंशोषणं प्राहुस्तापसास्ताप उत्तमम् ॥ १२ ॥ शोधयेद्विधिमार्गेण कृच्छ्रचांद्रायणादिभिः ॥ अथान्नशुद्धिकरणं वक्ष्यामि शृणु नारद ॥ १३ ॥ अयाचितोञ्छशुक्लाख्यभिक्षावृत्तिचतुष्टयम् ॥ तांत्रिकैर्वैदिकैश्चैवंप्रोक्तान्नस्य विशुद्धता ॥ १४ ॥ भिक्षान्नं शुद्धमानीय कृत्वा भागचतुष्टयम् ॥ एकं भागं द्विजेभ्यस्तु गोग्रासस्तु द्वितीयकः ॥ १५ ॥ अतिथिभ्यतृतीयस्तु तदूर्ध्वं तु स्वभार्ययोः ॥ आश्रमस्य यथा यस्य कृत्वाग्रासविधिं क्रमात् ॥ १६ ॥ आदौक्षित्वा तु गोमूत्रं यथाशक्ति यथाक्रमम् ॥ तदूर्ध्वं ग्राससंख्या स्याद्वानप्रस्थ ॥ गृहस्थयोः ॥१७॥ कुक्कुटांडप्रमाणं तु ग्रासमानं विधीयते ॥ अष्टौ ग्रासा गृहस्थस्य वनस्थस्य तदर्धकम् ॥१८॥ ब्रह्मचारी यथेष्टं च गोमूत्रविधिपूर्वकम् ॥ प्रोक्षणं नववारं च षड्वारं च त्रिवारकम् ॥१९॥

एकभाग ब्राह्मणको दूसरा गोग्रास ॥ १५ ॥ अतिथियोंको तीसरा भाग तदुपरांत अपनी भार्याको दे और आप ले जिस आश्रममें हो उसीके अनुसार ग्रास विधि करके ॥ १६ ॥ यथाशक्ति यथाक्रमसे पहले गोमूत्र प्रक्षेप करके फिर वानप्रस्थ और गृहस्थको ग्रास संख्याका विधान करना चाहिये ॥ १७ ॥ कुक्कुट मुर्गेके अण्डके समान ग्रासका परिणाम कहा है गृहस्थीको आठ वनस्थको चार ब्रह्मचारीको यथेष्ट गोमूत्रसे विधिपूर्वक नौवार छःवार तीनवार प्रोक्षण करने चाहिये गायत्री मन्त्र उतनीही वार पढ़ना चाहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥

दोनों हाथ छिद्ररहित करके सावित्री मन्त्रको उच्चारण कर मनसे प्रोक्षणकी विधि कही है ॥ २० ॥ चौर चांडाल वैश्य क्षत्रिय इनके दिये अन्न अधम जाने इनके अन्नकी अधम विधि है ॥२१॥ शूद्रका अन्न शूद्रसे संपर्क शूद्रके साथ भोजन जो करते हैं वह चन्द्रदिवाकर पर्यन्त घोरनरक मेंजाते हैं ॥ २२ ॥ गायत्री छन्द मन्त्रके जितने संख्यावाले अक्षर हैं उतनेही लाख पुरश्चरण करना चाहिये यह गायत्री मन्त्रका पुरश्चरण है और जो दूसरे मत्रन्का पुरश्चरण हो वहां उसके अक्षरोंकी संख्या देखे ॥ २३ ॥ विश्वामित्रका मत २४ लाख पुरश्चरणका है जैसे विना जीवके देह कोई कर्म करनेमें समर्थ नहीं होता इसी प्रकार पुरश्चरणके विना मन्त्र है ज्येष्ठ आषाढ भाद्रमास पौषमास मलमास ॥ २४ ॥ २५ ॥ मंगल शनिवार व्यतिपात वैधृति योग अष्टमी नौमी षष्ठी चतुर्थी त्रयो

निश्छिद्रं च करं कृत्वा सावित्रीं च तदित्यृचम् ॥ मन्त्रमुच्चार्य मनसा प्रोक्षणं विधिरुच्यते ॥ २० ॥ चौरो वा यदि चांडालो वैश्यः
क्षत्रस्तथैव च ॥ अन्नं दद्यात्तु यः कश्चिदधमो विधिरुच्यते ॥ २१ ॥ शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कं शूद्रेण च सहाशनम् ॥ ते यांति नरकं घोरं
यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥ २२ ॥ गायत्रीच्छन्दो मन्त्रस्य यथा संख्या क्षराणि च ॥ तावल्लक्षाणि कर्तव्यं पुरश्चरणकं तथा ॥ २३ ॥ द्वात्रिंश
ल्लक्षमानं तु विश्वामित्रमतं तथा ॥ जीवहीनो यथा देहः सर्वकर्मसु न क्षमः ॥ २४ ॥ पुरश्चरणहीनस्तु तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः ॥ ज्येष्ठा
षाढौ भाद्रपदं पौषं तु मलमासकम् ॥ २५ ॥ अंगारं शनिवारं च व्यतीपातं च वैधृतिम् ॥ अष्टमीं नवमीं षष्ठीं चतुर्थीं च त्रयोद
शीम् ॥ २६ ॥ चतुर्दशीममावास्यां प्रदोषं च तथा निशाम् ॥ यमाग्निरुद्रसर्पेंद्रवसुश्रवणजन्मभम् ॥ २७ ॥ मेषकर्कतुलाकुंभान्म
करंचैववर्जयेत ॥ सर्वाण्येतानि वर्ज्यानिपुरश्चरणकर्मणि ॥ २८ ॥ चन्द्रतारानुकूले च शुक्लपक्षे विशेषतः ॥ पुरश्चरणकं कुर्यान्मंत्रसिद्धिः
प्रजायते ॥ २९ ॥ स्वस्तिवा चनकं कुर्यान्नांदीश्राद्धं यथाविधि ॥ विप्रान्संतर्प्य यत्नेन भोजनाच्छादनादिभिः ॥ ३० ॥ आरभेत्तु
ततःपश्चादनुज्ञानपुरःसरम् ॥ प्रत्यङ्मुखः शिवस्थाने द्विजश्चान्यतमे जपेत् ॥ ३१ ॥

दशी ॥ २६ ॥ चौदह अमावस्या प्रदोष रात्रि यम 'भरणी' अग्नि 'कृत्तिका' रुद्र 'आर्द्रा' सर्प 'आश्लेषा' इन्द्र 'ज्येष्ठा वसु धनिष्ठा' श्रवण नक्षत्र तथा जन्मनक्षत्रमें ॥२७॥ मेष कर्क तुला कुम्भ मकर लग्न पुरश्चरणमें यह मास तिथि नक्षत्र योग लग्न सब वर्जित हैं ॥ २८ ॥ जब चंद्रतारा (ग्रह) अनुकूल हो विशेषकर शुक्लपक्षमें पुरश्चरण करनेसे मंत्र सिद्धि होती है ॥ २९ ॥ पहले स्वस्तिवाचन कराय विधिपूर्वक नांदीश्राद्ध करके भोजना च्छादनसे यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंको तृप्तकर ॥ ३० ॥ गुरु आदि की अज्ञासे आरंभ करे शिवके स्थानमें लिंग समीप पश्चिम मुख होय जप करे वा अन्य शिवस्थानोंमें जप करे ॥३१॥

काशी पुरी केदारनाथ महाकाल (उज्जैन) नासिक त्र्यम्बक महाक्षेत्र यह पांच द्वीप अर्थात् शंकरके प्रसिद्ध स्थान हैं ॥ ३२ ॥ सब द्वीपोंमें कूर्मासन कहा है और इन स्थलोंके अतिरिक्त कूर्मचक्रभी द्वीप है प्रारम्भसे लेकर जबतक समाप्ति हो ॥ ३३ ॥ प्रतिदिन बराबर जप करे न्यूनाधिक न करे मुनीश्वर पुरश्च रणको निरंतरही करते हैं ॥ ३४ ॥ प्रभातसे लेकर विधिपूर्वक मध्याह्नतक जप करे मनका रोकना पवित्रता ध्यान मंत्रार्थका चिंतन करना गायत्री छन्दके जितने अक्षर हैं उतनेही लाख पुरश्चरण करना चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ पश्चात् उसका दशांश घृत दूध ओदनसे तथा तिल बेलपत्र फूल शर्करादि युक्त पदार्थोंसे हवन करे ॥ ३७ ॥ इस प्रकार दशांश होमसे गायत्रीका सेवन करे तो यह धर्म अर्थ काम मोक्षकी देनेवाली होती है ॥ ३८ ॥ नित्य निमित्त

काशीपुरी च केदारो महाकालोऽथ नासिकम् ॥ त्र्यंबकं च महाक्षेत्रं पंचदीपा इमे भुवि ॥ ३२ ॥ सर्वत्रैव हि दीपस्तु कूर्मासनमिति स्मृतम् ॥ प्रारंभदिनमारभ्य समाप्तिदिवसावधि ॥ ३३ ॥ न न्यूनं नातिरिक्तं च जपं कुर्याद्दिने दिने ॥ नैरंतर्येण कुर्वंति पुरश्चर्यां मुनीश्वराः ॥ ३४ ॥ प्रातरारभ्य विधिवज्जपेन्मध्यंदिनावधि ॥ मनःसंहरणं शौचं ध्यानं मन्त्रार्थचिंतनम् ॥ ३५ ॥ गायत्रीच्छंदो मन्त्रस्य यथा संख्याक्षराणि च ॥ तावल्लक्षाणि कर्तव्यं पुरश्चरणकं तथा ॥ ३६ ॥ जुहुयात्तद्दशांशेन सघृतेन पयोऽधसा ॥ तिलैः पत्रैः प्रसूनैश्च यवैश्च मधुरान्वितैः ॥ ३७ ॥ कुर्याद्दशांशतो होमं ततः सिद्धो भवेन्मनुः ॥ गायत्री चैव संसेव्या धर्मकामार्थमोक्षदा ॥ ३८ ॥ नित्ये नैमित्तिके काम्ये त्रितये तु परायणः ॥ गायत्र्यास्तु परं नास्ति इह लोके परत्र च ॥ ३९ ॥ मध्याह्नमितभुङ्मौनी त्रिस्नानार्चनतत्परः ॥ जले लक्षत्रयं धीमाननन्यमानसक्रियः ॥४०॥ कर्मणा यो जपेत्पश्चात्कर्मभिः स्वेच्छयाऽपि वा ॥ यावत्कार्यं न सिद्ध्येत्तु तावत्कुर्याज्जपादिकम् ॥ ४१ ॥ सामान्यकाम्यकर्मादौ यथावद्विधिरुच्यते ॥ आदित्यस्योदये स्नात्वा सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ॥ ४२ ॥

काम्य कार्यों तथा मोक्षमें परायण हुआ यही जपे इस लोक वा परलोकमें गायत्रीसे परे कोई पदार्थ नहीं है ॥ ३९ ॥ दूसरा पुरश्चरण कहते हैं, मध्याह्नमें मित भोजन कर मौन रहे तीनबार स्नान कर अर्चनमें तत्पर रहे जलमें धीमान् अनन्य मन तीन लाख जप करे ॥ ४० ॥ इस प्रकार पहले पुरश्चरण कर पीछे काम्य कर्म वा स्वेच्छासे जबतक कार्य सिद्धि न हो जपादिक करता रहे ॥ ४१ ॥ सामान्य काम्य कर्मादिकी यथावत् विधि कहते हैं सूर्योदयमें स्नान कर प्रतिदिन, सहस्र जप करे ॥ ४२ ॥

दे. भा. तो आयु आरोग्य ऐश्वर्य और धन बहुत मिलता है छः महीने तीन महीने वा एक वर्षके उपरांत सिद्धिकी प्राप्ति होती है ॥ ४३ ॥ एक लाख घृत में
॥४८॥ बोरे कमलोंके हवनसे मोक्ष अवश्य प्राप्त होती है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४४ ॥ मंत्र सिद्धिके विना कर्त्ताकी जप होमादि सब क्रिया काम्य वा मोक्ष सब
निष्फल होती हैं ॥ ४५ ॥ पचीस लाख दधि और क्षीरकी आहुति देनेसे इसी जन्ममें प्राणी सिद्ध होता है यह महर्षियोंका मत है ॥ ४६ ॥ अष्टांग
योगकी सिद्धिसे मनुष्योंको जो फल प्राप्त होता है उस फलको मंत्र सिद्धिसे प्राप्त कर सकता है, इसमें विचारकी आवश्यकता नहीं ॥ ४७ ॥ शक्त वा
अशक्त जो नियत आहारसे मंत्र जपता है उस गुरुभक्तको छः महीनेमें सिद्धि हो जाती है ॥४८॥ एकदिन पंचगव्य एकदिन वायु भोजन एकदिन ब्राह्मणोंके

आयुरारोग्यमैश्वर्यं धनं च लभते ध्रुवम् ॥ षण्मासं वा त्रिमासं वा वर्षांते सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ४३ ॥ पद्मानां लक्षहोमेन घृताक्तानां
हुताशने ॥ प्राप्नोति निखिलं मोक्षं सिध्य त्येव न संशयः ॥ ४४ ॥ मन्त्रसिद्धिं विना कर्तुर्जपहोमादिकाः क्रियाः ॥ काम्यंवा यदि वा
मोक्षः सर्वं तन्निष्फलं भवेत् ॥ ४५ ॥ पंचविंशतिलक्षेण दध्ना क्षीरेण वा हुतात् ॥ स्वदेहे सिध्यते जन्तुर्महर्षीणां मतं तथा ॥ ४६ ॥
अष्टांगयोगसिद्ध्या च नरः प्राप्नोति यत्फलम् ॥ तत्फलम् सिद्धि माप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ४७ ॥ शक्तो वाऽपि त्वशक्तो वा
आहारं नियतं चरेत् ॥ षण्मासात्तस्य सिद्धिः स्याद्गुरुभक्तिरतां सदा ॥ ४८ ॥ एकाहं पंचगव्याशी चैकाहं मारुता शनः ॥ एकाहं
ब्राह्मणान्नाशी गायत्रीजपकृद्भवेत् ॥ ४९ ॥ स्नात्वा गंगादितीर्थेषु शतमंतर्जले जपेत् ॥ शते नापस्ततः पीत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५०॥
चांद्रायणादिकृच्छ्रस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम् ॥ राजा वा यदि वा विप्रस्तपः कुर्यात्स्वके गृहे ॥ ५१ ॥ गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वान
प्रस्थोऽथवापि च ॥ अधिकारपरत्वेन फलं यज्ञादिपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ श्रौतस्मार्तादिकं कर्म क्रियते मोक्षकांक्षिभिः ॥ साग्निकश्च सदाचारे
विद्वद्भिश्च सुशिक्षितः ॥ ५३ ॥ ततः कुर्यात्प्रयत्नेन फलमूलोदकादिभिः ॥ भिक्षान्नं शुद्धमश्नीयादष्टौ ग्रासान्स्वयं भुंजेत ॥ ५४ ॥

यहांका अन्न खाकर गायत्री जप करे ॥ ४९ ॥ गंगादि तीर्थोंमें जाकर जलके अन्तरमें ही सौवार जपे और सौवार जपकर सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ५० ॥ और
भा. टी.ए. चान्द्रायणादि कृच्छ्रव्रतोंका अवश्य फल पाता है राजा वा ब्राह्मण जो अपने घरमें तप करे ॥ ५१ ॥ गृहस्थ ब्रह्मचारी वानप्रस्थके अधिकार परत्वसे
अ० २१ यज्ञादि पूर्वक फल मिलता है ॥५२॥ मोक्षकी आंकाक्षावाले श्रौतस्मार्तादि कर्म करते हैं, साग्निक सदाचार विद्वानोंसे शिक्षित ब्राह्मण ॥ ५३ ॥ प्रयत्नसे
फल मूल उदक वा भिक्षा अन्न शुद्ध खाय आठ ग्रास स्वयं भोजन करे ॥ ५४ ॥

इस प्रकार पुरश्चरण करके मंत्र सिद्धिको प्राप्त होता है, हे देवर्षे ! इसके अनुष्ठानसे दरिद्र नष्ट हो जाता है ॥ ५५ ॥ इसके सुननेसे पुण्योंकी बड़ी सिद्धि प्राप्त होती है इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीनारायण बोले हे देवर्षे ! अब वैश्वदेवकेविधान सुनो पुरश्चरणके प्रसंग जो हमको स्मरण हुआ है ॥ १ ॥ देवयज्ञ ब्रह्मयज्ञ भूतयज्ञ पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ यह पांचयज्ञ हैं ॥ २ ॥ गृहस्थको पांच हत्या लगती हैं चूल्हा चक्की बुहारी ओखली घटकुंभ यहां जो चींटी आदि मरती हैं इनकी पापशांतिके निमित्त यज्ञ करे ॥ ३ ॥ चूल्हा लोहपात्र भूमि खर्पर इन स्थानोंमें वैश्वदेव न करे कुण्ड वा स्थंडिल स्थानमें करे ॥ ४ ॥ हाथ शूर्प मृगचर्म इनसे अग्निको न फूंके किंतु मुखकी फूंकसे धमन करे कारणकि मुखसे अग्नि उत्पन्न

एवं पुरश्चरणकं कृत्वा मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ देवर्षे यदनुष्ठानाद्दारिद्र्यंचविलयं व्रजेत् ॥ ५६ ॥ यच्छ्रुत्वापि च पुण्यानां महती सिद्धि माप्नुयात् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ नारायण उवाच ॥ अथातः श्रूयतां ब्रह्मन्वैश्वदेव विधानकम् ॥ पुरश्चर्याप्रसंगेन ममापि स्मृतिमागतम् ॥ १ ॥ देवयज्ञो ब्रह्म यज्ञो भूतयज्ञस्तथैव च ॥ पितृयज्ञो मनुष्यस्य यज्ञश्चैव तु पंचमः ॥ २ ॥ पंचसूना गृहस्थस्य चुल्ही पेषण्युपस्करः ॥ कंडणी चोदकुंभश्च तेषां पापस्य शांतये ॥ ३ ॥ न चुल्लयां नायसे पात्रे न भूमौ न च खर्परे ॥ वैश्वदेवं प्रकुर्वीत कुंडे वा स्थंडिलेऽपि वा ॥ ४ ॥ न पाणिना न शूर्पेण न च मेध्याजिनादिभिः ॥ मुखेनोपधमेदग्निं मुखादेव व्यजायत ॥ ५ ॥ पटकेन भवेद्व्याधिः शूर्पेण धननाशनम् ॥ पाणिना मृत्युमाप्नोति कर्मसिद्धिर्मुखेन तु ॥ ६ ॥ फलैर्दधिघृतैः कुर्यान्मूलशाकोदकादिभिः ॥ अलाभे येन केनापि काष्ठमूलतृणादिभिः ॥ ७ ॥ जुहुयात्सर्पिषाभ्यक्तं तैलक्षारविवर्जितम् ॥ दध्यक्तं वा पायसाक्तं तदभावेऽम्भसा पि वा ॥ ८ ॥ शुष्कैः पर्युषितैः कुष्ठी उच्छिष्टेन द्विषां वशी ॥ रूक्षैर्दरिद्रतां याति क्षारं हुत्वा व्रजत्यधः ॥ ९ ॥ अंगारान्भस्ममिश्रांस्तु निर्हृत्योत्तरतोऽनलात् ॥ जुहुयाद्वैश्वदेवं तु न क्षारादिविमिश्रितम् ॥ १० ॥

हुई है ॥ ५ ॥ वस्त्रसे बाले तो व्याधि हो शूर्पसे धननाश, हाथसे मृत्यु होती है मुखसे कर्म सिद्ध होती है ॥ ६ ॥ फल दही घी मूल शाक उदक आदिसे करे यदि यह प्राप्त न हो तो जिस किसी काष्ठ मूल तृणादिसे करे ॥७॥ तेल क्षारको छोडकर सर्पि (घी) दही दूधसे हवन करे यह न हो तो जलसे ही हवन करे ॥८॥ शुष्क और वासी अन्न हवन करनेसे कुष्ठी उच्छिष्टसे शत्रुओंके वशीभूत रूखे पदार्थोंसे दरिद्र और क्षारसे हवन करे तो नरकमें जाता है ॥ ९ ॥ भस्मयुक्त अङ्गारोंको अन्न पाचक अग्निके उत्तर देशसे लावे यह लेकर वैश्वदेवके निमित्त हवन करे क्षारादि मिश्रित न करे ॥१०॥

जो मूर्ख विना वैश्वदेव किये भोजन करते हैं वह मूढ कालसूत्रमें नीचेको मुख कर गिरते हैं ॥ ११ ॥ शाकपत्र मूल फल जिस वस्तुको भोजन करे उसे अग्निमें हवन करे ॥ १२ ॥ विना वैश्वदेव किये भिक्षुकके भिक्षा करनेके निमित्त आनेमें वैश्वदेव भाग निकालकर भिक्षा देकर विसर्जन करे ॥ १३ ॥ अतिथि वैश्वदेवका दोष दूर कर सकता है पर भिक्षुकके दोषको वैश्वदेव दूर नहीं कर सकता. जो उसको भिक्षा न दीजाय ॥ १४ ॥ यति और ब्रह्मचारी यह दोनों पकान्नके स्वामी हैं, उनको विनादिये भोजन करके चान्द्रायण करना पडता है ॥ १५ ॥ वैश्वदेव करनेके उपरान्त गोग्रास दे हे देवर्षे ! सुनो उसका विधान कहता हूं ॥ १६ ॥ सुर भी वैष्णवी माता नित्य विष्णुपदमें स्थित है मैं गोग्रासको देता हूं सुर भी ग्रहण करे, ॥१७॥ "गोभ्यश्चनमः" ऐसा कहकर

अकृत्वा वैश्वदेवं तु यो भुंक्ते मूढधीर्द्विजः ॥ स मूढो नरकं याति काल सूत्रमवाक्शिराः ॥ ११ ॥ शाकं वा यदि वा पत्रं मूलं वा यदि वा फलम् ॥ संकलपयेद्यदाहारं तेनाग्नौ जुहुयादपि ॥१२॥ अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षौ भिक्षार्थमागते ॥ उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥ १३ ॥ वैश्वदेवकृतं दोषं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥ न तु भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति ॥ १४ ॥ यतिश्च ब्रह्मचारी च पकान्नस्वामिनावुभौ ॥ तयोरन्नमदत्त्वा तु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ १५ ॥ वैश्वदेवानंतरं च गोग्रासं प्रतिपादयेत् ॥ तद्विधानं प्रवक्ष्यामि शृणु देवर्षिपूजित ॥१६॥ सुरभिर्वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता ॥ गोग्रासं च मया दत्तं सुरभे प्रतिगृह्यताम् ॥१७॥ गोभ्यश्च नम इत्येव पूजां कृत्वा गवेऽर्पयेत् ॥ गोग्रासेन तुगोमाता सुरभिः सम्प्रसीदति ॥१८॥ ततो गोदोहनं कालं तिष्ठेच्चैव गृहांगणे ॥ अतिथिर्यत्र भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ॥ १९ ॥ स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥ माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दासः समाश्रितः ॥ २० ॥ अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निरेते पौष्या उदाहृताः ॥ एवं ज्ञात्वा तु यो मोहान्न करोति गृहाश्रमम् ॥ २१ ॥

गौकी भुजा गौको अर्पण करे, गोग्राससे गोमाता सुर भी प्रसन्न होती है ॥ १८ ॥ फिर गोदोहन कालतक अर्थात् जितनी देरतक गौ दुही जाती है उतने समय तक अतिथिकी प्रतीक्षा करता हुआ आँगनमें स्थिर रहे कि, कोई आवे तो उसे कुछ भागदे भोजन करे अतिथि जिसके घरसे भग्न आशा होकर लौट जाता है ॥ १९ ॥ वह उसको अपने पाप देकर उसका पुण्य लेकर चला जाता है माता पिता गुरुभ्राता दास आश्रित ॥२०॥ अभ्यागत अतिथि अग्नि यह पोष्यवर्ग कहे गये हैं यह जानकर जो मूढ गृहाश्रम नहीं करता ॥ २१ ॥

उसको धर्मसे यह लोक और परलोक नहीं है धनवान्‌को जो फल सोमयागसे प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ दरिद्र उसको पंचयज्ञद्वारा विना ही परिश्रम प्राप्त करता है. हे मुनिश्रेष्ठ ! अब प्राणाग्निहोत्रको कहूंगा ॥ २३ ॥ जिसको जानकर यह प्राणी जन्म मृत्यु जरा आदिसे छूट जाता है इसके ज्ञानसे मनुष्योंके पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ २४ ॥ जो विधिपूर्वक भोजन करता है वह तीनों ऋणसे छूट जाता है और वह ब्राह्मण (२१) कुलको उद्धार करता है ॥२५॥ सब यज्ञोंके फलकी प्राप्ति सब लोकोंकी प्राप्ति होती है । हृदयकमलको अरणी मन मथानी ॥ २६ ॥ वायुकी रज्जू करके अग्निको मथे चक्षुको अध्वर्यु करे तर्जनी मध्यमा अंगुष्ठसे प्राणकी आहुति दे ॥ २७ ॥ मध्यमा अनामिका अंगुष्ठसे अपानकी आहुति दे कनिष्ठिका अनामिका अंगुष्ठसे

तस्य नायं तु न परो लोको भवति धर्मतः॥ यत्फलं सोमयागेन प्राप्नोति धनवान्द्विजः ॥ २२ ॥ सम्यक्पञ्चमहायज्ञैर्दरिद्रस्तेन चाप्नुयात्॥ अथ प्राणाग्निहोत्रं तु वक्ष्यामि तु मुनिपुंगव ॥ २३ ॥ यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्ममृत्युजरादिभिः ॥ परिज्ञानेन मुच्यन्ते नराः पातककिल्बिषैः ॥ २४ ॥ विधिना भुज्यते येन मुच्यते स ऋणत्रयात् ॥ कुलान्युद्धरते विप्रो नरकानेकविंशतिम् ॥ २५ ॥ सर्वयज्ञफलप्राप्तिः सर्वलोकेषु गच्छति ॥ हृत्पुण्डरीकमरणिर्मनो मन्थानसंज्ञकम् ॥ २६ ॥ वायुरज्ज्वा मथेदग्निं चक्षुरध्वर्युरेव च ॥ तर्जनीमध्यमांगुष्ठैः प्राणस्यैवाहुतिं क्षिपेत् ॥ २७ ॥ मध्यमानामिकांगुष्ठैरुदानस्याहुतिं क्षिपेत् ॥ कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्व्यानस्थ तदनंतरम् ॥ २८ ॥ कनिष्ठातर्जन्यंगुष्ठैरुदानस्याहुतिं क्षिपेत् ॥ सर्वांगुलैर्गृहीत्वाऽन्नं समानस्याहुतिं क्षिपेत् ॥ २९ ॥ स्वाहांतान्प्रणवाद्यांश्च नाममन्त्रांश्च वै पठेत् ॥ मुखे चाहवनीयस्तु हृदये गार्हपत्यकः ॥ ३० ॥ नाभौ च दक्षिणाग्निः स्यादधः सभ्यावसथ्यकौ ॥ वाग्घोता प्राण उद्गाता चक्षुरध्वर्युरेव च ॥ ३१ ॥ मनोब्रह्मा भवेच्छ्रोत्रमाग्नीध्रस्थान एव च ॥ अहंकारः पशुश्चात्र प्रणवः पयईरितम् ॥ ३२ ॥ बुद्धिश्च पत्नी सम्प्रोक्ता यदधीनो गृहाश्रमी ॥ उरो वेदिस्तु रोमाणि दर्भाः स्युः स्रुक्स्रुवौ करौ ॥ ३३ ॥

व्यानकी आहुति दे ॥२८॥ कनिष्ठिका तर्जनी अंगुष्ठसे उदानकी आहुति दे सर्व अंगुलियोंसे अन्नको ग्रहण करके समानकी आहुति दे ॥ २९ ॥ सबके अन्तमें स्वाहा लगाकर 'ओं प्राणायस्वाहा'' इस प्रकार नाम मंत्रोंसे पढे मुखमें आहवनीय हृदयमें गार्हपत्य ॥ ३० ॥ नाभिमें दक्षिणाग्नि अधस्थानमें आवसथ्य कहै वाक होता प्राण उद्गाता चक्षुअध्वर्यु ॥ ३१ ॥ मन ब्रह्मा श्रोत्र आग्नीध्र अहंकार पशु प्रणव पय है ॥ ३२ ॥ बुद्धि पत्नी है जिसके अधीन यह गृहाश्रमी है हृदय वेदी रोम दर्भ हैं स्रुक् स्रुव् दोनों हाथ हैं ॥ ३३ ॥

प्राण मंत्रोंका ऋषि सुवर्णवर्ण क्षुधाग्निक ऋषि है आदित्य देवता गायत्री छन्द है ३४॥ यह उच्चारण कर "प्राणायस्वाहा" कहे "इदमादित्यदेवाय नमः" यह भी कहे ॥३५॥ अपान मंत्रका धवलाकार गोक्षीर श्रद्धा अग्नि ऋषि सोम देवता है ॥३६॥ उष्णिक छन्द है यह कह "अपानाय स्वाहा सोमाय इदं च नमम" यह इसमें ऊह करे ॥ ३७ ॥ व्यान मंत्रका अम्बुजवर्ण हुताशन ऋषि है अग्नि देवता अनुष्टुप छन्द है ॥३८॥ "व्यानायस्वाहा अग्नय इदं नमम" कहे उदान मंत्रका शक्र गोप सर्वण ॥ ३९ ॥ अग्नि ऋषि कहा है वायु देवता बृहती छन्द है "उदानाय स्वाहा ॥ ४० ॥ वायवेचेदं नमम" कहे समान वायु

प्राण मन्त्रस्य च ऋषी रुक्मवर्णः क्षुधाग्निकः ॥ देवतादित्य एवात्रगायत्रीच्छन्द उच्यते ॥ ३४ ॥ प्राणाय च तथा स्वाहा मन्त्रांते कीर्तयेदपि ॥ इदमादित्यदेवाय न ममेति वदेदपि ॥ ३५ ॥ अपानमन्त्र स्यतथा गोक्षीरधवलाकृतिः ॥ श्रद्धाग्नि ऋषिरेवात्र सोमो वै देवता स्मृता ॥ ३६ ॥ उष्णिक् छन्दस्तथाऽपानायः स्वाहेत्यपि कीर्तयेत् ॥ सोमायेदं च न ममेत्यत्रोहः परिकीर्तितः ॥ ३७ ॥ व्यानमन्त्रस्य चाख्यातोंऽबुजवर्णहुताशनः ॥ ऋषिरुक्तो देवताग्निरनुष्टुपूछन्द ईरितम् ॥ ३८ ॥ व्यानाय च तथा स्वाहाऽग्नयेदं न ममेत्यपि ॥ उदानमंत्रस्य तथा शक्रगोपस वर्णकः ॥ ३९ ॥ ऋषिराग्निः समाख्यातो वायुर्वैदेवता स्मृता ॥ बृहतीच्छन्द आख्यातमु दानाय च पूर्ववत् ॥ ४० ॥ वायवे चेदं न मम एवं चैवोच्चरेद्द्विज ॥ समानवायुमंत्रस्य विद्युद्वर्णो विरूपकः ॥ ४१ ॥ ऋषिरग्निः समाख्यातः पर्जन्यो देवता मता ॥ पंक्तिश्छन्दः समाख्यातं समानाय च पूर्ववत् ॥ ४२ ॥ पर्जन्यायेदमित्युक्त्वा षष्ठीं चैवाहुतिं क्षिपेत् ॥ वैश्वानरो महानग्निर्ऋषिर्वै परिकीर्तितः ॥ ४३ ॥ गायत्रीच्छन्द आख्यातं देवस्त्वात्मा भवेदपि ॥ स्वहांतो मन्त्र आख्यातः परमात्मन उच्चरेत् ॥ ४४ ॥ इदं न मम चेत्येवं जातं प्राणाग्निहोत्रकम् ॥ एतज्ज्ञात्वा विधिं कृत्वा ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ४५ ॥ प्राणाग्निहोत्रविद्येयं संक्षेपात्कथिता हि ते ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

मंत्रका विद्युद्वर्ण विरूपक ॥ ४१ ॥ अग्नि ऋषि है पर्जन्य देवता पंक्ति छन्द है "समानायस्वाहा ॥ ४२ ॥ पर्जन्यायेदं नमम" कहकर छठी आहुति दे वैश्वानर महान् अग्निमें ऋषि कहा है ॥ ४३ ॥ गायत्री छन्द आत्मा देवता है "ओं ब्रह्मणे स्वाहा" इस प्रकार कहकर "इदं नमम" कहे ॥ ४४ ॥ यह प्राणाग्निहोत्र है यह जानकर विधि करनेसे ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ यह प्राणाग्निहोत्रविद्या संक्षेपसे कही है ॥ ४६ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भाषायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

नारायण बोले "अमृतापिधानम्" यह कहकर अर्थात् हे अमृतरूपी जल ! तुम हमारे भक्त अन्नके आच्छादकरूप हो यह कह भोजनान्तमें एक गंडूष जलपा नकर फिर पात्रसे उच्छिष्टभागियोंको दे ॥ १ ॥ जो कोई हमारे कुलमें बंधु आदि तथा दासादि अन्नके कांक्षी हैं वे सब मेरे दिये अन्नसे तृप्तिको प्राप्त हों ॥ २ ॥ जो दुःखदायक अपुण्यस्थान है उसमें पद्मों अरबों वर्षों रहनेवाले अर्थियोंको दिया हुआ यह उदक प्राप्त हो उससे उनको अक्षय तृप्ति हो यह मंत्र पढकर जल दे ॥ ३ ॥ पवित्र ग्रंथिको छोडकर मंडलभूमिमें निक्षेप कर जो उस कुशग्रंथिके पात्रमें डालता है वह ब्राह्मण पंक्तिदूषक है ॥ ४ ॥ जो उच्छिष्ट होकर सुना और शूद्रको स्पर्श किया हो वा उच्छिष्टको छुआ हो तो एक रात व्रत रहकर पंचगव्यसे शुद्धि होती है ॥ ५ ॥ जो स्वयं उच्छिष्ट

नारायण उवाच ॥ अमृतापिधानमित्येवमुच्चार्य साधकोत्तमः ॥ उच्छिष्टभाग्भ्यः पात्रान्नं दद्यादंते विचक्षणः ॥ १ ॥ ये के चास्मत्कुले जाता दासदास्योऽन्नकांक्षिणः ॥ ते सर्वे तृप्तिमा यांतु मया दत्तेन भूतले ॥ २ ॥ रौरवेऽपुण्यनिलये पद्मार्बुदनिवासिनाम् ॥ अर्थिनामुदकं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥ ३ ॥ पवित्रग्रंथिमुत्सृज्य मंडले भुविनिक्षिपेत् ॥ पात्रे तु निक्षिपेद्यस्तु स विप्रः पंक्तिदूषकः ॥ ४ ॥ उच्छिष्टस्तेन संस्पृष्टः शुना शूद्रेण च द्विजः ॥ उपोष्य रजनीमेकां पंचगव्येन शुध्यति ॥ ५ ॥ अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टेः स्नानमेव विधीयते ॥ एकाहुति प्रदानेन कोटियज्ञफलं लभेत् ॥ ६ ॥ पंचभिः पञ्चकोटीनां तदनं तफलं स्मृतम् ॥ प्राणाग्निहोत्रवेत्रे यो ह्यन्नदानं करोति च ॥ ७ ॥ दातुश्चैव तु यत्पुण्यं भोक्तुश्चैव तु यत्फलम् ॥ प्राप्नुतस्तौ तदेव द्वावुभौ तौ स्वर्गगामिनौ ॥ ८ ॥ स पवित्रकरो भुंक्ते यस्तु विप्रो विधानतः ॥ ग्रासे ग्रासे फलं तस्य पंचगव्यसमम्भवेत् ॥ ९ ॥ पूजाकाल त्रये नित्यं जपस्तर्पणमेव च ॥ होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते ॥ १० ॥

अनुच्छिष्टसे अस्पर्श होजाय तो स्नान करना चाहिये और एक आहुति देनेसे कोटि यज्ञका फल होता है ॥ ६ ॥ पांच आहुतिसे पांच कोटि यज्ञका फल होता है तथा अनन्त होता है जो प्राणाग्निहोत्र करनेवालेको अन्नदान करता है ॥ ७ ॥ दाता भोक्ताको जो फल है उससे वह दोनोंही स्वर्गगामी होते हैं ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मण विधानसे पवित्र हाथ कर खाता है उसको प्रत्येक ग्रासमें पंचगव्यके समान फल होता है ॥ ९ ॥ पूजाकालमें जो जग तर्पण तीनों काल करता है होम ब्राह्मण भोजन मार्जनादि करता है उसको पंचांग पुरश्चरण कहते हैं ॥ १० ॥

अधःशयन करता हुआ धर्मात्मा इंद्रिय और क्रोध जय किये लघु और मिष्टभोजी विनीत शान्त चित्त ॥ ११ ॥ नित्यही तीन सवनमें स्नान करनेवाला नित्य शुभ भाषण करनेवाला हो, स्त्री शूद्र पतित व्रात्य नास्तिक उच्छिष्टोंसे भाषण करता है ॥१२॥ तथा चांडाल इनसे हे मुनिसत्तम ! भाषण न करे. जप होम अर्चनादिमें प्रवृत्त पुरुषको प्रणाम करे उससे भाषण न करे ॥१३॥ मैथुनका आलाप और उसकी गोष्ठी भी त्यागन करे कर्म मन वचनसे यह सब अवस्था, ओंमें त्याग दे ॥ १४ ॥ सर्वत्र मैथुनके त्यागसेही ब्रह्मचारी होता है, राजा और गृहस्थ दोनोंको ब्रह्मचर्य कहा है ॥ १५ ॥ ऋतुस्नाता होनेपर जो विधि पूर्वक स्त्री गमन है और संस्कार की हुई भार्यामें प्रयत्नसे ऋतु देखकर ॥ १६ ॥ रात्रिमें जो गमन करता है वह ब्रह्मचर्य दूर करनेवाला नहीं है विना देव ऋषि

अधःशयानो धर्मात्मा जितक्रोधो जितेंद्रियः ॥ लघुमिष्टहिताशी च विनीतः शांतचेतसा ॥ ११ ॥ नित्यं त्रिषवणस्नायी नित्यं स शुभभाषणः ॥ स्त्रीशूद्रप तितव्रात्यनास्तिकोच्छिष्टभाषणम् ॥ १२ ॥ चांडालभाषणं चैव न कुर्यान्मुनिसत्तम ॥ नत्वा नैव च भाषेत जपहोमार्चनादिषु ॥ १३ ॥ मैथुनस्य तथा लापं तद्गोष्ठीमपि वर्जयेत् ॥ कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ १४ ॥ सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥ राज्ञे श्चैव गृहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम् ॥ १५ ॥ ऋतुस्नातेषु दारेषु संगतिर्या विधानतः ॥ संस्कृतायां सवर्णायामृतुं दृष्ट्वा प्रयत्नतः ॥ १६ ॥ रात्रौ तु गमनं कार्यं ब्रह्मचर्यं हरेन्न तत् ऋणत्रयमसंशोध्य त्वनुत्पाद्य सुतानपि ॥ १७ ॥ तथा यज्ञानविष्ट्वा च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥ अजागलस्य यज्जन्म तजन्म श्रुति चोदितम् ॥ १८ ॥ अतः कार्यं तु विप्रेन्द्र ऋणत्रयविशोधनम् ॥ ते देवानामृषीणां च पितृणामृणि नस्तथा ॥ १९ ॥ ऋषिभ्यो ब्रह्मचर्येण पितृभ्यस्तु तिलोदकैः मुच्येद्यज्ञेन देवेभ्यः स्वाश्रमं धर्ममाचरेत् ॥ २० ॥ क्षीराहारी फलाशी वा शाकाशी वा हविष्यभुक् ॥ भिक्षाशी वा जपेद्विद्वान्कृच्छ्रचांद्रायणादि कृत् ॥ २१ ॥

पितृ ऋणके शोधे संतान उत्पन्न किये विना ॥१७॥ और यज्ञोंके किये विना मोक्षकी इच्छा करनेवाला अधोगमन करता है. श्रुतिने उसका जन्म अजागल स्तनके समान निरर्थक कहा है ॥१८॥ इस कारण ब्राह्मणको तीनों ऋणका शोधन करना चाहिये देवता ऋषि और पितरोंके ऋणी हुए पुरुष ॥ १९ ॥ ब्रह्मचर्यसे ऋषियोंके, तिलोदकसे पितरोंके और यज्ञकरनेसे देवताओंके ऋणसे छूटते हैं इस कारण अपने आश्रमका धर्म आचरण करे ॥ २० ॥ क्षीर आहारी फलाहारी शाकाहारी हविष्यभोगी वा भिक्षाशी कृच्छ्रचान्द्रायण किये हुए जपकरे ॥ २१ ॥

लवण खार अम्लप दार्थ गुंजन, कांस्यपात्रमें भोजन, ताम्बूल भक्षण, दोवार भोजन, अशुद्ध वस्त्र धारण, प्रमाद ॥ २२ ॥ श्रुति स्मृतिसे विरोध और रात्रिमें जप यह सब वर्जित हैं, द्यूत स्त्री और अपवादमें वृथा समय न गमावे ॥ २३ ॥ स्तोत्रपाठ तथा शास्त्र आगमके अवलोकनसे देवपूजा बितावे। भूमिशय्या, ब्रह्मचर्य, मौनचर्या ॥ २४ ॥ नित्य तीनों सवनमें स्नान, शूद्रकर्मसे वर्जना, नित्यपूजा नित्यदान आनंद स्तुति कीर्तन ॥ २५ ॥ नैमित्तिक अर्चन, गुरुदेवतामें विश्वास यह बारह धर्म जप निष्ठके कहे हैं जिससे सिद्धि होती है ॥२६॥ नित्य सूर्यका उपस्थान कर सन्मुख गायत्री जपे, देवताकी प्रतिमा वा अग्निमें अर्चन करे ॥ २७ ॥ स्नान पूजा जप ध्यान होममें तथा तर्पणमें तत्पर निष्काम हो देवतामें सब कर्म अर्पण करदे ॥ २८ ॥ इस प्रकारसे

लवणं क्षारमम्लं च गृंजनं कांस्यभोजनम् ॥ तांबूलं च द्विभुक्तं च दुष्टवासः प्रमत्तनम् ॥ २२ ॥ श्रुतिस्मृतिविरोधं च जपं रात्रौ विवर्जयेत् ॥ वृथा न कालं गमयेद् द्यूतस्त्रीस्वापवादतः ॥ २३ ॥ गमयेद्देवतापूजास्तोत्रागमविलोकनैः ॥ भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौन चर्या तथैव च ॥ २४ ॥ नित्यं त्रिषवणस्नानं शूद्रकर्मविसर्जनम् ॥ नित्यपूजा नित्यदानमानंदस्तुतिकीर्तनम् ॥ २५ ॥ नैमित्तिकार्चनं चैव विश्वासो गुरुदेवयोः ॥ जपनिष्ठस्य धर्मा ये द्वादशैते सुसिद्धिदाः ॥ २६ ॥ नित्यं सूर्यमुपस्थाय तस्य चाभिमुखो जपेत् ॥ देवता प्रतिमादौ वा वह्नौ वाऽभ्यर्च्य तन्मुखः ॥ २७ ॥ स्नानपूजाजपध्यानहोमतर्पणतत्परः ॥ निष्कामोदेवतायां च सर्वकर्मनिवेदकः ॥२८॥ एवमादींश्च नियमान्पुरश्चरणकृच्चरेत् तस्माद्द्विजः प्रसन्नात्मा जपहोमपरायणः ॥ २९ ॥ तपस्यध्ययने युक्तो भवेद्भूतानुकंपकः ॥ तपसा स्वर्गमाप्नोति तपसा विंदते महत् ॥ ३० ॥ तपो युक्तस्य सिद्ध्यंति कर्माणि नियतात्मनः विद्वेषणं संहरणं मारणं रोगनाशनम् ॥ ३१ ॥ येन येनाथ ऋषिणा यदर्थं देवताः स्तुताः ॥ स स कामः समृद्ध्येत तेषां तेषां तथा तथा ॥ ३२ ॥ तानि कर्माणि वक्ष्यामि विधानानि च कर्मणाम् ॥ पुरश्चरणमादौ च कर्मणां सिद्धि कारकम् ॥ ३३ ॥

नियमोंसे पुरश्चरण करे और प्रसन्न मन हो द्विज जप होममें परायण रहे ॥ २९ ॥ तप और अध्ययनमें युक्त प्राणियोंपर दया करनेवाला रहे तपसेही स्वर्ग और तपसे ही महत्त्व प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ जितेन्द्रिय तपस्वीके सब कर्म सिद्ध होते हैं विद्वेषण, संहार, मारण, रोगनाशक ॥ ३१ ॥ जिस २ निमित्त ऋषियोंने देवताओंकी स्तुति की है उनके वह वह काम सिद्ध होते हैं ॥ ३२ ॥ वह कर्म और उन कर्मोंके विधान कहता हूं पहले पुरश्चरण कर्मोंकी सिद्धि करनेवाला है ॥ ३३ ॥

दे. भा.
॥५२॥

पहले स्वध्यायके अभ्यासके आदिमें ब्राह्मण प्रजापत्य व्रत करे, बाल, डाढी, मूछ, लोम नख इनको वपन कराय स्नानकर पवित्र हो ॥ ३४ ॥ दिनरात वाणीको रोके पवित्र रहे सत्यवाद पवित्रहो व्याहृतियोंका जप करे ॥ ३५ ॥ पहले ओंकारपूर्वक सावित्रीको जप करे फिर पवित्र पापनाशी 'आपोहिष्ठा' सूक्तका जपकर ॥ ३६ ॥ पुनन्ती, स्वस्तिमती, पावमानी ऋचाओंका पाठ करे, कर्मोंके आदि अन्तमें इन सबका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३७ ॥ सहस्र सौ अथवा दश गायत्री जपे ओंकार तीनों व्याहृतिपूर्वक १०००० दशसहस्र गायत्री जपे ॥ ३८ ॥ जलसे आचार्य ऋषि छन्द देवताओंका तर्पण करे, अनार्य भाषाका भाषण न करेः शूद्र तथा गर्हितोंसे भाषण न करे, ॥ ३९ ॥ उदकी (रजस्वला) स्त्री पतित अन्त्यज इनसे भाषण न करे, ब्राह्मण आचार्य

स्वाध्यायाभ्यासनस्यादौ प्राजापत्यं चरेद्द्विजः ॥ केशश्मश्रुलोमनखान् वापयित्वा ततः शुचिः ॥ ३४ ॥ तिष्ठेदहनि रात्रौ तु शुचि रासीत वाग्यतः ॥ सत्यवादी पवित्राणि जपेद्व्याहृतयस्तथा ॥ ३५ ॥ ॐ काराद्यास्तु ता जप्त्वा सावित्रीं च तदित्यृचम् ॥ आपोहि ष्ठेति सूक्तं च पवित्रं पापनाशनम् ॥ ३६ ॥ पुनंत्यः स्वस्तिमत्यश्चपाव मान्यस्तथैव च ॥ सर्वत्रैतच्च प्रोक्तव्यमादावंते च कर्मणाम् ॥ ३७ ॥ आसहस्रादाशताद्वाप्यादशादथवा जपेत् ॥ ॐ कारं व्याहृतीस्तिस्रः सावित्री मथवाऽयुतम् ॥ ३८ ॥ तर्पयित्वाद्भिराचा र्यानृषींश्छंदांसि देवताः ॥ अनार्येण न भाषेत शूद्रेणापि न गर्हितैः ॥ ३९ ॥ नापि चोदक्यया वध्वा पतितैर्नान्त्यजैर्नृभिः ॥ न देव ब्राह्मणद्विष्टैर्नाचार्यगुरुनिंदकैः ॥ ४० ॥ न मातृपितृविद्विष्टैर्नाव मन्येत कंचन ॥ कृच्छ्राणामेष सर्वेषां विधि रुक्तोऽनुपूर्वशः ॥ ४१ ॥ प्रजापत्यस्य कृच्छ्रस्य तथा सांतपनस्य च परा कस्य च कृच्छ्रस्य विधिश्चांद्रांयणास्य च ॥ ४२ ॥ पंचभिः पातकैः सर्वैर्दुष्कृतैश्च प्रमुच्यते ॥ तप्तच्छ्रेण सर्वाणि पापानि दहति क्षणात् ॥ ४३ ॥ त्रिभिश्चांद्रायणैः पूतो ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ अष्टभिर्देवताः साक्षात्पश्येत वरदास्तदा ॥ ४४ ॥ छंदांसिदशभिर्ज्ञात्वा सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहम द्यादयाचितम् ॥ ४५ ॥

गुरुसे निन्दा वा द्वेष न करे ॥ ४० ॥ माता पिताका द्वेष वा उनका तिरस्कार कभी न करे और सब कृच्छ्रोंमें भी यही विधि करे ॥ ४१ ॥ प्राजापत्य कृच्छ्रसांतपन पराक् कृच्छ्रकी विधि चान्द्रायणकी विधि करनेसे ॥ ४२ ॥ ब्रह्महत्यादि पांच महापातक और सब पापोंसे मुक्त होता है, तप्तकृच्छ्र व्रतसे क्षणमें सब पाप दूर होते हैं ॥ ४३ ॥ तीन चान्द्रायणसे पवित्रहो ब्रह्मलोकमें गमन करता है, आठ करनेसे वरदायक देवताओंका दर्शन कर सकता है ॥ ४४ ॥ दश चान्द्रायणोंसे छन्दोंको जानकर सब कामनाओंको प्राप्त होता है. तीन दिन प्रभात तीनदिन संध्या समय तीन दिन अयाचित भोजन ॥ ४५ ॥

तीनदिन निराहार रहना. इस प्रकार बारह दिन करनेसे प्राजापत्य व्रत होता है.गोमूत्र गोबर दूध दही घी कुशाका जल यह पहले दिन सेवन करे ॥ ४६ ॥ परदिन एकरातका उपवास करे यह कृच्छ्र सांतपन है और पूर्ववत् तीन दिन एक २ ग्रास खाय ॥ ४७ ॥ फिर तीन दिन उपवास करे यह कृच्छ्र व्रत है यही तिगुना करनेसे महासांतपन होता है. तीन दिन गोमूत्र ३ दिन गोबर ३ दिन दही ३ दिन क्षीर ३ दिन घी पीनेसे महासांतपन व्रत होता है यह सब पाप दूर करता है ॥ ४८ ॥ जल क्षीर घृत इनको प्रति तीन दिन गरमकर पिये तथा वायु आहार तीनदिन करे एकबार स्नान और सावधान रहे यह तप्तकृच्छ्र व्रत होता है ॥ ४९ ॥ जो प्राजापत्य विधिसे नियत होकर जितेन्द्रिय हो जलमात्र पान कर रहे बारह दिन भोजन न करे ॥ ५० ॥ यह पराक् नामक कृच्छ्र

त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्रजापत्यं चरेद्द्विजः ॥ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदयम् ॥ ४६ ॥ एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ एकैकं ग्रासमश्नीयादहानि त्रीणि पूर्ववत् ॥ ४७ ॥ त्र्यहं चोपवसेदित्थमतिकृच्छ्रं चरेद्द्विजः ॥ एवमेव त्रिभि र्युक्तं महासांतपनं स्मृतम् ॥४८॥ तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान्॥प्रति त्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः ॥ ४९ ॥ नियतस्तु पिबेदापः प्रजापत्यविधिः स्मृतः ॥ यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् ॥ ५० ॥ पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापप्रणोदनः ॥ एकैकं तु ग्रसेत्पिंडं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ॥ ५१ ॥ अमावस्यां न भुंजीत एवं चांद्रायणे विधिः ॥ उपस्पृश्य त्रिषवमेतच्चांद्रायणं स्मृतम् ॥ ५२ ॥ चतुरः प्रातरश्नीयाद्विप्रः पिंडान्कृताह्निकः ॥ चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचांद्रायणं स्मृतम् ॥ ५३ ॥ अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिंडा न्मध्यंदिने स्थिते ॥ नियतात्मा हविष्यस्य यतिचांद्रायणं व्रतम् ॥ ५४ ॥ एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्च चरंति हि ॥ सर्वे कुशलिनो देवा मरुतश्च भुवा सह ॥ ५५ ॥

सब पापका दूर करनेवाला है. कृष्णपक्षमें एक एक ग्रास घटावे शुक्लपक्षमें एक २ बढावे ॥ ५१ ॥ अमावास्याको भोजन न करे यह चान्द्रायणकी विधि है. तीनों सवनमें स्नान करे यह चान्द्रायण है ॥ ५२ ॥ आह्निक कर्म समाप्त कर चार पिंड प्रभात और चार पिंड संध्याको भोजन करे इसका नाम शिशु चान्द्रायण है ॥ ५३ ॥ जो मध्य दिनमें आठ आठ समान ग्रास भोजन करे नियतात्मा होकर हविष्य ग्रास भोजन करे यह यतिचान्द्रायण है ॥ ५४ ॥ इसको रुद्र आदित्य और वसुभी कहते हैं, इसीसे सब निरापद हुये थे और मरुत् भी इसीको करके प्रसन्न हुए थे ॥ ५५ ॥

दे. भा. ॥५३॥ यह एक एक विधिपूर्वक किया हुआ सातरातमें ही क्रमसे त्वचा, रुधिर, मांस, अस्थि, मेद, मज्जा, वसा; एक२धातुको पवित्र करता है ॥ ५६ ॥ निःसन्देह यह सात रातमें एक २ शुद्ध हो जाते हैं, इन व्रतोंसे पवित्र हो नित्यकर्म करे ॥ ५७ ॥ इस प्रकार शुद्ध हुएके कर्म अवश्य सिद्ध होते हैं, सत्यवादी जितेन्द्रिय शुद्धात्मा होकर कर्म करे ॥ ५८ ॥ तो वह निःसंदेह अपनी इष्ट कामनाओंको प्राप्त होता है, सब कर्मोंसे रहित हो तीनरात उपवास करे ॥ ५९ ॥ अथवा तीन रात व्रत करके कर्म समाप्त करे इस प्रकार विधान करनेसे पुरश्चरणका फल मिलता है ॥ ६० ॥ गायत्रीका पुरश्चरण सब कामना देनेवाला. हे देवर्षे ! यह महापापनाशक व्रत तुमसे कहा ॥ ६१ ॥ मंत्रीको पहले देह शोधनके निमित्त व्रत करना चाहिये फिर पुरश्चरण करनेसे सब फलका भागी होता है

एकैकं सप्तरात्रेण पुनाति विधिवत्कृतम् ॥ त्वगसृक्पिशितास्थीनि मेदोमज्जावसास्तथा ॥ ५६ ॥ एकैकं सप्तरात्रेण शुद्ध्यत्येव न संशयः ॥ एभिर्व्रतैर्विपूतात्मा कर्म कुर्वीत नित्यशः ॥ ५७ ॥ एवं शुद्धस्य कर्माणि सिद्ध्यंत्येव न संशयः ॥ शुद्धात्मा कर्म कुर्वीत सत्यवादी जितेंद्रियः ॥५८॥ इष्टान्कामांस्ततः सर्वान्संप्राप्नोति न संशयः ॥ त्रिरात्रमेवोपवसेद्रहितः सर्वकर्मणा ॥५९॥ त्रीणि नक्तानि वा कुर्यात्ततः कर्म समारभेत् ॥ एवं विधानं कथितं पुरश्चर्याफलप्रदम् ॥ ६० ॥ गायत्र्याश्च पुरश्चर्या सर्वकामप्रदायिनी ॥ कथिता तव देवर्षे महापापविनाशिनी ॥ ६१ ॥ आदौ कुर्याद्व्रतं मन्त्री देहशोधनकारकम् ॥ पुरश्चर्या ततः कुर्यात्समस्तफलभाग्भवेत् ॥ ६२ ॥ इति ते कथितं गुह्यं पुरश्चर्याविधानकम् ॥ एतत्परस्मै नो वाच्यं श्रुतिसारं यतः स्मृतम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादश स्कंधे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ नारायण महाभाग गायत्र्यास्तु समासतः ॥ शांत्यादिकान्प्रयोगास्तु वदस्व करुणा निधे ॥ १ ॥ नारायण उवाच ॥ अतिगुह्यमिदं पृष्टं त्वया ब्रह्मतनूद्भव ॥ न कस्यापि च वक्तव्यं दुष्टाय पिशुनाय च ॥ २ ॥ अथ शांतिः पयोक्ताभिः समिद्भिर्जुहुयाद्द्विजः ॥ शमीसमिद्भिः शाम्यंति भूतरोगग्रहादयः ॥ ३ ॥

॥ ६२ ॥ यह आपसे गुह्य पुरश्चरणका विधान कहा यह प्रत्येकसे न कहना श्रद्धावान्से कहना कारण कि, यह श्रुतिका सार है ॥ ६३ ॥ इति श्रीदेवीभाग
भा. टी.ए. वते महापुराणे एकादशस्कंधे भाषायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ नारदजी बोले हे नारायण महाभाग ! संक्षेपसे गायत्रीके शान्ति आदि प्रयोगोंको कहिये आप
अ० २४ करुणासागर हो ॥ १ ॥ नारायण बोले हे नारद ! आपने बड़ी गुप्त बात पूँछी है,यह दुष्ट और चुगलोंसे कभी न कहनी चाहिये ॥ २ ॥ शांतिके निमित ब्राह्मण
पयमें भिजोकर सहस्र समिधाओंसे जो समीवृक्षकीहों हवन करे तो भूत रोग ग्रहादि शांत होते हैं ॥ ३ ॥

भूतरोगादिकी शांतिमें अश्वत्थ उदुंबर पिलखन न्यग्रोधादि वृक्षकी गीली समिधा वा क्षीर वृक्षके खंडोंसे हवन करे ॥ ४ ॥ हवनमें सर्वत्र गायत्री पढ यह अनुष्ठान (४९) दिनपर्यंत करे फिर ' सूर्यं तर्पयामि नमः 'इस मंत्रसे सूर्यको तर्पणकर हाथोंसे जलदे तो शांतिकी प्राप्ति होती है. और जंघापर्यन्त जलमें जपनेसे सब दोष शांत होते हैं ॥ ५ ॥ कंठपर्यन्त जलमें जपे तो प्राणान्तका भय छूटता है सब शांति कर्मोंमें जलमें स्थित हो जप कहना चाहिये ॥ ६ ॥ अब प्रयोगान्तर कहते हैं सोना, चांदी, तांबा, वा क्षीरीवृक्ष वा मृत्तिकाके अच्छिद्र पात्रमें पंचगव्य स्थापन कर ॥ ७ ॥ प्रज्वलित अग्निमें क्षीरिवृक्षके काष्ठोंकी समिधाके सहित पंचगव्यहवन करे ॥८॥ प्रत्येक आहुतिमें पंचगव्यका स्पर्श करता हुआ पीछे पात्रमें स्थित पंचगव्यको गायत्री मंत्रसे सहस्र जपकर अभि

आर्द्राभिः क्षीरवृक्षस्य समिद्भिर्जुहुयाद्द्विजः ॥ जुहुयाच्छलैर्वाऽपि भूतरोगादिशांतये ॥ ४ ॥ जलेन तर्पयेत्सूर्यं पाणिभ्यां शांतिमाप्नुयात ॥ जानुदघ्ने जले जप्त्वा सर्वान्दोषाञ्छमं नयेत् ॥ ५ ॥ कंठदघ्ने जले जप्त्वा मुच्येत्प्राणांतिकाद्भयात् ॥ सर्वेभ्यः शांतिकर्मभ्यो निमज्याप्सु जपः स्मृतः ॥ ६ ॥ सौवर्णे राजते वाऽपि पात्र ताम्रमयेऽपि वा ॥ क्षीरवृक्षमये वाऽपि निर्व्रणे मृन्मयेऽपि वा ॥ ७ ॥ सहस्रं पञ्चगव्येन हुत्वा सुज्वलितेऽनले ॥ क्षीरवृक्षमयैः काष्ठैः शेषं संपादयेच्छनैः ॥ ८ ॥ प्रत्याहुतिं स्पृशञ्जप्त्वा सहस्रं पात्रसंस्थितम् ॥ तेन तं प्रोक्षयेद्देशं कुशैर्मंत्रमनुस्मरन् ॥ ९ ॥ बलिं किरस्ततस्तस्मिन्यायेत्तु परदेवताम् ॥ अभिचार समुत्पन्नाकृत्यापापं च नश्यति ॥ १० ॥ देवभूत पिशाचाद्या यद्येवं कुरुते वशे ॥ गृहंग्रामं पुरं राष्ट्रं सर्वं तेभ्यो विमुच्यते ॥ ११ ॥ निखने मुच्यते तेभ्यो लिखने मध्यतोऽपि च ॥ मण्डले शूलमालिख्य पूर्वोक्ते च क्रमेऽपि वा ॥ १२ ॥ अभिमंत्र्य सहस्रं तन्निखनेत्सर्वशांतये ॥ सौवर्णं राजतं वाऽपि कुंभं ताम्रमयं च वा ॥ १३ ॥

मंत्रणकर गायत्री मंत्रसे प्रोक्षण करे ॥ ९ ॥ और बलिदान करके परदेवताका ध्यान करे इससे अभिचारसे प्रगट हुई कृत्या नष्ट होती है ॥ १० ॥ जो इस प्रकार आचरण कहते हैं, वे देवता भूत पिशाच ग्रह ग्राम पुर राज्य सबको वशी करते हैं और सबसे छूट जाते हैं ॥ ११ ॥ वक्ष्यमाण शूलके चतुरस्र मण्डलके लिखने और उसके भूमिमें गाडनेसे पूर्वोक्त कृमि आदि उपद्रव हो जाते हैं, चतुरस्रमण्डलमें अष्टगंधसे शूलको लिखकर ॥ १२ ॥ गायत्रीसे सहस्रवार अभिमंत्रित कर सब शांतिके लिये उसे भूमिमें गाडदे. सोना चांदी वा तांबेका घडा ॥ १३ ॥

वा मृत्तिकाका नया साबूत घट लेकर उसे दिव्य सूत्रसे वेष्टित कर स्थंडिल वा रेतेके समीम रख उसको मंत्र ज्ञाता जलसे पूर्ण करे ॥ १४ ॥ चारों ओर दिशाओंके तीर्थोंके जल ब्राह्मणोंद्वारा मँगाय इलायची, चन्दन, कपूर, जाती, पाटल, मल्लिका ॥ १५ ॥ बेलपत्र, विष्णुक्रान्त, सहदेई, व्रीहि, जौ, यव, तिल, सरसों, क्षीरवृक्ष, पीपल, गूलर, पिलखन, न्यग्रोधादिकोंके फलोंको भी घटमें डालदे ॥ १६ ॥ यह सब इस प्रकार लेकर उसमें कुशकूर्चि 'सताईस कुशाओंकी ग्रंथि' डाल कर फिर विप्र स्नान करने उपरान्त उसको सहस्र गायत्री मन्त्रसे अभिमन्त्रण करले ॥ १७ ॥ तीनों वेदके ज्ञाता ब्राह्मण सब ओरसे सौरमन्त्रोंको पढते रहें इस जलको प्रोक्षण कर भूतादिरोगग्रस्तको पिलावे और उसका अभिषेक करे ॥ १८ ॥ तो वह भूतरोगादि अभिचारसे मुक्त होकर सुखी होता है.

मृन्मयं वा नवं दिव्यं सूत्रवेष्टितःमव्रणम् ॥ स्थंडिले सैकते स्थाप्य पूरयेन्मन्त्रविज्जलैः ॥१४॥ दिग्भ्य आहृत्य तीर्थानि चतसृभ्यो द्विजोत्तमैः ॥ एलाचंदनकर्पूरजातीपाटलमल्लिकाः ॥ १५ ॥ बिल्वपत्रं तथाक्रांतां देवीव्रीहियवांस्तिलान् ॥ सर्षपान्क्षीर वृक्षाणां प्रवालानि च निक्षिपेत् ॥ १६ ॥ सर्वाण्यभिधायैवं कुशकूर्चसमन्वितम् ॥ स्नातःसमाहितो विप्रः सहस्रं मंत्रयेद्बुधः ॥ १७ ॥ दिक्षु सौरानधीयीरन्मंत्रान्विप्रास्त्रयीविदः ॥ प्रोक्षयेत्पाययेदेनंनीरं तेनाभिषिंचयेत् ॥ १८ ॥ भूतरोगाभिचारेभ्यः स निर्मुक्तः सुखीभवेत् ॥ अभिषेकेण मुच्येत मृत्योरास्यगतो नरः ॥ १९ ॥ अवश्यं कारयेद्विद्वान्राजा दीर्घजिजीविषुः ॥ गावो देयाश्च ऋत्विग्भ्य अभिषेके शतं मुने ॥ २० ॥ दक्षिणा येन वा तुष्टिर्यथा शक्त्याऽथवा भवेत् ॥ जपेदश्वत्थमालभ्य मंदवारे शतं द्विजः ॥ २१ ॥ भूतरोगाभिचारेभ्यो मुच्यते महतो भयात् ॥ गुडूच्याः पर्वविच्छिन्नाः पयोक्ताः जुहुयाद्द्विजः ॥ २२ ॥ एवं मृत्युंजयो होमः सर्वव्याधिविनाशनः ॥ आम्रस्य जुहुयात्पत्रैः पयोक्तैर्ज्वरशांतये ॥ २३ ॥

इस अभिषेकसे मृत्युके मुखमें प्राप्त हुआ भी प्राणी छूटता है ॥१९॥ इसको विद्वान राजा दीर्घजीवनकी इच्छासे अवश्य करे हे मुने ! इस अभिषेकमें ऋत्विजोंको सौ गायें देनी चाहिये ॥ २० ॥ अथवा जिस प्रकार वे संतुष्ट हो जायँ इस प्रकार दक्षिणा दे. यदि अभिचारका महाभय हो तो हे ब्राह्मण ! शनिवारके दिन अश्वत्थके नीचे बैठकर सौबार गायत्री मन्त्र जपे ॥ २१ ॥ वह भूतरोगादिके उपचार और महाभयसे छूट जाता है, जो ब्राह्मण पर्व पर्वमें अर्थात् पोरी पोरीसे काटी हुई गुडूची (गिलोय) को दूधके सहित हवन करता है ॥ २२ ॥ तो यह मृत्युंजय होम सब व्याधिनाशक है. ज्वरशांतिके निमित्त आमके पत्ते और दूधका हवन करे ॥ २३ ॥

दूध दही घी इन तीन मधुके हवनसे राजयक्ष्मा दूर होता है. वचको दूधमें भिजो हवन करनेसे क्षयरोग दूर होता है ॥ २४ ॥ पायस अन्न होमपूर्वक सूर्यको निवेदन कर पश्चात् उसे प्राशन कर राजयक्ष्मा दूर होता है ॥ २५ ॥ अथवा क्षयशांतिके निमित्त सोमलताकी पोरी छेदन कर अमावास्याको पयके सहित हवन करे ॥ २६ ॥ शंखवृक्षों कौंडिल्लाके फूलोंसे हवन करनेसे कुष्ठ और चिरचिरेके बीजोंसे हवन करनेसे अपस्मार रोग दूर होता है ॥ २७ ॥ क्षीरी वृक्षकी समिधाओंके होमसे उन्माद नष्ट होता है उदुम्बर (गूलरकी) समिधाओंके होमसे अतिमेह (प्रमेह) भेद नष्ट होता है ॥ २८ ॥ मधु और गन्नेके रसका हवन करे तो प्रमेह, दूध दही घीके होमसे मसूरिका पाद रोग नष्ट होता है ॥ २९ ॥ कपिलाके घृतसे हवन करनेसे मसूरिका शान्त होती है, उदुम्बर

वचाभिः पयशक्ताभिः क्षयं हुत्वा विनाशयेत् ॥ मधुत्रितयहोमेन राजयक्ष्मा विनश्यति ॥ २४ ॥ निवेद्य भास्करा यान्नं पायसं होम पूर्वकम् ॥ राजयक्ष्माभिभूतं च प्राशयेच्छांतिमाप्नुयात् ॥ २५ ॥ लताः पर्वसु विच्छद्य सोमस्य जुहुयाद्द्विजः ॥ सोमे सूर्येण संयुक्ते प्रयोक्ताः क्षयशांतये ॥ २६ ॥ कुसुमैः शंखवृक्षस्य हुत्वा कुष्ठं विनाशयेत् ॥ अपस्मारविनाशः स्यादपामार्गस्य तंडुलैः ॥ २७ ॥ क्षीरवृक्षसमिद्धोमादुन्मादोऽपि विनश्यति ॥ औदुंबरसमिद्धोमादतिमेहः क्षयं व्रजेत् ॥ २८ ॥ प्रमेहं शमयेद्धुत्वा मधुनेक्षुरसेनवा ॥ मधु त्रितयहोमेन नयेच्छांतिं मसूरिकाम् ॥ २९ ॥ कपिलासर्पिषाहुत्वा नयेच्छांतिं मसूरिकाम् ॥ उदुंबरवटाश्वत्यैर्गा गजाश्वमयं हरेत ॥ ३० ॥ पिपीलिमधुवल्मीके गृहे जाते शतं शतम् ॥ शमीसमिद्भिरन्नेन सर्पिषा जुहुयाद्द्विजः ॥ ३१ ॥ तदुत्यं शांतिमायाति शेषैस्तत्र बलिं हरेत् ॥ अभ्रस्तनितभूकंपालक्ष्यादौ वनवेतसः ॥ ३२ ॥ सप्ताहं जुहुयादेवं राष्ट्रे राज्यं सुखी भवेत् ॥ या दिशं शतजप्तेन लोष्टेनाभि प्रताडयेत् ॥ ३३ ॥ ततोऽग्निमारुतारिभ्यो भयं तस्य विनश्यति ॥ मनसैव जपेदेनां बद्धो मुच्येत बंधनत् ॥ ३४ ॥

वट अश्वत्थसे गौ गज अश्वका रोग दूर होता है ॥ ३० ॥ पिपीलिका, वल्मीक, मुहाल, इनका घरमें विशेष उपद्रव हो तो सौ सौ शमीकी समिधाओंसे घी सहित हवन करे ॥ ३१ ॥ तो शांति होती है शेष अन्नकी बलि दे मेघगर्जन, भूकम्प, आदिमें वनके वेतकी एक लक्ष आहुति दे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार सात दिन हवन करनेसे राज्य सुखी होता है, सौवार मट्टीके ढेलेको जपकर जिस दिशामें फेंक दे ॥ ३३ ॥ उसको वहां अग्नि और पवनका भय नष्ट होता है कारागारमें मनसेही इनको जपनेसे बंधुआ बन्धनसे छूट जाता है कारण कि, वहां सामग्रीका अभाव है इससे मनसे ही जपे ॥ ३४ ॥

भूतरोग विषादिमें कुशसे स्पर्श कर जपे तो व्याधि जाय और अभिमन्त्रित जलपानसे भूतादि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३५ ॥ भूतादिकी शांतिके निमित्त १०० वार अभिमन्त्रित कर भस्म धारण करे सावित्रीसे अभिमन्त्रित करके शिरपर भस्म धारण कर ॥ ३६ ॥ वह सब व्याधिसे मुक्त हो सौ वर्ष जीता है. स्वयं समर्थ न हो तो दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंसे शांति करावे ॥ ३७ ॥ पुष्टि श्री लक्ष्मी फूलोंके हवनसे प्राप्त होती है, श्रीकामनावाला लालकमलोंसे हवन करे ॥ ३८ ॥ वा जातीके नये पत्तोंसे हवन करे वा शालितण्डुलके हवनसे भी लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ अथवा बेलवृक्षकी समिधा वा उसके खण्ड पत्र पुष्प फलोंसे हवन करनेसे ॥४०॥ वा मूलके खण्डोंसे हवन करनेसे महालक्ष्मीकी प्राप्ति होती है बेलकी समिधा दूध और घीके साथ॥४१॥ सौ सौ

भूतरोगविषादिभ्यस्पृशञ्जप्त्वा विमोचयेत् ॥ भूतादिभ्यो विमुच्येत जलं पीत्वाऽभिमन्त्रितम् ॥ ३५ ॥ अभिमंत्र्य शतं भस्म न्यसे द्भूतादिशांतये ॥ शिरसा धारयेद्भस्म मंत्रयित्वा तदित्यृचा ॥ ३६ ॥ सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः सुखी जीवेच्छतं समाः ॥ अशक्तः कार येच्छांतिं विप्रं दत्त्वा तु दक्षिणाम् ॥ ३७ ॥ अथ पुष्टिं श्रियंलक्ष्मीं पुष्पैर्हुत्वाप्नुयाद्द्विजः ॥ श्रीकामो जुहुयात्पद्मै रक्तैः श्रियम वाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ हुत्वा श्रियमवाप्नोति जातीपुष्पैर्नवै शुभैः ॥ शालितंडुलहोमेन श्रियमाप्नोति पुष्कलाम् ॥ ३९ ॥ समिद्भिर्बिल्व वृक्षस्य हुत्वा श्रियमवाप्नुयात् ॥ बिल्वस्य शकलैर्हुत्वा पत्रैः पुष्पैः फलैरपि ॥ ४० ॥ श्रियमाप्नोति परमां मूलस्य शकलैरपि ॥ समिद्भिर्बिल्ववृक्षस्य पायसेन च सर्पिषा ॥ ४१ ॥ शतं शतं च सप्ताहं हुत्वा श्रियमावाप्नुयात् ॥ लाजैस्त्रिमधुरोपेतैर्होमे कन्यामवाप्नु यात् ॥४२॥ अनेनविधिनाकन्या वरमाप्नोति वांछितम् ॥ रक्तोत्पलशतं हुत्वा सप्ताहं हेम चाप्नुयात् ॥४३॥ सूर्यबिंबे जलं हुत्वा जलस्थं हेम चानुप्यात् ॥ अन्नंहुत्वाऽप्नु यादन्नं व्रीहीन्व्रीहिपतिर्भवेत् ॥ ४४ ॥ करीषचूर्णैर्वत्सस्य हुत्वा पशुमवाप्नुयात् ॥ प्रियंगुपायसाज्यैश्च भवेद्धोमादिभिः प्रजा ॥ ४५ ॥ निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम् ॥ भोजयेत्तद्दतुस्नानातां पुत्र परमवाप्नुयात ॥ ४६ ॥

वार सप्ताहतक हवन करनेसे शान्तिकी प्राप्ति होती है पय दधि घृतके साथ लाजा होम करनेसे कन्याकी प्राप्ति होती है॥४२॥इसी विधानसे कन्या मनोवांछित वरको प्राप्त होती है सप्ताह भर प्रतिदिन सौ लाल कमलोंका हवन करे तो सुवर्णकी प्राप्ति होती है,॥४३॥ सूर्यबिंबमें जलका तर्पण करनेसे जलमें गुप्त हुए सुव र्णकी प्राप्ति होती है,अन्नके हवनसे अन्न और व्रीहिके हवनसे व्रीहिपति होता है॥४४॥बछडेके गोबरके चूर्णको हवन करनेसे पशुकी और प्रियंगु घी दूधके हवन करनेसे प्रजाकी प्राप्ति होती है ॥ ४५ ॥ होमपूर्वक पायसान्न सूर्यको निवेदन कर फिर ऋतुस्नाता स्त्रीको भोजन करानेसे परम पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ ४६ ॥

पलाशसमिधाके गीले प्ररोह हवन करनेसे वा क्षीरवृक्षकी समिधाओंके हवनसे आयुकी प्राप्ति होती है ॥ ४७ ॥ दूध दही घी इनके साथ क्षीरवृक्षके लाल गीले अंकुरोंका हवन तथा सौ व्रीहियोंका हवन करनेसे सुवर्ण और आयुकी प्राप्ति होती है ॥ ४८ ॥ सौ सुवर्ण कमलोंके हवनसे वा दूर्वा, दूध, मधु, घी इन एक एकके हवनसे आयु मिलती है ॥ ४९ ॥ प्रतिदिन सौ सौ वार सप्ताह भर इसी हवनसे अकाल मृत्यु दूर होती है, जो मनुष्य दूधके आहारसे सातदिन मंत्र जपे तो विजयी होता है ॥ ५० ॥ जो न्यग्रोधकी सौ सौ समिधा पायसके साथ सप्ताहभर हवन करे तो अपमृत्यु दूर होती है ॥ ५१ ॥ यह प्रतिदिन सौ सौ आहुति देनेसे एक सप्ताहमें अपमृत्यु दूर करता है जो मनुष्य क्षीरका आहार कर एक सप्ताहतक इसको जपे वह विजयी होता है ॥ ५२ ॥ और विना भोजन

सप्ररोहाभिरार्द्राभिरायुर्हुत्वा समाप्नुयात्॥ समिद्भिः क्षीरवृक्षस्य हुत्वाऽऽयुषमावाप्नुयात् ॥४७॥ सप्ररोहाभिरार्द्राभिरक्ताभिर्मधुरत्रयैः ॥ व्रीहीणां च शतं हुत्वा हेम चायुरवाप्नुयात् ॥ ४८ ॥ सुवर्णकुड्मलं हुत्वा शतमायुरवाप्नुयात् ॥ दूर्वाभिः पयसा वाऽपि मधुना सर्पिषऽपि वा ॥ ४९ ॥ शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति ॥ शमोसमिद्भिरन्नेन पयसा वा च सर्पिषा ॥ ५० ॥ शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति ॥ न्यग्रोधसमिधो हुत्वा पायसं होमयेत्ततः ॥ ५१ ॥ शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति ॥ क्षीराहारो जपेन्मृत्योः सप्ताहाद्विजयी भवेत् ॥ ५२ ॥ अनश्नन्वाग्यती जप्त्वा त्रिरात्रं मुच्यते यमात् ॥ निमज्याप्सु जपेदेव सद्यो मृत्योर्विमुच्यते ॥ ५३ ॥ जपेद्बिल्वं समाश्रित्य मासं राज्यमवाप्नुयात् ॥ बिल्वं हुत्वाऽप्नुयाद्राज्यं समूलफल पल्लवम्॥ ५४ ॥ हुत्वा पद्मशतं मासं राज्यमाप्नोत्यकंटकम् ॥ यवागूं ग्राममाप्नोति हत्वा शालिसमन्विताम् ॥ ५५ ॥ अश्वत्थसमिधो हुत्वा युद्धादौ जयमाप्नुयात् ॥ अर्कस्य समिधो हुत्वा सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ५६ ॥ संयुक्तैः पयसा पत्रैः पुष्पैर्वा वेतसस्य च ॥ पायसेन शतं हुत्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात् ॥ ५७ ॥

किये मौन हो तीन रात जपे तो यमके भयसे छूट जाता है और जो जलमें निमग्न होकर जपै तो शीघ्रही मृत्युभय छूट जाता है ॥ ५३ ॥ बिल्वके निकट एक महीने जपे तो राज्य मिलता है बिल्वके मूल फल पल्लव हवन करनेसे राज्य मिलता है ॥ ५४ ॥ एक महीनेतक सौ पद्म प्रतिदिन हवन करनेसे अकंटक राज्य मिलता है शालियुक्त यवागूका हवन करनेसे ग्रामकी प्राप्ति होती है ॥ ५५ ॥ अश्वत्थकी समिधाओंका हवन करनेसे युद्धमें जय प्राप्त होती है आककी समिधाओंसे हवन करनेसे सर्वत्र विजयी होता है ॥ ५६ ॥ वेतके पत्र पुष्प दूधके साथमें सौवार प्रति दिन हवन करे तो सात दिनमें वर्षा होती है ॥ ५७ ॥

वा नाभिपर्यन्त जलमें सात दिन जपनेसे वर्षा होती है जलमें सौबार भस्मका हवन करनेसे महावृष्टि निवृत्त होती है ॥५८॥ ढाककी समिधाओंके हवनसे ब्रह्मतेज और ढाकके फूलोंसे सब इष्टकी प्राप्ति होती है ॥ ५९ ॥ दूधके हवनसे मेधा, घृतसे बुद्धि, अभिमंत्रणकर ब्रह्मीका रसपीनेसे मेधा प्राप्त होती है ॥ ६० ॥ पुष्पके हवनसे वास (सद्गंध) तंतुओंसे उसी प्रकारका पटलाभ होता है और मधु मिले लवणसे हवन करनेसे इष्ट वशमें होता है ॥ ६१ ॥ बेलके फूलोंको मधु मिलाय होमे तो अभीष्ट वशीभूत होता है, जो जलमें स्थित हो नित्य अंजलिसे अपने आपको सिंचन करता है ॥ ६२ ॥ वह मति आरोग्य आयुष्य अग्रता और स्वस्थताको प्राप्त होता है, जो ब्राह्मण दूसरेके उद्देशसे करे वह भी अभीष्टको प्राप्त होता है ॥६३॥ और जो श्रेष्ठ विधिसे

नाभिदघ्ने जले जप्त्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात् ॥ जले भस्मशतं हुत्वा महावृष्टिं निवारयेत् ॥ ५८ ॥ पालाशीभिरप्नोति समिद्भिर्ब्रह्म वर्चसम् पलाशकुसुमैर्हुत्वा सर्व मिष्टमवाप्नुयात् ॥ ५९ ॥ पयो हुत्वाप्नुयान्मेधामाज्यं बुद्धिमवाप्नुयात् ॥ अभिमंत्र्य पिबेद्ब्राह्मं रसं मेधामवाप्नुयात् ॥६०॥ पुष्प होम भवेद्वासस्तंतुभिस्तद्विधं पटम् ॥ लवणं मधुसंमिश्रं हुत्वेष्टं वशमानयेत् ॥६१॥ नयदिष्टं वशं हुत्वा लक्ष्मीपुष्पैर्मधुप्लुतैः ॥ नित्य मन्जलिनाऽमानमर्षिचेज्जले स्थितः ॥६२॥ मतिमारोग्यमायुष्यमग्र्यं स्वास्थ्यमवाप्नुयात् ॥ कुर्याद्विप्रोऽन्यमुद्दिश्य सोऽपि पुष्टिमवाप्नुयात् ॥६३॥ अथ चारुविधिर्मासं सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ॥ आयुष्कामः शुचौ देशे प्राप्नुयादायुरुत्तमम् ॥६४॥ आयुरारोग्यकामस्तु जपेन्मासद्वयं द्विजः ॥ भवेदायुष्यमारोग्यं श्रियै मासत्रयं जपेत् ॥ ६५ ॥ आयुःश्रीपुत्रदा राद्याश्चतुर्भिश्च यशोजपात् ॥ पुत्रदारायुरारोग्यं श्रियं विद्यां च पंचभिः ॥ ६६ ॥ एवमेवोत्तरान्कामान् मासैरेवोत्तरैव्रजेत् ॥ एकपादो जपेदूर्ध्वबाहुः स्थित्वा निराश्रयः ॥ ६७ ॥ मासं शतत्रयं विप्रः सर्वान्कामान वाप्नुयात् ॥ एवं शतोत्तरं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ॥ ६८ ॥

प्रतिदिन एक सहस्र महीने भरतक पवित्र स्थानमें आयुकी कामनासे जपे तो उसको आयुकी प्राप्ति होती है ॥६४॥ आयु आरोग्यकी कामनासे ब्राह्मण दो महीने जपे तो आयु आरोग्य होती है, लक्ष्मी तीन महीने जप करनेसे मिलती है ॥ ६५ ॥ चार महीने जपसे आयु लक्ष्मी पुत्र स्त्री यश प्राप्त होता है, पांच महीने जपसे पुत्र दारा आयु आरोग्य श्री विद्या प्राप्त होती है ॥६६॥ इसी प्रकार उत्तरोत्तर जप करनेसे अधिकतर कामनाओंकी प्राप्ति होती है, एक चरणसे ऊर्ध्व भुजाकर निराश्रय ॥ ६७ ॥ तीन महीने जप करनेसे सब कामनाओंको प्राप्त होता है, इस प्रकार सौसे सहस्रतक जप करनेसे सब मनोरथ मिलते हैं ॥६८॥

जो प्राण आपनको रोक कर प्रतिदिन तीनसौ एकमहीने तक जपता है वह यथेच्छ फल पाता है और सहस्र हवनसे परम उत्कृष्टताको प्राप्त होता है ॥६९॥ एक चरणसे स्थित हो ऊपरको भुजा उठाये प्राण रोककर सौवार महीनेभरतक जप करनेसे यथेच्छ फल पाता है ॥ ७० ॥ इस प्रकार तीन शत वा सहस्र जपसे सब कामना प्राप्त होती है जलमें स्थित हो मास पर्यन्त सौवार जपनेसे इष्टको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ इस प्रकार प्राणका अपान रोक कर प्रतिदिन तीनशत गायत्री जपनेसे सब कुछ प्राप्त होता है विश्वामित्रने कहा है एक चरणसे स्थित ऊपरको भुजा उठाये निराश्रय हो प्राण रोक ॥ ७२ ॥ केवल रात्रिमें हविष्य अन्न खाता हुआ वर्षदिनमें ऋषिताको प्राप्त होता है दोवर्ष इसप्रकार जपनेसे अमोघ वाणी हो जाती है जो कहे सो होजाय ॥ ७३ ॥ इसी

रुद्ध्वा प्राणमपानं च जपेन्मासं शतत्रयं ॥ यदिच्छेत्तदवाप्नोति सहस्रात्परमाप्नुयात् ॥ ६९ ॥ एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्धाऽनिलं वशः ॥ मासंशतमवाप्नोति यदिच्छेदितिकौशिकः ॥ ७० ॥ एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ॥ निमज्ज्याप्सु जपेन्मासं शतमिष्टमवाप्नु यात् ॥ ७१ ॥ एवं शतत्रंय जप्तवा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ॥ एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्ध्वा निराश्रयः ॥ ७२ ॥ नक्तमश्नन्हविष्यान्नं वत्सरदृषितामियात् ॥ गीरमोघा भवेदेवं जप्त्वा संवत्सरद्वयम् ॥ ७३ ॥ त्रिवत्सरं जपेदेवं भवेत्रैकालदर्शनम् ॥ आयाति भगवान्देव श्वतुःसंवत्सरं जपेत् ॥ ७४ ॥ पंचभिर्वत्सरैरेवमणिमादिगुणो भवेत् ॥ एवंषड्वत्सरं जप्त्वा कामरूपित्वमाप्नुयात् ॥ ७५ ॥ सप्तभिर्व त्सरैरेवममरत्वमवाप्नुयात् ॥ मनुत्वं नवभिः सिद्धमिंद्रत्वं दशभिर्भवेत् ॥ ७६ ॥ एकादशभिराप्नोति प्राजापत्यं सुवत्सरैः ॥ ब्रह्मत्वं प्राप्नुयादेवं जप्त्वा द्वादशवत्सरान् ॥ ७७ ॥ एतेनैव जिता लोकास्तपसा नारदादिभिः ॥ शाकमन्ये परे मूलं फलमन्ये पयः परे ॥ ७८ ॥ घृतमन्ये परे सोममपरे मरुवृत्तयः ॥ ऋषयः पक्षमश्नंति केचिद्भैक्ष्याशिनोऽहनि ॥ ७९ ॥

प्रकार तीनवर्ष जपनेसे त्रिकालदर्शी हो जाता है चारवर्ष जपनेसे भगवान् सूर्यका आगमन होता है ॥ ७४ ॥ पांचवर्ष जपनेसे अणिमादि सिद्धि और छःवर्ष जपनेसे कामरूपत्व मिलता है ॥ ७५ ॥ सातवर्षमें जपसे अमरत्व नौसे मनुत्व और दश वर्ष जपनेसे इन्द्रत्वकी प्राप्ति होती है ॥ ७६ ॥ ग्यारह वर्ष जपनेसे प्राजापत्य और इसी प्रकार बारह वर्षतक जपे तो ब्रह्मत्व प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ इसीके द्वारा नारदादिने तपकरके लोकोंको जीता है कोई शाक, कोई मूल,कोई फल,कोई पय ॥ ७८ ॥कोई घी, कोई सोम, कोई चरु, कोई भिक्षावृत्तिसे दिनमें एकवार ॥ ७९ ॥

हविष्य अन्नखाते हुए परम तप करते हैं, रहस्य पापोंकी शुद्धिके निमित्त तीन सहस्र जप करे ॥ ८० ॥ सुवर्णकी चोरीसे एक महीना जपकर शुद्ध हो जाता है महीनेमें तीन सहस्र जपनेसे सुरापी शुद्ध होता है ॥ ८१ ॥ एक महीनेसे तीन सहस्र जपवाला गुरुतल्पगमनके पापसे मुक्त होता है. जो कुटी बनाया वनमें रहकर महीनेभरतक तीन सहस्र जपकरे ॥ ८२ ॥ तो ब्रह्महत्याके पापसे छूटता है यह कौशिक विश्वामित्रने कहा है जो जलमें निमग्न हो बारह दिनमें बारह सहस्र जप करे ॥ ८३ ॥ उसके सब पाप और महापातक नष्ट होजाते हैं, जो प्राणायामकर वाणी रोक महीनेमें तीन सहस्र जपकरे ॥ ८४ ॥ व महापातक तथा महाभयसे छूट जाता है,सहस्र प्राणायामसे ब्रह्महत्याराभी शुद्ध हो जाता है ॥ ८५ ॥ जो सावधान हो प्राण अपानको छः वार ऊपरको कर ह

हविष्यमपरेऽश्नंतः कुर्वंत्येव परंतपः ॥ अथ शुद्ध्यै रहस्यानां त्रिसहस्रं जपेद्द्विजः ॥ ८० ॥ मासं शुद्धो भवेत्स्तेयात्सुवर्णस्य द्विजोत्तमः ॥ जपेन्मासं त्रिसाहस्रं सुरापः शुद्धिमाप्नुयात् ॥ ८१ ॥ मासं जपेत्त्रिसाहस्रं शुचि स्याद्गुरुतल्पगः ॥ त्रिसहस्रं जपेन्मासं कुटीं कृत्वा वने वसन् ॥ ८२ ॥ ब्रह्महा मुच्यते पापादिति कौशिक भाषितम् ॥ द्वादशाहं निमज्याप्सु सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ॥ ८३ ॥ मुच्येरन्नंहसः सर्वे महापातकिनो द्विजः ॥ त्रिसाहस्रं जपेन्मासं प्राणानायम्य वाग्यतः ॥ ८४ ॥ महापातक युक्तो वा मुच्यते महतो भयात् ॥ प्राणायामसहस्रेण ब्रह्महापि विशुध्यति ॥ ८५ ॥ षट्कृत्वस्त्वभ्यसेदूर्ध्वं प्राणापानौ समाहितः ॥ प्राणायामो भवेदेष सर्वपाप प्रणाशनः ॥ ८६ ॥ सहस्रमभ्यसेन्मासं क्षितिपः शुचितामियात् ॥ द्वादशाहं त्रिसाहस्रं जपेद्धि गोवधेः द्विजः ॥ ८७ ॥ अगम्यगमन स्तेयहननाभक्ष्यभक्षणे ॥ दशसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधयद्द्विज ॥ ८८ ॥ प्राणायामशतं कृत्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥ सर्वेषामेव पापानां संकटे सति शुद्धये ॥ ८९ ॥ सहस्रमभ्यसेन्मासं नित्य जापी वने वसन् ॥ उपवाससमंजप्यं त्रिसहस्रतदित्यृचम् ॥ ९० ॥

अभ्यास करता है तो यह प्राणायाम सब पापका नाशक हो जाता है ॥ ८६ ॥ जो महीनेतक सहस्रवार अभ्यास करे वह राजा शुद्ध हो जाता है, गोहत्या लगनेमें बारह दिनतक तीन सहस्र जपकरे ॥ ८७ ॥ अगम्यागमन करने, चोरी, अभक्ष्य भक्षणमें दशसहस्र गायत्री जप ब्राह्मणको शुद्ध करता है ॥ ८८ ॥ सौ प्राणायाम करनेसे सब पापोंसे छूट जाता है सब पापोंकी संकरताकी शुद्धिमें ॥ ८९ ॥ वनमें निवासकर सहस्र नित्य जपकर महीना व्यतीत करे, तीन सहस्र गायत्री जप उपवासके समान है ॥ ९० ॥

चौवीस सहस्र जप कृच्छ्र व्रतके समान है, चौंसठ सहस्र जप चान्द्रायण व्रतके समान है ॥ ९१ ॥ दोनों सान्ध्याओंमें प्राणायाम कर सौ सौ बार अभ्यास करे तो सब पाप क्षय हो जाते हैं ॥ ९२ ॥ जो जलमें निमज्जन कर सौवार गायत्रीजपकर सूर्यरूपा देवी का ध्यान करता है वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ९३ ॥ यह आपसे शान्ति शुद्धि आदिकी कल्पना भली प्रकारसे कही यह रहस्यसे भी रहस्य है इसको आप सदा गुप्त रखना ॥ ९४ ॥ यह संक्षेपसे सदाचारकी कल्पना कही इसके विधिपूर्वक आचरणसे माया दुर्गा प्रसन्न होती है ॥ ९५ ॥ नैमित्तिक और नित्य यथा विधि काम्य कर्म

विंशतिसाहस्रमभ्यस्तात्कृच्छ्रसंज्ञिता ॥ चतुष्षष्टि सहस्राणि चांद्रायणसमानि तु ॥ ९१ ॥ शतकृत्वोऽभ्यसेन्नित्यं प्राणानायम्य चतु सन्ध्ययोः ॥ तदित्यृचमवाप्नोति सर्वपापक्षयं परम् ॥ ९२ ॥ निमज्याप्सु जपेन्नित्यं शतकृत्वस्तदित्यृचम् ॥ ध्यायन्देवींसूर्यरूपां सर्वपापै प्रमुच्यते ॥ ९३ ॥ इति ते सम्यगाख्याताः शांतिशुद्ध्याादिकलपनाः ॥ रहस्यातिरहस्याश्च गोपनीयस्त्वया सदा ॥ ९४ ॥ इति संक्षेपत प्रोक्तः सदाचारस्य संग्रहः ॥ विधिनाचरणादस्य मायादुर्गाप्रसीदति ॥ ९५ ॥ नैमित्तिकं च नित्यं च काम्यं कर्म यथाविधि ॥ आचरे न्मनुजः सोऽयं भुक्तिमुक्तिफलाप्तिभाक् ॥ ९६ ॥ आचारः प्रथमो धर्मो धर्मस्य प्रभुरीश्वरी ॥ इत्युक्तसर्वशास्त्रेषु सदाचारफलम्महत् ॥ ९७ ॥ आचारवान्सदा पूता सदैवाचार वासुखी ॥ आचारवान्सदा धन्यः सत्यं सत्यं च नारद ॥ ९८ ॥ देवीप्रसादजनकं सदाचार विधानकम् ॥ यद्यपि शृणुयान्मर्त्यो महासम्पत्तिसौख्यभाक् ॥ ९९ ॥

आचरणकरनेसे मनुष्य भुक्ति मुक्तिके फलको प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥ आचारही प्रथम धर्म है धर्मकी अधिष्ठात्रीभगवती है, इस प्रकार सब शास्त्रोंमें आचारका बड़ा फल कहा है ॥ ९७ ॥ आचारवान् सदा पवित्र और आचारवान् सदा सुखी है अचारवान् सदा धन्य है, हे नारद ! यह सत्य २ है ॥ ९८ ॥ यह सदाचारका विधान देवीकी प्रसन्नता करनेवाला है जो मनुष्य इसको सुने वह महासम्पत्ति तथा सुखका भागी होता है ॥ ९९ ॥

सदाचारसे ही इस लोक और परलोकका सुख सिद्ध होता है सो यह आपसे वर्णन किया अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १०० ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सदाचाचरेण सिद्धेच्च ऐहिकामुष्मिकं सुखम् ॥ तदेव ते मयाप्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सदाचारनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ एकादशस्कन्धः समाप्तः ॥ ११ ॥

सार्धैंरामाब्धिनेत्रेंदु (१२४३॥) पद्यैर्व्यासकृतैः शुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्यैकादशः स्कन्ध ईरितः ॥ १ ॥

एक सहस्र दो सौ तैतालीस श्लोकोंमें एकादशस्कन्ध पूर्ण हुआ ।

दोहा--शिवाभवानी मायके, चरणकमल मन लाय । भाषा रुद्रस्कन्धकी बहुविधि लिखी बनाय ॥ १ ॥
पढहिं सुनहिं करिप्रेम जो, पावहिं मोद महान् । श्री देवी तिनके करहिं, नित नूतन कल्यान ॥ २ ॥
वसत रामगंगानिकट, नगरमुरादाबाद । गुण गावत जगदम्बके, जनज्वालापरसाद ॥ ३ ॥
गायत्रीसम द्विजनको, नहिं कोउ और उपास । तासे गायत्री जपहु, दोनों लोक विकास ॥ ४ ॥
गायत्रीही भगवती, देवीरूप लखाय । कही भागवत मध्यमें, ऋषि द्वैपायन गाय ॥ ५ ॥

शुभमस्तु

एकादश स्कन्ध समाप्त

इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते एकादशस्कन्धः समाप्तः

अथ श्रीमद्देवीभागवत भाषाटीकासमेते द्वादशस्कन्धः प्रारभ्यते



दोहा—श्रीजगदम्बा शारदा, कीजै आय सहाय ॥ एहि द्वादशस्कन्धकी, भाषा देहु बनाय ॥ १ ॥

नारदजी बोले हे प्रभो ! आपने सदाचार विधि और उसका सब पाप दूर करनेवाला बड़ा माहात्म्य वर्णन किया ॥ १ ॥ आपके मुखकमलसे निर्गत देवीकथामृत श्रवण किया और जो आपने चान्द्रायणादि व्रत कहे ॥ २ ॥ वह दुसाध्यसे हैं कारण कि कर्ताके साध्यरूप हैं साधारणोंके उपयोगी नहीं परन्तु इस समय जो शरीर धारियोंको सुखरूप हों ॥३॥ जो देवीकी प्रसन्नता करनेवाला सुखदायक अनुष्ठान हो हे सुरेश्वर ! कृपा करके हमसे वही वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ सदाचारकी विधिमें जो गायत्रीकी सिद्धि कही है उसमें मुख्य पुण्यरूप क्या है और कौन अधिक पुण्यदायक है ॥ ५ ॥ जो गायत्रीके वर्ण हैं

श्रीगणेशाय नमः ॥ नारद उवाच ॥ सदाचारविधिर्देव भवता वर्णितः प्रभो ॥ तस्याप्यतुलमाहात्म्यं सर्वपापविनाशनम् ॥ १ ॥ श्रुतं भवन्मुखांभोजच्युतं देवीकथामृतम् ॥ व्रतानि यानि चोक्तानि चांद्रायणमुखानिते ॥ २ ॥ दुःखसाध्यानि जानीमः कर्तृ साध्यानि तानि च ॥ तदस्मात्सांप्रतं यत्तु सुखसाध्यं शरीरिणाम् ॥३॥ देवीप्रसादजनकं सुखानुष्ठानसिद्धिदम् ॥ तत्कर्म वद मे स्वामिन्कृपापूर्वं सुरेश्वर ॥ ४ ॥ सदाचारविधौ यश्च गायत्रीविधिरीरितः ॥ तस्मिन्मुख्यतमं किं स्यात्किं वा पुण्याधिकप्रदम् ॥ ५ ॥ ये गायत्रीगता वर्णास्तत्त्वसंख्यास्त्वयेरिताः ॥ तेषां के ऋषयः प्रोक्ता कानि च्छंदांसि वै मुने ॥६॥ तेषां का देवताः प्रोक्ताः सर्वं कथय मे प्रभो॥महत्कौतूहलं मे च मानसे परिवर्तते ॥ ७ ॥ श्रीनारायण ॥ उवाच ॥ कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादनुष्ठानादिकं तथा ॥ गायत्रीमात्रनिष्ठस्तु कृतकृत्यो भवेद्द्विजः ॥ ८ ॥ संध्यासु चार्घ्यदानं च गायत्रीजपमेव च ॥ सहस्रत्रितयं कुर्वन्सुरैः पूज्यो भवेन्मुने ॥ ९ ॥ न्यासान्करोतु वा मा वा गायत्रीमेव चाभ्यसेत ॥ ध्यात्वा निर्व्याजया वृत्त्या सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ १० ॥

उतनेही आपने तत्व कथन किये हैं, उनके कौन ऋषि और कौन छन्द हैं ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! उनके कौन देवता हैं यह सब बात आप हमसे कहो हमारे मनमें इसका कौतूहल हो रहा है ॥ ७ ॥ श्रीनारायण बोले और अनुष्ठान करे बात करे केवल गायत्री मात्रकी निष्ठा करनेसे ही ब्राह्मण कृतकृत्य होजाता है ॥ ८ ॥ तीनों सन्ध्याओंमें अर्घ्यदान गायत्रीका जप तीन सहस्र करनेसे हे मुने ! वह देवताओंसे पूजित होता है ॥ ९ ॥ न्यास करे वा न करे निर्व्याज भक्तिसे सच्चिदानंदरूपिणी भगवतीका ध्यान करके गायत्रीका अभ्यास करे ॥ १० ॥

जिस गायत्रीके एक अक्षरकी सिद्धि जो ब्राह्मण कर लेता है उसकी स्पर्धा हरि, शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र और अग्नि करते हैं ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मन् ! अब गायत्रीके वर्णोंके ऋष्यादि छन्द देवता क्रमसे कहते हैं सुनो ॥ १२ ॥ वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, शुक्र, कण्व, पराशर, महा तेजस्वी विश्वामित्र, कपिल, महान्, शौनक ॥ १३ ॥ याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, तपोनिधि जमदग्नि, गौतम, मुद्गल, वेदव्यास लोमश ॥ १४ ॥ अगस्त्य, कौशिक, वत्स, पुलस्त्य, मांडूक, दुर्वासा, नारद, कश्यप ॥ १५ ॥ हे मुने ! यह क्रमसे (२४) वर्णोंके चौबीस ऋषि हैं. अब छन्दकहते हैं गायत्री, उष्णिक् अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, ॥ १६ ॥

यदक्षरैकसंसिद्धेः स्पर्धते ब्राह्मणोत्तमः ॥ हरिशंकर कंजोत्थसूर्यचंद्रहुताशनैः ॥ ११ ॥ अथातः श्रूयतां ब्रह्मन्वर्णऋष्यादिकांस्तथा ॥ छन्दांसि देवतास्तद्वत्क्रमात्तत्त्वानि चैव हि ॥ १२ ॥ वाम देवोऽत्रिर्वसिष्ठः शुक्रःकण्वःपराशरः ॥ विश्वामित्रो महातेजाः कपिलः शौनको महान् ॥ १३ ॥ याज्ञवल्क्या भरद्वाजो जमदग्निस्तपो निधिः ॥ गौतमो मुद्गलश्चैव वेदव्यासश्च लोमशः ॥ १४ ॥ अगस्त्यः कौशिको वत्सः पुलस्त्यो मांडुकस्तथा ॥ दुर्वासास्तपसां श्रेष्ठो नारदः कश्यपस्तथा ॥ १५ ॥ इत्येते ऋषयः प्रोक्ता वर्णानां क्रमशो मुने ॥ गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च ॥ १६ ॥ त्रिष्टुभं जगती चैव तथाऽतिजगती मता ॥ शक्कर्यतिशक्करी च धृतिश्चातिधृतिस्तथा ॥ १७ ॥ विराट्प्रस्तारपंक्तिश्च कृतिः प्रकृतिराकृतिः ॥ विकृतिः संकृतिश्चैवाक्षरपंक्तिस्तथैव च ॥ १८ ॥ भूर्भुवःस्वरिति च्छन्दस्तथा ज्योतिष्मती स्मृतम् ॥ इत्येतानि च छन्दांसि कीर्तितानि महामुने ॥ १९ ॥ दैवतानि शृणु प्राज्ञ तेषामेवानुपूर्वशः ॥ आग्नेयं प्रथमं प्रोक्तं प्राजापत्यं द्वितीयकम् ॥ २० ॥ तृतीयं च तथा सोम्यमीशाानं च चतुर्थकम् ॥ सावित्रं पञ्चमं प्रोक्तं षष्ठमादित्यदैवतम् ॥ २१ ॥ बार्हस्पत्यं सप्तमं तु मैत्रावरुणमष्टमम् नवमं भगदैवत्यं दशमं चार्यमेश्वरम् ॥ २२ ॥ गणेशमेकादशकं त्वाष्ट्रं द्वादशकं स्मृतम् ॥ पौष्णं त्रयोदशं प्रोक्तमैद्राग्नं च चतुर्दशम् ॥ २३ ॥

त्रिष्टुप, जगती, अति जगती, शक्करी, अतिशक्वरी, धृति, अतिधृति ॥ १७ ॥ विराट्प्रस्तार पंक्ति, कृति, प्रकृति, आकृति, संकृति, अक्षर पंक्तिः ॥ १८ ॥ भूः, भुवः, स्वः और ज्योतिष्मती यह क्रमसे (२४) छन्द कहे गये हैं ॥ १९ ॥ हे मुनीश्वर ! अब क्रमसे इनके देवता सुनो प्रथमके अग्नि, दूसरेके प्रजापति ॥ २० ॥ तीसरेके चन्द्रमा, चौथेके ईशान, पांचवेंके सविता, छठेके आदित्य ॥ २१ ॥ सातवेंके बृहस्पति, आठवेंके मित्रावरुण, नौवेंके भग, दशवेंके अर्यमा ॥ २२ ॥ ग्यारहवेंके गणेश, बारहवेंके त्वष्टा, तेरहवेंके पूषा, चौदहवेंके इन्द्र और अग्नि ॥ २३ ॥

पन्द्रहवेंके वायु, सोलहवेंके वामदेव, सत्रहवेंके मैत्रावरुण ॥ २४ ॥ अठारहवेंके विश्वेदेवा उन्नीसवेंके मातायें, बीसवेंके विष्णु, इक्कीसवेंके वसु ॥ २५ ॥ बाईसवेंके रुद्र, तेईसवेंके कुबेर, चौबीसवेंके अश्विनीकुमार ॥ २६ ॥ यह चौबीस वर्णोंके देवता कहे जो परमश्रेष्ठ और महापापके शोधक हैं ॥ २७॥ हे मुने ! जिनके श्रवणसे सांग जाप्यका फल होता है गायत्री ब्रह्मकल्पमें भिन्न देवता कहे हैं वह भी क्रमसे लिखते हैं अग्नि, वायु, सूर्य, कुबेर, यम, वरुण, बृहस्पति, पर्जन्य, इन्द्र, गन्धर्व, प्रोष्ठ, मित्रावरुण, त्वष्टा, वासव, मरुत्, सोम, अङ्गिरा, विश्वेदेवा, अश्विनीकुमार, पूषा, रुद्र, विद्युत् ब्रह्म, अदिति यह क्रमसे देवता हैं ॥ २८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषायां गायत्रीविचरो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीनारायण बोले हे नारद ! अब वर्णोंकी

वायव्यं पंचदशकं वामदेव्यं च षोडशम् ॥ मैत्रावरुणिदैवत्यं प्रोक्तं सप्तदशाक्षरम् ॥ २४ ॥ अष्टादशं वैश्व देवमूनविंशं तु मातृकम् वैष्णवं विंशतितमं वसुदैवतमीरितम् ॥२५॥ एकविंशतिसंख्याकं द्वाविंशं रुद्रदैवतम् ॥ त्रयोविंशं च कौबेरमाश्विने तत्त्वसंख्यकम् ॥ ॥ २६ ॥ चतुर्विंशतिवर्णानां देवतानां च संग्रहः ॥ कथितः परमश्रेष्ठो महापापैकशोधनः ॥ २७ ॥ यदाकर्णनमात्रेण सांगं जाप्यफलं मुने ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे गायत्रीविचारो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ वर्णानां शक्तयः काश्च ताः शृणुष्व महामुने ॥ वामदेवी प्रिया सत्या विश्वा भद्रा विलासिनी ॥ १ ॥ प्रभावती जया शांता कांता दुर्गा सरस्वती ॥ विद्रुमा च विशालेशा व्यापिनी विमला तथा ॥ २ ॥ तमोऽपहारिणी सूक्ष्मा विश्वयो निर्जया वशा ॥ पद्मालया पराशोभा भद्रा च त्रिपदा स्मृता ॥ ३ ॥ चतुर्विंशतिवर्णानां शक्तयः समुदाहृताः ॥ अतः परं वर्णवर्णान्व्याहरामि यथातथम् ॥ ४ ॥ चम्पका अतसी पुष्पसन्निभं विद्रुमं तथा ॥ स्फटिकाकारकं चैव पद्मपुष्पसमप्रभम् ॥ ५ ॥ तरुणादित्यसंकाशं शंखकुंदेन्दुसन्निभम् ॥ प्रवाल पद्मपत्राभं पद्मरागसमप्रभम् ॥ ६ ॥

शक्तियोंको क्रमसे सुनो वामदेवी प्रिया सत्या, विश्वा, भद्रा, विलासिनी ॥ १ ॥ प्रभावती, जया, शान्ता, कान्त, दुर्गा, सरस्वती, विद्रुमा, विश्वालेशा, व्यापिनी, विमला ॥ २ ॥ तमोपहारिणी सूक्ष्म, विश्वयोनि, जाया, वशा, पद्मालया, परा, शोभा, भद्रा, त्रिपदा ॥ ३ ॥ यह क्रमसे चौबीस अक्षरोंकी शक्ति हैं, अब चौबीस वर्णोंके रंग कहते हैं ॥ ४ ॥ चम्पक अलसीके फूलके समान मूँगेका रंग नवीन पल्लव वनस्फटिकके समान, पद्मरागमणिके समान ॥ ५ ॥ तरुण सूर्यके समान, शंख, कुंद, इन्द्र, प्रवाल, पद्मपत्रके समान, पद्मरागके समान ॥ ६ ॥

देे. भा.
॥ ३ ॥

इन्द्रनीलमणिके समान, मोती, कुंकुम, अंजन समान, लाल वैडूर्यके समान, शहदके समान ॥ ७ ॥ हलदी, कुंद, दूध, सूर्यकान्ति, शुकपुच्छ, शतपत्रके समान ॥ ८ ॥ केतकीपुष्पके समान, मल्लिका (चमेली) और कनेरके समान चौबीसोंके क्रमसे रंग जानने ॥ ९ ॥ यह वर्णोंके रंग महापापके शुद्ध करने वाले हैं, पृथ्वी, अप (जल;) तेज, वायु, आकाश ॥ १० ॥ गंध, रस, रूप, शब्द स्पर्श उपस्थ, गुद, चरण, हाथ, वाणी ॥ ११ ॥ प्राण, (नासा) जिह्वा, चक्षु, त्वचा श्रोत्र प्राण, अपान, व्यान. समान ॥ १२ ॥ यह क्रमसे सब वर्णोंके तत्त्व हैं अब क्रमसे वर्णोंकी मुद्रा कहते हैं ॥ १३ ॥ सन्मुख, सम्पुट, वितत विस्तृत

इन्द्रनीलमणिप्रख्यं मौक्तिकं कुंकुमप्रभम् ॥ अंजनाभं च रक्तं च वैदूर्यं क्षौद्रसन्निभम् ॥ ७ ॥ हारिद्रकुंददुग्धाभं रविकांतिसमप्रभम् ॥
शुकपुच्छनिभं तद्वच्छतपत्रनिभं तथा ॥ ८ ॥ केतकीपुष्पसंकाशं मल्लिकाकुसुमप्रभम् ॥ करवीरश्च इत्येते क्रमेण परिकीर्तिताः ॥ ९ ॥
वर्णाः प्रोक्ताश्च वर्णानां महापापविशोधनाः ॥ पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च ॥ १० ॥ गंधोरसश्च रूपं च शब्दः स्पर्शस्त
थैव च ॥ उपस्थं पायुपादं च पाणीवागपि च क्रमात् ॥ ११ ॥ प्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक् श्रोत्रं च ततःपरम् ॥ प्राणोऽपानस्तथा
व्यानः समानश्च ततः परम् ॥ १२ ॥ तत्त्वान्येतानि वर्णानां क्रमशः कीर्तितानि तु ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि वर्णमुद्राः क्रमेण तु ॥ १३ ॥
सुमुखं संपुटं चैव विततं विस्तृतं तथा ॥ द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुः पंच मुखं तथा ॥ १४ ॥ षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकांजलिकं
तथा ॥ शकटं यमपाशं च ग्रथितं सन्मुखोन्मुखम् ॥ १५ ॥ विलंबम्मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वाराहकम् ॥ सिंहाक्रांतं महाक्रांतं मुद्गरं
पल्लवं तथा ॥ १६ ॥ त्रिशूलयोनी सुरभिश्चाक्षमाला च लिंगकम् ॥ अंबुजं च महामुद्रास्तुर्यरूपाः प्रकीर्तिताः ॥ १७ ॥ इत्येताः कीर्तिता
मुद्रा वर्णानां ते महामुने ॥ महापापक्षयकराः कीर्तिदा कांतिदाः मुने ॥ १८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

एकमुख, द्विमुख, त्रिमुख चतुर्मुख, पंचमुख, ॥ १४ ॥ षणमुख, अधोमुख, व्यापक, अंजली, शकट, यमपाशक, ग्रथित, सन्मुख, उन्मुख, ॥ १५ ॥ विलम्ब, मुष्टिके, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहा क्रान्त; महाक्रान्त, मुद्गर, पल्लव ॥ १६ ॥ त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिंग, अंबुज (कमल) यह महा मुद्रा गायत्रीके चतुर्थ चरणरूप कही हैं ॥ १७ ॥ हे महामुने ! यह वर्णोंकी मुद्रा कही यह महा पापनाशिनी कीर्ति और कान्ति देती है ॥ १८ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

नारदजी बोले, हे स्वामिन् ! हे सब जगत्के प्रभो ! हे चौसठ कलाके ज्ञाता, योग जानने वालोंमें श्रेष्ठ ! यह मुझको संदेह है कि पातकोंसे ॥ १ ॥ किस पुण्यसे छूटकर ब्रह्म हुआ जाता है देह देवतारूप और विशेष कर मंत्ररूप है ॥ २ ॥ उस कर्म और विधिपूर्वक न्यासके जाननेकी इच्छा करता हूं, हे प्रभो ! ऋषि, छन्द देवता और विधिपूर्वक ध्यान कहो ॥ ३ ॥ श्रीनारायण बोले एक परम गुह्य गायत्रीकवच है जिसके पढ़ने और धारण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ४ ॥ और सब कामनाओंको प्राप्तहो देवीरूप होजाता है, इस गायत्री कवचके ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ॥ ५ ॥ ऋषि हैं हे नारद ! ऋक्, साम, अथर्व छन्द हैं, ब्रह्मरूपा देवता और गायत्री परमा कला है ॥६॥ तत् पदबीज, भर्गशक्ति धियः कीलक और मोक्षमें इसका विनियोग है ॥ ७ ॥ प्रथमके

नारद उवाच ॥ स्वामिन्सर्वजगन्नाथ संशयोऽस्ति मम प्रभो ॥ चतुः षष्टिकलाभिज्ञ पातकाद्योगविद्वर ॥१॥ मुच्यते केन पुण्येन ब्रह्मरूपः कथं भवेत् ॥ देहश्च देवतारूपो मन्त्ररूपो विशेषतः ॥२॥ कर्म तच्छ्रोतुमिच्छामि न्यास च विधिपूर्वकम् ॥ ऋषिश्छंदोऽधिदैवं च ध्यानं च विधिवत्प्रभो ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ अस्त्येकं परमं गुह्यं गायत्रीकवचं तथा ॥ पठनाद्धारणान्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४॥ सर्वान्कामानवाप्नोतिदेवीरूपश्च जायते ॥ गायत्री कवचस्यास्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ५ ॥ ऋषयो ऋग्यजुः समाथर्वश्छन्दांसि नारद ॥ ब्रह्म रूपा देवतोक्ता गायत्री परमा कला ॥ ६ ॥ तद्बीजभग इत्येषा शक्तिरुक्ता मनीषिभिः ॥ कीलकं च धियः प्रोक्तं मोक्षर्थं विनियोजनम्॥७॥चतुर्भिर्हृदयंप्रोक्तंत्रिभिर्वर्णैः शिरः स्मृतम् ॥ चतुर्भिः स्याच्छिखा पश्चात्त्रिभिस्तु कवचं स्मृतम् ॥८॥ चतुर्भिर्नेत्र मुद्दिष्टं चतुर्भिः स्यात्तदस्त्रकम् ॥ अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकाभीष्टदायकम् ॥ ९ ॥ मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्ष्णैर्युक्तामिदुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् ॥ गायत्रीं वरदाभयांकुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं शंखचक्रमथारविंदयुगलंहस्तैर्वहंती भजे॥ १० ॥ गायत्री पूर्वतः पातु सावित्री पातु दक्षिणे ॥ब्रह्मसंध्या तु मे पश्चादुत्तरायां सरस्वती ॥ ११ ॥

चार अक्षरोंसे हृदय, तीनसे शिर, चारसे शिखा, तीनसे कवच ॥ ८ ॥ फिर चारसे नेत्र और चार अक्षरोंसे अस्त्र क्रिया करे, इस प्रकार २४ अक्षर हुए, अब साधकको सब अभीष्ट देनेवाला ध्यान कहते हैं ॥ ९॥ मोती, मूँगे, सुवर्ण, नीलमणि; उज्ज्वल छायायुक्त प्रत्येक मुखमें तीन २ नेत्र ऐसे पांच मुखयुक्त रत्नके मुकुटमें चन्द्रमा धारण किये २४ तत्त्ववर्णस्वरूपिणी वरदायनी ऊर्ध्व हाथोंमें दो कमल, उससे नीचेके करोंमें चक्र, शंख उससे नीचेकेमें रज्जु, कपाल उससे नीचेकेमें पाश, अंकुश, उससे नीचेके हाथोंमें अभयवर धारण किये गायत्री देवीको भजन करता हूं ॥ १० ॥ पूर्वसे गायत्री, दक्षिणसे सावित्री पीछेसे

ब्रह्माद्वारा आराधना की हुई संध्या, उत्तरसे सरस्वती रक्षा करे ॥ ११ ॥ पार्वती अग्निकोणमें, यातुधानभयंकरी नैर्ऋत्य कोणमें रक्षा करे ॥ १२ ॥ पवमान विलासिनी वायव्यमें, रुद्ररूपिणी रुद्राणी ईशान कोणमें ॥ १३ ॥ ऊर्ध्व दिशामें ब्रह्माणी नीचे वैष्णवी, इस प्रकारसे सब अंग और दशों दिशामें भुवने श्वरी रक्षा करे ॥ १४ ॥ तत् पदचरणोंकी, सवितुः जंघाओंकी, वरेण्यम् कमरको; भर्ग नाभिकी ॥ १५ ॥ देवस्य हृदयकी, धीमहि गालोंकी धियः पदनेत्रोंकी यः ललाटकी ॥ १६ ॥ नःपदशिरकी, प्रचोदयात् शिखाकी, फिर तत् शिरकी, सकार भालकी ॥ १७ ॥ विकार नेत्रोंकी, तुकार कपोलोंकी वकार नाशि

पार्वती मे दिशं रक्षेत्पावकी जलशायिनी ॥ यातुधानी दिशं रक्षेद्यातुधानभयंकरी ॥ १२ ॥ पावमानी दिशं रक्षेत्पवमानविलासिनी ॥ दिशं रौद्री च मे पातु रुद्राणी रुद्ररूपिणी ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद्वैष्णवी तथा ॥ एवं दशदिशो रक्षेत्सर्वांगं भुवनेश्वरी ॥ १४ ॥ तत्पदं पातु मे पादौ जंघे मे सवितुः पदम् ॥ वरेण्यं कटिदेशे तु नाभिं भर्गस्तथैव च ॥ १५ ॥ देवस्य मे तद्धृदयं धीमहीति च गल्लयोः ॥ धियः पदं च मे नेत्रे यः पदं मे ललाटकम् ॥ १६ ॥ नः पातु मे पदं मूर्ध्नि शिखायां मे प्रचोदयात् ॥ तत्पदं पातु मूर्धानं सकारः पातु भालकम् ॥ १७ ॥ चक्षुषी तु विकारार्णस्तुकारस्तु कपोलयोः ॥ नासापुटं वकारार्णो रेकारस्तु मुखे तथा ॥ १८ ॥ णिकार ऊर्ध्वमोष्ठन्तु यकारस्त्वधरोष्ठकम् ॥ आस्यमध्ये भकारार्णो गोंकारश्चुबुगे तथा ॥ १९ ॥ देकारः कण्ठदेशे तु वकारः स्कंध देशकम् ॥ स्यकारोदक्षिणं हस्तं धीकारो वामहस्तकम् ॥ २० ॥ मकारो हृदयं रक्षेद्धिकार उदरे तथा ॥ धिकारो नाभिदेशे तु योकारस्तु कटिं तथा ॥ २१ ॥ गुह्यं रक्षस्तु योकार ऊरू द्वौ नः पदाक्षरम् ॥ प्रकारोजा तुनी रक्षेच्चोकारो जंघदेशकम् ॥ २२ ॥ दकारं गुल्फदेशे तु यकारः पदयुग्मकम् ॥ तकारव्यंजनं चैव सर्वांगे मे सदाऽवतु ॥ २३ ॥ इदं तु कवचं दिव्यं बाधाशतविनाशनम् ॥ चतुःषष्टिकलाविद्यादायकं मोक्षकारकम् ॥ २४ ॥

काकी, रेकार मुखकी ॥ १८ ॥ णिकार ऊपरके होठकी, नीचेकी होठकी, भकार मुख मध्यकी गोकार दाढीकी ॥ १९ ॥ देकार कण्ठदेशकी, वकार कन्धोंकी, स्यकार दाहिने हाथकी, धीकार वाम हाथकी ॥ २० ॥ मकार हृदयकी; हिकार पेटकी, धिकार नाभिकी, योकार कटिकी ॥ २१ ॥ योकार गुह्यस्थानकी, नः दोनों ऊरुओंकी प्र जानुकी चो जंघाकी ॥ २२ ॥ दकार गुल्फोंकी, या दोनों चरणोंकी, व्यंजन मेरे सर्वांगकी रक्षा करे ॥ २३ ॥ यह दिव्य कवच सैकडों बाधा दूर करता है चौसठ कलायुक्त विद्या और मोक्षदायक है ॥ २४ ॥

इसके धारणसे सब पापोंसे छूटकर पर ब्रह्मको प्राप्त होता है इसके पठन श्रवणसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ इनि श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥ नारदजी बोले हे भगवन् ! मैंने देवदेवेश भूतभव्य जगत्के प्रभु ! मैंने दिव्य गायत्री मंत्रका विग्रह और कवच सुना ॥ १ ॥ अब गायत्री हृदयके सुननेकी इच्छा है जिसके धारणसे गायत्री जपका समस्त पुण्य प्राप्त होता है ॥२॥ श्रीनारायण बोले हे नारद ! अथर्वमें देवीका हृदय लिखा है वह रहस्यका भी रहस्य तुमसे कहता हूं ॥ ३ ॥ वह विराट् रूप महादेवी गायत्री वेदमाता है उसका ध्यान कर अंगोंमें इन देवमाताओंका ध्यान

मुच्यते सर्वपापेभ्यः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापिगा सहस्रफलं लभेत् ॥ २५ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादश स्कन्धे गायत्रीमन्त्र कवचं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ भगवन्देवदेवेश भूतभव्यजगत्प्रभो ॥ कवचं च श्रुतं दिव्यगा यत्रीमन्त्रविग्रहम् ॥ १ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि गायत्रीहृदयं परम् ॥ यद्धारणाद्भवेत्पुण्यं गायत्री जपतोऽखिलम् ॥ २ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ देव्याश्च हृदयं प्रोक्तं नारदाथर्वणस्फुटम् ॥ तदेवाहं प्रवक्ष्यामि रहस्यातिरहस्यकम् ॥ ३ ॥ विराड्रूपां महादेवीं गायत्रीं वेद मातरम् ॥ ध्यात्वा तस्यास्त्वथांगेषु ध्यायेदेवताश्च देवताः ॥ ४ ॥ पिंडब्रह्मांडयोरैक्याद्भावयेत्स्वतनौ तथा ॥ देवीरूपे निजे देहे तन्म यत्वाय साधकः ॥ ५ ॥ नादेवोऽभ्यर्चयेद्देवमिति वेदविदो विदुः ॥ ततोऽभेदाय काये स्वे भावयेद्देवता इमाः ॥ ६ ॥ अथ तत्संप्र वक्ष्यामि तन्मयत्वमथो भवेत् ॥ गायत्रीहृदयस्याऽस्याऽप्यहमेव ऋषिः स्मृतः ॥ ७ ॥ गायत्रीच्छन्द उद्दिष्टं देवता परमेश्वरी पूर्वोक्तेन प्रकारेण कुर्यादंगानि षट्क्रमात् ॥ आसने विजने देशे ध्यायेदेकाग्रमानसः ॥ ८ ॥

करे ॥ ४ ॥ जब विराट्रूपमें पिण्ड ब्रह्माडकी एकतासे अपने देशको गायत्रीरूप देखे तो अपने देहमें गायत्रीकी भावना करे जिससे तन्मय होजाय ॥ ५ ॥ वेदवित् कहते हैं अदेव देवकी पूजा न करे अभेद होनेके निमित्त अपने शरीर में इन देवताओंकी भावना करे ॥ ६ ॥ जिससे तन्मय होजाय वह मैं तुमसे कहता हूं इस गायत्री हृदयका मैं नारायण ऋषि हूं ॥ ७ ॥ गायत्री छन्द परमेश्वरी देवता पूर्वोक्त प्रकारसे षडङ्ग न्यास करे, विजन स्थानमें आसन लगाय एकाग्र मनसे ध्यान करे ॥ ८ ॥

अर्थन्यास कहते हैं द्यौः मस्तकमें, दन्तपंक्तिमें अश्विनीकुमार, दोनों सन्ध्या ओष्ठोंमें, मुखमें अग्नि, जिह्वामें सरस्वती, ग्रीवामें बृहस्पति, स्तनोंमें आठों वसु, दोनों भुजाओंमें मरुत्, हृदयमें पर्जन्य उदरमें आकाश नाभीमें अन्तरिक्ष, कटिमें इन्द्राग्नी' जंघा विज्ञानघन प्रजापति ऊरुओंमें कैलास और मलया चल, जानुओंमें विश्वदेव, जंघामें कौशिक, इन्द्र गुह्यमें, दोनों अयन ऊरुओंमें, पितर चरणोंमें, पृथ्वी अंगुलियोंमें वनस्पति रोमोंमें, ऋषि नखोंमें, मुहूर्त अस्थियोंमें ग्रह रुधिर मांसमें, छहों ऋतु निमेषमें, संवत्सर अहोरात्रमें, आदित्य, चन्द्रमा, ऐसी श्रेष्ठ दिव्य सहस्र नेत्रवाली गायत्रीको मैं शरण होता हूं, ॐ तत्सवितुर्वरेण्याय श्रेष्ठतेजके निमित्त नमस्कार है। ॐ उस पूर्वदिशामें उदय होनेवालेके निमित्त प्रणाम है। प्रभातके आदित्यके निमित्त प्रणाम है प्रभात कालके सूर्यकी प्रतिष्ठाको प्रणाम है। प्रभातमें

अथार्थन्यासः द्यौर्मूर्ध्नि दैवतम् ॥ दन्तपंक्तावश्विनौ ॥ उभे संध्ये चोष्ठौ ॥ मुखमग्निः ॥ जिह्वा सरस्वती ॥ ग्रीवायां तु बृहस्पतिः ॥ स्तनयोर्वसवोष्टौ ॥ बाह्वोर्मरुतः ॥ हृदये पर्जन्यः ॥ आकाशमुदरम् ॥ नाभावन्तरिक्षम् ॥ कट्योरिंद्राग्नी ॥ जघने विज्ञान घनः प्रजापतिः ॥ कैलासमलये ऊरू ॥ विश्वेदेवा जान्वोः ॥ जंघायां कौशिकः ॥ गुह्यमयने ॥ ऊरू पितरः ॥ पादौ पृथिवी ॥ वनस्पतयोऽगुलीषु ॥ ऋषयो रोमाणि ॥ नखानि मुहूर्तानि ॥ अस्थिसु ग्रहाः ॥ असृङ्मांसमृतवः ॥ संवत्सरा वै निमिषम् ॥ अहोरात्रावादित्यश्चंद्रमाः ॥ प्रवरां दिव्यां गायत्रीं सहस्रनेत्रां शरणमहं प्रपद्ये ॥ ॐ तत्सवितुर्वरेण्याय नमः ॥ ॐ तत्पूर्वा जयाय नमः ॥ तत्प्रातरादित्याय नमः तत्प्रातरादित्यप्रतिष्ठाय नमः ॥ प्रातरधीयानो रात्रि कृतं पापं नाशयति ॥ सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशायति ॥ सांयं प्रातरधीयानो अपापो भवति ॥ सर्वतीर्थेषु स्नातो भवति ॥ सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति ॥ अवाच्यवचनात्पूतो भवति ॥ अभक्ष्यभक्षणात्पूतो भवति ॥ अभोज्यभोजनापूतोभवति ॥ अचोष्यचोषणात्पूतो भवति ॥ असाध्यसाधनापूतो भवति ॥ दुष्प्रतिग्रहशतसहस्रात्पूतो भवति ॥

स्मरण किये सविताराात्रिके पापको दूर करते हैं। संध्यामें स्मरण किये हुए दिनके पापको दूर करते हैं। सायंप्रातः स्मरण करनेसे मनुष्य पापरहित होता है। वह पुरुष मानों सब तीर्थोंमें स्नानकर चुका वह सब देवताओंसे जाना जाता है। अवाच्य वचन कहनेके दोषोंसे पवित्र हो जाता है। अभक्ष्य भक्षण करनेसे पवित्र होता है, अभोज्य भोजनसे पवित्र होता है अचोष्य वस्तु चूसनेसे पवित्र होता है। असाध्य साधनसे पवित्र होता है सहस्र नष्ट दान लेनेसे पवित्र होता, सब प्रतिग्रहोंसे पवित्र होता, पंक्तिदूषणोंसे पवित्र होता, अनृत वचन कहनेके पापसे छूटता, अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी होता, इस गायत्री हृदयके पाठसे

सहस्र यज्ञका फल मिलता है (६००००) साठ सहस्र गायत्री जपका फल होता है, आठ ब्राह्मणोंको भली प्रकार ग्रहण करावे तो उसको सिद्धि होती है, जो ब्राह्मण पवित्र होकर प्रातःकालमें इसको नित्य अध्ययन करता है वह सब पापसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें गमन करता है ऐसा भगवान् नारायणने कहा है ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भषायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ नारदजी बोले हे भक्तोंपर दया करनेवाले सर्वज्ञ ! आपने पापनाशक गायत्रीका हृदय कथन किया अब गायत्रीका स्तोत्र कहिये ॥ १ ॥ नारायण बोले हे आदि शक्ति जगत्‌की माता ! भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाली सर्व व्यापक अनन्त श्री दोनों संध्यारूप ! आपको प्रणाम है ॥ २ ॥ आप ही संध्या गायत्री सरस्वती सावित्री ब्राह्मी वैष्णवी रौद्री रक्त श्वेत श्याम

सर्वप्रतिग्रहात्पूतो भवति पंक्तिदूषणात्पूतो भवति ॥ अनृतवचनात्पूतो भवति ॥ अथाऽब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति ॥ अनेनहृदयेनाधीतेन क्रतुसहस्रेणेष्टं भवति ॥ षष्टिशतसस्रगायत्र्या जप्यानि फलानि भवंति ॥ अष्टौ ब्राह्मणान्सम्यग्ग्राहयेत् तस्य सिद्धिर्भवति ॥ य इदं नित्यमधीयानो ब्राह्मणः प्रातः शुचिः सर्वपापैः प्रमुच्यत इति ॥ ब्रह्मलोके महीयते ॥ इत्याह भगवाञ्श्रीनारायणः ॥ इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे गायत्रीहृदयं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ भक्तानुकंपिन्सर्वज्ञ हृदयं पापनाशनम् ॥ गायत्र्याः कथितं तस्माद्गायत्र्याः स्तोत्रमीरय ॥१॥ श्रीनारायण उचाव ॥ आदिशक्ते जगन्मातर्भक्तानुग्रहकारिणि ॥ सर्वत्र व्यापिकेऽनंते श्रीसंध्ये ते नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥ त्वमेव संध्या गायत्री सावित्री च सरस्वती ॥ ब्राह्मी च वैष्णवी रौद्री रक्ता श्वेता सितेतरा ॥ ३ ॥ प्रातर्बाला च मध्याह्ने यौवनस्थाभवेत्पुनः वृद्धा सायं भगवती चिंत्यते मुनिभिः सदा ॥ ४ ॥ हंसस्था गरुडारूढा तथा वृषभवाहिनी ॥ ऋग्वेदाध्यायिनोमूमौ दृश्यते या तपस्विभिः ॥ ५ ॥ यजुर्वेदं पठंती च अंतरिक्षे विराजते ॥ सा सामगापि सर्वेषु भ्राम्यमाणा तथा भुवि ॥ ६ ॥ रुद्रलोकं गता त्वं हि विष्णुलोकनिवासिनी ॥ त्वमेव ब्रह्मणो लोकेऽमर्त्यानुग्रहकारिणी ॥ ७ ॥

हो ॥ ३ ॥ प्रभातमें बाला, मध्याह्नमें युवा, साममें वृद्धा होती हो. इस प्रकार मुनिजन सदा तुम्हारी चिन्तना करते हैं ॥ ४ ॥ हंसपर गरुड़पर वृषभपर चढी ऋग्वेदकी पढनेवाली जो तपस्वियोंको भूमिपर दीखती है ॥ ५ ॥ और यजुर्वेदका पाठ करती हुई अन्तरिक्षमें विराजमान होती है वह सब मैं सामगाती भूमिमें भ्रमण करती है ॥ ६ ॥ तुम ही रुद्रलोकमें प्राप्त होकर विष्णुलोकमें निवास करती हो तुम ही ब्रह्मलोकमें ही मनुष्योंपर अनुग्रह करती हो ॥ ७ ॥

सप्त ऋषियोंको प्रसन्न करनेवाली बहुत वर देनेवाली माया शिव और शक्ति हाथ नेत्रसे उत्पन्न उन्हींके अश्रु औ पसीनेसे उद्भव ॥ ८ ॥ आनन्दकी प्रगट करनेवाली दुर्गा दश प्रकार पढी जाती है वरेण्या वरदा वरिष्ठा वरवर्णिनी ॥ ९ ॥ गारीष्ठा वराहा, वरारोहा, नीलगंगा संध्या, सदा भोग मोक्ष देनेवाली ॥ १० ॥ मर्त्यलोकमें भागीरथीरूप, पातालमें भोगवती, स्वर्गमें सीता इस प्रकार त्रिलोकवाहिनी देवी तीनों स्थानमें निवास करती है ॥ ११ ॥ भूलोकमें लोकधारिणी भूमि तुम ही हो भुवर्लोकमें वायुशक्ति रूप और स्वर्लोकमें सेजोंकी निधि तुम हो ॥ १२ ॥ महर्लोक महासिद्धिरूप जनलोकमें जननी तपो लोकमें तपस्विनी और सत्यलोकमें सत्यवाक् तुमही हो ॥ १३ ॥ विष्णुलोकमें कमला ब्रह्मलोक देनेवाली गायत्री और रुद्रलोकमें गौरी शिवके अर्धांग

सप्तर्षिप्रीतिजननी माया बहुवरप्रदा ॥ शिवयोः करनेत्रोत्था ह्यश्रु स्वेदसमुद्भवा ॥ ८ ॥ आनंदजननी दुर्गा दशधा परिपठ्यते ॥ वरेण्या वरदा चैव वरिष्ठा वरवर्णिनी ॥ ९ ॥ गरिष्ठा च वराहा च वरारोहा च सप्तमी ॥ नीलगंगा तथा संध्या सर्वदा भोगमोक्षदा ॥ १० ॥ भागीरथी मर्त्यलोकेपाताले भोगवत्यपि ॥ त्रिलोकवाहिनी देवी स्थान त्रयनिवासिनी ॥ ११ ॥ भूर्लोकस्था त्वमेवासि धरित्री शोकधा रिणी ॥ भुवो लोकेवायुशक्तिः स्वर्लोके तेजसां निधिः ॥१२॥ महर्लोके माहासिद्धिर्जनलोके जनेत्यपि ॥ तपस्विनी तपोलोके सत्यलोके तु सत्यवाक् ॥ १३ ॥ कमला विष्णुलोके च गायत्री ॥ ब्रह्मलोकदा रुद्रालोके स्थिता गौरी हरार्धांगनिवासिनी ॥ १४ ॥ अहमो महतश्चैव प्रकृतिस्त्वं हि गीयसे ॥ साम्यावस्थात्मिका त्वं हि शबलब्रह्म रूपिणी ॥ १५ ॥ ततः परापराशक्ति परमा त्वं हि गीयसे इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्त्रिशक्तिदा ॥ १६ ॥ गंगा च यमुना चैव विपाशा च सरस्वती ॥ सरयूर्देविका सिंधुर्नर्मदेवरावती तथा ॥ १७ ॥ गोदावरी शतद्रूश्च कावेरी देवलोकगा ॥ कौशिकी चंद्रभागा च वितस्ता च सरस्वती ॥ १८ ॥ गंडकी तापिनी तोया गोमती वेत्रवत्यपि ॥ इडा च पिंगला चैव सुषुम्ना च तृतीयका ॥ १९ ॥

निवास करनेवाली तुमही हो ॥ १४ ॥ अहं महान् प्रकृति रूपसे तुमही गाई जाती हो, साम्यावस्थात्मिका शबल ब्रह्मरूपिणी तुमही हो ॥ १५ ॥ उससे परे परा परमाशक्ति तुमही गाई जाती हो. इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति ज्ञानशक्ति तीन शक्ति देनेवाली तुमही हो ॥ १६ ॥ गंगा यमुना विपाशा सरस्वती सरयू देविका सिन्धु नर्मदा ऐरावती ॥ १७ ॥ गोदावरी शतद्रु कावेरी देवलोकगामिनी कौशिकी चन्द्रभागा वितस्ता सरस्वती ॥ १८ ॥ गंडकी तपनी करतोया गोमती वेत्रवती तुमहो इडा पिंगला सुषुम्ना ॥ १९ ॥

गांधारी हस्तजिह्वा पूषा अपूषा अलंबुषा कुहू शंखिनी प्राणवाहिनी ॥ २० ॥ यह शरीरमें स्थित नाडीस्वरूप तुमही हो ऐसा पुरातन आचार्य कहते हैं, हृदय कमलमें स्थित प्राणशक्ति कंठमें स्थित स्वमनायका ॥ २१ ॥ तालुमें सदाधारा, भौंहके मध्यमें बिंदुमालिनी, मूलाधारमें कुंडलिनी शक्ति केशमूलमें व्यापिनी ॥ २२ ॥ शिखाके मध्य अर्थात् ज्ञानकलामें आसन करनेवाली, शिखोके अग्रमें मनोन्मनी तुमही हो. बहुत कहनेसे क्या है त्रिलोकीमें जो कुछ है ॥ २३ ॥ हे महादेवि ! वह सब तुमही हो, श्री और सन्ध्यारूप तुमको प्रणाम है, सन्ध्याके समय यह स्तोत्र पढ़नेसे महापुण्य होता है ॥ २४ ॥ यह महापापका शान्त करने और महासिद्धिके देनेवाला है, जो सावधान हो सन्ध्याकालमें यह स्तोत्र पढते हैं ॥ २५ ॥ अपुत्रको पुत्रकी प्राप्ति धनार्थिको

गांधारी हस्तिजिह्वा च पूषा पूषा तथैव च ॥ अलंबुसा कुहूश्चैव शंखिनी प्राणवाहिनी ॥ २० ॥ नाडी च त्वं शरीरस्था गीयसे प्राक्तनै र्बुधैः ॥ हृत्पद्मस्था प्राणशक्तिः कंठस्थास्वप्ननायिका ॥ २१ ॥ तालुस्था त्वं सदाधारा बिंदुस्था बिंदुमालिनी मूले तु कुंडलीशक्ति र्व्यापिनी केशमूलगा ॥ २२ ॥ शिखामध्यासना त्वं हि शिखाग्रे तु मनोन्मनी ॥ किमन्यद्बहुनोक्तेन यत्किंचिज्जगतीत्रये ॥ २३ ॥ तत्सर्वं त्वं महादेवि श्रिये संध्ये नमोऽस्तु ते ॥ इतीदं कीर्तितं स्तोत्रं संध्यायां बहुपुण्यदम् ॥ २४ ॥ महापापप्रशमनं महासिद्धि विधायकम् ॥ इदं च कीर्तयेत्स्तोत्रं संध्याकाले समाहितः ॥ २५ ॥ अपुत्रः प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनप्रा नुयात् ॥ सर्वतीर्थतपोदा नयज्ञयोगफलं लभेत् ॥ २६ ॥ भोगान्भुक्त्वा चिरंकालमन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ तपस्विभिः कृतं स्तोत्रं स्नानकाले तु यः पठेत् ॥२७॥ यत्र कुत्र जले मग्नः संध्या मज्जनजं फलम् ॥ लभते नात्र संदेहः सत्यं च नारद ॥२८॥ शृणुयाद्योऽपि तद्भक्त्या स तु पापात्प्र मुच्यते ॥ पीयूषसदृशं वाक्यं संध्योक्तं नारदेरितम् ॥२९॥ इति श्रीदेवीभागवते म० द्वादशस्कंधे गायत्रीस्तोत्रं नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥

धन मिलता है, सब तीर्थ तप दान यज्ञ योगका फल मिलता है ॥ २६ ॥ वह चिरकाल भोग भोगकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है तपस्वियोंका किया स्तोत्र जो स्नानकालमें पढते हैं ॥२७॥ जहां कहीं जलमें स्नान करे सन्ध्याके मज्जनका फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं हे नारद ! यह सत्य है ॥ २८ ॥ जो भक्तिसे सुने वह सब पापोंसे छूट जाता है हे नारद ! मैंने यह स्तोत्र तुमसे कहा सन्ध्याके उद्देशसे अमृतके समान है ॥ २९ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषायां गायत्री स्तोत्रं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दे. भा. नारदजी बोले हे भगवन् ! सब धर्मोंके जाननेवाले शास्त्रमें पण्डित आपके मुखसे श्रुति स्मृति पुराणोंका रहस्य सुना ॥ १ ॥ अब जिससे सब पाप
॥ ७ ॥ हारिणी विद्याकी प्रवृत्ति होती है जिससे ब्रह्मविज्ञान और मोक्षका साधन होता है ॥ २ ॥ किससे ब्राह्मणोंकी गति और किससे मृत्युका साधन होता है हे
पद्मलोचन किसके द्वारा दोनों लोकका साधन प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ वह आदिसे आप सब वर्णन कीजिये । श्रीनारायण बोले हे महाभाग ! धन्य हो
तुमने भली बात पूँछी ॥ ४ ॥ सुनो मैं यत्न से गायत्रीके एक सहस्र आठ नामोंको वर्णन करता हूं जो शुभ दिव्य और सम्पूर्ण पापोंके नाशक हैं ॥ ५ ॥
जो सृष्टिकी आदिमें पूर्वमें भगवान्ने कहे सो मैं आपसे सब कहता हूं, इन १००८ नामोंके ब्रह्मऋषि ॥ ६ ॥ अनुष्टुप्छन्द, गायत्रीदेवी, हल अक्षर बीज

नारद उवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणानां रहस्यं त्वन्मुखाच्छ्रुतम् ॥ १ ॥ सर्वपापहरं देव येन विद्या
प्रवर्तते ॥ केन वा ब्रह्मविज्ञानं किं नु वा मोक्षसाधनम् ॥ २ ॥ ब्राह्मणानां गतिः केन केन वा मृत्यु नाशनम् ॥ ऐहिकामुष्मिकफलं केन
वा पद्मलोचन ॥ ३ ॥ वक्तुमर्हस्यशेषेण सर्वं निखिलमादितः ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ साधु साधु महाप्राज्ञ सम्यक् पृष्टं त्वयाऽनघ
॥ ४ ॥ शृणु वक्ष्यामि यत्नेन गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥ नाम्नां शुभानां दिव्यानां सर्वपापविनाशनम् ॥५॥ सृष्ट्यादौ यद्भगवता पूर्वं प्रोक्तं
ब्रवीमि ते ॥ अष्टोत्तरसहस्रस्य ऋषिर्ब्रह्मा प्रकीर्तितः ॥ ६ ॥ छन्दोऽनुष्टुप्तथा देवी गायत्रीं देवता स्मृता ॥ हलोबीजानि तस्यैव स्वराः
शक्तय ईरिताः ॥ ७ ॥ अंगन्यासकरन्यासावुच्येते मातृकाक्षरैः ॥ अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै ॥ ८ ॥ रक्तश्वेतहिरण्य
नीलधवलैर्युक्तां त्रिनेत्रोज्ज्वलां रक्तां रक्तनवस्रजं मणिगणैर्युक्तां कुमारीमिमाम् ॥ गायत्रीं कमलासनां करतलव्यानद्धकुंडांबुजां पद्माक्षी
च वरस्रजं च दधतीं हंसाधिरूढां भजे ॥९॥ अचिंत्यलक्षणाव्यक्ताप्यर्थमातृमहेश्वरी ॥ अमृतार्णवमध्यस्थाप्यजिता चापराजिता ॥ १० ॥

और और स्वरशक्तियें हैं ॥७॥ मातृका अक्षरों से अंगन्यास करन्यास होता है अब साधकोंके हितके निमित्त ध्यान कहता हूं ॥ ८ ॥ लाल श्वेत हिरण्य
भा.टी.द्वा. नील धवल वर्णके मणिगणोंसे युक्त तीनों नेत्रोंसे उज्ज्वल अरुण वर्ण लाल फलोंकी नवीन माला पहरे कुमारी कमलासन पर आरूढ कंडिका और कमल
अ० ६ धारण किये कमललोचनी इष्ट अक्षमाला पहरे हंसारूढ गायत्रीको भजता हूं ॥ ९ ॥ अकारादि ३५ नाम कहते हैं अचिन्त्य लक्षणवाली अव्यक्ता
(अस्पष्ट नामरूपवाली) अर्थमातृमहेश्वरी अमृतसागरके मध्यमें स्थित, अजिता, अपराजिता ॥ १० ॥

अणिमादि गुणोंकी आधार अर्कमण्डलमें स्थित अजरा अजा, अपरा, अधर्मा (जाती आदिधर्मसे रहित) अक्षसूत्रकी धारण करनेवाली अक्षर (निकृष्ट रूपा) ॥ ११ ॥ अकारसे आदि लेकर क्षकार पर्यन्त, अरिषड्वर्गकी भेद करनेवाली, अंजनाद्रिके समान कांतिवाली अंजनाद्रिपर निवास करनेवाली ॥ १२ ॥ आदिति (देवमाता) अजपा (गायत्री) अविद्या अरविन्दलोचनी अन्तर बाहरमें स्थित अविद्या जीव उपाधिकी ध्वंस करनेवाली अन्तरात्मिका ॥१३॥ अजा, अजमुखा (ब्रह्ममुखमें निवास करने वाली) अवासी अरविंद लोचनी अर्थमात्रा, अर्थ दानज्ञा (चारों पुरषार्थके दानको ज्ञाता) अरिमंडलकी मर्दन करनेवाली ॥ १४ ॥ असुरोंकी नाशक अमावश्या अलक्ष्मी नाशक अन्त्यजार्चिता (मातंगी रूपसे पूजित) अकारादि २२ नाम आदिलक्ष्मी

अणिमादिगुणाधाराऽप्यर्कमण्डलसंस्थिता ॥ अजराऽजाऽपराधर्मा अक्षसूत्रधराऽधरा ॥ ११ ॥ अकारादिक्षकारांताप्यरिषड्वर्ग भेदिनी ॥
अंजनादिप्रतीकाशाप्यंजनाद्रिनिवासिनी ॥ १२ ॥ अदितिश्चाजपा विद्याप्यरविंदनिभेक्षणा ॥ अंतर्बहिःस्थिताविद्याध्वंसिनी चांतरा
त्मिका ॥ १३ ॥ अजा चाजमुखा वासाप्यरविंद निभानना ॥ अर्धमात्रार्थदानज्ञाप्यरिमंडलमर्दिनी ॥ १४ ॥ असुरघ्नी ह्यमावास्याप्य
लक्ष्मीघ्न्यत्यजार्चिता ॥ आदिलक्ष्मीश्चादिशक्तिराकृतिश्चायतानना ॥ १५ ॥ आदित्यपदवीचाराप्यादित्यपरिसेविता ॥ आचार्यावर्त
नाचाराप्यादिमूर्तिवासिनी ॥ १६ ॥ आग्नेयी चामरी चाद्या चारध्या चासनस्थिता ॥ आधारनिलयाधारा चाकाशांतनिवासिनी
॥ १७ ॥ आद्याक्षरसमायुक्ता चांतराकाशरूपिणी ॥ आदित्यमंडलगता चांतरध्वांतनाशिनी ॥ १८ ॥ इंदिरा चेष्टदा चेष्टा चेंदीवर
निभेक्षणा ॥ इरावती चेंद्रपदा चेंद्राणी चेंदुरूपिणी ॥ १९ ॥

आदिशक्ति आकृति आयतानना (विस्तृतमुखवाली) ॥ १५ ॥ आदित्य मार्गमें विचरण करने वाली अदितिपुत्रोंसे सेवित आचार्या (स्वयं) व्याख्याता) आवर्तना (जगतकी आवर्तन करनेवाली) आचारा (दक्षिणा चारादि आचारवाली) आदिमूर्ति ब्रह्ममें निवास करनेवाली ॥ १६ ॥ आग्नेयीदिशारूप आमरी अमरावतीरूपवाली आद्या आराध्या आसनमें स्थित आधारनिलया मूलधारमें निवासवाली आधारा सबकी आधारा (कुंडलिनीरूप) आकाशान्तनिवासिनी (अहंकार तत्त्वमें स्थित) आद्याक्षरसे युक्त अन्तराकाश अर्थात् दहराकाशरूपवाली आदित्यमण्डलमें प्राप्त, अन्तरध्वान्त अविद्या अंधकारकी नाशिनी इकारादि ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ नाम इंदिरा इष्टदा, इष्टा, इंदीवर कमलके समान नेत्रवाली, इरावती (भूवाक् सुराम्बुमती) इंद्रपदा, इंद्राणी इंदुरूपिणी ॥१९॥

इक्षु पौंड इक्षु धनुषसे युक्त इक्षुसंधान करनेवाली, इंद्रमणिके समान आकारवाली इडा पिंगलरूपवाली ॥ २० ॥ इंद्राक्षी (शताक्षी) ईकारादि दो नाम ईश्वरी देवी, ईहात्रयवर्जिता (तीनों इच्छाओंसे रहित) उकारादि आठ नाम उमा उषा, उडुनिभा, (नक्षत्र समान) उर्वारुक फल कर्कटी फलके समान मुखवाली ॥ २१ ॥ उडप्रभा, उडुमती, उडुपा (पोत रूपिणी) उडुमध्यगामिनी,) ऊकारादि ५ नाम,) ऊर्ध्वा, ऊर्ध्वके ऊर्ध्व और अधो ऊंच नीच गतिको भेदनकरनेवाली ॥२२॥ ऊर्ध्वबाहुप्रिया ऊर्मिमाला वा ग्रन्थदायिनी समुद्रवत् कवितारूप ग्रंथकी देनेवाली ऋद्धि ऋकारादि नाम ऋत (सत्य) ऋषि (वेदरूप) ऋतुमती ऋषिदेवताओंसे नमस्कृत ॥ २३ ॥ ऋग्वेदा ऋणहर्त्री ऋषिमंडलमें विचरण करनेवाली, ऋद्धि ऋजुमार्गमें स्थित, ऋजुधर्मवाली,

इक्षुकोदंडसंयुक्ता चेषुसंधानकारिणी ॥ इंद्रनीलसमाकारा चेडापिंगलरूपिणी ॥ २० ॥ इन्द्राक्षीचेश्वरी देवी चेहात्रयविवर्जिता ॥ उमा चोषा ह्युडुनिभा उर्वारुकफलानना ॥ २१ ॥ उडुप्रभा चोडुमती ह्युडुपा ह्युडुमध्यगा ॥ ऊर्ध्वा चाप्यूर्ध्वकेशी चाप्यूर्ध्वाधोगतिभेदिनी ॥ २२ ॥ ऊर्ध्व बाहुप्रियाचोर्मिमालावाग्ग्रंथदायिनी ॥ ऋतं चर्षिर्ऋतुमती ऋषिदेवनमस्कृता ॥ २३ ॥ ऋग्वेदा ऋणहर्त्री च ऋषिमंडल चारिणी ॥ ऋद्धिदा ऋजुमार्गस्था ऋजुधर्मा ऋतु प्रदा ॥ २४ ॥ ऋग्वेदनिलया ऋज्वी लुप्तधर्म प्रवर्तिनी ॥ लूतारिवरसंभूता लूतादिविषहारिणी ॥ २५ ॥ एकाक्षरा चैकमात्रा चैका चैकैकनिष्ठिता ॥ ऐंद्री ह्यैरावतारूढा चैहिकामुष्मिकप्रदा ॥ २६ ॥ ओंकार ह्योषधी चोता चोतप्रोतनिवासिनी ॥ और्वा ह्यौषधसंपन्ना औपासनफलप्रदा ॥ २७ ॥ अंडमध्यस्थिता देवी चाःकारमनुरूपिणी ॥ कात्यायनी कालरात्रिः कामाक्षी कामसुन्दरी ॥ २८ ॥

ऋतुदायिनी ॥२४॥ ऋग्वेदनिलया ऋज्वी, (ऌकारादि ॡकारादि अप्रसिद्ध होनेसे नहीं कहे, ऌकारादिके यहां ऌकारके जानने) लुप्तधार्मोंको प्रवृत्त करनेवाली लूतारिवरसंभूता, लूता (मकरी व आदिके विषकी हरनेवाली ॥ २५ ॥ एकारादि ४ नाम) एकाक्षरा, एकमात्रा, एका एकैकनिष्ठिता (ऐकरादि ३ नाम) ऐन्द्री ऐरावतपर आरूढ, ऐहिक इस लोक और परलोकमें फलदेनेवाली (ओकारादि ४ नाम) ओंकारा, ओषधी औता ओत प्रोता (सूपके समान सबके अभ्यन्तरमें व्याप्त) (औकारादि ३ नाम) और्वा भूमिमें होनेवाली, औषधसम्पन्ना औपासन उपासनावालोंको फल देनेवाली ॥ २६ ॥ २७ ॥ (अं आदि एक नाम) अंडमध्यमें स्थित देवी (अः करादि नाम) अःकार विसर्ग रूप मंत्रके रूपवाली) ककारादि ९६ नाम) कात्यायनी, कालरात्रि, कामाक्षी. कामसुन्दरी ॥ २८ ॥

कमला, कामिनी कांता कामदा, कालकंठिनी, करिकुंभस्तनभरा, करवीरसे पूजित हो वहां निवास करने वाली ॥ २९ ॥ कल्याणी, कुंडलवती, कुरुक्षेत्र निवासिनी कुरुविंद, रत्नके दलके समान आकारवाली कुंडली, कुमुदालया ॥ ३० ॥ कालजिह्वा, करालमुखी कालिका, कालरूपिणी, कमनीयगुण वाली, कांति, कलधारा, कुमुद्वती ॥३१॥ कौशिकी, कमलाकारा कामचारकी ध्वंसकरनेवाली, कौमारी, करुणापांगी, ककुबंत (दिशाओंकी अवसानरूप) करिप्रिया ॥ ३२ ॥ केशरीरूप केशवसे स्तुतिको प्राप्त, कदम्बपुष्पकी इच्छावाली, कालिन्दी, कालिका, मांची, कलशोद्भव अगस्त्य से स्तुतिको प्राप्त होने वाली ॥ ३३ ॥ काममाता ऋतुमती, कामरूपा, कृपावती कुमारी कुंडनिलया, (अग्निहोत्रमें स्थित) किराती, कीरवाहना ॥ ३४ ॥ कैकेयी कोकिलाके

कमला कामिनी कांता कामदा कालकंठिनी ॥ करिकुंभस्तनभरा करवीरसुवासिनी ॥ २९ ॥ कल्याणी कुंडलवती कुरुक्षेत्रनिवासिनी ॥ कुरुविंददलाकारा कुण्डली कुमुदालया ॥ ३० ॥ कालजिह्वा करालास्या कालिकाकालरूपिणी ॥ कमनीयगुणा यांतिः कालधारा कुमुद्वती ॥ ३१ ॥ कौशिकी कमलाकारा कामचारप्रभंजिनी ॥ कौमारी करुणापांगी ककुबंता करिप्रिया ॥ ३२ ॥ केसरी केशवनुता कदंबकुसुमप्रिया ॥ कालिंदी कालिका कांची कलशोद्भवसंस्तुता ॥३३॥ काममाता ऋतुमती कामरूपा कृपावती ॥ कुमारी कुंडनिलया किराती कीरवाहना ॥ ३४ ॥ कैकेयी कोकिलालापा केतकी कुसुमप्रिया ॥ कमंडलुधरा काली कर्म निर्मूलकारिणी ॥ ३५ ॥ कलहंस गति कक्षा कृतकौतुकमंगला ॥ कस्तूरीतिलका कम्रा करींद्रगमना कुहूः ॥ ३६ ॥ कर्पूरलेपना कृष्णा कपिला कुहराश्रया ॥ कूटस्था कुधरा कम्रा कुक्षिस्थाखिलविष्टपा ॥ ३७ ॥ खड्गखेटकरा खर्वा खेचरी खगवाहना खट्वांगधारिणी ख्याता खगराजोपरिस्थिता ॥ ३८ ॥ खलघ्नी खंडितजरा खंडाख्यानप्रदायिनी ॥ खण्डेन्दुतिलका गंगा गणेशगुहपूजिता ॥ ३९ ॥

समान शब्द करनेवाली, केतकीरूपा, कुसुमप्रिया, कमंडलुधरा, काली, कर्मकी निर्मूल करनेवाली, ॥ ३५ ॥ कलहंसगति, कक्षा, कृतकौतुकमंगला, कस्तूरीतिलका कम्रा सुन्दरी करीन्द्र समान गमनवाली कुहू ॥ ३६ ॥ कर्पूरलेपनाकृष्णा, कपिला, कुहराश्रया, कूटस्था, कुधरा (पर्वतधारिणी) कम्रा कुक्षिस्था खिलविष्टपा ॥ ३७ ॥ (खकारादि ११ नाम) खड्ग, खेटकरा खर्वा खेचरी, खगवाहना, खट्वांगधारिणी, ख्याता, खगराज पर स्थित ॥ ३८ ॥ खलनाशिनी, खंडितजरा, खंडाख्यानकी देनेवाली, खण्डेन्दुतिलका (गकारादि ३६ नाम) गंगा, गणेशगुहपूजिता ॥ ३९ ॥

दे. भा. गायत्री गोमती, गीता, गान्धारी, गानलोलुपा, गौतमी, गामिनी, गांधा, (प्रतिष्ठारूपिणी, गन्धर्वाप्सरोंसे सेवित ॥ ४० ॥ गोविन्दचरणाक्रान्ता गुणत्रय
॥ ९ ॥ विभाविती गंधर्वी गह्वरी, गोत्रा, (पृथ्वी) गिरीशा, गहना गमी (पर्यालोचन करनेवाली.) ॥ ४१ ॥ गुहवासा, गुणवती, गुरुपापप्रणाशिनी, गुर्वी, गुण
वती, गुह्या, गोप्तव्या, गुणदायिनी ॥ ४२ ॥ गिरिजा, गुह्यमातंगी, गरुडध्वजकी प्रियागर्वापहारिणी, गोदा, गोकुलस्था, गदाधरा ॥ ४३ ॥ गोकर्णस्थानमें
आसक्त गुह्यमण्डलमें निवास करनेवाली (घकारादि १४ नाम) घर्मदा, घनदा, घंटा, घोरदानवमर्दिनी ॥ ४४ ॥ घृणि (सूर्य) मंत्रमयी, घोषा, घनसंतापदा
यिनी, घंटारवप्रिया घ्राणा, घृणि संतुष्टकारिणी ॥ ४५ ॥ घनारिमंडला, घूणी घृताची, घनवेगिनी (ङकार अप्रसिद्ध हैं ज्ञकारका नाम एक है) ज्ञानधातु

गायत्री गोमती गीता गांधारी गानलोलुपा ॥ गौतमी गामनी गाधा गंधर्वाप्सरसेविता ॥ ४० ॥ गोविंदचरणाक्रांता गुणत्रयविभाविता
गंधर्वी गह्वरी गोत्रा गिरीशा गहना गमी ॥४१॥ गुहावासा गुणवती गुरुपापप्रणाशिनी ॥ गुर्वी गुणवती गुह्या गोप्तव्या गुणदायिनी ॥४२॥
गिरिजा गुह्यमातंगी गरुडध्वजवल्लभा ॥ गर्वापहारिणी गोदा गोकुलस्था गदाधरा ॥ ४३ ॥ गोकर्णनिलयासक्ता गुह्य मंडलवर्तिनी ॥
घर्मदा घनदा घण्टा घोरदानवमर्दिनी ॥ ४४ ॥ घृणिमन्त्रमयी घोषा घनसम्पातदायिनी ॥ घण्टारवप्रिया घ्राणा घृणिसंतुष्टकारिणी
॥ ४५ ॥ घनारिमंडला घूर्णा घृताची घनवेगिनी ॥ ज्ञानधातुमयी चर्चा चर्चिता चारुहासिनी ॥ ४६ ॥ चटुला चंडिका चित्रा चित्रमा
ल्यविभूषिता ॥ चतुर्भुजा चारुदंता चातुरी चरित प्रदा ॥ ४७ ॥ चूलिका चित्रवस्त्रांतचन्द्रमः कर्णकुण्डला ॥ चन्द्रहासा चारुदात्री
चकोरी चन्द्रहासिनी ॥ ४८ ॥ चंद्रिका चन्द्रधात्री च चौरी चौरा च चंडिका ॥ चंचद्वाग्यवादिनी चन्द्रचूडा चोरविनाशिनी ॥ ४९ ॥
चारुचन्दनलिप्तांगी चंचच्चामरवीजिता ॥ चारुमध्या चारु गतिश्चंदिला चन्द्ररूपिणी ॥ ५० ॥

मयी (चिद्धातुमय) (चकारादि ४६ नाम) चर्चा (भाषणादि) चर्चिता, चारुहासिनी. ॥ ४६ ॥ चटुला चंडिका, चित्रा, चित्रमाल्यसे विभूषित,
चतुर्भुजा, चारुदंता, चातुरी, चरितप्रदा ॥४७॥ चूलिका, चित्रवस्त्रान्ता, चन्द्रमारूप कानोंमें कुंडल धारण करनेवाली, चंद्रहासा, चारुदात्री, चकोरी, चन्द्र
भा.टी.द्वा. हासिनी ॥ ४८ ॥ चंद्रिका, चन्द्रधात्री, चौरी चौरा (औषधि विशेष रूपा) चंडिका, चंचद्वाग्वादिनी, चन्द्रचूडा, चोरविनाशिनी ॥ ४९ ॥ चारुचन्दलि
अ० ६ प्तांगी (सुन्दर चन्दनसे लिप्त अंगवाली) चंचत् चलायमान चामरोंसे वीजित, चारुमध्यभागवाली, चारुगति, चंदिला (कर्णाटक देशमें प्रसिद्ध देवता),
चन्द्ररूपिणी ॥ ५० ॥

चारुहोमप्रिया, चार्वी, चरिता, चक्रबाहुका, चन्द्रमंडलके मध्यमें स्थित चन्द्रमण्डल दर्पणवाली ॥५१॥ चक्रवाकके समान स्तनवाली, चेष्टा, चित्र, चारुविलासिनी, चित्स्वरूपा, चन्द्रवती, चन्द्रमा, चंदन प्रिया ॥ ५२ ॥ चोदयित्री (प्रेरणा करनेवाली) चिरप्रज्ञा; चारुहेतुकी (जगत् निर्माणमें सुन्दरहेतुवाली) (छकारादि १४ नाम) छत्रयाता, छत्रधरा, छाया छन्दा परिछंदा ॥ ५३ ॥ छायादेवी (स्वामिनी) छिद्रनखा (रन्ध्रयुक्त नखोंवाली छन्नेंद्रियः विसर्पिणी (इन्द्रियजित् योगियोंके निकट जानेवाली) छन्दोनुष्टुप् प्रतिष्ठान्ता (अनुष्टुप् छन्दवाले मंत्रसे जानने योग्य), छिद्रोपद्रवभेदनी (कपटके) उपद्रव नाशनेवाली ॥५४॥ छेदा छत्रेश्वरी छिन्ना, छूरिका, छेदनप्रिया (जकारादि ४० नाम) जननी, जन्मरहिता, जातवेदा, जगन्मयी, जाह्नवी, जटिला, जेत्री,

चारुहोमप्रिया चार्वाचरिता चक्रबाहुका ॥ चन्द्रमंडलमध्यस्था चन्द्रमण्डलदर्पणा ॥ ५१ ॥ चक्रवाकस्तनी चेष्टा चित्रा चारुविलासिनी ॥ चित्स्वरूपा चन्द्रवती चन्द्रमाश्चंदन प्रिया ॥ ५२ ॥ चोदयित्री चिरप्रज्ञा चातका चारुहेतुकी ॥ छत्रयाता छत्रधरा छाया छन्दः परिच्छदा ॥ ५३ ॥ छायादेवी च्छिद्रनखा छन्नेन्द्रियविसर्पिणी ॥ छन्दोऽनष्टुप्प्रतिष्ठांता छिद्रोपद्रवभेदिनी ॥ ५४ ॥ छेदा छत्रेश्वरी छिन्ना छुरिका छेदन प्रिया जननी जन्मरहिता जातवेदा जगन्मयी ॥ ५५ ॥ जाह्नवी जटिला जेत्री जरामरणवर्जिता ॥ जंबूद्वीपवती ज्वाला जयंती जलशालिनी ॥ ५६ ॥ जितेन्द्रिया जितक्रोधा जितामित्रा जगत्प्रिया ॥ जातरूपमयी जिह्वा जानकी जगती जरा ॥ ५७ ॥ जनित्री जह्नुतनया जगत्त्रयहितैषिणी ॥ ज्वालामुखी जपवती ज्वरघ्नी जितविष्टपा ॥ ५८ ॥ जिताक्रांतमयी ज्वाला जाग्रती ज्वरदेवता ॥ ज्वलंती जलदा ज्येष्ठा ज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी ॥ ५९ ॥ जंभिनी जृंभणा जृंभा ज्वलन्माणिक्यकुंडला ॥ झिंझिका झणनिर्घोषा झंझमारुतवेगिनी ॥ ६० ॥

जरामरणसे वर्जित, जम्बूद्वीपवती, ज्वाला, जयन्ती, जलशालिनी ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ जितेन्द्रिया, जितक्रोधा, जित्तमित्रा, जगत्प्रिया, जातरूममयी जिह्वा जानकी जगती जरा ॥ ५७ ॥ जानित्री जह्नुतनया, जगत्त्रयहितैषिणी, ज्वालामुखी, जपवती, ज्वरघ्नी जितविष्टपा ॥ ५८ ॥ जितक्रांतमयी, (जयसे अक्रान्त पुरुषमयी) ज्वाला जाग्रती ज्वरदेवता, ज्वलंती, जलदा, ज्येष्ठा. ज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी (ज्याघोषसे दिशाओंके मुखफोडनेवाली) ॥ ५९ ॥ जंभिनी, जृंभणा, जृंभा. ज्वलितमाणिक्यके कुंडलवाली (झकारादि ४ नाम) झिंझिका झणनिर्घोषा, झंझामारुतबेगनी (सवृष्टि पवनके वेगवाली) ॥ ६० ॥

झल्लकी, बाजेमें कुशल (ञकारादि २ नाम) ञरूपा (वलीवर्दरूपा) ञभुजास्मृता (श्यामलांगिका व वलीवर्दके समान भुजावाली,) टकारादि ६ नाम) टंकणबाणसे युक्त, टंकिनी, टंकभेदिनी ॥ ६१ ॥ टंकीगण रुद्रवत् घोष करनेवाली, टंकनीयमहोरसा (वर्णनयोग). महाउरस्थलवाली, टंकार कारिणीदेवी (ठकारादि एकनाम) ठठशब्दसे नाद करनेवाली ॥ ६२ ॥ (ढकारादि आठ नाम) डामरी, डाकिनी, डिंभ (बालकरूप), डुंडुमारैकनिर्जिता, डामरी तंत्र मार्गस्था (डामरी तंत्रके मार्गमें स्थित) डमडुमरुनादिनी ॥६३॥ डिंडिनामके बाजेके शब्दको सहन करनेवाली, डिंभलसत् क्रीडापरायण (ढकारादि २ नाम) डुंढि विघ्नेशकी माता, ढक्का बाजा हाथमें धारण करनेवाली, ढिलिव्रजा (ढिलिनामक शिवगणके समुदायवाली) ॥ ६४ ॥ णकारादि नाम

झल्लरीवाद्यकुशला ञरूपा ञभुजा स्मृता टंकबाणसमायुक्ता टंकिनी टंकभेदिनी ॥ ६१ ॥ टंकीगणकृताघोषा टंकनीयमहोरसा ॥ टंकार कारिणी देवी ठठशब्द निनादिनी ॥ ६२ ॥ डामरी डाकिनी डिंभा डुंडमारैकनिर्जिता ॥ डामरी तंत्रमार्गस्था डमड्डमरुनादिनी ॥६३॥ डिंडीरवसहा डिंभलसत्क्रीडापरायणा ॥ ढुंढिविघ्नेशजननी ढक्कहस्ता ढिलिव्रजा ॥६४॥ नित्यज्ञाना निरुपमा निर्गुणा नर्मदा नदी ॥ त्रिगुणा त्रिपदा तंत्री तुलसी तरुणा तरुः ॥ ६५ ॥ त्रिविक्रमपदाक्रांता तुरीयपद गामिनी ॥ तरुणादित्यसंकाशा तामसी तुहिनातुरा ॥ ६६ ॥ त्रिकालज्ञानसंपन्ना त्रिवली च त्रिलोचना ॥ त्रिशक्तिस्त्रिपुरा तुंगा तुरंगवदना तथा ॥ ६७ ॥ तिमिंगिलगिला तीव्रा त्रिस्रोता तामसादनी ॥ तंत्रमन्त्रविशेषज्ञा तनुमध्यात्रिविष्टपा ॥ ६८ ॥ त्रिसन्ध्या त्रिस्तनी तोषासंस्था तालप्रतापनी ॥ ताटंकिनी तुषाराभा तुहिनाचलवासिनी ॥ ६९ ॥ तंतुजालसमायुक्ता तारहारावलिप्रिया ॥ तिलहोमप्रिया तीर्था तमालकुसुमाकृतिः ॥ ७० ॥

अप्रसिद्धि हैं उसके स्थानमें पांच नकारादि कहते हैं नित्यज्ञानवाली, निरुपमा, निर्गुण, नर्मदा नदीरूप, तकारादि ६२ नाम, त्रिगुणा, त्रिपदा, तन्त्री वीणा रूप तुलसी तरुणा, तरु ॥६५॥ त्रिविक्रमपदाक्राता, तुरीया पदमें गमन करनेवाली, तरुण आदित्यके समान प्रकाशमान तामसी, तुहिनातुरा ॥६६॥ त्रिकाल ज्ञानसे सम्पन्न, त्रिवली. त्रिलोचना. त्रिशक्ति त्रिपुरा, तुंगा, तुरंगवदना ॥ ६७ ॥ तिमंगलगिल, तीव्रा त्रिस्रोता, तामसादनी, तंत्र मंत्रकी विशेशरूपसे ज्ञाता, तनुमध्या, त्रिविष्टपा ॥६८॥ त्रिसंध्यारूप, त्रिस्तनी. तोषासंस्था (संतोषमें स्थित) तालप्रतापिनी, ताटंकिनी तुषाराभा (तुषारके समान कान्तिवाली), तुहिनाचलवासिनी ॥ ६९ ॥ तंतुजालमें युक्त, तारहारवलिप्रिया, तिलहोमप्रियँ, तीर्था, तमाल कुसुमके समान आकृतिवाली ॥ ७० ॥

तारका त्रियुता (तीन गुण वा तीन वेदसे युक्त), तन्वी, त्रिशुंकुसे परिवारित, तलोदरी, तिलोभाषा तांटकप्रियवादिनी ॥ ७१ ॥ त्रिजटा, तित्तरी, तृष्णा, त्रिविधा, तरुणाकृति, तप्त कांचके समान, तप्तकांचनके भूषणोंवाली ॥ ७२ ॥ त्रैवम्बका, त्रिवर्गा, त्रिकालका ज्ञान देनेवाली) तर्पणा, तृप्तिदा, तृप्ता, तामसी, तुम्बुरुस्तुता ॥ ७३ ॥ तार्क्ष्यस्था, त्रिगुणकारा त्रिभंगी, तनुवल्लरी (थकारादि ३ नाम) थात्कारी (शब्दकारी) थारवा (भयसे रक्षाकरने वाली) थान्ता (मंगलकी पर्यवसान भूमि) (दकारादि २७ नाम) दोहिनी, दीनवत्सला ॥ ७४ ॥ दानवन्तकरी, दुर्गा, दुर्गासुरनिबर्हिणी (भयंकर असुरकी मारनेवाली) देवरीति, दिवारात्रि द्रौपदी, दुंदुभिस्तवना ॥ ७५ ॥ देवयानी, दुरावासा, दारिद्र्यभेदिनी दिवा, दामोदरकी प्रियाा दीप्ता दिग्वासा दिग्विमोहिनी ॥ ७६ ॥

तारका त्रियुता तन्वी त्रिशंकुपरिवारिता ॥ तलोदरी तिलोभूषा तार्टक प्रियवादिनी ॥ ७१ ॥ त्रिजटा तित्तिरी तृष्णा त्रिविधा तरुणाकृतिः ॥ तप्तकांचनसंकाशा तप्तकांचन भूषणा ॥ ७२ ॥ त्रैयंबका त्रिवर्गा च त्रिकालज्ञानदायिनी ॥ तर्पणा तृप्तिदा तृप्ता तामशी तुंबुरुस्तुता ॥ ७३ ॥ तार्क्ष्यस्था त्रिगुणाकारा त्रिभंगी तनुवल्लरिः ॥ थात्कारी थारवा थांता दोहिनी दीनवत्सला ॥ ७४ ॥ दानवांत करी दुर्गा दुर्गा सुरनिबर्हिणी ॥ देवरीतिर्दिवारात्रिर्द्रौपदी दुंदुभिस्वना ॥ ७५ ॥ देवयानी दुरा वासा दारिद्र्योद्भेदिनी दिवा ॥ दामोदर प्रिया दीप्ता दिग्वासा दिग्विमोहिनी ॥ ७६ ॥ दंडकारण्यनिलया दंडिनी देवपूजिता ॥ देव वंद्या दिविषदा द्वेषणी दानवाकृतिः ॥७७॥ दीनानाथस्तुता दीक्षा दैवतादिस्वरूपिणी ॥ धात्री धनुर्धरा धेनुर्धारिणी धर्मचारिणी ॥ ७८ ॥ धरंधरा धराधारा धनदा धान्यदोहिनी ॥ धर्मशीला धनाध्यक्षा धर्मवेदविशारदा ॥७९॥ धृतिर्धन्या धृतपदा धर्मराजप्रिया ध्रुवा ॥ धूमावती धूमकेशी धर्मशास्त्रप्रकाशिनी ॥८०॥ नंदा नंदप्रिया निद्रा नृनुता नंदनात्मिका ॥ नर्मदा नलिनी नीला नीलकंठसमाश्रया ॥ ८१ ॥

दण्डकारण्यमें निवासवाली दण्डिनी, देवपूजित, देवताओसे नमस्कृत, दिविषदा, द्वेषिणी, दानवाकृति ॥ ७७ ॥ दीनानाथस्तुता, दीक्षास्वरूप, देवतादि स्वरूपिणी, (धकारादि २० नाम) धात्री, धनुर्धरा, धेनु धारिणी, धर्मचारिणी ॥ ७८ ॥ धुरंधरा धरा धारा, धनदा, धान्यदोहिनी, धर्मशीला, धनाध्यक्षा धनुर्वेदविशारदा ॥ ७९ धृति, धन्या, धृतपदा धर्मराजाप्रिया, ध्रुवा (निश्चल) धूमवती, धूम केशी, धर्मशास्त्रकी प्रकाश करनेवाली ॥ ८० ॥ [नकारादि ५५ नाम] नन्दा (आनंददायिनी), नंदप्रिया, नंदा, निद्रा, नृनुता (मनुष्योंसे नमस्कृत), नंदनात्मिका, नर्मदा, नलिनी, नीला, नीलकण्ठ समाश्रया ॥८१॥

दे. भा. ॥११॥

नारायणप्रिया, नित्या, निर्मला, निर्गुणा, निधि, निराधारा, निरुपमा, नित्यशुद्धा, निरंजना ॥ ८२ ॥ नाद विंदुकी कलासे परे, नादविन्दु कलामय, नृसिंह वेषवाली, नगधरा, नृपनागविभूषिता ॥ ८३ ॥ नरकका क्लेश शांत करनेवाली, नारायण पदोद्भवा, निरवद्या, निराकारा, नारदप्रियकारिणी ॥ ८४ ॥ नाना ज्योतिसे कही गई निधि देनेवाली, निर्मलात्मिका, नवसत्रधरा, नीति, निरुपद्रवकारिणी ॥८५॥ नंदके होनेवाली, नवरत्नाढ्या, नैमिषारण्यवासिनी, नवनीत प्रिया, नारी, नीलमेघके समान शब्दवाली ॥ ८६ ॥ निषमेणी, नदीरूपा, नीलग्रीवा निशीश्वरी नामवाली, निशुम्भकी मारनेवाली, नागलोकमें निवास करनेवाली ॥ ८७ ॥ नवीन सुवर्णके समान कांतिवाली नागलोककी अधिदेवता, नूपुराक्रान्तचरणा, नरचित्त प्रमोदिनी ॥ ८८ ॥ निमग्ना, रक्तनयना,

नारायणप्रिया नित्या निर्मला निर्गुणा निधिः निराधारा निरुपमा नित्यशुद्धा निरंजना ॥ ८२ ॥ नादबिंदुकलातीता नादबिंदुकलात्मिका ॥ नृसिंहिनी नग धरा नृपनागविभूषिता ॥ ८३ ॥ नरकक्लेशशमनी नारायणपदोद्भवा निरवद्या निराकारा नारदप्रियकारिणी ॥ ८४ ॥ नानाज्योतिः समाख्याता निधिदा निर्मलात्मिका ॥ नवसत्रधरा नीतिर्निरुपद्रवकारिणी ॥८५॥ नंदजा नवरत्नाढ्या नैमिरषारण्यवासिनी ॥ नवनी तिप्रिया नारी नीलजीमूतनिस्वना ॥ ८६ ॥ निमेषिणी नदीरूपा नीलग्रीवा निशीश्वरी ॥ नामावलिर्निशुंभघ्नी नागलोकनिवासिनी ॥ ८७ ॥ तप्तजांबूनदप्रख्या नागलोकाधिदेवता ॥ नूपुराक्रांतचरणा नरचित्तप्रमोदिनी ॥ ८८ ॥ निमग्ना रक्तनयना निर्घातसमनिस्वना नंदनोद्यानिलया निर्व्यूहोपरिचारिणी ॥ ८९ ॥ पार्वती परमोदारा परब्रह्मात्मिका परा ॥ पंचकोशविनिर्मुक्ता पंचपातकनाशिनी ॥ ९० ॥ परचित्तविधानज्ञा पंचिका पंचरूपिणी ॥ पूर्णिमा परमा प्रीतिः परतेजःप्रकाशिनी ॥ ९१ ॥ पुराणी पौरुषी पुण्या पुण्डरीकनिभेक्षणा ॥ पातालतलनिर्मग्ना प्रीता प्रीतिविवर्धिनी ॥ ९२ ॥

निर्घात समनिस्वता (वज्रवत शब्दवाली) नंदनवनमें स्थानवाली, निर्व्यूहोपरिचारिणी ॥ ८९ ॥ (पकरादि १२५ नाम) पार्वती, परमोदारा, परब्रह्मात्मिका, परा, पंचकोशसे विमुक्त, पांच पातकोंकी नाशक ॥ ९० ॥ परिचित्तके विधानकी ज्ञाता, पंचिका (श्रीविद्यामें दक्षिणा मूर्तिके सहित पूजित पंचिका देवतारूप) पंचरूपिणी पूर्णिमा परमा, प्रीति, परतेज प्रकाशिनी ॥ ९१ ॥ पुराणी पौरुषीं (पुरुषार्थरूपा) पुंडरीक (कमल) के समान नेत्रवाली, पाताल तल निर्मग्ना, प्रीता, प्रीतिकी बढाने वाली ॥ ९२ ॥

ा. टी.द्वा.
ं० ६

पावनी (पवित्र करनेवाली) पाद सहित ! (किरणयुक्त), पेशला(श्रेष्ठ), पवन भोजिनी प्रजापतिरूपा, परिशांता, पर्वतस्तनमंडला ॥ ९३ ॥ पद्मप्रिया, पद्ममें स्थित, पद्माक्षी, पद्मसंभवा, पद्मपत्रा, पद्मपदा, पद्मिनी, प्रियभाषिणी ॥ ९४ ॥ पशुपाशसे निर्मुक्त, पुरन्ध्री, पुरवासिनी, पुष्कला, पुरुषा, पर्वा, पारिजात कुसुमप्रिया ॥ ९५ ॥ प्रतिव्रता, पवित्रांगी, पुष्पहास परायणा, प्रजावती, सुता, पौत्री पुत्र पूज्या, यशस्विनी ॥ ९६ ॥ पट्टिपाशधरा, पंक्ति, पितृलोकको देदेवाली, पुराणी, पुण्यशीला, प्रणत पुरुषोंके दुःख नाश करने वाली ॥ ९७ ॥ प्रद्युम्नजननी, पुष्टा, पितामह परिग्रहा, पुंडरीकपुर (चिदम्बरक्षेत्र) में वास करनेवाली पुंडरीकके समान मुखवाली ॥ ९८ ॥ पृथुजंघा, पृथुभुजा, पृथुपादा, पृथूदरी, प्रवाल शोभा, पिंगात्री, पीतवासा, प्रचापला ॥ ९९ ॥

पावनी पादसहिता पेशला पवनाशिनी ॥ प्रजापतिः परीश्रांता पर्वतस्तनमंडला ॥ ९३ ॥ पद्मप्रिया पद्मसंस्था पद्माक्षी पद्मसंभवा ॥ पद्मपत्रा पद्मपदा पद्मिनी प्रियभाषिणी ॥ ९४ ॥ पशु पाशविनिर्मुक्ता पुरंध्री पुरवासिनी ॥ पुष्कला पुरुषा पर्वापारिजातसुमप्रिया ॥ ९५ ॥ पतिव्रता पवित्रांगी पुष्पहासपरायणा ॥ प्रज्ञा वती सुता पौत्री पुत्रपूज्या पयस्विनी ॥ ९६ ॥ पट्टिपाशधरा पंक्ति पितृलोकप्रदायिनी ॥ पुराणी पुण्यशीला च प्रणतार्तिविनाशिनी ॥ ९७ ॥ प्रद्युम्नजननी पुष्टा पितामहपरिग्रहा ॥ पुंडरीकपुरावासा पुंडरीकसमानना ॥ ९८ ॥ पृथुजंघा पृथुभुजा पृथुपादा पृथूदरी ॥ प्रवाल शोभा पिंगाक्षी पीतवासाः प्रचापला ॥ ९९ ॥ प्रसवा पुष्टिदा पुण्या प्रतिष्ठा प्रणवागतिः पंचवर्णा पंचवाणी पंचिका पंचरस्थिता ॥ १०० ॥ परमाया परज्योतिः परप्रीतिः परागतिः ॥ पराकाष्ठा परेशानी पाविनी पावकद्युमतिः ॥ १ ॥ पुण्यभद्रा परिच्छेदा पुष्प हासा पृथूदरी ॥ पीतांगी पीतवसना पीतशय्या पिशाचिनी ॥ २ ॥ पीतक्रिया पिशाचघ्नी पाटलाक्षी पटुक्रिया ॥ पंचभक्षप्रियाचारा पूतना प्राणघातिनी ॥ ३ ॥

प्रसवा, पृष्टिदा, ' पुण्याप्रतिष्ठा, प्रणवागतिः (स्तुति करनेवाले देवताओंको शरण देनेवाली) पंचवर्णा (विस्तृत वर्ण), पंचिका, देवता, पंजरस्थिता ॥ १०० ॥ परमाया, परज्योति, परप्रीति, परागति ,पराकाष्ठा परेशानी पापिनी, पावकद्युति (अग्निके समान कांति) ॥ १ ॥ पुण्यभद्रा, परिछेद्या, पुष्पहासा, पृथूदरा, पीतांगवाली, पीतवस्त्रवाली पीत शय्यावाली, पिशाचिनी ॥ २ ॥ पीत क्रिया, पिशाचघ्नी, पाटलाक्षी, पटुक्रिया, पंचभक्षप्रियाचारा (पंचमकारभक्षी वामियोंके आचारसे प्रसन्न) पूतना प्राणघातिनी ॥ ३ ॥

पुन्नागवनके मध्यमें स्थित, पुण्य तीर्थनिषेवित, पंचगी, पराशक्ति ,परम आह्लादकी करनेवाली ॥ ४ ॥ पुष्पकांडस्थिता, पूषा, पोषिताखिलविष्टपा (सब देवताओंकी रक्षक), पान प्रिया, पंचशिखा, पन्नगोंपर शयन करनेवाली ॥ ५ ॥ पंचमात्रात्मिका, पृथ्वी, पथिका पृथुदोहिनी, पुराण न्यायमीमांसारूप माटली, पुष्प गंधवाली ॥ ६ ॥ पुण्यप्रजा पारदात्री, पारमार्गैकगोचरा प्रवालवत् शोभावाली, पूर्णाशा, प्रणवरूपिणी, पल्लवोदरी ॥ ७ ॥ (फकारादि ७ नाम) फलिनी, फलदा, फल्गु, फूत्कारी फलकाकृति फणीन्द्रभोगपर शयन करनेवाली, फणिमंडलसे मंडित ॥ ८ ॥ (बकारादि ५० नाम) बालबाला (बालकसे भी बालक), बहुमता बालसूर्यके समान वस्त्रवाली, बलभद्रप्रिया, वंदनयोग्य, बडवाबुद्धिसे स्तुतिको प्राप्त ॥ ९ ॥ वंदीदेवी बिलवती (छिद्र

पुन्नागवनमध्यस्था पुण्यतीर्थनिषेविता ॥ पंचांगी च पराक्तिः परमाह्लादकारिणी ॥ ४ ॥ पुष्पकांडस्थिता पूषा पोषिताखिलविष्टपा ॥
पानप्रिया पंचशिखा पन्नगोपरिशायिनी ॥५॥ पंचमात्रात्मिकापृथ्वी पथिका पृथुदोहिनी पुराणन्यायमीमांस पाटलीपुष्पगंधिनी ॥६॥
पुण्यप्रजापारदात्री परमार्गैकगोचरा ॥ प्रवालशोभा पूर्णाशा प्रणवा पल्लवोदरी ॥ ७ ॥ फलिनी फलदा फल्गुः फूत्कारी फलकाकृतिः ॥
फणीद्रभोगशयना फणिमंडलमंडिता ॥ ८ ॥ बालबाला बहु मता बालातपनिभांशुका ॥ बलभद्रप्रिया वंद्या वडवा बुद्धिसंतुस्ता ॥ ९ ॥
बंदीदेवी बिलवती बडिशघ्नी बलिप्रिया ॥ बांधवी बोधिता बुद्धिर्बंधूककुसुमप्रिया ॥ ११० ॥ बालभानुप्रभाकारा ब्राह्मी ब्राह्मणदेवता ॥
बृहस्पतिस्तुता वृंदा वृंदावनविहारिणी ॥ ११ ॥ बलाकिनी बिलाहारा बिलवासा बहूदका ॥ बहुनेत्रा बहुपदा बहु कर्णावतंसिका ॥१२॥
बहुबाहुयुता बीजरूपिणी बहुरूपिणी ॥ बिंदुनादुकलातीता बिंदुनादस्वरूपिणी ॥ १३ ॥ बद्धगोधांगुलित्राणा बदर्याश्रमवासिनी ॥
वृंदारका बृहत्स्कंधा बृहती बाणपातिनी ॥ १४ ॥ वृंदाध्यक्षा बहनुता वनिता बहुविक्रमा ॥ बद्धपद्मासनासीनाबिल्वपत्रतलस्थिता ॥१५॥

कर्मकी देखनेवाली) बडीशघ्नी (कपटनाशिनी) बलिप्रिया बांधवी बोधिता बुद्धिःबंधूककुसुमप्रिया ॥ ११० ॥ बालसूर्यकी प्रभाके समान आकारवाली, ब्राह्मी, ब्राह्मणोंकी देवता, बृहस्पतिसे स्तुतिको प्राप्त, वृन्दादेवीरूप वृन्दावनमें विहार करनेवाली ॥ ११ ॥ बालाकिनी (बालकाओंके समूहवाली) बिला हारा (छिद्रनाशिनी) बिलवासा गुहामें शयन करनेवाली) बहूदका, बहुनेत्रा बहुपदा बहुत कर्णोंके भूषणवाली ॥ १२ ॥ बहुत बाहुओंसे युक्त, बीज रूपिणीबहुरूपिणी, विंदुनादकी कलासे परे विंदुनादस्वरूपिणी ॥ १३ ॥ बद्धगौधाङ्गुलीत्राणा (गोधाके चर्मका अंगुली त्राण बाँधे) बद्रिकाश्रमनिवा सिनी, वृन्दारकारूप वृहत्स्कन्धवाली, बृहती, बाणपातिनी ॥ १४ ॥ वृंदाध्यक्षा, बहुतोंसे स्तुतिकी हुई, विनता, बहुविक्रमा, बद्धपद्मासनासीना, बिल्व

पत्रके तलमें स्थित ॥ १५ ॥ बोधिद्रुम निजावासा, बडिस्था (बलिमें स्थित) विंदुदर्पणा अव्यक्तात्मक दर्शनवाली बाला, बाणासनवती (धनुषधारिणी) वडवानलवेगिनी ॥१६॥ ब्राह्माण्डके बाहर भीतरव्याप्त ब्रह्मकंकणसूत्रिणी ब्रह्मविद्या देनेवाली (भकारादि ४० नाम) भवानी, भीषण वती, भाविनी, भयहारिणी ॥ १७ ॥ भद्रकाली, भुजंगाक्षी, भारती, भारताशया, भैरवी, भीषणाकारा, भूतिदा, भूतिमालिनी ॥ १८ ॥ भामिनी, भोगनिरता, भद्रदा (कल्याणदा) भूरिविक्रमा, भूतवासा, भृगुलता, भार्गवी, भूसुरोंसे पूजित ॥ १९ ॥ भागीरथी, भोगवती, भवनस्था, भिषग्वरा, भामिनी, भोगिनी, भाषा, भवानी, भूरिद क्षिणा. ॥ १२० ॥ भर्गात्मिका, भीमवती, भवबंधविमोचनी, भजनीया, भूतधात्री, भंजिता भुवनेश्वरी ॥ २१ ॥ भुजङ्गोंके बलयवाली' भीमा' भेरुण्डा, भागधे

बोधिद्रुमनिजावासा बडिस्था बिंदुदर्पणा ॥ बाला बाणासनवती वडवानलवेगिनी ॥ १६ ॥ ब्रह्मांडबहिरंतःस्था ब्रह्मकंकणसूत्रिणी ॥ भवानी भीषणवती भाविनी भयहारिणी ॥१७॥ भद्रकाली भुजंगाक्षी भारती भारताशया ॥ भैरवी भीषणकारा भूतिदा भूतिमालिनी ॥ १८ ॥ भामिनी भोगनिरता भद्रदा भूरिविक्रमा ॥ भूतवासा भृगुलता भार्गवी भूसुरार्चिता ॥ १९ ॥ भागीरथी भोगवती भवनस्था भिषग्वरा ॥ भामिनी भोगिनी भाषा भवानी भूरिदक्षिणा ॥ १२० ॥ भर्गात्मिका भीमवती भवबंधनमोचिनी ॥ भजनीया भूतधात्री रंजिता भुवनेश्वरी ॥२१ ॥ भुजंगवलया भीमा भेरुंडा भागधेयिनी ॥ माता माया मधुमती मधु जिह्वा मधुप्रिया ॥ २२ ॥ महादेवी महाभागा मालिनी मीनलोचना ॥ मायातीता मधुमती मधुमांसा मधुध्रुवा ॥ २३ ॥ मानवी मधु संभूता मिथिलापुरवासिनी ॥ मधु कैटभसंहर्त्री मेदिनी मेघमालिनी ॥ २४ ॥ मंदोदरीमहामाया मैथिली मसृणप्रिया ॥ महालक्ष्मीमहाकाली महाकन्या महेश्वरी ॥२५॥ माहेंद्री मेरुतनया मंदार कुसुमार्चिता ॥ मंजुमजीरचरणा मोक्षदा मंजुभाषिणी ॥ २६ ॥ मधुर द्राविणी मुद्रा मलया मलयान्विता ॥ मेधा मरकतश्यामा मागधी मेनकात्मजा ॥ २७ ॥

यिनी, (मकारादि ५४ नाम) माता, माया, मधुमती, मधुजिह्वा, मधुप्रिया ॥ २२ ॥ महादेवी, महाभागा, मालिनी, मीनलोचना, मायातीता मधुमती, मधु मांसा, मधूद्भवा ॥ २३ ॥ मानवी, मधुसंभूता, मिथिलापुरवासिनी, मधुकैटभकी संहार करनेवाली, मेदिनी, मेघमालिनी ॥ २४ ॥ मंदोदरी, महामाया, मैथिली, मसृणप्रिया, महालक्ष्मी, महाकाली, महाकन्या, महेश्वरी ॥ २५ ॥ माहेन्द्री, मेरुतनया, मन्दारकुसुमार्चिता, मंजु, मंजीरचरणा, मोक्षदा, मंजुभाषिणी ॥ २६ ॥ मधुरद्रावणी, मुद्रा, मलया, मलयान्विता, मेधा, मरकतश्यामा, मागधी; मेनकात्मजा ॥ २७ ॥

दे. भा.
॥१३॥

महामारी महा वीरा, महाश्यामा, मनुस्तुता, मातृका, मिहिराभासा, मुकुन्दपदविक्रमा ॥ २८ ॥ मूलाधारमें स्थित, मुग्धा, मणिपुरनिवासिनी, मृगाक्षी, महिषासुरकी मर्दन करनेवाली ॥ २९ ॥ (यकारादि २० नाम) योगासना, योगगम्या, यागा, यौवनकाश्रया, यौवनी, युद्धमध्यस्था, यमुना, युगधारिणी ॥ १३० ॥ यक्षिणी, योगयुक्ता, यक्षराजप्रसूतिनी, यात्रा, यानविधानकी ज्ञाता, यदुवंशसमुद्भवा, ॥ ३१ ॥ यकारसे हकारपर्यन्त, याजुषी, यज्ञरूपिणी, यामिनी, योगनिरता, यातुधानोंको भयदेनेवाली ॥ ३२ ॥ (रकारादि ३७ नाम) रुक्मिणी, रमणी, रामा, रेवती, रेणुका, रति, रौद्री, रौद्रप्रियाकारा; राममाता, रतिप्रिया ॥ ३३ ॥ रोहिणी, राज्यदा, रेवा, रमा, राजीवलोचना, राकेशी, रूपसंपन्ना, रत्नसिंहासनपर स्थित ॥ ३४ ॥ रक्तामाल्याम्बरधरा,

महामारी महावीरा महाश्यामा मनुस्तुता ॥ मातृका मिहिराभासा मुकुंदपदविक्रमा ॥ २८ ॥ मूलाधारस्थिता मुग्धा मणिपूरक वासिनी ॥ मृगाक्षी महिषारूढा महिषासुरमर्दिनी ॥ २९ ॥ योगासना योगगम्या योगा यौवनकाश्रया ॥ यौवनी युद्धमध्यस्था यमुना युगधारिणी ॥ १३० ॥ यक्षिणी योगयुक्ता च यक्ष राजप्रसूतिनी ॥ यात्रा यानविधानज्ञा यदुवंशसमुद्भवा ॥ ३१ ॥ यकारादिहकारांता याजुषी यज्ञरूपिणी ॥ यामिनी योगनिरता यातु धानभयंकरी ॥ ३२ ॥ रुक्मिणी रमणी रामा रेवती रेणुकारतिः ॥रौद्री हैरौद्रप्रिया कारा राममाता रतिप्रिया ॥ ३३ ॥ रोहिणी राज्यदा रेवा रमा राजीवलोचना ॥ राकेशी रूपसंपन्ना रत्नसिंहासनस्थिता ॥ ३४ ॥ रक्त माल्यांबरधरा रक्तगंधानुलेपना ॥ राजहंससमारूढा रंभा रक्तबलिप्रिया ॥ ३५ ॥ रमणी ययुगाधारा राजिताखिलभूतला ॥ रुरुचर्म परीधाना रथिनी रत्नमालिका ॥ ३६ ॥ रोगेशी रोगशमनी राविणी रोमहर्षिणी ॥ रामचंद्रपदाक्रांता रावणच्छेदकारिणी ॥ ३७ ॥ रनवस्त्रपरिच्छन्ना रथस्था रुक्मभूषणा ॥ लज्जाधिदेवता लोला ललिता लिंगधारिणी ॥ ३८ ॥ लक्ष्मीर्लोला लुप्तविषा लोकिनी लोक विश्रुता ॥ लज्जा लंबोदरीदेवी ललना लोकधारिणी ॥ ३९ ॥

रक्तगंधका अनुलेपन लगाये, राजहंसपर चढी, रम्भा, रक्तबलिप्रिया ॥ ३५ ॥ रमणीययुगाधारा राजिताखिलभूतला, रुरुका चर्म ओढनेवाली, रथिनी, रथ मालिका, ॥ ३६ ॥ रोगेशी, रोगशमनी, राविणी रोमहर्षिणी, रामचन्द्रपदाक्रान्ता, रावणकी नष्ट करनेवाली ॥ ३७ ॥ रत्न और वस्त्रोंसे परिच्छिन्न, रथमें स्थित, रुक्मभूषणवाली, (लकारादि १३ नाम) लज्जाधिदेवता, लोला, ललिता, लिंगधारिणी ॥ ३८ ॥ लक्ष्मी, लोला, लुप्तविषा, लोकिनी, लोकविश्रुता, लज्जा, लम्बोदरीदेवी, ललना, लोकधारिणी, ॥ ३९ ॥

भा. टी.द्वा.
अ० ६

(वकरादि ३७ नाम) वरदा, वंदिता, विद्या, वैष्णवी, विमलाकृति, वाराही, विरजावर्षा वरलक्ष्मी, विलासिनी ॥ १४० ॥ विनता, व्योममध्यस्था, वारिजासनसंस्थिता, वरुणी, वेणुसंभूता, वीतिहोत्रा, विरूपिणी ॥ ४१ ॥ वायुमण्डलमध्यस्था, विष्णुरूपा, विधिक्रिया) विष्णुपत्नी, विष्णुमती, विशालाक्षी, वसुन्धरा ॥ ४२ ॥ वामदेवप्रिया, वेला, वज्रिणी, वसुदोहिनी, वेदाक्षरसे युक्त अङ्गवाली, वाजपेयका फलदेनेवाली ॥ ४३ ॥ वासवी, वामजननी, वैकुण्ठस्थानवाली, वरा, व्यासप्रिया, वर्मधारा, वाल्मीकिसे परिसेवित ॥ ४४ ॥ (शकारादि २९ नाम) शाकंभरी, शिवा, शान्ता, सारदा, शरणागति, शातोदरी, शुभाचारा, शुंभासुरविमर्दिनी ॥ ४५ ॥ शोभावती, शिवाकारा शंकरार्धशरीरिणी, शोणा, शुभाशया, शुभ्रा, शिरःसंधानकारिणी ॥ ४६ ॥ शरावती, शरानंदा,

वरदा वंदिता विद्या वैष्णवी विमलाकृतिः ॥ वाराही विरजा वर्षा वरलक्ष्मीर्विलासिनी ॥ १४० ॥ विनता व्योममध्यस्था वारिजासनसंस्थिता ॥ वारुणो वेणुसंभूता वीतिहोत्रा विरूपिणी ॥ ४१ ॥ वायुमण्डलमध्यस्था विष्णुरूपा विधिप्रिया ॥ विष्णुपत्नी विष्णुमती विशालाक्षी वसुन्धरा ॥ ४२ ॥ वामदेवप्रिया वेला वज्रिणी वसुदोहिनी ॥ वेदाक्षरपरीतांगी वाजपेयफलप्रदा ॥ ४३ ॥ वासवी वामजननी वैकुंठनिलया वरा ॥ व्यासप्रिया वर्मधरा वाल्मीकिपरिसेविता ॥ ४४ ॥ शाकंभरी शिवा शांता शरदा शरणागतिः ॥ शातोदरी शुभाचारा शुंभासुरविमर्दिनी ॥ ४५ ॥ शोभावती शिवा कारा शंकरार्धशरीरिणी ॥ शोणा शुभाशया शुभ्रा शिरः संधानकारिणी ॥ ४६ ॥ शरावती शरानन्दा शरज्ज्योत्स्ना शुभानना ॥ शरभा शूलिनी शुद्धशबरी शुकवाहना ॥ ४७ ॥ श्रीमती श्रीधरानंदा श्रवणानंददायिनी ॥ शर्वाणी शर्वरीवंद्या षड्भाषा षडृतुप्रिया ॥ ४८ ॥ षडाधारस्थितादेवी षण्मुखप्रियकारिणी ॥ षडंगरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता ॥ ४९ ॥ सरस्वती सदाधारा सर्वमंगलकारिणी ॥ सामगानप्रिया सूक्ष्मा सावित्री सामसंभवा ॥१५०॥

शरज्ज्योत्स्ना, शुभानना, शरभा, शूलिनी, शुद्धा, शबरी, शुकवाहना ॥ ४७ ॥ श्रीमती, श्रीधरानन्दा, श्रवणानन्ददायिनी, शर्वाणी शर्वरी वंद्या, षकारादि ५ नाम) षड्भाषा, षड्ऋतुप्रिया, षडाधारस्थिता देवी (मूलाधारमें आदिमें स्थित देवियोंकी स्वामिनी, षण्मुखप्रियकारिणी, षडंगरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता (षडंगरूप देवताओंसे नमस्कृत) तथा असुरोंसे नमस्कृत ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ (सकारादि २७ नाम) सरस्वतीसदाधारा, सर्वमंगलकारिणी, सामगानप्रिया, सूक्ष्मा, सावित्री, सामसंभवा ॥ १५० ॥

सर्ववासा, सदानन्दा, सुस्तनी, सागराम्बरा, सर्वैश्वर्यप्रिया, सिद्धि, साधुबंधु परा (पद) क्रमा, अपनें भक्तोंके जो बांधव तिनमें विचरनेवाली अर्थात अपने भक्तोंके भक्तोंमें दयावती ॥ ५१ ॥ सप्तर्षिमंडलमें प्राप्त, सोममंडलवासिनी सर्वज्ञा, सान्द्रकरुणा, समाना धिकवर्जिता ॥ ५२ ॥ सर्वोत्तुंगा, संगहीना, सद्गुणा, सकलेष्टदा, सरघा (मधुमक्षिकारूप) सूर्यतनया, सुकेशी, सोमसंहति ॥ ५३ ॥ (हकारादि चारनाम) हिरण्यवर्णा, हारिणी, ह्रींकारी हंसवाहिनी, (क्षकारादि तीन नाम) क्षौमवस्त्रपरीतांगी, क्षीराब्धितनया, क्षमा ॥ ५४ ॥ (गायत्री आदि आठ नाम मातृका क्रम रहित हैं) गायत्री सावित्री, पर्वती, सरस्वती,वेदगर्भा, वरारोहा, श्रीगायत्री पराम्बिका ॥ ५५ ॥ हे नारद ! यह गायत्रीके सहस्रनाम पुण्यकारी पापनाशक महासम्पत्तिदायक हैं ॥ ५६ ॥ यह नाम गायत्रीके संतुष्ट

सर्वावासा सदानंदा सुस्तनी सागरांबरा ॥ सर्वैश्वर्यप्रिया सिद्धिः साधुबंधुपराक्रमा ॥ ५१ ॥ सप्तर्षिमंडलगता सोममंडल वासिनी ॥ सर्वज्ञा सांद्रकरुणा समानाधिकवर्जिता ॥ ५२ ॥ सर्वोत्तुंगा संगहीना सद्गुणा सकलेष्टदा ॥ सरघा सूर्यतनया सुकेशी सोमसंहतिः ॥ ५३ ॥ हिरण्यवर्णा हरिणी ह्रींकारी हंसवाहिनी ॥ क्षौमवस्त्रपरीतांगी क्षीराब्धितनयाक्षमा ॥ ५४ ॥ गायत्री चैव सावित्री पार्वती च सरस्वती ॥ वेदगर्भा वरारोहा श्रीगायत्री परांबिका ॥ ५५ ॥ इतिसाहस्रकं नाम्नां गायत्र्याश्चैव नारद ॥ पुण्यदं सर्वपापघ्नं महासंपत्तिदायकम् ॥५६॥ एवं नामानि गायत्र्यास्तोषोत्पत्तिकराणि हि ॥ अष्टम्यां च विशेषेण पठितव्यं द्विजैः सह ॥५७॥ जपं कृत्वाहोम पूजाध्यानं कृत्वा विशेषतः ॥ यस्मै कस्मै न दातव्यं गायत्र्यास्तु विशेषतः॥ ५८ ॥ सुभक्ताय सुशिष्याय वक्तव्यं भूसु राय वै ॥ भ्रष्टेभ्यः साधकेभ्यश्च बांधवेभ्यो न दर्शयेत् ॥ ५९ ॥ यद्गृहे लिखितं शास्त्रं भयं तस्य न कस्यचित् ॥ चञ्चलापि स्थिरा भूत्वा कमला तत्र तिष्ठति ॥१६०॥ इदं रहस्यं परमं गुह्याद्गुह्यतरं महत् ॥ पुण्यप्रदं मनुष्याणां दरिद्राणांनिधिप्रदम् ॥ ६१ ॥ मोक्षप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदम् ॥ रोगाद्वै मुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ ६२ ॥

करनेवाले हैं ब्राह्मणोंके सहित अष्टमीको पढने चाहिये ॥ ५७ ॥ जप होम पूजा और विशेषरूप ध्यान करके आराधना करे यह गायत्री जिस किसीको न देवी चाहिये ॥ ५८ ॥ सुभक्त सुशिष्य ब्राह्मणके निमित्त कहनी चाहिये भ्रष्टसाधक तथा बांधवोंको न दिखावे ॥ ५९ ॥ जिसके घरमें यह शास्त्र लिखा है उसको कुछ भय नहीं होता, चंचला लक्ष्मी उस स्थानमें स्थित होकर रहती है ॥ ६० ॥ यह परम रहस्य गुप्तसे भी गुप्त है यह मनुष्योंको पुण्य और दरिद्रियोंको निधि देनेवाला है ॥ ६१ ॥ मुमुक्षुओंको मोक्ष और कामियोंको सब कामना देनेवाला है,रोगी रोगसे बँधा हुआ बंधनसे मुक्त हो जाता है ॥ ६२ ॥

जो मनुष्य ब्रह्महत्यारे सुरापीनेवाले सुवर्णके चोर गुरदारगामी हैं वह भी इसका जप करके पातकोंसे छूटजाते हैं ॥ ६३ ॥ असत्य प्रतिग्रह और विशेषकर अभक्ष्यभक्षण करनेसे तथा पाखंड और असत्यके पापसेही छूटता है ॥ ६४ ॥ हे नारद ! यह निर्मल रहस्य आपसे कहा यह मनुष्योंको ब्रह्मसायुज्यका देनेवाला है सत्य २ कहता हूं इसमें संदेह नहीं ॥ १६५ ॥ इतिश्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीनारदजी बोले मैंने गायत्री सहस्रनाम महापुण्यफल देनेवाला सुना जो स्तोत्र महा उन्नति करने वाला, महाभाग्य करने वाला है ॥१॥ अब दीक्षालक्षण सुननेकी इच्छा करता हूं जिसके विना देवीमंत्रमें अधिकार सिद्ध नहीं होता ॥२॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य स्त्रियोंको सामान्य विधि और विस्तारसे कहो ॥३॥ श्रीनारायण बोले भावि

ब्रह्महत्या सुरापानं सुवर्णस्तेयिनो नराः ॥ गुरुतल्पगतो वापि पातकात्न्मुच्यते सकृत् ॥ ६३ ॥ असत्प्रतिग्रहाच्चैवाऽभक्ष्यभक्षाद्वि शेषतः ॥ पाखंडानृत्यमुख्यभ्यः पाठनादेव मुच्यते ॥ ६४ ॥ इदं रहस्यममलं मयोक्तं पद्मजोद्भव ॥ ब्रह्मसायुज्यदं नृणां सत्यं संत्य न संशय ॥१६५॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे गायत्रीसहस्रनाम स्तोत्रकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ श्रीनारद उवाच ॥ श्रुतं सहस्रनामाख्यं श्रीगायत्र्याः फलप्रदम् ॥ स्तोत्रं महोन्नतिकरं महाभाग्यकरं परम् ॥१॥ अधुना श्रोतुच्छामि दीक्षालक्षणमुत्तमम् ॥ विना येन न सिध्येत देवीमन्त्रेऽधिकारिता ॥ २ ॥ ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां विशां स्त्रीणां तथैव च ॥ सामान्यविधिना सर्वं विस्तरेण वद प्रभो ॥ ३ ॥ श्रीनारायण उवाच ॥ शृणु दीक्षां प्रवक्ष्यामि शिष्याणां भाविनात्मनाम् ॥ देवाग्निगुरुपूजादावधिकारोयथा भवेत् ॥ ४ ॥ दिव्यं ज्ञानं हि या दद्यात्कुर्यात्पापक्षयं तु या ॥ सैव दीक्षेति संप्रोक्ता वेदतंत्रविशारदैः ॥ ५ ॥ अवश्यं सा तु कर्तव्याय तो बहुफलामता ॥ गुरुशिष्यावुभावत्राप्यतिशुद्धावपेक्षितौ ॥ ६ ॥ गुरुस्तु विधिवत्प्रा तःकृत्यं सर्वं विधाय च ॥ स्नानसंध्यादिकं सर्वं यथा विधि विधाय च ॥ ७ ॥ कमण्डलुकरो मौनी गृहं यायात्सरित्तटात् ॥ यागमण्डपमासाद्य विशेत्तत्रासने वरे ॥ ८ ॥

तात्मा शिष्योंको दीक्षा विधान कहता हूं जिससे देव अग्नि गुरु पूजाकी विधिमें जिस प्रकार अधिकार हो ॥ ४ ॥ जो दिव्य ज्ञान दे तथा पापक्षय करे विद्या विशारदोंने उसीका नाम दीक्षा कहा है ॥५॥ यह अवश्य करनी चाहिये जिससे वह फल अधिक देनेवाली है इसमें गुरुशिष्योंकी शुद्धि अधिक अपेक्षित है ॥ ६ ॥ गुरु विधिपूर्वक सब प्रातःकृत्य करके संध्या स्नानादि सब यथाविधि विधानकर ॥७॥ कमंडलु हाथमें लिये मौनी हो सरित्के किनारेसे घर आ जाय फिर योगमण्डपमें प्राप्त हो वर आसनमें स्थित हो ॥ ८ ॥

दे. भा. आचमन कर प्राणायामपूर्वक गंध पुष्पसे युक्त सतवार फट्‌ अस्त्रमंत्रसे जलको साधन करे ॥ ९ ॥ बुद्धिमान्‌ उस जलसे अस्त्रमंत्रको उच्चारण करता हुआ
॥१५॥ मंडपके द्वारेको प्रोक्षण कर फिर पूजा आरंभ करे ॥ १० ॥ द्वारके ऊर्ध्वफलके प्रथम प्रान्तमें गणनाथ मध्यमें लक्ष्मी और दूसरेमें सरस्वतीकी
मंत्रपूर्वक धूप दीपसे पूजा करे ॥ ११ ॥ दक्षिणद्वारकी शाखामें गंगा और विघ्नेशकी पूजाकरे द्वारकी वाम शाखामें क्षेत्रपाल और यमुना की पूजा करे
॥१२॥ देहलीमें अस्त्रदेवताकी फट्‌ मंत्रसे पूजा करे सब प्रकारसे यह चिंता करे यह दृश्य सब देवी मय है सब जगह पूजे ॥ १३ ॥ इस मन्त्रके जपसे दिव्य
विघ्नोंको दूर करे अस्त्रमंत्रके जपसे अन्तरिक्ष और पादाघातसे भूमिके विघ्नोंको दूर करे ॥ १४ ॥ बाँईशाखाको स्पर्श करता हुआ पीछे दक्षिण चरणके

आचम्य प्राणानायम्य गंधपुष्पविमिश्रितम्‌ ॥ सप्तवारास्त्रमन्त्रेण जप्तं वारि सुसाधयेत्‌ ॥ ९ ॥ वारिणा तेन मतिमानस्त्रमन्त्रं समुच्चरन्‌ ॥ प्रोक्षयेद्द्वामखिलं ततः पूजां समाचरेत्‌ ॥ १० ॥ ऊर्ध्वोदुंबरके देवं गणनाथं तथाश्रियम्‌ ॥ सरस्वतीं नाममन्त्रैः पूजयेद्गंध पुष्पकैः ॥ ११ ॥ द्वारदक्षिणशाखायां गंगा विघ्नेशमर्चयेत्‌ ॥ द्वारस्य वामशाखायां क्षेत्रपालं च सूर्यजाम्‌ ॥ १२ ॥ देहल्यां पूजये दस्त्रदेवतामस्त्रमन्त्रतः ॥ सर्वं देवीमयं दृश्यमिति संचिन्त्य सर्वतः ॥ १३ ॥ दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नानस्त्रमन्त्रजपेन तु ॥ अंतरिक्षगतान्वि घ्नान्पादघातैस्तु भूमिगान्‌ ॥ १४ ॥ वामशाखां स्पृशन्पश्चात्प्रविशेद्दक्षिणांघ्रिणा ॥ प्रविश्य कुंभं संस्थाप्य सामान्यार्घ्यं विधाय च ॥ १५ ॥ तेन चाऽर्घ्यजलेनापि नैर्ऋत्यां दिशिपूजयेत्‌ ॥ वास्तुनाथं पद्मयोनिं गंधपुष्पाक्षतादिभिः ॥ १६ ॥ ततः कुर्यात्पंचगव्यं तेन चाऽर्घ्योदकेन च ॥ तोरणस्तंभपर्यंतं प्रोक्षयेन्मण्डपं गुरुः ॥ १७ ॥ सर्वं देवीमयं चेदं भावयेन्मनसा किल ॥ मूलमंत्रं जपन्भक्त्या प्रोक्षणं स्याच्छराणुना ॥१८॥ शरमन्त्रं समुच्चार्य ताडयेन्मण्डपक्ष्माम्‌ ॥ हुं मंत्रं तु समुच्चार्य कुर्यादभ्युक्षणं ततः ॥ १९ ॥

चौखटके उसपार प्रवेश कर मंडपमें जाय सामान्य अर्घ्यदे कुंभस्थापन करे ॥ १५ ॥ उस अर्घ्यदानके पश्चात्‌ नैर्ऋत्यदिशामें पूजाकरे वास्तोष्पति और ब्रह्मा
भा. टी द्वा इनकी गंध पुष्प अक्षतादिसे पूजा करे ॥१६॥ फिर उस अर्घ्यजलसे पंचगव्य करे तोरणस्तंभपर्यन्त गुरु मंडपका प्रोक्षण करे ॥१७॥ और मनसे भावना करे कि,
अ० ७ यह सब देवीमय है, भक्तिसे मूलमंत्रका जप और अस्त्रमंत्रसे प्रोक्षण करे ॥ १८ ॥ शरमंत्र (फट्‌) का उच्चारण करके मण्डपकी भूमिको ताडन करे हुं मन्त्रका
उच्चारण कर अभ्युक्षण (सेक) करे ॥ १९ ॥

अन्तर धूपोंसे धूपित करे विकरोंको विकरित करे, जल चंदन, सरसों, भस्म, दूर्वांकुर, अक्षत यह विकिर सब विघ्नोंके नाशक हैं कुशके पुंञ्जोंसे मार्जनी बनाय मार्जन करे ॥ २० ॥ हे मुने ! उस पुंजको ईशान दिशामें करके मार्जनकरे और पुण्याहवाचन करके दीन और नाथोंको सन्तुष्ट करे ॥ २१ ॥ फिर अपने गुरुको प्रणाम कर मृदु आसन पर बैठे विधिपूर्वक पूर्व मुखकर ध्यानकर मंत्रके देवता का ध्यान कर ॥ २२ ॥ पूर्वोक्तप्रकारसे भूतशुद्धि आदि करके ऋषि आदिका न्यास करके मंत्र देना चाहिये ॥ २३ ॥ मंत्रके ऋषिको शिरमें मुखको छन्दमें देवताको हृदयमें बीजको गुह्यमें शक्तिको ॥ २४ ॥ चरणोंमें न्यास करके पीछे तीन ताली बजाय, फिर तीन चुटकी बजाकर दिग्बंधन करे ॥ २५ ॥ फिर प्राणायामकर मूलमंत्रका उच्चारण करते हुये वेदमें मातृकान्यास

धूपयेदंतरं धूपैर्विकरान्विकिरेत्ततः ॥ मार्जयेत्तांस्तु मार्जन्या कुशनिर्मितया पुनः ॥ २० ॥ ईशानदिशि तत्पुंजं कृत्वा संस्थापयेत्मुने ॥ पुण्याहवाचनं कृत्वादीनानाथांश्च तोषयेत् ॥ २१ ॥ विशेन्मृद्वासने पश्चान्नमस्कृत्य गुरुं निजम् ॥ प्राङ्मुखो विधिवद्ध्यात्वा देयमन्त्रस्य देवताम् ॥ २२ ॥ भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ॥ ऋष्यादिन्यासकं कुर्याद्देयमन्त्रस्य वै मुने ॥ २३ ॥ न्यसेन्मुनिं तु शिरसि मुखे छन्दः समीरितम् ॥ देवतां हृदयांभोजे गुह्ये बीजं तु पादयोः ॥ २४ ॥ शक्तिं विन्यस्य पश्चात्तु तालत्रयरवात्ततः ॥ दिग्बन्धं कारयेत्पश्चाच्छोटिकाभिस्त्रिभिर्नरः ॥ २५ ॥ प्राणायामन्ततः कृत्वा मल मंत्रमनुस्मरन् ॥ मातृकां विन्यसेद्देहे तत्प्रकारस्तथोच्यते ॥ २६ ॥ ॐ अं नम इति प्रोच्य न्यसेच्छिरसि मन्त्रवित् ॥ एवमेव तु सर्वेषु न्यसेत्स्थानेषु वै मुने ॥ २७ ॥ मूलमंत्रं षडंगं च न्यसेदंगेषु सत्तमः ॥ अंगुष्ठादिष्वंगुलीषु हृदयादिषु च क्रमात् ॥ २८ ॥ नमः स्वाहावषड्चुक्तैर्हुंवौषट्फट्पदान्वितैः ॥ प्रणवादियुतैर्मन्त्रैः षड्भिरेवं षडंगकम् ॥ २९ ॥ वर्णन्यासादिकं पश्चान्मूलमंत्रस्य योजयेत् ॥ स्थानेषु तत्तत्कल्पोक्तेष्विति न्यासविधिः स्मृतः ॥ ३० ॥ ततो निजे शरीरेऽस्मिंश्चितये दासनं शुभम् ॥ दक्षांसे च न्यसेद्धर्मं वांमासे ज्ञानमेव च ॥ ३१ ॥

करे उसका प्रकार कहते हैं ॥ २६ ॥ ओं अंनमः कहकर शिरमें न्यास करे ओं आंनमः ओं इंनमः आदिसे हे मुने ! सब स्थानोंमें न्यास करे ॥ २७ ॥ जो शिष्यको मंत्र दिया जाय उसका षडंगन्यास करे अंगुली और हृदयादि क्रमसे न्यास करे ॥ २८ ॥ जैसे हृदयाय नमः शिरसेस्वाहा शिखायैवषट् कवचायहुम् नेत्रत्रयायवौषट् अस्त्रायफट् इस रीतिसे करे इस प्रकार करके ॥ २९ ॥ फिर मूलमंत्रसे यथायोग्य वर्णन्यास करे उन सब स्थानोंमें करे यही न्यासकी विधि है ॥ ३० ॥ फिर अपने शरीरमें आसनकी कल्पना कर दहिनी ओर धर्म बायेमें ज्ञानका न्यास करे ॥ ३१ ॥

बाईं ऊरुमें वैराग्य, दाहिनीमें ऐश्वर्य, मुखमें अधर्मका न्यास करे ॥ ३२ ॥ यथा वामपार्श्वमें अधर्माय नमः नाभिमें अवैराग्याय नमः दक्षिणपार्श्वमें अज्ञानाय नमः अनैश्वर्य्यायनमः यह पढे ॥ ३३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! पीठके धर्मादि पाद हैं और अधर्मादि अंग मुनियोंने स्मरण किये हैं ॥ ३४ ॥ पीठ (पलंग) पर अनन्तका न्यास करे अनंतमें प्रपंच कमलका ध्यान करे कमलमें सूर्य चन्द्र और अग्निका ध्यान करना चाहिये ॥ ३५ ॥ सबको कलासहित न्यास करे उनकी कला संक्षेपसे कहते हैं सूर्यकी बारह और चन्द्रमाकी सोलह कला ॥ ३६ ॥ अग्निकी दश कला हैं इनसे युक्त स्मरण करे इसके उपरांत सत्वादि

वामोरौ चापि वैराग्यं दक्षोरावथ विन्यसेत् ॥ ऐश्वर्यं मुखदेशे तु मुने ध्यायेदधर्मकम् ॥ ३२ ॥ वामपार्श्वे नाभिदेशे दक्षपार्श्वे तथा पुनः ॥ नञादींश्चापि ज्ञानादीन्पूर्वोक्तानेव विन्यसेत् ॥ ३३ ॥ पादा धर्मादयः प्रोक्ताः पीठस्य मुनिसत्तम ॥ अधर्माद्यास्तु गात्राणि स्मृतानि मुनिपुंगवैः ॥ ३४ ॥ मध्येऽनंतं हृदि स्थाने न्यसेन्मृद्वासने स्थले ॥ प्रपंचपद्मं विमलं तस्मिन्सूर्येन्दुपावकान् ॥ ३५ ॥ न्यसेत्कलायुतान्मत्री संक्षेपात्ता वदाम्यहम् ॥ सूर्यस्य द्वादश कलास्ता इंदोः षोडश स्मृताः ॥ ३६ ॥ दश वह्नेः कलाः प्रोक्तास्ताभिर्यु क्तांस्तु तान्स्मरेत् ॥ सत्त्वं रजस्तमश्चैव न्यसेत्तेषामथोपरि ॥ ३७ ॥ आत्मानमंतरात्मानं परमात्मानमेव च ॥ ज्ञानात्मानं न्यसेद्विद्वा नित्थं पीठस्य कल्पना ॥ ३८ ॥ अमुकासनाय नम इति मन्त्रेण साधकः ॥ आसनं पूजयित्वा तु तस्मिन्ध्यायेत्परांबिकाम् ॥ ३९ ॥ कल्पोक्तविधिना मन्त्री देवमन्त्रस्य देवताम् ॥ मानसै रुपचारैश्च पूजयेत्तां यथाविधि ॥ ४० ॥ मुद्राः प्रदर्शयेद्विद्वान्कल्पोक्ता मोदका रिकाः ॥ याभिर्विरचिताभिस्तु मोदो देव्यास्तु जायते ॥ ४१ ॥ नारायण उवाच ॥ ततः स्ववामभागाग्रे षट्कोणोपरि वर्तुलम् ॥ चतुरस्रयुतं सम्यङ्मध्ये मण्डलमालिखेत् ॥ ४२ ॥

गुणोंका न्यास करे ॥ ३७ ॥ आत्मा अन्तरात्मा परमात्मा ज्ञानात्मा इनका न्यास पूर्वादि दिशाओंमें करे, इस प्रकार पीठ (आसन) की कल्पना है ॥ ३८ ॥ अमुकासनाय नमः इससे साधक आसनकी पूजा करे फिर पराम्बिकाका ध्यान करे ॥ ३९ ॥ जो मंत्र देना है देवताकी कल्पकी विधिसे मानसी पूजा करके ॥ ४० ॥ विद्वान् कल्पमें कही आनंददायक मुद्रा दिखावे जिनको दिखानेसे देवी बहुत प्रसन्न होती है ॥ ४१ ॥ नारायण बोले फिर अपने वामभागमें षट्कोण करे फिर गोलाकार बनावे उसपर चौकोन चन्दनसे बनावे ॥ ४२ ॥

उसके मध्यमें त्रिकोण लिखकर शंखमुद्रा दिखावे, फिर छहों कोनोंमें देनेवालेमंत्रके षडंगोंकी फूलोंसे पूजा करे ॥ ४३ ॥ यह अग्नि आदिकोणमें खड़ंग पूजा करे फिर शंखके नीचेके आधार पात्रको लेकर हे मुनिराज ! ॥ ४४ ॥ फट् इस अस्त्र मंत्रसे उनको प्रोक्षण कर उस मंडलमें स्थापन करे मं वह्निमंडलाय दश कलात्मने दुर्गा देव्यर्घ्यपात्र स्थापनाय नमः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ यह शंखके आधारपात्रके स्थापनका मंत्र है आधारमें पूर्वादि दिशाके क्रमसे अग्निकी दशक लाओंकी पूजा करे ॥ ४७ ॥ फिर मूलमंत्रसे शंखको प्रोक्षणकर मूलमंत्रको स्मरण करते हुए उस आधारमें स्थापन करे ॥ ४८ ॥ अं सूर्यमण्डलाय द्वादश

मध्येत्रिकोणं संलिख्य शंखमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ षडंगानि च षट्कोणेष्वर्चयेत्कुसुमादिभिः ॥ ४३ ॥ अग्न्यादिषु तु कोणेषु षडंगार्चनमा चरेत् ॥ आधारपात्रमादाय शंखस्य मुनिसत्तम ॥ ४४ ॥ अस्त्रमंत्रेण संप्रोक्ष्य स्थापयेत्तत्र मंडले ॥ मं वह्निमंडलायोक्त्वा ततो दश कलात्मने ॥ ४५ ॥ अमुकदेव्या अर्घ्यपात्रस्थानाय नम इत्यपि ॥ मन्त्रोऽयमुक्तः शंखस्याप्याधारस्थापने बुधैः ॥ ४६ ॥ आधारे पूर्वमारभ्य प्रदक्षिणक्रमेण तु ॥ दश वह्निकलाः पूज्या वह्निमंडलसंस्थिताः ॥ ४७ ॥ ततो वै मूलमन्त्रेण प्रोक्षितं शंखमुत्तमम् ॥ स्थापयेत्तत्र चाधारे मूलमन्त्रमनुस्मरन् ॥ ४८ ॥ अं सूर्यमंडलायोक्त्वा द्वादशांते कलात्मने ॥ अमुकदेव्यर्घ्यपात्राय नम इत्युच्चरेत्ततः ॥ ४९ ॥ शं शंखाय पदं प्रोच्य नम इत्येत दुच्चरेत् ॥ प्रोक्षयेत्तेन तं शंख तस्मिन्द्वादश पूजयेत ॥ ५० ॥ सूर्यस्य द्वादशकलास्त पिन्याद्या यथाक्रमम् ॥ विलोममातृकां प्रोच्य मूलमंत्रं विलोमकम् ॥ ५१ ॥ जलैरापूरयेच्छंखंतत्र चेंदोः कलां न्यसेत् ॥ उं सोममंड लायोक्त्वांते षोडशकलात्मने ॥ ५२ ॥ अमुकार्घ्यामृतायेति हृन्मंत्रांतो मनुः स्मृतः ॥ पूजयेमनुना तेन जलं तु सृणिमुद्रया ॥ ५३ ॥ तीर्थान्यावाह्य तत्रैवाप्यष्ट कृत्वोजपेन्मनुम् ॥ षडंगानिजले न्यस्य हृदांसे पूजयेदपः ॥ ५४ ॥

कलात्मने दुर्गादेव्यर्घपात्रायनमः यह मंत्र उचारण करे ॥ ४९ ॥ फिर शं शंखायनमः यह मंत्र पढकर शंखपर जल छिडके उसमें बारह कलाका पूजन करे ॥ ५० ॥ सूर्यकी जो तापिनी आदि बारह कला हैं उनको यथाक्रमसे पूजे उलटी मातृका और मूल मंत्र पढके ॥ ५१ ॥ जलसे शंखको पूर्णकर उसमें सोम कलाका न्यास करे ॐ सोममंडलाय षोडशकलात्मने दुर्गादेव्यर्थार्घ्यामृताय हृदयाय नमः इस मंत्रसे कुशमुद्रासे जलकी पूजा करे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ उसमें तीर्थोंका आवाहन कर आठवार देय मंत्रको जपकर जलमें षडंग न्यासकर हृदा इस मंत्रसे जलकी पूजा करे ॥ ५४ ॥

आठवार मंत्र जप कर मत्स्यमुद्रासे उसको आच्छादन करे फिर उसके दक्षिणभागदें शंखकी प्रोक्षणी धर दे ॥ ५५ ॥ फिर शंखसे कुछ जल लेकर उससे सब ओर प्रोक्षण करे, फिर पूजाद्रव्य और अपनेको विशुद्ध भावना करे ॥ ५६ ॥ नारायण बोले फिर अपने आगे वेदीमें सर्वतोभद्र मण्डल लिखकर जडहनके चावलसे उसकी कर्णिकाको रित करे ॥ ५७ ॥ वहां कुशाओंको फैलाकर २७कुशोंका कूर्च बनाय स्थापित करे आधारशक्तिसे आरम्भकर मंत्रान्ततक पीठकी पूजा करे ॥ ५८ ॥ फिर छिद्र रहित सुन्दर कलश स्थापन कर फट् मंत्र पढकर जलसे पोंछे फिर तीन भागके लाल डोरेसे उसे लपेटे ॥ ५९ ॥ नवरत्न कर्च गंधादि उसमें डाले डालनेके समय ॐ कार मन्त्र पढे और उसपर स्थापन करे ॥ ६० ॥ कुम्भको पीठपर धर उसकी एकत्वभावना करे और

अष्टकृत्वो जपेन्मूलं छादयेन्मत्स्यमुद्रया ॥ ततो दक्षिणदिग्भागे शंखस्यप्रोक्षणीं न्यसेत् ॥ ५५ ॥ शंखांबुकिंचिन्निक्षिप्य प्रोक्षयेत्तेन सर्वतः ॥ पूजाद्रव्यं निजात्मानं विशुद्धं भावयेत्ततः ॥५६॥ नारायण उवाच ॥ ततः स्वपुरतो वेद्यां सर्वतोभद्रमंडलम् ॥ संलिख्य कर्णिका मध्यं पूरयेच्छालितंडुलैः ॥५७॥ आस्तीर्य दर्भास्तत्रैव न्यसेत्कूर्चं सलक्षणम् ॥ आधारशक्तिमारभ्य पीठमन्वंतमर्चयेत ॥५८॥ निर्व्रणं कुंभमादायाप्यस्त्राद्भिः क्षालितांतरम् ॥ तंतुना वेष्टयेत्तंतुत्रिगुणेनारुणेन च ॥ ५९ ॥ नवरत्नोदरं कूर्चयुतं गंधादिपूजितम् ॥ स्थापयेत्तत्र पाठे तु तारमंत्रणदेशिकः ॥६०॥ ऐक्यं कुंभस्य पीठस्य भावरयेत्पूयेत्ततः ॥ मातृकां प्रतिलोमेन जपंस्तीर्थोदकैर्मुने ॥ ६१ ॥ मूलमंत्र च संजप्य पूरयेद्देवताधिया ॥ अश्वत्थपनसाम्राणां कोमलैर्नवपल्लवैः ॥ ६२ ॥ छादयेत्कुंभवदनं चषकं सफलाक्षतम् ॥ संस्थापयेत मति मान्वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥ ६३ ॥ प्राणस्थापनमंत्रेण प्राणस्थापनमाचरेत् ॥ आवाहनादिमुद्राभिर्मोदयेद् देवतां पराम् ॥ ६४ ॥ ध्यायेत्तां परमेशानीं कल्पोक्तेन प्रकारतः ॥ स्वागतं कुशलप्रश्नंदेव्या अग्रे समुच्चरेत् ॥ ६५ ॥ पाद्यं दद्यात्ततोऽप्यर्घ्यं ततश्चाच मनीयकम् ॥ मधुपर्कं च साभ्यंगं देव्यै स्नानं निवेदयेत् ॥ ६६ ॥

क्षकार से ले अकारपर्यंत उलटे अक्षर पढ कर कुम्भको पीठपर धर ॥ ६१ ॥ तीर्थ जलसे पूरित करे और मूलमंत्र जपे अश्वत्थ पनस आमके कोमल नवीन पत्तोंसे ॥ ६२ ॥ घटका मुख ढकदे उसपर चषक फल और अक्षतरखकर बुद्धिमान् दो वस्त्रोंसे वेष्टन करे ॥ ६३ ॥ प्राणप्रतिष्ठाके मंत्रोंसे उसमें प्राणप्रतिष्ठा करे आवाहनादि मुद्रा दिखाकर देवताओंको प्रसन्न करे ॥ ६४ ॥ और कल्पोक्तप्रकारसे उस परमेशानीका ध्यानकर देवीके आगे स्वागत कुशल प्रश्न करे ॥ ६५ ॥ पाद्य अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, अभ्यंग स्नान यह देवीके निवेदन करे ॥ ६६ ॥

फिर लाल अलसीके निर्मल वस्त्र प्रदान करे जो अनेक मणियोंसे युक्त हों परंतु अकल्पोंकी कल्पना न करे ॥ ६७ ॥ मातृका वर्णोंसे संपुटित हुए मंत्रसे भली भांति पूजा करे. फिर देवीके अंगमें चन्दनादि लगावे ॥ ६८ ॥ काले अगर और कपूरकी गंध केशर चंदन कस्तूरीके सहित हे मुने ! ॥ ६९ ॥ फिर कुंदादिके फूल देवीको निवेदन करे अगर कपूर उशीर चन्दन शर्करा इसको धूप ॥ ७० ॥ मधुडालकर दे यह धूप देवीको बहुत प्रिय है फिर अनेक दीपक देकर बुद्धिमान् नैवेद्य दे ॥ ७१ ॥ प्रतिद्रव्यके पीछे प्रोक्षणीयपात्रको स्थापन करे फिर कल्पके कहे आवरणोंके अनुसार अंगपूजा करे ॥ ७२ ॥ भलीप्र

वाससी च ततो दद्याद्रक्तक्षौमे सुनिर्मले ॥ नानामणिगणाकीर्णानाकल्पान्कल्पयेत्ततः ॥ ६७ ॥ मनुना पुटितैर्वर्णैर्मातृकायाः विधानतः ॥ देव्या अंगेषु विन्यस्य चंदनाद्यैः समर्चयेत् ॥ ६८ ॥ गंधः कालागरूभवः कर्पूरेण समन्वितः ॥ काश्मीरं चंदनं चापि कस्तूरीसहितं मुने ॥ ६९ ॥ कुंदपुष्पादिपुष्पाणि परदेव्यै समर्पयेत् ॥ धूपोऽगरुपुरुव्रातो शीरचंदनशर्कराः ॥ ७० ॥ मधुमिश्राः स्मृता देव्या प्रियाधूपात्मना सदा ॥ दीपाननेकान्दत्त्वाथ नैवेद्यं दर्शयेत्सुधीः ॥ ७१ ॥ प्रतिद्रव्यं जलं दद्यात्प्रोक्षणीस्थं न चान्यथा ॥ ततः कुर्यादंगपूजां कल्पोक्तावरणानि च ॥ ७२ ॥ सांगां देवीमथाभ्यर्च्य वैश्वदेवं ततश्चरेत् ॥ दक्षिणे स्थंडिलं कृत्वा तत्राधाय हुताशनम् ॥ ७३ ॥ मूर्तिस्थां देवतां तत्राऽऽवाह्य संपूज्य च क्रमात् ॥ तारव्याहृतिभिर्हुत्वा मूलमन्त्रेण वै ततः ॥ ७४ ॥ पंचविंशतिवारं तु पायसेन ससर्पिषा ॥ हुनेत्पश्चाद्व्याहृतिभिः पुनश्च जुहुयान्मुने ॥ ७५ ॥ गंधाद्यैरर्चयित्वा च देवी पीठे तु योजयेत् ॥ वह्निं विसृज्य हविषा परितो विकिरेद्बलिम् ॥ ७६ ॥ देवतायाः पार्षदेभ्यो गंधपुष्पादिसंयुतान् ॥ पंचोपचारान्दत्त्वाथ तांबूलं छत्रचामरे ॥ ७७ ॥

कार सांग देवीका अर्चन कर वैश्वदेव करे. वह इस प्रकार है कि दक्षिण और चौतरा बनाकर उसमें अग्नि स्थापना करे ॥ ७३ ॥ उसमें मूर्तिमें स्थित देवताका आवाहन कर क्रमसे पूजन करे फिर ॐ कार सहित व्याहृतियोंसे मूल मन्त्र पढकर आहुती दे ॥ ७४ ॥ पायस (खीर) और घृतकी २५ आहुती दे. हे मुने ! फिर अन्य साकल्यसे व्याहृतियोंसे आहुती दे ॥ ७५ ॥ फिर गंधादिसे पूजाकर देवीको आसनपर बैठावे फिर अग्निको विसर्जन कर सब ओरसे बलि बखेर दे ॥ ७६ ॥ देवताओंके पार्षदोंको गंधपुष्पादि संयुक्त पंच उपचारसे पूजन कर ताम्बूल छत्र चामर देकर ॥ ७७ ॥

१ ह्रीं मं ह्रीं ह्रीं मां ह्रीम् इत्यादि मंत्र हैं

देवीके आगे सहस्र वार मंत्र जपे फिर ईशानी देवीको जप समर्पण कर ईशानकोणमें ॥ ७८ ॥ कर्करीको रख उसपर दुर्गाको आवाहन कर पूजे और रक्ष रक्ष इस प्रकार उच्चारण कर नालसे छोडे जलसे ॥ ७९ ॥ फट् मन्त्र पढकर सब भूमि सींचदे फिर वहां कर्करीको स्थापन कर अस्त्रदेवताकी पूजा करे ॥ ८० ॥ पीछे गुरु शिष्यके साथ मौन हो भोजन करे उस रात्रिको यत्नपूर्वक उसी वेदीमें शयन करे ॥ ८१ ॥ नारायण बोले हे मुने ! सब स्थंडिल और कुंडके संस्कार कहते हैं, वह संक्षेपसे यथान्याय विधानसे कहता हूं ॥८२॥ मूलमंत्र उच्चारण कर कुंड देखे फट् मंत्रसे प्रोक्षण करे और उसो (हुं) कवचसे ताडन करे ॥ ८३ ॥ फिर तीन २ वार जलसे सींचकर पूर्व पश्चिमभागमें तीन तीन रेखा लिखे ॥ ८४ ॥ फिर प्रणवसे प्रोक्षण कर देवीके सिंहासनकी पूजा करे आधार

दद्याद्देव्यै ततो मन्त्रं सहस्रावृत्तितो जपेत् ॥ जपं समर्प्य चैशान्यां विकिरे दिशि संस्थिते ॥ ७८ ॥ कर्करीं स्थापयेत्तस्यां दुर्गामावाह्य पूजयेत् ॥ रक्ष रक्षेति चोच्चार्य्य नालमुक्तेन वारिणा ॥ ७९ ॥ अस्त्रमन्त्रं जपन्देशं सेचयेत्तु प्रदक्षिणम् ॥ कर्करीं स्थापये त्स्थाने पूजयेच्चास्त्रदेवताम् ॥ ८० ॥ पश्चाद्गुरुस्तु शिष्येण सह भुंजीत वाग्यतः ॥ तस्यां रात्रौ तु तद्वेद्यां निद्रां कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ ॥ ८१ ॥ नारायण उवाच ॥ ततः कुण्डस्य संस्कारं स्थण्डिलस्य च वा मुने ॥ प्रवक्ष्यामि समासेन यथाविधि विधानतः ॥ ८२ ॥ मूलमन्त्रं समुच्चार्य वीक्षयेदस्त्रमन्त्रतः ॥ प्रोक्षयेत्ताडनं कुर्यात्तेनैव कवचेन तु ॥ ८३ ॥ अभ्युक्षणं समुद्दिष्टं तिस्रस्तिस्रस्तवः परम् ॥ प्रागग्रा उदगग्राश्च लिखेल्लेखाः समंततः ॥ ८४ ॥ प्रणवेन समभ्युक्ष्य पीठं देव्याः समर्चयेत् ॥ आधारशक्तिमारभ्य पीठमन्त्रावसान कम् ॥ ८५ ॥ तस्मिन्पीठे समावाह्य शिवौ परमकारणौ ॥ गंधाद्यैरुपचारैश्च पूजयेत्तौ समाहितः ॥ ८६ ॥ देवीं ध्यायेदृतुस्नातां संसक्तां शंकरेण तु ॥ कामातुरां तयोः क्रीडां किंचित्कालं विभावयेत् ॥८७॥ अथ वह्निं समादाय पात्रेण पुरतो न्यसेत् ॥ क्रव्यादांशं परित्यज्य पूर्वोक्तैर्वीक्षणादिभिः ॥ ८८ ॥ संस्कृत्य वह्निं रंबीजमुच्चार्य तदनंतरम् ॥ चैतन्यं योजयेत्तस्मिन्प्रण वेनाभिमंत्रयेत् ॥ ८९ ॥

शक्तिसे आरंभ कर पीठमन्त्रपर्यन्त पूजे अर्थात् आधारशक्तये नमः अमुकदेवीपीठाय नमः कहकर पूजा करे ॥ ८५ ॥ उस पीठपर शिव पार्वतीका आवाहन कर गंधादि उपचारोंसे सावधान हो पूजन करे ॥ ८६ ॥ स्नान किये शंकरसहित देवीका ध्यान करे कि ऋतुस्नाता होकर शंकरमें सकाम मन लगाये हैं इस प्रकार कुछ काल उनकी क्रीडाको ध्यान करे ॥ ८७ ॥ फिर पात्रमें अग्नि लाकर सन्मुख धरे क्रव्याद अंशको छोड़कर पूर्वोक्त सब वीक्षणादि करे ॥ ८८ ॥ अच्छी प्रकार संस्कार कर रंजीबका उच्चारण कर सातवार प्रणवका उच्चारण कर उसमें चैतन्यता संयुक्त करे ॥ ८९ ॥

फिर गुरु धेनुमुद्रा दिखावे फट् मंत्रसे रक्षा करके हुं मन्त्रसे अवगुंठित करे ॥ ९० ॥ इसप्रकार गंधादिसे पूजाकर अग्निकुण्डपर तीनवार घुमाय कुण्डके निकट ओंकारजपता हुआ जाँघोंसे महीतलको स्पर्श करता हुआ ॥ ९१ ॥ शिवका वीर्यप्रकृतिमें गिरता है ऐसा समझ कर योनिरूप कुण्डमें अग्नि निक्षेप करे फिर शिवा और शिवको आचमन करावे ॥ ९२ ॥ हन २ दह २ पच २ सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा यह अग्निद्दीपनका मंत्र है ॥ ९३ ॥ जातवेद हुताशन प्रदीप्त अग्निको प्रणाम करता हूं जो सुवर्णके समान निर्मल सब ओर प्रदीप्त हैं ॥९४॥ इस मन्त्रसे परम आदरसे अग्निकी स्तुति करे फिर अग्निमंत्रसे षडंगन्यास करे ॥ ९५ ॥ अंग यह है सहस्रार्चिः स्वस्तिपूर्ण उत्तिष्ठ पुरुष धूमव्यापी सप्तजिह्व धनुर्धर यह क्रमसे अंग हैं ॥ ९६ ॥ यह जतियुक्त षडंग हैं इनका पूर्वोक्त

सप्तवारं ततो धेनुमुद्रां संदर्शयेद्गुरुः ॥ शरेण रक्षितं कृत्वा तनुत्रेणावगुंठयेत् ॥ ९० ॥ आचतं त्रिः परिभ्राम्य प्रादक्षिणेण्येन सत्तमः ॥ कुण्डोपरि जपंस्तारं जानुस्पृष्टमहीतलः ॥ ९१ ॥ शिवबीजधिया देव्या योनौ वह्निं विनिक्षिपेत् ॥ आचामयेत्ततो देवं देवीं च जगदंबिकाम् ॥ ९२ ॥ चिंतिंपिगलहनदहपचयुग्मं ततः परम् ॥ सर्वज्ञाज्ञापयस्वाहामन्त्रोऽय वह्निदीपने ॥ ९३ ॥ अग्निं प्रज्वलितं वंदे जातवेदं हुताशनम् ॥ सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् ॥ ९४ ॥ मन्त्रेणानेन तं वह्निं स्तुवीत परमादरात् ॥ ततो न्यसेद्वह्निमंत्रं षडंगं देशिकोत्तमः ॥ ९५ ॥ सहस्रार्चिः स्वस्तिपूर्ण उत्तिष्ठपुरुषः स्मृतः ॥ धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धर इति क्रमात् ॥ ९६ ॥ जातियुक्ताः षडंगाः स्युः पूर्वस्थानेषु विन्यसेत् ॥ ध्यायेद्वह्निं हेमवर्णां त्रिनेत्रं पद्मसंस्थितम् ॥ ९७ ॥ इष्टशक्तिस्व स्तिकाभीर्धारकं मंगलं परम् ॥ परिषिंचेत्ततः कुण्डं मेखलोपरिमन्त्रवित् ॥ ९८ ॥ दर्भैः परिस्तरेत्पश्चात्परिधीन्विन्यसेदथ ॥ त्रिकोणवृत्तषट्कोणसाष्टपत्रं सभूपुरम् ॥ ९९ ॥ यंत्र विभावयेद्वह्नेः पूर्वं वा संलिपेदथ ॥ तन्मध्ये पूजयेद्वह्निं मन्त्रेणानेन वै मुने ॥ १०० ॥ वैश्वानर ततो जातवेदः पश्वादिहावह ॥ लोहिताक्षपदं प्रोक्त्वा सर्वकर्माणि साधय ॥ १ ॥

प्रकारसे न्यास करे अर्थात् जातियुक्ताय नमः स्वाहा वषट्हुं वौषट् फट् यह पद लगावे ॐसहस्रार्चिषे हृदयाय नमः स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा इत्यादि मंत्र जानना ॥ ९७ ॥ वरमुद्रा, शक्ति, स्वस्तिक, अभयमुद्रा धारक परममंगल है फिर मंत्रका ज्ञाता कुण्डमेखलापर सिंचन करे ॥ ९८ ॥ फिर परिधीमें कुशा बिछाय फिर त्रिकोण षट्कोण अष्टपत्र ॥ ९९ ॥ इस प्रकार अग्नियंत्र जाने उसके मध्यमें नीचे लिखे मंत्रसे अग्निकी पूजा करे ॥१००॥ वैश्वानर ततो जातवेदः पश्वात् इह आवह लोहिताक्षपद सबकार्योंको साधन करो ॥ १ ॥

यह वह्नि जायान्त मंत्र है इससे अग्निकी पूजा करे छहों कोनोंके मध्यमें हिरण्या, गगना ॥ २ ॥ रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा अतिरिक्तका इस प्रकारसे अग्निकी सात जिह्वाओंका पूजन करके केसरोंसे अंगोंका पूजन कर ॥ ३ ॥ दलोंके मध्यमें स्वस्तिकधारिणी शक्तिका पूजन करे जातवेदा सप्तजिह्वा हव्यावाहन ॥ ४ ॥ अश्वोदरजसंज्ञ वैश्वानर कौमारतेजा विश्वमुख वेदमुख ॥ ५ ॥ "ॐ अग्नयेजातवेदसेनमः" इसप्रकार इनके मंत्र जाने और सब ओर वज्रादि आयुध लिये लोकपालोंकी पूजा करे ॥ ६ ॥ नारायण बोले फिर स्रुक् आज्यसंस्कार कर होम करे स्रुवसे घृतलेकर होम करे ॥ ७ ॥ और घृतके दक्षिण

वह्निजायांतको मन्त्रस्तेन वह्निं तु पूजा येत् मध्ये षट्स्वपि कोणेषु हिरण्या गगना तथा ॥ २ ॥ रक्ता कृष्णा सुप्रभा च बहुरूपाऽतिरक्तिका ॥ पूजयेत्सप्त जिह्वास्ता केसरे ष्वंगपूजनम् ॥ ३ ॥ दलेषु पूजयेन्मूर्तीः शक्तिः स्वस्तिकधारिणीः ॥ जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहन एव च ॥ ४ ॥ अश्वोदरज संज्ञोऽन्यः पुनर्वैश्वानराह्वयः ॥ कौमारतेजाः स्याद्वि श्वमुखो देवमुखः स्मृतः ॥ ५ ॥ ताराग्नय पदाद्याः स्युर्नत्यता वह्निमूर्तयः ॥ लोकपालांश्चतुर्दिक्षु वज्राद्यायुधसंयुतान् ॥ ६ ॥ नारायण उवाच ॥ ततः स्रुक्स्रुवसंस्कारावाज्यसंस्कार एव च ॥ कृत्वा होमं ततः कुर्यात्स्रुवेणादाय वै घृतम् ॥ ७ ॥ दक्षिणाद् घृतभागात्तु वह्नेर्दक्षिणलोचने ॥ जुहुयादग्नये स्वाहेत्येवं वै वामतोऽन्यतः ॥ ८ ॥ सोमाय स्वाहेति मध्याद् घृतमादाय सत्तम ॥ अग्नीषोमा भ्यां स्वाहेति मध्यनेत्रे हुनेत्ततः ॥ ९ ॥ पुनर्दक्षिण भागात्तु घृतमादाय वै मुखे ॥ अग्नये स्विष्टकृत्स्वाहेत्यनेनैव हुनेत्ततः ॥ ११० ॥ सताराभिर्व्याहृतिभिर्जुहुयादथ साधकः ॥ जहुयादग्निमंत्रेण त्रिवारं तु ततः परम् ॥ ११ ॥ ततस्तु प्रणवेनैवाऽप्यष्टावष्टौ घृताहुतीः ॥ गर्भाधानादिसंस्कारकृते तु जुहुयान्मुने ॥ १२ ॥ गर्भाधानं पुंसवनं सीमंतोन्नयनं ततः ॥ जातकर्मनामकर्मात्युपनिष्क्रमणं तथा ॥ १३ ॥ अन्नाशनं तथा चूडा व्रतबंधस्तथैव च ॥ महानाम्न्यं व्रतं पश्चात्तथौपनिषदं व्रतम् ॥ १४ ॥

भागमें अग्निके दक्षिण नेत्रमें हुने ॐ अग्नयेस्वाहा इसमंत्रसे होम करे ॥ ८ ॥ सोमायस्वाहा इससे मध्यभाग घृतसे अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा इससे मध्य नेत्रमें हुने ॥ ९ ॥ फिर दक्षिणभागसे घृतलेकर अग्निके मुखमें अग्नयेस्विष्टकृते स्वाहा इससे होम करे ॥ ११० ॥ फिर ॐभूर्भुवः स्वाहा इत्यादिसे आहुती करे फिर तीनवार पूर्वोक्त अग्निमंत्रसे आहुति दे ॥ ११ ॥ फिर प्रणवमंत्रसे आठ घीकी आहुति दे हे मुने ! इस प्रकार गर्भाधानादि संस्कार करनेके अर्थ हुने ॥ १२ ॥ वे ये हैं गर्भाधान, पुँसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म नामकर्म, निष्क्रमण ॥ १३ ॥ अन्नप्राशन, चूडाकरण व्रतबंध ॥ १४ ॥

गोदान, विवाह यह श्रुतिकथित कर्म है फिर शिव पार्वतीका पूजनकर विसर्जन करे ॥ १५ ॥ और अग्निके उद्देशसे साधक पांच समिधा हवन करे. फिर एक एक आवरणकी आहुति दे ॥ १६ ॥ फिर स्रुवसे चारबार घृत लेकर अपने आसनमें स्थित हुआ आहुति दे ॥ १७ ॥ फिर अग्निके वौषट् मंत्रपूर्वक महागणेशके मंत्रमें दश आहुति दे ॐ ॐ स्वाहा १ ॐ श्रींस्वाहा २ ॐश्रीं ह्रीं स्वाहा३ ॐश्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा ४ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा५ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गंस्वाहा ॐ श्रीं ह्रींक्लीं ग्लौं गंगणपतये स्वाहा ७ वरवरद ८ सर्वजनं मे वशं ९ आनय स्वाहा १० यह दश आहुति हैं ॥ १८ ॥ फिर अग्निमें पीठकी पूजाकर सुनानेवाले मंत्रके देवताका ध्यान अग्निमुखमें करे और २५ मूल मंत्रसे आहुति करे ॥ १९ ॥ अग्नि और देवताका एक मुख करनेके निमित्त

गोदानोद्वाहकौ प्रोक्ताः संस्कारः श्रुतिचोदिताः ततः शिवं पार्वतीं च पूजयित्वा विसर्जयेत् ॥ १५ ॥ जुहुयात्पंच समिधोवह्निमुद्दिश्य साधकः ॥ पश्चादावरणानां येकै कामाहुतिं हुनेत् ॥ १६ ॥ घृतं स्रुचिसमादाय चतुर्वारं स्रुवेण च ॥ पिधाय तां तु तेनैव मुने तिष्ठन्निजासने ॥ १७ ॥ वौषडंतेन मनुना वह्नेस्तु जुहुयात्ततः ॥ महागणेशमंत्रेण जुहुयादाहुतीर्दश ॥ १८ ॥ वह्नौ पीठं समभ्यर्च्य दे यमंत्रस्य देवताम् ॥ वह्नौ ध्यात्वा तु तद्वक्रे पंचविंशतिसंख्यया ॥ १९ ॥ मूलमंत्रेण जुहुयाद्वक्रैकीकरणाय च ॥ वह्निदेवतयोरैक्यं भावयन्नात्मना सह ॥ १२० ॥ एकीभूतं भावयेत्तु ततस्तु साधकोत्तमः ॥ षडंगं देवतानां च जुहुयादाहुतीः पृथक् ॥ २१ ॥ एकादशैव जुहुयादातीर्मुनिसत्तम ॥ एतेन नाडीसंधानं वह्नि देवतयोर्मुने ॥ २२ ॥ एकैकक्रमयोगेनाप्यावृत्तीनां तथैव च ॥ एकैक क्रमयोगेन घृतेन जुहुयान्मुने ॥ २३ ॥ ततः कल्पोक्तद्रव्यैस्तु जुहुयादथ वा तलैः ॥ देवतामूलमंत्रेण गजांतकसहस्रकम् ॥ २४ ॥ एवं हुत्वा ततो देवी संतुष्टां भावयेन्मुने ॥ तथैवाऽवृतिदेवीश्च वह्न्याद्या देवता अपि ॥ २५ ॥

अपने साथ भावना करे ॥ १२० ॥ इस प्रकार जो भावना करता है वह उत्तम साधक है षडंग देवताओंकी पृथक् आहुति दे ॥ २१ ॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार ग्यारह आहुति दे. हे मुने ! इससे अग्नि और अभीष्ट देवताओंकी एकता ही जातीहै ॥ २२ ॥ फिर एक देवताके एक अग्निके उद्देशसे आहुति दे. हे मुने ! इस प्रकार क्रमसे आहुति दे ॥ २३ ॥ फिर कल्पमें कहे शेष साकल्य वा तिलसे आहुति दे देवीके अष्टोत्तर सहस्रनामसे हवन करे ॥ २४ ॥ इस प्रकार आहुतिसे देवी आवृत्तिदेवी और अग्नि आदि देवताओंकी संतुष्ट समझे ॥ २५ ॥

फिर जब शिष्य स्नान संध्या कर चुके तब दो वस्त्र धारण किये सुवर्णके आभुषण पहरे हो ॥ २६ ॥ उस शुद्धचित्त कमंडलु हाथमें लियेको गुरु कुंडके निकट प्राप्त करे तब शिष्य गुरु और सभासदोंको प्रणाम कर ॥ २७ ॥ तथा कुलदेवताको प्रणामकर विष्टरपर बैठे तब गुरु उस शिष्यको कृपादृष्टिसे देखे ॥२८॥ और उसके चैतन्यको अपने देहमें संगत हुआ भावना करे फिर शिष्य के शरीरमें आगे लिखे अध्यायका शोधन करे ॥ २९ ॥ होमसे उसकी शुद्धि होती है सो करके कृपादृष्टिसे अवलोकन करे जिससे यह शुद्धात्मा होकर देवादिके अनुग्रह योग्य होता है ॥ १३० ॥ नारायण बोले शिष्यके शरीरमें क्रमसे छः मार्ग ध्यान करे चरणोंमें कलाध्वा लिंगमें तत्वाध्वा ॥ ३१ ॥ नाभिमें भुवनाध्वा हृदयमें वर्णाध्वा मस्तकमें पदाध्वा मूर्धामें मंत्राध्वा ॥ ३२ ॥

ततः शिष्यं च सुस्नातं कृतसंध्यादिकक्रियम् ॥ वस्त्रद्वययुतं स्वर्णाभरणेन समन्वितम् ॥२६॥ कमंडलुकरं शुद्धं कुंडस्यांतिकमानयेत् ॥ नमस्कृत्य ततः शिष्यो गुरूनथ सभासदः ॥ २७ ॥ कुलदेवं नमस्कृत्यविशेत्तत्राऽथ विष्टरे ॥ गुरुस्ततस्तु तं शिष्यं कृपादृष्ट्या विलोकयेत् ॥ २८ ॥ तच्चैतन्यं निजे देहे भावयेत्संगतं त्विति ॥ ततः शिष्यतनुस्थानमध्वनां परिशोधनम् ॥ २९ ॥ कुर्यात्तु होमतो विद्वन्दिव्यदृष्टयवलोकनात् ॥ येन जायेत शुद्धात्मा योग्यो देवाद्यनुग्रहे ॥ १३० ॥ नारायण उवाच ॥ तनौ ध्यायेत्तु शिष्यस्य षडध्वनः क्रमेण तु ॥ पादयोस्तु कलाध्वानमंघौ तत्त्वाध्वकं पुनः ॥ ३१ ॥ नाभौ तु भुवनाध्वानं वर्णाध्वानं तथा हृदि ॥ पदाध्वानं तथा भाले मन्त्रध्वानं तु मूर्धनि ॥ ३२ ॥ शिष्यं स्पृशंस्तु कूर्चेन तिलैराज्यपरिप्लुतैः ॥ शोधयाम्यमुमध्वानं स्वाहेति मनुमुच्चरन् ॥ ३३ ॥ ताराढ्यं जुहुयादष्टवारं प्रत्यध्वमेव हि ॥ षडध्वनस्ततस्तांस्तु लीनान्ब्रह्मणि भावयेत् ॥ ३४ ॥ पुनरुत्पादयेत्तस्मात्सृष्टिमार्गेण वै गुरुः ॥ आत्मस्थितं तच्चैतन्यं पुनः शिष्ये तु योजयेत् ॥ ३५ ॥ पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा देवतां कलशे नयेत् ॥ पुनर्व्याहृतिभिर्हुत्वा वह्नेरंगाहुतिस्तथा ॥ ३६ ॥ एकैकशो गुरुर्दत्त्वा विसृजेद्धृदि मात्मनि ॥ ततः शिष्यस्य नेत्रे तु बध्नीयाद्वाससा गुरुः ॥ ३७ ॥

शिष्यको कूर्चसे स्पर्शकर मंत्र पढे और विचारे कि इसके अध्वा शुद्ध हो तिल आज्यसे आहुति दे "अस्य शिष्यस्य कलाध्वानं शोधयामि स्वाहा" यह मंत्र उच्चारण करे ॥ ३३ ॥ इस प्रकार आठ वार पढे फिर प्रत्येक अध्वाका नाम लेकर छहों अध्वा ब्रह्ममें लीन भावित करे ॥ ३४ ॥ फिर सृष्टिमार्गसे उत्पादन करे और आत्मस्थित चैतन्य फिर शिष्यमें योजित करे ॥ ३५ ॥ फिर पूर्णाहुति कर देवताको कलशमें विसर्जन करे फिर व्याहृति होम आग्न्यंग हवन करे ॥ ३६ ॥ एक एकको आहुति देकर गुरु अपनेमें सबको विसर्जन करे फिर गुरु वस्त्रसे शिष्यके नेत्र बाँधे ॥ ३७ ॥

बाँधनेके समय वौषट् पढ़कर कुंडके निकटसे कलशके समीप शिष्यको लेजाय और शिष्यके हाथसे मुख्य देवीके आगे पुष्पांजलि करावे ॥ ३८ ॥ फिर शिष्यके नेत्र खोलकर कुशके विष्टरपर बैठावे पूर्व प्रकारसे शिष्यके देहमें भूतशुद्धि करे ॥ ३९ ॥ फिर शिष्यके शरीरमें मंत्रोदित न्यास करके फिर दूसरे मंडलपर शिष्यको बैठावे जहां घट स्थापित है ॥ १४० ॥ मातृका पढ २ कर कुंभके पल्लव शिष्यके शिर पर धरे कलशके जलके स्नान करावे ॥ ४१ ॥ फिर वर्द्धनी जलसे सींचे, फिर शिष्य उठकर दोवस्त्र धारण करे ॥४२॥ फिर अपनी देहमें भस्म लगाकर गुरुके निकट जाय तब गुरु अपने हृदयसे नकली शिवा भगवतीको ॥ ४३ ॥ शिष्यके हृदयमें प्रवेश हुई भावना करे और गंधादिसे पूजे देवता तथा शिष्यकी एकता जानकर ॥ ४४ ॥ अपना दक्षिण

नेत्रमन्त्रेण तं शिष्यं कुंडतो मंडलं नयेत् ॥ पुष्पांजलिं मुख्यदेव्यां कारयेच्छिष्यहस्ततः ॥ नेत्रबंधं निराकृत्य वेशयेत्कुशविष्टरे ॥ भूतशुद्धिं शिष्यदेहे कुर्यात् प्रोक्तेन वर्त्मना ॥ ३९ ॥ मन्त्रोदितांस्तथा न्यासान्कृत्वा शिष्यतनौ ततः ॥ मंडले वेशयेच्छिष्यमन्यस्मिन्कुंभसंस्थितान् ॥ १४० ॥ पल्लवाञ्छिष्यशिरसि विन्यसेन्मातृकां जपेत् ॥ कलशस्थजलैः शिष्यं स्नापयेद्देवतात्मकैः ॥ ४१ ॥ वर्धनीजलसेकं च कुर्याद्रक्षार्थमंजसा ॥ ततः शिष्यः समुत्थाय वाससी परिधाय च ॥ ४२ ॥ कृतभस्मावलेपश्च संविशेद् गुरुसन्निधौ ॥ ततो गुरुः स्वकीयात्तु हृदयान्निर्गतां शिवाम् ॥ ४३ ॥ प्रविष्टां शिष्यहृदये भावयेत्करुणानिधिः ॥ पूजयेद्गंधपुष्पाद्यैरैक्यं वै भावयंस्तयोः ॥ ४४ ॥ ततस्त्रिशो दक्षकर्णे शिष्यस्योपदिशेद्गुरुः ॥ महामन्त्रं महादेव्याः स्वहस्तं शिरसि न्यसन् ॥ ४५ ॥ अष्टोत्तरशतं मंत्रं शिष्योऽपि प्रजपेन्मुने ॥ दंडवत्प्रणमेद्भूमौ गुरुं तं देवतात्मकम् ॥ ४६ ॥ सर्वस्वमर्पयेत्तस्मै यावज्जीवमनन्यधीः ॥ ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥ ४७ ॥ सुवासिनीः कुमारीश्च बटुकांश्चैव सर्वशः ॥ दीनानाथान्दरिद्रांश्च वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ४८ ॥ कृतार्थतां स्वस्य बुद्ध्वानित्यमाराधयेन्मनुम् ॥ इति ते कथितः सम्यग्दीक्षाविधिरनुत्तमः ॥ ४९ ॥

हाथ शिष्यके मस्तकपर धरकर उसके दाहिने कानमें मंत्र सुनावे इस प्रकार अपना हाथ उसके शिरपर रखता हुआ महादेवीका महामंत्र पढें ॥४५॥ हे मुने ! शिष्य भी एकसौ आठ मंत्र जपता हुआ उन देवतात्मक गुरुको भूमिमें दंडवत प्रणाम करे ॥ ४६ ॥ और उनको सर्वस्व अर्पण करके जीवन पर्यन्त अनन्यबुद्धि रक्खे ऋत्विजोंको दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ४७ ॥ सुवासिनी कुमारी बटुक भैरव दीन अनाथ दरिद्रियोंको वित्तकी शठता न करके दे ॥ ४८ ॥ और अपनेको कृतार्थ मानकर सदा मंत्र जपे यह आपसे उत्तम प्रकार दीक्षा विधि कही ॥ ४९ ॥

इसको भली प्रकार विचार देवीके चरणकमलोंका ध्यान करो ब्राह्मणके निमित्त और कोई परम धर्म नहीं है ॥ १५० ॥ हे नारद ! जो वैदिक अपने गृह्योक्तक्रमसे वेदका उपदेश करे तांत्रिक तंत्ररीतिसे करे यह सनातनी श्रुति है ॥ ५१ ॥ वे अपने २ किये प्रयोगोंको अन्यथा न करे नारायण बोले हे नारद ! जो तुमने पूँछा सो कहा ॥ ५२ ॥ अब पराम्बाके नित्य चरणोंका भजन करो और परम शान्तिको प्राप्त होकर नित्य आराधन करो ॥ ५३ ॥ व्यास बोले हे राजन् ! इस प्रकार नारदसे सब कुछ कथन कर समाधिमें हो नेत्र मीच नारायण देवीका ध्यान करने लगे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार भगवान् नारायण मुनिजनोंमें श्रेष्ठ परम प्रसन्न हुए और नारदभी परम नारायण गुरुको प्रणामकर ॥ १५५ ॥ देवी दर्शनकी इच्छासे तप करने चले गये ॥ १५६ ॥

विमृश्यैतदशेषेण भज देवीपदांबुजम् ॥ नान्यस्तु परमो धर्मो ब्राह्मणस्याऽत्र विद्यते ॥ १५० ॥ वैदिकः स्वस्व गृह्योक्तक्रमेणोपदिशेन्मनुम् ॥ तांत्रिकस्तत्र रीत्या तु स्थितिरेषा सानतनी ॥ ५१ ॥ तत्तदुक्तप्रयोगांस्ते ते ते कुर्युर्न चान्यथा ॥ नारायण इति सर्वं मायाख्यातंयत्पृष्टं नारद त्वया ॥ ५२ ॥ अतः परं परांबाया भज नित्यं पदांबुजम् नित्यमाराध्य तच्चाहं निर्वृतिं परमां गतः ॥ ५३ ॥ व्यास उवाच ॥ इति राजन्नारदाय प्रोक्त्वा सर्वमनुत्तमम् ॥ समाधिमीलिताक्षस्तु दध्यौ देवीपदांबुजम् ॥ ५४ ॥ नारायणस्तुभगवान्मुनिवर्य शिखामणिः ॥ नारदोऽपि ततो नत्वा गुरुं नारायणं परम् ॥ जगाम सद्यस्तपसे देवीदर्शनलालसः ॥ १५५ ॥ इति देवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे सप्तमोध्यायः ॥ ७ ॥ जनमेजय उवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रवतांवर ॥ द्विजातीनां तु सर्वेषां शक्त्युपास्तिः श्रुतीरिता ॥ १ ॥ संध्याकालत्रयेऽन्यस्मिकाले नित्यतया विभो ॥ तां विहाय द्विजाः कस्माद् गृह्णीयुश्चान्यदेवताः ॥ २ ॥

इति श्रीदेवी भागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे भाषायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ जनमेजय बोले हे भगवन् ! सब धर्मोंके ज्ञाता सब शास्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ आपने सब द्विजातियोंको शक्तिकी उपासना कही है ॥ १ ॥ जब कि तीनों कालमें गायत्रीकी ही परम उपासना है फिर इसको त्याग ब्राह्मण और देवता क्यों ग्रहण करते हैं, अपने ही देवताको स्मरण करना चाहिये ''यो वैस्वां देवतामतियजते प्रस्वयैदेवतायै च्यवतेनपरां प्राप्नोति पापीयान्भवति '' इतिश्रुतेः (तथाचगोपथब्राह्मणे गायत्र्युपनिषदि) यह ब्रह्म ही प्रतिष्ठाका आयतन है इसको जो धारण करता है उसकी सत्यमें प्रतिष्ठा है उसीसे गायत्री है जो जपनेसे पुण्य कीर्ति आदि देती है सामविधान, ब्राह्मणमें इस प्रकार अंग लिखे हैं''शिर ब्रह्मा, द्यौ ललाट, चन्द्रादित्य नेत्र मुख अग्नि जिह्वा सरस्वती, त्वष्टा ग्रीवा, वसुरुद्र बाहू, ऊरु

वायु, पृष्ठ इन्द्र, विष्णु नाभि, प्रजापति जघन, ऊरु मरुत, वेद पाद, स्मित बिजली, उच्छ्वास वायु, अस्थी पर्वत, समुद्र वस्त्र, नक्षत्र अलंकार हैं" जो इस प्रकार जानता है उसका न्यूनाधिक सब पूर्ण होता है. बृहदारण्यकमें कहा है " साहैषा गयांस्तत्रे प्राणावैगयास्तत्प्राणांस्तत्रे तद्यद्गयां स्तत्रे तस्माद्गायत्री नामेति " इसी प्रकार अनेक श्रुति है, यदि कहो गायत्रीका सविता देवता है सविताका अर्थ यहां तदन्तर्गत जगत्कर्ता परमात्मा ही विवक्षित है, संध्यामें सूर्यमें ब्रह्मकी ही उपासना है, यह सबको शक्ति है इस कारण यही ध्येय है इसको छोड़कर ॥ २ ॥ कोई वैष्णव कोई गाणपत्य कोई चीन देशीय मार्गमें रत हैं कोई बल्कल धारी हैं. कोई बहुतसे वेदशास्त्रसे वर्जित दिगम्बर बौद्ध चार्वाकादि दिखाई देते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसमें क्या

दृश्यंते वैष्णवाः केचिद्गाणपत्यास्तथापरे ॥ कापालिकाश्चीनमार्गरता वल्कलधारिणः ॥ ३ ॥ दिगंबरास्तथा बौद्धाश्चार्वाका एवमादयाः ॥ दृश्यंते बहवो लोके वेदश्रद्धाविवर्जिताः ॥ ४ ॥ किमत्र कारणं ब्रह्मंस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ बुद्धिमंतः पंडिताश्च नानातर्कविचक्षणाः ॥ ५ ॥ अपि संत्येव वेदेषु श्रद्धया तु विवर्जिताः ॥ नहि कश्चित्स्वकल्याणं बुद्ध्या हातुमिहेच्छति ॥ ६ ॥ किमत्र कारणं तस्माद्वद वेदविदांवर ॥ मणिद्वीपस्य महिमा वर्णितो भवता पुरा ॥ ७ ॥ कीदृक्तदस्ति यद्देव्याः परं स्थानं महत्तरम् ॥ तच्चापि वद भक्ताय श्रद्दधानाय मेऽनघ ॥ ८ ॥ प्रसन्नास्तु वदंत्येव गुरवो गुह्यमप्युत ॥ सूत उवाच ॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा भगवान्बादरायणः ॥ ९ ॥ निजगाद ततः सर्वं क्रमेणैव मुनीश्वराः ॥ यच्छ्रुत्वा तु द्विजातीनां वेदश्रद्धा विवर्धते ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ सम्यक्पृष्टं त्वया राजन्समये समयोचितम् ॥ बुद्धिमानसि वेदेषु श्रद्धावांश्चैव लक्ष्यसे ॥ ११ ॥

कारण है सो आप कहिये जो बुद्धिमान् पंडित अनेक तर्कोंमें चतुर हैं ॥ ५ ॥ यह भी वेद श्रद्धासे रहित हैं. बुद्धिसे कोई अपना कल्याण छोडनेकी इच्छा नहीं करता ॥६॥ हे वेदविदांवर ! इसमें कारण क्या है सो कहिये और आपने पहले मणिद्वीपकी महिमा कही थी ॥ ७ ॥ वहकैसा है जहां देवीका परमस्थान है मुझ भक्त श्रद्धावालेसे आप यह भी कहिये ॥ ८ ॥ प्रसन्न हुए गुरु गुह्य बात भी कहते हैं. भगवान् बादरायण यह जनमेजयके वचन सुन ॥९॥ हे मुनीश्वरो! क्रमसे सब कहने लगे जिसको सुनकर द्विजातियोंकी वेदमें श्रद्धा होती है ॥ १० ॥ व्यासजी बोले हे राजन्! आपने समयोचित भली बात पूँछी तुम बुद्धिमान् वेदमें श्रद्धावाले हो ॥ ११ ॥

पहले मदोद्धत हुए दैत्य देवताओंसे युद्ध करते हुए हे महाराज ! सौ वर्षतक महाविस्मयकारक युद्ध हुआ ॥ १२ ॥ जो अनेक शस्त्रोंके प्रहार और अनेक मायासे विचित्र अर्थात् उनका जगत्क्षयकारी युद्ध हुआ ॥ १३ ॥ उस समय पराशक्तिकी कृपासे देवताओंने दैत्योंको जीता और वह भूर्लोकको छोड़कर पातालमें चले गये ॥ १४ ॥ तब देवता प्रसन्न होकर अपना अपना पराक्रम वर्णन करने लगे और अभिमानसे बोले ॥ १५ ॥ जब कि हमने अपने पराक्रमकी महिमा दिखाई तब जय क्यों न होती सबसे बड़े भी दैत्य क्यों न हों तथापि वे दैत्य पामर और निष्पराक्रम हैं ॥ १६ ॥ हम तो सब यशस्वी सृष्टिकी स्थिति और लय करनेवाले हैं हमारे आगे पामर दैत्योंकी क्या कथा है ॥१७॥ वह सब पराशक्तिके प्रभावको न जानकर मोहको प्राप्त होगये उनके

पूर्वं मदोद्धता दैत्या देवैर्युद्धे तु चक्रिरे ॥ शत वर्ष महाराज महाविस्मयकारकम् ॥ १२ ॥ नानाशस्त्रप्रहरणं नानामायाविचित्रितम् ॥
जगत्क्षयकरं नूनं तेषां युद्धमभून्नृप ॥ १३ ॥ पराशक्तिकृपावेशाद् देवैर्दैत्या जिता युधि ॥ भुवं स्वर्गं परित्यज्य गताः पातालवेश्मनि
॥ १४ ॥ ततः प्रहर्षिता देवाः स्वपराक्रम वर्णनम् ॥ चक्रुः परस्परं मोहात्साभिमानाः समंततः ॥ १५ ॥ जयोऽस्माकं कुतो न स्याद
स्माकं महिमा यतः ॥ सर्वोत्तरः कुत्र दैत्याः पामरा निष्पराक्रमाः ॥ १६ ॥ सृष्टिस्थितिक्षयकरा वयं सर्वे यशस्विनः ॥ अस्मदग्रे
पामराणां दैत्यानां चैव का कथा ॥ १७ ॥ पराशक्तिप्रभावं ते न ज्ञात्वा मोहमागताः ॥ तेषामनुग्रहं कर्तुं तदैव जगदंबिका ॥ १८ ॥
प्रादुरासीत्कृपापूर्णा यक्षरूपेण भूमिप ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं चंद्रकोटिसुशीतलम् ॥ १९ ॥ विद्युत्कोटिसमानाभं हस्तपादादिवर्जितम् ॥
अदृष्टपूर्वं तद्दृष्ट्वा तेजः परमसुन्दरम् ॥ २० ॥ सविस्मयास्तदा प्रोचुः किमिदं किमिदं त्विति ॥ दैत्यानां चेष्टितं किं वा माया कापि
महीयसी ॥ २१ ॥केनचिन्निर्मिता वाऽथ देवानां स्मयकारिणी ॥ संभूय ते तदा सर्वे विचारं चक्रुरुत्तमम् ॥ २२ ॥

ऊपर अनुग्रह करनेको उसी समय जगदम्बा ॥ १८ ॥ कृपाकर यज्ञरूपसे प्रगट हुई जो कोटिसूर्यके समान प्रकाशमान करोड़ चन्द्रमाके समान शीतल ॥१९॥ कोटि विद्युतके समान कान्तिमान् हाथ पैर आदिसे रहित वह अदृष्टपूर्व परम सुन्दर तेज देखकर सब कोई विस्मयपूर्वक बोले यह क्या यह क्या कोई दैत्योंकी माया वा चेष्टा वा किसी अन्यकी माया है ॥ २० ॥ २१ ॥ यह किसीने देवताओंको विस्मयकारक निर्माण की है तब सब देवता मिलकर विचार करने लगे ॥ २२ ॥

१ तबल्कार उपनिषद्में यह कथा देखो

कि यक्षके समीप जाकर पूँछना चाहिये कि तुम कौन हो फिर उसका बलाबल जानकर प्रतिक्रिया करनी चाहिये ॥ २३ ॥ तब अग्निको बुलाकर कहा हे अग्नि ! जाओ तुम हमारा मुखस्वरूप हो ॥ २४ ॥ जाकर इस यक्षको जानोकि यह कौन है ? इन्द्रके वचन सुन अपने पराक्रमसे गर्भित ॥ २५ ॥ अग्नि बड़े वेगसे उठकर यक्षके समीप गया तब यक्षने हुताशनसे कहा तुम कौन हो ॥ २६ ॥ कितना तुममें बल है वह सब मुझसे कहो उसने कहा मैं अग्नि जातवेदा हूं ॥ २७ ॥ मुझमें सब विश्वके दहन करनेकी सामर्थ्य है, तब परम तेजस्वी यक्षने अग्निके आगे तृण रखकर ॥ २८ ॥ कहा यदि विश्वदहनकी

यक्षस्य निकटे गत्वा प्रष्टव्यं कस्त्वमित्यपि ॥ बलाबलं ततो ज्ञात्वा कर्तव्या तु प्रतिक्रिया ॥ २३ ॥ ततो वह्निं समाहूय प्रोवाचेंद्रः सुराधिपः ॥ गच्छ वह्ने त्वमस्माकं यतोऽसि मुखमुत्तमम् ॥ २४ ॥ ततो गत्वा तु जानीहि किमिदं यक्षमित्यपि ॥ सहस्राक्षवचः श्रुत्वा स्वपराक्रमगर्भितम् ॥ २५ ॥ वेगात्स निर्गतो वह्निर्ययौ यक्षस्य संनिधौ ॥ तदा प्रोवाच यक्षस्तं त्वं कोऽसीति हुताशनम् ॥ २६ ॥ वीर्यं च त्वयि कियत्तद्वद सर्वं ममाग्रतः ॥ अग्निरस्मि तथा जातवेदा अस्मीति सोऽब्रवीत ॥ २७ ॥ सर्वस्य दहने शक्तिमयि विश्वस्य तिष्ठति ॥ तदा यक्षं परं तेजस्तदग्रे निदधौ तृणम् ॥ २८ ॥ दहैनं यदि ते शक्तिर्विश्वस्य दहनेऽस्ति हि ॥ तदा सर्वं बलेनेवाऽकरोद्यात्नं हुताशनः ॥ २९ ॥ न शशाक तृणं दग्धुं लज्जितोऽगात्सुरान्प्रति ॥ पृष्टे देवैस्तु वृत्तांते सर्वं प्रोवाच हव्यभुक् ॥ ३० ॥ वृथाऽभिमानोह्यस्माकं सर्वेशत्वादिके सुराः ततस्तु वृत्रहा वायुं समाहूयेदमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ त्वयि प्रोतं जगत्सर्वं त्वच्चेष्टाभिस्तु चेष्टितम् ॥ त्वं प्राणरूपः सर्वेषां सर्वशक्तिविधारकः ॥ ३२ ॥ त्वमेव गत्वा जानीहि किमिदं यक्षमित्यपि ॥ नान्यः कोऽपि समर्थोऽस्ति ज्ञातुं यक्षं परं महः ॥ ३३ ॥ सहस्राक्षवचः श्रुत्वा गुणगौरवगुंफितम् ॥ साभिमानो जागमाऽशु यत्र यक्षं विराजते ॥ ३४ ॥

तुममें शक्ति है तो इसको जलाओ, तब हुताशनने अपने पूर्ण बलसे यत्न किया पर जला न सका ॥ २९ ॥ तब लज्जित हो देवताओंके समीप गया और देवताओंके पूंछनेपर अग्निने सब वृत्तान्त कहा ॥ ३० ॥ हे देवताओ ! सर्वेश्वर होनेका हमको वृथा अभिमान है तब इन्द्रने वायुको बुलाकर यह कहा ॥ ३१ ॥ यह सब जगत तुममें प्राप्त है और तुम्हारी चेष्टाओंसे चेष्टित है तुम सबके प्राणरूप और सबकी शक्ति धारण करनेवाले हो ॥ ३२ ॥ तुम्ही जाकर देखो यह यक्ष कौन है इस यक्षके जाननेमें और कोई समर्थ नहीं है ॥ ३३ ॥ वह गुण गौरवसे गुंफित इन्द्रके वचन सुन अभिमानपूर्वकयक्षके समीप गया ॥ ३४ ॥

यक्ष वायुको देख कोमल वाणीसे बोला तुम कौन हो क्या तुम्हारी शक्ति है सो हमसे कहो ॥ ३५ ॥ यक्षके वचन सुन गर्वसे मरुत देवताने कहा मैं वायु मातरिश्वा हूं ॥ ३६ ॥ मुझमें सबके चालन और ग्रहणका पराक्रम है मेरी चेष्टासे सब जगत् व्यापारवाला होता है ॥ ३७ ॥ वायुकी वाणी सुनकर यक्षने कहा यह तुम्हारे आगे तृण रखता हूं इसका परिचालन करो ॥ ३८ ॥ नहीं तो गर्व छोड़ लज्जितहो इन्द्रके स्थानमें जाओ सर्वशक्तियुक्त वायु यक्षके वचन सुन ॥३९॥ पूर्ण उद्योग करके भी उसे अपने स्थानसे चलायमान न कर सका तब गर्व त्याग लज्जित हो इंद्रके समीप गया ॥ ४० ॥ और अपने गर्व दूर करनेका

यक्षं दृष्ट्वा ततो वायुं प्रोवाच मृदुभाषया ॥ कोऽसि त्वं त्वयि का शक्तिर्वद सर्वं ममाग्रतः॥३५॥ ततो यक्षवचः श्रुत्वा गर्वेण मरुदब्रवीत् ॥ मातरिश्वाऽहमस्मीति वायु रस्मीति चाब्रवीत् ॥ ३६ ॥ वीर्यं तु मयि सर्वस्य चालने ग्रहणेस्ति हि ॥ मच्चेष्टया जगत्सर्वं सर्वव्या पारवद्भवेत् ॥ ३७ ॥ इति श्रुत्वा वायुवाणीं निजगाद परं महः ॥ तृणमेतत्तऽवाग्रे यत्तच्चालय यथेप्सितम् ॥ ३८ ॥ नो चेद्गर्वं विहा यैव लज्जितो गच्छ वासवम् ॥ श्रुत्वा यक्षवचो वायुः सर्वशक्तिसमन्वितः ॥ ३९ ॥ उद्योगमकरोत्तच्च स्वस्थानान्न चचाल ह ॥ लज्जि तोऽगाद्देवपार्श्वं हित्वा गर्वं स चानिलः ॥ ४० ॥ वृत्तांतमवदत्सर्वं गर्वनिर्वापकारणम् ॥ नैतज्ज्ञातुं समर्थाः स्म मिथ्या गर्वाभिमानिनः ॥ ४१ ॥ अलौकिकं भाति यक्षं तेजः परमदारुणम् ॥ ततः सर्वे सुरगणाः सहस्राक्षं समूचिरे ॥ ४२ ॥ देवराडसि यस्मात्त्वं यक्षं जानीहि तत्त्वतः ॥ तत इंद्रो महागर्वात्तद्यक्षं समुपाद्रवत् ॥ ४३ ॥ प्राद्रवच्च परं तेजो यक्षरूपं परात्परम् ॥ अन्तर्धानं ततः प्राप तद्यक्षं वासवा ग्रतः ॥ ४४ ॥ अतीव लज्जितो जातो वासवो देवराडपि ॥ यक्षसंभाषणाभावाल्लघुत्वं प्राप चेतसि ॥ ४५ ॥ अतः परं न गन्तव्यं मयातु सुरसंसदि ॥ किं मया तत्र वक्तव्यंस्वलघुत्वं सुरान्प्रति ॥ ४६ ॥

सब कारण कहा कि हम मिथ्या गर्ववाले इसके जाननेका समर्थ नहीं हैं ॥ ४१ ॥ यक्षका परम अलौकिक तेज विदित होता है तब सब देवता सहस्राक्षसे बोले ॥ ४२ ॥ आप देवराज हो तत्वसे इसको जानो तब इन्द्र महागर्वसे चले ॥ ४३ ॥ तब वह यक्षरूप परात्परका तेज इन्द्रके आगेसे अन्तर्धान होगया ॥ ४४ ॥ तब इंद्र अतिशय लज्जित हुआ यक्षका संभाषणतक भी न हुआ इससे मनमें लघुता हुई ॥ ४५ ॥ और कहा अब मैं देवसभामें न जाऊंगा देवताओं के सम्मुख मैं अपना लघुत्व कैसे कहूंगा ॥ ४६ ॥

इससे देह त्याग उत्तम है कारण कि मानही महान् पुरुषोंका धन है मानके नष्ट होनेपर जीवन मृत्युकी तुल्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४७ ॥ इस प्रकार इन्द्र वहां विचार गर्व त्याग कर जिसके यह चरित्र है उसीकी शरण हुआ ॥ ४८ ॥ उसी समय आकाशसे वाणी हुई हे सहस्राक्ष ! तुम मायाबीजका जप करनेसे सुखी होगे ॥ ४९ ॥ तब इन्द्र परात्पर मायाबीजका जप करने लगे, लाख वर्षतक निराहार हो ध्यानमें नेत्र मूंदे रहा ॥५०॥ फिर अकस्मात् चैत्र शुक्ल नवमी मध्याह्न समय उसी स्थलमें फिर वह तेज प्रकट हुआ ॥ ५१ ॥ एक नवयौवना कुमारी तेजोमण्डलके मध्यमें प्रकाशित जपाकुसुमके समान कान्ति वाली प्रभातकालीन कोटि सूर्यके समान प्रकाशित ॥ ५२ ॥ भालचंद्र मुकुटमें धारे वस्त्रान्तरितस्तन लक्षणसे लक्षित चार भुजाओंमें वर पाश अभयरूप

देहत्यागो वरस्तस्मान्मानो हि महतां धनम् ॥ माने नष्टे जीवितं तु मृतितुल्यं न संशयः ॥ ४७ ॥ इति निश्चित्य तत्रैव गर्वं हित्वा सुरेश्वरः ॥ चरित्रमीदृशं यस्य तमेव शरणं गतः ॥ ४८ ॥ तस्मिन्नेव क्षणे जाता व्योमवाणी नभस्तले ॥ मायाबीजं सहस्राक्ष जप तेन सुखी भव ॥ ४९ ॥ ततो जजाप परमं मायाबीजं परात्परम् ॥ लक्षवर्षं निराहारो ध्यानमीलितलोचनः ॥ ५० ॥ आकस्माच्चैत्रमासीयनवम्यां मध्यगे रवौ ॥ तदेवाऽविरभूत्तेजस्तस्मिन्नेव स्थले पुनः ॥ ५१ ॥ तेजोमंडलमध्ये तु कुमारीं नवयौवनाम् ॥ भास्वज्जपाप्रसूनाभां बालकोटिरविप्रभाम् ॥ ५२ ॥ बालशीतांशुमुकुटां वस्त्रांतर्व्यंजितस्तनीम् ॥ चतुर्भिर्वरहस्तैस्तु वरपाशांकुशाभयान् ॥ ५३ ॥ दधानां रमणीयांगीं कोमलांगलतां शिवाम् ॥ भक्तकल्पद्रुमामंबां नानाभूषणभूषिताम् ॥ ५४ ॥ त्रिनेत्रां मल्लिकामालाकबरीजूट शोभिताम् ॥ चतुर्दिक्षु चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुताम् ॥ ५५ ॥ दंतच्छटाभिरभितः पद्मरागीकृतक्षमाम् ॥ प्रसन्नस्मेरवदनां कोटिकंदर्पसुन्दराम् ॥ ५६ ॥ रक्तांबरपरीधानां रक्तचन्दनचर्चिताम् ॥ उमाभिधानां पुरतो देवीं हैमवतीं शिवाम् ॥ ५७ ॥ निर्व्याजकरुणामूर्तिं सर्वकारणकारणाम् ददर्श वासवस्तत्र प्रेमसद्गदितांतरः ॥ ५८ ॥

अंकुश लिये ॥ ५३ ॥ वह कोमल अंगवाली रमणीय मूर्ति शिवा भक्तोंको कल्पवृक्ष अनेक भूषणोंसे भूषित ॥ ५४ ॥ तीन नेत्रवाली जूडेमें चमेलीकी माला गुन्थी हुई चारों ओर मूर्तिमान् चारों वेदोंसे स्तुतिको प्राप्त ॥ ५५ ॥ सब ओर दांतोंकी कान्तिसे भूमिको पद्मराग मणिके समान करती हुई प्रसन्न हँसी कामुक करोडों कामके समान सुंदर ॥ ५६ ॥ लाल वस्त्रोंको धारे लालचंदनसे चर्चित है. भगवती उमानाम्नी देवी सम्मुख स्थित हुई ॥ ५७ ॥ विनाही कारण करुणाकी मूर्ति सब कारणोंकी कारण दिखाई दी देखतेही इंद्र प्रेमसे गद्गद हो गया ॥ ५८ ॥

प्रेमाश्रुसे नेत्र पूर्ण होकर रोमांचित शरीर हो गया और श्री भुवनेश्वरीके चरणोंमें दंडके समान पतित हुआ ॥ ५९ ॥ और भक्तिसे प्रसन्नमुख होकर अनेक स्तुति की और नम्र हो पूँछा यह यक्ष कौन है ॥ ६० ॥ और कहांसे प्रादुर्भाव हुआ सो सब कहिये यह वचन सुन करुणामयी बोली ॥ ६१ ॥ वह सब कारणका कारण ब्रह्मरूप मेराही है जो माया का अधिष्ठान सर्वसाक्षी निरामय है ॥ ६२ ॥ सब वेद जिसके पदका वर्णन करते सब तप जिसके गुण कहते, जिसकी प्राप्तिके निमित्त ब्रह्मचर्य किया जाता है संग्रहसे वह पद तुमसे कहती हूं ॥ ६३ ॥ जो एकाक्षर ॐ है वही ह्रीं है, हे सुरोत्तम ! मुख्यतासे मेरे मंत्रके

प्रेमाश्रुतिपूर्णनयनो रोमाचिततनुस्ततः ॥ दंडवत्प्रणनामाथ पादयोर्जगदीशितुः ॥ ५९ ॥ तुष्टाव विविधैः स्तोत्रैर्भक्तिसन्नतकन्धरः ॥ उवाच परमप्रीतः किमिदं यक्षमित्यपि ॥ ६० ॥ प्रादुर्भूतं च कस्मात्तद्वद सर्वं सुशोभने ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच करुणार्णवा ॥ ६१ ॥ रूपं मदीयं ब्रह्मैतत्सर्वकारणकारणम् ॥ मायाधिष्ठानभूतं तु सर्वसाक्षि निरामयम् ॥ ६२ ॥ सर्वेवेदा यत्पदमामनंति तपांसि सर्वाणि च यद्वदंति ॥ यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ॥ ६३ ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म तदेवाहुश्च ह्रींमयम् ॥ द्वे बीजे मम मन्त्रो स्तो मुख्यत्वेन सुरोत्तम ॥ ६४ ॥ भागद्वयवती यस्मात्सृजामि सकलं जगत् ॥ तत्रैकभागां संप्रोक्तः सच्चिदानंद नामकः ॥ ६५ ॥ मायाप्रकृतिसंज्ञस्तु द्वितीयो भाग ईरितः ॥ सा च माया परा शक्तिः शक्तिमत्यहमीश्वरी ॥ ६६ ॥ चंद्रस्य चन्द्रिकेवेयं ममाभिन्नत्वमागता ॥ साम्यावस्थात्मिका चैषा माया मम सुरोत्तम ॥ ६७ ॥ प्रलये सर्वजगतो मदभिन्नैव तिष्ठति ॥ प्राणिकर्मपरिपाकवशतः पुनरेव हि ॥ ६८ ॥ रूपं तदेवमव्यक्तं व्यक्तीभावमुपैति च अंतर्मुखा तु याऽवस्था सा मायेत्यभिधीयते ॥ ६९ ॥ बहिर्मुखा तु या माया तमः शब्देव सोच्यते ॥ बहिर्मुखात्तमोरूपाज्जायते सत्त्वसम्भवः ॥ ७० ॥

दोबीज हैं ॥ ६४ ॥ यह दोनोंभागसेही मैं सब जगत् प्रगट करती हूं उसीका एकभाग सच्चिदानामक है ॥ ६५ ॥ प्रकृतिसंज्ञक माया दूसरा भाग है वह माया परा शक्ति और वह ईश्वरी शक्ति मैं हूं ॥ ६६ ॥ चन्द्रमासे चांदनीके समान यह सब मुझसे अभिन्न है हे सुरोत्तम ! यह मेरी माया साम्यावस्थावाली है ॥ ६७ ॥ प्रलयमें सब जगत् मुझसे अभिन्न रहता है फिरभी प्राणियोंके कर्मके परिपाक वशसे ॥ ६८ ॥ वह अव्यक्तरूप प्रगट होते हैं और जो अन्तर्मुखा अवस्था है उसे ही माया कहते हैं ॥ ६९ ॥ और बहिर्मुख माया तम शब्दसे व्यवहार की जाती है बहिर्मुख तमोरूपसे सत्वगुणका संभव है ॥ ७० ॥

हे राजन्! उससे रजोगुण होता है, उससे ब्रह्मा विष्णु, महेश्वरी त्रिगुणात्मक देवता होते हैं ॥ ७१ ॥ रजोगुण अधिक होनेसे ब्रह्मा, सत्वगुणकी अधिकतासे विष्णु, तमोगुणकी अधिकताही सर्व कारण रूप रुद्र हैं ॥७२॥ स्थूल देहका अर्थ ब्रह्मा, लिंग देह हरि, कारण देहरुद्र और तुरीयारूप मैं हूं ॥ ७३ ॥ जो तीनोंगुणोंकी साम्यावस्था अंतर्मुख है वही माया तुरीयारूप उपाधिवाली है वही अंतर्यामीरूपिणी है इससे आगे परब्रह्म मेरा रूपवर्जित है ॥ ७४ ॥ निर्गुण सगुण यह मेरे दो रूप हैं माया हीन निर्गुण और माया युक्त सगुण है ॥ ७५॥ सो मैं सब जगत् सृजन कर उसके अन्तरमें प्रवेश कर कर्मानुसार निरन्तर जीवकी प्रेरणा करती हूं ॥ ७६ ॥ सृष्टि स्थिति और तिरोधानमें मैं ही प्रेरणा करती हूं ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इन कारणात्माओंको मैं ही प्रगट

रजोगुणस्तदैव स्यात्सर्गादौ सुरसत्तम ॥ गुणत्रयात्मकाः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ७१ ॥ रजोगुणाधिको ब्रह्मा विष्णुः सत्त्वाधिको भवेत् ॥ तमोगुणाधिको रुद्रः सर्वकारणरूपधृक् ॥ ७२ ॥ स्थूलदेहो भवेद्ब्रह्मा लिंगदेहो हरिः स्मृतः ॥ रुद्रस्तु कारणो देहस्तुरीया त्वहमेव हि ॥ ७३ ॥ साम्या वस्था तु या प्रोक्ता सर्वांतर्यामिरूपिणी ॥ अत ऊर्ध्वं परं ब्रह्म मद्रूपं रूपवर्जितम् ॥ ७४ ॥ निर्गुणं सगुणं चेति द्विधामद्रूपमुच्यते ॥ निर्गुणं मायया हीनं सगुणं मायया युतम् ॥ ७५ ॥ साऽहं सर्वं जगत्सृष्ट्वा तदंतः संप्रविश्य च ॥ प्रेरयाम्यनिशं जीवं यथाकर्म यथा श्रुतम् ॥ ७६ ॥ सृष्टिस्थितितिरोधाने प्रेरयाम्यहमेव हि ॥ ब्रह्माणं च तया विष्णुं रुद्रं वै कारणात्मकम् ॥ ७७ ॥ मद्भयाद्वाति पवनो भीत्या सूर्यश्च गच्छति ॥ इंद्राग्निमृत्यवस्तद्वत्साऽहं सर्वोत्तमा स्मृता ॥ ७८ ॥ मत्प्रसादाद्भवद्भिस्तुजयो लब्धोऽस्ति सर्वथा ॥ युष्मानहं नर्तयामि काष्ठपुत्त लिकोपमान् ॥ ७९ ॥ कदाचिद् देवविजयं दैत्यानां विजयं क्वचित् ॥ स्वतंत्र स्वेच्छया सर्वं कुर्वे कर्मानुरो धतः ॥ ८० ॥ तां मां सर्वात्मिकां यूयंमृवित्स्य निज गर्वतः अहंकारावृतात्मानो मोहमाप्ता दुरंतकम् ॥ ८१ ॥ अनुग्रहं ततः कर्तु युष्मद्देहादनुत्तमम् ॥ निःसृतं सहसा तेजो मदीयं यक्षमित्यपि ॥ ८२ ॥

करती हूं ॥ ७७ ॥ मेरे भयसे वायु चलता सूर्य उदय होता. इसी प्रकार इन्द्र अग्नि अपना २ कार्य करते हैं. मैं सर्वोत्तमा हूँ ॥ ७८ ॥ मेरी ही कृपासे तुम सर्वथा जय पाते हो, काष्ठके पुतली समान मैं तुम सबको नचाती हूं ॥ ७९ ॥ कभी देवता और कभी दैत्योंकी विजय होती, सर्व स्वतंत्र और स्वेच्छासे कर्मानुसारही अपना कर्म करते हैं ॥ ८० ॥ सो मुझ सर्वात्मिकाको तुम अपने गर्वसे भूलकर अहंकार युक्त हो तुरंत मोहसे व्याप्त हुए ॥ ८१ ॥ अनुग्रह करनेके निमित्त तुम्हारे सबके देहसे मेरा यक्षरूप तेज निर्गत हो गया था ॥ ८२ ॥

अब सब भावसे अपने देहका गर्व त्यागकर सच्चिदानन्दरूपिणी मेरी शरण हो ॥ ८३ ॥ व्यासजी बोले महाप्रकृति ईश्वरी मूलरूप भगवती यह कह भक्तिपूर्वक देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त हो अन्तर्धान हुई ॥ ८४ ॥ तब सब देवता गर्व त्याग भगवतीके परात्पर चरणकमलोंका ध्यान करने लगे ॥ ८५ ॥ तीनों कालमें सब गायत्रीजपमें तत्पर हुए और यज्ञभागादि सब नित्य देवीकी सेवा करने लगे ॥ ८६ ॥ इस प्रकार सतयुगमें सब गायत्रीजपमें तत्पर थे प्रणव और ह्लेखा मन्त्रोंके जपमेंही मन लगाये थे ॥ ८७ ॥ वेदमें जैसे "अहरहस्संध्यामुपासीत" यह सन्ध्या करनेमें गायत्रीजपके नित्य विधिवाक्य हैं ऐसे विष्णु उपासना विष्णुदीक्षा वा शिव उपासनाके नित्य विधिवाक्य नहीं देखे जाते ॥ ८८ ॥ सर्व वेद सिद्धान्त गायत्री उपासनाही नित्य है, जिसके

अतः परं सर्वभावैर्हित्वा गर्वं तु देहजम् ॥ मामेव शरणं यात सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥ ८३ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्त्वा च महादेवी मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ अन्तर्धानं गता सद्यो भक्त्या देवैरभिष्टुता ततः सर्वे स्वगर्वं तु विहाय पद पंकजम् ॥ सम्यगाराधयामासुर्भगवत्याः परात्परम् ॥ ८५ ॥ त्रिसंध्यं सर्वदा सर्वे गायत्रीजपतत्पराः ॥ यज्ञ भागादिभिः सर्वे देवीं नित्यं सिषेविरे ॥ ८६ ॥ एवं सत्ययुगे गायत्रीजपतत्पराः तारह्लेखयोश्चापि जपे निष्णातमानसाः ॥८७॥ न विष्णूपासना नित्या वेदेनोक्ता तु कुत्रचित् ॥ विष्णुदीक्षा नित्याऽस्ति शिवस्यापि तथैव च ॥ ८८ ॥ गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता ॥ यया विना त्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा ॥ ८९ ॥ तावता कृतकृतत्यत्वं नान्यपक्ष द्विजस्य हि ॥ गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ९० ॥ कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादिति प्राह मनुः स्वयम् ॥ विहाय तां तु गायत्रीं विष्णूपास्तिपरायणाः ॥ ९१ ॥ शिवो पास्तिरतो विप्रो नरकं याति सर्वथा ॥ तस्मादाद्ययुगे राजन्गायत्रीजपतत्पराः ॥ देवीपदांबुजरता आसन्सर्वे द्विजोत्तमा ॥ ९२ ॥

विना सर्वथा ब्राह्मणका अधःपतन हो जाता है ॥ ८९ ॥ ब्राह्मण गायत्रीसेही कृतकृत्य है इसको और अपेक्षा नहीं है गायत्रीमें निष्णात होकर भी ब्राह्मण मुक्तिका अधिकारी होता है ॥९०॥ चाहे वह और कार्य करे व न करे यह स्वयं मुनिने कहा है (कुर्यादन्यन्नवाकुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते मनु०) जो ब्राह्मण अपनी परम इष्टगायत्रीको तो किंचित जप नहीं करता केवल विष्णुकी उपासना ॥९१॥ वा शिवोपासनामें ही रत है वह मोक्षको नहीं प्राप्त होता आवागमन रूप दुःखमें ही जाता है. हे राजन् ! इस आदियुगमें सब गायत्री जपमें तत्पर थे ॥ ९२ ॥

और इसीसे सब देवता गायत्री देवीके चरण कमलमें प्रीति करते थे॥९३॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले हे विभो ! एक समय प्राणियोंके कर्मवशसे पन्द्रह वर्षतक मेघ नहीं वर्षा था ॥ १ ॥ अनावृष्टिके कारण क्षयकारक घोर दुर्भिक्ष हुआ घर घरमें शवोंकी संख्या न रहीं ॥ २ ॥ कोई क्षुधासे व्याकुल हो अश्व वराह तथा कोई निकृष्ट मृतक मनुष्योंके शरीर भक्षण करने लगे ॥ ३ ॥ बालकको माता स्त्रीको पुरुष यह सबही क्षुधासे व्याकुल हो खानेकी इच्छा करने लगे ॥ ४ ॥ उस समय बहुतसे ब्राह्मण यह विचार करने लगे कि तपस्वी गौतमजी हमारे खेदको दूर करेंगे ॥५॥ सब मिलकर हम गौतमके आश्रममें चलें वह गौतम गायत्री जपमें लगे हुए हैं ॥६॥ वहां सुभिक्ष सुना जब जाता है और बहुतसे प्राणी

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशकन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ कदाचिदथ काले तु दशपंचसमा विभो ॥ प्राणिनांकर्मवशतो नववर्षशतक्रतुः ॥ १ ॥ अनावृष्ट्याऽतिदुर्भिक्षमभवत्क्षयकारकम् ॥ गृहे गृहे शवानां तु संख्या कर्तुं न शक्यते ॥ २ ॥ केचिदश्वान्वराहान्वा भक्षयंति क्षुधार्दिताः ॥ शवानि च मनुष्याणां भक्षयंत्यपरे जनाः ॥ ३ ॥ बालकं बालजननीं स्त्रियं पुरुष एव च ॥ भक्षितुं चलिताः सर्वे क्षुधया पीडिता नराः ॥ ४ ॥ ब्रह्मणा बहवस्तत्र विचारं चक्रुरुत्तमम् ॥ तपोधनो गौतमोऽस्ति स नः खेदं हरिष्यति ॥ ५ ॥ सर्वैर्मिलित्वा गंतव्यं गौतमस्याश्रमेऽधुना गायत्रीजपसंसक्तगौतमस्याश्रमेऽधुना ॥ ६ ॥ सुभिक्षं श्रूयते तत्र प्राणिनो बहवो गताः ॥ एवं विमृश्य भूदेवाः साग्निहोत्राः कुटुंबिनः ॥ ७ ॥ सगोधनाः सदासाश्च गौतमस्याऽऽश्रमं ययुः ॥ पूर्वदेशाद्ययुः केचित्केचिद्दक्षिणदेशतः ॥ ८ ॥ पाश्चात्त्या औत्तराहाश्च नानादिग्भ्यः समाययुः ॥ दृष्ट्वा समाज विप्राणां प्रणनाम स गौतमः ॥ ९ ॥ आसनाद्युपचारैश्च पूजयामास वाडवाम् ॥ चकार कुशलप्रश्नं ततश्चागमकारणम् ॥ १० ॥ ते सर्वे स्वस्ववृत्तांतं कथयामाससुरुत्स्मयाः ॥ दृष्ट्वा तान्दुःखितान्विप्रान भयं दत्तवान्मुनिः ॥ ११ ॥

वहां गये भी हैं, ऐसा विचार कर भूदेव अग्निहोत्री कुटुम्बी ॥ ७ ॥ गौ और दासोंको साथ ले गौतमके आश्रममें गये कोई पूर्व कोई दक्षिण देशसे आये ॥ ८ ॥ कोई पश्चिम कोई उत्तर इस प्रकार अनेक दिशाओंसे आये ब्राह्मणोंके समाजको आया देख गौतमने प्रणाम किया ॥ ९ ॥ आसनादि उपचारोंसे सबका पूजन किया और कुशल प्रश्न आगमन कारण पूँछा ॥१०॥ उन सबने भी अपना अपना वृत्तान्त कहा उन ब्राह्मणोंको दुःखी देख मुनिने अभय दिया ॥ ११ ॥

कि यह आपका ही स्थान है मैं तुम्हारा सर्वथा दास हूं हे ब्राह्मणो मुझ सेवकके होते आपको क्या चिन्ता है ॥ १२ ॥ मैं इस समय धन्य हूं जो तुम सब तपोधनोंका दर्शन पाया जिनके दर्शनसे दुष्कृतभी सुकृतहो जातेहैं ॥१३॥वे सब चरणरजसे मेरे घरको पवित्र करेंगे जब तुम्हारा अनुग्रह हुआ तो मुझसे अधिक और कौन धन्य है ॥१४॥ आप सबको संध्याजपमें परायण हो सुखपूर्वक निवास करना चाहिये व्यासजी बोले मुनिराज गौतम इस प्रकार सबको साव धान करके ॥१५॥ भक्तिसे नम्रकन्धर हो गायत्रीकी प्रार्थना करने लगे हे देवि ! महाविधे,वेद माता परात्परे तुमको प्रणाम है ॥१६॥ व्याहृति आदि महामंत्रके रूप वाली प्रणवरूपिणी साम्यावस्थामें स्थित, माता, ह्रींकाररूपिणीको प्रणाम है ॥१६॥ स्वाहा स्वधास्वरूप सब अर्थकी देनेवाली तुमको प्रणाम है हे देवि ! तुम

युष्माकमेतत्सदनं भवद्दासोऽस्मि सर्वथा ॥ का चिंता भवतां विप्रा मयि दासे विराजति ॥ १२ ॥ धन्योऽहमस्मिन्समये यूयं सर्वे तपो धनाः ॥ येषां दर्शनमात्रेण दुष्कृतं सुकृतायते ॥१३॥ ते सर्वे पादरजसापावयंति गृहं मम ॥ को मदन्यो भवेद्धन्यो भवतां समनुग्रहात् ॥ १४ ॥ स्थेयं सर्वैः सुखेनैव संध्याजपपरायणैः ॥ व्यास उवाच ॥ इति सर्वान्समाश्वास्य गौतमो मुनि राट् ततः ॥ १५ ॥ गायत्रीं प्रार्थयामास भक्तिसन्नतकंधरः नमो देवि महाविद्ये वेदमातः परात्परे ॥ १६॥ व्याहृत्यादिमहामंत्ररूपे प्रण वरूपिणी ॥ सम्यावस्थात्मिके मातर्नमो ह्रींकाररूपिणी ॥ १७ ॥ स्वाहास्वधास्वरूपे त्वां नमामि सकलार्थदाम् ॥ भक्तकल्पलतां देवीमवस्थात्रयसाक्षिणीम् ॥ १८॥ तुर्यातीतस्वरूपां च सच्चिदानंदरूपिणीम् सर्ववेदांतसंवेद्यां सूर्यमण्डलवासिनीम् ॥ १९ ॥ प्रातर्बालां रक्तवर्णां मध्याह्ने युवतीं पराम् ॥ सायाह्ने कृष्णवर्णां तां वृद्धां नित्यं नमाम्यहम् ॥ २० ॥ सर्वभूतारणे देविक्षमस्व परमेश्वरी ॥इति स्तुता जगन्माता प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥ २१ ॥ पूर्णपात्रं ददौ तस्मै येन स्यात्सर्वपोषणम् ॥ उवाच मुनिमंबा सा यंयं कामं त्वमिच्छसि ॥ २२ ॥

भक्तोंको कल्पवृक्ष और तीनों अवस्थाकी साक्षी हो ॥ १८ ॥ तुरीयातीतस्वरूप सच्चिदा नन्दरूपिणी सब वेदान्तसे जानने योग्य सूर्यमंडलमें निवास करने वाली ॥ १९ ॥ प्रभातमें रक्तवर्ण बालस्वरूप मध्याह्नमें युवती सन्ध्यामें कृष्णवर्ण वृद्धारूपको नित्य प्रणाम करता हूं॥२०॥सब प्रणियोंकी तारनेवाली परमेश्वरी देवी मेरे अपराध क्षमा करना इस प्रकार स्तुतिको प्राप्त हो जगन्माताने प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ २१ ॥ और गौतमजीको एक पूर्णपात्र दिया जिसमें सब संतुष्ट होजायँ और मुनिसे देवीने कहा तुम जिस २ वस्तुकी इच्छा करोगे ॥ २२ ॥

उस उसकी पूर्ति इस मेरे पात्रद्वारा होगी ऐसा कह परमकला गायत्री देवी अन्तर्धान हुई ॥ २३ ॥ उस पात्रसे पर्वतके समान अन्नोंके ढेर निर्गत होने लगे. हे राजन् ! अनेक प्रकारके षड्रस और विविध तृण प्रगट हुए ॥ २४ ॥ दिव्य भूषण, क्षौम, वस्त्र, यज्ञोंके समारंभ अनेक पात्र प्रगटे ॥२५॥ हे राजन् ! जो कुछ भी उन मुनिराजको इष्ट होता, वह सबही उस गायत्रीके पूर्णपात्रसे निर्गत होता ॥ २६ ॥ तब मुनिराज गौतम सब मुनियोंको बुलाकर धनधान्य भूषणादि प्रसन्नतासे देते हुए ॥ २७ ॥ बहुत क्या उस पूर्णपात्रसे गोमहिषी आदि पशुभी निर्गत हुए यज्ञके संभार स्रुक् स्रुव प्रभृति निर्गत हुए ॥ २८ ॥ तब वे सब मिलकर मुनिके कथनानुसार यज्ञ करने लगे वह स्थान देवयज्ञके कारण स्वर्गके समान होगया ॥२९॥ त्रिलोकीमें जो कुछ सुन्दर वस्तु दीखती है

तस्य पूर्तिंकरं पात्रं मया दत्तं भविष्यति ॥ इत्युक्त्वांऽतर्दधे देवी गायत्री परमा कला ॥ २३ ॥ अन्नानां राशयस्तस्मान्निर्गताः पर्वतोपमाः ॥ षड्रसा विविधा राजंस्तृणानि विविधानि च ॥ २४ ॥ भूषणानि च दिव्यानि क्षौमानि वसनानि च यज्ञानां च समारंभाः पात्राणिविविधानि च ॥ २५ ॥ यद्यदिष्टमभूद्राजन्मुनेस्तस्य महात्मनः ॥ तत्सर्वं निर्गतं तस्माद्गायत्रीपूर्णपात्रतः ॥ २६ ॥ तथाऽहूय मुनीन्सर्वान्मुनिराड्गौतमस्तदा ॥ धनं धान्यं भूषणानि वसनानि ददौ मुने ॥ २७ ॥ गोमहिष्यादिपशवो निर्गताः पूर्णपात्रतः ॥ निर्गतान्यज्ञसंभारान्स्रुक्स्रुवप्रभृतीन्ददौ ॥ २८ ॥ ते सर्वे मिलिता यज्ञांश्चक्रिरे मुनिवाक्यतः ॥ स्थानं तदेव भूयिष्ठमभवत्स्वर्गसन्निभम् ॥ २९ ॥ यत्किंचित्त्रिषु लोकेषु सुन्दरं वस्तु दृश्यते ॥ तत्सर्वं तत्र निष्पन्नं गायत्रीदत्तपात्रतः ॥ ३० ॥ देवांगनासमा दाराः शोभंते भूषणादिभिः ॥ मुनयो देवसदृशा वस्त्रचंदन भूषणैः ॥ ३१ ॥ नित्योत्सवः प्रववृते मुनेराश्रममण्डले ॥ न रोगादिभं किंचिन्नच दैत्यभयं क्वचित् ॥ ३२ ॥ स मुनेराश्रमो जातः समंताच्छ तयोजनः ॥ अन्ये च प्राणिनो येऽपि तेऽपि तत्र समागताः ॥ ३३ ॥ तांश्च सर्वान्पुपोषाऽयं दत्त्वाऽभयमथात्मवान् ॥ नानाविधैर्महायज्ञैर्विधिवैकल्पितैः सुराः ॥ ३४ ॥

उस गायत्रीके दिये पात्रसे वह सबही निष्पन्न हुई ॥३०॥ स्त्रीजन भूषण धारण कर देवताओंकी स्त्रियोंके समान शोभित हुई. मुनिजन वस्त्र चन्दन भूषण धारण करनेसे देवताओंके समान शोभित हुए ॥ ३१ ॥ इस प्रकार मुनिजनोंके आश्रममण्डलमें नित्य उत्सव प्रवृत्त हुआ रोग दैत्यादि किसीका कुछ भय न रहा ॥ ३२ ॥ वह मुनिका आश्रम सौ योजनतक घिर गया दूसरे प्राणी भी सब उस स्थानमें आगये ॥ ३३ ॥ यह विचारवान् उन सबको अभय देकर पालन करने लगे अनेक प्रकारके महायज्ञोंकी कल्पनासे देवता ॥ ३४ ॥

परमसंतोषको प्राप्त हो मुनिका यश कथन करने लगे उस समय अपनी सभामें स्वयं इन्द्रने यह श्लोक कहा था ॥ ३५ ॥ अहो इस समय यह गौतम हमको कल्पवृक्ष स्वरूप हो रहा है प्रतिष्ठित हो हमारे मनोरथ पूर्ण करता है नहीं तो इस दुर्लभ समयमें हविवर्षा कहां प्राप्त हो सकती है जबकि जीवनकी आशा भी दुर्लभ होरही है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार गौतमजीने बारह वर्ष गर्वरहित हो पुत्रके समान सबका पालन किया ॥ ३७ ॥ वहां मुनिश्रेष्ठने गायत्रीका परम स्थान बनाया जहां सब मुनिश्रेष्ठजगदम्बाका पूजन करते थे ॥ ३८ ॥ तीनोंकाल परमभक्तिसे पुरश्चरणादि करते थे अब भी वहां देवी प्रभातकालमें बाल स्वरूप ॥ ३९ ॥ मध्याह्नमें युवती और सायंकालमें वृद्धास्वरूप दिखाई देती है एक समय वहां नारदजीका आगमन हुआ ॥४०॥ जो अपनी महती नामक

संतोषं परमं प्रापुर्मुनेश्चैव जगुर्यशः ॥ सभायां वृत्रहा भूयो जगौ लोकं महायशाः ॥ ३५ ॥ अहो अयं नः किल कल्पपादपो मनोरथान्पूरयति प्रतिष्ठितः ॥ नोचेदकाण्डे क्व हविर्वपा वां सुदुर्लभा यत्र तु जीव नाशा ॥ ३६ ॥ इत्थं द्वादशवर्षाणि पुपोष मुनिपुंगवान् ॥ पुत्रवन्मुनिराड्गर्वगंधेन परिवर्जितः ॥ ३७ ॥ गायत्र्याः परमं स्थानं चकार मुनि सत्तमः ॥ यत्र सर्वैर्मुनिवरैः पूज्यते जगदंबिका॥३८॥ त्रिकालं परया भक्त्या पुरश्च रणकर्मभिः ॥ अद्यापि तत्र देवी सा प्रातर्बाला तु दृश्यते ॥ ३९ ॥ मध्याह्ने युवती वृद्धा सायंकाले तु दृश्यते ॥ तत्रैकदा समायातो नारदोमुनिसत्तमः ॥ ४० ॥ रणयन्महतीं गाय न्गायत्र्याः परमान्गुणान् ॥ निषसाद सभामध्ये मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ४१ ॥ गौतमादिभिरत्युच्चैः पूजितः शांतमानसः ॥ कथाश्चकार विविधा यशसो गौतमस्य च ॥ ४२ ॥ ब्रह्मर्षे देवसदसि देवराट् तव यद्यशः ॥ गौ बहुविधंज स्वच्छं मुनिपोषणजं परम् ॥ ४३ ॥ श्रुत्वा शचीपतेर्वाणीं त्वां द्रष्टुमहमागतः ॥ धन्योऽसि त्वं मुनिश्रेष्ठ जगदंबाप्रसादतः ॥ ४४ ॥ इत्युक्त्वा मुनिवर्यं तं गायत्रीसदनं ययौ ॥ ददर्श जगदंबां तां प्रेमोत्फुल्लविलोचनः ॥४५॥

वीणा को बजातेउसमें गायत्रीके परम गण गाते थे उस समय वह उन ज्ञानी मुनियोंकी सभामें स्थित हुए ॥ ४१ ॥ और गौतमादिने भी उच्च पूजा की. शान्त मन नारदजीने अनेक प्रकार गौतमका यश कहा ॥ ४२ ॥ हे ब्रह्मर्षि !राजा इन्द्रने भी अपनी सभामें यह तुम्हारा ऋषिपोषणरूप निर्मल यश बहुत प्रकारसे वर्णन किया है ॥४३॥ इन्द्रकी वह वाणी सुन मैं तुमको देखनेको आया हूं. हे मुनि ! तुम गायत्रीके प्रसादसे धन्य हो ॥४४॥ मुनिश्रेष्ठने यह वचन कह नारदजी गायत्रीके स्थानमें गये और प्रेमसे उत्फुल्ल लोचन हो जगदम्बाका दर्शन किया ॥४५॥

और विधिपूर्वक देवीकी स्तुति कर स्वर्गको गये उस स्थानमें जो ब्राह्मण मुनिसे पोषण हुए स्थित थे ॥ ४६ ॥ वह मुनिका उत्कर्ष सुनकर असूयासे बडे खेदको प्राप्त हुए और विचारा कि अब वह करना चाहिये जिससे इनका यश न हो ॥ ४७ ॥ समयपर कार्य साधन करेंगे यह सबने निश्चय किया फिर कुछ समयमें भूमिपर वर्षा हुई ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! सब देशोंमें सुभिक्ष हुआ सुभिक्षकी बात सुन सब ब्रह्मचारी मिलकर ॥४९॥ गौतमके शाप देनेका उद्योग करने लगे. हे राजन् ! यह बडे खेदकी बात है उनके माता पिताको धन्य है जिनकी उत्पत्ति ऐसी है ॥ ५० ॥ हे राजन् ! कालकी महिमा कौन कह सकता है उन मुनियोंने एक बड़ी वृद्धा मरणको प्राप्त गौमायासे निर्माण की ॥ ५१ ॥ वह मुनिके होम समय शालामें गई ज्योंही हुं हुं शब्दसे ऋषिने उसको निवारण

तुष्टाव विधिवद्देवीं जगाम त्रिदिवं पुनः ॥ अथ तत्र स्थिता ये ते ब्राह्मणा मुनिपोषिताः ॥ ४६ ॥ उत्कर्षं तु मुनेः श्रुत्वाऽसूयया खेदमागताः ॥ यथाऽस्य न यशो भूयात्कर्तव्यं सर्वथैव हि ॥ ४७ ॥ काले समागते पश्चादिति सर्वैस्तु निश्चितम् ॥ ततः कालेन कियताऽप्यभूद्वृष्टिर्धरातले ॥ ४८ ॥ सुभिक्षमवत्सर्वं देशेषु नृपसत्तम ॥ श्रुत्वा वार्तां सुभिक्षस्य मिलिताः सर्ववाडवाः ॥ ४९ ॥ गोतमं शप्तुमुद्योगं हाहा राजन्प्रचक्रिरे ॥ धन्यौ:तेषां च पितरौ ययोरुत्पत्तिरीदृशी ॥ ५० ॥ कालस्य महिमा राजन्वक्तुं केन हि शक्यते ॥ गौर्निर्मिता माययैका मुमूर्षुर्जरती नृपः ॥ ५१ ॥ जगाम सा च शालायां होमकाले मुनेस्तदा ॥ हुं हुंशब्दैर्वारिता सा प्राणांस्तत्याज तत्क्षणे ॥ ५२ ॥ गौर्हताऽनेनदुष्टेनत्येवं ते चुक्रुशुर्द्विजाः ॥ होमं समाप्य मुनिराड्विस्मयं परमं गतः ॥ ५३ ॥ समाधिमीलिताक्षः संश्चितयामास कारणम् ॥ कृतंसर्वं द्विजैरेतदिति ज्ञात्वा तदैव सः ॥ ५४ ॥ दधार कोपं परमं प्रलये रुद्रकोपवत् ॥ शशाप च ऋषीन्सर्वान्कोपसंरक्तलोचनः ॥ ५५ ॥ वेदमातरि गायत्र्या तद्ध्याने तन्मनोजपे भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वथा ब्राह्मणाधमाः ॥ ५६ ॥

किया कि उसी समय उसने प्राण त्याग दिया ॥ ५२ ॥ तब ब्राह्मण कोसने लगे अहो इस दुष्टने गौ मारडाली तब मुनिराज होम समाप्त करके परम विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ५३ ॥ और समाधिमें हो नेत्रमूँद इसका कारण देखने लगे तब यह सब इन ब्राह्मणोंका कर्तव्य है यह सब जाना ॥ ५४ ॥ तथापि प्रलयमें रुद्रकोपके समान अपने कोपको धारण कर लाल नेत्रकर सब ऋषियोंको शाप दिया ॥ ५५ ॥ हे ब्राह्मणो ! जो वेद माता गायत्री सर्वस्वरूप है तुम उसके ध्यान और जपसे उन्मुख होंगे गायत्री त्यागी होनेसेही ब्राह्मणोंमें अधम होंगे ॥ ५६ ॥

हे ब्राह्मणाधमो ! वेद यज्ञ और उसकी वार्तासे तुम सदाही विमुख होंगे ॥ ५७ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! शिव शिवमंत्र और शिव शास्त्रसे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ५८ ॥ मूलप्रकृति श्रीदेवी उसका ध्यान और कथा इससे विमुख होकर तुम ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ५९ ॥ देवीके मंत्र स्थान और अनुष्ठानसे विमुख होकर ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ६० ॥ हे अधमो ! देवी उत्सव देखने देवीके नाम कीर्तनसे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६१ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! देवीभक्तिकी निकटता उसका अर्चन इससे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६२ ॥ शिवका उत्सव देखनेकी इच्छा शिवभक्तका पूजन इनमें तुम सदा विमुख होकर ब्राह्मणाम होंगे

वेदे वेदोक्तयज्ञेषु तद्वार्तासु तथैव च ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ५७ ॥ शिवे शिवस्य मंत्र च शिवशास्त्रे तथैव च ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ५८ ॥ मूलप्रकृत्याः श्रीदेव्यां तद्ध्याने तत्कथासु च ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ५९ ॥ देवीमंत्रे तथादेव्याः स्थानेऽनुष्ठानकर्मणि ॥ भावताऽनु यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमा ॥ ६० ॥ देव्युत्सवदिदृक्षायां देवीनामानुकीर्तने ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाः ॥ ६१ ॥ देवीभक्तस्य सान्निध्ये देवीभक्तार्चने तथा ॥ भक्ताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६२ ॥ शिवोत्सवदिदृक्षायां शिवभक्तस्य पूजने ॥ भवता ऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमा ॥ ६३ ॥ रुद्राक्षबिल्वपत्रे च तथा शुद्धे च भस्मनि ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६४ ॥ श्रौतस्मार्तसदाचारज्ञानमार्गे तथैव च भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६५ ॥ अद्वैतज्ञाननिष्ठायां शांतिदांत्यादि साधने ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्रह्मणाधमाः ॥ ६६ ॥ नित्यकर्माद्यनुष्ठानेऽप्यग्निहोत्रादिसाधने ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमा ॥ ६७ ॥ स्वाध्यायाध्ययनैश्चैव तथा प्रवचनेन च ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६८ ॥ गोदानादिषु दानेषु पितृश्राद्धेषु चैव हि ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ६९ ॥ कृच्छ्रचांद्रायणे चैव प्रायश्चित्ते तथैव च ॥ भवताऽनुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥ ७० ॥

॥ ६३ ॥ हे निकृष्टो ! रुद्राक्ष विल्वपत्र भस्म इससे तुम सदा विमुख अधम होंगे ॥ ६४ ॥ श्रुति स्मृतिके सदाचार ज्ञानमार्ग इससे तुम सदा विमुख ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ६५ ॥ अद्वैत ज्ञानकी निष्ठा शांति दांतिकी निष्ठाके साधन में तुम सदा विमुख अधम होंगे ॥ ६६ ॥ हेब्राह्मणो ! नित्यकर्मके अनुष्ठान, अग्निहोत्रके साधनमें तुम विमुख होंगे ॥ ६७ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! वेदपाठ स्वाध्याय प्रवचनमें तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६८ ॥ गोदानादि दान और पितृश्राद्धमें तुम सदा विमुख होंगे ॥ ६९ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! कृच्छ्रचान्द्रायण और प्रायश्चित्तसे तुम सदा विमुख होंगे ॥ ७० ॥

हे ब्राह्मणो ! तुम श्रीगायत्री देवीको छोड़कर दूसरे देवताओंमें श्रद्धा भक्ति करके शंख चक्रादिसे अंकित हो ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ७१ ॥ कापालिक मतमें आसक्त, बौद्धशास्त्रमें रत, पाखण्डाचारमें निरत हो ब्राह्मणाधम होंगे ॥ ७२ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! तुम पिता माता सुत भ्राता कन्या भार्याके बेचनेवाले होंगे ॥ ७३ ॥ हे ब्राह्मणाधमो ! तुम वेद तीर्थ और धर्मके बेचनेवाले होंगे ॥ ७४ ॥ पंचरात्र, काम, शास्त्र, कापालिकमत और बौद्धोंमें श्रद्धावाले होंगे ॥ ७५॥ तुम सब माता कन्या भगिनीगामी परस्त्रीलम्पट होनेसे स्त्रीलम्पट होंगे ॥ ७६ ॥ तुम्हारे वंशके स्त्री वा पुरुष मेरे शापसे दग्धहो तुम्हारीही समान होंगे

श्रीदेवीभिन्नदेवेषु श्रद्धाभक्तिसमन्विताः ॥ शंखचक्राद्यंकिताश्च भवत ब्राह्मणाधमाः ॥ ७१ ॥ कापालिकमतासक्ता बौद्धशास्त्ररताः सदा ॥ पाखंडाचारनिरता भवत ब्राह्मणाधमाः ॥ ७२ ॥ पितृमातृसुताभ्रातृकन्याविक्रयिणस्तथा ॥ भार्याविक्रयिणस्तद्वद्भवत ब्राह्मणाधमाः ॥ ७३ ॥ वेदविक्रयिणस्तद्वत्तीर्थविक्रयिणस्तथा ॥ धर्मविक्रयिणस्तद्वद्भवत ब्राह्मणाधमाः ॥ ७४ ॥ पांचरात्रे कामशास्त्रे तथा कापालिके मते ॥ बौद्धे श्रद्धायुता यूयं भवत ब्राह्मणाधमाः ॥ ७५ ॥ मातृकन्यागामिनश्च भगिनीगामिनस्तथा ॥ परस्त्रीलंपटा सर्वे भवता ब्राह्मणाधमाः ॥ ७६ ॥ युष्माकं वंशजाताश्च स्त्रियश्च पुरुषास्तथा ॥ मद्दत्तशाप दग्धास्ते भविष्यंति भवत्समाः ॥ ७७ ॥ किं मया बहुनोक्तेन मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ गायत्री परमा भूयाद्युष्मासु खलु कोपिता ॥ ७८ ॥ अंधकूपादिकुंडेषु युष्माकं स्यात्सदा स्थितिः ॥ व्यास उवाच ॥ वाग्दंडमीदृशं कृत्वाप्युपरपृश्य जलं ततः ॥ ७९ ॥ जगाम दर्शनार्थं च गायत्र्याः परमोत्सुकः ॥ प्रणनाम महादेवीं साऽपि देवी परात्परा ॥ ८० ॥ ब्राह्मणानां कृतिं दृष्ट्वा स्मयंचित्ते चकार ह ॥ अद्यापि तस्या वदनं स्मययुक्तं च दृश्यते ॥ ८१ ॥ उवाच मुनिवर्यं तं स्मयमानमुखांबुजा ॥ भुजंगायार्पितं दुग्धं विषायैवोपजायते ॥ ८२ ॥ शांतिं कुरु महाभाग कर्मणो गतिरीदृशी ॥ इति देवीं प्रणाम्याथ ततोऽगात्स्वाश्रमं प्रति ॥ ८३ ॥

॥ ७७ ॥ मेरे बहुत कहनेसे क्या है वह मूल प्रकृति ईश्वरी परमा गायत्री तुमपर क्रुद्ध रहेगी ॥ ७८ ॥ अन्धकूपादि कुण्डोंमें तुम्हारी स्थिति होगी व्यासजी बोले इस प्रकार गौतमजी वाग्दंड देकर जलस्पर्श कर ॥ ७९ ॥ परमउत्सुक हो गायत्रीके दर्शनोंको गये महादेवीको प्रणाम किया वह भी परात्परादेवी ॥ ८० ॥ ब्राह्मणोंके कर्तव्यको देख बड़ी विस्मित हुई अबतक उनका मुख स्मययुक्त दीखता है ॥ ८१ ॥ फिर हँसती हुई मुखकमलसे मुनिश्रेष्ठसे कहने लगी सर्पको दिया दूध विषके निमित्तही होता है ॥ ८२ ॥ हे महाभाग ! शांति करो कर्मकी ऐसेही गति है इस प्रकार देवीको प्रणाम कर गौतम अपने आश्रम में

आये ॥ ८३ ॥ तब शापदग्ध होनेके कारण ब्राह्मण वेद भूलगये तथा गायत्री भी विस्मृत हुई यह बडी अद्भुत बात हुई ॥ ८४ ॥ वे सब मिलकर पश्चात्ताप करने लगे और दंडवत् पतितहो मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करने लगे ॥ ८५ ॥ और लज्जासे नीचेको मुखकर कुछ न बोले प्रसन्न हो २ ऐसा वार २ कहने लगे ॥ ८६ ॥ इन प्रकार मुनिको घेर सब ओरसे प्रार्थना करने लगे तब करुणासे पूर्णहृदय हो मुनिने उनसे कहा ॥ ८७ ॥ कि कृष्णावतारपर्यन्त तुम्हारी कुंभीपाकमें स्थिति होगी मेरा वाक्य असत्य नहीं होता यह तुम सर्वथा सत्य जानो ॥ ८८ ॥ फिर कलियुगमें तुम्हारा जन्म होगा मेरा कहा यह सब होगा इसमें अन्यथा नहीं ॥ ८९ ॥ मेरे शाप दूर करनेकी यदि तुम्हारी इच्छा हो तो सबको गायत्रीके चरणकमल सेवन करने चाहिये ॥ ९० ॥ व्यासजी बोले मुनि

ततो विप्रैः शापदग्धैर्विस्मृता वेदराशयः ॥ गायत्री विस्मृता सर्वैस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ८४ ॥ ते सर्वेऽथ मिलित्वा तु पश्चात्तापयुतास्तथा ॥ प्रणेमुर्मुनिवर्यं तं दंडवत्पतिता भुवि ॥ ८५ ॥ नोचुः किंचन वाक्यं तु लज्जयाऽधोमुखाः स्थिताः ॥ प्रसीदेति प्रसीदेति प्रसीदेति पुनः पुनः ॥ ८६ ॥ प्रार्थयामासुर भितः परिवार्य मुनीश्वरम् ॥ करुणापूर्णहृदयो मुनिस्तान्समुवाच च ॥ ८७ ॥ कृष्णावतारपर्यंतं कुंभीपाके भवेत्स्थितिः ॥ न मे वाक्यं मृषा भूयादिति जानीथ सर्वथा ॥८८॥ ततः परं कलियुगे भुवि जन्म भवेद्धि वाम् ॥ मदुक्तं सर्वमेतत्तु वेदेव न चान्यथा ॥ ८९ ॥ मच्छापस्य विमोक्षार्थं युष्माकं स्याद्य दीषणा ॥ तर्हि सेव्यं सदा सर्वैर्गायत्रीपदपंकजम् ॥ ९० ॥ व्यास उवाच ॥ इति सर्वान्विसृज्याथ गौतमो मुनिसत्तमः प्रारब्धमिति मत्वा तु चित्ते शांति जगाम ह ॥ ९१ ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन्गते कृष्णे तु धामनि ॥ कलौ युगे प्रवृत्ते तु कुंभीपाकात्तु निर्गताः ॥ ९२ ॥ भुवि जाता ब्राह्मणाश्च शापदग्धाः पुरा तु ये ॥ संध्यात्रयविहीनाश्च गायत्रीभक्तिवर्जिताः ॥ ९३ ॥ वेदभक्तिविहीनाश्च पाखंडमतः गामिनः अग्निहोत्रादिसत्कर्मस्वधास्वाहाविवर्जिताः ॥ ९४ ॥

श्रेष्ठ गौतम इस प्रकार सबको विदाकर प्रारब्ध है यह जानकर चित्तमें शान्त हुए ॥ ९१ ॥ हे राजन् ! इस कारण कृष्णके परम धाममें जानेसे कलियुगके प्रारम्भमें वे कुम्भीपाकसे निकले "और देवताकी पूजा क्यों करते हैं यह उसका उत्तर हुआ" ॥ ९२ ॥ वह पहले शापसे दग्ध हुए पृथिवीपर जन्मे वही तीनों कालकी संध्यासे विहीन गायत्रीकी भक्तिसे वर्जित हुए ॥ ९३ ॥ वेदभक्तिसे हीन पाखंडमतगामी थे अग्निहोत्रादि सत्कर्म स्वाहा स्वधासे वर्जित हुए ॥ ९४ ॥

मूलप्रकृति अव्यक्तको वह नहीं जानते कोई तप्तमुद्रासे अंकित कोई कामाचारमें तत्पर हुए ॥ ९५ ॥ कापालिक कौलिक बौद्ध जैन इन मतोंसे पंडित होकर भी वह दुराचारमें प्रवृत्त हुए ॥ ९६ ॥ पराई स्त्रियोंमें लम्पट दुराचारमें परायण हुए यह सब अपने कर्मोंसे फिर कुम्भीपाकमें जायँगे ॥ ९७ ॥ हे राजन् ! इस कारण सर्वात्मासे परमेश्वरीका सेवन करना चाहिये शिव विष्णुकी उपासना नित्य नहीं है ॥ ९८ ॥ गायत्रीरूप शक्तिकी उपासना ही नित्य है जिसके विना यह प्राणी अधःस्थानमें पतित होता है ये पापरहित जो तुमने पूँछा वह मैंने सब संक्षेपसे कहा ॥ ९९ ॥ अब इसके उपरांत सुन्दर मणि द्वीपका वर्णन सुनो जो संसारकी आदिकारण भुवनेशीका परम स्थान है ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषायां नवमोऽध्यायः

मूलप्रकृतिमव्यक्तां नैव जनंति कर्हिचित् ॥ तप्तमुद्रांकिताः केचित्कामाचाररताः परे ॥ ९५ ॥ कापालिकाः कौलिकाश्च बौद्धा जैना स्तथापरे ॥ पंडिता अपि ते सर्वे दुराचारप्रवर्तकाः ॥ ९६ ॥ लंपटापरदारेषु दुराचारपरायणाः ॥ कुंभीपाकं पुनः सर्वे यास्यंति निजकर्मभिः ॥ ९७ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्संसेव्या परमेश्वरी ॥ न विष्णूपासना नित्या न शिवोपसना तथा ॥ ९८ ॥ नित्या चोपासना शक्तेर्या विना तु पतत्यधः ॥ सर्वमुक्तं समासेन यत्पृष्टं तत्त्वयाऽनघ ॥ ९९ ॥ अतः परं मणिद्वीपवर्णनं शृणु सुन्दरम् ॥ यत्परस्थानमाद्याया भुवनेश्या भवारणेः ॥ १०० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कंधे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ व्यास उवाच ॥ ब्रह्मलोकादूर्ध्वभागे सर्वलोकोऽस्ति यः श्रुतः ॥ मणिद्वीपः स एवास्ति यत्र देवी विराजते ॥ १ ॥ सर्वस्मादधिको यस्मात्सर्वलोकस्ततः स्मृतः पुरा परांबयैवायं कल्पितो मनसेच्छया ॥ २ ॥ सर्वादौ निजवासार्थं प्रकृत्या मूल भूतया ॥ कैलासादधिको लोको वैकुण्ठादपि चोत्तमः ॥ ३ ॥ गोलोकादपिसर्वस्मात्सर्वलोकोऽधिकः स्मृतः ॥ न तत्समं त्रिलोक्यां तु सुन्दरंविद्यते क्वचित् ॥ ४ ॥ छत्रीभूतं त्रिजगतो भवसंतापनाशकम् ॥ छायाभूतं तदेवास्ति ब्रह्मांडानां तु सत्तम ॥ ५ ॥

॥ ९ ॥ ब्रह्मलोकसे ऊर्ध्वभागमें जो सर्वलोकश्रुत है वही मणिद्वीप है जहां देवी विराजमान है, सुबालोपनिषद्में लिखा है, "सर्वलोका आत्मनि ब्रह्मणि प्रणय इपीताश्च प्रोताश्चेति" ॥ १ ॥ यह सबसे अधिक है, इसी कारण इसको सर्वलोक कहते हैं पहले श्रीभगवतीने मनकी इच्छासेही इसको कल्पित किया है ॥ २ ॥ मूलभूत प्रकृतिने सबकी आदिमें अपने निवासके निमित्त कैलाससे अधिक वैकुंठसे उत्तम ॥ ३ ॥ तथा गोलोकसे भी उत्तम किया है इससे अधिक त्रिलोकीमें कोई सुन्दर लोक नहीं है ॥४॥ यह तीनों जगत्‌का छत्रभूत संसारका संताप नाश करनेवाला है, हे सत्तम ! यह ब्रह्माण्डोंका छायाकारक है ॥५॥

बहुत योजनोंके विस्तारमें तथा उतना ही गंभीर है मणिद्वीपके चारों ओर सुधासागर है ॥ ६ ॥ जिसमें वायुद्वारा अनेक तरंगें उठती हैं रत्नोंकी सुन्दर वालुका झष शंखोंसे व्याप्त है ॥ ७ ॥ बीचियोंके संघर्षणसे अनेक लहरी कणोंसे शीतल अनेक ध्वजा और जहाजोंसे युक्त है ॥ ८ ॥ सब ओरसे विराजमान्, तीरमें रत्न समान कांति वाले वृक्ष हैं इसके उपरान्त अपधातु (लोहा) का निर्मित अतिऊंचा ॥ ९ ॥ सातयोजनका विस्तारवाला महान् परकोटा है जिसमें अनेक शस्त्रोंके प्रहारवाले अनेकों युद्धोंमें चतुर ॥ १० ॥ प्रसन्नचित्तसे रक्षक निवास करते हैं चार जिसके द्वार और सैकड़ो द्वारपालोंसे युक्त ॥ ११ ॥ तथा देवीके परमभक्त अनेकगणोंसे व्याप्त है जो देवता जगदीश्वरीके दर्शनोंको आते हैं ॥ १२ ॥ उनके गण और वाहन सब वहीं निवास करते

बहुयोजनविस्तीर्णो गभीरस्तावदेव हि ॥ मणिद्विपस्य परितो वर्तते तु सुधादधिः ॥ ६ ॥ मरुत्संघट्टनोत्कीर्णतरंगशत संकुलः रत्नाच्छ
वालुकायुक्तो झषशंखसमाकुलः ॥ ७ ॥ वीचिसंघर्षसञ्जातलहरी कणशीतलः ॥ नानाध्वजसमायुक्त नानापोतगतागतैः ॥ ८ ॥ विराज
मानः परितस्तीररत्नद्रुमो महान् तदुत्तर मयो धातुर्निर्मितो गगने ततः ॥ ९ ॥ सप्तयोजनविस्तीर्णः प्राकारो वर्तते महान् ॥ नानाशस्त्र
प्रहरणा नानायुद्धविशारदाः ॥ १० ॥ रक्षका निवसंत्यत्र मोदमानाः समंततः ॥ चतुर्द्वारसमायुक्तो द्वारपालशतान्वितः ॥ ११ ॥ नाना
गणैः परिवृतो देवीभक्तियुतैर्नृप ॥ दर्शनार्थं समायांति ये देवा जगदीशितुः ॥ १२ ॥ तेषां गणा वसंत्यत्र वाहनानि च तत्र हि ॥
विमानशतसंघर्षघंटास्वनसमाकुलः ॥ १३ ॥ हयहेषाखुराघातबधिरीकृतदिङ्मुखः ॥ गणैः किलकिलारावैर्वेत्रहस्तैश्च ताडिताः ॥ १४ ॥
सेवका देवसंगानां भ्राजंते तत्र भूमिप ॥ तस्मिन्कोलाहले राजन्न शब्दः केनचित्क्वचित् ॥ १५ ॥ कस्यचिच्छ्रयतेऽत्यंतनानाध्वनिसमा
कुले ॥ पदे पदे मिष्टवारिपरिपूर्ण सरांसि च ॥ १६ ॥ वाटिका विविधा राजन् रत्नद्रुमविराजिताः ॥ तदुत्तरं महासारधा
तुनिर्मितमंडलः ॥ १७ ॥

हैं. सैकड़ों विमानोंसे व्याप्त घंटोंके शब्दोंसे समाकीर्ण ॥ १३ ॥ घोडोंकी हिनहिनाहट खुराघातसे जहांकी दिशायें बधिरीभूत हो रही हैं किल किल शब्दवाले वेत्रधारी गणोंसे शब्द निवारणार्थ ताडित ॥ १४ ॥ देवताओंके सेवक जहां विराजमान होते हैं. हे राजन् उस कोलाहलमें कौन किसका शब्द ॥ १५ ॥ उस महाध्वनिमें सुन सकता है. पदपदमें मीठे जलके सरोवर हैं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! रत्नवृक्षोंकी अनेक वाटिका विद्यमान हैं उसके उत्तरमें महासार कांसीका बना हुआ मण्डल है ॥ १७ ॥

यह प्रकारभी गगनका स्पर्श करनेवाला महान् है और लोह प्रकारसे तेजमें यह ऊंचे शिखरवाला सौगुणा अधिक है ॥ १८ ॥ गोपुरद्वारोंके सहित बहुत वृक्षोंसे समन्वित है जगत्में जितनी वृक्षोंकी जाति हैं यह वहां सब हैं ॥ १९ ॥ जिनमें फल फूल सदा लगे रहते नवपल्लव और परम गंधसे युक्त हैं ॥ २० ॥ पनस, बकुल, लोध, कर्णिकार, शिंशपा, देवदारु, कचनार आम, सुमेरव ॥ २१ ॥ लिकुचा, हिंगुल, एला, लवंग, कट्फल, पाटल, मुचकुन्द, फलिनी जघनेफला ॥ २२ ॥ ताल, तमाल, साल, ककोल, नागभद्रक, पुन्नाग, पीलव, शाल्व, कर्पूरके वृक्ष ॥२३॥ अश्वकर्ण, हस्तिकर्ण, तालपर्ण, दाडिमी, गणिका, बंधुजीवक

सालोऽपरो महानस्ति गगनस्पार्शीयच्छिरः ॥ तेजसा स्याच्छतगुणः पूर्वशालादयं परः ॥ १८ ॥ गोपुरद्वार सहितो बहुवृक्षसमन्वितः ॥ या वृक्षजातयः संति सर्वास्तास्तत्र संति च ॥ १९ ॥ निरंतरं पुष्पयुताः सदा फलसमन्विताः ॥ नवपल्लवसंयुक्ताः परसौरभसंकुलाः ॥ २० ॥ पनसा बकुला लोध्राः कर्णिकाराश्च शिंशपाः ॥ देवदारुकांचनारा आम्राश्चैव सुमेरवः ॥ २१ ॥ लिकुचा हिंगुलाश्चैला लवंगाः कट्फलास्तथा ॥ पाटला मुचुकुंदाश्च फलिन्यो जघनेफलाः ॥ २२ ॥ तालास्तमालाः सालाश्च कंकोला नागभद्रकाः ॥ पुन्नागाः पीलवः साल्वका वै कर्पूरशाखिनः ॥ २३ ॥ अश्वकर्णा हस्तिकर्णास्तालपर्णाश्च दाडिमाः गणिका बंधुजीवाश्च जंबीराश्च कुरंडकाः ॥ २४ ॥ चांपेया बन्धु जीवाश्च तथा वै कनकद्रुमाः ॥ कालागुरुद्रुमाश्चैव तथा चंदनपादपाः ॥ २५ ॥ खर्जूरा यूथिकास्तालपर्ण्यश्चैव तथेक्षवः ॥ क्षीवृक्षाश्च खदिराश्चिचाभल्लातकास्तथा ॥ २६ ॥ रुचकाः कुटजा वृक्षा बिल्ववृक्षास्तथैव च ॥ तुलसीनां वनान्येवं मल्लिकानां तथैव च ॥ २७ ॥ इत्यादितरुजातीनां वनान्युपवनानि च ॥ नानावापीशतैर्युक्तान्येवं संति धराधिप ॥ २८ ॥ कोकिलारावसंयुक्ता गुंजद्भ्रमरभूपिताः ॥ निर्यासस्राविणः सर्वे स्निग्धच्छा यास्तरूत्तमाः ॥ २९ ॥ नानाऋतुभवा वृक्षा नानापक्षिसमाकुलाः ॥ नानारसस्राविणीभिर्नदीभिरतिशोभिताः ॥ ३० ॥

जंभीरी, कुरंटक ॥ २४ ॥ चंपोय, बंधुजीव, कनकद्रुम, कालागरवृक्ष, चन्दन, वृक्ष, ॥ २५ ॥ खजूर, यूथिका, तालपर्णी, ईख, क्षीरवृक्ष, खैर, चिंचा, बल्लातक (भिलावा) ॥ २६ ॥ रुचक, कुटज, वेलोंके वृक्ष तुलसी और चमेलियोंके वृक्ष हैं ॥ २७ ॥ इस प्रकार वृक्षोंके वन उपवनोंसे व्याप्त, अनेक बावडियोंसे सम्पन्न हैं ॥ २८ ॥ कोकिलके शब्द और भौंरोंकी गुंजारसे व्याप्त है जो सब वृक्ष गोंदस्रावी और सुंदर छायावाले हैं ॥ २९ ॥ वे वृक्ष अनेक ऋतुओंमें होनेवाले अनेक पक्षियोंसे सेवित अनेक रस बहानेवाली नदियोंके तटपर शोभित हैं ॥ ३० ॥

कबूतर तोतोंके समूह और मैंनाओंके पक्षोंकी पवन तथा हंसोंके पंखोंकी वायुसे जहांके वृक्ष बहुत चलायमान रहते हैं ॥ ३१ ॥ सुगंधग्राही पवनसे वह वन पूरित हो रहा है. इधर उधर हरिणियोंके यूथ धावमान होरहे हैं ॥ ३२ ॥ मोरोंके समूह नृत्य करते मोरोंकी वाणी सब ओरसे होरही. इस प्रकार सुख दायक वाणीसे वह मधुस्रावी वन व्याप्त होरहा है ॥ ३३ ॥ कांसीके प्राकारके आगे ताम्रका परकोटा है जो चौकोन और सातयोजन ऊंचा है ॥ ३४ ॥ इन दोनों परकोटोंके मध्यमें कल्पवृक्षोंके बगीचे हैं. हे राजन् ! जिन वृक्षोंके पुष्प सुवर्णके समान कांतिवाले हैं ॥ ३५ ॥ पत्र सुवर्णके समान बीजफल रत्नोंके समान हैं उनकी गंध सब ओरसे दश योजन पर्यन्त जाती है ॥ ३६ ॥ वसन्त ऋतु दिनरात उसकी रक्षा करता है. हे राजन् ! वह वसन्त पुष्पोंके सिंहास

पारावतशुकव्रातसारिकापक्षमारुतैः ॥ हंसपक्षसमुद्भूता वातव्रातैश्चलद्द्रुमम् ॥ ३१ ॥ सुगंधग्राहिपवनपूरितं तद्वनोत्तमम् ॥ सहितं हरिणी यूथैर्धाव मानैरितस्ततः ॥ ३२ ॥ नृत्यद्बर्हिकदंबस्य केंकारावैः सुखप्रदैः ॥ नादितं तद्वनं दिव्यं मधुस्त्रावि समंततः ॥ ३३ ॥ कांस्य सालादुत्तरे तु ताम्रसालः प्रकीर्तितः ॥ जतुरस्रसमाकार उन्नत्या सप्तयोजनः ॥ ३४ ॥ द्वयोस्तु सालयोर्मध्ये संप्रोक्ता कल्पवाटिका ॥ येषां तरूणां पुष्पाणि कांचनाभानि भूमिप ॥ ३५ ॥ पत्राणि कांचनाभानि रत्नबीजफलानि च ॥ दशयोजनगंधो हि प्रसर्पति समंततः ॥ ३६ ॥ तद्वनं रक्षितं राजन्वसन्तेनर्तुनानिशिम् ॥ पुष्पसिंहासनासीनः पुष्पच्छत्रविराजितः ॥३७॥ पुष्पभूषाभूषितश्च पुष्पासववि घूर्णितः मधुश्रीर्माधवश्रीश्च द्वे भार्ये तस्य संमते ॥ ३८ ॥ क्रीडतः स्मेरवदने सुमस्तबक कंदुकैः ॥ अतीव रम्यं विपिनं मधुस्त्रावि समंततः ॥ ३९ ॥ दशयोजनपर्यंतं कुसुमामोदवायुना ॥ पूरितं दिव्यगंधर्वैः सांगनैर्गानलोलुपैः ॥ ४० ॥ शोभितं तद्वनं दिव्यं मत्तको किलनादितम् ॥ वसंतलक्ष्मीसंयुक्तं कामिकामप्रवर्धनम् ॥ ४१ ॥

नपर आसीन, फूलोंके छत्रसे विराजित ॥ ३७ ॥ पुष्पोंके भूषणोंसे भूषित, पुष्पोंके आसवसे मदको प्राप्त मधुश्री माधवश्री दोभार्या ॥ ३८ ॥ स्मितमुखियोंके साथ कुसुमके गुच्छोंकी गेंदसे खेलता हुआ रहता है वह मधुस्त्रावी वन बहुत ही मनोहर है ॥ ३९ ॥ दशयोजनतक वायुद्वारा इसकी गंध जाती है और गंधके लोलुप अंगना साथ लिये गंधर्वोंसे वह बन पूरित रहता है ॥ ४० ॥ वह दिव्य वन मत्तवाले कोकिलाओंके नादसे शोभित है, यह वसन्त लक्ष्मीसे संयुक्त कामियोंके कामका बढानेवाला है ॥ ४१ ॥

ताम्र परकोटेके आगे सीसेका परकोटा है जो सात योजन पर्यंत ऊंचा है ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! इनदोनों परकोटोंके मध्यमें संतानक वृक्षोंकी वाटिका है जिसके फूलोंकी दशयोजन पर्यंत गंध जाती है ॥ ४३ ॥ हिरण्यके समान कांतिमान् जहांके फूल नित्य खिले रहते हैं जिनके मधुर फल अमृतद्रवके समान हैं ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! उस वाटिकाका ग्रीष्म ऋतु नायक है शुक्रश्री, शुचिश्री, यह दो भार्या इसको प्रिय हैं ॥ ४५ ॥ जहाँ संतापसे व्याकुल हुए लोक वृक्षोंके नीचे स्थित होते हैं, अनेक सिद्ध और देवता निवास करते हैं ॥ ४६ ॥ चन्दनको अधिकतर अङ्गमें लगाये पुष्पमाला धारे ताल पंखा हाथमें लिये जहां विलासिनियोंके समूह विचरते हैं ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! शीतल जल सेवियोंसे वह प्राकार शोभित है, शीशेके परकोटेके आगे पीतलका सुन्दर ॥ ४८ ॥

ताम्रसालादुत्तरत्र सीससालः प्रकीर्तितः ॥ समुच्छ्राय स्मृतोऽप्यस्य सप्तयोजनसंख्यया ॥ ४२ ॥ संतानवाटिकामध्ये सालयोस्तु द्वयोर्नृप ॥ दशयोजनगंधस्तु प्रसूनानां समंततः ॥४३॥ हिरण्याभानि कुसुमान्युत्फुल्लानि निरंतरम् ॥ अमृतद्रवसंयुक्त फलानि मधुराणि च ॥ ४४ ॥ ग्रीष्मर्नार्तुस्यतकस्या वाटिकाया नृपोत्तम ॥ शुक्रश्रीश्च शुचिश्रीश्च द्वे भार्ये तस्य संमते ॥ ४५ ॥ संतापत्रस्तलोकास्तु वृक्षमूलेषु संस्थिताः ॥ नानासिद्धैः परिवृतो नानादेवैः समन्वितः ॥ ४६ विलासिनीनां वृंदैस्तु चन्दनद्र वपंकिलैः ॥ पुष्पमालाभूषितै स्तुतालवृतकरांबुजैः ॥ ४७ ॥ प्राकारः शोभितो राजञ्छीतलांबुनिषेविभिः ॥ सीससालादुत्तरत्राप्यारकूटमयः शुभः ॥ ४८ ॥ प्राकारो वर्तते राजन्मुनियो जनदैर्घ्यवान् ॥ हरिचन्दनवृक्षाणां वाटीमध्ये तयोः स्मृता ॥ ४९ ॥ साल योरधिनाथस्तु वर्षर्तुर्मघवाहनः ॥ विद्युत्पिंगलनेत्रश्च जीमूतकवचः स्मृतः ॥ ५० ॥ वज्रनिर्घोषमुखरश्चेंद्रधन्वा समंततः ॥ सहस्रशो वारिधारामुंचन्नास्ते गणाग्रतः ॥५१॥ नभःश्रीश्चनभस्यश्रीः स्वरस्यारस्यमालिनी ॥ अंबादुलानितत्निश्चाभ्रमंती मेघयंतिका ॥ ५२ ॥ वर्षयन्ती चिपुणिका वारि धारा च संमताः ॥ वर्षर्तोर्द्वादश प्रोक्ताः शक्तयो मदविह्वलाः ॥ ५३ ॥

परकोटा सात योजन लम्बा विद्यमान है इन दोनोंके बीचमें हरिचंदन वृक्षकी वाटिका है ॥ ४९ ॥ इनका अधिपति मेघवाहन वर्षाऋतु है जिसके बिजलीके समान पिंगल नेत्र और मेघोंका कवच है ॥ ५० ॥ वज्रके शब्दके समान शब्दायमान इन्द्र धनुष धारे सहस्रों वारिधारा त्यागन करते गणोंसे युक्त शोभायमान है ॥ ५१ ॥ नभश्री (श्रावण) मभस्यश्री (भादौं स्वरस्या, रस्यमालिनी अम्बादुला नितत्नि भ्रमंती मेघयंतिका ॥५२॥ वर्षयन्ती, चिपुणिका वारिधारा मदविह्वला यह वर्षाऋतुकी बारह शक्तियें कही हैं ॥ ५३ ॥

नयेपत्तेवाले वृक्ष और नवीन लतायें तथा हरित तृणोंसे वहांकी धरा वेष्टित है ॥ ५४ ॥ नदी नदोंका प्रवाह वेगसे चलायमान होता है सरोवरोंमें कलुष हुए जल रागियोंके चित्तके समान हैं ॥ ५५ ॥ वहां देवीके कर्म करनेवाले देवता सिद्ध निवास करते हैं. वापी कूप सरोवर जिन्होंने देवीके अर्पण किये हैं ॥ ५६ ॥ वह गण यहां अंगनाओंके सहित निवास करते हैं, पीतलके आगे सातयोजनका बड़ा दीर्घ ॥ ५७ ॥ पंचलोहात्मक परकोटा है जिसके मध्यमें मंदारवाटिका है, जो अनेक पुष्पलताओंसे आकीर्ण अनेक पल्लवोंसे शोभित हैं ॥ ५८ ॥ जिसका अनामय अधिष्ठाता शरदऋतु है । इषलक्ष्मी, ऊर्जलक्ष्मी दो उसकीभार्या हैं

नवपल्लववृक्षाश्च नवीनलतिकान्विताः ॥ हरितानि तृणान्येव वेष्टिता यैर्धराऽखिला ॥ ५४ ॥ नदीनद प्रवाहाश्च प्रवहंति च वेगतः ॥ सरांसि कलुषांबूनि रागिचित्तसमानि च ॥ ५५ ॥ वसंति देवाः सिद्धाश्च ये देवीकर्मकारिणः ॥ वापी कूपतडागाश्च ये देव्यर्थं समर्पिता ॥ ५६ ॥ ते गणा निवसन्त्यत्रसविलासाश्च सांगनाः ॥ आरकूटमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान् ॥ ५७ ॥ पंचलोहात्मकः सालो मध्ये मंदारवाटिका ॥ नानापुष्पलताकीर्णा नानापल्लवशोभिता ॥ ५८ ॥ अधिष्ठाताऽत्र संप्रोक्तः शरदृतुरना मयः ॥ इषलक्ष्मी रूर्जलक्ष्मीर्द्वे भार्ये तस्य संमते ॥ ५९ ॥ नानासिद्धा वसंत्यत्र सांगनाः सपरिच्छदाः ॥ पंचलोहमयादग्रे सप्तयोजन दैर्घ्यवान् ॥ ६० ॥ दीप्यमानो महाशृंगैर्वर्तते रौप्यसालकः ॥ पारिजाताटवीमध्ये प्रसूनस्तबकान्विता ॥ ६१ ॥ दशयोजनगंधीनिकुसुमानि समंततः ॥ मोदयंति गणान्सर्वान्ये देवीकर्मकारिणः ॥ ६२ ॥ तत्राधिनाथः संप्रोक्तो हेमंतर्तुर्महोज्ज्वलः ॥ सगणः सायुधः सर्वान् रागिणो रंजयन्नृप ॥ ६३ ॥ सहश्रीश्च सहस्यश्रीर्द्वे भार्ये तस्य संमते ॥ वसंति तत्र सिद्धाश्च ये देवीव्रत कारिणः ॥ ६४ ॥ रौप्यसालमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान् ॥ सौवर्णसालः संप्रोक्तस्तप्तहाटककल्पितः ॥ ६५ ॥

॥ ५९ ॥ वहां अंगना और कुटुम्बके सहित अनेक सिद्ध निवास करते हैं, पंचलोहात्मकसे आगे सात योजन दीर्घ ॥ ६० ॥ महाशृंगोंसे दीप्यमान रौप्यपर कोटा है जहां पारिजात वृक्षोंमें गुच्छे लटक रहे हैं ॥ ६१ ॥ उसके फूलोंकी गंध दसयोजनतक फैलकर देवीके कर्मकारी भक्तोंको प्रसन्न करती है ॥ ६२ ॥ उसका अधिपति महाउज्ज्वल हेमन्त ऋतु है जो अपने गण और आयुधोंसे सब रागियोंको प्रसन्न करता है ॥ ६३ ॥ सहश्री, सहस्यश्री, यह उसकी दो भार्या हैं देवीव्रतकरनेवाले सिद्ध वहां निवास करते हैं ॥ ६४ ॥ चांदीके परकोटेके आगे सात योजनका दीर्घ सुवर्णका परकोटा है जो तपाये सुवर्णसे

बना है ॥ ६५ ॥ उसके मध्यमें पुण्य पल्लवसे शोभित कदंबवाटिका है जिनसे कदंबके मदकी धारा सहस्रों प्रवृत्त होती हैं ॥ ६६ ॥ जिनके यथेष्टपानसे निजानंदकी प्राप्ति होती है उसका अधिपति शिशिर ऋतु कहा है ॥ ६७ ॥ तपश्री, तपस्यश्री यह दो उसकी भार्या हैं यह शिशिर आकृति उनके संग प्रसन्न हुआ निवास करता है ॥ ६८ ॥ अनेक विलाशसे संयुक्त अनेक गणोंके सहित वहां देवीके उद्देशसे दानकरनेवाले सिद्ध निवास करते हैं ॥ ६९ ॥ वे अनेक भोगोंसे संयुक्त महानंदसे सम्पन्न स्त्री और परिवारके सहित निवास करते हैं ॥ ७० ॥ सुवर्णके परकोटेके आगे सात योजनके विस्तारमें पुष्पराग मणियोंका परकोटा है जो कुम २ के समान अरुण वर्ण है ॥ ७१ ॥ वहांकी सब भूमि वन उपवन पुष्परागके हैं रत्नोंके वृक्ष और पुष्परागमणिके ही थांबले हैं ॥ ७२ ॥ जिस

मध्ये कदंबवाटी तु पुष्पपल्लवशोभिता ॥ कदंबमदिराधाराः प्रवर्तंते सहस्रशः ॥६६॥ याभिर्निपीतपीताभिर्निजानंदोऽनुभूयते ॥ तत्राधिनाथः स प्रोक्तः शैशिरर्तुर्महोदयः ॥६७॥ तपः श्रीश्च तपस्यर्श्रीर्द्वे भार्ये तस्य संमते मोदमानः सहैताभ्यां वर्तते शिशिराकृतिः ॥६८॥ नाना विलाससंयुक्तो नानागणसमावृतः ॥ निवसंति महासिद्धा ये देवीदानकारिणः ॥ ६९ ॥ नाना भोगसमुत्पन्नमहानंदसमन्विताः सांगनाः परिवारैस्तु संघशः परिवारताः ॥ ७० ॥ स्वर्णसालमयादग्रे मुनियोजनदैर्घ्यवान् ॥ पुष्परागमयः सालः कुंकुमारुणविग्रहः ॥ ७१ ॥ पुष्परागमयी भूमिर्वनान्युपवनानि च ॥ रत्नवृक्षालवालाश्च पुष्परागमयाः स्मृताः ॥ ७२ ॥ प्राकारे यस्य रत्नस्य तद्रत्नरचिता द्रुमाः ॥ वनभूः पक्षिणश्चैव रत्नवर्णजलानि च ॥ ७३ ॥ मंडपा मंडपस्तंभाः सरांसि कमलानि च ॥ प्राकारे तत्र यद्यत्स्यात्त सर्वं तत्समं भवेत् ॥ ७४ ॥ परिभाषेयमुद्दिष्टा रत्नशालादिषु प्रभो ॥ तेजसा स्याल्लक्षगुणः पूर्वसालात्परो नृप ॥ ७५ ॥ दिक्पाला निववसंत्यत्र प्रतिब्रह्मांडवर्तिनाम् ॥ दिक्पालानां समष्ट्यात्मरूपाः ॥ स्फूर्जद्वरायुधाः ॥ ७६ ॥

रत्नका परकोटा उसीके वृक्ष हैं वनभू पक्षिगण सब रत्नोंके ही समान हैं ॥ ७३ ॥ मंडप मण्डपके स्तंभ सरोवर कमल जो कुछ उस प्राकारमें है वह सब उसीके समान है ॥ ७४ ॥ हे प्रभो ! यह रत्नपरकोटेकी परिभाषा कही है हे राजन् ! दूसरे पर कोटोंसे यह तेजमें लाख गुणा है ॥ ७५ ॥ वहां प्रति ब्रह्माण्डवर्ती दिक्पाल निवास करते हैं अर्थात् प्रतिब्रह्माण्डवर्ती इन्द्रादि दिक्पालोंके व्यष्टिभूत जो नायक हैं समष्टिभूत जो इन्द्रादिक जो श्री भुवनेश्वरीयंत्र भूपुरमें पूजे जाते हैं वे वहां निवास करते हैं जो वरायुध लिये शोभित होते हैं ॥ ७६ ॥

उसकी पूर्वदिशामें ऊंचे शिखरवाली अमरावती शोभित होती है, जो अनेक उपवनोंसे युक्त है वहां महेन्द्र विराजते हैं ॥ ७७ ॥ स्वर्गकी शोभा जो स्वर्गमें है यह उससे अधिक है. समष्टि शतनेत्रसे सहस्रगुणा अधिक शोभा है ॥ ७८ ॥ वह ऐरावतपर चढा वज्र हाथमें लिये महाप्रतापी देवताओंकी सेनासे युक्त इन्द्र विराजमान् होता है ॥ ७९ ॥ देवांगनाओंके सहित वहां इन्द्राणी विराजमान् होती है और अग्निकोणमें अग्निपुरीके समान अग्निपुरी है ॥ ८० ॥ स्वाहा स्वधाके साथ वहाँ अग्नि विराजमान् है, अपने वाहन भूषणोंसे युक्त तथा अपने देवताओंसे शोभित है ॥ ८१ ॥ दक्षिण दिशामें यमपुरी है उसमें दंडधारी महान् अपने चित्रगुप्त आदि भटोंसे वेष्टित ॥ ८२ ॥ अपनी शक्ति सहित प्रकाशमान् सूर्यपुत्र शोभा पाते हैं नैर्ऋत्य दिशामें राक्षसोंकी पुरी

पूर्वाशायां समुत्तुंगश्रृंगा पूरमरावती ॥ नानोपवनसंयुक्ता महेंद्रस्तत्र राजते ॥ ७७ ॥ स्वर्गशोभा च या स्वर्गे यावती स्यात्ततोऽधिका ॥ समष्टिशतनेत्रस्य सहस्रगुणतः स्मृता ॥ ७८ ॥ ऐरावतसमारूढो वज्रहस्तः प्रतापवान् ॥ देवसेनापरिवृतो राजतेऽत्र शतक्रतुः ॥ ७९ ॥ देवांगनागणयुता शची तत्र विराजते ॥ वह्निकोणे वह्निपुरी वह्निपूःसदृशी नृप ॥ ८० ॥ स्वाहास्वधासमायुक्तो वह्निस्तत्र विराजते ॥ निजवाहनभूषाढ्यो निजदेवगणैर्वृतः ॥ ८१ ॥ याम्याशायां यमपुरी तत्र दंडधरो महान् स्वभटैर्वेष्टितो राजन् चित्रगुप्तपुरोगमैः ॥८२॥ निजशक्तियुतो भास्वत्तन योऽस्ति यमो महान् ॥ नैर्ऋत्यां दिशि राक्षसैः परिवारितः ॥८३॥ खडगधारी स्फुरन्नास्ते निर्ऋतिर्निजशक्ति युक्त ॥ वारुण्यां वरुणो राजा पाशधारी प्रतापवान् ॥ ८४ ॥ महाझषसमारूढो वारुडीमधुविह्वलः ॥ निजशक्ति समायुक्तो निजयादो गणान्वितः ॥ ८५ ॥ समास्ते वारुणे लोके वरुणानीरताकुलः ॥ वायुकोणे वायुलोको वायुस्तत्राधि तिष्ठति ॥ ८६ ॥ वायुसाधनसंसिद्ध योगिभिः परि वारितः ॥ ध्वजहस्तो विशालाक्षो मृग वाहन संस्थितः ॥ ८७ ॥

राक्षसोंसे वेष्टित है ॥ ८३ ॥ जहां निर्ऋति खड्ग लिये अपनी शक्ति सहित शोभा पाता है वरुण दिशामें पाशधारी प्रतापी वरुण राजा है ॥ ८४ ॥ जो महामच्छपर चढे वारुणमदसे विह्वल हुए अपनी शक्ति और जलजीवोंसे युक्त ॥ ८५ ॥ अपनी भार्यासे प्रसन्न हुए वरुणलोकमें निवास करते हैं वायुकोणमें वायुलोक है जहां वायु विराजते हैं ॥ ८६ ॥ वह वायुसाधनमें सिद्ध हुए योगियोंसे परिवारित ध्वजा हाथमें लिये विशाललोचन मृगवाहन पर स्थित है ॥ ८७ ॥

मरुद्गणोंसे व्याप्त अपनी शक्तिसे समन्वित है. हे राजन् ! उत्तर दिशामें महान् यक्षलोक है ॥ ८८ ॥ वहां वृद्धि ऋद्धि आदि शक्तियों सहित यक्षराज निवास करते हैं वहां तुंदिल धननायक नौओं ऋद्धियोंसे सम्पन्न है ॥ ८९ ॥ मणिभद्र पूर्णभद्र मणिमान् मणिकंधर मणिभूषण, मणिमालाधारी मणिकार्मुक धारी ॥ ९० ॥ इत्यादि बड़ी यक्षसेना और अपनी शक्ति सहित विराजमान है. ईशानकोणमें महान् रुद्रलोक है ॥ ९१ ॥ जो बडे मोलके रत्नोंसे रचित रुद्रदेवतायुक्त है वह मृत्युमान दीप्तनेत्र पुष्ट तरकस बांधे ॥ ९२ ॥ बांये हाथमें स्फुरायमान धनुष ज्यारोपण किये अपने समान असंख्यात रुद्रोंसे संयुक्त जो शूल हाथमें लिये हैं ॥ ९३ ॥ विकृतमुख कराल मुख कोई मुखसे अग्नि वमन करते, किन्हीके दश किन्हीके सौ किन्हीके सहस्र हाथ ॥ ९४ ॥ दशपाद,

मरुद्गणै परिवृतो निजशक्तिसमन्वितः ॥ उत्तरस्यां दिशि महान्यक्षलोकोऽस्ति भूमिप ॥ ८८ ॥ यक्षाधिराजस्तत्राऽऽस्ते वृद्धिऋद्ध्या दिशक्तिभिः ॥ नवभिर्निधिभिर्युक्तस्तुंदिलो धननायकः ॥ ८९ ॥ मणिभद्रः पूर्णभद्रो मणिमान्मणिकंधरः ॥ मणिभूषो मणिस्रग्वी मणि कार्मुकधारकः ॥ ९० ॥ इत्यादियक्षसेनानीसहितो निजशक्तियुक् ॥ ईशानकोणे संप्रोक्तो रुद्रलोको महत्तरः ॥ ९१ ॥ अनर्घ्यरत्नखचितो यत्र रुद्रोऽधिदैवतम् ॥ मन्युमान्दीप्तनयनो बद्धपृष्ठमहेषुधिः ॥ ९२ ॥ स्फूर्जद्धनुर्वा महस्तोऽधिज्यधन्वभिरावृतः ॥ स्वसमानैरसंख्या तरुद्रैः शूलवरायुधैः ॥ ९३ ॥ विकृतास्यैः करालास्यैर्वमद्वह्निभिरास्यतः ॥ दशहस्तैः शतकरैः सहस्रभुजसंयुतैः ॥ ९४ ॥ दशपादैर्दश ग्रीवैस्त्रिनेत्रैरुग्रमूर्तिभिः ॥ अंतरिक्षचरा ये च ये च भूमिचरा स्मृताः ॥ ९५ ॥ रुद्राध्याये स्मृता रुद्रास्तैः सर्वैश्च समावृतः ॥ रुद्राणी कोटिसहितो भद्रकाल्यादिमातृभिः ॥ ९६ ॥ नानाशक्तिसमाविष्टडामर्यादिगणावृतः ॥ वीरभद्रादिसहितो रुद्रो राजन्विराजते ॥ ९७ ॥ मुंडमालाधरो नागवलयो नागकंधरः ॥ व्याघ्रचर्मपरीधानो गजचर्मोत्तरीयकः ॥ ९८ ॥ चिताभस्मांगलिप्तांगः प्रथमादि गणावृतः ॥ निनदड्डमरुध्वानैर्बधिरीकृतदिङ्मुखः ॥ ९९ ॥

दशशिर तीननेत्र उग्रमूर्तिवाले कोई अन्तरिक्ष और कोई भूमिमें विचरनेवाले ॥ ९५ ॥ जो रुद्राध्यायमें स्मरणकिये रुद्र हैं उन सबसे संयुक्त कोटिरुद्राणी और भद्रकाली आदिमाताओंसे संयुक्त ॥ ९६ ॥ अनेक शक्ति और डामरादि गणोंसे संयुक्त हे राजन् ! वीरभद्रादिके सहित वहां रुद्र विराजते हैं ॥ ९७ ॥ मुंडमालाधारी नागोंका कंकण पहरे नागको गलेमें डाले व्याघ्र चर्मका परिधान वस्त्र और ओढ़नेको गजचर्म ॥ ९८ ॥ चिताभस्मको अंगमें लपेटे प्रमथादि गणोंसे सम्पन्न शब्दायमान डमरुओंसे दिशाओंको शब्दायमान करते ॥ ९९ ॥

अट्टहास और स्फोटशब्दोंसे आकाशको त्रासित करनेवाले भूत समूहोंसे युक्त भूतावास महेश्वर ॥ १०० ॥ ईशान दिशाके अधिपति होनेसे ईशान नाम वाले ही हैं। इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ व्यासजी बोले पुष्परागमय परकोटेके आगे कुंकुमके समान लालवर्ण पद्मराग मणियोंका परकोटा है वैसीही वहांकी भूमि है ॥ १ ॥ वह दशयोजन दीर्घ गोपुर द्वारेसे संयुक्त है हे राजन् ! उसी मणिके स्तम्भवाले सैकडों स्तम्भ वहां हैं ॥ २ ॥ मध्य भूमिमें अनेक आयुध लिये परम वीरा सुंदर भूषण पहरे चौंसठ कला निवास करती हैं ॥ ३ ॥ उनके प्रत्येक लोकोंमें उन उनके नायक निवास करते हैं, वह चारों ओरसे पद्मरागको घेरे हुए स्थित हैं ॥ ४ ॥ अपने २ लोकके जन अपने वाहन और अस्त्रोंसे सम्पन्न हैं, हे

अट्टहासास्फोटशब्दैः संत्रासितनभस्तलः ॥ भूतसंघसमाविष्टो भूतावासो महेश्वरः ॥ १०० ॥ ईशानदिक्पतिः सोऽयं नाम्ना चेशान एव च ॥१०१॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंध दशमोऽ ध्यायः ॥१०॥ व्यास उवाच ॥ पुष्परागमयादग्रे कुंकुमारुणविग्रहः ॥ पद्मरागमयः सालो मध्ये भूश्चैव तादृशी ॥ १ ॥ दशयोजन वान्दैर्घ्यै गोपुरद्वारसंयुतः ॥ तन्मणिस्तंभसंयुक्ता मंडपाः शतशो नृप ॥२॥ मध्येभुवि समासीनाश्चतुःषष्टिमिताः कलाः ॥ नाना युधधरा वीरा रत्नभूषणभूषिताः ॥३॥ प्रत्येकलोकस्तासां तु तत्तल्लोकस्य नायकाः ॥ समंतात्पद्मरागस्य परिवार्य स्थिताः सदा ॥ स्वस्वलोकजनैर्जुष्टाः स्वस्ववाहनहेतिभिः तासां नामानि वक्ष्यामि त्वं शृणुजनमेजय ॥५॥ पिंगलाक्षी विशालाक्षी समृद्धिर्वृद्धिरेव च ॥ श्रद्धा स्वाहा स्वधाभिख्या मायासंज्ञा वसुंधरा ॥ ६ ॥ त्रिलोकधात्री सावित्री गायत्री त्रिद शेश्वरी ॥ सुरूपा बहुरूपा च स्कन्दमाताऽच्युतप्रिया ॥ ७ ॥ विमला चामला तद्वदरुणी पुनरारुणी ॥ प्रकृति विकृतिः सृष्टिः स्थितिः संहृतिरेव च ॥ ८ ॥ सन्ध्या माता सती हंसी मर्दिका वज्रिकापुरा ॥ देवमाता भगवती देवकी कमलासना ॥९॥ त्रिमुखी सप्तमुख्यन्या सुरासुरविमार्दिनी ॥ लंबोष्ठी चोर्ध्वकेशी च बहुशीर्षा वृकोदरी ॥ १० ॥

जनमेजय ! तुम सुनो मैं उनके नाम कहता हूं ॥ ५ ॥ पिंगलाक्षी विशालाक्षी, समृद्धि, वृद्धि, श्रद्धा, स्वाहा, स्वधा, अभिख्या, माया, संज्ञा, वसुंधरा ॥ ६ ॥ लोकधात्री, सावित्री, गायत्री, त्रिदशेश्वरी, सुरूपा, बहुरूपा, स्कन्दमाता अच्युतप्रिया ॥ ७ ॥ विमला, अमला, अरुणी, पुनरारुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, स्थिति संहृति, ॥ ८ ॥ संध्या, माता, सती, हंसी, मर्दिका, वज्रिका, देवमाता, भगवती, देवकी, कमलासना ॥ ९ ॥ त्रिमुखी, सप्तमुखी, अन्या सुरासुरविमार्दिनी, लम्बोष्ठी ऊर्ध्वकेशी, बहुशीर्षा, वृकोदरी ॥ १० ॥

रथरेखा, शशिरेखा, गगनवेगा, पवनवेगा ॥ ११ ॥ अग्रेभुवनपाला, मदनातुरा, अनंगा अनंगमथना, अनंगमेखला, ॥ १२ ॥ अनंगकुसुमा, विश्वरूपा, सुरादिका, क्षयंकरी शक्ति, अक्षोभ्या, ॥ १३ ॥ सत्यवादिनी बहुरूपा, शुचिव्रता, उदारा, वागीशी, यह ६४ शक्ति हैं ॥१४॥ इनके यह सबका प्रकाशमान उज्ज्वल जिह्वा है अनेक मुखसे अग्नि निर्गत होती है हम सब जल पीजायँ, अग्निका संहार कर जायँ ॥ १५ ॥ पवनको स्तंभित करदे, सब जगत्को भक्षण कर जायँ, क्रोधसे लालनेत्र किये सब कोई यह वचन कहती हैं ॥ १६ ॥ सब चापबाण धारण किये सदा युद्धको उत्सुक रहती हैं उनकी डाढोंके कटकट शब्दसे दिशा शब्दायमान होती हैं॥ १७॥ पीले और ऊर्ध्वकेशवाली धनुष बाण धारे एक एकके निकट सौ सौ अक्षोहिणी सेना है ॥ १८ ॥ एक शक्तिमें

रथरेखाह्वया पश्चाच्छशिरेखा तथापरा ॥ गगनवेगा पवनवेगा चैव ततः परम् ॥११॥ अग्रे भुवनपाला स्यात्तत्पश्चान्मदनातुरा ॥ अनंगानंगमथना तथैवानंगमेखला ॥१२॥ अनंगकुसुमा पश्चाद्विश्वरूपा सुरादिका ॥ क्षयंकरी भवेच्छक्तिरक्षोभ्या च ततः परम् ॥१३॥ सत्यवादिन्यथ प्रोक्ता बहुरूपा शुचिव्रता ॥ उदाराख्या च वागीशी चतुष्षष्टिमिताः स्मृताः ॥ १४ ॥ ज्वलज्जिह्वाननाः सर्वा वमंत्यो वह्निमुल्बणम् ॥ जलं पिबामः सकलं संहरामो विभावसुम् ॥१५॥ पवनंस्तंभयाऽमोद्य भक्षयामोऽखिलं जगत् ॥ इति वाचं संगिरंते क्रोधसंरक्तलोचनाः ॥१६॥ चापबाणधराः सर्वा युद्धायैवोत्सुकाः सदा ॥ दंष्ट्राकटकटारावैर्बाधिरीकृतदिङ्मुखाः ॥१७॥ पिंगोर्ध्वकेश्यः संप्रोक्ता श्चापबाणकराः सदा ॥ शताक्षौहिणिका सेनाप्येकैकस्याः प्रकीर्तिता ॥ १८ ॥ एकैकशक्तेः समार्थ्य लक्षब्रह्मांडनाशे ॥ शताक्षौहिणिका सेना तादृशी नृपसत्तम ॥१९॥ किं न कुर्याज्जगत्यस्मिन्न शक्यं वक्तुमेव तत् ॥ सर्वापि युद्धसामग्री तस्मिन्साले स्थितामुने ॥२०॥ रथानां गणना नास्ति हयानां करिणां तथा॥ शस्त्राणां गणना तद्वद्गणानां गणना तथा॥२१॥ पद्मराग मयादग्रेगोमेदमणिनिर्मितः ॥ दशयोजन दैर्घ्येण प्राकारो वर्तते महान् ॥ २२ ॥ भास्वज्जपप्रसूनाभो मध्यभूस्तस्य तादृशी ॥ गोमेदकल्पितान्येव तद्वासिसदनानि च ॥ २३ ॥

लाख ब्रह्मांड नाश करनेकी सामर्थ्य है. हे राजन् ! वैसीही सौ अक्षौहिणीवाली सेना है ॥ १९ ॥ यह इच्छा करनेसे उस जगत्में क्या नहीं कर सकती सो कौन कह सकता है ? हे मुने ! उस प्रकारमें सब युद्धकी सामग्री स्थित है ॥२०॥ रथ हाथी घोड़े शस्त्र और गणोंकी गणना कौन कर सकता है ॥ २१ ॥ पद्मराग परकोटेके आगे गोमेदका परकोटा दशयोजन महान् वर्तमान है ॥ २२ ॥ प्रकाशमान जपाके फूलके समान कांतिमान् है मध्यकी भूमिभी वैसी ही है वहांके वासी और भवन गोमेदसे ही कल्पित हैं ॥ २३ ॥

पक्षी, श्रेष्ठस्तंभ, बावडी, सरोवर, यह कुंकुमके समान रक्तवर्ण गोमेदसे कल्पित हैं ॥ २४ ॥ उसके मध्य महादेवीकी बत्तीसशक्ति हैं जो अनेक शस्त्रोंके प्रहारवाली गोमेदजटित भूषण पहरे हैं ॥ २५ ॥ यह प्रत्येक लोकनिवासिनी चारों ओरसे घेरे हैं अर्थात् एक एक शक्तिकी दश अक्षौहिणी सेना है, उनसे युक्त एक एक लोक है इस प्रकार ३२ लोक उस परकोटेमें चिन्तामणि घरको चारों ओरसे घेरकर स्थित हैं. हे राजन्! गौमेदके परकोटेमें पिशाच मुखा ॥ २६ ॥ उस शक्तिलोकनिवासियों द्वारा चक्रधारिणी पूजित होती है क्रोधसे लालनेत्र किये छेदन भेदन करो दहन करो ॥ २७ ॥ इस प्रकार वचनको युद्धमें उत्कट हो उच्चारण करती है, एक एक महाशक्तिके पास दश दश अक्षौहिणी सेना है ॥ २८ ॥ उनमें एक एक शक्ति लाख २ ब्रह्माण्ड नाश कर सकती है, फिर

पक्षिणः स्तंभवर्याश्च वृक्षा वाप्यः सरांसि च॥गोमेदकल्पिता एव कुंकुमारुणविग्रहाः॥२४॥तन्मध्यस्था महादेव्यो द्वात्रिंशच्छक्तयः स्मृताः॥ नानाशस्त्रप्रहरणा गोमेदमणिभूषिताः ॥ २५॥ प्रत्येकलोकवासिन्यपरिवार्य समंततः ॥ गोमेदसाले सन्नद्धा पिशाचवदना नृप ॥ २६ ॥ स्वर्लोकवासिभिर्नित्यं पूजिताश्चक्रबाहवः ॥ क्रोधरक्तेक्षणा भिंधिपचच्छिंधिदहेति च ॥ २७ ॥ वदंति सततं वाचं युद्धोत्सुकहृदंतराः ॥ एकैकस्या महाशक्तेर्दशाक्षौहिणिका मता ॥ २८ ॥ सेना तत्राप्येकशक्तिर्लक्षब्रह्मांडनाशिनी ॥ तादृशीनां महासेना वर्णनीया कथं नृप ॥ २९ ॥ रथानां नैव गणना वाहनानां तथैव च ॥ सवयुद्धसमारंभस्तत्र देव्या विराजते ॥ २० ॥ तासां नामानि वक्ष्यामि पापनाशकराणि च ॥ विद्याह्रीपुष्टयः प्रज्ञा सिनीवाली कुहूस्तथा ॥ ३१ ॥ रुद्रा वीर्या प्रभा नंदा पोषिणी ऋद्धिदा शुभा ॥ कालरात्रिर्महारात्रिर्महारात्रिर्भद्रकाली कपर्दिनी ॥ ३२ ॥ विकृतिर्दंडिमुण्डिन्यौ सेंदुखंडा शिखंडिनी ॥ निशुंभशुंभमथिनी महिषासुरमर्दिनी ॥ ३३ ॥ इन्द्राणी चैव रुद्राणी शंकरार्धशरीरिणी ॥ नारी नारायणी चैव त्रिशूलिन्यापि पालिनी ॥ ३४ ॥ अंबिका ह्लादिनी पश्चादित्येवं शक्तयः स्मृताः ॥ यद्येताः कुपिता देव्यस्तदा ब्रह्मांडनाशनम् ॥ ३५ ॥

उस महासेनाके वर्णनकी तो कथा ही क्या है ॥२९॥ रथ वाहनकी गणनाही नहीं है वहां देवीके सब युद्धका आरंभ विराजमान है ॥ ३० ॥ पापनाशक उनके नाम कहता हूं सुनो-विद्या, ह्रीं, पुष्टि, प्रज्ञा, सिनीवाली कुहू ॥ ३१ ॥ रुद्रवीर्या, प्रभा, नंदा, पोषिणी ऋद्धिदा, शुभा, कालरात्रि, महारात्रि, भद्रकाली, कपर्दिनी ॥ ३२ ॥ विकृति, दंडि, मुंडिनी, सन्दुखण्डा, शिखण्डिनी, निशुंभ शुंभमथिनी, महिषासुर मर्दिनी, ॥ ३३ ॥ इन्द्राणी, रुद्राणी, शंकरार्ध, शरीरिणी, नारी नारायणी, त्रिशूलनी, पालिनी ॥ ३४ ॥ अम्बिका, ह्लादिनी यह शक्तियें हैं जो यह देवी क्रोध करे तो ब्रह्माण्डनाश कर दें ॥ ३५ ॥

इनको कभी कहीं पराजय नहीं है. गोमेदपर कोटके आगे हीरे का प्राकार है ॥ ३६ ॥ यह दश योजन ऊंचा गोपुरद्वार सम्पन्न है, इसमें शृंखलाबद्ध किवाँड लगे हैं नवीन वृक्षोंसे कान्तिमान है ॥ ३७ ॥ इस परकोटेके मध्यकी भूमि हीरेमय है घर गली बडे मार्ग ॥ ३८ ॥ वृक्ष, वेल तरु और पक्षी भी वैसे ही रंगके हैं दीर्घिकासमूह बावड़ी तालाब कूप हैं ॥ ३९ ॥ वहां श्रीभुवनेश्वरीकी दासी निवास करती हैं. एक परिचारिकाकी लाख २ दासी सेवा करती हैं ॥ ४० ॥ कोई तालका पंखा कोई प्याला हाथमें लिये कोई बड़े गर्वसे ताम्बूलपात्र हाथमें लिये हैं ॥ ४१ ॥ कोई छत्र चामर धारे कोई अनेक वस्त्र

पराजयो न चैतासां कदाचित्कचिदस्ति हि ॥ गोमेदकमयादग्रे सद्वज्रमणिनिर्मितः ॥ ३६ ॥ दशयोजनतुंगोऽसौ गोपरद्वारसंयुतः ॥ कपाटशृंखलाबद्धो नववृक्षसमुज्ज्वलः ॥ ३७ ॥ सालस्तन्मध्यभूम्यापि सर्वं हीरमयं स्मृतम् गृहाणि वीथयो रथ्या महामार्गांगणानि च ॥ ३८ ॥ वृक्षालवालतरवः सारंगा अपि तादृशाः ॥ दीर्घिकाश्रेणयो वाप्यस्तडागाः कूपसंयुताः ॥३९॥ तत्र श्रीभुवनेश्वर्या वसंति परिचारिकाः ॥ एकैकालक्षदासीभिः सेविता मदगर्विताः ॥ ४० ॥ तालवृन्तधराः काश्चिच्चषकाढ्यकरांबुजाः ॥ काश्चित्तांबूलपात्राणि धारयंत्योऽतिगर्विताः ॥ ४१ ॥ काश्चित्तच्छत्रधारिण्यश्च मराणां विधारिकाः ॥ नानावस्त्रधराः काश्चित्काश्चित्पुष्पकरांबुजाः ॥ ४२ नानादर्शकराः काश्चित्काश्चित्कुंकुमलेपनम् ॥ धारयंत्यः कज्जलं च सिंदूरचषकं पराः ॥ ४३ ॥ काश्चिच्चित्रकनिर्मात्र्यः पादसंवाहने रतः ॥ कांश्चितु भूषाकारिण्यो नानाभूषाधराः पराः ॥ ४४ ॥ पुष्पभूषणनिर्मात्र्यः पुष्पशृङ्गार कारिकाः ॥ नानाविलासचतुरा बह्व्य एवं विधाः पराः ॥ ४५ ॥ निबद्धपरिधानीया युवत्यः सकला अपि ॥ देवीकृपालेशवशात्तुच्छीकृतजत्र्रयाः ॥ ४६ ॥ एता दूत्यः स्मृता देव्यः शृङ्गारमदगर्विताः ॥ तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु मे नृपसत्तम ॥ ४७ ॥ अनंगरूपा प्रथमाप्यनंगमदना परा ॥ तृतीया तु ततः प्रोक्ता सुन्दरी मदनातुरा ॥ ४८ ॥

और पुष्पकमल धारे हैं ॥ ४२ ॥ कोई अनेक दर्पण लिये कोई कुंकुम लेपन लगाये कोई कज्जल सिन्दूर और पानपात्र लिये हैं ॥ ४३ ॥ कोई चित्र बनानेमें तत्पर कोई पाद संवाहनमें रत कोई गहने बनानेवाली कोई अनेक भूषण धारे ॥ ४४ ॥ कोई पुष्पोंके भूषण बनानेवाली कोई फूलोंका शृंगार करनेवाली इस प्रकार अनेक विलासोंमें चतुर अनेक हैं ॥ ४५ ॥ सब कमरकसे सब युवती हैं, देवीकी कृपादृष्टिके कारण तीनों लोकको तुच्छ मानती हैं ॥ ४६ ॥ जो शृंगार मदसे गर्वित देवीकी दूती हैं हे राजन् ! मैं उनके नाम कहता हूं सुनो ॥ ४७ ॥ अनंगरूपा, अनंगमदन, सुन्दरी मदनातुरा ॥ ४८ ॥

भुवनवेगा, भुवनपालिका, सर्वशिशिरा, अनंगवेदना, अनंगमेखला ॥ ४९ ॥ यह विजलीके समान अंगवाली शब्दायमान मेखलावाली चरणोंके मंजीरकी ध्वनिवाली बाहर भीतर इधर उधर चलती हुई ॥ ५० ॥ विजलीके समान सब इधर उधर धावमान होती शोभा पाती हैं यह वेत्रधारिणी सब कार्योंमें कुशल हैं ॥ ५१ ॥ प्राकारकी आठों दिशाओंमें प्राकारके बाहर अनेक वाहन और शस्त्र सहित इनके महल विराजते हैं ॥ ५२ ॥ व्रजके परकोटके आगे वैडूर्य मणिका परकोटा है यह दशयोजन ऊंचा गोपुर और द्वारसे भूषित है ॥ ५३ ॥ वहांकी सब भूमि और घर वैडूर्यमय हैं गली छोटी बड़ी और महामार्ग सब वैडूर्यके निर्मित हैं ॥ ५४ ॥ वावडी कूप सरोवर नदियोंके किनारे तथा वालुका वैडूर्य मणिकी बनी है ॥ ५५ ॥ उसकी आठों दिशाओंमें सब ओर

ततो भुवनवेगा स्यात्तथा भुवनपालिका ॥ स्यात्सर्वशिशिरानंगवेदनानंगमेखला ॥४९॥ विद्युद्दामसमानांग्यः क्वणत्कांचीगुणान्विताः ॥ रणन्मंजीरचरणा बहिरंतरितस्ततः ॥ ५० ॥ धावमानास्तु शोभते सर्वा विद्युल्लतोपमाः ॥ कुशलाः सर्वकार्येषु वेत्रहस्ताः समंततः ॥५१॥ अष्टदिक्षु तथैतासां प्राकाराद्बहिरेव च ॥ सदनानि विराजंते नानावाहनहेतिभिः ॥ ५२ ॥ वज्रसालादग्रभागे सालो वैदूर्यनिर्मितः ॥ दशयोजनतुंगोऽसौ गोपुरद्वारभूषितः ॥ ५३ ॥ वैदूर्य भूमिः सर्वापि गृहाणि विविधानि च ॥ वीथ्यो रथ्या महामार्गाः सर्वे वैदूर्यनिर्मिताः ॥ ५४ ॥ वापीकूपतडागाश्च स्रवंतीनां तटानि च ॥ वालुका चैव सर्वाऽपि वैदूर्यमणिनिर्मिता ॥ ५५ ॥ तत्राष्टदिक्षु परितो ब्राह्म्यादीनां च मंडलम् ॥ निजैर्गुणैः परिवृतं भ्राजते नृपसत्तम ॥ ५६ ॥ प्रतिब्रह्मांडमातॄणां ताः समष्टय ईरिताः ॥ ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ॥ ५७ ॥ वाराही च तथेंद्राणी चामुंडाः सप्तमातरः ॥ अष्टमी तु महालक्ष्मीर्नाम्ना प्रोक्तास्तु मातरः ॥ ५८ ॥ ब्रह्मरुद्रादिदेवानां समाकारास्तु ताः स्मृताः ॥ जगत्कल्याणकारिण्यः स्वस्वसेनासमावृताः ॥ ५९ ॥ तत्सालस्य चतुर्द्वार्षु वाहनानि महेशितुः सज्जानि नृपते संति सालंकाराणि नित्यशः ॥ ६० ॥

ब्राह्मी आदिका मंडल है. हे राजन् ! यह अपनेगणोंके सहित शोभित होती है ॥ ५६ ॥ यह प्रत्येक ब्रह्माडकी माताओंकी समष्टिरूप हैं. ब्राह्मी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी ॥ ५७ ॥ वाराही, इन्द्राणी चामुण्डा, यह सात मातायें हैं आठवीं महालक्ष्मी नामक माता है ॥ ५८ ॥ यह ब्रह्मा रुद्रादि देवताओंके समान आकारवाली हैं यह जगत्की कल्याण कारिणी अपनी २ सेनाके सहित हैं ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! इस परकोटके चारों द्वारमें भवानीके अलंकार धारण किये वाहन सदा शोभापाते हैं ॥ ६० ॥

कोटिशः हाथी घोडे पालकी हंस सिंह गरुड मयूर वृषभ ॥ ६१ ॥ हे राजन् इनके सहित कोटिशः रथ पार्ष्णिग्राहसे युक्त हैं जिनकी ध्वजायें आकाश चुम्बन करती हैं ॥६२॥ अनेक चिह्नोंसे युक कोटिशः विमान अनेक बाजे और महाध्वजासे सम्पन्न हैं ॥६३॥ वैडूर्यप्रकारसे आगे दश योजन ऊंचा इन्द्रनीलमणिका परकोटा है ॥ ६४ ॥ उसके मध्यकी पृथ्वी छोटीबडी गली महामार्ग बावडी कूप सरोवर सब इसी मणिके बने हैं ॥ ६५ ॥ उसमें कई योजनके विस्तारमें एक कमल है जिसकी सोलह कली सुदर्शन चक्रके समान प्रकाशित हैं ॥ ६६ ॥ यहाँ सोलह शक्तियों के अनेक प्रकार के स्थान हैं वह सब सामग्री से युक्त

दंतिनः कोटिशो वाहाः कोटिशः शिबिकास्तथा ॥ हंसाः सिंहाश्च गरुडा मयूरा वृषभास्तथा ॥ ६१ ॥ तैर्युक्ताः स्यंदनास्तद्वत्कोटिशो नृपनंदन ॥ पार्ष्णिग्राहसमायुक्ता ध्वजराकाशचुंबिनः ॥ ६२ ॥ कोटिशस्तु विमानानि नानाचिह्नान्वितानि च ॥ नानावादित्रयुक्तानि महाध्वजयुतानि च ॥ ६३ ॥ वैदूर्यमणिसालस्याप्यग्रे सालः परः स्मृतः ॥ दशयोजनतुंगोऽसाविंद्रनीलानीलाश्मनिर्मितः ॥ ६४ ॥ तन्मध्यभूस्तथावीथ्यो महामार्गा गृहाणि च ॥ वापीकूपतडागाश्च सर्वे तन्मणिनिर्मिताः ॥ ६५ ॥ तत्र पद्मं तु संप्रोक्तं बहुयोजनविस्तृतम् ॥ षोडशारं दीप्यमानं सुदर्शनमिवापरम् ॥ ६६ ॥ तत्र षोडशशक्तीनां स्थानानि विविधानि च ॥ सर्वोपस्करयुक्तानि समृद्धानि वसंति हि ॥ ६७ ॥ तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु मे नृपसत्तम ॥ कराली विकराली च तथोमा च सरस्वती ॥ ६८ ॥ श्रीदुर्गोषा तथा लक्ष्मीः श्रुतिश्चैव स्मृतिर्धृतिः ॥ श्रद्धा मेधा मतिः कांतिरार्याषोडशशक्तयः ॥ ६९ ॥ नीलजीमूतसंकाशाः करवालकरांबुजाः ॥ समाखेटकधारिण्यो युद्धोपक्रांतमानसाः ॥ ७० ॥ सेनान्यः सकला एताः श्रीदेव्या जगदीशितुः ॥ प्रतिब्रह्मांडसंस्थानां शक्तीनां नायिकाः स्मृताः ॥ ७१ ॥ ब्रह्मांडक्षोभकारिण्यो देवीशक्त्युपबृंहिताः ॥ नानारथसमारूढा नानाशक्तिभिरन्विताः ॥ ७२ ॥

वहां निवास करती हैं ॥६७॥ हे राजन ! उनके नाम कहता हूं सुनो करालीं, विकराली, उमा, सरस्वती ॥ ६८ ॥ श्री दुर्गा उषा, लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मति, कांति, आर्या यह सोलह शक्ति हैं ॥ ६९ ॥ यह नीलमेघके समान वर्णवाली हाथमें तलवार लिये, समा खेटक धारिणी युद्धमें मन लगाये ॥ ७० ॥ श्रीजगदीश्वरी देवीकी यह सब सेनानायक हैं यह प्रति ब्रह्माण्डमें स्थित शक्तियोंकी अधीश्वरी हैं ॥ ७१ ॥ यह ब्रह्माण्डको क्षुभित करनेवाली देवीकी शक्तिसे सम्पन्न हैं अनेक रथोंमें आरूढ अनेक शक्तियोंसे युक्त हैं ॥ ७२ ॥

इनका पराक्रम कहनेको शेषभी समर्थ नहीं है इंद्रनील प्रकारके आगे बड़े विस्तारमें ॥ ७३ ॥ दश योजन दीर्घ मोतियोंका परकोटा है मध्यकी भूमि भी मोतियोंकी है उसके आगे बड़ा आठदलका कमल है ॥ ७४ ॥ जो मुक्तामणिके समूहोंसे आकीर्ण बहुत केशरवाला है, वहां देवीके समान आकारवाली देवीकेसे आयुध धारे ॥ ७५ ॥ जगतकी वार्ताको प्रबोध करनेवाली आठ मंत्रकर्ती हैं वह देवीके समान भोगवाली उसकी चेष्टाओंकी ज्ञाता पंडिता हैं ॥ ७६ ॥ सब कार्यमें कुशल स्वामिकार्यमें परायण हैं वे देवीका अभिप्राय जानने वाली चतुर अति सुन्दरी हैं ॥ ७७ ॥ प्रति ब्रह्माण्डवर्ती अनेक शक्तियोंसे

एतत्पराक्रमं वक्तुं सहस्रास्योऽपि न क्षमः ॥ इन्द्रनीलमहासालादग्रे तु बहुविस्तृतः ॥ ७३ ॥ मुक्ताप्राकार उदितो दशयोजनदैर्घ्य वान् ॥ मध्यभूः पूर्ववत्प्रोक्ता तन्मध्येऽष्टदलांबुजम् ॥ ७४ ॥ मुक्तामणिगणाकीर्णं विस्तृतं तु सकेसरम् ॥ तत्र देवीसमाकारादेव्यायुध धराः सदा ॥ ७५ ॥ संप्रोक्ता अष्टमंत्रिण्यो जगद्वार्ताप्रबोधिकाः ॥ देवीसमानभोगास्ता इंगितज्ञास्तु पंडिताः ॥ ७६ ॥ कुशलाः सर्वकार्येषु स्वामिकार्यपरायणाः ॥ देव्यभिप्रायबोध्यस्ताश्चतुरा अतिसुन्दराः ॥ ७७ ॥ नानाशक्तिसमायुक्ताः प्रतिब्रह्माण्डवर्तिनाम् ॥ प्राणिनां ताः समाचारं ज्ञानशक्त्या विदंति च ॥ ७८ ॥ तासां नामानि वक्ष्यामि मत्तः शृणु नृपोत्तम ॥ अनंगकुसुमा प्रोक्ताप्यनंगकु सुमातुरा ॥ ७९ ॥ अनंगमदना तद्वदनंगमदनातुरा ॥ भुवनपाला तु सा गगनवेगा चैव ततः परम् ॥ ८० ॥ शशिरेखा च गगनरेखा चैव ततः परम् ॥ पाशांकुशवराभीति धरा अरुणविग्रहाः ॥ ८१ ॥ विश्वसंबंधिनीं वार्तां बोधयंति प्रतिक्षणम् ॥ मुक्तासालादग्रभागे महामारकतोपरः ॥ ८२ ॥ सालोत्तमः समुद्दिष्टो दशयोजनदैर्घ्यवान् ॥ नानासौभाग्यसंयुक्तो नानाभोगसमन्वितः ॥ ८३ ॥ मध्य भूस्तादृशी प्रोक्ता सदनानि तथैव च ॥ षट्कोणमत्र विस्तीर्णं कोणस्था देवताः शृणु ॥ ८४ ॥

युक्त हैं, वह अपनी ज्ञानशक्तिसे प्राणियोंके समाचारको जानती हैं ॥ ७८ ॥ हे राजन् ! सुनो मैं उनके नाम कहता हूं-अनंगकुसुमा, अनंगकुसुमातुरा ॥ ७९ ॥ अनंगमदा अनंगमदनातुरा, भुवनपाला, गगनवेगा ॥ ८० ॥ शशिरेखा, गगनरेखा, यह सब पाश अंकुश भय अभयधारे अरुणशरीर हैं ॥ ८१ ॥ प्रतिक्षण संसार संबंधिनी वार्ताको बोधन करती हैं मुक्ताप्राकारके आगे महामरकत मणिका परकोटा है ॥ ८२ ॥ वह परमोत्तम दशयोजनदीर्घ है अनेक सौभाग्य और भोगसे युक्त है ॥ ८३ ॥ मध्यकी भूमि और घर भी महामरकत मणिके हैं इसमें षट्कोणकी विस्तीर्ण रचना है उसके कोणमें स्थित देवता सुनो ॥ ८४ ॥

पूर्वकोणमें गायत्रीके सहित चतुर्मुख ब्रह्मा है जो कमंडलु अक्षमाला अक्षसूत्र अभय और दंड आयुध धारे हैं ॥ ८५ ॥ वही आयुध धारे पर देवता गायत्री है मूर्तिमान् सब भेद अनेक शास्त्र ॥ ८६ ॥ स्मृति और पुराण सब मूर्तिमान हैं, जो ब्रह्मविग्रह ब्रह्मावतार गायत्री विग्रह ॥ ८७ ॥ व्याहृतियोंके विग्रह हैं वे सदा वहां निवास करते हैं नैर्ऋत्यकोणमें शंख चक्र गदा पद्म हाथमें लिये ॥ ८८ ॥ सावित्री और उसी प्रकार महाविष्णु वर्तते हैं जो विष्णुके मत्स्य-कूर्मादि विग्रह हैं ॥ ८९ ॥ और जो सावित्री के विग्रह हैं वे सब वहाँ निवास करते हैं वायुकोणमें परशु अक्षमाला अभयवरसे युक्त ॥ ९० ॥ महारुद्र

पूर्वकोणे चतुर्वक्त्रो गायत्रीसहितो विधिः ॥ कुंडिकाक्षगुणाभीतिदण्डायुधधरः परः ॥ ८५ ॥ तदायुधधरा देवी गायत्रीपरदेवता ॥ वेदाः सर्वे मूर्तिमंतः शास्त्राणि विविधानि च ॥ ८६ ॥ स्मृतयश्च पुराणानि मूर्तिमंति वसंति हि ॥ ये ब्रह्मविग्रहाः संति गायत्रीविग्रहाश्च ये ॥ ८७ ॥ व्याहृतीनां विग्रहाश्च ते नित्यं तत्र संति हि ॥ रक्षः कोणेशंखचक्रगदांबुजकरांबुजा ॥ ८८ ॥ सावित्री वर्तते तत्र महा विष्णुश्च तादृशः ॥ ये विष्णुविग्रहाः संति मत्स्यकूर्मादयोऽखिलाः ॥ ८९ ॥ सावित्री विग्रहा ये च ते सर्वे तत्र संति हि ॥ वायुकोणे परश्वक्षमालाभयवरान्वितः ॥ ९० ॥ महारुद्रो वर्ततेऽत्र सरस्वत्यपि तादृशी ॥ ये ये तु रुद्रभेदाःस्युर्दक्षिणास्यादहो नृप ॥ ९१ ॥ गौरीभेदाश्च ये सर्वे ते तत्र निवसंति हि ॥ चतुःषष्ट्यागमा ये च ये चान्येऽप्यागमाः स्मृताः ॥ ९२ ॥ ते सर्वे मूर्तिमंतश्च तत्र वै निवसंति हि ॥ अग्निकोणे रत्नकुंभं तथा मणिकरंडकम् ॥ ९३ ॥ दधानो निजहस्ताभ्यां कुबेरो धनदायकः ॥ नानावीथीसमायुक्तो महालक्ष्मीसमन्वितः ॥ ९४ ॥ देव्या निधिपतिस्त्वास्ते स्वगुणैः परिवेष्टितः ॥ वारुणे तु महाकोणे मदनो रतिसंयुतः ॥ ९५ ॥ पशांकुशधनुर्बाणधरो नित्यं विराजते ॥ शृङ्गारा मूर्तिमंतस्तु तत्र सन्निहिताः सदा ॥ ९६ ॥

वर्तते हैं वैसेही उनके साथ सरस्वती है जो दक्षिणामूर्ति आदि रुद्रके विग्रह हैं ॥ ९१ ॥ तथा जो गौरीभेद हैं वे सब वहां निवास करते हैं चौसठ आगम तथा जो दूसरे आगम हैं ॥ ९२ ॥ वे सब मूर्तिमान् होकर वहां निवास करते हैं. अग्निकोणमें रत्नकुंड तथा मणिकरंडक ॥ ९३ ॥ अपने हाथमें धारण किये धननायक कुबेर अनेक वीथी और महालक्ष्मीके सहित ॥ ९४ ॥ अपने गुणोंसे युक्त देवीका निधिपति स्थित है, पश्चिमके महाकोणमें कामदेव रतिके सहित ॥ ९५ ॥ पाश अंकुश धनुर्बाण लिये नित्य विराजमान होता है, सब श्रृंगार मूर्तिमान् होकर वहां स्थित हैं ॥ ९६ ॥

ईशान कोणमें विघ्नेश नित्य पुष्टि सहित पाश अंकुश धारे वीरवेष विघ्नहर्ता विराजमान होते हैं ॥ ९७ ॥ हे राजन् ! जो जो गणेशकी विभूति हैं वह महा ऐश्वर्य सहित वहां निवास करती हैं ॥ ९८ ॥ प्रति ब्रह्माण्डमें रहनेवाले ब्रह्मादिकी समष्टि हैं वे सब ब्रह्मादिक परमेश्वरीका सेवन करते हैं ॥ ९९ ॥ महा मरकत मणिके परकोटेके आगे शतयोजनका दीर्घ कुंकुमके समान रक्तवर्ण मूंगोंका परकोटा हैं ॥ १०० ॥ उसके मध्यकी भूमि तथा स्थान भी मूंगोंके हैं उसके मध्यमें पांच भूतोंकी पांच स्वामिनी हैं ॥ १ ॥ हृल्लेखा, गगना, रक्ता, करालिका, महोच्छुष्मा यह पांच भूतोंके समान कांतिवाली है ॥ २ ॥ पाश अंकुश वर अभय धारण किये मितभूषण पहरे देवीके समान वेष धारे नव यौवनसे गर्वित वहां निवास करती हैं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! प्रवाल परकोटेके आगे

ईशानकोणे विघ्नेशो नित्यं पुष्टिसमन्वितः ॥ पाशांकुशधरो वीरो विघ्नहर्ता विराजते ॥ ९७ ॥ विभूतयो गणेशस्य या याः संति नृपोत्तम ॥ ताः सर्वा निवसंत्यत्र महैश्वर्यसमन्विताः ॥ ९८ ॥ प्रतिब्रह्मांडसंस्थानां ब्रह्मादीनां समष्टयः ॥ एते ब्रह्मादयः प्रोक्ताः सेवंते जगदीश्वरीम् ॥ ९९ ॥ महामारकतस्याग्रे शतयोजनदैर्घ्यवान् ॥प्रवालशालोऽस्त्यपरः कुंकुमारुणविग्रहः ॥ १०० ॥ मध्यस्तादृशी प्रोक्ता सदनानि च पूर्ववत् ॥ तन्मध्ये पंचभूतानां स्वामिन्यः पंच संति च ॥ १ ॥ हृल्लेखा गगना रक्ता चतुर्थी तु करालिका ॥ महोच्छुष्मा पंचमी च पंचभूतसमप्रभाः ॥ २ ॥ पाशांकुशवराभीतिधारिण्योऽमितभूषणाः ॥ देवीसमानवेषाढ्या नवयौवनगर्विताः ॥ ३ ॥ प्रवालशालादग्रे तु नवरत्नविनिर्मितः ॥ बहुयोजनविस्तीर्णो महाशालोऽस्ति भूमिप ॥ ४ ॥ तत्र चाम्नायदेवीनां सदनानि बहून्यपि ॥ नवरत्नमयान्येव तडागाश्च सरांसि च ॥ ५ ॥ श्रीदेव्या येऽवताराः स्युस्ते तत्र निवसंति हि ॥ महाविद्या महाभेदाः संति तत्रैव भूमिप ॥ ६ ॥ निजावरण देवीभिर्निजभूषणवाहनैः ॥ सर्वदेव्यो विराजंते कोटिसूर्यसमप्रभाः ॥ ७ ॥

बहुत योजनके विस्तारमें नवरत्नका परकोटा है ॥ ४ ॥ वहां पूर्व आम्नाय पश्चिम आम्नाय दक्षिण आम्नाय उत्तर ऊर्ध्व आम्नाय देवियोंके बहुत स्थान हैं वहांके तडाग सरोवर भी नवरत्नोंके ही हैं ॥ ५ ॥ श्रीदेवीके अवतार पाशांकुशेश्वरी, भुवनेश्वरी, भैरवी, कपालभुवनेश्वरी, अंकुशभुवनेश्वरी, प्रसादभुवनेश्वरी, क्रोधभुवनेश्वरी, त्रिपुटा, अश्वारूढा, नित्यक्लिन्ना, अन्नपूर्णा, त्वरिता आदि निवास करते हैं ॥ ६ ॥ कान्ती तारा षोडशी भैरवी मातंगी आदि दशो महा विद्या वहां निवास करती हैं अपने आवरणकी देवियों द्वारा अपने भूषण वाहनोंके सहित कोटिसूर्यकी कांति वाली सब देवी विराजमान होती हैं ॥ ७ ॥

वहीं सात कोटि महा मन्त्रोंके देवता निवास करते हैं नवरत्नमय स्थानोंसे आगे चिंतामणी निर्मित बड़ा घर है ॥ ८ ॥ वहांकी सम्पूर्ण वस्तु चिन्तामणिकी बनी हुई हैं सूर्यके समान कान्ति फैलानेवाले चन्द्रके समान कान्ति फैलानेवाले ॥ ९ ॥ तथा विद्युत्समान कांतिप्रकाश करनेवाले रत्नोंके वहां सहस्रों स्तंभ हैं जिनकी कांतिसे वहांकी कोई वस्तु दिखाई नहीं देती ॥ ११० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले यही मध्यभागमें देवीका स्थान विराजमान है जो सहस्र स्तंभ संयुक्त हैं उसमें चार मंडप हैं ॥ १ ॥ एक श्रृंगारमंडप, दूसरा मुक्तिमण्डप तीसरा ज्ञान मंडप ॥ २ ॥ चौथा एकांतमंडप है यह अनेक वितानोंसे संयुक्त और अनेक धूपोंसे धूपित है ॥ ३ ॥ यह मंडप कोटिसूर्यके समान कांतिमान है उन मंडपोंके

सप्तकोटिमहामंत्रदेवताः संति तत्र हि ॥ नवरत्नमयादग्रे चिंतामणिगृहं महत् ॥ ८ ॥ तत्रत्यं वस्तुमात्रं तु चिंतामणिविनिर्मितम् ॥ सूर्योद्गारोपलैस्तद्वच्चंद्रोद्गारोपलैस्तथा ॥ ९ ॥ विद्युत्प्रभोपलैः स्तंभाः कल्पितास्तु सह स्रशः ॥ येषां प्रभाभिरंतस्थं वस्तु किंचिन्न दृश्यते ॥ ११० ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ व्यास उवाच ॥ तदेव देवीसदनं मध्य भागे विराजते ॥ सहस्रस्तंभसंयुक्ताश्चत्वारस्तेषु मंडपाः ॥ १ ॥ श्रृङ्गारमंडपश्चैको मुक्तिमंडप एव च ॥ ज्ञानमंडपसंज्ञस्तु तृतीयः परि कीर्तितः ॥ २ ॥ एकांतमंडपश्चैव चतुर्थः परिकीर्तितः नानावितान संयुक्ता नानाधूपैस्तु धूपिताः ॥ ३ ॥ कोटिसूर्यसमाः कांत्या भ्राजंते मंडपाः शुभाः ॥ तन्मंडपानां परितः काश्मीरवनिका स्मृता ॥४॥ मल्लिका कुंदवनिका यत्र पुष्कलकाः स्थिताः ॥ असंख्याता मृगमदैः पूरितास्तत्स्रवा नृप ॥ ५ ॥ महापद्माटवी तद्वद्रत्नसोपाननिर्मिता ॥ सुधारसेन संपूर्णा गुञ्जन्मत्तमधुव्रता ॥ ६ ॥ हंसकारंड वाकीर्णा गन्धपूरितदिक्तटा ॥ वनिकानां सुगंधैस्तु मणिद्वीपं सुवासितम् ॥ ७ ॥ श्रृङ्गारमंडपे देव्यो गायंति विविधैः स्वरैः ॥ सभा सदो देववशा मध्ये श्रीजगदंबिका ॥ ८ ॥

सब ओर केसरकी वाटी ॥ ४ ॥ मल्लिका कुंद यह तीन वाटी लगी हैं जहां असंख्यात गन्धमृगसे मदसे पूरित मदस्रवन करते विचरते हैं ॥ ५ ॥ आगे उनके महापद्मोंकी अटवी. रत्नसोपाननिर्मित विराजमान हैं जो सुधारससे पूर्ण हैं जिनपर मधुके लोभसे भौंरे गुंजारते हैं ॥ ६ ॥ हंस कारंडवोंसे युक्त किनारे सुगंधसे पूर्ण हैं, उन वाटिकाओंकी गंधसे मणिद्वीप सुवासित रहता है ॥ ७ ॥ श्रृंगारमंडपमें देवियें सुन्दर स्वरसे गान करती हैं उस मंडपके मध्य देवी सिंहासनपर स्थित हैं पूर्वोक्त देवता सभासद हैं ॥ ८ ॥

मुक्तिमण्डपमें स्थित हो सब ब्रह्मांडके भक्तोंको मुक्त करती हैं तीसरे मंडपमें अपने भक्तोंके भक्तोंको ज्ञान उपदेश करती हैं जो निजब्रह्मरूप विषयक ज्ञान है ॥ ९ ॥ चौथे मण्डपमें स्थितहो मंत्रिणियोंके सहित जगत् रक्षाका विचार करतीहै ॥ १० ॥ हे राजन् ! चिन्तामणिमंदिरमें शक्तितत्त्वात्मक दशसोपानोंसे युक्त एक सिंहासन है, निवृत्ति आदि पांच कला, बिंदुकला, नादशक्ति, सदापूर्वा शिवप्रकृति इनही मूलप्रकृति भुवनेश्वरीके दशतत्वोंसे दशसोपानयुक्त मंच निर्मित है ॥ ११ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, यह चार इस मंचके पायेस्वरूप हैं, और सदाशिव फलकस्थानी हैं ॥ १२ ॥ इसके ऊपर भुवनेश महादेव विराजते हैं जो भुवनेश्वरी अपनी लीलाके निमित्त द्विधाभूत होती है, उसका दक्षिणभाग यह भुवनेश्वर है एकही साम्यावस्थामें स्थित मायाशबलब्रह्मरू

मुक्तिमंडपमध्ये तु मोचयत्यनिशं शिवा ॥ ज्ञानोपदेशं कुरुते तृतीये नृपमंडपे ॥ ९ ॥ चतुर्थमंडपे चैव जगद्रक्षाविचिन्तनम् ॥ मंत्रिणीसहिता नित्य करोति जगदंबिका ॥ १० ॥ चिन्तामणिगृहे राजञ्छक्तितत्त्वात्मकैः परैः ॥ सोपानैर्दशभिर्युक्तो मंचकोऽप्यधिराजते ॥ ११ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥ एते पंच खुराः प्रोक्ताः फलकस्तु सदाशिवः ॥ १२ ॥ तस्योपरि महादेवो भुवनेशो विराजते ॥ या देवी निजलीलार्थं द्विधाभूता बभूव ह ॥ १३ ॥ सृष्टयादौ तु स एवायं तदर्धांगो महेश्वरः कंदर्पदर्पनाशोद्यत्कोटिकंदर्पसुन्दरः ॥ १४ ॥ पंचवक्त्रस्त्रिनेत्रश्च मणिभूषणभूषितः ॥ हरिणाऽभीतिपरशून्वरं च निजबाहुभिः ॥ १५ ॥ दधानः षोडशाब्दोऽसौ देवः सर्वेश्वरो महान् ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशश्चंद्रकोटिसुशीतलः ॥१६ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशस्त्रिनेत्रः शीतलद्युतिः ॥ वामांके सन्निषण्णाऽस्य देवी श्रीभुवनेश्वरी ॥ १७ ॥ नव रत्नगणाकीर्णकांचीदा मविराजिता ॥ तप्तकांचनसन्नद्धवैदूर्यांगदभूषणा ॥ १८ ॥ कनच्छ्रीचक्रताटंकविटंकवदनांबुजा ॥ ललाटकांतिविभवविजितार्ध सुधाकरा ॥ १९ ॥

पिणी भगवती भुवनेश्वरी भुवनेश्वर रूपसे प्रादुर्भूत हुई है ॥ १३ ॥ सृष्टिकी आदिमें होकर यह महेश्वर उसका अर्धांग है कन्दर्पदर्पके नाशनेमें उद्यत कोटि कन्दर्पके समान सुन्दर ॥ १४ ॥ पंचमुख तीननेत्रमणिभूषणोंसे भूषित हरिण अभय परशुवर अपनी भुजाओंमें धारणकिये ॥ १५ ॥ षोडश वर्षकी अवस्थावाले यह सर्वेश्वरदेव हैं कोटि सूर्यके समान कांतिमान्, कोटि चन्द्रके समान शीतल ॥ १६ ॥ शुद्धस्फटिक मणिके समान कांतिमान् तीननेत्रशीतलद्युति जिनके बाईं ओर श्रीभुवनेश्वरी स्थित हैं ॥ १७ ॥ नवरत्न समूहोंसे व्याप्त कांची मेखलासे विराजित तपे सुवर्णसे बने और जडे वैदूर्य अंगदकी भूषणवाली ॥ १८ ॥ सुवर्णका दीप्यमान श्रीचक्र तदाकारके जो ताटंक कर्णभूषणोंसे जिनका मुख सुंदर होरहा है और ललाटकी कांतिके ऐश्वर्यसे जिसने अर्धचन्द्रको

जय करलिया ॥ १९ ॥ बिम्बकांतिको तिरस्कार करनेवाले जो ओष्ठपुट किससे विराजमान श्रेष्ठ कुंकुम कस्तूरीके तिलकसे प्रकाशमान मुखवाली ॥२०॥ दिव्य चूडामणि शिरोभूषणमें चन्द्र सूर्यनामक भूषणोंसे सम्पन्न उदित शुक्रके समान नासाभूषणोंसे संयुक्त ॥ २१ ॥ चिन्तानामक कंठभूषणमें लम्बायमान स्वच्छ मोतियोंके गुच्छेसे विराजित पटीर पंक कर्पूर और कुंकुमसे अलंकृत स्तनवाली ॥२२॥ विचित्र अनेक प्रकारके कल्पवाला, शंखके समान गर्दन दाडिमीफलके बीजके समान कांतिमान् दांतोंकी पंक्तिसे विराजित ॥ २३ ॥ बडे रत्नोंके मूल्यसे बने मुकुटसे जिसका मस्तक शोभित है मत्तभ्रमरमालासे जिनके मुखकी अलकावली शोभित हो रही है ॥ २४ ॥ श्यामतासे निर्मुक्त शरच्चन्द्रके कांतिके समान मुखवाली गंगाके आवर्तके समान गंभीर नाभिसे शोभित

बिम्बकांतितिरस्कारिरदच्छदविराजिता ॥ लसत्कुंकुमकस्तूरीतिलकोद्भासितानना ॥ २० ॥ दिव्यचूडामणिस्फारचंचच्चन्द्रकसूर्यका ॥ उद्यत्कविसमस्वच्छनासाभरणभासुरा ॥ २१ ॥ चिंताकालंबितस्वच्छमुक्तागुच्छविराजिता ॥ पाटीरपंककर्पूरकुंकुमालंकृतस्तनी ॥ २२ ॥ विचित्रविविधाकल्पा चंबुसंकाशकंधरा ॥ दाडिमीफलबीजाभदंतपंक्तिविराजिता ॥ २३ ॥ अनर्घ्यरत्नघटितमुकुटांचितमस्तका ॥ मत्तालिमालाविलसदलकाढ्यमुखांबुजा ॥ २४ ॥ कलंककार्श्यनिर्मुक्ताशरच्चंद्रनिभानना जाह्नवीसलिलावर्तशोभिनाभिविभूषिता ॥ २५ ॥ माणिक्यशकलाबद्धमुद्रिकांगुलिभूषिता ॥ पुंडरीकदलाकारनयनत्रयसुन्दरी ॥ २६ ॥ कल्पिताच्छमहारागपद्मरागोज्ज्वलप्रभा ॥ रत्नकिंकिणिकायुक्तरत्नकंकणशोभिता ॥ २७ ॥ मणिमुक्तासरापारलसत्पदकसंततिः ॥ रत्नांगुलिप्रविततप्रभाजालसत्करा ॥ २८ ॥ कंचुकीगुंफितापारनानारत्नततिद्युतिः ॥ मल्लिकामोदिधम्मिल्लमल्लिकालिसरावृता ॥ २९ ॥ सुवृत्तनिबिडोत्तुंगकुचभारालसा शिवा ॥ वरपाशांकुशाभीतिलसद्बाहुचतुष्टया ॥ ३० ॥

॥ २५ ॥ माणिक्य जड़ी अँगूठीसे शोभायमान, कमलदलके समान आकारवाले तीन नेत्रोंसे सुन्दर ॥ २६ ॥ शाणपर धरे महाराग पद्मरागमणिके समान उज्ज्वल कांतिवाली रत्नोंकी किंकिणी और रत्नोंके कंकणसे शोभित ॥ २७ ॥ मणि मोतियोंकी मालामें विद्यमान् अमूल्य पदक पंक्तिसे शोभित और रत्नांगुलियों अर्थात् मुद्रिकाके रत्नोंकीनिकली कान्तिसे जिनके कर शोभित होरहे हैं ॥ २८ ॥ कंचुकीमें गुंफित अनेक रत्नोंकी विस्तृत कांतिसे शोभित, मल्लिकाकी सुगंधिवाला जो धम्मिल्ल (केशपाश) उसमें स्थित मल्लिका मालापर भ्रमण करते हुए भ्रमरसमूहसे युक्त ॥ २९ ॥ गोल निबिड़' सघन ' ऊँचे कुचभारसे आलसको प्राप्त शिवा भवानी वर, पाश, अंकुश, अभयसे जिनकी चारों भुजा शोभायमान हैं ॥ ३० ॥

सब शृंगार वेषसे सम्पन्न सुकुमार अङ्गवाली, सौन्दर्य धाराकी सर्वस्वरूप विना हेतुकेही करुणावाली ॥ ३१ ॥ अपने संलापकी माधुरीनादसे वीणाको लज्जित करनेवाले कोटि २ चन्द्र सूर्यके कांतिको धारण करनेवाली ॥ ३२ ॥ अनेक सखी दासी देवांगना तथा सब देवताओंसे चारों ओर वेष्टित ॥ ३३ ॥ इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे युक्त लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, कीर्ति, कांति, क्षमा, दया, ॥ ३४ ॥ बुद्धि, मेधा, स्मृति, लक्ष्मी, यह सब मूर्तिमान् अङ्गनायें स्थित हैं. जया, विजया, अजिता, पराजिता ॥ ३५ ॥ नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री अघोरा, मंगला, नवा यह पीठशक्तियें हैं जो परा अम्बिकाका सेवन करती हैं ॥ ३६ ॥ जिसके पार्श्वभागमें शंख और पद्मक निधियें विद्यमान् हैं जिनसे नवरत्न और कांचनस्रावी नदी वहन करती हैं ॥ ३७ ॥ तथा

सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सुकुमारांगवल्लरी ॥ सौंदर्यधारा सर्वस्वानिर्व्याज करुणामयी ॥ ३१ ॥ निजसंलापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छपी ॥ कोटिकोटिरवींदूनां कांतिं या बिभ्रती परा ॥ ३२ ॥ नानासखीभिर्दासीभिस्तथा देवांगनादिभिः ॥ सर्वाभिर्देवताभिस्तु समंतात्परिवेष्टिता ॥ ३३ ॥ इच्छाशक्त्या ज्ञानशक्त्या क्रियासम न्विता ॥ लज्जा तुष्टिस्तथा पुष्टिः कीर्तिः कांतिः क्षमा दया ॥ ३४ ॥ बुद्धि मेधा स्मृतिर्लक्ष्मीर्मूर्तिमत्योऽगनाः स्मृताः ॥ जया च विजया चैवाप्यजिता चापराजिता ॥ ३५ ॥ नित्याविलासिनी दोग्ध्रीत्वघोरा मंगलानवा ॥ पीठशक्तय एतास्तु सेवंते यां परांबिकाम् ॥ ३६ ॥ यस्यास्तु पार्श्वभागे स्तो निधी तौ शंखपद्मकौ ॥ नवरत्नवहा नद्यस्तथा वैकांचनस्रवाः ॥ ३७ ॥ सप्तधातुवहा नद्यो निधिभ्यां तु विनिर्गताः ॥ सुधासिंध्वंतगामिन्यस्ताः सर्वा नृपसत्तम ॥ ३८ ॥ सा देवी भुवनेशानी तद्वामांके विराजते ॥ सर्वेशत्वं महेशस्य यत्संगादेव नान्यथा ॥ ३९ ॥ चिंतामणिगृहस्याऽस्य प्रमाणं शृणु भूमिप ॥ सहस्रयोजनायामं महांतस्तत्प्रचक्षते ॥ ४० ॥ तदुत्तरे महाशालाः पूर्वस्माद् द्विगुणाः स्मृताः ॥ अंतरिक्षगतं त्वेतन्निराधारं विराजते ॥ ४१ ॥ संकोचश्च विकाशश्च जायतेऽस्य निरंतरम् ॥ पटवत्कायवशतः प्रलये सर्जने तथा ॥ ४२ ॥

सातधातुकी बहानेवाली नदियें निधियोंसे निर्गत होती हैं, हे राजन् ! वह सब सुधासागर पर्यन्त बहती हैं ॥ ३८ ॥ वह महेशानी देवी उनके वामअङ्गमें विराजमान हैं इन्हींके संगसे महेशको सर्वेशत्व प्राप्त है इसमें अन्यथा नहीं ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! इस चिन्तामणिगृहका प्रणाम सुनो सहस्रयोजनके आयाम (विस्तरोंमें) है ॥ ४० ॥ उसके उत्तर महापरकोटे लम्बावमें उससे दूने हैं, यह अन्तरिक्षमें स्थित निराधारमे विराजमान हैं ॥ ४१ ॥ यह निरन्तर संकुचित और विकसित हो सकता है यह कार्यवश सृष्टिकी आदिमें पटवत् फैलता और प्रलयमें संकुचित होजाता है ॥ ४२ ॥

सब परकोटाकी कांतिकी यह चिंतामणि मंदिर परम अवधि है जहां महाप्रभावा देवी निवास करती है ॥ ४३ ॥ प्रतिब्रह्माण्डके रहनेवाली जो जो उपासक हैं देवलोक नागलोक तथा मनुष्यलोकमें हैं ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! वह सब यही श्रीदेवीके निकट प्राप्त होते हैं जो देवीके पूजनमें तत्पर देवीके क्षेत्रमें प्राणत्यागन करते हैं ॥ ४५ ॥ वह सब वहीं जाते हैं जहां देवीका महोत्सव है वहां घृतकुल्या मधुकुल्या दधिकुल्या मधुकी बहानेवाली हैं ॥ ४६ ॥ सब नदी अमृतकी बहानेवाली हैं कोई द्राक्षारस कोई जम्बूरस बहानेवाली हैं ॥ ४७ ॥ आप ईखके रसवालीसहस्रों नदियां हैं, मनोरथ फलनेवाले वृक्ष बावडी और कूप हैं ॥ ४८ ॥ जो यथेष्ट पान फलके देनेवाले हैं, जिनमें कुछ भी न्यूनता नहीं होती, रोग पलित और जरा नहीं होती ॥ ४९ ॥ चिन्ता मात्सर्य

शालानां चैव सर्वेषां सर्वकांति परावधि ॥ चिंतामणिगृहं प्रोक्तं यत्र देवी महोमयी ॥ ४३ ॥ ये ये उपासकाः संति प्रतिब्रह्मांडवर्तिनः ॥ देवेषु नागलोकेषु मनुष्येष्वितरेषु च ॥ ४४ ॥ श्रीदेव्यास्ते च सर्वेऽपि ब्रजंत्यत्रैव भूमिप ॥ देवीक्षेत्रे ये त्यजंति प्राणान्देव्यर्चने रताः ॥४५॥ ते सर्वे यांति तत्रैव यत्र देवी महोत्सवा ॥ घृतकुल्या दुग्धकुल्या दधिकुल्या मधुस्रवाः ॥ ४६ ॥ स्यंदंति सरितः सर्वास्तथामृतवहाः पराः ॥ द्राक्षारस वहाः काश्चिज्जंबूरसवहाः पराः ॥ ४७ ॥ आम्रेक्षुरसवाहिन्यो नद्यस्तास्तु सहस्रशः ॥ मनोरथफला वृक्षा वाप्यः कूपास्तथैव च ॥ ४८ ॥ यथेष्टपानफलदा न न्यूनं किंचिदस्ति हि ॥ न रोगपलितं वापि जरा वापि कदाचन ॥ ४९ ॥ न चिंता न च मात्सर्यं कामक्रोधादिकं तथा ॥ सर्वे युवानः सस्त्रीकाः सहस्रादित्यवर्चसः ॥५०॥ भजंति सततं देवीं तत्र श्रीभुवनेश्वरीम् ॥ केचित्सलोकतापन्नाः केचित्सामीप्यतां गताः ॥ ५१ ॥ सरूपतां गताः केचित्सार्ष्टितां च परे गताः ॥ या यास्तु देवतास्तत्र प्रतिब्रह्मांडवर्तिनाम् ॥ ५२ ॥ समष्टयः स्थितास्तास्तुसेवंते जगदीश्वरीम् ॥ सप्तकोटिमहामंत्रा मूर्तिमंत उपासते ॥ ५३ ॥ महाविद्याश्च सकलाः साम्यावस्थात्मिकां शिवाम् ॥ कारणब्रह्मरूपां तां मायाशबलविग्रहाम् ॥ ५४ ॥

कामक्रोधादिक नहीं हैं सहस्र सूर्यके समान कान्तिमान् वहांके पुरुष स्त्रीसहित सदा युवा रहते हैं ॥ ५० ॥ वह श्रीभुवनेश्वरीका नित्य भजन करते हैं कोई सालोक्य कोई सामीप्य मुक्तिको प्राप्त हुए ॥ ५१ ॥ कोई सारूप्य और कोई सार्ष्टि मुक्तिको प्राप्त हुए हैं प्रतिब्रह्मांडवर्ती वहां जितने देवता हैं ॥ ५२ ॥ वहां उनकी समष्टि सब श्रीजगदीश्वरीकी सेवा करते हैं वहां सात करोड महामंत्र मूर्तिमान् होकर उपासना करते हैं ॥ ५३ ॥ और सब महाविद्या साम्यावस्थामें स्थित शिवा कारणब्रह्मरूपा, मायासे शबल विग्रहवालीकी उपासना करते हैं ॥ ५४ ॥

हे राजन् ! यह मैंने आपसे मणिद्वीपका महाप्रभाव कहा चन्द्र सूर्य बिजली कोटियों अग्नि यह ॥ ५५ ॥ इस कांतिके कोटि अंशके कोटि अंशमें भी नहीं है कहीं मूँगके समान कहीं मरकतकी छबि ॥ ५६ ॥ कहीं विद्युत्सूर्यके समान कहीं मध्याह्न सूर्यके समान कहीं कोटि विद्युत्के समान महाधारासारकांति ॥ ५७ ॥ कहीं सिंदूरनील इंद्र माणिक्मके समान छबि,कहीं हीरेके समान कांति चारों ओर फैलती है और ॥ ५८ ॥ कहीं कांतिमें दावानलके समान तत्ते किये सुवर्णके समान कहीं चन्द्रकांत कहीं सूर्यकांतमणि ॥५९॥ रत्न शिखरोंसे युक्त रत्नके प्रकार और गोमुखी सम्पन्न रत्नपत्र और रत्न फलवाले वृक्षोंसे मंडित ॥६०॥

इत्थं राजन्मया प्रोक्तं मणिद्वीपं महत्तरम् ॥ न सूर्यचंद्रौ नो विद्युत्कोटयोऽग्निस्तथैव च ॥ ५५ ॥ एतस्य भाषा कोटयं शकोटयंशेनापि ते समः ॥ क्वचिद्विद्रुमसंकाशं क्वचिन्मरकतच्छवि ॥ ५६ ॥ विद्युद्भानुसमच्छायं मध्यसूर्यसमं क्वचित् ॥ विद्युत्कोटिमहाधारासारकांतिततं क्वचित् ॥ ५७ ॥ क्वचित्सिंदूरनीलेंद्रं माणिक्यसदृशच्छवि ॥ हीरसारमहागर्भधगद्धगित दिक्तटम् ॥ ५८ ॥ कांत्या दावानलसमं तप्तकांचनसन्निभम् ॥ क्वचिच्चंद्रोपलोद्गारं सूर्योद्गारे च कुत्रचित् ॥ ५९ ॥ रत्नशृंगि समायुक्तं रत्नप्राकारगोपुरम् ॥ रत्नपत्रै रत्नफलैर्वृक्षैश्च परिमंडितम् ॥ ६० ॥ नृत्यन्मयूरसंघैश्च कपोतरणितोज्ज्वलम् ॥ कोकिलाकाकली लापैः शुकलापैश्च शोभितम् ॥ ६१ ॥ सुरम्यरमणीयांबुलक्षावधिसरोवृतम् ॥ तन्मध्यभागविलसद्विकचद्रत्न पंकजैः ॥ ६२ ॥ सुगंधिभिः समंतात्तु वासितं शतयोजनम् ॥ मंदमारुतसंभिन्नचलद्द्रुमसमाकुलम् ॥ ६३ ॥ चिंतामणिसमूहा नां ज्योतिषा विततांम्बरम् ॥ रत्नप्रभाभिरभितो धगद्धगितदिक्तटम् ॥ ६४ ॥ वृक्षव्रातमहागंधवातव्रातसुपूरितम् ॥ धूपधूपा यितं राजन्मणिद्वीपायुतोज्ज्वलम् ॥ ६५ ॥

मयूरोंके समूहोंके नृत्य और कपोतोंके शब्दोंसे शब्दायमान कोकिला काकली और तोतोंके अलापसे शोभित ॥ ६१ ॥ मनोहर रमणीय जलके लक्षों सरोवर, उनके मध्यभागमें रत्नोंके कमल खिले हुए ॥ ६२ ॥ चारों ओर सौ योजनतक सुगंधि व्याप्त हो रही मंदमारुतसे जहांके वृक्ष चलायमान हो रहे ॥ ॥ ६३ ॥ चिन्तामणिके समूहोंकी ज्योति आकाशमें फैल रही उनमें रत्नोंकी कांतियोंसे सब ओर प्रकाश हो रहा है ॥ ६४ ॥ वृक्षोंके समूहोंकी महा गंधसे युक्त पवनसे पूर्ण हे राजन् ! सब स्थान धूपोंसे धूपित और मणिद्वीपोंसे समुज्ज्वल हैं ॥ ६५ ॥

मणियोंके जालके छिद्रोंमें चञ्चल दीपोंकी कांति निकलकर गृह मध्यके दर्पणोंमें पडकर एक अपूर्व मोहजनक कांतिधारण करती है ॥ ६६ ॥ संपूर्ण ऐश्वर्य संपूर्ण शृंगार सब सर्वज्ञता संपूर्ण तेज ॥ ६७ ॥ सब पराक्रम, सर्वोत्तम गुण और संपूर्ण दयाकी यहां समाप्ति है. हे राजन् ! ॥ ६८ ॥ राजाके आनंदसे प्रारंभकर ब्रह्मलोकपर्यन्त जो आनंद है वे सब आनंद यहां हैं ॥ ६९ ॥ हे राजन् ! यह आपसे मणिद्वीपका महत्त्व कहा यह महादेवीका परमस्थान सब लोकोंसे उत्तमोत्तम है ॥ ७० ॥ इसके स्मरणमात्रसे सब पाप नष्ट होते हैं प्राण प्रयाणके समय इसको स्मरण करनेसे प्राणी मणिद्वीपमें ही गमन करता है ॥ ७१ ॥ जो सावधान हो आठवें अध्यायसे बारह अध्यायतक पांच अध्याय नित्य सुनता है उसको भूत प्रेत पिशाचादि बाधा नहीं होती ॥ ७२ ॥

मणिजालकसच्छिद्रतरलोदरकांतिभिः ॥ दिङ्मोहजनकं चैतद्दर्पणोदरसंयुतम् ॥ ६६ ॥ ऐश्वर्यस्यसमग्रस्य शृङ्गारस्याखिलस्य च ॥ सर्वज्ञतायाः सर्वायास्तेजसश्चाखिलस्य च ॥ ६७ ॥ पराक्रमस्य सर्वस्य सर्वोत्तमगुणस्य च ॥ सकलाया दयायाश्च समाप्तिरिह भूपते ॥ ६८ ॥ राज्ञ आनन्दमारभ्य ब्रह्मलोकांतभूमिषु ॥ आनंदा ये स्थिताः सर्वे तेऽत्रैवांतर्भवंति हि ॥ ६९ ॥ इति ते वर्णितं राजन्मणिद्वीप महत्तरम् ॥ महादेव्याः परं स्थानं सर्वलोकोत्तमोत्तमम् ॥ ७० ॥ एतस्य स्मरणात्सद्यः सर्वं पापं विनश्यति ॥ प्राणोत्क्रमणसंधौ तु स्मृत्वा तत्रैव गच्छति ॥ ७१ ॥ अध्यायपंचकं त्वेतत्पठेन्नित्यं समाहितः ॥ भूतप्रेतपिशाचादिबाधा तत्र भवेन्नहि ॥ ७२ ॥ नवीनगृहनिर्माणे वास्तुयागे तथैव च ॥ पठितव्यं प्रयत्नेन कल्याणं तेन जायते ॥ ७३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ व्यास उवाच ॥ इति ते कथितं भूप यद्यत्पृष्टं त्वयाऽनघ ॥ नारायणेन यत्प्रोक्तं नारदाय महात्मने ॥ १ ॥ श्रुत्वैतत्तु महादेव्याः पुराणं परमाद्भुतम् ॥ कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो देव्याः प्रियतमो हि सः ॥ २ ॥ कुरु चांबामखं राजन्स्वपितुरुद्धरणाय वै ॥ खिन्नोऽसि येन राजेन्द्र पितुर्ज्ञात्वा तु दुर्गतिम् ॥ ३ ॥

नवीनगृह के निर्माणमें वास्तुयोगमें प्रयत्नसे इसको पढे तो कल्याण मंगल होता है ॥ ७३ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भाषायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ व्यासजी बोले हे राजन् ! जो जो आपने पूँछा सो सब तुमसे कहा जो कुछ नारायणने महात्मा नारदसे कहा था ॥ १ ॥ इस महादेवीके परम अद्भुत पुराणको श्रवण कर यह प्राणी कृतकृत्य और देवीका प्रिय होता है ॥ २ ॥ हे राजन् ! अब अपने पिताके उद्धारके निमित अम्बायज्ञ कीजिये जिसके विना किये पिताकी सुगति न होनेके कारण तुम खिन्न हो रहे हो ॥ ३ ॥

आप सर्वोत्तम मयदेवीके मंत्रको ग्रहण करो जो यथाविधिविधानसे जन्मकी सफलता देता है ॥ ४ ॥ सूतजी बोले मुनिश्रेष्ठके यह वचन सुन वह नृप श्रेष्ठ मुनिराजकी प्रार्थना कर उनसे ही प्रणवसंज्ञक महादेवीके मंत्रको ॥ ५ ॥ दीक्षाविधिके विधानसे राजाने ग्रहण किया फिर नवरात्रके समागममें धाम्यादि महर्षियोंको बुलाये ॥ ६ ॥ वित्तशाठ्यसे वर्जित हो अम्बायज्ञ किया और यह उत्तम पुराण ब्राह्मणोंद्वारा पाठ कराया ॥ ७ ॥ श्रीदेवी अम्बिकाको प्रीतिके निमित्त परम देवीभागवत सुनी असंख्य ब्राह्मण और सुवासिनियोंको भोजन कराया ॥ ८ ॥ कुमारी बटुक दीन अनाथ इन सबको भोजन और द्रव्यदानसे राजाने प्रसन्न किया ॥ ९ ॥ यज्ञ समाप्त करके ज्योंही यज्ञमंडपमें स्थित थे कि, तबतक आकाशसे नारदजी उतरे ॥ १० ॥ प्रज्वलित

गृहाण त्वं महादेव्या मन्त्रं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ यथाविधि विधानेन जन्मसाफल्यदायकम् ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ यच्छ्रुत्वा नृपशार्दूल प्रार्थयित्वा मुनीश्वरम् ॥ तस्मादेव महामन्त्रं देवीप्रणवसंज्ञकम् ॥ ५ ॥ दीक्षाविधिविधानेन जग्राह नृपसत्तमः ॥ तत आहूय धौम्यादीन्नवरात्रसमागमे ॥ ६ ॥ अंबायज्ञं चकाराशु वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ब्राह्मणैः पाठयामास पुराणं त्वेतदुत्तमम् ॥ ७ ॥ श्रीदेव्यम्बिकाप्रीत्यै देवीभागवतं परम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयामासाप्य संख्यातान्सुवासिनीः ॥ ८ ॥ कुमारीर्बटुकादींश्च दीनानाथांस्तथैव च ॥ द्रव्यप्रदानैस्तान्सर्वान्संतोष्य वसुधाधिपः ॥ ९ ॥ समाप्य यज्ञं संस्थाने संस्थितो यावदेव हि ॥ तावदेव हि चाकाशान्नारदः समवातरत् ॥ १० ॥ रणयन्महतीं वीणां ज्वलदग्नि शिखोपमः ॥ ससंभ्रमः समुत्थाय दृष्ट्वा तं नारदं मुनिम् ॥ ११ ॥ आसनाद्युपचारैश्च पूजयामास भूमिपः ॥ कृत्वा तु कुशलप्रश्नं पप्रच्छागमकारणम् ॥ १२ ॥ राजोवाच ॥ कुत आगमनं साधो ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ सनाथोऽहं कृतार्थोऽहं त्वदागमनकारणम् ॥ १३ ॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा प्रोवाच मुनिसत्तमः ॥ अद्याऽऽश्चर्यं मया दृष्टं देवलोके नृपोत्तम ॥१४॥

अग्निके समान कांतिवाले महतीनामक अपनी वीणाको बजाते आये नारदजीको देखतेही राजा संभ्रांत हो उठ खडा हुआ ॥ ११ ॥ और आसनादि उपचारोंसे राजाने उनकी पूजा की और कुशल प्रश्न कर आगमन कारण पूँछा ॥१२॥ राजा बोले हे महात्मन् आप कहांसे आये हो कहिये मैं आपका क्या प्रिय करूं आपके आगमनसे मैं सनाथ और कृतार्थ हुआ हूं ॥ १३ ॥ राजाके यह वचन सुन मुनिश्रेष्ठ बोले हे राजन् ! इस समय देवलोकमें मैंने बड़ा आश्चर्य देखा है ॥ ॥ १४ ॥

वह मैं विस्मित हो तुमसे निवेदन करनेको आया हूं अपने कर्मकी विपरीततासे तुम्हारे पिताकी सद्गति नहीं हुई थी ॥ १५ ॥ जो इस समय वह दिव्य रूप होकर देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त हो सब ओर अप्सराओंसे वेष्टित हो ॥ १६ ॥ अच्छे विमानपर चढ मणिद्वीपको गये हैं यह इस देवीभागवतके सुननेका ही फल है ॥ १७ ॥ देवीयज्ञके कारण तुम्हारे पिताकी सद्गति हुई तुम धन्य और कृतकृत्य हो तथा तुम्हारा जीवन सफल है ॥ १८ ॥ हे कुलभूषण ! आपने अपने पिताका दुःखसे उद्धार किया इस समय देवलोकमें तुम्हारी बड़ी कीर्ति हुई है ॥ १९ ॥ सूतजी बोले राजा यह नारदजीके कहे वचन सुनकर प्रेमसे गद्गद हो अद्भुतकर्मा व्यासजीके चरणोंमें पडे ॥ २० ॥ और बोले हे देव ! मैं आपके अनुग्रहसे कृतार्थ हुआ हूं नमस्कारके सिवाय और मैं इसका

तन्निवेदयितुं प्राप्तस्त्वत्सकाशे सुविस्मितः ॥ पिता ते दुर्गतिं प्राप्तो निज कर्मविपर्ययात् ॥ १५ ॥ स एवायं दिव्यरूपवपुर्भूत्वाऽधुनैव हि ॥ देवदेवैः स्तुतः सम्यगप्सरोभिः समंततः ॥ १६ ॥ विमान वरमारुह्य मणिद्वीपं गतोऽभवत् ॥ देवीभागवतस्यास्य श्रवणोत्थ फलेन च ॥ १७ ॥ अंबामखफलेनापि पिता ते सुगतिं गतः ॥ धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि जीवितं सफलं तव ॥ १८ ॥ नरकादुद्धृतस्तातस्त्वया तु कुलभूषण ॥ देवलोके स्फीतकीर्तिस्तवाद्य विपुलाऽभवत् ॥ १९ ॥ सूत उवाच ॥ नारदोक्तं समाकर्ण्य प्रेमगद्गदितांतर ॥ पपातपादांबुजयोर्व्यासस्याद्भुतकर्मणः ॥२०॥ तवानुग्रहतो देव कृतार्थोऽहं महामुने ॥ किं मया प्रतिकर्तव्यं नमस्काराहृते तव ॥ २१ ॥ अनुग्राह्यः सदैवाहमेवमेव त्वया मुने ॥ इति राज्ञोः वचः श्रुत्वाप्याशीभिरभिनन्द्य च ॥२२॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं भगवान्बादरायणः॥ राजन्सर्वं परित्यज्य भज देवीपदांबुजम्॥ २३ ॥ देवीभागवतं चैव पठ नित्यं समाहितः ॥ अंबामखं सदा भक्त्या कुरु नित्यमतंद्रितः ॥२४॥ अनायासेन तेनत्वं मोक्ष्यसे भवबंधनात ॥ सन्त्यन्यानि पुराणानि हरिरुद्रमुखानि च ॥ २५ ॥

प्रत्युपकार क्या कर सकता हूं ॥ २१ ॥ हे मुने ! इसी प्रकार मेरे ऊपर सदा अनुग्रह रखना चाहिये यह राजाके वचन सुन आशीर्वादसे राजाको प्रसन्न कर ॥ २२ ॥ भगवान् व्यास मनोहर वचन बोले हे राजन् ! और सब त्यागनकर देवीके चरणकमलका भजन करो ॥ २३ ॥ और नित्य सावधान होकर देवीभागवतका पाठ करो और आलस्य त्याग भक्तिपूर्वक सदा अम्बामख किया करो ॥ २४ ॥ इससे अनायास ही संसार बंधनसे छूट जाओगे और भी शिव विष्णु आदि पुराण हैं ॥ २५ ॥

पर इस देवीभागवतकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं यह पुराण और वेदोंका सार है ॥ २६ ॥ कारण कि, इसमें शबलब्रह्मरूपिणी मूलप्रकृति प्रतिपादन की गई है फिर और पुराण ब्रह्मा विष्णु आदि एक एक गुणके कहनेवाले इस त्रिगुणकी साम्यावस्थावाले पुराणकी बराबरी कैसे कर सकते हैं ॥ २७ ॥ हे जनमेजय! इसके पाठसे वेदपाठके समान पुण्य होता है इस कारण उत्तम विद्वानोंको प्रयत्नसे इसे पढना चाहिये ॥ २८ ॥ इस प्रकार कहकर मुनिश्रेष्ठ राजासे विदा हुए और धौम्यादि निर्मल मुनि भी अपने स्थानोंको गये ॥ २९ ॥ और देवी भागवतकी उत्तम प्रशंसा करने लगे और राजा प्रसन्नमन होकर पृथ्वीका पालन करने लगे ॥ ३० ॥ और निरन्तर भागवत पढते सुनते रहे ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुरणे द्वादशस्कन्धे

देवीभागवतस्यास्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ सारमेतत्पुराणानां वेदानां चैव सर्वशः ॥ २६ ॥ मूलप्रकृतिरेवैषा यत्र तु प्रतिपाद्यते ॥ समंतेनपुराणं स्यात्कथमन्यन्नृपोत्तम ॥ २७ ॥ पाठे वेदसमं पुण्यं यस्य स्याज्जनमेजय ॥ पठितव्यं प्रयत्नेन तदेव विबुधोत्तमैः ॥ २८ ॥ इत्युक्त्वा नृपवर्यं तं जगाम मुनिराट् ततः ॥ जग्मुश्चैव तथा स्थानं धौम्यादिमुनयोऽमलाः ॥ २९ ॥ देवीभागवतस्यैव प्रशंसां चक्रुरुत्तमाम् ॥ राजा शशास धरणीं ततः संतुष्टमानसः ॥ ३० ॥ देवीभागवतं चैव पठञ्छुण्वन्निरंतरम् ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ अर्धश्लोकात्मकं यत्तु देवीवक्त्राब्जनिर्गतम् ॥ श्रीमद्भागवतं नाम वेदसिद्धान्तबोधकम् ॥ १ ॥ उपदिष्टं विष्णवे यद्वटपत्र निवासिने ॥ शतकोटिप्रविस्तीर्णतत्कृतं ब्रह्मणा पुरा ॥ २ ॥ तत्सारमेकतः कृत्वा व्यासेन शुकहेतवे ॥ अष्टादशसहस्रं तु द्वादशस्कन्ध संयुतम् ॥ ३ ॥

भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ सूतजी बोले तीसरे स्कन्धमें वटपत्रमें शयन करते विष्णुसे जो देवी 'सर्वखल्विदमेवाहंनान्यदस्तिसनातनम्' अर्थात् यह सब मैं ही हूं मेरेसिवाय कोई नित्यपदार्थ नहीं यह आधाश्लोक देवीके मुखसे निर्गत हुआ वेदसिद्धान्तका जतानेवाला वेद सिद्धान्तका बोधक है ॥ १ ॥ जो वटपत्र निवासी विष्णुको उपदेश किया, पहले ब्रह्माने इसको सौ करोड़श्लोकोंमें विस्तार किया था ॥ २ ॥ उसीका व्यासजीने शुकदेवके निमित्त अठारह सहस्र बारह स्कन्धमें सार कहा है ॥ ३ ॥

देवीभागवतनाम पुराण जो पहले ब्रह्माने निर्माण किया अबभी देवलोकमें वह बडे विस्तार युक्त है ॥ ४ ॥ इसके समान पुण्यदायक पवित्र तथा पापनाशक दूसरा पुराण नहीं है इसके पाठसे मनुष्य पदपदमें अश्वमेधके फलको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ वस्त्र आभरणादिसे पौराणिक की पूजा करनी चाहिये, पुराण वक्ताको व्यासबुद्धिसे पूजे और नियमसे रहे ॥६॥ हे मुने ! अपने हाथसे वा लेखकके हाथसे लिखाकर भाद्रपद पौर्णमासीको देवीतिथिमें श्रीभागवतको देवीरूप जान,सुवर्णका सिंह बनवाय ॥ ७ ॥ पौराणिकको प्रदान करे इसपर दक्षिणामें कपिला गौ दे वह गौ दुधारी अलंकृत सवत्सा सुवर्ण पहरे हो ॥ ८ ॥ इसमें ३१० अध्याय होनेसे इतने ही ब्राह्मणोंको भोजन करावे, इतनीही सुहागन कुमारी बटुकोंको भोजन करावे ॥ ९ ॥ देवीबुद्धिसे वसन आभरणादि द्वारा

देवीभागवतं नाम पुराणं प्रथितं पुरा ॥ अद्यापिदेवलोके तद्बहुविस्तीर्णमस्ति हि॥४॥नानेन सदृशं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ ५ ॥ पौराणिकं पूजयित्वा वस्त्राद्याभरणादिभिः ॥ व्यासबुद्ध्या तन्मुखात्तु श्रुत्वैतत्समुपोषितः ॥ ६ ॥ लिखित्वा निजहस्तेन लेखकेनाऽथवा मुने ॥ प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् ॥ ७ ॥ दद्यात्पौराणिकायाऽथ दक्षिणां च पयस्विनीम् ॥ सालंकृतां सवत्सां च कपिलां हेममालिनीम् ॥ ८ ॥ भोजयेद्ब्राह्मणानंतेऽप्यध्यायपरिसंमितान् ॥ सुवासिनीस्तावतीश्च कुमारीबटुकैः सह ॥ ९ ॥ देवीबुध्या पूजयेत्तान्वसनाभरणादिभिः ॥ पायसान्नवरेणाऽपि गंधस्रक्कुसुमादिभिः ॥ १० ॥ पुराणदानेनैतेन भूदानस्य फलं लभेत् ॥इह लोके सुखी भूत्वाप्यंते देवीपुरं व्रजेत ॥ ११ ॥ नित्यं यः शृणुयाद्भक्त्या देवीभागवतं परम् ॥ न तस्य दुर्लभं किंचित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि ॥ १२ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥ विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां कीर्तिमंडितभूतलः ॥ १३ ॥ वंध्या वा काकवंध्या वा मृतवंध्या च यांगना श्रवणादस्य तद्दोषान्निवर्तेत न संशयः ॥ १४ ॥

उनको पूजन करे पायसादिश्रेष्ठ अन्न गंधमाला कुसुमादिसे पूजा करे ॥ १० ॥ उस पुराणदानसे भूमिदानका फल होता है इसलोकमें सुखी हो अन्तमें देवीलोकको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ जो नित्य भक्तिसे देवीभागवत सुनते हैं उसको कभी कहीं किसी समय कुछ दुर्लभ नहीं होता ॥ १२ ॥ अपुत्रवाला पुत्र प्राप्त करता धनार्थीको धन मिलता है वियार्थी वियाको प्राप्त होकर अपनी कीर्तिसे भूमिको मंडित करता है ॥ १३ ॥ वंध्या काकवंध्या जिसके एकही वार संतान हुई हो मृतवंध्या (जिसकी सन्तान होकर मरजाती हो) इसके श्रवणसे ही दोष निवृत्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १४ ॥

जिस घरमें यह पुस्तक पूजित होकर स्थित रहती है उस घरको लक्ष्मी और सरस्वती त्यागन नहीं करती ॥ १५ ॥ वेताल डाकिनी आदि राक्षस उस घरको देखनेको समर्थ नहीं होते मनुष्यको ज्वरयुक्त देख सावधान हो इसका पाठ करे तो ॥ १६ ॥ दाहज्वर ग्लानिसहित नाशको प्राप्त होता है इसको सौ आवृत्ति करनेसे क्षयरोग नाश होता है ॥ १७ ॥ सावधान हो संध्याके उपरान्त प्रतिसंध्यामें जो इसके एक एक अध्यायको भी पढता है वह मनुष्य ज्ञान वान् होकर मोक्षका अधिकारी होता है ॥ १८ ॥ कार्याकार्यमें नवमस्कन्धके कहे अनुसार शकुनोंको देखे जिसका प्रकार मैं पहले कह चुका हूं ॥ १९ ॥ शरत्कालकी नवरात्रमें इसको नित्य पाठ करे अम्बिका प्रसन्न होकर उसको इच्छित फल देती है ॥ २० ॥ वैष्णव शैव गाणपत्य सौर शाक्त वैदिक

यद्गेहे पुस्तकं चैतत्पूजितं यदि तिष्ठति ॥ तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती ॥ १५ ॥ नेक्षंते तत्र वेतालडाकिनीराक्षसादयः ॥ ज्वरितं तु नरं स्पृष्ट्वा पठेदेतत्समाहितः ॥ १६ ॥ मंडलान्ना शमाप्नोति ज्वरो दाहसमन्वितः ॥ शतावृत्त्याऽस्य पठनात्क्षयरोगो विनश्यति ॥ १७ ॥ प्रतिसंध्यं पठेद्यस्तु संध्यांकृत्वा समाहितः ॥ एकैकमस्य चाध्यायं स नरो ज्ञानवान्भवेत् ॥ १८ ॥ शकुनांश्चैव वीक्षेत कार्याकार्येषु चैव हि ॥ तत्प्रकारः पुरस्तात्तु कथितोऽस्ति मया मुने ॥ १९ ॥ नवरात्रे पठेन्नित्यं शारदीयेऽतिभक्तितः ॥ तस्यांबिका तु संतुष्टा ददातीच्छाधिकं फलम् ॥ २० ॥ वैष्णवैश्चैव शैवैश्च रमोमा प्रीयते सदा ॥ सौरैश्चगाणपत्यैश्च स्वेष्टशक्तेश्चतुष्टये ॥ २१ ॥ पठितव्यं प्रयत्नेन नवरात्रचतुष्टये ॥ वैदिकैर्निजगायत्रीप्रीतये नित्यशो मुने ॥ २२ ॥ पठितव्यं प्रयत्नेन विरोधो नात्र कस्यचित् ॥ उपासना तु सर्वेषां शक्तियुक्ताऽस्ति सर्वदा ॥ २३ ॥ तच्छक्तेरेव तोषार्थं पठितव्यं सदा द्विजैः ॥ स्त्री शूद्रो न पठेदेतत्कदापि च विमोहितः ॥ २४ ॥ शृणुयाद्द्विजवक्त्रात्तु नित्यमेवेति च स्थितिः ॥ किं पुनर्बहुनोक्तेन सारं वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ २५ ॥

इनको अपने इष्टदेवकी शक्ति अर्थात् अपने इष्ट विष्णु शिव गणेश सूर्यकी शक्ति पार्वती राधा लक्ष्मी सिद्धि बुद्धि इच्छारूपकी तुष्टिके निमत्त इस पुराणको पढना चाहिये ॥ २१ ॥ आषाढ आश्विन माघ चैत्रके शुक्लपक्ष चारों नवरात्रमें इसको पढना चाहिये, वैदिकोंको अपनी गायत्रीकी प्रीतिके निमित सदा पढना चाहिये ॥ २२ ॥ इसको यत्नसे पढना चाहिये कारण कि इसमें किसीका विरोध नहीं है जो कि सब देवताओंकी उपासना शक्तिसहित है और शक्तिकी अधिष्ठात्री भगवती है ॥ २३ ॥ उस शक्तिके संतोषके निमित्त द्विजोंको सदा पढनी चाहिये, स्त्री शूद्र मोहको प्राप्त हुए स्वयं इसका पारायण न करे ॥ २४ ॥ उनको सदा ब्राह्मणोंके मुखसे इसको सुनना चाहिये ऐसी मर्यादा है बहुत कहनेसे क्या है तत्त्वसे इसका सार कहता हूं ॥ २५ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! यह पुराण वेदका सार परमपुण्यदायक है, इसका पाठ और श्रवण वेदपाठ और श्रवणके समान पुण्यदाक है ॥ २६ ॥ गायत्रीसे प्रतिपाद्य सच्चिदानंदरूपिणी ह्रींमयी देवीको प्रणाम करता हूं वही हमारी बुद्धिको प्रेरणा करे "ह्रींब्रह्मेति श्रुतेः" ॥ २७ ॥ नैमिषारण्यवासी तपोधन इसप्रकार सूतजीके वचन सुन पौराणिकोंमें उत्तम सूतजीकी उच्चपूजा करते हुए ॥ २८ ॥ वे देवीके चरणकमलका पूजन करनेवाले सब प्रसन्न हुए और इस पुराणके प्रभाव परम शांतिको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥ सूतजीको वारंवार प्रणाम कर श्रम देनेके अपराधको क्षमा कराते हुए और बोले हे तात ! इस संसारसागरके

वेदसारमिदं पुण्यं पुराणं द्विजसत्तमाः ॥वेदपाठसमं पाठे श्रवणे च तथैव हि ॥ २६ ॥ सच्चिदानंदरूपां तां गायत्रीप्रतिपादि ताम् ॥ नमामि ह्रींमयीं देवीं धियो नः प्रचोदयात् ॥ २७ ॥ इति सूतवचः श्रुत्वा नैमिषीयास्तपोधनाः ॥ पूजयामासुर त्युच्चैः सूतं पौराणिकोत्तमम् ॥ २८ ॥ प्रसन्नहृदयाः सर्वे देवीपादांबुजार्चकाः ॥ निवृत्तिं परमां प्राप्ताः पुराणस्य प्रभावतः ॥ २९ ॥ नमश्चक्रुः पुनः सूतं क्षमाप्य च मुहुर्मुहुः ॥ संसारवारिधेस्तात प्लवोऽस्माकं त्वमेव हि ॥ ३० ॥ इति स मुनिवराणा मग्रतः श्रावयित्वा सकल निगमगुह्यं दौर्गमेतत्पुराणम् ॥ नतमथ मुनिसंघं वर्धयित्वाशिषांबाचरणकमलभृंगो निर्जगामाथ सूतः ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां द्वादशस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४ ॥ स्वस्ति ॐ ॥

रामषण्नंद (९६२) संख्यातैः पद्यैर्व्यासकृतैः शुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्य द्वादशस्कंध ईरितः ॥ १ ॥

पार करनेको तुम ही हमको नौकारूप हुए ॥ ३० ॥ इस प्रकारसे वह सूतजी सब निगमोंमें गुप्त इस पुराणको उन श्रेष्ठ ऋषियोंको सुनाकर मुनियोंसे प्रणामको प्राप्त हो उन्हें आशीर्वादसे बढाय, माता भगवतीके चरणकमलोंमें भृंगरूप अर्थात् देवीके अतिशय भक्त सूतजी वहांसे बिदा होकर अन्यत्र चले गये ॥ ३१ ॥ इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां राजमान्यकान्यकुब्जकमलदिवाकरहरिभक्तिनिरतश्रीमिश्रसुखानन्दसूनुमहोपदेशकभारतधममहामण्डलपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां द्वादशस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

दोहा—जगदम्बा श्रीशारदा, ब्रह्मरूपिणी मात । तिनके पगवंदन किये, कोटि विघ्न मिटजात ॥ १ ॥
चरणकमल सुन्दर अमल, प्रेमसहित मनलाय । देवीभागवत ग्रंथकी, भाषा लिखी बनाय ॥ २ ॥
वेद अर्थ गर्भित सकल, गायत्रीको ध्यान । इहिमें अतिविस्तारसे, कह्यो व्यास भगवान ॥ ३ ॥
पढ़हिं सुनहिं कर प्रेम जो, पावहिं मोद महान । अर्थ धर्म कामादि सुख, अन्त मिलहिं निर्वान ॥ ४ ॥
सब पदार्थ गूढार्थ अरु, भावतिलक सम्पन्न । वर्णी भाषा भागवत, सज्जन होहिं प्रसन्न ॥ ५ ॥
श्रीकृष्णदासात्मज, खेमराज सुखदान । बसत बम्बई नगरमें, दिव्यगुणनकी खान ॥ ६ ॥
वेंकटेश्वर यंत्रपति, विदित सकल संसार । तिन हितकी श्रीभागवत, भाषामें विस्तार ॥ ७ ॥
पुत्र पौत्रकी होय नित, वृद्धि समृद्धि विशाल । जगज्जननि परमेश्वरी, सन्तत रहहिं दयाल ॥ ८ ॥
मिश्रसुखानँद सूरि सुत, गंगगर्भसंजात । बुधज्वालाप्रसाद नित, भुवनेशी गुणगात ॥ ९ ॥
वसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद । भजत करत जगदम्बको, बुध ज्वालापरसाद ॥ १० ॥
संवत सागर बाणग्रह, चन्द्र अषाढ़ सुमास । कृष्णत्रयोदशिचन्द्रदिन, पूर्णतिलक सुखरास ॥ ११ ॥
नौसे त्रेसठ श्लोकमें, यह द्वादशस्कन्ध । गायत्री महिमा कही, और वैदिक परबन्ध ॥ १२ ॥
वृथा फिरत क्यों विपिनमें, रे मतिमंद गँवार । जगदम्बाके चरणगहि, अपनो जन्मसुधार ॥ १३ ॥
पक्षपात तज धर्म गहि, व्यासमुनिहिं शिरनाय । यथाशक्ति टीका करी, दर्पणवत दिखराय ॥ १४ ॥
तासौं दर्पण नाम यह, टीका सब सुखमूल । पढहिं सुनहिं तिनपर रहें, सदा शिवा अनुकूल ॥ १५ ॥

॥ श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ॥

इदं पुस्तकं क्षेमराज-श्रीकृष्णदास श्रेष्ठिना मुम्बय्यां (खेतवाडी ७ वीं गल्ली खम्बाटा लैन) स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणागारेऽङ्कयित्वा प्रकाशितम् ।

पुस्तके मिलने के स्थान :–

खेमराज श्रीकृष्णदास
श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७वीं खेतवाडी, खम्बाटा लेन,
बम्बई–४०० ००४

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
अहिल्याबाई चौक, कल्याण
(जि० ठाणे–महाराष्ट्र)

खेमराज श्रीकृष्णदास, चौक–वाराणसी (उ० प्र०)

इति श्रीमद्देवीभागवते भाषाटीकासमेते द्वादशस्कन्धः समाप्तः

विदुषामभ्यर्थना

अत्रास्माकं मुद्रणालये ऋगादयो वेदा उपनिषदो वेदान्तग्रन्था महाभारतादीतिहासाः श्रीमद्भागवतादिमहापुराणोपपुराणानि धर्मशास्त्र-कर्मकाण्ड-व्याकरण-न्याय-योग-सांख्य-मीमांसादिशास्त्रीयग्रन्थाः काव्य-नाटक-चम्पू-प्रभृतयो ग्रन्थाः सहस्रनामाद्यनेकस्तोत्रग्रन्था विविधभाषाग्रन्थाश्च सीसकोत्तममहल्लघ्वक्षरैर्मनोहरं मुद्रिता योग्यमूल्येन क्रय्याः सन्ति, तांश्च ग्राहका यथापुस्तकसूचीपत्रं मूल्यप्रेषणेन प्राप्नुयुः ।

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

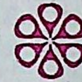
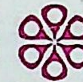
खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष / फैक्स-०२२-२३८५७४५६.
Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail: khemraj@vsnl.com

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डिंग,
जूना छापखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
ज्योति बिल्डिंग के पीछे,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाषा - ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट, पुणे - ४११०१३.
दूरभाषा-०२०-२६८७१०२५,

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वारणसी (उ.प्र) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

।। इति देवीभागवतं सभाषाटीकं समाहात्म्यम् ।।


खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई


क्षेश्री

खेमराज श्रीकृष्णदास

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन – बम्बई ४.